गीता दर्शन, भाग आठ

अनुक्रम

अध्याय 17
1. सत्य की खोज और त्रिगुण का गणित..3
2. भक्त और भगवान...24
3. सुख नहीं, शांति खोजो...51
4. संदेह और श्रद्धा...73
5. भोजन की कीमिया...98
6. तीन प्रकार के यज्ञ..121
7. शरीर, वाणी और मन के तप...146
8. पूरब और पश्चिम का अभिनव संतुलन...171
9. दान--सात्विक, राजस, तामस...198 10..क्रांति की कीमियाः स्वीकार
.... 218
11...मन का महाभारत
.... 247

अध्याय 18
1. अंतिम जिज्ञासाः क्या है मोक्ष, क्या है संन्यास.......................268 12...सात्विक, राजस और तामस त्याग
.... 287
13..फलाकांक्षा का त्याग
.... 307
14...सदगुरु की खोज
.... 325
15...महासूत्र साक्षी
.... 346
16..गुणातीत जागरण
.... 363
17...तीन प्रकार के कर्म
.... 384
18...समाधान और समाधि
.... 406
19...तीन प्रकार की बुद्धि
.... 428
20...गुरु पहला स्वाद है
.... 450

1

21..तामस, राजस और सात्विक सुख
....468
22..गुणातीत है आनंद
....485
23...स्वधर्म , स्वकर्म और वर्ण
....503
24...पात्रता और प्रसाद
....520
25...गीता -पाठ और कृष्ण -पूजा
....540
26...संसार ही मोक्ष बन जाए
....558
27..समर्पण का राज
....577
28..आध्यात्मिक संप्रेषण की गोपनीयता
....596
29..गीता -ज्ञान -यज्ञ
....616
30...मनन और निदिध्यासन
....637
31..परमात्मा को झेलने की पात्रता
....653

गीता दर्शन, भाग आठ
गीता दर्शन अध्याय 17
पहला प्रवचन

सत्य की खोज और त्रिगुण का गणित

श्रीमद्भगवद्गीता
अथ सप्तदशोऽध्यायः

अर्जुन उवाच
ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः।। 1।।
श्रीभगवानुवाच
त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तांशृणु।। 2।।
इस प्रकार भगवान के वचनों को सुनकर अर्जुन बोला, हे कृष्ण, जो मनुष्य शास्त्र-विधि को त्यागकर केवल श्रद्धा से युक्त हुए देवादिकों का पूजन करते हैं, उनकी स्थिति फिर कौन-सी है? क्या सात्विकी है अथवा राजसी है या तामसी है?
इस प्रकार अर्जुन के पूछने पर श्री भगवान बोले, हे अर्जुन, मनुष्यों
की वह बिना शास्त्रीय संस्कारों से केवल स्वभाव से उत्पन्न हुई श्रद्धा सात्विकी और राजसी तथा तामसी, ऐसे तीनों प्रकार की ही होती है, उसको तू मेरे से सुन।

सत्य की खोज उतनी ही पुरानी है, जितना मनुष्य। शायद उससे भी ज्यादा पुरानी है। मेरे देखे ऐसा ही है, मनुष्य से भी ज्यादा पुरानी सत्य की खोज है। स्वभावतः, प्रश्न उठेगा कि मनुष्य से पुरानी यह खोज कैसे हो सकती है! खोजेगा कौन?
मनुष्य से पुरानी है खोज सत्य की, ऐसा जब मैं कहता हूं, तो उसका अर्थ
है कि सत्य को खोजने की आकांक्षा से ही मनुष्य का जन्म हुआ है। मनुष्य मनुष्य है, क्योंकि सत्य को खोजता है। पशुओं में से जो चेतना निखरकर मनुष्य हुई है, वह सत्य की किसी अज्ञात खोज के कारण हुई है।
सभी पशु मनुष्य नहीं हो गए हैं; सभी पौधे मनुष्य नहीं हो गए हैं। अनंत आत्माएं हैं, उनमें से बड़ा छोटा-सा खंड मनुष्य हुआ है। यह मनुष्य कैसे हो गया है? यह सारा अस्तित्व क्यों मनुष्य नहीं हो गया है? छोटी-सी चेतना की धारा ऊपर उठी है। कौन इसे ऊपर उठा लाया है? सत्य की एक अनजानी खोज इसे ऊपर उठा लाई है।
मनुष्य और पशुओं में यही भेद है। पशु तृप्त हैं; जी रहे हैं। लेकिन जीवन क्या है, इसे जानने की अभीप्सा नहीं है। जीवन कहां से है, इसे जानने की कोई जिज्ञासा नहीं है। पशुओं के जीवन में जीवन तो है, चैतन्य का आविर्भाव नहीं; ध्यान नहीं जागा; समाधि की आकांक्षा नहीं जागी; सत्य को जानने की प्यास नहीं उठी। इसलिए कहता हूं, मनुष्य से भी ज्यादा पुरानी खोज है सत्य की।
मनुष्य के कारण तुम सत्य की खोज करते हो, ऐसा नहीं; सत्य की खोज करने
के कारण तुम मनुष्य हुए हो, ऐसा। लेकिन मनुष्य हो जाने से सत्य की खोज पूरी नहीं हो जाती; बस शुरू होती है। जो अब तक अचेतन थी; वह चेतन बनती है; जो अब तक अनजानी थी, वह जानी-मानी बनती है; जिसे अभी तुम ऐसे अंधेरे में टटोलते थे, अब तुम उसे दीया जलाकर खोजते हो।
इसलिए मनुष्यों में भी केवल थोड़े से ही लोग मनुष्य हो पाते हैं; शेष मनुष्य होकर भी चूक जाते हैं। सभी मनुष्य भी सत्य के खोजी नहीं मालूम पड़ते। उनमें भी बड़ा न्यूनतम अंश सत्य की खोज पर निकलता है। कठिन है यात्रा; दुर्गम है मार्ग; फिसलने की, गिर जाने की अनंत संभावनाएं हैं, पहुंचने की बहुत कम।

लेकिन जो पहुंच जाते हैं, वे धन्यभागी हैं। वे जीवन के शिखर को उपलब्ध होते हैं। वे सत्य को ही नहीं पा लेते, वे सत्यरूप हो जाते हैं। वे परमात्मा को ही नहीं जान लेते, वे परमात्मा ही हो जाते हैं।
अर्जुन खोजती हुई मनुष्यता का प्रतीक है। अर्जुन पूछ रहा है। और पूछना किसी दार्शनिक का पूछना नहीं है। पूछना ऐसा नहीं कि घर में बैठे विश्राम कर रहे हैं और गपशप कर रहे हैं। यह पूछना कोई कुतूहल नहीं है; जीवन दांव पर लगा है। युद्ध के मैदान में खड़ा है। युद्ध के मैदान में बहुत कम लोग पूछते हैं। इसलिए तो गीता अनूठी किताब है।
वेद हैं, उपनिषद हैं, बाइबिल है, कुरान है; बड़ी अनूठी किताबें हैं दुनिया में, लेकिन गीता बेजोड़ है। उपनिषद पैदा हुए ऋषिओं के एकांत कुटीरों में, उपवनों में, वनों में। जंगलों में ऋषिओं के पास बैठे हैं उनके शिष्य। उपनिषद का अर्थ है, पास बैठना। ऐसे पास बैठे शिष्यों से एकांत गुफ्तगू है। ऐसी दो चेतनाओं के बीच चर्चा है। लेकिन बड़ी विश्रामपूर्ण है। आसान है कि उपनिषदों में महाकाव्य भरा हो। उपनिषद पैदा हुए शांत निगूढ़ मौन एकांत में।
लेकिन गीता अनूठी है; युद्ध के मैदान में पैदा हुई है। किसी शिष्य ने किसी गुरु से नहीं पूछा है; किसी शिष्य ने गुरु की एकांत कुटी में बैठकर जिज्ञासा नहीं की है। युद्ध की सघन घड़ी में, जहां जीवन और मौत दांव पर लगे हैं, वहां अर्जुन ने कृष्ण से पूछा है। यह दांव बड़ा महत्वपूर्ण है। और जब तक तुम्हारा भी जीवन दांव पर न लगा हो अर्जुन जैसा, तब तक तुम कृष्ण का उत्तर न पा सकोगे।
कृष्ण का उत्तर अर्जुन ही पा सकता है। इसलिए गीता बहुत लोग पढ़ते हैं, कृष्ण का उत्तर उन्हें मिलता नहीं। क्योंकि कृष्ण का उत्तर पाने के लिए अर्जुन की चेतना चाहिए।
इसलिए मैं नहीं चाहता कि मेरे संन्यासी भाग जाएं पहाड़ों में। जीवन के युद्ध में ही खड़े रहें, जहां सब दांव पर लगा है; भगा.ेडापन न दिखाएं, पलायन न करें; जीवन से पीठ न मोड़ें; आमने-सामने खड़े रहें। और उस जीवन के संघर्ष में ही उठने दें जिज्ञासा को। तो तुम्हें किसी दिन कृष्ण का उत्तर मिल सकता है। पर अर्जुन की चेतना चाहिए; युद्ध चाहिए चारों तरफ।
और युद्ध है। तुम जहां भी हो--बाजार में, दुकान में, दफ्तर में, घर में--युद्ध है। प्रतिपल युद्ध चल रहा है, अपनों से ही चल रहा है। इसलिए कथा बड़ी मधुर है कि उस तरफ भी, अर्जुन के विरोध में जो खड़े हैं, वे ही अपने ही लोग हैं, भाई हैं, चचेरे भाई हैं, मित्र हैं, सहपाठी हैं, संबंधी हैं। अपनों से ही युद्ध हो रहा है। पराया तो यहां कोई है ही नहीं। जिससे भी
लड़ रहे हो, वह भी अपना ही है; दूर का, पास का, कोई नाता-रिश्ता है। सारा जीवन ही संबंधी है। यह पूरा जीवन ही परिवार है और परिवार ही बंटा है और लड़ रहा है। युद्ध दुश्मनों के बीच में नहीं है; युद्ध अपनों के ही बीच में है। युद्ध में तुम किसी और को न मारोगे, अपनों को ही मारोगे। युद्ध में तुम अपनों से ही मारे जाओगे।
पराए होते, कठिनाई न थी; दुश्मन होते, कठिनाई न थी। अर्जुन के मन में द्वंद्व खड़ा हो गया है, सब अपने हैं। और इनको मारकर क्या पाऊंगा? क्या मिलेगा?
अर्जुन भागना चाहता है। वह चाहता है, किसी ऋषि की कुटी में चला जाए; अरण्य में वास करे; शांत बैठे; ध्यान में डूबे। उसके मन में बड़ा विराग उठा है। लेकिन कृष्ण उसे खींचते हैं, भागने नहीं देते। उसके मन में विराग उठा है; वह जंगल जाना चाहता है। कृष्ण उसे युद्ध के मैदान में रोके रखते हैं। कृष्ण का प्रयोजन क्या है? वे क्यों समझा रहे हैं कि तू रुक; भाग मत! क्योंकि जो भाग गया स्थिति से, वह कभी भी स्थिति के ऊपर नहीं उठ पाता। जो परिस्थिति से पीठ कर गया, वह हार गया। भगोड़ा यानी हारा हुआ। जीवन ने एक अवसर दिया है पार होने का, अतिक्रमण करने का। अगर तुम भाग गए, तो तुम अवसर खो दोगे।
भागो मत, जागो। भागो मत, रुको। ज्यादा जागरूक, ज्यादा सचेतन बनो; ज्यादा जीवंत बनो; ज्यादा ऊर्जावान बनो; ज्यादा विवेक, ज्यादा भीतर की मेधा उठे। तुम्हारी मेधा इतनी हो जाए कि समस्याएं नीचे छूट जाएं।

समस्याओं से भागकर तुम समस्याओं से छोटे रह जाओगे। उनसे लड़कर उठो। उनको सीढ़ियां बनाओ। जिनको तुमने पत्थर समझा है मार्ग का, वे पत्थर ही हैं, ऐसा मत समझो; वे सीढ़ियां भी बन सकते हैं। उन पर पैर रखो और तुम ऊंचाई पर पहुंचोगे।
कृष्ण चाहते हैं, अर्जुन युद्ध से निखरकर उठे। अर्जुन चाहता है, भाग जाए।
कृष्ण ने भागने न दिया अर्जुन को और जगत को संन्यास का पहला ठीक-ठीक संदेश दिया है। वैसा संदेश बुद्ध से भी नहीं मिला; महावीर से भी नहीं मिला; क्योंकि उन सब ने भागने वाले को स्वीकार कर लिया। कृष्ण की व्यवस्था जटिल है, लेकिन बड़ी बहुमूल्य है।
और इसलिए मैं राजी हुआ गीता पर बोलने को, क्योंकि गीता में मनुष्य का भविष्य छिपा है। अब न तो महावीर का संन्यासी बच सकता है दुनिया में, न बुद्ध का संन्यासी बच सकता है। दुनिया ही न रही वह; भगोड़ों का उपाय ही न रहा। अब तो सिर्फ कृष्ण का संन्यासी बच सकता है दुनिया में। जो भागता नहीं है, जो पैर जमाकर खड़ा हो जाता है, जो हर परिस्थिति का उपयोग कर लेता है, विपरीत परिस्थिति का भी उपयोग कर लेता है, जो युद्ध के बीच में ध्यान को उपलब्ध होता है।
यही तो कला है। भागकर शांत हो जाने में कला भी क्या है? हिमालय पर बैठकर तो कोई भी शांत हो जाएगा, कोई भी। तुम्हारी विशिष्टता क्या है? लेकिन वह शांति हिमालय की है, तुम्हारी नहीं। और जब तुम लौटोगे, तुम पाओगे, तुम उतने ही अशांत हो, जितने तब थे, जब गए। बीच का समय व्यर्थ ही गंवाया। तीस साल बाद भी वापस आओगे, तुम पाओगे, वही राग, वही क्रोध, वही लोभ, वही मोह, सब बैठे हैं। हिमालय में मौका न मिला निकलने का, इसलिए सोए थे। लौटते ही समाज में, समूह में, भीड़ में मौका मिलेगा; जगने शुरू हो जाएंगे।
सुंदर स्त्री दिखाई पड़ेगी, वर्षों सोई हुई वासना उठ आएगी। धन दिखाई पड़ेगा, वर्षों सोया लोभ कुंडली खोलकर सर्प की तरह फैल जाएगा। कोई जरा सा अपमान कर देगा, वर्षों तक बेजान पड़ा क्रोध एक झटके में जीवंत हो उठेगा। नहीं; कोई भागकर कभी जीता नहीं। भागना तो हार की स्वीकृति है। वह तो तुमने मान ही लिया कि तुम जीत न सकोगे।
कृष्ण अर्जुन को कहते हैं, रुक। इसलिए संदेश बड़ा अनूठा है।
अर्जुन की जिज्ञासा भी अनूठी है। जीवन-मरण दांव पर लगा है। तुम्हारा
भी अगर जीवन-मरण दांव पर लगा है, तो मैं तुमसे जो कहूंगा, वह भगवद्गीता हो जाएगी। तुम्हारा अगर जीवन-मरण दांव पर नहीं लगा है, तुम ऐसे ही चले आए हो, जैसे तुम ताश खेलने चले गए हो। किसी मित्र ने बुलाया; वर्षा के दिन हैं; फुरसत का समय है; तुम ताश खेल आए हो। कुछ दांव पर नहीं लगा है।
नहीं; ऐसे न चलेगा। अगर ताश खेलने में भी तुमने पूरा जीवन दांव पर लगा दिया है, अगर तुम जुआरी भी हो, तो बात बदल जाती है। अगर तुमने सब कुछ दांव पर लगाया है, तो मैं तुमसे जो कहूंगा, वह तुम्हारे लिए भगवद्गीता हो जाएगी। अकेले मेरे कहने से न होगा। तुम्हें अर्जुन जैसी चेतना चाहिए। मनुष्य की खोज मनुष्य से भी पुरानी है; वही खोज तुम्हें यहां ले आई है। और तुम भाग मत जाना। क्योंकि यही वह जगह है, जहां सत्य का अंतिम उदघाटन होगा--संसार में, भीड़ में, गहन में, बाजार में, उपद्रव में, युद्ध में। यही कुरुक्षेत्र है, जहां किसी दिन पांडव और कौरव इकट्ठे हो गए थे युद्ध को। और ध्यान रखना, जिनसे तुम्हारा संघर्ष है, वे अपने ही हैं। और ध्यान रखना कि जिससे तुम्हें पूछना है, वह तुम्हारे कहीं बाहर नहीं, तुम्हारी चेतना का ही सारथी है।
यह प्रतीक बड़ा मधुर है। अशोभन भी लगता है सोचकर कि अर्जुन तो रथ में सवार था और कृष्ण सारथी थे! लेकिन बड़े पुराने नियमों के अनुसार सारी कथा को रूप दिया गया है। तुम्हारे भीतर तुम्हारा सारथी है। तुमने कभी उससे पूछा नहीं; तुमने कभी उस पर ध्यान ही न दिया। सारथियों पर कोई ध्यान देता है? अर्जुन अनूठा रहा होगा। क्योंकि बैठा तो ऊपर था, रथ में था, असली तो वही था। सारथी तो सारथी ही था। घोड़ों की साज-सम्हाल कर लेता था, ठीक; रथ को चला लेता था, ठीक।

तुम्हें कभी जिज्ञासा उठ आए, तो कहीं तुम कोचवान से पूछते हो? लेकिन अर्जुन ने सारथी से पूछा।
तुम्हें खोजना होगा, तुम्हारे भीतर सारथी कौन है? रथ तो साफ है कि शरीर है। मालिक भी तुम्हें पक्का पता है कि तुम्हारा अहंकार है। सारथी कौन है? समस्त ज्ञानी कहते हैं, तुम्हारा विवेक, तुम्हारा बोध, साक्षी-भाव सारथी है। उससे ही पूछना होगा। तुम्हारे सारथी से ही उठेगी वह आवाज, जिससे तुम्हारे लिए गीता का प्रकाश साफ हो जाएगा और गीता का मार्ग साफ हो जाएगा। गीता क्या कहती है, तुम तब तक न समझ पाओगे, जब तक तुम्हारा सारथी तुम्हें मिला नहीं।
रथ तुम्हारे पास है; मालिक भी बने तुम बैठे हो; घोड़े भी इंद्रियों के भागे जाते हैं। इन सबके बीच सारथी जैसे खो ही गया है, उसे खोजो। सारी ध्यान की प्रक्रियाएं सारथी को खोजने के लिए हैं।
मीठी कथा है महाभारत में कि युद्ध के पूर्व अर्जुन, दुर्योधन अपने सभी मित्रों, सगे-संबंधियों के घर गए प्रार्थना करने कि युद्ध में हमारी तरफ से सम्मिलित होना। सभी नाते-रिश्तेदार थे; सभी जुड़े थे; गृहयुद्ध था। अर्जुन भी पहुंचा कृष्ण के पास; दुर्योधन भी पहुंचा। दोनों एक ही समय पहुंच गए।
दोनों सदा ही एक समय पहुंचते हैं तुम्हारे भीतर भी। तुम्हारी बुराई
और तुम्हारी भलाई सदा साथ-साथ खड़ी हैं। तुम्हारा असत रूप, तुम्हारा सत रूप सदा साथ-साथ खड़ा है। दोनों तुम्हीं से तो ऊर्जा लेते हैं; दोनों की शक्ति तो तुम्हीं हो; दोनों तुम्हीं से तो मांगते हैं और सदा साथ-साथ मांगते हैं।
जब भी तुम चोरी करने जाते हो, तब भी तुम्हारे भीतर का अचोर कहता है, मत करो। जब तुम झूठ बोलते हो, तुम्हारे भीतर वह स्वर भी रहता है, जो कहता है, नहीं, उचित नहीं है। जब तुम सत्य बोलते होते हो, तब भी कोई भीतर से कहता है कि लाभ न होगा, हानि होगी। जरा-सा झूठ बोल लेने में हर्ज भी क्या है? जीवन में थोड़ा-बहुत तो चलता ही है; ऐसे बिल्कुल संन्यासी होकर तो लुट जाओगे। जब नहीं चोरी करते हो, तब भी मन कहता है कि क्या कर रहे हो? चूके जा रहे हो। उठा लो! कोई देखने वाला भी नहीं है। और चोरी तो तभी चोरी है, जब पकड़ी जाए। यहां तो पकड़े जाने का कोई उपाय भी नहीं दिखता; कोई है भी नहीं आस-पास; उठा लो। चोर और अचोर साथ-साथ हैं; झूठ और सच साथ-साथ हैं।
अर्जुन और दुर्योधन साथ-साथ पहुंच गए हैं कृष्ण के पास। लेकिन स्वभावतः दोनों के पहुंचने में बुनियादी फर्क है। वही फर्क निर्णायक हो गया।
दुर्योधन तो बैठ गया सिर के पास। कृष्ण सोए थे; दोपहर का वक्त होगा, विश्राम करते होंगे। विश्राम में खलल देना उचित नहीं। दुर्योधन तो बैठ गया जाकर सिरहाने के पास; अर्जुन बैठ गया पैर के पास।
वहीं निर्णय हो गया। उस क्षण में सारी गीता का निर्णय हो गया। उस क्षण में सारा महाभारत जीत लिया गया, हार लिया गया। उसके बाद तो विस्तार है। बीज तो घट गया। अर्जुन के पैरों के पास बैठने में बीज घट गया।
अगर तुम्हें अपने साक्षी को खोजना है, तो विनम्र होना पड़ेगा। तुम्हें अगर अपने सारथी को खोजना है, तो विनम्र होना पड़ेगा। क्योंकि अहंकार ही तो धुआं पैदा करता है और देखने नहीं देता। अहंकार ही तो अटकाता है, उलझाता है। अहंकार ही तो परदा बन जाता है सख्त।
दुर्योधन कैसे बैठ सकता है पैरों में? दुर्योधन! बात ही पैर में बैठने की उसके मन में न उठी होगी। वह सहज अपने स्वभाववश ही जाकर सिर के पास बैठ गया।
अहंकार सदा सिर के पास है। और जहां अहंकार है, वहीं चूक हो जाती है।
फिर तुम अपने सारथी से नहीं मिल पाते। फिर सब मिल जाएगा, सारथी न मिलेगा।
अर्जुन बैठा है पैर के पास। वह विनम्र निवेदन है; वह निरअहंकार भाव है। साक्षी मिल ही जाएगा।
कृष्ण की आंख खुली। कथा कहती है, स्वभावतः पहले अर्जुन दिखाई पड़ा।

विनम्र पर आंख पड़ेगी साक्षी की; अहंकारी पर आंख नहीं पड़ेगी। अहंकारी
तो अपने में ऐसा अकड़ा है, वह तो सिर के पीछे बैठा है। वह सम्राट होकर बैठा है; वह कृष्ण से बड़ा होकर बैठा है; वह कृष्ण से ऊपर बैठा है।
तुम्हारा अहंकार रथ में सवार है। और सारथी से इतने ऊपर बैठ गया है कि सारथी भी अगर देखना चाहे, तो तुम दिखाई न पड़ोगे। और तुम तो अंधे हो, इसीलिए तुम सिर के पास बैठे हो। अगर थोड़ी भी आंख होती, तो तुम पैर पकड़ लिए होते, तुम पैर के पास बैठे होते।
वहीं युद्ध जीत लिया गया। निर्णय तो सब हो ही गया उसी क्षण। फिर तो बाकी विस्तार की बातें हैं; वे छोड़ी भी जा सकती हैं। जो जानते हैं, उनके लिए कथा पूरी हो गई।
अर्जुन पर आंख पड़ी, तो कृष्ण ने स्वभावतः पूछा, कैसे आए? जिस पर आंख पड़ी, उससे पहले पूछा। तत्क्षण दुर्योधन बोला, मैं भी साथ ही आया हूं। मुझे न भूल जाएं; मैं भी यहां मौजूद हूं।
अहंकार को बतलाना पड़ता है कि मैं मौजूद हूं। विनम्र, पता ही चल जाता
है कि मौजूद है। और जब बतलाना पड़े, तो शोभा चली जाती है।
तो कृष्ण ने कहा, ठीक, तुम दोनों साथ ही आए हो। लेकिन मेरी नजर अर्जुन
पर पहले पड़ी, इसलिए पहले स्वभावतः मैं उससे पूछूंगा, कैसे आए हो? क्या मांगने आए हो?
दुर्योधन डरा, भयभीत हुआ। यह तो गलती हो गई। गलती इसलिए नहीं कि मैंने विनम्रता न दिखाई, गलती इसलिए हो गई कि यह तो लाभ का क्षण चूक गया।
अगर कभी अहंकारी विनम्र भी होना चाहता है, तो लोभ के कारण। विनम्रता उसका आधार नहीं होती। अगर अहंकारी कभी अक्रोधी भी होना चाहता है, तो कारण निरअहंकारिता या अक्रोध नहीं होता; कारण कुछ और ही होते हैं--लोभ, पद, प्रतिष्ठा, वासना, महत्वाकांक्षा।
डरा कि यह तो मुश्किल हो जाएगी। अर्जुन ने कहा कि मैं भी उसी लिए आया हूं; दुर्योधन भी उसी लिए आया है। हम मांगने आए हैं आपकी सहायता। युद्ध टाला नहीं जा सकता; युद्ध होकर रहेगा। हम प्रार्थना करने आए हैं कि हमारे साथ हों।
कृष्ण ने कहा, तुम दोनों आए हो, तो एक ही उपाय है कि एक मेरी फौजों को मांग ले और एक मुझे।
दुर्योधन कंप गया होगा कि अर्जुन निश्चित फौजों को मांग लेगा। क्योंकि कृष्ण को लेकर क्या करेंगे? इस अकेले को क्या करेंगे? खाएंगे कि पीएंगे? इस अकेले का मूल्य क्या है? विराट फौजें हैं इसकी! और पहला मौका अर्जुन को मिला है; मैं गया। यह तो बाजी चूक गया। अच्छा हुआ होता, चरणों में बैठ गया होता; अच्छा हुआ होता, चरण पकड़ लिए होते।
चौंका होगा दुर्योधन भी, जब अर्जुन ने निर्णय दिया। अर्जुन ने कहा कि अगर यही निर्णय है, तो मैं आपको मांग लेता हूं। छाती फूल गई होगी दुर्योधन की। सोचा होगा, ये मूढ़ ही रहे पांडव।
अहंकारियों को विनम्र व्यक्ति मूढ़ ही मालूम पड़ते हैं। अज्ञानियों को ज्ञानी पागल मालूम पड़ते हैं। नासमझों को समझदार नासमझ मालूम पड़ते हैं। रोगियों को स्वस्थ लगता है कि कुछ महारोग से पीड़ित हैं। पीलिया के मरीज को सभी कुछ पीला दिखाई पड़ने लगता है। बहुत बुखार के बाद उठे आदमी को स्वादिष्ट से स्वादिष्ट भोजन भी तिक्त मालूम पड़ते हैं, स्वाद नहीं मालूम पड़ता; मिठाई में भी मिठास नहीं मालूम पड़ती।
दुर्योधन हंसा होगा, प्रसन्न हुआ होगा; हाथ में आई बाजी यह मूढ़ अर्जुन फिर हार गया! ऐसे ही ये सदा हारते रहे हैं। ऐसे ही वहां हारे थे, जब शकुनि ने दांव फेंके। ऐसे ही फिर हार गए। वहां तो मेरी चालाकी से हारे थे। यहां अपनी ही बुद्धिहीनता से हार गए। ये हारने को ही हैं; इनकी विजय का कोई उपाय नहीं। ऐसा शुभ अवसर चूक गया! मांग लेता फौजों को; कृष्ण को लेकर क्या करेगा? एक कृष्ण, अकेला कृष्ण किस मूल्य का है!
लेकिन यहीं निर्णय हो गया। एक कृष्ण एक तरफ, सारा संसार दूसरी तरफ, तो
भी एक कृष्ण चुनने जैसा है। एक चुनने जैसा है। इक साधे सब सधे, सब साधे सब जाए। एक को पकड़कर अर्जुन जीत गया।

लेकिन यह कोई जीतने के लिए एक को नहीं पकड़ा था, यह ख्याल रखना। नहीं तो भूल हो जाएगी। तब तो फिर दुर्योधन और अर्जुन के गणित में कोई फर्क न रह जाएगा। यह जीतने के लिए एक को नहीं पकड़ा था। एक को पकड़ने के कारण जीत गया, यह बात और है। अपनी बुद्धि से भी पूछा होता, तो खुद की बुद्धि भी कहती कि चुन लो फौज-फांटा; वहां शक्ति है। लेकिन जो समझदार है, वह शक्ति नहीं चुनता, शांति चुनता है।
कृष्ण को चुनकर अर्जुन ने शांति चुन ली, साक्षी-भाव चुन लिया, बोध चुन लिया, बुद्धत्व चुन लिया। वही वक्त पर काम आया। अंधी फौजें, अंधी ऊर्जा को चुनकर दुर्योधन ने क्या पाया? नौकर-चाकर इकट्ठे कर लिए; मालिक खो गया। तुम भी जीवन में ध्यान रखना, क्योंकि सौ में निन्यानबे मौके पर मैं भी देखता हूं कि तुम भी दुर्योधन के गणित से ही सोचते हो। फौज-फांटा चुनते हो। एक को छोड़ देते हो। रोज वही घटना घट रही है। वह एक तुम्हारे भीतर छिपा तुम्हारा विवेक है, उसे तुम छोड़ देते हो। कभी धन चुनते हो, कभी मकान चुनते हो, कभी पद चुनते हो, प्रतिष्ठा चुनते हो, हजार चीजें चुनते हो, फौज-फांटा। और एक को छोड़ देते हो।
तुम सोचते भी हो, उस एक में रखा भी क्या है! इतना विस्तार है संसार का, इसे पा लो। इतना बड़ा साम्राज्य है, उस एक को पाकर करोगे भी क्या? होगी आत्मा, होगी विवेक की अवस्था, होगा ध्यान, होगी समाधि, लेकिन एक ही है। और इतना विराट संसार पड़ा है अभी जीतने को; पहले इसे कर लो। फिर उस एक को देख लेंगे।
अगर तुम्हारे सामने यह सवाल उठे कि तुम एक परमात्मा को चुन लो या सारे संसार को, तुम क्या करोगे? सौ में निन्यानबे मौके पर तुम वही करोगे, जो दुर्योधन ने किया; और तुम प्रसन्न होओगे। वही तुम करते रहे हो। करोगे, यह कहना ही गलत है। तुम कर ही रहे हो।
लेकिन अर्जुन धन्यभागी हुआ। कृष्ण को पाकर सब पा लिया। मालिक को पा लिया, स्वामी को पा लिया। नौकर-चाकरों का क्या हिसाब है? घोड़े-रथों की क्या कीमत है? और वक्त पर यही एक काम आया। वक्त पर सदा एक काम आता है। युद्ध के सघन मैदान में, जब अर्जुन के प्राण कंपने लगे, होश खोने लगा, गांडीव थरथराने लगा, पैर के नीचे की जमीन खिसक गई, कुछ सूझ न पड़े, सब तरफ अंधेरा हो गया। एक क्षण में सब शुरू हो जाने को है; योद्धा तत्पर हो गए, शंखनाद होने लगे, अर्जुन की प्रतीक्षा होने लगी कि देर क्यों हो रही है! और उसके गात शिथिल हो गए, उसका गांडीव मुरदा हो गया, उसकी ऊर्जा जैसे कहीं खो गई। अचानक उसने अपने को असहाय पाया। और इस क्षण में उस एक से ही ज्योति मिली। इस एक क्षण में वही सारथी काम आया।
खोजो भीतर, कौन है सारथी? ध्यान की खोज सारथी की खोज है। कौन है, जो तुम्हें वस्तुतः चलाता है? वही सारथी है। कौन है असली मालिक? अहंकार! तो तुम सिर के पास बैठे दुर्योधन हो। विवेक! तो तुम पैर के पास बैठे अर्जुन हो। वही काम आएगा जीवन के सघन युद्ध में।
अर्जुन बनो, तो कृष्ण की गीता तो सदा तुममें जन्म लेने को तत्पर है। तुम जरा गर्भ दो; तुम जरा जगह दो। तो जैसी गीता अर्जुन को मिली, वैसी ही तुम्हें भी मिल सकती है।
अर्जुन बोला, हे कृष्ण, जो मनुष्य शास्त्र-विधि को त्यागकर केवल श्रद्धा से युक्त हुए देवादिकों का पूजन करते हैं, उनकी स्थिति फिर कौन-सी है? सात्विकी अथवा राजसी अथवा तामसी?
इसके पहले कि हम इस सूत्र में प्रवेश करें, जीवन के गणित को समझ लेना जरूरी, उपयोगी है।
जिन्होंने भी जाना है कभी, अनंत काल में जो भी जागे हैं और बुद्ध हुए हैं, भगवत्ता पाई है, उन सब ने कुछ बातों पर सहमति दी है, अपने हस्ताक्षर की मोहर लगाई है। वे बातें बहुत थोड़ी हैं। बहुत-सी बातों में उनमें भेद है; भेद ही नहीं विरोध भी है। क्योंकि वे विभिन्न लोगों से बोले, इसलिए भेद है। क्योंकि वे विभिन्न समयों में बोले, इसलिए भिन्नता है। और क्योंकि वे विभिन्न दृष्टिओं से बोले, इसलिए विरोध भी है। सत्य बहुत बड़ा है, दृष्टि बड़ी छोटी है। विपरीत, दृष्टि में नहीं समाता, सत्य में समाता है।

तो कृष्ण बोले अर्जुन से, वह बात अलग, परिस्थिति अलग। महावीर बोले गौतम से, वह बात अलग, परिस्थिति अलग। गौतम भिन्न व्यक्ति है उतना ही जितने महावीर भिन्न हैं कृष्ण से, उतना ही गौतम भिन्न है अर्जुन से।
और सारी स्थिति भिन्न है। वन के एकांत में, सुबह पक्षियों की चहचहाहट में, महावीर से गौतम कुछ पूछता और महावीर बोलते। वृक्ष की छाया के तले आनंद बुद्ध से कुछ पूछता और बुद्ध बोलते। जीसस बोले, मोहम्मद बोले, परिस्थितियां भिन्न थीं, इसलिए बहुत बातें भिन्न हैं। लेकिन मूल सत्य भिन्न नहीं हो सकते।
उन कुछ मूल सत्यों में एक है, तीन का गणित। जीसस कहते हैं ट्रिनिटी, उस तीन के गणित को। वे कहते हैं, परमात्मा तीन हो गया। हिंदू कहते हैं, त्रिमूर्ति। वही ट्रिनिटी, परमात्मा तीन हो गया। ईसाइयों के नाम अलग हैं। हिंदू कहते हैं, ब्रह्मा, विष्णु, महेश। ईसाई कहते हैं, परमात्मा पिता, बेटा जीसस और दोनों के बीच में पवित्र आत्मा, ऐसे तीन चेहरे हैं। लेकिन तीनों के भीतर छिपा है एक।
योगी कहते हैं, त्रिकुटी, जहां तीन मिलते हैं, वहां एक का अनुभव होता है। तांत्रिक कहते हैं, त्रिपुटी, जहां तीन तीन की तरह खो जाते हैं और एक समन्वय सधता है, वहीं परम का आविर्भाव होता है।
हिंदू, जैन, बौद्ध, ईसाई, मुसलमान, सभी ने तीन की बात कही है। और इन सब में सर्वाधिक गहरी जिन्होंने तीन की चर्चा की है, वे हैं सांख्य दार्शनिक। उनका नाम ही सांख्य पड़ गया, क्योंकि उन्होंने पहली दफा जीवन के गणित की संख्या खोजी। सांख्य का अर्थ है संख्या। जिन्होंने पहली दफे गणित बिठाया। वह सबसे प्राचीन है। सबसे पहले उन्होंने तीन का राज प्रकट किया। उसकी वजह से वे सांख्य ही कहलाने लगे। उन्होंने जीवन के पूरे गणित को ठीक से पकड़ लिया।
उन्होंने कहा, एक से तीन होते हैं और फिर तीन से नौ होते हैं। और फिर
नौ से अनंत-अनंत होते चले जाते हैं। और जब वापसी में यात्रा होती है, तो फिर अनंत घटकर नौ बनते हैं; नौ घटकर तीन बनते हैं; तीन घटकर एक हो जाता है। सारा संसार संख्या का विस्तार है, एक से तीन, तीन से नौ, नौ से इक्यासी, फिर इक्यासी गुणित इक्यासी, और आगे, और आगे। फिर ऐसे ही पीछे लौटना पड़ता है। परसों रात एक इटालियन संन्यासिनी वापस लौटती थी नेपल्स। उसे मैंने नाम दिया है, कृष्ण-राधा। उसने कभी पूछा न था अब तक कि अर्थ क्या है। जाते समय मैंने उससे पूछा, कुछ पूछना है? उसने कहा कि और कुछ नहीं पूछना है; बड़ी तृप्त, शांत होकर जाती हूं। एक बात भर पूछनी है जो पहले दिन मैं पूछने से चूक गई, कृष्ण-राधा का अर्थ क्या है? आपने मुझे राधा क्यों पुकारा है? तो उसे मैंने जो कहा है, वह मैं तुमसे भी कहना चाहूंगा, क्योंकि इन सूत्रों से उसका बड़ा गहरा संबंध है।
उसे मैंने कहा कि पुराने शास्त्रों में राधा का कोई उल्लेख नहीं है। गोपियां हैं, सखियां हैं, सोलह हजार हैं। कृष्ण उनके साथ नाचते हैं; उनकी बांसुरी बजती है। और सारा वन-प्रांत आनंद से गूंज उठता है; रास की लीला चलती है। लेकिन राधा का कोई नाम पुराने शास्त्रों में नहीं है। सिर्फ इतना ही कहीं-कहीं उल्लेख है कि और सारी सखियों में, और सारी गोपियों में एक गोपी है, जो कृष्ण के बहुत निकट है, जो उनकी छाया की तरह है। लेकिन उसका कोई नाम नहीं है।
यह भी उचित ही है; क्योंकि कृष्ण के करीब नाम रहेगा, तो करीब ही न आ सकोगे। इसलिए पुराने शास्त्रों ने उसे कोई नाम नहीं दिया। छाया की तरह है, कृष्ण के निकट है।
अपनी तरफ से कृष्ण के निकट है, तो स्वभावतः कृष्ण की तरफ से भी निकटता है। क्योंकि भक्त जितना निकट भगवान के आ जाए, उतना ही निकट भगवान भक्त के आ जाता है। वह भक्त पर ही निर्भर है कि तुम कितने निकट भगवान को चाहते हो, उतने निकट तुम पहुंच जाओ। जो तुम भगवान से चाहते हो तुम्हारे प्रति, वही तुम भगवान के प्रति करो, यही तो सूत्र है।
तो शास्त्र कहते हैं कि निकट है, बहुत निकट है, छाया की तरह है। लेकिन किसी नाम का उल्लेख नहीं है। अच्छा किया। क्योंकि नाम-रूप खो जाए, तभी तो

कोई कृष्ण के निकट आता है। इसलिए नाम क्या देना! लेकिन फिर हजारों साल तक नाम नहीं दिया गया।
कुछ सात सौ वर्ष पहले अचानक राधा का नाम प्रकट हुआ। गीत गाए जाने लगे; महाकवियों ने परम रचनाएं रचीं; जयदेव ने गीतगोविंद गाया; राधा का आविर्भाव हुआ। राधा शब्द बहुमूल्य होने लगा। इतना बहुमूल्य हो गया कि अगर तुम अकेला अब कृष्ण कहो, तो आधा मालूम पड़ता है। राधा-कृष्ण ही पूरा मालूम पड़ता है। और न केवल महत्वपूर्ण हो गया, कृष्ण को पीछे हटा दिया; राधा आगे आ गई। कोई नहीं कहता, कृष्ण-राधा। लोग कहते हैं, राधा-कृष्ण।
यह भी बड़ा महत्वपूर्ण है। जब भक्त इतने निकट आ जाता है कि परमात्मा में एक हो जाता है, तो पहले तो भक्त परमात्मा की छाया होता है; फिर परमात्मा भक्त की छाया हो जाता है। राधा आगे आ गई।
नाम कैसे खोज लिया यह जब नाम शास्त्रों में था ही नहीं? नाम की खोज अलग है। नाम की खोज के पीछे बड़ा गणित है, सांख्य का गणित है। राधा शब्द बनता है धारा शब्द को उलटा देने से।
योगियों की खोज है कि धारा का अर्थ होता है, बहिर्गमन। जैसे गंगोत्री
से गंगा की धारा निकलती है, तो स्रोत से दूर जाती है। स्रोत से दूर जाने वाली अवस्था का नाम है, धारा। और राधा धारा का उलटा शब्द है। उसका अर्थ है, जो स्रोत की तरफ वापस आती है। जब एक से तीन बनते हैं, तीन से नौ बनते हैं, नौ से इक्यासी बनते हैं, तो धारा। जब इक्यासी से नौ बनते हैं, नौ से तीन बनते हैं, तीन से एक बनता है, तो राधा।
राधा योगियों और सांख्य अनुभोक्ताओं के अनुभव से निकला हुआ शब्द है। उन्होंने जाना कि जीवन की धारा बहिर्गामी है, बाहर जाती है, दूर जाती है, मूल से दूर जाती है, उत्स से दूर जाती है, उत्स की तरफ पीठ होती है, आंखें अनंत क्षितिज पर लगी होती हैं--यह धारा की अवस्था है। जब कोई लौटता है मूल उत्स की तरफ, स्रोत की तरफ, जब गंगा वापस लौटने लगती है गंगोत्री की तरफ, उलटी यात्रा शुरू होती है, अप-स्ट्रीम। अब धारा बाहर की तरफ नहीं जाती है, भीतर की तरफ आती है। बहिर्मुखता बंद होती है; अंतर्मुखता शुरू होती है; तभी तो कृष्ण के पास आती है राधा। धीरे-धीरे, धीरे-धीरे, गंगोत्री में गिर जाती है गंगा। गंगा विलीन हो जाती है; एक रह जाता है।
उस छाया की तरह घूमने वाली सखी को हजारों साल तक नाम न मिला। कोई सात
सौ वर्ष पहले अचानक नाम का आविर्भाव हुआ। और जिन्होंने नाम दिया, बड़े अदभुत लोग रहे होंगे। जिन्होंने नाम नहीं दिया, वे भी बड़े अदभुत लोग थे। और जिन्होंने नाम दिया, वे कुछ कम अदभुत लोग न थे। क्योंकि नाम उन्होंने ऐसा गहरा दिया कि उसमें सारे शास्त्र को समा दिया।
मैंने जो प्रतीक चुना है आश्रम के लिए, वह एक से तीन, तीन से नौ, इसका
ही प्रतीक है। वह सृष्टि और प्रलय दोनों उसमें हैं। अगर धारा की तरह जाओ, तो एक से तीन, तीन से नौ और अनंत होता जाता है। अगर लौटने लगो, घर वापस आने लगो, तो नौ से तीन, तीन से एक हो जाता है।
इस संबंध में समस्त ज्ञानियों की सहमति है कि अस्तित्व का ढंग, सृष्टि का ढंग है, एक से अनेक। तीन पहला पड़ाव है। और फिर प्रलय, जब सृष्टि सिकुड़ती है और यात्रा समाप्त होती है, लीन होती है; सृष्टि की रात आती है; ब्रह्मा का दिन पूरा होता है, तब फिर एक पड़ाव है, आखिरी पड़ाव, तीन। पहला पड़ाव भी तीन है, आखिरी पड़ाव भी तीन है। इसलिए तीन बड़ा महत्वपूर्ण है-- ट्रिनिटी, त्रिमूर्ति, त्रिकुटी, त्रिपुटी।
महावीर के त्रि-रत्न, बुद्ध की त्रि-शरण, लाओत्से के थ्री ट्रेजर्स,
वह सब तीन पर उनका जोर है। क्योंकि वही पहला पड़ाव है, वही अंतिम पड़ाव है। वहीं से तुम शुरू होते हो, वहीं तुम समाप्त होते हो। क्योंकि फिर एक में तो परमात्मा ही बचता है। जब तक एक है, तुम शुरू नहीं हुए; जब फिर एक हो गया, तुम न रहे। तीन से अहंकार शुरू होता है और तीन पर ही अहंकार समाप्त हो जाता है। ये जो सांख्यों ने तीन सूत्र खोजे, वे हैं, सत्व, रज, तम। इन तीन से, सांख्य कहते हैं, सारा अस्तित्व बना है। ये त्रिगुण, इन तीन का ही सारा खेल है। जिसने इन तीन को जान लिया, उसके हाथ में कुंजी आ गई; वह चाहे तो वापस लौट जाए, एक में लीन हो जाए।
तो इन तीन के स्वभाव को हम थोड़ा समझ लें।

तम का अर्थ है, आलस्य। तम का अर्थ है, ठहरना। तम का अर्थ है, रुकना। तम बांधने वाली शक्ति है। अगर तम न हो, तो चीजें चलती ही जाएंगी और रुक न सकेंगी। तुम एक पत्थर उठाकर फेंकते हो, अगर तम न हो जगत में, कुछ रोकने की शक्ति न हो, अवरोध न हो जगत में, तो पत्थर फिर चलता ही जाएगा, चलता ही जाएगा, रुकेगा कैसे? तम है अवरोधक ऊर्जा।
तो तुम फेंकते हो पत्थर को; जब तुम फेंकते हो, तो तुम उसे रज की शक्ति देते हो। इसलिए तुम्हारा हाथ दुखता है; शक्ति हाथ से गई। तुमने कुछ गंवाया पत्थर को फेंकने में। और जितनी शक्ति तुमने दी, जितने जोर से फेंका, जितना गंवाया, जितनी ऊर्जा दे दी पत्थर को, उतनी दूर पत्थर जाता है। जैसे ही ऊर्जा खतम हो जाती है, तम की शक्ति उसे नीचे खींच लेती है।
जिसको न्यूटन ने ग्रेविटेशन कहा है, वह तम का ही एक स्थानीय उपयोग है,
तम का ही एक रूप है। तम के और बहुत रूप हैं; लेकिन जिसको न्यूटन ने गुरुत्वाकर्षण कहा... । क्योंकि वह बैठा है बगीचे में और एक फल को उसने गिरते देखा। और उसे सवाल उठा कि जब फल गिरता है वृक्ष से, तो ऊपर की तरफ क्यों नहीं जाता? बाएं क्यों नहीं जाता? दाएं क्यों नहीं जाता? नीचे ही क्यों आता है?
तम है नीचे की तरफ खींचने वाली शक्ति। तो जिससे तुम नीचे गिरते हो, वह
तम है। जिससे तुम नरक में गिरते हो, वह तम है। जब तुम्हारे भीतर चोरी तुम करते हो, तो तम है; झूठ बोलते हो, तम है। जहां-जहां तुम नीचे उतरते हो, वहां तम है। तम है एक आलस्य, एक निद्रा।
गुरुत्वाकर्षण तम का एक रूप है, और आध्यात्मिक अंधापन भी तम का एक रूप है। जिन्होंने भी समाधि जानी, वे कहते हैं, हलके हो गए, जैसे पंख लग गए, आकाश में उड़ जाएं। जब तुम्हारे भीतर भी ध्यान थोड़ा गहरा होगा, तो तुम अचानक किसी दिन पाओगे बैठे-बैठे, जैसे शरीर जमीन से ऊपर उठ गया। आंख खोलकर पाओगे, जमीन पर बैठा है। सोचोगे, भ्रांति हो गई, कल्पना हो गई। फिर आंख बंद करोगे, फिर थोड़ी देर में पाओगे, शरीर ऊपर उठ गया। शरीर नहीं उठ रहा है, लेकिन तम की शक्ति कम हो रही है। इसलिए भीतर अनुभव होता है, जैसे शरीर ऊपर उठ गया, हलका हो गया।
जितना तमस होगा, उतना बोझ होगा। लोगों को चलते देखो, ऐसे चल रहे हैं, जैसे सिर पर बोझ रखे हों। बोझ बिल्कुल दिखाई नहीं पड़ता; वह तम का बोझ है। उसे तुम किसी तराजू पर न तौल सकोगे। वह आत्मिक बोझ है। वह चिंताओं का बोझ है, दुर्गुणों का बोझ है, गलत आदतों का बोझ है, गलत संस्कारों का बोझ है, गलत संबंधों का बोझ है, गलत निर्णयों का बोझ है, वह सब बोझ वहां है। वह सब तमस का फैलाव है।
तमस यानी जो रोकता, तमस यानी जो अटकाता, तमस यानी जो अवरोध बनता। तुम्हारे पैर अगर जमीन में गड़े हैं, तो वह तमस है। तुम अगर अपनी चेतना स्थिति में ऊपर नहीं उठ पाते, तो तमस का बहुत वजन है।
तमस जरूरी है, याद रखना। क्योंकि तमस के बिना जीवन न हो सकेगा। पर उसकी एक सीमा जरूरी है। जैसे नमक भोजन में जरूरी है, पर नमक ही नमक का भोजन करने मत बैठ जाना। और माना कि नमक के बिना भोजन बेस्वाद लगता है, लेकिन इससे तुम यह गणित मत बिठाना कि नमक ही नमक खाओगे, तो बहुत स्वाद आएगा। गणित सीधा है। नमक के बिना भोजन बेस्वाद लगता है, इसलिए स्वाद नमक में है। तो नमक ही नमक खाओ, स्वाद ही स्वाद मिलेगा!
तमस जरूरी है, अपरिहार्य है, लेकिन उसका एक निश्चित अंश। और जिस दिन कोई व्यक्ति उसके निश्चित अंश को पहचान लेता है, उस दिन तमस का भी उपयोग शुरू हो जाता है। फिर तमस तुम्हें रोकता नहीं है। फिर पत्थर सीढ़ियां बन जाती हैं, फिर तुम ऊपर जाने के लिए भी तमस का उपयोग करते हो। क्योंकि पत्थर पर भी तो पैर जमाना पड़ेगा!
एक सीढ़ी से तुम पैर उठाते हो, एक पैर उठाते हो; एक पैर को तो तुम जमाए रखते हो। और जब तुम एक पैर उठाते हो, तो दूसरे पैर को ठीक से जमाकर रखना पड़ता है। वह तमस का उपयोग है। फिर दूसरे को तुम ऊंची सीढ़ी पर जमा लोगे ठीक से, तब पहले पैर को उठाओगे। वह भी तमस का उपयोग है।
तमस नीचे ला सकता है, अगर अतिशय हो जाए। और तमस ऊर्ध्वारोहण बन सकता है, अगर समझपूर्वक उसका उपयोग किया जाए। कोई योगी तमस को काट नहीं डालता।

सिर्फ तमस का सम्यक उपयोग सीखता है। अति मारता है; सम्यक उपयोग सदा सहयोगी है, साथी है।
वैज्ञानिक भी कहते हैं कि तमस के बिना अस्तित्व नहीं हो सकता। वैज्ञानिकों ने भी पदार्थ के अन्वेषण में इलेक्ट्रान, न्यूट्रान और पॉजिट्रान की विभाजना की है। और वे कहते हैं कि इनमें से एक रोकता है, अन्यथा परमाणु विस्फोट हो जाए। रोकने वाला तत्व चाहिए, जो बांधकर रखता है रस्सी की तरह।
दूसरा तत्व है, रजस। रजस है ऊर्जा, गति, त्वरा, तेजी। तुम जब एक पत्थर फेंकते हो, तो तुम रजस से फेंकते हो। वह तुम्हारी ऊर्जा है। आकाश में तारे घूमते हैं, पृथ्वी परिक्रमा लगाती है सूरज की, तुम सुबह उठते हो, वह रजस है। अगर तमस ही हो, तो तुम एक बार सोओगे, फिर कभी उठोगे नहीं। उठेगा कौन? इसलिए जो आदमी सुबह उठने में देर करता है, उसको हम तामसी कहते हैं। उसको तमस पकड़ रहा है। रातभर सो लिया है, फिर भी बिस्तर नहीं छोड़ सकता। उठता भी है, तो ऐसी शिकायत से भरा उठता है। दिन का स्वागत नहीं है उसके मन में। सूर्योदय की प्रसन्नता नहीं है उसके मन में। पक्षियों के गीत उसे सुनाई नहीं पड़ते। वह एक ही सुख जानता है, अपनी दुलाई में दबा हुआ पड़े रहना और अपनी ही गंदी सांस को चलाते रहना, पीते रहना। वह एक ही सुख जानता है, मुरदे की भांति पड़े रहना।
यह आदमी आत्मघाती है। क्योंकि जीवन का क्या अर्थ है फिर? जीवन तो ऊर्जा है, जागना है; जीवन तो गति है। मृत्यु में तमस पूर्ण को घेर लेता है। इसे समझ लो। मृत्यु में तमस इतना अति हो जाता है कि उसमें रज और सत्व दोनों डूब जाते हैं, तो आदमी मर गया।
जो आदमी सुबह उठने में मुश्किल पा रहा है, वह थोड़ा-थोड़ा मरा हुआ आदमी है, ठीक जिंदा आदमी नहीं है। उसके चेहरे पर तुम दिनभर मक्खियां उड़ते हुए पाओगे। उसके चेहरे पर एक उदासी, उसके चेहरे पर धूल जमी हुई मिलेगी; नींद की एक पर्त उसके चेहरे पर तुम पाओगे। उसकी आंखें ताजी नहीं होंगी; उसकी आंखों में स्फटिक मणि की चमक न होगी। उसकी आंखों पर धुआं जमा होगा। वह किसी तरह ढो रहा है; वह राह देख रहा है सांझ की कि किस तरह बिस्तर पर फिर पड़ जाए। ऐसा आदमी शराब पीएगा; क्योंकि शराब तमस को बढ़ा देती है। ऐसा आदमी धूम्रपान करेगा; क्योंकि धूम्रपान में छिपा हुआ निकोटिन तमस को बढ़ाता है। ऐसे आदमी की अगर तुम जीवन-विधि पहचानोगे, तो तुम पा जाओगे, कहां-कहां तमस है।
तमस का एक रूप निकोटिन है; वह सिगरेट में है छिपा हुआ, तंबाकू में है छिपा हुआ। ऐसा आदमी तंबाकू चबाता रहेगा। और हद के लोग हैं! ऐसे आदमियों ने अगर शास्त्र लिखे, तो उनमें उन्होंने यह भी लिख दिया कि वैकुंठ में बैठे विष्णु भगवान तांबूल चर्वण करते हैं।
निकोटिन की तुमको जरूरत होगी; विष्णु भगवान को है, तो उनका विष्णु होना भी संदिग्ध है। वह तो शास्त्र पुराने जमाने में लिखे, नहीं तो पता नहीं वह सिगरेट पीते विष्णु भगवान या क्या करते! या हुक्का गुड़गुड़ाते! तामसी आदमी की जीवन व्यवस्था देखो! ज्यादा खाएगा; क्योंकि ज्यादा भोजन नींद लाता है, तमस बढ़ाता है। अतिशय खाएगा; भर लेगा इस तरह कि सारी ऊर्जा पेट में चली जाए और मस्तिष्क की ऊर्जा खाली हो जाए, तो वह सो सके। इसलिए तो भरे पेट नींद अच्छी आती है। उपवास करो, रात नींद नहीं आती। अति भोजन तमस को बढ़ाता है।
ऐसे आदमी की आदतें गौर से देखो, तो तुम पाओगे, अगर उसे मौका मिले सोने का, तो वह बैठेगा नहीं। अगर बैठना ही पड़े, तो वह चलेगा नहीं, खड़ा नहीं होगा। अगर खड़ा ही होना पड़े, तो चलेगा नहीं। उसका सार यह है कि अगर उसको मरने का मौका मिले, तो वह मरना चाहेगा, जीएगा नहीं। ऐसे लोग आत्मघात कर लेते हैं। और अगर नहीं कर पाते, तो केवल इस कारण कि आलस्य की वजह से। इतना उपद्रव भी वे नहीं कर पाते, कौन जाए जहर खरीदने!
मुल्ला नसरुद्दीन एक घर में नौकर था। बड़ा घर था। बहुत नौकर-चाकर थे।
और जैसा बड़ा घर था, शाही ठाट-बाट था, बड़े नौकर-चाकर थे, भयंकर आलस्य था नौकरों में। पता ही नहीं चलता कि कौन क्या करता है, कौन क्या नहीं करता। काम बड़ा अस्तव्यस्त था। मालिक चिंतित हुआ। सब उपाय कर लिए, लेकिन काम में

कोई सुधार न हुआ। तो उसने एक इफिशिएंसि एक्सपर्ट को बुलाया कि जो थोड़ी सलाह दे कि क्या करना।
उस विशेषज्ञ ने कहा, बुलाओ सब नौकरों को। सारे नौकर पंक्तिबद्ध खड़े किए गए। उस विशेषज्ञ ने कहा कि तुममें जो सबसे ज्यादा अलाल हो, वह बाहर निकल आए। क्योंकि मैं उसे ऐसा काम दे दूंगा, जिसमें ज्यादा काम करना ही न पड़े। लेकिन एक सड़ी मछली पूरी नदी को गंदा कर देती है। तो मुझे ऐसा लगता है कि तुममें कोई एक महा अलाल है, जो सब को खराब कर रहा है। वह बाहर निकल आए। हम उसे कोई दंड न देंगे; नौकरी न छुड़ाएंगे; आश्वासन पक्का है। हम उसे ऐसा ही काम दे देंगे, जिसमें कुछ करना ही ज्यादा न पड़े। पहरेदार की तरह स्टूल पर बैठा सोता रहे या मालिक की दुकान है कपड़े-लत्ते की, और कई दुकानें हैं, उसे ऐसी जगह बिठा देंगे। जैसे उदाहरण के लिए उसने कहा कि जहां मालिक के कपड़े की दुकान में पाजामे और नाइट ड्रेस और इस तरह की चीजें बेची जाती हैं, वहां बिठा देंगे कि वहां सोया रहे। और वहां तख्ती लिख देंगे कि हमारे कपड़े पहनने से ऐसी गहरी नींद आती है। कोई रास्ता निकाल लेंगे। बाहर आ जाए जो आदमी सब से ज्यादा अलाल है!
सब लोग बाहर आ गए सिर्फ मुल्ला नसरुद्दीन को छोड़कर। उस विशेषज्ञ ने पूछा कि नसरुद्दीन, मालिक को भी संदेह है और मुझको भी संदेह है कि तुम ही हो उपद्रवी। लेकिन तुम बाहर क्यों नहीं आए? उसने कहा, मालिक, जहां हम हैं, बड़े आनंद में हैं। दो पैर कौन चले!
अगर आलसी आत्महत्या नहीं करता, तो सिर्फ इसीलिए कि उसमें भी कुछ करना पड़ेगा, अन्यथा वह आत्मघाती की तरह जीता है।
रजस है ऊर्जा, त्वरा, शक्ति। रजस का अगर अति हो जाए, तो आदमी राजनीतिज्ञ हो जाता है, भागता है; महत्वाकांक्षा! या धन की दौड़ हो जाती है, या पद की दौड़ शुरू हो जाती है; वह रुक नहीं सकता। उसे रुकना मुश्किल है। उसे तुम हमेशा भागता हुआ पाओगे। वह कहां जा रहा है, इसका उसे पक्का पता न हो; लेकिन एक बात पक्की होती है कि वह तेजी से जा रहा है। उससे तुम यह मत पूछो कि कहां जा रहे हो। इतनी उसको फुरसत नहीं। इतना समय भी नहीं है रुककर सोचने का। गति!
पूरब में तमस ज्यादा है, इसलिए लोग गरीब हैं, भिखमंगे हैं, मूढ़ हैं। पश्चिम में रजस ज्यादा है, इसलिए लोग महत्वाकांक्षी हैं, तनाव से भरे हैं, परेशान हैं, पागल हैं। धन खूब पैदा कर लिया, बड़ी विशाल अट्टालिकाएं बना ली हैं, विज्ञान के बड़े साधन आविष्कृत कर लिए हैं और स्पीड को बढ़ाए चले जाते हैं रोज। उनसे पूछो, जा कहां रहे हो? पैदल जाओ कि जेट पर जाओ, लेकिन जाना कहां है? वे कहते हैं, जाने का कोई सवाल नहीं है। लेकिन तेजी से जा रहे हैं। मंजिल का सवाल ही क्या है! जाने में मजा आ रहा है। पागलपन है पश्चिम में।
अगर रज ज्यादा हो जाए, तो आदमी को विक्षिप्त करता है। तुम जानते हो राजस आदमी को कि वह खाली नहीं बैठ सकता। उसे बैठना भी पड़े थोड़ी देर, तो पच्चीस दफे करवटें बदलता है। वह रात सो नहीं सकता; करवटें बदलता है। नींद में भी उसका रजस सक्रिय है। उसे कुछ न कुछ करने को चाहिए। कोई भी गोरखधंधा हो, तो भी वह करना चाहेगा, चाहे उसका कोई परिणाम न हो। खाली नहीं बैठ सकता। बैठने की कला उसे नहीं आती। तमस का तत्व थोड़ा कम है; रजस का तत्व थोड़ा ज्यादा है।
ऐसे आदमी ही दुनिया में उपद्रव करते हैं। चंगेजखां, तैमूरलंग, नादिरशाह, हिटलर, मुसोलिनी, माओत्से तुंग, इंदिरा, जयप्रकाश, सब--रजस ज्यादा है। अब बूढ़े जयप्रकाश को खाली बैठना नहीं जमता। पूर्ण क्रांति करनी है! किसी ने कभी पूर्ण क्रांति की है? कभी पूर्ण क्रांति होती है? अगर पूर्ण क्रांति होगी, तो फिर बचेगा क्या? पूर्ण क्रांति तो प्रलय में ही हो सकती है। उपद्रव करना है।
उपद्रवी पैदा होते हैं, समाज-सुधारक पैदा होते हैं, समाज-सेवक पैदा होते हैं। तुम्हारे पैर भी न दुख रहे हों, तो भी वे दबाते हैं। तुम उनसे कितना ही कहो, संकोचवश तुम एकदम मना भी नहीं कर सकते। पर वे कहते हैं, हमें सेवा करनी है।

दुनिया में जितनी मिस्चीफ और जितना उपद्रव होता है, वह रजस गुणधर्मा व्यक्तियों का परिणाम है। तमस वाला आदमी अपने लिए कितना ही नुकसान करता हो, दूसरे को नहीं करता; यह उसकी खूबी है। आलसी कहां दूसरे को नुकसान करने जाए? तुम झगड़ा भी करो, तो वह कहता है कि झगड़े में हमें पड़ना नहीं। क्योंकि कुछ करना पड़े! तुम उसका कोट छीनो, तो वह कमीज भी दे देता है, कि तू ले जा, दोबारा न आना पड़े।
सारा उपद्रव संसार का, क्रांतियां, इतिहास, रजस, अति रजस से पीड़ित लोगों का परिणाम है, जिनको बुखार चढ़ा है। वे व्यस्तता चाहते हैं; कोई न कोई काम चाहिए। क्योंकि काम के बिना वे खाली नहीं बैठ सकते। खाली बैठते हैं, तो उन्हें बेचैनी मालूम पड़ती है; उनकी ऊर्जा उन्हें भगाती है, दौड़ाती है। फिर इससे कोई प्रयोजन नहीं है, कहां भागते हैं, कहां दौड़ते हैं। लेकिन दौड़ने में राहत मिलती है। ऐसे लोग खूब धन कमा लेते हैं। धन कमाने के बाद बड़ी मुश्किल में पड़ते हैं कि अब इसका क्या करें? तो उस धन से और धन कमाते हैं। फिर खड़े होकर सोचते हैं, अब इसका क्या करें? तो उस धन से और धन कमाते हैं। और कोई उपाय नहीं मालूम पड़ता।
शुरू में धन कमाने वाले लोग सोचते हैं कि जब धन कमा लेंगे, तो आराम करेंगे। लेकिन आराम वे कर नहीं सकते, क्योंकि आराम करने वाले लोग धन नहीं कमा सकते। आराम करने वाले पहले से ही आराम कर रहे हैं। जो सोचता है कि धन कमाकर आराम करूंगा, महल बन जाएगा, सब सुविधा होगी, नौकर-चाकर होंगे, बस, फिर आराम। उसको पता नहीं है कि इतना तुम जो करोगे, वह तुम्हारा रजस धर्म बढ़ेगा। और एक घड़ी ऐसी आएगी, जब सब तो होगा, लेकिन तुम पाओगे, आराम कैसे करें! वह तो भूल ही गए। आराम हो ही न सकेगा।
अति रज हो जाए, तो विक्षिप्तता में ले जाता है; जैसे अति तम हो जाए, तो आत्मघात में ले जाता है। पूरब आत्मघाती है, पश्चिम विक्षिप्त है।
लेकिन रजस की एक मात्रा चाहिए; उतनी मात्रा चाहिए, जितने से जीवन का संतुलन बन जाए। क्योंकि बुद्ध में भी उतना रजस तो है, अन्यथा कौन तपश्चर्या करेगा? उतना रजस तो है, अन्यथा कौन ध्यान करेगा? उतना रजस तो है, अन्यथा कौन साक्षी को खोजेगा? बस, उतना ही है। उतना तमस है, जितने से विश्राम हो जाता; उतना रजस है, जिससे जरूरी श्रम हो जाता।
और जिसने रज और तम की, दोनों की संतुलित मात्रा को उपलब्ध कर लिया, उसके जीवन में तीसरे तत्व का उदय होता है, वह है सत्व। सत्व का अर्थ है, संतुलन। संतुलन परम शुद्धि है। सत्व का अर्थ है, भीतर की सारी विक्षिप्तताएं शांत हो गईं; आलस्य शांत हो गया; कोई अति न रही। जिसको कबीर ने कहा निरति; कोई अति न रही। जब कोई अति नहीं रह जाती, तो सुरति जगती है। वह सुरति ही सत्व है। तब तुम्हारे भीतर एक सात्विक भाव का जन्म होता है, एक कुंआरेपन का। तुम एक संगीत की तरह मधुर हो जाते हो। तुम्हारा तम भी उस संगीत का अंग है और तुम्हारा रज भी उस संगीत का अंग है; उन दोनों के तारों पर ही तुम्हारी सात्विकता की धुन उठती है। सात्विकता का अर्थ है, हार्मनी, लयबद्धता, कुछ भी ज्यादा नहीं, कुछ भी कम नहीं।
इसलिए सत्व संतोष लाता है और सत्व एक परितृप्ति देता है और सत्व तुम्हें योग्य बनाता है कि तुम इन तीनों के ऊपर जा सको। एक त्रिकोण बनाओ, एक ट्राएंगल; उसमें नीचे के दो आधार कोण तो हैं तम और रज के और ऊपर का शिखर कोण है सत्व का।
सत्व अंत नहीं है; सत्व तो केवल संतुलन की दशा है। इसलिए वह व्यक्ति सात्विक है, जिसके जीवन में अति नहीं है। जो न तो अति गृहस्थ ही है और न अति संन्यस्त ही है; जो न तो अति धन में लगा है, न अति त्याग में लगा है; जो न अति भोग में है, न अति विरोध में है; जो न अति राग में है, न अति विराग में है। जिसके जीवन में एक गहन शांति, जिसके भीतर लय सध गई, जिसने अपने भीतर के विरोधों में सामंजस्य खोज लिया। जिसने अपने तमस और रज को जीवन के रथ में जोत लिया, वे दोनों बैल हो गए और दोनों अब जीवन के रथ को खींचने लगे, साथ-साथ--विरोध में नहीं, एक-दूसरे की दुश्मनी में नहीं--एक-दूसरे के गहन सहयोग में।
तम और रज का जहां सहयोग होता है, वहीं तीसरे का जन्म हो जाता है। जहां
तम और रज का सहयोग होता है, वहां सत्व का जन्म हो जाता है। सत्व गौरीशंकर

का शिखर है। वही अंत नहीं है, लेकिन छलांग के लिए आखिरी जगह है। वहां से छलांग एक में लगती है; आदमी तीन के पार हो जाता है।
उस एक को तुम समझ सकते हो इस ट्राएंगल, इस त्रिकोण के बीच का बिंदु। वह तीनों से बराबर दूरी पर है। इसलिए कोई चाहे तो तमस से भी उसकी तरफ जा सकता है, यद्यपि यात्रा बहुत कठिन होगी।
कोई वाल्मीकि तमस से भी सीधा चला जाता है; मरा-मरा जपकर राम को उपलब्ध
हो जाता है। पक्के आलसी रहे होंगे और पक्के तमस से भरे रहे होंगे, अंधकार से भरे रहे होंगे। यह भी फिक्र न की पता लगाने की कि मरा-मरा जप रहा हूं, यह ठीक भी मंत्र है या नहीं? डाकू हैं, लुटेरे हैं, हत्यारे हैं। गहन तमस रहा होगा, नीचे की तरफ प्रवाह रहा होगा। लेकिन यात्रा कर ली; सीधे उपलब्ध हो गए। कोई अंगुलीमाल सीधा उपलब्ध हो जाता है।
तो वह जो एक है, जो मूल उदगम है, वह इन त्रिकोणों के ठीक बीच का बिंदु है। तीनों कोने से बराबर फासला है--सत्व से, रज से, तम से।
लेकिन तम से यात्रा बहुत कठिन है, क्योंकि यात्रा करने का मन ही नहीं होता। यात्रा करे कौन?
रज से भी यात्रा करनी कठिन है; उतनी कठिन नहीं, जितनी तम से है; पर फिर
भी कठिन है। यात्रा तो करनी हो जाती है, लेकिन रुकना नहीं आता। और उस परम में तो रुकना पड़ेगा। तम वाला आदमी ऐसे बैठा रहता है, जैसे मंजिल पर पहुंच गया; और रज वाला आदमी मंजिल के पास से भी गुजर जाता है, लेकिन समझता है, यह भी मार्ग है। क्योंकि उसे चलने की धुन है; वह रुक नहीं सकता।
तुमने कहानी सुनी होगी, एक जंगल में आग लग गई। और एक अंधा आदमी है, जो
चल सकता है, लेकिन देख नहीं सकता। और एक लंगड़ा आदमी है, जो देख सकता है, लेकिन चल नहीं सकता।
वह लंगड़ा है तमस का प्रतीक; वह अंधा है रजस का प्रतीक। अंधा चल सकता है, दौड़ सकता है, लेकिन देख नहीं सकता। वह मंजिल के पास से भी दौड़ता निकल जाएगा, मंजिल के बीच से भी दौड़ता निकल जाएगा। चल सकता है, लेकिन देख नहीं सकता। और जो देख नहीं सकता वह रुकेगा कैसे?
और लंगड़ा है, जो देख सकता है, मंजिल दिखाई पड़ती रहेगी कि दूर आकाश में उत्तुंग शिखर दिखाई पड़ते हैं, स्वर्ण कलश परमात्मा के। मगर वह लंगड़ा है, वह बैठा अपने वृक्ष के नीचे ही रहेगा; वह चल नहीं सकता है।
वह जो कहानी है, वह सांख्यों की कहानी है। उन दोनों का जोड़ चाहिए। सांख्यों ने जोड़ करवा दिया। वह बच्चों की कहानी नहीं है। तुम समझना मत कि बच्चों के लिए लिखी गई है। बच्चों की किताबों में है, बूढ़ों के लिए है। दोनों तो व्यर्थ थे, एक लयबद्धता चाहिए थी कि दोनों सहयोगी हो जाएं। दोनों सहयोगी हो गए। समझी उन्होंने अपनी हालत। अंधे ने कहा कि मैं चल सकता हूं, दौड़ सकता हूं, पैर मेरे परिपूर्ण स्वस्थ हैं। मगर कहां जाऊं? कहां दौडूं? कैसे निकलूं बाहर इस आग के? कहां है मार्ग? कौन ऐसी जगह है, जहां लपटें न हों और मैं बाहर निकल जाऊं, यह मैं नहीं जानता। तो दौड़ तो मैं काफी रहा हूं, लेकिन दौड़ने में उलटा मैं जल जाऊंगा; खतरा है।
उस लंगड़े ने कहा, मैं तुम्हारे काम आ सकता हूं। मैं देख रहा हूं कि कहां मार्ग है, कहां मंजिल है। पैर नहीं मेरे पास। तुम मुझे अपने कंधों पर ले लो। अंधे ने लंगड़े को कंधे पर ले लिया, लय बंध गई।
जिस दिन रजस के कंधे पर तमस बैठ जाता है, उसी दिन लय बंध जाती है। उसी दिन संगीत पैदा हो जाता है। अब मार्ग खोजने में कोई कठिनाई नहीं है। दोनों मिलकर सत्व की यात्रा पर निकल जाते हैं; सत्व दूर नहीं है।
तमस से भी यात्रा हो सकती है, हुई है, लेकिन अति कठिन है। अंधा भी कोशिश करे, तो निकल सकता है टटोल-टटोलकर, लेकिन बड़ा मुश्किल होगा। और लंगड़ा भी घसिट-घसिटकर बाहर हो सकता है, लेकिन बड़ा मुश्किल होगा। जो तमस से यात्रा करते हैं सीधे, उनकी घसिट-घसिटकर यात्रा होती है। जो रजस से यात्रा करते हैं, उनको अंधे की तरह टटोल-टटोलकर यात्रा करनी पड़ती है। संयोग है निकल जाएं तो, अन्यथा आग तो भस्मीभूत कर ही लेगी। जो समझदार हैं, वे दोनों का जोड़ बिठा लेते हैं। उनके जोड़ से संगीत पैदा होता है, वही सत्व है।
वह सत्व भी अंतिम नहीं है, लेकिन उस संगीत से फिर मध्य के बिंदु की तरफ सुगमता से यात्रा हो जाती है। जैसे कोई टहलता हुआ बाहर हो जाए। टहलता हुआ

कहता हूं। खेल-खेल में बाहर हो जाए; कुछ श्रम नहीं पड़ता। सत्व से छलांग बड़ी आसान है। क्योंकि वहां पैर भी हैं, ऊर्जा भी है, आंखें भी हैं और बंधी हुई लयबद्धता में सब साफ दिखाई पड़ता है। जैसे झील शांत हो गई और कोई लहरें नहीं और झील दर्पण बन गई।
अर्जुन ने कृष्ण से पूछा... ।
यह है श्रद्धात्रय-विभाग-योग। क्योंकि अगर तीन हैं, तो श्रद्धाएं भी तीन होंगी। तामसी की भी श्रद्धा होगी, आलसी की भी श्रद्धा तो होती है। राजसी की भी श्रद्धा होगी, सत्व को उपलब्ध व्यक्ति की भी श्रद्धा होगी। तो अर्जुन ने कहा, हे कृष्ण, जो मनुष्य शास्त्र-विधि को त्यागकर केवल श्रद्धा से युक्त हुए देवादिकों का पूजन करते हैं, उनकी स्थिति फिर कौन-सी है? सात्विकी अथवा राजसी अथवा तामसी?
कृष्ण ने कहा, मनुष्यों की वह स्वभाव से उत्पन्न हुई श्रद्धा सात्विकी और राजसी तथा तामसी, ऐसी तीन प्रकार की होती है।
इससे बड़ी हैरानी होगी, क्योंकि तुम तो सदा सोचते रहे होगे कि श्रद्धा सदा सात्विक होती है। श्रद्धा भी तीन प्रकार की होती है।
तमस से भरे हुए व्यक्ति की श्रद्धा कैसी होगी? तमस से भरा हुआ व्यक्ति अगर प्रार्थना भी करेगा, तो इसीलिए करेगा, ताकि उसे कुछ करना न पड़े। वह परमात्मा पर भरोसा करेगा, तो इसीलिए करेगा, ताकि खुद करने से बच जाए। वह कहेगा, सब करने वाला वही है। बातें वह बड़ी ज्ञान की करेगा। कहता है, सब करने वाला वही है, देने वाला वही है। चलने-फिरने से क्या होगा? करने से क्या होगा? वह कहेगा, हम तो भाग्य में श्रद्धा करते हैं। वह कहेगा, जो होना है, वह हो ही जाता है। उसकी बिना आज्ञा के तो पत्ता भी नहीं हिलता। तो कहता है कि वह तो पशु-पक्षियों को पालता है, तो हमें न पालेगा?
बड़ी ज्ञान की बातें करता है आलसी भी। लेकिन छिपा रहा है तमस को। वह यह
कह रहा है कि हम कुछ करना नहीं चाहते। असल में वह यह नहीं कह रहा है कि परमात्मा सब करता है, वह यह कह रहा है कि हम कुछ करना नहीं चाहते। परमात्मा की ओट में वह तमस को छिपा रहा है।
इस मुल्क में करोड़ों की संख्या है ऐसे लोगों की जिनकी श्रद्धा तमस की
है, जो कुछ न करेंगे। लेकिन उनके जीवन में कोई परम संगीत भी बजता हुआ सुनाई नहीं पड़ता। जीवन तो उदास थका-मांदा दिखाई पड़ता है। बातें बड़े ज्ञान की करते हैं वे कि उसकी मरजी के बिना क्या होगा? सब उसी पर छोड़ दिया है। छोड़ा उन्होंने कुछ भी नहीं है। कुछ कर नहीं सकते, कुछ करने की हिम्मत नहीं है, ऊर्जा नहीं है; और तमस से राग बना लिया है, रस बना लिया है। इसलिए बड़ी ऊंची बातें करते हैं।
अगर कोई दूसरा धन कमा रहा है, वह कह रहा है, क्या करोगे कमाकर भी? उसकी मरजी होगी, तो लंगड़े पहाड़ चढ़ जाते, अंधे पढ़ने लगते, बहरे सुनने लगते। और उसकी मरजी न होगी, तो दौड़ते रहो, क्या होगा? वह अपने को समझा लेता है। वह कहता है कि मैं संतोषी हूं। भीतर सब तरह की वासनाएं जलती हैं, भीतर सब तरह की महत्वाकांक्षाएं उठती हैं, सब सपने उठते हैं। लेकिन उन सपनों के लिए तो दांव लगाना पड़े; वह उसकी हिम्मत नहीं है। वह कहता है, मैं संतुष्ट हूं। जो दे दिया, ठीक है, काफी है, पर्याप्त है। मैं ज्यादा की मांग नहीं करता। वह ज्ञानी का ढोंग करता है।
तुम ऐसे आदमी को देख सकते हो; उसे पहचानने में अड़चन न होगी। क्योंकि जिसका संतोष सात्विक है, तुम उसके संतोष की कथा उसकी आंखों, उसके चेहरे, उसके जीवन पर लिखी हुई पाओगे। तुम उसे आह्लादित पाओगे, तुम उसे विधायक रूप से प्रसन्न और उत्फुल्ल पाओगे। तुम उसमें फूल खिलते देखोगे, तुम उसके रोएं-रोएं में कोई बांसुरी बजती हुई पाओगे। तुम उसके पास बैठोगे, तो धन्य हो जाओगे, जैसे स्नान कर लिया। उसकी पवित्रता तुम्हें छुएगी।
लेकिन अगर उसका संतोष केवल आलस्य को ढांकने का, छिपाने का रेशनलाइजेशन है। वह कहता है कुछ करना न पड़े, इसलिए वह कहता है, जो होना है, वह होगा। तुम पाओगे, उसके चेहरे पर उदासी की पर्तें हैं। उसकी आंखों में तुम धुंध पाओगे, उज्ज्वल प्रकाश नहीं। उसके पास बैठकर तुम्हें नींद और जम्हाई आएगी, स्नान नहीं होगा। उसके पास बैठकर तुम थके हुए अनुभव करोगे,

क्योंकि तामसी व्यक्ति दूसरे की शक्ति को चूसता है। इसलिए जब भी तुम तामसी व्यक्ति को मिलोगे, तुम पाओगे, तुम कुछ खोकर लौटे।
राजसी व्यक्ति अपनी शक्ति को देता है। इसलिए राजसी व्यक्ति के पास जाकर तुम पाओगे कि तुम्हारी भी महत्वाकांक्षा के दीए जलने लगे। वह तुम्हें भी रोग पकड़ा देगा। वह कहेगा, क्या कर रहे हो बैठे-बैठे! इस चुनाव में ही खड़े हो जाओ। बुद्धू से बुद्धू मंत्री हुए जा रहे हैं। तुम क्यों पीछे खड़े हो? कुछ न बनता हो, तो कम से कम तीन दिन का अनशन ही कर लो! कम से कम अखबारों में नाम तो छप जाएगा। तुम अपनी तरफ से आमरण अनशन करो; तुड़वाने की हम कोशिश करेंगे। नाम तो कर जाओ, ऐसे ही मर जाओगे! वह कुछ न कुछ उपद्रव सुझा देता है।
अगर राजसी व्यक्ति के पास बैठें, तो सम्हलकर बैठना। क्योंकि वह खुद उपद्रव से भरा है; वह बांटता है; वह देता है। उसके पास बैठकर तुम उपद्रव लेकर लौटोगे। किसी राजनेता की सभा से तुम लौटोगे, तो तुम्हारी तबियत होगी कि उठाकर पत्थर बस में ही मार दें। कोई कारण नहीं है, लेकिन वह राजनेता तुम्हें बीमारी दे गया।
वे राजनेता कहे चले जाते हैं कि हम बिल्कुल अहिंसात्मक हैं। हम किसी
को हिंसा थोड़े ही सिखाते हैं। मगर वे सब हिंसा सिखाते हैं। उनका होने का ढंग हिंसात्मक है।
जयप्रकाश कितना ही कहें कि बिहार में जो उपद्रव हुआ, उसकी मेरी जिम्मेवारी नहीं... । किसी और की जिम्मेवारी नहीं है। वे कितना ही कहें कि मैं तो अहिंसा की बात करता हूं; अब अगर लोगों ने पत्थर फेंक दिए बसों पर और आग लगा दी पुलिस थानों में, इसका मैं क्या कर सकता हूं?
वे गलत बात कह रहे हैं। ऊपर से तुम अहिंसा की बात करते हो, लेकिन भीतर
से तुम्हारे सारे जीवन की ऊर्जा जो है, वह रजस की है। तुम लोगों को भड़काते हो; तुम लोगों को उकसाते हो। पहले भड़काते हो, फिर उनको कहते हो, शांत हो जाओ, अहिंसा का पालन करो। पहले आग लगा देते हो, फिर पानी छिड़कते हो। पहले आग लगा देते हो, फिर बुझाने की कोशिश करते हो!
लोगों को भड़का दो, उनके भीतर का रजस जग जाए, उपद्रव करने को वे निकल पड़ें, फिर तुम्हारे हाथ के बाहर है। हो सकता है, तुमने सोचा भी न हो कि वे मकानों में आग लगाएंगे, दुकानें जलाएंगे। तुम्हारे सोचने न सोचने का सवाल नहीं है। तुमने जो ऊर्जा उन्हें दी, वह ऊर्जा उपद्रवी है।
तामसी व्यक्ति तुम्हारी ऊर्जा को चूसता है, वह आलस्य से भरा हुआ है।
वह तुम जब उसके पास जाते हो, तो वह शोषण करता है। उसके पास से तुम थके लौटोगे, उदास लौटोगे, हारे हुए लौटोगे। तुम्हारी भी तबियत सो जाने की होगी।
राजसी व्यक्ति भड़काता है। वह तुम्हें त्वरा से भरता है, बुखार से, कि कुछ कर गुजरो। उसके शब्द सुनकर दुनिया में उपद्रव होते हैं। उसके पास से आकर लोग झंझट में पड़ जाते हैं।
एक मित्र परसों ही मुझसे पूछे आकर। जयप्रकाश के साथी हैं। कहने लगे, मैं बड़ी मुसीबत में पड़ गया हूं, दुविधा खड़ी हो गई है। आपको क्या पढ़ा, एक झंझट हो गई। अब जयप्रकाश या आप? क्या करूं? क्या दोनों के बीच कोई समन्वय नहीं हो सकता?
मैंने कहा, तुम कोशिश करो समन्वय की; उसमें तुम पगला जाओगे। वह समन्वय
हो नहीं सकता। क्योंकि दो अलग लोग, अलग आयाम।
वहां तुम्हें जयप्रकाश भड़का रहे हैं, यहां मैं तुम्हें शांत करने की कोशिश कर रहा हूं। तुम तालमेल कैसे बिठाओगे? वे कह रहे हैं, पूर्ण क्रांति; मैं कह रहा हूं, पूर्ण शांति। इसमें तालमेल कैसे बिठाओगे? वे कहते हैं, संसार को बदलकर रहेंगे। मैं कहता हूं, तुम अपने को बदल लो, तो काफी है। इसमें कोई तालमेल हो नहीं सकता।
तो मैंने उनको कहा कि तुम मुझे भूल जाओ। इस झंझट में तुम पड़ो ही मत।
किताबें वगैरह मेरी फेंक दो; मुझे भूल जाओ। और तुम जयप्रकाश के पीछे चलो।
उन्होंने कहा, वह तो असंभव है। वह नहीं हो सकता अब। शक तो पैदा हो ही गया है। तो फिर मैंने कहा कि शक अगर पैदा हो गया है, तो जयप्रकाश को छोड़ दो।
कहने लगे, लेकिन यह भी बड़ा मुश्किल है।

तो मरो, दुविधा में मरो। इसमें मैं क्या कर सकता हूं? कोई भी क्या कर सकता है? तो तुम्हारी बैलगाड़ी में दोनों तरफ बैल जोत लो और चलो। दोनों को हांको। अस्थिपंजर टूट जाएंगे। घसिटोगे; पहुंचोगे कहीं भी नहीं।
क्योंकि मेरे लिए तो जयप्रकाश रुग्ण हैं; विक्षिप्त मन की दशा है; सभी राजनीतिज्ञ होते हैं। इसलिए जब मैं यह कह रहा हूं, तो मैं यह नहीं कह रहा हूं कि इंदिरा विक्षिप्त नहीं है। पद पर जो होते हैं, उनकी विक्षिप्तता दिखाई नहीं पड़ती। जो पद पर नहीं होते, उनकी विक्षिप्तता दिखाई पड़ती है। मोरारजी पद पर होते हैं, तब बड़े समझदार मालूम पड़ते हैं। जब पद के बाहर होते हैं, तब विक्षिप्त हो जाते हैं।
पद की समझदारी कोई समझदारी है? पद की समझदारी तो यह है कि जो अपने पास है, वह छूट न जाए, इसलिए उपद्रव से डरने लगता है आदमी। लेकिन जिसके पास कुछ नहीं है, उसका तुम छुड़ाओगे क्या? नंगा नहाएगा, निचोड़ेगा क्या? तो वह कहता है, पूर्ण क्रांति करवा देंगे। उसका तो कुछ खोना नहीं है, इसलिए वह उपद्रवी हो जाता है।
पद पर बैठे हुए लोग उतने ही पागल हैं, जितने पद के बाहर। उनकी जमात एक है। उनकी भाषा एक है। उनकी दुनिया एक है।
रजस वाले व्यक्ति के पास से तुम रोग लेकर लौटोगे।
सात्विक व्यक्ति न तो तुम्हें कुछ देता है, न तुम से कुछ लेता है। सात्विक व्यक्ति के पास बैठकर तुम तुम ही हो जाओगे। यही थोड़ी समझने की बात है। वह तुमसे कुछ नहीं लेता; वह तुम्हें कुछ देता भी नहीं। वह तुम्हें सिर्फ तुम्हारे होने का मौका देता है। उसकी छाया में बैठकर तुम तुम हो जाओगे, तुम जो हो। तुम्हें अपना सत्व सुनाई पड़ने लगेगा। तुम्हें अपने भीतर के संगीत की थोड़ी भनक पड़ने लगेगी।
सात्विक व्यक्ति कुछ देता नहीं, लेता नहीं; सिर्फ उसकी मौजूदगी तुम्हारे भीतर एक रूपांतरण बनने लगती है। तुम उसकी मौजूदगी में शांत होने लगते हो। तुम उसकी मौजूदगी में भीतर के द्वंद्व को क्षीण करने लगते हो। तुम उसकी मौजूदगी के प्रकाश में एक भीतर के आंतरिक सहयोग को उपलब्ध हो जाते हो। वह तुम्हें सामंजस्य देता है; कुछ देता नहीं, कुछ लेता नहीं। वह तुम्हें तुम्हारी सुध देता है; तुम्हें तुम्हारी थोड़ी-सी भनक देता है; वह तुम्हें तुम्हीं बनाना चाहता है।
सात्विक व्यक्ति वही है, जो तुम्हें तुम्हीं बनाना चाहे। इसलिए तुम्हारे बहुत-से महात्मा सात्विक नहीं हैं। तुम्हारे बहुत-से महात्मा राजसिक हैं। वे तुम्हें गति देते हैं कि छोड़ो। यह छोड़ो, वह छोड़ो। यह व्रत ले लो, वह कसम ले लो। चलो, ब्रह्मचर्य की कसम खा लो। वह कुछ न कुछ उपद्रव तुम उनके पास से लेकर लौटोगे। वह महात्मा सात्विक नहीं है। उन्हें राजनीतिज्ञ होना था। वे गलती जगह फंस गए हैं।
कई दफा हो जाता है, आदमी गलती जगह फंस जाता है। कुछ महात्मा राजनीति में फंस जाते हैं; कुछ राजनीतिज्ञ महात्मा होने में फंस जाते हैं। तब बड़ी अड़चन होती है।
जो महात्मा तुम्हें बदलने की कोशिश करे, तुम्हें कुछ देने की कोशिश करे कि तुम ऐसे हो जाओ, तुम वैसे हो जाओ, जो तुम्हें आदर्श दे, वह महात्मा नहीं है; वह राजनीतिज्ञ है।
सात्विक व्यक्ति तुम्हें आदर्श देता ही नहीं, तुम्हारी स्वयंता देता है, तुम्हारी निजता देता है। तुम जो हो, बस वही। उसी के लिए तुम राजी हो जाओ। जैसा संगीत उसने अपने भीतर पाया, वैसा संगीत तुम्हारे भीतर भी हो जाए।
सात्विक व्यक्ति एक आशीष है बस, उपदेश नहीं; आदेश तो बिल्कुल नहीं, सिर्फ एक आशीष। इसलिए पुरानी परंपरा है कि हम संतों के पास सिर्फ आशीर्वाद मांगने जाते हैं, और कुछ मांगने नहीं। और कुछ मांगने की बात ही गलत है। और कुछ मांगना हो, तो राजसी के पास जाना चाहिए, तामसी के पास जाना चाहिए।
सात्विक के पास तो सिवाय आशीष के और कुछ भी नहीं है। लेकिन उसके आशीष
की छाया में परम रूपांतरण घटित होते हैं। उसके आशीष की छाया में अंधेरे घर प्रकाशित हो जाते हैं, बुझे दीए जल जाते हैं।

और जो सत्व को उपलब्ध हो जाता है--सत्व चट्टान है, जहां से एक में छलांग लगती है।
तामसी व्यक्ति की श्रद्धा आलस्य की होगी। वह अपने आलस्य को ही अपनी श्रद्धा बनाएगा। राजसी व्यक्ति की श्रद्धा राजस की होगी। वह अपने राजसीपन को ही अपनी श्रद्धा बनाएगा। वह कहेगा, कर्म-योग। वह राजसी व्यक्ति की श्रद्धा है।
लोकमान्य तिलक ने गीता-रहस्य लिखा। वह किताब राजसी व्यक्ति की लिखी
गई किताब है। और उसका बड़ा प्रभाव हुआ। क्योंकि गीता में उन्होंने सिद्ध किया कि कर्म-योग ही गीता का प्रतिपाद्य विषय है।
इससे झूठी कोई बात नहीं हो सकती। इसमें लोकमान्य तिलक ने अपने को ही गीता में पढ़ लिया। वे राजसी व्यक्ति थे, राजनेता थे। वे खाली नहीं बैठ सकते थे। यह गीता-रहस्य भी खाली न बैठने के कारण लिखी गई। मंडाले के जेल में क्या करें? कुछ काम-धाम न रहा। खाली बैठ नहीं सकते। सात्विक व्यक्ति होता, तो ध्यान कर लेता। मंडाले का जेल महान समाधि बन जाता। लेकिन अब यह राजसी व्यक्ति क्या करे? कुछ उपाय नहीं।
तो कोयले के टुकड़ों से दीवाल पर गीता-रहस्य की पहली टीकाएं लिखनी उन्होंने शुरू कीं। फिर कागज के टुकड़ों पर धीरे-धीरे टीका लिखी।
यह टीका राजसी व्यक्ति की टीका है, राजनेता की। फिर इसी टीका ने गांधी
को प्रभावित किया विनोबा को प्रभावित किया। और वह गीता-रहस्य हिंदुस्तान के लिए पचास साल का पूरा इतिहास बन गई।
कर्म करो, तिलक ने कहा। और गांधी ने कहा, कर्म-योग ही असली योग है। सेवा करो, समाज सुधारो, अस्पताल बनाओ। गरीबों को मकान दो, जमीन दो। यह करो, वह करो। भूदान आया, सर्वोदय आया। वह सब गीता-रहस्य से सूत्रपात हुआ। लेकिन वह राजसी व्यक्ति की व्याख्या थी। सात्विक व्यक्ति की व्याख्या बड़ी भिन्न होगी।
सात्विक व्यक्ति की व्याख्या शांति की होगी, सेवा की नहीं। इसका यह अर्थ नहीं है कि शांत व्यक्ति सेवा नहीं कर सकता। लेकिन शांत व्यक्ति का सेवा लक्ष्य नहीं होता, उसकी शांति से निकलती है। इसका यह अर्थ नहीं कि शांत व्यक्ति कुछ भी नहीं करेगा। लेकिन करने की उसमें त्वरा नहीं होती, करने की आकांक्षा नहीं होती। जीवन जो करा ले, वह करता है। लेकिन करने के पीछे पागल नहीं होता। ऐसा नहीं है कि वह खाली नहीं बैठ सकता, इसलिए करता है। जरूरत हो, तो करता है; जरूरत नहीं होती, तो शांत बैठता है। कर्म उसके लिए कोई रोग नहीं है, कोई न्यूरोसिस नहीं है। कर्म उसके लिए जीवन-ऊर्जा का खेल है।
और जीता वह सदा अपने सत्व में है, अपनी शांति में है। कोई कर्म उसकी शांति को व्याघात नहीं कर पाता। आग लगी हो, तो वह बुझाएगा; बैठा नहीं रहेगा। लेकिन आग लग गई है, बुझाएगा जरूर; लेकिन भीतर आग की कोई भी खबर न पहुंचेगी। भीतर की शांति अखंड रहेगी। आग भीतर की शांति को न जलाएगी। वह बेचैन न होगा। वह कर्म भी करेगा, वह विश्राम भी करेगा। वह जीवन के अनेक रंग-रूपों में रहेगा। लेकिन भीतर का स्वर संगीत का रहेगा, वह लयबद्धता कायम रहेगी।
सात्विक व्यक्ति की श्रद्धा क्या है? सात्विक व्यक्ति की श्रद्धा है भीतर की परम कुंवारी दशा, चैतन्य की शुद्धतम दशा को उपलब्ध हो जाना। वह अपने सारे जीवन के दर्शन को इस भांति सोचेगा, जैसे कि वह भी भाग्य की बात करेगा... ।
अब यह थोड़ा समझ लेने जैसा है।
तामसी व्यक्ति भाग्य की बात करेगा, अपने को कर्म से बचाने के लिए। राजसी व्यक्ति भाग्य की बात करेगा, अपने को कर्म में डालने के लिए। वह कहेगा, भाग्य में जो लिखा है वह होगा। अब भाग्य में लिखा है कि मुझे प्रधानमंत्री होना है। मैं भी क्या कर सकता हूं? लिखा है, वह होकर रहेगा। जो भाग्य में लिखा है, उससे बचा कैसे जा सकता है? वह अपने कर्म को बचाएगा, भाग्य से।
सात्विक व्यक्ति भी भाग्य की बात करेगा, लेकिन उसके भाग्य में कोई बचाव नहीं होगा। वह कहेगा, जो होगा, वह होगा; जो होना है, वह होता है। इसलिए

न तो वह करने को बेचैन होगा और न वह न-करने को पकड़ेगा। जीवन उसे जहां ले जाएगा--युद्ध के मैदान में, तो युद्ध के मैदान में खड़ा हो जाएगा; पहाड़ की कंदराओं में, तो पहाड़ कंदराओं में मौन होकर बैठ जाएगा। उसे सब स्वीकार है। और उसकी स्वीकृति तुम पहचान सकोगे; क्योंकि उसके चारों तरफ अहोभाव का नाद बजता रहेगा।
श्रीकृष्ण बोले, मनुष्यों की वह स्वभाव से उत्पन्न हुई श्रद्धा सात्विकी और राजसी तथा तामसी, ऐसी तीन प्रकार की होती है, उसको तू मुझसे सुन।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग आठ
गीता दर्शन अध्याय 17
दूसरा प्रवचन

भक्त और भगवान

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।। 3।।
यजन्ते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः।
प्रेतान्भूतगणांश्चान्ये यजन्ते तामसा जनाः।। 4।।
हे भारत, सभी मनुष्यों की श्रद्धा उनके अंतःकरण के अनुरूप होती है तथा यह पुरुष श्रद्धामय है, इसलिए जो पुरुष जैसी श्रद्धा वाला है, वह स्वयं भी वही है।
उनमें सात्विक पुरुष तो देवों को पूजते हैं और राजस पुरुष यक्ष और राक्षसों को पूजते हैं तथा अन्य जो तामस मनुष्य हैं, वे प्रेत और भूतगणों को पूजते हैं।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः भक्त जब भगवान को मिलता है, तब उसे पुलक और आनंद का अनुभव होता है। क्या भगवान को भी उस क्षण वैसी ही पुलक और आनंद का अनुभव होता है?

भगवान कोई व्यक्ति नहीं जिसको भक्त जैसी पुलक और आनंद का अनुभव हो सके। भगवान तो पूरा ही अस्तित्व है। इसलिए पुलक और आनंद की घटना तो घटती है, लेकिन वहां कोई अनुभव करने वाला नहीं है। जैसे भक्त के छोटे-से हृदय में आनंद गूंज जाता है, वैसा कोई हृदय परमात्मा का नहीं है, जहां आनंद गूंज जाए। परमात्मा तो पूरा अस्तित्व है, इसलिए पूरा अस्तित्व ही पुलक से भर जाता है। इतना फर्क है।
पुलक तो घटेगी ही, क्योंकि भटका हुआ घर लौट आया। दूर गया पास आ गया। खो गया था, वापस मिल गया। अस्तित्व की तरफ जिसकी पीठ थी, उसने मुंह कर लिया। तो आनंद की घटना तो घटेगी ही। लेकिन भगवान कोई व्यक्ति नहीं है, वहां कोई व्यक्ति के भीतर छिपा हुआ हृदय नहीं है। इसलिए जैसा अनुभव भक्त को होगा, वैसा कोई अनुभव करने वाला भगवान में नहीं है। वह तो परम शून्यता है।
पुलक होगी; वह पुलक बादलों में सुनी जाएगी; वह पुलक नदियों में गूंजेगी; वह पुलक फूलों से खिलेगी; वह पुलक चांद-तारों में ज्योति देगी। लेकिन कोई हृदय नहीं है, जो अनुभव करेगा। या तुम ऐसा कहो--वह भी कहना ठीक है--कि हृदय ही हृदय है; सारा अस्तित्व उसका हृदय है। सारा अस्तित्व एक सिहरन से, एक आनंद की मधुर घड़ी से भर जाएगा।
इसे भक्त ही जान पाएगा; तुम न पहचान पाओगे। तुम्हें भक्त का आनंद तो दिखाई पड़ेगा, क्योंकि भक्त तुम्हारे जैसा ही व्यक्ति है। उससे तुम्हारा थोड़ा तालमेल है। वह कितना ही भिन्न हो गया हो, उसकी यात्रा बदल गई हो, उसने परमात्मा की तरफ मुंह कर लिया हो, तुमने पीठ कर रखी है, तो भी वह तुम्हारे जैसा है, व्यक्ति है। उसके हृदय में कुछ घटेगा; आंसू बहेंगे, तो तुम आंसुओं को पहचान सकते हो। वह नाचने लगेगा, तो तुम नाच को समझ सकते हो। उसके चेहरे पर अहोभाव की छाया पड़ेगी, तो पूरा न समझ सको, तो भी थोड़ा तो समझ ही लोगे। वह भाषा तुमसे परिचित है। लेकिन परमात्मा में जो पुलक घट रही है, वह तुम न देख पाओगे; वह तुम न समझ पाओगे।
इसलिए तो बहुत-सी कथाएं हैं, जो कथाएं जैसी मालूम होने लगी हैं; वे सत्य घटनाएं हैं। कि बुद्ध को परम ज्ञान हुआ और वृक्षों में फूल खिल गए, बिना ऋतु के। ये फूल दूसरों ने देखे हों, यह संदिग्ध है। ये फूल बुद्ध ने ही देखे होंगे। ये फूल साधारण फूल न थे, जो रोज ऋतु में खिलते हैं और गिरते हैं। ये तो वृक्ष के अंतर्भाव के फूल थे। इन्हें तुम बाजार में न बेच सकते थे, इन्हें तुम तोड़ भी न सकते थे, इन्हें तुम देख भी न सकते थे। ये तो अदृश्य के फूल थे, जो बुद्ध को दिखाई पड़े होंगे।

कहते हैं, मोहम्मद को जब ज्ञान हुआ, तो रेगिस्तान की तपती दुपहरियों में बादल उन्हें छाया देने लगे। मगर ये बादल किसी और को दिखाई न पड़े होंगे। ये बादल जो छतरियां बन गए और मोहम्मद के ऊपर मंडराने लगे, यह मोहम्मद ने ही खबर की होगी औरों को। तुम्हारी आंखें इतनी सूक्ष्म घटना को न देख पाएंगी।
वस्तुतः कोई बादल बने भी, यह भी जरूरी नहीं है। लेकिन छाया मोहम्मद को मिलने लगी, यह पक्का है। तपती दुपहरी में भी सूरज जलाता नहीं, भयंकर रेगिस्तान में भी कंठ में प्यास नहीं जगती, ऐसी शीतलता मोहम्मद को मिलने लगी। एक संवाद शुरू हो गया अस्तित्व के साथ।
निश्चित ही, जब तुम प्यार से भरोगे अस्तित्व के प्रति, तो अस्तित्व भी अपने प्यार को तुम्हारी तरफ लुटाएगा। अस्तित्व जड़ नहीं है, यही तो मतलब है कहने का कि अस्तित्व परमात्मा है।
अगर जड़ होता, तो तुम रोओ, तो पत्थर रोएगा नहीं; उसमें कोई संवेदना नहीं है। तुम हंसो, तो पत्थर हंसेगा नहीं। पत्थर से कोई प्रत्युत्तर न मिलेगा। यही तो मतलब है पत्थर होने का।
तो हम कभी कहते हैं कि उस आदमी का हृदय पाषाण है। उसका क्या मतलब होता है? इतना ही मतलब होता है। कहीं पाषाण के हृदय होते हैं! इतना ही मतलब होता है कि उसमें से प्रतिसंवेदन नहीं उठता। वह तुम्हें दुखी देखकर दुखी न होगा। तुम्हारी गीली आंखें उसके हृदय को गीला न करेंगी। तुम्हारा नाच उसे छुएगा नहीं। तुम्हारे भाव तुम्हारे ही रहेंगे; वह कोई प्रत्युत्तर न देगा। उसका हृदय पाषाण है।
इस अस्तित्व को परमात्मा कहने का अर्थ है कि यहां पाषाण कुछ भी नहीं है। पाषाण झूठा शब्द है। यहां पत्थर भी आंदोलित होते हैं। क्योंकि सभी तरफ सचेतन, सभी तरफ चैतन्य का विस्तार है।
तो प्रतिसंवेदना होगी। लेकिन इतनी सूक्ष्म है वह घटना कि भक्त ही जान पाएगा कि भगवान को क्या हो रहा है; साधारणजन न पहचान पाएंगे। क्योंकि वे करीब-करीब अंधे हैं, बहरे हैं। न तो उनके पास कान हैं उस अमृत-नाद को सुनने के; न उनके पास आंखें हैं उस अरूप को देखने की।
इसलिए तुम्हें मीरा नाचती हुई दिखाई पड़ेगी और तुम्हें मीरा थोड़ी पागल
भी मालूम पड़ेगी। क्योंकि जिसके साथ वह नाच रही है, वह तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता। मीरा तो अपने कृष्ण के साथ नाच रही है। वह कृष्ण कोई व्यक्ति नहीं है। हवाओं के झोंके में भी वही कृष्ण हैं; हवा छूती है मीरा को, तो कृष्ण के हाथ ही छूते हैं। और मैं तुमसे कहता हूं कि निश्चित जब तुम्हारे पास मीरा का हृदय होगा, तो हवा तुम्हें और ढंग से छुएगी। छूने-छूने में कितना फर्क है!
राह से तुम चलते हो और एक आदमी से शरीर छू जाता है; फिर तुम्हारी प्रेयसी तुम्हें छूती है या तुम्हारी मां तुम्हारे सिर को छूती है या तुम अपने बेटे को छूते हो। दोनों छूना एक-से हैं। अगर हम शरीरशास्त्री से पूछें कि जांच करके बताओ कि दोनों तरह के स्पर्श में कोई फर्क है?
वह कोई फर्क न बता पाएगा। वह कहेगा, दोनों स्थितियों में चमड़ी चमड़ी को छूती है। थोड़े-से ताप का आदान-प्रदान होता है। गरमी एक शरीर से दूसरे शरीर में थोड़ी-सी जाती है। बस, इतना ही। मां छुएगी, तो भी यही होता है। राह पर चलता राहगीर छू लेगा, तो भी इतना ही होता है। कोई प्रेम से थपथपाएगा, तो भी यही होता है। कोई क्रोध से मारेगा, तो भी यही होता है। जहां तक शरीरशास्त्री की पकड़ है, दोनों एक-सी घटनाएं हैं।
हवा का झोंका तुम्हें भी छूता है, मुझे भी छूता है; मगर तुम्हें ऐसे ही छूता है जैसे राह पर कोई अजनबी से धक्का लग गया। मीरा को भी छूता है, लेकिन वह प्रेमी का हाथ है। उस झोंके में कुछ आया है। उस झोंके में सिर्फ स्पर्श नहीं है, स्पर्श के पीछे छिपा हुआ राज है, एक भाव-दशा है।
वृक्षों में फूल तुम्हें भी खिलते हैं; तुम भी देख लेते हो उनके रंग-रूप को। मीरा भी देखती है, लेकिन वहां वृक्षों में उसका प्रेमी ही खिल रहा है। आषाढ़ आता है, मोर नाचते हैं। तुम भी देख लेते हो; पर मीरा के लिए उसका कृष्ण ही नाचता है। असल में मीरा के लिए सारा अस्तित्व कृष्ण-रूप हो गया।

इसलिए अब जो भी होता है, वह कृष्ण में ही हो रहा है। और पूरी भाषा बदल जाती है, पूरे अर्थ बदल जाते हैं।
अगर मनोवैज्ञानिकों को कहो कि मीरा के पदों का विश्लेषण करो, तो तुम बहुत धक्का खाओगे। क्योंकि मनोवैज्ञानिक जो बातें कहेंगे, उनका तुम्हें भरोसा भी न आएगा। चाहे भरोसा न आए, लेकिन तुम्हारा भी भीतर भरोसा वही है। जब मीरा कृष्ण की बात कहती है और कहती है, सेज सजा ली है, फूल बिछा दिए हैं; अब तुम आओ। तो मनोवैज्ञानिक कहेगा, यह तो कुछ काम-दमन मालूम पड़ता है; यह तो सेक्स सप्रेशन है। यह तो कृष्ण में पति को ही खोज रही है। ऐसा लगता है, राणा से मन नहीं भर पाया। ऐसा लगता है, कुछ बात चूक गई; काम अतृप्त रह गया। वह जो शरीर की वासना थी, वह प्रकट नहीं हो पाई, वह दब गई। और अब वही शरीर की वासना नए भ्रम बन रही है। तो कृष्ण को पति मान रही है, सेज सजा रही है।
यह सेज का सजाना और बुलाना, यह कामवासना मालूम पड़ेगी मनसविद को। वह तो मनोवैज्ञानिकों ने अभी मीरा पर कृपा नहीं की है। उनको मीरा का ज्यादा पता नहीं है, क्योंकि मनोविज्ञान का जन्म पश्चिम में हो रहा है। यहां भी मनोवैज्ञानिक हैं, लेकिन वे अधकचरे हैं और वे, पश्चिम में जो होता है, उनके पीछे चलते हैं। वे सीधे कुछ करते नहीं।
लेकिन उन्होंने जीसस की काफी खोज-खबर ली है। और मीरा जैसी स्त्रियां पश्चिम में हुई हैं, उनकी उन्होंने काफी खोज-खबर ली है। संत थेरेसा हुई है पश्चिम में। मनोवैज्ञानिकों ने उसका विश्लेषण किया है। वह ठीक मीरा है पश्चिम की। और उसके प्रतीक तो सब कामवासना के हैं। करोगे भी क्या! मनुष्य के पास जितने भी मधुर शब्द हैं, सभी कामवासना के हैं। जब वह परम मधुरिमा घटती है, तो कौन से शब्दों का उपयोग करोगे?
दो ही तरह की भाषाएं हैं तुम्हारे पास। या तो बाजार की भाषा है; वह बहुत ही क्षुद्र है। उस भाषा में तो परमात्मा को पकड़ा नहीं जा सकता। और या फिर दो प्रेमियों की एकांत की भाषा है। वह जरा कम क्षुद्र है, लेकिन है तो क्षुद्र ही; क्योंकि वे प्रेमी भी बाजार के ही रहने वाले लोग हैं।
और जब मीरा जैसी घटना घटती है या थेरेसा जैसी, तो वह क्या करे? भाषा कहां से लाए? तुम्हारे बाजार की भाषा का उपयोग करे, तो बिल्कुल ही व्यर्थ मालूम होती है। क्या कहे कि परमात्मा के झोंके में लाखों रुपये आ गए! क्या कहे कि पूरा रिजर्व बैंक उलटा दिया परमात्मा के झोंके में!
वह भी भद्दा लगेगा; वह भी कुछ सार्थक न मालूम पड़ेगा। तुम उसे भी न पकड़ पाओगे। ज्यादा से ज्यादा इतना ही होगा कि इनकम टैक्स आफिसर मीरा के पीछे पड़ जाएंगे कि कहां हैं? वे करोड़ों रुपये कहां हैं?
दूसरी भाषा प्रेम की है, जो प्रेमी एक-दूसरे से बोलते हैं। वह बड़ी निजी है। लेकिन उसमें कामवासना की धुन पकड़ में आती है। तड़पते हैं प्रेमी, राह देखते हैं; मिलन होता है, अहोभाव से भरते हैं। वही भाषा समझ में आती है। मीरा उसका उपयोग करती है; थेरेसा ने भी उसका उपयोग किया है।
पश्चिम के मनोवैज्ञानिकों ने बड़ी छीछालेदर की है थेरेसा की। वही वे मीरा के साथ करेंगे। उनको मीरा का पता नहीं है। वे कहते हैं, यह तो कामवासना है। वे तो हर चीज में कामवासना खोज लेते हैं; क्योंकि दूसरी तो किसी चीज का पता ही नहीं है।
यह सेज सजी है, पिया घर नहीं आए। ये फूल बिछा रखे हैं; मैं तुम्हारी राह देखती हूं। तुम आओ, सुहागरात के लिए तैयारी है। अब यह सारी भाषा तो प्रेम की है। या तो हम कहेंगे कि मीरा का मन कामवासना से ग्रस्त है, इसलिए परमात्मा के नाम पर वही वासना निकल रही है। या हम समझेंगे, मीरा पागल है। क्योंकि हम मीरा की बिछी हुई सेज देख सकते हैं, पड़े हुए फूल देख सकते हैं, मीरा बैठकर रोती है, किसी की प्रतीक्षा करती है, यह भी देख सकते हैं। लेकिन वह कभी आता है? कभी आया है? कभी आएगा? उसकी हम द्वार पर दस्तक भी नहीं सुनते।
मीरा को फिर हम कभी रोते भी देखते हैं कि उसका विरह हो गया है और कभी नाचते भी देखते हैं कि मिलन हो गया। न तो हमें विरह के क्षण में कोई उसके घर से जाता दिखाई पड़ता, और न मिलन के क्षण में कोई घर आता दिखाई पड़ता।

मीरा पागल है। लोग खूब हंसे होंगे मीरा पर। इसलिए तो मीरा कहती है, सब लोक-लाज खोई। इज्जत सब चली गई। राणा ने जो बार-बार मीरा को जहर के प्याले भेजे, वह इसीलिए कि उसकी भी इज्जत इसके पीछे डूबती थी।
यह किस प्रेमी की बात कर रही है? यह किस कृष्ण के पीछे दीवानी है? लोग इसको तो पागल समझते या रुग्ण समझते या मनोविकार से ग्रस्त समझते। पति भी मुश्किल में पड़ा हुआ था।
हमने जहर तो आते देखा, हमने मीरा को जहर पीते भी देखा, लेकिन मीरा पर हमने उस जहर का असर होते नहीं देखा। तब जरा हम बेचैन हुए। यह तो अनूठी बात है। यह कैसे असर न हुआ?
अगर तुम मनसविद से पूछोगे, उसके पास इसके लिए भी व्याख्या है। वह कहता है, यह भी आत्म-सम्मोहन है। अगर मीरा को पक्का भरोसा है कि यह जहर नहीं है या परमात्मा की कृपा से यह अमृत हो जाएगा, तो इस भरोसे के कारण ही जहर शरीर में प्रवेश नहीं कर पाता। मनोवैज्ञानिक उसके लिए भी कुछ न कुछ तो व्याख्या खोजेगा!
हम परमात्मा से बचने को इस तरह आतुर हैं कि हम सब मान सकते हैं, व्यर्थ
से व्यर्थ बात मान सकते हैं, परमात्मा को नहीं मान सकते।
मनोवैज्ञानिक कहता है कि यह तो मन का इतना प्रगाढ़ रूप से भाव है कि यह जहर नहीं है, इसलिए शरीर में जहर प्रवेश नहीं करता, मन के कारण ही। कोई कृष्ण थोड़े ही जहर को अमृत में बदल रहे हैं!
जहर भी अमृत में बदल जाए, तो भी हम अंधे हैं; तो भी हम कोई व्याख्या अपनी ही खोज लेंगे। इतनी बड़ी घटना भी हमें तृप्त नहीं कर पाएगी। उसका कारण है, हमें वह कृष्ण दिखाई नहीं पड़ता। और अनदेखे को हम कैसे मान लें? इतने मूढ़ हम कैसे हो जाएं?
घटना तो घटती है। जब भक्त भगवान को मिलता है, तो जितनी पुलक भक्त में घटती है, अगर तुम मुझ से ठीक पूछो, तो उससे अनंत गुना पुलक भगवान में घटती है। घटनी ही चाहिए; क्योंकि अनंत गुना है भगवान भक्त से। भक्त तो एक बूंद है, भगवान तो एक सागर है। अगर बूंद इतनी नाचती है, तो तुम सोचो, सागर कितना नाचता होगा!
लेकिन वह कोई व्यक्ति नहीं है। यह सारी समष्टि वही है। इसलिए वह सब रूपों में नाचता है, सब रूपों में हंसता है, सब रूपों में पुलकित होता है। हरियाली में और हरा हो जाता है। रंग में और रंगीन हो जाता है। इंद्रधनुष में और गहरा हो जाता है। लेकिन वह दिखाई पड़ता है उसी को, जिसके हृदय में अहोभाव भरा है, जो नाच रहा है आज। उसे परमात्मा साथ ही नाचता हुआ दिखाई पड़ता है।
यही तो अर्थ है कि सोलह हजार गोपियां नाचती हैं और प्रत्येक गोपी को लगता है कृष्ण उसके साथ नाच रहे हैं। कृष्ण अगर व्यक्ति हों, तो एक ही गोपी के साथ नाच सकते। कृष्ण कोई व्यक्ति नहीं हैं। कृष्ण तो एक तत्व का नाम है। वह तत्व सर्वव्यापी है। जब तुम नाचते हो और तुम नाचने की क्षमता जुटा लेते हो, तब तुम अचानक पाते हो कि सारा अस्तित्व तुम्हारे साथ नाच रहा है। फिर अस्तित्व बहुत बड़ा है, वह दूसरों के साथ भी नाच रहा है। इसलिए भक्त को कोई ईर्ष्या पैदा नहीं होती। अन्यथा तुम सोच सकते हो कि सोलह हजार स्त्रियों ने क्या गति कर दी होती कृष्ण की! अगर यह बात साधारण संसार की बात हो, जैसा कि इतिहासविद मानते हैं... ।
और यह कठिन नहीं है; सोलह हजार स्त्रियां हो सकती हैं; उस जमाने में हुआ करती थीं। अभी निजाम हैदराबाद मरा, तब उसकी पांच सौ स्त्रियां थीं। बीसवीं सदी में अगर पांच सौ हो सकती हैं, तो सोलह हजार कोई ज्यादा तो नहीं हैं। सिर्फ बत्तीस गुनी। कोई बहुत बड़ा गणित नहीं है। आज से पांच हजार साल पहले सोलह हजार स्त्रियां हो सकती थीं। सम्राटों के पास होती थीं। जितनी सुंदर स्त्रियां होतीं, वे सब इकट्ठी कर लेते पूरे राज्य से। यह कठिन नहीं है।
लेकिन सोलह हजार स्त्रियां! अगर तुम्हें एक भी स्त्री का अनुभव है, तो तुम समझ सकते हो। कृष्ण की हत्या कर दी होती, अगर कृष्ण कोई व्यक्ति हैं। सोलह हजार स्त्रियां कितनी भयंकर ईर्ष्या से न भर गई होतीं। और कृष्ण एक

के साथ नाच सकते, कोई एक राधा हो जाती और बाकी पिछड़ जातीं। उपद्रव खड़ा होता। लेकिन कोई ईर्ष्या पैदा न हुई।
यह बड़ी मीठी कथा है कि गोपियों में कोई ईर्ष्या पैदा न हुई। उनका विरह
भी साथ-साथ था, उनका मिलन भी साथ-साथ था। क्योंकि कृष्ण कोई व्यक्ति नहीं हैं, तत्व की बात है। सारा अस्तित्व है; जहां भी तुम नाचो, अस्तित्व तुम्हें घेरे हुए है। कृष्ण के हाथ तुम्हारे गले में पड़े हैं। आलिंगन है-- हवा में, धूप में।
सब तरफ से कृष्ण तुम्हें घेरे हुए हैं। वे तुम्हारे साथ नाचने को तैयार हैं। बस, तुम्हारे पैरों के उठने की कमी है। तुम जरा नाच सीख लो, परमात्मा नाचने को राजी है। तुम जरा हंसना सीख लो, परमात्मा हंसने को राजी है। तुम रोओगे, तो अकेले रोओगे; तुम हंसोगे, तो सारा अस्तित्व तुम्हारे साथ हंसेगा। क्योंकि परमात्मा रो नहीं सकता। इसे थोड़ा समझ लो।
परमात्मा दुखी नहीं हो सकता। इसलिए जब मैं कहता हूं कि जब भक्त आनंदित होता है, तो पूरा अस्तित्व आनंदित होता है। लेकिन तुम यह मत सोचना कि जब भक्त रोता है, तो पूरा अस्तित्व रोता है। पूर्ण रोना जानता ही नहीं। पूर्ण की कोई पहचान ही रोने से, रुदन से, उदासी से नहीं है। पूर्ण का कोई संबंध ही दुख-पीड़ा से नहीं है।
कहावत है कि जब तुम हंसते हो, तब सारा अस्तित्व तुम्हारे साथ हंसता है। जब तुम रोते हो, तब तुम अकेले रोते हो। रोना निजी है, व्यक्तिगत है। इसलिए तो जब तुम रोना चाहते हो, तो तुम अकेले होना चाहते हो। द्वार-दरवाजा बंद कर लेते हो। तुम नहीं चाहते कोई आए। तुम नहीं चाहते कि पत्नी भी भीतर आए। तुम चाहते हो, अकेला छोड़ दो, बिल्कुल अकेला छोड़ दो। क्योंकि रोना निजी घटना है।
लेकिन जब तुम हंसते हो, तब तुम पास-पड़ोस के लोगों को बुला लेते हो। जब तुम हंसते हो, तब तुम निमंत्रण भेज देते हो। जब तुम आनंद में होते हो, तब तुम भोज का आयोजन कर लेते हो, कि आएं मित्र, पड़ोसी, संबंधी; हम सब साथ ही नाचें, हम सब साथ ही प्रसन्न हों।
प्रसन्नता निजी नहीं है, फैलती है, विस्तीर्ण होती है। दुख निजी है, सिकुड़ता है, सड़ता है। तुम अकेले ही दुखी रह जाते हो। और अचानक तुम पाते हो कि सारे जगत से तुम्हारा तालमेल टूट गया। जितने तुम ज्यादा दुखी हो, उतना ही परमात्मा से दूर। या उलटा चाहो तो उलटा कहो, जितने तुम परमात्मा से दूर, उतने ज्यादा दुखी। वे दोनों एक ही बातें हैं। जितने तुम परमात्मा के पास, उतने तुम सुखी। दूसरी बात भी सही है, जितने तुम सुखी, उतने तुम परमात्मा के पास।
इसलिए मेरी शिक्षा आनंद की है। मैं तुम्हें उदास नहीं बनाना चाहता कि तुम आंखें बंद करके ध्यान लगाकर उदास होकर, मुरदा होकर बैठ जाना लंबे चेहरे करके; कि तुम कोई बहुत बड़ा काम कर रहे हो, कि तुम जैसे परमात्मा पर कोई अनुग्रह कर रहे हो, कि तुम्हारी बड़ी कृपा है कि घंटे भर तुम चेहरा बनाकर, हाथ में माला लेकर और पत्थर की तरह बैठे रहते हो। नहीं, पत्थर बहुत हैं। तुम्हारे और पत्थर होने की जरूरत नहीं है। तुम नाचो।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, ये आपके ध्यान कैसे हैं? क्योंकि
हम तो यही सोचते थे कि आंख बंद करके पद्मासन जमाकर और शांत होकर बैठ जाना है। नाचना! संगीत! यह ध्यान कैसा?
मैं उनसे कहता हूं कि तुमने कभी परमात्मा को ऐसा बैठा देखा है उदास? चारों तरफ देखो, पक्षी गीत गा रहे हैं, हवा नाच रही है, वृक्षों की पुलक का क्या कहना! समारंभ चल रहा है, उत्सव चल रहा है। तुम इसके भागीदार होना चाहते हो? नाचो! नाचो कि मोर फीके पड़ जाएं। गाओ कि पक्षी चुप होकर सुनने लगें। पुलकित हो उठो कि हवाएं झेंप जाएं। तभी तुम परमात्मा के निकट आओगे। जो आनंदित है, वह निकट आ जाता है; जो निकट आ जाता, वह महा आनंद से भर जाता। जैसे-जैसे तुम निकट आते हो, वैसे-वैसे तुम पाते हो कि यह उत्सव तुम्हारा नहीं है, यह उत्सव तो सब का है।
धर्म उत्सव है। और मंदिर दुष्टों के हाथ में पड़ गए हैं; वे उदास लोगों
के हाथ में पड़ गए हैं। कुछ कारण हैं।

उदास लोग आक्रामक हो जाते हैं। और आक्रामक लोग बकवासी हो जाते हैं। आक्रामक लोग दूसरों पर कब्जा करने लगते हैं। आक्रामक लोग दूसरों को रास्ता बताने लगते हैं। जो उदास हैं, वे दूसरों को उदास करने में रस लेने लगते हैं।
लेकिन महावीर उदास नहीं हैं, न बुद्ध उदास हैं। कृष्ण तो बिल्कुल ही नहीं; उनके होंठों पर बांसुरी रखी है। लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, बुद्ध के होंठों पर भी बांसुरी रखी है। अदृश्य है, तुम्हें दिखाई नहीं पड़ती। मैंने देखी है, इसलिए कहता हूं।
जब भी कोई बुद्ध हुआ है, होंठ पर बांसुरी जरूर रही है; दिखाई पड़े, न दिखाई पड़े। कृष्ण की बांसुरी दिखाई पड़ती है; बुद्ध की बांसुरी दिखाई नहीं पड़ती। लेकिन उस बोधि-वृक्ष के नीचे भी वेणु बज रही है, गीत उठ रहा है। बुद्ध को तुमने शांत बैठे देखा है। वह तुम्हारी भ्रांति है। तुम अगर गौर से देखते, तो तुम उस भीतर के नाच को देख लेते। जब भी कोई परमात्मा को पाया है, नाचा है। और जब भी कोई नाचा है, तो परमात्मा तो नाच ही रहा है, वह तत्क्षण तुम्हारे साथ हो जाता है; उसकी गलबहियां तुम्हारे कंधों पर पड़ जाती हैं।
लेकिन परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है, इसे ख्याल रखना। परमात्मा यानी समष्टि।

दूसरा प्रश्नः गुरु शिष्य की निरंतर सहायता करता रहता है, पर वह कई मौकों पर बार-बार पूछने पर भी चुप रह जाता है। ऐसा क्यों कर घटित होता है?

कभी जरूरी होता है कि चुप होने से ही सहायता की जा सकती है। कभी बोलकर सहायता की जा सकती है। कभी बोलकर नुकसान होगा। कभी चुप रहने में ही सहायता पहुंचेगी। कभी संदेश शब्दों में दिया जा सकता है; और कभी संदेश शब्दों में दिया नहीं जा सकता।
फिर कभी तुम तैयार होते हो, जो तुमने पूछा है, उसके लिए। और कभी तुम तैयार नहीं होते, और तुमने असमय में पूछ लिया होता है। और असमय में कुछ भी नहीं दिया जा सकता।
तुम्हें पता न हो, गुरु को पता होता है कि तुम जो मांग रहे हो, अभी उसके लेने के हकदार नहीं हो। अभी देना व्यर्थ होगा। अभी हीरे-मोती तुम्हें दे दिए जाएंगे, तुम कंकड़-पत्थरों में मिला लोगे। अभी तुम्हें हीरे-मोती का बोध नहीं है; अभी पारखी पैदा नहीं हुआ।
कभी इसलिए गुरु चुप रह जाता है कि अभी तुम तैयार नहीं हो। तुमने असमय में प्रश्न पूछा। और तुम्हारी जिद्द हो जाती है कि तुम उस प्रश्न में अटक जाते हो, तुम बार-बार पूछते हो। तुम लाख बार पूछो, तो भी असमय में उत्तर नहीं दिया जा सकता। तुम्हें पता न हो समय का, तुम्हें पता न हो परिपक्वता का, गुरु को तो पता है। वह उसी दिन उत्तर देगा, जिस दिन तुम तैयार हो जाओगे। तुम्हारे लाख पूछने का सवाल नहीं है। तुम न भी पूछो, जिस दिन तुम तैयार होगे, उत्तर दिया जाएगा। तुमने कभी न भी पूछा हो, तो भी।
तुम्हारी तैयारी पर उत्तर निर्भर करेगा; तुम्हारी जिज्ञासा पर निर्भर नहीं है बात। और तुम्हारी जिज्ञासा और तुम्हारी तैयारी में अक्सर तालमेल नहीं होता। तुम पूछते आकाश की हो, तुम खड़े होते जमीन पर हो। तुम पूछते प्रेम की हो, चित्त कामवासना से भरा होता है। अगर कुछ भी कहा जाएगा, तो तुम कामवासना के अर्थों में ही समझोगे। तुम पूछते परमात्मा की हो, आकांक्षा पद-प्रतिष्ठा की बनी होती है। परमात्मा भी तुम्हारे लिए एक तरह की पद-प्रतिष्ठा है। परम पद होगा, लेकिन है पद ही। परम संपदा होगी, लेकिन है संपदा ही।
जरूरी नहीं है कि तुम जब पूछो, तब तुम तैयार हो। गुरु उत्तर देता है तुम्हारी तैयारी से। इसलिए बहुत बार चुप रह जाएगा। चुप रह जाने में उसकी अनुकंपा है। क्योंकि गैर-समय में दिया गया उत्तर घातक हो जाता है। तुम समझोगे कि तुमने उत्तर पा लिया। और उत्तर तुम्हें मिला नहीं, क्योंकि अभी तो प्रश्न ही पैदा न हुआ था। तुम इस उत्तर को कंठस्थ कर लोगे। तुम इस उत्तर को दूसरों को भी देने लगोगे।

तुम्हें खुद भी कुछ पता नहीं है। तुम्हारी प्यास ही अभी न थी और पानी
दे दिया गया। तुम उसे पीओगे कैसे? प्यास होगी, तो पीओगे; कंठ सूखेगा, तो पीओगे। और यह पानी तुम्हें मिल गया, तुम करोगे क्या? तुम दूसरों के गले में जबरदस्ती उतारोगे। तुम्हें ज्ञान मिल जाए असमय में, तो तुम पंडित हो जाओगे, ज्ञानी नहीं।
तो गुरु बहुत बार चुप रह जाता है। वह तुम से यह कह रहा है कि रुको, जल्दी मत करो। तुम लाख बार पूछो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि सवाल तुम्हारा है, तुम्हारे पूछने का नहीं है। गुरु तुम्हें देखता है; तुम क्या पूछते हो, यह गौण है। तुम न भी पूछो, तो भी वह तुम्हें देखता रहता है। तुम्हें जब जिस चीज की जरूरत है, वह कहेगा।
फिर बहुत बार तुम तैयार भी होते हो, लेकिन तुम्हारा प्रश्न ही ऐसा होता है, जिसका उत्तर शब्दों में नहीं हो सकता, तब वह चुप रह जाता है। चुप रह जाने का मतलब यह नहीं है कि उसने उत्तर नहीं दिया; चुप रह जाने का मतलब है कि उसने चुप रहकर उत्तर दिया। चुप रहना एक उत्तर है।
एक नए नाटककार ने बर्नार्ड शा को अपना नाटक देखने आमंत्रित किया। बर्नार्ड शा गया। पर शुरू से उसने कोई एक-दो मिनट तो देखा और आंख बंद करके वह घर्राटे लेने लगा। वह नाटककार बगल में बैठा बड़ा पीड़ित हुआ कि यह आदमी आया न आया बराबर। और इससे तो बेहतर न आता। यह भी कोई बात हुई! यह कोई शिष्टाचार हुआ! लेकिन बूढ़े बर्नार्ड शा को उठाना भी ठीक नहीं। और वह आदमी जरा तेज और नाराज प्रकृति का था। इसलिए वह नाटककार नया-नया था, कुछ बोला भी नहीं कि ठीक है, अब जो हुआ; आया यही बहुत।
पूरा नाटक हो जाने पर बर्नार्ड शा ने आंख खोली; उठकर चलने लगा। उस नाटककार ने पूछा, और आपका मंतव्य? आपने कुछ कहा नहीं! बर्नार्ड शा को चुप देखकर उस नाटककार ने कहा, मंतव्य आप देंगे भी कैसे? आप पूरे वक्त सोए रहे। बर्नार्ड शा ने कहा, सोए रहना मंतव्य है। कूड़ा-कर्कट है, सब बेकार है। सोए रहना मंतव्य है। मैंने कह दिया, जो कहना था। जान होती, तो मैं जागा रहता। जान ही न थी। मुरदा नाटक। घर्राटे ही ज्यादा बेहतर थे। मंतव्य मैंने दे दिया।
कभी सोना भी मंतव्य होता है, कभी चुप रहना उत्तर होता है। गुरु जो भी करे! बोले, तो गौर से सुनना। न बोले, तो और भी गौर से सुनना। क्योंकि बोलने को तो तुम कम गौर से सुनोगे, तो भी सुन लोगे; न बोलने को तो बहुत गौर से सुनोगे, तो ही सुन पाओगे। और जब तुम एक ही प्रश्न बहुत बार पूछते चले जाओ और गुरु हर बार चुप रह जाता हो, तब तो बात बहुत साफ है कि वह एक ही उत्तर बार-बार दोहरा रहा है और तुम बार-बार चूकते जा रहे हो।
गुरु के पास होना एक कला है, जो खोती गई है। बड़ी बारीक कला है। पूरब के मुल्कों ने उसे विकसित की थी, वह धीरे-धीरे क्षीण हो गई और खो गई। वह सूक्ष्मतम संवाद है दो व्यक्तियों के बीच। और शिष्य को जिद्द नहीं होनी चाहिए के मेरे प्रश्न का उत्तर मिले। उसे तो जो मिले उसमें अनुकंपा माननी चाहिए, तो ही उसकी पात्रता बढ़ेगी।
पश्चिम से लोग आते हैं, उनको गुरु-शिष्य के संबंध का कोई भी बोध नहीं है, इसलिए बड़ी अड़चन खड़ी होती है। एक लेखिका पश्चिम से आई। बड़ी लेखिका है, कई किताबें लिखी हैं, सो उपद्रव भी बहुत है उसके मन में, विचारों का बड़ा जाल है। उसने कुछ पूछा। मैं टाल गया। वह बड़ी नाराज वापस लौटी। वह कहकर गई संन्यासियों को कि मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं मिला। मैं नाराज जा रही हूं। मैं बड़ी आतुरता से प्रश्न का उत्तर पाने आई थी।
थोड़ा समझने की कोशिश करो। जब तुम्हारे प्रश्न का उत्तर नहीं मिलता,
तो तुम्हें चोट किस कारण लगती है? उत्तर नहीं मिला, इसलिए; या तुम्हारे प्रश्न का उत्तर नहीं मिला, इसलिए।
और बड़े मजे की बात है कि दस दिन वह यहां थी; दस दिन एक भी दिन ऐसा नहीं था, जिस दिन मैंने उसके प्रश्न का उत्तर न दिया हो। एक भी दिन ऐसा नहीं था, जिस दिन उसके प्रश्न का उत्तर न दिया हो। सीधा नहीं दिया। वह चाहती थी कि मैं उसके प्रश्न का उत्तर सीधा दूं, ताकि वह पकड़ पाए कि उसके प्रश्न का उत्तर मिला।

प्रश्न मूल्यवान नहीं है, अहंकार मूल्यवान है। दस दिन मैंने निरंतर उसके प्रश्न का उत्तर दिया है, बहुत बहानों से दिया है। लेकिन वह उसकी पकड़ में न आया। प्रश्न उसका था ही नहीं मूल्यवान। प्रश्न अगर मूल्यवान होता, अगर प्यास लगी होती, तो रोज जो मैं पानी बहाए जा रहा था, उसने पी लिया होता। लेकिन नहीं, प्रश्न तो मूल्यवान था ही नहीं। प्यास तो लगी ही न थी। प्रश्न तो एक बौद्धिक खुजलाहट की तरह था; कोई प्यास नहीं थी। एक खुजलाहट थी दिमाग में। और चाहती थी कि सीधा, जब वह पूछे, जिस भाषा में पूछे, उसको मैं उत्तर दूं। गहरे में आकांक्षा थी, उसको उत्तर दूं, उसके अहंकार को ध्यान दूं, उसका अहंकार तृप्त हो।
वह भूल मैं नहीं कर सकता। यहां मैं अहंकार तोड़ने को बैठा हूं। यहां अहंकार सजाने और संवारने का काम नहीं चल रहा है। यहां तो जो मिटने को राजी हैं, उनके ही टिकने की सुविधा है। यहां जो किसी तरह अपने को बचा रहे हैं, वर्षा होती रहेगी और वे प्यासे लौट जाएंगे।
शिष्य का अर्थ ही है, जिसने गुरु के हाथों में छोड़ दिया। वह जवाब दे,
तो ठीक; वह न दे, तो और भी ठीक। वह बुलाए, उसकी कृपा; वह हटाए, और बड़ी कृपा। गुरु तभी गुरु है, जब शिष्य ने इतना छोड़ दिया हो कि उसकी आज्ञा सब हो जाए।
वह कह दे, चुप रहो जिंदगीभर, तो वह चुप रह जाए; फिर पूछे ही न। इसलिए श्रद्धा मूल्यवान है।
लेकिन जैसा कि कृष्ण ने कहा, श्रद्धा तीन तरह की होगी। इस संबंध में
भी समझ लेना जरूरी है।
जब तुम पूछते हो, तब भी तुम्हारी श्रद्धा तीन तरह की होती है। एक तरह
का पूछने वाला आता है, उसकी श्रद्धा तामसी है। तामसी श्रद्धा का अर्थ है कि वह चाहता है, गुरु सब करके दे दे; उसे कुछ करना न पड़े। वह सोया रहे, घर्राटे ले; और गुरु ध्यान करे, समाधि लगाए। और जब भोजन पक जाए, तो वह चबाने तक को राजी नहीं है। वह चाहता है कि तुम्हीं चबाकर भी दे दो। कोई तरकीब अगर हो कि ध्यान-समाधि को इंट्रावेनस इंजेक्शन की तरह दिया जा सके, तो वह कहेगा, बस, तुम लगा दो इंजेक्शन, लटका दो बोतल समाधि की, भर दो मुझे समाधि से। अब मुझसे तो हाथ-पैर भी नहीं हिलाया जाता!
एक तामसी व्यक्ति की श्रद्धा है, जो गुरु के पास आता है कि गुरु सब करे। और वह समर्पण भी करता है, तो इसीलिए करता है कि लो, अब सम्हालो। और वह सोचता है कि बड़ी अनुकंपा कर रहा है गुरु पर कि समर्पण कर दिया।
तुम्हारे पास था क्या समर्पण करने को? तुम्हारा अंधकार! तुम्हारी नींद! तुम्हारा अज्ञान! तुम समर्पण क्या कर रहे हो?
मेरे पास लोग आते हैं उस वर्ग के। वे कहते हैं कि सब आप पर समर्पित; अब
आप ही जानो; अब आप जो करो। और अगर मैं उनको कहूं कि उठकर जरा इधर बैठ जाओ, तो वे नाराज हो जाते हैं। अगर मैं उनको कहूं कि जरा जाओ, मकान के चार चक्कर लगा आओ, तो वे नाराज होते हैं। वे कहते हैं, सब आप पर ही छोड़ दिया, अब आप हमसे यह क्यों करवा रहे हैं? जब आप पर ही छोड़ दिया, तो आप ही चक्कर लगाओ। जब सभी छोड़ दिया, हम बचे ही नहीं... ! मगर यह छोड़ने का अर्थ होता है? यह तामसी की श्रद्धा है। वह छोड़ता है इसलिए, ताकि करने की झंझट से बचे।
फिर राजसी की श्रद्धा है। वह भी कहता है, छोड़ दिया, लेकिन छोड़ नहीं पाता। वह जारी रखता है; वह अपना करना जारी रखता है। वह कहता है, सब छोड़ दिया। छोड़ नहीं पाता। क्योंकि वह छोड़कर खाली नहीं बैठ सकता। वह कहता है, कुछ बताओ। वह हमेशा चाहता है, कुछ करने को बताओ। अगर तुम उससे कहो कि कुछ करने का नहीं है; बस, वहीं संबंध छूट जाता है। ध्यान अक्रिया है, संबंध छूट गया।
तामसी मानने को राजी है कि ध्यान अक्रिया है। अक्रिया का मतलब है अकर्मण्यता, उसकी भाषा में। अक्रिया अकर्मण्यता नहीं है। अक्रिया तो क्रिया का सूक्ष्मतम रूप है, श्रेष्ठतम रूप है। वह तो नवनीत है क्रिया का। वह तो सूक्ष्मतम क्रिया है। अक्रिया का मतलब न करना नहीं है। अक्रिया का मतलब है इस भांति करना कि करने और न करने में फर्क न रह जाए। इस भांति उठना कि उठने वाला भीतर न हो, कर्ता न रहे। इस भांति चलना, जैसे कि शून्य चल रहा हो। कहीं भनक न पड़े, आवाज न हो, पगध्वनि न आए।

अक्रिया का अर्थ है, करना तो सब, लेकिन कर्ता न रह जाए। तो फिर कौन क्रिया कर रहा है? फिर परमात्मा ही कर रहा है। जिस दिन तुम्हारा कर्ता मिट जाता है और परमात्मा ही तुम्हारे भीतर कर्ता बन जाता है। करते तुम बहुत हो, लेकिन अब क्रिया नहीं होती। क्योंकि तुम ही नहीं, तो क्रिया कैसी होगी! अब तुम बांस की पोंगरी हो; अब तुम नहीं गाते, गीत उसके हैं; तुम सिर्फ मार्ग देते हो, बस इतना।
लेकिन आलसी, तमस श्रद्धा से भरा आदमी बिल्कुल राजी है अक्रिया के लिए। लेकिन अक्रिया का उसका अर्थ है, अकर्मण्यता। वह कहता है, बिल्कुल ठीक। यह जमती है बात। हम लेटे जाते हैं। वह ध्यान का अर्थ समझता है, नींद। वह ध्यान का अर्थ समझता है, कुछ न करना।
अगर राजसी श्रद्धा वाले व्यक्ति को कहो, अक्रिया, तो वह उसे जमती नहीं। अगर समझ में भी आ जाए थोड़ी, तो वह कहता है, अक्रिया करने के लिए क्या करें? अक्रिया करने के लिए क्या करें? कुछ करना बताओ, ताकि अक्रिया सध जाए! अक्रिया का मतलब ही है न करना, कर्ता को छोड़ देना। वह कर्ता को नहीं छोड़ पाता।
मेरे पास उस तरह के लोग आते हैं। उनको अगर मैं कहता हूं, तुम शांत बैठो... । और राजसी व्यक्ति को मैं निरंतर कहता हूं कि तुम शांत बैठो; क्योंकि वही उसको रजस के बाहर ले जाएगा। तामसी को कहता हूं, नाचो, कूदो, उछलो; कुछ क्रिया करो, ताकि तुम तमस के बाहर आओ। तुम जहां हो; वहां से बाहर ले आना है।
राजसी को मैं कहता हूं, कुछ मत करो, शांत बैठ जाओ। वह कहता है, यह न चलेगा। थोड़ा आलंबन; मंत्र कर सकते हैं? वह कह रहा है कि शांत हम बैठ नहीं सकते। राम-राम, राम-राम, अगर इतना भी सहारा हो, तो चलेगा। हम इसी को पगलापन बना देंगे; भीतर राम-राम, राम-राम इतने जोर से करेंगे कि सारा राजस इसमें लग जाए। कुछ करने को बता दो; माला फेरें? गीता का पाठ करें? योगासन करें? उपवास करें? करने की भाषा उसको समझ में आती है। न करने की बात उसको समझ में नहीं आती।
सत्व की श्रद्धा वाला ही ठीक से समझ पाता है कि अक्रिया क्या है। अक्रिया अकर्मण्यता नहीं है। अक्रिया अकर्म भी नहीं है। अक्रिया अकर्ता भाव है। अक्रिया बड़ी सूक्ष्म क्रिया है, शुद्धतम क्रिया है। इतनी शुद्ध है कि वहां कर्ता की मौजूदगी से अशुद्धि पैदा होती है, इसलिए कर्ता शून्य है।
जैसे हवाएं बहतीं, आकाश में बादल तिरते, ऐसा ही सत्व को उपलब्ध या सत्व की श्रद्धा का व्यक्ति तिरता है, बहता है; नदी बहती है, ऐसा बहता है। लेकिन कोई भाव नहीं होता कि मैं बह रहा हूं। सागर पहुंच जाता है, लेकिन कोई यात्रा नहीं होती। यह नहीं सोचता कि सागर जा रहा हूं।
तुमने गंगा को देखा, टाइम-टेबल हाथ में लिए, नक्शा फैलाए, कि सागर जा रही हूं! न कोई टाइम-टेबल है, न कोई नक्शा है। इसीलिए तो ठीक समय पर पहुंच जाती है। अगर टाइम-टेबल हो, उसी में वक्त लग जाएगा। और सब गड़बड़ हो जाएगा। एक स्टेशन पर मैं बैठा था कोई आठ घंटे से, ट्रेन लेट होती गई, लेट होती गई। पहले दो घंटा लेट थी, फिर चार घंटा, फिर छः घंटा। मैंने जाकर स्टेशन मास्टर को पूछा कि समझ में आता है, दो घंटा लेट थी। लेकिन क्या ट्रेन पीछे की तरफ जा रही है! चार घंटा हो गई, अब छः घंटा, अब आठ घंटा--मामला क्या है? अगर ऐसे ही चला, तो आएगी कैसे? फिर मैंने उसको कहा कि फिर यह टाइम-टेबल छापने की जरूरत क्या है?
उसने कहा, साहब, अगर टाइम-टेबल न हो, तो कैसे पता चलेगा कि कितनी लेट है? यह बात मुझको भी जंची। टाइम-टेबल का एक ही उपयोग है, उससे पता चलता है कि गाड़ी कितनी लेट है।
गंगा पहुंच जाती है, समय पर। न कोई नक्शा है, कहां से जाना है। कोई लिए जाता है।
अनंत तुम्हें लिए ही जा रहा है। तुम नाहक ही शोरगुल मचाते हो। उस शोरगुल में तुम्हें देर हो जाती है, उससे तुम्हारा अनंत से संबंध टूट जाता है।

अक्रिया का अर्थ है, मैं जाने वाला नहीं हूं; मैं तेरे हाथ में हूं, तू
ले जाने वाला है। इसका यह मतलब नहीं है कि मैं कुछ न करूंगा। इसका मतलब है, तू जो करवाएगा करूंगा। इसका यह अर्थ नहीं कि अब तू कर; हम आराम करेंगे। इसका अर्थ है कि अब जो तू करवाएगा, हम करेंगे। न हमारा अब कोई आराम है और न हमारा अब कोई कर्म है। जब तू आराम करवाएगा, तब आराम करेंगे। जब तू कर्म करवाएगा, तब कर्म करेंगे। लेकिन हर घड़ी तू ही होगा, हम न होंगे।
यह हमारे न हो जाने की कला ही शिष्य होने की कला है। और तब बिना कुछ किए बहुत होता है। तब बिना मांगे बहुत मिलता है। तब बिना भटके यात्रा पूरी हो जाती है। बिना चले मंजिल भी मिलती है। तुम नाहक ही चल रहे हो; उस श्रम से तुम व्यर्थ ही दबे जा रहे हो।
शिष्य का अर्थ है, छोड़ा जिसने गुरु के हाथों में कि अब वह जो करवाएगा, करेंगे। और यह श्रद्धा तीन तरह की होगी। अगर यह सत्व की श्रद्धा हो, तो ही क्रांति घटेगी। आलस्य की हो, चूक जाओगे। रजस की हो, चूक जाओगे।
पूरब से जो लोग आते हैं... भारत से जो लोग मेरे पास आते हैं, उनकी श्रद्धा अक्सर तमस की होती है। पश्चिम से जो लोग आते हैं, उनकी श्रद्धा अक्सर रजस की होती है। क्योंकि पूरब में शिक्षा बड़ी प्राचीन है आलस्य की, भाग्य की। उसको हमने अपना तमस बना लिया है। बड़े अच्छे शब्दों के जाल में हमने अपने आलस्य को, अकर्मण्यता को छिपा लिया है।
पश्चिम की सारी शिक्षा है रजस की, दौड़ो, पाओ; घर बैठे कुछ न मिलेगा; करना पड़ेगा। वे दौड़ने में इतने कुशल हो गए हैं कि जब उन्हें मंजिल भी मिल जाती है, तो रुक नहीं पाते; तब वे आगे की मंजिल बना लेते हैं। वे दौड़ते ही रहते हैं।
पूरब सो रहा है, पश्चिम भाग रहा है। तामसी सोता है, राजसी भागता है। दोनों चूक जाते हैं। सोया हुआ इसलिए चूक जाता है कि वह मंजिल तक चलता ही नहीं है। और भागने वाला इसलिए चूक जाता है कि कई बार मंजिल पास आती है, लेकिन वह रुक नहीं सकता। वह जानता ही नहीं कि रुके कैसे। एक जानता नहीं कि चले कैसे, एक जानता नहीं कि रुके कैसे।
सत्व का अर्थ है, संतुलन। सत्व का अर्थ है, जानना कब चलें, जानना कब रुकें। जानना कि कब जीवन में गति हो, और जानना कि कब जीवन में विश्राम हो। जिसने ठीक-ठीक विश्राम जाना और ठीक-ठीक कर्म जाना, वह सत्व को उपलब्ध हो जाता है, सम्यकत्व को उपलब्ध हो जाता है। सम्यक गति और सम्यक विश्राम, ठीक-ठीक जितना जरूरी है, बस उतना, उससे रत्तीभर ज्यादा नहीं। इस ठीक की पहचान का नाम ही विवेक है।
और तुम अपने भीतर जांच करना; अक्सर तुम पाओगे, अति है। या तो एक अति होती है, नहीं तो दूसरी अति होती है। निरति चाहिए, अति से मुक्ति चाहिए। श्रम भी करो, विश्राम भी करो। दिन श्रम के लिए है, रात्रि विश्राम के लिए है। और दोनों के बीच अगर एक सामंजस्य सध गया, तो तुम पाओगे, तुम न दिन हो और न तुम रात हो; तुम तो दोनों का चैतन्य हो, दोनों का साक्षी-भाव हो। वही सत्व में अनुभव होगा।

तीसरा प्रश्नः कृष्ण ने गोपियों को समझाने के लिए उद्धव को वृंदावन भेजा था, पर वे सफल क्यों न हो पाए?

हो ही न सकते थे; बात ही संभव न थी। उद्धव थे ज्ञानी, और ज्ञान कब प्रेमियों को समझा पाया है? कृष्ण ने मजाक किया होगा। ज्ञानी को भेजकर मजाक किया। ज्ञानी कभी प्रेमी को नहीं समझा सकता; क्योंकि ज्ञानी के पास होते हैं शब्द कोरे। पंडित थे उद्धव; बड़े पंडित होंगे; कुशल होंगे समझाने में। लेकिन उन्होंने जिनको समझाया होगा तब तक, वे गोपियां नहीं थीं, जिनको प्रेम का रस लग गया था।
पंडित तभी तक तुम्हें सार्थक मालूम होगा, जब तक तुम्हें प्रेम का रस नहीं लगा। प्रेम के काटे को पंडित नहीं झाड़ सकता। पंडित उन्हीं को झाड़ सकता है, जो प्रेम के काटे नहीं हैं। पंडित उनके काम का है, जिनकी प्यास ही नहीं जगी। पंडित उनको बड़ा महापंडित मालूम होता है, कितनी जानकारी लाता है!

लेकिन जिसको प्यास जग गई, और प्रेम की भनक पड़ गई, और जिसके हृदय में कोई धुन बजने लगी अज्ञात की, पंडित कूड़ा-कर्कट है। उद्धव व्यर्थ थे।
मेरी जो समझ है, वह यह है कि उन्होंने उद्धव को गोपियों को समझाने भेजा ही नहीं था; उद्धव को समझने भेजा था गोपियों को। ऐसा किसी ने कभी कहा नहीं, लेकिन मेरी यही समझ है। वह उद्धव को मूर्ख बनाया, उसको अकल दी, कि तू जरा जा! यहां तू बड़ा पंडित हुआ जा रहा है। क्योंकि जिनको तू समझा रहा है, उनको प्रेम का रस ही नहीं लगा है, उनकी प्यास ही नहीं जगी है। तो तू ज्ञान की बातें कर, वे सिर हिलाते हैं। जब प्रेमी मिलेगा, तब तुझे अड़चन आएगी, तब तेरी ज्ञान की बातें जरा भी काम न आएंगी। जिसको प्यास लगी है, तुम पानी का शास्त्र समझाओगे, क्या फल होगा? वे कहेंगे, पानी चाहिए।
गोपियों ने कहा, कृष्ण चाहिए, तुम किसलिए आए हो? उद्धव बड़े बुद्धू बने। जाना ही नहीं था, अगर थोड़ी अकल होती। लेकिन पंडित में अकल होती ही नहीं। पंडित से ज्यादा बेअकल आदमी नहीं होता। जाना ही नहीं था; पहले ही हाथ जोड़ लेना था, कि गोपियों के? मैं जाने वाला नहीं। क्योंकि वहां हम व्यर्थ ही सिद्ध होंगे।
वे कृष्ण को मांगती थीं, उद्धव को नहीं। संदेशवाहक नहीं चाहिए; चिट्ठी-पत्री लाने से क्या होगा! बुलाया था प्रेमी को, आ गया पोस्टमैन! इनसे क्या लेना-देना है? उन्होंने उद्धव को बैरंग भेज दिया वापस।
वह उद्धव को समझाने के लिए ही कृष्ण ने खेल किया होगा। इतना तो पक्का
था कि गोपियां नहीं समझाई जा सकतीं; कृष्ण तो समझते हैं कि नहीं समझाई जा सकतीं। कृष्ण से कम पर वे राजी न होंगी।
प्रेमी का अर्थ है, परमात्मा से कम पर जो राजी न होगा। तुम परमात्मा
के संबंध में समझाओ, प्रेमी कहेगा, क्यों व्यर्थ की बातें कर रहे हो? परमात्मा के संबंध में नहीं जानना है उसे। उसे परमात्मा को जानना है। परमात्मा के संबंध में वेद क्या कहते हैं, उपनिषद क्या कहते हैं, शास्त्रों में क्या लिखा है, क्या नहीं लिखा है! वह कहेगा, बंद करो यह बकवास। मुझे परमात्मा चाहिए। परमात्मा मिल गया, तो मुझे वेद मिल गए। परमात्मा ही मेरा वेद है।
लेकिन पंडित कहता है, वेद भगवान! पंडित वेद को भगवान बतलाता है। प्रेमी को भगवान ही वेद है। और बड़ा फर्क है; जमीन-आसमान का फर्क है। तुम मांगते हो भगवान को, वह ले आता है वेद की पोथियों को। वह कहता है, सब इसमें लिखा है।
यह ऐसे ही है, जैसे कोई भूखा मर रहा हो और तुम जाकर पाक-शास्त्र का ग्रंथ सामने रख दो और कहो कि सब तरह के भोज-मिष्ठान्न, सब इसमें लिखे हैं। वह तुम्हारे पाक-शास्त्र को उठाकर फेंक देगा भूखा आदमी। हां, भरा पेट होगा, तो विश्राम से बैठकर पाक-शास्त्र को पढ़ेगा। लेकिन भूखे को पाक-शास्त्र का क्या अर्थ है?
जिसको परमात्मा की भूख लग गई है, वेद व्यर्थ है, उपनिषद बकवास है, गीता असार है। वह परमात्मा को चाहता है; उससे कम पर वह राजी नहीं है। और गोपियां न केवल परमात्मा को चाहती थीं, बल्कि उनको परमात्मा का स्वाद भी लग गया था; वे परमात्मा को जान भी चुकी थीं।
हां, जिसने न जाना हो परमात्मा को, उसको प्यास भी लगी हो, तो शायद थोड़ी- बहुत देर पंडित उसको भरमा ले। क्योंकि उसके पास कोई कसौटी तो नहीं है अनुभव की। इसलिए अज्ञानी को पंडित भरमा लेता है। लेकिन जिसको ध्यान की जरा-सी भी भनक आ गई, फिर पंडित उसको नहीं भरमा सकता।
ये गोपियां कृष्ण के साथ नाच चुकी थीं; वह उनकी स्मृति में संजोया हुआ मंदिर था। वह स्मृति भूलती नहीं थी, बिसरती नहीं थी। वह तो निशि-वासर, दिन-रात भीतर कौंधती रहती थी। एक दफा जिसने चख लिया कृष्ण का साथ, नाच लिया कृष्ण के साथ वृक्षों के तले पूर्णिमा की रातों में, अब इसे पंडित धोखा नहीं दे सकता, भरमा नहीं सकता।
उद्धव खूब समझाए होंगे; ज्ञान की बातें की होंगी। गोपियों ने उनकी जरा भी न सुनी। बल्कि गोपियां नाराज हुईं कि कृष्ण ने यह कैसा मजाक किया! यह बरदाश्त के बाहर है। और प्रेमी परमात्मा से नाराज हो सकता है, सिर्फ

प्रेमी! पंडित कभी नहीं नाराज हो सकता। पंडित तो डरता है। प्रेमी थोड़े ही डरता है, प्रेम तो अभय है।
गोपियां नाराज हुईं। यह मजाक बरदाश्त के बाहर है। इस उद्धव को किसलिए भेजा? इससे क्या लेना-देना है? आना हो, कृष्ण आ जाएं; कम से कम पंडितों को तो न भेजें। परमात्मा चाहिए, शास्त्र नहीं; ज्ञान नहीं, अनुभव चाहिए। गोपियां बहुत नाराज हुईं। प्रेमी नाराज हो सकते हैं।
मैंने यहूदी फकीर झुसिया का जीवन पढ़ा है। वह प्रार्थना करने जाता-- बड़ा फकीर था; बड़े उसके भक्त थे; अनूठा आदमी था--वह जब यहूदी मंदिर में प्रार्थना करता, तो कभी-कभी लोगों से कह देता, अब तुम बाहर हो जाओ; सुनने वालों से। इस परमात्मा के बच्चे को ठीक करना ही पड़ेगा। तुम बाहर हो जाओ। एक सीमा है बरदाश्त की।
लोग बाहर हो जाते, तब उसका झगड़ा शुरू होता। वह परमात्मा से सीधी-सीधी बातें करता। झगड़ा ऐसा होता कि मौका आ जाए, तो मार-पीट हो जाए। अगर गांव में कोई भूखा मर रहा है, तो वह गुस्से में आ जाता। वह कहता कि तेरे रहते यह कैसे हो रहा है? तेरा प्रेमी भूखा मर रहा है, यह हम बरदाश्त नहीं कर सकते। हम तेरी सब पूजा-पत्री बंद कर देंगे।
कहते हैं, झुसिया जैसा आदमी यहूदी परंपरा में नहीं हुआ। कैसा उसका गहन प्रेम रहा होगा कि परमात्मा से लड़ने को राजी है। कलह हो जाए; कई दिन तक मंदिर ही न जाए फिर वह। कि पड़ा रहने दो उसको वहीं; कोई पूजा मत करो, कोई प्रार्थना मत करो। जब हमारी नहीं सुनी जा रही है, हम भी क्यों उसकी सुनें! झुसिया ने कहा है अपनी प्रार्थनाओं में कि देख, तू एक बात ठीक से समझ ले; हमें तेरी जरूरत है, वह पक्का; तुझे भी हमारी जरूरत है! इसलिए तू यह मत समझ कि तू हम पर कोई अनुग्रह कर रहा है। हमारे बिना तू भगवान न होगा। भक्त के बिना भगवान कैसे होगा? माना कि हम भक्त न होंगे, वह भी ठीक। लेकिन तू भी भगवान न होगा। जितनी हमें तेरी जरूरत है, उतनी तुझे हमारी जरूरत है। इसका सदा ख्याल रख; इसको भूल मत जा।
प्रेमी लड़ सकता है, प्रेमी ही लड़ सकता है; भय नहीं है। पंडित तो डरता है, कंपता है। पंडित तो देखता है, कहीं क्रियाकांड में कोई भूल न हो जाए; कि शास्त्र में जैसी विधि लिखी है, वैसी पूरी होनी चाहिए। उसमें कहीं भूल-चूक न हो जाए। पता नहीं परमात्मा नाराज हो जाए।
इसने परमात्मा को जाना नहीं। परमात्मा कहीं नाराज होता है? यह पहचाना
ही नहीं। यह मूढ़ है। इसे पता ही नहीं कि परमात्मा नाराज होता ही नहीं। नाराज होने जैसी घटना परमात्मा में घटती ही नहीं। और उस घड़ी में, जब कोई झुसिया जैसा भक्त परमात्मा को कहता होगा कि बंद कर देंगे तेरी प्रार्थना, तो परमात्मा नाचता होगा कि जरूर कोई प्रेमी मौजूद है।
गोपियां बहुत नाराज हुईं उद्धव पर। और उन्होंने उनको बैरंग ही भेज दिया कि तुम जाओ; तुम्हें किसने बुलाया? और वे खूब हंसी उद्धव पर, उनकी ज्ञान की बातों पर। पंडित खूब बुद्धू बना होगा। पंडित सदा ही प्रेमी के पास आकर मुश्किल में पड़ जाएगा। यह कथा बड़ी प्रतीकात्मक है।
पंडित कभी भी सफल नहीं हो सकता प्रेमी के सामने। अगर वह सफल होता दिखाई पड़ता है, तो उसका कुल कारण इतना है कि प्रेमी मौजूद नहीं है; परमात्मा को कोई खोज नहीं रहा है। इसलिए पंडित तुम्हें सब तरफ सिंहासनों पर बैठे दिखाई पड़ते हैं।
तुम जिस दिन परमात्मा को खोजोगे, उसी दिन पंडित सिंहासनों से नीचे उतर जाएंगे; उनकी कोई जगह नहीं है। तब तो तुम उसे सिंहासन पर विराजमान करोगे, जो ज्ञान नहीं, अनुभव दे सकता है; जो तुम्हें परमात्मा के संबंध में नहीं बताता, जो तुम्हें परमात्मा बता सकता है। उसको ही हमने गुरु कहा है। इसलिए कबीर कहते हैं, गुरु गोविंद दोई खड़े, काके लागूं पांय। दोनों सामने खड़े हैं। बड़ी मुश्किल में पड़ गए हैं कबीर, किसके पैर लगूं? क्योंकि अगर परमात्मा के पैर लगूं, उचित न होगा। अगर गुरु के पैर लगूं, तो भी अड़चन मालूम पड़ती है। परमात्मा सामने खड़े थे, पहले मैं गुरु के पैर लगा! पद बड़ा मधुर है और उसके दो अर्थ हो सकते हैं।
गुरु गोविंद दोई खड़े, काके लागूं पांय।
बलिहारी गुरु आपकी, जो गोविंद दियो बताय।।

इसके दो अर्थ संभव हैं। एक अर्थ तो यह है कि शिष्य को अड़चन में पड़ा देखकर गुरु ने गोविंद की तरफ इशारा कर दिया कि तू गोविंद के पैर लग।
यह अर्थ से मैं राजी नहीं। यह मुझे जंचता नहीं। मुझे तो दूसरा अर्थ जंचता है। वह दूसरा अर्थ कभी किया नहीं गया। वह दूसरा अर्थ मुझे यह लगता है कि--
गुरु गोविंद दोई खड़े, काके लागूं पांय।
मुश्किल में पड़ गए हैं कबीर। किसके पैर पडूं? दोनों सामने खड़े हैं। तब
वे गुरु के पैर पर गिर पड़े, क्योंकि उन्होंने जाना, सोचा--
बलिहारी गुरु आपकी, जो गोविंद दियो बताय।।
तुमने ही गोविंद बताया, नहीं तो गोविंद को हम देख ही कैसे पाते! इसलिए तुम्हारे पैर पहले छू लेते हैं।
गुरु का अर्थ है, जिसने जाना हो और जो तुम्हें जना दे। जिसने देखा हो
और जो तुम्हें दिखा दे। जिसने चखा हो और जो तुम्हें चखा दे। शब्द यह न कर पाएंगे।
गुरु भी शब्दों का उपयोग करता है, लेकिन निशब्द की तरफ ले जाने के लिए; शास्त्र का सहारा लेता है, तुम्हें कभी बेसहारा कर देने के लिए; समझाता है, तुम्हारे मन को उस घड़ी में ले जाने के लिए, जहां सब समझ-नासमझ छूट जाती है। इसलिए गुरु के लिए शब्द अंत नहीं है, केवल साधन है। पंडित के लिए शब्द सब कुछ है, साधन भी, साध्य भी; उसके पार कुछ भी नहीं है।
उद्धव हारे। पंडित सदा हारता रहा है। और कृष्ण ने बिल्कुल ठीक ही किया उद्धव को भेजकर, जो फजीहत करवाई। उससे उद्धव को कुछ समझ आ गई हो तो अच्छा, नहीं तो अभी तक भटक रहे होंगे।

अब सूत्रः
हे भारत, कृष्ण ने कहा, सभी मनुष्यों की श्रद्धा उनके अंतःकरण के अनुरूप होती है तथा यह पुरुष श्रद्धामय है, इसलिए जो पुरुष जैसी श्रद्धा वाला है, वह स्वयं भी वही है। उसमें सात्विक पुरुष देवों को पूजते हैं और राजस पुरुष यक्ष और राक्षस को तथा अन्य जो तामस पुरुष हैं, वे प्रेत और भूतगणों को पूजते हैं।
मनुष्यों की श्रद्धा उनके अंतःकरण के अनुरूप होती है... ।
तुम्हारा अंतःकरण तमस से भरा हो, तो तुम्हारी श्रद्धा सात्विक नहीं
हो सकती। क्योंकि श्रद्धा तो तुममें उगती है; तुम्हारे अंतःकरण की भूमि में ही वह बीज टूटता है; तुम्हारी भूमि ही उसे रसदान देती है, पुष्टि देती है; वह पौधा तुम्हारा है। तो तुम्हारा अंतःकरण कैसा है, वैसी ही तुम्हारी श्रद्धा होगी। अपने अंतःकरण की ठीक-ठीक पहचान तुम्हारी श्रद्धा की पहचान बन जाएगी।
इस सूत्र में कृष्ण साधक के लिए बड़ी महत्वपूर्ण बातें कह रहे हैं। एक
तो यह जानना जरूरी है कि तुम्हारा अंतःकरण कैसी दशा में है। ऐसा मत सोचना कि जो लोग तामसिक हैं, वे बिल्कुल तामसिक हैं। शुद्ध तामसिक व्यक्ति हो ही नहीं सकता। शुद्ध तामसिक वृत्ति का व्यक्ति हो ही नहीं सकता। क्योंकि इन तीन के जोड़ के बिना कोई भी नहीं हो सकता।
इसलिए जब हम कहते हैं तामसी, तो हमारा मतलब सापेक्ष होता है, रिलेटिव होता है। हमारा मतलब होता है कि तामसी ज्यादा, राजसी कम, सात्विक कम। तमस का अनुपात ज्यादा है, इतना ही अर्थ होता है। कोई व्यक्ति पूर्ण तामसी नहीं हो सकता, क्योंकि वह तो टूट जाएगा। होने के लिए तीन ही आवश्यक हैं।
इसलिए कोई व्यक्ति अगर तामसी होता है, तो समझो सत्तर परसेंट तामसी है, उनतीस परसेंट राजसी, एक परसेंट सात्विक। पर एक परसेंट सात्विक भी होना जरूरी है। नहीं तो, जैसे तीन पैर की तिपाई में से एक पैर निकाल लो, तिपाई फौरन गिर जाए; ऐसा व्यक्ति जी नहीं सकता, जिसका एक पैर गिर गया हो।
तुम तिपाई हो; वे तीनों गुण चाहिए; मात्रा कम-ज्यादा हो सकती है। यह हो सकता है कि एक टांग बिल्कुल पतली हो तिपाई की, धागे जैसी हो, मगर उतनी जरूरी है। एक टांग बहुत मोटी हो, हाथी-पांव की बीमारी हो गई हो, यह हो सकता

है। लेकिन टांगें तीन ही होंगी। तुम्हारी मुर्गी तीन टांग से ही चलती है; उससे कम में न चलेगा।
तामसिक वृत्ति का व्यक्ति गहन तमस से भरा होता है, लेकिन दूसरे तत्व
भी मौजूद होते हैं।
यह पहली बात समझ लेना कि कोई पूर्ण तामसी नहीं है; कोई पूर्ण राजसी नहीं है; कोई पूर्ण सात्विक नहीं है। शुद्धतम व्यक्ति में भी, बुद्ध में भी, जब तक उनकी देह नहीं छूट जाती, तमस की टांग रहेगी। पतली होती जाएगी; उलटा हो जाएगा अनुपात; तुम्हारी तमस की टांग हाथी-पांव है; बुद्ध की तमस की टांग, समझो मच्छड़ की टांग है। पर रहेगी; उतना अनुपात रहेगा। जब तक शरीर है, तब तक तीनों रहेंगे।
इसलिए बुद्ध ने निर्वाण की दो अवस्थाएं कही हैं। पहला निर्वाण, जब समाधि उपलब्ध होती है, लेकिन शरीर बचता है। वह पूर्ण निर्वाण नहीं है। जीवनमुक्त हो गया व्यक्ति, जंजीरें टूट गईं, लेकिन कारागृह मौजूद है। कैदी न रहा, जंजीरें नहीं हैं हाथ-पैर पर, यह भी हो सकता है कि जेलर प्रसन्न हो गया हो इस व्यक्ति से और इसने उसको कैदियों के ऊपर सुपरिनटेंडेंट या सुपरवाइजर बना दिया हो। बाकी है कारागृह के भीतर; अभी दीवालें मौजूद हैं। इतना प्रसन्न हो गया हो जेलर इसकी सात्विकता से कि इसको बाहर-भीतर आने की भी सुविधा हो गई हो; सब्जी खरीदने बाहर चला जाता हो; इसके भागने का डर न रहा हो। लेकिन इसे भी लौट आना पड़ता है। कभी-कभी घर के लोगों से भी मिल आता हो, गपशप भी कर आता हो, लेकिन फिर भी लौट आना पड़ता है।
अभी इसकी नाव भी शरीर के किनारे से ही बंधी रहेगी। इसकी स्वतंत्रता
बढ़ गई, बहुत बढ़ गई। यह करीब-करीब ऐसा स्वतंत्र हो गया है, जैसा कि कारागृह के बाहर के लोग हैं; लेकिन करीब-करीब, एप्रॉक्सिमेट। जरा-सी बात तो अभी अटकी है, अभी शरीर से बंधा है। इसको हम जीवनमुक्त कहते हैं, क्योंकि यह निन्यानबे प्रतिशत मुक्त है। कुछ बचा नहीं, सब हो गया है। सिर्फ शरीर के गिरने की बात है।
इसलिए बुद्ध ने कहा, जब शरीर गिर जाता है, तब महापरिनिर्वाण, तब महासमाधि लगती है। जीवनमुक्त तब मोक्ष को उपलब्ध हो जाता; तब मुक्तत्व उसका स्वभाव हो जाता। अब दीवाल भी गिर गई, अब कारागृह न रहा; जंजीरें भी टूट गईं।
रजस से भरे व्यक्ति में भी तमस होता है, सत्व होता है। तीनों सभी में होते हैं। और तीनों सभी में होते हैं, इससे ही क्रांति की संभावना है। नहीं तो मुश्किल हो जाए। अगर कोई व्यक्ति पूरा ही तामसी हो, सौ प्रतिशत, चौबीस कैरेट तामसी हो, तो फिर कुछ नहीं किया जा सकता; कोई उपाय न रहा। यह तो करीब-करीब लाश की तरह पड़ा रहेगा, कोमा में रहेगा, बेहोश रहेगा, क्योंकि होश के लिए भी थोड़ा रजस चाहिए। यह तो हाथ-पैर भी न हिलाएगा; यह तो आंख भी न खोलेगा; इसका तो जीना भी जीना न होगा; यह तो मुरदे की भांति होगा; जीते जी मुरदा होगा। नहीं, इसकी फिर कोई संभावना क्रांति की न रह जाएगी।
दूसरे तत्व मौजूद हैं, उनसे ही क्रांति का द्वार खुला है, उन्हीं के सहारे एक से दूसरे में जाया जा सकता है। जैसे तुम अंधेरे कमरे में बैठे हो, लेकिन छपरैल से, खपड़ों की संध से एक छोटी-सी सूरज की किरण भीतर आ रही है। सब घना अंधकार है, पर एक छोटी किरण अंधकार में उतर रही है। वही द्वार है। तुम उसी किरण के सहारे चाहो तो सूरज तक पहुंच जाओगे, चाहे वह दस करोड़ मील दूर हो। तुम उसी का किरण का अगर मार्ग पकड़ लो, तो तुम सूरज के स्रोत तक पहुंच जाओगे। वह गहन अंधकार पीछे छूट सकता है; यात्रा संभव है। इसलिए तीनों तत्व सभी में हैं, पहली बात समझ लेनी जरूरी है।
दूसरी बात समझ लेनी जरूरी है कि तीनों तत्वों का अनुपात भी सदा थिर नहीं रहता। रात तमस बढ़ जाता है, दिन में रजस बढ़ जाता, संध्याकाल में सत्व बढ़ जाता है। इसलिए हिंदुओं ने संध्याकाल को प्रार्थना का क्षण समझा। सुबह, जब रात जा चुकी और सूरज अभी नहीं उगा, वही ब्रह्ममुहूर्त है। उसको ब्रह्ममुहूर्त कहने का कारण है भीतर की गुण-व्यवस्था से। रात जा चुकी, पृथ्वी जाग गई, पक्षी बोलने लगे, वृक्ष उठ आए, लोग नींद के बाहर आने लगे, सारी पृथ्वी पर तमस का जाल सिकुड़ने लगा। सूरज करीब है क्षितिज के, जल्दी ही उसका किरण-जाल फैल जाएगा, जल्दी ही सब उठ बैठेगा, रजस पैदा होगा।

सूरज के उगते ही काम-धाम की दुनिया शुरू होगी। अभी सूरज नहीं उगा, अभी रजस उगने को है। अभी रात गई, तमस जा चुका, मध्य की छोटी-सी घड़ी है, वह संध्या है। संध्या का अर्थ है, बीच का काल, मध्य की घड़ी। उस मध्य की घड़ी में सत्व
का प्रमाण ज्यादा होता है। वह दोनों के बीच की घड़ी है। इसलिए उस क्षण को ध्यान में लगाना चाहिए। क्योंकि अगर ध्यान सत्व से निर्मित हो, तो दूरगामी होगा। उस सत्व को अगर तुम ध्यान बनाओ, तो धीरे-धीरे तुममें सत्व बढ़ता जाएगा।
ऐसे ही सांझ को सूरज डूब गया, रजस का व्यापार बंद होने लगा, सूर्य ने समेट ली अपनी दुकान, द्वार-दरवाजे बंद करने लगा। रात आने को है, आती ही है, उसकी पहली पगध्वनियां सुनाई पड़ने लगीं। मध्य का छोटा-सा काल है, वह संध्या है।
दुनिया के सभी धर्मों ने मध्य के काल चुने हैं। क्योंकि उस मध्य के काल में, जब दो तत्वों के बीच की थोड़ी-सी संधि होती है, तो सत्व का क्षण महत्वपूर्ण होता है।
तुम्हारे भीतर हो सकता है पचास प्रतिशत या साठ प्रतिशत तमस हो, तीस या चालीस प्रतिशत रजस हो, एक प्रतिशत सत्व हो, तो उस मध्यकाल में वह एक प्रतिशत प्रमुख होता है। और उसका अगर तुम उपयोग कर लो, तो ब्रह्ममुहूर्त का तुमने उपयोग कर लिया।
इसलिए हिंदुओं के लिए तो प्रार्थना शब्द संध्या का पर्यायवाची हो गया। वे जब प्रार्थना करते हैं, तो वे कहते हैं, संध्या कर रहे हैं। वे भूल गए हैं कि उसका अर्थ क्या था!
इस्लाम में भी नियम है, सूरज उगने के समय, सूरज डूबने के समय, सूरज जब मध्य आकाश में हो, तब--ऐसी सूरज की पांच घड़ियां उन्होंने चुनी हैं। लेकिन दो घड़ियां वहां भी मौजूद हैं, सुबह और सांझ। उन घड़ियों में सत्व तेज होता है। रात्रि तमस तेज हो जाता है, दिन रजस तेज हो जाता है।
तो तुम्हारे भीतर चौबीस घंटे अनुपात एक-सा नहीं रहता। इसलिए तो भिखारी सुबह-सुबह तुमसे भीख मांगने आते हैं। उस वक्त सत्व की थोड़ी-सी छाया होती है; तुम शायद दे सको। भिखारी दिनभर के बाद भीख मांगने नहीं आते। क्योंकि वे जानते हैं, रजस से थका आदमी चिड़चिड़ा हो जाता है, नाराज होता है। भिखारी को देखकर ही गुस्से में भर जाएगा; देने की जगह छीनने का मन होगा। सुबह-सुबह तुम उठे हो और एक भिखारी द्वार पर आ गया है, इनकार करना जरा मुश्किल होता है। तुम्हीं हो, सांझ को भी तुम्हीं रहोगे, दोपहर भी तुम्हीं रहोगे। लेकिन सुबह जरा इनकार अटकता है, एकदम से कह देना नहीं, संभव नहीं मालूम होता। भीतर से कोई कहता है, कुछ दे दो। सत्व प्रगाढ़ है।
जो आदमी समझदार है, वह अपनी जीवन-विधि को इस तरह से बनाएगा कि वह इन गुणों का ठीक-ठीक उपयोग कर ले। अगर तुम्हें कोई शुभ कार्य करना हो, तो संध्याकाल चुनना; तो तुम्हारी गति ज्यादा हो सकेगी। अगर कोई अशुभ कार्य चुनना हो, तो मध्य-रात्रि चुनना, तो तुम्हारी गति ज्यादा हो सकेगी। हत्यारे, चोर, सब मध्य-रात्रि चुनते हैं।
सुबह भोर के क्षण में तो चोर को भी चोरी करना मुश्किल हो जाएगा, हत्यारे को भी हत्या करना मुश्किल हो जाएगा, उसकी जीवन-धारा भिन्न होगी। भरी दोपहर में सब दफ्तर और दुकानें खुलती हैं दुनिया की; ग्यारह बजे, वह रजस का व्यापार है। बाजार धूम में होता है, जब सूरज आकाश में होता है। फिर सब क्षीण हो जाता है। रात्रि लोग क्लबघरों में इकट्ठे होते हैं, शराब पीने, नाचने। वेश्याओं के घर-द्वार पर दस्तक देते हैं। तमस प्रगाढ़ है। तुम कभी-कभी हैरान होओगे, सुबह जिसको तुमने भोर में प्रार्थना करते देखा, दोपहर में बाजार में तुम लोगों को लूटते देखोगे उसी आदमी को, उसी आदमी को रात तुम वेश्याघर में शराब पीते पाओगे। तुम बड़े हैरान होओगे कि बात क्या है! यह आदमी वही है?
तुम सोचोगे, इसकी प्रार्थना झूठी है। जरूरी नहीं। प्रार्थना सही रही हो। तुम सोचोगे, यह दुकान पर जो तिलक-चंदन लगाकर बैठता है, वह सब बकवास है। जब इसने तिलक-चंदन लगाया था, तब तिलक-चंदन का भाव रहा हो; झूठ मत समझना। तिलक-चंदन हटा नहीं, क्योंकि तिलक-चंदन तो चमड़ी पर लगा है। भीतर के तमस, रजस, सत्व का रूपांतरण हो गया।

तो दुकान पर यह आदमी बैठकर हरि बोल, हरि बोल भी करता रहता है और जेब भी काटता रहता है। जरूरी नहीं कि इसका हरि बोल सदा ही झूठ होता हो; कभी-कभी किन्हीं क्षणों में बिल्कुल सच होता है। और यही आदमी रात वेश्याघर चला जाता है।
तुम भरोसा नहीं कर पाते, क्योंकि तुम्हें पता नहीं है, आदमी एक नहीं है, तीन है। हर आदमी के भीतर कम से कम तीन आदमी हैं। तेरह होंगे, वह दूसरी बात है। मगर तीन तो हैं ही। कहावत है, जब कोई आदमी बिल्कुल भ्रष्ट हो जाता है, तो लोग कहते हैं, तीन तेरह हो गए। तीन तो हैं ही, लेकिन अब तेरह हो गए; अब मामला ही खराब हो गया, अब सब खंड-खंड हो गया।
ठीक से अगर तुम अपने जीवन का निरीक्षण करो, तो तुम बहुत-सी बातें समझ पाओगे। प्रत्येक समझपूर्वक जीने वाले आदमी को अपने जीवन की निरंतर निरीक्षणा करते रहनी चाहिए और देखना चाहिए, किन क्षणों में शुभ प्रगाढ़ होता है। उन क्षणों का शुभ के लिए उपयोग करो। और उन क्षणों को जितना बढ़ा सको, बढ़ाओ। तुम्हारी भोर जितनी बड़ी हो जाए, उतना अच्छा। तुम्हारी संध्या जितनी लंबी हो जाए, उतना अच्छा। और जो तुमने शुभ क्षण में पाया है, उसकी सुवास को दूसरे क्षणों में भी खींचने की कोशिश करो। तो ही रूपांतरण होगा; नहीं तो रूपांतरण न होगा।
फिर दिन के चौबीस घंटे में ही यह बदलाहट होती है, ऐसा नहीं; जीवन की हर घड़ी में! बच्चे में सत्व का अनुपात ज्यादा होता है, क्योंकि वह जीवन की भोर है। जवान में रज का अनुपात ज्यादा होता है, क्योंकि वह जीवन की आपा-धापी, बाजार है। बूढ़े में रजस और सत्व दोनों क्षीण हो जाते हैं, तमस बढ़ जाता है; क्योंकि वह मौत का आगमन है। मौत यानी पूर्ण तमस में गिर जाना।
अब यह बड़े मजे की बात है, लेकिन सभी बूढ़े दूसरों को शिक्षा देते हैं।
वे बच्चों को भी चलाने की कोशिश करते हैं। होना उलटा चाहिए कि बूढ़े बच्चों के पीछे चलें। सांझ भोर का पीछा करे। इसलिए तो दुनिया उलटी है। यहां नाव नदी पर नहीं है; यहां नदी नाव पर है। बूढ़े बच्चों को चला रहे हैं; गलत हो रहा है। सांझ सुबह को चलाए, गलत हो जाएगा। बूढ़ों को बच्चों का अनुसरण करना चाहिए, क्योंकि बच्चे निर्दोष हैं।
जीसस ने कहा है, जो बच्चों की तरह भोले-भाले होंगे, वे ही मेरे प्रभु
के राज्य में प्रवेश कर सकेंगे।
बूढ़ा आदमी तो चालाक हो जाता है। हो ही जाएगा, जीवनभर का अनुभव, जीवनभर
की दांव-पेंच, कलाएं, राजनीति, चालबाजियां--धोखे जो दिए, धोखे जो खाए--सब का अनुभव। बूढ़ा आदमी निर्दोष हो, बड़ा मुश्किल है; हो जाए, तो संत।
बच्चा निर्दोष होता है, लेकिन संत नहीं। सभी बच्चे निर्दोष होते हैं,
वह स्वाभाविक है। वह कोई गुण नहीं है। क्योंकि बच्चों का संतत्व सब खो जाएगा। चौदह वर्ष के होंगे, कामवासना जगेगी, रजस पैदा होगा। सब भूल जाएंगे, सब निर्दोषता बच्चों की खो जाएगी।
तुमने कभी सोचा, सभी बच्चे जब पैदा होते हैं, तो सुंदर मालूम होते हैं। कोई बच्चा कुरूप नहीं होता। और सभी लोग बड़े होते-होते कुरूप हो जाते हैं। शायद ही कोई आदमी सुंदर बचता है। क्या मामला है?
बच्चे सत्व को उपलब्ध होते हैं। अभी आ रहे हैं सीधे परमात्मा के घर से। अभी वह सुवास उनके शरीर को घेरे है। अभी-अभी पैदा हुए, भोर का क्षण है, ब्रह्ममुहूर्त। बच्चे यानी ब्रह्ममुहूर्त। अभी प्रार्थना गूंज रही है; अभी मंदिर की घंटियां बज रही हैं; अभी तिलक ताजा है; अभी हाथों में लगे चंदन में गंध है; अभी-अभी आते हैं मूल स्रोत से, उत्स से। खो जाएंगे कल। अगर दुनिया कभी समझदार होगी, तो बूढ़े बच्चों का अनुसरण करेंगे, उनसे सीखेंगे। उनका बालपन संतत्व की कीमिया है। और जब कोई बूढ़ा आदमी बच्चे जैसा हो जाता है, तो इस जगत में अनूठी घटना घटती है। जब कोई बूढ़ा आदमी बच्चे जैसा हो जाता है, तो इस जगत में अपूर्व सौंदर्य घटता है।
ऐसे बूढ़े आदमी के सौंदर्य की तुम कोई तुलना नहीं कर सकते; कोई जवान आदमी इतना सुंदर नहीं हो सकता। क्योंकि जवानी में बड़ा तनाव है, बेचैनी है, दौड़ है, उपद्रव है, आपा-धापी है। कैसे कोई जवान इतना सुंदर हो सकता है? तूफान है, आंधी है। बुढ़ापे में सब शांत हो गया। आंधी जा चुकी; तूफान विदा

हो गया। तूफान के पीछे के क्षण हैं, जब सब शांत हो जाता है और एक सन्नाटा घेर लेता है।
अगर बूढ़े आदमी ने बचपन को फिर से पुनरुज्जीवित कर लिया, तो वह संत हो जाता है। नहीं तो वह महान तामसी हो जाता है। इसलिए बूढ़े आदमी बहुत तामसी हो जाते हैं। उनका जीवन करीब-करीब मुरदे जैसा हो जाता है। चिड़चिड़े, नाराज, हर चीज उनके लिए की जाए, कुछ करने को तैयार नहीं! हर चीज की अपेक्षा और हर चीज से शिकायत। कोई चीज तृप्त नहीं करती। सारा जगत असार मालूम पड़ता है; व्यर्थ मालूम पड़ता है। और आकांक्षा मरती नहीं, महत्वाकांक्षा जगी रहती है। मांग कायम रहती है। करना कुछ नहीं है, मांग भारी है।
तो जीवन में भी घड़ियां बदलती हैं, जब अनुपात बदल जाता है। और जीवन का
ही सवाल नहीं है। अनुपात रोज भी बदल जाता है। परिस्थिति भी अनुपात को बदल देती है।
तुम दोपहर बड़ी दौड़ में थे। अचानक एक शुभ-संवाद किसी ने दे दिया, तत्क्षण भीतर की मात्रा में भेद हो जाता है। किसी ने शुभ-संवाद दे दिया, तुम्हारी दौड़ ठिठक गई; किसी ने खुशी की एक खबर दे दी, तुम प्रसन्न हो गए, तुम्हारे भीतर की मात्रा बदल गई। तुम भोर में बड़े सात्विक थे और किसी ने खबर दी कि कोई मर गया; उदासी छा गई, तमस ने घेर लिया।
तो प्रति क्षण परिस्थिति भी बदलती है। लेकिन ये सारी बातें तुम्हें अपने भीतर ठीक से स्वाध्याय करनी चाहिए, ताकि तुम इनका ठीक-ठीक उपयोग कर सको। और जो व्यक्ति अपने अनुपात को न तो परिस्थिति से प्रभावित होने देता है, न समय की धारा से प्रभावित होने देता है, न जीवन की अवस्थाओं से प्रभावित होने देता है, वही व्यक्ति साधक है।
इसलिए साधना बड़ी कठिन मालूम पड़ती है। जो भरी दोपहरी में ऐसा होता है, जैसे ब्रह्ममुहूर्त में कोई हो; जो बुढ़ापे में ऐसा होता है, जैसे बचपन में कोई हो; तब साधना का सूत्र शुरू होता है।
पहले ठीक से निरीक्षण करो। फिर निरीक्षण को ठीक से सोचकर अपने जीवन
की गति को बदलो। और गति बदलनी है इस भांति कि अति न हो जाए। तीनों की मात्रा समान हो जाए।
एक तिहाई हो तमस, वह जरूरी है। इसलिए चौबीस घंटे में आठ घंटे सोना जरूरी है; वह एक तिहाई तमस है। उससे कम सोओगे, नुकसान होगा; उससे ज्यादा सोओगे, नुकसान होगा। आठ घंटा सोना जरूरी है। आठ घंटा जीवन की दौड़-धूप जरूरी है। रजस, भागो-दौड़ो; महत्वाकांक्षा का विस्तार है। उसको भी अनुभव करो। क्योंकि गैर अनुभव के गुजर गए, तो पकोगे नहीं, पार न होओगे, अतिक्रमण न होगा। आठ घंटा व्यापार, व्यवसाय, दौड़-धूप। आठ घंटा सत्व--प्रार्थना, पूजा, ध्यान। ऐसा एक तिहाई, एक तिहाई जीवन को बांट दो।
अगर तुम्हारा सारा समय एक तिहाई, एक तिहाई की मात्रा में बंट जाए, तुम धीरे-धीरे पाओगे, यह अनुपात थिर हो जाता है। तब न तो रात में यह बदलता, न दिन में बदलता; न जवानी में, न बुढ़ापे में। यह अनुपात धीरे-धीरे, धीरे-धीरे थिर हो जाता है। इस थिरता का नाम ही सत्व की उपलब्धि है। क्योंकि जब तीनों समान होते हैं, तब तुम्हारे भीतर एक संगीत बजने लगता है अनजाना, जिसे तुमने पहले कभी नहीं सुना।
इसलिए मैं कहता हूं, हिमालय मत भागना, क्योंकि वह कोशिश है चौबीस घंटे सत्व में जीने की। वह भी अतिशय है। इसलिए मैं संन्यासी को भी कहता हूं, घर में रहना। आठ घंटा संन्यासी, आठ घंटा दुकानदार। आठ घंटा निद्रा में पड़े हैं, न संन्यासी, न दुकानदार। विश्राम भी तो चाहिए, संन्यास से भी, दुकान से भी!
चौबीस घंटे संन्यासी बनने की कोशिश में भारत ने बहुत गंवाया। कि न तो
वे संन्यासी संन्यासी हो पाए, क्योंकि वे हो नहीं सकते। उन्होंने कोशिश की कि तिपाई के दो पैर तोड़ दें और एक ही पैर पर खड़े हो जाएं; लंगड़ा गए। तो भारत का संन्यास बुरी तरह लंगड़ा गया और बुरी तरह धूल-धूसरित होकर गिरा। गरिमा पैदा नहीं हुई। संन्यासी संतुलित न रहा।
और तुम तोड़ नहीं सकते दूसरे दो पैर, क्योंकि जिंदा रहने के लिए जरूरी हैं। पीछे के द्वार से वे प्रवेश कर गए। तो संन्यासी बाहर से दिखाएगा, उसकी कोई धन में उत्सुकता नहीं है, और भीतर से धन जोड़ेगा। बाहर से दिखाएगा,

उसकी कोई महत्वाकांक्षा नहीं है, लेकिन विस्तार में मन लगा रहेगा। बाहर से दिखाएगा कि मेरे जीवन में कोई तमस नहीं है, लेकिन भीतर भयंकर तमस घिरा रहेगा।
भाग नहीं सकते, जीवन के नियम के विपरीत नहीं चल सकते। जीवन के नियम का उपयोग करो। समझदार वह है, जो जीवन के नियम का उपयोग करके जीवन के पार उठ जाता है। नासमझ वह है, जो जीवन के नियम को तोड़ने की कोशिश करके बाहर होना चाहता है। वह और उलझ जाता है।
संन्यास एक कला है संतुलन की।
हे भारत, सभी मनुष्यों की श्रद्धा उनके अंतःकरण के अनुरूप होती है।
यह पुरुष श्रद्धामय है, इसलिए जो पुरुष जैसी श्रद्धा वाला है, वह स्वयं भी वही है।
तुम्हारी श्रद्धा ही तुम हो। अगर तुम्हारी श्रद्धा आलस्य की है, तो तुम्हारा जीवन आलस्य की कहानी होगा। अगर तुम्हारी श्रद्धा रजस की है, महत्वाकांक्षा की है, दौड़ की है, तुम्हारा जीवन एक दौड़-भाग होगा। अगर तुम्हारी श्रद्धा सत्व की है, शांति की है, शून्य की है, शुभ की है, तो तुम्हारे जीवन में एक सुवास होगी, जो स्वर्ग की है, जो इस पृथ्वी की नहीं है। तुम्हारी श्रद्धा ही तुम हो।
अपनी श्रद्धा को ठीक से पहचान लो, क्योंकि न पहचानने से बड़ी जटिलता बढ़ती है। आदमी तो होता है आलसी, अंतःकरण आलसी। और आकांक्षा करता है उन सुखों को पाने की, जो राजसी को मिलते हैं। तुम मुश्किल में पड़ोगे। तुम्हारी श्रद्धा तुम हो। आदमी तो होता है राजसी, दौड़-धूप में पड़ा। और चाहता है, वह शांति मिल जाए, जो सात्विक को मिलती है। यह हो नहीं सकता। मेरे पास, एक राजनीतिज्ञ हैं, वे कभी-कभी आते हैं। वे कहते हैं, शांति चाहिए। तुम्हें शांति मिल नहीं सकती। इसमें किसी का कसूर नहीं है। राजनीति की दौड़-धूप, तुम शांत हो कैसे सकते हो! और तुम अगर शांत हो गए, तो जिस दौड़-धूप में तुम लगे हो कि किस तरह मंत्री, किस तरह मुख्यमंत्री, किस तरह यह हो जाएं, वह हो जाएं--यह फिर कौन करेगा? तुम अगर शांत हो गए, तो यह भी शांत हो जाएगी।
तो मैंने उनसे कहा, तुम दो में चुन लो। मैं तुम्हें शांत कर सकता हूं, लेकिन तब राजनीति जाएगी; यह दौड़-धूप न रह जाएगी; यह पागलपन न रह जाएगा। और अगर तुम्हें यह पागलपन पूरा करना है, तो शांति की बात मत करो। मेरे पास आओ ही मत। तो उन्होंने कहा, ऐसा करता हूं, एक दो साल का समय दें। दो साल और कोशिश कर लूं।
मंत्री वे हो गए हैं एक राज्य में, अब मुख्यमंत्री होने की चेष्टा है।
एक दो साल! फिर तो शांत होना ही है!
यह आदमी शायद ही शांत हो पाए, क्योंकि दो साल में कुछ पक्का है कि मुख्यमंत्री हो जाओ? और मुख्यमंत्री होकर केंद्रीय मंत्रिमंडल में जाने की आकांक्षा न उठे, इसका कुछ पक्का है? दौड़ के लिए तो सदा दौड़ कायम रहती है। और की आकांक्षा तो सदा और की बनी रहती है।
वे कभी नहीं आएंगे। क्योंकि जिसे आना है, वह अभी आता है। जिसको समझ आ गई, वह अभी आता है। जो कहता है, कल आएंगे, उसको समझ नहीं है, तभी तो कल के लिए टाल रहा है। कल का किसको भरोसा है? और जो आज कल के लिए टाल रहा है, वह कल भी कल के लिए टालेगा। उसकी कल पर टालने की आदत हो जाएगी।
अपनी श्रद्धा को ठीक से पहचानो और अपनी श्रद्धा से भिन्न मत मांगो। अगर भिन्न मांगना है, तो अपनी श्रद्धा को रूपांतरित करो। अन्यथा तुम बड़ी बिगूचन में पड़ जाओगे; भीतर बड़ा बेबूझ हो जाएगा; एक पहेली हो जाओगे।
सभी लोग पहेली हो गए हैं। लोग ऐसा सुख चाहते हैं, जो राजसी को मिलता है; और ऐसी शांति चाहते हैं, जो सात्विक को मिलती है; और ऐसा विश्राम चाहते हैं, जिसको आलसी भोगता है। बड़ी मुश्किल है; वे सभी एक साथ चाहते हैं। कुछ भी उपलब्ध नहीं होता।
भीतर को ठीक से पहचानो, क्योंकि तुम्हारी श्रद्धा ही तुम्हारा जीवन है।
जो पुरुष जैसी श्रद्धा वाला है, वह स्वयं भी वही है। और अगर तुमने ठीक
से भीतर को पहचाना, तो तुम जल्दी ही यह समझ जाओगे कि तृप्ति किसी एक से

नहीं हो सकती। उन तीनों का संयोग चाहिए। और तीनों के संयोग में ही तृप्ति फलती है, परितोष झरता है। और तीनों के संयोग से ही एक की प्रतीति शुरू होती है। और तीनों का संयोग धीरे-धीरे-धीरे तुम्हें उस एक की तरफ ले जाता है, जो गुणातीत है।
पाना तो उसे ही है, जो त्रिगुण के बाहर है। उस एक की ही खोज करनी है। तीनों पैरों को तुम एक ही अनुपात का बना लो, एक ही बल का, और तुम पाओगे कि तिपाई सध गई। तिपाई सध गई, कि सब सध गया। अब तुम तिपाई पर पैर रख सकते हो और एक की तरफ यात्रा शुरू हो सकती है।
जो सात्विक हैं, वे देवों को पूजते हैं... ।
ये प्रतीक हैं। इन्हें भी ख्याल में ले लो। जो सात्विक है, उसके मन की पूजा सत्व की तरफ होती है, स्वभावतः। क्योंकि तुम जो हो, और तुम जो होना चाहते हो, उसी का तुम्हारे मन में आदर होता है।
अगर तुम राजनेता आता है और उसके स्वागत के लिए स्टेशन पर पहुंच जाते हो, तो भला तुम राजनीति में न हो, लेकिन उसके स्वागत की खबर बताती है कि तुम राजसी हो। मौका न मिला होगा तुम्हें उपद्रव में पड़ने का, जिंदगी में उलझन होगी; पत्नी है, बच्चे हैं, काम-धंधा है और तुम नहीं पड़ पाते; लेकिन दर्शन करने तुम राजनीतिज्ञ का पहुंच जाते हो। तुम्हारी श्रद्धा! कि फिल्म अभिनेता आया है, उसके पास भीड़ लगा लेते हो--तुम्हारी श्रद्धा। कि संन्यासी आया, और तुम उसके दर्शन को पहुंच जाते हो--तुम्हारी श्रद्धा। तुम्हारी श्रद्धा ही तुम्हें संचारित करती है।
सात्विक पुरुष देवों को पूजते हैं, दिव्यता को पूजते हैं।
दिव्यता का अर्थ है, जिनके जीवन में संगीत बजने लगा तीनों की एकता का। अभी वे एक को उपलब्ध नहीं हुए हैं; अभी यात्रा बाकी है; लेकिन बड़ा पड़ाव आ गया, तिपाई सध गई। उनके जीवन में स्वर्ग का संगीत बजने लगा। बाकी तो प्रतीक हैं कि स्वर्ग में देवता रहते हैं। ऐसा स्वर्ग कहीं नहीं है। यहीं जमीन पर तुम्हारे आस-पास रहते हैं। लेकिन तुम्हारी सत्व की श्रद्धा होगी, तो दिखाई पड़ेंगे। सत्व की श्रद्धा न होगी, तो दिखाई न पड़ेंगे। क्योंकि श्रद्धा आंख है।
तुम्हारे पास ही, हो सकता है कि तुम्हारे पड़ोस में कोई रहता हो; हो सकता है, तुम्हारे घर में रहता हो; हो सकता है, तुम्हारी पत्नी में हो; हो सकता है, तुम्हारे पति में हो। लेकिन सत्व की आंख होगी, तो दिखाई पड़ेगा। नहीं होगी, तो नहीं दिखाई पड़ेगा। अगर पति सात्विक हो जाए और पत्नी की आंख सत्व की न हो, तो उसे कुछ और दिखाई पड़ेगा।
मेरे पास कई स्त्रियां शिकायत लेकर आती हैं कि आप बरबाद मत करो, हमारे पति को मत उलझाओ इस ध्यान में। अभी तो बाल-बच्चे बड़े हो रहे हैं। और अभी तो काम-धंधा शुरू ही हुआ है। और अगर वे ध्यान में उलझ गए, तो क्या होगा?
पति में अगर सत्व पैदा हो रहा है, तो पत्नी को दिखाई नहीं पड़ता। क्योंकि उसकी श्रद्धा अभी रजस की है; वह कहती है, अभी थोड़े और गहने चाहिए। वह पति के ध्यान की कुर्बानी के लिए राजी है, अपने और थोड़े गहनों की कुर्बानी के लिए राजी नहीं है। वह कहती है, अभी तो मकान बहुत छोटा है; थोड़ा मकान तो बड़ा हो जाने दो। अभी बैंक में बैलेंस है ही क्या! बुढ़ापे में क्या होगा? अगर कल पति को कुछ हो जाए, तो हम क्या करेंगे?
न तो पति की आत्मा से कोई मतलब है, न पति के जीवन से कोई मतलब है। अगर पति को कुछ हो जाए, इसकी चिंता है। तो बैंक में बैलेंस होना चाहिए, चाहे पति रहे, चाहे जाए। श्रद्धा रजस की है।
तो पति ध्यान करने बैठे, तो पत्नियां बाधा डालती हैं। अगर पत्नी में श्रद्धा पैदा हो जाए सत्व की, तो पति बेचैन हो जाता है। पति मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, यह आपने क्या कर दिया! एक उपद्रव खड़ा कर दिया। अब पत्नी को ज्यादा रस नहीं है कामवासना में। वह ध्यान में लगी रहती है! हम कहां जाएं? हमारी कामवासना तो मर नहीं गई! तो कृपा करें। अभी तो मैं जवान हूं, वे कहते हैं। ये तो बुढ़ापे की बातें हैं। पचास साल के बाद आप इसको सिखाते ध्यान, तो ठीक था।

जो श्रद्धा होती है, वह दिखाई पड़ता है। ध्यान जैसी घटना घट रही हो, उसमें भी सौभाग्य नहीं मालूम पड़ता। पत्नी शांत हो रही है, इसमें भी पीड़ा लगती है।
तुम चकित होओगे, लोगों ने मुझसे आकर कहा है, पत्नियों ने कहा है कि पति
अब क्रोध नहीं करते, इससे हमें हैरानी होती है। वे पहले क्रोध करते थे, तो ठीक था। अब ऐसा लगता है कि उन्हें उपेक्षा हो गई है। अक्रोध में उपेक्षा दिखती है। अक्रोध में एक घटना नहीं दिखती कि इस आदमी के जीवन में एक फूल खिला है, हम आनंदित हों। अक्रोध में दिखता है कि इस आदमी को अब रस नहीं रहा; इसलिए हम गाली भी दें, तो यह सुन लेता है। क्योंकि इसको कोई मतलब ही नहीं है। उपेक्षा से भर गया है यह आदमी।
और ध्यान रखना, लोग उपेक्षा पसंद नहीं करते; चाहे गाली दो, वे उसके लिए
भी राजी हैं; कम से कम इतना रस तो रखते हो कि गाली देते हो। उपेक्षा बहुत काटती है। तटस्थ हो गए! उदासीन हो गए! पत्नी घबड़ाती है कि यह तो हाथ के बाहर चला आदमी। ऐसे उदास होते-होते एक दिन घर से भाग जाएगा; फिर हम क्या करेंगे? वह चाहती है कि पति नाराज हो, लड़े, मारे-पीटे, तो भी चलेगा, ध्यान न करे।
सत्व की श्रद्धा हो, तो ही सत्व दिखाई पड़ता है।
देवता का अर्थ है, जिनके जीवन में संतुलन आ गया; जिनके जीवन में सत्व
ने ऐसी संतुलन की सुगंध दे दी कि जो अब करीब-करीब मुक्ति के किनारे खड़े हैं। स्वर्ग वह सीमा है, जहां से आदमी मोक्ष में छलांग मार ले। थोड़े अटके हैं; अटकाव यह है कि उनको अभी संगीत से ही रस पैदा हो गया है; इसको भी छोड़ने की हिम्मत करनी पड़ेगी। यह सोने की जंजीर है; बड़ी प्यारी लगती है।
इसलिए हम देवताओं को मुक्त पुरुष नहीं कहते। और जब कोई बुद्ध पुरुष पैदा होते हैं, तो हमारे पास कथाएं हैं कि देवता उन्हें सुनने आते हैं कि हमें मुक्ति का मार्ग दें। उनको आना पड़ेगा, क्योंकि अब वे सत्व के सुख से बंध गए हैं। स्वर्ग भी बंधन है। बड़ा प्यारा बंधन है, बड़ी मिठास है उसमें, लेकिन है कांटा। कितनी ही मीठी पीड़ा देता हो, उसे भी निकाल देना होगा। जिनकी सत्व की श्रद्धा है, वे देवों को पूजते हैं। वे जहां भी दिव्यता
को पाएंगे, वहां उनका सिर झुक जाएगा।
जिनकी राजस श्रद्धा है, वे यक्ष और राक्षसों को पूजते हैं... ।
राक्षस का अर्थ है, जिसके जीवन में रजस प्रगाढ़ हो गया। सत्व और तम दोनों दब गए, बस रजस प्रगाढ़ हो गया।
बड़े राजनेता यानी राक्षस। तुम उस तरह सोचते नहीं अब, क्योंकि तुम इन प्रतीकों का अर्थ भूल गए। तुम सोचते हो, रावण राक्षस था। किसलिए? सफल से सफल राजनीतिज्ञ था! स्वर्ण की लंका बसा दी थी। और क्या चाहिए सफल राजनीतिज्ञ के लिए? तुम्हारे सफल राजनीतिज्ञ मिट्टी के घर भी तो नहीं बसा पाते हैं लोगों के लिए; भूखा मरता है समाज। लेकिन लंका में स्वर्ण का बसा दिया था नगर। और कैसा सफल राजनीतिज्ञ चाहिए?
रावण सफल से सफल राजनीतिज्ञ था; कुशल से कुशल कूटनीतिज्ञ था; प्रगाढ़ शक्तिशाली था। दौड़ उसकी महान थी। कथा तो यह है कि अगर उसे न हटाया गया होता स्वयंवर से, तो उसने सीता को जीत लिया होता; राम खाली हाथ घर वापस लौटे होते। उसे हटाया गया। डर था। क्योंकि वह इतना कुशल राजनीतिज्ञ था और इतना शक्तिशाली था कि एक सिर नहीं था उसके; उसके दस सिर थे। सभी राजनीतिज्ञों के होते हैं। एक चेहरा नहीं, दस!
सभी राजनीतिज्ञ दशानन हैं। उनका कुछ पक्का नहीं है कि वे कौन-सा चेहरा तुम्हें दिखा रहे हैं। जब जैसी जरूरत हो, वे वैसा चेहरा दिखाते हैं। जब वोट मांगनी हो, तो मुस्कुराते हैं--एक चेहरा। जब वोट मिल गई, तब वे ऐसा देखते हैं, जैसे तुम्हें पहचानते ही नहीं--दूसरा चेहरा। जब वे ताकत में हैं, तब एक चेहरा; जब वे ताकत में नहीं, तब उनके कैसे हाथ जुड़े हैं और सिर झुका है, कि आपके चरणों के सेवक हैं। दशानन! उनके दस चेहरे हैं। और एक काटो, तत्क्षण दूसरा पैदा हो जाता है। इसलिए राजनीतिज्ञ को मारना मुश्किल है। स्वयंवर भरा था, तो कथा यह है कि यह देखकर देवताओं ने कि रावण बाजी मार
ले सकता है... । कई कारण थे; एक तो वह शिव का भक्त था।

तुम राजनीतिज्ञों को सदा पाओगे किसी न किसी का भक्त। कोई जा रहा है सत्य साईंबाबा। कोई नहीं तो दिल्ली में बहुत ज्योतिषी बैठे हैं, उनकी ही भक्ति में लगा है। हनुमान चालीसा पढ़ रहा है, इलेक्शन जीतना है!
इस रावण ने अपने सिर चढ़ा-चढ़ाकर, कहते हैं, शिव को भी राजी कर लिया था। शिव का भक्त था और वह धनुष भी शिव का था। यह तोड़ देता; और यह आदमी बलशाली था।
तो कथा यह है कि देवताओं ने यह देखकर कि यह तो खतरा हो जाएगा। और राम
तो विनम्र व्यक्ति हैं, वे आगे आकर खड़े भी न होंगे; यह रावण तो उछलकर खड़ा हो जाएगा और धनुष तोड़ देगा। राम को शायद मौका ही न मिले; शायद कोई पूछे ही न कि राम भी आए थे। और राम तो पीछे खड़े रहेंगे। राम के होने का अर्थ ही है कि जो पीछे खड़ा रहे; जिसको आगे आने की दौड़ न हो; जो महत्वाकांक्षी न हो।
लक्ष्मण भी ज्यादा महत्वाकांक्षी था राम से। वह दो-चार दफा उठ आया बीच-बीच में। और उसने कहा कि भाई, अगर मुझे आज्ञा दें, तो अभी इस धनुष-बाण को तोड़ दूं। उसको रोकना पड़ा, कि तू बैठ; तू थोड़ा तो ठहर। वह भी तोड़ने को बहुत तत्पर था। वह भी महत्वाकांक्षी था; वह भी राजनीतिज्ञ था।
रावण को हटाया। देवताओं ने जोर से शोरगुल किया आकर स्वयंवर के आस-पास,
कि रावण तू यहां क्या कर रहा है? लंका में आग लग गई है! और जब लंका में आग लगी हो... ।
यह भी बड़ा सोचने जैसा है। राजनीतिज्ञ प्रेम की कुर्बानी दे सकता है; राजधानी में आग लगी हो, इसकी कुर्बानी नहीं दे सकता। भागा लंका की तरफ; भूल गया सीता और सब और यह प्रेम और यह सब उपद्रव। क्योंकि राजनीतिज्ञ प्रेम की कुर्बानी दे सकता है, पद की कुर्बानी नहीं दे सकता। इसलिए तुम राजनीतिज्ञों को हमेशा पाओगे कि अगर उनको पत्नी का त्याग करना पड़े, वे तैयार हैं। अगर विवाह न कर पाएं, तो तैयार। लेकिन उनका स्वयंवर पद से है। अन्यथा रावण ने कहा होता, हो जाए; जल जाए लंका। अगर सच में ही प्रेम होता सीता के प्रति। लेकिन हृदय होता ही नहीं राजनीतिज्ञ के पास, प्रेम कहां से होगा! वह तो जीतने आया था। इसको भी एक जीत बनाने आया था। इसको भी, अपने जीत के जो हजार चांद थे, उसमें एक चांद और जोड़ देना था, कि सीता को भी जीत लाया। जैसे लोग ट्राफी जीत लाते हैं। सीता एक ट्राफी थी, जिसको वह बैंड-बाजे बजाकर लंका में ले जाता और कहता कि देखो, इसको भी जीत लाया। रानियां उसके पास और भी बहुत थीं। कुछ रानियों की कमी न थी। कोई सीता से सुंदर कम थीं, ऐसा भी न था। भरा-पूरा रनिवास था। कोई सीता से लेना-देना न था। अन्यथा वह कहता कि ठीक।
भाग गया। वह देवताओं की साजिश थी; सत्व का शड्यंत्र था कि इस राजसी व्यक्ति को हटा लिया जाए। सीता राम के योग्य थी, राम के लिए थी। सत्व का सत्व से मिलन हो सके, इसलिए देवताओं ने व्यवस्था की।
यह रावण राक्षस है। इससे तुम यह मत समझना कि राक्षस कोई जाति है मनुष्यों की। राक्षस गुण है; वह राजनीतिज्ञ का नाम है; पद-लोलुप का नाम है। राजस पुरुष यक्ष और राक्षसों को पूजते हैं... ।
वे उनको पूजते हैं, जिनके पास शक्ति है, या जिनके पास पद है, या जिनके पास धन है। कुबेर यक्ष है। कुबेर का अर्थ है, जिसके पास सब से बड़ा धन है सारे जगत में। जो खजांची है स्वर्ग के देवताओं का, ट्रेजरर, कुबेर, वह यक्ष है। तो या तो धन की पूजा है या पद की पूजा है। लेकिन दोनों ही पूजा के पीछे शक्ति की पूजा है।
अगर ऐसा व्यक्ति देवी-देवताओं की भी पूजा करता है, तो भी शक्ति के लिए
ही करता है। वह मांगता है, और दो शक्ति! ऐसी शक्ति दो कि सब को पराजित कर दूं! मैं पराजित न हो पाऊं, अपराजेय हो जाऊं! राजस शक्ति की मांग करता है। और अन्य जो तामस पुरुष हैं, वे प्रेत और भूतगणों को पूजते हैं।
फिर तीसरा वर्ग है तमस से भरे लोगों का। उनकी आकांक्षा इतनी ही है कि उनका आलस्य अखंडित रहे। कोई उन्हें जगाए न; उनकी आकांक्षाएं कोई और पूरा कर दे; वे पड़े रहें। वे अपनी मूर्च्छा में सोए रहें, वे शराब पीए रहें, वे नींद में डूबे रहें, वे प्रमाद में रहें; कोई और पूरा कर दे उनकी जरूरतों को। तो भूत और प्रेत।

भूत-प्रेत से अर्थ है, ऐसे लोग जो खुद भी तमस-प्रधान हैं, ऐसी आत्माएं
जो खुद भी तमस-प्रधान हैं। वे इनकी पूर्ति करती रहती हैं। इस तरह के लोग हैं। तुम्हें वेश्या के घर ले जाने वाला एक एजेंट भी होता है, वह भूत-प्रेत है। तुम्हें धन की ओर लगाने वाला, जुआ खिलाने वाला भी होता है। तुम्हें लाटरी में दांव लगाने की उत्सुकता पैदा करवाने वाला, टिकट बेचने वाला भी होता है। वे तुम्हारे आलस्य को बढ़ाते हैं। वे कहते हैं, हम कर देंगे; तुम मजे से सोए रहो, तुम जरा-सा इतना सहारा दे दो, सब ठीक हो जाएगा।
ठीक वैसी ही व्यवस्था आत्माओं की भी है। जैसे ही शरीर छोड़ती हैं आत्माएं... । तीन तरह की आत्माएं हैं, क्योंकि तीन तरह के गुण हैं। प्रेत को तुम राजी कर सकते हो।
तुममें से बहुत-से प्रेत को ही राजी करने को उत्सुक हैं। कोई तुम्हें ताबीज दे दे, जिससे बीमारी ठीक हो जाए; कोई तुम्हें भभूत दे दे, जिससे खजाना मिल जाए। तुम्हारी आकांक्षा ऐसी है, तुम्हें कुछ न करना पड़े, तुम ऐसे आलस्य में पड़े रहो, खजाने तुम्हारी तरफ आते जाएं। प्रेत उत्सुक कर लेते हैं ऐसे लोगों को। वे जीवित भी हैं, शरीर में भी हैं, और शरीर के बाहर भी हैं।
तुम्हारी श्रद्धा तुम्हें ले जाती है। तुम जाते हो साधु-संतों के पास, लेकिन हो सकता है, तुम साधु-संतों के पास जा ही न रहे हो। तुम्हारी श्रद्धा पर निर्भर है। हो सकता है, तुम साधु के पास जा रहे हो कि उसके पास जाने से धन की वर्षा हो जाएगी।
एक आदमी, मैं दिल्ली से बंबई आ रहा था, हवाई जहाज पर मुझे मिल गए। मेरे पास ही बैठे थे। उन्होंने कहा कि बड़ी कृपा हो गई, यह मौका मिल गया, संयोग। बस, आपका आशीर्वाद चाहिए। मैंने कहा कि ठीक; इसमें भी क्या कोई नहीं करता है, आशीर्वाद देने में।
पंद्रह दिन बाद वे जबलपुर पहुंचे मुझसे मिलने। पैर पर गिर पड़े; और कहने लगे, गजब हो गया आपके आशीर्वाद से। मैंने कहा, क्या हुआ? मुझको मत फंसाना। वह आशीर्वाद मैंने तुम्हें दिया, यह भी पक्का नहीं है। सिर्फ न कहना भद्दा लगेगा, इसलिए मैं चुप रहा। हुआ क्या?
उसने कहा, अब आप कुछ भी कहो। मैं मुकदमा जीत गया। दस लाख रुपए मुकदमे में जीतने से मिल रहे हैं। और सच बात यह है कि जीतना मुझे था नहीं; नियमानुसार मुझे हारना चाहिए था। वह दावा मेरा गलत था; लेकिन आपकी कृपा! मैंने कहा कि तुम मुझे मत फंसाओ!
अब यह आदमी आशीर्वाद मांग रहा है; एक गलत मुकदमा है, वह जीतने की आकांक्षा है। यह आदमी संत के पास पहुंच ही नहीं सकता। यह जहां भी जाएगा, इसकी श्रद्धा ही इसको खराब करती रहेगी।
लोग मुझसे आशीर्वाद तब से मांगते हैं, तो मैं पूछता हूं, पहले बता दो, तुम्हारा इरादा क्या है? तुम किसी भूत-प्रेत की तलाश में तो नहीं हो? नहीं तो पीछे तुम मुझे फंसाओगे।
क्या है तुम्हारी आकांक्षा? किसलिए आशीर्वाद चाहते हो? तुम क्या मांगते हो, वह तुम्हारे अंतःकरण की श्रद्धा से उपजता है।
कृष्ण कहते हैं, ऐसे तीन तरह के लोग हैं। तुम जरा अपनी खोज करना, तुम किस तरह के हो।
तुम्हें भीड़ दिखाई पड़ेगी साईंबाबा के पास। वह भीड़ उनकी है, जो भूत-प्रेत की तलाश कर रहे हैं। क्योंकि ऐसे ही लोग चमत्कृत हो सकते हैं इस बात से कि हाथ से घड़ी निकल आई। तुम किसी जादूगर को खोज रहे हो, मदारी को खोज रहे हो कि संत को खोज रहे हो? कि हाथ से राख गिर गई और हाथ बिल्कुल खाली था; कि हाथ से शंकरजी की पिंडी निकल आई। तुम पागल हो गए हो! और कितनी ही पिंडी निकल आएं शंकरजी की, क्या होगा?
और कितनी घड़ियां निकालते हैं! और बड़े मजे की बात है, स्विस मेड घड़ियां निकलती हैं। दो ही उपाय हैं। या तो बाजार से खरीदी जाती हैं। नहीं तो स्वर्ग मेड होतीं! स्विस मेड! और या फिर भूत-प्रेत लगा रखे हैं, जो चोरी करके ले आते हैं। दोनों हालत में नाजायज बात है।
सब घड़ियां बाजार से खरीदी जा रही हैं।

साईंबाबा एक घर में बंबई मेहमान होते थे, पारसी घर में। वह महिला मेरे पास आई। और उसने कहा, मेरी आंखें खुल गईं। लेकिन अब मैं दूसरों को समझाती हूं, वे मेरी सुनते नहीं। मेरे ही घर में रुकते थे और मैंने ही दूसरे पारसियों में उनका नाम प्रचारित किया। और जिनमें मैंने नाम प्रचारित किया, वे भी मेरी अब नहीं सुनते हैं।
मैंने पूछा, हुआ क्या? उसने कहा, बड़ी उलझन की बात हो गई। पिछली बार जब
वे जाने लगे, तो एक बैग भूल से छूट गया; उसमें सात सौ घड़ियां थीं। तब मेरी आंख खुली कि घड़ियां कहां से निकलती हैं! अब मैं लोगों को समझाती हूं, तो साईंबाबा ने उन लोगों को कह दिया है कि मेरे विपरीत अशुभ शक्तियां काम कर रही हैं। उन्होंने उसका मन भ्रष्ट कर दिया है। अशुभ शक्तियां, शैतान काम कर रहा है। और उसी शैतान ने वह बैग और घड़ियां घर में रख दीं, ताकि उसकी श्रद्धा उठ जाए। और लोग मानते हैं कि साईंबाबा ठीक कह रहे हैं और यह बुढ़िया गलत कह रही है।
लोगों की श्रद्धा, लोग मानना चाहते हैं, इसलिए मानते हैं। लोग चमत्कार चाहते हैं, क्योंकि उनकी वासना चमत्कार से ही तृप्त हो सकती है। आलसी हैं। घड़ी पानी हो सौ रुपये की, तो कौन-सी मुश्किल है! थोड़ी-सी मेहनत करो और सौ रुपये की घड़ी मिल जाती है। उसके लिए सत्य साईंबाबा के होने की कोई आवश्यकता ही नहीं है। लेकिन आलसी उतनी मेहनत भी नहीं करना चाहता। वह चाहता है, कोई पैदा कर दे घड़ी।
फिर भरोसा भी आता है कि जो घड़ी पैदा करता है, अगर चाहे तो घड़ियाल भी पैदा कर सकता है। जो इतनी सी चीज पैदा कर देता है, वह बड़ी भी चीज पैदा कर सकता है। है तो चमत्कारी, अब कृपा की जरूरत है। तो आज घड़ी पैदा की, कल घड़ियाल पैदा करेगा; आज जरा-सी राख दी, कल देखना अमृत दे देगा। आकांक्षा बढ़ती चली जाती है।
तुम जब तक मांगते हो, तब तक तुम संत के पास न आ सकोगे।
देवों की पूजा वे लोग करते हैं, जो धन्यवाद देने आते हैं; जो अहोभाव प्रकट करने आते हैं; जो कहते हैं, इतना मिला है वैसे ही कि उसका धन्यवाद देने आए हैं। संतों के निकट वे ही लोग पहुंच पाते हैं, जो सिर्फ अहोभाव प्रकट करने आते हैं। नहीं तो तुम राजसी पुरुषों के पास पहुंचोगे या तुम तामसी पुरुषों के पास पहुंचोगे।
कहां तुम जाते हो, ठीक से पहचानना। अगर तुम्हें हिंदुस्तान भर के तामसी इकट्ठे देखने हों, तो सत्य साईंबाबा के पास मिल जाएंगे। अलग-अलग खोजने की जरूरत नहीं है। तुम अकारण कहीं नहीं जाते हो। तुम्हारी श्रद्धा ही तुम्हें कहीं ले जाती है।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग आठ
गीता दर्शन अध्याय 17
तीसरा प्रवचन

सुख नहीं, शांति खोजो

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः।
दम्भाहंकारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः।। 5।।
कर्शयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः।
मां चैवान्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान्।। 6।।
और हे अर्जुन, जो मनुष्य शास्त्र-विधि से रहित केवल मनोकल्पित घोर तप
को तपते हैं तथा दंभ और अहंकार से युक्त एवं कामना, आसक्ति और बल के अभिमान से भी युक्त हैं तथा जो शरीररूप से स्थित भूत-समुदाय को और अंतःकरण में स्थित मुझ अंतर्यामी को भी कृश करने वाले हैं, उन अज्ञानियों को तू आसुरी स्वभाव वाला जान।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः भक्त के सामने साक्षात भगवान हैं, फिर भी विरह कम क्यों नहीं हो रहा है?

जैसे-जैसे भगवान की प्रतीति होती है, विरह बढ़ता है। जैसे-जैसे निकट आते हैं, वैसे-वैसे दूरी खलती है। जितने पास आते हैं, उतनी ही पीड़ा होती है। क्योंकि पास आने पर ही पहली दफा पता चलता है कि अब तक सारा जीवन व्यर्थ ही गंवाया। और पास आने पर ही पता चलता है कि इतनी थोड़ी-सी दूरी भी अब बहुत दूरी है।
जिसे स्वाद लग गया, उसे ही तो पीड़ा होती है। जिसे स्वाद ही न लगा, उसे पीड़ा भी कैसे होगी? तुमने जिसे थोड़ा जान लिया, उसी को तो जानने की प्यास पैदा होती है। जिसे तुमने बिल्कुल नहीं जाना, उसकी खोज भी कैसे पैदा होगी? जब तुम्हें परमात्मा बिल्कुल सामने दिखाई पड़ने लगे, तभी तुम्हारी विरह की अग्नि अपनी प्रगाढ़ता में जलेगी। इसलिए तो भक्त रोते हैं, अभक्त थोड़े ही रोते हैं! अभक्त तो प्रफुल्लित दिखाई पड़ते हैं। संसार में, बाजार में, दुकान पर, तुमने अभक्तों को रोते देखा? वे तो तुम्हें हंसते हुए, मुस्कुराते हुए मिल जाएंगे। उन्हें तो उस पीड़ा का कोई पता ही नहीं, जो परमात्मा के द्वार पर अनुभव होती है।
प्रेमियों को रोते देखा जाता है, अप्रेमियों को नहीं। प्रेम रुलाता है, क्योंकि प्रेम निखारता है। और आंसुओं को दुर्भाग्य मत समझना, वे सौभाग्य के लक्षण हैं। और परमात्मा की पीड़ा जब तुम्हें जलाने लगे, मंथने लगे, मारने लगे, तब समझना कि सौभाग्य की आखिरी घड़ी करीब आ गई। क्योंकि परमात्मा जब तुम्हें मार ही डालेगा तुम्हारे विरह में, तभी तुम्हारे भीतर उसका प्रवेश हो सकेगा। जब तुम अपनी ही विरह की अग्नि में पूरे जलकर भस्मीभूत हो जाओगे, तभी उस भस्म से नए का आविर्भाव होगा। वह फिर तुम्हारे भीतर भी भगवान का रूप है।
भक्त मिटता है, तो भगवान पूरी तरह उपलब्ध होता है। तुम्हारे मिटने में ही संभावना है।
लेकिन स्वभावतः प्रश्न उठता है कि भगवान सामने हो, तो विरह समाप्त हो जाना चाहिए। लेकिन विरह भगवान के सामने होने से समाप्त नहीं होता। जब तुम भगवान को पी ही जाओगे, जब वह सामने न होगा, तुम्हारे भीतर हो जाएगा। जैसे कोई प्यासा नदी के किनारे आ गया। किनारे पर खड़े होने से थोड़े ही प्यास बुझती है, नदी में उतरना पड़ेगा। नदी में उतरने से भी प्यास नहीं बुझती, नदी को अपने भीतर उतारना पड़ेगा।
तो जैसे-जैसे नदी दिखाई पड़ने लगेगी, वैसे-वैसे प्यास प्रगाढ़ होने लगेगी। अब तक तो किसी तरह सम्हाला, अब सम्हाले भी न सम्हलेगी। जैसे-जैसे नदी पास आने लगेगी, वैसे-वैसे तुम्हारा कंठ और भी जोर से आकुल होने लगेगा। पानी को पास देखकर दबी हुई प्यास उभरकर उठ आएगी। पानी को पास देखकर अब तक

किसी तरह मन को समझाया था, अब समझाया न जा सकेगा। अब तक किसी तरह बांध-बूंधकर चल लिए थे; अब सब व्यवस्था टूट जाएगी। अब तो पागल की तरह दौड़ शुरू होगी।
लेकिन ठीक किनारे पर भी आकर तो प्यास नहीं बुझती। नदी में खड़े होकर भी
तो प्यास नहीं बुझती। जब तक कि परमात्मा और तुम एक ही न हो जाओ, कि पानी तुम्हारे खून में न बहने लगे; कंठ में नहीं, तुम्हारे हृदय में न उतर जाए, तब तक प्यास नहीं बुझती।
परमात्मा और तुम्हारे बीच जब तक इंचभर का भी फासला है, तब तक तुम जलोगे। उतना फासला भी अनंत फासला है। और पास आकर ही दूरी पता चलती है। तुम इसे विरोधाभास मत समझना। दूरी जब रहती है, तब तो पता ही नहीं चलती। क्योंकि तुम्हें यही पता नहीं कि कोई परमात्मा है, किसी की खोज करनी है। रोओगे किसके लिए?
रोने के पहले थोड़ा स्वाद लग जाना जरूरी है, थोड़ी भनक पड़ जानी जरूरी है। रोने के पहले उसकी याद आ जानी जरूरी है। लेकिन याद कैसे आएगी अगर उसे बिल्कुल न जाना हो? दूर से ही देखी हो उसकी छबि, लेकिन तुम्हारे सपनों में समा जानी चाहिए। फिर तुम सो न सकोगे; फिर तुम जाग न सकोगे; फिर दिन और रात बेचैनी से भर जाएंगी।
कबीर ने कहा है कि वह परमात्मा का प्यासा निशि-बासर जागे। वह न सो सकता है, न जाग सकता है। उसकी बेचैनी का हिसाब नहीं है। विरह की अग्नि भयंकर हो जाती है। एक ही पुकार उठने लगती है। सारा प्राण एक ही पुकार से भर जाता है। प्यास कंठ में ही नहीं होती, रोएं-रोएं में समा गई होती है। इसलिए भक्तों को ही रोते देखा गया है, परम भक्तों को ही विरह से जार-जार देखा गया है। लेकिन वह सौभाग्य का क्षण है। उन आंसुओं को तुम दुर्भाग्य समझ लोगे, तो भूल हो जाएगी। उन आंसुओं की गलत व्याख्या मत कर लेना, क्योंकि बहुत गलत व्याख्या करके वापस भी लौट जाते हैं। क्योंकि ऐसी नदी से क्या लेना-देना, जिसके पास जाकर प्यास बढ़ती हो। हम तो इसी ख्याल से नदी के पास आए थे कि प्यास बुझ जाएगी। ऐसे जल को क्या करना, जिसके पास आने से आग बढ़ती हो। भय पकड़ ले सकता है। और भय यह भी कह सकता है कि जिस जल के पास आने से प्यास बढ़ रही है, उसे भूलकर पी मत लेना। नहीं तो लपटें ही लपटें हो जाएंगी। भाग जाओ।
बहुत लोग परमात्मा के द्वार से लौट गए हैं। उन्होंने आंखें बंद कर लीं। उन्होंने अपने को किसी तरह सम्हाल लिया। गिरने को ही थे, मिलने को ही थे, जरा-सा ही फासला था, एक कदम काफी हुआ होता, लेकिन वे लौट गए। फिर जन्मों- जन्मों तक भटकते हैं।
इसलिए ठीक-ठीक व्याख्या बड़ी अर्थपूर्ण है, जब कोई घटना घटे। और गुरु
का मूल्य इन्हीं सब आयामों में है कि वह तुम्हें ठीक व्याख्या दे सकेगा। जब तुम्हारे पैर उखड़ रहे होंगे, तब वह उन्हें जमा सकेगा। जब तुम भागने की तैयारी कर लोगे, वह तुमसे कहेगा, जरा और, और सुबह होने के करीब है। मंजिल पास है, और तू भागा जा रहा है!
उस वक्त जरा-सा सहारा चाहिए कि कोई तुम्हें पकड़ ले, कोई तुम्हारे पैरों को रोक दे। लौट न पड़ो तुम कहीं। कहीं तुम गलत व्याख्या न कर लो।
और तुमसे गलत व्याख्या की ही संभावना है। सही व्याख्या तुम कर कैसे सकोगे? तुम्हारा तर्क तो यही कहेगा कि हट जाओ ऐसी जगह से। जहां पास जाने से आग बढ़ती हो, यहां से दूर ही हो जाओ।
मेरे पास बहुत लोग आते हैं, वे कहते हैं, इतनी अशांति ध्यान के पहले न थी!
अशांति का भी पता तभी चलता है, जब तुम थोड़े शांत होने लगते हो। अशांति
को जानेगा कौन? सारी दीवाल काली हो, तो जरा-सी भी सफेद रेखा खींच दो, तो सफेद रेखा भी उभरकर दिखाई पड़ती है और दीवाल भी उभरकर दिखाई पड़ती है। क्योंकि विपरीत में प्रतीति होती है।
तुम अशांत ही रहे हो, अशांति तुम्हारा स्वभाव हो गई है, अशांति के अतिरिक्त तुमने कभी कुछ जाना नहीं, इसलिए अशांति को भी कैसे जानोगे? विपरीत चाहिए। कंट्रास्ट चाहिए। कुछ और तुम जानो, तो तुलना हो सके। इसलिए ध्यान करते ही अशांति बढ़ती है।

लोग चकित होते हैं, क्योंकि वे ध्यान की खोज में आए थे सोचकर कि शांति बढ़ेगी। शांति नहीं बढ़ती, शुरू में तो अशांति बढ़ती है। कहना ठीक नहीं है कि अशांति बढ़ती है। अशांति तो थी, पहले उसका पता न चलता था, अब पता चलता है। और जैसे-जैसे शांति बढ़ेगी, वैसे-वैसे पता चलेगा। जैसे-जैसे तुम जागोगे, वैसे- वैसे पता चलेगा कि कितने सोए रहे!
सोए आदमी को पता ही नहीं चलता कि वह सो रहा है, जागे को पता चलता है। सुबह जिसकी नींद टूटने लगी, जो करवट बदलने लगा, और जिसे भनक पड़ने लगी आस-पास की जागती दुनिया की--बरतन बजने लगे, दूध वाले दूध बेचने लगे, सड़क चलने लगी--जिसे थोड़ी भनक भी पड़ने लगी, अब जो सोया भी नहीं है, जागा भी नहीं है, जो बीच में खड़ा है, संध्याकाल आ गया, उसे पता चलता है कि रातभर सोए रहे। जागते क्षण में पता चलता है नींद का; शांत होने पर पता चलता है अशांति का। आनंद जब उतरने के करीब होगा, तब तुम जानोगे कि कैसे महादुख से तुम आए हो। स्वर्ग के द्वार पर तुम्हें पता चलेगा कि अब तक की यात्रा नरक में हुई। स्वर्ग के द्वार पर ही पता चलेगा। उसके पहले पता न चलेगा; क्योंकि विपरीत जरूरी है।
परमात्मा के करीब पहुंचकर तुम्हें अपने सारे अस्तित्व का सारा संताप सघनीभूत होकर पता चलता है; इसलिए विरह बढ़ता है। उस विरह में गलत व्याख्या मत करना। वह सौभाग्य है। उस सौभाग्य के क्षण को, उन आंसुओं को, विरह को आनंदभाव से, अहोभाव से स्वीकार करना। रोना, लेकिन नाचना बंद मत करना। आंसू टपकें, लेकिन पैर नाचें। आंखें विरह से भरी हों, लेकिन हृदय मिलन की आकांक्षा से, मिलन की आशा से। कंठ में प्यास हो, लेकिन हृदय में भरोसा हो कि नदी करीब आ गई। क्षणभर की देर और है।
और जब इतनी प्रतीक्षा कर ली, तो यह क्षण भी बीत जाएगा। अनंत कल्प बीत गए, सृष्टियां बनीं और उजड़ीं और तुम प्यासे बने रहे; उतना सह लिया; जन्मों- जन्मों इतनी यात्रा की, मंजिल कभी करीब न आई; भटकते ही रहे; वह सब हो गया, अब क्षणभर के लिए क्या घबड़ाहट है! हृदय आश्वासन से भरा रहे। वहीं तुम्हारी आस्था काम आएगी; वहीं तुम्हारी श्रद्धा का पता चलेगा। क्योंकि उस क्षण में बहुत लोग भाग गए हैं।
गुरु के बिना इसीलिए कठिनाई है। गुरु के बिना भी कभी-कभी कोई उपलब्ध
हो जाता है; पर कभी-कभी। उसको हम अपवाद मान ले सकते हैं। अन्यथा गुरु के बिना कोई उपलब्ध नहीं होता। क्योंकि ऐसे पड़ाव आते हैं, जहां कौन तुम्हें भरोसा दे? ऐसे पड़ाव आते हैं, जहां कौन तुम्हारा हाथ पकड़कर तुम्हें रोक ले? ऐसे पड़ाव आते हैं, जहां कि क्षणभर भी अगर ठीक व्याख्या न मिले, तो अनंत काल के लिए भटकाव पुनः शुरू हो जाएगा। और जो व्यक्ति एक बार परमात्मा के मंदिर से वापस लौट आता है, वह सदा-सदा के लिए उस मंदिर की यात्रा को बंद कर देता है। उस तरफ जाने से भय लगता है।
मेरी अपनी प्रतीति यही है कि इस संसार में जिनको तुम नास्तिक मानते हो, वे वे ही लोग हैं, जो कभी परमात्मा के मंदिर के पास से वापस लौट गए हैं। अब वे नास्तिक हो गए हैं। अब वे कहते हैं, परमात्मा है ही नहीं। वे किसी और को नहीं समझा रहे हैं; वे अपने को ही समझा रहे हैं। वह जो उपद्रव उन्होंने परमात्मा के पास अनंत काल की यात्रा में कभी जाना होगा, वह जो विरह, उसने उन्हें इतना घबड़ा दिया है कि उस घबड़ाहट में अब सिर्फ एक ही बचाव है कि वे अपने को समझा लें कि परमात्मा है ही नहीं, इसलिए खोज किसकी करनी है? उसका मंदिर है कहां? यही संसार सब कुछ है। कहीं जाना नहीं है।
वे दूसरों को नहीं समझा रहे हैं। जब नास्तिक तर्क देता है और कहता है
कि ईश्वर नहीं है, तो वह तुम्हें नहीं समझा रहा है, वह अपने को समझा रहा है कि कहीं पैर फिर से उस रास्ते पर न मुड़ जाएं। वह डरा हुआ है अपने से कि कहीं फिर कोई वह आग न जला दे; कहीं फिर कोई छू न दे उस घाव को पुनः; फिर कहीं वह विरह न पैदा हो जाए; और फिर कहीं मैं उस तरफ न चल पडूं, जहां से भाग आया हूं। रवींद्रनाथ की एक छोटी-सी कविता है, कि मैं खोजते-खोजते एक दिन परमात्मा के द्वार पर पहुंच गया। अनंत काल तक खोजा। जब तक नहीं पाया था, तब तक बड़ी खोज थी। कितना भटका, कितने श्रम किए, कितने साधन किए! और फिर आज जब द्वार पर खड़ा हो गया, तो मन एकदम उदास हो गया। हाथ में सांकल उठा ली थी,

बजाने को था, दस्तक देने को ही था कि तत्क्षण ख्याल आया, फिर क्या करोगे? जब परमात्मा मिल जाएगा, फिर क्या करोगे?
भय पकड़ गया, रोआं-रोआं कंप गया। फिर क्या करेंगे? अपना अब तक जो भी करने का जाल था, वह सब व्यर्थ हो जाएगा। अपनी यात्रा समाप्त हो गई। फिर करोगे क्या? फिर कुछ करने को बचता नहीं। परमात्मा का अर्थ है वैसी दशा, जिसके पार पाने को कुछ नहीं, करने को कुछ नहीं, होने को कुछ नहीं। परमात्मा का अर्थ है, पूर्ण विराम।
मन घबड़ा गया। वही मन, जो खोजता था, खोजने के लिए राजी था। क्योंकि काम-धंधा था, व्यस्तता थी और अहंकार को एक तृप्ति भी थी कि खोज रहा हूं परमात्मा को। और दूसरे तो मूढ़ हैं, धन को खोज रहे हैं। दूसरे नासमझ हैं, पद को खोज रहे हैं। दूसरे अज्ञानी हैं, व्यर्थ को खोज रहे हैं, असार को खोज रहे हैं। मैं सार की खोज पर निकला हूं; मैं परम गुह्य की खोज पर निकला हूं; मैं रहस्यों के लोक में जा रहा हूं। अहंकार बड़ा तृप्त था, संतुष्ट था। द्वार पर खड़े होकर परमात्मा के घबड़ाहट आ गई, पैर कंप गए, कि यह तो खतरा है! खोज समाप्त हो जाएगी! करने को कुछ बचेगा नहीं! अहंकार के लिए कोई जमीन न रह जाएगी खड़े होने को!
रवींद्रनाथ ने बड़ा अदभुत गीत लिखा है, किसी ने कभी नहीं लिखा। इसलिए रवींद्रनाथ में बड़ी अनुभूतियां थीं, बड़ी सूझें थीं। यह आदमी असाधारण था। यह आदमी सिर्फ कवि नहीं था; यह आदमी ऋषि था। जैसे उपनिषद के ऋषि हैं। रवींद्रनाथ के वचन वैसे ही समझे जाने चाहिए, जैसे उपनिषद के वचन। रवींद्रनाथ नया उपनिषद है। उनको साधारण कवि मत समझ लेना, जो कवि सम्मेलनों में कविता कर रहा है और तालियां सुन रहा है। उनको तुम कोई काका हाथरसी मत समझ लेना। वे ऋषि हैं। बड़े गहरे प्रगाढ़ अनुभव से उनकी प्रतीति निकली है।
रवींद्रनाथ ने कहा है कि यह देखकर मैं भाग खड़ा हुआ। मैं इतना डर गया
कि मैंने सांकल भी धीरे से छोड़ी कि कहीं अनजान में बज न जाए। और मैं इतना डर गया कि मैंने जूते, जिनको पहने हुए मैं मंदिर की सीढ़ियां चढ़ गया था, हाथ में ले लिए; कि कहीं पदचाप भीतर सुनाई न पड़ जाए; कहीं वह द्वार खोल ही न दे और कहे, आओ। कहीं वह आलिंगन कर ही ले, तो मिटे। फिर कोई बचाव न रहेगा। और फिर उसको सामने खड़ा देखकर भागना भी अशोभन मालूम होगा।
गीत का आखिरी पद कहता है कि उस दिन से जो भागा हूं, तो बस उस मंदिर की राह को छोड़कर सब राहों पर घूमता हूं। फिर मेरी खोज जारी है। लोगों को कहता हूं, परमात्मा खोज रहा हूं, योग कर रहा हूं, ध्यान कर रहा हूं। और मुझे पक्का पता है कि वह कहां है। उस जगह को भर छोड़कर सब जगह खोजता हूं। नास्तिक मेरे लिए वही आदमी है, जिसको कोई बहुत गहन पीड़ा का अनुभव किसी जन्म में हो गया। वह पीड़ा इतनी भयंकर थी कि वह दोबारा उसको पुनरुक्त नहीं करना चाहता। वह अपने को समझाता है, परमात्मा है ही नहीं। वह अपने को तर्क देता है। वह अपने चारों तरफ तर्क का एक जाल निर्मित करता है। वह अपने ही खिलाफ शड्यंत्र रचता है। वह किसी दूसरे का धर्म बिगाड़ने को नहीं है, न तुमसे उसे कुछ मतलब है।
अन्यथा तुम सोचो, ऐसे नास्तिक हैं जो जीवनभर, ईश्वर नहीं है, यह सिद्ध करने में समय व्यतीत करते हैं। है ही नहीं जो, उसके लिए तुम अपना जीवन क्यों खराब कर रहे हो? तुम कुछ और कर लो। ईश्वर तो है ही नहीं, बात खतम हो गई। लेकिन जीवनभर व्यतीत करते हैं!
मेरी अपनी प्रतीति यह है कि कभी-कभी भक्तों को भी वे मात कर देते हैं। भक्त भी इतनी संलग्नता से जीवन व्यतीत नहीं करता परमात्मा के लिए, जितना नास्तिक करते हैं। लिखते हैं, सोचते हैं, तर्क जुटाते हैं, समझाते हैं, शास्त्र लिखते हैं बड़े-बड़े कि ईश्वर नहीं है।
इस सब के पीछे कुछ मनोविज्ञान होना चाहिए। जो है ही नहीं, उसकी कौन फिक्र करता है? कोई तो सिद्ध नहीं करता कि आकाश-कुसुम नहीं होते। कोई तो सिद्ध नहीं करता कि गधे को सींग नहीं होते। इसको क्या सिद्ध करना है! और जो सिद्ध करे, वह गधा। क्योंकि इसको क्या प्रयोजन है? गधे को सींग नहीं होते, यह जाहिर बात है, खतम हो गई। इसको कोई भी सिद्ध करने की जरूरत नहीं है।

लेकिन ईश्वर नहीं है, अगर ईश्वर भी ऐसा है जैसे कि गधे के सींग नहीं हैं, तो क्या पागलपन कर रहे हो! किसको सिद्ध कर रहे हो? किसके लिए लड़ रहे हो? क्या प्रयोजन है? सिद्ध भी कर लोगे, तो क्या सार है? जो था ही नहीं, उसको तुमने सिद्ध कर लिया कि वह नहीं है, क्या पाया? कहीं और जीवन ऊर्जा को लगाते, कहीं और खोजते।
लेकिन नास्तिक के पीछे एक ग्रंथि है। वह ग्रंथि यह है कि अगर वह सिद्ध
न करे कि ईश्वर नहीं है, तो डर है कि कहीं फिर कदम उसी तरफ न उठने लगें। यह बड़ी अचेतन प्रक्रिया है। यह उसके अनकांशस में है। उसे भी पता नहीं है। इसलिए जब भी कोई नास्तिक मेरे पास आ जाता है, तो मैं उसमें रस लेता हूं। क्योंकि मैं जानता हूं, यह कभी करीब तक पहुंचा हुआ आदमी है। इसकी यात्रा बस पूरे होने के करीब थी। यह दया के योग्य है। इस पर नाराज मत होना। यह करुणा के योग्य है। और यह वहां पहुंचा है, जहां बहुत-से आस्तिक कभी नहीं पहुंचे हैं। एक छलांग, एक क्षण और, और सुबह हो गई होती। इस पर श्रम करने जैसा है। यह लड़ने जैसा नहीं है। इसका विरोध करने जैसा नहीं है। इसकी आलोचना करने जैसी नहीं है। इसे तो पूरे प्रेम में ले लेने जैसा है। किसी भांति इसे फिर से याद आ जाए, तो एक क्षण में यह फिर वहीं खड़ा हो सकता है, जहां से भागा था।
क्योंकि जो भी हमने अनंत जन्मों में पाया है, उसे हम भूल जाएं, खो नहीं सकते। वह जीवन का नियम ही नहीं है। जो तुमने जान लिया है, उसे तुम भूल सकते हो, खो नहीं सकते। उसकी विस्मृति कर सकते हो, उसे छिपा सकते हो भीतर गहन में, गहन अचेतन में दबा सकते हो कि तुम्हें भी दिखाई न पड़े, तुम ऐसा छिपा सकते हो कि भीतर रोशनी भी लेकर जाओ, तो उसका पता न चले। लेकिन तुम उसे मिटा नहीं सकते। जो जान लिया गया, वह जान लिया गया। वह चेतना का अमिट अंग हो जाता है।
इसलिए नास्तिक क्षणभर में आस्तिक हो सकता है। आस्तिक को आस्तिक होने में बहुत समय लगता है। अभी इसे ईश्वर का भय तो समाया ही नहीं। अभी यह कुतूहल में ही है। एक जिज्ञासा उठी है कि शायद ईश्वर हो; शायद ईश्वर से आनंद मिलता हो।
नास्तिक ऐसा आदमी है, जिसके बाबत गांव में प्रचलित कहावत सही है कि दूध का जला छाछ भी फूंक-फूंककर पीता है। वह दूध का जला है, अब वह छाछ भी फूंक-फूंककर पी रहा है। आस्तिक ऐसा आदमी है, जो छाछ ही पीता रहा है। वह गर्म दूध को भी, जलते-उबलते दूध को भी छाछ की तरह पी जाएगा। जलेगा, तभी उसे पता चलेगा। फिर शायद वह भी छाछ को भी फूंक-फूंककर पीने लगे।
इसलिए भगवान के जैसे-जैसे तुम करीब आओगे, जैसे-जैसे तुम भक्त बनोगे...
।
भक्त का अर्थ मेरे लिए यही है, जो भगवान के करीब आने लगा, जिसे विरह की पीड़ा सताने लगी, जिसका रोआं-रोआं जलने लगा। जो अब ज्वरग्रस्त है, जिसे प्रेम का बुखार है। जो अब विक्षिप्त है, जिसे प्रेम की विक्षिप्तता ने पकड़ लिया।
इसलिए तो कबीर अपने को कहते हैं, कहे कबीर दीवाना। पागल! सारी दुनिया
के लिए पागल। कोई उसकी बात सुनने को राजी नहीं। लोग समझते हैं मतवाला। और लोग उसकी पीड़ा भी नहीं समझ सकते। लोग उसके आंसू भी नहीं समझ सकते। लोग तो दूर, वह खुद ही नहीं समझ पाता कि क्या हो रहा है! अघट घटता है, अनहोना होता है, अनजान से संबंध बनते हैं। सारा जाना-माना जाल टूट जाता है।
नहीं, इसमें कुछ विरोध नहीं है। भक्त के सामने जब साक्षात भगवान होते हैं, तभी विरह पहली दफा जगता है। उस समय चाहिए गुरु, कि रोक ले, हाथ पकड़ ले, सहारा दे, भरोसा दे। कहीं तुम भाग न जाओ मंदिर से। थोड़ी ही देर की बात है। और एक बार तुम कूद गए नदी में और नदी को ले लिया तुमने अपने में, यात्रा पूरी हो गई। और तभी मिलन के आनंद की वर्षा होती है। पहले तो विरह की पीड़ा है, विरह का रेगिस्तान है, फिर मिलन की वर्षा है।
और यह भी तुमसे मैं कह दूं कि जितनी बड़ी होगी तुम्हारी विरह की जलन, उतनी ही गहन होगी तुम्हारी मिलन की शांति और मिलन का आनंद। इसलिए अगर तुम्हें कोई शार्टकट बताता हो, कि कहता हो कि हम ऐसा रास्ता बताते हैं कि बिना विरह के तुम पहुंच जाओगे। कोई तुम्हें कहता हो कि नदी जाने की क्या

जरूरत! हम पाइप लाइन बिछाए देते हैं; तुम्हारे घर में ही टोंटी से पानी टपकने लगेगा परमात्मा का। तुम उसकी मत सुनना। क्योंकि बिना विरह के अगर परमात्मा मिल जाए... मिल नहीं सकता, यह आदमी धोखा दे रहा है।
लेकिन इसका धोखा धंधा बन सकता है। पंडित, पुरोहित, पुजारी वही कर रहे हैं। वे कहते हैं, हम सस्ता रास्ता बताए देते हैं। तुम क्यों विरह में मरते हो? तुम घर बैठो। हम तुम्हारे लिए पूजा करते हैं। वे कहते हैं, तुम्हें कोई यज्ञ करने की जरूरत नहीं है। हम कर देंगे; तुम सिर्फ पैसा चुका दो। तुम चिंता मत करो; हम जो कहते हैं, वैसा करो। बाकी सब फिक्र हम कर लेंगे। ये मध्यस्थ जो हैं, वे यह कह रहे हैं कि हम तुम्हें पीड़ा से बचा देंगे विरह की। हम तुम्हारे लिए रो लेंगे, हम तुम्हारे लिए हंस लेंगे; तुम घर बैठे रहो; तुम अपना धंधा करते रहो।
भूलकर भी इस भ्रांति में मत पड़ना। क्योंकि वह अगर ऐसा हो भी जाए--जो हो नहीं सकता, मान लें हो जाए--तो वह ऐसा ही होगा, जैसे बिना भूख लगे किसी आदमी के पेट में हम भोजन डाल दें। कोई तृप्ति न होगी। तृप्ति तो नहीं, उलटे वमन हो जाएगा, उलटी हो जाएगी। जिसे प्यास न लगी हो, उसके कंठ में हम पानी उंडेल दें। उससे पेट की भले सफाई हो जाए, लेकिन तृप्ति न होगी।
यह तो ऐसे ही है कि जिसने कभी विरह नहीं जाना, उसके द्वार पर अगर प्रेम
भी आकर खड़ा हो जाए, तो वह कैसे पहचानेगा? विरह की आंखें चाहिए। जितनी पीड़ा भूख की, उतनी ही तृप्ति, उतना ही स्वाद का रस। अगर तुम्हारी भूख की पीड़ा इतनी गहन हो कि उससे आगे पीड़ा में जाना संभव न हो, तो रूखी रोटी तुम खाओगे और उपनिषद के वचन तुम्हारे हृदय में गूंज जाएंगे, अन्नं ब्रह्म! अन्न ब्रह्म है! अगर भूख इतनी गहरी हो, तो भोजन परमात्मा हो जाएगा। प्यास गहरी हो, तो जल के कणों में, साधारण से जल में, अमृत की छाया पड़ने लगेगी।
जो साधारण जीवन में घटता है, वही उस असाधारण जीवन में भी घटता है। नियम तो वही है।
परमात्मा के लिए रोओ, ताकि कभी तुम उसके आनंद से हंस भी सको। उसके लिए आंसुओं को गिरने दो, तभी तुम्हारे पैर घूंघर बांधकर किसी दिन नाच भी सकेंगे। विरह का जितना गहन तीर तुम्हारे हृदय में छिदेगा, उतना ही अमृत का झरना फूटेगा। विरह का अनुपात ही मिलन के आनंद का अनुपात है।
इसलिए तुम घाटे में न रहोगे। रोने से डरना मत। आंसुओं को रोकना मत। पीड़ा को झेलना, पीड़ा से बचने के उपाय मत करना। पीड़ा से बचने के बहुत उपाय हैं। लेकिन जो पीड़ा से बच गया, वह फिर परमात्मा से भी बच जाएगा। वह फिर आनंद से भी बच जाएगा।
अगर तुम इस सूत्र को ठीक से ख्याल में रख सकोगे, तो जब विरह आएगा, तब तुम सौभाग्य समझोगे। तुम समझोगे कि परमात्मा निकट है, इसलिए विरह आया। उसकी छाया कहीं मेरे ऊपर पड़ने लगी। वह कहीं आस-पास है। अन्यथा ये आंसू कैसे बहते? यह हृदय कैसे रोता? यह मेरा रोआं-रोआं कैसे तड़फता? यह आग कैसे जलती?

दूसरा प्रश्नः अहंकार के पूर्ण विसर्जन के लिए आपने शरणागति को अत्यंत आवश्यक बताया और स्वयं अहंकार इस यात्रा के लिए राजी नहीं हो सकता, क्योंकि इसमें उसकी मृत्यु निहित है। फिर बताएं कि शरणागति की यात्रा किसके द्वारा होती है?

शरणागति कोई यात्रा नहीं है। अहंकार नहीं रह जाता, शरणागति फलित होती है। दीया जलाते हो तुम घर में, घर में जो घिरा हुआ अंधकार था, क्या वह द्वार-दरवाजों से बाहर जाता है? उसकी कोई यात्रा होती है? तुमने कभी अंधेरे को बाहर निकलते देखा? कि घर में दीया जल गया, अंधेरा बाहर जा रहा है! खड़े रहो द्वार पर, अंधेरा बाहर जाता न दिखाई पड़ेगा।
अंधेरा कुछ है थोड़े ही, जो बाहर जाता है। अंधेरा तो अभाव है, दीए के न होने की अवस्था है, अनुपस्थिति है। अंधेरा कुछ है थोड़े ही। अंधेरा है ही नहीं; उसका कोई अस्तित्व नहीं है।

अहंकार अंधेरा है। उसे कहीं जाना थोड़े ही है। वह जा नहीं सकता। उसका कोई अस्तित्व नहीं है। वह कोई तत्व थोड़े ही है! इसलिए तो हम उसे झूठ कहते हैं, सपना कहते हैं। असली सवाल है, दीए का जल जाना।
शरणागति कोई यात्रा नहीं है। क्योंकि यात्रा अगर होगी, तो अहंकार मौजूद रहेगा। शरणागति छलांग है, यात्रा नहीं; एक क्षण में घटी घटना है। शरणागति सडेन, तत्क्षण घटी घटना है! जैसे दीया जला, प्रकाश हुआ, अंधेरा मिटा। एक क्षण की देरी नहीं होती।
शरणागति की यात्रा कौन करता है?
यात्रा तो है ही नहीं, पहली बात। जैसे ही अहंकार गिरता है, वैसे ही शरणागति हो जाती है, उसी क्षण।
अहंकार के भीतर छिपे तुम जो हो, तुम अहंकार ही अगर होते, तो परमात्मा
से मिलने का कोई उपाय न था। परमात्मा से तुम मिल सकते हो, क्योंकि तुम परमात्मा से ही हो। समान ही समान से मिल सकता है। तुम परमात्मा से मिल सकते हो, क्योंकि किसी अर्थ में तुम अभी भी परमात्मा हो। पता न हो। विपरीत का तो मिलन कैसे होगा! अहंकार के गिरते ही तत्क्षण तुम पाते हो, मिल गए। यात्रा नहीं होती, मंजिल आ जाती है।
तो असली सवाल है, अहंकार कैसे गिरे?
तुम्हारी चेष्टा से न गिरेगा, क्योंकि सभी चेष्टाएं अहंकार की हैं। यही जटिल जाल है। तुम अगर कोशिश करोगे, तो अहंकार ही कोशिश करेगा, गिरेगा नहीं। यह भी हो सकता है कि तुम ठोंक-ठाककर अपने को विनम्र बना लो। तो भीतर से अहंकार नई घोषणा करेगा कि मुझसे ज्यादा विनम्र कोई भी नहीं। देखो, मेरी विनम्रता। कैसे फूल लगे हैं विनम्रता के! दुनिया में हैं और लोग, लेकिन मुझसे ज्यादा विनम्र कोई भी नहीं। बस, मैं आखिरी हूं विनम्रता में, चोटी पर हूं।
यही तो अहंकार है, जो चोटी पर होने की घोषणा करता है। पहले धन के आधार
पर करता था, पद के आधार पर करता था, बल के आधार पर करता था। अब त्याग के आधार पर करता है, विनम्रता के आधार पर करता है, साधुता के आधार पर करता है, संतत्व के आधार पर करता है। घोषणा वही है।
चेष्टा से अहंकार न जाएगा। अहंकार जाता है अहंकार को देखने से। चेष्टा नहीं, सिर्फ जांचने से, परखने से, पहचानने से, साक्षी-भाव से। साक्षी-भाव का परिणाम है शरणागति। तुम सिर्फ देखते रहो अहंकार का खेल, कुछ करो मत। करने की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि भीतर जो तुम्हारे छिपा है, वह कर्ता है ही नहीं, वह साक्षी है। तुम सिर्फ देखो। तुम जरा अहंकार के खेल देखो; लीला देखो। कैसी लीला रचता है! और कैसी सूक्ष्म लीला रचता है!
रास्ते पर तुम जा रहे हो अकेले, और देखा कि पास के मकान से दो आदमी निकल आए। भीतर कुछ बदल गया। परखो इसे, जांचो दूर खड़े, क्या हुआ?
अभी ये दो आदमी रास्ते पर नहीं थे, तो तुम और ढंग से चल रहे थे। कोई देखने वाला न था, तो तुम्हारा चेहरा और था; तुम एक गीत गुनगुना रहे थे; एक मस्ती थी; सरल थे, छोटे बच्चे की तरह थे। अचानक दो आदमी पास के मकान से निकल आए, कोई चीज भीतर बदल गई। अकड़ गए, बचपना चला गया, सरलता खो गई, चाल बदल गई, अहंकार आ गया।
तुम घर में अकेले बैठे हो, कोई नहीं है, तब तुम और हो। नौकर कमरे से गुजर गया। पता भी नहीं चलता, शरीर हिलता भी नहीं, और भीतर सब हिल जाता है। जांचो, परखो।
कोई आदमी आया, कहने लगा, आप जैसा बुद्धिमान आदमी कभी नहीं देखा। भीतर
एक छलांग लग गई। तुम एक पहाड़ की चोटी पर चढ़ गए। जरा भीतर देखते रहो, क्या हो रहा है! इस आदमी ने चार शब्द कहे। शब्दों में क्या है? हवा में उठे बबूले हैं। इसने कहा कि तुम बड़े सुंदर, कि तुम बड़े बुद्धिमान, कि आप जैसा त्यागी नहीं देखा। भीतर एक छलांग लग गई। अभी खड़े थे जमीन पर, अचानक एवरेस्ट पर पहुंच गए। गौरीशंकर विजय कर लिया!
एक आदमी आया, आलोचना करने लगा, निंदा करने लगा; कहने लगा, तुमसे ज्यादा निम्न और बेईमान कोई भी नहीं है। भयंकर चोट लग गई, घाव हो गया। अहंकार तड़फने लगा बदला लेने को। क्रोध में आ गए। इस आदमी को अब तक मित्र समझा था,

यह दुश्मन हो गया। कहा कि बाहर निकल जाओ, अन्यथा उठवाकर फिंकवा दूंगा।
धक्का देकर इस आदमी को बाहर कर दिया।
जांचते रहो! अनेक-अनेक रूपों में, अनेक-अनेक परिस्थितियों में, अनेक-अनेक घटनाओं में सिर्फ देखते रहो, क्या हो रहा है खेल! कब अहंकार बनता, कब चोट खाता, कब गिर पड़ता, कब उठकर खड़ा हो जाता; किस-किस ढंग से यह खेल चलता है।
तुम सिर्फ देखो। बस, द्रष्टा होना काफी है।
अगर तुम्हारी दृष्टि किसी दिन सध जाएगी... । और सधते- सधते ही सधेगी।
कोई अचानक तुम न देख पाओगे। क्योंकि देखना बड़ी से बड़ी कला है।
इसलिए तो जिन्होंने जान लिया, उनको हमने द्रष्टा कहा है, देखने वाले कहा है। जिन्होंने जान लिया, उनके वचनों को हमने दर्शन कहा है कि उन्होंने देख लिया, जान लिया। क्या देख लिया? देख लिया, अहंकार का खेल।
जिस दिन देखना पूरा हो जाता है, अहंकार तत्क्षण गिर जाता है। उसी क्षण शरणागति हो जाती है। उसी क्षण तुम बचे ही नहीं। समर्पण करना नहीं होता, होता है। समर्पण करोगे, तो झूठा रहेगा। वह करने वाला हमेशा अहंकार रहेगा। जो समर्पण किया गया है, उसे तुम वापस भी ले सकते हो। उसका मूल्य ही क्या है? लेकिन जो समर्पण होता है, उसे तुम वापस न ले सकोगे। लेने वाला नहीं बचा, करने वाला नहीं बचा, सिर्फ देखने वाला बचा है। तुम सिर्फ देखोगे कि ऐसा हो रहा है। शरणागति देखी जाती है कि हो गई।
अहंकार को देखते-देखते-देखते अचानक एक दिन तुम पाते हो कि उस दर्शन के प्रवाह में ही, उस दर्शन की ज्योति में ही अहंकार का अंधकार खो गया। तुम अपने को पाते हो, मिट गए, शून्य हो गए। समर्पण हो गया, शरणागति हो गई। उतर गए तुम नदी की धार में, उतर गई नदी की धार तुममें। अब तुममें और परमात्मा में कोई फासला न रहा। उतने ही अहंकार का फासला था। कर्ता है परमात्मा और जान लिया था तुमने अपने को कर्ता, वही दूरी थी। एक मात्र कर्ता है परमात्मा, वही कर रहा है, सब करना उसका है। तुमने अपने को कर्ता मान लिया था, यही भ्रांति थी। वह भ्रांति छूट गई।
जैसे-जैसे तुम जांचोगे, भीतर भ्रांति छूटती जाएगी। तुम पाओगे, तुम कुछ भी तो नहीं कर रहे हो; सब हो रहा है। भूख लगती है, प्यास लगती है, तो पानी की खोज शुरू हो जाती है। नींद आती है, तो बिस्तर तैयार होने लगता है। जवानी आती है, तो कामवासना घेर लेती है। बुढ़ापा आता है, कामवासना धुएं की तरह दूर निकल जाती है।
छोटे बच्चे थे, पता न था काम का। तितलियों के पीछे दौड़ते थे, फूलों को पकड़ते थे, कंकड़-पत्थर बीन लाते थे घर में। घर के लोग कहते थे, फेंको। तुम बड़ा मूल्यवान समझते थे। वह भी हो रहा था। फिर जवानी आई, नया पागलपन आया। अब तुम साधारण तितलियों के पीछे नहीं भागते। अब भी तितलियों के पीछे भागते हो, लेकिन अब उन तितलियों का नाम स्त्री है, धन है, पद है। अभी भी कंकड़-पत्थर इकट्ठा करते हो, पुराने नहीं। अब उनका नाम कोहिनूर है, हीरे-जवाहरात हैं, उनको इकट्ठे करते हो। खेल जारी है। कोई करवा रहा है। और तुम पूरे वक्त सोच रहे हो कि मैं कर रहा हूं।
क्रोध होता है। तुमने कभी किया? प्रेम होता है। तुमने कभी किया? तुम पैदा हुए हो या कि तुमने अपने को पैदा कर लिया है? तुम मरोगे या कि तुम अपने को मारोगे? जो आत्महत्या करते हैं, वे भी अपने को नहीं मारते; वह भी घटती है। वे भी बच नहीं सकते। वह भी होता है। क्या करोगे? आत्महत्या का विचार पकड़ लेता है। वह तुमने थोड़े ही पैदा किया है।
अगर तुम ठीक से विश्लेषण करोगे, तो तुम पाओगे, सब हो रहा है। और अकारण
ही तुमने कर्ता को बना लिया कि मैं कर्ता हूं। बस, देखने की क्षमता आ जाए, कर्ता-भाव खो जाता है। करने वाला एक है।
साक्षी शरणागति है। साक्षी समर्पण है। साक्षी तुम्हारा विसर्जन है।
और जहां तुम नहीं हो, वहां परमात्मा है।
आखिरी प्रश्नः आपको देखकर बहुत खुशी होती है, आपकी आलोचना सुनकर बहुत दुख। फिर महीने में चार-पांच बार आपकी तस्वीर के सामने कहता हूं, मुझे आनंद नहीं दे सकता, तो मुझे मार ही डाल। इतना दुख क्यों देता है? थोड़ी देर मैं पछताता हूं! झुसिया भगवान से लड़ता था। पर उसकी भाव-दशा पवित्र रही

होगी। मुझमें तमस बहुत है। ध्यान कुछ समय चलता है, फिर रुक जाता है, फिर चलता है। मेरी तमस, मेरी विक्षिप्तता कैसे दूर हो?

आखिरी प्रश्नः आपको देखकर बहुत खुशी होती है, आपकी आलोचना सुनकर बहुत दुख। फिर महीने में चार-पांच बार आपकी तस्वीर के सामने कहता हूं, मुझे आनंद नहीं दे सकता, तो मुझे मार ही डाल। इतना दुख क्यों देता है? थोड़ी देर मैं पछताता हूं! झुसिया भगवान से लड़ता था। पर उसकी भाव-दशा पवित्र रही होगी। मुझमें तमस बहुत है। ध्यान कुछ समय चलता है, फिर रुक जाता है, फिर चलता है। मेरी तमस, मेरी विक्षिप्तता कैसे दूर हो?

अगर मुझे देखकर खुशी होगी, तो मुझे न देख पाओगे, तो दुख होगा। अगर मेरी कोई स्तुति करेगा, प्रसन्नता होगी, तो फिर जब कोई मेरी निंदा करेगा, आलोचना करेगा, तो दुख होगा। सुख और दुख साथ-साथ हैं। अगर एक को चुना, तो दूसरे से बच न सकोगे। अगर दूसरे से बचना हो, तो दोनों को छोड़ देना पड़ेगा। तो मुझे देखकर खुश मत होओ, शांत होओ। मुझे देखकर खुश होओगे, तो जब मुझे
न देख पाओगे, तो दुख होगा। सुख अपने साथ दुख ले आता है। इसलिए मुझे देखकर शांत बनो। क्योंकि सुख एक उत्तेजना है। सुख कोई बहुत अच्छी अवस्था नहीं है। एक तनाव है। इसलिए सुख से भी आदमी ऊब जाता है।
तुमने कभी ख्याल किया कि ज्यादा देर तुम सुखी नहीं रह सकते। क्योंकि
थक जाता है आदमी। ज्यादा देर सुखी रहना मुश्किल है। दुख विश्राम है। अगर सुखी होओगे, थक जाओगे, तब दुख में विश्राम लेना पड़ेगा। सुख दिन जैसा है, दुख रात जैसा है।
अगर दुख से बचना हो, तो ध्यान रखना, सुख से बचना होगा। सुख की उत्तेजना तुमने पाल ली, तो फिर दुख की उत्तेजना कौन सहेगा? वह भी तुम्हीं को सहनी पड़ेगी। वह विपरीत है, पर इसी का दूसरा अति छोर है।
दुख से तो हम बचना चाहते हैं, बच कहां पाते हैं? सुख हम पाना चाहते हैं, मिल कहां पाता है? इस बोध को जो उपलब्ध हो जाता है कि सुख के साथ दुख जुड़ा है, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, वह पूरे सिक्के को फेंक देता है। उस सिक्के को फेंकने में शांति है।
तुम जब मेरे पास आओ, तो सुख की भाव-दशा को मत बनाओ। कोई उत्तेजना मत पालो। आओ, शांत बनो। अगर तुम मेरे पास शांत रहोगे, तो तुम मुझसे दूर भी शांत रहोगे। क्योंकि शांति कोई उत्तेजना नहीं है। शांति एक स्वाभाविक दशा है। शांति में कोई तनाव नहीं है। इसलिए कोई व्यक्ति शांत रह सकता है अनंत काल तक।
इसलिए बुद्ध ने मोक्ष में सिर्फ शांति को ही जगह दी है, सुख को कोई जगह नहीं दी। आनंद शब्द का भी प्रयोग नहीं किया। क्योंकि आनंद में भी तुम्हें सुख की छाया पड़ती है; तुम्हें लगता है, आनंद महासुख है, ऐसा सुख जो कभी अंत न होगा। लेकिन ऐसा कोई सुख होता ही नहीं, जो कभी अंत न हो।
तो बुद्ध ने निर्वाण को शांति कहा है। इतनी गहरी शांति कि उसमें तुम
भी नहीं हो, बस शांति है। वह अनंत काल तक रह सकती है, उसका कोई अंत नहीं आता है।
सुख तो है संगीत जैसा, कि कोई रविशंकर वीणा बजा रहा है। प्रीतिकर है, लेकिन कितनी देर तुम रविशंकर की वीणा सुन सकते हो? घड़ी दो घड़ी बहुत, अगर रातभर रविशंकर तार ठोंकता रहे, तुम पुलिस में खबर करोगे कि यह आदमी तो जान ले लेगा। अगर वह माने ही न और तुम्हारे पीछे-पीछे ही सितार बजाता घूमे, तो तुम पगला जाओगे दो-चार दिन में। इससे ज्यादा नहीं लगेगी देर।
बड़ा सुख था वीणा में घड़ी दो घड़ी, फिर पीड़ा हो गई, फिर पागलपन आने लगा। क्योंकि उत्तेजना है संगीत भी; चोट है, आघात है। कितना ही मधुर हो, है तो चोट ही। तार पर पड़ी चोट, शब्द की पड़ी चोट, कान पर झनकार है, हृदय पर भी झनकार है। कितनी ही प्रीतिकर हो, चोट करती है। बाजार का शोरगुल कितना ही अप्रीतिकर हो, रेलवे स्टेशन पर चलती खटर-पटर कितनी ही अप्रीतिकर हो, वह भी चोट करती है। उसे तुम क्षणभर भी नहीं सुनना चाहते। रविशंकर की वीणा को तुम थोड़ी देर सुनना चाहोगे।

लेकिन एक ऐसा संगीत भी है, जो अनाहत है, जो आघात से पैदा नहीं होता। उस संगीत में कोई स्वर नहीं है। उसी को हमने ओंकार कहा है। इसलिए ओंकार को अनाहत नाद कहा है। न तो अंगुलियां हैं, न तार हैं, न कोई चोट है। वह संगीत कैसा है? वह संगीत शून्य का है, मौन का है। उसमें तुम अनंत काल तक रह सकते हो, तुम कभी न थकोगे।
सुख से आदमी थकता है, दुख से भी थकता है। और इसलिए बदलाहट चलती रहती है, सुख से दुख में, दुख से सुख में; रात से दिन, दिन से रात। श्रम करता है, विश्राम; विश्राम करता है, श्रम। द्वंद्व जारी रहता है। अशांति जारी रहेगी द्वंद्व के साथ। शांति निर्द्वंद्व हो जाना है।
जब तुम मेरे पास आओ, तो सुख को मत जन्मने दो। क्या करोगे? सिर्फ देखते रहो। अगर तुम जागकर मेरे पास रहे, सुख जन्मेगा ही नहीं। वह नींद में ही जन्मता है। तुम शांत रहो। तुम बैठो मेरे पास ध्यानस्थ। तब तुम पाओगे कि मेरे पास या मुझसे दूर, सब बराबर है।
बुद्ध का मरण दिन आया, तो आनंद छाती पीट-पीटकर रोने लगा। और भी भिक्षु थे, उसमें एक भिक्षु था महाकाश्यप। वह अपने वृक्ष के नीचे बैठा था। खबर पहुंची, किसी ने कहा कि बुद्ध का अंतिम दिन आ गया। उन्होंने कहा है आज मैं विसर्जित हो जाऊंगा। उसने सुना या नहीं सुना, वैसा ही बैठा रहा। आनंद रोने लगा।
बुद्ध ने कहा, आनंद तू क्यों रोता है? तू महाकाश्यप की तरफ क्यों नहीं देखता? उसको भी खबर मिली है, लेकिन वह चुप बैठा है। जैसे कुछ नहीं हुआ है। जैसे लहर ही नहीं आई। कोई बात ही नहीं हुई। जैसे किसी ने कहा ही नहीं कि बुद्ध मरने को हैं।
आनंद ने महाकाश्यप की तरफ देखा। उसने कहा, बेबूझ है बात। मेरी समझ नहीं पड़ती। आपके रहते इतना सुख था, आपके जाते महादुख होगा।
बुद्ध ने कहा, तू महाकाश्यप को पूछ। महाकाश्यप से पूछा। महाकाश्यप ने कहा, उनके रहते बड़ी शांति थी, उनके न रहते भी बड़ी शांति होगी। क्योंकि शांति भीतर की बात है। उसका उनके रहने न रहने से संबंध नहीं। उनके सहारे भीतर को साध लिया, सध गया। बुद्ध न होंगे, तो भी शांति होगी। बुद्ध थे, तो भी शांति थी। आनंद, तू सुख के पीछे पड़ा है। इसलिए मुश्किल में उलझा है। सुख को छोड़। शांत!
शांत रस को पकड़ने की कोशिश करो। अन्यथा मैं कितने दिन तुम्हारे पास रहूंगा! फिर तुम दुखी होओगे। तो मैंने तुम्हें जितना सुख दिया, उससे ज्यादा दुख तुम्हें दे दूंगा। क्योंकि रहना तो थोड़ी देर है, न रहना बहुत लंबा होगा।
बुद्ध अस्सी साल रहे। फिर अब ढाई हजार साल बीत गए। और जिन्होंने बुद्ध के साथ सुख पाया होगा, वे अभी भी दुख पा रहे होंगे, ढाई हजार साल! अब वे जनम-जनम तक दुख पाएंगे। वह पीड़ा बनी ही रहेगी। जिसने बुद्ध के साथ सुख पाया, अब बिना बुद्ध के कैसे सुख पाएगा!
नहीं, तुम वह भूल करना ही मत। यह जो आनंद की भूल है, इससे बचना। महाकाश्यप गुणी है। वह राज समझ गया है कि क्या साधना है। जब तक बुद्ध मौजूद हैं, शांति को साध लो।
और अगर तुमने शांति साधी, तो तुम हैरान होओगे, कोई मेरी स्तुति करे तो
और कोई मेरी निंदा करे तो, बराबर हो जाएगी। तुम्हें चोट क्यों लगती है जब कोई मेरी निंदा करता है? तुम्हें अच्छा क्यों लगता है जब कोई मेरी स्तुति करता है?
तुम्हें समझ नहीं है। जब कोई मेरी स्तुति करता है, तुम्हारे अहंकार
को बढ़ावा मिलता है, तुम ठीक आदमी के साथ हो। जब मेरी कोई निंदा करता है, तुम्हारे अहंकार को घाव लगता है, चोट लगती है, कि तुम गलत आदमी के साथ हो। इससे मेरा कुछ लेना-देना नहीं है। न तो स्तुति करने वाला मेरी स्तुति
कर सकता है, न निंदा करने वाला निंदा कर सकता है। वे दोनों ही नासमझ हैं। दोनों को मेरा कोई पता नहीं है। स्तुति करने वाले को एक हिस्सा पता है, निंदा करने वाले को दूसरा हिस्सा पता है; पूरे का उन दोनों को पता नहीं है, अन्यथा वे चुप हो जाते। क्योंकि जो भी मुझे पूरा समझेगा, वह मेरे संबंध

में चुप हो जाएगा। क्योंकि पूरे को जब भी तुम समझोगे, तब तुम पाओगे, न तो वह स्तुति में समा सकता है और न निंदा में समा सकता है।
जो नहीं समझते, उनमें से कुछ निंदा करते हैं; जो नहीं समझते, उनमें से कुछ स्तुति करते हैं। जैसे मित्र स्तुति करता है, क्योंकि वह प्रेम करता है। शत्रु निंदा करता है, क्योंकि वह घृणा करता है। लेकिन मित्र कल शत्रु हो सकते हैं, शत्रु कल मित्र हो सकते हैं। इसमें कुछ अड़चन नहीं है। तुम्हें चोट लगती है निंदा से, क्योंकि तुम्हारा अहंकार अड़चन में पड़ जाता है। तुम्हें प्रसन्नता होती है, कोई स्तुति करता है, क्योंकि तुम्हारा अहंकार फूल जाता है। इसे गौर से देखो। इसे तुम मुझ से बांधो ही मत। इससे मेरा कुछ लेना-देना नहीं है। अपने भीतर पहचानो।
और अगर तुम मेरे पास शांति को साधोगे, तो तुम्हारी दृष्टि निर्मल होती जाएगी। सिर्फ शांति में ही दृष्टि निर्मल और निर्दोष होती है। तब तुम हंस पाओगे। स्तुति करने वाले को भी देखकर तुम शांत रहोगे; निंदा करने वाले को देखकर भी तुम शांत रहोगे। और तब मैं तुमसे कहता हूं कि तुम उन दोनों को बदलने में भी समर्थ हो जाओगे।
अगर कोई मुझे गालियां देता है और तुम चुपचाप सुन लो, और तुम वैसे ही बने रहो, जैसे पानी पर किसी ने लकीर खींची; खींच भी न पाया और मिट गई; लौटकर देखे, वहां कोई लकीर नहीं है; ऐसे तुम बने रहो, तो शायद निंदा करने वाले को पुनः सोचना पड़े कि जिसकी वह निंदा कर रहा है, उस आदमी के पास रहकर अगर इस आदमी को ऐसा कुछ हो गया है, तो एक बार फिर सोच लेना जरूरी है।
लेकिन किसी ने निंदा की और तुम दुखी और परेशान हो गए, बेचैन हो गए, क्रोधित हो गए या तुम मेरी रक्षा करने लगे। कैसे तुम मेरी रक्षा करोगे? या तुम तर्क देने लगे, विवाद में पड़ गए, तो तुम दूसरे आदमी को जो एक मौका दे सकते थे बदलने का, उसे चूक गए।
कोई किसी को विवाद से थोड़े ही कभी राजी कर पाता है। तर्क ने कभी किसी
को बदला है? उस भ्रांति में पड़ो ही मत। तुम लाख तर्क दो, ज्यादा से ज्यादा यह हो सकता है कि तुम्हारे तर्क उस आदमी का मुंह बंद कर दें। लेकिन उसके हृदय को न बदल पाएंगे। वह खोज में रहेगा कि और मजबूत तर्कों को लाकर, सिद्ध करके तुम्हें दिखा दे कि तुम गलत हो। क्योंकि तुमने उसे एक चुनौती दे दी, उसके अहंकार को चोट पहुंचा दी। वह बदला लेकर रहेगा।
तर्क से कुछ सार नहीं है। विवाद में कुछ रस नहीं है। तुम्हें देखकर कुछ घटना घट सकती है। कोई मुझे गाली देता आए और तुम चुपचाप सुन लो, ऐसे कि कुछ भी न हुआ। वह आदमी गंभीर होकर लौटेगा। तुम्हारी शांति उसका पीछा करेगी। तुम उसकी नींद में उतरोगे। तुम उसके सपनों में छा जाओगे। वह बेचैन होगा। उसका आने का मन बार-बार होगा कि फिर तुम्हारे पास आए। मामला क्या है? गाली दी थी, उत्तर आना चाहिए था! इस आदमी को कुछ हो गया है!
और कौन नहीं चाहता कि ऐसी दशा उसकी भी हो जाए कि कोई गाली दे और चोट न पड़े! तुमने इस आदमी को जकड़ लिया, पकड़ लिया। यह आदमी भाग न सकेगा। और यह घटना मेरे पास आने से घटी है; तुमने मेरी तरफ इस आदमी को पहुंचने के लिए पहला उपाय बता दिया। इस आदमी के लिए तुमने दरवाजा खोल दिया।
धक्का मत दो, सिर्फ दरवाजा खोलो। धक्का देकर तुम उसे भीतर न ला पाओगे। धक्का देकर कहीं कोई भीतर आया है? सिर्फ चुपचाप द्वार खोल दो कि उसे पता भी न चले। यह आज नहीं कल आएगा; इसे आना ही पड़ेगा। तुम्हारी शांत मूर्ति इसका पीछा करेगी।
शांत हो जाओ। सुख को मत पकड़ो।
और तुम कहते हो मेरी तस्वीर के सामने कि मुझे आनंद नहीं दे सकता, तो मुझे मार ही डाल।
वह भी सुख की ही तलाश है। तुम मरने को राजी हो, लेकिन खुद को छोड़ने को राजी नहीं हो। मैं तुमसे कहता हूं, मरने की कोई जरूरत नहीं, सिर्फ अहंकार को मरने दो। तुम काफी मजे से जीयो। तुम्हारे जीने से कहीं कोई अड़चन नहीं है। लेकिन तुम कहते हो, मैं मरने को राजी हूं। लेकिन वह जो कह रहा है कि मैं मरने को राजी हूं, वह मैं छूटने को राजी नहीं है।
आत्महत्या करते वक्त भी तुम मैं ही बने रहोगे कि मैं आत्महत्या कर रहा हूं, मैं कुर्बानी दे रहा हूं। जैसे तुम शिकायत कर रहे हो पूरे

परमात्मा से, पूरे अस्तित्व से कि लो, अगर आनंद नहीं, तो मैं जीवन छोड़ता हूं। लेकिन यह छोड़ने वाला अहंकार है।
पकड़ने वाला, छोड़ने वाला, दोनों अहंकार हैं। तुम जागो। पकड़ने-छोड़ने से कुछ न होगा।
आनंद क्यों मांगते हो? आनंद को तो तुमने सदा से मांगा है और इसीलिए तुम इतने दुखी हो। जागो! शांति, शून्य तुम्हारा स्वर बने। और तब आनंद तुम्हें मिलेगा। आनंद मांगने से नहीं मिलता, शून्य होने से बरसता है। आनंद कोई भिखारी को नहीं मिलता, सिर्फ सम्राटों को मिलता है। और सम्राट मैं उसे कहता हूं, जिसकी मांग बंद हो गई। जो मांगता है, वह भिखारी है।
तुमने अगर कहा, आनंद; तुम्हें कभी न मिलेगा। तुम सिर्फ शांत हो जाओ।
और शांत होते ही तुम पाओगे, चारों तरफ से स्रोत आनंद के बहे आ रहे थे, अपनी अशांति के कारण तुम देख न पाए। खजाना सामने पड़ा था, तुम्हारी आंख अंधी थी।
द्वार खुले थे, तुमने आंख उठाकर देखा ही नहीं। तुम चूक रहे थे अपने कारण।
अस्तित्व क्षणभर को भी तुम्हें चुकाने को उत्सुक नहीं है।
पूरा अस्तित्व सहारा दे रहा है कि आ जाओ, द्वार खुले हैं, खजाना तुम्हारा है। लेकिन तुम भिक्षा-पात्र लिए खड़े हो। और भिक्षा-पात्र में यह खजाना नहीं समा सकता। यह खजाना भिक्षा-पात्रों से बहुत बड़ा है। भिक्षा- पात्र छोड़ना पड़ेगा।
अहंकार भिक्षा-पात्र है। मत मांगो आनंद। सिर्फ शांत हो जाओ और आनंद मिलेगा। आनंद सदा मिलता है उनको, जो शांत हो गए। जो मांगते हैं, उन्हें दुख मिलता है। फिर दुख और पीड़ा में तुम कहते हो, आत्महत्या तक कर लूंगा; मार डालो; मर जाऊं।
इससे कुछ हल नहीं है। तुम मर भी जाओगे, तो तुम तुम ही रहोगे। फिर पैदा
हो जाओगे। फिर आनंद मांगने लगोगे। यही तो तुम करते रहे हो। यह गोरखधंधा बहुत पुराना है। तुम कोई नए थोड़े ही हो। तुम बड़े प्राचीन पुरुष हो। कितनी ही बार तुमने यही किया, मांगा, नहीं मिला। मरे; फिर मांगा। लेकिन मांग को न मरने दिया।
तुम मत मरो, मांग को मरने दो, तुम जीओ। तुम तो शाश्वत हो, तुम मर भी नहीं सकते। तुम मारोगे कैसे? कैसे मिटाओगे अपने को? तुम बनाए नहीं अपने को, मिटाने वाले तुम कैसे हो सकते हो? जिसने बनाया, वही मिटा सकता है। और बनाया किसी ने भी तुम्हें नहीं है। तुम ही हो सार इस सारे अस्तित्व के। तुम सदा से हो, सदा रहोगे, अनादि, अनंत। ऐसा कभी न था कि तुम न थे और ऐसा कभी न होगा कि तुम न रहोगे।
मिटाने से क्या होगा? मिट-मिटकर तुम होते रहोगे। उस बात को ही छोड़ो। आनंद मत मांगो; शांति। और मजा यह है कि आनंद मांगना पड़ता है, शांति को मांगने की जरूरत नहीं। शांत तुम ही हो सकते हो। आनंदित तुम कैसे होओगे? मुझे कहो, आनंदित होने का तुम्हारे हाथ में क्या उपाय है? लेकिन शांत तुम हो सकते हो। जो तुम हो सकते हो, वही करो; शेष अपने से होगा।
जैसे वर्षा होती है; पहाड़ खाली रह जाते हैं, क्योंकि पहले से भरे हैं; गड्ढे झीलें बन जाते हैं, क्योंकि खाली थे। तुम खाली हो जाओ। शांति यानी खाली हो जाना, गड्ढा हो जाना। आनंद बरस रहा है, भर देगा तुम्हें। तुम झील हो जाओगे आनंद की।
झुसिया भगवान से लड़ता था, पूछा है, पर उसकी भाव-दशा पवित्र रही होगी। मुझमें तमस बहुत है।
किसको यह समझ है? कौन कह रहा है कि मुझमें तमस बहुत है? निश्चित ही, सत्व बोल रहा होगा। क्योंकि तमस कभी स्वयं को स्वीकार नहीं करता। तमस का तो लक्षण है, वह अस्वीकार करता है कि मैं और आलसी? तो आलसी भी तलवार लेकर लड़ने खड़ा हो जाता है कि किसने कहा? मैं और आलसी? मैं और तामसी? तो तामसी भी तमस छोड़कर लड़ने को खड़ा हो जाता है। तुम आलसी को भी आलसी नहीं कह सकते। वह भी लकड़ी उठा लेगा। तमस तो स्वीकार ही नहीं करता अपने को।
कौन सोच रहा है? कौन देख रहा है कि मैं तामसी हूं? यही तो सत्व का स्वर है। तुम इस स्वर को ठीक से पहचानो। और तुम इस स्वर की तरफ थोड़े ज्यादा झुको। संतुलन भर बदलना है, कुछ बदलना नहीं है। ऊर्जा एक ही है। एक ही ऊर्जा है जो सत्व में, रज में, तम में प्रवाहित होती है।

जो आदमी सो रहा है, यही आदमी तो जागेगा; जो ऊर्जा सो रही है, वही जाग जाएगी; कोई दूसरी ऊर्जा थोड़े ही जागेगी। जो तमस है, वही तो रज बनेगा। जो रज है, वही तो सत्व बनेगा। धारा तो एक ही है, ऊर्जा तो एक ही है, शक्ति एक ही है। ये तीन तो उसके निष्कासन के उपाय हैं।
अभी पूरी की पूरी धारा या ज्यादा से ज्यादा धारा सत्व से नहीं बह रही
है, तमस से बह रही है, रजस से बह रही है। लेकिन थोड़ी-सी बूंदें सत्व से भी बह रही हैं। उन बूंदों का मार्ग पकड़ो। शेष धारा को भी उसी तरफ झुकाओ। थोड़ा संतुलन बदलना है। बस, तीनों पाए बराबर हो जाएं; सत्व, रज, तम, तीनों में बराबर ऊर्जा बहने लगे एक तिहाई, एक तिहाई, एक तिहाई; अचानक तुम पाओगे, संगीत बजने लगा, अनाहत नाद शुरू हो गया। जहां तीनों बराबर हो जाते हैं, तीनों एक-दूसरे को काट देते हैं और वहीं से गुणातीत आयाम का प्रारंभ होता है।
यह कृष्ण अर्जुन को समझा रहे हैं सारा गुणत्रय-विभाग, ताकि वह गुणातीत हो जाए।
तुम्हारा स्वभाव गुणातीत है। तुम तीन में बंटे हो, क्योंकि तुम सोए हो, तुम्हें पता नहीं। और सोई दशा में अधिक ऊर्जा तमस से बहेगी, क्योंकि सोई दशा तमस की दशा है। जब तुम महत्वाकांक्षा से भरकर दौड़ोगे पद-धन की तलाश में, तब अधिक ऊर्जा रजस से बहेगी। क्योंकि गति, महत्वाकांक्षा, दौड़ रजस का धर्म है। जब तुम शांत बनोगे, ध्यान और समाधि खोजोगे, मौन, निर्विकल्प, निर्विचार दशा को खोजोगे, तब सत्व से बहने लगेगी यही ऊर्जा। क्योंकि ध्यान, निर्विकल्पता, निर्विचार दशा, सत्व के गुण हैं।
और जब तीनों किसी एक दिन, किसी क्षण संयोग में बैठ जाते हैं, तीनों का स्वर लयबद्ध हो जाता है, उसी त्रिवेणी में एक का जन्म होता है। इसीलिए तो लोग त्रिवेणी जाते हैं तीर्थयात्रा करने। वह तीर्थ तुम्हारे भीतर है। जहां इन तीनों का मिलन होगा, वहीं त्रिवेणी बन जाएगी, वहीं प्रयागराज बन गया, वहीं हो गया तीर्थ, वहीं से एक का अनुभव होगा।
घबड़ाओ मत, चिंतित मत होओ। सब साज-सामान मौजूद है, थोड़ी-सी व्यवस्था जमानी है। सूफी कहते हैं, आटा मौजूद है, पानी मौजूद है, नमक मौजूद है, शाक-सब्जी मौजूद है, लकड़ियां पड़ी हैं, माचिस तैयार है, मगर भोजन तैयार नहीं है। सब तैयार है। जरा-सा इंतजाम बिठाना है कि लकड़ियों में आग लगा दो, कि चूल्हा तैयार कर लो; कि आटे में थोड़ा पानी मिलाओ, कि थोड़ा नमक; कि आटा गूंथ लो, कि रोटियां पका लो; कि भूख मिट जाएगी, तृप्ति हो जाएगी।
परमात्मा मौजूद है, सिर्फ थोड़ा-सा संयोग बिठाना है। वह तुम्हारे तीन गुणों में मौजूद है, उनको थोड़ा-सा संयोजित करना है। धर्म संयोजन की कला है, उससे ज्यादा कुछ भी नहीं। फिर तुम्हारे भीतर एक का जन्म हो जाता है। जहां तीन मिलते हैं, वहां एक का जन्म हो जाता है। इसलिए त्रिवेणी तीर्थ है।

अब सूत्रः
और हे अर्जुन, जो मनुष्य शास्त्र-विधि से रहित केवल मनोकल्पित घोर तप
को तपते हैं तथा जो दंभ और अहंकार से युक्त हैं, कामना, आसक्ति और बल के अभिमान से भी युक्त हैं तथा जो शरीररूप से स्थित भूत-समुदाय को और अंतःकरण में स्थित मुझ अंतर्यामी को भी कृश करने वाले हैं, उन अज्ञानियों को आसुरी स्वभाव वाला जान।
कौन है आसुरी स्वभाव वाला? कौन है तामसी?
कृष्ण कहते हैं, जो मनुष्य शास्त्र-विधि से रहित केवल मनोकल्पित घोर
तप करते हैं... ।
मैं वर्षों तक लोगों से कहता रहा कि न तो गुरु की कोई जरूरत है, न शास्त्र की कोई जरूरत है। उस बात में जरा भी भूल न थी। लेकिन मुझे लगा, बात में बिल्कुल भूल नहीं है, लेकिन सुनने वाले पर परिणाम बड़ी भूल का हो रहा है।
बात बिल्कुल सही है। क्योंकि परमात्मा तुम्हारे भीतर बैठा है। शास्त्र क्या समझाएंगे तुम्हें? सिर्फ आंख भीतर खोलनी है। वेद कंठस्थ करके क्या होगा? अपनी तरफ आंख खोलनी है, स्वाध्याय करना है। शास्त्र-
56

अध्याय से क्या होगा? और गुरु की क्या जरूरत है? क्योंकि जिसे खोजना है, वह तुम्हें मिला ही हुआ है। जब जरा गरदन झुकाई... ! गरदन झुकाने के लिए भी गुरु की जरूरत है? उतनी सी समझ भी तुममें नहीं है? और अगर उतनी ही समझ नहीं है, तो गुरु भी क्या करेगा? शास्त्र भी क्या करेंगे?
बात बिल्कुल सही है। लेकिन धीरे-धीरे मुझे अनुभव होना शुरू हुआ, मेरी तरफ से सही है, सुनने वाले की तरफ से बिल्कुल गलत है। मैंने पाया कि सौ लोग अगर सुनते हों, तो उसमें से एक को बात सही वैसी ही पहुंचती है, जैसी मैंने कही है। वह सत्वगुणी है। और सत्वगुणी पर क्या परिणाम होते थे, जब मैं यह कह रहा था?
उस पर परिणाम ये नहीं होते थे कि वह शास्त्र को छोड़ देता था, नहीं। या गुरु को छोड़ देता था, नहीं। न तो वह शास्त्र छोड़ता था, न वह गुरु छोड़ता था। सिर्फ पकड़ता नहीं था। यह सत्वगुणी पर परिणाम होता था, पकड़ता नहीं था, सिर्फ पकड़ छोड़ता था। न तो शास्त्र छोड़ता था; न गुरु छोड़ता था; सिर्फ पकड़ छोड़ता था। वह समझ लेता था कि बात क्या है, पकड़ छोड़ देनी है। और जब वह पकड़ छोड़ देता था, तो शास्त्र भी सहयोगी हो जाता था, गुरु भी सहयोगी हो जाता था। पकड़ के कारण शास्त्र भी बाधा बन जाता है, गुरु भी बाधा बन जाता है। क्योंकि तुम एक आग्रह से भर जाते हो, एक आसक्ति से, एक मोह से। मेरा शास्त्र--वेद हिंदू का, कुरान मुसलमान का। मेरा गुरु--महावीर जैन का, मोहम्मद मुसलमान का। वह मेरा-पन छोड़ देता था, वह जो एक प्रतिशत सत्वगुणी मनुष्य था।
और बड़े मजे की बात यह है कि जैसे ही वह मेरा-पन छोड़ता था, वह वेद का तो लाभ ले ही लेता था, कुरान का भी ले लेता था। वह महावीर के पीछे चलकर तो शांति का मजा ले ही लेता था, वह बुद्ध के पीछे चलकर भी ले लेता था। जब पकड़ ही न रही, तो सभी गुरु हो जाते थे।
सत्वगुणी की व्याख्या यह थी कि जब पकड़ ही नहीं, कोई गुरु नहीं, तो सभी गुरु हो गए। और जब कोई पकड़ ही नहीं, कोई शास्त्र ही नहीं, तो सभी शास्त्र अपने हो गए। बंधन छूट जाता था। वह निर्मुक्त भाव से जीने लगता था। सबसे सीखता था।
सत्वगुणी यह सुनकर कि न गुरु की जरूरत है, न शास्त्र की, गुरु को नहीं पकड़ता था, शास्त्र को नहीं पकड़ता था, लेकिन शिष्यत्व उसका गहरा हो जाता था। पर वह घटता था एक प्रतिशत लोगों में।
फिर मैंने देखा कि नौ प्रतिशत रजोगुणी लोग हैं। उन पर क्या परिणाम होता था? वर्षों उनका अध्ययन करके मुझे समझ में आया कि यह सुनकर कि न शास्त्र को पकड़ना है, न गुरु को पकड़ना है, वे शास्त्र को छोड़ने में लग जाते थे, गुरु को छोड़ने में लग जाते थे। समझ पैदा नहीं होती थी; छोड़ने की दौड़ पैदा होती थी। रजोगुण का वह लक्षण है कि हर चीज में से दा.ैड निकाल लेता है।
तो एक रजोगुणी मेरे पास आया, उसने मेरी बात समझी; वह घर गया; कुछ छोटी- मोटी मूर्तियां घर में थीं, शास्त्र थे, सब बांधकर कुएं में फेंक आया। फिर पछताया रात में। फिर डरा कि यह तो बड़ी गड़बड़ हो गई; कहीं नाराज न हो जाएं देवी-देवता! उनकी पूजा करता रहा था। मेरी बात सुन ली; तब तक पूजा में लगा था वह, और गहन पूजा करने वाला था। घंटों, छः-छः, आठ-आठ घंटे वर्षों से यह कर रहा था। मेरी बात सुनी; रजोगुण ने नई दा.ैड पकड़ी। पुरानी से थक चुका होगा, कुछ परिणाम भी नहीं हो रहा था। बात समझ में आ गई, तो फिर एक क्षण रुका नहीं।
अब देवी-देवता क्या बिगाड़ते थे? घर में रहे आते। कोई हर्जा न था। और कभी सुबह-सांझ एक फूल भी उन पर रख देते, तो भी कोई हर्जा न था। सजावट थे, घर की रौनक थे, रहने देते। शास्त्र घर में रखे थे, कोई अड़चन न थी। पकड़ना नहीं था, छोड़ने का सवाल नहीं था। मगर रजोगुणी छोड़ने को उत्सुक हो जाता है।
वह गया; उसने सब बांधकर देवी-देवताओं का बोरिया-बिस्तर और शास्त्र, सब कुएं में फेंक आया। अब रात सो न सका।
रजोगुणी वैसे ही कठिनाई पाता है रात सोने में। क्योंकि दिनभर जो दौड़ता है, भागता है, चिंता करता है, यह पाना है, वह पाना है, सपने रात भी दौड़ते रहते हैं।

रात घबड़ाया; आधी रात वह मेरे घर आया। अब उनको फेंक चुका कुएं में, वहां
जा भी नहीं सकता। और शास्त्र तो गल गए होंगे और अब मुहल्ले वालों से कहे कि निकालना है, लोगों को पता चले, तो और बदनामी होगी कि तुम क्या नास्तिक हो गए!
वह आधी रात मेरे पास आया। कंप रहा था। मैंने पूछा, क्या हुआ? उसने कहा
कि मैं बड़ी झंझट में पड़ गया। आपने ही डाला। किस दुर्भाग्य के क्षण में आपको सुनने आ गया! और बात जंच गई। और मैं तो धुनी आदमी हूं। जब जंच गई, तो क्षणभर रुका नहीं कि थोड़ा सोच तो लेता। और अब सो नहीं सकता और घबड़ाहट लगती है, कि वर्षों के देवी-देवता थे! कुल-देवता थे! बाप ने पूजे, बाप के बाप ने पूजे। इतनी पुरानी परंपरा थी घर में, और मैंने सब खंडन कर दिया, पता नहीं नाराज हो जाएं!
रजोगुणी सदा डरता है कि कहीं देवी-देवता नाराज न हो जाएं, नहीं तो महत्वाकांक्षा में बाधा डाल देंगे। रजोगुणी पूजा ही इसलिए करता है कि और धन मिल जाए, और पद मिल जाए। उसने कहा, कहीं नाराज हो गए! और शास्त्र भी फेंक आया, अब मैं क्या करूं?
मैंने देखा कि मुल्क में ऐसे बहुत-से लोग थे, जो समझे नहीं; जिन्होंने शास्त्र पर पकड़ तो न छोड़ी, शास्त्र को छोड़ने की दौड़ में पड़ गए; शास्त्र को छोड़ने की दौड़ पकड़ ली। पकड़ना जारी रहा, मुट्ठी न खुली; सिर्फ जरा एक कदम पीछे हट गई पकड़, और गहरी हो गई।
फिर नब्बे प्रतिशत लोग हैं, जो तमोगुणी हैं, जो कि विराट मनुष्य जाति
का समुदाय है। वे वैसे ही किसी गुरु और शास्त्र में उलझे न थे। क्योंकि इतना भी उपद्रव वे लेने को राजी नहीं। वे अपने आलस्य में पड़े थे। वे तो शास्त्रों से वैसे ही थके थे, क्योंकि शास्त्र कहते हैं, उठो! जागो! शास्त्रों से वैसे ही नाराज थे, कि नींद हराम करते हैं! गुरुओं के पीछे वे कभी गए नहीं थे, क्योंकि उतना चलने की भी उनमें इच्छा नहीं जगी थी; उतना आलस्य भी छोड़ने की हिम्मत न थी। उन्होंने अपनी नींद में ही मुझे सुना। उन्होंने कहा, बड़ा धन्यवाद! तो हम बिल्कुल ठीक थे कि हम तो पहले ही से
न पकड़े थे। न किसी शास्त्र को पकड़ा, न किसी गुरु को पकड़ा, न किसी की झंझट में पड़े। हम तो पहले ही से विश्राम कर रहे थे। आपने हमें निश्चिंत कर दिया। उन्होंने करवट ली, वे सो गए।
ऐसा पंद्रह वर्ष निरंतर मुल्क में लाखों लोगों के साथ देखकर मुझे लगा
कि कुछ करना पड़ेगा। मैं भला सच कह रहा हूं, इससे कुछ हल नहीं है। मुझे सोचना पड़ेगा कि सुनने वाले पर क्या हो रहा है।
कृष्णमूर्ति ने अब तक नहीं सोचा कि सुनने वाले पर क्या हो रहा है। वे कहते ही चले गए हैं, जो ठीक है। इसलिए कृष्णमूर्ति के पास सिर्फ एक प्रतिशत सत्वगुणी को तो कुछ लाभ होता है, बाकी निन्यानबे प्रतिशत लोगों को भयंकर हानि होती है। और नब्बे प्रतिशत जो आलसी हैं, उनका तो कहना ही क्या। वे बिल्कुल अपनी नींद में ही अपने को मुक्त मान लेते हैं कि बात खतम हो गई। हम तो कुछ पकड़े ही नहीं हैं; पहले ही से नहीं पकड़ा था। यह कृष्णमूर्ति ने तो बाद में बताया; हम तो पहले ही से इसी ज्ञान में जी रहे हैं। तो हम बिल्कुल ठीक हैं, जैसे हैं। वे अपनी तंद्रा में गहन हो जाते हैं।
तो कृष्णमूर्ति ने नब्बे प्रतिशत लोगों के लिए नींद की सुविधा बना दी। नौ प्रतिशत लोगों के लिए दौड़ की सुविधा बना दी, शास्त्र छोड़ना है, गुरु छोड़ना है; वे उस दौड़ में लगे हैं। वह छूटता नहीं। क्योंकि कहीं छोड़ने से कुछ छूटा है? यह जानने से कि पकड़ व्यर्थ है, छूटना अपने आप हो जाता है। जब तुम छोड़ने की कोशिश करते हो, तो उसका मतलब है कि तुम पकड़े तो हो ही।
अब जैसे मैंने मुट्ठी बांध ली, और कोई मुझे समझाए कि मुट्ठी खोलो, तो मुट्ठी खोलने के लिए कुछ करना पड़ेगा! मुट्ठी खोलने के लिए कुछ करना ही नहीं पड़ता; सिर्फ बांधो मत, मुट्ठी अपने आप खुल जाती है। मुट्ठी खुलती है जब तुम नहीं बांधते। क्योंकि खुला होना मुट्ठी का स्वभाव है। लेकिन ऐसे लोग हैं, जो मुट्ठी को बांधे हुए हैं और अब खोलने की भयंकर चेष्टा कर रहे हैं। उनकी खोलने की चेष्टा से मुट्ठी और जकड़ती है, क्योंकि खोलने से कोई मुट्ठी नहीं खुलती।

तुमने कभी किसी सम्मोहन करने वाले, हिप्नोटिस्ट को देखा है? वह लोगों
को एक छोटा-सा खेल दिखाता रहता है। तुम खुद भी करोगे, तो चकित हो जाओगे। वह कह देता है, दोनों मुट्ठियां बांध लो। एक हाथ में दूसरे हाथ की अंगुलियों को गूंथ लो। और वह तुमसे कहता है कि आंख बंद कर लो। और मैं तुमसे कहता हूं कि तुम लाख उपाय करो, यह मुट्ठी खुल न सकेगी। और वह कहता है, यह मुट्ठी जकड़ती जा रही है।
जैसे ही वह कहता है, मुट्ठी जकड़ती जा रही है, तुम अपने मन में सोचते हो,
यह हो ही कैसे सकता है। मुट्ठी मेरी कैसे जकड़ जाएगी? मैं खोल लूंगा। तुम भीतर खिंचने लगे। तुम खोलने की तैयारी करने लगे। और वह कहता जा रहा है, मुट्ठी जकड़ती जा रही है; तुम लाख उपाय करो, खुलेगी नहीं।
पांच मिनट बाद वह तुमसे कहेगा, अब करो उपाय; लगा दो पूरी ताकत। और तुम पूरी ताकत लगाओगे और तुम चकित हो जाओगे कि तुम्हारी मुट्ठी, तुम्हारे हाथ, जकड़ गए, खुलते नहीं हैं।
मनसविद इसको कहते हैं, लॉ आफ दि रिवर्स इफेक्ट। इसको वे कहते हैं, विपरीत परिणाम का नियम। अगर तुम बहुत खोलने में उत्सुक हो गए, तो तुम यह बात ही भूल गए कि बांधी तुमने थी, खोलने का सवाल ही न था। जब तुम खोलने में उलझ गए, तो तुमने पहली बात तो स्वीकार ही कर ली कि बंधी है। बस, वहीं भूल हो गई। अब बंधी है, यह स्वीकार हो गया। और तुम्हारे शरीर ने स्वीकार कर लिया कि यह बंधी है, और तुम उसके विपरीत लड़ने लगे। तुम खोल न पाओगे। तुम खोल नहीं सकते।
तुम जिससे बचना चाहोगे, उसी में उलझ जाओगे। कभी तुमने साइकिल चलानी सीखी शुरू-शुरू में! साठ फीट चौड़ा सुपर-हाईवे हो, कोई न हो रास्ते पर। तुम अकेले साइकिल चलाने वाले हो, सिखाने वाले ने तुम्हें बिठा दिया। थोड़ी दूर साथ चला और फिर तुम्हें छोड़ दिया। दिखाई लाल पत्थर पड़ता है तुम्हें किनारे पर। साठ फीट चौड़ा रास्ता है। और वह लाल पत्थर वहां गणेश जी जैसा शांत बैठा है; कुछ बीच में आएगा नहीं। मील का पत्थर है। तुम घबड़ाए कि कहीं पत्थर से न टकरा जाएं! बस शुरुआत हो गई।
अब कहीं पत्थर से न टकरा जाएं, यह कोई सवाल था साठ फीट चौड़े रास्ते पर! निशाना लगाने वाला भी अगर निशाना लगाकर जाए, तो ही टकरा सकता है; उसके भी चूक जाने का डर है। मगर यह नया सिक्खड़ नहीं चूकने वाला है। जैसे ही इसको ख्याल आया कि कहीं टकरा न जाएं, अब इसको रास्ता नहीं दिखाई पड़ता। अब इसकी आंख लाल पत्थर पर जमी है, और इसने बचना शुरू कर दिया; इसका हैंडल घूमने लगा; कि टकराए! मरे! अब इसने बचना शुरू किया कि यह गया।
यह उस चीज से बच रहा है, जिससे बचने का कोई सवाल न था। यह टकराएगा! वह लाल पत्थर हिप्नोटिक हो जाएगा। वह खींच लेगा। यह जाकर भड़ाम से उस पर गिरेगा। और यह कहेगा, हम पहले से ही जानते थे कि यह होगा।
मगर यह साठ फीट चौड़ा रास्ता खाली पड़ा था। तुम इसमें से निकल न सके! कुछ कारण है भीतर। तुम जिससे बचना चाहते हो, तुमने स्वीकार कर लिया कि बचना असंभव है। तुम जिससे बचना चाहते हो, तुमने मान लिया कि फंस गए। तुम्हारी मान्यता में ही सारा सम्मोहन है।
तो जिनको कृष्णमूर्ति कहते हैं, छोड़ दो, छोड़ दो... । चालीस साल से वह कहते आ रहे हैं; वे कह रहे हैं, बचो पत्थर से, लाल पत्थर है। वे सिक्खड़ जो साइकिल पर सवार हैं, जितना तुम उनसे कहो कि बचो, लाल पत्थर है, लाल पत्थर से बचना, अब वे मुश्किल में पड़े। अब वह लाल पत्थर ही दिखाई पड़ता है जागते, सोते, सपने में; बच नहीं सकते। वे उसी पत्थर पर गिरेंगे।
और जब गिरेंगे, तो कहेंगे कि कृष्णमूर्ति ठीक ही कह रहे थे। पहले ही
से बेचारे समझा रहे थे कि इससे बचो, नहीं तो उलझ जाओगे। अब उलझ गए। अब उनकी हिम्मत टूट जाएगी साइकिल पर चढ़ने की। क्योंकि जब भी वे चढ़ेंगे, सब जगह लाल पत्थर हैं सरकार की कृपा से। जहां जाओ, लाल पत्थर हैं। सब जगह मंदिर हैं, मस्जिद हैं, शास्त्र हैं, गुरु हैं, सब तरफ लाल पत्थर हैं। कहीं भी गए, फंसे।
और वे जो नब्बे प्रतिशत हैं, वे कहते हैं कि बिल्कुल ठीक, तुम्हें बाद में पता चला कृष्णमूर्ति, हमें पहले ही मालूम है। इसलिए हम झंझट में पड़े

ही नहीं; हम पहले ही से सो रहे हैं! जो ज्ञानी हैं, वे पहले ही से विश्राम कर रहे हैं।
कृष्ण कहते हैं, हे अर्जुन, जो मनुष्य शास्त्र-विधि से रहित... ।
शास्त्र क्या है? शास्त्र की परिभाषा क्या है? शास्त्र किसे कहते हैं? शास्त्र कहते हैं शास्ताओं के वचन को। शास्ता कहते हैं जिसने शासन दिया, अनुशासन दिया, डिसिप्लिन दी; जिसने चलने का मार्ग, व्यवस्था दी। जो चला, जो पहुंचा और जिसने पहुंचकर खबर दी कि थोड़े-से सूचक हैं, तुम्हारे रास्ते पर उपयोगी हो जाएंगे।
बुद्ध को हम शास्ता कहते हैं, महावीर को शास्ता कहते हैं। उनके वचनों
को हम शास्त्र कहते हैं। और उनके वचनों में जो कहा गया है, उसको हम शासन या अनुशासन कहते हैं।
जिन्होंने जाना, उनके वचनों का संग्रह है शास्त्र। अगर तुम समझदार हो, तो खूब लाभ ले सकते हो। नासमझ हो, तो तुम किसी भी चीज से लाभ नहीं ले सकते, नुकसान ही लोगे। शास्त्र का कसूर नहीं है। कसूर होगा तो तुम्हारा होगा। शास्त्र कोई सिर पर रखकर ढोने की चीज नहीं है; न चंदन-तिलक लगाकर पूजा करने की चीज है। शास्त्र उपयोग करने की चीज है; उसकी उपयोगिता है। शास्त्र में संगृहीत हैं वचन, जानने वालों के। तुम जरा होशपूर्वक समझने की कोशिश करोगे, तो शास्त्र से तुम्हें बड़े रहस्य उपलब्ध हो जाएंगे। पकड़ना मत उनको। उनको तरल रहने देना; उनको ठोस नियम मत बना लेना। क्योंकि समय बदलता, परिस्थिति बदलती, चेतना भिन्न होती। तो तुम बिल्कुल रूढ़ की तरह मत चलने लगना, लकीर के फकीर मत हो जाना, कि शास्त्र में ऐसा लिखा है, तो ऐसा ही करेंगे।
शास्त्र संकेत देते हैं, उपदेश नहीं। और वह रहस्य ऐसा है कि उसे ठीक-ठीक पूरा का पूरा बांधा नहीं जा सकता। सिर्फ इशारे किए जा सकते हैं। इशारे का मतलब होता है, समझने की कोशिश करना इशारे को; उसका उपयोग करने की कोशिश करना। लेकिन उसके लकीर के फकीर होकर अंधे अनुयायी मत हो जाना।
कृष्ण कहते हैं कि शास्त्र-विधि से जो रहित हैं... ।
और बहुत-से लोग शास्त्र का उपयोग न करना चाहेंगे, क्योंकि वह भी उनके अहंकार के विरोध में है। उनके रहते कोई दूसरा ज्ञानी कैसे हो गया पहले? उनके रहते वेद लिख लिए गए? यह हो ही नहीं सकता। वेद तो वे ही लिख सकते हैं। और अभी वे ज्ञान को उपलब्ध नहीं हुए!
अज्ञानी शास्त्रों को मानने को राजी नहीं होता; इशारे भी लेने को राजी नहीं होता। वह यह ही नहीं मान सकता कि मेरे सिवाय कोई और भी मुझसे पहले ज्ञान को उपलब्ध हो सकता है। वही तो अहंकार की पकड़ है, प्रमाद है। तो वह मनोकल्पित साधनाएं करता है, शास्त्रों की नहीं सुनता।
उनमें संकेत हैं, सावधानियां हैं, हिफाजतें हैं; जो चले हैं, उन्होंने रास्ते के कंटकों के संबंध में बताया है। जंगली जानवरों के हमले का डर है; बीहड़ रास्ते हैं, भटक जाने की संभावना है। एकांत पगडंडियां हैं, जिन पर कोई यात्री भी न मिलेगा, जो तुम्हें बताए कि तुम भूल गए, या ठीक हो, या गलत हो। उस अनजान के संबंध में कुछ सूचनाएं शास्त्रों में संगृहीत हैं। वे बहुमूल्य हैं। उनको समझकर--शास्त्र को पकड़कर नहीं--उनको समझकर तुम्हें अपनी यात्रा पर जाना है।
बुद्ध ने कहा है, हम मार्ग बता सकते हैं, लेकिन तुम्हारे लिए चल तो नहीं सकते। चलना तुम्हें ही होगा; पहुंचना भी तुम्हें होगा। तुम हमारी बात को सुन लेना, पकड़ मत लेना। बात को समझ लेना, फिर अपने ही बोध और अपनी ही साक्षी-चेतना और अपने ही ध्यान से गति करना। अंतिम रूप में तो तुम्हीं निर्णायक रहोगे। लेकिन अगर तुमने हमें सुना है, तो कम से कम तुम उन भूलों से बच जाओगे, जो हमने कीं।
इस बात को ठीक से समझ लो। शास्त्र तुम्हें सत्य तक नहीं पहुंचा सकते, लेकिन बहुत-से असत्यों से बचा सकते हैं। उनका उपयोग नकारात्मक है। वे तुम्हें सत्य तक नहीं पहुंचा सकते, लेकिन सत्य के मार्ग पर बहुत-सी भ्रांतियां जो हो सकती हैं, उनसे तुम्हें बचा सकते हैं। तुम्हारा बहुत-सा भटकाव बच सकता है, अगर तुम उनका उपयोग करना जान लो।

लेकिन तुम्हारी हालत ऐसी है, जैसे मैं देखता हूं कई लोगों को, कार में रखे हुए हैं नक्शा; लेकिन बस वह रखा रहता है। उस नक्शे का न तो उन्हें उपयोग पता है कि कैसे? क्योंकि नक्शे को देखना आना चाहिए। नक्शे की भाषा आनी चाहिए।
नक्शा तो संकेत है, संकेत लिपि है, उसका कोड है। रास्ता तो मीलों का है, नक्शे पर इंचभर का है। नक्शे को समझना आना चाहिए, नक्शे को सीधा रखकर पढ़ना आना चाहिए, नक्शे की संकेत लिपि मालूम होनी चाहिए। और नक्शा तो केवल सूचक है, वह कोई फोटोग्राफ थोड़े ही है। उसमें कोई सारी चीजें थोड़े ही आ गई हैं। सारी आ भी नहीं सकतीं। और सारी आ जाएं, तो तुम कार में लेकर कैसे चलोगे! वह तो सिर्फ प्रतीक है। जरा से चिह्न हैं।
अगर नक्शे का तुम ठीक उपयोग करो, तो एक बात पक्की है कि तुम कम भटकोगे।
कई मार्ग, जिन पर तुम जा सकते थे, न जाओगे।
शास्त्र का उपयोग नकारात्मक है; गुरु का उपयोग विधायक है। क्योंकि शास्त्र मुरदा है, वह विधायक नहीं हो सकता, वह नकारात्मक है। पर उसका मूल्य है। इतना ही क्या कम है कि सौ भूलें होती हों, निन्यानबे हुईं। उतना समय बचा; उतना जीवन बचा। और कौन जानता है, निन्यानबे भूलें करके तुम इतने थक जाते, हताश हो जाते, कि यात्रा ही छोड़ देते।
शास्त्र बचाता है भूल करने से; गुरु सम्हालता है सही करने की तरफ। शास्त्र और गुरु का उपयोग ऐसा है, जैसे कभी तुमने कुम्हार को घड़ा बनाते देखा हो। चाक पर चढ़ा देता है घड़े को, एक हाथ भीतर कर लेता है, और एक हाथ घड़े के बाहर कर लेता है। बाहर के हाथ से थपकी देता है, घड़े की दीवार बनाता है। भीतर के हाथ से सम्हालता है भीतर के शून्य को। दोनों हाथ घड़े को बनाने में समर्थ हो जाते हैं। बाहर के हाथ से चोट करता जाता है, भीतर के हाथ से सम्हालता रहता है।
शास्त्र बाहर से सम्हालते हैं, गुरु भीतर से। एक दिन तुम्हारा घड़ा पककर तैयार हो जाता है। जब तक तुम कच्चे हो, तब तक सम्हालने वाले की जरूरत है। जब तक तुम आग से नहीं गुजर गए, तब तक तुम अपने ही बल से चलने की कोशिश करोगे, तो पहुंचना करीब-करीब असंभव है।
मनोकल्पित तप करते हैं... ।
क्योंकि उनका अहंकार यह नहीं मान सकता कि वे किसी का सहारा लें।
दंभ और अहंकार से युक्त हैं, कामना, आसक्ति, बल और अभिमान से युक्त हैं... ।
अहंकार लक्षण है तामसी व्यक्ति का। अहंकार लक्षण है राजसी व्यक्ति का भी। अहंकार शेष रहता है सात्विक व्यक्ति में भी। लेकिन तीनों में अहंकार की प्रक्रियाएं अलग हो जाती हैं।
तामसी व्यक्ति में अहंकार होता है सोया हुआ। राजसी व्यक्ति में अहंकार होता है दा.ैडता हुआ, गतिमान, गत्यात्मक, डायनैमिक। सात्विक व्यक्ति में अहंकार होता है जागा हुआ, लेकिन होता है।
साधु में भी अहंकार होता है, जागा हुआ। अभी मिट नहीं गया है। बड़ा विनम्र हो गया है, सूक्ष्म हो गया है, पारदर्शी हो गया है, आर-पार देख सकते हो, लेकिन अभी परदा मौजूद है।
अहंकार मिटता तो है जब तीनों ही शून्य हो जाते हैं। एक एक को जब उपलब्ध होता है, तभी पूरा जाता है।
तामसी वृत्ति का व्यक्ति अपने ही ढंग से सोचता रहता है; उलटे-सीधे काम करता रहता है। न शास्त्र की सुनता, न गुरु की, सिर्फ अहंकार की सुनता है।
तथा जो शरीररूप से स्थित भूत-समुदाय को और अंतःकरण में स्थित मुझ अंतर्यामी को भी कृश करने वाले हैं, उन अज्ञानियों को आसुरी स्वभाव वाला जान।
ऐसे लोग कई उलटे-सीधे काम करते हैं। कृष्ण बड़ी अनूठी बात कह रहे हैं। कहते हैं कि न केवल वे शरीर को सताते हैं--उपवास करेंगे, भूखे मरेंगे, शरीर को कसेंगे, जलाएंगे, काटेंगे। क्योंकि अहंकार सदा लड़ना चाहता है, या तो दूसरे से लड़े या खुद से लड़े। बिना लड़े अहंकार बच नहीं सकता।
तो जो लोग दूसरों से नहीं लड़ते... । दुनिया में दो तरह के लड़ने वाले लोग हैं। एक, जो बाजार में लड़ रहे हैं दूसरों से, प्रतियोगिता, प्रतिस्पर्धा।

और एक वे हैं, जो जंगलों में चले गए हैं, आश्रमों में बैठ गए हैं, और लड़ रहे हैं अपने से। मगर लड़ाई जारी है।
कृष्ण कहते हैं कि न केवल ऐसे अहंकारी तामसी व्यक्ति अपने शरीर से लड़ने लगते हैं, अपने शरीर को काटने और मारने लगते हैं, बल्कि मुझ अंतर्यामी को, जो उनके भीतर छिपा हूं, मुझको भी कृश करते हैं, मुझे भी सताते हैं।
एक बात ध्यान रखना, सताने से कुछ होगा नहीं, वह हिंसा है। शरीर की सुरक्षा करना और भीतर के अंतर्यामी की भी। सुरक्षा का अर्थ यह नहीं है कि तुम सुख और भोग में डूबे रहना। क्योंकि सुख और भोग में डूबा हुआ भी शरीर को नष्ट करता है और भीतर के अंतर्यामी को सताता है। भोगी भी सताते हैं, एक ढंग से; त्यागी भी सताते हैं, दूसरे ढंग से।
तुम मध्य में रहना, निरति। तुम संतुलन साधना। न तो बहुत भोजन देना, क्योंकि बहुत भोजन से भी शरीर को कष्ट होता है। न भूखा रखना, क्योंकि भूखा रखने से भी कष्ट होता है। न तो अति श्रम करना, क्योंकि अति श्रम से कष्ट होता है। न बिस्तर पर ही पड़े रहना, क्योंकि अति विश्राम भी शरीर को गलाता और नष्ट करता है। तुम सदा मध्य में होना; अति मत करना। तो तुम अपने शरीर और अपने भीतर छिपे अंतर्यामी, दोनों को एक शांत समरसता का मार्ग बता सकोगे। मुझ अंतर्यामी को भी कृश करने वाले हैं, उन अज्ञानियों को आसुरी स्वभाव वाला जान।
वे असुर हैं। तमस से घिरे हैं।
अहंकार तमस का गहनतम रूप है; वह अमावस है अंधेरी रातों में। रजस से भरा हुआ व्यक्ति सप्तमी-अष्टमी का चांद है, आधा अंधेरा, आधा ज्योति। सत्व से भरा व्यक्ति पूर्णिमा की रात है, पूरे प्रकाश से भरा। लेकिन रात है। तीनों के जो बाहर आ गया, उसका सूर्योदय होता है; उसके जीवन में सुबह होती है।
अमावस को बदलो धीरे-धीरे आधी रोशनी, आधी अंधेरी रात में। आधी अंधेरी, आधी रोशनी से भरी रात को धीरे-धीरे बदलो पूर्णिमा की रात में। तब तुम्हें वह मार्ग मिल जाएगा, जो सुबह तक ले आता है।
सुबह बहुत दूर नहीं है, थोड़ी-सी समझ और भीतर का थोड़ा-सा नया समायोजन,
बस इतना ही चाहिए।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग आठ
गीता दर्शन अध्याय 17
चौथा प्रवचन

संदेह और श्रद्धा

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमंशृणु।। 7।।
और हे अर्जुन, जैसे श्रद्धा तीन प्रकार की होती है, वैसे ही भोजन भी सबको अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार तीन प्रकार का प्रिय होता है। और वैसे ही यज्ञ, तप और दान भी सात्विक, राजसिक और तामसिक, ऐसे तीन-तीन प्रकार के होते हैं। उनके इस न्यारे-न्यारे भेद को तू मेरे से सुन।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः आप कहते हैं कि पदार्थ की खोज में जो स्थान संदेह का है, धर्म की खोज में वही स्थान श्रद्धा का है। और पदार्थ की खोज में मैंने इतनी लंबी यात्रा की है कि संदेह मेरा दूसरा स्वभाव बन गया है; वह मेरी चमड़ी में ही नहीं, मांस-मज्जा में समाया है। इस हालत में अपने मूल स्वभाव यानी श्रद्धा को उपलब्ध होने के लिए मैं क्या करूं?

संदेह पर संदेह करें, तभी संदेह पूरा होता है। अभी संदेह की यात्रा पूरी नहीं हुई। एक संदेह करने को बाकी रह गया है। वह है, संदेह पर संदेह। और यह आश्चर्य की बात है कि जो लोग हर चीज पर संदेह करते हैं, वे संदेह पर संदेह क्यों नहीं करते? दीया तले अंधेरा रह जाता है। जिस दिन तुम संदेह पर भी संदेह कर सकोगे, उसी दिन श्रद्धा का सूत्रपात हो जाएगा।
संदेह को दबाने से श्रद्धा नहीं आती; संदेह को पूरा कर लेने से ही आती है। संदेह के विपरीत नहीं है श्रद्धा, संदेह से आगे है, संदेह से ऊपर है। संदेह की यात्रा को भरपूर पूरा कर लो; उसे अधूरा मत छोड़ना। उससे अगर बचकर चले, अधूरा छोड़ा, कुछ बचा रहा, तो वह लौट-लौटकर श्रद्धा को खंड करेगा, भग्न करेगा।
जो भी अनुभव अधूरा रह जाएगा, वह अनेक-अनेक रूपों में वापस लौटता है। अनुभव को पूरा किए बिना कोई उपाय नहीं है। डरो मत।
मैं उन आस्तिकों जैसा नहीं हूं, जो तुमसे कहते हैं, संदेह मत करो। मैं तुमसे कहता हूं, पूरा संदेह कर लो। क्योंकि मेरी श्रद्धा संदेह से टूटती नहीं, नष्ट नहीं होती। श्रद्धा विराट है। तुम्हारे संदेह से श्रद्धा को कोई भी भय नहीं है। तुम कर ही डालो उसे पूरा। और तुम पाओगे, जैसे-जैसे संदेह पूरा होता है, वैसे-वैसे एक जीवंत प्रकाश श्रद्धा का तुम्हारे भीतर आना शुरू हो जाता है।
संदेह कोई बड़ी महत्वपूर्ण बात नहीं है। संदेह है इसलिए, क्योंकि तुम भयभीत हो। संदेह भय का लक्षण है। कैसे भरोसा करें? कहीं दूसरा धोखा न दे दे! कहीं दूसरा कोई चालबाजी न करता हो! कहीं कोई शड्यंत्र न चल रहा हो तुम्हारे चारों तरफ! कोई तुम्हें धोखा देने, डुबाने की, मिटाने की कोशिश में न लगा हो!
संदेह का अर्थ है, भयभीत आदमी की सुरक्षा। जितना भयभीत आदमी होता है, उतना संदेह करता है; जितना कायर आदमी होता है, उतना ज्यादा संदेह करता है। इसलिए संदेह कोई बहुत बलशाली बात नहीं है; वह तो कमजोर का लक्षण है।
पर तुम संदेह कर लो और संदेह करके तुम देख लो ठीक तरह कि संदेह से कोई सुरक्षा नहीं होती। संदेह से भला तुम दूसरे से बच जाते हो, लेकिन संदेह ही तुम्हें खा जाता है। तुम दूसरे से संदेह कर लेते हो, तो हो सकता है, दूसरा तुम्हें नुकसान न पहुंचा सके।
लेकिन दूसरा नुकसान क्या पहुंचा सकता था? हो सकता था, तुम्हारी जेब काट लेता; पांच पैसे लेने थे, वहां दस पैसे ले लेता। हो सकता था, तुम सड़क के भिखारी हो जाते, अगर तुम लोगों पर भरोसा करते। और अभी तुम महल में बैठे हो। लेकिन तुम यह भूले जा रहे हो कि संदेह तुमसे कुछ छीने ले रहा है, जो बहुत

मूल्यवान है। रक्षक भक्षक हुआ जा रहा है। वह तुमसे तुम्हारी आत्मा छीने ले रहा है; वह तुमसे तुम्हारी परमात्मा की संभावना छीने ले रहा है। बचा रहे हो दो कौड़ी, खो रहे हो सब कुछ।
जब तुम पूरा संदेह करोगे, तब तुम्हें यह भी दिखाई पड़ेगा। तब तुम संदेह
से भी सावधान हो जाओगे, कि संदेह भी कुछ छीने ले रहा है, मिटाए डाल रहा है। जीवन में जो भी मूल्यवान है, संदेह सभी को मिटा देता है। तुम प्रेम नहीं कर सकते संदेह के साथ। तुम मित्रता नहीं कर सकते संदेह के साथ। संदेह करने वाले का कहीं कोई मित्र होता है? कैसे हो सकता है? कहीं संदेह करने वाला किसी को प्रेम कर सकता है? कैसे कर सकता है? संदेह की दीवाल सदा बीच में खड़ी रहेगी।
संदेह करने वाला डरा हुआ, कंपता हुआ जीएगा। संदेह नरक है। उसमें तुम भयभीत ही रहोगे; उसमें कभी तुम अभयपूर्वक खड़े न हो सकोगे। न तुम्हारे जीवन में मित्रता की गंध आएगी, न प्रेम का प्रकाश आएगा। तुम्हारा जीवन कीड़े- मकोड़े की तरह होगा। संदेह से छिपे हो अपनी खोल में, डरे हो, कंप रहे हो, बाहर निकल नहीं सकते, फैल नहीं सकते।
कछुए को देखा है! भयभीत हो जाता है, तो सब हाथ-पैर सिकोड़कर भीतर छिप जाता है। ऐसे ही तुम सिकुड़ गए हो अपनी देह में, जैसे कछुआ अपनी देह में छिप जाता है। और देह में जो छिप गया है, वह कैसे परमात्मा को जानेगा? वह कैसे स्वयं को जानेगा?
भयभीत के लिए कोई ज्ञान नहीं है। भयभीत लाख उपाय करे, तो भी ज्ञान को न जान सकेगा। ज्ञानियों ने अभय को ज्ञान का पहला कदम माना है। जो व्यक्ति अभय को उपलब्ध हो जाता, उसके ही जीवन में सुबह होती है, अन्यथा रात घिरी रहेगी। रात संदेह की है, सुबह श्रद्धा की।
रात से पार हो जाओ; रात के अंधेरे को छिपाकर मत बैठे रहो। बहुत-से लोग यही कर रहे हैं। संदेह तो मौजूद है और ऊपर से श्रद्धा कर लिए हैं, इससे बड़ी दुविधा में पड़ गए हैं। ऊपर-ऊपर श्रद्धा है, भीतर-भीतर संदेह है। हाथ जोड़कर मंदिर में खड़े हैं; हाथ झूठे जुड़े हैं, क्योंकि हृदय में संदेह सरक रहा है। प्रार्थना कर रहे हैं, आकाश की तरफ चेहरा उठाया हुआ है। बस, चेहरा ही उठा है, आत्मा नहीं उठी है। क्योंकि भीतर तो संदेह है। पक्का है नहीं कि परमात्मा है।
लोग कहते हैं, पिता कहते हैं, मां कहती है, पूर्वज कहते हैं, शास्त्र कहते हैं, गुरु कहते हैं; जब इतने कहते हैं, तो होगा। लेकिन तुम्हारी कोई प्रतीति नहीं है, तुम्हारा कोई भरोसा नहीं है। और जब इतने लोग कहते हैं, तो पूजा कर लेनी ठीक ही है। कौन झंझट में पड़े; कहीं हो ही। कहीं बाद में पता चले कि है।
तो तुम बड़ी कुशलता कर रहे हो। तुम परमात्मा के साथ भी गणित से चल रहे हो। तुम्हारा प्रेम भी हिसाब-किताब है। तुम्हारी प्रार्थना भी खाते-बही में लिखी है। तुम कर क्या रहे हो?
तुम यह कर रहे हो कि कहीं मरने के बाद पता चला कि परमात्मा है, तो यह तो
कह सकूंगा कि मैंने श्रद्धा की थी, मंदिर गया था, मस्जिद-गुरुद्वारा, तेरी पूजा-प्रार्थना की थी।
लेकिन परमात्मा न तुम्हारी पूजा-प्रार्थना से राजी होता है, न तुम्हारे मंदिर-मस्जिद जाने से। जिस दिन श्रद्धा का मंदिर तुम्हारे भीतर उठता है, जिस दिन श्रद्धा का कलश तुम्हारे भीतर उठता है, बस उसी दिन परमात्मा राजी होता है। उसके पहले तो तुम कुछ और कर रहे थे। तुमने न तो प्रेम किया, न तुमने परमात्मा को चाहा, न पुकारा।
झूठी है तुम्हारी श्रद्धा, अगर संदेह के ऊपर तुमने उसको रंग-रोगन की तरह लगा लिया है। किससे छिपा रहे हो? किससे बचा रहे हो? अगर संदेह है, तो मैं कहता हूं, उसे तुम मवाद की तरह समझो, उसे निकल जाने दो। उसके निकल जाने से तुम स्वस्थ हो जाओगे।
झूठे आस्तिक मत बनना। सच्चा नास्तिक झूठे आस्तिक से बेहतर है। कम से
कम सच्चा तो है, कम से कम यह तो कहता है कि मुझे भरोसा नहीं है, तो मैं कैसे प्रार्थना करूं? इतनी प्रामाणिकता तो है। कहता है, मैंने किसी परमात्मा को जाना नहीं, तो मैं कैसे हाथ जोडूं? किसके लिए हाथ जोडूं? मुझे कोरे आकाश

के अतिरिक्त कोई दिखाई नहीं पड़ता। मंदिर जाता हूं, तो पत्थर की मूर्तियां दिखाई पड़ती हैं।
झुकने की झूठी बात नास्तिक नहीं कर पाता। और मैं तुमसे कहता हूं, नास्तिक ही कभी ठीक अर्थों में आस्तिक हो पाते हैं। झूठे आस्तिक तो झूठे ही बने रहते हैं। आस्तिक तो होना ही मुश्किल है उनके लिए, अभी वे नास्तिक भी नहीं हुए!
नास्तिकता यानी संदेह, आस्तिकता यानी श्रद्धा। नास्तिक आस्तिक के विपरीत नहीं है, जैसे संदेह श्रद्धा के विपरीत नहीं है। आस्तिक नास्तिक के आगे है, जैसे श्रद्धा संदेह के आगे है। जहां संदेह समाप्त होता है, वहां श्रद्धा शुरू होती है। जहां नास्तिकता समाप्त होती है, वहां आस्तिकता शुरू होती है। लेकिन नास्तिकता से गुजरना जरूरी है।
दुनिया में इतना अधर्म है, वह इसीलिए है कि यहां झूठे धार्मिक हैं। यहां सच्चे नास्तिक भी नहीं हैं। यहां प्रार्थना भी पाखंड है। यहां प्रेम भी ऊपर की बकवास है। यहां पूजा भी ढोंग है। यहां सारा व्यवहार पाखंड है, हिपोक्रेसी है, धोखा है।
और तुम जानते हो भलीभांति। क्योंकि तुम तो जानोगे ही कि तुमने जब हाथ जोड़े थे, तो भीतर तुम्हारी आत्मा नहीं जुड़ी थी। और तुमने जब सिर झुकाया था, तो तुम नहीं झुके थे। और जब तुमने कहा था कि हां, भरोसा करता हूं, तब तुम्हारी बुद्धि तो कह रही थी; तुम्हारा हृदय अनम्य था, नहीं झुका था, जरा भी पिघला नहीं था। ऊपर-ऊपर तुमने श्रद्धा ओढ़ी थी, वस्त्रों की भांति थी; आत्मा तो तुम्हारी संदेह से भरी थी।
मैं तुम्हें आस्तिक बनने को नहीं कहता। क्योंकि आस्तिक तो तुम बन कैसे सकोगे? वह तो ऊपर की सीढ़ी है। कम से कम नास्तिक तो बन जाओ। पहली सीढ़ी तो पार कर लो। ऊपर की सीढ़ी तो अपने आप आ जाती है। जिस दिन नीचे की सीढ़ी पूरी होती है, अचानक द्वार खुल जाता है, ऊपर की सीढ़ी आ गयी।
संदेह करो, परिपूर्ण आत्मा से संदेह करो। संदेह मार्ग है। लेकिन अधूरे में मत रुक जाना; संदेह पूरा कर लेना। जिस दिन तुम संदेह पूरा करोगे, एक नई विधा खुलती है, वह है, संदेह पर संदेह। और संदेह पर संदेह ही संदेह को काट देता है, जैसे कांटे को कांटा निकाल लेता है। संदेह ही संदेह को काट देता है। और जिस दिन दोनों कांटे बाहर हो जाते हैं, अचानक तुम पाते हो कि श्रद्धा की बाढ़ आ गई।
और जब श्रद्धा की बाढ़ आती है, तो उसका यह अर्थ नहीं होता कि तुम परमात्मा में भरोसा करते हो; उसका इतना ही अर्थ होता है कि तुम भरोसा करते हो। उसका यह अर्थ नहीं होता कि तुम मंदिर की मूर्ति में भरोसा करते हो; उसका इतना ही अर्थ होता है कि भरोसा पैदा हुआ। अब मस्जिद में भी भरोसा है, मंदिर में भी भरोसा है; कुरान में भी, वेद में भी; चोर में भी, साधु में भी। बड़ी प्रकांड क्रांति है श्रद्धा की। उससे बड़ी कोई क्रांति नहीं है। तुम श्रद्धा करते हो। अब तुम जानते हो कि संदेह कर-करके देख लिया, कुछ पाया नहीं, कुछ बचा नहीं, सिर्फ गंवाया; कौड़ियां इकट्ठी कीं, हीरे खो दिए। अब तुम पूरी तरह बदल जाते हो। अब तुम कहते हो, कौड़ियां जिनको ले जानी हों, वे ले जाएं। हम कौड़ियों को पकड़ने में अब हीरों को न खोएंगे। अब तुम कहते हो, हम श्रद्धा का हीरा बचाएंगे।
जिसको मीरा या कबीर कहते हैं, ऐ री मैंने राम-रतन धन पायो। वह श्रद्धा
का नाम है, राम-रतन धन। अब सब भ्रम टूट गया, सब संदेह टूटा; राम-रतन धन पाया। मिला है, कोहिनूर हीरा मिल गया, अब कौन कंकड़-पत्थर बीनता है!
और जब तुम्हारी आस्तिकता नास्तिकता का अतिक्रमण होगी, ट्रांसेंडेंस होगी, और जब तुम्हारी श्रद्धा संदेह को पूरा जीने से आएगी, तब तुम्हारी श्रद्धा को कोई भी न तोड़ सकेगा। तोड़ने की संभावनाएं तो तुम पहले ही पार कर चुके। अब तुम्हारी नास्तिकता दोबारा नहीं आ सकती। तुम उसे जी लिए, तुमने उसे चुका दिया, तुम उसे मरघट तक पहुंचा आए, तुम उसे चिता पर जला आए। अब वह बची ही नहीं, राख हो गई। अब तुम्हारी आस्तिकता को कोई डांवाडोल न कर सकेगा। हजार नास्तिक इकट्ठे हों और हजार-हजार तर्क दें, तो भी आस्तिक का रोआं नहीं कंपता।

लेकिन अभी तो तुम डरे हुए हो। और तुम जिन धर्मों में पले हो, पाले गए हो, वे धर्म तक डरे हुए हैं। वे तुम्हें समझाते हैं कि नास्तिक को सुनना मत, कान बंद कर लेना।
तुमने एक आदमी की कहानी सुनी होगी, घंटाकर्ण की, कि उसने अपने कानों में घंटे लटका लिए थे। क्योंकि वह राम का भक्त था और गांव के लड़के शैतानी करते थे, आवारा लड़के। और धीरे-धीरे पूरा गांव उसका मजा लेने लगा। तो लोग उसके कान के पास आकर कृष्ण का नाम ले देते।
पुरानी कहानी है, नहीं तो मोहम्मद का लेते। वह और घबड़ा जाता। कृष्ण से
भी घबड़ाता था। क्योंकि वह राम का भक्त था और कृष्ण का नाम पड़ जाए, गलत नाम पड़ गया! श्रद्धा बड़ी कमजोर रही होगी। इतनी छोटी श्रद्धा कि राम में चुक जाए और कृष्ण तक भी न पहुंचे।
ऐसी छोटी श्रद्धा से कहीं पार होओगे? ऐसी छोटी डोंगी से भवसागर पार करना चाहते हो? महायान चाहिए। श्रद्धा ऐसी चाहिए कि सब मंदिर-मस्जिद समा जाएं। राम, कृष्ण, बुद्ध, सब उसमें पड़ जाएं और छोटे हो जाएं और श्रद्धा का आकाश बड़ा हो, सबके लिए खुली जगह हो। हजार-हजार राम उठें और करोड़-करोड़ कृष्ण, तो भी श्रद्धा के आकाश में कमी न पड़े।
श्रद्धा कोई आंगन थोड़े ही है तुम्हारा कि उसके आस-पास चारदीवारी है। श्रद्धा खुला आकाश है, नीला आकाश है, जिसकी कोई सीमा नहीं।
घंटाकर्ण घबड़ा गया कि यह रोज-रोज गांव मजाक करता है; इनकी तो मजाक है, मेरी जान मुसीबत में है। ऐसा दुश्मन का नाम सुन-सुनकर भ्रष्ट हो जाऊंगा।
और कृष्ण का नाम सुनते ही से श्रद्धा डगमगाती है कि पता नहीं, कृष्ण ठीक हों।
अब कृष्ण और राम बड़े विपरीत प्रतीक हैं। सत्य में दोनों समाए हैं, क्योंकि सत्य में सभी विरोधाभास समा जाते हैं। लेकिन अगर तुम राम और कृष्ण को सीधा-सीधा सोचो, तो बड़े विपरीत हैं।
कहां राम, मर्यादा! और कहां कृष्ण, इनसे ज्यादा अमर्यादा तुम कहीं खोज पाओगे! कहां राम, एक पत्नी व्रती। और कहां कृष्ण, जिनकी गोपियों की कोई संख्या नहीं; जो दूसरों की स्त्रियां भी चुरा लाए। कहां राम, जिनके वचन का भरोसा किया जा सकता है। कहां कृष्ण, जिनके वचन का कोई भरोसा नहीं किया जा सकता। कहें कुछ, करें कुछ! कहा था कि युद्ध में भाग न लेंगे। फिर युद्ध के मैदान पर उतर पड़े। धोखा दे दिया; वचनभंग हो गया। कहां राम... !
तुम सोच सकते हो राम को कि स्त्रियों के कपड़े चुराकर झाड़ पर बैठे हैं! असंभव है। यह बात ही सोच में नहीं आती। लेकिन कृष्ण को कोई अड़चन नहीं है। कृष्ण को कोई अड़चन ही नहीं है, कोई मर्यादा नहीं है, कोई नियम नहीं है। कृष्ण पूरे अराजक, राम अनुशासित। वह मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। और कृष्ण को अगर नाम देना हो, तो वह अमर्यादा पुरुषोत्तम हैं। कोई नियम नहीं मानते, कोई व्रत नहीं मानते, कोई संयम नहीं मानते। वे बाढ़ की तरह हैं। राम तो नहर हैं, सीमा में बंधे, लकीर में चलते हैं। कृष्ण तो गंगा में आई बाढ़ हैं, सब कूल-किनारा तोड़ देते हैं।
तो स्वाभाविक था कि घंटाकर्ण घबड़ाता हो कृष्ण के नाम से। यह घबड़ाने वाला है। सभी धार्मिकों को घबड़ाना चाहिए इस नाम से। यह नाम खतरनाक है। यह तो अराजक नाम है। इससे बड़ा कोई अनार्किस्ट कभी हुआ? इससे बड़ा कोई अराजकतावादी नहीं हुआ। इससे ज्यादा समाज, तंत्र, व्यवस्था, राज्य का कोई विरोधी नहीं हुआ।
तो इन दोनों का कोई ताल-मेल तो नहीं बैठता। लेकिन खुले आकाश में दोनों साथ-साथ हैं। और जिन्होंने खुला आकाश देखा है, वे कहते हैं, ये दोनों ही एक के ही अवतार हैं। राम--आंशिक, सीमा-बद्ध। कृष्ण--पूर्ण, सीमा तोड़कर। लेकिन जो राम में सीमा में प्रकट हुआ है, वही कृष्ण की असीमा में प्रकट हुआ है। जो गंगा का जल नहर में बह रहा है, वही बाढ़ में आया है। और स्वभावतः, बाढ़ का जल खतरनाक है; सभी के काम का नहीं है। खेतों को उजाड़ देगा, घरों को मिटा देगा।
इसलिए कृष्ण के साथ तो खतरे का संबंध है। काम तो नहर से ही लिया जाएगा;
वह सींचेगी, खेतों को भरपूर करेगी, लोगों की प्यास बुझाएगी। राम की उपयोगिता है। कृष्ण के साथ तो जिनको खतरे का अभियान करना हो, वे जाएं।

लेकिन अधिक लोग तो कृष्ण के साथ न जा सकेंगे। अधिक लोगों को तो राम के साथ ही जाना पड़ेगा।
घंटाकर्ण घबड़ा गया होगा कि यह तो अराजकतत्व लोग चिल्लाने लगे। और इनकी तो मजाक है, मेरी जान मुसीबत में है। इनका खेल है और मैं मर मिटूंगा।
ये मेरी श्रद्धा को डगमगाते हैं। तो उसने दोनों कान में घंटे बांध लिए। घंटे बजते रहते, लोग लाख चिल्लाएं कृष्ण का नाम, आवाज भीतर न पहुंचती। जैसा मैं देखता हूं, ऐसा किसी आदमी ने कभी किया हो या न किया हो, लेकिन
सौ में से निन्यानबे आस्तिकों के कानों में घंटे लटके देखता हूं। वे घंटाकर्ण हैं; वे डरे हुए लोग हैं। भीतर भी भय है, बाहर भी भय है। संदेह से पीड़ित हैं। और नास्तिक की बात से डरते हैं। नास्तिक उन्हें कंपा देता है, घबड़ा देता है, क्योंकि उनके भीतर ही संदेह है। नास्तिक उन्हें जगा देता है, उकसा देता है। जैसे किसी ने राख को हिला दिया हो और अंगारा बाहर आ गया। ऐसा नास्तिक उन्हें उकसा देता है। वे डरते हैं; वे दूसरे का शास्त्र नहीं पढ़ते; वे दूसरे की किताब नहीं सुनते; वे दूसरे का वचन नहीं सुनते। वे अपने गुरु की ही सुनते हैं। और कानों में घंटे लटकाए हुए हैं।
जैन हिंदू की सुनने नहीं जाता; हिंदू जैन की सुनने नहीं जाता; मुसलमान गीता नहीं पढ़ता, हिंदू कुरान नहीं पढ़ता। बड़ा डर है। कैसी आस्तिकता है? नपुंसक आस्तिकता है।
आस्तिक तो विराट है, वह सब को सुन सकता है; कोई उसे हिला नहीं सकता। लेकिन यह तो तभी होगा, जब तुम नास्तिकता को पार कर चुके होओ। अगर नास्तिकता भीतर रह गई, तो डर रहेगा।
ऐसा ही समझो कि एक छोटा बच्चा है; खेल-खिलौनों में इसको रस है। इसका शरीर तो बड़ा हो गया, लेकिन इसकी बुद्धि बचकानी रह गई। अब यह सम्हालकर चलता है कि कहीं खेल-खिलौने दिखाई न पड़ जाएं! क्योंकि दिखाई पड़ जाएं, तो यह लोभ संवरण न कर सकेगा। और तब बड़ी हंसी होगी कि लोग कहेंगे, जवान आदमी और तू गुड़िया लिए फिर रहा है!
तो इसने गुड़ियों को छिपा दिया है घर में। दूसरे भी गुड़िया लिए इसके आस-पास घूमें, छोटे बच्चे भी, तो यह घबड़ाता है। क्योंकि इसका रस तो अभी भी गुड़िया में है। अभी भी यह चाहता है कि गुड़िया का विवाह रचा ले। अब भी यह चाहता है कि फिर खेल खेल ले। भीतर यह बचकाना रह गया है; भीतर का बच्चा समाप्त नहीं हुआ। यह प्रौढ़ हुआ ही नहीं है; सिर्फ शरीर से दिखाई पड़ रहा है, ऊपर से दिखाई पड़ रहा है। भीतर! भीतर बाल-बुद्धि है।
तुम भीतर तो नास्तिक हो, संदेह से भरे हो और ऊपर से तुम आस्तिक हो। तुम्हारी प्रौढ़ता सही नहीं है। तुम डरे हुए हो, कहीं कोई यह न कह दे कि ईश्वर नहीं है; क्योंकि तुम्हें भी शक तो है ही। कहीं कोई यह न कह दे कि पत्थर की मूर्ति को क्या पूज रहे हो? यहां क्या है? डरे तो तुम हो ही। दयानंद के जीवन में घटना है। उस घटना को इस भांति तो कभी समझा नहीं गया है। घटना है कि वे पूजा को बैठे हैं। उन्होंने जो मिष्ठान्न चढ़ाए हैं मूर्ति के सामने, एक चूहा ले भागा। एक चूहा! हो सकता है गणेशजी की मूर्ति रही हो। और चूहा तो उनका वाहन है। या शंकरजी की मूर्ति रही हो; वे गणेशजी के पिता हैं; थोड़ा दूर का संबंध है चूहे से।
चूहा मिष्ठान्न ले भागा। दयानंद के मन में संदेह पैदा हो गया कि जो भगवान अपनी रक्षा चूहे से नहीं कर सकता, वह मेरी रक्षा क्या करेगा? उन्होंने मूर्ति-वूर्ति फेंक दी। उसी दिन से वे अमूर्तिवादी हो गए। उस चूहे के द्वारा मिठाई का ले जाना ही आर्यसमाज का जन्म है; उसी दिन आर्यसमाज पैदा हुआ।
लेकिन थोड़ा सोचने जैसा है कि मूर्ति में दयानंद का भरोसा था क्या? अगर भरोसा था, तो एक चूहा भरोसे को तोड़ सकता है? तो चूहा दयानंद से ज्यादा बड़ा महर्षि मालूम होता है।
एक चूहा दयानंद की श्रद्धा को तोड़ दिया। श्रद्धा थी? अगर श्रद्धा होती, तो कौन तोड़ सकता है? श्रद्धा थी ही नहीं, पहले स्थान पर। ऐसे ही झूठी पूजा चल रही थी। लेकिन दयानंद को यह दिखाई नहीं पड़ा कि मेरी श्रद्धा झूठी थी। दयानंद को दिखाई पड़ा, मूर्ति व्यर्थ है। इसे थोड़ा सोचने जैसा है।

अगर दयानंद निश्चित ही आत्म-खोजी होते, तो उनको यह दिखाई पड़ता कि एक चूहे ने श्रद्धा तोड़ दी। मेरे पास श्रद्धा ही नहीं है। और हो सकता है, वह शरारत गणेशजी की ही रही हो कि चूहा ले जा मिठाई, इसकी झूठी श्रद्धा तोड़। लेकिन उस दिन से वे मूर्ति-विरोधी हो गए। वे मूर्ति के प्रेमी कब थे? उनका मूर्ति-विरोध तो समझ में आता है। लेकिन वे प्रेमी कब थे, यह मेरी समझ में नहीं आता। प्रेमी इतनी जल्दी छोड़ देता है प्रेम? प्रेम इतना कमजोर और कच्चा धागा है? प्रेम कोई कच्चे कांच की चूड़ी है? कि ऐसे चूहा गिरा दे और तोड़ दे!
अगर दयानंद की जगह सच में कोई आस्तिक हुआ होता, तो उसने गणेशजी में तो भगवान देखा ही था, चूहे में भी भगवान देखा होता। श्रद्धा का आकाश बड़ा है। और उसने कहा होता, अरे, चूहा भगवान! तो तुम मिठाई ले चले। तो जिसको चढ़ाई थी, पहुंच गई। हम तो सोचते थे, मूर्ति मुरदा है। लेकिन मूर्ति मुरदा नहीं है। मूर्ति ने चूहे की तरफ से हाथ फैलाया और मिठाई ले ली।
अगर श्रद्धा होती, तो ऐसा दिखता। और तब यह मुल्क आर्यसमाज के दुर्भाग्य से बच जाता। लेकिन वह नहीं हो सका। चूहा आर्यसमाज को पैदा करवा गया। संदेह था भीतर।
दयानंद तर्कवादी हैं, आस्तिक नहीं हैं। और कभी आस्तिक नहीं हो पाए। तर्क ही रहा; श्रद्धा कभी न हो पाई। तर्क का ही सब जाल रहा। मरते दम तक भी श्रद्धा पैदा नहीं हो सकी। वे पहले कदम पर ही चूक गए।
उस दिन उन्हें तय करना था कि मेरी नास्तिकता अभी मरी नहीं है, मेरा संदेह अभी मरा नहीं, अभी मैं पूजा के योग्य नहीं। उन्होंने समझा कि यह शंकरजी या गणेशजी पूजा के योग्य नहीं। जानना था कि मैं अभी पूजा का अधिकारी नहीं। अभी इस मंदिर में प्रवेश के मैं योग्य नहीं हुआ; अभी मुझे श्रद्धा खोजनी पड़ेगी।
अगर ठीक आंख होती, तो चूहे ने बता दिया होता कि तुम्हारी श्रद्धा ऊपर-ऊपर है, पतले कागज की तरह चढ़ी है; भीतर संदेह विराजमान है तुम्हारे मंदिर में। चूहा कुछ पैदा कर सकता है जो तुम्हारे भीतर नहीं?
सब संदेह चूहों की तरह तुम्हें कुतर देते हैं, क्योंकि तुम्हारी श्रद्धा कपड़ों जैसी है, वह तुम्हारी आत्मा नहीं है। इसलिए फिर तुम डरते हो कि कहीं कोई ऐसी बात न कह दे, जिससे तुम्हारी श्रद्धा डगमगा जाए।
मैं ग्वालियर की महारानी के घर मेहमान था। उन्होंने पहले मुझे कभी सुना नहीं था। पता नहीं किस भूल-चूक से मुझे बुला लिया। सुनकर वे घबड़ा गईं, बहुत बेचैन हो गईं। साधारण श्रद्धालु जन, जिनकी श्रद्धा में कोई बल नहीं है, कोई बुनियाद नहीं है। शिष्टाचारवश, उनकी आने की भी हिम्मत मेरे पास न रही। उनके ही महल में मैं मेहमान हूं, लेकिन शिष्टाचारवश... । शिष्टाचार वाली महिला हैं।
वे दूसरे दिन मुझे मिलने आईं और कहा कि मेरी हिम्मत नहीं रही आने की आपके पास। जो सुना, उससे मैं तो घबड़ा गई। आप तो हमारी श्रद्धा नष्ट कर देंगे!
मैंने कहा, जो श्रद्धा तुम्हारी मेरे बोलने से नष्ट हो जाए, उसका तुम मूल्य कितना आंकती हो? शब्दों से जो श्रद्धा मिट जाए, वह पानी के बबूलों जैसी कमजोर होगी। शब्द हवा में बने बबूले हैं। मैंने कुछ कहा, तुम्हारी श्रद्धा टूट गई! श्रद्धा है या मजाक कर रखा है?
उन्होंने कहा, जो भी हो, लेकिन अब आप और कुछ मत कहें। मेरा लड़का भी आपसे मिलने आना चाहता था। लेकिन मैंने उसे रोक दिया। क्योंकि वह तो अभी जवान है। हो सकता है, आप उसको बिल्कुल डगमगा दें।
अब यह मां न तो यह देख पा रही है कि इसकी श्रद्धा दो कौड़ी की है। और न
यह देख पा रही है कि जिस दो कौड़ी की श्रद्धा पर यह अपने बेटे को बचा रही है, उसका कितना मूल्य हो सकता है! उससे तुम नाव बनाओगे? उससे तुम भवसागर पार करोगे?
सोना आग से गुजरता है, तो डरता नहीं; कचरा गुजरता है, तो डरता है। कचरा जलेगा।
मैं तुमसे कहता हूं कि संदेह से गुजरकर जो बच जाए, वही श्रद्धा है। संदेह में जो मर जाए, तुम उसे कचरा समझना, वह सोना था ही नहीं। अच्छा हुआ मर

गया। संदेह को धन्यवाद देना। क्योंकि संदेह ने तुम्हें कचरे को बचाने से बचाया, कचरे को सम्हालने से बचाया, नहीं तो तुम कचरे को तिजोड़ी में रखे बैठे रहते।
इस अस्तित्व में कुछ भी व्यर्थ नहीं है; श्रद्धा भी सार्थक है, संदेह
भी सार्थक है। जो जानता है, वह संदेह को भी स्वीकार करता है। लेकिन संदेह पर ही अटक नहीं जाता, आगे जाता है। संदेह महत्वपूर्ण है, सब कुछ नहीं है। एक अंग और है जीवन का, जो श्रद्धा है।
जैसे दो पंखों से पक्षी उड़ता है, जैसे दो पैरों से तुम चलते हो, जैसे
दो आंखों से तुम देखते हो, ऐसे ही संदेह और श्रद्धा दोनों आंखें हैं, दोनों से देखा जाता है। और संदेह की आंख से जब तुम सब देख लेते हो--सबका मतलब है, जब संदेह भी देख लेते हो--तब दूसरी आंख खुलती है। अब तुम श्रद्धा के योग्य हुए, पात्र बने।
संदेह तुम्हें निखारता है, संदेह तुम्हें जलाता है, शुद्ध करता है। संदेह सहयोगी है, मित्र है।
नास्तिकता मेरे लिए आस्तिक की दुश्मन नहीं है। नास्तिकता मेरे लिए आस्तिक की तैयारी है; वह आस्तिक का विद्यापीठ है। वहां आस्तिक निर्मित होता है। और जब कोई धर्म संदेह से डरने लगता है, तब समझ लेना कि वह धर्म मुरदा है।
जब महावीर जिंदा होते हैं, तो वे संदेह से भयभीत नहीं करते अपने शिष्यों को। वे कहते हैं, लाओ तुम्हारे संदेह; पूछो, प्रश्न उठाओ; जो भी तुम्हारे भीतर छिपा है, प्रकट करो; क्योंकि मैं मौजूद हूं, जला दूंगा। बुद्ध जब जिंदा होते हैं, तो वे किसी के होंठ को बंद नहीं करते, होंठ
को सीते नहीं। वे कहते हैं, पूछो, जिज्ञासा करो, संदेह करो! क्योंकि कैसे तुम आगे बढ़ोगे! मैं मौजूद हूं, मैं तुम्हें तुम्हारे संदेह के पार ले चलूंगा।
यही मैं भी तुमसे कहता हूं। तुम्हारे पास जितने संदेह हों, सब ले आओ। तुम्हारा कोई संदेह श्रद्धा का दुश्मन न है, न हो सकता है। संदेह जैसी चीज कहीं श्रद्धा की दुश्मन हो सकती है! संदेह तो अंधेरे जैसा है।
तुमने देखा, अंधेरा कितना ही घना हो, एक छोटे-से दीए को भी बुझा नहीं सकता है। अंधेरे की ताकत क्या? तुमने कभी सोचा यह कि अंधेरा गिर पड़े पहाड़ की तरह और छोटे-से दीए को बुझा दे। असंभव! सारी पृथ्वी पर अंधकार भरा हो और तुम्हारे घर में एक छोटा दीया जलता हो, तो अंधकार उसे बुझा नहीं सकता। अंधेरे की, अंधकार की ताकत क्या?
लेकिन अगर झूठा दीया जला हो, जला ही न हो, आंख बंद करके तुम सोच रहे हो
कि दीया जला है, तो फिर दीया बुझाया जा सकता है। जो जला ही नहीं है, वह बुझ जाएगा; वह बुझा ही हुआ था। आंख बंद करके तुम सपना देख रहे थे।
दयानंद को जिस दिन चूहे ने डगमगा दिया, खाक दयानंद रहे होंगे! उस दिन
वे किसी अंधेरे में दीए के होने की कल्पना कर रहे थे। वह चूहे ने फूंक मार दी, दीया बुझा दिया।
और फिर उनकी चूहे पर ऐसी श्रद्धा हो गई कि वह कभी न मिटी। फिर दोबारा उन्हें कभी संदेह चूहे पर न आया, न अपने पर आया। जिंदगीभर फिर उसी भरोसे में रहे, वह जो उस दिन उदघाटन हो गया; जैसे वह कोई बुद्धत्व था। और आर्यसमाजी सोचते हैं कि उस दिन बड़े ज्ञान की घटना घट गई जगत में।
दयानंद पंडित थे, पंडित ही रहे। और चूहे से जिस श्रद्धा का भ्रम टूट गया था, उस संदेह को मिटाने के लिए उन्होंने कभी फिर कुछ न किया। फिर वे तर्कनिष्ठ ही बने रहे। कितना ही विचार उन्होंने वेदों का किया, उपनिषदों का किया, लेकिन उस सब विचार में तर्क ही आधार रहा। इसलिए तुम आर्यसमाजियों को पाओगे बड़े कुतर्की। उनसे बकवास करोगे, तो मुश्किल में पड़ोगे, बकवासी हैं। क्योंकि पूरा ही आंदोलन बकवासियों का है। उसका धर्म से कोई लेना-देना न रहा।
धर्म का तर्क से कोई संबंध नहीं है। धर्म का संबंध श्रद्धा से है। और अगर तुम संदेह से भरे हो, तो तुम धर्म से भी जो संबंध बनाओगे, वह भी तर्क का होगा। तब तुम सिद्ध करोगे तर्क से कि वेद सही हैं। और तब ऐसे-ऐसे तर्क

उठाओगे... । लेकिन वेद सही हैं, यह तुम्हारे हृदय की श्रद्धा का आविर्भाव न होगा; यह तर्क ही होगा। और तर्क से ही तुम अपने को समझाते रहोगे।
तर्क का अर्थ ही यह है कि संदेह भीतर मौजूद है, जिसे तुम तर्क से झुठला रहे हो। श्रद्धा का कोई तर्क नहीं है। श्रद्धा स्वयं-सिद्ध है। यह उसका स्वभाव है। इसके लिए किसी प्रमाण की कोई जरूरत नहीं है। वह स्वतः प्रमाण है, सेल्फ-एविडेंट है, वह कोई गवाह नहीं मांगती। इसलिए तुम आस्तिक को गलत कर ही नहीं सकते। क्योंकि जिस ढंग से तुम उसे गलत कर सकते हो, उस ढंग से सही होने का वह दावा ही नहीं करता। उसके सही होने का दावा ही और है।
वह यह नहीं कहता कि मैंने किन्हीं प्रमाणों से जान लिया कि परमात्मा है। वह कहता है कि मैंने देख लिया। वह कहता है कि मैं हो गया। वह कहता है, मैंने चख लिया। अब तुम लाख कहो कि परमात्मा नहीं है, मैं कैसे मानूं! मेरी प्यास बुझ गई और तुम कहते हो, पानी है नहीं। और मैं देखता हूं कि तुम प्यास में तड़प रहे हो। और तुम कहते हो, पानी है नहीं। और मेरी प्यास बुझ गई। मैं कैसे मानूं कि परमात्मा नहीं है! तुम्हें मैं दुख में देखता हूं और तर्क में देखता हूं, संदेह में देखता हूं। मेरा दुख मिट गया, मेरे भीतर आनंद बरस गया। मैं कैसे मानूं कि आनंद नहीं है!
तुम किसी और को डिगा सकते हो। जिसके भीतर आनंद न बरसा हो, तुम उसमें संदेह पैदा कर सकते हो। मुझमें तुम संदेह पैदा नहीं कर सकते। कोई उपाय ही न रहा। एक ही उपाय है कि किसी भांति अगर तुम मेरा आनंद छीन लो, तो शायद संदेह पैदा हो सके।
लेकिन कोई किसी का आनंद कहीं छीन सकता है? तुम मेरा शरीर मुझसे छीन सकते हो, मेरी आत्मा तो नहीं छीन सकते! तुम मुझे मार डाल सकते हो, लेकिन भीतर तो कोई है, जहां शस्त्र छिदते नहीं, जहां आग जाती नहीं, उसे तुम छू भी न पाओगे। तो शरीर को काट देने से कुछ प्रमाणित न होगा, बल्कि मैं जो कहता था वही प्रमाणित होगा, कि मैं फिर भी हूं। तुम मेरे शरीर को काटकर भी इतना ही सिद्ध कर पाओगे। जो मेरी श्रद्धा थी, उसी को सिद्ध कर पाओगे।
श्रद्धा को खंडित करने का उपाय नहीं है, क्योंकि वह अनुभव है। इसलिए मैं कहूंगा, संदेह को पूरा करो। इतना पूरा करो कि संदेह पर संदेह आ जाए। फिर संदेह लड़खड़ाकर खुद ही गिर पड़ता है। उसके गिर जाने पर, उसके गिर जाने पर ही पहली दफा श्रद्धा का उन्मेष होता है, तुम्हारे भीतर तरंग उठती है। श्रद्धा एक अनुभव है, बुद्धि की मान्यता नहीं। श्रद्धा कोई मान्यता, धारणा नहीं है, एक अनुभव है। जैसे प्रेम, ऐसी ही श्रद्धा है।
तुम्हारा लड़का है, वह एक लड़की के प्रेम में पड़ गया है। तुम लाख समझाते
हो कि नासमझ, पहले गौर से तो देख, इसका बाप चरित्रवान नहीं है। वह लड़का कहता है, बाप से लेना-देना क्या? तुम कहते हो, इसके घर में पैसा नहीं है। वह कहता है, पैसे के थोड़े ही मैं प्रेम में पड़ा हूं! तुम कहते हो, इसके कुल का तो विचार कर। वह लड़का कहता है, कुल से थोड़े ही विवाह करके आना है। बाप कहता है, यह लड़की काली-कलूटी है, दुबली है, बीमार है; हजार तर्क खोजता है। लेकिन वह लड़का कहता है, मेरी आंख से जरा देखने की कोशिश करें। मुझे इससे सुंदर कोई दिखाई ही नहीं पड़ता।
प्रेम के लिए तुम किसी भी तर्क से खंडित नहीं कर सकते। और अगर कर लो,
तो समझना प्रेम था नहीं। अगर लड़का मान जाए कि बात तो ठीक है, घर में धन नहीं है, दहेज क्या खाक मिलेगा! तो वह लड़का प्रेम में था ही नहीं। असल में वह लड़का लड़का ही नहीं है। वह लड़का होने के पहले बाप हो गया। यह जिंदगी से चूकेगा। यह बूढ़ा हो चुका है।
सिर्फ बूढ़ा आदमी सोचता है पैसे की। जवान आदमी पैसे की सोचे, उसकी जवानी संदिग्ध है। जवान को भरोसा होना चाहिए--दहेज पर थोड़े ही, अपने पर--कि कमा लेंगे, पैदा कर लेंगे। लेकिन जवान आदमी भी सोचता है, दहेज कितना? वह जवान न रहा। वह गणित में पड़ गया; वह हिसाब लगा रहा है; वह तर्क की दुनिया में उलझ गया; उसे प्रेम का कोई पता ही नहीं है।
और श्रद्धा तो महा प्रेम है; वह तो प्रेम है अस्तित्व के साथ; वह तो बड़ा पागलपन है। और पागलों को कहीं तुम तर्क से समझा सकते हो?

दयानंद जैसे लोग पागल कभी हुए नहीं। कभी नाचे नहीं मस्ती से। बस बैठकर तर्क जुटाते रहे, टीकाएं लिखते रहे वेद की और सिद्ध करते रहे कि वेद भगवान है।
और भगवान को सिद्ध करने का कोई उपाय नहीं है। न वेद को सिद्ध करने का कोई उपाय है। सिद्ध करने की बात ही संदेह की दुनिया की बात है। भगवान सिद्ध है; श्रद्धा का आविर्भाव होते ही दिखाई पड़ता है; आंख खुलते ही उसका सूरज उगा हुआ मिलता है। बस, आंख खोलने की बात है।
अंधे को कोई तर्क देने की जरूरत नहीं कि प्रकाश है; उससे इतनी ही प्रार्थना करनी है कि आंख खोल ले। और वह कहता है, अभी आंख कैसे खोलूं! भीतर बहुत सपने देख रहा हूं; बड़ा मजेदार सपना चल रहा है। तो हम उससे कहते हैं, खूब देख ले। जितना बन सके, सपना देख ले। इतनी गौर से सपने को देख कि तुझे खुद ही दिखाई पड़ जाए कि यह सपना है। तो धीमा-धीमा मत देख; पूरी प्रगाढ़ता से देख, गौर से देख, आंख गड़ाकर देख। क्योंकि जब तेरा सपना भीतर टूटेगा, आंख तू खोलेगा, तभी तुझे सूरज का प्रकाश अनुभव हो सकता है।

दूसरा प्रश्नः सुबह बहुत दूर नहीं है, ऐसा सभी गुरु सदा से कहते आए हैं। पर अपनी ओर देखकर तो सुबह सदा दूर ही दिखाई देती है। क्या अब अपनी ओर देखना बंद करने से सुबह जल्दी आ जाएगी?

अपनी ओर तुम देखोगे, तो सुबह दूर दिखाई देगी ही। कारण यह नहीं है कि तुमने अपनी ओर देखा, कारण यह है कि तुम अभी जानते ही नहीं कि अपनी ओर कैसे देखें। और जिसको तुम समझ रहे हो अपनी ओर देखना, वह अहंकार की ओर देखना है, वह अपनी ओर देखना नहीं है। और अहंकार तो अंधकार है।
अगर अपनी ही ओर देख लो, तो वहीं तो सुबह हो जाती है। पर जिसको तुम समझ रहे हो अपना होना, वह तुम्हारी भ्रांति है। तुम समझ रहे हो कि किसी का बेटा हूं, कि किसी का बाप हूं, कि किसी का पति हूं, कि किसी की पत्नी हूं, कि गरीब हूं, कि अमीर हूं, कि सुंदर हूं, कि कुरूप हूं, रुग्ण हूं, स्वस्थ हूं, जवान हूं, बूढ़ा हूं। ये सब अहंकार की ही परिभाषाएं हैं। तुम नहीं हो यह।
इन सब से जो गुजरता है, वह हो तुम। जो कभी बच्चा होता है, कभी जवान हो जाता है, कभी बूढ़ा हो जाता है। न तुम बचपन हो, न तुम जवानी हो, न तुम बुढ़ापा हो। वह जो इन तीनों से गुजरता है, वह हो तुम। जो कभी गरीब और कभी अमीर, और कभी सुखी और कभी दुखी, और कभी दीन और कभी दानी, कभी भिखारी और कभी सम्राट-- दोनों के बीच जो जाता है, वह हो तुम। कभी जन्मते हो, कभी मरते हो। लेकिन जो न कभी जन्मता है और न कभी मरता है, जो जन्म में जन्मता भी है, मरने में मरता भी है, फिर भी न तो जन्मता है और न मरता है, वह हो तुम।
लेकिन उस तरफ तुम नहीं देख रहे हो। तुम देख रहे हो अहंकार की तरफ। तुम देख रहे हो अपने परिचय की तरफ, जो लोग तुमसे कहते हैं, तुम हो। कोई तुमसे कहता है कि तुम बड़े सुंदर हो, और तुमने मान लिया। कोई तुमसे कहता है कि सुंदर नहीं हो, और तुम पीड़ित हो गए। तुम लोगों के मंतव्य इकट्ठे कर रहे हो अपने संबंध में। तुमने सीधा अपने को देखा ही नहीं।
सब मंतव्य हटा दो। क्योंकि दूसरे तुम्हें बाहर से देखते हैं। तुम तो स्वयं को भीतर से देख सकते हो। दूसरों के देखने को क्या इकट्ठा कर रहे हो! यह तो ऐसा ही पागलपन हुआ कि मैं घर के भीतर बैठा हूं और पड़ोसियों से पूछने जाता हूं अपने घर के संबंध में। तो उनमें से कोई कहता है कि तुम्हारा मकान बहुत सुंदर है। उन्होंने बाहर से ही मकान देखा। रंग-रोगन अच्छा है। उन्होंने बाहर से ही मकान देखा। या कोई पसंद नहीं करता बाहर की दीवालों को और कहता है, चूना झड़ने लगा है; मकान गंदा हुआ जा रहा है। उनमें से भीतर के कक्षों को तो किसी ने भी नहीं देखा। वहां तो केवल मैं ही देखता हूं।
तुम्हारे भीतर तुम्हारे अतिरिक्त कोई भी नहीं जा सकता। भीतर का अर्थ
ही है, जहां तुम ही जा सको और कोई न जा सके। जहां तक दूसरा जा सकता है, वहां तक बाहर की सीमा है। बाहर का मतलब ही इतना है, जहां दूसरे जा सकते हैं।
भीतर यानी जहां केवल तुम जा सकते हो। तुम्हारी प्रेयसी भी नहीं जा सकती।

तुम्हारा निकट मित्र भी नहीं जा सकता। जिस मित्र के लिए तुम मरने को तैयार हो, वह भी नहीं जा सकता। जहां तुम ही जा सकते हो।
और जरा गौर से देखो! तुम्हारा शरीर भी जहां नहीं जा सकता, क्योंकि वह
भी बाहर है। तुम्हारे विचार भी जहां नहीं जा सकते, क्योंकि वे भी सतह पर हैं। सिर्फ तुम, तुम्हारी शुद्धि में जहां जा सकते हो। उस निर्विचार शुद्धि को जिस दिन तुम देखोगे, उस खुले आकाश को जहां कोई विचार का बादल भी नहीं है, उस दिन तुमने अपनी तरफ देखा।
उस दिन सभी गुरु तुम्हें सही मालूम पड़ेंगे। अभी तुम्हें गुरु गलत मालूम पड़ेंगे। उनकी बात सुनोगे, तो लगेगा, सुबह करीब है। परमात्मा मिला ही हुआ है, जरा एक कदम उठाना है। जरा-सी बात है। आंख में छोटी-सी किरकिरी पड़ी है, उसको निकाल देना है। कोई बहुत बड़ा मामला नहीं है। गुरुओं की बात सुनोगे, तो लगेगा कि अब पहुंचे, अब पहुंचे; किनारे पर ही हैं, जरा-सा ही हाथ फैलाना है, जरा-सा मुड़ना है।
लेकिन जब तुम अपनी तरफ देखोगे, तो अंधकार भयंकर मालूम होगा, रात घनी मालूम होगी, अमावस, जिसका कोई अंत नहीं मालूम होता। सुबह आएगी कैसे? भरोसा नहीं बैठता।
तुमने अपने गलत होने की तरफ देखा। तुमने अपने स्वभाव की तरफ न देखा, तुमने अपने संग्रह की तरफ देखा। तुमने स्मृतियों की तरफ देखा, तुमने अपने बोध की तरफ न देखा। साक्षी-भाव को न देखा, द्रष्टा को न देखा, दृश्य को देखते रहे। और दृश्य के संग्रह का नाम अहंकार है। तो स्वभावतः ऐसा होगा। तो क्या करो तुम?
एक काम तो यह है कि पहचानने की कोशिश करो कि तुम कौन हो? और उस सबको काटते जाओ, जो तुम नहीं हो। जो अप्रासांगिक है, उसे काटो। उपनिषद इस प्रक्रिया को नेति-नेति कहते हैं, दि मेथड आफ इलिमिनेशन। जो भी तुम्हें लगता है, गौण है, जिसके बिना तुम हो सकते हो, उसे काटो; वह तुम नहीं हो। तुम्हारे पास धन है, तो तुम अकड़कर चलते हो; इस अकड़ को छोड़ो। क्योंकि धन
के बिना भी तुम हो सकते हो; धन अनिवार्य नहीं है। कल सरकार बदल जाए, या इसी सरकार की बुद्धि बदल जाए, कल कम्युनिस्ट आ जाएं, तो धन चला जाएगा, तुम रहोगे। जिसके बिना तुम रह सकते हो, वह तुम नहीं हो। अन्यथा तुम बचते कैसे? रूप है, सौंदर्य है। आज है, कल नहीं हो सकता है। चेचक निकल आए, बीमार हो जाओ, शरीर रुग्ण हो जाए, चमड़ी पर कोढ़ फैल जाए। तो वह रूप तुम नहीं हो। क्योंकि फिर भी तुम रहोगे। शरीर जब कृश हो जाएगा, चेचक के दाग चेहरे पर पड़ जाएंगे, कोई तुम्हारी तरफ न देखेगा, कोई देखेगा भी तो ऐसे देखेगा जैसे दया कर रहा हो, कोई तुम्हारे सौंदर्य का गुणगान न करेगा, फिर भी तुम तो तुम ही रहोगे। छोड़ो! जिसके बिना तुम हो सकते हो, उसको अपने हिसाब में मत लो।
मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम जाकर और चेचक की बीमारी मोल ले लो। मैं
यह भी नहीं कह रहा हूं कि जाकर अस्पताल में बीमार पड़ जाओ। मैं यह भी नहीं कह रहा हूं कि अपने धन को सरकार को दे दो कि दान कर दो। मैं यह कुछ नहीं कह रहा हूं। मैं सिर्फ इतना कह रहा हूं कि जिसके बिना तुम हो सकते हो, उसको तुम अपने होने के हिसाब में मत लो; वह तुम्हारा होना नहीं है। वह तुमसे बाहर-बाहर है। है तो ठीक, नहीं है तो ठीक। तुम उस पर निर्भर नहीं हो। वह तुम्हारी बुनियाद नहीं है।
धीरे-धीरे ऐसा इलिमिनेट करो, नेति-नेति कहो, यह भी नहीं, यह भी नहीं। हटते जाओ, हटते जाओ। एक घड़ी ऐसी आती है चैतन्य की, जहां तुम पाओगे, अब और हटना संभव नहीं है। यह मैं हूं। क्योंकि अगर यह भी हट गया, तो मैं ही नहीं बचता। प्याज के छिलके की तरह छीलते जाओ अपने तादात्म्य को। एक-एक छिलके को अलग करते जाओ। जिस दिन वही बच जाए... ।
क्या बचेगा? आखिर में क्या बचेगा? उसी को हमने आत्मा कहा है, चैतन्य कहा है, होश कहा है, भान, बोध, बुद्धत्व, और हजार नाम हैं।
क्या बचेगा भीतर? आखिरी, जब सारे प्याज के छिलके छीलकर तुम फेंक दोगे, नेति-नेति, सारी प्याज नेति-नेति हो जाएगी, तब तुम पाओगे, बस एक चीज बची, कांशसनेस, होश बचा, भान बचा, चैतन्य बचा। इसको तुम न काट पाओगे। क्योंकि इसको काटकर फिर तुम नहीं बच सकते; इसको छोड़कर फिर तुम नहीं बच सकते; फिर तुम गए।

जिसके न होने से तुम न हो जाओगे, वही है तुम्हारा होना। उसको खोजते रहो। यही ध्यान की प्रक्रिया है। सतत खोजते रहो। और गलत से, व्यर्थ से, असार से--जो तुम्हारा स्वभाव नहीं, जो पर-भाव है--उससे अपने को तोड़ते चले जाओ। जैसे-जैसे यह पर-भाव छूटेगा, स्वभाव उभरेगा, जैसे-जैसे पर-भाव से संबंध शिथिल होंगे, वैसे-वैसे स्वभाव पंख फैलाएगा। तुम पाओगे, एक मुक्ति फलित होने लगी।
आखिर में बच रहता है, सच्चिदानंद। तुम होते हो परम चैतन्य; तुम होते
हो परम सत्य; तुम होते हो परम आनंद; वह स्वभाव है।
सारे धर्म की प्रक्रिया बस नेति-नेति में समाई है। इन दो शब्दों से ज्यादा कुछ भी नहीं चाहिए; न यह, न वह; काटते जाओ। कैंची लेकर अपने पीछे पड़ जाओ।
अगर तुमने हिम्मत से खोज की, तो धीरे-धीरे तुम पाओगे कि अब तुम्हारी दृष्टि अपनी तरफ हुई। अभी तुम किसी और की तरफ देख रहे थे और सोचते थे, अपनी तरफ देख रहा हूं।
ठीक से समझो, अपनी तरफ तुम देखोगे कैसे? जिसकी तरफ भी तुम देखोगे, वह दूसरा होगा। अपनी तरफ तुम देखोगे कैसे? कौन देखेगा? किसको देखेगा? वहां तो देखने वाला और दृश्य एक ही हो जाता है। इसलिए अभी तुम जिसकी भी तरफ देख रहे हो कि तुम कहते हो कि मैं पुरुष हूं, धनवान हूं, जवान हूं, पंडित हूं, ज्ञानी हूं, इतनी डिग्रियां हैं, जिसको भी तुम देख रहे हो, यह तुम नहीं हो। काटते जाओ।
एक दिन तुम अचानक पाओगे, ऐसी घड़ी आ गई, जिसको योगी कहते हैं, संगम। ऐसी घड़ी आ गई, जहां दृश्य, द्रष्टा और देखने वाला एक ही बचा। अब तुम बांट नहीं सकते। तुम यह नहीं कह सकते कि मैं देख रहा हूं। तुम यही कह सकते हो कि मैं ही देख रहा हूं, मैं ही देखने वाला हूं, मैं ही दिखाई पड़ रहा हूं। त्रिपुटी आ गई; तीन मिल गए। सत्व, रज, तम, तीनों समतुल हो गए। और तुम तीनों के पार-- गुणातीत। जीवन का सूरज उग गया। सुबह करीब है।
जब मैं तुम्हारी तरफ देखता हूं, तो तुमसे कहता हूं, सुबह करीब है। अपनी तरफ ही देखकर नहीं कह रहा हूं कि सुबह करीब है, तुम्हारी तरफ भी देखकर कह रहा हूं कि सुबह करीब है। लेकिन जब मैं तुम्हें गौर से देखता हूं, तो पाता हूं, तुम अपनी तरफ नहीं देख रहे हो। तुम कहीं और देख रहे हो। वहां अंधेरी रात है। वहां अनंत अमावस है, जिसका न कोई आदि है और न अंत। वहां तुम अंधेरे में भटकते ही रहोगे।
आंख को लौटाना है अपनी तरफ। बस, जरा-सी बात है। बहुत बड़ी मालूम पड़ती है। कितना जाल धर्मों का खड़ा है उतनी सी छोटी-सी बात पर! वह तुम्हारी वजह से बड़ी मालूम पड़ती है। क्योंकि तुम अंधेरे में ही रहे हो। और तुम्हारा अंधेरे पर इतना भरोसा हो गया है कि तुम मान ही नहीं सकते कि सुबह हो सकती है।
मेरे पास लोग आते हैं। कल ही रात कोई मुझसे कह रहा था कि बड़ा आनंद अनुभव हो रहा है। कहीं यह कल्पना तो नहीं है?
तुम दुख में इतने रहे हो कि अगर ध्यान की थोड़ी-सी किरण भी टूटती है और आनंद का थोड़ा-सा सुर बजता है, तो तुम्हें भरोसा नहीं आता। तुम्हें शक होता है।
जिस सज्जन ने मुझे यह कहा; मैंने उनसे पूछा, तुम जब दुख में थे, तब तुमने कभी सोचा कि यह कहीं कल्पना तो नहीं? उन्होंने कहा, यह तो ख्याल कभी नहीं आया!
जब दुख में थे, तब यथार्थ; तब शक भी पैदा न हुआ कि कहीं यह दुख कल्पना
तो नहीं है! लेकिन अब थोड़ी-सी ध्यान में गति बढ़ी है, थोड़ी नाव किनारे से हटी है, थोड़ी पतवार उठी है, तो संदेह पैदा हो रहा है कि कहीं यह आनंद कल्पना तो नहीं है।
वह मन कह रहा है, लौट आओ किनारे पर। कहां जा रहे हो? यह सागर सब कल्पना है। अपनी पुरानी जगह ठीक; वह पुराना तादात्म्य ठीक। किसकी खोज में निकले हो? यह आत्मा-परमात्मा सब कल्पना है, लौट आओ! दुख सच है, नर्क सच है, स्वर्ग कल्पना है; शैतान सच है, परमात्मा कल्पना है।

संदेह का अर्थ है, गलत श्रद्धा। संदेह का अर्थ है, गलत पर श्रद्धा। और
जब तुम गलत पर श्रद्धा रखते हो, तो संदेह मिटेगा कैसे? इसलिए संदेह तुम्हें गलत से नहीं छूटने देना चाहता, क्योंकि वहां तो संदेह बचा रह सकता है। सही का आविर्भाव होगा, संदेह की मृत्यु हो जाएगी। तो संदेह उठता है मन में कि कहीं यह कल्पना तो नहीं।
मैं तुमसे कहता हूं, सच्चिदानंद कसौटी है। तुम इस पर कस लेना। अगर कोई
भी चीज आनंद दे, वह परमात्मा के करीब है, तभी आनंद देगी। अगर किसी चीज में यथार्थ का बोध हो, किसी चीज में भीतरी गरिमा हो सत्य होने की, ऐसी गहरी प्रतीति होती है कि इस पर संदेह भी करना मुश्किल हो जाए, तो जानना कि वह परमात्मा के करीब है। और जिससे भी चैतन्य बढ़ता हुआ मालूम पड़े, रोशनी बढ़ती मालूम पड़े भीतर, तो समझना कि वह परमात्मा के करीब है।
सच्चिदानंद निकष है। तुम उस पर कसते रहना। और जो-जो इससे विपरीत मालूम पड़े, समझना कि उतनी ही दूर है। इस कसौटी को लेकर अगर तुम चले, तो एक दिन मंजिल पर पहुंच जाओगे।
और मैं फिर कहता हूं, मंजिल दूर नहीं; एक कदम का फासला है। इसलिए तुमसे कहता हूं, चलने का सवाल नहीं है, छलांग भी ले सकते हो। एक कदम चलने में क्या सार है? यह तो छलांग से भी हो सकता है।
इसलिए दुनिया में एक अनूठी घटना भी घटती है, छलांग भी घटती है। कुछ लोग छलांग से परमात्मा को उपलब्ध हो जाते हैं। जिनको समझ आ जाती है, दिखाई पड़ जाती है बात, ख्याल पकड़ जाता है, जिनका संदेह मर चुका होता है, जो भरोसे को उपलब्ध हो जाते हैं, एक छलांग में, एक इशारे में, एक आवाज में, और तुम बाहर आ जाते हो। हजारों-हजारों जन्मों की रात टूट जाती है।
सुबह करीब है। अपनी तरफ भी देखकर कहता हूं, तुम्हारी तरफ भी देखकर कहता हूं, सुबह करीब है। लेकिन तुम अपनी तरफ नहीं देख रहे हो, यह भी मुझे दिखाई पड़ता है।
उसी के लिए सारे ध्यानों का आयोजन है कि तुम अपनी तरफ देखने में समर्थ
हो जाओ। समर्थ तुम हो सकते हो। कितनी ही कठिन मालूम पड़े यह बात, असंभव नहीं है। और जिस दिन हो जाएगी, उस दिन तुम हंसोगे और तुम कहोगे, कठिन भी नहीं थी। तुम हंसोगे भी और रोओगे भी। तुम रोओगे कि इतने दिन कैसे यह संभव रहा कि मैं भटकता रहा! और तुम हंसोगे कि जो इतने करीब था कि हाथ भर बढ़ाने की बात थी। जब जरा गर्दन झुकाई...
दिल के आईने में है तस्वीरे-यार
जब जरा गर्दन झुकाई देख ली।
उतनी ही। मगर गर्दन सख्त हो गई है; लकवा लग गया है। हजारों साल से झुकी नहीं है, तो तुम भूल ही गए हो, कैसे झुकाएं। थोड़ी मालिश करो। ध्यान वही मालिश है। सामायिक कहो, पूजा कहो, प्रार्थना, अर्चना, नमाज, थोड़ी-सी मालिश है गर्दन पर। थोड़ी गर्दन झुक जाए, लोचपूर्ण हो जाए, बस। और तुम देख लोगे, तस्वीरे-यार सदा भीतर है।
तुम्हारा प्रेमी तुम्हारे भीतर है। तुम्हारी खोज तुम्हारे भीतर है। खोजने वाले में छिपी है मंजिल। कहीं परमात्मा बाहर होता, तो मुश्किल होता, कठिन होता; वह तुम्हारे भीतर ही है।
थोड़ा रुको, बैठो, काटो नेति-नेति से अपने गलत तादात्म्य को। और अचानक तुम पाओगे, सूरज उग आया। उगा ही था। कभी डूबा ही न था; रात कभी हुई न थी। बस, तुमने आंखें बंद कर रखी थीं।

अब सूत्रः
और हे अर्जुन, जैसे श्रद्धा तीन प्रकार की होती है, वैसे ही भोजन भी सब
को अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार तीन प्रकार का प्रिय होता है। और वैसे ही यज्ञ, तप और दान भी सात्विक, राजस और तामस, ऐसे तीन-तीन प्रकार के होते हैं। उनके इन न्यारे-न्यारे भेद को तू मुझसे सुन।
श्रद्धा के शास्त्र को कृष्ण अर्जुन को समझा रहे हैं। वह शास्त्र सभी अर्जुनों को सर्व कालों में उपयोगी है, क्योंकि वह शास्त्र तुम्हारी ही व्याख्या और विश्लेषण है। और जब तक तुम अपनी ठीक से व्याख्या को न समझ

पाओगे और ठीक से विश्लेषण को, तब तक तुम विज्ञान को न समझ पाओगे, जो तुम्हें त्रिगुणातीत बना दे, गुणातीत बना दे। इसलिए तुम्हें पहले इन तीनों गुणों की अलग-अलग व्यवस्था और तुम्हारे जीवन में इनके ढंग और ढांचे और इनकी शैली को समझ लेना जरूरी है। वह तुम्हारा सारा अस्तित्व है अभी। तो कृष्ण कहते हैं कि श्रद्धा न केवल तुम्हारी परमात्मा की तरफ यात्रा में भिन्न-भिन्न मार्ग पकड़ा देती है तुम्हें, श्रद्धा न केवल तुम्हारे आचरण को भिन्न-भिन्न कर देती है, महत्वपूर्ण बातों में ही नहीं, जीवन की क्षुद्रतम बातों में भी तुम्हारी श्रद्धा तुम्हें रंगती है। छोटे से छोटा तुम्हारी श्रद्धा की सूचना देता है।
तो कृष्ण कहते हैं, भोजन भी इन तीन श्रद्धाओं के अनुसार तीन प्रकार का होता है। और लोग अपनी-अपनी श्रद्धा के अनुसार भोजन की रुचि रखते हैं। तामसी वृत्ति का व्यक्ति है, तुम उसके भोजन का अध्ययन करके भी समझ सकते हो कि वह तामसी है। तामसी वृत्ति के व्यक्ति को बासा भोजन प्रिय होता है, सड़ा-गला उसे स्वाद देता है। घर का भोजन उसे पसंद नहीं आता। बाजार का सड़ा-गला, जिसका कोई भरोसा नहीं कि वह कितना पुराना है और कितना प्राचीन है। होटलों में दो-चार दिन पहले की सब्जी से बने हुए पकोड़े और समोसे उसे प्रिय होते हैं। बासा! सात्विक व्यक्ति को जो कूड़ा-करकट जैसा मालूम पड़े, जिसे वह अपने मुंह में न ले सके, उसी पर तामसी की लार टपकती है।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन होटल में गया। जाकर बैठ गया टेबल पर। और उसने कहा कि भोजन ले आओ। पहली ही दफा इस होटल में आया था। जब बैरा भोजन लेने जाने लगा, तो उसने कहा कि यहां सब ठीक-ठाक है न? बैरे ने उसे तृप्त करने को कहा कि महानुभाव, ठीक-ठाक पूछते हैं; बिल्कुल आपके घर जैसा भोजन है!
नसरुद्दीन उठकर खड़ा हो गया। उसने कहा, क्षमा करें, घर के भोजन से बचने
को तो यहां आए थे। तो फिर कोई और होटल जाना पड़ेगा।
तामसी व्यक्ति का भोजन हमेशा अतिशय होगा, वह ज्यादा खाएगा। वह इतना खाएगा कि नींद के अतिरिक्त और कुछ करने को शेष न बचे। इसलिए तामसी व्यक्ति भोजन करके ही सुस्त होने लगेगा। उसका भोजन एक तरह का नशा है।
भोजन का एक नशा है। अगर तुम जरूरत से ज्यादा भोजन कर लो, तो भोजन अल्कोहलिक है। वह मादक हो जाता है, उसमें शराब पैदा हो जाती है। उसमें शराब पैदा होने का कारण है। जैसे ही तुम ज्यादा भोजन कर लेते हो, तुम्हारे पूरे शरीर की शक्ति निचुड़कर पेट में आ जाती है। क्योंकि उसको पचाना जरूरी है। तुमने शरीर के लिए एक उपद्रव कर दिया, एक अस्वाभाविक स्थिति पैदा कर दी। तुमने शरीर में विजातीय तत्व डाल दिए। अब शरीर की सारी शक्ति इसको किसी तरह पचाकर और बाहर फेंकने में लगेगी। तो तुम कुछ और न कर पाओगे; सिर्फ सो सकते हो।
मस्तिष्क तभी काम करता है, जब पेट हलका हो। इसलिए भोजन के बाद तुम्हें नींद मालूम पड़ती है। और अगर कभी तुम्हें मस्तिष्क का कोई गहरा काम करना हो, तो तुम्हें भूख भूल जाती है।
इसलिए जिन लोगों ने मस्तिष्क के गहरे काम किए हैं, वे हमेशा अल्पभोजी लोग हैं। और धीरे-धीरे उन्हीं अल्पभोजियों को यह पता चला कि अगर मस्तिष्क बिना भोजन के इतना सक्रिय हो जाता है, तेजस्वी हो जाता है, तो शायद उपवास में तो और भी बड़ी घटना घट जाएगी। इसलिए उन्होंने उपवास के भी प्रयोग किए। और उन्होंने पाया कि उपवास की एक ऐसी घड़ी आती है, जब शरीर के पास पचाने को कुछ भी नहीं बचता, तो सारी ऊर्जा मस्तिष्क को उपलब्ध हो जाती है। उस ऊर्जा के द्वारा ध्यान में प्रवेश आसान हो जाता है।
जैसे भोजन अतिशय हो, तो नींद में प्रवेश आसान हो जाता है। नींद ध्यान
की दुश्मन है; मूर्च्छा है। भोजन बिल्कुल न हो शरीर में, तो शरीर को पचाने को कुछ न बचने से सारी ऊर्जा मुक्त हो जाती है पेट से, सिर को उपलब्ध हो जाती है। ध्यान के लिए उपयोगी हो जाता है।
लेकिन उपवास की सीमा है, दो-चार दिन का उपवास सहयोगी हो सकता है। लेकिन कोई व्यक्ति उपवास की अतिशय में पड़ जाए, तो फिर मस्तिष्क को ऊर्जा नहीं मिलती। क्योंकि ऊर्जा बचती ही नहीं। इसलिए उपवास तो किसी ऐसे

व्यक्ति के पास ही करने चाहिए, जिसे उपवास की पूरी कला मालूम हो। क्योंकि उपवास पूरा शास्त्र है। हर कोई, हर कैसे उपवास कर ले, तो नुकसान में पड़ेगा। और प्रत्येक व्यक्ति के लिए गुरु ठीक से खोजेगा कि कितने दिन के उपवास में संतुलन होगा। किसी व्यक्ति को हो सकता है पंद्रह दिन, इक्कीस दिन का उपवास उपयोगी हो। अगर शरीर ने बहुत चर्बी इकट्ठी कर ली है, तो इक्कीस दिन के उपवास में भी उस व्यक्ति के मस्तिष्क को ऊर्जा का प्रवाह मिलता रहेगा। रोज-रोज बढ़ता जाएगा। जैसे-जैसे चर्बी कम होगी शरीर पर, वैसे- वैसे शरीर हलका होगा, तेजस्वी होगा, ऊर्जावान होगा। क्योंकि बढ़ी हुई चर्बी भी शरीर के ऊपर बोझ है और मूर्च्छा लाती है।
लेकिन अगर कोई दुबला-पतला व्यक्ति इक्कीस दिन का उपवास कर ले, तो ऊर्जा क्षीण हो जाएगी। उसके पास रिजर्वायर था ही नहीं; उसके पास संरक्षित कुछ था ही नहीं। उनकी जेब खाली थी।
दुबला-पतला आदमी बहुत से बहुत तीन-चार दिन के उपवास से फायदा ले सकता है। बहुत चर्बी वाला आदमी इक्कीस दिन, बयालीस दिन के उपवास से भी फायदा ले सकता है। और अगर अतिशय चर्बी हो, तो तीन महीने का उपवास भी फायदे का हो सकता है, बहुत फायदे का हो सकता है। लेकिन उपवास के शास्त्र को समझना जरूरी है।
तुम तो अभी ठीक विपरीत जीते हो, दूसरे छोर पर, जहां खूब भोजन कर लिया,
सो गए। जैसे जिंदगी सोने के लिए है। तो मरने में क्या बुराई है! मरने का मतलब, सदा के लिए सो गए।
तो तामसी व्यक्ति जीता नहीं है, बस मरता है। तामसी व्यक्ति जीने के नाम पर सिर्फ घिसटता है। जैसे सारा काम इतना है कि किसी तरह खा-पीकर सो गए। वह दिन को रात बनाने में लगा है; जीवन को मौत बनाने में लगा है। और उसको एक ही सुख मालूम पड़ता है कि कुछ न करना पड़े। कुल सुख इतना है कि जीने से बच जाए, जीना न पड़े। जीने में अड़चन मालूम पड़ती है। जीने में उपद्रव मालूम पड़ता है। वह तो अपना चादर ओढ़कर सो जाना चाहता है।
ऐसा व्यक्ति अतिशय भोजन करेगा। अतिशय भोजन का अर्थ है, वह पेट को इतना
भर लेगा कि मस्तिष्क को ध्यान की तो बात दूर, विचार करने तक के लिए ऊर्जा नहीं मिलती। और धीरे-धीरे उसका मस्तिष्क छोटा होता जाएगा; सिकुड़ जाएगा। उसका तंतु-जाल मस्तिष्क का निम्न तल का हो जाएगा।
अभी कुछ दिन पहले बंगला देश में ढाका में एक आदमी पकड़ा गया, जो मरे हुए मुरदों की लाश ही खाकर जी रहा था वर्षों से। उनकी लाश को फाड़ लेता और उनके कलेजे को खा जाता और सोया रहता। और मरघट पर ही नौकर था, कब्रिस्तान पर, इसलिए किसी को संदेह भी न हुआ। और मुसलमान तो जलाते नहीं। तो वे दबाकर गए। घर के लोग घर नहीं पहुंच पाए कि वह कब्र से खोद लेता आदमियों को, फाड़ देता-- हाथ से, नाखूनों से--और कच्चा कलेजे को चबा जाता। मरे हुए आदमी का कलेजा! कृष्ण को अगर इस आदमी की खबर होती, तो वे कहते, यह तमस का आखिरी लक्षण है। इससे पार और जाना मुश्किल है। मरा हुआ आदमी! बासा भोजन ही नहीं, बासा आदमी! जिसमें सड़ने की प्रक्रिया शुरू हो गई।
और वह कोई भोजन न करता। जरूरत न थी। कभी-कभी लाश न आती, तो जरूर वह गांव में आता। और वह भी इसी तलाश में आता, कोई भिखमंगा मर गया हो, कोई आवारा मर गया हो, जिसकी लाश को कोई लाने वाला न हो! तो वह बड़ी सेवा-भाव दिखलाता मुरदों को ले जाने में, आवारा मुरदों को। अस्पतालों में चला जाता, कि किसी की लाश का कोई लेने... । सब लोग समझते थे, बड़ा सेवाभावी आदमी है!
लेकिन धीरे-धीरे लोगों को संदेह हुआ कि वह भोजन वगैरह कब करता है? कहां करता है? तो किसी ने छिपकर देखने की कोशिश की तो पाया कि वह तो बड़ा खतरनाक आदमी है।
पकड़ा गया। उसकी जांच-पड़ताल हुई। तो पाया गया, उसका मस्तिष्क बिल्कुल सिकुड़ गया है; उसका बुद्धिमाप बिल्कुल नीचे गिर गया है। जिसको आई.क्यू. कहते हैं मनोवैज्ञानिक, इंटेलिजेंस कोसिएंट, बुद्धि अंक, वह बिल्कुल नीचे गिर गया है। उससे नीचे बुद्धि-अंक का आदमी खोजना मुश्किल है।
तो ध्यान के लिए तो शक्ति मिलना मुश्किल ही है, विचार तक के लिए नहीं मिलती। शांत होना तो दूर है, अभी अशांत होने लायक तक शक्ति मस्तिष्क में नहीं जाती। मस्तिष्क खो ही जाता है। वह आदमी शरीर की तरह जी रहा है।

तामसी आदमी शरीर की तरह जीता है। इसे सूत्र समझ लें। उसकी श्रद्धा शरीर में है, मुरदे में, मृत्यु में है, जीवन में नहीं। तुम उसके चेहरे पर मौत को लिखा हुआ पाओगे। तुम उसके चेहरे पर एक कालिमा पाओगे। तुम उसके व्यक्तित्व के आस-पास मृत्यु की पदचाप सुनोगे।
वैसा आदमी अगर तुम्हारे पास बैठेगा, तो तुम्हें जम्हाई आने लगेगी। वैसा आदमी तुम्हारे पास बैठेगा, तो तुम भी शिथिलगात होने लगोगे। तुम्हें भी ऐसा लगेगा कि नींद मालूम पड़ती है। वैसा आदमी अपने चारों तरफ तरंगें पैदा करता है तमस की।
जहां भी तुम्हें कहीं ऐसा लगे कि कोई आदमी ऐसा कर रहा है, हट जाना तत्क्षण; क्योंकि वह आदमी तुम्हें चूसता है। वह तुम्हारी ऊर्जा के लिए गड्ढे का काम करता है। वह खुद तो गड्ढा हो ही गया है। उसका शिखर तो खो गया है। वह तुम्हारे शिखर को भी चूस लेता है।
तामसी व्यक्ति ज्यादा भोजन करेगा और गलत तरह का भोजन करेगा, जिससे बोझ बढ़े, जिसे पचाना मुश्किल हो, जो अपाच्य हो, जो ज्यादा देर पेट में रहे, जल्दी पच न जाए। शाक-सब्जी उसे पसंद न आएंगी। फल उसे पसंद न आएंगे। शाकाहारी होने में उसे मजा न मालूम होगा।
एक डाक्टर थे; मैं वर्षों जबलपुर था, वे मेरे सामने ही रहते थे। ऐसे भले आदमी थे, बंगाली थे। बस, मछलियां ही उनका एक राग-रंग थीं। कभी मेरी तबियत को कुछ गड़बड़ होती, तो वे मुझे देखते थे।
एक बार मुझे बुखार आया, वे देखने आए, तो मैंने उनसे पूछा कि मेरे भोजन में कोई तबदीली तो नहीं करनी है? तो वे हंसने लगे, कि आपका भोजन? यह भी कोई भोजन है? घास-पात! इसमें बदलाहट की अब क्या जरूरत है और! आप तो पहले ही से मरीज का भोजन कर रहे हैं, बीमार आदमी का। भोजन हम करते हैं।
उनके चेहरे पर भी मछलियों की गंध थी। उनके घर जाना बहुत मुश्किल मालूम पड़ता था। मगर मेरा भोजन उनके लिए घास-पात मालूम होगा, स्वभावतः। फल, शाक, सब्जी, यह कोई भोजन है? यह इतना सुपाच्य है कि निद्रा पैदा नहीं करता। और भोजन की परिभाषा यही है तामसी व्यक्ति को कि उससे तमस बढ़े, मूर्च्छा बढ़े, नींद आ जाए, खो जाए वह, शरीर में खो जाए, आत्मा का बिल्कुल पता न चले, बुद्धि में कोई प्रखरता न रहे, शरीर में डूब जाए, शरीर की अंधकारपूर्ण रात्रि में डूब जाए।
तमस शब्द का अर्थ होता है, अंधकार। तो अंधकार में डूबने की प्रवृत्ति होगी उसकी। उसे दिन पसंद न आएगा। उसे रात पसंद आएगी। वह निशाचर होगा, तमस से भरा हुआ व्यक्ति निशाचर होगा। दिन में सोएगा, रात जागेगा।
रात तुम उसको क्लब में देखोगे, ताश खेलते देखोगे, जुआ खेलते देखोगे, शराब पीते देखोगे। दिन तुम उसे घर्राटे लेते देखोगे। जब सारी दुनिया जागेगी, तब वह सोएगा।
कृष्ण ने योगी की परिभाषा की है कि योगी तब जागता है जब सारी दुनिया सोती है, तब भी जागता है। या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी--जब सब सोए हैं, तब भी योगी जागता है।
भोगी, उसकी परिभाषा उन्होंने नहीं की, वह मैं कर देता हूं, कि जब सब जागते हैं, तब वह सोता है। तमस उसका लक्षण है, अंधकार उसका प्रतीक है। रात जरा उनमें जीवन मालूम पड़ता है।
जैसे-जैसे तमस बढ़ता है किसी संस्कृति में, उसकी रात घटने लगती है। बारह, दो बजे रात तक राग-रंग चलता है। पश्चिम में तमस बढ़ा, तो लोग रात को दो बजे तक जग रहे हैं। वही जीवन मालूम पड़ता है। पश्चिम से यहां लोग मेरे पास आते हैं। वे कहते हैं कि भारत में कोई रात्रि का जीवन नहीं, नाइट-लाइफ बिल्कुल नहीं है।
थोड़ी-बहुत बंबई में है। बाकी भारत के अगर गांव में जाएंगे, तो रात्रि- जीवन जैसी कोई चीज ही नहीं है। न कोई नाइट क्लब है, न कोई रात का उपद्रव है, न बिजली है, लोग सांझ हुई कि विश्राम को चले गए।
भारत की उलटी संस्कृति थी। यहां लोग सुबह जल्दी उठते थे, तीन बजे। अब पश्चिम में लोग तीन बजे तक जग रहे हैं। यहां तीन बजे उठते थे। उठने का वक्त आ गया। प्रकृति के साथ एक तल्लीनता थी। जब सूरज जाग रहा है, तब तुम जागो।
जब सूरज डूब गया, तब तुम डूब जाओ। लयबद्धता थी।

तामसी वृत्ति का व्यक्ति प्रकृति से लयबद्धता छोड़ देता है। वह अपने में बंद हो जाता है। वह अपना अलग ही ढांचा बना लेता है। वह टूट जाता है इस विस्तार से। तो जब पक्षी गीत गाते हैं, तब वह गा नहीं सकता। जब सूरज उगता है, तब वह जाग नहीं सकता।
विंसटन चर्चिल ने लिखा है... ।
वे निश्चित ही तामसी रहे होंगे, उनकी शक्ल-सूरत से भी तामसी मालूम पड़ते हैं। जीवन का सारा ढंग भी तामसी है। वे दस बजे सुबह के पहले कभी सोकर नहीं उठे। सिर्फ एक बार उठे। लेकिन एक बार उठकर उन्हें जो दुख अनुभव हुआ, फिर उन्होंने दोबारा ऐसी भूल नहीं की।
लिखा है विंसटन चर्चिल ने कि बस, एक दफा! बहुत सुनी थी बकवास कि सुबह बड़ा सुंदर; एक दफा उठकर देख लिया। दिनभर उदासी बनी रही। और दिनभर सब चीजें अस्तव्यस्त हो गईं और गड़बड़ हो गईं। और सांझ जल्दी नींद आने लगी। दिनभर ही नींद आती रही। बस, फिर दोबारा उन्होंने भूल नहीं की!
वे दस बजे तक सोए रहते। रात कितनी ही देर तक जग जाएं। अब ऐसे व्यक्ति में तमस तो हो ही जाएगा।
लार्ड वेबल ने वाइसराय के संस्मरणों में लिखा है कि चर्चिल ने, लार्ड वेबल जब भारत आया और यहां से रिपोर्ट भेजी गांधी के संबंध में और आंदोलन के संबंध में, तो चर्चिल ने एक तार किया। तार बड़ा अजीब है। वेबल को तार किया, व्हाय दिस गांधी इ.ज स्टिल अलाइव? व्हाय नाट ही इ.ज डेड यट? यह गांधी अभी तक जिंदा क्यों है? यह अभी तक मर क्यों नहीं गया? बस, इतना ही तार किया। ये तामसी व्यक्ति के लक्षण हैं। चर्चिल का चले, तो गांधी को मरवा दे। मगर भाव तो है भीतर मारने का, मिटाने का, नष्ट करने का। यह किस तरह का तार है कि गांधी अब तक जिंदा क्यों हैं? जैसे--वेबल ने लिखा है अपने संस्मरणों में--कि जैसे मैं जिम्मेवार हूं गांधी के जिंदा रहने के लिए! या मेरा कोई कसूर है! अब गांधी क्यों जिंदा हैं, इसके लिए मैं क्या करूं? जब तक जिंदा हैं, जिंदा हैं।
लेकिन तुम इससे बहुत प्रसन्न मत होना। क्योंकि जो काम चर्चिल जैसा तामसी न कर सका, वह एक हिंदू ने कर दिया। तो हिंदू भी बड़ी गहरी अंधेरी रात में मालूम होते हैं। चर्चिल ने तो सिर्फ सोचा; गोडसे ने कर दिया, एक हिंदू ब्राह्मण ने। हिंदू भी अब कोई सत्व-प्रधान जाति नहीं मालूम पड़ती। मुसलमान न कर सके, अंग्रेज न कर सके, जिनको करना खेल था; हिंदू ने किया। बड़ी मजे की बात है।
ताकत अंग्रेजों के हाथ में थी, गांधी को मारने में क्या अड़चन थी! कोई अड़चन न थी। किसी को पता भी न चलता। जेल में, बीमारी में, दवा देकर मार सकते थे। लेकिन जैसे ही गांधी बीमार पड़ते थे, अंग्रेज तत्क्षण उनको जेल के बाहर कर देते थे कि कहीं यह मर जाए बुड्ढा, तो कोई न कोई संदेह करेगा कि हमने मार डाला, कि हम पर यह जिम्मा न आए। कोई यह कहने को न हो कि हमने इसको मारा। मुसलमान न मार सके, जिन्हें मारना हाथ का खेल है। फिर हिंदुओं ने मारा
और अपने ही राज्य में मारा। गांधी के ही शिष्य हुकूमत में थे और न बचा सके। और जो लोग खोज-बीन करते हैं, उनको शक है कि उनका भी हाथ था, शिष्यों का भी हाथ था। मारने में साथ न दिया हो, लेकिन बचाने में जरा हिचक की। वह भी साथ है। कोई जरूरी थोड़े ही है कि गोली से ही मारो, तब तुम किसी को मारते हो। उतनी देर को पुलिस वाले को हटा लो या उतनी देर को बिजली की लाइट बंद करवा दो, तो भी मारते हो।
तमस का भरोसा मृत्यु में है। वह खुद भी मरता है, दूसरे को भी मारता है। तामसी वृत्ति का व्यक्ति इस तरह जीता है, इस तरह भोजन करता है, जैसे भोजन से कोई जीवन के सोपान नहीं चढ़ने हैं, कि भोजन से कोई सात्विक ऊर्जा लेनी है; बस, इस तरह कि किसी तरह ढो लेना है, जीवन एक बोझ है। तामसी वृत्ति का व्यक्ति आत्मघाती होता है। ज्यादा भोजन करेगा, गलत भोजन करेगा, व्यर्थ चीजें खाएगा। और खाने में उसका केंद्र होगा। भोजन उसका केंद्र होगा जीवन का। उसके वर्तुल में वह घूमेगा। वही सब कुछ है।
राजस प्रकृति का व्यक्ति भिन्न तरह के भोजन में रस लेता है। ऐसे भोजन में, जिससे ऊर्जा मिले, गति मिले, दौड़ मिले। क्योंकि राजस प्रकृति का

व्यक्ति महत्वाकांक्षी है, उसे दौड़ना है। वह मांसाहारी होगा। इसलिए सारे क्षत्रिय मांसाहारी हैं।
और तुम सोचते हो कि शूद्र को लोग चूंकि बासा भोजन देते हैं, इसलिए वे करते हैं। इससे उलटी बात कहीं ज्यादा सच है। वे बासा भोजन चाहते हैं, इसलिए शूद्र हैं। हजारों साल में उनकी आत्माएं छन-छनकर शूद्र की योनि में पहुंच गई हैं। उनको बासा, फेंका, व्यर्थ हो गया, उच्छिष्ट भोजन प्रिय है। वह आत्माओं ने रास्ता खोज लिया है।
हिंदुओं ने जो वर्ण की व्यवस्था की, वह बड़ी वैज्ञानिक है। वह कितनी ही विकृत हो गई हो, पर उसके पीछे बड़ा गहरा विज्ञान है। उन्होंने तीन खंड कर दिए! और ध्यान रखना मौलिक खंड तीन ही होंगे। क्योंकि अगर तीन ही गुण हैं, तो चार वर्ण नहीं हो सकते। तो चौथा जो वर्ण है वैश्य का, वह वर्ण नहीं है, वह खिचड़ी है। मेरे देखे, वह वर्ण नहीं है।
शूद्र का अर्थ है, तमस-प्रधान। शूद्र का अर्थ है, जो भोजन के लिए जी रहा है। जो जीने के लिए भोजन नहीं करता, जो जीता ही भोजन करने के लिए है, तमस से घिरा हुआ। वह थोड़ा-बहुत कर लेगा, जितने से भोजन मिल जाए। शूद्र आलसी होगा, वह ज्यादा काम नहीं करेगा। क्योंकि करना क्या है काम से! बस, आज का भोजन मिल गया, काफी है। इसलिए शूद्र दरिद्र रहेगा।
और ऐसा नहीं कि हिंदुस्तान में ही वह दरिद्र है, वह जहां भी होगा। क्योंकि शूद्र तो भीतर का गुण है, जाति से उसका कोई संबंध नहीं है। सारी दुनिया में शूद्र हैं, वे इतना कमा लेते हैं, जितना खा लें। बस, इससे ज्यादा वे फिर हाथ नहीं हिलाते। भोजन मिल गया, शराब मिल गई, वे सो गए; बात खतम हो गई। कल का कल देखेंगे। वे दरिद्र रहेंगे, दीन रहेंगे और भोजन के आस-पास उनकी सारी वृत्ति घूमती रहेगी।
क्षत्रिय है राजस। सैनिक, महत्वाकांक्षी लोग, दौड़ है जिनके जीवन में, कुछ पाना है, बड़ी महत्वाकांक्षा का उन्मेष हुआ है, वे दूसरे तरह का भोजन पसंद करेंगे, जो ऊर्जा दे; ऊर्जा दे और बोझिलता न दे; ऊर्जा दे और सुस्ती न दे; शक्ति दे और नींद न दे। क्योंकि नींद आ जाएगी तो महत्वाकांक्षा कैसे पूरी करेगा? कौन पूरी करेगा?
राजस व्यक्ति सोने में अड़चन अनुभव करता है। तामस व्यक्ति गहरी नींद सोता है, जोर से घुर्राता है। राजस व्यक्ति को अक्सर नींद की तकलीफ हो जाएगी; वह सो न पाएगा। उसको अक्सर अनिद्रा की बीमारी सताएगी।
वह दौड़ कोई भी हो, चाहे वह दौड़ धन की कर रहा हो, चाहे पद की कर रहा हो, राजनीति में लगा हो या किसी और उपद्रव में लगा हो, लेकिन उसे दुनिया को कुछ करके दिखलाना है। उसको अहंकार प्रकट करना है कि मैं कुछ हूं, मैं कोई साधारण व्यक्ति नहीं हूं, असाधारण। उसे हस्ताक्षर करने हैं इतिहास पर, उसे लकीर छोड़नी है अपने पीछे, कि लोग हजारों साल तक याद रखें कि कोई था, कोई मूल्यवान था। ऐसा व्यक्ति तामसी भोजन नहीं करेगा।
तुम चकित होओगे जानकर, अगर तुम हिटलर के भोजन के संबंध में जान लो, तो तुम बहुत हैरान होओगे। हिटलर न तो शराब पीता था, न सिगरेट पीता था, न अति भोजन करता था। शाकाहारी था। और इतना दुष्ट सिद्ध हुआ। महत्वाकांक्षी था। यह सब तो व्यवस्था महत्वाकांक्षा के लिए थी, ताकि ऊर्जा तो उपलब्ध हो, लेकिन सुस्ती न आए।
तो दुनिया में सारे क्षत्रिय अल्पभोजी होंगे। इसलिए क्षत्रियों की देहयष्टि देखने में सुंदर होगी। जापान के समुराई, या भारत के क्षत्रिय, जिनको लड़ना है युद्ध के मैदान पर, वे कोई बड़े-बड़े पेट लेकर युद्ध के मैदान पर नहीं जा सकते। उनके पास सिंह जैसे पेट होंगे, सिंह जैसी छाती होगी। अल्पभोजी होंगे, तभी सिंह जैसा पेट हो सकता है। मांसाहारी होंगे, लेकिन अल्पभोजी होंगे।
और यह जानकर तुम हैरान होओगे कि जिन्हें अल्प भोजन करना हो, उनके लिए मांसाहार जमता है। क्योंकि मांस पचा-पचाया भोजन है। थोड़ा-सा ले लिया, काफी शक्ति देता है। अगर शाक-सब्जी खानी हो, तो थोड़ी-सी शाक-सब्जी खाने से काफी शक्ति नहीं मिल सकती; काफी शाक-सब्जी खानी पड़ेगी, तब मिलेगी। इसलिए तो शाकाहारी जानवर दिनभर चरते रहते हैं।

गाय बैठी है, चर रही है। घास चरती है। इससे ज्यादा शुद्ध अहिंसक और शाकाहारी खोजना मुश्किल है। महावीर भी इसको नमस्कार करेंगे। इसलिए तो हिंदुओं ने इसको गौ माता मान लिया; शुद्ध शाकाहारी है। इसकी आंखें देखो, कैसी हल्की और शांत! मगर चरती है दिनभर।
बंदर बैठे हैं, चर रहे हैं अपने-अपने झाड़ पर। दिनभर चलता है यह क्रम। क्योंकि सब्जी से या पत्तियों से या फलों से बहुत थोड़ी ऊर्जा मिलती है, मात्रा उसकी बहुत कम है।
इसलिए तुम देखोगे कि दिगंबर जैन मुनि हैं, उनके बड़े-बड़े पेट हैं। यह होना नहीं चाहिए। क्योंकि ये तो उपवासी लोग हैं। इनके बड़े-बड़े पेट क्यों हैं? ये एक ही बार भोजन करते हैं। इनके बड़े-बड़े पेट क्यों हैं?
इनको एक ही बार में इतना करना पड़ता है कि चौबीस घंटे के लायक ऊर्जा मिल जाए। इसलिए काफी कर लेते हैं। पेट बड़े हो जाते हैं।
हिंदू संन्यासी का पेट बड़ा है, वह समझ में आता है, कि वह खीर-पकवान पर जीता है। लेकिन जैन संन्यासी का पेट क्यों बड़ा है? शाकाहारी शरीर है; अति भर लेता है।
अगर दुनिया में ठीक शाकाहार कभी हुआ प्रचलित, तो लोग कम से कम तीन या चार या पांच बार भोजन करेंगे; थोड़ा-थोड़ा, लेकिन फैलाकर करेंगे। क्योंकि शाकाहार थोड़ी-सी मात्रा देता है। बड़ी शुद्ध मात्रा देता है, लेकिन वह मात्रा थोड़ी है। और थोड़ी मात्रा का काम पूरा हो जाए जब चार घंटे बाद, तब फिर थोड़ी मात्रा। एक फल ले लिया, चार घंटे बाद दूसरा फल ले लिया। एक ग्लास दूध ले लिया, चार घंटे के बाद फिर थोड़ी सब्जी ले ली। मात्रा थोड़ी, लेकिन लंबे फैलाव पर होनी चाहिए। नहीं तो पेट खराब हो जाएगा।
राजसी व्यक्ति अक्सर मांसाहारी होंगे, लेकिन अल्पाहारी होंगे। तामसी व्यक्ति अत्यधिक भोजन करेगा। राजसी व्यक्ति उतना भोजन नहीं करेगा। उसे बहुत करना है, दौड़ना है, लड़ना है, जीना है। क्षत्रिय उसका वर्ग है।
फिर ब्राह्मण का वर्ग है, सत्व। ध्यान रखना, तामसी व्यक्ति अति भोजन करेगा; राजसी व्यक्ति जरूरत से कम करेगा; सत्व को उपलब्ध व्यक्ति सम्यक भोजन करेगा। न तो तामसी की भांति ज्यादा और न राजसी की भांति कम। उसका भोजन संतुलित होगा, संगीतपूर्ण होगा। वह उतना ही करेगा, जितना जरूरी है। वह वही करेगा, जितना आवश्यक है। उससे न रत्तीभर ज्यादा, न रत्तीभर कम। इसलिए बुद्ध और महावीर दोनों ने सम्यक आहार पर जोर दिया है। वह सत्व
का लक्षण है। जब बीमार होगा, उपवास कर लेगा। क्योंकि बीमारी में भोजन घातक है। जब स्वस्थ होगा, थोड़ा ज्यादा लेगा; जब उतना स्वस्थ न होगा, थोड़ा कम लेगा; उसका मापदंड रोज बदलता रहेगा। उसका प्राण हमेशा दिशासूचक यंत्र की तरह बताता रहेगा उसे कि कब कितना... । कभी वह थोड़ा ज्यादा लेगा, कभी थोड़ा कम लेगा।
सत्व को उपलब्ध व्यक्ति अनुशासन से नहीं जीते। तामसी व्यक्ति सदा ज्यादा लेगा, राजसी व्यक्ति सदा कम लेगा। सात्विक व्यक्ति संतुलित लेगा। लेकिन उसका संतुलन रोज बदलेगा। थोड़ा इसे समझ लेना चाहिए।
क्योंकि संतुलन रोज बदलना है, जिंदगी रोज बदल जाती है। तुम पैंतीस साल के हो; अभी तुम जितना भोजन करते हो, चालीस साल में उतना करोगे तो नुकसान होगा। पचास साल में उतना करोगे, तो भयंकर बीमारी हो जाएगी। पैंतीस साल पर जीवन-ऊर्जा उतरनी शुरू हो जाती है। अब मौत की तरफ यात्रा शुरू हो गई। आखिरी शिखर छू लिया। सत्तर साल में मरना है, तो पैंतीस साल में शिखर आ गया। अब उतार शुरू हुआ।
जैसे-जैसे उतार शुरू हुआ, सात्विक व्यक्ति का भोजन कम होता जाएगा। उसकी नींद भी कम होती जाएगी, भोजन भी कम होता जाएगा। सात्विक व्यक्ति मरते समय नींद से भी मुक्त हो जाएगा, भोजन से भी मुक्त हो जाएगा। सात्विक व्यक्ति की मृत्यु उपवास में होगी, अनिद्रा में होगी। तामसी व्यक्ति अक्सर नींद में मरेंगे। राजसी व्यक्ति संघर्ष में मरेंगे। सात्विक व्यक्ति उपवास में, शांति में, संगीत में मृत्यु को लीन होगा।
ब्राह्मण सात्विक का वर्ग है। सात्विक व्यक्ति जीने के लिए भोजन करता है, भोजन करने के लिए नहीं जीता। और सात्विक व्यक्ति के जीवन में कोई महत्वाकांक्षा नहीं है, कोई एंबीशन नहीं है। इसलिए वह किसी दौड़ के लिए

ऊर्जा इकट्ठी नहीं करता। वह उतनी ही ऊर्जा चाहता है, जो आज जीवन के फूल के खिलने में सहयोगी हो जाए। वह कल की उसकी कोई दौड़ नहीं है, उसका कोई भविष्य नहीं है।
सात्विक व्यक्ति का भोजन अत्यल्प होगा, शुद्धतम होगा, मौलिक रूप से शाकाहारी होगा। कभी उसके शरीर पर इतना बोझ न होगा भोजन का कि मस्तिष्क को नुकसान पहुंचे। हां, बहुत बार वह भोजन लेगा ही नहीं, ताकि ऊर्जा शुद्ध हो जाए, शांत हो जाए और ध्यान में लीन हो जाए।
संसार में जितने लोगों ने भी परम समाधि पाई है, वे सभी लोग उपवास के प्रेमी थे। महावीर, बुद्ध, जीसस, मोहम्मद, सभी ने उपवास किया है। और सभी ने उपवास की ऊर्जा का लाभ लिया है।
परम समाधि का क्षण उपवास के क्षण में ही आता है। तब विचार भी बंद हो जाते हैं; शरीर से भी संबंध बहुत दूर का हो जाता है; और ऊर्जा इतनी शुद्ध होती है, इतनी पवित्र होती है, इतनी कुंवारी होती है, कि उस पर सवार होकर कोई भी समाधि की उत्तुंग अवस्था को उपलब्ध हो जाता है।
भोजन करते हुए सविकल्प समाधि संभव है। भोजन करते हुए निर्विकल्प समाधि संभव नहीं है। अगर निर्विकल्प समाधि कभी भी संभव होती है, तो वह ऐसे ही क्षणों में संभव होती है, जब तुम्हारी स्थिति उपवास की है। यह भी हो सकता है, तुम उपवास न कर रहे हो।
जैसे जिस रात बुद्ध को ज्ञान हुआ है, उस रात उन्होंने भोजन लिया था, उपवासे वे नहीं थे। रात उन्होंने भोजन लिया था, सुबह वे ज्ञान को उपलब्ध हुए।
लेकिन सुबह आते-आते शरीर की अवस्था उपवास की हो जाती है। अंग्रेजी का शब्द अच्छा है नाश्ते के लिए, ब्रेकफास्ट। उसका मतलब होता है, उपवास तोड़ना। शरीर की अवस्था उपवास की हो जाती है। छः घंटे में, जो तुमने खाया है, वह लीन होने लगता है। आठ घंटे में करीब-करीब लीन हो जाता है। आठ घंटे और बारह घंटे के बीच उपवास की अवस्था आ जाती है, तब भोजन किया, नहीं किया बराबर होता है।
जिनको भी जब भी कभी ज्ञान उपलब्ध हुआ है, ऐसी ही घड़ी में हुआ है, जब शरीर उस अवस्था में था, जिसको हम उपवास कहें। भोजन नहीं। शरीर भोजन नहीं पचा रहा था। भोजन जो किया था, वह पच गया था या किया ही नहीं था। शरीर बिल्कुल सम्यक हालत में था। कोई काम नहीं चल रहा था। शरीर का कारखाना बिल्कुल बंद पड़ा था। तभी तो सारी ऊर्जा मिल पाती है ध्यान को और ध्यान गति कर पाता है।
ये तीन वर्ण--शूद्र का, क्षत्रिय का, ब्राह्मण का--तमस, रजस, सत्व के वर्ण हैं। वैश्य का वर्ण तीनों का जोड़ है। तो वैश्य में तीनों तरह के लोग तुम पाओगे। शूद्र भी पाओगे, क्षत्रिय भी पाओगे, ब्राह्मण भी पाओगे। वैश्य मिश्रित वर्ग है। और तुमसे मैं यह बता दूं कि वैश्य दुनिया का सब से बड़ा वर्ग है।
ब्राह्मण तो कभी-कभी तुम्हें एकाध मिलेगा। जितने लोग ब्राह्मण की तरह जाने जाते हैं, उनको तुम ब्राह्मण मत समझ लेना। वे ब्राह्मण घर में जन्मे हैं। जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं होता। ब्राह्मण तो ब्रह्म को जानने से कोई होता है। जिनके जीवन के तीनों गुण संयुक्त हो गए, सम-स्वर हो गए, समवेत हो गए और जिन्होंने तीनों के पार एक को जान लिया, वे ही ब्राह्मण हैं। या उस जानने के मार्ग पर गतिमान हैं, वे ब्राह्मण हैं। ब्राह्मण के घर में पैदा होने से कोई ब्राह्मण नहीं होता।
दुनिया में सब से बड़ा वर्ग वैश्य का है; सौ में से पंचानबे प्रतिशत लोग वैश्य हैं। शूद्र भी धंधा कर रहा है। वह भी धन इकट्ठा करने में लगा है। क्षत्रिय भी धन इकट्ठा कर रहा है। हो सकता है, सैनिक का धंधा कर रहा है क्षत्रिय। लेकिन धन ही इकट्ठा कर रहा है। ब्राह्मण भी हो सकता है पुजारी का धंधा कर रहा है, पुरोहित का धंधा कर रहा है, पंडित का धंधा कर रहा है, लेकिन धंधा ही कर रहा है। पंचानबे प्रतिशत लोग वैश्य हैं दुनिया में। चार प्रतिशत लोग शूद्र हैं दुनिया में, गहन तमस में पड़े हैं। और एक प्रतिशत मुश्किल से लोग ब्राह्मण हैं।

अगर तुम इन तीनों गुणों को ठीक से अपने भीतर समझोगे, अपने आचरण में, व्यवहार में, वस्त्र में, भोजन में, उठने-बैठने में, सब तरफ से तुम धीरे- धीरे तमस को कम करोगे, रजस को कम करोगे, ताकि उन दोनों की ऊर्जा सत्व को मिल जाए, वे बराबर समतुल हो जाएं, तराजू एक-सा हो जाए, पलड़े एक तल पर आ जाएं, तो तुम्हारे भीतर ब्राह्मण का जन्म होगा।
कोई ब्राह्मण के घर में पैदा नहीं होता; ब्राह्मण तुम्हारे भीतर पैदा होता है। तुम ब्राह्मण में पैदा नहीं होते। ब्रह्म का बोध ब्राह्मण का लक्षण है।
और जैसा भोजन के संबंध में सच है, वैसे ही यज्ञ, तप और दान भी तीन ही तरह के होंगे। सभी कुछ तीन तरह का होगा।
तामसी व्यक्ति यज्ञ करेगा, तो इसलिए करेगा कि जो उसके पास है, वह खो न जाए।
इसे ठीक से समझ लो। तामसी व्यक्ति हमेशा इस चिंता में रहेगा कि जो उसके पास है, वह खो न जाए; उसे वह पकड़कर रखता है। वह अगर यज्ञ करेगा, तो इसलिए कि जो उसके पास है, वह बचा रहे।
राजसी को इसकी चिंता नहीं है, जो उसके पास है। उसको चिंता है, जो उसके पास नहीं है, वह उसे मिल जाए। इसलिए अगर राजसी यज्ञ करेगा, तो इसलिए, ताकि जो नहीं है, वह मिल जाए। वह कुछ पाने के लिए यज्ञ करेगा। तामसी बचाने के लिए यज्ञ करेगा।
और सात्विक व्यक्ति अगर यज्ञ करेगा, तो सिर्फ उत्सव के लिए। न कुछ बचाने के लिए, न कुछ पाने के लिए; जो मिला ही हुआ है, जो सदा मिल ही रहा है, उसके अहोभाव, उसके आनंद के लिए, उसके उत्सव के लिए। उसका यज्ञ एक नृत्य है; उसका यज्ञ एक गीत है, परमात्मा की तरफ गाया गया। उसका यज्ञ एक धन्यवाद है। तामसी जाएगा मंदिर में, तो कहेगा कि जो मेरे पास है, छीन मत लेना। राजसी जाएगा, तो कहेगा कि जो मेरे पास नहीं है, उसे मेरे लिए जुटा। सात्विक जाएगा मंदिर में, तो धन्यवाद देने कि जो है, वह जरूरत से ज्यादा है। जो चाहिए, उससे बहुत ज्यादा है। मैं धन्यवाद देने आया हूं।
प्रार्थना तीनों की अलग-अलग होगी। ऐसे ही तीनों का तप अलग-अलग होगा। ऐसे ही तीनों का दान भी अलग-अलग होगा।
तामसी अगर दान देगा, तो वह इसीलिए देगा कि वह जो उसने लूट-खसोट की है,
वह बचे। लाख रुपया चोरी करेगा, दस रुपया दान करेगा। लाख रुपया बचा लेगा सरकार से टैक्स में, तो हजार रुपए का एक ट्रस्ट खड़ा कर देगा। वह यह दिखाना चाहता है कि दानी आदमी कहीं टैक्स बचाने वाला हो सकता है? कभी नहीं। वह चाहेगा कि समाज में खबर फैले कि वह बड़ा दानी है। अखबार में फोटो छपवाएगा कि अस्पताल बना दिया।
अभी तो मैं देखकर चकित हुआ। किसी ने यहां पूना में दस लाख रुपया दान दिया किसी अस्पताल को। चकित हुआ देखकर मैं यह कि अखबारों ने शायद यह खबर छापी न होगी, तो इसका विज्ञापन छपा अखबार में। विज्ञापन! एडवरटाइजमेंट! कि इतना-इतना दान फलां-फलां परिवार ने अस्पताल को दिया है। यह भी उसी परिवार की तरफ से छपा हुआ विज्ञापन!
दान का विज्ञापन करेगा। क्योंकि उससे उसको कुछ छिपाना है, कुछ बचाना है, कुछ ढांकना है। जो है, वह खो न जाए, इसलिए वह थोड़ा-सा दान भी देगा। ताकि परमात्मा भी ध्यान रखे, समाज भी ध्यान रखे, लोग भी ख्याल रखें। चोर अक्सर दानी होते हैं। मगर उनका दान तामसी होता है। वे देते हैं इसलिए, ताकि किसी को ख्याल न आए कि इन्होंने इतना छीना होगा।
राजसी भी दान देगा। वह दान देगा इसलिए, ताकि जो नहीं मिला है, वह मिले। उसका दान ऐसा है, जैसे कि मछली को पकड़ने वाला कांटे पर आटा लगाता है। वह कोई मछली को आटा देने के लिए नहीं, मछली को पकड़ने के लिए है। वह दान देता है, ताकि उसकी महत्वाकांक्षा के लिए रास्ता बने।
अब किसी को कल्पना भी नहीं थी... । महात्मा गांधी का पूरा आंदोलन भारत
के धनपतियों के दान से चला। गांधी ने कभी सोचा भी न होगा कि धनपति यों ही नहीं देता। वे सारे धनपति हावी हो गए कांग्रेस पर। दान उन्होंने दिया था, फिर उन्होंने खूब उसका भोग भी लिया। अब भी वे देते हैं।

अब यह बड़े मजे की बात है, चाहे इंदिरा को इलेक्शन लड़ना हो, तो उन्हीं
से पैसा मिलना है। चाहे मोरारजी को लड़ना हो, तो उन्हीं से पैसा मिलना है। और चाहे जयप्रकाश को पूर्ण क्रांति करनी हो, उनको भी उन्हीं से पैसा मिलना है।
पूंजीपति बड़ा कुशल है। वह सबको देता है। जो भी आएगा, उससे ही वसूल कर लेगा। वह कोई फिक्र नहीं करता। उसका कोई पक्ष नहीं है। महत्वाकांक्षी का क्या पक्ष! उसको कोई मतलब नहीं है कि तुम जनसंघी हो, कि तुम कम्युनिस्ट हो, कि तुम कांग्रेसी हो, कोई मतलब नहीं है। तुम कोई भी हो, लो रुपया।
ध्यान रखना, अगर कभी ताकत में आओ, तो भूल मत जाना। और भूलोगे कैसे? क्योंकि ताकत में आना ही थोड़े ही काफी है। फिर ताकत में बने रहने की जरूरत है। तब फिर पैसा चाहिए।
बहुत कठिन है धनपति से बच जाना। क्योंकि हर एक को वही देगा। सब को वही
दे रहा है। इसलिए मजे का खेल यह है कि राजनीतिज्ञ करीब-करीब शतरंज के मोहरे हैं। खेलने वाले कोई और ही हैं। उनके चेहरे भी दिखाई नहीं पड़ते कि कौन खेल रहा है।
बिड़ला के पास, हिंदुस्तान आजाद हुआ, तब केवल तीस करोड़ रुपए थे। अब तीन
सौ तीस करोड़ रुपए हैं। यह कैसे हुआ? बिड़ला ने गांधी को अपने घरों में ठहराया सब जगह। जिंदगीभर गांधी बिड़ला के घरों में ठहरे। मरे भी बिड़ला के घर में। सारे राजनीतिज्ञ बिड़ला से पलते-पुसते रहे। तीस करोड़ की संपत्ति तीन सौ तीस करोड़ हो गई। और बढ़ती चली जाती है।
और दान की कोई कमी नहीं है। कितने मंदिर बिड़ला बनाते हैं। हर जगह मंदिर बनता है, सब तरह का दान करते हैं। उससे कोई अंतर नहीं पड़ता। असल में वह दान तो आटा है, जो कांटे पर लगाया जाता है।
तो राजसी भी दान देता है, वह उसको पाने के लिए देता है, जो उसके हाथ में नहीं है। तामसी देता है उसको बचाने के लिए, जो उसके पास है।
सात्विक व्यक्ति दान देता है अहोभाव से, प्रेम से; न कुछ बचाने को है,
न कुछ पाने को है। जो है, वह बांटने को है। जो है, उसमें दूसरे को भी साझीदार बनाना है। वह इतना आनंदित है कि तुम्हें अपने आनंद में भी मित्र बनाना चाहता है, कि तुम आओ। जो भी है उसके पास--रूखा-सूखा है तो, बहुत बहुमूल्य है तो, झोपड़ा है तो, महल है तो--वह तुम्हें बुलाता है कि निकट आओ, जो मेरे पास है, हम बांटें, हम साझीदार बनें। वह भी दान देता है, लेकिन उसका दान बेशर्त है।
तीनों पर ध्यान रखना। अपने भीतर धीरे-धीरे खोज करना। यह विश्लेषण का सूत्र है कि तुम तामसी हो, कि राजसी हो, कि सात्विक हो। और किसी को धोखा देना नहीं है, इसलिए ठीक-ठीक जांच-परख करना।
विश्लेषण ठीक कर लोगे, तो उससे तुम्हारा रास्ता साफ होगा। और तब धीरे- धीरे तुम ऊर्जा को रूपांतरित कर सकते हो। जो ऊर्जा तमस में जा रही है, उसे रजस में ला सकते हो। जो ऊर्जा रजस में जा रही है, उसे सत्व में ला सकते हो। शास्त्र की परिणति है, जब तीनों की ऊर्जाएं समतुल हो जाएंगी, वे तीनों एक-दूसरे को काट देते हैं चेतना गुणातीत हो जाती है। गुणातीत हो जाते ही तुम भी कह सकोगे, अहं ब्रह्मास्मि! मैं ब्रह्म हूं!
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग आठ
गीता दर्शन अध्याय 17
पांचवां प्रवचन

भोजन की कीमिया

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः।। 8।।
कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः।। 9।।
यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्।। 10।।
आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ाने वाले एवं रसयुक्त, चिकने, स्थिर रहने वाले तथा स्वभाव से ही मन को प्रिय, ऐसे आहार सात्विक पुरुष को प्रिय होते हैं।
और कड़वे, खट्टे, लवणयुक्त और अति गरम तथा तीक्ष्ण, रूखे और दाहकारक एवं दुख, चिंता और रोगों को उत्पन्न करने वाले आहार राजस पुरुष को प्रिय होते हैं।
और जो भोजन अधपका, रसरहित और दुर्गंधयुक्त एवं बासा और उच्छिष्ट है तथा जो अपवित्र है, वह भोजन तामस पुरुष को प्रिय होता है।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः सुना है, नारद को कृष्ण से मिलने की बहुत प्यास थी। और उन्हें जहां भी कृष्ण के होने का समाचार मिलता, वहां पहुंचते; लेकिन कृष्ण वहां से गुजर गए होते। ऐसे मृत्यु तक वे कृष्ण से न मिल पाए। एक है अनंत प्यास से भरे नारद की स्थिति और एक मैं हूं, जिसकी अभी प्यास ही नहीं जगी। तो क्या परमात्मा को पाने की मेरी चेष्टा निरर्थक ही नहीं है?

परमात्मा से वंचित रह जाने वाले दो तरह के लोग हैं। एक, जिनकी प्यास
तो है ठीक, लेकिन खोज की दिशा गलत है। दूसरे, जिनकी प्यास ही नहीं है; इसलिए दिशा का सवाल ही नहीं उठता।
नारद की प्यास तो थी, लेकिन यात्रा वे गलत दिशा में कर रहे थे। जो भी कृष्ण को खोजने बाहर जाएगा, वह भटकेगा। कृष्ण को खोजना हो, तो भीतर जाना पड़ेगा। कृष्ण कोई बाहर की सत्ता नहीं है, कृष्ण तो भीतर की अवस्था है। नारद चूके, क्योंकि कृष्ण को बाहर समझा। जिसने भी परमात्मा को बाहर समझा, वह चूकता चला जाएगा। तुम जब पहुंचोगे, पाओगे, वहां से परमात्मा हट चुका। हर बार यही होगा। क्योंकि परमात्मा वहां था ही नहीं। वह दूर से दिखाई पड़ता था। पास से जाकर पता चलता है, हट गया। मृग-मरीचिका थी। मरुस्थल में दूर से दिखाई पड़ता था, सरोवर है।
और मरुस्थल में जब सरोवर दिखाई पड़ता है, तो पक्का भरोसा आ जाता है। भरोसे के दो कारण होते हैं, एक तो कारण होता है भीतर की प्यास। प्यासा आदमी पानी पर भरोसा करना चाहता है। प्यासा आदमी पानी पर संदेह नहीं करना चाहता। क्योंकि संदेह तो मौत बनेगी। तो प्यासा तो श्रद्धालु होता है। जितनी बड़ी प्यास होती है, उतनी ही बड़ी श्रद्धा हो जाती है।
तो प्यासा यह मानना नहीं चाहता कि वह जो दूर दिखाई पड़ रहा सरोवर है, वह
है नहीं। क्योंकि उसके न होने का मतलब तो मौत होगी। यहां प्यास से कंठ जल रहा है, तो बुद्धि सारे संदेह छोड़ देती है, बुद्धि अपनी बुद्धिमानी छोड़ देती है।
प्यासा भरोसा करता है। भरोसे के सहारे ही जी सकता है। प्यासा आशा से भरा होता है। क्योंकि आशा के बिना तो जीवन ही नष्ट हो जाएगा। तो जो नहीं है, उसे भी मानने की तत्परता होती है।
भयभीत आदमी भय के कारण बुद्धि को खो देता है। जो नहीं है, वह दिखाई पड़ने लगता है। तुम कभी भयभीत हालत में अंधेरी रात से गुजरे? न मालूम कितने भूत-प्रेत सब तरफ मौजूद हो जाते हैं। चोर, हत्यारे सब तरफ सरकने लगते हैं।

पत्ता सरकता है और लगता है कि कोई आ गया। हवा का झोंका टकराता है वृक्षों से और लगता है, कोई आ गया। खुद की ही पदचाप सुनाई पड़ती है सुनसान रात में और लगता है, कोई पीछा कर रहा है। खुद के ही हृदय की धड़कन तेज मालूम पड़ने लगती है। भीतर उत्तेजना होती है, तुम बाहर उत्तेजना का कारण खोज लेते हो। भयभीत आदमी भूत-प्रेत पैदा कर लेता है। जैसा भयभीत आदती भूत-प्रेत पैदा कर लेता है, वैसा ही प्यासा आदमी जल को पैदा कर लेता है।
मरुस्थल में प्यास लगी हो और सरोवर दिखाई पड़े, तो इतनी हिम्मत तुम न जुटा सकोगे कि सोच सको, यह मृग-मरीचिका है, सपना है। कठिन है। घर में बैठे होते छाया में, जल पीए बैठे होते, तो शायद तुम भी दो बार सोचते कि यह जो दिखाई पड़ रहा है, यह कहीं मृग-मरीचिका तो नहीं है! कहीं मरुस्थल का धोखा तो नहीं है!
मरुस्थल में धोखा पैदा होता है प्रकाश के एक नियम के अनुसार। जब प्रकाश की किरणें तप्त रेत पर पड़ती हैं, तो तप्त रेत से वापस लौटती हैं। ये जो वापस लौटती किरणें हैं, ये कंपती हुई गरम होकर वापस लौटती हैं। इनके कंपन के कारण तुम्हें कभी-कभी यहां भी, मरुस्थल में जाने की जरूरत भी नहीं, भरी दुपहरी में किसी के छप्पर पर गौर से देखना, तो तुम्हें किरणों की लहरें कंपित होती मालूम होंगी।
ये कुछ भी नहीं हैं, क्योंकि मरुस्थल तो भयंकर अग्नि है; रेत ही रेत है; लहरें कंपती हुई मालूम पड़ती हैं किरणों की। लेकिन वह कंपन इतना साफ मालूम पड़ता है कि लगता है, पानी में लहरें उठ रही हों। और भरोसा और भी गहरा आ जाता है। आस-पास खड़े हुए वृक्षों की छाया बनने लगती है किरणों की कंपती हुई लहरों में। और वह तो पक्का हो गया कि जल है, नहीं तो छाया कैसे बनेगी! जल के बिना कहीं छाया बन सकती है? रेत में कहीं वृक्ष की छाया बन सकती है? लेकिन कंपती लहरों में वृक्ष की छाया बन जाती है किरणों में।
और फिर लगी भीतर प्यास! भीतर की प्यास और बाहर प्रकाश का जाल, भरोसा आ जाता है। लेकिन जैसे ही तुम पास पहुंचते हो, जैसे-जैसे पास पहुंचते हो, तुम बड़े चकित होते हो। जैसे-जैसे पास पहुंचते हो, ऐसे-ऐसे सरोवर पीछे हटने लगता है। तुम्हारी और सरोवर की दूरी उतनी ही रहती है, चाहे तुम कितने ही पास आ जाओ। क्योंकि अब तुम्हें दूर किरणों के जाल पर पानी दिखाई पड़ता है। प्यासा आदमी फिर भी भरोसा करता है। प्यासा तो अंधा हो जाता है।
तो जहां-जहां नारद गए होंगे, वहीं-वहीं से कृष्ण हट गए; यह कहानी बड़ी प्रीतिकर है। ऐसा हुआ हो, न हुआ हो, लेकिन खोजी के जीवन में यह घटना आती है। तुम अपनी प्यास के कारण परमात्मा को बाहर देखते हो। क्योंकि तुमने जितनी चीजों की प्यास की है, सभी को बाहर पाया है। जल की प्यास लगी, जल बाहर पाया। भूख लगी, क्षुधा लगी, भोजन बाहर पाया। प्रेम उठा, भीतर तो प्रेमी नहीं मिला, बाहर पाया। महत्वाकांक्षा उठी, बाहर पद पाए, धन पाया। जो भी भीतर जगा, उसको तृप्त करने वाला सदा तुमने बाहर पाया।
तो जब परमात्मा की प्यास जगेगी, तब भी तुम्हारे पूरे जीवन का अनुभव कहेगा, बाहर होना चाहिए। जब भी उठी प्यास, बाहर ही तृप्ति पाई। जब भी उठी अतृप्ति, बाहर ही संतोष पाया। सारे जन्मों का सार निचोड़ है, गणित है, कि भीतर होती है प्यास, जल बाहर होता है। जब परमात्मा की प्यास उठेगी, तब भी तुम बाहर खोजोगे--मंदिरों में, मस्जिदों में, गुरुद्वारों में--बाहर खोजोगे। आकाश में, पाताल में, सब जगह खोजोगे। वहां न खोजोगे, जहां तुम्हारी प्यास है।
संसार में प्यास तो भीतर होती है, जल बाहर होता है। परमात्मा की खोज में जहां प्यास है, वहीं सरोवर है। वे भिन्न आयाम हैं; तुम्हारे अनुभव से उसका कोई संबंध नहीं।
तो जहां-जहां नारद को खबर मिली, जहां-जहां मृग-मरीचिका बनी, जहां-जहां धोखा खड़ा हुआ, वहां-वहां नारद भागे। पता लगा, कृष्ण पूना में हैं, नारद पूना आए। पता लगा, कृष्ण कलकत्ते में हैं, नारद कलकत्ता गए। लेकिन जब तक कलकत्ता पहुंचे, तब तक कृष्ण कहीं और जा चुके। ऐसे वे भटकते रहे।
यह थोड़ा विचारने जैसी बात है कि नारद जैसा बुद्धिमान आदमी जीवनभर भटकता रहा और न खोज पाया! सबको मिल गए कृष्ण, नारद को क्यों न मिले?

नारद प्यासा है, गहरी प्यास है। प्यास अंधा कर देती है। और बाहर खोज रहा है। बाहर की खोज में जहां-जहां पाया, जहां-जहां खबर मिली, गए; लेकिन कृष्ण वहां से हट गए। पूरा जीवन ऐसे ही गया।
ऐसे ही तो तुम्हारे बहुत-से जीवन गए। न नारद को समझ आई, न तुम्हें अभी समझ आई है कि परमात्मा की प्यास और परमात्मा दो चीजें नहीं हैं। वहां द्वैत है ही नहीं। वहां प्यास ही सरोवर है। वहां भूख ही भोजन है। वहां अद्वैत है। वहां खोजी और खोजने वाला दो नहीं हैं। वहां खोजने वाला और जिसको खोज रहा है, वे दोनों एक हैं।
वहां तुम और तुम्हारा भगवान दो नहीं हैं। वहां भक्त और भगवान अन्य-अन्य नहीं हैं; वहां अनन्य है, अभिन्न है। वहां एक है। वहां तुम्हीं हो। चाहो तो भक्त बन जाओ और चाहो तो भगवान बन जाओ। अगर तुम भक्त बने, तो तुम भगवान को बाहर खोजते रहोगे।
वही तो नारद की मुसीबत है। नारद भक्त हैं। भक्त बाहर खोजता रहेगा और भटकता रहेगा। जिन्होंने जाना है, उन्होंने कहा है, तुम भगवान बन जाओ।
भगवान बनने का क्या मतलब होता है? इतना ही मतलब होता है कि प्यास और सरोवर एक। जिसे मैं खोज रहा हूं, वही मैं हूं। जो खोज रहा है, वही मंजिल है। मार्ग और मंजिल अलग नहीं। साधन और साध्य दो नहीं। एक ही है। और जो एक की तलाश करेगा, उसे तो भीतर ही खोजना पड़ेगा।
काश! नारद आंख बंद कर लेते और भीतर देखते। तो जिस कृष्ण को बाहर चूकते रहे थे, उसे भीतर हंसता हुआ पाते। वह वहां विराजमान है, भीतर प्रतीक्षा कर रहा है। बुला भी रहा है कि नारद, बाहर क्यों भटकता है? मैं तेरे भीतर हूं! लेकिन जो बाहर भटकता है, वह भीतर की आवाज नहीं सुनता। नारद प्यासे थे। लेकिन प्यास ने उन्हें मृग-मरीचिका सुझा दी।
तो एक तो वह आदमी है, जो प्यासा भी होता है, फिर भी चूकता है। एक वह आदमी है, जो प्यासा ही नहीं होता, इसलिए मिलने का सवाल ही नहीं है। नारद तो कभी न कभी मिल जाएंगे, एक जन्म में न मिल पाए हों, दूसरे जन्म में मिल जाएंगे, तीसरे जन्म में मिल जाएंगे। ऐसी कोई जल्दी भी नहीं है। अनंत काल है। शेष बहुत समय है। कथा चलती ही रही है। इसलिए कुछ अंत नहीं होता एक जीवन पर। एक जीवन तो एक कण है। समय का तो विस्तीर्ण सागर है। कोई जल्दी नहीं है। नारद कहीं न कहीं मिल ही जाएंगे। लेकिन जिसकी प्यास ही नहीं जगी, वह कैसे मिलेगा?
प्यास जगने का पहला कदम है, बाहर खोजना। और बाहर खोजकर जब असफल होते हैं, बार-बार असफल होते हैं; तब सुरति आती है, स्मृति आती है कि अब भीतर और खोज लें।
इसलिए नारद बनो। खाली बैठे रहने से कुछ भी न होगा। बाहर खोजना ही पड़ेगा, तभी तो भीतर खोजने का भान आएगा। बाहर हारोगे, तो भीतर जागोगे। बाहर गिरोगे बार-बार, तो भीतर उठोगे। बाहर टकरा-टकराकर असफलता-असफलता-असफलता हाथ लगेगी, तो एक दिन तुम्हें भी याद आ जाएगी कि बहुत खोजा बाहर, अब थोड़ा भीतर भी नजर कर लें; थोड़ा भीतर भी देख लें। पता नहीं, कहीं भीतर छिपा हो! जब बाहर चूक ही जाता है हर बार, मिलते-मिलते चूक जाता है, पहुंचते- पहुंचते चूक जाता है, तो कितनी देर तुम बाहर खोजते रहोगे! मूढ़ से मूढ़ आदमी को भी एक दिन समझ आ जाएगी कि दो ही तो दिशाएं हैं, बाहर और भीतर। बाहर खोज लिया, अब जरा भीतर और देख लें।
तो खोज का पहला पड़ाव नारद हैं। अगर प्यास ही न लगी, तो यह तो पक्का है
कि मृग-मरीचिका पैदा न होगी। कृष्ण तुम्हारे पास से भी गुजरते होंगे, तो तुम आंख उठाकर न देखोगे। देख भी लोगे, तो भी दिखाई न पड़ेंगे। देख भी लोगे, तो कुछ और समझोगे।
कृष्ण मौजूद हैं, बहुत कम लोग ही तो देख पाते हैं। अर्जुन को भी बड़ी देर लगती है देख पाने में। अर्जुन भी पूछता चला जाता है। वह कृष्ण को टटोलने की कोशिश कर रहा है; जांचने की कोशिश कर रहा है। उसे भी पक्का भरोसा नहीं है। इसीलिए तो इतनी लंबी गीता चलती है। नहीं तो कृष्ण कह देते, लड़। भरोसा पूरा होता, वह लड़ता।
संदेह था, शक था। और शक बिल्कुल स्वाभाविक मालूम होता है। क्योंकि कृष्ण मित्र थे। मित्र में भगवान देखना बहुत मुश्किल है। जो बहुत दूर है,

उसमें भगवान देखना आसान है। जो बहुत पास है, उसमें देखना बहुत मुश्किल है। क्योंकि वह तुम्हीं जैसा है। तुम्हें उसकी भूल-चूकें भी पता हैं। तुम उसे परम पुरुष कैसे मान सकते हो! तुमने उसे प्यासा देखा है, भूखा देखा है, थका- मांदा देखा है; सोते देखा है, उठते देखा है। गरमी में पसीना बहते देखा है, सर्दी में कंपते देखा है। ठीक तुम जैसा है। किसी ने गाली दी है, तो नाराज होते देखा है। किसी ने प्रेम किया है, तो प्रसन्न होते देखा है। ठीक तुम जैसा है। कैसे तुम भगवान को मान सकोगे कि वह भगवान है?
कृष्ण को अर्जुन कैसे माने कि वे भगवान हैं? दुर्योधन भी नहीं मानता,
पर उसका न मानना पक्का है। उसकी अश्रद्धा पूर्ण है। हां, अर्जुन की श्रद्धा पूरी नहीं है। अश्रद्धा भी पूरी नहीं है; डांवाडोल है।
अर्जुन शब्द बड़ा महत्वपूर्ण है। वह बनता है ऋजु से। ऋजु का अर्थ होता है, सीधा। जैसे ज्योति जलती हो दीए की, कंपती न हो। अऋजु का अर्थ होता है, कंपता हुआ, डांवाडोल, चंचल; क्षणभर श्रद्धा, क्षणभर अश्रद्धा।
देखता है मित्र को, तो मित्र दिखाई पड़ता है। जरा गौर से देखता है, तो मित्र खो जाता है, भगवान की झलक मिलती है। भरोसा आता भी है, नहीं भी आता। इसलिए इतनी लंबी गीता चलती है। यह भरोसे की खोज है, श्रद्धा की खोज है। अर्जुन टटोल रहा है। वह यह कह रहा है कि सच में ही, सच में ही तुम विराट पुरुष हो? सच में ही तुम वह हो, जिसका तुम दावा करते हो? सच में तुम ही हो, जिसने सब बनाया? तुम्हीं हो, जो सब में छिपे हो? भरोसा नहीं आता। मेरे सारथी होकर बैठे हो! मेरा रथ चला रहे हो! मेरे घोड़ों को पानी पिलाते हो, खुजलाते हो! शरीर तो तुम्हारा मुझ जैसा ही मालूम पड़ता है। शब्द भी तुम्हारे मुझ जैसे मालूम पड़ते हैं।
लेकिन थोड़ा-सा कुछ पार भी झलकता हुआ आता है, कुछ अतिक्रमण भी करता है। कुछ विराट भी है; छोटे-से आंगन में ही सही, आकाश भी है। उसकी भी झलक मिलती है।
दुर्योधन पक्का है, दृढ़ निश्चय है। उसकी अश्रद्धा पूरी है। उसने कभी भूलकर भी नहीं सोचा कि इस आदमी में कोई परमात्मा है। अर्जुन की श्रद्धा- अश्रद्धा के बीच दौड़ है।
जिसकी प्यास ही नहीं है, वह तो खोजता ही नहीं। उसे तो दूर भी नहीं दिखाई पड़ता परमात्मा, बाहर भी नहीं दिखाई पड़ता। उसके लिए परमात्मा शब्द व्यर्थ है। उसमें कोई अर्थ नहीं है। वह कामचलाऊ है।
अगर वह कभी परमात्मा शब्द का उपयोग भी करता है, तो तुम यह मत सोचना कि उसकी कोई सार्थकता है। उसकी कोई सार्थकता नहीं है। ऐसा आदमी कभी-कभी कहता है, कोई बात उसे मालूम नहीं, तुम उससे पूछो, वह कहता है, परमात्मा जाने। तुम यह मत समझना कि वह यह कह रहा है कि परमात्मा जानता है। जब वह कहता है, परमात्मा जाने, तो वह यह कहता है कि कोई भी नहीं जानता। उसका मतलब यह होता है कि कोई भी नहीं जानता। परमात्मा यानी कोई भी नहीं। वह उपयोग करता है। मुल्ला नसरुद्दीन नास्तिक है। ईश्वर को मानता नहीं; पूजा-प्रार्थना
को मानता नहीं। कभी मस्जिद नहीं गया; कभी कुरान उठाकर नहीं पढ़ी।
एक यात्रा में एक मौलवी का साथ हो गया। सर्द ठंडे दिन थे और मौलवी पांच बजे सुबह प्रार्थना करने को उठा कंपकंपाता हुआ; दांत कंप रहे, हाथ कंप रहे। बड़ी सर्द रात। मुल्ला अपने बिस्तर में दबा है। मौलवी को उठता देखकर उसने भी जरा-सा रजाई से झांककर देखा और कहा कि धन्यवाद भगवान का कि हम आस्तिक नहीं हैं।
इसके भगवान शब्द का क्या अर्थ होगा? धन्यवाद भगवान का कि हम आस्तिक नहीं हैं! नहीं तो पांच बजे रात, इस सर्द सुबह में उठकर प्रार्थना करनी पड़ती। यह भी भगवान शब्द का उपयोग करता है, लेकिन इसका कोई प्रयोजन नहीं है। यह अर्थहीन शब्द है।
भगवान जैसे शब्द में अर्थ तो तभी आता है, जब तुम्हें थोड़ी-सी प्रतीति, थोड़ी सी झलक, थोड़ा झरोखा खुलना शुरू होता है। भगवान शब्द का अर्थ शब्दकोशों में नहीं लिखा है। वह जीवन की अनुभूति में है।
जिसकी प्यास ही नहीं है, उसे बाहर की दौड़ तो नहीं होगी, वह नारद जैसा भटकेगा नहीं। लेकिन इससे प्रसन्न मत होना कि हम भटक नहीं रहे हैं। क्योंकि जो भटकता है, वह कभी ठीक राह पर भी आ जाता है। जो भटकता ही नहीं, वह

कभी ठीक राह पर नहीं आता। जो भूल करता है, वह कभी भूल सुधार भी लेता है। जो भूल करता ही नहीं, वह सुधारेगा कैसे?
इसलिए भूल करने से मत डरना और भटकने से भयभीत मत होना। जो पहुंचे हैं, सभी भटककर पहुंचे हैं। और जिन्होंने पाया है, बहुत भूलें करके पाया है। इसलिए भूल करने से मत डरना। वह कायर का लक्षण है। और भटकने से मत डरना, वह कमजोर की परिभाषा है।
हिम्मतवर आदमी भूल करने को राजी होता है, हजार भूलें करने को राजी होता है। एक बात के लिए भर राजी नहीं होता; एक ही भूल को दुबारा करने को राजी नहीं होता। नई-नई भूलें करता है। क्योंकि भूल न करोगे, तो जानोगे कैसे? पहचानोगे कैसे? टटोलोगे न, तो द्वार कैसे मिलेगा?
दीवार को टटोलने से बचना मत। क्योंकि जहां हम खड़े हैं, अंधकार में, वहां टटोला जा सकता है और कुछ किया नहीं जा सकता। लेकिन टटोलने वालों ने धीरे-धीरे द्वार पा लिया है। तुम इससे मत डरना कि टटोलने में हंसी होगी, लोग मखौल करेंगे, क्या दीवार टटोल रहे हो! अंधे हो?
तो अकड़े हुए मत बैठे रहना अंधेरे में कि टटोलने से अंधेपन का पता चलता है। ये देखो नारद, कितना टटोल रहा है। जहां पाता है, वहीं जाता है। लेकिन द्वार नहीं मिलता, दीवार ही मिलती है। खोजता है कृष्ण को; जहां खबर मिलती है, वहीं जाता है। पाता है, वे आगे चले गए, कहीं और चले गए। मिलन नहीं हो पाता। हम ही भले; अपनी जगह तो बैठे हैं! न कहीं जाते, न भटकते। कम से कम इतना तो साफ है कि हमें कोई अज्ञानी नहीं कहेगा। भूल की ही नहीं, तो अज्ञानी कोई कैसे कहेगा!
यह कमजोर का लक्षण है। ऐसे लोग बैठे-बैठे सड़ते हैं।
दुनिया में एक ही भूल है मेरे लेखे और वह भूल यह है कि तुम उठो ही न, टटोलो ही न, चलो ही न। वही एक भूल है, बस। क्योंकि टटोलोगे, तो किसी न किसी दिन द्वार मिल जाएगा। द्वार है। टटोलना कितना ही लंबा चले, लेकिन द्वार है। नारद ने कहीं न कहीं पा लिया होगा।
प्यास को जगाओ, प्यास को उभारो। मेरे पास इतना ही हो सकता है कि मैं तुम्हें प्यास दे दूं। परमात्मा को तो कोई भी नहीं दे सकता। प्यास दी जा सकती है, प्यास उकसाई जा सकती है।
एक दफा प्यास तुम्हें पकड़ ले, प्यास का ज्वर तुम्हें पकड़ ले, एक बेचैनी तुममें आ जाए, एक असंतोष तुम्हें घेर ले, तुम चल पड़ो, टटोलने लगो, भटकने लगो। कोई हर्जा नहीं, कृष्ण को पहले बाहर ही खोज लेना। मंदिर-मस्जिदों में जाना, द्वार-द्वार ठकठकाना। यह करना ही पड़ता है।
इजिप्त में फकीरों का एक पुराना वचन है कि जिसे अपने घर आना हो, उसे बहुत दूसरों के घरों पर दस्तक देनी पड़ती है। अपने ही घर लौटने के लिए न मालूम कितने-कितने मार्गों पर भटकना पड़ता है।
आस्कर वाइल्ड, पश्चिम के एक बहुत विचारशील लेखक ने लिखा है कि जब मैं सारी दुनिया में भटका, तभी अपने देश को पहचान पाया। तब अपने गांव आया, तब मेरा गांव और ही हो गया। क्योंकि अब मैं और था, सारी दुनिया देखकर लौटा था। गांव के वृक्ष शानदार मालूम होने लगे; और गांव के पक्षी, पहली दफा मैंने उनके गीत सुने। क्योंकि दुनिया ने मेरी आंखें खोल दीं। अपने ही गांव में था, तो सोया-सोया था। पता ही न था।
जब तक तुम बहुत न भटक लो, तब तक तुम्हें पहचान ही न आ सकेगी कि मंदिर तुम्हारे भीतर था। वह बहुत भटकने के बाद मिला हुआ अनुभव है। वह कीमत चुकानी ही पड़ती है। उस कीमत चुकाने से मत डरना।
मैं तुम्हें परमात्मा नहीं दे सकता; कोई नहीं दे सकता; किसी ने कभी दिया नहीं। क्या दिया है बुद्ध पुरुषों ने? महावीर ने क्या दिया है लोगों को? एक पागलपन दिया, एक प्यास दी। जगा दी सोई हुई प्यास।
वह भी देना कहना ठीक नहीं है। वह है तुम्हारे भीतर, दबी पड़ी है। या तुम
उस प्यास की गलत व्याख्या कर रहे हो। कोई धन खोज रहा है; लेकिन वस्तुतः परमात्मा खोजना चाहता है। कोई पत्नी खोज रहा है, पति खोज रहा है; लेकिन वस्तुतः परमात्मा खोजना चाहता है। और इसलिए तो तुम्हारे जीवन में इतनी पीड़ा है। धन न मिलेगा, तो पीड़ा रहेगी। धन मिल जाएगा, तो पीड़ा रहेगी।

क्योंकि धन मिलकर भी तो वह न मिलेगा, जो तुम खोज रहे थे। तुम परमात्मा खोज रहे हो।
मेरे देखे हर आदमी परमात्मा खोज रहा है। नाम उसने अलग-अलग रखे हैं। कोई कहता है, पद खोज रहा हूं, राष्ट्रपति होना है! राष्ट्रपति होकर अचानक तुमको पता चलेगा, यह तो कुछ भी न मिला। मरोगे अब भी। इस पद का मूल्य क्या? यह कल छीन लिया जा सकता है। जो छीनी जा सकती है, वह कोई प्रतिष्ठा है? प्रतिष्ठा का तो अर्थ ही यह है कि जो छीनी न जा सके; जो मिली, तो मिली; जो शाश्वत है, सनातन है। पद भी क्या, जिस पर चढ़ाए जाओगे और उतारे जाओगे। वह तो अपमान है। राष्ट्रपति बने, फिर भूतपूर्व राष्ट्रपति होना पड़ेगा। फिर जिंदा-जिंदा भूत हो जाओगे; जीते-जी मरे हो जाओगे।
जो छिन जाएगा, उसका मूल्य क्या? समझदार उसे खोजता ही नहीं। समझदार उसी
को खोजता है, जो मिला, तो मिला; जिसको छीनने की फिर कोई जगह नहीं। लेकिन वह तो परमात्मा है, जो मिलता है, तो फिर छीना नहीं जा सकता। तुम उसी को खोज रहे हो।
तुम भी ऐसा धन खोजते हो, जो छीना न जा सके। इसलिए कितना इंतजाम करते हो! तिजोरियों में बंद करते हो, बैंक लाकर्स में रखते हो, स्विटजरलैंड के बैंकों में जमा करते हो। बचाते हो सब तरफ से कि किसी तरह से कोई उपद्रव न आ जाए।
यहां तिजोरी चोरी जा सकती है। यहां सरकार का कोई भरोसा नहीं है। कुछ पक्का नहीं। क्योंकि इंदिरा गांधी के गुरु रूस में रहते हैं। कब गुरु आदेश देंगे और कब यह मुल्क कम्युनिस्ट हो जाएगा, कुछ नहीं कहा जा सकता। तिजोरियां उठ जाएंगी, खुल जाएंगी, बैंक के लाकर्स काम न आएंगे। तो स्विटजरलैंड में बचाते हो।
मगर कहीं भी बचाओ, धन बाहर का बच नहीं सकता, जाएगा। और धन बच भी जाए, तुम चले जाओगे। तो धन का क्या करोगे! उसे तुम ले जा न सकोगे।
खोज तुम ऐसे ही धन की कर रहे हो, जो छीना न जा सके, जो सदा-सदा हो, जिसमें शाश्वतता छिपी हो। तुम परम धन को खोज रहे हो, परमात्मा को खोज रहे हो।
तुम्हारी सारी खोज में भनक उसी खोज की है। मैं इतना ही कर सकता हूं कि तुम्हें जगाऊं और तुम्हें बताऊं कि तुम्हारी प्यास क्या है। तुम दौड़ तो रहे हो, लेकिन तुम कहां दौड़ रहे हो? किसलिए दौड़ रहे हो? तुम मंजिल क्या चाहते हो?
कोई भी व्यक्ति अगर शांत होकर थोड़ा-सा सोचेगा, तो वह पाएगा, परमात्मा
के बिना तृप्ति हो नहीं सकती। कितना ही स्त्री पति में परमात्मा देखे, कुछ फर्क नहीं पड़ता। वह आदमी तो दिखाई पड़ता ही रहता है। कहती रहती है कि तुम मेरे परमात्मा हो; वक्त-बेवक्त पैर भी छू लेती है; लेकिन परमात्मा दिखाई तो पड़ता नहीं। जब तक परमात्मा ही तुम्हारा प्रेमी न होगा, तब तक तृप्ति हो नहीं सकती।
पति कितना ही प्रेम करे पत्नी को, प्रेम कभी पूरा नहीं हो पाता। क्योंकि पूरा तो प्रेम उसी के साथ हो सकता है, जो पूरा हो। अधूरे के साथ पूरा प्रेम कैसे हो सकता है? अधूरे को तुम पूरा कैसे चाह सकते हो?
और यहां तो सभी अधूरे हैं। अधूरे की चाह अधूरी ही बनी रहेगी। पूरा कभी
न होगा। एक अतृप्ति जलती रहेगी। इसलिए तो एक स्त्री से चूक जाते हो, तो दूसरी में खोजते हो, तीसरी में खोजते हो। शायद कहीं पूरा मिल जाए।
वह पूरा सिर्फ परमात्मा में मिलता है। उससे कम में मनुष्य की प्यास बुझने वाली नहीं है। और यह तुम्हारा धन्यभाग है कि नहीं बुझती। अगर बुझ जाती, तो तुम न मालूम किस कूड़े के ढेर पर बैठे होते। वहीं बुझ गई होती, तो खतम यात्रा हो जाती। धन पर बैठे रहते। नहीं बुझती। परमात्मा तुम्हें यह मौका नहीं देगा कि बुझ जाए। वह तुम्हें बुला ही लेगा अपनी तरफ।
दा.ैडो! प्यासे बनो! और अपनी हर प्यास में खोजो उस एक प्यास को। जिस दिन तुम्हारी प्यास घनी होने लगेगी, पहले तो तुम नारद ही बनोगे।
नारद परम भक्त हैं। भक्त पहले भगवान को बाहर खोजता है। और बाहर खोज-खोजकर भी नहीं पाता। रोता है, चीखता है, गाता है, नाचता है, लेकिन कमी बनी रहती है, फासला बना रहता है, दूरी बनी रहती है। और जैसे-जैसे करीब आता है,

वैसे-वैसे लगता है कि इतनी-सी दूरी भी खलती है। इतनी दूरी भी बर्दाश्त नहीं, लेकिन दूरी मिटती नहीं। चूक-चूक जाता है। तब भक्त एक दिन भीतर आंख ले जाता है।
भक्त पहले तो प्रार्थना करता है। प्रार्थना यानी परमात्मा बाहर है। फिर भक्त ध्यान में उतरता है। ध्यान यानी परमात्मा भीतर है। प्रार्थना पहली अवस्था है प्यास की; और ध्यान दूसरी अवस्था है प्यास की।
ध्यान का अर्थ है, अब हम भीतर जाते हैं। ध्यान का अर्थ है, अब हम शब्द
भी न बोलेंगे; अब हम पूजा भी न करेंगे; अब हम आरती उठाकर आरती भी न फिराएंगे। कोई बाहर नहीं है। अब हम भीतर की यात्रा पर जाते हैं। अंतर्यात्रा ध्यान है।
नारद ने जरूर पा लिया होगा।
प्यास को जगाओ। नारद बनो। फिर दूसरा कदम अपने से उठ जाता है। अगर प्यास प्रगाढ़ हुई, तो तुम कितनी देर मृग-मरीचिकाओं में भटकोगे? एक न एक दिन समझ जगेगी, दीया जलेगा। एक न एक दिन आंख खुलेगी, नींद टूटेगी, तुम जागोगे और पाओगे कि परमात्मा भीतर बैठा तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।

दूसरा प्रश्नः क्या नास्तिक आस्तिक हुए बिना प्रबुद्ध हो सकता है?

आस्तिकता के अर्थ पर निर्भर करेगा। आस्तिकता से तुम्हारा क्या अर्थ है? क्या तुम्हारा आस्तिकता से अर्थ है कि जो किसी ईश्वर में भरोसा करता है, विश्वास करता है? या तुम्हारी आस्तिकता से अर्थ है कि जो स्वयं भगवतस्वरूप हो जाता है, जो स्वयं भगवान हो जाता है?
दो तरह की आस्तिकताएं हैं। एक आस्तिकता है भक्त की, नारद की, जो बाहर खोज रहा है परमात्मा को। वह आस्तिकता बड़ी लचर है। वह कोई आखिरी आस्तिकता नहीं है। एक आस्तिकता है महावीर की, बुद्ध की, जिन्होंने परमात्मा को भीतर पा लिया है।
तो बुद्ध ने तो कह दिया कि कोई भगवान है ही नहीं। जब बुद्ध ने कहा, कोई भगवान नहीं है, तो वे यही कह रहे हैं कि सभी कुछ भगवान है, इसलिए कोई भगवान हो, इसका उपाय नहीं।
तभी तक सार्थक है यह बात कहनी कि राम भगवान हैं, जब तक कि लक्ष्मण भगवान न हों। कम से कम रावण भगवान न हो, तभी तक इस बात की कोई सार्थकता है कहने की कि राम भगवान हैं। लेकिन अगर लक्ष्मण भी भगवान हैं और रावण भी भगवान हैं, तो राम को भगवान कहने का क्या अर्थ रह जाता है? कोई अर्थ नहीं रह जाता।
महावीर और बुद्ध परम आस्तिक हैं; उनकी आस्तिकता साधारण आस्तिकता से बहुत गहरी है। वे कहते हैं, सभी कुछ भगवत्ता है। यहां पेड़-पौधे भी भगवान हैं। उनकी नींद थोड़ी गहरी लगी होगी तुमसे। यहां चट्टान, पहाड़ भी भगवान हैं। वे शायद और भी ज्यादा मूर्च्छा में पड़े हैं, कोमा में सो रहे हैं। लेकिन हैं भगवान ही, कितनी ही गहरी नींद हो।
चट्टान खूब गहरी सो रही है, आधी रात की नींद है। पौधे उतने गहरे नहीं हैं, यह ब्रह्ममुहूर्त करीब आने लगा। पशु-पक्षी--भोर हो गई; आदमी--सुबह हो गई। बुद्ध-महावीर, भरी दुपहरी में जी रहे हैं, सूरज आकाश के मध्य में आ गया। लेकिन ये सब सोने की ही और जागने की ही तारतम्यताएं हैं, ग्रेडेशंस हैं। महावीर में, बुद्ध में और हिमालय की चट्टानों में जो अंतर है, वह गुण का नहीं है, मात्रा का है, होश की मात्रा का है।
इसलिए महावीर ने पहाड़ों को भी एकेंद्रिय जीव कहा है। उनकी एक ही इंद्रिय है, सिर्फ शरीर है। न आंख है, न हाथ है, न पैर है। न वे चल सकते, न उठ सकते, न देख सकते, न सुन सकते, लेकिन शरीर है। वे स्पर्श अनुभव कर सकते हैं। बहुत गहरे सोए हैं।
महावीर ने बड़ी गहरी व्याख्या की है; पहाड़ों को कहा, एकेंद्रिय। फिर इसी मात्रा से वे उठाते आते हैं। दो इंद्रिय, तीन इंद्रिय; जिनकी तीन इंद्रियां जगी हैं, ऐसे पशु-पक्षी हैं। चार इंद्रिय वाले पशु-पक्षी हैं।
मनुष्य पंचेंद्रिय है। और जो मनुष्य से ऊपर उठना शुरू होता है, उसकी छठवीं

इंद्रिय जगनी शुरू होती है। और जो मनुष्य के बिल्कुल पार चला जाता है, वह अतींद्रिय में जाग जाता है। लेकिन सारा भेद मात्रा का है।
भगवान से तुम्हारा क्या प्रयोजन है? आस्तिकता से क्या अर्थ है? क्या आस्तिकता का अर्थ है कि कोई व्यक्ति आकाश में बैठा हुआ सारे संसार को चला रहा है?
तो तुम्हारी आस्तिकता बचकानी है, बच्चों की है, कहानी है। समझाने के लिए ठीक है। तुम्हारी आस्तिकता ऐसी है, जैसे ग गणेश का। गणेश से कुछ लेना- देना नहीं है ग का। ग गधे का भी उतना ही है।
बच्चे को समझाते हैं, ग गणेश का। अब नहीं समझाते ऐसा, अब नई किताबों में लिखा है, ग गधे का। क्योंकि राज्य अब सेकुलर है। उसमें धार्मिक शब्दों का उपयोग नहीं हो सकता। मैं जब पढ़ता था, तब ग गणेश का था। अभी मैं एक दिन देखा बच्चों की किताब, ग गधे का हो गया! इसको लोग विकास कह रहे हैं। गणेश पर संदेह उठ गया, गधे पर भरोसा आ गया।
लेकिन जब हम कहते हैं, परमात्मा सारे संसार को चला रहा है, तो हम बच्चे
को समझा रहे हैं, एक कहानी गढ़ रहे हैं। जिन्होंने जाना है, उन्होंने तो जाना कि परमात्मा ही संसार है; चलाने वाला और चलाए जाने वाले दो नहीं हैं, एक ही है।
इसलिए तो हिंदुओं ने परमात्मा को नटराज कहा। नटराज का अर्थ होता है, नाचने वाला। नाचने वाले की बड़ी खूबी है एक। वह खूबी यह है कि तुम नाचने वाले से नाच को अलग नहीं कर सकते।
कोई चित्रकार है, तो चित्र अलग हो जाता है, बनाने वाला अलग हो जाता है।
कोई मूर्तिकार है, मूर्ति अलग हो जाती है, मूर्तिकार अलग हो जाता है। मूर्तिकार मर जाए, तो भी मूर्ति बनी रहेगी हजारों साल तक। चित्रकार के चित्र को जला दो, तो चित्रकार न जलेगा।
इसलिए हिंदुओं ने परमात्मा को चित्रकार नहीं कहा, मूर्तिकार नहीं कहा। उन्होंने कहा, नटराज। नटराज का मतलब यह है कि तुम उसकी प्रकृति को और उसे अलग-अलग नहीं कर सकते, जैसे नर्तक के नृत्य को अलग नहीं कर सकते। नर्तक मर गया, नृत्य मर गया। और अगर तुम नृत्य बंद कर दो, तो उस आदमी को नर्तक कहने का अब क्या अर्थ है! वह तो नर्तक तभी तक था, जब तक नाचता था।
सृष्टि और स्रष्टा के बीच नाचने वाले और नाच का संबंध है। उन्हें तुम अलग नहीं कर सकते। इसलिए कोई परमात्मा चला रहा है, ऐसा नहीं। जब कोई नर्तक नाचता है--सिक्खड़ की छोड़ दो, क्योंकि उसको तो नर्तक कहना ठीक नहीं--जब कोई कुशल नर्तक नाचता है, तो नाचने वाला और नाच दो नहीं होते।
पश्चिम में एक बहुत बड़ा नर्तक हुआ इस सदी के प्रारंभ में, उसका नाम था, निजिंस्की। मनुष्य जाति के इतिहास में थोड़े से लोग ऐसे नर्तक हुए हैं, जैसा निजिंस्की था। निजिंस्की के साथ बड़ी मुश्किल थी। नाच शुरू तो वह करता था, लेकिन फिर उस पर कोई नियंत्रण नहीं रखा जा सकता था, कि थियेटर का मैनेजर कहे कि अब घंटी बजे तो बंद। क्योंकि वह कहेगा, बंद करने वाला कौन? एक दफे शुरू हो गया, फिर जब होगा बंद, तब होगा।
तो कभी तीन घंटे नाचता, चार घंटे नाचता; कभी पंद्रह मिनट में पूरा हो जाता। मैनेजर्स बहुत परेशान थे, व्यवस्था करने वाले थियेटर के, कि किस तरह लोगों को टिकट बेचें! क्योंकि कभी वह खड़ा ही रह जाता और नाचता ही नहीं; और कभी नाचता, तो पूरी रात नाचता।
और उस जैसा नाचने वाला नहीं हुआ है। वैज्ञानिक भी चकित थे उसके नाच से; क्योंकि नाचते-नाचते ऐसी घड़ी आती थी कि वैज्ञानिकों ने भी यह निर्णय दिया कि ग्रेविटेशन का असर उस पर खतम हो जाता है। जमीन में जो कशिश है, जिससे हम जमीन से बंधे हैं, पत्थर को फेंको, वह नीचे आ जाता है। निजिंस्की नाचते-नाचते एक ऐसी घड़ी में पहुंच जाता था, जहां योगी पहुंचते हैं। उस घड़ी में वह इतनी ऊंची छलांगें भरने लगता था, जो कोई मनुष्य कभी भर ही नहीं सकता, क्योंकि जमीन में इतनी कशिश है। और वह ऐसा हलका हो जाता था, जैसे पंख लग गए।
अनेक अध्ययन किए गए हैं निजिंस्की के कि घटना क्या घटती थी! जिसको योग में लेविटेशन कहते हैं, कि कभी-कभी योगी जमीन से ऊपर उठ जाता है। तुमने ऐसी कहानियां सुनी होंगी। कभी-कभी यह घटता है।

अभी पश्चिम में एक महिला है चेकोस्लोवाकिया में, वह चार फीट ऊपर उठ जाती है ध्यान की अवस्था में। उसके बहुत अध्ययन किए गए हैं, चित्र लिए गए हैं, फिल्म ली गई है। नीचे से लकड़ियां निकाली गईं, नीचे से आदमी सरककर निकले कि पता नहीं कोई धोखा तो नहीं है! लेकिन वह चार फीट ऊपर उठ जाती है। जैसे ही वह ध्यान करती है, पंद्रह मिनट के बाद चार फीट ऊपर उठ जाती है। अब यह एक वैज्ञानिक रूप से प्रामाणिक तथ्य है।
निजिंस्की के साथ भी यही होता था। कोई पंद्रह मिनट के बाद एक ट्रांसफार्मेशन हो जाता था, एक रूपांतरण हो जाता। निजिंस्की फिर था ही नहीं वहां, उसके चेहरे पर कोई आविर्भाव हो जाता था, वह एक ऊर्जा हो जाता, एक शक्ति मात्र, जो नाचती। और नाचते-नाचते इतनी ऊंची छलांगें लेने लगता और हवा में तिरने लगता कि जैसे थोड़ी देर को रुक गया है; न ऊपर जा रहा है, न नीचे गिर रहा है; इतना हलका हो जाता।
निजिंस्की से जब पूछा जाता कि तुम यह कैसे करते हो? तो वह कहता, करने वाला तो कोई होता ही नहीं। बस, यह होता है। कृत्य और कर्ता में फर्क नहीं रह जाता, तभी यह होता है।
हमने परमात्मा को नटराज कहा है, क्योंकि उसका यह नाच है। यह पक्षियों
के कंठ में उसी का गीत है, जो तुम सुन रहे हो। वृक्षों से निकलती हवाओं में वही निकलता है। और वृक्षों के फूलों में भी वही खिला है। झरनों में उसी का कल-कल नाद है। मुझसे वही बोल रहा है, तुमसे वही सुन रहा है। वही कहीं चोर है, वही कहीं साधु है। वही कहीं बेईमान है, कहीं परम संत है। वही कहीं रावण है, कहीं राम है। सारी लीला एक की है। और वह एक जो भी कर रहा है, सब उसके भीतर है, बाहर नहीं है।
इसलिए आस्तिक का क्या अर्थ होगा? दो अर्थ होंगे। एक तो बच्चों को सिखाई जाने वाली आस्तिकता, जिसमें हम कहते हैं, परमात्मा ऊपर है। ऐसा लगता है, कोई बड़ा इंजीनियर है, जो सब चीजों को सम्हाल रहा है। या कोई बड़ा न्यायाधीश है और वहां से कानून चला रहा है। और लोगों को दंड दे रहा है; अच्छों को बचा रहा है, बुरों को मार रहा है। या लगता है कि कोई तानाशाह है, कोई स्टैलिन, हिटलर की महाप्रतिमा, कि जो उसकी मौज में आ रहा है, कर रहा है। जब पत्तों को हिलाना है, हिला देता है। जब नहीं हिलाना, नहीं हिलाता। नियम उसके हाथ में है; चाहे बचाए, चाहे मारे। सब उसके हाथ में है। तुम स्तुति करो, इसके अतिरिक्त तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है।
यह बच्चों का भगवान है। बच्चों को भी चाहिए। और यह मत सोचना कि सिर्फ छोटे-छोटे बच्चे बच्चे होते हैं। सौ में से नब्बे प्रतिशत लोग तो मरते समय तक बचकाने होते हैं, उनकी बुद्धि में कोई प्रौढ़ता नहीं आ पाती।
फिर एक प्रौढ़ आस्तिकता है। उस आस्तिकता का कोई संबंध ही इस तरह की धारणा से नहीं है। ध्यान रखना, बच्चों की आस्तिकता में भगवान है। भगवान एक व्यक्ति की तरह, एक पर्सनल व्यक्तिवाची शब्द है। प्रौढ़ व्यक्तियों की भाषा में भगवान है ही नहीं, भगवत्ता है एक गुण, एक क्वालिटी, एक चैतन्य का विस्तार--कोई व्यक्ति नहीं है भगवान कि जिसे तुम मिलोगे। वह तुम्हारे ही होने की आत्यंतिक अवस्था है। अस्तित्व है भगवान।
इसलिए बुद्ध और महावीर जैसे परम आस्तिकों ने भगवान शब्द का उपयोग ही नहीं किया। बच्चों की आस्तिकता वाले लोगों ने उनको नास्तिक कहा है, कि ये नास्तिक हैं, क्योंकि ये भगवान को नहीं मानते हैं।
अब इस प्रश्न को समझा जा सकता है।
क्या नास्तिक आस्तिक हुए बिना प्रबुद्ध हो सकता है?
अगर बचकानी आस्तिकता तुम्हारी धारणा में हो, तो नास्तिक उस तरह का आस्तिक हुए बिना प्रबुद्ध हो सकता है। उस तरह की आस्तिकता का कोई मूल्य नहीं है। लेकिन अगर बुद्ध जैसी आस्तिकता का ख्याल हो, मैं जिस आस्तिकता की बात करता हूं, अगर उसका तुम्हें ख्याल हो, तो कैसे कोई नास्तिक बिना आस्तिक हुए प्रबुद्ध हो सकेगा?
प्रबुद्ध होना और आस्तिकता एक ही घटना के दो नाम हैं। बुद्ध होना और भगवान होना एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
नहीं, आस्तिक हुए बिना कोई उपाय नहीं है। आस्तिक होना ही पड़ेगा। आस्तिकता एक क्रांति है, वह इस जगत की सबसे बड़ी क्रांति है। वह ऐसा क्षण है

समाधि का, जहां तुम्हें अपने अमृत होने का पता चलता है, शाश्वत होने का पता चलता है। जहां तुम्हें पता चलता है कि तुम अलग नहीं हो अस्तित्व से, तुम उसी की तरंग हो। तुम विराट हो। बहुत बार तुम मरे और मरे नहीं। और बहुत बार तुम जन्मे और जन्मे नहीं। तुम सदा थे और सदा रहोगे।
लहर की तरह तुम्हारी धारणा मिट जाती है और सागर की तरह तुम्हें अपना अनुभव होता है। ऐसी आस्तिकता को पाए बिना कोई नास्तिक कैसे प्रबुद्ध हो सकता है!

आखिरी प्रश्नः शास्त्र संकेत देते हैं, उपदेश नहीं। आप संकेत भी दे रहे हैं, उपदेश भी। पर मैं अपने को कहीं पहुंचता हुआ नहीं देख पा रहा हूं। मुझसे रोज-रोज क्या भूल हो रही है? क्या छूट जाता है?

भूल बिल्कुल साफ है। कहीं पहुंचने की आकांक्षा में भूल है। यह महत्वाकांक्षा कि तुम्हें कहीं पहुंचना है। तुम्हें! मैं! अहंकार को कुछ पाना है! वहीं भूल हो रही है। अहंकार को मिटना है, पाना नहीं है। अहंकार को जाना है, होना नहीं है। अहंकार को खोना है। और वहीं भूल हो रही है।
तुम मुझे सुनते हो और तुम मुझे सुनकर अपने अहंकार में चार चांद लगा लेना चाहते हो। तुम चाहते हो, समाधि उपलब्ध हो जाए। तुम समाधि की संपत्ति को भी अपने अहंकार के साथ जोड़ लेना चाहते हो! तुम चाहते हो, भगवान तुम्हारी मुट्ठी में आ जाए। तुम चाहते हो, तुम जैसे हो वैसे ही रहते कुछ उपलब्ध हो जाए। वहीं भूल हो रही है।
तुम्हें एक बात तो करनी ही पड़ेगी, तुम्हें मिटना होगा। तुम्हारे रहते कोई उपलब्धि होने वाली नहीं है। तुम ही बाधा हो। जिस क्षण तुम मिट जाओगे, सब उपलब्ध है। उसे कभी खोया ही नहीं था। उसे खोने का उपाय नहीं है।
तुम जब तक अपने को पकड़े हो, तब तक तुम उससे चूक रहो हो। फिर तुम लाख ध्यान करो, पूजा-प्रार्थना करो, समाधि लगाओ, आंख बंद करो, खोलो, आसन लगाओ, शीर्षासन करो, कुछ न होगा। तुम वहां मौजूद हो। तुम्हारे रहते परमात्मा नहीं हो सकता। क्योंकि तुम एक भ्रांति हो। तुम हो नहीं, और लगता है कि तुम हो। और जो तुम्हारे भीतर है, वह तुम्हारी इस भ्रांति के कारण प्रकट नहीं हो पाता।
कौन हो तुम? तुम्हारा नाम तुम हो? पैदा हुए थे, कोई नाम लेकर न आए थे।
आज उस नाम को कोई गाली दे दे, तो तलवारें निकल आती हैं। वह नाम तुम्हारा है नहीं। दिया हुआ, उधार है। दूसरों ने लेबल लगा दिया। और तुम भी अदभुत हो कि तुम उस लेबल से इतने जोर से चिपक गए! लेबल तुमसे चिपका है, ऐसा नहीं मालूम पड़ता अब, अब तुम लेबल से चिपके हो। तुम कहते हो, यह मेरा नाम है। तुमने गाली दे दी!
बुद्ध का एक शिष्य हुआ, उसका नाम था पूर्ण काश्यप। वह एक गांव से गुजरता था। लोगों ने गालियां दीं, अपमान किया। वह वैसे ही चलता रहा जैसे चल रहा था। जैसे कुछ भी न हुआ, जैसे हवा का एक झोंका भी न आया, जिसमें उसका बाल भी हिल जाता।
उसके साथ के एक भिक्षु को क्रोध आ गया कि हद्द हो गई। ये लोग गाली दिए
जा रहे हैं। उसने पूर्ण को कहा कि आप सुन रहे हैं और ये गाली दे रहे हैं! मेरी बरदाश्त के बाहर हुआ जा रहा है। हालांकि मुझे ये कोई गाली नहीं दे रहे हैं।
पूर्ण ने कहा, इस पर सोचो। तुम्हें गाली नहीं दे रहे हैं और तुम्हारे बरदाश्त के बाहर हुआ जा रहा है! तुम क्यों बीच में आ रहे हो? जिस तरह तुम्हें ये गाली नहीं दे रहे हैं, उसी तरह मुझे भी नहीं दे रहे हैं। ये तो पूर्ण काश्यप को दे रहे हैं। मेरा क्या लेना-देना! मेरा नाम पूर्ण रख दिया मां-बाप ने, तो पूर्ण हो गया; अपूर्ण रख देते, तो अपूर्ण हो जाता। कुछ इसमें लेना-देना है नहीं।
हिंदू घर में पैदा होते हैं, हिंदू नाम; मुसलमान घर में पैदा हो जाओ,
तो मुसलमान नाम। हिंदू घर में राम हो जाते हो, मुसलमान घर में रहीम हो जाते हो। दोनों नाम का मतलब भी एक ही है। मगर राम और रहीम तलवार खींचकर लड़ जाते

हैं, क्योंकि हिंदू-मुस्लिम दंगा हो गया। उसमें राम रहीम को मारता है, रहीम राम को मारते हैं। और दोनों नाम थे। नाम का झगड़ा है।
तुम नाम हो? या तुम रूप हो?
दो शब्द बड़े महत्वपूर्ण हैं भारत के, नाम-रूप। नाम वह सब है, जो दूसरों
ने तुम्हें समझा दिया कि तुम हो। नाम का अर्थ सिर्फ तुम्हारा नाम नहीं है। दूसरों ने जो समझा दिया कि तुम हो, तुम्हारा नाम राम, रहीम। तुम हिंदू, तुम मुसलमान। तुम जैन, तुम शूद्र, तुम ब्राह्मण। जो दूसरों ने तुम्हें समझा दिया, वह सब नाम के अंतर्गत आ जाता है। अगर दूसरे तुम्हें न समझाते, तो जिसका तुम्हें कभी पता न चलता, वह सब नाम के अंतर्गत आ जाता है।
थोड़ी देर को सोचो; अगर तुम हिंदू घर में पैदा न होते या हिंदू घर में पैदा होते ही तुम्हें मुसलमान घर में छोड़ दिया जाता; क्या तुम किसी तरह से खोज सकते थे अपने आप कि तुम हिंदू हो? और कौन जाने, यही हुआ हो तुम्हारे साथ। तुम्हें अपने पिता का पक्का भरोसा है कि तुम उन्हीं से पैदा हुए हो? सिर्फ ख्याल है। कोई पक्का तो है नहीं।
तुम हिंदू हो कि मुसलमान हो? तुम्हें अगर छोड़ दिया जाए तुम्हीं पर, तुम्हें कोई न बताए कि तुम हिंदू हो या मुसलमान हो, तो क्या तुम अपने आप जान लोगे कभी कि तुम कौन हो? कैसे जानोगे?
वह सब नाम है, दूसरों ने सिखाया है, दूसरों ने पट्टी पढ़ाई है। वह सब कंडीशनिंग है, संस्कार है।
तो नाम के अंतर्गत दूसरों ने जो सिखाया है, सब आ जाता है। और रूप के अंतर्गत तुम्हारी अपनी जो प्राकृतिक भ्रांतियां हैं, वे सब आ जाती हैं। जैसे कि तुम समझते हो, मैं पुरुष हूं। निश्चित ही, यह किसी दूसरे ने तुम्हें नहीं समझाया है कि तुम पुरुष हो। तुम पुरुष हो। क्योंकि तुम्हारे शरीर का रूप-रंग पुरुष का है। अंग पुरुष के हैं। तुम स्त्री हो, क्योंकि अंग स्त्री के हैं। यह कोई किसी ने तुम्हें समझाया नहीं। अगर तुम्हें कोई भी न बताए कि तुम पुरुष हो, तो भी तुम एक दिन खोज लोगे कि तुम पुरुष हो। यह रूप है। इसकी तुम खुद खोज कर सकते हो।
लेकिन तुमने कभी आंख बंद करके भीतर खोजकर देखा कि चेतना क्या पुरुष
हो सकती है या स्त्री? तुम्हारा बोध स्त्री है या पुरुष? तुम्हारी कांशसनेस स्त्री है या पुरुष? कभी तुम बच्चे हो, कभी जवान, कभी बूढ़े। कभी तुमने भीतर गौर किया कि तुम्हारी चेतना जवान से बूढ़ी होती है? कब होती है? बच्चे से जवान होती है? कब होती है?
शरीर पर तो सीमा बनाई जा सकती है, कि यह बच्चा, यह जवान, यह बूढ़ा; चेतना
पर तो कोई सीमा नहीं बनती। अगर बूढ़े आदमी को पता न चलने दिया जाए कि वह बूढ़ा है, अंधेरे में रखा जाए, और कोई उसे बताए न कि कब वह जवान से बूढ़ा हो गया; कोई ऐसा उपाय न करने दिया जाए, जिससे उसे पता चल सके। कोई काम न हो उसके ऊपर, बिस्तर पर आराम करता रहे, भोजन वक्त पर मिल जाए, शांति से पड़ा रहे, जवान से बूढ़ा हो जाए--अंधेरे में। क्या उसकी चेतना को कभी भी पता चलेगा कि मैं जवान से बूढ़ी हो गई?
सच तो यह है कि तुम जब भी आंख बंद करते हो, तभी तुम संदिग्ध हो जाते हो
कि तुम जवान हो, बूढ़े हो, बच्चे हो, क्या हो? हां, ऊपर दर्पण में जब देखते हो रूप अपना, तो लगता है, बूढ़े हो गए। बाल सफेद हो गए, हाथ-पैर कमजोर हो गए। नाम है समाज के द्वारा दी गई भ्रांति और रूप है प्रकृति के द्वारा दी
गई भ्रांति। तुम दोनों के पार हो। न तुम नाम हो, न तुम रूप हो।
जब तक नाम-रूप का संगठन कुछ पाने की कोशिश करता रहेगा, तब तक तुम चूकते चले जाओगे। इन दो से छूट जाओ--नाम से, रूप से--और भीतर खोजो उसे, जो न तो नाम है और न रूप है। तत्क्षण जिसकी तुम तलाश कर रहे हो सदा-सदा से, तुम पाओगे, वह मिला ही हुआ है।
चैतन्य तुम्हारा स्वभाव है, न तो नाम, न रूप। वह चैतन्य ही परमात्मा है।
तो भूल इतनी ही हो रही है कि मुझे सुनकर तुम महत्वाकांक्षा से भर रहे हो। तुमने एक दौड़ बना ली है कि समाधि को पाकर रहेंगे। समाधि कोई पाने जैसी चीज थोड़े ही है। समाधि कोई वस्तु थोड़े ही है कि तुम कहीं से खरीद लाओगे, कि झपट्टा मार दोगे, कि आक्रमण कर दोगे, कि हमला करके उठा लाओगे! समाधि तो ऐसी

चित्त-दशा का नाम है, जहां नाम-रूप खो जाते हैं। और नाम-रूप ही समाधि खोज रहा है, तो फिर भूल हो जाएगी।
इसलिए नाम को छोड़ो, रूप को छोड़ो। पहचानो कि न तो तुम शरीर हो और न तुम
मन हो। शरीर प्रकृति का दिया हुआ है, मन समाज का दिया हुआ है। मन है नाम, शरीर है रूप, और तुम दोनों के पार हो। तुम सदा ही पार हो। वह जो पीछे खड़ा साक्षी है, जो दोनों को देख रहा है, वही तुम हो। तत्वमसि श्वेतकेतु!
वह जो साक्षी है, उसमें तुम जितने गहरे जग जाओगे, उतनी ही मंजिल पास आ जाएगी। तुम्हें चलकर जाना नहीं है, मंजिल खुद पास आती है। तुम जागे कि मंजिल पास आने लगती है। तुम जैसे-जैसे जागते हो, मंजिल पास आने लगती है। एक दिन तुम परिपूर्ण होश से भर जाते हो, पाते हो कि मंजिल तुम ही हो।
तुम्हीं हो गंतव्य, तुम्हीं हो गति, तुम्हीं हो यात्री, तुम्हीं हो पड़ाव, तुम्हीं हो यात्रा और तुम्हीं हो तीर्थ। तुमसे अन्य कुछ भी नहीं है। लेकिन नाम-रूप बाधा हैं। और तुमने उन्हें जकड़कर पकड़ा है। तुम उन्हें छोड़ते नहीं। और उनके कारण तुम सपने में जीते हो। एक सूत्र रूप से सारी बात कही जा सकती हैः नाम-रूप अर्थात माया, नाम-रूप से मुक्ति अर्थात ब्रह्म।

अब हम सूत्र को लें।
आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ाने वाले एवं रसयुक्त, चिकने, स्थिर रहने वाले तथा स्वभाव से ही मन को प्रिय, ऐसे आहार सात्विक पुरुष को प्रिय होते हैं।
कड़वे, खट्टे, लवणयुक्त, अति गरम तथा तीक्ष्ण, रूखे, दाहकारक, दुख, चिंता और रोगों को उत्पन्न करने वाले आहार राजस पुरुष को प्रिय होते हैं। और जो भोजन अधपका, रसरहित, दुर्गंधयुक्त, बासा और उच्छिष्ट है तथा जो अपवित्र भी, वह तामस पुरुष को प्रिय होता है।
कृष्ण जीवन को तीन गुणों के अनुसार सभी दिशाओं में बांट रहे हैं। उस विभाजन का बोध साधक के लिए बड़ा उपयोगी है। उससे अपनी परीक्षा करने में और अपने को कसौटी पर कसने में सुविधा होगी, एक मापदंड मिल जाएगा।
कैसा भोजन तुम्हें प्रिय है? क्योंकि जो भी तुम्हें प्रिय है, वह अकारण प्रिय नहीं हो सकता। वह तुम्हें प्रिय है; तुम्हारे संबंध में खबर देता है। तुम जो भोजन करते हो, वह खबर देता है कि तुम कौन हो। तुम कैसे उठते हो, कैसे बैठते हो, कैसे चलते हो, उससे तुम्हारे भीतर की चेतना की खबर मिलती है। तुम कैसा व्यवहार करते हो, कैसे सोते हो, उस सबसे तुम्हारे संबंध में संकेत मिलते रहते हैं।
एक सूक्ष्म शास्त्र विकसित हुआ है पश्चिम में, मनुष्य के व्यवहार को ठीक से जांच लेकर मनुष्य के भीतरी अंतःकरण के संबंध में सभी कुछ पता चल जाता है। और अनजाने भी बहुत बार तुम ऐसे काम करते हो, जिनका तुम्हें भी ख्याल नहीं है।
समझो, दो आदमी खड़े बात कर रहे हैं। अगर तुम दूर से खड़े होकर चुपचाप गौर
से देखो, तो कई बातें, जो उन दो को पता न होंगी, तुम्हें पता चल सकती हैं। जो आदमी ऊब गया है और बातचीत को आगे नहीं बढ़ाना चाहता, तुम उसके चेहरे पर ऊब के लक्षण देखोगे। भला वह ऊपर से बता रहा हो कि मैं बड़े रस से तुम्हारी बातें सुन रहा हूं; क्योंकि हो सकता है, सुनाने वाला मालिक हो, पैसे वाला हो, राजनेता हो, ताकत हाथ में हो, कुछ नुकसान कर सकता हो।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दफ्तर में काम करता है। दफ्तर का जो मालिक है, वह कभी-कभी लोगों को इकट्ठा करके पिटीपिटाई मजाकें सुनाता है, जिनको वह कई दफे सुना चुका है। और लोग खिलखिलाकर हंसते हैं। हंसना पड़ता है। जब मालिक जोक सुनाए, तो हंसना पड़ेगा। मालिक मालिक है, न हंसे तो मुश्किल में पड़ोगे। हालांकि वह दस-पचास दफे सुना चुका है वही कहानी। फिर भी लोग हंसते हैं। मुल्ला नसरुद्दीन भी हंसता था सदा, सबसे ज्यादा हंसता था, ऐसा खिलखिलाकर कि जैसे कभी यह बात सुनी ही न हो।
लेकिन एक दिन मालिक ने एक मजाक सुनाया, जो वह कई दफा सुना चुका है। सब
तो हंसे, मुल्ला नसरुद्दीन चुप बैठा रहा। मालिक चौंका। उसने कहा कि तुमने सुनी नहीं कहानी? मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, सुनी और बहुत दफे सुन ली। तो

उन्होंने कहा, तुम हंसे नहीं? मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, कल हम नौकरी छोड़ रहे हैं। हंसना क्या खाक! हंसते थे, जब तक नौकरी थी। अब नौकरी ही छोड़ रहे हैं, तो हंसना किसलिए!
अगर दो आदमी बात कर रहे हैं, तो तुम गौर से देख सकते हो कि कौन आदमी सिर्फ दिखला रहा है कि हम बड़े रस से सुन रहे हैं, लेकिन उसके चेहरे पर उबासी आ रही है। दो आदमी खड़े हैं, उनमें जो आदमी जाना चाहता है, तुम पाओगे, उसका शरीर जाने को तैयार है। भला वह उत्सुकता दिखला रहा हो। लेकिन शरीर खबर दे रहा है कि जैसे ही छूटे कि वह तीर की तरह निकल जाए। उसका तीर प्रत्यंचा पर चढ़ा हुआ है। जो आदमी उत्सुक नहीं है बात करने में, उसकी गरदन पीछे को खिंची रहेगी। जो आदमी उत्सुक है, वह आगे को झुका रहेगा। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जिस स्त्री से तुम बात कर रहे हो, अगर वह तुमसे प्रेम में पड़ने को राजी है, तो वह आगे की तरफ झुकी होकर तुमसे बात करेगी। अगर वह तुमसे राजी नहीं है, तो तुम्हें समझ जाना चाहिए, वह हमेशा पीछे की तरफ झुकी होगी। वह दीवाल खोजेगी; दीवाल से टिककर खड़ी हो जाएगी। वह यह कह रही है कि यहां दीवाल है।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जो स्त्री तुमसे संभोग करने को उत्सुक होगी, वह हमेशा पैर खुले रखकर बैठेगी तुमसे बात करते वक्त। वह स्त्री को भी पता नहीं होगा। अगर वह संभोग करने को उत्सुक नहीं है, तो वह पैरों को एक-दूसरे के ऊपर रखकर बैठेगी। वह खबर दे रही है कि वह बंद है, तुम्हारे लिए खुली नहीं है। इस पर हजारों प्रयोग हुए हैं और यह हर बार सही बात साबित हुई है।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं, तुम एक होटल में प्रवेश करते हो; एक स्त्री बैठी है, वह तुम्हें देखती है। अगर वह एक बार देखती है, तो तुममें उत्सुक नहीं है। एक बार तो आदमी औपचारिक रूप से देखते हैं, कोई भी घुसा, तो आदमी देखते हैं। लेकिन अगर स्त्री तुम्हें दुबारा देखे, तो वह उत्सुक है।
और धीरे-धीरे जो डान जुआन तरह के लोग होते हैं, जो स्त्रियों के पीछे दौड़ते रहते हैं, वे कुशल हो जाते हैं इस भाषा को समझने में। वह स्त्री को पता ही नहीं कि उसने खुद उनको निमंत्रण दे दिया। दुबारा अगर स्त्री देखे, तो वह तभी देखती है। पुरुष तो पचीस दफे देख सकता है स्त्री को। उसके देखने का कोई बहुत मूल्य नहीं है। वह तो ऐसे ही देख सकता है। कोई कारण भी न हो, तो भी; खाली बैठा हो, तो भी। लेकिन स्त्री बहुत सुनियोजित है, वह तभी दुबारा देखती है, जब उसका रस हो। अन्यथा वह नहीं देखती। क्योंकि स्त्री को देखने में बहुत रस ही नहीं है।
स्त्रियां पुरुषों के शरीर को देखने में उत्सुक नहीं होती हैं। वह स्त्रियों का गुण नहीं है। स्त्रियों का रस अपने को दिखाने में है, देखने में नहीं है। पुरुषों का रस देखने में है, दिखाने में नहीं है। यह बिल्कुल ठीक है, तभी तो दोनों का मेल बैठ जाता है। आधी-आधी बीमारियां हैं उनके पास, दोनों मिलकर पूर्ण बीमारी बन जाते हैं।
मनोवैज्ञानिक कहते हैं, स्त्रियां एक्झीबीशनिस्ट हैं, प्रदर्शनवादी हैं। पुरुष वोयूर हैं, वे देखने में रस लेते हैं। इसलिए स्त्री दुबारा जब देखती है, तो इसका मतलब है कि वह इंगित कर रही है, संकेत दे रही है कि वह तैयार है, वह उत्सुक है, वह आगे बढ़ने को राजी है।
तुम अगर तीन सेकेंड तक, मनोवैज्ञानिक कहते हैं, किसी स्त्री की तरफ देखो, तो वह नाराज नहीं होगी। तीन सेकेंड! इससे ज्यादा देखा, तो बस वह नाराज हो जाएगी। तीन सेकेंड तक सीमा है, उस समय तक औपचारिक देखना चलता है। लेकिन तीन सेकेंड से ज्यादा देखा कि तुमने उन्हें घूरना शुरू कर दिया; लुच्चापन शुरू हो गया।
लुच्चे का मतलब होता है, घूरकर देखने वाला। लुच्चा शब्द बनता है लोचन से, आंख से। जो आंख गड़ाकर देखता है, वह लुच्चा। लुच्चे का और कोई बुरा मतलब नहीं होता। जरा आंख उनकी संयम में नहीं है, बस, इतना ही और कुछ नहीं।
शब्द का तो वही मतलब होता है, जो आलोचक का होता है। लुच्चे शब्द का वही अर्थ होता है, जो आलोचक का होता है। आलोचक भी घूरकर देखता है चीजों को। कवि कविता लिखता है, आलोचक कविता को घूरकर देखता है। वह लुच्चापन कर रहा है कविता के साथ।

छोटी-छोटी बातें तुम्हारे भीतर की खबर देती हैं। कृष्ण कहते हैं, भोजन तो छोटी बात नहीं, बहुत बड़ी बात है। तुम कैसा भोजन पसंद करते हो?
जो राजस व्यक्ति है, वह ऐसा भोजन पसंद करेगा, जिससे जीवन में उत्तेजना आए, त्वरा पैदा हो, दौड़ पैदा हो, धक्का लगे। इसलिए उसका भोजन उत्तेजक आहार होगा। जो तामसी वृत्ति का व्यक्ति है, वह ऐसा भोजन करेगा, जिससे नींद आए, उत्तेजना न पैदा हो--बासा, उच्छिष्ट, ठंडा--जिससे कोई उत्तेजना पैदा न हो, सिर्फ बोझ पैदा हो और वह सो जाए।
तमसपूर्ण व्यक्ति हमेशा नींद को खोज रहा है। उसे अगर लेटने का मौका मिले, तो वह बैठेगा नहीं। अगर उसे बैठने का मौका मिले, तो वह खड़ा न होगा। अगर खड़े होने का मौका मिले, तो वह चलेगा नहीं। अगर चलने का मौका मिले, तो वह दौड़ेगा नहीं। वह हमेशा उसको चुनेगा, जिसमें ज्यादा नींद की सुविधा हो, तंद्रा! और तंद्रा के लिए बासा भोजन बहुत उपयोगी है।
क्यों बासा भोजन तंद्रा के लिए उपयोगी है? क्योंकि जितना गरम भोजन होता है, उतने जल्दी पच जाता है। जितना बासा भोजन होता है, उतना पचने में देर लेता है। क्योंकि पचने के लिए अग्नि चाहिए। अगर भोजन गरम हो, तत्क्षण तैयार किया गया हो, तो भोजन की गरमी और पेट की गरमी मिलकर उसे जल्दी पचा देती है। तो जठराग्नि कहते हैं इसलिए हम पेट की अग्नि को।
लेकिन अगर भोजन बासा हो, ठंडा हो, बहुत देर का रखा हुआ हो, तो पेट की अकेली गरमी के आधार पर ही उसे पचना होता है। तो जो भोजन छः घंटे में पच जाता, वह बारह घंटे में पचेगा। और पचने में जितनी देर लगती है, उतनी ज्यादा देर तक नींद आएगी। क्योंकि जब तक भोजन न पच जाए, तब तक मस्तिष्क को ऊर्जा नहीं मिलती। क्योंकि मस्तिष्क जो है, वह लक्जरी है। इसे थोड़ा समझ लो। जीवन में एक इकॉनामिक्स है शरीर की, एक अर्थशास्त्र है। वहां बुनियादी जरूरतें हैं, वे पहले पूरी की जाती हैं। फिर उनके ऊपर कम बुनियादी जरूरतें हैं, वे पूरी की जाती हैं। फिर उसके बाद सबसे गैर-बुनियादी जरूरतें हैं, वे पूरी की जाती हैं।
जैसे घर में पहले तो तुम भोजन की फिक्र करोगे। भूखे रहकर तुम रेडियो नहीं खरीद लाओगे, कि भूखे तो मर रहे हैं और टेलीविजन खरीद लाए! कौन देखेगा टेलीविजन? भूखे भजन न होई गुपाला! भजन भी नहीं होता भूखे को, तो टेलीविजन कौन देखेगा! टेलीविजन बिल्कुल नहीं दिखाई पड़ेगा। रोटियां तैरती हुई दिखाई पड़ेंगी टेलीविजन पर। कुछ नहीं दिखाई पड़ेगा। भूखा आदमी पहले रोटी चाहता है, छाया चाहता है।
जब जरूरतें पूरी हो जाती हैं शरीर की, तब मन की जरूरतें शुरू होती हैं। तब वह उपन्यास भी पढ़ता है, तब वह गीता भी पढ़ता है। तब वह भजन भी सुनता है, फिल्म भी देखता है। फिर जैसे-जैसे जरूरतें उसकी ये भी पूरी हो जाती हैं मन की, तब आत्मा की जरूरतें पैदा होती हैं। तब वह ध्यान की सोचता है, तब वह समाधि का विचार करता है।
तो तीन तल हैंः शरीर, मन और आत्मा। शरीर पहले है, क्योंकि उसके बिना न
तो मन हो सकता, न आत्मा टिक सकती यहां। वह आधार है, वह जड़ है। अगर किसी वृक्ष को ऐसा खतरा आ जाए कि फूल मरें या जड़ें मरें, तो फूलों को वृक्ष पहले छोड़ देगा। क्योंकि वे तो विलास हैं, उनके बिना जीया जा सकता है। और अगर जीना रहा, तो वे फिर कभी आ सकते हैं। लेकिन जड़ें नहीं छोड़ी जा सकतीं। क्योंकि जड़ें तो जीवन हैं। जड़ें गईं, तो फूल कभी न आ सकेंगे। जड़ें रहीं, तो फूल कभी फिर आ सकते हैं।
अगर वृक्ष से पूछा जाए कि पीड़ को काट दें या जड़ों को? तो वृक्ष कहेगा, पीड़ काट दो--अगर यही विकल्प है। क्योंकि पीड़ फिर पैदा हो सकती है; शाखाएं फिर निकल आएंगी; जड़ें होनी चाहिए।
ऐसा ही अर्थशास्त्र शरीर के भीतर है। जब तुम भोजन करते हो, तो सारी शक्ति भोजन को पचाने में लगती है। इसलिए भोजन के बाद नींद मालूम होती है, क्योंकि मस्तिष्क को जो शक्ति का कोटा मिलना चाहिए, वह नहीं मिलता। मस्तिष्क लक्जरी है, उसके बिना जीया जा सकता है। पशु-पक्षी जी रहे हैं, पौधे जी रहे हैं; लाखों-करोड़ों जीव हैं, जो बिना बुद्धि के जी रहे हैं। मनुष्य हैं, वे भी बिना बुद्धि के जी रहे हैं। बुद्धि कोई अनिवार्य चीज नहीं है। हां, जब शरीर की जरूरतें पूरी हो जाएं और ऊर्जा बचे, तो फिर

बुद्धि को मिलती है। और जब बुद्धि भी भर जाए और ऊर्जा बचे, तब आत्मा को मिलती है।
तो जो आदमी तामसी है, वह इस तरह का भोजन करता है कि मस्तिष्क तक ऊर्जा कभी पहुंचती ही नहीं। इसलिए तामसी व्यक्ति बुद्धिहीन हो जाता है। जिसको बुद्धिमान होना हो, उसे तमस छोड़ना पड़ेगा।
बस वह शरीर में ही जीने लगता है। तामसी व्यक्ति यानी सिर्फ शरीर। उसमें नाम-मात्र को बुद्धि है। इतनी ही बुद्धि है, जिससे वह भोजन जुटा ले और शरीर का काम चला दे, बस। और आत्मा की तो उसे कोई खबर ही नहीं है। आत्मा का उसे सपना भी नहीं आता। आत्मा की बातें लोगों को करते देखकर वह हैरान होता है कि इन दिमागफिरों को क्या हो गया है! इनका दिमाग ठीक है कि पगला गए? कैसा परमात्मा, कैसी आत्मा?
वह एक ही चीज जानता है, एक ही रस जानता है, वह पेट का है। वह पेट ही है। अगर उसका तुम्हें ठीक चित्र बनाना हो, तो पेट ही बनाना चाहिए और पेट में उसका चेहरा बना देना चाहिए। वह बड़ा पेट है। और बाकी सब चीजें छोटी-छोटी उसमें जुड़ी हैं। तामसी व्यक्ति एक असंतुलन है, अपंग है वह, उसमें और कुछ महत्वपूर्ण नहीं है।
राजसी व्यक्ति का भोजन कड़वा, खट्टा, नमकयुक्त, अति गरम, तीक्ष्ण, रूखा, दाहकारक होगा। महत्वाकांक्षियों का भोजन इस तरह का होगा। उनको दौड़ना है, नींद नहीं चाहिए। नींद जिसको चाहिए, वह ठंडा भोजन करता है, बासा करता है। जिसको दौड़ना है, वह अति गरम भोजन करता है।
वह भी खतरनाक है। क्योंकि अति गरम भोजन दूसरी अति पर ले जाता है, वह तुम्हें दौड़ाता है, भगाता है। धन पाना है, पद पाना है, कोई महत्वाकांक्षा पूरी करनी है। सिकंदर बनना है। वह तुम्हें दौड़ाता है। तुम ज्वरग्रस्त हो जाते हो।
अब यह बड़े मजे की बात है, तामसी व्यक्ति गहरी नींद सोते हैं। उन्हें कभी ट्रैंक्वेलाइजर की जरूरत नहीं पड़ती। और राजसी व्यक्तियों को हमेशा ट्रैंक्वेलाइजर की जरूरत पड़ेगी। क्योंकि वे इतना दौड़ते हैं कि रात जब सोने का वक्त आता है, तब भी भीतर की दौड़ बंद नहीं होती; वह चलती ही चली जाती है।
राजसी व्यक्ति कुर्सी पर भी बैठेगा, तो पैर चलाता रहेगा। अब यह पैर चलाने की कोई जरूरत नहीं। वह पैर ही हिलाता रहेगा। शरीर रुक गया है, लेकिन भीतर एक बेचैनी सरक रही है, दौड़ रही है।
राजसी व्यक्ति रात भी सोएगा, तो करवटें बदलता रहेगा; हाथ-पैर तड़फड़ाएगा, फेंकेगा। तामसी व्यक्ति मिट्टी के लोंदे की तरह पड़ा रहता है। वह हिलता-डुलता नहीं। तामसी व्यक्ति भयंकर रूप से घुर्राता है।
एक बार एक यात्रा में मैं एक बड़ी मुसीबत में पड़ गया। आज भी नहीं भरोसा होता कि यह हुआ कैसे! जिस कंपार्टमेंट में मैं था, तीन सज्जन और थे। रात जैसे ही हम चारों सोने गए अपने-अपने बिस्तर पर, एक ने घुर्राना शुरू किया। कोई विशेष बात न थी। लेकिन हैरान तो तब मैं हुआ कि जब उसकी थोड़ी देर बाद दूसरे ने उससे ज्यादा जोर से घुर्राना शुरू किया। यह भी संयोग मैंने समझा कि होगा। मगर जब तीसरे ने दोनों को हरा दिया, तब मैं थोड़ा मुश्किल में पड़ा कि यह हो कैसे रहा है। और एक के बाद एक!
कुछ ऐसा लगा--तीनों को मैं बहुत देर तक सुनता रहा, कोई उपाय न था--कुछ ऐसा लगा कि नींद अपनी रक्षा कर रही है। वे तीनों ही भयंकर सोने वाले हैं। और पहले का घुर्राना दूसरे की नींद में थोड़ी बाधा डाल रहा है। इसलिए दूसरे की नींद और जोर से घुर्रा रही है, ताकि उसको दबा दे। और तब तीसरा... ! और थोड़ी देर बाद मैंने देखा कि पहले ने भी गति बढ़ानी शुरू कर दी।
यह संगीत पूरी रात चला। और वे एक-दूसरे को हराने की कोशिश करते रहे, नींद में भी। शायद अपने घरों में वे इतने जोर से न घुर्राते हों। लेकिन प्रतियोगी को पाकर... ! क्योंकि प्रतियोगी बाधा डाल रहा है। और शरीर अपनी रक्षा करता है बहुत रूपों में।
तामसी वृत्ति का व्यक्ति घुर्राएगा। उसको अगर बीमारी होगी, तो निद्रा
की होगी, वह ज्यादा निद्रा के लिए बीमार होगा।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि दिनभर उबाई आती रहती है। दिनभर, सोते भी हैं ठीक से, फिर भी ऐसा लगता है, नींद कम, नींद कम।
आठ घंटे से ज्यादा नींद की आकांक्षा पैदा हो जवान आदमी को, तो समझना चाहिए, तमस। बूढ़े आदमी को तीन-चार घंटे से ज्यादा नींद की आकांक्षा पैदा हो, तो समझना चाहिए, तमस।
ध्यान रखना, उम्र के साथ नींद का अनुपात घटता जाएगा। बच्चा पैदा होता है, तो बाईस घंटे सोता है। वह तमस में नहीं है। वह उसकी जरूरत है। अगर चौबीस घंटे सोए, तो तमस है; बाईस घंटे उसकी जरूरत है। फिर जैसे-जैसे बड़ा होगा, बीस घंटे, अठारह घंटे, कम होता जाएगा। सात साल का होते-होते उसकी नींद आठ घंटे पर आ जानी चाहिए, तो संतुलित है। फिर यह आठ घंटे पर टिकेगी जीवन के बड़े हिस्से पर। लेकिन मरने के सात वर्ष पहले फिर घटना शुरू होगी। छः घंटे रह जाएगी, पांच घंटे रह जाएगी, चार घंटे रह जाएगी।
जिस दिन नींद आठ घंटे से नीचे कम होनी शुरू हो, उस दिन समझना चाहिए, अब मौत के पहले चरण सुनाई पड़ने लगे। क्योंकि नींद आती है शरीर के निर्माण के लिए।
मां के पेट में बच्चा चौबीस घंटे सोता है। सिर्फ थोड़े-से राजसी बच्चों को छोड़कर, जो मां के पेट में पैर वगैरह चलाते हैं। नहीं तो चौबीस घंटे सोता है। जरूरत है, शरीर बन रहा है, बड़ा काम चल रहा है शरीर में। नींद से सहयोग मिलता है; नींद टूटने से बाधा पड़ती है।
फिर तुम चौबीस घंटे काम करते हो, तो आठ घंटा काफी है। उतनी देर में शरीर अपना पुनर्निर्माण कर लेता है। मरे हुए सेल फिर से बन जाते हैं। रक्त शुद्ध हो जाता है। शक्ति पुनरुज्जीवित हो जाती है। सुबह तुम फिर ताजे हो जाते हो।
लेकिन बूढ़े आदमी के शरीर में बनने का काम बंद हो गया। अब मरे सेल मर जाते हैं, बनते नहीं। अब विदाई का क्षण आने लगा; नींद कम होने लगी।
मेरे पास बूढ़े आदमी आ जाते हैं। कभी सत्तर साल का आदमी, और वह कहता है, कुछ नींद का उपाय बताएं। बस, दो-तीन घंटे आती है।
क्या चाहते हो तुम? नींद की अब कोई जरूरत ही न रही। नींद तुम्हारी थोड़े ही जरूरत है! वह प्रकृति की व्यवस्था है। बूढ़ा आदमी तीन घंटे सो लेता है, बहुत है, पर्याप्त है। इससे ज्यादा की जरूरत नहीं है। मरने के एक दिन पहले नींद बिल्कुल ही खो जाएगी। क्योंकि अब मौत करीब आ गई। सब टूटने का दिन आ गया। अब बनना कुछ भी नहीं है। तो अब नींद कैसे आ सकती है! नींद तो बनने के लिए आती है।
इसलिए तामसी वृत्ति का व्यक्ति भयंकर वजन इकट्ठा करने लगेगा शरीर में। क्योंकि वह सोए जाएगा, सोए जाएगा, और शरीर बनता जाएगा। और शरीर का उपयोग वह कभी न करेगा। तो शरीर पर वजन बढ़ने लगेगा, चर्बी इकट्ठी होने लगेगी। वह सिर्फ बोझ की तरह हो जाएगा।
रजस की आकांक्षा से भरा हुआ व्यक्ति हमेशा जो भी करेगा, उसमें दौड़ खोजना चाहेगा, उत्तेजना। क्योंकि उत्तेजना के बल पर ही वह जी सकता है। यह जो उत्तेजित व्यक्ति है, रात सो भी न सकेगा। उत्तेजना इतनी है कि बिस्तर पर भी पड़ जाता है, लेकिन मस्तिष्क में उत्तेजना चलती रहती है।
तमस से भरा हुआ व्यक्ति शरीर में जीता है, वह शरीर ही है। बाकी चीजें नाम-मात्र को हैं। रजस से भरा व्यक्ति मन में जीता है, वह मन ही है। बाकी चीजें नाम-मात्र को हैं। वह शरीर की कुर्बानी दे देता है मन की आकांक्षा के लिए। वह आत्मा की भी कुर्बानी दे देता है मन की आकांक्षा के लिए। वह मन में ही जीता है। वह मन का सिकंदर है। सारा साम्राज्य फैलाना है दुनिया पर। जो व्यक्ति सत्व से भरा है, वह इन दोनों से भिन्न है। वह संतुलित है। न
तो वह अति ठंडा भोजन करता है, न वह अति गरम भोजन करता है। वह उतना ही गरम भोजन करता है, जितना शरीर की जठराग्नि से मेल खाता है। उतना ही ताप वाला भोजन करता है, जितना पेट का ताप है। वह थोड़ा-सा उष्ण--एकदम गरम नहीं, एकदम ठंडा नहीं--वैसा भोजन करता है, जिससे उसका शरीर तालमेल पाता है। वह शरीर के ताप के अनुसार भोजन करता है।
उसकी आयु स्वभावतः ज्यादा होगी, क्योंकि वह प्रकृति के अनुसार जीता है, प्रकृति के समस्वरता में जीता है। उसकी बुद्धि स्वभावतः शुद्ध होगी,

तीक्ष्ण होगी, स्वच्छ होगी, निर्मल दर्पण की तरह होगी, क्योंकि वह शुद्ध आहार कर रहा है; शाकाहारी होगा आमतौर से। इस तरह का भोजन लेगा, जो लेते समय उत्तेजना नहीं देता, शांति देता है, एक स्निग्धता देता है। और प्रीति को बढ़ाता है।
रजस व्यक्ति का भोजन क्रोध को बढ़ाता है। तमस व्यक्ति का भोजन आलस्य
को बढ़ाता है। सत्व व्यक्ति का भोजन प्रीति को बढ़ाता है। तुम उसके पास प्रीति की गंध पाओगे। तुम उसके पास हमेशा मधुमास पाओगे। उसके पास एक मधुरिमा होगी, एक मिठास होगी। उसके बोलने में, उसके उठने-बैठने में एक संगीत होगा, एक लयबद्धता होगी। क्योंकि उसका शरीर भीतर भोजन के साथ लयबद्ध है।
शरीर भोजन से ही बना है। इसलिए बहुत कुछ भोजन पर निर्भर है। भोजन न करोगे, तो तीन महीने में शरीर विदा हो जाएगा। शरीर भोजन है। शरीर भोजन का ही रूपांतरण है। इसलिए कैसा तुम भोजन करते हो, उससे शरीर निर्मित होगा। उसके जीवन में प्रीति होगी। आलसी व्यक्ति प्रेम नहीं कर सकता। आलसी व्यक्ति प्रेम मांगता है। इस फर्क को ठीक से समझ लेना।
आलसी व्यक्ति प्रेम मांगता है, मुझे प्रेम करो। वह सारी दुनिया के सामने इश्तहार लगाए बैठा है, सब मुझे प्रेम करो। चारों खाने बिस्तर पर पड़ा है, सारी दुनिया उसको प्रेम करे। और शिकायत उसकी है कि कोई प्रेम नहीं करता।
राजसी व्यक्ति न तो प्रेम करता है और न मांगता है। उसे फुरसत नहीं इस धंधे में पड़ने की। उसके लिए प्रेम के सिवाय और भी बहुत काम हैं। प्रेम सब कुछ नहीं है, प्रेम गौण है।
सिकंदर को प्रेम करने की फुरसत नहीं मिल पाती। कैसे मिले? अभी बड़े युद्ध जीतने हैं। सारी पृथ्वी पर राज्य निर्मित करना है।
नेपोलियन यद्यपि रोज युद्ध के मैदान से अपनी पत्नी को पत्र लिखता है, लेकिन लिखता युद्ध के मैदान से ही है, घर कभी नहीं आता। रोज लिखता है पत्र। ऐसा एक दिन नहीं छोड़ता। वह भी मुझे लगता है कि किसी अपराध-भाव के कारण करता होगा।
धीरे-धीरे पत्नी किसी और के प्रेम में पड़ जाती है। वह अपना पत्र ही लिखते रहते हैं। वह उनके पत्र पढ़ती भी नहीं फिर। जोसेफाइन के संबंध में कहा जाता है कि वह धीरे-धीरे नेपोलियन का पत्र खोलती भी नहीं, कचरे में डाल देती। क्योंकि स्त्री कब तक प्रतीक्षा करे! वह किसी और सैनिक को प्रेम करने लगी।
नेपोलियन सदा युद्धों में है। वहां से पत्र लिखता है रोज कि आज एक नगर
और जीता; तेरे चरणों में समर्पित जोसेफाइन! मगर नगरों को समर्पित करने से जोसेफाइन को कोई खुशी नहीं होती। वह चाहती है, नेपोलियन आए। नगरों का क्या करेगी? नक्शा बड़ा होता जाता है, इससे क्या होगा? उसके हृदय में कहीं तृप्ति इससे नहीं होती।
आकांक्षी लोग न तो प्रेम चाहते हैं, न देते हैं। उन्हें फुरसत नहीं। अभी बड़े काम करने हैं। इलेक्शन लड़ना है, करीब आ रहा है इलेक्शन। उनको लड़ना है इलेक्शन, पद पर पहुंचना है, दिल्ली जाना है। पत्नी वगैरह गौण है, बच्चे गौण हैं। इसलिए राजनीतिज्ञों के, बड़े से बड़े राजनीतिज्ञों के बच्चे भी आवारा और बरबाद हो जाते हैं। हो ही जाएंगे।
धनियों के बच्चे सत्व की तरफ नहीं बढ़ पाते; बाप को फुरसत नहीं है। वह
धन इकट्ठा कर रहा है। हालांकि वह कहता यही है कि इन्हीं के लिए इकट्ठा कर रहा हूं! लेकिन इनसे कभी मिलना ही नहीं होता। जब वह आता है घर वापस, तब तक बच्चे सो गए होते हैं। जब सुबह वह भागता है बाजार की तरफ, तब तक बच्चे उठे नहीं होते हैं। वह भाग-दौड़ में है। कभी रास्ते पर सीढ़ियां चलते मिल जाते हैं, तो जरा पीठ थपथपा देता है। वह भी उसे ऐसा लगता है कि बेकार का काम है। इतनी शक्ति बचती, तो और धन कमा लेते! इतना ही किसी और को थपथपाते बाजार में, तिजोरी भर जाती। यह नाहक बीच में आ गया।
धनियों के बच्चों का बाप से मिलना ही नहीं होता। और बहुत धनियों के बच्चों को उनकी मां से भी मिलना नहीं होता। क्योंकि मां को भी कहां फुरसत है! क्लब है, सोसाइटी है, पच्चीस जाल हैं। पति के साथ जाना है भोजनों में।

क्योंकि उस पर पति का धंधा निर्भर करता है। पति के साथ जाकर हंसना है, बात करना है लोगों से। क्योंकि यह धंधे के लिए जरूरी है।
जब कभी कोई मुल्क किसी को एम्बेसेडर बनाकर भेजता है, तो पहले उसकी पत्नी को गौर से देखता है, कि पत्नी कुछ खूबसूरत ढंग की है? क्योंकि राजदूत का सारा काम पत्नी की खूबसूरती पर निर्भर करता है। पत्नी के सहारे राजदूत काम कर पाता है।
पत्नियों के सहारे लोग राष्ट्रपति हो जाते हैं। पत्नियों के सहारे लोग बड़े धनी हो जाते हैं। पत्नी पर यात्रा करते हैं। यह कोई प्रेम हो सकता है! पत्नी भी साधन है!
बहुत धनी के घर में न तो पत्नी का पता चलता है, न पति का पता चलता है। बच्चे आवारा होते हैं। नौकरों के द्वारा पाले जाते हैं। फिर जो परिणाम होता है, वह जाहिर है।
बड़े से बड़े लोगों के, महात्मा गांधी जैसे व्यक्ति के बच्चे भी सब व्यर्थ हो जाते हैं। एक बच्चा काम का साबित नहीं होता।
इसलिए महात्मा गांधी को मैं दूसरी कोटि से ऊपर नहीं ले जा सकता। वे सत्व के व्यक्ति नहीं हैं। वे बात कितनी ही सत्व की करते हों, लेकिन वे व्यक्ति रजस के हैं। महत्वाकांक्षा भारी है। वह चाहे अपने से न जुड़ी हो। इसे ध्यान रखना।
राष्ट्र को स्वतंत्र करना है, तो सीधा नहीं लगता कि मेरी कोई महत्वाकांक्षा है। कि गरीबों का उद्धार करना है, कि हरिजनों का उद्धार करना है, मेरी कोई आकांक्षा पता नहीं चलती। लेकिन यह भी आकांक्षा है। इससे भी मुझे तृप्ति मिलेगी। जब राष्ट्र का उद्धार होगा, तब मैं कहूंगा, देखो, कर दिया उद्धार! हरिजनों को जगा दिया! स्वतंत्रता ला दी! लेकिन यह भी महत्वाकांक्षा है। इस महत्वाकांक्षा के कारण कहां फुरसत।
गांधी को फुरसत बिल्कुल नहीं है। नहाने की फुरसत नहीं है। टब में बैठकर नहाते हैं और सेक्रेटरी बाहर से अखबार पढ़कर सुनाता है। वे अंदर जाकर शौच-क्रिया कर रहे हैं और बाहर दरवाजे पर खड़ा सेक्रेटरी अखबार से खबरें पढ़कर सुना रहा है। क्योंकि फुरसत नहीं है! पत्र पढ़कर सुना रहा है। वे भीतर से जवाब दे रहे हैं कि ये-ये जवाब लिख देना।
ऐसी भाग-दा.ैड की जिंदगी में प्रेम की कहां सुविधा है! कस्तूरबा दुखी मरी। कोई कहता नहीं इसको, लेकिन कस्तूरबा दुखी मरी। कस्तूरबा सुखी नहीं थी। हो नहीं सकती। क्योंकि गांधी को फुरसत ही नहीं है। कस्तूरबा की तरफ देखने की फुरसत नहीं है। बड़ा जाल है काम का।
महत्वाकांक्षी व्यक्ति मन की दौड़ में जीता है। न वह प्रेम करता है, न
वह मांगता है।
सत्व को उपलब्ध व्यक्ति के जीवन में प्रेम का दान है। वह मांगता नहीं,
वह सिर्फ देता है।
तमस मांगता है। सत्व देता है। रजस को फुरसत नहीं है। सत्व इतने प्रेम
से भर देता है तुम्हारी जीवन-ऊर्जा को, ऐसे परितोष से, ऐसे संतोष से, ऐसी गहन तृप्ति से कि तुम बांटने में उत्सुक हो जाते हो। तुम बांटते हो, क्योंकि तुम्हारे पास इतना है, तुम करोगे क्या! और जितना तुम बांटते हो, उतना बढ़ता है।
आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ाने वाले एवं रसयुक्त, चिकने, स्थिर रहने वाले तथा स्वभाव से ही मन को प्रिय आहार सात्विक पुरुष को प्रिय होते हैं।
जो स्वभाव से ही प्रिय हैं! सात्विक गुणों का व्यक्ति स्वाद के कारण भोजन नहीं करता, यद्यपि बहुत स्वाद भोजन में लेता है, जैसा कोई भी नहीं लेता। लेकिन स्वाद निर्धारक नहीं है। निर्धारक तत्व तो है शरीर की प्रकृति, स्वभाव की अनुकूलता, तारतम्य, संगीत। यद्यपि सात्विक व्यक्ति परम स्वाद को उपलब्ध होता है।
सात्विक व्यक्ति के आहार को अगर तुम तामसी को दो, तो वह कहेगा, क्या घास-पात! इसमें कुछ भी नहीं है; यह क्या खाना है! अगर राजसी को दो, वह कहेगा, कोई इसमें स्वाद नहीं है, तेजी नहीं है, उत्तेजना नहीं है। मिर्च नहीं है, नमक नहीं है ज्यादा।

ध्यान रखना, जो लोग मिर्च-मसाले पर जीते हैं, वे यह न समझें कि वे स्वाद ले रहे हैं। मिर्च-मसाले की जरूरत ही इसलिए है कि उनका स्वाद मर गया है। उनकी जीभ इतनी मुरदा हो गई है कि जब तक वे जहर न रखें उस पर, तब तक उसे कुछ पता नहीं चलता, इसलिए मिर्च रखनी पड़ती है। मिर्च रखने से थोड़ी-सी तड़फन जीभ में होती है। वह मरी-मराई जीभ थोड़ी कंपती है। उन्हें लगता है, स्वाद आया!
लेकिन जिसकी जीभ जीवित है, उसे मिर्च की जरूरत नहीं है। वह मिर्च को बरदाश्त न कर सकेगा। जिसका स्वाद जीवित है, वह तो साधारण फलों से, सब्जियों से इतने अनूठे स्वाद को ले सकेगा कि वह सोच ही नहीं सकता कि तुम क्यों मिर्च डालकर सब्जियों के स्वाद को नष्ट कर रहे हो! यह स्वाद को नष्ट करना है। मसाला नष्ट करने का उपाय है। स्वाद बढ़ता नहीं मसाले से।
लेकिन तुम्हें तकलीफ होगी। अगर आज तुम अचानक मसाला छोड़ दो, तो सब बेस्वाद मालूम पड़ेगा। क्योंकि स्वाद का अभ्यास करना होगा।
यह तो ऐसे ही है, मेरे एक मित्र हैं, वे ट्रैवेलिंग एजेंट का काम करते हैं। तो महीने में कोई बीस-चौबीस दिन बाहर; सप्ताह के लिए, पांच-सात दिन के लिए कभी घर लौटते हैं। वे मेरे पास आकर कहने लगे कि बड़ी मुसीबत है। ट्रेन में तो नींद आती है, घर नींद नहीं आती।
अब जिंदगी हो गई उनको ट्रैवेलिंग एजेंट का काम करते; ट्रेन में उनको नींद आती है। उपद्रव, शोरगुल, आवाज, स्टेशनों का आना-जाना, भीड़-भड़क्का, उसमें उन्हें नींद आती है। घर वे कहते हैं, ऐसा सन्नाटा मालूम पड़ता है कि नींद ही नहीं लगती! आदत हो गई, अभ्यास हो गया। अब इनको फिर से अभ्यास करना पड़ेगा सन्नाटे का।
तुम्हें अगर बाजार की आदत हो जाए, तो हिमालय तुम्हें सूना मालूम पड़ेगा। अगर तुम्हें झगड़े और उपद्रव की आदत हो जाए, तो किसी दिन तुम मौन से बैठो तो ऐसा लगेगा कि समय कटता ही नहीं।
तुम्हारी जीभ अगर मसालों से भर गई हो, तो स्वाद खो दिया है। जीभ बड़ा कोमल तत्व है। और स्वाद के जो छोटे-से हिस्से हैं जीभ पर, उनसे ज्यादा कोमल कोई चीज नहीं है तुम्हारे पास। उनको अगर तुमने बहुत तेज चीजें दी हैं, तो वे मर गए, उनकी अनुभव करने की शक्ति चली गई। अब और तेज चाहिए, और तेज चाहिए, तभी थोड़ी-बहुत तड़फन होती है, तो मालूम पड़ता है कुछ स्वाद आ रहा है। सात्विक व्यक्ति स्वाद के लिए भोजन नहीं करता, लेकिन जितना स्वाद वह लेता है, दुनिया में कोई भी नहीं लेता। इसलिए मैं तुमसे कहता हूं कि सात्विक को तुम अस्वाद लेने वाला मत समझ लेना। वही परम स्वाद लेता है। न तो वैसा स्वाद तमस को मिलता, न वैसा स्वाद रजस को मिलता। स्वाद मिलता ही उसे है, जो प्रकृति के अनुकूल चलता है। उसे पूरे जीवन का पूरा स्वाद मिलता है।
सभी दिशाओं में सात्विक व्यक्ति की संवेदना खुल जाती है। वह ज्यादा सुनता है, ज्यादा देखता है, ज्यादा छूता है, ज्यादा स्वाद लेता है, ज्यादा गंध पाता है।
सात्विक व्यक्ति गुलाब के फूल के पास से निकलता है, तो उसे गंध आती है। राजसी निकलेगा, तो उसने बाजार के कचरा इत्र लगा रखे हैं, उन इत्रों की गंध की तेजी में गुलाब के फूल से गंध ही नहीं आती। उसे सस्ते बाजार में बिकने वाले इत्र चाहिए, दो कौड़ी के। लेकिन उनसे ही उसको थोड़ी गंध आती है। उसके नासापुट मर गए। अगर कहीं कोई शास्त्रीय संगीत हो रहा हो, तो उसे मजा नहीं आता। वह कहता है, यह क्या हो रहा है!
मुल्ला नसरुद्दीन गया था एक शास्त्रीय संगीत की सभा में। और जब संगीतज्ञ आलाप भरने लगा, तो उसकी आंख से आंसू गिरने लगे। पड़ोसी ने पूछा कि नसरुद्दीन! हमने कभी सोचा भी नहीं कि तुम शास्त्रीय संगीत के इतने प्रेमी हो। तुम्हारी आंख से आंसू टपक रहे हैं!
उसने कहा, हां, टपक रहे हैं। क्योंकि यह आदमी खतरे में है। यही हालत मेरे बकरे की हो गई थी जब वह मरा। ऐसे ही भरता था आलाप। यह मरेगा। इसको बचाने का उपाय करो। ऐसे ही चिल्ला-चिल्लाकर मेरा बकरा मरा।
शास्त्रीय संगीत के लिए तुम्हें एक भीतरी सौमनस्य चाहिए। तुम्हें तो कोई फिल्मी हुड़दंग, जिसमें प्रेमनाथ बंदरों की तरह उछल-कूद रहा हो, उसमें

तुम्हें रस आएगा। तुम्हारी रीढ़ सीधी हो जाएगी; ध्यान तन्मय हो जाएगा। तुम कहोगे, कुछ हो रहा है।
तुम्हारे जीवन की सभी संवेदनाएं क्षीण हो गई हैं। या तो तमस में सो गई हैं, या रजस में उत्तेजना के कारण मर गई हैं। सत्व को उपलब्ध व्यक्ति परम संवेदनशील है।
इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, बुद्ध पुरुष जितना जीते हैं, तुम नहीं जी सकते। तुम तो जीने का सिर्फ बहाना कर रहे हो। बुद्ध पुरुष प्रगाढ़ता से जीते हैं। फूल उनके लिए ज्यादा गंध देते हैं। हवाएं उन्हें ज्यादा शीतलता देती हैं। नदी का कल-कल नाद उन्हें ओंकार के नाद से भर देता है। वे सन्नाटे को सुनने में समर्थ हो जाते हैं। साधारण भोजन भी उन्हें परम स्वाद देता है। और साधारण मनुष्य भी उन्हें परम सुंदर की प्रतिमाएं मालूम होने लगते हैं। उन्हें सारा जगत सुंदर हो जाता है। वे सत्यम्, शिवम और सुंदरम को उपलब्ध हो जाते हैं।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग आठ
गीता दर्शन अध्याय 17
छठवां प्रवचन

तीन प्रकार के यज्ञ

अफलाकांक्षिभिर्यज्ञो विभिदृष्टो य इज्यते।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः।। 11।।
अभिसंधाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत्।
इज्यते भरतश्रेष्ठं तं यज्ञं विद्धि राजसम्।। 12।।
विधिहीनमसृष्टान्नं मंत्रहीनमदक्षिणम्।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिच्रते।। 13।।
और हे अर्जुन, जो यज्ञ शास्त्र-विधि से नियत किया हुआ है तथा करना ही कर्तव्य है, ऐसे मन को समाधान करके फल को न चाहने वाले पुरुषों द्वारा किया जाता है, यह यज्ञ तो सात्विक है।
और हे अर्जुन, जो यज्ञ केवल दंभाचरण के ही लिए अथवा फल को भी उद्देश्य रखकर किया जाता है, उस यज्ञ को तू राजस जान।
तथा शास्त्र-विधि से हीन और अन्न-दान से रहित एवं बिना मंत्रों के, बिना दक्षिणा के और बिना श्रद्धा के किए हुए यज्ञ को तामस यज्ञ कहते हैं।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः गीता में क्या सुनकर अर्जुन भीतर मुड़ गया था?

कृष्ण को! जो वह कह रहे थे, उसे सुनकर नहीं, वरन कृष्ण को, जो वे थे, उसे सुनकर। इसीलिए तो गीता तुम पढ़ सकते हो और जैसे उलटे घड़े पर पानी बह जाए, ऐसी गीता तुम पर बह जाएगी; तुम अछूते रह जाओगे। वैसी क्रांति, जैसी अर्जुन को घटी, तुम्हें न घटेगी। क्योंकि एक बात तुम भूल गए हो, कृष्ण मौजूद नहीं हैं।
अर्जुन कृष्ण को सुनकर रूपांतरित हुआ। कृष्ण ने जो कहा, उसको सुनकर अगर रूपांतरित होता, तो गीता पढ़कर तुम भी रूपांतरित हो जाते। क्रांति घटती है कृष्ण जैसे व्यक्ति की मौजूदगी में। एक जलता हुआ दीया बुझे हुए दीए को जला देता है। गीता में तो वही संगृहीत है, जो कृष्ण ने कहा। लेकिन जो कृष्ण थे, उसे तो गीता में संगृहीत करने का कोई उपाय नहीं। उसे तो किसी भी किताब में रखने का कोई उपाय नहीं।
इसीलिए जब शास्ता मौजूद होता है, तब उसके वचन जीवंत होते हैं, वचनों
की किसी खूबी के कारण नहीं, उसकी जीवंतता के कारण। शास्ता अपने वचनों में मौजूद होता है। क्योंकि वे वचन आते हैं उसके अंतर-मंदिर से, उसके प्राणों को छूकर, उसके भीतर की सुगंध को लेकर। उसके भीतर का नृत्य थोड़ा-सा उन शब्दों में भी झनकता हुआ तुम्हारे पास तक पहुंच जाता है। उसकी मौजूदगी रूपांतरित करती है।
इसलिए सदगुरु न मिले, तो ही शास्त्र का उपयोग है। सदगुरु मिल जाए, तो शास्त्र को नासमझ पकड़ता है। उसका कोई मूल्य ही नहीं है। जब तुम्हें जीवंत शास्त्र मिल गया, तो शास्त्र का कोई अर्थ नहीं है। शास्त्र तो जब जीवंत शास्त्र मौजूद न हो, तब उसकी उपादेयता है। और उसकी उपादेयता बड़ी संदिग्ध है। क्योंकि तुम उसकी क्या व्याख्या करोगे, वह तो तुम पर निर्भर करेगा। जब कृष्ण मौजूद होते हैं, तब कृष्ण ही अपनी व्याख्या कर रहे हैं। उनकी मौजूदगी ही उनकी व्याख्या बन रही है। जब कृष्ण मौजूद नहीं हैं, तुम गीता पढ़ोगे, गीता से जो अर्थ निकालोगे, वह तुम्हारा अपना होगा।
ऐसा समझो कि गुरु को तो मैं कहता हूं, जला हुआ दीया। तुम उसके पास भर सरकते जाओ, एक न एक दिन तुम्हारी बुझी हुई बाती में लौ पकड़ जाएगी। तुम बस पास आते चले जाओ। पास आने से ज्यादा तुम्हें कुछ भी नहीं करना है।
हम अपने परम शास्त्रों को उपनिषद कहे हैं। उपनिषद शब्द का अर्थ होता है, गुरु के पास आते जाना; उसके पास बैठना। जितना तुम पास आते जाओगे, बस उतना ही तुम्हें करना है। शेष अपने से हो जाएगा। तुम दूर भर मत रहना; तुम

फासला बनाकर मत खड़े रहना; तुम अपने को बचाना मत। तुम अपने को उंडेल देना बिना हिसाब के, बिना डर के; बिना सुरक्षा का इंतजाम किए पास आ जाना। तुम अपने चारों तरफ कवच मत ओढ़ना। बस, तुम्हारा पास आना काफी है, लपट पकड़ लेगी। शास्त्र कैसे हैं? गुरु तो जलते हुए दीए जैसा है। शास्त्र तो दियासलाई हैं। उनमें आग तो छिपी है, लेकिन उसे प्रकट तो तुम्हें करना पड़ेगा।
और तुम ऐसे अज्ञानी हो कि दियासलाई लिए बैठे रहोगे और दियासलाई की ऐसी-ऐसी व्याख्याएं कर लोगे कि तुम्हें यह कभी याद ही न आएगी कि उसमें छिपी हुई सलाई में आग है; रगड़ने की जरूरत है और आग पैदा हो जाएगी।
वचनों में आग है, लेकिन उसे निकालना पड़ेगा। वह प्रकट नहीं है; वह छिपी है। निकालेगा कौन? तुम्हीं निकालोगे। और तुम्हारे अंधकार में भरोसा नहीं किया जा सकता कि तुम निकाल पाओगे। तुम दियासलाई की पूजा करोगे, यह मुझे पक्का पता है। तुम दियासलाई पर चंदन-तिलक लगाओगे; फूल चढ़ाओगे। धीरे-धीरे तुम इतनी चीजें चढ़ा दोगे कि उन्हीं में दियासलाई ढंक जाएगी और तुम भूल ही जाओगे कि पीछे दियासलाई भी थी।
तुम उस दियासलाई के चरणों में सिर झुकाओगे। कोई तुम्हारी दियासलाई के खिलाफ कुछ कहेगा, तो लड़ने-मरने को उतारू हो जाओगे। तुम दियासलाई के लिए मरने को तो राजी रहोगे, लेकिन दियासलाई के अनुसार जी न सकोगे। वह आग बंद ही पड़ी रहेगी।
शास्त्र तो दियासलाई जैसे हैं। सदगुरु जलती हुई आग है। उसके तुम्हें सिर्फ पास आना है, कुछ करना नहीं है। निकट होने की क्षमता, बस पर्याप्त पात्रता है। पास आते-आते बुझी लौ जली लौ के साथ एक हो जाती है।
कृष्ण को सुनकर नहीं अर्जुन बदला, नहीं तो कोई भी बदल लेगा, गीता मौजूद है। कृष्ण की उपस्थिति, कृष्ण का व्यक्तित्व, कृष्ण के भीतर जो घटा है, जो ज्योति जली है।
कृष्ण ने इतनी बातें कहीं अर्जुन को, क्या तुम सोचते हो, इसलिए कहीं
कि कृष्ण को यह पता नहीं कि बातों से कुछ भी न होगा। कृष्ण को भलीभांति पता है कि बातों से कुछ भी न होगा। सिर्फ एक बात घटेगी कि बातों से भरोसा बढ़ेगा; अर्जुन करीब आने की हिम्मत जुटा लेगा।
तुमसे मैं रोज बातें किए चला जाता हूं। क्या मैं समझता हूं कि तुम सुन-सुनकर ज्ञानी हो जाओगे? या तुम मेरी बातों को समझ लोगे, तो तुम्हारे जीवन में क्रांति आ जाएगी?
नहीं, बातें तो सिर्फ भुलावा हैं। वह चर्चा तो तुम्हें उलझाने की है।
वह तो थोड़ी देर को तुम अपनी सुरक्षा को भूल जाओ, और मेरे पास आ जाओ। बस, इतना ही। बातचीत तो खेल-खिलौनों जैसी है। जिसमें तुम उलझ जाओ और तुम्हारे अहंकार को घड़ीभर को भूल जाओ, और पास सरक आओ।
मेरी बात को पकड़ने से कुछ न होगा। मेरी बात में अगर तुम डूब गए, लीन हो
गए और पास आ गए उस लीनता में, तो क्रांति घट जाएगी। तब तुम भी हंसोगे कि इतनी बातें करने की क्या जरूरत थी। पास ही क्यों न ले लिया!
लेकिन वह संभव न था। अगर तुम्हें पास लेने की कोशिश की जाए, तुम दूर भागोगे। तुम्हें बुलाया जाए, तुम डरोगे। तुम समझोगे कि कोई फंदा है, कोई जाल है।
तुम्हें सीधे बुलाया नहीं जा सकता, तुम ऐसी उलटी दशा में हो। तुम्हें बुलाना भी हो, तो परोक्ष; तुम्हें निमंत्रण भी भेजना हो, तो सीधा नहीं भेजा जा सकता कि आ जाओ। क्योंकि तुम हजार बहाने करोगे। और तुम डरोगे भी, कि बुलावा क्यों है? जरूर कोई स्वार्थ होगा। बुलाया है, तो जरूर कोई मतलब होगा। बिना मतलब कोई किसी को बुलाता है? तुम किसी को नहीं बुलाते बिना मतलब।
तो तुम अपनी सुरक्षा करके आओगे, कवच बांधकर आओगे, मन को बंद करके आओगे। तब, तब जलता हुआ दीया भी कुछ न कर सकेगा। तुम्हारी बाती अगर छिपी हो अस्त्र-शस्त्रों में, तो कोई उपाय नहीं।
सब चर्चा फुसलाने की है। पूरी गीता सिर्फ जाल है अर्जुन को पास आने के लिए, कि तू पास आ जा, तुझे भरोसा आ जाए।

और तुम सिवाय शब्दों के और किसी चीज से भरोसा नहीं करते। जीवन से तो तुम्हारा संबंध टूट गया है। अस्तित्व से तुम्हारा कोई नाता नहीं रहा है। तुम सिर्फ शब्दों में जीते हो। सब शब्दों का जाल है। प्रेम तुम्हारे लिए एक शब्द है। परमात्मा तुम्हारे लिए एक शब्द है। सत्य तुम्हारे लिए एक शब्द है। प्रार्थना तुम्हारे लिए एक शब्द है।
तो तुम्हें अगर खींचना हो, तो शब्दों का ही व्यूह रचना पड़ेगा। कृष्ण
ने गीता कहकर शब्दों का व्यूह रचा। जैसे मकड़ी जाला रचती है। मकड़ी का जाला तो दिखाई भी पड़ता है, शब्दों का जाला तो उतना भी दिखाई नहीं पड़ता।
शब्दों से बंधे तुम खिंचे चले आते हो; शब्दों से सम्मोहित तुम पास चले आते हो। और एक घड़ी जब तुम इतने पास आ जाते हो, जहां ज्योति छलांग ले सकती है और तुम्हारी बुझी बाती को पकड़ सकती है, वहां घटना घट जाती है।
कृष्ण अर्जुन को सुनाने-समझाने की कोशिश नहीं कर रहे हैं। कृष्ण अर्जुन को पास बुलाने की कोशिश कर रहे हैं कि तू मत घबड़ा अर्जुन, पास आ जा, मामेकं शरणं व्रज, सब छोड़ मेरी शरण आ जा। उसके लिए सारा उपाय है।
जिस क्षण वह पास सरक आया होगा, उसी क्षण भीतर मुड़ गया। जिस क्षण पास आ गया होगा, उसी क्षण अर्जुन कृष्ण हो गया। पास आकर दूरी मिट जाती है, द्वैत मिट जाता है, एकता सध जाती है।

दूसरा प्रश्नः आपने कल कहा कि भक्त भगवान को बाहर खोजता है। क्या ज्ञानी भगवान को भीतर खोजता है?

ज्ञानी खोजता ही नहीं, क्योंकि सब खोज बाहर है। खोज का मतलब ही बाहर है।
इसे थोड़ा समझो, यह थोड़ा जटिल है। क्योंकि हम सोचते हैं कि बाहर खोज होती है, ऐसे ही भीतर खोज होती है। भीतर तो तुम अकेले हो, खोजोगे क्या? किसको खोजोगे? वहां तो गली बहुत संकरी है, ता में दो न समाय। वहां तो दो समा नहीं सकते। खोजेगा कौन किसको?
सब खोज बाहर है। जब तक खोजते हो, बाहर रहोगे। जब बाहर की खोज व्यर्थ हो जाएगी, खोज-खोजकर थक जाओगे, हार जाओगे, पराजित हो जाओगे, जब देख लोगे कि सब तरफ खोज लिया, कहीं पाया नहीं, थककर बैठ जाओगे, उसी क्षण भीतर की खोज घट गई। जैसे ही बाहर की खोज बंद होती है, तुम भीतर पहुंच जाते हो। भीतर की कोई खोज थोड़े ही है। बाहर उलझे हो, इससे भीतर नहीं पहुंच पाते। बाहर अटके हो, इससे भीतर आना नहीं हो पाता।
बाहर कोई खोज न रही... । जब बुद्ध को ज्ञान हुआ बोधि-वृक्ष के नीचे, तो क्या तुम सोचते हो, भीतर वे कुछ खोज रहे थे? कुछ भी नहीं। खोज बंद हो गई थी। खोज-खोजकर देख लिया, कुछ न पाया; राख हाथ लगी, सब खोज व्यर्थ हो गई। उस रात उन्होंने सब खोज छोड़ दी, खोजना ही छोड़ दिया।
अब यह बहुत रहस्य की बात है, जैसे ही तुम खोज छोड़ते हो, वैसे ही खोजने वाला मिट जाता है। क्योंकि खोज के बिना खोजने वाला कहां बचेगा? वह तो खोज में ही जीता है; खोज से ही बनता है। इसलिए जितना बड़ा खोजी, उतना बड़ा अहंकार। जब खोज ही न रही, अहंकार भी गिर जाता है। जब पाने को ही न रहा कुछ, तो पाने वाला कौन?
जब खोज न रही, तो भविष्य मिट जाता है। क्योंकि खोज के लिए भविष्य चाहिए, समय चाहिए, नहीं तो खोजोगे कैसे? जब तक फल की आकांक्षा है, तब तक भविष्य रहेगा, समय रहेगा। जब खोज मिट जाती है, फल का सवाल ही न रहा। भविष्य विसर्जित हो गया, समय टूट गया, समय की धारा विलीन हो गई। खोजी मिट गया, समय मिट गया।
और जब खोज मिट जाती है, तो अतीत को किसलिए सम्हालोगे? आदमी पिछले साल
के खाते-बही सम्हालकर रखता है, क्योंकि अगले साल भी धंधा करना है। अभी भविष्य कायम है, इसलिए अतीत की हम व्यवस्था रखते हैं, स्मृति रखते हैं, कहां है, क्या है, कैसा है? हम क्या थे? इसको हम सम्हालकर रखते हैं, क्योंकि हमें कुछ होना है। अपना पता-ठिकाना तो होना चाहिए।
अतीत और भविष्य संयुक्त हैं। भविष्य जब तक है, तब तक तुम अतीत को बचाओगे; क्योंकि उसी के आधार पर तो भविष्य का भवन खड़ा होगा। अतीत है

बुनियाद, भविष्य है शिखर। जब भविष्य ही न रहा, जब दुकान ही बंद कर दी, तो खाते-बही तुम सम्हाले फिरोगे? आग लगा दोगे, फेंक दोगे सड़क पर, कूड़ा-कर्कट है; अब क्या करना है? जब कुछ मिलने को ही न रहा आगे, जब भवन बनाना ही नहीं, तो बुनियाद की अब तुम क्या रक्षा करोगे?
जब खोज बंद होती है बाहर की, खोजी खो जाता है, भविष्य खो जाता है, अतीत
खो जाता है। रह जाता है यह वर्तमान का निपट क्षण, निष्कलुष, अतीत से गंदा नहीं, भविष्य से बेचैन नहीं, शांत, निर्मल, निस्तरंग। सब खोज खो गई, रह जाता है वर्तमान का क्षण और तुम्हारे भीतर की गहन शांति; क्योंकि खोज के साथ सब वासना चली गई, सब लहरें चली गईं। अब कुछ पाना नहीं है।
इस क्षण में शाश्वत के द्वार खुल जाते हैं; इस क्षण में वह जो अनादि- अनंत है, कालातीत है, वह तुममें झांकता है। पहली दफे तुम्हारी इस शून्यता में परमात्मा की छवि उभरती है; पहली दफा तुम्हारे मंदिर में उसका पदार्पण होता है।
ज्ञानी खोजता नहीं, जो खोज छोड़ देता है, वही ज्ञानी है। और खोज का छोड़ देना ही अंतर्खोज है। अंतर्खोज कोई नई खोज नहीं है। खोज का बंद हो जाना है, रुक जाना है।
सब दौड़ बाहर है। भीतर भी तुम दौड़ सकते हो? कैसे दौड़ोगे? स्थान कहां? अवकाश कहां जहां भीतर तुम दौड़ोगे? जब सब दौड़ बंद हो जाती है, तुम बैठ गए वृक्ष के तले, कोई दौड़ न रही, निःदौड़। उस दशा में कोई भी वृक्ष के नीचे बैठो, वही बोधि-वृक्ष हो जाएगा, वहीं बुद्धत्व फलित हो जाएगा।
तुम बुद्ध हो, लेकिन बाहर हो। कभी धन खोज रहे हो, कभी पद खोज रहे हो। कभी परमात्मा भी खोजते हो; उसको भी बाहर खोजते हो।
अगर तुम मुझसे पूछो, तो मैं तुमसे कहूंगा, खोजना संसार है, न खोजना मोक्ष है।
लेकिन शायद तब तुममें जो तामसी हैं, वे कहेंगे, तब हम भले। हम खोज ही नहीं रहे।
नहीं, तामसी उसे न पा सकेगा। क्योंकि तामसी ने तो अभी बाहर भी नहीं खोजा। खोज के रुकने का तो सवाल ही तब उठता है, जब बाहर खोज हुई हो। तामसी तो बाहर भी नहीं गया, भीतर क्या जाएगा! भीतर जाने के लिए बाहर जाना कदम है। अपने घर आने के लिए बड़ी यात्रा करनी पड़ती है। अभी तामसी यात्रा पर ही नहीं गया, अपने घर कैसे लौटेगा?
तो तामसी यह न सोचे कि हम जहां बैठे हैं, वहीं बुद्धत्व है। वहां तो अभी यात्रा ही शुरू नहीं हुई है।
इसे ध्यान रखो। बाहर की यात्रा भीतर की यात्रा का प्रशिक्षण है; वह पाठशाला है। वह बिल्कुल अनिवार्य है। अन्यथा लोग पड़े-पड़े मोक्ष को उपलब्ध हो जाते।
इसलिए तामसी को पहले राजसी बनना होता है, दौड़ना पड़ता है बाहर की दुनिया में। तब राजसी सात्विक बनता है, बाहर की दुनिया में दौड़-दौड़कर थक जाता है। शूद्र को क्षत्रिय बनना पड़ता है; क्षत्रिय को ब्राह्मण। और समाज ऐसा तरल होना चाहिए, जिसमें तामसी को राजसी बनने की सुविधा हो, राजसी को सात्विक बनने की सुविधा हो।
हिंदुओं ने बड़ी गहरी बातें खोजीं, लेकिन समाज जड़ बना लिया। उस जड़ समाज
के कारण सब गड़बड़ हो गया। यहां शूद्र को क्षत्रिय बनने का उपाय न रहा। तो तामसी कैसे राजसी बनेगा? यहां क्षत्रिय को ब्राह्मण बनने का उपाय न रहा। तो कैसे राजसी सात्विक बनेगा?
वस्तुतः प्रत्येक को यात्रा शूद्र के तल से करनी पड़ेगी। इसलिए जो गहन शास्त्र हैं, वे कहते हैं, हर आदमी शूद्र पैदा होता है। और हर आदमी शूद्र ही मर जाए, तो जीवन व्यर्थ गया। हर आदमी शूद्र पैदा होता है और हर आदमी को ब्राह्मण मरना चाहिए। तो यात्रा संगत रही, तो यात्रा व्यवस्थित हुई, तो बीज फल तक पहुंच गया, तो मार्ग मंजिल बना।
समाज तरल होना चाहिए, जिसमें सबको सब होने की सुविधा हो, उठने की, चलने की। शूद्र को रोक दिया हिंदुओं ने कि वह आ नहीं सकता दूसरे मार्ग पर। तो यह पूरा जीवन उसे शूद्र ही रहना है। तो करोड़ों लोग शूद्र रह गए। उनके लिए जिम्मेवार कौन है फिर?

हिंदू व्यवस्था ने बड़ा पाप किया है। हिंदुओं ने बड़े गहरे सूत्र खोजे, लेकिन सूत्रों का ठीक उपयोग नहीं हो पाया। जैसे आइंस्टीन ने एटम का सूत्र खोज दिया, लेकिन उपयोग यह हुआ कि हिरोशिमा-नागासाकी जले। और सारी दुनिया भयभीत है कि कभी भी तीसरा महायुद्ध हो जाए।
ऐसे ही हिंदू मनीषियों ने बड़ा गहरा सूत्र खोजा त्रिगुणों का। उसके आधार पर वर्ण-व्यवस्था बना ली लोगों ने। ज्ञान का सूत्र अज्ञानियों के हाथ में पड़ गया। अन्यथा सारी समझ इस कोशिश में लगनी चाहिए थी कि शूद्र तो सभी पैदा हुए हैं, वह सबकी स्वाभाविक दशा है, आलस्य। रजस की तरफ उठना है। तमस से उठना है ऊपर रजस की तरफ। दौड़ शुरू करनी है।
अपने में बंद पड़ा है तामसी। राजसी दौड़ रहा है संसार में, बड़ी महत्वाकांक्षाएं हैं। सात्विक फिर घर लौट आया। लेकिन इस लौट आने में और तामसी के घर ही पड़े रहने में बड़ा अंतर है।
तामसी का कोई अनुभव नहीं है बाहर का। बिना बाहर के अनुभव के भीतर का अनुभव नहीं हो सकता। तामसी ऐसा ही है, जैसे सफेद दीवार पर किसी ने सफेद लकीर खींच दी। या काले ब्लैकबोर्ड पर किसी ने काली लकीर खींच दी; कुछ दिखाई नहीं पड़ता। विपरीत नहीं है, तो अनुभव नहीं बनता। विपरीत न हो, तो ज्ञान का जन्म नहीं होता। काले ब्लैकबोर्ड पर सफेद रेखा खींचनी चाहिए, तब दिखाई पड़ती है।
सात्विक ऐसा व्यक्ति है, जिसने संसार के काले ब्लैकबोर्ड पर अपने जीवन की, अपनी चेतना की सफेद रेखा खींच दी। अब उसे आत्मा उभरकर दिखाई पड़ती है, कंट्रास्ट।
बाहर की यात्रा तुम्हारे जीवन में कंट्रास्ट, विपरीत को पैदा कर देती। है। उसमें आत्मा उभरकर दिखाई पड़ती है।
तामसी को आत्मा दिखाई ही नहीं पड़ती। वह शरीर की तरह ही पड़ा रहता है। अभी उसने शरीर की दौड़ ही नहीं की। पहले तो शरीर दिखाई पड़ेगा। शरीर के अनुभव से गुजर-गुजरकर, छन-छनकर, निखर-निखरकर आत्मा दिखाई पड़ेगी।
तो तुम ऐसा समझो, तामसी व्यक्ति शरीर में जीता, राजसी मन में जीता, सात्विक आत्मा में जीना शुरू करता है। और तीनों के जो पार हो गया, वह परमात्मा हो जाता है।
बाहर खोजना जरूरी है, लेकिन सदा खोजते रहना जरूरी नहीं है। बाहर खोजो
भी और छोड़ो भी फिर। पकड़ो भी, त्यागो भी। पकड़कर जब तुम त्यागोगे, तब तुम्हें हाथ में जो स्वतंत्रता अनुभव होगी, वह उसको नहीं हो सकती अनुभव, जिसने कभी पकड़ा नहीं।
तुम कभी कारागृह गए हो? अगर नहीं गए हो, तो जाने जैसा है। कारागृह के बाहर जब तुम आओगे, हथकड़ियां खुलेंगी, द्वार के सींकचे खुलेंगे, संतरी तुम्हें बाहर जाने की आज्ञा देगा, जब तुम खुले आकाश के नीचे खड़े होओगे, तो तुम्हारे पूरे प्राणों से आवाज निकलेगी, अहा!
यहां तुम पहले भी थे, जाने के पहले यहीं थे तुम, लेकिन कभी अहा की आवाज नहीं उठी थी; कभी आकाश इतना विराट उन्मुक्त न मालूम हुआ था। कभी खुले हाथों में ऐसी गति न मालूम हुई थी। दीवारों के बाहर आकर तुम्हें पहली दफा पता चलता है कि कैसी स्वतंत्रता है जीवन में।
विपरीत जीवन को समृद्ध करता है। इसीलिए तो परमात्मा द्वंद्व में तुम्हें डालता है।
लोग मुझसे पूछते हैं कि अगर निर्द्वंद्व ही होना है, तो परमात्मा हमें निर्द्वंद्व ही क्यों नहीं बनाता?
बना सकता है। लेकिन तब तुम बिल्कुल बेकार रहोगे। तुममें धार ही न होगी। तुम बिना धार की तलवार रहोगे। साग-सब्जी काटने के काम आ जाओ तो बहुत। युद्ध के काम के न रह जाओगे। तुम ऐसा इस्पात रहोगे, जो अग्नि से नहीं गुजरा। क्योंकि इस्पात जब अग्नि से गुजरता है, जितनी बड़ी अग्नि से गुजरता है, उतना ही टेंपर, उतनी ही त्वरा और शक्ति इस्पात में पैदा होती है। बड़ी भट्टियां चाहिए। कच्चे लोहे में क्या रखा है? ऐसा हाथ से तोड़ दो। पका लोहा क्या है? आग से गुजरा हुआ लोहा है। उसमें शक्ति है। आग शक्ति देती है, अनुभव देती है।

संसार आग है; संसार यज्ञ है; उससे अगर तुम होशपूर्वक गुजरो, तुम इस्पात होकर बाहर निकलोगे। कच्चे लोहे की तरह भीतर गए थे, इस्पात होकर बाहर आओगे। कच्चे सोने की तरह भीतर गए थे, जिसमें मिट्टी और कूड़ा-कर्कट सब मिला था। सोना दिखाई ही न पड़ता था, केवल पारखी को दिखाई पड़ सकता था। साधारण तो उसे ऐसा ही मिट्टी-पत्थर जानकर गुजर जाता। किसी जौहरी को दिखाई पड़ सकता था।
तुम्हारा सोना तुम्हें नहीं दिखाई पड़ता, मुझे दिखाई पड़ता है। तुम तो कहते हो, मुझमें और सोना? सिवाय कूड़ा-कर्कट के और कुछ भी नहीं है! तुम आग से नहीं गुजरे हो। आग कूड़ा-कर्कट को जला देगी। तब तुम लौटोगे घर, खालिस सोना। तब तुम्हारी बात और होगी, तुम्हारी सुगंध, तुम्हारा रस और होगा।
ज्ञानी खोजता है; खोज को छोड़ता है। अज्ञानी या तो खोजता ही नहीं या खोज को ही पकड़कर अटक जाता है।
भीतर की कोई खोज नहीं है। बाहर खोजो और बाहर की खोज की व्यर्थता को समझ जाओ। और जल्दी मत करना; क्योंकि कच्चे घर न लौट सकोगे। कच्चे की कोई स्वीकृति परमात्मा के पास नहीं है। पकोगे तो ही लौट सकोगे।
बहुत-से लोगों को मैं कच्चा घर लौटते देखता हूं। वे ऐसे ही हैं, जैसे स्कूल से फेल होकर घर चले आ रहे हैं। स्कूल गए थे माना, लेकिन उत्तीर्ण नहीं हुए। कोई प्रमाणपत्र लेकर नहीं आ रहे हैं। परमात्मा का घर इनके लिए बंद रहेगा।
संसार में भेजा इसलिए कि उत्तीर्ण हो जाओ। संसार को जान लेना जरूरी है, इसके पहले कि तुम परमात्मा को समझ सको। व्यर्थ को पहचान लेना जरूरी है, इसके पहले कि सार्थक का आविर्भाव हो। असार को समझ लेना जरूरी है, इसके पहले कि सार से तुम्हारा मिलन हो। असत्य को असत्य की तरह जानने वाला ही सत्य को सत्य की तरह जान पाता है।

तीसरा प्रश्नः हम अधूरे हैं। हम बाहर या भीतर कितनी ही खोज करें, हमें पूरा कैसे दिखेगा? पूरा कैसे मिलेगा?

ठीक बात है। अधूरे हो तुम, तुम्हारी सब खोज अधूरी रहेगी। लेकिन अखोज पूरी हो सकती है।
तुम जो भी खोजोगे, तुम्हीं खोजोगे; तुम्हारे हाथ की ही खोज होगी, तुम्हारे जैसी ही रहेगी। तुम जो भी बनाओगे, उसमें तुम्हारी ही छाप होगी। तुम जो भी निर्मित करोगे, सृजन करोगे, वह अधूरा ही होगा। क्योंकि अधूरा बनाने वाला है, तो कृति कैसे पूरी हो सकती है? बिल्कुल ठीक बात है।
तुम जो भी सोचोगे, वह अधूरा होगा। तुम जो भी विचार करोगे, वह खंडित होगा। तुम जो भी निष्कर्ष लोगे, वह कभी संपूर्ण और समग्र नहीं हो सकता। तुम श्रद्धा करोगे, तो अधूरी; तुम संदेह करोगे, तो अधूरा। तुम संसार में जाओगे, तो आधे-आधे; तुम मंदिर में प्रवेश करोगे, तो आधे-आधे। क्योंकि तुम अधूरे हो। बात ठीक है।
तो क्या फिर कोई उपाय नहीं है? क्योंकि परमात्मा तो पूरा है और तुम अधूरे हो। और तुम जो भी करोगे, वह सब अधूरा होगा--प्रार्थना भी अधूरी, साधना भी अधूरी, समाधि भी अधूरी। तो तुम पूरे परमात्मा को कैसे पाओगे?
पा सकते हो। क्योंकि एक उपाय है। विचार तो तुम करोगे, अधूरा होगा। लेकिन निर्विचार कैसे अधूरा होगा! क्योंकि वह कोई कृत्य तो नहीं है। विचार अधूरा होगा। इसलिए तो विचार से कोई परमात्मा को नहीं पा सकता। अधूरे से पूरे को पाओगे कैसे? लेकिन निर्विचार? निर्विचार तो अधूरा नहीं होगा, क्योंकि वह तुम्हारा कोई कृत्य नहीं है। निर्विचार तो तुम्हारे कर्ता के हट जाने का नाम है, वह तो अभाव है। अभाव तो पूरा हो सकता है।
तुम मौजूद हो, तो अधूरे रहोगे। लेकिन तुम गैर-मौजूद हो, तब तो पूरे हो सकते हो। अहंकार अधूरा होगा; निरअहंकार पूरा हो सकता है। विचार अधूरा, शून्य पूरा हो सकता है। खोजोगे, तो अधूरा रहेगा; नहीं खोजोगे, तो? खोज छोड़कर वृक्ष के नीचे बैठे हो, कुछ नहीं खोज रहे, उस क्षण में तो तुम पूरे हो जाओगे। तुम्हारी दौड़ तो अधूरी रहेगी, लेकिन तुम बैठे हो, दौड़ ही नहीं रहे, तो तुम्हारा बैठना कैसे अधूरा होगा? वह तो पूरा हो सकता है।

इसलिए अक्रिया पर इतना जोर है, शून्य पर इतना जोर है, ध्यान का इतना आग्रह है। क्योंकि वही एक संभावना है तुम्हारे भीतर, जिससे पूरा तुम्हारे भीतर उतर सकता है।
तुम शून्य हो जाओ। शून्य अधूरा होता ही नहीं। या तो होता है या नहीं होता। या तो तुम शून्य हो ही न पाओगे, तब शून्य है नहीं। या शून्य होगा, तो पूरा होगा। शून्य अधूरा कभी नहीं होता।
तुमने आधा वर्तुल सुना है, हाफ सर्किल? होता ही नहीं। वर्तुल का मतलब
ही पूरा होता है। आधा हुआ, तो वह सर्किल है ही नहीं। उसको वर्तुल कैसे कहोगे?
तुमने आधे जिंदे आदमी देखे होंगे, तुमने आधा मरा हुआ आदमी देखा है? तुम्हें लगेगा कि यह बात तो एक ही है। चाहे इसको आधा जिंदा कहो, चाहे आधा मरा!
नहीं, बात एक नहीं है। आधा जिंदा आदमी होता है। सच में सभी लोग आधे जिंदा हैं। लेकिन आधा मुरदा तुमने देखा है? आधा मुरदा कोई कैसे हो सकता है? आधा मुरदे का तो मतलब हुआ, अभी जिंदा है, अभी आशा है; अभी फिर उठ सकता है। आधे मुरदे को अस्पताल से डाक्टर तुम्हें ले जाने न देंगे। वे कहेंगे, रुको। अभी आक्सीजन लगाते हैं, अभी इंजेक्शन देते हैं; अभी तो यह आदमी आधा ही मरा है। आधा मरा है, मर नहीं गया है।
जब कोई मरता है, तो पूरा मरता है। आधे तुम जी सकते हो, क्योंकि जीना तुम्हारे हाथ में है। आधे तुम मर नहीं सकते, क्योंकि मरना परमात्मा के हाथ में है।
इसे थोड़ा समझो।
ध्यान एक मृत्यु है। वहां तुम मर जाते हो। तुम सब परमात्मा पर छोड़ देते हो। वहां तुम मिट जाते हो। एक खाली जगह रह जाती है हृदय में। वह खाली जगह सदा पूरी है। वहां कुछ भी नहीं है। उस खाली में ही उतरता है प्रीतम, उस खाली मंदिर में ही प्यारा आता है।
जब तक तुम हो, तब तक वह आ न सकेगा। तुम भरे हो जगह को। तुम नहीं होओगे,
वह आ जाएगा। तुम्हारा न होना परमात्मा के होने की विधि है।

चौथा प्रश्नः आपने बताया कि परमात्मा उनको ही स्वीकार करता है, जो अखंड उसके पास पहुंचते हैं। लेकिन कुब्जा, जिसके सब अंग विकृत हैं, वह भी कृष्ण की प्रिय गोपी है। वह किस गुण के कारण कृष्ण को पाने में सफल हुई?

उसका प्रेम पूरा है। और प्रेम भी जब होता है, तो पूरा होता है; आधा नहीं होता। इसलिए तो मैं कहता हूं, प्रेम प्रार्थना है। जीसस ने तो कहा, प्रेम परमात्मा है।
अप्रेमी शरीर देखता है, प्रेमी शरीर को देखता ही नहीं। अगर शरीर दिखता रहे, तो समझना कि कामवासना है, प्रेम नहीं। तो फिर कृष्ण ने भी देखा होता, यह कुब्जा, यह तो सब तरफ से विकृत है, अपंग है, आड़ी-तिरछी है। यह तो बहुत कुरूप लगी होती।
लेकिन कृष्ण तो शरीर को देख ही नहीं रहे हैं। शरीर तो ऊपर की खोल है। जैसे तुम्हारे वस्त्रों को देखकर कोई तुम्हें इनकार कर दे। वस्त्र तो तुम नहीं हो, शरीर भी तुम नहीं हो। जिसने तुम्हारे शरीर को देखकर इनकार किया है या शरीर को देखकर अंगीकार किया है, उसने तुम्हें तो अभी देखा ही नहीं। यही तो संसार में प्रेमियों का कष्ट है। प्रेमी एक-दूसरे से कहते ही रहते हैं कि तुम मुझे अभी समझे नहीं; निरंतर कहते हैं। वर्षों साथ रहते हैं और यही कहते हैं कि तुम मुझे समझे नहीं। क्या अड़चन है? समझने में ऐसी मुश्किल क्या है?
मुश्किल यही है कि प्रेमी चाहता है कि तुम मेरे शरीर को मत देखो, मुझे देखो। शरीर मैं नहीं हूं। प्रेयसी भी यही चाहती है कि तुम मुझे मत देखो, मेरे शरीर को मत देखो। यह मैं नहीं हूं। मुझसे जरा पार उठो, जो तुम्हें दिखाई पड़ रहा है, उससे जरा भीतर आओ। वही मेरा असली होना है। तुम बाहर मत अटको।

लेकिन वह देखती है, पति का प्रेम शरीर से है। पति देखता है, पत्नी का प्रेम भी शरीर से है, मोह भी शरीर से है, लगाव भी शरीर से है। भीतर को तो कोई देखता नहीं है, इसलिए तड़फ पैदा होती है। और जब तक तुमने भीतर को नहीं देखा, तब तक बिल्कुल स्वाभाविक पीड़ा है, क्योंकि तब तक प्रेम तो पैदा होता ही नहीं।
शरीर का संबंध है, काम। मन का संबंध है, मोह। आत्मा का संबंध है, प्रेम। और परमात्मा का संबंध है, प्रार्थना।
तो कुब्जा पूरी ही आई थी। तुम्हें दिखाई पड़ती है कि उसके सब अंग विकृत हैं, क्योंकि तुम्हारे पास और गहरे देखने की आंख नहीं है।
बड़ी मीठी कथा है, कि जनक ने एक बड़ी शास्त्रार्थ-सभा बुलाई थी। बड़े-बड़े पंडितों को निमंत्रण दिया था। वे सब विवाद के लिए आ गए थे। एक ब्राह्मण को निमंत्रण नहीं दिया गया था, क्योंकि वह सभा के योग्य न था।
हमारे पास शब्द है, सभ्य या सभ्यता। वह सभा से ही बना है। सभ्य का मतलब होता है, सभा में बैठने योग्य। और सभ्यता का मतलब होता है, जो सभा में बैठने योग्य है, वह सभ्यता को उपलब्ध हो गया।
एक ब्राह्मण भर को राजधानी में छोड़ दिया था, निमंत्रण न दिया था। वह
था अष्टावक्र। उसका शरीर आठ जगह से तिरछा था। अब आठ जगह से तिरछे आदमी को सभा में बुलाकर क्या और हंसी करवानी? वह चलता, तो लोग हंसने लगते। उसका सारा व्यक्तित्व एक व्यंग्य था। वह कार्टून ज्यादा रहा होगा, बजाय आदमी के। आठ जगह से तिरछा! एकाध जगह से तिरछा होना ही काफी उपद्रव कर देता है, आठ स्थानों से तिरछा था। कैसे चलता था, वह भी एक चमत्कार रहा होगा। उसकी चाल ऊंट जैसी रही होगी। उस पर अगर तुम सवारी करते, तो मुश्किल में पड़ जाते। जैसा ऊंट पर बैठना मुश्किल हो जाता है। बड़े अभ्यास की जरूरत है।
लेकिन उसे तो कुछ पता ही नहीं था कि यह सभा हो रही है और विवाद हो रहा है। उसे तो कुछ काम आ गया और पिता को कुछ बात कहनी थी। खोजा, तो पिता घर में न मिले। पूछा, तो पता चला, वे राज-दरबार गए हैं। तो वह पिता को मिलने राज-दरबार पहुंच गया। ऐन वक्त पर उसको छोड़ दिया था, वह ऐन वक्त पर हाजिर हो गया। संयोग की बात।
बड़ा विवाद चल रहा था, ब्रह्मज्ञान की चर्चा चल रही थी। सब रुक गई। लोग हंसने लगे। जैसे ही वह राज-दरबार में प्रविष्ट हुआ, जनक तक को हंसी आ गई। और लोग तो मुंह रोक लिए। उस अष्टावक्र ने चारों तरफ देखा और वह भी खिलखिलाकर हंसा। वह आदमी गजब का था। उस जैसे गजब के आदमी जमीन पर बहुत थोड़े हुए हैं, अंगुलियों पर गिने जा सकें।
उसके हंसने से सन्नाटा छा गया दरबार में। क्योंकि किसी ने यह न सोचा
था कि वह हंसेगा। जनक ने पूछा, हम क्यों हंसते हैं, वह तो साफ है। तुम क्यों हंस रहे हो? उसने कहा, मैं इसलिए हंसता हूं कि मैंने घर में सुना, मां ने कहा कि पंडितों की बड़ी सभा है, ब्राह्मणों की, ब्रह्मज्ञानियों की। यहां सब चमार इकट्ठे हैं। क्योंकि जिनको चमड़ी दिखाई पड़ती है, वे चमार हैं। इनमें से आत्मा किसी को दिखाई नहीं पड़ती। मेरा शरीर आठ जगह से झुका है, यह सच है। लेकिन इनमें एक भी ब्रह्मज्ञानी नहीं है। इन मूढ़ों के साथ क्यों समय खराब कर रहे हो! अगर इनमें एक भी ब्रह्मज्ञानी होता, तो वह मुझे देखता, मेरे शरीर को नहीं।
जनक चरणों पर गिर पड़े अष्टावक्र के। और बात सच थी। ज्ञानी कहीं शास्त्रार्थ के लिए सभाओं में इकट्ठे होते हैं? कि विवाद करने आते हैं? कि प्रतियोगिता जीतने आते हैं? ज्ञानी को अब जीतने को कुछ बचा? और ज्ञानी को कोई पुरस्कार शेष रहा जो जनक दे सकते हैं? जनक के पास क्या रखा है? जिनको दिखाई पड़ता है जनक के पास कुछ है, वे अज्ञानी हैं, तभी दिखाई पड़ता है। अष्टावक्र तो चला गया, लेकिन जनक के मन में एक आग की लपट छोड़ गया। अष्टावक्र का पीछा किया जनक ने। और जनक की जिज्ञासाओं से इस पृथ्वी पर एक श्रेष्ठतम ग्रंथ का जन्म हुआ, वह है अष्टावक्र-गीता। कृष्ण की गीता भी फीकी है। उसको मैं महागीता कहता हूं। तुम जैसे-जैसे तैयार हो जाओगे, वैसे- वैसे उस पर मैं तुमसे बात करूंगा।
कृष्ण की गीता फीकी है। अष्टावक्र की गीता का कोई मुकाबला ही नहीं। कारण है; क्योंकि कृष्ण तो एक अज्ञानी से बात कर रहे हैं, अर्जुन से। लेकिन

अष्टावक्र ने जो बात की है, वह जनक से है। वह अर्जुन से बहुत ऊंची अवस्था का व्यक्ति है। तभी तो पंडितों की सभा छोड़कर अष्टावक्र के चरणों का दास हो गया। बात समझ में आ गई, एक क्षण में समझ में आ गई। एक बिजली कौंधी और दृश्य दिखाई पड़ गया कि बात सच है। सब चमार इकट्ठे हैं। फिजूल इनके साथ समय गंवा रहा हूं। बोध जग गया।
अर्जुन ने तो वहां से पूछा है, जहां से राजसी व्यक्ति पूछ सकता है। और अर्जुन ने वहां से पूछा है, जहां से राजसी व्यक्ति तमस में गिरना चाहता है। इसे तुम ठीक से समझ लो।
अर्जुन कहता है, मैं संन्यस्त हो जाऊं। उसके संन्यास का मतलब इतना ही
है कि इस भाग-दौड़ की अब मेरी हिम्मत नहीं। वह यह कह रहा है, मैं आलस्य में गिर जाऊं। अर्जुन अगर संन्यास लेगा, तो सत्व में नहीं उठेगा। क्योंकि उसके संन्यास का कारण वीतरागता नहीं है। उसके संन्यास का कारण अपनों से मोह है। ये अपने ही प्रियजन खड़े हैं, जिनको काटना पड़ेगा। यह मोहग्रस्त आदमी है। यह अगर संन्यासी होगा, तो तमस में गिरेगा। इसका संन्यास तामसी का होगा।
जनक भी राजसी व्यक्ति थे। लेकिन अष्टावक्र की मौजूदगी ने और अष्टावक्र के इस उदघोष ने कि क्या चमारों के साथ समय खराब कर रहे हो; एक बिजली कौंधा दी। एक क्षण में जनक का राजसी व्यक्तित्व खो गया और सत्व का जन्म हुआ।
दोनों ही राजसी थे, क्योंकि दोनों ही क्षत्रिय थे। दोनों ही सम्राट थे, अर्जुन और जनक। पर फर्क कहां था? जनक नीचे की तरफ नहीं जा रहा है, ऊपर की तरफ जा रहा है। दोनों रजस में खड़े हैं, एक ही सीढ़ी पर खड़े हैं। लेकिन जनक का पैर ऊपर की सीढ़ी पर पड़ रहा है, सत्व की तरफ; और अर्जुन का पैर नीचे की सीढ़ी की तरफ पड़ रहा है, तमस की तरफ।
इसलिए कृष्ण गीता को उतना ऊंचा नहीं ले जा सके, जितना अष्टावक्र ले जा सका। अष्टावक्र की गीता का कोई मुकाबला ही नहीं। वह बेजोड़ है। भारत में अगर एक शास्त्र बचाना हो और सबको नष्ट करना हो, तो अष्टावक्र की गीता बचा लेनी चाहिए। बाकी सब जला दो, कुछ हर्जा न होगा। लेकिन अष्टावक्र की गीता खो जाए, तो भारत का मूलधन खो जाएगा।
ऐसी ही स्त्री है कुब्जा, अष्टावक्र जैसी। वैसी ही आड़ी-तिरछी। कृष्ण
को तो दिखाई पड़ेगा, कृष्ण कोई चमार तो नहीं हैं। कृष्ण तो ब्रह्मज्ञानी हैं, ब्रह्म हैं। उनको तो आड़ा-तिरछापन कुछ अर्थ नहीं रखता। और शरीर आड़ा हो, कि तिरछा हो, कि सुडौल हो, क्या फर्क पड़ता है! भीतर कौन है? भीतर अखंड प्रेम जल रहा है।
परमात्मा के पास अखंड ही होकर पहुंच सकते हो। क्योंकि वह अखंड है। उससे मिलने का उपाय अखंडता है। खंड-खंड तुम रहोगे, तो अखंड से कैसे मिलोगे? समान ही समान से मिल सकता है।

पांचवां प्रश्नः जम्हाई, यानिंग का शरीर के लिए क्या उपयोग है? क्या
वह तमस की शरीरगत प्रक्रिया ही है? या हमेशा मन के ऊबने का सूचक है?

समझना पड़े।
जम्हाई, यानिंग पैदा होती है, उसकी एक विशेष यांत्रिक व्यवस्था है शरीर में, उसे पहले समझ लें। वह व्यवस्था यह है कि जब भी तुम सोने को तैयार होते हो, तुम्हारा शरीर सोने को तैयार होता है; जब भी नींद आने लगती है, शरीर थक गया है काम से, जागने से, और नींद आसन्न है, आने के करीब है, तो तुम्हारी श्वास की प्रक्रिया में परिवर्तन होता है।
साधारणतः जब तुम जागे हो, तब तुम ज्यादा आक्सीजन लेते हो; उसकी जरूरत
है जागने के लिए। तुम दौड़ रहे हो अगर, बहुत काम में लगे हो, तो बहुत जोर से श्वास लेनी पड़ती है। क्योंकि शरीर बहुत-सी आक्सीजन जलाता है। तो और आक्सीजन की जरूरत है। तो दौड़ने में तुम्हें जोर से श्वास लेनी पड़ती है। खाली बैठे हो, तो उतनी श्वास नहीं लेनी पड़ती, क्योंकि शरीर कोई जलाता नहीं। श्वास का कोई उपयोग ज्यादा नहीं है।

जब सोने जा रहे हो, तब तो आक्सीजन बहुत कम चाहिए शरीर में। इसलिए श्वास धीमी हो जाती है और शरीर के भीतर कार्बन डाय आक्साइड इकट्ठा होने लगता है। जितनी मात्रा कार्बन डाय आक्साइड की भीतर इकट्ठी होगी, उतनी ही गहरी नींद आएगी। जितनी कम मात्रा इकट्ठी होगी, उतनी ही उथली नींद आएगी। और अगर मात्रा इकट्ठी ही न हो, तो नींद आना मुश्किल हो जाएगा।
इसीलिए तो रात में सारी प्रकृति सोती है, दिन में नहीं। क्योंकि जैसे
ही सूरज ढल जाता है, हवाओं में कार्बन डाय आक्साइड की मात्रा बहुत बढ़ जाती है, वृक्ष सो जाते हैं, पशु-पक्षी सो जाते हैं, आदमी सोने लगता है। जैसे ही सूरज उगता है, सूरज के साथ ही आक्सीजन की मात्रा बढ़ती है। सारे वृक्ष, पशु- पक्षी उठने लगते हैं। नींद यानी कार्बन डाय आक्साइड की एक खास मात्रा जरूरी है। और जागना यानी आक्सीजन की एक खास मात्रा जरूरी है।
इसीलिए कभी-कभी तुमने खबर अखबारों में देखी होगी कि एक ही कमरे में सर्दी के दिनों में किसी पहाड़ी इलाके में बहुत-से लोग सो गए और मर गए। क्योंकि बहुत-से लोगों के सोने से इतनी कार्बन डाय आक्साइड इकट्ठी हो गई, और द्वार-दरवाजे बंद थे, कि नींद तो नींद, मौत आ गई। या कमरे में अगर तुम सब तरफ से दरवाजा बंद कर लो और आग जलाकर सो जाओ, तो भी मौत हो सकती है। क्योंकि आग आक्सीजन को जला डालती है और कार्बन डाय आक्साइड को पैदा कर देती है। अगर कार्बन डाय आक्साइड की मात्रा ज्यादा हो जाए, तो उसमें नींद इतनी गहरी लग जाएगी कि फिर खुलेगी ही नहीं। अगर आक्सीजन की मात्रा बहुत ज्यादा हो जाए, तो तुम सो न सकोगे।
इसलिए रजस गुण का व्यक्ति सो नहीं पाता। क्योंकि वह इतना दौड़ता है जीवन में, इतना भागा, इतनी आपा-धापी करता है कि उसकी श्वास की प्रक्रिया आक्सीजन के साथ एक निश्चित अनुपात बना लेती है। वह जब सोने भी जाता है, तब भी श्वास की प्रक्रिया वही बनी रहती है, उसका वह अभ्यासी हो गया, वह शिथिल नहीं हो पाता।
बौद्ध भिक्षु विपश्यना नाम का ध्यान करते हैं। उस ध्यान में श्वास पर ध्यान रखना पड़ता है चौबीस घंटे, जब तक होश रहे। बौद्ध भिक्षुओं की नींद बहुत कम हो जाती है।
एक भिक्षु को सीलोन से मेरे पास लाया गया; वह तीन साल से सो ही न सका था। वह बिल्कुल पागल हुआ जा रहा था। वह पागल हो ही चुका था। चिकित्सक हार गए। लेकिन किसी चिकित्सक ने यह तो पूछा ही नहीं कि तू भीतर क्या करता है? उन्होंने ट्रैंक्वेलाइजर दिए और बड़े डोज दिए, सब किया, लेकिन उसको नींद न आए।
उसको मेरे पास लाया गया। मैंने पूछा कि तू विपश्यना तो नहीं कर रहा है? उसने कहा, विपश्यना तो कर ही रहा हूं। क्योंकि बौद्ध भिक्षु हूं। विपश्यना ऐसा ध्यान है कि जब तुम श्वास पर ध्यान रखते हो कि श्वास भीतर गई, तुम भी भीतर जाते हो। श्वास बाहर गई, तुम उसके साथ बाहर जाते हो। चेतना श्वास के साथ ही डोलती है। इस चेतना के जोड़ के कारण श्वास बहुत गहरी हो जाती है। और इसका अभ्यास अगर गहरा हो जाए, तो नींद खो जाएगी। इतनी भी खो जा सकती है कि बिल्कुल ही नष्ट हो जाए।
वह आदमी बिल्कुल पागल अवस्था में था। मैंने कहा, तीन महीने के लिए तू विपश्यना छोड़ दे। फिर धीरे-धीरे शुरू करेंगे, लेकिन अभी तो छोड़ ही दे। तीन महीने विपश्यना छोड़ देने से कोई चौथे-पांचवें सप्ताह नींद का आगमन शुरू हो गया। तीन महीने पर वह पूरी तरह सो रहा था।
तो जब तुम नींद के करीब पहुंच रहे हो, थक गए दिनभर की दौड़ से, तो शरीर इकट्ठी करता है कार्बन डाय आक्साइड। तुम्हें बिस्तर पर चले जाना चाहिए।
अगर तुम नहीं जाते किन्हीं कारणों से, जैसा कि मनुष्य नहीं जाता... ।
कोई जानवर यानिंग नहीं करता, क्योंकि जब उसे नींद आती है, तब वह सो जाता है। सिर्फ आदमी जम्हाई लेता है या आदमी के द्वारा पाले गए जानवर कभी- कभी लेते हैं। लेकिन जंगल में कोई जानवर नहीं लेता, कोई सवाल ही नहीं है। नींद आने को है, लेकिन तुम बैठे फिल्म देख रहे हो। शरीर तैयार है नींद
के लिए, क्योंकि शरीर को फिल्म से कोई लेना-देना नहीं है। कार्बन डाय आक्साइड इकट्ठा हो गया और तुम जबरदस्ती अपने को जगा रहे हो। तो कार्बन डाय आक्साइड झटके के साथ बाहर निकलता है। वही जम्हाई है। इसलिए तुम पूरा मुंह

बा देते हो। और उस पूरे मुंह से पूरी कार्बन डाय आक्साइड बाहर निकल जाती है और आक्सीजन भीतर चली जाती है।
वह शरीर का इमरजेंसी, संकटकालीन कृत्य है। क्योंकि इतनी कार्बन डाय आक्साइड है और तुम जगने की कोशिश कर रहे हो।
तुम धर्मसभा में बैठे हो, या तुम भजन कर रहे हो, या तुम ध्यान कर रहे हो, लेकिन शरीर सोना चाहता है। शरीर के खिलाफ जब तुम कुछ करोगे, तो शरीर तो तैयारी कर रहा है सोने की और तुम सोने नहीं जा रहे हो, तो शरीर क्या करे? उसने कार्बन डाय आक्साइड इकट्ठी कर ली। वह उसे फेंकेगा बाहर। कार्बन डाय आक्साइड को फेंकने से यानिंग पैदा होती है, जम्हाई पैदा होती है।
ऐसी जम्हाई बिना नींद के भी कभी-कभी पैदा होती है, जब तुम ऊबे होते हो। लेकिन प्रक्रिया वही है। जैसे कि तुम किसी को सुन रहे हो और ऊब गए हो सुनते-सुनते। तुम धर्मसभा में बैठे हो, कोई समझाए जा रहा है। और तुम सुनना भी नहीं चाहते हो और छोड़ने की भी हिम्मत नहीं कर सकते, क्योंकि लोग क्या कहेंगे। हट भी नहीं सकते, जा भी नहीं सकते, तो तुम क्या करोगे?
ऐसी हालत में, जब तुम ऐसी कोई चीज सुन रहे हो, जो तुम नहीं सुनना चाहते,
या तुम थक गए हो, या तुम्हारी समझ के बाहर है, तुम्हारी बुद्धि से ऊपर है, वह तुम्हारी पकड़ में नहीं आ रही--जब भी ऐसा होता है, तब भी तुम्हारी श्वास धीमी हो जाती है। उसके पीछे कारण है।
किसी छोटे बच्चे को गौर से देखो। अगर तुम बच्चे को कोई चीज समझाना चाहते हो और वह नहीं समझना चाहता, तो वह दो काम करेगा। वह एक तो अपनी पीठ पीछे की तरफ अकड़ा लेगा और श्वास धीमी कर लेगा, अगर वह नहीं मानना चाहता तो। तुम उसकी श्वास और उसके शरीर के खड़े होने का ढंग देखकर समझ सकते हो, वह मानने को राजी नहीं है। हो सकता है, वह तुम्हारे डर से सुन रहा है, लेकिन मानने को राजी नहीं है।
जब भी तुम किसी चीज को भीतर नहीं जाने देना चाहते, तब तुम श्वास को धीमा कर देते हो; क्योंकि श्वास से चीजें भीतर जाती हैं। जब तुम किसी चीज को भीतर ले जाना चाहते हो, तब तुम गहरी श्वास लेते हो। क्योंकि श्वास से चीजें भीतर जाती हैं। जब तुम किसी चीज को भीतर ले जाना चाहते हो, तब तुम्हारी रीढ़ सीधी हो जाती है। जब तुम किसी चीज को भीतर नहीं ले जाना चाहते, तब तुम्हारी रीढ़ पीछे की तरफ झुक जाती है। जब तुम किसी चीज को बहुत ही आग्रहपूर्वक भीतर ले जाना चाहते हो, तुम आगे झुक जाते हो।
श्वास की प्रक्रियाएं तुम्हारे मनोभाव पर निर्भर होती हैं। अगर तुम अपने प्रेमी के पास बैठे हो, तो तुम गहरी श्वासें लोगे। अगर तुम दुश्मन के पास बैठे हो, तो तुम श्वास सधी हुई लोगे, धीमी लोगे। क्योंकि दुश्मन तुम्हारे चारों तरफ जो तरंगें फेंक रहा है, वह तुम्हारी श्वास से भीतर जा सकती हैं।
जब तुम बगीचे में आते हो, तुम गहरी श्वास लेते हो। जब तुम किसी दुर्गंध से भरी गली में से निकलते हो, तब तुम श्वास रोक लेते हो; तुम नाक पर हाथ रख लेते हो। क्योंकि श्वास के साथ दुर्गंध भीतर जाती है, सुगंध भीतर जाती है। श्वास के साथ तमस भी भीतर जाता है, सत्व भी भीतर जाता है। श्वास के साथ साधु भी भीतर जाता है, असाधु भी भीतर जाता है। श्वास सेतु है तुम्हारे भीतर लाने ले जाने का।
इसलिए जब तुम किसी दुश्मन के पास खड़े हो, तुम्हारी श्वास अकड़ जाती है।
जब तुम कोई ऐसी बात सुन रहे हो, जो तुम्हारी समझ में नहीं आती या तुम सुनना नहीं चाहते या जबरदस्ती आ गए हो, तब तुम्हारी श्वास धीमी हो जाती है और कार्बन डाय आक्साइड इकट्ठा होने लगता है। जब बहुत कार्बन डाय आक्साइड इकट्ठा हो जाता है, तब शरीर को उसे बाहर फेंकना पड़ता है। क्योंकि उसे शरीर अगर न उलीचे, तो तुम यहीं सो जाओगे। वह घबड़ाहट है। तो शरीर उसे उलीच देता है।
इसलिए सभाओं में या किसी उबाने वाले आदमी की बातचीत सुन-सुनकर तुम जम्हाई लेने लगते हो। या पत्नी कुछ सुना रही है, अपना राग रो रही है, तो पति जम्हाई लेता है। वह यह कह रहा है, कृपा करो। उसका पूरा शरीर कहता है कि नहीं सुनना है। लेकिन वह यह कह भी नहीं सकता। लेकिन शरीर से प्रकट कर रहा

है। या कोई मित्र आ गया; बकवासी है, और तुम्हारा सिर खा रहा है। शरीर जम्हाई लेने लगता है। शरीर उसे खबर दे रहा है कि अब जाओ भी।
मैंने सुना है, अल्बर्ट आइंस्टीन एक मित्र के घर भोजन के लिए गया था।
वह भुलक्कड़ था, जैसा कि बहुत बड़े विचारक अक्सर हो जाते हैं। जितना बड़ा विचारक हो, उतना भुलक्कड़ हो जाता है। और जितना बड़ा ध्यानी हो, उतनी ही उसकी स्मृति सध जाती है।
विचारक भुलक्कड़ हो जाता है; क्योंकि इतना कूड़ा-कर्कट सम्हालना पड़ता
है उसको। ध्यानी की स्मृति सम्यक हो जाती है, वह भूलता ही नहीं। वह याद नहीं रखता किसी को, फिर भी भूलता नहीं। और विचारक याद रखने की कोशिश करता है, तो भी भूल-भूल जाता है; क्योंकि इतनी चीजें सम्हालता है। ध्यानी कुछ सम्हालता ही नहीं; वह खाली ही रहता है। सब अपने से सम्हला रहता है। आइंस्टीन मित्र के घर बैठकर खाना खाया, पीना चला, गपशप हुई। आइंस्टीन बार-बार अपनी घड़ी देखता है। और परेशान है और जम्हाई ले रहा है। और मित्र भी अपनी घड़ी बार-बार देखता है और जम्हाई ले रहा है। बारह बज गए रात के। अब मित्र घबड़ा भी गया कि अब यह जाए, तो हम सोएं। पत्नी भी बेचैन है; बार-बार बाहर-भीतर जाती है कि अब क्या करना। और आइंस्टीन जैसे बड़े आदमी को यह कहा भी नहीं जा सकता कि अब आप जाइए। यह तो सौभाग्य है कि वह आया, अब उसे जाने को कैसे कहें!
आखिर आइंस्टीन ने ही मित्र से कहा कि जम्हाई देखकर ऐसा लगता है, आपको नींद आ रही है। अब जाइए भी, सोइए भी। तो उसने कहा, अब जाएं कैसे! आप जाएं, सोएं, तो मैं सोऊं। मेहमान जाए, तो मेजबान... ।
आइंस्टीन घबड़ाकर खड़ा हो गया। उसने कहा, हद हो गई, मैं समझ रहा था, अपने
घर में हूं और तुम कब जाओ कि मैं सो जाऊं। और मैं बड़ा सोच रहा हूं कि घड़ी देखता हूं, फिर भी तुम्हारी समझ में नहीं आता! जम्हाई लेता हूं, फिर भी तुम्हारी समझ में नहीं आता! और इसे देखकर और भी चकित हूं कि तुम भी घड़ी देखते हो और तुम भी जम्हाई लेते हो, फिर भी उठते क्यों नहीं? क्या कहते नहीं बनता कि अब जाऊं!
जम्हाई भाषा है, वह यह कह रही है कि या तो यह बात तुम्हारे लिए नहीं है, बहुत कठिन है। या बहुत उबाने वाली है, रसपूर्ण नहीं है। या तुम इस बात को जानते ही हो पहले से, फिर दुबारा सुन रहे हो, इसमें कुछ सार नहीं है। जम्हाई भाषा है।
लेकिन कारण एक ही है; चाहे नींद की वजह से आए, चाहे ऊब की वजह से आए, दोनों ही हालत में फेफड़ों में कार्बन डाय आक्साइड की मात्रा जरूरत से ज्यादा हो जाती है, जो घातक है। अगर सो जाओ, तब तो ठीक है। अगर न सोओ, तो शरीर को उसे बाहर फेंक देना पड़ता है। इसलिए जम्हाई आती है।
जम्हाई का कोई संबंध तमस से नहीं है। हालांकि तामसी आदमी को ज्यादा आएगी। राजसी आदमी को कम आएगी। सात्विक को शून्यवत हो जाएगी। बहुत मुश्किल से कभी आएगी। जब कि कोई असम्यक स्थिति हो जाए; क्योंकि कभी सात्विक को भी जागना पड़ सकता है। कितने ही सात्विक तुम हो, घर में आग लग गई, तो भी तुम्हें जागना पड़ेगा। तुम सात्विक हो और पत्नी मर रही है, तो उसके बिस्तर के पास बैठना पड़ेगा। ऐसी स्थितियों में ही। अन्यथा सात्विक को साधारणतया जम्हाई नहीं आती।
तमस में बहुत ज्यादा आएगी, क्योंकि वह आदमी चौबीस घंटे सोयी हालत में
ही है। उसको जागना कष्टपूर्ण है। राजस को बहुत बार आएगी, क्योंकि वह सोने को तैयार नहीं है; बहुत काम करने हैं; नींद का दुश्मन है; जितना कम सो सके, उतना अच्छा है। क्योंकि उतने काम को, उतने समय को बचाना हो जाएगा, उतने समय में कुछ महत्वाकांक्षा पूरी कर लेगा।
सात्विक की न तो कोई महत्वाकांक्षा है, जिसके पीछे दौड़ना है। इसलिए
जब नींद आती है, वह सो जाता है; जब भूख लगती है, वह खाना खा लेता है।
रिंझाई से किसी ने पूछा कि क्या है तुम्हारी साधना? उसने कहा, जब भूख लगती है, तब खाना खा लेते; जब नींद आती, तब सो जाते। बस यही।
सत्व को उपलब्ध व्यक्ति ऐसा ही जीता है। दुर्घटना स्वरूप कभी जम्हाई
आ सकती है, अन्यथा कोई कारण नहीं है।

आखिरी प्रश्नः गीता में साधकों के लिए सात्विक भोजन पर बल अवश्य दिया गया है, लेकिन उसमें कहीं मांसाहार का स्पष्ट निषेध नहीं है। और आपने मांसाहार को सुपच बताया और यही डाक्टरों का मत भी है। फिर मांसाहार से क्या बाधा आती है? धर्म-साधना के लिए आपने निरामिष भोजन की उपादेयता पर बहुत बल दिया। लेकिन पुस्तकों से पता चलता है कि प्रायः ही सूफी, झेन और तंत्र मार्ग से सिद्ध हुए संतों का भोजन निरामिष नहीं रहा। और अपने ही देश में परमहंस रामकृष्ण सदा आमिष भोजन लेते रहे। इस विरोध का क्या कारण है?

पहली बात, मांसाहार में अपने आप में कोई भी बुराई नहीं है। ध्यान रखना, कह रहा हूं, अपने आप में। मेरा मतलब है, अगर वैज्ञानिक सिंथेटिक मांस बना सकें--जो कि जल्दी ही बन सकेगा--कृत्रिम मांस बना सकें, तो वह शाकाहार से भी ज्यादा शाकाहारी होगा। क्योंकि जब तुम फल को वृक्ष से तोड़ते हो, तब भी चोट पहुंचती है। तुम सब्जी काटते हो, तब भी चोट पहुंचती है। कम पहुंचती है।
वृक्षों, सब्जियों के पास उतना ज्यादा विकसित स्नायु-संस्थान नहीं है, जितना पशुओं के पास है। पशुओं के पास उतना विकसित संस्थान नहीं है, जितना मनुष्यों के पास है। इसलिए जो व्यक्ति नर-मांस का आहार करे, उसको तो दुनिया में कोई भी धार्मिक व्यक्ति स्वीकार करने को राजी न होगा, कि यह आदमी का मांस खा रहा है। क्योंकि मनुष्य को मारना बहुत पीड़ादायी है। जितनी पीड़ा मनुष्य अनुभव करता है मृत्यु में, उतनी पशु नहीं अनुभव करते। क्योंकि मनुष्य के पास सोच-विचार है, मृत्यु का बोध है; मर रहा हूं, इसकी समझ है; मारा जा रहा हूं, इसकी समझ है। और चेतना बहुत प्रगाढ़ है। इसलिए मनुष्य को तो कोई धर्म राजी नहीं होगा।
ऐसा लगता है कि हिंदू अतीत में यज्ञ में मनुष्य की बलि चढ़ाते रहे; नरमेध यज्ञ होते रहे। लेकिन धीरे-धीरे उन यज्ञों को करने वालों को भी पता चला कि यह तो अतिशय है। और इस तरह का धर्म तो ज्यादा दिन तक धर्म नहीं समझा जा सकता। इसलिए उन्होंने भी व्याख्या बदल दी। तो उन्होंने भी कहा कि नरमेध सिर्फ नाम के लिए है। मनुष्य का पुतला बना लिया, उसका वध कर दिया। नरमेध के लिए तो कोई राजी नहीं है। क्यों? क्योंकि मनुष्य से स्वादिष्ट मांस तो और कहीं मिल नहीं सकता। अगर स्वाद ही सवाल है, तो छोटे बच्चों का जैसा मांस स्वादिष्ट होता है, वैसा किसी का भी नहीं होता। और जितना सुपाच्य होता है, वैसा दूसरा मांस नहीं हो सकता। क्योंकि मनुष्य से तालमेल है। तुम्हारे जैसा ही है; जल्दी पच जाता है; समान-धर्मा है।
आदमी वह भी करता है; बच्चे चुराए जाते हैं; होटलों में काटे भी जाते हैं। सारी दुनिया में पता है कि बच्चों का मांस बड़ी होटलों में बिकता है; और लोग बड़े स्वाद से उसका भोजन लेते हैं।
लेकिन इसके लिए तो कोई भी राजी न होगा। क्यों राजी नहीं होते? क्योंकि मनुष्य बहुत ज्यादा संवेदनशील है। उसको मारने में सवाल है। मारना भयंकर हिंसा है। और उस हिंसा को करने को जो राजी है, वह व्यक्ति बहुत तामसी है। भोजन के लिए दूसरे का जीवन छीनने को जो राजी है, उसके तमस का क्या कहना! नहीं, वह तो कोई नहीं करता। या कभी लोग करते थे, तो बंद हो चुका है। पशुओं का मांस चलता है।
लेकिन वे भी काफी संवेदनशील हैं। इसलिए जिनकी धार्मिक संवेदना और भी गहरी है, बुद्ध, महावीर, उन्होंने सिर्फ शाकाहार के लिए कहा। उन्होंने कहा, पशुओं को भी छोड़ दो। क्योंकि तुम मारते हो, काटते हो। भला तुम न काटो, कोई और तुम्हारे लिए काटे और मारे; लेकिन किया तो तुम्हारे लिए जा रहा है। तुम जानते तो हो कि भोजन के साधारण से स्वाद के लिए तुम जीवन की इतनी हिंसा कर रहे हो, तो तुम्हारे भीतर तमस बहुत गहरा है, तुम अंधे हो। तुम्हारी संवेदना समुचित नहीं है। तुम मनुष्य होने के योग्य नहीं हो।
इसलिए महावीर ने तो बिल्कुल वर्जित किया। बुद्ध ने थोड़ी-सी शर्त रखी।
वह शर्त भी बहुत कीमती है। बुद्ध ने कहा कि मरे हुए जानवर का मांस खा लेने में कोई हर्ज नहीं है।

बात तर्कयुक्त है। क्योंकि अगर मारने के कारण ही आदमी तामसी हो जाता है, तो मरे-मराए जानवर का मांस खाने में तो कोई हर्ज नहीं है। इसलिए बौद्ध मरे हुए जानवर का मांस खाने में मांसाहार नहीं मानते। गाय मर ही गई अपने से, हमने मारी ही नहीं, तब इसके मांस को खा लेने में क्या हर्ज है!
लेकिन कृष्ण इससे राजी नहीं हैं। यह मांसाहार बासा है। और बासा भोजन तामसी का है। और मरे हुए जानवर से ज्यादा बासी चीज तो तुम पा ही नहीं सकते दुनिया में। और बासी चीज क्या हो सकती है? जैसे ही जानवर मरता है, उसके सारे मांस और खून का गुणधर्म बदल जाता है। खून तो विलीन ही हो जाता है तत्क्षण। और मांस में सड़ने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। क्योंकि मांस तभी तक जीवित था, जब तक प्राण थे। प्राण के हटते ही मांस सड़ने लगा; उसमें से दुर्गंध अभी आएगी जल्दी ही। तो वह तो बिल्कुल ही बासा भोजन है।
इसलिए सिर्फ शूद्रों ने उसे स्वीकार कर लिया, भारत में चमार ही खाते हैं मरे हुए जानवर का। इसी वजह से जब डाक्टर अंबेदकर ने शूद्रों को आह्वान दिया बौद्ध होने का, तो उन्होंने इसको भी एक दलील बना लिया, कि चमार बौद्ध होने ही चाहिए। क्योंकि बुद्ध भगवान ने आज्ञा दी है मरे हुए जानवर का मांस खाने की और सिर्फ चमार खाते हैं। इससे सिद्ध होता है कि हो न हो, चमार प्राचीन समय में बौद्ध रहे होंगे। वे भूल गए हैं अपना बौद्ध होना।
तर्क बहुत दूर का मालूम पड़ता है। लेकिन सार उसमें हो सकता है। इसकी संभावना हो सकती है कि मांसाहार मरे हुए जानवर का करने के कारण हिंदुओं ने उस पूरे वर्ग को, जिसने ऐसा मांसाहार किया, शूद्र मान लिया हो। क्योंकि शूद्र की और तमस की कृष्ण की व्याख्या यही है।
बुद्ध ने एक कारण से आज्ञा दी, दूसरे कारण का उन्हें ख्याल नहीं है।
एक कारण से आज्ञा दी कि मरे हुए को मारा नहीं जाता, इसलिए कोई हिंसा नहीं है। लेकिन मरे हुए जानवर का मांस अति बासा हो गया, मुरदा हो गया, उसको खाने से गहन तमस पैदा होगा। उस तरफ बुद्ध की नजर चूक गई।
इसलिए मैं कहता हूं कि मांसाहार खुद में तो कोई पाप नहीं है, न बुरा है, न तमस है। सुपाच्य है; क्योंकि पचा-पचाया भोजन है। इसलिए तो सिंह एक बार भोजन करता है और फिर चौबीस घंटे की चिंता छोड़ देता है; उतना काफी है। काफी कनसनट्रेटेड भोजन है। थोड़ा-सा कर लिया, बहुत है।
किसी दिन अगर वैज्ञानिक सिंथेटिक मांस बना लेंगे--जो कि उन्हें बना लेना चाहिए जल्दी से जल्दी, जैसे शाकाहारी अंडा उपलब्ध है, ऐसे शाकाहारी मांस जल्दी ही उपलब्ध हो जाएगा--तब मांसाहार, मैं तुमसे कहता हूं, शाकाहार से भी ज्यादा शाकाहारी होगा। क्योंकि न तो उसमें हिंसा होगी, न वह बासा होगा। इतनी भी हिंसा न होगी, जितनी फल को तोड़ने से होती है।
महावीर ने तो अपने लिए यही नियम बना रखा था कि जो फल पककर गिर जाए, वही खाना है। या जो गेहूं पककर गिर जाए बाल से, वही खाना है।
एक बहुत बड़ा प्राचीन ऋषि हुआ, कणाद। उसका नाम ही कणाद इसलिए पड़ गया कि
वह खेतों में जो कण अपने आप गिर जाएं पककर, और वह भी जब खेत की फसल काट ली जाए और किसान सब चीजें हटा ले, तो जो कण पीछे पड़े रह जाएं थोड़े-से गेहूं के, उन्हीं को बीनकर खाता था।
परम अहिंसक रहा होगा कणाद। पका हुआ गेहूं, जो अपने से गिर गया। और वह
भी किसान से मांगकर नहीं; क्योंकि किसान पर भी क्यों बोझ बनना! जब पक्षी दाने बीनकर जी लेते हैं, तो आदमी भी ऐसे ही जी ले। तो कणाद का असली नाम क्या था, यही लोग भूल गए हैं। उसका नाम ही कणाद हो गया, कण बीनकर जीने वाला।
अगर कृत्रिम मांस बने, तो वह शाकाहार से भी शुद्ध शाकाहार होगा। लेकिन अभी जैसी स्थिति है, ये दो ही उपाय हैं। या तो जिंदा जानवर को मारकर खाया जाए; उस हालत में कृष्ण के साथ वह आहार राजसी होगा। कम से कम ताजा होगा। बुद्ध और महावीर के अनुसार हिंसात्मक होगा और तमस में ले जाएगा। और दोनों ठीक हैं। आधे-आधे ठीक हैं। दोनों एक-एक पहलू से ठीक हैं।
अगर मरे हुए जानवर को खाया जाए, तो कृष्ण के हिसाब से तामसी होगा, क्योंकि बासा और मुरदा हो गया। तंद्रा बढ़ाएगा, निद्रा लाएगा, मूर्च्छा बढ़ाएगा, शूद्रता पैदा करेगा जीवन में। ब्राह्मणत्व का सत्व पैदा नहीं हो सकेगा। लेकिन बुद्ध के हिसाब से, कम से कम हिंसा नहीं होगी। तुम किसी को

मारोगे नहीं, इतनी सदवृत्ति रहेगी। इतना तो कम से कम सत की तरफ आगमन होगा, सत्व की तरफ ऊर्ध्वगमन होगा।
मेरे हिसाब से, मांसाहार चाहे मुरदे का हो, चाहे मारे गए जानवर का हो, तमस में गिराएगा नब्बे प्रतिशत मौकों पर। दस प्रतिशत या नौ प्रतिशत मौकों पर रजस में दौड़ाएगा। एक ही प्रतिशत मौका है कि उससे कोई सत्व में उठ सके। इसे थोड़ा समझना होगा। यह साफ है कि रामकृष्ण मांसाहारी थे; विवेकानंद भी। और फिर भी रामकृष्ण परम ज्ञान को उपलब्ध हुए।
जैनों के लिए, या सभी सांप्रदायिक लोगों के लिए तो बड़ी सुविधा है इन चीजों का उत्तर देने में। असुविधा मुझे है। जैन कह देंगे कि यह हो ही नहीं सकता कि वे ज्ञान को उपलब्ध हुए, बात खत्म हो गई। रामकृष्ण ज्ञान को उपलब्ध हो ही नहीं सकते। क्योंकि मछली खा रहे हैं; मांस खा रहे हैं; और ज्ञान को उपलब्ध हो जाएं? यह बात ही खत्म हो गई। इसलिए जैनों के लिए कोई उत्तर देने का सवाल नहीं है। इसलिए जहां-जहां मांसाहार है, वहां-वहां ज्ञान की संभावना समाप्त हो गई।
हिंदुओं को भी कोई कष्ट नहीं है। क्योंकि वे कहते हैं, आत्मा मरती थोड़े ही है, काटने से भी थोड़े ही मरती है। तुमने मछली को मार दिया, सिर्फ आत्मा को देह से मुक्त कर दिया। दूसरा शरीर धारण कर लेगी। इसलिए कोई अड़चन नहीं है। रामकृष्ण ज्ञान को उपलब्ध हो सकते हैं।
अड़चन मुझे है; क्योंकि मैं मानता हूं कि रामकृष्ण ज्ञान को उपलब्ध हुए और वे मांसाहारी हैं। होना नहीं चाहिए, वह हुआ। साधारण नियम के हिसाब से जो नहीं होना था, वह हुआ है। वे मांसाहार करते हुए परम ज्ञान को उपलब्ध हुए। इसलिए अड़चन मेरी है, तुम्हें समझ में नहीं आएगी।
मेरी अड़चनें बहुत गहरी हैं। सीधे उत्तर मेरे पास नहीं हैं, क्योंकि उत्तर मैं किसी सिद्धांत को देखकर नहीं चलता। मैं स्थिति को देखता हूं। देखता हूं, रामकृष्ण ज्ञान को उपलब्ध हुए और यह होना तो नहीं चाहिए; लेकिन हुआ है। इसलिए जाल थोड़ा जटिल है।
तब मुझे मेरी जो दृष्टि है, वह यह है कि रामकृष्ण अत्यंत शुद्ध पुरुष हैं। इसलिए इतनी थोड़ी-सी अशुद्धि उन्हें बाधा न डाल पाई। यह तुम्हारे ख्याल में न आ सकेगा। अत्यंत शुद्ध पुरुष हैं। अगर तुम मुझे आज्ञा दो, तो मैं कहना चाहूंगा, महावीर से ज्यादा शुद्ध पुरुष हैं। महावीर अगर मांसाहार करते या मछली खाते, परम ज्ञान को उपलब्ध नहीं हो सकते थे। लेकिन रामकृष्ण हुए हैं।
इसका अर्थ केवल इतना ही है कि यह व्यक्ति इतना शुद्ध है कि इतनी-सी अशुद्धि इस पर कुछ बाधा नहीं डाल पाई। यह उस अशुद्धि के बावजूद भी पार हो गया।
ऐसा ही समझो कि पहाड़ पर तुम चढ़ते हो। तो पहाड़ पर चढ़ने का नियम तो यही
है कि जितना कम बोझ हो, उतना ठीक। और अगर तुम मनों बोझ सिर पर लेकर चढ़ रहे हो, तो चढ़ना मुश्किल हो जाएगा। शायद तुम चढ़ने का ख्याल ही छोड़ दोगे, या बीच के किसी पड़ाव पर रुक जाओगे।
लेकिन फिर एक बहुत शक्तिशाली मनुष्य, कोई हरक्युलिस भारी वजन लेकर पहाड़ पर चढ़ रहा है और चढ़ जाता है। यह नियम नहीं है यह आदमी। यह हरक्युलिस नियम नहीं है। यह इतना ही बता रहा है कि यह इतना शक्तिशाली पुरुष है कि उतना-सा वजन इसे चढ़ने में बाधा नहीं डालता। यह उस वजन के साथ चढ़ जाता है। तुम कमजोर हो; तुम उस वजन के साथ न चढ़ सकोगे।
रामकृष्ण अपवाद हैं, नियम मत बनाना। निन्यानबे आदमियों को मांसाहार छोड़कर ही जाना पड़ेगा। महावीर, बुद्ध को जाना पड़ा है मांसाहार छोड़कर, तो तुम अपनी तो फिक्र ही छोड़ देना। तुम अपना तो हिसाब ही मत लगाना। अपनी तो गणना ही मत करना।
तुम महावीर और बुद्ध से ज्यादा पवित्र आदमियों की कल्पना भी कैसे कर सकते हो! उनको भी छोड़ देना पड़ा। उनको भी लगा कि यह बोझ है। और यह बोझ अटकाएगा, यात्रा पूरी न होने देगा। यह गौरीशंकर तक नहीं पहुंचने देगा; बीच में कहीं पड़ाव बनाना पड़ेगा; थककर बैठ जाना पड़ेगा।
गौरीशंकर तक चढ़ते-चढ़ते तो सभी बोझ छोड़ देना होता है। सत्व की आखिरी ऊंचाई पर तो सब चला जाना चाहिए। यह नियम है। लेकिन कभी कोई जीसस, कभी कोई

मोहम्मद और कभी कोई रामकृष्ण मांसाहार करते हुए भी वहां पहुंचे हैं। वे हरक्युलिस हैं। उनका तुम ज्यादा विचार मत करो। उनसे तुम्हें कोई लाभ न होगा। तुम उनको अपवाद समझो।
और अपवाद सिर्फ नियम को सिद्ध करते हैं। अपवाद से अपवाद सिद्ध नहीं होता, सिर्फ नियम सिद्ध होता है। उससे केवल इतना ही पता चलता है कि यह भी संभव है अपवाद क्षणों में, कि कोई व्यक्ति इतना परम शुद्ध हो जाए कि मांसाहार कोई अशुद्धि पैदा न करता हो।
ऐसे शुद्ध पुरुष हुए हैं। जैसे कृष्ण हैं; कृष्ण ने ब्रह्मचर्य साधा, इसकी कोई खबर नहीं है। नहीं साधा, ऐसा लगता है। हजारों स्त्रियों के साथ राग-रंग चलता रहा। और कृष्ण फिर भी खंडित न हुए, नीचे न गिरे। उनके ऊर्ध्वगमन में कोई बाधा न आई। वे गौरीशंकर के शिखर पर पहुंच गए।
लेकिन इससे तुम मत सोचना कि यह नियम है। यह अपवाद है। तुम्हारे लिए तो ब्रह्मचर्य उपयोगी होगा। तुम्हारे पास तो शक्ति इतनी कम है कि तुम उसे ब्रह्मचर्य में न बचाओगे, तो तुम्हारे पास ऊर्ध्वगमन के लिए ऊर्जा न बचेगी।
कृष्ण के पास रही होगी बहुत ऊर्जा। कोई अड़चन न आई। सोलह हजार रानियों
के साथ नाचते रहे। हजार-हजार प्रेम चलते रहे; कोई अड़चन न आई। यह सिर्फ अपवाद है।
और मेरी अड़चन तुम ख्याल में रखो। क्योंकि मैं इन सब विपरीत लोगों में देखता हूं कि ये सब पहुंच गए। इसलिए मैं कहता हूं, सिद्धांत आदमियों से बड़ा नहीं है। और सिद्धांत से आदमियों को कभी मत कसना। पहले आदमी को सीधा- सीधा देखना और फिर सिद्धांत को उस पर कसना।
महावीर जो कहते हैं, वह निन्यानबे के लिए सही है। और निन्यानबे प्रतिशत लोग ही असली लोग हैं। रामकृष्ण अनुकरणीय नहीं हैं। उनका अनुकरण करोगे, तो तुम भटकोगे। अनुकरणीय तो बुद्ध और महावीर हैं। वे तुम्हें ज्यादा निकट तक गौरीशंकर के पहुंचा देंगे।
रामकृष्ण को मानकर तुम चलोगे, तो तुम मछली तो खाते रहोगे, मांसाहार तो करते रहोगे, रामकृष्ण कभी न हो पाओगे। और रामकृष्ण के मानने वाले वहीं भटक रहे हैं। रामकृष्ण के बाद एक भी रामकृष्ण की स्थिति में उपलब्ध नहीं हुआ, विवेकानंद भी नहीं। और सैकड़ों संन्यासी हैं रामकृष्ण के--कचरा, कूड़ा- कर्कट। क्योंकि वह रामकृष्ण अपवाद हैं। वह झंझट की बात है।
रामकृष्ण जैसे लोगों का धर्म नहीं बन सकता, बनना नहीं चाहिए। ये धर्म
के बाहर हैं। ये सीमा के बाहर हैं। ये ट्रेसपासर्स हैं। ये ऐसे लोग हैं, जो पीछे के दरवाजे से बागुड़ तोड़कर न मालूम कहां-कहां से घुसते हैं, सीधे दरवाजे से नहीं। तुम्हें तो सीधे दरवाजे से ही जाना पड़ेगा।
इसलिए रामकृष्ण जैसे लोगों का कोई धर्म नहीं बनना चाहिए, कोई संघ नहीं बनना चाहिए। इनके पीछे रामकृष्ण मिशन जैसा कोई प्रचार नहीं होना चाहिए। क्योंकि ये आदमी अपवाद हैं, इनको अनूठा रहने दो। ये कोहिनूर हीरे जैसे हैं। इनकी भीड़ मत लगाओ।
धर्म तो बनना चाहिए बुद्ध और महावीर जैसे लोगों का। उनका महासंघ होना चाहिए। करोड़-करोड़ उनके अनुयायी हों। जितने हों, उतने कम। क्योंकि उनसे निन्यानबे प्रतिशत को मार्ग मिलेगा।
जीसस से लाभ नहीं हुआ ईसाइयों को। हो नहीं सकता। क्योंकि जीसस सभी कुछ स्वीकार करके जीते हैं। शराब भी पीते हैं; न केवल पीते हैं, बल्कि उसे उत्सव मानते हैं, धार्मिक उत्सव मानते हैं। जीसस जिस घर में मेहमान होते हैं, वहां बोतलें खुलती हैं, खाना-पीना चलता है। क्योंकि यह महोत्सव है जीवन का।
तो जीसस ने रास्ता खोल दिया जैसे सबको शराब पीने का। तो पश्चिम में किसी को समझाओ कि शराब गलत है, लोग हंसेंगे कि पागल हो गए हैं! जीसस को गलत नहीं, तो हमें कैसे गलत? और कुछ न मानें जीसस में, कम से कम इतना तो मानते ही हैं। और बातें कठिन हों, मगर यह तो सरल है। इसका तो हम अनुगमन कर लेते हैं।
जीसस जैसे लोगों के पीछे धर्म नहीं होना चाहिए। लेकिन दुर्भाग्य कि जीसस के पीछे दुनिया का सबसे बड़ा धर्म है। दुनिया में सबसे ज्यादा संख्या

ईसाइयों की है। और सबसे कम संख्या जैनियों की है, महावीर के पीछे। कारण है इसमें भी। क्योंकि महावीर तुम्हारी कमजोरियों को जरा भी मौका नहीं देते।
उनके साथ तुम्हें यात्रा ऊपर की करनी ही पड़ेगी। करनी हो, तो ही साथ चल सकते हो; न करनी हो, तो बहाना नहीं खोज सकते महावीर में।
लेकिन जीसस के साथ न भी यात्रा करनी हो, तो भी तुम ईसाई रह सकते हो।
मांसाहार करो, शराब पीओ, सब कर सकते हो और ईसाई भी हो सकते हो। सुविधा है।
इसलिए ईसाइयत फैलकर बड़ा वृक्ष बन गई। महावीर तो खजूर के वृक्ष हैं; उनके नीचे छाया भी, छाया भी मुश्किल है।
मेरी कठिनाई यह है कि मैं पाता हूं, इन सभी लोगों ने पा लिया। इसलिए तुम बड़ा सोच-समझकर चलना। तुम अपने पर ध्यान रखना। इसकी फिक्र छोड़ देना कि रामकृष्ण ने मछली खाकर पा लिया, तो हम भी पा लेंगे; मछली क्यों त्यागें? मछली और मोक्ष अगर साथ-साथ सधता हो, तो साथ ही साथ साध लें।
मछली ही सधेगी, मोक्ष न सधेगा। कभी-कभी अपवाद घटित होते हैं। वे इसलिए घटित होते हैं कि व्यक्ति की क्षमता पर निर्भर होता है, कैसी उसकी क्षमता है। कोई वेश्याघर में रहकर भी परम ज्ञान को उपलब्ध हो सकता है। तुम्हें तो मंदिर में रहकर भी उपलब्ध होगा, यह भी संदिग्ध है।
तुम अपना ही सोचना और अपने को ही देखकर विचार करना। और ध्यान रखना; क्योंकि मन बहुत चालाक है। वह रास्ते खोजता है गलत को करने के, और सही को करने से बचने के उपाय, तर्क खोजता है। उसी मन के कारण तो तुम भटक रहे हो जन्मों-जन्मों से। खूब भटक लिए; अब वक्त है और जाग जाना चाहिए।

अब सूत्रः
और हे अर्जुन, जो यज्ञ शास्त्र-विधि से नियत किया हुआ है तथा करना कर्तव्य है, ऐसे मन को समाधान करके फल को न चाहने वाले पुरुषों द्वारा किया जाता है, वह सात्विक है।
और हे अर्जुन, जो केवल दंभाचरण के लिए ही अथवा फल को भी उद्देश्य रखकर किया जाता है, उसे तू राजस जान।
तथा शास्त्र-विधि से हीन, अन्न-दान से रहित, बिना मंत्रों के, बिना दक्षिणा के और बिना श्रद्धा के किए हुए यज्ञ को तामस कहते हैं।
यज्ञ का अर्थ है, धर्म की समस्त प्रक्रियाएं। यज्ञ तो प्रतीक है। धर्म की समस्त प्रक्रियाएं तीन ढंग से की जा सकती हैं।
एक ढंग है सात्विक का। वह किसी फल की आकांक्षा से नहीं करता। उसकी कोई मांग नहीं है। वह यज्ञ करता है, तो कुछ मांगने के लिए नहीं, कुछ पाने के लिए नहीं। उसकी कोई महत्वाकांक्षा नहीं। रजस शांत हो गया है। वह इसलिए भी यज्ञ नहीं करता कि जो मेरे पास है, वह बचा रहे। उसकी सुरक्षा रहे, उसे चोर चुरा न ले जाएं। उसे राज्य न छीन ले। वह मुझसे खो न जाए। नहीं, उसका तमस भी शांत हो गया है।
फिर यज्ञ वह करता क्यों है! सात्विक व्यक्ति क्यों यज्ञ करता है! तामसी मंदिर जाता है, समझ में आता है। राजसी भी जाता है, समझ में आता है। सात्विक क्यों जाता है? और वस्तुतः केवल सात्विक ही जाता है। बाकी कोई नहीं जाते। सात्विक सिर्फ अहोभाव प्रकट करने जाता है, आनंद भाव प्रकट करने जाता है, धन्यवाद देने जाता है, अनुग्रह के कारण जाता है।
वह अगर यज्ञ करता है, तो शास्त्र कहते हैं। शास्त्र का अर्थ है, शास्ताओं के वचन। जिन्होंने जाना है, उन्होंने कहा है। वह अपनी बुद्धि को नहीं लगाता। निरअहंकार भाव से जानने वालों ने कहा है, ठीक कहा होगा। जानने वाले कहते हैं, ऐसा करने से लाभ है, ऐसा करना आनंद है, ऐसा करना कर्तव्य है, वह करता है। उसकी अपनी कोई मांग नहीं है। वह समर्पण भाव से करता है। सदगुरु कहते हैं, इसलिए करता है। श्रद्धा से करता है। उसका अपना कुछ लेना-देना नहीं है। लेकिन जब जानने वाले कहते हैं, तो जरूर कोई राज होगा। जब जानने वाले कहते हैं, तो जरूर कोई रहस्य होगा। जो मुझे दिखाई नहीं पड़ता, उन्हें दिखाई पड़ता है। वे दूर तक देख सकते हैं, उनके पास दूरगामी दृष्टि है। वे ऊंचाई पर खड़े हैं, वहां से उन्हें सब दिखाई पड़ता है। मैं जमीन पर खड़ा हूं, वहां से मुझे इतने दूर की चीजें दिखाई नहीं पड़तीं। उनकी दृष्टि

विहंगम है। वे पक्षी की तरह हैं। वे ऊपर से उड़कर देखते हैं। मैं तो जमीन पर खड़ा हूं, मुझे विस्तार दिखाई नहीं पड़ता। थोड़ा-सा अपने आस-पास दिखाई पड़ता है। वे कहते हैं, ठीक कहते होंगे। वे कहते हैं, तो जरूर करने योग्य है, ऐसी श्रद्धा से करता है, वासना से नहीं, कामना से नहीं।
जो यज्ञ शास्त्र-विधि से नियत किया हुआ है... ।
वह बिल्कुल शास्त्र के अनुसार करता है। वह कोई जबरदस्ती नहीं कर लेता
कि किसी तरह निपटा दो।
तुम भी प्रार्थना करते हो, जल्दी निपटा देते हो। अगर अदालत जाना है,
तो पांच मिनट में पूरी हो जाती है। ट्रेन पकड़ना है, तो एक ही मिनट में पूरी हो जाती है। और कोई काम नहीं है, रविवार का दिन है, तो एक घंटा चलती है; घंटी हिलाते रहते हो बैठकर।
तुम्हारी प्रार्थना तुम्हारी श्रद्धा और शास्त्र से नहीं निकलती। तुम्हारी प्रार्थना तुम्हारे हिसाब से निकलती है। जब जैसी जरूरत पड़ी! कभी जरूरत पड़ी, तो एक दिन तुम दो दिन की भी कर लेते हो।
मैंने सुना है कि एक इफिशिएंसी एक्सपर्ट, जो लोगों को कैसे कम समय में ज्यादा काम करना, रोज अपने प्रार्थना के कमरे में जाकर कहता, डिट्टो! जस्ट एज लाइक दि अदर डे, वही जैसा कल। और बाहर निकल आता। परमात्मा इतना तो समझता ही है कि डिट्टो। अब इसमें रोज-रोज क्या दोहराना, घंटी बजाना, प्रार्थना, पूजा, चंदन-तिलक--घंटा खराब करना! भगवान क्या कोई नासमझ है?
शास्त्र-विधि से नियत किया हुआ, शास्त्रोक्त, शास्ताओं द्वारा कहा हुआ, कर्तव्य है, करने जैसा है... ।
इसे समझ लो। तुम्हें बहुत बातें पता नहीं हैं। अगर तुम जिद करो कि जब हमें पता होंगी, तभी हम करेंगे, तो तुम कर ही न पाओगे।
मैं तुम्हें कहता हूं, ध्यान करो। तुम कहते हो, क्यों करें? इससे क्या लाभ? हमें कभी लाभ नहीं हुआ।
तुमने कभी किया नहीं; लाभ कैसे होगा? तुम कहते हो, बिना लाभ का पक्का हुए, हम करें क्यों? होगा, इसका आश्वासन क्या है? अगर न हुआ तो? अगर समय खराब गया तो? गारंटी है कोई।
तुम कैसे ध्यान कर सकते हो? तुम भरोसे से ध्यान करते हो। एक छोटा बेटा चलना शुरू करता है। अगर वह भरोसा न करे बाप पर... । बाप उससे कहता है कि तू भी मेरे जैसा चल सकेगा। मान तो नहीं सकता। क्योंकि बाप है छः फीट का और वह इतना-सा। कैसे बाप जैसा हो सकता है? बाप को देखता है, तो टोपी गिर जाती है उसकी। बाप जैसा मैं कैसे हो सकता हूं? तुम इतने शक्तिशाली, लोग तुमसे डरते हैं। घर में आते हो, तो नौकर-चाकर घबड़ा जाते हैं। मुझसे कोई डरता ही नहीं। बल्कि जहां भी मैं जाता हूं, नौकर-चाकर भी डरवाते हैं। यह हो नहीं सकता कि मैं तुम्हारे जैसा हूं। तुम चल सकते हो। मैं तो चार हाथ-पैर घुटनों पर ही घिसटूंगा।
नहीं, लेकिन बाप कहता है, भरोसा कर, तेरे पास मेरे जैसे पैर हैं। वह खड़ा भी होता है, गिर भी जाता है, चोट भी खाता है। फिर भी भरोसा नहीं छोड़ता। अगर बच्चे जरा ज्यादा कुशल हों, चालाक हों, तर्क कर सकें, तो वे कहेंगे, गिर गए, बस अब हो गया, घुटने छिल गए। क्षमा करो, देख लिया। एक दफे देख लिया, जांच लिया। अब, अब ये बहाने मत बनाओ, घुटने मत तुड़वा दो। हम ठीक चल रहे हैं। सुविधापूर्ण है सब। तो बच्चे सदा ही घिसटते रहें।
धर्म के जीवन में फिर एक नया बचपन है तुम्हारा। तुम्हें पता नहीं, तुम
जब देखते हो बुद्ध-महावीर की तरफ, तो वे आकाश छूते मालूम पड़ते हैं, टोपी गिरती है। तुम्हें भरोसा नहीं आता कि तुम भी उन जैसे हो। वे लाख कहें तुमसे, कैसे भरोसा आए?
अंडे में छिपा हुआ है मुर्गी का चूजा और मुर्गा अकड़कर खड़ा है बाहर। उसकी शान देखो, उसकी बांग देखो। उसकी कलगी की रौनक देखो सूरज की रोशनी में। और वह चिल्लाकर कह रहा है, घबड़ा मत, निकल आ बाहर अंडे के। तू भी मेरे जैसा है। चूजा और घबड़ाकर सरक जाता है भीतर। इस तरह का मैं कैसे हो सकता हूं! इतना-सा चूजा, अंडे में छिपा, अंडा तक तोड़ना मुश्किल है। न ऐसी बांग दे सकता हूं।

बुद्ध के वचनों को बुद्ध के भिक्षुओं ने सिंहनाद कहा है। कि उनकी गर्जना सुनकर सोए हुए सिंह जाग जाते हैं।
लेकिन तुम्हें पहले तो यही लगेगा कि चारों घुटने-पैर से ही चलने दो।
मत झंझट में डालो। यह हमसे न हो सकेगा। लेकिन भरोसा तुम करते हो, तो आगे उठते हो।
सत्व को मानने वाला व्यक्ति श्रद्धापूर्ण होता है। और ऐसा नहीं है कि
एक बार श्रद्धा टूट जाती है, तो श्रद्धा खो देता है। कई बार बच्चे को गिरना पड़ता है। कई बार तुम्हारा ध्यान चूकेगा, नहीं लगेगा। कई बार समाधि लगते- लगते चूक जाएगी, खड़े होते-होते गिर जाओगे। लेकिन फिर भी श्रद्धावान श्रद्धा को कायम रखता है। कोई चीज उसकी श्रद्धा को नहीं तोड़ पाती, विपरीत अनुभव भी नहीं तोड़ पाते। उसकी श्रद्धा सबसे बड़ी है। विपरीत अनुभवों से बड़ी है। वह भरोसा किए जाता है।
शास्त्र-विधि से नियत किया हुआ, कर्तव्य है, ऐसे मन को समाधान करके... । क्योंकि अभी समाधि तो उपलब्ध नहीं हुई, अभी तो समाधान करना पड़ेगा। अभी तो मन को समझाना पड़ेगा कि मन, थोड़ा चल, देख, शायद कुछ हो। निर्णय मत ले; विरोध में पहले से मत सोच; निषेध को पक्का मत कर; शायद कुछ हो। द्वार खुला रख; निष्कर्ष मत बना; चलकर देख। शायद कुछ अनुभव में आए, तो आगे की यात्रा सुगम हो जाए।
अभी समाधि तो मिली नहीं। जिसको समाधि मिली, उसे समाधान की कोई जरूरत नहीं। साधक को तो समाधान करके चलना पड़ता है। ऐसा मन को समाधान करके, फल की आकांक्षा न करते हुए, वह यज्ञ करता है। वह धार्मिक पूजा, प्रार्थना, अर्चना, यज्ञ, साधना करता है। ऐसा व्यक्ति सात्विक है।
इसको जरा अपने भीतर खोजना। तुम्हारा ध्यान भी ऐसा ही हो, सत्व से अनुप्राणित हो, तब तुम्हें बहुत मिलेगा। यही तो अड़चन है। मांगते हो, मिलता नहीं; न मांगोगे, मिलेगा। वर्षा होगी तुम्हारे ऊपर रत्नों की। लेकिन तुम मांगोगे, तो कंकड़-पत्थर भी न मिलेंगे।
और हे अर्जुन, जो यज्ञ केवल दंभाचरण के लिए है... ।
सिर्फ अहंकार के लिए है कि लोगों को दिखा दूं कि मैंने अश्वमेध यज्ञ किया! दंभाचरण के लिए है, कि देखो मैंने कितना बड़ा यज्ञ किया, हजारों ब्राह्मणों ने पूजा-पाठ की, लाखों ने भोजन किया। सिर्फ दंभ के लिए है। सम्राट किया करते थे अश्वमेध यज्ञ, वह दंभाचरण था। भेजते थे घोड़े को,
वह सारे राज्य में घूमता था। कोई उस घोड़े को छेड़ दे, तो युद्ध छिड़ जाता। वह घोड़ा इस बात की खबर थी, जैसे कि पहलवान लंगोट घुमाते हैं अखाड़े में कि अगर कोई बीच में बोल दे कि ठहरो, रुक जाओ, मैं लड़ने को तैयार हूं। ऐसा घोड़ा घुमाते थे पूरे राज्य में। वह खबर थी कि घोड़ा छुआ न जाए, रोका न जाए। अगर कहीं भी रोका गया, तो तुम झगड़ा मोल ले रहे हो सम्राट से। वह चक्रवर्ती होने की घोषणा थी। जब घोड़ा वापस लौट आता, कोई रोकने वाला न होता, तो वह सम्राट चक्रवर्ती हो जाता।
वह राजस है, वह महत्वाकांक्षा का है। उसमें कुछ पाने की कामना है।
दंभाचरण के लिए अथवा फल को उद्देश्य में रखकर किया जाता है। कि कुछ फल मिल जाए; राज्य और बड़ा हो; धन और बढ़े; यश, पद, प्रतिष्ठा हो।
और फिर तामसी का यज्ञ भी है, तामसी की धर्म-साधना भी है।
शास्त्र-विधि से हीन... ।
वह मनगढंत होती है। वह खुद ही बना लेता है अपनी। क्योंकि अगर वह शास्त्र को मानकर चले, तो चलना पड़ेगा, उठना पड़ेगा। वह अपनी खुद ही बना लेता है; अपने तमस के हिसाब से बना लेता है। तमस निर्धारक होता है। तमस से भरा हुआ चित्त अपना ही शास्त्र बन जाता है, अपना ही गुरु हो जाता है।
मेरे पास लोग आते हैं; वे कहते हैं कि क्यों समर्पण किया जाए? क्या हम खुद ही नहीं पा सकते?
अब खुद ही पा सकते हो, तो मेरे पास इतना बताने भी किसलिए आए? खुद ही पा सकते हो, मजे से पा लो। इसके लिए भी मेरे पास आने की क्या जरूरत है? नहीं, वे कहते हैं, आपसे जरा सलाह लें। सलाह का क्या काम? सलाह भी मेरी होगी, उसको भी छोड़ो। तुम अपना ही कर डालो।

तमस अपना ही कर लेना चाहता है। क्योंकि तब वह अपने लिए सुविधा बनाकर करता है। अगर शास्त्र में विधि है कि पद्मासन लगाकर बैठो, अब तामसी को पद्मासन लगाना मुश्किल होता है। तो वह कहता है, क्या हर्जा है अगर लेटकर करें? हर्जा तो कुछ भी नहीं है। लेटने का जो लाभ होगा, वही लाभ होगा। तामसी अपनी व्यवस्था बना लेना चाहता है, ताकि तमस न टूटे।
इसलिए शास्त्र-विधि से हीन, दान से रहित... ।
तामसी मांगता है, दे नहीं सकता। राजसी देता है, ताकि पा सके। तामसी तो
दे ही नहीं सकता। इतने के लिए भी नहीं दे सकता कि पाने के लिए भी दे सके। वह बिना दिए मांगता है। तामसी भिखारी है। वह सिर्फ भिक्षापात्र सामने करता है। वह कुछ देना नहीं चाहता।
दान से रहित, बिना मंत्रों के... ।
क्योंकि मंत्र तो जिन्होंने तय किए हैं, वे बड़ी मेहनत से तय किए गए हैं। उनमें सत्व को पैदा करने की क्षमता है, मंत्रों में। उनके अनुच्चार में, उनकी गूंज में, उनसे पैदा होने वाले वातावरण में सत्व फलित होता है। तुमने कभी ख्याल किया होगा, पश्चिमी संगीत को सुनकर तुममें कामवासना जगेगी। पूर्वीय शास्त्रीय संगीत को सुनकर तुम थोड़ी देर को कामवासना को बिल्कुल भूल जाओगे। ख्याल ही न आएगा। पश्चिमी संगीत को सुनकर तुम्हारे भीतर कुछ करने का भाव जगेगा। वह राजस से भरा है। पूरब के संगीत को सुनकर तुम ध्यानस्थ हो जाओगे। वीणा बजती रहेगी, तुम्हारे भीतर के शब्द, विचार खो जाएंगे। तुम पाओगे, एक धुन बंध गई।
एक वेश्या को नाचते देखकर तुम्हारे भीतर कामवासना जगेगी। लेकिन कृष्ण को नाचते देखकर तुम्हारे भीतर, वह जो पारलौकिक है, उसका आविर्भाव होगा। शरीर एक ही है। अंग वही हैं। उनका कंपन भी वही है। लेकिन फिर भी रूपांतर हो जाता है। शब्द वही हैं, ध्वनि वही है, संगीत के वाद्य वही हैं, अंगुलियां वही हैं, लेकिन सब बदल जाता है।
मंत्र बड़ी लंबी यात्रा में खोजे गए हैं। उन्हें बड़ी मेहनत से निर्णीत किया गया है। अगर तुम ओंकार की ध्वनि ही करते रहो बैठकर, तो तुम पाओगे, तुम्हारे भीतर रूपांतरण शुरू हो गया। क्योंकि ध्वनि को मात्र ध्वनि मत समझना; क्योंकि ध्वनि तो तुम्हारे प्राणों का सार है। तुम जो भी ध्वनि अपने भीतर करोगे, उस जैसे ही होने लगोगे।
इसलिए मंत्र का बड़ा मूल्य है। मंत्र जीवन को बदलने की एक कीमिया है।
वह ध्वनिशास्त्र है। उसके भीतर बड़ा विज्ञान छिपा है।
तुमने कभी सोचा, एक नग्न स्त्री का चित्र देखकर तुम्हारे भीतर सारे शरीर में कामवासना दौड़ जाती है। कुछ भी नहीं है कागज में, सिर्फ लकीरें खिंची हैं। हो सकता है, सिर्फ स्केच हो एक नग्न स्त्री का। लेकिन बस, तुम्हारे भीतर सपना जग जाता है, वासना उठ आती है; विचार वासना के दौड़ने लगते हैं।
बुद्ध का भी क्या है? एक कागज पर बुद्ध का चित्र बना है। लकीरें खिंची हैं। उसको भी तुम गौर से देखो। कुछ और पैदा होता है। लकीरें वही, कागज वही, स्याही वही, खींचने वाला भी हो वही। लेकिन जरा-सा फर्क लकीरों का, कागज का, स्याही का, और तुम्हारे भीतर बुद्धत्व की थोड़ी-सी प्रतिमा निर्मित होती है।
ऐसे ही ध्वनि के द्वारा हमने ऐसे मंत्रों को चुना है, जिन मंत्रों का उपयोग तुम्हारे भीतर एक वातावरण पैदा करता है, एक परिवेश पैदा करता है। और वह परिवेश तुम्हें बचाता है, बदलता है, नया करता है, पुनरुज्जीवित करता है।
तामसी बिना मंत्रों के, बिना दक्षिणा के... ।
दक्षिणा बड़ी अनूठी चीज है; भारत ने खोजी। दुनिया में कहीं दक्षिणा जैसा कोई शब्द नहीं है। दक्षिणा का अनुवाद करना हो, तो दुनिया की भाषाओं में शब्द नहीं है, कि इसका अनुवाद कैसे करो? दक्षिणा का मतलब बड़ा अजीब है। एक आदमी को तुम दान देते हो, तो स्वभावतः तुम्हारी आकांक्षा होती है
कि वह तुम्हें धन्यवाद दे। तुमने दान दिया और वह आदमी चल पड़े और धन्यवाद भी न दे। तो तुम कहोगे, गलत आदमी को दे दिया, अपात्र को दे दिया। इसको कम से कम धन्यवाद तो देना चाहिए।

दक्षिणा का अर्थ है, जिसने दान दिया, वह लेने वाले को धन्यवाद भी दे। क्योंकि उसने लेने की कृपा की। न लेता तो? दान दो, और फिर उसने लिया, इसके लिए जो धन्यवाद दिया जाता है, वह दक्षिणा। कि आपने दान स्वीकार किया, राजी हुए, मुझे दानी होने का मौका दिया, मुझ ना-कुछ को देने की सुविधा दी, इसके लिए दक्षिणा। इतना और लो। यह धन्यवाद।
तो शूद्र तो कैसे धन्यवाद दे सकता है! शूद्र पहले तो दान ही नहीं दे सकता। राजस दान दे सकता है। सात्विक दक्षिणा भी दे सकता है। यह फर्क है। शूद्र दान नहीं दे सकता, सिर्फ ले सकता है। राजस व्यक्ति लेने में जरा कठिनाई पाता है, वह उसके अहंकार के विपरीत है। वह दे सकता है। लेकिन वह चाहेगा कि जिसको दिया है, वह धन्यवाद दे। उतना सौदा कायम है।
सात्विक व्यक्ति देता भी है और देने के पीछे दक्षिणा भी देता है कि धन्यवाद, आपने स्वीकार किया। ऐसा दान पूर्ण हो जाता है, जो दक्षिणा से संयुक्त है। अन्यथा दान अधूरा रह जाता है।
यह बात भारत की अनूठी है कि दान दो और दक्षिणा दो। यह दुनिया में कोई न समझ पाएगा। यह तो व्यवसाय के बिल्कुल बाहर मामला हो गया। यह तो बाजार को बिल्कुल तोड़ ही दिया। बाजार के नियम और अर्थशास्त्र को, इकॉनामिक्स को किनारे रख दिया। दान भी और दक्षिणा भी?
लेकिन सात्विक पुरुष धन्यभागी मानता है कि किसी ने स्वीकार किया, कोई राजी हुआ, किसी ने मौका दिया, तो दक्षिणा देनी जरूरी है। दान तभी पूरा है, जब दक्षिणा से संयुक्त हो; अन्यथा अधूरा दान है। राजस का रह जाता है, सात्विक का नहीं।
बिना दक्षिणा के, बिना श्रद्धा के किए हुए यज्ञ को तामस कहते हैं।
वह करता भी है, लेकिन उसकी श्रद्धा बिल्कुल नहीं है। वह करता है कि शायद फल मिल जाए, करता है कि शायद कोई सुरक्षा मिल जाए। लेकिन श्रद्धा नहीं है, भीतर अश्रद्धा है।
तामस व्यक्ति अश्रद्धा से करता है। राजस व्यक्ति अधूरी श्रद्धा से करता है। सात्विक व्यक्ति पूर्ण श्रद्धा से करता है। लेकिन श्रद्धा पूर्ण तभी होती है, जब तुम बिल्कुल मिट गए, जब तुम हो ही नहीं। गुरु कहता है, इसलिए करता है; अपना कोई होना न रहा। शास्त्र कहते हैं, इसलिए करता है; अपना कोई होना न रहा। आदेश है, इसलिए पूरा करता है; अपनी कोई आकांक्षा नहीं, अपनी कोई वासना नहीं। ऐसे सत्व में ही परमात्मा का आविर्भाव होता है।
सत्व के मंदिर में ही परमात्मा का सिंहासन है। वहीं उसकी प्रतिमा विराजमान है।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग आठ
गीता दर्शन अध्याय 17
सातवां प्रवचन

शरीर, वाणी और मन के तप

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते।। 14।।
अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाड्मयं तप उच्यते।। 15।।
मनःप्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते।। 16।।
तथा हे अर्जुन, देवता, द्विज अर्थात ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानीजनों का पूजन एवं पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा, यह शरीर संबंधी तप कहा जाता है।
तथा जो उद्वेग को न करने वाला प्रिय और हितकारक एवं यथार्थ भाषण है और
जो स्वाध्याय का अभ्यास है, वह निःसंदेह वाणी संबंधी तप कहा जाता है।
तथा मन की प्रसन्नता, शांत भाव, मौन, मन का निग्रह और भाव की पवित्रता, ऐसे यह मन संबंधी तप कहा जाता है।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः अर्जुन सामने था, कृष्ण की गीता ने जन्म लिया; जनक के कारण अष्टावक्र की महागीता साकार हुई। और आप हैं कि किसी अर्जुन या जनक के बिना ही परम गीता कहे जा रहे हैं। कैसे?

अर्जुन को तुम पहचान न पाते कृष्ण की गीता के पूर्व; और न ही तुम जनक
को पहचान पाते। अर्जुन अर्जुन हुआ कृष्ण से गुजरकर; वह था नहीं। था तो वह तुम्हारे जैसा ही। जनक जनक हुए अष्टावक्र की महागीता से गुजरकर; अन्यथा वे तुम जैसे ही थे।
आज तुम्हें अर्जुन की जो महिमा दिखाई पड़ती है, वह महिमा कृष्ण की अग्नि से गुजरने के कारण है। जब कृष्ण ने गीता कही थी, तो वह महिमा कहीं भी न थी। तब अर्जुन एक बीज था। कृष्ण ने उस बीज को सम्हाला, उस बीज में छिपी हुई संभावना को पुकारा। उस बीज में छिपी संभावनाओं को समझाया, फुसलाया, राजी किया--कि तू डर मत, अंकुर को तोड़; फूट; घबड़ा मत; युद्ध में उतर; भाग मत; पलायन मत कर--भूमि संवारी, बीज को बोया।
आज तुम जो फूल लगे देखते हो अर्जुन में, वे सदा नहीं थे। कृष्ण की गीता
के पहले तो बिल्कुल नहीं थे। मात्र एक संभावना थी, जो पूरी हो भी सकती थी, खो भी जा सकती थी। आज तुम्हें जो दिखाई पड़ता है विराट रूप अर्जुन की भव्यता का, वह कृष्ण के सान्निध्य का परिणाम है। कृष्ण तो बीज से ही बोले थे, लेकिन बोलने से बीज वृक्ष हुआ।
इसलिए तुम्हें यह ख्याल उठ सकता है कि मैं किस अर्जुन से बोल रहा हूं?
आज तुम्हें अर्जुन दिखाई न पड़ेंगे। अर्जुनों से ही बोल रहा हूं, क्योंकि किसी और से बोलने का उपाय ही नहीं है। लेकिन अभी बीज हैं, बीज में तुम वृक्ष को न पहचान सकोगे।
अभी यह बगिया बोने की बिल्कुल शुरुआत है। इसमें तुम्हारे भीतर जो छिपा है, उसे पुकार रहा हूं। तुम्हें राजी कर रहा हूं कि डरो मत, छोड़ दो खोल, छोड़ दो सुरक्षा, ले लो छलांग।
तुम हिचकते हो, डरते हो; स्वाभाविक है। अर्जुन भी डरा था, तभी तो इतनी बड़ी गीता चली। वह डरता रहा और मानने को राजी न हुआ और कृष्ण अनेक-अनेक मार्गों से उसे समझाने लगे। वह सब तरफ से बचने का उपाय करने लगा, लेकिन बच न सका। तुम भी बच न सकोगे। उपाय तुम भी कर रहे हो।
और कृष्ण ने तो एक अर्जुन से कही थी, मैं बहुत अर्जुनों के साथ एक साथ मेहनत कर रहा हूं। उसके पीछे कारण हैं।

मनुष्य का इतिहास प्रतिपल सघन होता जाता है, वह किसी महाघटना की ओर गतिमान है। इसलिए जैसे-जैसे वह महाघटना करीब आती है, वैसे-वैसे और भी अधिक अर्जुनों के जागने की संभावना प्रगाढ़ होती जाती है।
एक बहुत बड़ा रूपांतरण करीब है, जब बहुत-से बीज एक साथ टूटेंगे। और जब बहुत-से वृक्ष एक साथ फूलों से लद जाएंगे। वसंत आने को है। और जैसे सुबह आने के पहले अंधकार बहुत गहन हो जाता है, ऐसे ही वसंत आने के पहले भी ऐसा लगता है कि सब खो गया। बड़ी अराजकता हो जाती है।
मनुष्यता एक खास घड़ी के करीब पहुंच गई है। जैसा मैंने पहले तुम्हें कहा कि हर पच्चीस सौ वर्ष में मनुष्यता एक बड़ी घड़ी के करीब आती है। कृष्ण के समय में आई। फिर पच्चीस सौ साल बाद बुद्ध और महावीर के समय में आई। अब फिर पच्चीस सौ साल पूरे हो रहे हैं, अब फिर वह घड़ी करीब आ रही है।
ये आने वाले पच्चीस वर्ष मनुष्यता के जीवन में बड़े चिरस्मरणीय रहेंगे। इन पच्चीस वर्षों में हजारों बीज फूटेंगे और हजारों व्यक्ति जो साधारण थे, अचानक अर्जुन और जनक हो जाएंगे। तुम अगर चूके, तो अपने ही कारण चूकोगे। फिर तुम पच्चीस सौ वर्ष तक पछताओगे। क्योंकि वैसी घड़ी, पच्चीस सौ वर्ष में एक वर्तुल पूरा होता है।
जैसे पृथ्वी एक वर्ष में चक्कर लगाती है सूर्य का, ऐसे सूर्य पच्चीस
सौ वर्षों में किसी महासूर्य का एक चक्कर पूरा करता है, उसका एक वर्ष पूरा होता है। वह एक वर्ष जब पूरा होता है, तो सारे जीवन में बड़ी उथल-पुथल होती है, सब अतीत व्यर्थ हो जाता है। सब मूल्य टूट जाते हैं।
वैसी ही घड़ी कृष्ण के समय में थी।
सब मूल्य टूट गए थे। अधर्मी जीतता मालूम पड़ रहा था। अर्जुन के पास था क्या? फकीर ही था, सब खो चुका था। युधिष्ठिर भीख मांगते फिर रहे थे। धर्म भीख मांग रहा था, अधर्म सिंहासन पर था।
और कृष्ण के वचन बड़े महत्वपूर्ण हैं कि जब-जब अधर्म बढ़ जाता है और धर्म की हानि होती है, मैं लौट आता हूं--असाधु को विनष्ट करने, साधु को बचाने।
कोई कृष्ण लौट आते हैं, ऐसा नहीं है। तब तुम भूल गए, तुम समझे न बात। हर पच्चीस सौ वर्ष में वैसी अराजक घड़ी आती है और कृष्ण-चेतना का जन्म होता है। कृष्ण नहीं लौटते, कृष्ण-चेतना! कभी क्राइस्ट के रूप में, कभी बुद्ध के रूप में--वही चेतना। क्योंकि चेतना में तो कोई गुण-भेद नहीं है। वही सागर फिर से बूंदों को पुकारता है, नदियों, तालाबों को पुकारता है कि आ जाओ।
तो आज तो तुम्हें आसान दिखाई पड़ता है कि महाखोजी था अर्जुन, जिज्ञासु था, तो कृष्ण बोले। ठीक हजार साल बाद जब मेरे अर्जुन पक जाएंगे, तब लोग यही फिर भी कहेंगे कि मैं जिनसे बोला, कैसे महापुरुष थे! अभी तुम्हें वे महापुरुष दिखाई नहीं पड़ सकते।
जब कृष्ण अर्जुन से बोल रहे थे, तब भी किसी को नहीं दिखाई पड़ रहा था कि अर्जुन कुछ खास है। ऐसे कई योद्धा थे वहां। अर्जुन जैसी सामर्थ्य के बहुत लोग थे।
अर्जुन की खूबी यह है कि वह कृष्ण से राजी हो गया। उस राजी होने में क्रांति घटी, रूपांतरण हुआ। पुराना गया, नए का जन्म हुआ। मृत्यु घटी अर्जुन की। अर्जुन कृष्ण में मरा और कृष्ण से पुनरुज्जीवित हुआ। कृष्ण गर्भ बन गए अर्जुन के लिए। पुराना तो खो गया, एक नए व्यक्तित्व का जन्म हुआ।
पुराना तो डरा हुआ व्यक्ति था; कितना ही बहादुर हो, लेकिन भय था भीतर। पुराना तो मोहग्रस्त था, अपने-पराए का भेद करता था। यह जो नया अर्जुन जन्मा, इसके लिए अपना-पराया कोई न रहा। या सभी अपने हो गए या सभी पराए हो गए। एक वीतराग दशा का जन्म हुआ।
कृष्ण में मरा अर्जुन और कृष्ण से पुनरुज्जीवन पाया। कृष्ण गर्भ बने। कृष्ण अर्जुन के इस नए जन्म की माता हैं। ऐसे ही अष्टावक्र से जनक गुजरा; शरीर से ऊपर उठ गया उसी गुजरने में।
मैं भी अर्जुनों से, जनकों से ही बोल रहा हूं। आज तुम्हें वे दिखाई नहीं पड़ते। आज वे दिखाई नहीं पड़ सकते। वे कल दिखाई पड़ेंगे। लेकिन तब तुम देखने वाले न रहोगे, दूसरे देखने वाले रहेंगे।

अभी तुम इस ऊहापोह में समय व्यर्थ मत करो कि मैं किससे बोल रहा हूं। मैं तुमसे बोल रहा हूं; तुम्हारी संभावना से बोल रहा हूं; तुम्हारे भविष्य से बोल रहा हूं; तुम्हारी नियति से बोल रहा हूं। तुम जो हो सकते हो, उससे बोल रहा हूं।
तुम जो हो, वह कुछ खास नहीं है। उस पर ध्यान ही मत दो। तुम जो हो सकते
हो, वह महिमापूर्ण है। उस पर ध्यान दो। तुम जो हो, अभी तो बीज हो, खोल में बंद। मैं तुम्हारे कल से बोल रहा हूं; जब ऋतुराज आ जाएगा, और तुम्हारे फूल लग जाएंगे, और पक्षी तुम पर गीत गाएंगे, और राहगीर तुम्हारे नीचे छाया को उपलब्ध होंगे, और तुम अपनी महिमा में नाचोगे।
वह सबकी संभावना है। यहां हर व्यक्ति अर्जुन होने को पैदा हुआ है। उससे कम परमात्मा पैदा ही नहीं करता। जानो, न जानो; पहचानो, न पहचानो; देर-अबेर कितनी ही करो, मगर परमात्मा अर्जुन से कम आदमी पैदा करता ही नहीं।
इसका मतलब केवल इतना है कि परमात्मा परमात्मा को ही पैदा करता है।
कितना ही छिपाकर रहो तुम अपने हीरे को मिट्टी में, लेकिन हीरा मिट्टी नहीं हो जाता। अभी ऊपर से तुम बिल्कुल मिट्टी मालूम पड़ते हो। मैं तुम्हारे हीरे से बोल रहा हूं।
कबीर ने कहा है, हीरा हेरायल कीचड़ में।
जो हीरा है, कीचड़ में खो गया है। सदगुरु उसे पुकारता है, कि तू कितना
ही कीचड़ में खो गया हो, तू कीचड़ नहीं हो सकता। हीरा हीरा ही रहेगा। कीचड़ की पर्त-पर्त जम जाए, सारी पृथ्वी हीरे को दबा ले, तो भी हीरा हीरा रहेगा। मैं तुम्हारे हीरे से बोल रहा हूं। अभी तुम्हें भी अपने हीरे का पता नहीं है, इसलिए तुम मुझसे पूछते हो कि मैं किससे बोल रहा हूं! जिससे मैं बोल रहा हूं, वही मुझसे पूछता है, मैं किससे बोल रहा हूं!
अर्जुन को भी लगा होगा कि ये कृष्ण किससे बोल रहे हैं? अर्जुन की तो कुछ समझ में आता नहीं, जो ये बोल रहे हैं। यह तो उसके सिर पर से निकल जाता है। इसलिए तो बार-बार फिर वह संदेह करता है, बार-बार प्रश्न उठाता है। पकड़ बैठती नहीं, हाथ कुछ आता नहीं, छूट-छूट जाता है। इसलिए तो बार-बार पूछता है। फिर जिज्ञासा खड़ी करता है। क्योंकि कृष्ण ने जो उत्तर दिया, उसने चोट नहीं की, वह खाली निकल गया।
अर्जुन का बार-बार पूछना यही तो कह रहा है कि तुम किससे बोल रहे हो? मुझसे बोलो। लेकिन कृष्ण उस अर्जुन से नहीं बोल सकते, जो है। कृष्ण तो उसी अर्जुन से बोल सकते हैं, जो हो सकता है। कृष्ण तो भविष्य से ही बोल सकते हैं। क्योंकि कृष्ण का वह भविष्य अब वर्तमान हो गया है। इसे तुम ठीक से समझ लो।
जो अर्जुन के लिए भविष्य है, वह कृष्ण का वर्तमान है। इतना ही तो फर्क है। जो अर्जुन का भविष्य है, वह कृष्ण का वर्तमान है। और जो कृष्ण का अतीत है, वह अर्जुन का वर्तमान है।
कभी कृष्ण भी अर्जुन थे, वे भी बीज थे। हर एक को बीज से गुजरना पड़ेगा;
हर वृक्ष को बीज से गुजरना पड़ेगा। तो हर वृक्ष बीज रहा है, यह तो पक्का है। और हर बीज से वृक्ष हो सकता है, यह भी पक्का है। लेकिन बीज बहुत दिन तक प्रतीक्षा भी कर सकता है, हजारों-लाखों साल तक। किसी पत्थर की आड़ में दबा पड़ा रहे, भूमि न मिले, तो लाखों वर्ष पड़ा रह सकता है।
मगर फिर भी जैसे हर वृक्ष बीज से हुआ है, यह पूर्णरूपेण सत्य है; वैसे
ही हर बीज से वृक्ष हो सकता है, यह भी पूर्णरूपेण सत्य है। देर हो सकती है; समय व्यतीत हो सकता है; अनेक अवसर चूक सकते हैं; लेकिन नियति पूरी होकर रहती है।
कृष्ण तो निमित्त मात्र हैं। गुरु तो निमित्त मात्र है। वह तुम्हें बनाता थोड़े ही है। तुम जो बनने को थे, वही तुम्हें बता देता है। तुम जो बन ही रहे थे, उसके प्रति तुम्हें जगा देता है। तुम जहां जा ही रहे थे अंधे की तरह, वहीं तुम्हें वह आंख खोलकर चला देता है। अंधे की तरह चलते, तो बहुत गिरते, भटकते, टटोलते; देर लगती पहुंचने में। आंख खोलकर जल्दी पहुंच जाते हो। अगर आंख ठीक से खोल लो, तो क्षणभर में पहुंच जाते हो। क्षणभर की भी देर नहीं होती। इसी क्षण पहुंच सकते हो।

लेकिन मनुष्य की आदत है, अतीत को पकड़ना, ज्ञात को पकड़ना, अज्ञात से डरना। और इतना ही काम है कृष्ण का कि वे तुम्हें ज्ञात को छोड़ने की क्षमता दें और अज्ञात में उतरने का अभियान, साहस, दुस्साहस।
मैं भी अर्जुनों से ही बोल रहा हूं। अर्जुन के अतिरिक्त मुझे और कोई सुनने ही क्यों आएगा? कोई कारण ही नहीं है। भूल-चूक से एक दफा आ जाएगा, तो दुबारा नहीं आएगा। मुझे वही सुन सकता है, जिसको धीरे-धीरे अपने भीतर के अंकुर के फूटने का एहसास होने लगा। पहली पगध्वनियां जिसे सुनाई पड़ने लगीं। जिसके भीतर सरसराहट शुरू हो गई। जिसके भीतर खोज ने पहला कदम ले लिया है। वही मुझे सुन सकता है। वही सुनने को राजी हो सकता है। वही समझ भी सकता है।
समझ आज पूरी नहीं हो सकती है। लेकिन समझ की झलकें भी आ जाएं, सिर्फ झरोखा भी खुल जाए, तो भी काफी है।
एक सूफी फकीर के जीवन में उल्लेख है। सूफी फकीर का दरबार लगा था। और सूफी फकीर की बैठक का नाम दरबार है; क्योंकि सूफी फकीर सम्राट हैं। सभी फकीर सम्राट हैं। वहां जो लोग बैठे हैं, वह दरबार है।
तो फकीर का दरबार लगा था। दस-पंद्रह लोग बैठे थे। और दरबारी भी क्या सम्राट का आदर करेंगे, जैसा शिष्य सूफी फकीरों का आदर करते हैं, जिस श्रद्धा से बैठते हैं।
फकीर घड़ी, दो घड़ी शांत बैठा रहा, तब उसने एक शिष्य को इशारा किया; उसे लेकर खिड़की पर गया। और कहा कि देख, बाहर देख! उस युवक ने बाहर खिड़की के झांका; नाचने लगा। बाकी लोगों ने पूछा, ऐसा क्या देखा तुमने, जो नाच रहे हो?
उस शिष्य ने कहा, मैंने तो नहीं देखा; क्योंकि मैं तो इस खिड़की पर कई बार खड़ा हुआ। गुरु ने दिखाया। क्योंकि मैं तो जो देखता था, वह बिल्कुल साधारण था। लेकिन गुरु ने जो दिखाया, वह असाधारण है। गुरु की आंख से देखा। मालूम है मुझे कि सैकड़ों जन्म लग जाएंगे शायद वहां तक पहुंचते- पहुंचते, जो मैंने देखा है। लेकिन झलक मिल गई। अब मेरी श्रद्धा को कोई तोड़ न सकेगा। अब इतना मैं जानता हूं कि है, मंजिल है। स्वर्ण-शिखर बहुत दूर से दिखाई पड़े हैं। यात्रा दूभर होगी; शायद पहुंचूं, न पहुंचूं। राह में कहीं खो जाऊं, भटक जाऊं। ऐसी घड़ियां आएं, जब स्वर्ण-शिखर दिखाई पड़ने बंद हो जाएं। आज जो गुरु की आंख से देखा है, अपनी आंख से शायद दुबारा देख भी न पाऊं। लेकिन एक बात पक्की है कि वह है। और उसके होने का भरोसा राहगीर के कदमों की सामर्थ्य है।
कृष्ण से श्रद्धा मिली अर्जुन को, भरोसा मिला, अपने होने का विश्वास मिला। संदेह मिटा। अर्जुन अंत में कहता है, मेरे सब संशय गिर गए। मैं श्रद्धा को उपलब्ध हुआ हूं।
जिस दिन तुम भी कह सकोगे कि तुम्हारे सब संशय गिर गए और तुम श्रद्धा
को उपलब्ध हुए हो, उसी दिन तुम्हारे भीतर का अर्जुन सक्रिय हो जाएगा। लेकिन इसे तो हजारों वर्ष लगेंगे, जब लोग पहचान पाएंगे कि मैं किन अर्जुनों से बोल रहा था। उसमें तुम्हारी भी गिनती रहे, इसका ख्याल रखना।

दूसरा प्रश्नः भक्त भक्त ही बना रहेगा, भगवान कभी नहीं हो सकता। जैसा
कि इस्लाम, ईसाइयत और हिंदुओं में भी माधवाचार्य मानते रहे हैं। इस मत-प्रणाली की आधारभूमि क्या है? क्या इसका भी एक विधि, टेक्नीक की तरह उपयोग किया जा सकता है?

निश्चय ही! यह एक विधि है, सिद्धांत नहीं। सिद्धांत तो कहे नहीं जा सकते। सिद्धांत तो शब्दों में बंधते नहीं, अटते नहीं। सिद्धांत तो सदा भाषा के पार रह जाते हैं। जो भी कहा जाता है, वे विधियां हैं। और विधियों को अगर तुमने सत्य समझ लिया, तो तुम बड़े भटक जाओगे।
यह एक विधि है कि भक्त कभी भगवान नहीं हो सकता। इस विधि का राज क्या है? यह कोई सिद्धांत नहीं है; यह कोई अंतिम दशा नहीं है। भक्त निश्चित भगवान होता है। हो सकता है का सवाल ही नहीं; भक्त भगवान है। सिर्फ उसे पता नहीं है।

लेकिन वह भी एक विधि है कि भक्त भगवान है, और उसे उसका पता नहीं। और यह
भी एक विधि है कि भक्त भगवान नहीं हो सकता। दोनों के लाभ हैं, दोनों की हानियां हैं। वह ठीक से समझ लो। फिर तुम्हें जो जंच जाए।
इस्लाम, ईसाइयत और हिंदुओं के भी बहुत-से संप्रदाय, भक्ति संप्रदाय, मानते हैं कि भक्त कभी भगवान नहीं हो सकता। क्यों? क्योंकि अभी तुम अज्ञानी हो। अभी तो तुम भक्त भी नहीं हो, भगवान होना तो दूर। इस अज्ञान में अगर तुम्हें यह भ्रांति पकड़ जाए कि तुम भगवान हो सकते हो... ।
और यह भ्रांति पकड़ सकती है। क्योंकि जो विधि यह कहती है कि तुम भगवान
हो सकते हो, वह यह भी कहती है कि तुम भगवान हो सकते हो, क्योंकि तुम भगवान हो। अन्यथा तुम जो नहीं हो, कैसे हो सकोगे! नहीं से तो कुछ पैदा नहीं होता, शून्य से तो कुछ जन्मता नहीं।
बीज वृक्ष हो सकता है, क्योंकि मूलतः बीज वृक्ष है। कंकड़ को बो दो, खूब साज-सम्हाल करो, तो भी तो कंकड़ वृक्ष नहीं होगा। कंकड़ में है ही नहीं वृक्ष, तो कैसे होगा? आम का बीज बोओ, तो आम होता है; नीम का बीज बोओ, तो नीम होती है। नीम के बीज से आम पैदा तो नहीं होता। तो बात जाहिर है कि बीज में वृक्ष छिपा हुआ है, उसका ब्लू प्रिंट मौजूद है।
तो जो लोग कहते हैं, भक्त भगवान हो सकता है, वे यह भी कहेंगे कि भक्त भगवान है, तभी तो हो सकता है। जो तुम हो, वही हो सकते हो। अन्यथा तुम कैसे होओगे? छिपे हो, प्रकट हो जाओगे। बस, इतना ही फर्क होगा। अभी अव्यक्त हो, तब व्यक्त हो जाओगे। अभी भूमि के नीचे थे, तब भूमि के ऊपर आ जाओगे। बस इतना ही। अभी खोल में दबे थे, खोल टूट जाएगी। बस इतना ही। अभी सोए थे, तब जग जाओगे। बस इतना ही। अभी स्मरण न था, तब स्मरण आ जाएगा। लेकिन तुम हो।
इस विधि को मानने वाला एक खतरनाक मार्ग सुझा रहा है।
दूसरी विधि को मानने वाले कहते हैं कि भक्त भगवान नहीं हो सकता। क्योंकि अज्ञानियों को यह ख्याल भी दे देना, कि तुम भगवान हो सकते हो या तुम भगवान हो, खतरे से खाली नहीं है। क्योंकि अज्ञानी अगर इस बात को पकड़ ले, तो इससे केवल अहंकार निर्मित होगा। इससे न तो वह भक्त बनेगा और न भगवान बनेगा।
यह डर है। ज्ञान के खतरे हैं। ऐसे जैसे छोटे बच्चे को हम हाथ में तलवार दे दें। माना कि रक्षा के लिए दी है कि तू इससे अपनी रक्षा करना, कि कोई तुझ पर हमला करे, तो तू अपनी रक्षा कर लेना। लेकिन जिसको तुमने दी है, उसे अभी इतनी अक्ल भी नहीं है कि रक्षा क्या है! किससे करनी है!
और नंगी तलवार खतरनाक है। डर तो यही है कि इसके पहले कि कोई उस पर हमला करे, वह अपनी ही तलवार से खुद को नुकसान पहुंचा लेगा; हाथ-पैर काट लेगा। या हो सकता है, किसी पागलपन के क्षण में गरदन पर रखकर देखे कि कैसे गरदन कटती है। कटती भी है या नहीं, जरा जांच कर लें! बच्चे के हाथ में तलवार देना खतरनाक है।
तो भक्ति संप्रदाय कहते हैं कि यह बात कहना लोगों से कि तुम परमात्मा हो, खतरनाक है। वैसे ही तो वे अकड़े हुए हैं! वैसे ही तो अकड़ उनका प्राण ले रही है। कुछ नहीं है उनके पास, तब तो देखो उनकी अकड़ कितनी है! आकाश छू रही है। और तुम उनको कह रहे हो कि तुम भगवान हो। दो कौड़ी पास होती है, तो उनके पैर जमीन पर नहीं पड़ते। जरा तिजोरी में वजन आ जाता है, तो उनकी चाल बदल जाती है। जरा कपड़े-लत्ते धुले पहन लिए, तो सड़क पर उनको देखो, कैसे चलने लगते हैं! जरा खीसे में पैसे बजने लगे, आवाज होने लगी, तो वे सुनते हैं परम नाद, ओंकार सुनाई पड़ रहा है।
ऐसे मूढ़ों से यह कहना कि तुम परमात्मा हो, खतरे से खाली नहीं है। शायद बच्चा तो तलवार से बच जाए, ये मूढ़ न बच सकेंगे। और यह डर है। यह डर बिल्कुल निश्चित है। फिर बचा ही क्या?
इसलिए इस मुल्क को, जहां वेदांत ने बड़ी ऊंचाइयां लीं... । वेदांत का सार ही यही है कि तुम ब्रह्म हो। अहं ब्रह्मास्मि! तुम परम हो। तुमसे पार कुछ भी नहीं। परिणाम क्या हुआ?
ये अहं ब्रह्मास्मि को कहने वाले लोग रूपांतरित तो नहीं हुए, पतित हुए। भयंकर पतन हुआ। जो संन्यासी कहते हैं अहं ब्रह्मास्मि, तुम उनकी अकड़

देखो। विनम्रता तो नहीं दिखाई पड़ती। ब्रह्म की विनम्रता तो नहीं दिखाई पड़ती, अहंकार की अकड़ दिखाई पड़ती है।
ब्रह्म भी अहंकार का आभूषण हो गया है। वह मैं ही कह रहा है कि मैं ब्रह्म हूं। और ब्रह्म होने की शर्त ही यह है कि जब मैं मिट जाए, तभी कोई ब्रह्म होता है।
भक्त भगवान नहीं होता। जब भक्त मिट जाता है, तब भगवान होता है। जब मैं
खो जाता है, तभी संभावना उठती है इस नाद की, अहं ब्रह्मास्मि! इसके पहले नहीं।
लेकिन मुश्किल है। अहं ब्रह्मास्मि की अकड़ तो आ जाती है, अहंकार तो जाता नहीं। उलटा अहंकार और सुरक्षित हो जाता है।
इस विधि के खतरे हैं, इस विधि के लाभ भी हैं। खतरा तो यह है कि अहंकार पकड़ ले। और लाभ यह है कि अगर यह भाव तुम्हें पूरी तरह से पकड़ ले कि मैं ब्रह्म हूं, तो अहंकार इतनी छोटी चीज है और ब्रह्म इतना विराट भाव है, तो वैसी ही घड़ी आ जाएगी अहंकार के लिए, जैसे छोटा बच्चा रबर के गुब्बारे में हवा भरता जाता है, भरता जाता है, भरता जाता है। तुम पूरा आकाश थोड़े ही गुब्बारे में भर सकते हो। गुब्बारा फूट जाएगा।
जब ब्रह्म का भाव तुममें भरेगा, तो अहंकार का पतला-सा छोटा-सा रबर का गुब्बारा, उस की ताकत कितनी! सीमा कितनी! आंगन भी तो उसमें समा नहीं सकता, इतना बड़ा आकाश! तुम भरते गए और कहते गए, अहं ब्रह्मास्मि, अहं ब्रह्मास्मि... । एक घड़ी आएगी कि यह फुग्गा फूट जाएगा। यह फुग्गा ऐसे फूट जाएगा जैसे कि पानी का बबूला फूट जाता है।
वह तो प्रक्रिया है। वह विधि है। अगर ठीक चले, तो यह होगा। अगर जरा ही चूक गए, तो तुम अपने पानी के बबूले को ही ब्रह्म-भाव समझ लोगे। वह खतरा है। इसलिए भक्त कहते हैं, ज्ञान की चर्चा में मत पड़ो। वे कहते हैं, भक्त कभी भगवान नहीं होगा। यह अहंकार से बचाने की विधि है, कि भक्त भक्त ही रहेगा। परमात्मा के चरण तक पहुंच जाए, काफी है।
क्यों चरण तक काफी है? क्योंकि चरण तक तुम रहोगे, तो अहंकार के उठने का उपाय न रहेगा। इसलिए तो हम भारत में चरण छूते हैं। गुरु का चरण छूते हैं; पिता का, मां का चरण छूते हैं; वृद्धजनों का चरण छूते हैं। ताकि तुम्हें झुकने का अभ्यास हो। ये सब अभ्यास हैं परमात्मा के चरण छूने का।
जो तुमसे उम्र में ज्यादा है, वह तुमसे थोड़ा सीनियर परमात्मा है। थोड़ा-सा ज्यादा रह चुका है, अनुभवी है; पैर छुओ। जो तुमसे थोड़ा ज्यादा जानता है, उसके पैर छुओ। जिसने तुम्हें जन्म दिया है, उस पिता के पैर छुओ, मां के पैर छुओ। बड़े भाई के पैर छुओ, ज्ञानी के पैर छुओ, गुरुजनों के पैर छुओ।
यह सिर्फ अभ्यास है, ताकि तुम पैर छूने में कुशल हो जाओ, ताकि तुम झुकने में निष्णात हो जाओ, ताकि अहंकार को हटाने में तुम्हारी योग्यता बढ़ जाए। तभी तो एक दिन तुम परमात्मा के चरण छुओगे और अपने को बिल्कुल चरणों में रख दोगे।
बस, चरणों तक पहुंच गए, इतनी ही भक्त की आकांक्षा है। भक्त कहता है, इससे पार की हमें चाह नहीं। हम तेरा सिर नहीं होना चाहते, क्योंकि सिर से तो हम वैसे ही परेशान हैं। छोटे सिर से इतने परेशान हैं, तेरा बड़ा सिर और मुश्किल में डाल देगा। हम चरण तक! चरण काफी हैं। बहुत मिल गया, चरण मिल गए। और क्या चाहिए!
तो भक्त कहते हैं, न तेरा वैकुंठ चाहिए, न तेरा ब्रह्मज्ञान चाहिए, न मोक्ष, न निर्वाण, नहीं कुछ। बस, तेरी याद हृदय में बनी रहे और तेरे चरण न छूटें। और कोई मांग नहीं है। कुछ नहीं चाहिए। बस, तेरे चरण हाथ से न छूटें, इतना चाहिए।
क्या कह रहा है भक्त? भक्त यह कह रहा है, बस मेरा विनम्र भाव न छूटे; अहंकार भाव न पकड़े। क्योंकि वैकुंठ में अकड़ जाऊंगा, मुझे वैकुंठ मिल गया, मोक्ष मिल गया।
जिनको तुम संन्यासी कहते हो--शिवानंद, अखंडानंद, इत्यादि-इत्यादि-- अगर ये सब मोक्ष में पहुंचते हैं, तो बड़ा उपद्रव मचता होगा वहां। अखंड अखाड़ा खड़ा हो जाता होगा उपद्रवियों का। अहंकार से भरे हुए लोग, अकड़े हुए

लोग। और यहां तो इनको शिष्य भी मिल जाते हैं, वहां शिष्य भी न मिलेंगे।
वहां सभी स्वामीजन हैं। वहां कौन किसको झुकेगा? वहां लोग झुकना ही भूल गए होंगे। मोक्ष में तो सब उपद्रवी इकट्ठे हो गए होंगे।
भक्त कहता है, तुम्हारा मोक्ष तुम्हीं सम्हालो। ज्ञानियों को दे दो।
हमें तुम्हारे चरण काफी हैं। बस, हम चरणों में पड़े रहें। चरणों से च्युत मत करना, इतनी भक्त की आकांक्षा है।
मगर इसी आकांक्षा में भक्त को वैकुंठ उपलब्ध हो जाता है। क्योंकि विनम्र के लिए मोक्ष है। इसलिए यह विधि है। निरहंकारी के लिए वैकुंठ है, यह विधि है। नहीं जिसने मांगा चरणों से ज्यादा, उसे पूरा परमात्मा मिल जाता है। भक्त भगवान हो जाता है। बिना मांगे, बिना कहे, वह घटना घटती है आखिरी में।
इस विधि से भी, भक्ति से भी भक्त भगवान ही होता है। क्योंकि पैर में तो फासला बना रहेगा। फासले में तो विरह रहेगा, आग जलेगी। प्रेमी तब तक तृप्त नहीं हो सकता, जब तक एक न हो जाए। जरा-सा भी फासला काफी फासला मालूम होगा। या तो भक्त भगवान में गिर जाए या भगवान भक्त में गिर जाए, तब तक बेचैनी रहेगी। पर यह घटना घटती है।
भक्त कहते हैं, इसकी चर्चा मत करो। रामानुज, निम्बार्क, वल्लभ, वे कहते हैं, इसकी बात मत करो। यह तो अपने से हो जाता है, तुम इसकी चर्चा ही मत करो। तुम सौ डिग्री तक पानी गरम करो, भाप की चर्चा मत करो। वह तो अपने से हो जाता है। उसकी कोई चर्चा करनी है? बात ही मत उठाओ। क्योंकि उसकी चर्चा अज्ञानी सुन ले, तो खतरा है। वह पहले ही से अकड़ जाएगा। अकड़ गया, तो पहुंचने से रुक जाएगा।
तो इस विधि का लाभ है एक कि विनम्रता को जन्माती है। लेकिन खतरा भी है। और खतरा यह है कि यह सत्य नहीं है। यह विधि है, डिवाइस है, लेकिन सत्य के अनुकूल नहीं है। और जो सत्य के अनुकूल नहीं है, कहीं वह तुम्हें जोर से न पकड़ ले। नहीं तो तुम वंचित रह जाओगे। कहीं यह बात तुम्हारा आधार न हो जाए कि भक्त भगवान को पा ही नहीं सकता; भक्त भक्त ही रहेगा, भगवान हो ही नहीं सकता। अगर यह बात तुम्हें बहुत आग्रहपूर्ण रूप से पकड़ ले, तो यही कारागृह हो जाएगी। तो तुम चरणों में ही पड़े रह जाओगे। तुम उससे आगे न जा सकोगे।
तो यह विधि कहीं तुम्हारा कारागृह न बन जाए, इसलिए ज्ञानी कहता है, यह स्मरण रखना कि यों तो तुम भगवान ही हो; थोड़े भटक गए हो, राह से च्युत हो गए, इधर-उधर हो गए हो। लेकिन हो तो भगवान ही। इसलिए आखिरी बात तो ख्याल में रखना। अन्यथा तुम पूजा-पत्री में ही अटक जाओगे। तुम मंदिर-मस्जिद में ही उलझ जाओगे। और तुम वहीं बस वही गुणगान करते रहोगे भक्ति का कि तेरे चरण काफी हैं।
उतने से राजी मत होना। क्योंकि उसमें तुम्हारी नियति पूर्ण नहीं हो रही है। और परमात्मा भी उससे राजी नहीं होगा। परमात्मा भी तभी राजी होगा, जब तुम्हारा परमात्म-भाव प्रकट हो, जब तुम मूल-स्रोत में गिर जाओ।
तो कहीं यह सिद्धांत, यह शास्त्र तुम्हें पकड़ न ले जोर से।
वह पकड़ लेगा। वह भक्तों को इतने जोर से पकड़ लेता है कि वे ज्ञानियों
की बात सुनने से डरते हैं।
इस्लाम ने तो मंसूर की हत्या कर दी, क्योंकि उसने कहा, अनलहक! मैं परमात्मा हूं! वह भक्त था। चरणों को ही पकड़-पकड़कर चला था। लेकिन जब पहुंचा, तो उसके मुंह से निकल गया, अनलहक! अहं ब्रह्मास्मि! मैं ब्रह्म हूं!
बस, मुसलमानों ने कत्ल कर दिया उसका कि यह आदमी कुफ्र बोल रहा है, काफिर है। यह बात तो सच हो ही नहीं सकती, क्योंकि शास्त्र में लिखा है कि चरणों के पार जाने का कोई उपाय नहीं है। और यह कह रहा है कि मैं खुद ही हो गया। यह अहंकारी है।
अब यह दूसरा खतरा है कि तुम ज्ञानी को अहंकारी समझ लो, उसकी हत्या कर डालो। और इस्लाम ने जिस दिन मंसूर को मारा, उसी दिन इस्लाम मर गया; इस्लाम की जान चली गई; प्राण चला गया; कचरा हो गया; क्योंकि मंसूर पैदा होने की हिम्मत खो गई। फिर कोई दूसरा मंसूर पैदा होने का साहस खो दिया। और मंसूर, वही तो नमक है धर्म का। उसके बिना तो सब बेस्वाद हो जाता है।

कोई चंदन, तिलक, टीका लगाकर घूमने वाले लोगों से थोड़े ही धर्म बनता है। धर्म तो उनसे ही बनता है, जिनमें परमात्मा आविर्भूत हुआ है। और जिनके भीतर से अहर्निश उदघोष उठ रहा है कि मैं ब्रह्म हूं। बस, उन्हीं से धर्म में जान है, उन्हीं से प्राण है। भीड़-भड़क्का उनका नहीं है। वे पताका की तरह हैं, जो आकाश में उठी है। स्वर्ण-शिखरों की तरह हैं, जो मंदिर पर चढ़े हैं। माना कि बुनियाद में जो पत्थर पड़े हैं, वे भी मंदिर को सहारा देते हैं। शिखर उनके बिना भी नहीं हो सकता। लेकिन शिखर के बिना मंदिर कैसा बुरा लगेगा! कैसा अधूरा लगेगा!
इस्लाम बिना शिखर का मंदिर है। जिस दिन मंसूर को मारा, उसी दिन शिखर गिर गया। मंसूर को मारने का मतलब यह हुआ कि तुम भूल ही गए कि यह विधि विधि थी, सिद्धांत न था। सिद्धांत तो मंसूर ही था। आखिरी घड़ी में सभी भक्तों को ऐसा ही लगेगा।
ईसाइयत ने भी बड़ी मुश्किल में डाल दिया है। तो ईसाइयत में संत होना बंद ही हो गए। आधी दुनिया ईसाई है, लेकिन संत होना बंद हो गए। पादरी- पुरोहित पैदा होते हैं, संत पैदा होते ही नहीं। हो नहीं सकता; होने नहीं देंगे वे।
इकहार्ट हुआ जर्मनी में एक फकीर, मंसूर जैसा फकीर ईसाइयत में पैदा हुआ। उसको ईसाइयत अंगीकार न कर पाई। पोप ने संदेशा भेजा कि यह बातचीत बंद कर दो, अन्यथा खतरा होगा। क्योंकि वह ईश्वर की बातचीत ऐसे करने लगा, जैसे वह ईश्वर हो गया हो। वह वही भाषा बोलने लगा, जो उपनिषदों की है। वह कहने लगा, मैंने ही बनाया संसार को। ये सब चांद-तारे मेरा ही खेल है। सृष्टि के पहले दिन मैंने ही गति दी थी। सृष्टि के अंतिम दिन मैं ही सब को सिकोड़ लूंगा।
वह ठीक कह रहा था। यह भक्त की आखिरी दशा है। वह प्रार्थना कर-करके इस घड़ी में पहुंचा था। जब तक प्रार्थना करता था चर्च में, ठीक था; फिर उसने प्रार्थना बंद कर दी। क्योंकि वह उसी घड़ी में आ गया, जिसको कबीर कहते हैं कि कौन किसको पूजे? दोनों एक हो गए, दुई मिट गई।
जब उसने घोषणा कर दी कि दुई मिट गई, कोई चर्च नहीं है, कोई पूजा नहीं है; किसकी पूजा करनी? तब खतरा शुरू हो गया। यह आदमी खतरनाक बातें कह रहा है। यह आदमी या तो भ्रष्ट हो गया या परम ज्ञान को उपलब्ध हो गया। और साधारणजन इसको भ्रष्ट ही समझेंगे।
पोप ने संदेश भेजा कि तुम यह बात बंद कर दो। यह चर्चा नहीं चलेगी। और इकहार्ट जैसे परम संत को चर्च के बाहर निकाल दिया गया, एक्सपेल कर दिया गया। वह ईसाई न रहा, जो परम ईसाई था, जो जीसस जैसा ईसाई था!
इसलिए मैं कहता हूं कि अगर क्राइस्ट फिर से पैदा हों, तो ईसाई न हो पाएंगे। उनको ईसाई धर्म बाहर कर देगा। इकहार्ट को कर दिया।
और इकहार्ट के वचन ऐसे कीमती हैं, जैसे कबीर के। अगर ईसाइयत में कोई आदमी हुआ कबीर के मुकाबले, तो इकहार्ट।
फिर एक आदमी हुआ जैकब बोहमे। चमार था, कुछ पढ़ा-लिखा न था। कई बार ऐसा हुआ है कि पढ़े-लिखे चूक जाते हैं, क्योंकि पांडित्य जरा जरूरत से ज्यादा बोझिल हो जाता है। गैर पढ़े-लिखे पा लेते हैं। जैकब बोहमे भी कबीर जैसा गैर पढ़ा-लिखा था; कुछ नहीं पढ़ा-लिखा था। मगर वह ऐसी बातें बोलने लगा कि पंडित झेंप जाएं। उससे ऐसे शब्दों का उच्चार होने लगा। तत्क्षण ईसाइयत ने उसे बाहर किया, निकाल बाहर किया कि वह ईसाई नहीं है। भ्रष्ट हो गया।
ईसाइयत ने जिनको संत घोषित किया है, उनमें से कोई संत नहीं है। और जिनको उसने बाहर किया, उनमें संत हैं। विधि ने गरदन पर फंदा बना लिया, तो खतरा है।
ध्यान रखना, हर विधि का लाभ है, हर विधि का खतरा है। कोई विधि बिना खतरे के नहीं है। क्यों? क्योंकि जिससे भी लाभ हो सकता है, उससे हानि हो ही सकती है।
कोई विधि होम्योपैथी की दवा नहीं है। होम्योपैथी की दवा में हानि नहीं होती, वे कहते हैं; लाभ होता है, हानि नहीं होती। यह बात फिजूल है। क्योंकि जिस चीज से भी लाभ होगा, उससे हानि हो ही सकती है। नहीं तो लाभ भी नहीं होगा।

जिस तलवार से तुम रक्षा कर सकते हो, उसी तलवार से मारे भी जा सकते हो। जिस ध्यान से तुम पहुंच सकते हो, उसी ध्यान से अटक भी सकते हो। जिस सीढ़ी से तुम ऊपर जाते हो, वही सीढ़ी तुम्हें रोकने के लिए जंजीर हो सकती है। गुरु सहारा बन सकता है, गुरु बाधा बन सकता है। शास्त्र पहुंचा सकते हैं, शास्त्र अटका सकते हैं।
इसलिए बड़ी खुली आंखें, बड़ा सजग हृदय चाहिए। तो तुम सभी विधियों से पार
हो सकते हो, कोई भी विधि काम देगी।
इसलिए तो मैं सभी विधियों पर बोले चला जाता हूं। मेरा कोई आग्रह नहीं है। तुम्हें मैं बता देता हूं कि यह इसका खतरा है, यह इसका लाभ है। खतरे से बचना। कोई भी विधि चुन लो।
अगर तुम्हें ज्ञान का मार्ग ठीक लगता है, तो तुम ईश्वर हो। और भक्त भगवान होता है, क्योंकि भक्त भगवान है।
अगर तुम्हें डर लगता है अपने अहंकार से कि यह तो हमें दिक्कत में डाल देगा, तो छोड़ो। कोई अनिवार्यता नहीं है। भक्त भगवान नहीं हो सकता; कभी नहीं हो सकता। क्योंकि भगवान भगवान है, भक्त भक्त है। भगवान स्रष्टा है, भक्त तो सृजन है, किया हुआ है, उसके हाथ का खेल है। कैसे भक्त भगवान हो सकता है? पूजा करो, अर्चना करो, चरणों तक जाओ, बस, इससे आगे जाने का कोई उपाय नहीं है।
लेकिन विधि को पकड़ मत लेना। क्योंकि जब तुम चरणों तक पहुंच जाओगे, तो परमात्मा उठाकर तुम्हें आलिंगन करने लगे, तब तुम मत कहना कि रुको, यह हो ही नहीं सकता। हम पहले से ही मानते हैं कि भक्त कभी भगवान नहीं हो सकता। यह तुम क्या कुफ्र कर रहे हो? काफिर कहीं के! पड़ा रहने दो मुझे चरणों में। मुझे तुम्हारे हृदय का आलिंगन नहीं चाहिए। न मुझे वैकुंठ चाहिए। क्योंकि मेरे गुरु ने यही सिखाया है।
तब तुम्हारी विधि परमात्मा से बड़ी हो गई। कोई विधि परमात्मा से बड़ी न हो, इसका ख्याल रखना। जीवन बड़ा है, सभी विधियां छोटे-छोटी हैं। विधियां तो रास्ते हैं, जीवन तो पूरा आकाश है। किसी शास्त्र से जीवन छोटा नहीं है, इसे याद रखना।
और सब सिद्धांत तुम्हारे लिए हैं, तुम किसी सिद्धांत के लिए नहीं हो।
सब सिद्धांतों का उपयोग कर लेना और फेंक देना। सार निकाल लेना, असार को छोड़ देना। अन्यथा तुम पाओगे कि जिसको तुमने गले का हार समझकर पहना था, वही आखिरी में फांसी हो गई। बहुत लोगों को मैं ऐसी फांसी में अटके देखता हूं।

अब सूत्रः
तथा हे अर्जुन, देवता, द्विज, गुरु और ज्ञानीजनों का पूजन एवं पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा, यह शरीर संबंधी तप कहा जाता है। तथा जो उद्वेग को न करने वाला, प्रिय और हितकारक एवं यथार्थ भाषण है
और जो स्वाध्याय का अभ्यास है, वह निःसंदेह वाणी संबंधी तप कहा जाता है। तथा मन की प्रसन्नता, शांत भाव, मौन, मन का निग्रह और भाव की पवित्रता, ऐसे यह मन संबंधी तप कहा जाता है।
कृष्ण कहते हैं, तप तीन प्रकार के हैं। क्योंकि तुम्हारा व्यक्तित्व तीन परतों में बंटा है। और उन तीनों परतों के तप हैं। और ठीक से समझ लेना चाहिए तपश्चर्या को। क्योंकि बहुतों ने बड़े गलत ढंग से समझा है।
अगर आलसी व्यक्ति, तमस से भरा व्यक्ति तप में उतरता है, तो उसके तप के ढंग बड़े अनूठे होते हैं। वह तप भी करता है, तो तप में उसके प्रमाद की ही छाया होती है, उसके आलस्य की और तमस की ही। वह तप कर सकता है। जैसे कि वह एक ही जगह बैठा रह सकता है, जो कि राजसी को करना मुश्किल होगा।
एक गांव में मैं मेहमान था। लोग मेरे पास आए, उन्होंने कहा, गांव में
एक परम योगी हैं। उनका नाम है, खड़ेश्री बाबा। वे खड़े ही रहते हैं। बैठते ही नहीं, सोते ही नहीं। रात सोते भी हैं, तो दोनों हाथ बैसाखियों पर रखकर और छप्पर से लटकती एक रस्सी को पकड़कर सो जाते हैं। उनके पैर--क्योंकि दस साल हो गए उनको वैसा करते--पैर हाथी-पांव की बीमारी में जैसे हो जाते हैं, वैसे हो गए हैं। अब तो वे बैठना भी चाहें, तो बैठ नहीं सकते। वे तो अकड़ गए। सारे

शरीर से खून और मांस पैरों में इकट्ठा हो गया है। वे चलना भी चाहें, तो अब चल नहीं सकते। मगर लोगों में उनका भारी प्रभाव है।
मैंने लोगों से पूछा, माना कि खड़े हैं दस साल से। लेकिन और क्या मामला है? उन्होंने कहा, और क्या? यही तो तप है। और चाहिए भी क्या?
ऐसे ही बाजार से निकलते वक्त मैंने भी उन्हें देखा झाड़ के नीचे, जहां
वे खड़े हैं। मुंह पर मक्खियां उड़ रही हैं, एक घिनौना व्यक्तित्व, गंदा, तमस से भरा हुआ। लेकिन यह तपश्चर्या है!
यह आदमी कुछ भी नहीं कर रहा है। लेकिन हजारों रुपए पूजा में चढ़ते हैं; मंदिर बनाया जा रहा है; हजारों लोग आते हैं, जाते हैं। यह आदमी अपना सिर्फ खड़ा है। प्रशंसा के गीत चल रहे हैं; पूजा-पत्री हो रही है इसकी।
इस आदमी के चेहरे को भी तो देखो! इस पर सत्व की कोई भी तो छाप नहीं दिखाई पड़ती। फूल जैसी प्रफुल्लता होनी चाहिए सत्व में। पक्षियों जैसे उड़ने का हलकापन होना चाहिए सत्व में। गंगोत्री से उतरती गंगा की धारा जैसी निर्दोष दशा होनी चाहिए। एक कुंवारापन होना चाहिए आंखों में, कि तुम पास जाओ, तो तुम्हें लगे कि तुम हलके हो गए, स्नान हो गया।
इस आदमी के पास जाकर तुम्हें लगेगा कि घर से तो स्वच्छ आए थे, गंदे हो गए। यह आदमी एक रोग की तरह वहां खड़ा है। और सब तरह की गंदगी फैला रहा है। क्योंकि वहीं खड़े होकर पेशाब करता है, उसको भक्तगण झेल रहे हैं। वहीं खड़े होकर पाखाना करता है, मक्खियां न होंगी इकट्ठी, तो क्या होगा? वहीं खाना खाता है। सब वहीं चल रहा है; क्योंकि वह जगह छोड़ते ही नहीं। यह भयंकर तमस की अवस्था है। यह तप नहीं है।
फिर राजसी तपस्वी हैं, जिनके तप का कुल जोड़ रजस है। भागते फिरते हैं, दौड़ते फिरते हैं।
एक सज्जन मेरे पास आए; संन्यासी हैं। मैंने पूछा कि क्या कर रहे हैं? पदयात्रा! पदयात्रा किसलिए कर रहे हैं? कुछ मतलब? उन्होंने कहा, नहीं, यही मेरी तपश्चर्या है।
एक खड़े हैं, वे खड़ेश्री बाबा। एक ये पदयात्री बाबा; ये पदयात्रा कर रहे हैं! इनको खड़े होने में चैन नहीं है। बैठ नहीं सकते। आज यहां हैं, कल वहां हैं। वे कहने लगे कि मैं तो कोई पच्चीस साल से चल ही रहा हूं। यही मेरी तपश्चर्या है, रुकना नहीं है।
जाओगे कहां? चल भी लोगे तो क्या होगा? कहां पहुंच जाओगे चलकर? नाहक क्यों जमीन को नाप रहे हो?
लेकिन उनके भी मानने वाले हैं। वे कहते हैं, साधु हो तो ऐसा। तीन रात
से ज्यादा नहीं रुकता कहीं भी। वर्षा हो, सर्दी हो, धूप हो, वह भागा चला जा रहा है।
यह भी तो पूछो कि यह जा कहां रहा है? ऐसे ही चलते-चलते मर जाएगा, गिर जाएगा। यह रुक नहीं सकता।
रजस गति है, तमस अगति है। तामसी चल नहीं सकता, रुका रहता है। धक्का- मुक्की करो, तो थोड़ा-बहुत ले जाओ। बाकी वह जा नहीं सकता अपने से। उसने खड़े होने का रास्ता खोज लिया है; वह भी तपस्वी हो गया!
यह रुक नहीं सकता। यह दौड़ने वाला, बचकानी बुद्धि का, रजस से भरा हुआ व्यक्ति है, इसको ठहरना नहीं आता। यह भाग रहा है। अगर इसको तुम रोक दो, तो मन में भाग-दौड़ जारी रखेगा।
पूरब में लोग आलसी हैं, पश्चिम में लोग राजसी हैं। मेरे पास पश्चिम से
जो लोग आते हैं, आज आए, कल गोवा जा रहे हैं। फिर दो-चार दिन में गोवा से लौट आए, अब काठमांडू जा रहे हैं। फिर दो-चार दिन में काठमांडू से लौट आए, अब मनाली जा रहे हैं। काहे के लिए जा रहे हो? काठमांडू किसलिए? बस, एक ख्याल है। बहुत दिन से ख्याल है, काठमांडू जाना है।
करोगे क्या काठमांडू जाकर? जो काठमांडू में हैं, वे कहां पहुंच गए हैं? कोई गोवा कोई मोक्ष है? लेकिन गोवा काबा बन गया है, काशी बन गया है।
चले जा रहे हैं, और लोग जा रहे हैं, और रुक नहीं सकते हैं।
एक भाग-दौड़ होती है राजसी के मन में। वह भाग-दौड़ को ही अपनी यात्रा बना लेता है।

हिंदू संन्यासियों में मुझे नब्बे प्रतिशत संन्यासी तामसी मालूम पड़े। और जैन संन्यासियों में नब्बे प्रतिशत राजसी मालूम पड़े। इसलिए जैन संन्यासी रुकेगा नहीं, यात्रा ही करता रहता है, पदयात्रा! चार महीने बरसात में रुकना पड़ता है, वह भी कष्ट हो जाता है। भागता रहता है। हिंदू संन्यासी जमकर बैठ जाते हैं। इसलिए जैन संन्यासियों ने आश्रम नहीं बनाए। क्योंकि आश्रम राजसी बनाए कैसे? उसको फुरसत कहां है एक जगह बैठने की? वह परिव्राजक है।
इसका कारण है। क्योंकि जैन और बौद्ध, दोनों धर्म क्षत्रियों से आए। क्षत्रिय यानी राजस। जैनियों के चौबीस तीर्थंकर क्षत्रिय हैं। बुद्ध भी क्षत्रिय हैं। तो राजस सूत्र है उनका। न तो बुद्ध ने आश्रम बनाए, न जिनों ने आश्रम बनाए। दोनों ने परिव्राजक पैदा किए, चलते रहो।
बुद्ध ने तो अपने शिष्यों से कहा, चरैवेति! चरैवेति! चलते रहो, चलते रहो; जाओ, विहार करो। विहार का मतलब, जाओ, चलो, घूमो। एक पूरे प्रांत का नाम बिहार हो गया, बुद्ध के भिक्षुओं के घूमने के कारण। उन्होंने इतनी परिक्रमा की इस जगह की कि पूरा प्रांत बिहार कहलाने लगा। बिहार का मतलब, परिक्रमा कर रहे हैं लोग, घूम रहे हैं। किसलिए? अब भी जारी है।
हिंदू संन्यासियों ने आश्रम बनाए, विहार नहीं किया। तो उन आश्रमों में खूब संपदा इकट्ठी हो गई और खूब तमस चलता है; चलेगा।
जैन संन्यासी चलते रहे। चलते-चलते उन्होंने ऐसी स्थिति बना ली कि सब साधना खो गई, चलना ही साधना रह गई। क्योंकि रुकोगे नहीं, साधना करोगे कैसे?
अगर मैं किसी जैन संन्यासी को कहता हूं कि भई, एक सालभर रुककर ध्यान
कर लो। वे कहते हैं, रुक नहीं सकते।
अब यात्रा में कैसे ध्यान करोगे? आज यह गांव, कल दूसरा गांव, परसों तीसरा गांव; ज्यादा समय पैदल चलने में जाता है। फिर जो थोड़ा-बहुत समय मिलता है, वह विश्राम भी करना पड़ता है; क्योंकि कल उठकर फिर चल देना है। फुरसत नहीं है ध्यान की।
तो जैन धर्म से ध्यान और योग खो गए। क्योंकि उसके लिए तो थोड़ी सुविधा चाहिए कि तुम घड़ी, दो घड़ी बैठ सको विश्राम से, आंख बंद कर सको। उसकी सुविधा ही न रही।
तो जैन संन्यासी क्या कर रहा है? न तो वह योग साधता, न वह ध्यान साधता। बस, वह एक गांव से दूसरे गांव जाता है। और लोगों को समझाता है कि ध्यान करो, योग करो, जो उसने खुद कभी नहीं किए। क्योंकि उसको फुरसत ही नहीं करने की। जो उसकी मान लेंगे, वे भी उसी जैसे किसी दिन पदयात्री हो जाएंगे, जब उनको जोश चढ़ जाएगा। वे भी नहीं करेंगे। क्योंकि गृहस्थी क्या ध्यान करे! क्या योग करे! संन्यासी करता है! और संन्यासी को फुरसत नहीं रुकने की। एक पागलपन है, होश नहीं है।
सत्व को उपलब्ध व्यक्ति रजस और तमस के बीच एक संतुलन निर्धारित कर लेता है। जब जरूरी होता है, वह विश्राम करता है। जब जरूरी होता है, तब आश्रम बनाता है। जब जरूरी होता है, तब परिव्राजक होता है।
उचित होगा कि संन्यासी जब जवान हो, तब परिव्राजक हो, तब रजस महत्वपूर्ण होता है। लेकिन जैसे-जैसे वृद्ध होने लगे, आश्रम में थिर हो जाए। खबर पहुंचानी हो लोगों तक, तो चले। जब खबर पहुंच जाए और लोग आने लगें, तब न चलता रहे, तब बैठ जाए। क्योंकि अब लोग आने लगे, अब उनको कुछ करवाना है। खबर ही तो नहीं पहुंचाते रहना है जिंदगीभर। उनको कुछ करवाना है।
पंद्रह साल तक मैं दौड़ता रहा। पैदल नहीं चला। क्योंकि पैदल चलता, तो डेढ़ सौ साल चलता, तब इतना काम हो पाता। उसकी संभावना नहीं है। क्योंकि चलना ही अगर लक्ष्य हो, तब तो ठीक है। पैदल ही चलना ठीक है। लेकिन चलना तो कोई लक्ष्य नहीं है। खबर पहुंचानी थी लोगों तक; पहुंच गई खबर।
अब मैं बैठ गया। अब जरूरी है कि वे मेरे पास आ जाएं; बैठें। और जो मैं चाहता हूं, वह कर लें। उसके लिए तो बैठना जरूरी है, शांत हो जाना जरूरी है, गति को रोक लेना जरूरी है।
यह कृष्ण अब तप की व्याख्या कर रहे हैं। यह व्याख्या सत्व के हिसाब से है। इसका रजस रूप भी होगा, इसका तमस रूप भी होगा। पहले सत्व के हिसाब से

व्याख्या समझ लें; क्योंकि वह तपश्चर्या का शुद्धतम रूप है; वह निखरा सोना है, कंचन है।
हे अर्जुन, देवता... ।
जहां-जहां दिव्यता का अनुभव हो, वहीं-वहीं देवता। देवता तो प्रतीक शब्द है। ठीक अगर समझना हो, तो दिव्यता। वह गुण है। जहां-जहां दिव्यता का अनुभव हो!
कहां-कहां हो सकता है? अगर आंख हो, तो सब जगह होगा। आंख न हो, तो मुश्किल पड़ेगी। अन्यथा सुबह तुम उठे, रात का अंधेरा टूटा। तमस गया। सूर्य उगने लगा। क्या तुमने कभी सूर्य में देवता देखा? तुम्हें पता ही नहीं है। रात को जिसने तोड़ दिया, अंधेरे को जिसने मिटा दिया, वह दिव्य है। इसलिए हिंदू उसे देवता कहते हैं। और सूर्य को नमस्कार करते हैं।
यह तो प्रतीक है। ऐसे ही तुम्हारे भीतर भी किसी दिन रात टूटेगी, सूरज उगेगा। लेकिन इस प्रतीक को तो थोड़ा नमस्कार करो। ताकि भीतर के नमस्कार के लिए द्वार खुले। इस बाहर के सूरज को झुको, ताकि भीतर के सूरज की भी हिम्मत बढ़े कि अगर पैदा हो जाऊं तो तुम इनकार न कर दोगे, कि पैदा हो जाऊं तो तुम राजी हो, कि तुम्हें बोध है। इसलिए सूर्य देवता है।
ये तो प्रतीक हैं काव्य के। कोई सूर्य देवता है, ऐसा नहीं। कुछ उसकी पूजा करने से तुम्हें मिल जाएगा, ऐसा नहीं है; कि उसको तुम राजी कर लोगे, तो वह तुम पर कुछ ज्यादा किरणें बरसाएगा और दूसरों पर कुछ कम, ऐसा नहीं है; कि पापी की तरफ अंधेरा कर देगा और पुण्यात्मा पर रोशनी कर देगा, ऐसा भी नहीं है। सूरज कोई व्यक्ति थोड़े ही है। अगर तुम ठीक से समझो, तो दिव्यता तुम्हारी समझ है, सूरज का होना नहीं। और तुम्हें जो लाभ होगा, वह तुम्हारी समझ के कारण होगा, सूरज के कारण नहीं।
जब तुम सुबह सूरज को उगते देखकर नमस्कार के भाव से भर जाते हो, नमन करते हो, वह नमन इस बात की घोषणा है कि अंधकार को तोड़ना है, प्रकाश को लाना है। वह इस बात का तुम्हारा अंतर्भाव है, तमसो मा ज्योतिर्गमय! कि मुझे अंधकार से प्रकाश की तरफ ले चल, हे परमात्मा! मैं प्रकाश को नमस्कार करता हूं, प्रकाश के स्रोत को नमस्कार करता हूं। यह देवता है, इसने बाहर की रात मिटाई। मुझे भीतर का कुछ पता नहीं। जैसे बाहर की रात मिट गई, वैसे मेरी भीतर की रात को भी मिटा। तमसो मा ज्योतिर्गमय! मुझे ले चल अंधेरे से प्रकाश की तरफ।
यह तुम्हारा भाव है। तुम्हारे भाव से तुम्हें लाभ है। सूरज तुम्हें कोई लाभ नहीं पहुंचा देगा। न सूरज तुम्हें कोई हानि पहुंचाता है। लेकिन तुम्हारी भाव-दशा तुम्हें लाभ पहुंचाएगी, हानि पहुंचाएगी।
जिन्होंने सूर्य को नमस्कार किया, बड़े कुशल लोग हैं। उन्होंने अपने भीतर एक परिवेश पैदा कर लिया, एक बीजारोपण किया।
तुमने वृक्ष में फूल खिले देखे और तुम्हारे भीतर एक नमन आया, तुम झुके। वह भी देवता हो गया। इसलिए हिंदुओं के लिए सभी देवता हैं, वृक्ष, नदियां, पहाड़, सूरज। हिंदू समझ पाए कला को। उन्होंने देवता का राज पकड़ लिया। वह देवता में नहीं है, वह तुम्हारे भाव में है।
तो जितनी जगह तुम्हें देवता मिल जाए, उतना अच्छा; क्योंकि उतनी बार भाव का बार-बार जन्म होगा, पुनरुक्ति होगी, भाव सघन होगा, प्रगाढ़ होगा, बैठेगा।
तो हिंदुओं ने सारे जगत को देवता से भर दिया। चांद भी देवता है, सूरज
भी देवता है, वृक्ष भी देवता हैं, गंगा भी, हिमालय भी, कैलाश भी। जहां आंख उठाओ, वहां देवताओं का वास है। तुम देवताओं से भाग न सकोगे। सब तरफ से तुम्हें दिव्यता घेर लेगी। इस घिराव में तुम्हारे भीतर के देवता का जन्म होगा।
तो लक्षण पहला कहते हैं कृष्ण अर्जुन से, देवता, द्विज, गुरु, ज्ञानीजनों का पूजन... ।
पहला देवता, क्योंकि उससे ही तुम्हारे भीतर की चेतना रूपांतरित होगी। सारी दुनिया हंसती है, लेकिन समझ नहीं पाती। सारी दुनिया हंसती है कि हिंदू कैसे पागल हैं, गंगा की पूजा कर रहे हैं! नदी में क्या रखा है? हमें भी पता है। रात दीया जला घर में और हिंदू नमस्कार कर रहे हैं। हमें भी पता

है कि दीए में क्या रखा है! केरोसिन तेल है; वह भी शुद्ध नहीं। उसमें भी पानी मिला है। वह हमें भी पता है। नमस्कार करने जैसा कुछ नहीं है। घासलेट के तेल में क्या हो सकता है नमस्कार करने जैसा? फिर भी हम नमस्कार कर रहे हैं।
असली सवाल दीया नहीं है। असली सवाल नमस्कार करना है। वह तो बहाना है। जहां मिल जाए, वहीं हम बहाना खोज लेते हैं। वह बहाना तत्क्षण तुम्हें बदलता है।
समझो कि तुम क्रोध से भरे बैठे थे और किसी ने दीया जलाया... ।
दीया क्या, हिंदू तो अब बिजली भी जलाओ, तो भी नमस्कार करते हैं। थोड़े डरते हैं, झिझकते हैं; पढ़े-लिखे हुए तो जरा देख लेते हैं कि कोई देख तो नहीं रहा। ज्यादा ही डरपोक हुए, तो भीतर-भीतर कर लेते हैं, ऊपर से नहीं प्रकट करते। तरु लता करती है, मगर डरती नहीं है।
बिजली जलती है; तुम क्रोध से भरे थे, नाराज थे, अचानक बिजली जली, सांझ
हो गई। तुमने हाथ जोड़े; नमस्कार किया। क्रोध विसर्जित हो गया; भाव-दशा बदल गई। क्योंकि कैसे तुम क्रोध से भरे नमस्कार कर सकोगे! क्षण में रूपांतरण हो गया। हवा दूसरी आ गई। झोंका और आ गया बाहर का, ले गया क्रोध को;शृंखला टूट गई। भीतर की विचारधारा क्रोध की तरफ जा रही थी, वह टूट गई, वह नमन में बदल गई।
पति घर में आता है, पत्नी पैर छू लेती है। बेटा घर लौटता है, मां के पैर छूता है। यह चलता रहता है क्रम। यह नमन तुम्हारे जीवन को दिव्यता की तरफ ले जाता है।
देवताओं से मतलब नहीं है। तुम्हें दिव्यता की तरफ जाना है, तो तुम जितने देवता अनुभव कर सको, उतना सुगम हो जाएगा। देवताओं का नमस्कार तुम्हें दिव्य बनाएगा। वह तो तरकीब है, एक विधि है।
द्विज... ।
द्विज का अर्थ है, ब्राह्मण। द्विज का अर्थ है, जिसका दुबारा जन्म हुआ। यह द्विज शब्द बड़ा महत्वपूर्ण है। ऐसा दुनिया की किसी भाषा में शब्द नहीं है, द्विज। क्योंकि जन्म तो एक ही दफा होता है। दुबारा जन्म का क्या मतलब?
लेकिन हम कहते हैं, पहला जन्म तो शरीर का है। वह तो मां-बाप से होता है। दूसरा जन्म असली है; जिसमें तुम अपनी चेतना को जन्म देते हो। उसे हम द्विज कहते हैं।
द्विज वह है, जिसने ब्रह्म को जाना, जिसका दूसरा जन्म हो गया--शरीर का नहीं, आत्मा का, चैतन्य का। मृण्मय का नहीं, चिन्मय का जिसके भीतर आविर्भाव हुआ। दीए को तो भूल गया जो, ज्योति हो गया। उसको हम कहते हैं द्विज। ध्यानस्थ हुए को, समाधिस्थ हुए को, उसे हम कहते हैं ब्राह्मण। ब्राह्मण कोई किसी ब्राह्मण के घर में पैदा होने से नहीं होता। ब्राह्मण तो द्विज होने से होता है। पैदा तो सभी शूद्र होते हैं। फिर उनमें से कुछ ब्राह्मण हो जाते हैं, अधिक शूद्र ही रह जाते हैं।
द्विज का मतलब है, समाधि से आविर्भाव हुआ नए जीवन का। पुराना गया, नया आया। पुराना मरा, नए का जन्म हुआ। फिर से तुम बालक हुए परमात्मा के।
द्विज को नमस्कार। जिसके भीतर क्रांति घट गई है, उसको नमस्कार। क्योंकि उससे तुम्हारे भीतर क्रांति के घटने का सूत्रपात मिलेगा, संबंध जुड़ेगा। वैसे नमस्कार करते-करते द्विज को कितनी देर तक तुम अपने शरीर से चिपके रहोगे? वह नमस्कार तुम्हें तोड़ेगा अपने ही शरीर से।
द्विज को नमस्कार करते-करते कभी-कभी तो तुम्हें द्विज की क्षमता दिखाई पड़ेगी। उसकी गरिमा, उसका गौरव, उसकी आंखें, उसका होना, उसका ढंग, कभी तो तुम पहचानोगे। हो सकता है, पहले नमस्कार औपचारिक ही हो; शास्त्र कहते हैं, इसलिए हो।
लेकिन अगर तुम द्विज को नमस्कार करते ही रहे, तो किसी न किसी क्षण में--जब तुम्हारा मन शांत होगा, आनंदित होगा, क्रोध न होगा, दुख न होगा, एक भीतर सन्नाटा होगा--किसी दिन संयोग बैठ जाएगा, उस क्षण तुम्हें द्विज का दर्शन हो जाएगा। उस क्षण तुम जिसको नमस्कार करते थे, वह शरीर नहीं रह जाएगा; भीतर की ज्योति तुम्हें दिखाई पड़ जाएगी।

और ध्यान रखो कि जब तुम्हें किसी में वह ज्योति दिखाई पड़ेगी, तभी तुम अपने में खोजना शुरू करोगे। अन्यथा तुम कैसे खोजोगे अपने में? किसी में खजाना देख लोगे, तो तुम अपने घर आकर खोदने लगोगे। खजाना कहीं दिखाई ही न पड़ेगा, तो तुम सोच भी न पाओगे कि घर में खजाना हो सकता है। कहीं खोजोगे तो ही, किसी में देख लोगे तो ही, किन्हीं आंखों में तुम्हें सागर दिखाई पड़ जाएगा, किसी हृदय में तुम्हें विराट की थोड़ी-सी झलक मिलेगी।
द्विज का अर्थ है, कोई जो जाग गया। शायद उसके पास क्षणभर को तुम्हारी नींद टूट जाए, तुम करवट बदल लो; एक क्षण को आंख खोलकर देख लो। एक क्षण भी फिर क्रांति हो जाती है। एक चिनगारी आग बन जाती है। जरा-सी चिनगारी, और तुम फिर वही न हो सकोगे।
द्विज के पास होने का मतलब है, बारूद के पास होना। तुम तो घास-पात हो।
एक चिनगारी पड़ गई कि लपटें लग जाएंगी, सब राख हो जाएगा। फिर वही बचेगा, जो जल नहीं सकता। न हन्यते हन्यमाने शरीरे! फिर वही बचेगा, जो शरीर के मरने से मरता नहीं। फिर वही बचेगा, जिसे शस्त्र छेद नहीं सकते।
पर द्विज के पास ही पहली दफा स्वाद लगेगा। और एक दफा स्वाद लग जाए, तब कठिनाई नहीं।
मैं जब स्कूल में पढ़ता था, तो पहली या दूसरी कक्षा में एक शिकारी की कहानी थी। वह क्यों वहां रखी थी, पता नहीं। किसने रख दी थी, वह भी पता नहीं। कोई प्रयोजन उस वक्त मालूम नहीं पड़ता था।
कहानी थी कि एक शिकारी ने एक सिंह को मारा, एक सिंहनी को मारा; जोड़े को मार डाला। तब उसे पता चला कि जोड़े के बच्चे भी थे। तो सिंह शावकों को, दो बच्चों को वह घर ले आया। एक तो उनमें से मर गया, एक बड़ा हो गया। उसे उसने शाक-सब्जी-दूध पर ही पाला।
वह सिंह शावक बड़ा हुआ, शाकाहारी। वह उसके पास बैठा रहता, जैसे बिल्ली बैठती या कुत्ता बैठता। बच्चे उसके साथ खेलते; वह बड़ा होता गया। नए लोग तो भयभीत हो जाते, लेकिन पूरा गांव जानता था; वह गांव में घूम आता। लोग उसे मिठाई खिलाते और उसको प्रेम करते।
एक दिन शिकारी बैठा था; वह भी बैठा था, उसका सिंह भी उसके पास बैठा था। शिकारी के पैर में चोट लग गई थी, और थोड़ा-सा खून बह रहा था। और उस सिंह ने उसे चाट लिया। बस, फिर खतरा हो गया। स्वाद लग गया। खून का स्वाद। उसी वक्त शिकारी खतरे में पड़ गया। क्योंकि उसने सिंह की गर्जना कर दी, वह शाकाहारी न रहा।
शिकारी को अपने प्राण बचाने मुश्किल हो गए, क्योंकि सिंह ने झपट्टा मार दिया। कभी उसने किसी पर झपट्टा न मारा था। उसे पता ही न था कि खून का स्वाद क्या है। अब स्वाद लग गया, तो उसके रोएं-रोएं में सोई हुई प्रकृति जाग गई।
उसके कण-कण में सिंह सोया था। सिंह शाकाहारी हो गया था। उसको पता ही नहीं था, इसलिए कोई उपाय ही न था। वह भूल ही चुका होगा कि सिंह है। अचानक गर्जना हो गई। सारा घर खतरे में पड़ गया। सारा गांव खतरे में पड़ गया।
यह जब मैंने कहानी पढ़ी थी, तब तो मुझे लगा कि किसलिए है? इसका क्या मतलब है? क्या प्रयोजन है? लेकिन अब मैं सोचता हूं, यह कहानी जरूर किन्हीं ज्ञान के स्रोतों से आई होगी। कहानी इतना ही कह रही है कि जब स्वाद लग जाए, तब क्रांति घट जाती है।
द्विज के पास तुम्हें स्वाद लगेगा। क्योंकि द्विज से बह रहा है परमात्मा, जैसे शिकारी से बह रहा था खून। एक दफा तुमने चख लिया, जरा-सा तुमने चख लिया, फिर तुम वही न हो सकोगे जो तुम थे। कल तक तुम अर्जुन थे, अब एकदम कृष्ण हो जाओगे। एक क्षण में सब बदल जाता है।
लेकिन कृष्ण का स्वाद कैसे लगेगा? कृष्ण के पास आने की व्यवस्था बनी रहनी चाहिए। उस व्यवस्था को हिंदुओं ने जमाया है द्विज से। तो वे कहते हैं द्विज को, ब्राह्मण को नमस्कार करो, नमन करो, उसका पूजन करो, उसके प्रति श्रद्धा का भाव रखो, तो कभी न कभी, अनायास, बिना तुम्हारे प्रयास के भी द्वार खुल जाएगा। बस एक बार स्वाद लगने की बात है।
गुरु और ज्ञानीजन... ।

जिनसे तुमने कुछ भी सीखा हो। कुछ भी, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि क्या। यहां कोई सदगुरु की बात नहीं हो रही है, क्योंकि द्विज में वह बात हो गई। द्विज के बाद गुरु का नाम लेना अब फिर व्यर्थ पुनरुक्ति है। कृष्ण पुनरुक्ति नहीं करेंगे। वे एक शब्द ज्यादा न बोलेंगे, जो जरूरी है उससे। द्विज, देवता में गुरु, सदगुरु आ गया। यहां तो गुरु से मतलब है, जिससे तुमने कुछ भी सीखा हो, कुछ भी, उसके प्रति नमन। जिससे तुमने क ख ग घ सीखा, गणित सीखा, भूगोल सीखी, उसमें कुछ भी नहीं है नमन जैसा। क्या है नमन जैसा? पश्चिम में विद्यार्थी कहता है कि तुम तनख्वाह लेते हो, हम फीस देते हैं, बात खतम हो गई। वही बात अब हिंदुस्तान में भी विद्यार्थी कह रहा है कि तुम नौकर हो। बात खतम हो गई। तुम्हें नमन क्या करना? तुम्हारे पैर क्या छूना?
हम चूके जा रहे हैं एक बड़ी महत्वपूर्ण बात से। वह महत्वपूर्ण बात यह
है कि जिससे तुमने कुछ भी सीखा हो, उसके चरणों में झुकना। क्यों? क्योंकि जो आखिरी सीखना होने वाला है, वह चरणों में बिना झुके न होगा। यह गणित है। यहां तो तुमने जो सीखा है, वह दो कौड़ी का है। कोई हर्जा नहीं, न झुके तो
भी कोई गुरु बिगाड़ नहीं लेगा कुछ। लेकिन झुकने की कला कहां सीखोगे? झुकने का अभ्यास कहां करोगे?
उथले पानी में तैरना सीखना पड़ता है। तो गुरु कितना ही उथला हो... । उथले ही हैं, क्योंकि क्या है बेचारा वह। प्राइमरी स्कूल का एक मास्टर है, वह कोई सत्तर रुपया, अस्सी रुपया, सौ रुपया महीना पाता है। उसकी क्या हैसियत है! और तुम कभी के उससे आगे जा चुके। वह मैट्रिक पास है या पुराना मिडिलची होगा; तुम एम.ए. हो गए, पीएचड़ी. हो गए, या डी.लिट. हो गए। अब क्या है उस गुरु में? तुम उसके लिए क्यों झुको? तुम उससे ज्यादा जानते हो, उसे तुम्हारे लिए झुकना चाहिए।
नहीं लेकिन, जिससे तुमने कभी भी कुछ सीखा, उसके प्रति झुकना। वह तुम झुकते ही रहना। क्योंकि आखिरी दिन ऐसी घड़ी आएगी, जब तुम झुकोगे, तब सीखना होगा। अभी सिखाने वाले के प्रति झुकते रहना, ताकि झुकने का अभ्यास गहन हो जाए और उस परम सिखावन के पहले ऐसा न हो कि तुम अकड़े खड़े रह जाओ।
हिंदुओं ने पूरे जीवन का शास्त्र बना लिया है। हिंदुओं से ज्यादा कुशल जाति खोजनी असंभव है। मगर उनके सब मूल्य टूटे जा रहे हैं। और उनके मूल्यों को समझाने वाला भी कोई नहीं है। और उनके मूल्यों के जो रखवाले हैं, वे बिल्कुल निर्बुद्धि लोग मालूम पड़ते हैं। पुरी के शंकराचार्य जैसे लोग हैं, जिनमें साधारण बुद्धि भी नहीं है।
जब भी कोई जाति मरती है, तो ऐसा हो जाता है। उसमें बुद्धुओं के हाथ में शक्ति पहुंच जाती है, फिर उसका मरना निश्चित हो जाता है।
गुरु और ज्ञानीजनों का पूजन... ।
गुरु तो वह है, जिससे तुमने सीखा हो। और ज्ञानीजन वे हैं, जिनसे दूसरों ने भी सीखा हो, तुमने न भी सीखा हो, तो भी झुकना। जिनसे दूसरों ने भी सीखा हो, जो दूसरों के गुरु हों, उनके प्रति भी झुकना। क्योंकि यह बड़ा सवाल नहीं है कि तुमने जिससे सीखा हो, उसी के प्रति झुको। क्योंकि अगर तुमने ऐसा अभ्यास किया कि तुम उसी के प्रति झुकोगे, जिससे तुमने सीखा है, तो इसमें भी अहंकार है। मैंने सीखा इसलिए झुकता हूं; एक लेन-देन है। झुकना शुद्ध नहीं है। झुकने में थोड़ी अशुद्धि है, थोड़ा व्यवसाय है।
न; उनके प्रति भी झुकना, जिनकी तुम्हें खबर है कि वे ज्ञानीजन हैं। वे
न भी हों--इसको ख्याल रखना--वे ज्ञानीजन न भी हों; अफवाह तुमने सुनी हो। तुम्हारे ऊपर कोई यह जिम्मा नहीं है कि तुम पहले पक्का प्रमाण खोजो, अदालत से सर्टिफिकेट लाओ कि यह आदमी असली में गुरु है कि नहीं, योग्य है कि नहीं, ज्ञानी है कि नहीं, फिर मैं झुकूंगा। नहीं, यह सवाल ही नहीं है। हो सकता है, वह ज्ञानी न भी हो, अज्ञानी हो। हर्जा कुछ नहीं है। झुकने से लाभ ही लाभ है।
और मेरा अनुभव यह है कि अगर तुम अज्ञानी के प्रति भी झुको, तो दोनों को लाभ होता है। अज्ञानी भी तुम्हारे झुकने से थोड़ा ज्ञानी होता है। उसको भी अपने अज्ञान से थोड़ी घबड़ाहट होती है। कभी तुम अज्ञानी के प्रति झुको, तो उसको भी लगता है, कुछ करना पड़ेगा। लोग झुक रहे हैं, कुछ बदलाहट करनी पड़ेगी।

तुम करके देखो। एक आदमी को तुम तय कर लो, उसको पता न चलने दो, सब उसके पैर छूने लगो। तुम पाओगे, महीनेभर में तुमने उस आदमी को बदल डाला है। क्योंकि अब वह चोरी नहीं कर सकता, शराब नहीं पी सकता, सिगरेट पीए, तो डर लगता है कि कोई पैर छू ले उसी वक्त, तो कैसा बेहूदा लगेगा!
इसलिए मैं कहता हूं, हिंदू जाति बहुत कुशल है। झुकने से तुम्हें लाभ है। और जिसके प्रति तुम झुके, उसे भी लाभ है। क्योंकि तुम जब भी किसी के प्रति आदर देते हो, तब तुम उसके भीतर एक आकांक्षा पैदा करते हो कि यह आदर के योग्य तो बनाना चाहिए।
इसलिए हमने इस गणित का बड़ा गहरा उपयोग किया था। हमने गुरुओं को और गुरु की गहराई में जाने में सहयोग दिया था, और शिष्य को और शिष्यत्व की गहराई में जाने में। और एक ही तरकीब का। इसको कहते हैं, एक पत्थर से दो पक्षी मार लेना।
अगर स्कूल के बच्चे स्कूल के गुरुओं को आदर दें, तो गुरुओं को बदल डालते हैं।
मेरे एक शिक्षक थे। कोई खास भले आदमी न थे। उनके बाबत बहुत बातें मैं सुनता था। मेरे घर के लोग भी मुझसे कहे कि तुम और सबके पैर छुओ, ठीक, लेकिन इस आदमी के मत छूना। मैंने कहा कि मेरा कोई यह हिसाब नहीं है। लेकिन यह आदमी मुझे भूगोल पढ़ाता है। उतने से मेरा संबंध है। भूगोल यह अच्छे ढंग से पढ़ाता है।
यह आदमी जुआ खेलता है, ऐसी मैंने खबर सुनी है। यह शराब पीता है, यह भी मैंने सुना है। यह वेश्यागामी है, यह भी मैंने सुना है। न केवल सुना है, बल्कि मैंने इसे वेश्याओं के इलाके में जाते भी देखा है और शराबघर में भी बैठे देखा है। मगर इससे मेरा कोई प्रयोजन नहीं। क्योंकि भूगोल यह ठीक पढ़ाता है। और इसके भूगोल पढ़ाने में न तो यह शराब पीकर आता है, और न वेश्या को लेकर आता है। इसलिए उससे मेरा कोई लेना-देना नहीं है। इसकी जिंदगी बड़ी है। अपना तो संबंध भूगोल से है। तो मैं तो इसके पैर छूता रहूंगा।
मैं पहला ही विद्यार्थी था, जो उसके पैर छूता। क्योंकि कोई उसके पैर छूता नहीं। कुछ दिनों बाद उस आदमी ने कहा कि देखो भई, तुम भी मेरे पैर मत छुओ। मैंने कहा, क्यों? उसने कहा कि तुम्हें पता नहीं कि मैं आदमी बुरा हूं। शिक्षक होने की मेरी योग्यता ही नहीं। यह तो मजबूरी में नौकरी करनी पड़ती है। और तुमसे मैं सच-सच कहे देता हूं, मैं आदमी बिल्कुल बुरा हूं। सब बुरे कृत्य मेरे जीवन में हैं। और तुम जब मेरे पैर छूते हो, तो मुझे बड़ा कष्ट होता है।
तो मैंने कहा, वह आपकी चिंता है। मैं पैर छूना जारी रखूंगा। उसने कहा
कि तुम मुझे मुश्किल में डाले दे रहे हो। क्योंकि कल मैं शराबघर में बैठा था। तुम वहां से निकले, तो मुझे छिपना पड़ा। मैं कभी नहीं छिपा अपनी जिंदगी में। मुझे डर लगा कि यह लड़का कहीं देख न ले, नहीं तो यह क्या सोचेगा! और यह इतने भाव से पैर छूता है।
मैंने उस आदमी को बदल ही डाला। मैंने उस आदमी का पीछा जारी रखा।
कृष्ण कहते हैं, ज्ञानीजनों का भी पूजन... ।
जो तुम्हारे गुरु न भी हों, उनका भी पूजन।
पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा... ।
पवित्रता का अर्थ होता है, प्रामाणिकता। अपवित्र तुम उसी क्षण हो जाते हो, जब तुम होते कुछ हो और दिखाते कुछ हो। कोई आदमी चोरी करने से अपवित्र नहीं होता। चोरी करता है और दिखलाता है कि अचोर हूं, तब अपवित्र होता है।
इसे तुम ठीक से समझ लो। कोई आदमी झूठ बोलने से अपवित्र नहीं होता। लेकिन बोलता झूठ है और दिखाता यह है कि मैं सच बोलता हूं, तब अपवित्र होता है। जो आदमी झूठ बोलता है और कहता है, मैं झूठ बोलने वाला हूं, वह पवित्र है। उसमें अपवित्रता नहीं है। उसमें विपरीत का मिश्रण नहीं है। वह सीधा, सरल है।
तो अगर तुम्हें पवित्रता पानी हो जीवन में, तो तुम जैसे हो, वैसा ही प्रकट कर देना--बुरे हो तो बुरे, चोर हो तो चोर, झूठे हो तो झूठे, कामी हो तो कामी--उसे तुम छिपाना मत। बस, छिपाने से आदमी अपवित्र होता है।

और यह बड़े रहस्य की बात है कि जितना तुम प्रकट कर दोगे, उतने ही जल्दी तुम बदलना शुरू हो जाओगे। क्योंकि पवित्र व्यक्ति कितने दिन तक चोर रह सकता है? पवित्रता इतनी बड़ी अग्नि है कि चोरी को जला डालेगी। प्रामाणिकता इतनी बड़ी बात है कि जो आदमी झूठ बोलता है और कहता है कि मैं झूठ बोलता हूं, वह कितने दिन तक झूठ बोल सकेगा? उसने पहला कदम सच की तरफ उठा ही लिया। सबसे बड़ा कदम उसने उठा लिया कि उसने स्वीकार कर लिया कि मैं झूठ बोलता हूं, मैं झूठा आदमी हूं। इससे बड़ा सत्य की तरफ कोई भी कदम नहीं है। और यह कदम इतना बड़ा है कि सब झूठ इस कदम में दब जाएंगे और मर जाएंगे।
जिस आदमी ने स्वीकार कर लिया कि मैं कामवासना से भरा हूं, उसने ब्रह्मचर्य की तरफ पहला कदम उठा लिया। इसीलिए तो तुम्हारे साधु-संन्यासी ब्रह्मचारी नहीं हो पाते। क्योंकि उन्होंने पहला कदम ही नहीं उठाया। उन्होंने कभी यह स्वीकार ही नहीं किया कि हम कामवासना से भरे हैं। वे पहले ही से दावा कर रहे हैं कि हम ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हैं।
और ब्रह्मचर्य को उपलब्ध करोड़ों में कभी एक आदमी होता है। क्योंकि कामवासना शरीर के रोएं-रोएं में भरी है। और हिंदुस्तान में लाखों संन्यासी दावा कर रहे हैं कि वे ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हैं। इससे भयंकर झूठ दुनिया में कहीं चल ही नहीं सकता।
हिंदुस्तान जैसा पाखंड तुम कहीं भी न पा सकोगे। और लोग मान भी रहे हैं! बड़ा खेल चल रहा है।
जिसने स्वीकार कर लिया कि मुझमें कामवासना है, यह आदमी प्रामाणिक है।
यह कभी ब्रह्मचर्य को उपलब्ध होकर रहेगा। जिसने कहा, कामवासना मुझमें है ही नहीं, इसने पहला झूठ स्थापित कर लिया। अब यह कामवासना नहीं है, इसको ही छिपाने में, इसको ही दबाने में इसकी सारी जिंदगी लग जाएगी।
प्रामाणिक, आथेंटिक बनो।
तो कृष्ण कहते हैं, पवित्रता। फिर कहते हैं, सरलता। जो पवित्र होगा,
वह सरल हो जाता है। सरल का अर्थ है, जिसमें दांव-पेंच न हों, चालाकी न हो, एक निर्दोषता हो। बच्चे जैसा।
क्या मतलब है बच्चे जैसा होने का? बच्चे पर तुम नाराज हो जाओ, तो वह क्रोध से भर जाता है, आग में जलने लगता है। लगता है कि मकान को मिटा देगा, कि दुनिया को मिटा देगा, अगर उसके हाथ में ताकत होती। कूदता-फांदता है। चीजें तोड़ देता है। तुम सोचोगे कि यह बच्चा तो महान भयंकर उपद्रव है। यह किसी न किसी दिन हत्यारा बनेगा।
और पांच मिनट बाद वह शांति से तुम्हारे पास बैठा है। बड़ा आनंदित है, गीत गुनगुना रहा है। तुम भरोसा ही नहीं कर सकते कि क्षणभर पहले यह इतना क्रोध से भरा था और अब इतना सुंदर और शांत मालूम हो रहा है! क्या हो गया इसको?
बच्चा सरल है, उसके पास गणित नहीं है। जब क्रोध होता है, तब वह क्रोध प्रकट करता है। बच्चा जिस भाव-दशा में होता है, वही भाव-दशा प्रकट करता है। तुम कभी क्रोध में होते हो, लेकिन मुस्कुराते हो। क्योंकि अभी मुस्कुराना लाभपूर्ण है, क्रोध करना खतरा है; महंगा पड़ जाएगा।
मालिक से दफ्तर में तुम नाराज हो, लेकिन हंस-हंसकर बातें करते हो, पूंछ हिलाते हो। तबीयत हो रही है कि गरदन दबा दें इसकी। तुम हिसाब बिठाते हो कि इसमें तो नुकसान होगा, नौकरी हाथ से चली जाएगी।
घर आते हो, पत्नी से कलह होती है। कोई सदभाव नहीं भीतर पैदा होता, क्रोध पैदा होता है। उसको भी छिपाते हो। क्योंकि पत्नी से झंझट लेने का मतलब है, दिन, दो दिन मुसीबत चलेगी। उतना महंगा सौदा नहीं करना चाहते।
सब तरफ से झूठ इकट्ठा कर लेते हो, धीरे-धीरे अप्रामाणिक हो जाते हो।
तुम्हारी हंसी से पक्का पता नहीं चलता कि तुम भीतर हंस रहे हो। तुम्हारे रोने से पक्का पता नहीं चलता कि तुम भीतर रो रहे हो। भीतर कुछ, बाहर कुछ।
यह जटिलता है।
और फिर यह जटिलता घनी होती जाती है। जैसे-जैसे अनुभव जीवन का बढ़ता है,
सब चीजें जटिल हो जाती हैं, उलझाव हो जाता है। जैसे रस्सी का धागा उलझ गया हो, कई उलझन में पड़ गया हो, ऐसा तुम्हारा व्यक्तित्व हो जाता है।

इसलिए मैं कहता हूं, धार्मिक होना बड़ी हिम्मत की बात है। क्योंकि उसमें तुम्हें कई खतरनाक सौदे करने पड़ेंगे। जब तुम क्रोध से भरो, तो क्रोध को ही प्रकट करना, चाहे कोई भी परिणाम हो, चाहे कितना ही उसका फल भोगना पड़े।
फल का हिसाब जिसने लगाया, वह चालाक है। असल में फल का हिसाब ही चालाकी है। वह सोच रहा है कि इसका क्या परिणाम होगा। बच्चा नहीं सोचता कि क्या परिणाम होगा।
और मैं तुमसे कहता हूं कि अगर तुम सरल रहे, तो तुम धीरे-धीरे पाओगे, क्रोध विलीन हो गया। अगर तुम जटिल रहे, तो क्रोध सदा मौजूद रहेगा। घृणा गहन होती जाएगी, प्राणों के प्राण में समा जाएगी। नासूर की तरह तुम्हारा व्यक्तित्व हो जाएगा। उसमें से परमात्मा की सुगंध कैसे उठ सकती है? उसमें समाधि का दीया कैसे जलेगा? नहीं, उसमें कमल नहीं खिल सकते। वहां भूमि ही नहीं रही। वहां तुमने सब जटिल कर लिया।
कृष्ण कहते हैं, सरलता, पवित्रता... ।
पहले पवित्रता, फिर सरलता। सरलता का अर्थ है, जीवन के सभी संवेगों को बच्चे की तरह जीना। धीरे-धीरे तुम पाओगे कि कोई हानि नहीं होती। तुम्हारे क्रोध को भी लोग समझते हैं कि यह आदमी क्रोध भला कर लेता हो, लेकिन क्रोधी नहीं है। तुम्हारे क्रोध को लोग क्षमा कर देंगे; क्योंकि लोग जानते हैं, तुम सरल हो। तुम किसी क्षण में उबल पड़ते हो, यह बात ठीक है। लेकिन तुम जटिल नहीं हो।
जो आदमी कभी क्रोध नहीं करता और सदा क्रोध को ढोता है, उसका कोई भरोसा नहीं करता। वह आदमी जटिल है। उसकी बात का पक्का भरोसा नहीं है। वह पाखंडी है। वह कहेगा कुछ, करेगा कुछ। उस पर तुम भरोसा नहीं कर सकते। धीरे-धीरे वह जितनी चालाकी करता है, जितना हिसाब लगाता है, उतने ही नुकसान में पड़ता है। सरल व्यक्ति अंततः, चाहे शुरू में थोड़ी कठिनाई हो, बाद में हमेशा परम
धन को उपलब्ध होता है, परम लाभ को उपलब्ध होता है।
ब्रह्मचर्य... ।
इनमें एक क्रम है। अगर तुम पवित्र हो, तो सरल होना आसान होगा। अगर सरल हो, तो ब्रह्मचर्य आसान होगा। पहले कामवासना को स्वीकार करो। फिर कामवासना को दबाओ मत, प्रकट होने दो; उसे जीओ। जीवन में सभी कुछ जीने के लिए है, ताकि तुम उसके पार जा सको। तब ब्रह्मचर्य उपलब्ध होता है। ब्रह्मचर्य कामवासना के विपरीत नहीं है। कामवासना के द्वारा पाए गए अनुभव का नाम है। कामवासना से गुजरे हुए आदमी की संपदा है। कामवासना को जीया है जिसने, जीकर देखा है जिसने, पीड़ा जानी, व्यर्थता जानी, वही ब्रह्मचर्य को उपलब्ध होता है।
तब ब्रह्मचर्य कोई जबरदस्ती थोपा गया नियम नहीं होता, अनुशासन नहीं होता; तुम्हारे जीवन के अनुभव से आया हुआ सीधा-सीधा भाव होता है। नहीं कि तुम अब लड़ते हो अपनी कामवासना से। नहीं, कामवासना जा चुकी; तुमने उसे जी लिया, वह बात खतम हो गई।
इसे तुम सूत्र की तरह याद रखो, जिस चीज को भी समाप्त करना हो, उसे ठीक
से जी लो। अधूरी जीयी गई चीज हमेशा कायम रहती है, सरकती है, सिर के आस-पास घूमती रहती है। अधूरे अनुभव से कोई मुक्त नहीं हो सकता।
कच्चा फल कैसे वृक्ष से गिरेगा? पत्थर मारकर गिरा सकते हो। लेकिन फल में भी घाव रह जाएगा; वृक्ष में भी घाव रह जाएगा। और कच्चा फल खाया भी नहीं जा सकता। और कच्चे फल में जो बीज हैं, वे भी व्यर्थ हैं। उनसे नये पौधे पैदा नहीं हो सकते। कच्चा फल बिल्कुल बेकार है।
कच्चा ब्रह्मचर्य बिल्कुल बेकार है। उससे ब्रह्म का कोई अनुभव पैदा न होगा। तुम भटक-भटककर शरीर में आओगे। जो अधूरा है, वह तुम्हें वापस ले आएगा।
अधूरा अनुभव संसार में लौटने का द्वार है। अनुभव की पूर्णता पार ले जाती है, अतिक्रमण करा देती है। जान ही लो, परमात्मा ने जो भी अवसर दिया है। दुख-पीड़ा झेल ही लो, ताकि तुम पक जाओ। उस पकने का ही नाम अनुभव है।

जिसका काम पक गया, वह ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो जाता है। जिसका क्रोध
पक गया, वह करुणा को उपलब्ध हो जाता है। जिसकी घृणा पक गई, वह प्रेम को उपलब्ध हो जाता है। जिसका भोग पक गया, वह त्याग को उपलब्ध हो जाता है।
उपनिषद कहते हैं, त्येन त्यक्तेन भुंजीथा। उन्होंने ही जाना त्याग, जिन्होंने भोग जाना। उपनिषद हिम्मतवर हैं; कमजोरों का धर्म नहीं है वहां।
कूड़ा-कर्कट नहीं है वहां व्यर्थ का। सीधी साफ बात है, विज्ञान की बात है।
जानो, क्योंकि जानना ही मुक्ति है।
और जो व्यक्ति ब्रह्मचर्य को उपलब्ध होता है, वह अहिंसा को उपलब्ध होता है। क्यों? क्योंकि जब तक तुम्हारी कामवासना है, तुम हिंसक रहोगे।
कामवासना हिंसा है। कामवासना का अर्थ है, दूसरे का शोषण। कामवासना का अर्थ है, दूसरे का उपयोग। कामवासना का अर्थ है, दूसरे के शरीर की वस्तु की भांति उपयोगिता है। दूसरे पर कब्जा करो।
इसलिए तुम ध्यान रखो, कामवासना ही तुम्हारे मन में हिंसा पैदा करती है। इसलिए पति और पत्नी लड़ते रहते हैं। जैसा पति-पत्नी लड़ते हैं, ऐसा दुनिया में कोई नहीं लड़ता। लड़ते ही रहते हैं चौबीस घंटे; क्योंकि एक-दूसरे का संबंध ही कामवासना का है।
जहां कामवासना है, वहां कलह, वहां हिंसा जारी रहेगी। और जो तुम्हारी कामवासना में बाधा डालेगा, उसे तुम समाप्त कर देना चाहोगे। जो भी बीच में आड़े आएगा, उसे तुम मिटा देना चाहोगे।
जब कामवासना ही चली जाती है, तो अचानक अहिंसा का आविर्भाव होता है। अहिंसा का अर्थ है, अब मुझे दूसरे से कोई प्रयोजन न रहा; अब मेरा आनंद मुझमें है, दूसरे में नहीं है। तो न तो दूसरा उसे छीन सकता है, न दे सकता है। जब दूसरा मुझे आनंद नहीं दे सकता और न छीन सकता है, तो दूसरे को मैं क्यों दुख पहुंचाने जाऊंगा!
जैसे-जैसे आनंद अपने भीतर गहन होता है, वैसे-वैसे तुम्हारे दूसरों के प्रति जो भी हिंसा के, लगाव के, विरोध के, मित्रता के, शत्रुता के संबंध थे, वे सब गिर जाते हैं। अहिंसक का न तो कोई मित्र है, न कोई शत्रु। अहिंसक अकेला है। अहिंसक अपने में जीता है। उसे भीतर का स्वर्ग मिल गया। अब दूसरे से उसका कोई संबंध न रहा।
कामवासना से भरा आदमी हिंसक रहेगा ही। क्योंकि कामवासना की बहुत जरूरतें हैं। एक तो सुंदर स्त्री चाहिए, वह तुम्हें खोजनी पड़ेगी, छीननी पड़ेगी; क्योंकि बड़ा बाजार है। गरीब को सुंदर स्त्री तो नहीं मिल पाती। जितना धन हो, उसको उतनी सुंदर स्त्री मिल पाती है। अगर तुम्हें अब जेकलिन केनेडी से विवाह करना हो, तो ओनासिस होना चाहिए; धन होना चाहिए। सुंदर स्त्री को तुम बिना धन के तो न पा सकोगे। वहां बाजार है। तो गरीब को गई गुजरी स्त्री मिलती है। ऐसी मिल जाती है, जिसको कामचलाऊ स्त्री कह सकते हो।
तो दौड़ है धन की। कामवासना है, तो धन चाहिए। नहीं तो बिना धन के कैसे रहोगे? और धन है, तो एक स्त्री नहीं पचास स्त्रियां मिल सकती हैं। सम्राट हजारों स्त्रियों को रखते थे; कोई अड़चन न थी। गरीब तो एक स्त्री को भी नहीं रख पाता! गरीब को एक स्त्री का भी विचार उठता है, तो सोचता है हजार दफे कि विवाह करना कि नहीं; सम्हाल पाएंगे कि नहीं। अमीर सैकड़ों स्त्रियों से संबंध बना लेता है।
और तुम यह मत सोचना कि जिन अमीरों की एक पत्नियां हैं, उनके और स्त्रियों से संबंध नहीं हैं। नहीं तो अमीर होने का फायदा ही क्या है? सार क्या है? अमीर होने का मतलब यह है कि जितना ज्यादा भोगा जा सके; उसकी भोग की सुविधा धन है। धन तो केवल सुविधा है। तो तुम जितनी स्त्रियां चाहो, उतनी स्त्रियां मिल सकती हैं।
पद चाहिए! जिसके पास पद है, उसे स्त्रियों को पाना आसान हो जाता है। तो वही आदमी कल बाजार में घूमता रहता था तुम्हारे पूना के, कोई नहीं मिलता था। वही अब मिनिस्टर हो जाए, तो फिल्म अभिनेत्रियां उसके पैर दबाने लगती हैं।
पद हो, धन हो, तो कामवासना को पूरा करना आसान होता है। पद न हो, धन न हो,
तो तुम कैसे कामवासना पूरी करोगे? फिर धन और पद के लिए हिंसा करनी पड़ती है,

शोषण करना पड़ता है। युद्ध होते हैं, स्त्रियों के लिए, धन के लिए, पद के लिए, प्रतिष्ठा के लिए।
हिंसा तभी मिटती है, जब कामवासना चली जाती है। इसे शरीर संबंधी तप कृष्ण ने कहा।
जो उद्वेग को न करने वाला, प्रिय और हितकारी यथार्थ भाषण है, स्वाध्याय का अभ्यास है, वह निःसंदेह वाणी का तप है।
वाणी ऐसी हो जो प्रिय हो, हितकारक हो। दूसरे से तभी बोलो, जब उसका कुछ हित होने वाला हो तुम्हारे बोलने से, अन्यथा मत बोलो।
तुम बोले चले जाते हो, तुम्हें दूसरे से कोई प्रयोजन ही नहीं है। यह हिंसा है। वह भागना चाहता है, उसे दफ्तर जाना है। तुम रास्ते पर पकड़ लिए हो और तुम अपना बोले चले जा रहे हो। तुम्हें इसकी फिक्र ही नहीं कि वह सुनने वाले को सुनना है कि नहीं सुनना है। वह क्या कह रहा है? क्यों कह रहा है? उसका चेहरा देखो; वह भागने को तैयार खड़ा है। लेकिन तुम कहे चले जा रहे हो। तुम हिंसा कर रहे हो। वाणी की हिंसा है।
वही कहो, जिससे दूसरे का कोई हित होता हो; अन्यथा चुप रहो। क्या जरूरत है! और जिस ढंग से कहो, वह ढंग प्रीतिकर हो। क्योंकि सत्य भी तुम इस तरह बोल सकते हो, जैसे गाली फेंके कोई किसी की तरफ। तुम काने आदमी को काना कह सकते हो; असत्य वह नहीं है। इसलिए दुनिया का कोई भी संत तुमसे यह नहीं कह सकता कि तुम असत्य बोले। सत्य तुम बिल्कुल बोले, अंधे को तुमने अंधा कहा। लेकिन सूरदास भी कह सकते थे। और सूरदास में एक माधुर्य है। तुमने अंधे को अंधा कहकर चोट पहुंचाई सत्य से भी। तुमने सत्य का ऐसा उपयोग किया, जैसा लोग असत्य का करते हैं। तुमने सत्य को पत्थर की तरह फेंका। उससे तुम्हारे भीतर का बोध बढ़ेगा नहीं।
संवेदनशील बनो; वही कहो, जो दूसरे के लिए प्रीतिकर हो। इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम प्रीतिकर करने के लिए झूठ बोलो। इसलिए कृष्ण उसमें शर्त देते हैं, उद्वेग को न पैदा करे, प्रिय हो, हितकारक हो, यथार्थ हो, सत्य हो। कोई यह नहीं कहते कि तुम लोगों की झूठी प्रशंसा करो कि उनको खूब आनंद आए। कि वे खुद अपना चेहरा आईने में देखने में डरते हैं और तुम कह रहे हो कि तुम परम सुंदर हो, कि आप जैसा पुरुष कहीं देखा नहीं। धन्य हैं कि दर्शन हो गए!
झूठ बोलने का भी कोई प्रयोजन नहीं है। क्योंकि वह भी हानिकर है। वह भी
इस आदमी में अहंकार जन्मा सकता है। तुमने विष डाल दिया।
और जिससे स्वाध्याय का अभ्यास हो। वही बात बोलो, जिसके बोलने से तुम्हारे स्वयं के अध्ययन में, स्वयं के निरीक्षण में गति आए। ख्याल करो, किसी से तुम कुछ भी बोल रहे हो, तो बोले मत जाओ मूर्च्छित। ठीक भीतर जागकर बोलो कि जो मैं बोल रहा हूं, वह मैं क्यों बोल रहा हूं? अपने कारण बोल रहा हूं या दूसरे के कारण बोल रहा हूं? बोलना मेरा पागलपन है, इसलिए बोल रहा हूं? कि मेरे मन में कचरा भरा है, उसे खाली करने के लिए बोल रहा हूं? रेचन कर रहा हूं? भीतर अध्ययन करते रहो, क्यों बोल रहा हूं? यह बात मैंने क्यों कही? क्या कारण था? क्यों मेरे भीतर उठी?
तो वाणी मधुर हो, यथार्थ हो, तुममें या दूसरे में व्यर्थ के उद्वेग और तनाव को पैदा न करती हो, और साथ ही साथ तुम्हारा स्वाध्याय चलता रहे, तो यह वाणी का तप है।
मन की प्रसन्नता, शांत भाव, मौन, मन का निग्रह और भाव की पवित्रता, ऐसे
यह मन संबंधी तप है।
और तीसरा तप है मन संबंधी।
मन की प्रसन्नता... ।
तुम आमतौर से पाओगे कि धार्मिक जो लोग बन जाते हैं या सोचते हैं कि धार्मिक बन गए, वे प्रसन्नता छोड़ देते हैं। वे उदास होकर बैठ जाते हैं, लंबे चेहरे बना लेते हैं। जैसे लगता है कि धार्मिक होने का उदासी से कोई संबंध है।
नहीं, कृष्ण तो बड़ी उलटी बात कह रहे हैं। वे कहते हैं, मन की प्रसन्नता
तप है।

उदास होना तो सांसारिक आदमी का लक्षण होना चाहिए, साधु का नहीं। सांसारिक उदास हो, समझ में आता है; क्योंकि इतने दुख में जी रहा है, नरक में पड़ा है। लेकिन मंदिरों में बैठे साधु ऐसा चेहरा बनाए बैठे हैं, कि जरूर कुछ गड़बड़ हो गई है। इनका दिल भी वहीं होने का है, जहां नरक है, बाजार है। दुर्घटनावश ये मंदिर में फंस गए हैं, इसलिए उदास बैठे हैं। अन्यथा मंदिर में तो नाच होगा, गीत होगा, प्रसन्नता होगी।
मन की प्रसन्नता को साधो। जितने तुम मन को प्रसन्न कर सकोगे, तुम पाओगे कि तुम उतने ही मन के पार जाने लगे। मन की प्रसन्नता मन के पार ले जाने का उपाय है।
मन की प्रसन्नता ऐसे है, जैसे फूल की गंध। फूल तो पीछे पड़ा रह जाता है, गंध ऊपर उठ जाती है। जब तुम्हारा मन प्रसन्न होता है, मन तो नीचे पड़ा रह जाता है, प्रसन्नता की गंध ऊपर उठ जाती है। सिर्फ प्रसन्नचित्त लोगों ने ही परमात्मा को जाना है; वह नाचते हुए लोगों का अनुभव है। उदास, बीमार, रुग्णचित्तों का अनुभव नहीं है। क्योंकि परमात्मा यानी परम उत्सव। प्रसन्न होकर तैयारी करो। नाचने का थोड़ा अभ्यास करो; थोड़े पैरों में घूंघर बांधो; कंठ को मधुर करो; गीत को गूंजने दो। क्योंकि उस परम उत्सव में तुम तभी सम्मिलित किए जा सकोगे, जब तुम्हारी थोड़ी तैयारी होगी।
मन की प्रसन्नता और शांत भाव... ।
क्योंकि मन की प्रसन्नता उथली भी हो सकती है। जैसे बाजार में खड़े सड़कों पर लोग हंसते हैं। वह हंसना उथला है। उसमें कोई गहराई नहीं है। वह ऐसे ही है, जैसे छिछली नदी में शोरगुल होता है, कंकड़-पत्थरों में आवाज होती है। और गहरी नदी में सब शांत हो जाता है। गहरी नदी भी प्रसन्न होती है, लेकिन शांत होती है।
तुम गहरी नदी की तरह शांत भी रहो और प्रसन्न भी। तुम्हारी प्रसन्नता खिलखिलाहट की तरह नहीं होगी, स्मित की तरह होगी, मुस्कुराहट की तरह होगी। और भीतर एक शांत पृष्ठभूमि हो, मौन। और तुम्हारी प्रसन्नता, तुम्हारी हंसी कुछ कहे न। सिर्फ तुम्हें प्रकट करे, कुछ कहे न।
कोई गिर गया छिलके पर फिसलकर, तुम हंस दिए। यह मौन नहीं है हंसना। तुम व्यंग्य कर रहे हो। तुम गाली से भी गहन चोट पहुंचा रहे हो उस आदमी को, जो गिर पड़ा है। तुम्हारी हंसी कुछ न कहे, सिर्फ तुम्हें कहे। तुम्हारे मौन को प्रकट करे तुम्हारी प्रसन्नता।
मन का निग्रह... ।
मन के निग्रह का अर्थ है कि तुम मन के प्रति सदा जागे रहो; मन के साथ तादात्म्य न हो जाए। क्रोध आए, तो भी तुम जागकर जानते रहो कि क्रोध ने मुझे घेरा है, लेकिन मैं क्रोध नहीं हूं। मैं क्रोध से अलग हूं। मैं साक्षी हूं। साक्षी-भाव है मन का निग्रह।
भाव की पवित्रता... ।
कुछ भी हो, तुम भाव को अपवित्र मत करो। एक आदमी तुम्हें धोखा दे दे, तो
दो उपाय हैं। एक तो यह है कि तुम भाव को अपवित्र कर लो कि यह आदमी बुरा है और अब कभी किसी का भरोसा न करूंगा। और इस आदमी का तो अब कभी भरोसा नहीं करूंगा। और यह आदमी चोर है, बेईमान है। और तुमने अपने भाव को कलुषित कर लिया।
बड़े मजे की बात यह है कि उसने तुम्हें चोरी करके जितना नुकसान पहुंचाया, उससे ज्यादा नुकसान तुम अपने भाव को अपवित्र करके पहुंचा रहे हो। यह भी हो सकता था कि तुम कहते कि बेचारा आदमी, शायद तकलीफ में होगा, गरीबी में होगा, मुसीबत में होगा। उपाय नहीं खोज सका कोई, इसलिए चोरी की है। और मुझे अगर समझ आ जाती कि इसको चोरी करनी पड़ेगी, तो मैं ऐसे ही दे देता।
तुम अपने भाव को बचाओ; क्योंकि अंतिम रूप से भाव ही तुम्हारी संपदा है। इस संसार में किसने तुम्हें धोखा दिया, किसने नहीं दिया, इसका कोई हिसाब आखिरी में नहीं बचेगा। तुम्हारा भाव क्या रहा; बस, वही बचेगा।
भाव की पवित्रता, ऐसे यह मन संबंधी तप कहा जाता है।
ये तीन तप अगर तुम साध सको, तो तुम्हारे भीतर सत्व का उदय होगा। तुम सात्विक हो सकते हो।

गीता दर्शन, भाग आठ
गीता दर्शन अध्याय 17
आठवां प्रवचन

पूरब और पश्चिम का अभिनव संतुलन

श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः।
अफलाकांक्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिच्रते।। 17।।
सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत्।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम्।। 18।।
मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम्।। 19।।
हे अर्जुन, फल को न चाहने वाले निष्कामी योगी पुरुषों द्वारा परम श्रद्धा से किए हुए उस पूर्वोक्त तीन प्रकार के तप को तो सात्विक कहते हैं।
और जो तप सत्कार, मान और पूजा के लिए अथवा केवल पाखंड से ही किया जाता है, वह अनिश्चित और क्षणिक फल वाला तप यहां राजस कहा गया है।
और जो तप मूढ़तापूर्वक हठ से, मन, वाणी और शरीर की पीड़ा के सहित अथवा दूसरे का अनिष्ट करने के लिए किया जाता है, वह तप तामस कहा गया है।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः आपने कहा कि हिंदू मनीषा कभी आत्यंतिक रूप से बुद्धिमान थी और धर्म की परम ऊंचाइयों को छूने में वह सफल हुई। उसके ही परिणाम में देवता, द्विज, गुरु और ज्ञानी हुए; उपनिषद, गीता, धम्मपद और जिन-वाणी हुई। फिर क्या कारण है कि वही जाति हजार वर्षों से पतन के महागर्त में गिरी और उसके उठने के कोई आसार नजर नहीं आते?

परमात्मा बाहर भी है और भीतर भी। वस्तुतः बाहर और भीतर का भेद अज्ञान-आधारित है। बाहर भी उसी का है, भीतर भी उसी का है; एक ही आकाश व्याप्त है। लेकिन मन के लिए सदा आसान है चुनाव करना। मन चुनने की कला है। तो या तो
मन बाहर देखता है या भीतर। अगर मन दोनों को देख ले, तो मन मिट जाता है। दोनों को एक साथ देख लेने वाला व्यक्ति न तो अंतर्मुखी होता है, न बहिर्मुखी।
कार्ल गुस्ताव जुंग ने आदमियों के दो विभाजन किए हैं, अंतर्मुखी, इंट्रोवर्ट और बहिर्मुखी, एक्सट्रोवर्ट।
अंतर्मुखी धीरे-धीरे बाहर से संबंध छोड़ देता है; बहिर्मुखी धीरे-धीरे अंतर से संबंध छोड़ देता है। दोनों के जीवन एकांगी हो जाते हैं। जैसे तराजू का एक ही पलड़ा भारी हो जाता है, तो एक जमीन छूने लगता है, एक आकाश में अटक जाता है। चाहिए ऐसा जीवन का तराजू कि कांटा मध्य में सधा रहे, बाहर और भीतर दोनों समान अनुपात में सधें।
यह अब तक नहीं हो पाया। पूरब ने भीतर को साधने में बाहर की उपेक्षा कर दी। वहीं पूरब का पतन हुआ। वहीं भारत गिरा और अब तक नहीं उठ पाया। पश्चिम ने बाहर को सम्हालने में भीतर खो दिया। दोनों के आकर्षण हैं। दोनों के लाभ हैं। दोनों की हानियां हैं।
अंतर्मुखी व्यक्ति शांत हो जाता है; जीवन में तनाव कम हो जाता है, भाग-दौड़ रुक जाती है। लेकिन अंतर्मुखी व्यक्ति अगर अतिशय से अंतर्मुखता से भर जाए, तो धीरे-धीरे दीन हो जाएगा। शांति तो रहेगी, लेकिन दरिद्र हो जाएगा। भीतर तनाव न रहेगा, लेकिन बाहर जीवन की सुख-सुविधा खो जाएगी।
बहिर्मुखी व्यक्ति बाहर तो बड़ा आयोजन कर लेता है, भीतर चिंता से भर जाता है। तो बाहर तो बहुत सुख हो जाएगा, भीतर उसी मात्रा में दुख संगृहीत हो जाएगा।
भारत की मनीषा ने बड़े ऊंचे शिखर छुए, लेकिन वे शिखर अंतर्मुखता के थे, अधूरे थे। परमात्मा पूरा न था उनमें।

पश्चिम ने बड़े शिखर छू लिए हैं। पश्चिम के भवन पहली दफा गगनचुंबी हुए हैं, आकाश को छू रहे हैं। बड़ा फैलाव है विज्ञान का। शक्ति बढ़ी है विनाश की, सृजन की। लेकिन भीतर आदमी बिल्कुल ही पीड़ा, ग्लानि, पाप, अंधकार से भरा है। बाहर तो खूब रोशनी हो गई है, बाहर की रात तो करीब-करीब मिट गई है। भीतर की रात अमावस हो गई है। वहां चांद का कोई दर्शन ही नहीं होता, वहां तारे भी छिप गए हैं।
और ध्यान रखना कि मन को हमेशा सुविधा है दो में से एक को चुनना, क्योंकि मन द्वंद्व है। एक को चुनो, द्वंद्व जारी रहता है, संघर्ष जारी रहता है। दोनों को एक साथ चुन लो, द्वंद्व मिट जाता है, अद्वैत फलित हो जाता है।
न तो पश्चिम अद्वैतवादी है और न पूरब। कभी-कभी इक्के-दुक्के लोग अद्वैतवादी हुए हैं; कोई समाज, कोई राष्ट्र अभी तक अद्वैतवादी नहीं हो पाया। जो कहता है कि ब्रह्म ही है और माया नहीं है, वह भी अद्वैतवादी नहीं है। क्योंकि वह माया को इनकार कर रहा है, एक को इनकार कर रहा है। उसका एक का स्वीकार दूसरे के इनकार पर निर्भर है। और जिसे तुमने इनकार किया है, उसकी कमी खलती रहेगी। कितने ही जोर से इनकार करो, तुम्हारे इनकार करने में भी पता चलता है कि तुम उसे स्वीकार करते हो, अन्यथा क्या जरूरत है कहने की? सुबह जागकर तुम दुनिया को थोड़े ही समझाते हो कि रात जो देखा, वह सपना था, झूठा था। लेकिन ब्रह्मज्ञानी समझाए फिरता है, सब संसार माया है। अगर है ही नहीं, तो कृपा करके बंद करो बकवास। किसके संबंध में बता रहे हो? अगर संसार माया है, तो किसको समझा रहे हो? क्योंकि जिसको तुम समझा रहे हो, वही तो संसार है। अगर संसार माया है, तो किसको छोड़कर जा रहे हो? माया को कोई छोड़कर जा सकता है? जो है ही नहीं, उसे छोड़ोगे कैसे? सपनों का किसी ने कभी त्याग किया? सपने जाने जा सकते हैं; त्याग क्या होगा? त्याग कैसे करोगे? कुछ भी तो नहीं है हाथ में, जिसको छोड़ दोगे; सपना है।
लेकिन जिनको तुम ब्रह्मज्ञानी कहते हो, वे माया का त्याग करते हैं, संसार को छोड़ते हैं, और समझाए चले जाते हैं कि सब माया है, सब सपना है। किसको समझाते हो? लगता है, खुद को समझाते हैं। आधे को छोड़ दिया है, उस की पीड़ा खलती है। वही दुख प्रवचन बन जाता है। वही दुख समझाना बन जाता है। वे तुम्हें नहीं समझा रहे हैं, वे अपने को ही समझा रहे हैं, क्योंकि वह आधा मांग कर रहा है कि मुझे स्वीकार करो। उसे उन्हें सतत इनकार करना होता है। पश्चिम में ठीक उलटी बात चलती है। वह यह है कि पश्चिम के विचारक कहे जाते हैं कि ईश्वर नहीं है। इसमें तुम थोड़ा समझो। वे कहते हैं, ईश्वर है ही नहीं; आत्मा है ही नहीं।
जो नहीं है, उसके पीछे क्यों पड़े हो? एक दफा कह दिया, बात खतम हो गई, शांत हो जाओ। और जो नहीं है, उसके न होने को सिद्ध करने के लिए बड़े-बड़े शास्त्र क्यों लिखते हो?
ऐसे लोग हैं, जिनका पूरा जीवन इसी में लग जाता है, सिद्ध करने में, कि ईश्वर नहीं है। और वे कोई छोटे-मोटे लोग नहीं, बर्ट्रेंड रसेल जैसे विचारशील लोग, वे भी इसमें लगा देते हैं समय को कि ईश्वर नहीं है। जैसे यह कोई बहुत महत्वपूर्ण बात है। जो है ही नहीं, उसको सिद्ध क्या करना है? उसका मूल्य ही क्या है?
इसे तुम समझोगे, तो तुम्हें रहस्य समझ में आ जाएगा। पश्चिम सिद्ध करता है, आत्मा नहीं है, ईश्वर नहीं है। पूरब सिद्ध करता है, संसार नहीं है, बाहर सब माया है। दोनों की तरकीब यह है कि एक बच जाए, तो सुविधा हो जाए। पश्चिम कहता है, भीतर नहीं है, बाहर है।
लेकिन बाहर कैसे हो सकता है बिना भीतर के? तुमने कोई ऐसी चीज देखी, जिसमें बाहर ही हो और भीतर न हो? बाहर के साथ भीतर जुड़ा है, नहीं तो तुम उसे बाहर भी कैसे कहोगे?
हम मकान के बाहर बैठे हैं, क्योंकि मकान का भीतर भी है। अगर भीतर हो ही
न, तो इस जगह को तुम मकान के बाहर कहोगे? किस कारण से कहोगे? किस अपेक्षा से कहोगे? भीतर के आधार पर ही कुछ बाहर होता है। अगर सच में ही भीतर कुछ नहीं है, तो बाहर भी कुछ नहीं है। अगर सिद्ध हो जाए कि आत्मा नहीं है, तो सिद्ध हो गया कि संसार भी नहीं है।

और पूरब में, भारत में लोग सिद्ध किए जाते हैं कि बाहर नहीं है; झूठा
है सब।
लेकिन भीतर हो कैसे सकता है बिना बाहर के? ये तो एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। ये तो एक ही सचाई के दो रूप हैं। और ये दोनों रूप अनिवार्य हैं। भीतर मिट जाएगा, अगर बाहर नहीं है।
इसलिए अगर तुम ठीक-ठीक तार्किकों में विचरण करोगे, तो भारत में एक बहुत प्रगाढ़ तार्किक हुआ, नागार्जुन। उसने दोनों तर्कों का एक साथ उपयोग किया है। वह कहता है कि बाहर नहीं है, यह तो वेदांतियों ने सिद्ध कर दिया, इसलिए भीतर हो नहीं सकता। क्योंकि भीतर शब्द ही व्यर्थ हो गया, उसमें कोई सार ही न रहा। उसमें सब सार बाहर शब्द से आता था। तो वह कहता है, न बाहर है, न भीतर है; कुछ है ही नहीं।
यही बात नास्तिक की तरफ से भी कही जा सकती है कि तुमने सिद्ध कर दिया, भीतर नहीं है; सिद्ध हो गया, बाहर भी नहीं है। लेकिन यह निष्पत्ति कि न बाहर है न भीतर है, बड़ी व्यर्थ मालूम पड़ती है। तुम कौन हो फिर? कहां हो? किससे बोल रहे हो? कौन बोल रहा है? किसको समझा रहे हो? नींद में बड़बड़ा रहे हो?
लेकिन एक बात तो पक्की है कि नींद में बड़बड़ाता हुआ आदमी तो है। नागार्जुन तो है, जो कहता है, कुछ भी नहीं है। यह नागार्जुन बाहर है या भीतर? निश्चित ही भीतर है, और बाहर के लोगों को समझा रहा है।
दोनों हैं। लेकिन दोनों को कोई कभी स्वीकार नहीं कर पाया। क्योंकि मन
दो को साथ स्वीकार करने में बड़ी अड़चन अनुभव करता है। क्योंकि तब तो एक संतुलन जमाना होगा। उसी संतुलन को मैं संन्यास कहता हूं।
पूरब का संन्यास डूब गया। ऊंचाइयां छुईं उसने। कभी-कभी कोई बुद्ध, महावीर पैदा हुआ। लेकिन यह पूरा समाज तो बुद्ध, महावीर नहीं हो सका। एक बुद्ध के लिए करोड़ों लोग बुद्धू रह गए। यह कोई सौदा करने जैसा नहीं मालूम पड़ता। और कभी कोई एकाध छू ले, तो वह अपवाद है। और उस एक के छूने की वजह से तुम्हें ऐसा लगा कि बिल्कुल ठीक है; बस, भीतर को पकड़ लो; आत्मा को पकड़ लो, बाहर को जाने दो। बाहर चला गया। अब तुम रो रहे हो, अब तुम परेशान हो। गुलामी, दरिद्रता, दीनता, बीमारी, सब भारत को घेर लीं।
पश्चिम भी कोई एकाध आइंस्टीन पैदा कर देता है कभी-कभी बाहर का जानने वाला। लेकिन उससे भी कोई हल नहीं होता। बहुजन समाज तो तनाव, चिंता से भरा रह जाता है।
क्या यह नहीं हो सकता कि तुम बाहर-भीतर को एक साथ स्वीकार कर लो? दोनों हैं; तुम्हारे स्वीकार, अस्वीकार करने से कोई भी फर्क नहीं पड़ता; सिर्फ तुम झंझट में पड़ते हो।
ऐसा समझो कि तुम श्वास लेते हो; वह बाहर आती है, भीतर जाती है। तुम अगर जिद्द कर लो कि हम तो भीतर ही ले जाएंगे, बाहर न जाने देंगे, तो भी तुम मरोगे। या दूसरा आदमी जिद्द कर ले कि हम भीतर न जाने देंगे, बाहर ही रोककर रखेंगे; वह भी मरेगा।
पूरब भी मरा, पश्चिम भी मरा, क्योंकि दोनों ने आधे को अंगीकार किया। मैं उसी को साहसी कहता हूं, जो दोनों को एक साथ स्वीकार कर ले। जो कहे, हम तराजू के दोनों पलड़ों को बराबर रखेंगे। पूरब ने भी गंवाया, पश्चिम ने भी गंवाया। और डर यह है कि जब एक चीज को तुम खो देते हो, तो दूसरी अति पर जाने की आकांक्षा पैदा होती है।
जैसे भारत है अब। अब भारत में किसी को धर्म में बहुत उत्सुकता नहीं है। काफी दुख झेल लिया धर्म का। और काफी परेशानी उठा ली इस परमात्मा के साथ। और इस आत्मा की खोज में खूब गंवाया। और ध्यान, समाधि बहुत लगाई; न तो रोटी बरसी उससे, न धन उगा, न खेत भरे, न वर्षा हुई। कुछ भी न हुआ।
तो अब तो भारत की मनीषा इंजीनियर होना चाहती है, गणितज्ञ होना चाहती है, वैज्ञानिक होना चाहती है। तो भारत के बेटे पश्चिम जाते हैं, बड़े इंजीनियर, बड़े वैज्ञानिक होने के लिए।
पश्चिम के बेटे भारत आते हैं, संन्यास की तलाश में, ध्यान की खोज में।
क्योंकि पश्चिम भी थक गया। बहुत धन हुआ, बहुत विज्ञान हुआ, कुछ सार न पाया; सब व्यर्थ लगता है।

बड़ी अनूठी घटना घट रही है। पश्चिम पूरब जैसा होता जा रहा है, पूरब पश्चिम जैसा होता जा रहा है। धीरे-धीरे पूरब तो कम्युनिस्ट होता जा रहा है; करीब-करीब हो चुका है। एशिया करीब-करीब कम्युनिस्ट हो चुका है। जो नहीं हैं कम्युनिस्ट, वे भी अधूरे हैं। उनका भी ज्यादा देर भरोसा नहीं है। कब सांस टूट जाएगी, कुछ पक्का नहीं है। पूरब तो कम्युनिस्ट हो रहा है। कम्युनिस्ट है बहिर्वाद, आत्यंतिक बहिर्वाद। न कोई आत्मा है, न कोई ईश्वर है; सिर्फ पदार्थ है और पदार्थ का भोग है। इस पदार्थ को हम सामूहिक रूप से भोग लें, साथ-साथ भोग लें; समाप्ति है। जन्म के साथ शुरुआत है, मृत्यु के साथ अंत है। बीच के थोड़े से दिन हैं; उनको चाहे दुख में बिता लो, चाहे सुख में। थोड़ी सुविधा हम बना लें, ठीक से भोजन मिल जाए, कपड़े हों, छप्पर हों, बात समाप्त है।
पूरब कम्युनिस्ट हो रहा है और पश्चिम में व्यापक रूप से ध्यान की महिमा बढ़ती जाती है। क्या कारण होगा? जब तुम एक चीज से काफी परेशान हो जाते हो, तो तुम दूसरी अति पर जाने लगते हो। जो आदमी ज्यादा भोजन कर लेता है, वह उपवास करता है। थक गया। जो आदमी ज्यादा भोग लेता है, वह ब्रह्मचर्य का व्रत ले लेता है। थक गया।
लेकिन मध्य में रुकना कला है। थकने से कोई निर्णय मत लेना। क्योंकि फिर तुम वही भूल करोगे, जो तुमने पहले की थी। पहली भी भूल यही थी कि आधे को चुना था। अब आधे से घबड़ा गए, तो दूसरा आधा तुम्हें बहुत महत्वपूर्ण मालूम पड़ रहा है। इतना महत्वपूर्ण मालूम पड़ रहा है कि यह खतरा है कि तुम पहले आधे को छोड़कर दूसरे को पकड़ लोगे।
ऐसी है तुम्हारी हालत, जैसे एक पैर से चलने की कोशिश की है और न चल पाए; गिरे, लंगड़ाए, चोट खाई, तो धीरे-धीरे दूसरे पैर की जरूरत मालूम होने लगी। वह जरूरत इतनी ज्यादा मालूम होने लगी, इतने ज्यादा तुम आविष्ट हो गए उस जरूरत से, कि तुमने पहले पैर को छोड़ ही दिया कि यह तो फिजूल है। वह दूसरा पैर ही असली है। अब तुम दूसरे से चलने की कोशिश करोगे। फिर तुम लंगड़ाओगे; फिर तुम गिरोगे।
दोनों पैर चाहिए। दोनों पंख चाहिए। दोनों आंख चाहिए। दोनों कान चाहिए। द्वंद्व पूरा का पूरा तुम अंगीकार कर लो, तो निर्द्वंद्व हो जाते हो।
अगर तुम बाहर भी जीओ, भीतर भी जीओ; बाहर-भीतर का भेद ही छोड़ दो, तो तुम न पूरब के रह जाते, न पश्चिम के। ठीक अर्थों में तुम पहली दफा समग्र मनुष्यता के अंग बनते हो। पहली बार तुम समग्र बनते हो। और समग्रता सबसे बड़ी मनीषा है।
पूरब भी चूका है, पश्चिम भी चूका है। और अभी मौका है; क्योंकि बदलाहट
हो रही है। इस बदलाहट के क्षण में अगर समझ आ जाए... ।
बड़ा कठिन दिखता है। पश्चिम को समझाना मुश्किल है कि विज्ञान को नष्ट
मत करो, अन्यथा तुम पछताओगे, हम पछता रहे हैं। नहीं समझ में आता।
पश्चिम के जवान लड़के विज्ञान में बिल्कुल उत्सुक नहीं हैं। विज्ञान दुश्मन मालूम पड़ता है। विज्ञान का अर्थ मालूम पड़ता है, हिरोशिमा, नागासाकी। विज्ञान का अर्थ मालूम पड़ता है, मरती हुई प्रकृति, मरते हुए पक्षी, मरती हुई झीलें, मरता हुआ सागर। विज्ञान का अर्थ मालूम होता है, एक भयंकर दानव है टेक्नालाजी का, वह आदमी को कसे जा रहा है।
बर्कले विश्वविद्यालय में पिछले वर्ष लड़कों ने, जैसे तुम होली जलाते हो, होलिका को जलाते हो, वैसे उन्होंने रॉल्स रॉयस कार को जलाया। नई गाड़ी को चंदा करके खरीदा और बर्कले विश्वविद्यालय के प्रांगण में रखकर नई गाड़ी की होली की; प्रतीक की तरह जलाया कि यह प्रतीक है टेक्नालाजी का। हम टेक्नालाजी के दुश्मन हैं।
इसलिए हिप्पी पैदा हो रहा है पश्चिम में। हिप्पी का मतलब है, जो विज्ञान के विरोध में है। जो साबुन का उपयोग नहीं करता, क्योंकि वह अप्राकृतिक है। जो तेल नहीं डालता, क्योंकि वह तो सब बाहर का रंग-रोगन है। जो नियम-नीति नहीं मानता, क्योंकि बहुत मान लिया, कुछ सार न पाया। जो विश्वविद्यालय पढ़ने नहीं जाता, क्योंकि जो पढ़ लिए, उन्होंने क्या किया? बरबाद कर दिया।

विज्ञान में उसकी उत्सुकता नहीं है। बिजली में उसको रस नहीं है। वह चाहता है, कहीं किसी जंगल के एक झोपड़े में रात के अंधेरे में सोए, दीया भी जलाए न।
पश्चिम में हिप्पी पैदा हो रहा है। हिप्पी का अर्थ है, बाहर से बगावत, भीतर की खोज।
पूरब में ठीक उलटी घटना घट रही है। पूरब का लड़का इंजीनियर, डाक्टर बनना चाहता है। और पूरब के हर लड़के की आकांक्षा है कि पश्चिम जाकर बड़ी डिग्रियां लेकर लौटे, और टेक्नालाजी सीखकर लौटे, और यंत्रों को जान ले, और नए यंत्र बनाए। खेती को वैज्ञानिक ढंग से किया जाए। हर चीज वैज्ञानिक हो, ताकि प्रचुरता से उपलब्ध हो सके। हम काफी दीन रह लिए, दुखी हो लिए।
पर मैं तुमसे कहता हूं... जैसा मैं पश्चिम से कहता हूं कि विज्ञान को छोड़ा कि तुम हजार, दो हजार साल में भारत जैसी दीनता को पहुंच जाओगे, भूखे मरोगे। आज तुम्हें जो संपन्नता दिखाई पड़ रही है पश्चिम में, वह प्रकृति से आई हुई संपन्नता नहीं है, वह विज्ञान ने दी है; वह बाहर जीने की कला से आई है।
आज तुम्हें पूरब में जो दरिद्रता दिखाई पड़ती है, वह उसी भूल से आई है,
जो तुम पश्चिम में कर सकते हो, कि हमने कह दिया, सब बेकार है; बाहर तो कुछ सार नहीं। जब माया ही है, तो कौन फिक्र करे? कौन प्रयोगशाला बनाए? कौन खोज करे? क्या लेना-देना है? सपने में कोई ज्यादा रस ही नहीं है। भीतर जाओ, अंतर्मुखी हो जाओ। हम होकर देख लिए हैं।
और मैं पूरब के लोगों से भी कहना चाहता हूं कि पश्चिम के लोगों को समझो। उन्होंने विज्ञान का खूब विस्तार करके देख लिया है और वे थक गए हैं, घबड़ा गए हैं। जिंदगी नष्ट हो गई। टेक्नालाजी बड़ी हो गई, आदमी छोटा हो गया। टेक्नालाजी इतनी बड़ी होती जा रही है कि आदमी उसमें सिकुड़ता ही जाता है, खोता जाता है। यंत्र ही चला रहे हैं। यंत्र ही मालिक हो गए हैं। हर चीज यंत्र से पूछी जा रही है।
अब तो कंप्यूटर पैदा हो गए हैं। तो अब तो तुम्हें कोई जरूरी सवाल भी पूछना है, निर्णय भी करना है, तो वह भी आदमी से पूछना ठीक नहीं है, कंप्यूटर से पूछना ठीक है। क्योंकि आदमी से भूल हो सकती है, कंप्यूटर से भूल नहीं होती।
कंप्यूटर तुम्हें बता देगा कि इस स्त्री से विवाह करना उचित है या नहीं। तुम दोनों अपने-अपने जीवन की संक्षिप्त रूपरेखा कंप्यूटर को दे दो, वह हिसाब लगाकर बता देगा कि इस स्त्री के साथ तुम्हारी कैसी जिंदगी रहेगी। साथ रहोगे, तो कितना झगड़ा होगा, कितना मेल होगा, कितनी कलह रहेगी। जो ज्योतिषी कभी नहीं कर पाए, वह कंप्यूटर आसानी से कर देता है। क्योंकि दोनों के गुणों को वह पहले समझ लेता है, फिर दोनों के गुणों का पूरा गणित लगा देता है। वह कह देता है कि साठ प्रतिशत सफलता होगी, चालीस प्रतिशत असफलता होगी। अगर चालीस प्रतिशत असफल होने को राजी हो, कर लो।
अन्यथा दूसरी स्त्री खोजो।
सभी चीजें धीरे-धीरे यंत्र के हाथ में चली गई हैं।
पश्चिम ने करके देख लिया, थक गया; तुम भी करके देख लिए, तुम भी थक गए।
अब डर यह है कि तुम वह चुन लो, जो भूल पश्चिम ने की थी। और पश्चिम वह चुन ले, जो भूल तुमने की थी। और फिर वही चक्कर शुरू हो जाए।
इसलिए मेरा एक अभिनव प्रयास है; वह सभी संभावनाओं के ऊपर देखने की चेष्टा है; बड़ा आशावादी भाव है वह। वह भाव यह है कि मनुष्य दोनों में एक साथ जी सकता है; क्योंकि दोनों दो नहीं हैं। अगर वे दो होते, तब तो जी ही नहीं सकता था।
कहां बाहर शुरू होता है, कहां भीतर शुरू होता है? भोजन तुम करते हो, बाहर से भीतर डालते हो; फिर भोजन पचता है, खून-मांस-मज्जा बनता है; भीतर हो गया। न केवल भोजन पचकर भीतर बन जाता है, फिर भोजन की ही सूक्ष्म ऊर्जा उठती है और विचार बनती है, सपने बनती है, कविता का जन्म होता है।
कविता को तो बाहर न कहोगे। प्रेम को तो बाहर न कहोगे। जब तुम किसी स्त्री के प्रेम में पड़ जाते हो, तो तुम कहोगे, यह भीतर से आ रहा है कि बाहर से! इसे तो भीतर कहोगे!

लेकिन भूखे भजन न होईं गुपाला! भजन भी पैदा नहीं होता भूखे को तो, प्रेम कैसे पैदा होगा। वह भी भोजन की ही सूक्ष्मतम ऊर्जा है, जो प्रेम बनती है, भजन बनती है।
इसलिए तो उपनिषदों ने कहा, अन्न ब्रह्म है। बड़े गहरे लोग रहे होंगे। अन्न और ब्रह्म को जोड़ दिया। बाहर और भीतर को एक कर दिया। क्या बचा? अन्न तो छोटी से छोटी चीज है। और ब्रह्म बड़ी से बड़ी चीज है। लेकिन उपनिषदों ने कहा, अन्नं ब्रह्म! अन्न ब्रह्म है। छोटे से छोटा बड़े से बड़ा है। बाहर से बाहर भी भीतर से भीतर है। भीतर से भीतर भी बाहर से बाहर है।
जब तुम क्रोध से भरते हो, उठाकर एक पत्थर किसी के सिर में मार देते हो। पत्थर बाहर है, क्रोध भीतर है। जिस आदमी का सिर टूट जाता है, वह भी बाहर है। खून बहता है, वह भीतर से आता है। उसके भीतर भी क्रोध पैदा होता है, वह भीतर है।
सब संयुक्त है। बाहर और भीतर विभाजित नहीं हैं। जिस दिन तुम्हें यह ख्याल आ जाए, उस दिन तुम्हारे जीवन में बड़ी समझ पैदा होगी। तब तुम एक को पकड़कर जीने की कोशिश छोड़ दोगे।
वह एकांगी चेष्टा से ही गृहस्थ पैदा होता है और पुराना संन्यासी पैदा होता है। वे दोनों एकांगी हैं। लेकिन तुमने कभी ख्याल नहीं किया कि वह संन्यासी भी गृहस्थ को छोड़कर जा नहीं सकता। भोजन के लिए, वस्त्र के लिए गृहस्थ पर निर्भर रहना पड़ता है। और गृहस्थ भी संन्यासी को छोड़कर नहीं जा सकता। प्रवचन सुनने के लिए, जब पत्नी से झगड़ा हो जाए तो थोड़ी सांत्वना के लिए, जब घर में बहुत उपद्रव मचे तो थोड़ी शांति के लिए, वह संन्यासी के द्वार पर खड़ा रहता है।
बाहर के लिए संन्यासी गृहस्थ के द्वार पर खड़ा रहता है; भीतर के लिए गृहस्थ संन्यासी के द्वार पर खड़ा रहता है। शांति चाहिए, तो जाओ संन्यासी को खोजो। ध्यान चाहिए, तो संन्यासी को खोजो। और संन्यासी को भूख लगती है, तो चला गृहस्थ की खोज में। फिर भी तुम्हें दिखाई न पड़ा कि संन्यासी और गृहस्थ आधे-आधे हैं! ये पूरे नहीं हैं। और पूरा मनुष्य ही तृप्त होता है। पूर्णता ही तृप्ति है।
और पूर्णता का एक ही उपाय मैं जानता हूं, दूसरा उपाय है भी नहीं। और वह पूर्णता यह है कि तुम संन्यासी और गृहस्थ एक साथ हो जाओ। तुम रोटी अपने ही गृहस्थ से मांग लो, दूसरे गृहस्थ से मांगने की क्या जरूरत है! जो तुम ही कर सकते हो, उसके लिए दूसरे के द्वार पर जाने की क्या जरूरत है! और शांति भी तुम अपनी ही साध लो, किसी से क्या मांगना है! दोनों तुम्हारे भीतर उपलब्ध हैं, तुम व्यर्थ ही भिखारी बन जाते हो।
बंटे हुए संन्यासी भी भिखारी हो जाते हैं। गृहस्थ भी भिखारी हो जाता है। अनबंटे, अखंड, तुम दोनों हो जाते हो। दोनों जो एक साथ है, वही अद्वैत को उपलब्ध है।
भारत की गरिमा ने बहुत कुछ पाया, लेकिन वह एकांगी था; इसलिए दुख उत्पन्न हुआ। पश्चिम ने भी बहुत पाया है; वह भी एकांगी है। और मेरे लिए सवाल न तो बाहर की खोज का है, न भीतर का। मेरे लिए एकांगी होना रोग है। तो तुम किस ढंग से एकांगी हो, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता; तुम दीन रहोगे। दोनों को साध लो। और अड़चन जरा भी नहीं है।
कई लोग मुझसे आकर पूछते हैं कि दोनों को कैसे साधें? तुम कभी मुझसे नहीं पूछते कि दोनों श्वास कैसे चलती हैं? दोनों पैर कैसे चलते हैं? दोनों हाथ कैसे चलते हैं? सिर्फ इसी के लिए तुम क्यों पूछते हो! क्योंकि हजारों साल से तुम को यही सिखाया गया है कि दोनों में द्वंद्व है।
दोनों में द्वंद्व है ही नहीं। साधना है ही नहीं। वे दोनों सधे ही हुए हैं, कृपा करके इतना समझ लो। सधे ही हुए हैं, नहीं तो तुम जी ही नहीं सकते। प्रतिपल बाहर से भीतर जा रही है ऊर्जा, भीतर से बाहर आ रही है। तुम तो बाहर और भीतर के मिलन हो, द्वार हो। जहां से आकाश भीतर बन रहा है; और पुराना आकाश, जो जराजीर्ण हो गया, बाहर जा रहा है। नया आकाश भीतर आ रहा है, पुराना आकाश बाहर जा रहा है।
नया भोजन तुम भीतर ले रहे हो, पुराना मल-मूत्र होकर बाहर जा रहा है। कल उसे बाहर से ही लिया था, अब फिर वापस जा रहा है। नया बच्चा पैदा हो रहा है,

बूढ़ा आदमी मर रहा है। नया बच्चा बाहर आ रहा है, बूढ़ा आदमी कब्र में जा रहा है। कुछ भी नहीं है; सिर्फ बाहर और भीतर का संतुलन है। बूढ़ा चुक गया; उसने बाहर से जो-जो लेना था, ले लिया; अब सब वापस लौटना है। प्रतिपल ऐसा हो रहा है।
श्वास भीतर आ रही है, बाहर जा रही है। भीतर आती है, तब आक्सीजन से भरी हुई आती है। भीतर आक्सीजन तो तुम्हारे खून में मिल जाती है, तुम्हारा प्राण बन जाती है। कार्बन डाय आक्साइड शेष रह जाता है, वह बाहर जा रहा है। उसकी बाहर को जरूरत है।
ये जो वृक्ष खड़े हैं, ये कार्बन डाय आक्साइड पीने के लिए तुम्हारे पास खड़े हैं। ये वृक्ष कार्बन डाय आक्साइड को पीये जाते हैं। इसलिए तो तुम जब वृक्ष को जलाते हो, तो कोयला पैदा होता है। कोयला यानी कार्बन। और वृक्ष आक्सीजन को छोड़ रहे हैं। उनकी श्वास का ढंग भिन्न है। वे कार्बन को पीते हैं और आक्सीजन को छोड़ते हैं। तुम आक्सीजन पीते हो और कार्बन को छोड़ते हो। बिना वृक्षों के तुम जिंदा न रह सकोगे।
इसलिए पश्चिम में बड़ा आंदोलन इकॉलाजी का चल रहा है कि वृक्ष मत काटो,
नए वृक्ष लगाओ। क्योंकि वृक्ष अगर सब कट गए, आदमी मर जाएगा।
तुमने कभी सोचा ही नहीं कि वृक्ष से तुम्हारी जिंदगी जुड़ी थी। वह बाहर है, लेकिन एक क्षण को बिना वृक्ष के तुम नहीं रह सकते। वृक्ष तो चाहिए ही। वह शुद्ध कर रहा है हवा को तुम्हारे लिए। तुम उसके लिए तैयार कर रहे हो। तुम एक ही बड़े यंत्र के दो हिस्से हो।
तुम्हारे बिना वृक्ष भी मुश्किल में पड़ेगा। अगर सारे पशु-पक्षी और मनुष्य मर जाएं, वृक्ष सूख जाएंगे। क्योंकि कौन उन्हें कार्बन डाय आक्साइड देगा? अगर सब वृक्ष काट डाले जाएं, आदमी, पशु-पक्षी, सब मर जाएंगे। कौन उन्हें आक्सीजन देगा? जीवन संयुक्त खेल है। यहां सब जुड़ा है। किस घड़ी तुम बाहर कहते हो, किस घड़ी तुम भीतर कहते हो? कैसे तुम बांटते हो?
इसलिए मुझसे जब कोई पूछता है, तो मैं बड़ी अड़चन में पड़ता हूं। मुझसे कोई पूछता है, कैसे साधें? मैं उससे पूछता हूं, इसकी फिक्र ही छोड़ो। तुम देखो कि कैसा सधा हुआ है। तुम कृपा करके अड़चन न डालो। तराजू बिल्कुल सधा हुआ है। अगर तुमने कृपा की और समझपूर्वक बाधा न डाली, हस्तक्षेप न किए, तो सब सधा ही हुआ है।
इसलिए सम्यक बोध जीवन का संन्यास है। वहां तुम पाओगे, दोनों जुड़े हैं।
भोजन लेते हो। भोजन बाहर है; भूख भीतर है। दोनों के बीच बड़ा संतुलन है। दोनों के बीच गहरा संतुलन है। भूख का अर्थ है, भोजन की मांग, बाहर की मांग भीतर से। फिर जब तुमने भोजन कर लिया, भूख विदा हो गई। जब भोजन मिल गया, तो भूख की कोई जरूरत न रही, मांग न रही। अब भोजन भीतर बनने लगा। अब भोजन तुम्हारे भीतर का हिस्सा होने लगा।
अगर तुम चाहो तो महीने, दो महीने भूखे रह सकते हो। वह भी तुम इसीलिए भूखे रह सकते हो कि अतीत में तुमने जो भोजन किया था। उपवास भी भोजन पर निर्भर है। अगर तुम अतीत में भी भूखे रहे हो, तो उपवास न कर सकोगे।
कुछ आश्चर्य नहीं है कि महावीर महीनों उपवास कर सके। राजपुत्र थे। शुद्धतम, श्रेष्ठतम, शक्तिशाली भोजन जीवनभर उपलब्ध हुआ था।
अगर महावीर की नकल कोई गरीब आदमी करेगा, तो मरेगा। वह जो जीवनभर पौष्टिक आहार उपलब्ध हुआ था, उसके आधार पर उपवास हो रहा है। क्योंकि उपवास के लिए जरूरी है कि तुम्हारे शरीर में चर्बी इकट्ठी हो। चर्बी का मतलब है, संगृहीत भोजन, जो तुमने वक्त-बेवक्त के लिए इकट्ठा कर रखा है।
तो हर आदमी, अगर ठीक स्वस्थ हो, तो तीन महीने तक के लिए भोजन इकट्ठा रखता है शरीर में वक्त-बेवक्त के लिए। कभी जंगल में भटक गए, और भोजन न मिला; कोई मुसीबत आ गई, भोजन न मिला; कोई बीमारी हो गई, भोजन न कर सके; तो तीन महीने तक इमरजेंसी, संकटकालीन व्यवस्था है कि तीन महीने तक तुम्हें शरीर ही भोजन देता रहेगा। लेकिन वह भोजन भी बाहर से आया है।
अब यह बड़े मजे की बात है। लोग समझते हैं, उपवास भीतर है और भोजन बाहर है। लेकिन बिना भोजन के उपवास नहीं हो सकता। और उलटी बात भी सच है, बिना उपवास के भोजन नहीं हो सकता।

इसलिए हर दो भोजन के बीच में आठ घंटे का उपवास करना पड़ता है। वह जो आठ घंटे का उपवास है, वह फिर भोजन की तैयारी पैदा कर देता है।
इसलिए अगर तुम दिनभर खाते रहोगे, तो भूख भी मर जाएगी, भोजन का मजा भी चला जाएगा। भोजन का मजा भूख में है। यह तो बड़ी उलटी बात हुई! भोजन का मजा भूख में है। जितनी प्रगाढ़ भूख लगती है, उतना ही भोजन का रस आता है।
इसका तो यह अर्थ हुआ कि ध्यान का रस विचार में है। तुमने जितना विचार
कर लिया होता, उतनी ही ध्यान की आकांक्षा पैदा होती। इसका तो अर्थ हुआ कि ब्रह्मचर्य की जड़ें कामवासना में हैं; कि तुमने जितना काम भोग लिया होता, उतने ब्रह्मचर्य के फूल तुम्हारे जीवन में खिलते।
ये मेरी बातें तुम्हें उलटबांसियां लगेंगी; क्योंकि जिन्होंने तुम्हें समझाया है अब तक, उन्होंने खंड करके समझाया है। उन्होंने कहा, कामवासना ब्रह्मचर्य के विपरीत है। उन्होंने कहा, संसार संन्यास के विपरीत है। उन्होंने हर चीज के बीच द्वंद्व और संघर्ष और कलह पैदा कर दी है। ये जो कलह पैदा करने वाले लोग हैं, इनको तुम गुरु समझ रहे हो। यही तुम्हें भटकाए हैं।
मैं चाहता हूं कि तुम्हारे जीवन में अकलह हो जाए, एक संवाद छिड़ जाए, संगीत बजने लगे। अलग-अलग स्वर न रह जाएं, सब एक संगीत में समवेत हो जाएं। तुम्हारे भीतर एक कोरस का जन्म हो, जिसमें सभी जीवन की तरंगें संयुक्त हों, बाहर और भीतर मिले, शरीर और आत्मा मिले, परमात्मा और प्रकृति मिले। इसलिए कबीर कह सके कि वे ही विरले योगी हैं, जे धरनी महारस चाखा। विरले योगी वे ही हैं। परमात्मा का जिन्होंने अकेले रस चखा, वे कोई बहुत विरले योगी नहीं हैं। अधूरे हैं, आधे हैं। पूरे तो वे ही हैं, जे धरनी महारस चाखा। जिन्होंने धरती के महारस को भी चखा। परमात्मा को तो पीया ही, धरती को भी पीया। आत्मा को तो जाना ही, पदार्थ को भी जाना। भीतर तो मुड़े ही, बाहर के विपरीत नहीं; बाहर के सहारे मुड़े। भीतर गए और बाहर की नाव पर गए। उनको कबीर ने कहा विरले योगी।
उन्हीं विरले योगियों से संसार उस शांति को उपलब्ध होगा, जो पूरब जानता है; और उस सुख को उपलब्ध होगा, जो पश्चिम जानता है। और जहां सुख और शांति के पलड़े बराबर हो जाते हैं, वहीं जीवन में संयम पैदा होता है। संयम यानी संतुलन।
पूरब भी असंयमी है और पश्चिम भी असंयमी है। इसलिए दोनों दुखी हैं। असंयम दुख है। संयम महासुख है।

दूसरा प्रश्नः आपने कहा है कि झुकना एक महाघटना का सूत्रपात है। क्या खड़े रहना, अकड़े रहना, किसी महाअनुभव पर नहीं ले जाता?

ले जाता है। वही झुकने पर ले जाता है। अकड़े रहो, खड़े रहो। झुकोगे, जब अकड़ से थक जाओगे, परेशान हो जाओगे। कितनी देर अकड़े खड़े रह सकते हो? विश्राम तो करोगे? अकड़ की पीड़ा, संताप, दुख आत्यंतिक रूप से झुकने की तरफ ले जाता है, विनम्रता की तरफ ले जाता है।
अहंकार का आखिरी कदम निरअहंकारिता है। कब तक अहंकारी बने रहोगे? जब पत्थर की तरह सिर पर अहंकार बोझिल हो जाएगा, छाती में हृदय को धड़कने न देगा, प्रेम को मार डालेगा, ध्यान का उपाय न छोड़ेगा, शांति का सुराग भी न मिलने देगा, अशांति का दावानल जलेगा, भीतर तुम लपटें ही लपटें हो जाओगे, जलोगे ही, दग्ध ही होओगे और कभी कोई वर्षा न होगी, तब क्या करोगे? तब एक क्षण में छोड़कर इस अहंकार को तुम झुक जाओगे।
इसलिए कुनकुने अहंकारी खतरनाक हैं। थोड़े-थोड़े अहंकारी, थोड़े-थोड़े विनम्र, ये खतरनाक लोग हैं। ये कभी धर्म को उपलब्ध नहीं होते। ये कुनकुने पानी की तरह हैं; कभी भाप नहीं बनते। ये सौ डिग्री पर ही नहीं पहुंचते, तो भाप कैसे बनेंगे? न तो शीतल हो पाते हैं, क्योंकि वह अहंकार इनको गरमाए रखता है। और न इतने गरम हो पाते, क्योंकि झूठी सज्जनता, विनम्रता, आचरण, व्यवहार, कुशलता, वह इनको शीतल बनाए रखती है। न गरम हो पाते, न ठीक शीतल हो पाते। दोनों के बीच सड़ते हैं।

अगर तुम अहंकार के ही पीछे लगे रहो, तो आज नहीं कल निरअहंकार घटेगा। इसलिए मेरी दृष्टि में हर बच्चे को अहंकार की शिक्षा दी जानी चाहिए, ताकि कहीं वह कुनकुना न रह जाए। उसे अहंकार की खूब प्रगाढ़ शिक्षा दी जानी चाहिए, ताकि आज नहीं कल अहंकार का दंश इतना भयंकर हो उठे कि वह अपने अनुभव से ही अहंकार छोड़ दे और निरअहंकारिता की तरफ यात्रा करे।
किसी बच्चे को मत सिखाओ कि विनम्र हो जाओ। विनम्रता कोई सिखा नहीं सकता, स्वानुभव से आती है। तुम तो यही सिखाओ कि अहंकार! अहंकार को इतना प्रगाढ़ और निखरा हुआ कर दो बच्चे में कि वह तलवार की धार हो जाए; खुद को ही काटने लगे। और तब तुम पाओगे, बच्चा एक दिन खुद ही अपने अनुभव से प्रौढ़ हो गया है।
इधर मेरे अनुभव में रोज यह बात आती है। पश्चिम का मनोविज्ञान अहंकार
पर जोर देता है। वह कहता है, स्वस्थ आदमी को सघनीभूत अहंकार चाहिए। और पूरब का धर्म जोर देता है कि परम स्वास्थ्य के लिए निरअहंकारिता चाहिए। ये विपरीत मालूम पड़ते हैं; ये विपरीत नहीं हैं। और मेरे अनुभव में बड़ी अनूठी बात आती है।
पूरब के आदमी मेरे पास आते हैं, पश्चिम से आदमी मेरे पास आते हैं। जब कोई भारतीय आता है, तो वह पैर ऐसे ही छू लेता है। उसमें कोई विनम्रता नहीं होती, आदतवश छू लेता है। और उसके चेहरे पर कुछ नहीं दिखाई पड़ता। छू रहा है, सदा से छूता रहा है, एक औपचारिक नियम है, एक कर्तव्य है। छूने में कोई भाव नहीं है, कोई श्रद्धा नहीं है, न कोई निरअहंकारिता है।
पश्चिम का आदमी आता है; छूने में बड़ी कठिनाई पाता है; पैर छूना उसे बड़ा मुश्किल मालूम पड़ता है। वह उसकी शिक्षा का अंग नहीं है। उसे बड़ी कठिनाई होती है। ध्यान करता है; सोचता है, विचार करता है; अनुभव करता है, तब किसी दिन पैर छूने आता है। लेकिन तब पैर छूने में अर्थ होता है।
पूरब का आदमी पैर छू लेता है सरलता से, लेकिन उस सरलता में गहराई नहीं है, उथलापन है। पश्चिम के आदमी के लिए बड़ा कठिन है पैर छूना, लेकिन जब छूता है, तो उसमें अर्थ है। क्या कारण है?
पश्चिम में विनम्रता सिखाई नहीं जाती, स्वस्थ अहंकार सिखाया जाता है।
और मेरी अपनी धारणा है कि दोनों सही हैं। पहले कदम पर स्वस्थ अहंकार सिखाया जाना चाहिए, ताकि दूसरे कदम पर विनम्रता की शिक्षा संभव हो सके। पश्चिम यात्रा की शुरुआत करता है और पूरब में यात्रा का अंत है।
और यही सब चीजों के संबंध में सही है। पहले विज्ञान सिखाया जाना चाहिए, क्योंकि वह यात्रा का प्रारंभ है। फिर धर्म, क्योंकि वह यात्रा का अंत है। पहले विचार करना सिखाया जाना चाहिए, प्रशिक्षण विचार का। फिर ध्यान। क्योंकि वह निर्विचार है। वह अंतिम बात है।
पश्चिम में जो हो रहा है, वह प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के प्राथमिक चरण में होना ही चाहिए। और जो पूरब की आकांक्षा है, वह प्रत्येक व्यक्ति के अंतिम चरण में होना चाहिए। पैंतीस वर्ष का जीवन पश्चिम जैसा और पैंतीस वर्ष का आखिरी जीवन पूरब जैसा, तो तुम्हारे भीतर सम्यक संयोग फलित होगा।

तीसरा प्रश्नः सदगुरुओं की लीलाएं अलग-अलग क्यों हैं?

क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अलग-अलग है। और प्रत्येक व्यक्ति अनूठा, अद्वितीय है, बेजोड़ है। तुम भी बेजोड़ हो, तो सदगुरुओं का तो कहना ही क्या! तुम भी दूसरे जैसे नहीं हो; तुम्हारे जैसा कोई आदमी कहीं नहीं है। जैसे तुम्हारे अंगूठे का चिह्न अलग है और दुनिया में किसी दूसरे का वैसा चिह्न नहीं है--न मौजूद किसी का; न अतीत में कोई हुआ, उसका; न भविष्य में कोई होगा, उसका। जब अंगूठा तक इतना अलग है, तो आत्मा का तो क्या कहना! तुम्हारी आत्मा का हस्ताक्षर बिल्कुल अलग है; कभी किसी ने नहीं किया, कभी कोई नहीं करेगा।
यह तो साधारणजन की बात है, जो जमीन पर जीते हैं, भीड़ में जीते हैं, अनुकरण में जीते हैं, वे भी भिन्न-भिन्न हैं। तुमने कभी एक जैसे दो आदमी देखे? दो जुड़वां भाई भी एक जैसे नहीं होते। अगर तुम निरीक्षण करो, तो फर्क पाओगे।

शरीरशास्त्री कहते हैं कि यह कोई बाद में फर्क हो जाता है, ऐसा भी नहीं। दो बच्चे भी मां के पेट में एक जैसे नहीं रहते। कोई टांगें फटकारता है, कोई बिल्कुल शांत रहता है, कोई उपद्रव मचाता है। वह पहले ही से कोई क्रांतिकारी है, वह पैदा होते ही से कोई विप्लव खड़ा करने की तैयारी कर रहा है। कोई बिल्कुल शांत रहता है, मां के पेट को पता ही नहीं चलता, हलन-चलन भी नहीं होती। वह कभी-कभी चौंकती भी है कि बच्चा जिंदा है या मरा। वह पहले ही से साधु है।
डाक्टरों का अनुभव है, जो बच्चों को जन्म दिलवाते हैं कि बच्चे पैदा होते से ही अलग-अलग होते हैं। कोई बच्चा पैदा होते से ही बड़ी शांति का भाव प्रकट करता है। कोई बच्चा पैदा होते ही से भयंकर चीख-पुकार मचाता है। कोई बच्चा पैदा होते से ही आंख खोलता है, लोगों को गौर से देखता है। कोई बच्चा आंख बंद किए पड़ा रहता है। एक उदासी; कोई उत्सुकता नहीं। कोई बच्चा पहले ही से गोबर-गणेश होता है; पड़ जाता है। कोई बच्चा पहले ही से चारों तरफ सजग होकर सारी दुनिया को जानने को उत्सुक हो जाता है। यात्रा शुरू हो गई।
दो बच्चे एक जैसे जन्म के क्षण में भी नहीं होते। मां के गर्भ में भी नहीं होते।
यह तो भीड़ में रहने वाले लोगों का जीवन है, जहां अनुकरण नियम है; जहां वैसे ही कपड़े पहनो, जैसे दूसरे पहनते हैं; वैसे ही बाल कटाओ, जैसे दूसरे कटाते हैं। नहीं तो तुम कुछ विचित्र समझे जाओगे और लोग उसको अच्छा न मानेंगे। लोग समझेंगे कि तुम उनकी आलोचना कर रहे हो या उनके कपड़ों की या उनके बालों की। लोग चाहते हैं कि लोग एक-दूसरे के जैसे हों। वहां भी इतना भेद है कि वहां भी कोई एक जैसा नहीं है।
लेकिन सदगुरु का तो अर्थ है, वह जमीन पर नहीं है अब, शिखर की तरह हो गया, गौरीशंकर। तो दो शिखर पहाड़ों के, आकाश में अलग-अलग उठे, तो बिल्कुल अलग हो जाते हैं। जमीन पर इतना भेद है, तो शिखरों में तो बहुत भेद हो जाता है।
इसलिए दो गुरु एक जैसे नहीं होते। इससे बड़ी अड़चन पैदा हुई है। अड़चन पैदा यह हुई है कि जो एक गुरु के प्रेम में पड़ जाता है, वह यह समझ ही नहीं पाता कि दूसरे गुरु कैसे गुरु हैं? क्योंकि उसके पास एक मापदंड हो जाता है।
जिसने महावीर को प्रेम किया, वह मोहम्मद को कैसे प्रेम करे? उसकी एक कसौटी है। वह देखता है कि नग्न खड़े हैं या नहीं? अभी वस्त्र का त्याग किया या नहीं? और मोहम्मद वस्त्र पहने खड़े हैं, तो मुश्किल हो गई।
और मोहम्मद तो ठीक ही हैं, रामचंद्र धनुष लिए खड़े हैं। और कृष्ण का तो कहना ही क्या? वे मोर-मुकुट बांधे खड़े हैं। वस्त्र तो छोड़े ही नहीं हैं, मोर-मुकुट और बांध लिया। बांसुरी बजा रहे हैं। स्त्रियां आस-पास नाच रही हैं।
तो जिसने महावीर को कसौटी बना लिया, उसके लिए कृष्ण कोई हालत में ज्ञानी नहीं हो सकते।
और जिसने कृष्ण को बना लिया मापदंड, वह महावीर को कैसे बरदाश्त करेगा। कृष्ण में ऐसा रस उसे मालूम होगा कि महावीर बिल्कुल सूखे रेगिस्तान मालूम पड़ेंगे। मोर-मुकुट कैसा सोहता है कृष्ण पर! बांसुरी की कैसी धुन है! नाच का कैसा मजा! कैसा उत्सव! और ये महावीर खड़े हैं नग्न; भूत-प्रेत मालूम होते हैं। ये क्या कर रहे हैं नग्न वृक्ष के नीचे खड़े? कुछ गाओ। अरे, नाचो। बांसुरी बजाओ; मोर-मुकुट बांधो। लेकिन महावीर महावीर हैं।
महावीर का मानने वाला कृष्ण को देखता है कि ये तो कुछ नाटकीय हैं। ड्रामैटिक मालूम होते हैं, कोई अभिनेता हैं, कि किसी नौटंकी में काम करते हैं। ये मोर-मुकुट बांधे किस लिए खड़े हो? ज्ञानी को इसमें क्या रस! और यह बांसुरी किस लिए बजा रहे हो? यह तो अज्ञानी काफी हैं बजाने के लिए। तुम तो फेंको इसे। यह कैसा राग-रंग हो रहा है? वीतराग बनो। ये स्त्रियां किसलिए नाच रही हैं? यह द्वंद्व कब तक चलेगा? तो अभी कामवासना शांत नहीं हुई? नहीं, एक का भक्त दूसरे के प्रति अंधा हो जाता है। और कठिनाई यह है कि
दो सदगुरु एक से होते ही नहीं।

बड़ी खुली आंख चाहिए, जब तुम पहचान पाओगे कि ये तो आवरण हैं। हर गुरु के अलग हैं। हर गुरु की लीला अलग है, होगी ही। क्योंकि वह अपने स्वभाव से जीता है। कोई कृष्ण महावीर का अनुकरण नहीं करते, न कोई महावीर किसी कृष्ण का अनुकरण करते हैं। परम ज्ञानी अनुकरण करता ही नहीं। वह तो अपने शुद्ध स्वभाव में जीता है। जो घटता है, घटता है।
कृष्ण कोई बांसुरी बजा थोड़े ही रहे हैं, बांसुरी बज रही है। महावीर कोई नग्न होकर खड़े थोड़े ही हो गए हैं, इसका कोई अभ्यास थोड़े ही किया है। नग्नता फलित हुई है। यह घटी है। यह कोई अभ्यास नहीं है, आयोजन नहीं है।
इसके लिए कोई चेष्टा नहीं की है; कपड़े उतारकर, झाड़ के नीचे आंख बंद करके अभ्यास नहीं किया है। यह घटी है।
महावीर ने घर छोड़ा। जब घर छोड़ा, तो एक ही वस्त्र था। जब वे घर से छोड़कर गए, तो राह में एक भिखारी मिला और उसने कहा कि कुछ मुझे भी दे जाएं।
वह सब लुटा दिया था; उनके पास जो संपत्ति थी, वह तो शहर में लुटा आए। जो
धन था, वह सब उन्होंने बांट दिया; जो-जो उनकी निजी चीजें थीं, वे सब उन्होंने बांट दीं। कुछ भी न बचा। एक वस्त्र, एक चादर को लपेटे आए हैं। और अब यह भिखारी मिल गया गांव के बाहर। उसने कहा कि मुझे भी कुछ देते जाएं! मैं वहां तो आ न पाया; लूला-लंगड़ा हूं। और उस भीड़ में मेरी कौन सुनता?
अब इसको कैसे मना करें! तो आधा कपड़ा फाड़कर उसे दे दिया। अब वह आधा ही बचा।
फिर जंगल में जा रहे हैं कि एक झाड़ी में वह आधा कपड़ा उलझ गया। कांटों वाली झाड़ी थी। वह इस बुरी तरह उलझ गया कि बिना झाड़ी को नुकसान पहुंचाए उस कपड़े को बाहर नहीं निकाला जा सकता था। तो महावीर ने सोचा, इतनी मुझे जरूरत भी है कि इस झाड़ी को नुकसान पहुंचाऊं? कि इसके कांटे तोडूं और इसके पत्ते गिराऊं? तो आधा उस भिखारी ने ले लिया, आधा इस झाड़ी की इच्छा है; तो आधा उसको दे दिया। ऐसी सरलता से नग्न हो गए। वह कोई अभ्यास न था। नग्नता फलित हुई। कृष्ण का राग भीतर बड़ी वीतरागता को छिपाए है। महावीर की वीतरागता के भीतर बजती हुई राग की बड़ी गहरी बांसुरी है। महावीर की वीतरागता बाहर है और वह जो धुन बज रही है आनंद की, वह भीतर है। उसे उतारा भी कैसे जा सकता है बांसुरी में। कृष्ण की धुन बांसुरी पर बज रही है, हृदय में वीतरागता है; वीतरागता को कपड़ों से या कपड़ों के अभाव से कैसे प्रकट किया जा सकता है? जिसके पास दृष्टि है, वह दोनों के भीतर वही देख लेगा। वह दृष्टि चाहिए, आंख चाहिए। और अनुयायियों के पास तो आंख होती नहीं। वे तो अंधे ही होते हैं, तभी तो अनुयायी होते हैं। वे एक को पकड़ लेते हैं जड़ की तरह और इस कारण वंचित रह जाते हैं।
तुम्हारी हालत ऐसी है, जैसे आकाश में हजारों-हजारों तारे हैं और तुम
एक तारे को पकड़कर बैठे हो। और तुम कहते हो, हम दूसरा तारा तो देखेंगे नहीं; क्योंकि यह देखो, हमारा तारा, इसमें लाल चमक है; दूसरे तारे में कहां है! वह तारा है ही नहीं। यह देखो हमारा तारा, इसकी यह खूबी है। जब तक यह खूबी सभी तारों में न होगी, तब तक हम किसी को तारा भी स्वीकार नहीं कर सकते। ऐसे तुम अपने हाथ से दीन हो जाते हो। तारों को तो कोई नुकसान नहीं पहुंचता; तारे तो बने रहते हैं; रात का पूरा आकाश तारों से भरा है; लेकिन तुम व्यर्थ दीन हो जाते हो।
तुम पूरे आकाश का आनंद ले सकते थे। तुम समग्र चेतना के आनंद के वंशधर
हो सकते थे। तुम महावीर, बुद्ध, कृष्ण, मोहम्मद, क्राइस्ट, जरथुस्त्र, लाओत्से, सभी के वसीयतदार हो सकते थे। तुम सभी के बेटे हो सकते थे; कोई अड़चन न थी। सबका खुला आकाश तुम्हें छाया देता, विश्राम देता, रोशनी देता, लेकिन तुम अपने हाथ से दीन-दरिद्र बने हो। तुम एक को पकड़ लेते हो, उसको कसौटी बना लेते हो। और उस कारण तुम गरीब रह जाते हो। और आकाश तैयार था पूरा का पूरा उंडल पड़ने को।
ऐसा मैं जानकर तुमसे कहता हूं। जितना ही मैंने गौर से देखा और पाया, उतना ही पाया कि रूप कितने ही अलग हों, भीतर एक ही अरूप का वास है। ढंग कितने ही भिन्न हों, भीतर एक ही बोध सतत प्रवाहित है। गीत कितने ही भिन्न हों, वाद्य कितने ही भिन्न हों, एक ही संगीत बज रहा है।

लेकिन तुम ऊपर के साज-सामान को देखते हो। कोई वीणा बजा रहा है, कोई सितार बजा रहा है, किसी ने इकतारा उठा लिया है। तुम यह नहीं देख पाते कि वह जो संगीत पैदा हो रहा है, उसका गुणधर्म एक है। वह इकतारे से भी पैदा होता है। वह वीणा से भी पैदा होता है। वह सारंगी से भी पैदा होता है।
कोई बुद्ध सारंगी हैं, कोई महावीर इकतारा हैं, कोई कृष्ण कुछ और हैं। अनेक हैं वाद्य, संगीत एक है। अनेक हैं रूप, अरूप एक है। अनेक हैं लीलाएं, लीला करने वाला एक है।

अब सूत्रः
हे अर्जुन, फल को न चाहने वाले निष्कामी योगी पुरुषों द्वारा परम श्रद्धा से किए हुए उस तीन प्रकार के तप को सात्विक कहते हैं।
और जो तप सत्कार, मान और पूजा के लिए अथवा केवल पाखंड से ही किया जाता है, वह अनिश्चित और क्षणिक फल वाला तप यहां राजस कहा गया है।
और जो तप मूढ़तापूर्वक, हठ से मन, वाणी और शरीर की पीड़ा के सहित अथवा दूसरे का अनिष्ट करने के लिए किया जाता है, वह तप तामस कहा गया है।
फल को न चाहना सत्व का शुद्धतम लक्षण है। जीवन में तुम जो भी करते हो,
फल की चाह से ही करते हो, अन्यथा करोगे ही क्यों?
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि यह संभव ही कैसे है कि फल की हम आकांक्षा न करें? क्योंकि अगर आकांक्षा ही न करें, तो हम कृत्य ही क्यों करेंगे? अगर मैं उनको कहता हूं, ध्यान तो तुम करो, लेकिन फल का कोई विचार मत करो। तो वे कहते हैं, तो हम आपके पास आएंगे ही क्यों? हम आए ही इसलिए हैं कि शांति चाहिए। आप कहते हो, ध्यान से शांति मिलेगी, तो हम ध्यान करते हैं; क्योंकि शांति चाहिए।
अब एक बड़ी जटिल समस्या खड़ी होती है। क्योंकि जब तक तुम कुछ चाहोगे, ध्यान न लगेगा। ध्यान से शांति मिलती है, इसमें कोई शक-शुबहा नहीं है। इसमें सारी दुनिया के ध्यानी एक मत हैं। ध्यान से शांति मिलती है, इसमें एक मत हैं; और एक और अजीब शर्त से भी एक मत हैं कि जब तक तुम चाहते हो, तब तक नहीं मिलती। क्योंकि चाह अशांति है।
चाहने में ही तो सारी अशांति है। चाहने के कारण ही तो तुम तने हो, चाहने के कारण ही तो भीतर एक बेचैनी है। तुम ध्यान कैसे कर पाओगे!
ध्यान का अर्थ है, सिर्फ हो जाना। चाह के कारण तुम कभी भी सिर्फ नहीं
हो पाते। आगे कुछ खींचता रहता है। ध्यान का अर्थ है, अभी और यहीं हो जाना। और चाह तो भविष्य में खींचती रहती है--कल।
जब तुम चाह से भरे होते हो, तब तुम ध्यान थोड़े ही करते हो, तुम किनारे खड़े ध्यान के देखते हो, कब मिलेगी शांति? अभी तक नहीं मिली? घंटा बीतने के करीब आ गया और शांति का कोई पता नहीं है।
तो ध्यान तुम्हें और अशांत कर देगा। तुम वैसे ही अशांत थे। अशांत थे,
धन चाहते थे, नहीं मिला। अशांत थे, सुंदर स्त्री चाहते थे, नहीं मिली। और मिल भी जाए, तो बहुत फर्क नहीं पड़ता; क्योंकि मिलते से ही सुंदर स्त्री सुंदर नहीं रह जाती। मिलते से ही जितना धन मिले, वह काफी नहीं रह जाता। मिले न मिले, कोई फर्क नहीं पड़ता। सफलता चाहते थे, वह न मिली। पद चाहते थे, वह न मिला। कभी मिलता ही नहीं, क्योंकि जो भी पद मिल जाए, वही छोटा पड़ जाता है। पद की आकांक्षा बड़ी है, विराट है, उसका कोई अंत नहीं है।
हर जगह तुम पाओगे, कुछ अड़चन खड़ी हो जाती है। जब तक चाह है, तब तक अड़चन खड़ी होती ही रहेगी।
तुम भटके, संसार से थके-मांदे मेरे पास आए। अब तुम कहते हो, शांति चाहिए। अब तुम शांति को चाह बना रहे हो। धन नहीं मिला, उससे तुम काफी अशांत हो गए। पद नहीं मिला, उससे अशांत हो गए। अब तुम कहते हो, शांति चाहिए। तुम समझे नहीं, तुम जागे नहीं।
धन की खोज के कारण थोड़ी अशांति थी। और तुम्हारे धर्मगुरु भी ऐसी मूढ़तापूर्ण बातें तुम्हें समझा रहे हैं कि धन की चाह छोड़ो, तो अशांति मिट जाएगी। गलती कह रहे हैं। चाह छोड़ने से अशांति मिटती है, धन की चाह से कुछ लेना-देना नहीं है। मोक्ष की चाह भी उतनी ही अशांति ले आएगी।

चाह अशांति है। चाह की विषय-वस्तु का कोई अर्थ नहीं है। मोक्ष, धन, परमात्मा, शांति, कुछ भी चाहो, अशांति पैदा होगी। न चाहो, शांति मौजूद है। चाह के पीछे अशांति छाया की तरह आती है। और जहां चाह नहीं रह जाती, वहां शांति आती थोड़े ही है। तुम अचानक जागकर पाते हो, शांति सदा थी, चाह के कारण चूकते थे।
शांति स्वभाव है, उसे मांगना नहीं है, चाहना नहीं है। वह बाहर नहीं है। उसे तुमने कभी खोया नहीं है। वह तुम्हारा होने का भीतरी ढंग है। लेकिन चाह के कारण तुम भीतरी को देख नहीं पाते। दौड़ते हो, भागते हो; भाग-दौड़ में अपने को ही भूल जाते हो।
तो उनसे अगर मैं कहता हूं कि शांति तो मिलेगी, वह पक्का है। लेकिन तुम कृपा करके चाहो मत।
उनकी अड़चन भी मैं समझता हूं। उनका गणित भी साफ है। वे कहते हैं, अगर हम चाहें ही न, तो हम आपके पास क्यों आएं? हम चाहते हैं, इसीलिए तो आए हैं।
मैं उनसे कहता हूं कि मेरे पास तक आ गए, चाह इतना कर दी, यही काफी है।
अब कृपा करके सिर्फ ध्यान करो, चाहो मत कुछ। समझाता हूं, तो अधूरे मन से वे सिर भी हिलाते हैं। हां भी भरते हैं। बात तो उनको भी कहीं समझ में पड़ती है। एकदम पकड़ में तो नहीं आती। पकड़ में आ जाए, तो ध्यान की जरूरत ही नहीं रह जाती। बात ही खतम हो गई। यह बात दिख गई कि चाह ही तो मुझे अशांत किए है... । थोड़ी देर को सोचो, अगर तुम्हारी कोई चाह न हो, तो तुम कैसे अशांत हो पाओगे? क्या कोई उपाय कर सकते हो तुम बिना चाह के अशांत होने का? क्या कोई ढंग है तुम्हारे पास? उछलोगे, कूदोगे, मगर अशांत हो सकोगे अगर चाह न हो? चाह न हो, तो अशांति का उपाय ही न रहा, मूल बीज ही खो गया। ध्यान की भी कोई जरूरत नहीं है।
लेकिन अधूरे मन से, उनको भी बात जंचती तो है। बुद्धि को समझ में भी आती
है कि शायद ऐसा ही हो। फिर आप कहते हैं, तो होगा ही। तो हम कोशिश करेंगे। अच्छा हम चाह छोड़ देते हैं। लेकिन भीतर गहरे में वह चाह इसीलिए छोड़ते हैं कि शांति मिल जाए।
तीन दिन बाद वे फिर हाजिर हैं, कि तीन दिन हो गए छोड़े हुए, अभी तक मिली नहीं।
क्या खाक छोड़ी होगी! छोड़ने का मतलब ही यह होता है कि अब इसको उठाना ही मत, अब इसकी बात ही मत करना। यह बात ही व्यर्थ हो गई। तीन दिन बाद फिर तुम आकर कहते हो कि चाह छोड़ दी, तीन दिन हो गए, अभी तक शांति मिली नहीं। तो तुम किनारे खड़े देखते रहे। ध्यान तुमने किया नहीं। तुम्हारा ध्यान चाह पर लगा रहा। ध्यान हो न पाया; मांग कायम रही। थोड़ा सरका दी होगी भीतर को, थोड़ी हटा दी होगी अंधेरे में, थोड़ा उस तरफ से पीठ कर ली होगी। लेकिन तुम जानते हो, वह खड़ी है। और जब तक वह खड़ी है, तब तक सत्व का उदय नहीं होता।
इसलिए सात्विक साधना का पहला सूत्र कृष्ण कहते हैं, फल को न चाहने वाले... ।
यही निष्काम दशा है। काम की दशा है, जब तुम्हारा रस सदा फल में होता है, कृत्य में नहीं। वह काम की दशा है। और जब तुम्हारा रस कृत्य में होता है, फल में नहीं, तब वह निष्काम दशा है।
जैसे सुबह-सुबह तुम घूमने निकले हो। सूरज उगा। पक्षी गीत गाते हैं। वसंत आ गया है। सब तरफ बहार है। तुम मस्ती में गीत गुनगुनाते चले जा रहे हो। कोई अगर तुमसे पूछे, कहां जा रहे हो, तुम क्या कहोगे? तुम कहोगे, बस, घूमने निकले हैं। कहीं जा नहीं रहे हैं।
यही रास्ता है, यही वृक्ष होंगे, यही सूरज होगा, यही वसंत होगा; दोपहर तुम दफ्तर की तरफ चले जा रहे हो या दुकान की तरफ; लेकिन अब वह गुनगुनाहट नहीं है। सब वही है; तुम भी वही हो, हवाएं वही, कुछ बदला नहीं, मधुमास अभी चला नहीं गया। फूल अब भी खिले हैं, पक्षी अब भी गीत गा रहे हैं। लेकिन अब तुम्हें कुछ सुनाई नहीं पड़ता। सूरज रोशनी देता नहीं मालूम पड़ता अब, सिर्फ ताप पैदा करता है। पक्षियों के गीत बाजार के शोरगुल को सिर्फ बढ़ा रहे हैं। वृक्षों की हरियाली, वृक्षों के फूल, अब तुम्हें सुख नहीं देते, बल्कि एक पीड़ा देते हैं कि तुम्हें दफ्तर जाना पड़ रहा है। सब कुछ वही है, लेकिन अब तुमसे कोई पूछे, कहां जा रहे हो? तुम दफ्तर जा रहे हो। तुम्हारे चेहरे का

ढंग बदल गया; बड़ा तनाव है। लक्ष्य है अब; सुबह लक्ष्य न था। फल है अब; सुबह फल न था।
संन्यासी का जीवन सुबह घूमने जैसा है। गृहस्थ का जीवन दोपहर दफ्तर जाने जैसा है। बस, इतना ही फर्क है। कोई पहाड़ नहीं जाना है। दफ्तर ऐसे ही जाना है, जैसे तुम सुबह घूमने निकले। दुकान पर ऐसे ही जाकर बैठ जाना है, जैसे क्लब में आकर मित्रों से गपशप करने चले आए हो। काम ऐसे ही करना है, जैसे खेल हो। बस, निष्काम सध जाता है।
अर्जुन भागना चाहता है युद्ध से। वह कहता है कि यह करने योग्य नहीं है। हिंसा होगी बहुत। पाप लगेगा बहुत। जन्मों-जन्मों तक सडूंगा नरकों में और मिलने को कुछ भी नहीं है। राज्य मिल भी गया अगर, तो इतने हिंसा-पात के बाद, इतने लोगों का जीवन लेने के बाद, अपने ही लोग! और उस तरफ भी मेरे ही सगे-संबंधी हैं, इस तरफ भी। दोनों तरफ कोई भी मरेगा, मेरे ही लोग मरेंगे, अपने ही संबंधी मरेंगे। मित्र, प्रियजन बंटे खड़े हैं। नहीं, यह इस योग्य नहीं मालूम पड़ता।
कृष्ण का जोर क्या है अर्जुन से? जोर है कि तू फल की क्यों सोचता है! अगर अर्जुन कृष्ण से कहता--अचानक उतर गया होता नीचे रथ से और कहता--कि जाता हूं। बात खतम हो गई। तो कृष्ण रोक न पाते। रोकने की जरूरत भी न थी। कृष्ण प्रसन्नता से कहते कि इस क्षण की मैं प्रतीक्षा करता था। भला हुआ। बात खतम हो गई।
लेकिन अर्जुन यह नहीं कहता है कि मैं जाता हूं। अर्जुन फल की बातें कर रहा है। वह कह रहा है, क्या फल मिलेगा? सार क्या है? कृत्य का सवाल नहीं है। अर्जुन राजी है, अगर हिंसा करनी पड़े, कोई अड़चन नहीं है। लेकिन अगर अपने लोग न होते, पराए होते, तो काट देता घास-पात की तरह। सदा काटता ही रहा था, कोई नया न था यह मामला। योद्धा था, क्षत्रिय था। लोगों को काट-पीट दे, तो हाथ भी धोने की आदत न थी। अचानक कैसे यह संन्यास उठा है? यह संन्यास नहीं है। यह मोह-भाव है। और अचानक कैसे फल की चर्चा चली कि नर्क जाना पड़े, पाप लगे! जन्मों-जन्मों तक यह मेरे ऊपर कलंक बना रह जाएगा!
यह भविष्य की छाया उठी है मोह के कारण, ज्ञान के कारण नहीं। ज्ञान सदा वर्तमान में है। मोह सदा भविष्य में है। मोह सदा अज्ञान में है। फल की सोच रहा है। और यह भी देख रहा है कि अगर धन मैंने पा भी लिया... ।
धन पाना चाहता है, नहीं तो युद्ध तक आने की जरूरत क्या थी? यह तो आखिरी घड़ी में आकर उनको बुद्धि आ रही है। अब तक क्या करते थे? यह तो पहले ही सोच सकते थे कि इतने लोग मरेंगे, मिलेगा क्या? सार क्या है?
सिंहासन पर बैठ ही जाऊंगा, तो अर्जुन कहता है, क्या फायदा? क्योंकि जिनके लिए सिंहासन पर बैठा जाता है, वे तो सब कब्रों में होंगे। बच्चे मर जाएंगे, जो प्रसन्न होते कि पिता सिंहासन पर बैठे। मित्र मर जाएंगे, जो भेंट लाते कि अर्जुन, तो अंततः तुम सम्राट हो गए। प्रियजन मर जाएंगे, जो उत्सव मनाते। बैठ जाऊंगा, मरघट पर रखा होगा मेरा सिंहासन।
उस सिंहासन पर बैठने में रस नहीं मालूम होता। नहीं कि उसको त्याग आ गया है। नहीं कि संन्यास का भाव उदय हुआ है। बस, देखकर कि फल कुछ सार का नहीं मालूम पड़ता; सौदा महंगा लग रहा है उसको। करने योग्य नहीं लगता। जाएगा ज्यादा, मिलेगा कम। यह उसकी काम की दशा है।
और कृष्ण की पूरी चेष्टा यही है कि लड़, न लड़, यह बहुत बड़ा सवाल नहीं है। लेकिन निष्काम हो जा। लड़, न लड़, यह बहुत सवाल नहीं है। तू बस, फल की आकांक्षा छोड़ दे।
फल की आकांक्षा छोड़ते ही एक अपूर्व घटना घटती है कि तुम परमात्मा के उपकरण हो जाते हो। फिर वह जो कराता है, तुम करते हो। नहीं कराता, नहीं करते।
अगर परमात्मा नहीं चाहता है युद्ध कराना, तो नहीं होगा। अर्जुन बैठा हंसता रहेगा। कृष्ण कहते रहें गीता। वे लाख समझाएं, वह कहेगा कि चुप रहो। बेकार की बातें मत करो। बात ही नहीं उठ रही है। यह होने को ही नहीं है। परमात्मा उपकरण नहीं बना रहा है। बनाए, तो लड़ने को तैयार हूं। न बनाए, तो मैं क्या कर सकता हूं! लेकिन कर्ता-भाव मेरा नहीं है अब। लड़ाएगा, तो लडूंगा। अर्थात लड़ाएगा, तो वही लड़ेगा; मैं नहीं लडूंगा। नहीं लड़ाएगा, तो

वही भागेगा; मैं नहीं भागूंगा। संन्यास उसका, गृहस्थी उसकी, अब मेरा कुछ भी नहीं है।
यह सोचने जैसा है। जब तक फल की आकांक्षा है, तब तक तुम अड़े रहते हो।
जैसे ही फल की आकांक्षा गई, तुम हट जाते हो। तुम फल की आकांक्षा हो। अहंकार फल की आकांक्षा है। अहंकार को हटाना हो, तो फल की आकांक्षा छोड़ देनी पड़े। तब कृत्य ही पर्याप्त है।
फिर कल का भरोसा क्या? कल होगा ही, यह किसे मालूम है? और अर्जुन ऐसा क्यों सोचता है कि ये ही लोग मरेंगे और वह न मर जाएगा? और सिंहासन मिलेगा ही?
मुल्ला नसरुद्दीन फ्रांस गया था घूमने। पत्नी को साथ ले गया था। एक
तो पेरिस जाना और पत्नी के साथ जाना, वैसे ही अड़चन की बात है। पेरिस और पत्नी के साथ जमता ही नहीं। पत्नी को साथ ले जाना हो, काशी, मक्का, मदीना ठीक है, तीर्थयात्रा! पत्नी मानी नहीं, पेरिस ले गया। पेरिस में देखी सुंदर स्त्रियां उपलब्ध; बड़ी बेचैनी होने लगी। और यह पत्नी पीछे लगी है। यह तो बोझ हो गई। आए, न आए, बराबर हो गया।
तो मुल्ला ने बीच सड़क पर रुककर कहा कि अगर हम दो में से किसी को कुछ हो जाए, तो फिर मैं पेरिस में ही रहूंगा।
उसका मतलब समझ रहे हो? अगर हम दो में से किसी को कुछ हो जाए, तो मैं पेरिस में ही रहूंगा।
यह अर्जुन क्या कह रहा है कृष्ण से? कल पक्का है सिंहासन मिल ही जाएगा तुझे? ये मर जाएंगे दुश्मन, तू नहीं मरेगा? तू बचा रहेगा? लाशें इन्हीं की बिछेंगी, तू सिंहासन पर होगा? कल का इतना पक्का भरोसा क्या है? कोई कारण तो दिखाई नहीं पड़ता। कोई योद्धा उस तरफ कमजोर नहीं हैं। बल करीब-करीब संतुलित है। कौन जीतेगा, कौन हारेगा, यह बस जरा-सी बारीक रेखा है हार और जीत में। अर्जुन को इतना पक्का क्या है?
लेकिन हर अहंकार अपने को केंद्र मानकर सोचता है। फलाकांक्षी अपने को केंद्र मानकर सोचता है।
कृष्ण कहते हैं, सत्व का लक्षण है, फलाकांक्षा का छूट जाना। तू निष्काम-भाव से हो जा। आज इस क्षण जो कर्तव्य है कर; कल की मत सोच। कर्तव्य का क्या फल होगा, यह परमात्मा पर छोड़, हमारे हाथ में नहीं है।
तुम भी जानते हो, कई बार तुम अच्छा करते हो और बुरा हो जाता है। और कई बार बुरा करना चाहते थे और अच्छा हो जाता है।
ऐसा हुआ चीन में कि एक आदमी--उससे चीन में आक्युपंक्चर नाम के चिकित्सा-शास्त्र का जन्म हुआ--एक आदमी के पैर में लंगड़ापन था सदा, बचपन से था। और किसी दुश्मन ने छिपकर उसको तीर मार दिया। वह उसे मार डालना चाहता था। लेकिन तीर उसको कुछ ऐसी जगह लगा कि उसका लंगड़ापन ठीक हो गया। उससे आक्युपंक्चर का पूरा चिकित्सा-शास्त्र पैदा हुआ।
तो चीन में यह पता चल गया कि कुछ ऐसे हिस्से हैं शरीर में कि अगर वहां कोई तीखा औजार चुभाया जाए, तो शरीर-ऊर्जा की गति बदल जाती है।
तो वह जो लंगड़ा था आदमी, वह इसीलिए लंगड़ा था कि ऊर्जा ठीक धारा में नहीं बह रही थी। विद्युत शरीर की ठीक धारा में नहीं बह रही थी, थोड़ी तिरछी थी। धारा तिरछी थी, तो पैर तिरछा था। क्योंकि पैर तो ऊर्जा का अनुसरण करता है। तीर लगने से धारा झटककर सीधी बहने लगी; पैर सीधा हो गया। फिर तो आक्युपंक्चर का पूरा शास्त्र पैदा हुआ।
जिसने मारा था, उसने सोचा भी न होगा कि तीर मारने से यह आदमी मरेगा तो नहीं, उलटा, लंगड़ा था, ठीक हो जाएगा। न केवल यह ठीक होगा, बल्कि इसके आधार पर एक शास्त्र का जन्म होगा, जिससे हजारों साल तक लाखों लोग ठीक होंगे। फिर तो धीरे-धीरे उन्होंने सात सौ बिंदु खोज लिए, आक्युपंक्चर ने, आदमी के शरीर में। और हर बिंदु से संबंधित बीमारियां हैं। आक्युपंक्चर कुछ भी नहीं करता है--बड़ी अनूठी कला है--सिर्फ सुई चुभोता है। अब तो तीर भी नहीं चुभोता। क्योंकि उतने बड़े की भी जरूरत नहीं है। इतनी छोटी-सी सुई चुभोता है कि तुम्हें पता ही नहीं चलता। सिर में दर्द है और हाथ में सुई चुभाएंगे वे, और अचानक तुम्हारा दर्द तिरोहित हो जाता है। पेट में तकलीफ है, कहीं पीठ में सुई चुभोएंगे। उनके हिसाब हैं कि कहां सुई चुभाने से

कहां की धारा में रूपांतरण होता है। एक शास्त्र, एक विज्ञान का जन्म हो गया।
बुरा करने जाओ, भला हो जाता है। कभी तुम भला करने जाते हो और बुरा हो जाता है। कहना बिल्कुल मुश्किल है।
समझो, हिटलर छोटा था, और कुएं में गिर पड़ता, तो तुम बचाते कि नहीं? बचाते; भागते; छोटा बच्चा गिर पड़ा! अब इस छोटे बच्चे का कोई पता तो नहीं है कि कितना जहरीला सांप होने वाला है। तुम इसको बचा लेते।
फिर हिटलर ने कोई एक करोड़ आदमी मारे। तुम्हारा कुछ हाथ होता इसकी हिंसा में कि नहीं? अगर तुमने न बचाया होता इसे, कुएं में डूब जाने दिया होता, तो दुनिया कहती कि तुमने पाप किया। बचा लिया, तो दुनिया कहती कि तुमने बड़ा पुण्य किया। लेकिन आसान नहीं है मामला इतना। वह जो करोड़ आदमी इसने मारे, उसमें तुम्हारा भी हाथ है। तुम न बचाते तो... । यह तो बड़ी झंझट की बात है।
तुम अच्छा करते हो, बुरा हो जाता है। बुरा करते हो, अच्छा हो जाता है। तुम्हारे हाथ में करना मात्र है, कृष्ण कहते हैं। क्या होगा, यह तुम समष्टि के हाथ में छोड़ दो। तुम इसकी जिद में ही मत पड़ो, तुम यह सोचो ही मत कि क्या होगा। तुम इतना ही सोचो कि जो हो रहा है, उसको मैं कैसे पूरी तरह, पूरे कर्तव्य-भाव से कर पाऊं।
हे अर्जुन, फल को न चाहने वाले निष्कामी योगी पुरुषों द्वारा परम श्रद्धा से किए हुए उस तीन प्रकार के तप को सात्विक कहते हैं।
कल जो हमने तीन प्रकार के तप समझे, वे सात्विक हैं, यदि किसी ने निष्काम-भाव से किए हैं। कुछ चाहा नहीं। खुद निमित्त होकर किए हैं। कुछ मांगा नहीं। और परम श्रद्धा से किए हैं।
स्वभावतः, निष्काम-भाव तभी हो सकता है, जब तुम्हारी श्रद्धा परम हो। तुम फल की आकांक्षा क्यों करते हो? क्योंकि तुम्हें पक्का भरोसा नहीं है कि फल आएगा। अन्यथा आकांक्षा क्यों करोगे?
तुम बीज बोते हो, फिर तुम बैठकर आकांक्षा करते हो कि पौधे अंकुरित हों। अगर तुम बिल्कुल सिक्खड़ किसान हो, नए-नए खेती में उतरे हो या बागवानी में, तो तुम बड़ी चिंता करोगे, रात सो न सकोगे, सुबह उठ-उठकर बार-बार जाओगे; दिन में कई दफा देखोगे, अभी तक अंकुर आए या नहीं आए?
छोटे बच्चे आम की गोई बो देते हैं। कम से कम मेरे गांव में वैसा होता था। तो बचपन में मैंने भी आम की गोई लाकर अपने आंगन में बो दी। लेकिन बच्चों की धीरज कितनी? घड़ीभर बाद फिर जाकर उखाड़कर देखते, अभी तक आया कि नहीं आया?
इतनी जल्दी आम नहीं आते, वह भी पक्का है। कभी बड़ों ने कहा भी कि क्या
कर रहे हो? इस तरह तो कभी नहीं आएंगे। लेकिन उत्सुकता मानती नहीं, कि शायद आ गया हो। रात सो नहीं पाते; नींद में आम की गोई अभी फूटी या नहीं; अंकुर लगे या नहीं। पता नहीं, फल लग गए हों। रात भी बच्चा उठकर जाता है, एक नजर डाल आता है आंगन में, अभी भी आया नहीं?
यह सारी चिंता इसलिए हो रही है कि बच्चे को कुछ पता नहीं है, कुछ बोध नहीं है। माली भी बोता है आम की गोई, लेकिन चिंता नहीं करता। क्योंकि वह जानता है, आएंगे। आम की गोई बो दी है, कृत्य पूरा कर दिया है; जरूरत जैसी थी, वैसा खाद दे दिया है; पानी था, पानी दे दिया है; सुविधा जुटा दी सब, बात खतम हो गई। करना पूरा हो गया। फल हमारे हाथ में थोड़े ही है। और फिर श्रद्धा होती है, आएगा।
जो जानता है, उसकी श्रद्धा होती है। अज्ञानी अश्रद्धालु होता है। ज्ञानी श्रद्धालु होता है। और इस सूत्र का उलटा भी सच है। जितने तुम श्रद्धालु हो जाओगे, उतने ज्ञानी हो जाओगे। जितने अश्रद्धालु हो जाओगे, उतने अज्ञानी हो जाओगे। वे दोनों जुड़ी हैं बातें। श्रद्धा ज्ञान का एक पहलू है; अश्रद्धा अज्ञान का एक पहलू है।
परम श्रद्धालु का अर्थ है, जो जानता है, करने योग्य कर दिया, होने योग्य होता रहेगा। अगर करने योग्य ठीक से कर दिया है, तो होने योग्य होगा ही। उस पर क्या सोचना?

अगर तुमने ध्यान कर लिया, शांति होगी ही। तुम ध्यान की फिक्र करो, तुम शांति की फिक्र मत करो। अगर तुमने प्रार्थना कर ली, तुम प्रकाश से भर ही जाओगे। तुम प्रकाश का विचार ही मत करो। तुम सिर्फ प्रार्थना कर लो। अगर तुम ठीक से जी लिए हो, तो तुम मुक्त हो ही जाओगे। तुम मुक्ति की चिंता मत करो। ठीक से जीने वाला सदा मुक्त हो गया है।
जीवन में फल तो आते ही हैं, कृत्य भर पूरा हो जाए। क्योंकि कृत्य में
ही छिपा है फल। कृत्य है बीज, उसी में छिपा है फल।
यह शब्द फल अच्छा है। बीज में छिपा है फल। फल का अर्थ सिर्फ परिणाम ही नहीं होता। फल को हम फल इसीलिए कहते हैं, परिणाम को हम इसीलिए फल कहते हैं, क्योंकि वह बीज में छिपा है।
तुम बीज की फिक्र कर लो, फल तो अपने से आ जाता है। कोई बीज निष्फल नहीं जाता। और अगर गया, तो उसका केवल इतना ही अर्थ है कि तुमने कर्तव्य न किया।
जो करने योग्य था, उसमें कमी की; और जो होने योग्य था, उसमें समय बिताया।
तुम सोचते रहे फल की और कृत्य उपेक्षित पड़ा रहा। कर्तव्य पूरा न हुआ, तो ही फल चूकता है।
इसलिए परम श्रद्धा से... ।
परम श्रद्धा का अर्थ है, जहां रत्ती-मात्र भी संदेह नहीं। और अगर तुम जीवन को गौर से देखोगे, तो संदेह मिट जाएगा। संदेह का कोई कारण नहीं है। मेरे पास एक सज्जन आए और उन्होंने कहा कि मैं अच्छा करता हूं... । कैसे भरोसा आए? आप कहते हैं, भरोसा आ जाए। करता हूं अच्छा। जिनके साथ अच्छा करता हूं, वे भी बुराई लौटाते हैं। तो श्रद्धा बढ़े कैसे? घटती है। मैं करता हूं अच्छा, लौटता है बुरा। मैं करता हूं नेकी, लौटती है बदी। तो वे कहते हैं कि श्रद्धा कैसे करें?
उनकी बात ठीक है। कि अगर तुम भला करो लोगों के साथ और लोग तुम्हारे साथ बुरा करें, तो साफ है कि श्रद्धा उठ जाती है। क्या भरोसा कि मैं जीवनभर अच्छा जीऊं और मोक्ष मिले? क्योंकि यहां तो यही दिखाई पड़ रहा है कि बुरा करने वाले मजा ले रहे हैं, भला करने वाले दुख पा रहे हैं। साधु सड़ रहे हैं, असाधु सिंहासनों पर विराजमान हैं।
और कृष्ण कहते हैं, साधुओं के उद्धार के लिए और असाधुओं के विनाश के लिए युगों-युगों में आऊंगा। बात उलटी दिखती है। या तो उन्होंने अपना बदल दिया वचन। ऐसा दिखता है कि साधुओं का विनाश हो रहा है और असाधु सिंहासनों पर बैठे हैं। कैसे श्रद्धा हो?
उन मित्र को मैंने कहा कि तुम्हें बिल्कुल पक्का है कि तुमने भला किया? अगर अश्रद्धा ही करनी है, तो वहां से शुरू करो। शुरुआत से शुरू करो। क्योंकि तुमने कुछ किया, वह शुरुआत है। दूसरे ने कुछ किया, वह तो प्रतिक्रिया है, वह तो अंत है। पहले वहीं से शुरू करो। तुमने सच में ही भला करना चाहा था?
दिखावा हो सकता है भले का हो। यह हो सकता है कि तुम एक आदमी को पांच रुपया दान दे दो। लेकिन तुम्हारा इरादा उसकी गरीबी में सहायता करने का न हो। तुम्हारा इरादा यह हो कि अब यह तुम पर निर्भर हो जाए। तुम्हारा इरादा यह हो कि अब तुम जहां मिलो, वहीं यह नमस्कार करे और चरण छुए। तुम्हारा इरादा यह हो कि पांच रुपए में तुम इसे गुलाम बना लो।
और मजा यह है कि यह इरादा तुम्हें भी साफ न हो। और जीवन बड़ा जटिल है। यहां तुम जो करते हो, उसका फल नहीं मिलता। यहां वस्तुतः करने के पीछे जो छिपा हुआ राज है, उसी के फल मिलते हैं।
तुमने बुरा ही किया होगा, अनजाने किया होगा, तभी बुरा लौट आया है।
क्योंकि नीम के बीज जो बोता है, तभी नीम के फल लगते हैं। तुम कहते हो, हमने आम के बीज बोए थे और नीम के फल लग रहे हैं।
यह मैं कैसे मानूं? कहीं भूल हो गई। तुम्हारे पैकेट पर लिखा रहा होगा,
आम के बीज। पैकेट के भीतर नीम के बीज ही रहे होंगे। कहीं कुछ चूक हो गई। यह तो संभव ही नहीं है कि आम के बीज बोओ और नीम के फल लग जाएं। शक ही करना है, तो अपने पर करो। बस, यही फर्क है।
धार्मिक व्यक्ति अगर शक भी करता है, तो अपने पर। और अधार्मिक अगर शक करता है, तो दूसरे पर। दूसरे का ही शक बढ़ते-बढ़ते परमात्मा के प्रति संदेह

बन जाता है। और अपने पर शक करते-करते अहंकार गिर जाता है। क्योंकि अहंकार संदिग्ध हो जाता है। स्वयं पर जिसने संदेह किया, वह परमात्मा पर श्रद्धा करने लगेगा। और स्वयं पर जिसने कभी संदेह न किया, वह परमात्मा पर संदेह करेगा।
परम श्रद्धा का अर्थ है, जिसने जीवन के अनुभव से जाना कि बोओ, जो बोओगे, वही काटोगे। इसलिए अब काटने की चिंता क्या? अब उसकी बात ही क्या उठानी? अब उसकी चर्चा ही क्या करनी?
ध्यान रखना, फल की बहुत चर्चा करने वाले जितनी ऊर्जा फल की चर्चा में लगाते हैं, उतनी ही ऊर्जा कृत्य में चूक जाती है और उतना ही फल विकृत हो जाता है। फिर जब फल विकृत होता है, तो एक दुष्टचक्र शुरू हो गया। दुबारा वे और भी घबड़ा जाते हैं, और भी फल विकृत हो जाता है। तीसरी बार संदेह पूरा हो जाता है, फल नष्ट हो जाते हैं।
संदेह से कभी किसी ने सत्य के फल नहीं काटे; श्रद्धा से काटे हैं। श्रद्धा और निष्काम भाव से जो किया जाए, वह सात्विक तप है।
इसलिए तपस्वी कुछ मांगता नहीं। वह यह नहीं कहता कि परमात्मा वैकुंठ देना, कि मोक्ष देना, कि स्वर्ग में मकान बिल्कुल बगल में देना। वह कुछ भी नहीं मांगता। वह कहता है, वह बात ही क्या उठानी! वह तेरी चिंता। वह हम क्यों फिक्र करें? तूने जन्म दिया, तूने जीवन दिया, तू श्वास देता है। तूने बिना मांगे इतना दिया, बिना पूछे दिया। हम क्यों चिंता करें कि तू और देगा या नहीं देगा?
जितना दिया है, उसे जरा गौर से देखो, श्रद्धा का आविर्भाव होगा। जो नहीं दिया है, उस पर ध्यान लगाओ, संदेह का आविर्भाव होगा।
श्रद्धा से भरा हुआ कृत्य सात्विक है।
और जो तप सत्कार, मान और पूजा के लिए अथवा केवल पाखंड से किया जाता है,
वह अनिश्चित और क्षणिक फल वाला तप यहां राजस कहा गया है।
तुम ऐसी भी तपश्चर्या कर सकते हो, जो केवल सत्कार के लिए हो। तुम प्रतीक्षा कर रहे हो, कब बैंड-बाजे बजें! कब जुलूस निकले! कब शोभा-यात्रा हो! तो तुम उपवास कर सकते हो लंबे। लेकिन प्रतीक्षा बैंड-बाजों पर लगी है। बच्चे हो। जिससे स्वर्ग का आनंद मिल सकता था, उससे तुम बैंड-बाजे का शोरगुल सुनोगे। तुम कुछ बहुत होशियार नहीं हो। तुम भला कितना ही अपने को समझदार समझ रहे हो, मगर चूक रहे हो। जिससे वर्षा हो सकती थी आनंद की, उससे सिर्फ थोड़े से खुशामदी मिलकर तुम्हारी प्रशंसा करेंगे। खतम हो गई बात।
तुम चूक गए। इतना मिल सकता था, न मांगते तो। मांगा कि क्षुद्र मिलता है।
जिसका कोई भी सार नहीं।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, क्षणिक फल वाला तप... ।
क्षणभर को शोरगुल होगा, लोग चर्चा करेंगे, बात खतम हो जाएगी। लहर उठेगी पानी पर, मिट जाएगी। बस इतना ही सुख पाएगा राजसी व्यक्ति। राष्ट्रपति हो गए तुम; क्या करोगे? लोग आकर भेंट कर जाएंगे, प्रसन्नता
हो जाएगी। और दूसरे दिन ये ही लोग गालियां देने लगेंगे और पत्थर फेंकने लगेंगे। फूलमालाएं पहना देंगे। क्या, होगा क्या? राष्ट्रपति होकर तुम पाओगे क्या? सिंहासन पर बैठ जाओगे। तो अपने घर की छत पर ही एक कुर्सी रखकर बैठ गए ऊंचाई पर। सारा संसार नीचा कर दिया। पाओगे क्या? मिलने को क्या है? मिलने को कुछ भी नहीं।
क्षणिक फल वाला... ।
थोड़ा-सा कुछ लहर उठेगी चारों तरफ, खो जाएगी।
तप, सत्कार के लिए किया जाए, मान के लिए किया जाए, पूजा के लिए किया जाए, या केवल पाखंड से किया जाए... ।
पाखंड का मतलब ही यह है कि तुम करना भी नहीं चाहते थे, करने का कोई भाव
भी नहीं था, कोई श्रद्धा भी नहीं थी कि इससे कोई सार होगा। लोकोपचार के लिए, लोग धार्मिक समझते हैं, कर देते हो। मंदिर भी हो आते हो, कभी उपवास भी रख लेते हो, कभी व्रत भी कर लेते हो। लोगों को दिखाने के लिए; एक पाखंड बना रहता है।
उससे भी लाभ हैं। पाखंड के लाभ हैं, इसलिए तुम करते हो। क्योंकि अगर तुम धार्मिक आदमी हो... ।

मैंने सुना है कि एक दुकान थी सोने-जवाहरातों की। उसके मालिक ने अपने नौकरों को बड़ी कला सिखा रखी थी। जैसे ही कोई आदमी प्रविष्ट होता, उसने पहले ही एक मनोवैज्ञानिक बिठा रखा था, जो जांच-पड़ताल करे कि है भी इसके पास कुछ या नहीं! खीसे में कुछ वजन है, गर्मी है? फिर अगर दिखती गर्मी, तो वह उस आदमी को देखकर कहता, हरि-हरि।
वह भीतर हरि-हरि कहता; वह कहता कि है, लूटने योग्य है। हरि-हरि। हरि का मतलब होता है, चोर; चुराया जा सकता है; हरण किया जा सकता है। हरि का मतलब होता है, हरण किया जा सकता है।
लेकिन वह आदमी बड़ा प्रभावित होता कि कैसी दुकान है साधुओं की। तो दूसरे आदमी के पास आता काउंटर पर, वह भी जांच-पड़ताल करता, दिखाता चीजें। कहता, केशव-केशव। वे सब संकेत थे। उनकी लिपि थी। जो हिसाब लगाता, बिल बनाता, वह कहता, राम-राम। वह यह कह रहा है कि मरा, मरा। वह सब कोड है उनका। मगर वह आदमी यह सोचकर कि कैसे सात्विक पुरुष लोग हैं, न तो मोल-भाव करता; क्योंकि इनसे क्या मोल-भाव करना! न ठीक से देखता कि ये हिसाब में क्या लगा रहे हैं। न यह देखता कि ये हीरे दिखा रहे हैं और पत्थर दे रहे हैं। दिखा कुछ रहे हैं, रख कुछ रहे हैं। मगर वहां अहर्निश परमात्मा के नामों की गूंज चलती रहती।
पाखंड का उपयोग है। अगर तुम मंदिर जाते हो, तो तुम्हारी दुकान में सहायता मिलती है। लोग सोचते हैं, साधु पुरुष है। झूठ थोड़े ही बोलेगा! जेब थोड़े ही काटेगा!
राम चदरिया ओढ़े बैठे हो तुम। तो तुम चाहे कसाई भी क्यों न होओ, दूसरा आदमी सोचेगा, बेचारा राम चदरिया ओढ़े बैठा है। साधु पुरुष है। धन्यभाग जो दर्शन हुए। और वह छुरी छिपाए है। मुंह में राम बगल में छुरी। छुरी को छिपाना हो, तो मुंह में राम बड़ा उपयोगी है।
तो कुछ हैं, जो पाखंड के लिए कर रहे हैं। कुछ हैं, जो तप सत्कार के लिए
कर रहे हैं, जिनकी आकांक्षा है कुछ पाने की, फल की। उन्हें थोड़ा-सा फल भी मिलेगा। लेकिन वह फल पानी पर बनी हुई लकीर जैसा होगा। इस तरह के तप को राजस कहा है।
और फिर ऐसे भी हैं, जो मूढ़तापूर्वक, हठ से, मन, वाणी और शरीर को पीड़ा के सहित अथवा दूसरे का अनिष्ट करने के लिए कर रहे हैं, वह तप तामस कहा गया है। ऐसे लोग भी हैं, जो मूढ़तापूर्वक... ।.
जिद्दी हैं, हठी हैं, अकड़े हैं, दंभी हैं। वे यह करके दिखा रहे हैं कि
जो कोई नहीं कर सकता, वह हम करके दिखा रहे हैं। कांटों पर लेट जाते हैं। वे तुमसे यह कह रहे हैं कि तुम सब कायर हो, हमको देखो!
वैसे वे मूढ़ हैं, क्योंकि इससे कुछ मिलने वाला नहीं है। इससे उतना भी नहीं मिलने वाला है, जितना राजस को मिल जाता है। क्योंकि क्षणभंगुर प्रतिष्ठा भी मिल जाती है, क्षणभंगुर मान-सम्मान भी मिल जाता है। वह भी मिलने वाला नहीं है। ज्यादा से ज्यादा राहगीर खड़े हो जाएंगे और चले जाएंगे कि ठीक है। मदारीगिरी से ज्यादा क्या इसका मूल्य हो सकता है? लेकिन मूढ़ व्यक्ति भी तप कर सकते हैं।
मेरे अनुभव में ऐसा आया कि मूढ़ व्यक्ति जिद्दी होते हैं। और जिद्दी होने के कारण कोई चीज करना हो, तो जिसको सात्विक वृत्ति का व्यक्ति मुश्किल पाए, राजस व्यक्ति भी थोड़ा कठिन पाए, मूढ़ बिल्कुल कठिन नहीं पाता। मूढ़ को कोई ऐसी चीज करने को कह दो, जिसमें कोई सार भी न हो, सिर्फ उसके अहंकार को पकड़ जाए, तो वह कर लेता है। तो इस तरह मैंने अनुभव किया है कि अधिक तपस्वी तीसरी कोटि के होते हैं।
अब एक आदमी दो महीने तक उपवास करता है। इसे न तो उपवास से पहले कभी कुछ मिला, क्योंकि यह बहुत बार कर चुका है। न इसके जीवन में कोई ऊर्जा का आविर्भाव हुआ, न कोई ज्योति जगी, न कोई धुन बजी, न कोई वीणा छिड़ी। कुछ भी नहीं हुआ है। लेकिन फिर कर रहा है, फिर कर रहा है। यह जिद्दी है, हठी है। यह दुष्ट प्रकृति का है। यह दूसरे को नहीं सता रहा है, अपने को ही सता रहा है। दुनिया में दो तरह के दुष्ट हैं। एक, जो दूसरों को सताते हैं। और एक,
जो अपने को सताते हैं। और ध्यान रखना, पहले तरह के दुष्ट उतने खतरनाक नहीं हैं। क्योंकि दूसरा कम से कम अपनी रक्षा तो कर सकता है। दूसरे प्रकार के

दुष्ट बहुत खतरनाक हैं, जो अपने को सताते हैं। वहां कोई रक्षा करने वाला भी नहीं है।
अब अगर तुम अपने ही शरीर में कांटे चुभाओ, तो कौन रक्षा करेगा? खुद को
ही भूखा मारो, कौन रक्षा करेगा? अंग काट डालो, आंखें फोड़ लो, कान फोड़ दो, कौन रक्षा करेगा? सड़ाओ अपने को, कौन रक्षा करेगा?
लेकिन ये दूसरे तरह के दुष्ट बड़े तपस्वी हो जाते हैं। इनके जीवन में सिवाय मूढ़ता के कुछ भी नहीं होता। तुम कोई लपट न देखोगे इनके जीवन में प्रतिभा की।
जाओ, काशी की सड़कों पर बैठे लोगों को देखो। तीर्थों में तुम्हें इस तरह के मूढ़ मिल जाएंगे। तुम उनके चेहरे पर सिर्फ जघन्य अंधकार पाओगे, घनीभूत अंधकार पाओगे। उनकी आंखों में तुम्हें कोई ज्योति न मिलेगी। तुम उन्हें दुष्ट पाओगे।
तुमने कभी नागा संन्यासी देखे कुंभ के मेले पर! ये उसी तरह के लोग हैं, जिस तरह के लोग अपराधी होते हैं। इनमें-उनमें कोई फर्क नहीं है। और बड़े मजे की बात है, अपने अखाड़े में तो वे कपड़ा पहनते हैं और जब वे जुलूस निकालते हैं, तब वे नंगे हो जाते हैं। और भाला और छुरे और तलवारें लेकर चलते हैं। तुम उनकी आंखों में पाओगे, महापाप, घृणित भाव, हिंसा, मूढ़ता। और खतरनाक हैं वे। वे किसी भी वक्त झगड़े के लिए तैयार हैं।
कोई बीस वर्ष पहले कुंभ में जो भयंकर उत्पात हुआ, वह उन्हीं के कारण हुआ। क्योंकि वे किसी को पहले स्नान नहीं करने देते। अहंकारी की वही तो दौड़ है। वे पहले स्नान करेंगे। फिर दूसरे कोई व्यक्ति प्रवेश कर सकते हैं। और दूसरे लोगों ने प्रवेश करने की कोशिश की, तो उपद्रव मच गया। उसी उपद्रव में सैकड़ों लोग मरे।
साधुओं को जरा गौर से देखना, क्योंकि उनमें तीन तरह के साधु हैं। नब्बे प्रतिशत तो उसमें सिर्फ हठी हैं। हठ ही उनका गुणधर्म है। इसलिए वे कुछ भी कर सकते हैं, यह ख्याल रखना। क्योंकि हठी व्यक्ति कुछ भी कर सकता है। उसमें से नौ प्रतिशत तुम पाओगे कि राजसी हैं, जो मान-प्रतिष्ठा के लिए कर रहे हैं। कभी भूल से तुम्हें वह एक आदमी मिलेगा, जो सात्विक है। जो उपवास कुछ पाने के लिए नहीं कर रहा है, जिसका उपवास आनंद है। जिसका उपवास परमात्मा के निकट होने की सिर्फ एक दशा है।
फर्क समझ लो। सात्विक व्यक्ति उपवास करता है। उपवास का अर्थ है, उसके पास होना, आत्मा के पास होना या परमात्मा के पास होना। शब्द का भी वही अर्थ है। उसका भूखे मरने से कोई लेना-देना नहीं है सीधा। लेकिन जब सात्विक व्यक्ति उसके निकट होता है, तो शरीर को भूल जाता है। कुछ घड़ियों के लिए न भूख लगती है, न प्यास लगती है। भीतर ऐसी धुन बजने लगती है।
जैसे तुम भी कभी-कभी नृत्य देखने बैठे हो, कोई सुंदर नर्तक नाच रहा है;
या कोई गीत गा रहा है, और गीत ऐसा प्यारा है कि धुन बंध गई, तारी लग गई; तो तीन घंटे तुम्हें न भूख लगती है, न प्यास लगती है। तुम सब भूल ही जाते हो। जब संगीत बंद होता है, अचानक तुम्हें पता चलता है कि पेट में तो हाहाकार मचा है, भूख लगी है, कंठ सूख रहा है। इतनी देर तक पता क्यों न चला! ध्यान लीन था।
सात्विक व्यक्ति का उपवास ऐसा है कि उसका ध्यान इतना भीतर परमात्मा में लीन होता है कि वह भूल ही जाता है, प्यास लगी है, भूख लगी है। जब लौटता है अपने ध्यान से, तब भूख और प्यास का पता चलता है। इसलिए उसका नाम उपवास है, परमात्मा के निकट वास।
राजस व्यक्ति अनशन करता है, उपवास नहीं। अनशन का मतलब है, उसकी कोई चेष्टा है। जैसे कि मोरारजी देसाई ने किया। वह उपवास नहीं है, वह अनशन है। उसको उपवास कहना गलत है। उसके पीछे आकांक्षा है।
अब मोरारजी देसाई सात्विक उपवास कर भी कैसे सकते हैं। सारी चेष्टा यह
है कि अब यह जिंदगी जा रही है हाथ से और प्रधानमंत्री वे हो नहीं पाए। डिप्टी कलेक्टर से शुरू हुए और डिप्टी प्राइम मिनिस्टर पर अंत हो गए। वह डिप्टी पीछा कर रहा है उनका। वे डिप्टी से अब घबड़ाए हुए हैं। मरते वक्त तक डिप्टी लिखा रह जाएगा। प्रमुख नहीं हो पा रहे हैं। और मरता क्या न करता! अब वे दांव पर लगा देते हैं, कोई भी क्षुद्र बात हो।

अब यह इतनी फिजूल बात थी, जिसका कोई अर्थ ही नहीं है। गुजरात में चुनाव दो महीने पहले होते कि दो महीने बाद, इसका कोई भी अर्थ नहीं है। कुछ लेना-देना नहीं है। लेकिन राजसी हैं, राज की आकांक्षा है। कोई महत्वाकांक्षा है भारी। दौड़ लगी है।
मोरारजी का उपवास उपवास नहीं कहा जाना चाहिए। वह भाषा के साथ व्यभिचार है। गांधी के उपवास भी उपवास नहीं हैं। क्योंकि उसमें भी आकांक्षा है। कभी उपवास है अंबेदकर को झुकाने के लिए। कैसे उपवास हो सकता है? हिंसा है सीधी। अब एक आदमी मरने लगे, छोटी-सी बातों पर मरने लगे, तो किसी को भी लगता है कि चलो।
इंदिरा कोई झुकी नहीं है मामले में, झुकने का कोई कारण न था। सिर्फ एक मूढ़तापूर्ण बात थी, जिसमें एक आदमी नाहक मरे और उलझन पैदा हो, जिसमें कोई सार नहीं। ठीक है।
वही अंबेदकर ने किया, जब देखा कि गांधी मरने को ही उतारू हैं, तो अंबेदकर झुक गया। मैं मानता हूं कि उसके झुकने में ज्यादा अहिंसा है। उतनी अहिंसा गांधी के उपवास में नहीं। क्योंकि वह चाहता तो अड़ा रह जाता कि नहीं झुकते; मरो, मर जाना है तो। क्या फर्क पड़ता है!
अड़ा रह सकता था अंबेदकर। और उससे संभावना थी कि अड़ा रहे, क्योंकि वह
भी जिद्दी आदमी था। लेकिन वह झुक गया। देखा कि इतने मूल्य की बात ही नहीं है कि गांधी की हत्या अपने सिर पर ली जाए। ठीक है।
गांधी के उपवास भी आकांक्षा से प्रेरित हैं, उनके पीछे परिणाम हैं, वे आग्रह हैं।
और ध्यान रहे, जहां आग्रह है, वहां सत्याग्रह तो हो ही नहीं सकता। सत्याग्रह शब्द ही गलत है, क्योंकि सत्य का कोई आग्रह नहीं होता। ज्यादा से ज्यादा निवेदन हो सकता है, आग्रह क्या होगा? आग्रह का तो मतलब ही यह है कि ऐसा करना पड़ेगा। नहीं करोगे, तो हम मरने को तैयार हैं।
कुछ लोग हैं, जो कहते हैं, नहीं करोगे, तो हम मार डालेंगे तुम्हें। कुछ लोग हैं, जो कहते हैं, नहीं करोगे, तो हम मार डालेंगे हमें। मगर मारने की जिद्द है। हिंसा की हवा पैदा करना है।
नहीं, राजसी व्यक्ति कभी भी उपवास नहीं कर सकता। गांधी इस बात को समझते थे। वे आदमी ईमानदार थे। मोरारजी तो समझते होंगे कि उपवास ही है। न तो उतनी समझ है गांधी जैसी, न उतना ईमान है। वे आदमी ईमानदार थे।
इसलिए लुई फिशर ने गांधी के संबंध में एक लेख लिखा और उसमें लिखा कि गांधी एक ऐसे धार्मिक पुरुष हैं, जो राजनीतिक होने की जीवनभर चेष्टा करते रहे हैं। तो गांधी ने उत्तर दिया कि गलती है बात। मैं पुरुष तो राजनीतिक हूं, धार्मिक होने की चेष्टा करता रहा हूं।
वे ईमानदार हैं। वे जानते हैं कि सत्व नहीं है उनका लक्षण; रजस है। रजस यानी राजनीति, सत्व यानी धर्म। वे जो भी कर रहे हैं, वह निष्काम नहीं है, उसमें कामना है। भला कामना दूसरों के हित के लिए हो।
लेकिन तुम कौन हो तय करने वाले कि दूसरे का हित क्या है? और जब तुम आग्रह करो और कहो कि तुम्हारे हित में हम मरने को खड़े हैं, अगर न मानी हमारी तो हम मर जाएंगे, तो तुम दूसरे के गले में फांसी लगा रहे हो। यह फांसी ठीक नहीं है।
मैंने सुना है, एक लफंगे ने एक सुंदर स्त्री के घर पर धरना दे दिया और उपवास कर दिया। और उसने कहा, जब तक तुम विवाह करने के लिए राजी न होओगी, आमरण उपवास!
बड़ी मुसीबत हो गई। वह स्त्री भी घबड़ाई, घर के लोग भी घबड़ाए। और वह बोरिया-बिस्तर बांधे सामने बैठा है। और कहीं भी बैठ जाओ बोरिया-बिस्तर बांधकर, फोटोग्राफर आ गए और अखबार वाले आ गए। वे तो इस उपद्रव की तलाश में हैं। समाचार की सुर्खी मिल गई। नेतागण आ गए, ट्रेड यूनियनिस्ट आ गए। उन्होंने कहा, हड़ताल करवा देंगे। तुम बिल्कुल जमे रहो। सरकार को डांवाडोल कर देंगे। यह तो प्रेम का मामला है; इसमें तो आदमी... ।
घबड़ा गए घर के लोग। दो दिन हड़ताल चली। बड़ी मुसीबत हो गई। किसी समझदार
से, किसी बूढ़े से जाकर पूछने गए, अब क्या करें? उसने कहा, तुम घबड़ाओ मत। मैं रास्ता बताता हूं। एक बूढ़ी वेश्या है, जिसकी तरफ अब कोई देखता भी नहीं।

तुम उसको दस-पच्चीस रुपया दे दो। वह हड़ताल कर दे इसके खिलाफ आमरण, कि जब तक तुम हमसे विवाह न करेगा, तब तक... । उसका भी बोरिया-बिस्तर लगा दो।
तब तो पूरे गांव में तहलका मच गया। उसने भी बोरिया-बिस्तर लगा दिया। लफंगे ने देखा कि यह तो मुसीबत हो गई। वह उसी रात भाग गया।
तो मोरारजी का अनशन तुड़वाने के लिए और कोई उनसे भी ज्यादा मरा हुआ बूढ़ा आदमी खोज लेना था, वह ज्यादा सरल बात थी कि वह कहता कि हम मर जाएंगे, अगर तुमने अनशन न तोड़ा। फिजूल की बकवास है। लेकिन राजस चित्त कुछ पाने के लिए, आकांक्षा के लिए, फल के लिए उत्सुक है।
और तीसरा जो है, वह तो सिर्फ मूढ़तावश करता है। उसके मन में तो सिर्फ हिंसा और अज्ञान है।
हठ से, मन, वाणी और शरीर को पीड़ा पहुंचाकर... ।
वह अपने को कष्ट पहुंचाता है। या ज्यादा से ज्यादा उसकी आकांक्षा होती है, तो दूसरे का अनिष्ट करने की होती है।
मैंने सुना है, एक बड़ी पुरानी कहानी है पंचतंत्र में, कि एक आदमी को निरंतर भक्ति करने से कोई देवता प्रसन्न हो गया। और उसने कहा, मांग ले, तू जो भी मांगता हो। तो उसने कहा, जो भी मैं मांगूं कभी भी वह मुझे मिले, यही मैं मांगता हूं। होशियार आदमी रहा होगा, गणितज्ञ रहा होगा, एक मांग में खतम हो जाएगी बात; तो उसने कहा कि मैं यही मांगता हूं कि जो भी कभी मांगूं, वह मुझे मिल जाए।
देवता ने देखा कि यह तो चालाकी कर रहा है। वरदान एक दिया था, इसने तो करोड़ मांग लिए, अनंत मांग लिए। देवता ने कहा, वही देता हूं, लेकिन सिर्फ एक शर्त है, कि जो तुझे मिलेगा, वह तेरे पड़ोसियों को दुगना होकर मिलेगा।
बस, बात खतम हो गई। अब वह आदमी बड़ी मुश्किल में पड़ गया। यही तो मूढ़ आदमी की दिक्कत है। उसको खुद से कोई मतलब नहीं है। खुद को चाहे दुख भी मिले तो चलेगा; किसी को सुख न मिल जाए।
अब वह बड़ी मुश्किल में पड़ गया। उसने मांगा महल। महल तो बन गया। लेकिन दुगने बड़े महल पड़ोसियों के बन गए। वह फिर नीचे के नीचे रह गया। उसने कहा, यह तो कोई सार न रहा। इससे तो झोपड़ा ही बेहतर था। फल क्या है इसका! उसने मांगा धन; दुगना धन पड़ोसियों के घर में बरस गया। उसने कहा, ऐसे नहीं चलेगा। यह देवता तो चालाकी कर गया।
तो उसने कहा, मेरी एक आंख फोड़। उसकी एक फूटी; पड़ोसियों की दोनों फूट गईं। उसने कहा, अब मेरे घर के सामने एक बड़ा कुआं बना दे। उसके घर के सामने एक कुआं बना, पड़ोसियों के घर के सामने दो बन गए।
अब उसको तृप्ति हुई। खुद की आंख गई, उसकी कोई चिंता नहीं। अब तृप्ति
हो गई कि अंधे कुओं में गिरेंगे। जाएंगे कहां? सारा पड़ोस अंधा हो गया; दो- दो कुएं हर घर के सामने हो गए। अब उसको शांति हुई।
वह जो मूढ़ चित्त का व्यक्ति है, उसको अपने सुख में रस नहीं होता। उसका
एक ही सुख होता है कि दूसरों को वह कितना दुखी करे।
और बहुत बार तुम्हारे भीतर भी वह स्वर होता है। तुम्हें इसकी फिक्र नहीं होती कि तुम्हें कितना मिल रहा है, तुम्हें इसकी फिक्र होती है कि पड़ोसी को कितना मिल रहा है। अगर उसको कम मिल जाए, तो तुम्हें जितना मिल रहा है, उतने में भी सुख मालूम पड़ता है। उसको ज्यादा मिल जाए और तुम्हें भी ज्यादा मिल जाए, तो भी रस नहीं मालूम होता, क्योंकि उसको भी ज्यादा मिल गया।
मूढ़ चित्त दूसरे को दुख देने में अपना सुख मानता है। यह तमस का लक्षण है। राजस व्यक्ति अपने को सुख देने में सुख मानता है। सत्व का व्यक्ति दूसरे को सुख देने में सुख मानता है।
और तुम्हारे जीवन की सारी गतिविधियां इन तीन हिस्सों में बंटी हैं।
और अपनी हर गतिविधि का गौर से निरीक्षण करना। वह सत्व है, रजस है या तमस है? और चेष्टा करना तमस से रजस में उठने की, रजस से सत्व में उठने की।
अगर कोई स्वाध्यायपूर्वक अपनी वृत्तियों का, अपनी दृष्टियों का, धारणाओं का, मनोभावों का ठीक-ठीक अध्ययन करता रहे, तो उस अध्ययन से ही तुम्हारे भीतर सीढ़ियां लग जाएंगी। और जैसे-जैसे तुम सत्व के करीब आते हो,

वैसे-वैसे श्रद्धा के करीब आते हो। जैसे-जैसे सत्व के करीब आते हो, वैसे- वैसे भगवत्ता के करीब आते हो।
भगवान दूर नहीं है। उतना ही दूर है, जितनी तुम्हारे जीवन की दूरी सत्व
से है। वह दूरी तुम पूरी कर लो, भगवान बरस जाता है।
कबीर ने कहा है, गगन घटा घहरानी साधो!
ऐ साधुओ! आकाश में परमात्मा की घटा गहन हो गई। क्योंकि श्रद्धा का जन्म हुआ है, क्योंकि सत्व की उपलब्धि हुई है।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग आठ
गीता दर्शन अध्याय 17
नौवां प्रवचन

दान--सात्विक, राजस, तामस

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्।। 20।।
यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम्।। 21।।
अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम्।। 22।।
हे अर्जुन, दान देना ही कर्तव्य है, ऐसे भाव से जो दान देश, काल और पात्र के प्राप्त होने पर प्रत्युपकार न करने वाले के लिए दिया जाता है, वह दान तो सात्विक कहा गया है।
और जो दान क्लेशपूर्वक तथा प्रत्युपकार के प्रयोजन से अथवा फल को उद्देश्य रखकर फिर दिया जाता है,
वह दान राजस कहा गया है।
और जो दान बिना सत्कार किए अथवा तिरस्कारपूर्वक, अयोग्य देश-काल में कुपात्रों के लिए दिया जाता है,
वह दान तामस कहा गया है।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः सदगुरु अलग-अलग होते हैं और किसी एक सदगुरु को मानने वाला दूसरे सदगुरु को स्वीकार नहीं कर सकता। लेकिन हम बुद्ध, महावीर, लाओत्से, जीसस, कृष्ण, सभी के प्रति झुक जाते हैं। इसकी वजह यह हो सकती है कि आपने ही हमें उनके उन्मुख किया। जीवित गुरु कृष्णमूर्ति को देखकर भी हमारा हृदय आनंदविभोर हो उठा है, पैर थिरक उठे हैं। क्यों? और समझ में नहीं आता कि कृष्णमूर्ति के प्रेमी आपको क्यों स्वीकार नहीं कर सकते?

सदगुरु निश्चित ही भिन्न-भिन्न हैं। विशेषकर तीन वर्ग किए जा सकते हैं। एक वर्ग है कृष्णमूर्ति जैसे सदगुरुओं का; महावीर, बुद्ध उसी पंक्ति में आते हैं। इस प्रकार के सदगुरु का एक ही उपदेश है कि तुम परिपूर्ण रूप से स्वतंत्र हो जाओ, निर्भर न रहो। तुम्हारी स्वतंत्रता में ही तुम्हारा मोक्ष है। मोक्ष कोई अंतिम घटना नहीं है। पहले कदम से ही मुक्त होना सीखना पड़ेगा, तो ही अंतिम कदम पर मुक्ति फलित होगी।
कृष्णमूर्ति की प्रसिद्ध किताब है, दि फर्स्ट एंड दि लास्ट फ्रीडम-- पहली और अंतिम मुक्ति। पहली मुक्ति ही अंतिम मुक्ति है और पहला कदम ही, स्वतंत्रता का, अंतिम कदम है।
तो न तो किसी की शरण जाना, न कहीं समर्पण करना, न किसी विचार से बंधना, श्रद्धा से बचना। महावीर ने इसी बात को अशरण-भाव कहा है, किसी की शरण मत जाना।
बुद्ध ने मरते समय जो आखिरी संदेश दिया... । आनंद ने पूछा कि कुछ आखिरी बात हमें कह दें, जिसे हम सदा संजोकर रख सकें। तो बुद्ध ने कहा, अप्प दीपो भव! अपने दीए खुद बनना। किसी का दीया उधार मत मांगना और किसी दूसरे की रोशनी मत लेना, तो ही तुम परम मुक्ति को उपलब्ध हो सकोगे।
स्वभावतः, जिसने ऐसे गुरु के वचन सुने हों, वह किसी दूसरे गुरु के पास नहीं आ सकता। उसे तो कठिन है कृष्णमूर्ति के पास भी रहना। क्योंकि अगर उसने ठीक से सुना है, तो वह उनसे भी भाग खड़ा होगा। उसने अधूरा सुना है, इसलिए वह उनके पास खड़ा है। लेकिन इतना तो उसने सुन ही लिया है कि अब वह किसी और के पास नहीं जाएगा, कहीं और नहीं झुकेगा। ज्यादा से ज्यादा वह कृष्णमूर्ति के प्रति झुकेगा।

वह भी ठीक नहीं सुनी बात उसने, अन्यथा वह भी रुक जाना चाहिए। क्योंकि कृष्णमूर्ति हों, कि कृष्ण हों, कि बुद्ध हों, क्या फर्क पड़ता है? तुम झुके, कि चूक हो गई। वहां झुकने का ही विरोध है।
लेकिन फिर भक्त तो समझौते बनाता है। वह कहता है, इतना चलेगा; एक के प्रति झुकेंगे, और किसी के प्रति न झुकेंगे। और इस आदमी के प्रति तो झुकेंगे, क्योंकि इसने ही सिखाया कि किसी के प्रति मत झुको। लेकिन दूसरे सब द्वार बंद हो जाते हैं। ऐसा आदमी संकीर्ण हो जाता है।
अब यह बड़े सोचने जैसी बात है। कृष्णमूर्ति, बुद्ध और महावीर किसी को संकीर्ण नहीं बनाना चाहते; चाहते हैं, तुम मुक्त आकाश जैसे हो जाओ। इसीलिए कहते हैं, किसी से बंधना मत। जोर इसीलिए है, ताकि तुम बंधो न, कोई कारागृह खड़ा न हो। तो तुम मुक्त खुले आकाश जैसे रहोगे, तुम्हारी कोई सीमा न होगी, कोई संप्रदाय न होगा, कोई शास्त्र न होगा।
लेकिन जो कृष्णमूर्ति कहते हैं, वही थोड़े ही सुनने वाला सुनता है। हां, कोई कृष्णमूर्ति ही सुन रहा हो, तो वही सुनेगा जो कृष्णमूर्ति कहते हैं। लेकिन कृष्णमूर्ति को सुनने कृष्णमूर्ति क्यों जाएगा? सुनने वाला अपने तल से सुनता है। वह कहता है, बिल्कुल ठीक, कहीं नहीं झुकना है; यह तो हम पहले से ही जानते थे। वह उसका अहंकार बोल रहा है, मोक्ष नहीं, स्वतंत्रता नहीं।
जब कृष्णमूर्ति कहते हैं, मत झुको कहीं, तो वे यह नहीं कह रहे हैं कि अकड़े खड़े रहो। वे यह कह रहे हैं कि झुकने से तो गुलामी बन जाएगी। तो किसी के प्रति मत झुको, सिर्फ झुको। किसी के प्रति नहीं, प्रति न हो; सिर्फ झुकना हो। समस्त के प्रति झुको, यह संदेश है। मुक्त आकाश के प्रति झुको; क्या छोटे-छोटे आंगन के प्रति झुकना? जब बड़ा मौजूद हो तो क्यों छोटे के लिए झुकना? जब विराट मौजूद हो तो क्यों क्षुद्र के लिए झुकना? जब असीम मौजूद हो तो सीमा को क्यों झुकना? वे यह कह रहे हैं कि झुको पूरे के लिए। सुनने वाला समझ रहा है, झुको ही मत, अकड़े रहो।
कृष्णमूर्ति डरते हैं कि कहीं तुम किसी के सामने झुके, चाहे वह कोई कृष्ण ही क्यों न हो, तो भी तुम बंध जाओगे। उतना भी उनको लगता है कि बंधन न हो, अड़चन हो जाएगी। लेकिन तुम समझ रहे हो कि अपने से ही बंधे रहो, झुको ही मत। इससे तो बेहतर था, तुम कृष्ण के प्रति ही झुक जाते। तुमसे तो वे बड़े ही थे। तुम तो बिल्कुल क्षुद्र हो, क्षुद्रतम हो।
लेकिन सुनने वाला वही सुन सकता है, जो वह है। उसकी अपनी व्याख्या है। उसकी अपनी टीका है। तो कृष्णमूर्ति के पास सुनने वाले निन्यानबे तो चूक जाते हैं, वे क्या कह रहे हैं। मुश्किल से एक समझ पाता है। उस एक को मेरे पास आने में कोई अड़चन न होगी। वह मेरे इतने पास आ जाएगा, जितने पास आया जा सकता है; कोई अड़चन न होगी। क्योंकि उसने समझ लिया, झुकना नहीं है, बंधना नहीं है; वह मुक्त हो गया; सब द्वार खुले हैं। अब उसकी गंगा कहीं भी बह सकती है। सब मार्ग अपने हैं।
लेकिन वह एक को होगा, निन्यानबे तो कृष्णमूर्ति से बंध जाएंगे। इसी
ने सिखाया न झुकना, इसने ही अहंकार को पुष्टि दी। अब इसको छोड़कर वे नहीं जा सकते। क्योंकि जहां भी जाओ, लोग कहते हैं, झुको।
तो एक तो कृष्णमूर्ति के ढंग के सदगुरु हैं, बुद्ध, महावीर। दूसरे मेहरबाबा के ढंग के सदगुरु हैं। वह दूसरा ढंग है। वह ठीक कृष्णमूर्ति से उलटा है। वहां झुकना ही कला है। वे कहते हैं, बिल्कुल झुक जाओ, बचो ही मत। गुरु परमात्मा है। वही परम है। तुम बिल्कुल झुक जाओ। तुम अपने को खो ही दो।
मेहरबाबा जैसे गुरु हैं कृष्ण, जो अर्जुन को कहते हैं, मामेकं शरणम व्रज। सब छोड़, सब धर्म छोड़, मेरी शरण आ। चैतन्य महाप्रभु! सारे भक्ति के मार्ग से उपलब्ध हुए जितने भी लोग हैं, वे सब कहेंगे, छोड़ दो, सब छोड़ दो। जीसस कहते हैं, सब छोड़ो। कम, फालो मी! आओ, मेरे पीछे चलो।
यह दूसरा वर्ग है। इस वर्ग को भी समझ लेना चाहिए। यह वर्ग यह कह रहा है
कि तुम इतने झुक जाओ कि तुम बचो ही नहीं। दूसरा थोड़े ही बांधता है; तुम्हारी वह जो क्षुद्र अस्मिता है, वही बंधती है। दूसरा क्या बांधेगा! अगर अहंकार न हो तुम्हारे पास, संसार में तुम्हें कोई भी नहीं बांध सकता।

बांधने को ही कुछ न बचा। अहंकार जब तुम्हारे भीतर नहीं रह जाता, तुम खुले आकाश हो गए। इसको कोई मुट्ठी में बांधना चाहे, कोई भी नहीं बांध सकता।
तो वे कहते हैं, झुकने से डरो मत, अन्यथा बंध जाओगे। जरा तुम बचे, कि अकड़ थोड़ी बची रही... । वही अकड़ तो बंधती है जगह-जगह। उसी अकड़ पर तो जंजीरें पड़ जाती हैं। वही अहंकार तो तुम्हारी सारी उपाधियों, सारे रोगों की जड़ है। वही तो तुम्हें संसार में भटकाता है। वही तो तुम्हें धन से बांध देता है, पद से बांध देता है। तुम धन से बंधोगे, पद से बंधोगे, पत्नी से बंधोगे, पति से बंधोगे; सिर्फ गुरु से बचना चाहते हो? जब कि गुरु एकमात्र ऐसा बंधन है, जो मुक्ति बन सकता है।
तो मेहरबाबा की कोटि के सदगुरु कहते हैं, छोड़ दो अपने को बिल्कुल, भूल
ही जाओ कि तुम हो। परतंत्र होने को कोई है ही नहीं, इस तरह मिट जाओ। फिर तुम्हें कौन परतंत्र करेगा? इसलिए समर्पण पूरा कर दो।
ध्यान रखना, दुनिया में सौ में से एक प्रतिशत लोग कृष्णमूर्ति, बुद्ध
और महावीर के मार्ग से पहुंच सकते हैं, इससे ज्यादा नहीं। क्योंकि अहंकार बड़ी भयंकर व्याधि है। वह स्वतंत्रता के नाम पर अहंकार को ही पुष्टि मिलेगी।
मेहरबाबा जैसे व्यक्तियों के साथ जितने लोग पहुंचते हैं, वह संख्या निन्यानबे प्रतिशत है। क्योंकि अगर तुम छोड़ दो अहंकार, तो न कुछ बंधने को रहा, न कुछ मुक्त होने को रहा। अगर तुम बचे रहे तुम्हारे मोक्ष में भी, तो तुम्हारा मोक्ष भी संसार होगा। मोक्ष कोई स्थान थोड़े ही है, जहां तुम्हें जाना है; मोक्ष तो एक अवस्था है, जहां तुम्हें नहीं बचना है।
तो कृष्णमूर्ति के मानने वाले को एक तो मोक्ष बहुत दूर। क्योंकि वह
उस मानने में से अपने अहंकार को बचाएगा। लेकिन कोई एक उससे भी उपलब्ध होता है।
इसलिए कृष्णमूर्ति, बुद्ध और महावीर के मार्ग को मैं हीनयान कहता हूं; वह छोटी डोंगी है। वह कोई बड़ा जहाज नहीं है, महायान नहीं है। उसमें थोड़े-बहुत लोग बैठकर नदी पार हो जाते हैं। पार होते हैं। डोंगी में कुछ हर्जा नहीं है; उससे भी पार हो सकते हैं। और डोंगी में एक तरह की स्वतंत्रता है। जब खेना हो खेओ, न खेना हो मत खेओ; रुकना हो किसी किनारे पर थोड़ी देर, तो रुको; न रुकना हो, मत रुको।
लेकिन खतरा भी है। क्योंकि डोंगी अक्सर डूबती है, पहुंचती कम है। स्वतंत्रता थोड़ी ज्यादा है, लेकिन खतरा भी उतना ही ज्यादा है। और अक्सर तो यह होता है कि तुम पहुंच ही नहीं पाते। अक्सर तो थोड़ा भटक-भटकाकर अपने किनारे वापस आ जाते हो।
मैंने सुना है, एच.जी.वेल्स ने एक कहानी लिखी है। एक आदमी था। वह उसी ढंग का आदमी रहा होगा, जिसको हम शेखचिल्ली कहते हैं; या स्पेन में जिसके ऊपर एक बड़ी प्रसिद्ध किताब लिखी गई है, डान कुईजोट। शेखचिल्ली ढंग का आदमी रहा होगा। उसने एक किताब पढ़ी। और किताब में वर्णन था कि प्राचीन समय में लोग छोटी-छोटी डोंगियों से समुद्र पार कर जाते थे।
जहाज तो थे नहीं, लेकिन समुद्र तो लोगों ने पार किया ही है। अर्जुन की
एक पत्नी मैक्सिको से आई थी। तो जहाज तो बड़े नहीं थे, डोंगियों में ही आई होगी, डोंगियों में ही लाई गई होगी। लोग तो यात्रा कर रहे थे। और अब तो मैक्सिको की पत्नी की बात करीब-करीब ऐतिहासिक हो गई है, क्योंकि मैक्सिको में बहुत-से हिंदू चित्र मिले हैं, मूर्तियां मिली हैं, मंदिर मिले हैं। मैक्सिको कभी हिंदू देश रहा, इसके सब प्रमाण जुट गए हैं। महाभारत में उसका नाम मक्षिका है। मैक्सिको मक्षिका का ही अपभ्रंश मालूम होता है।
तो लोग चलते रहे होंगे बिना बड़े जहाजों के। उसने ये सब कहानियां पढ़ीं,
वह बहुत उत्तेजित हो गया। उसने भी एक डोंगी खरीदी। तीन महीने का भोजन, सामान तैयार करके रखा, हलके से हलका, क्योंकि ज्यादा वजन ले जा नहीं सकता था। विटामिन की गोलियां रख लीं और सब इंतजाम कर लिया और चल पड़ा।
बड़ा संघर्ष था, भयंकर तूफान थे। लेकिन हिम्मतवर आदमी था, जूझता रहा। तीन महीने पूरे होने को करीब आए, तब उसे थोड़ी घबराहट भी होने लगी। कहीं पहुंचता हुआ नहीं मालूम पड़ता। रात थी, सुबह हुई; देखा कि जमीन करीब है।

बहुत आनंदित हो गया। भगवान को धन्यवाद दिया कि पहुंच गए। बड़ी प्रसन्नता से किनारे पहुंचा।
देखकर चकित हुआ। चकित यह हुआ कि कहानियों में उसने यही सुना था कि जब तुम पहुंचोगे दूसरे देश, तो वहां के लोग दूसरी भाषा बोलेंगे। ये लोग अंग्रेजी ही बोलते हैं यहां भी! तीन महीने की यात्रा के बाद! जब वह और थोड़े पास गया और लोगों को देखा, तो पता चला, यह तो उसी का गांव है। अपने ही गांव तीन महीने उपद्रव में उलझकर वापस डोंगी लग गई।
यह भी बहुत कि कम से कम अपने गांव ही लग गई। सागरों में डोंगियां लेकर यात्रा करना कठिन काम है। कहीं पहुंचोगे, इसकी संभावना कम है।
तो जो समझ सकता है--और कितने लोग समझ सकते हैं? वह कृष्णमूर्ति की डोंगी में भी पहुंच जाएगा। जो नहीं समझ सकता--और बहुत लोग हैं, जो नहीं समझ सकते--उसके लिए तो मेहरबाबा का बड़ा जहाज चाहिए। जहां तुम्हें कुछ करना ही नहीं पड़ता; तुम सब छोड़ देते हो गुरु पर, तुम अशेष भाव से छोड़ देते हो, तुम कुछ बचाते ही नहीं। गुरु कहे, कूद जाओ, तो कूद जाते हो; गुरु कहे, रुको, तो रुक जाते हो। तुम्हारा अपना कोई अब निर्णय न रहा। तुम न रहे।
एक मार्ग यह है। जो पहुंचे हैं, उनमें से निन्यानबे प्रतिशत इससे पहुंचे हैं।
तीसरा और एक मार्ग है, जिसके बाबत मैं तुमसे चर्चा कर रहा हूं। वह मार्ग इन दो को अलग-अलग नहीं तोड़ता। इन दो मार्गों की, जिनकी मैंने तुमसे बात की--कृष्णमूर्ति और मेहरबाबा--ये दो अति मालूम होते हैं, दो छोर। मैं जिस मार्ग की तुमसे बात कर रहा हूं, वह इन दोनों का सम्मिलन है, और इन दोनों का ऐक्य है। क्योंकि मैं कहता हूं कि सौ ही आदमी पार होने चाहिए। क्यों निन्यानबे पार हों? एक क्यों चूके? या क्यों एक पार हो और निन्यानबे क्यों चूकें?
तो मैंने कुछ ऐसा इंतजाम किया है कि बड़े जहाज के आस-पास छोटी-छोटी डोंगियां भी बांध दी हैं। तो जिनका शौक डोंगी में ही बैठने का है, डोंगी में बैठ जाएं, लेकिन जहाज से बंधे रहें। कुछ लोग हैं, जिनको डोंगी में बैठने का आनंद है। उनको चैन ही न मिलेगी, जब तक तकलीफ न हो, कुछ घबड़ाहट-बेचैनी न हो। वे बैठ जाएं डोंगी में, लेकिन डोंगी जहाज से बंधी है।
तो मैं दोनों के लिए बोल रहा हूं, एक प्रतिशत के लिए भी, निन्यानबे प्रतिशत के लिए भी। इसलिए तुम्हें जहां भी कोई ज्ञानी मिल जाए, तुम मजे से झुको। तुम पूरी तरह झुको। मेरे शिष्य को किसी भी ज्ञानी में मुझे ही देखना चाहिए, इससे कम नहीं। तुम झुको पूरी तरह। कोई तुम्हें बांध न पाएगा। बांधने का, बंध जाने का डर भी थोड़ी कमजोरी का लक्षण है। क्या बंधना है? कौन बांध लेगा? यह भी भय है कि कहीं बंध न जाएं। ऐसे छोटे भय लेकर क्यों जीते हो? भयभीत न रहो।
तुम्हें जहां कोई सदगुरु दिखे, पूरी तरह झुक जाओ। चाहे वह सदगुरु यही
कह रहा हो कि झुकना ठीक नहीं है, तब भी झुको। इतना भी सिखाया उसने, तो भी अनुग्रह! यह भी बड़ी बात कही उसने। तो भी धन्यवाद!
तो मेरे पास जो हैं, उनके लिए मेहरबाबा हों कि कृष्णमूर्ति हों, बुद्ध हों कि कृष्ण हों, राम हों कि मोहम्मद हों, कोई फर्क नहीं है। क्योंकि मैं तुम्हें ऊपर की खोलों के फर्क नहीं सिखा रहा हूं, तुम्हें भीतर की चेतना का राज बता रहा हूं।
तुम सब जगह झुको। कोई तुम्हें बांध न पाएगा। समर्पण में तुम्हारी मुक्ति है। तुम वहां भी जाओ, जो कहता है कि सब समर्पण गलत है। उसकी भी सुनो। क्योंकि एक प्रतिशत उससे भी मुक्त होते हैं। कौन जाने, तुम उस एक प्रतिशत में होओ।
तुम्हारे लिए मैंने सब द्वार खुले छोड़ दिए हैं, कोई द्वार बंद नहीं रखा है। मैं तुम्हें कोशिश कर रहा हूं इतना विराट बनाने की कि तुम्हें अगर कोई बांधकर भी ले जाए, तो तुम तो न बंधो, बांधकर ले जाने वाले को तुम्हारे साथ मुक्त होना पड़े।
ऐसा भी हुआ है।
डायोजनीज, यूनान में एक फकीर हुआ। महावीर की तरह फकीर था, नग्न रहता था। अलमस्त आदमी था, कोई चिंता-फिक्र न थी; तो मस्त था, शरीर स्वस्थ था,

शक्तिशाली था। कुछ लोग निकल रहे थे जंगल से और वह एक झाड़ के नीचे विश्राम कर रहा था। आठ आदमी थे वे। उनका धंधा गुलामों को बेचना था।
उन्होंने इस मस्त आदमी को सोए देखा। उन्होंने कहा कि अगर यह पकड़ में आ जाए! लेकिन इसको पकड़ो कैसे? हालांकि यह सो रहा है, हम आठ हैं; मगर अगर यह जाग गया, तो मुसीबत खड़ी हो जाएगी। अगर यह हाथ आ जाए, तो खूब दाम मिल सकते हैं। हमने बहुत गुलाम बेचे हैं। मगर इस गुलाम को तो बाजार में ले जाएंगे, तो ऐसा हीरा कभी आया ही नहीं, इसके तो बड़े दाम मिल जाएंगे।
क्या करें, वे विचार ही कर रहे थे। उनकी बातचीत सुनकर डायोजनीज की नींद खुल गई। तो उसने आंखें बंद ही किए कहा कि तुम परेशान मत होओ, बांध लो। चलूंगा साथ, घबड़ाओ मत।
वे और भी घबड़ाए कि यह आदमी किस तरह का है! आदमी को गुलाम बनाना हो, तो
वह हजार झंझटें खड़ी करता है; कमजोर आदमी भी करता है। वह भी उछलकूद मचाता है, शोरगुल मचाता है, मार-पीट करेगा, उसमें भी ताकत आ जाती है। और यह आदमी ऐसे ही पड़ा है, और आंखें ही बंद किए! आंख खोलकर भी नहीं देखा कि कौन हो, क्या हो?
उसने कहा कि ज्यादा चिंता-फिक्र मत करो; चिंता-फिक्र का मैं दुश्मन हूं। यही मेरी शिक्षा है कि चिंता-फिक्र छोड़ो। तुम बांध ही लो। मैं चलने को राजी हूं। मैं कोई अड़चन खड़ी न करूंगा।
डरते-डरते उन्होंने उसके हाथ बांधे। उसने हाथ आगे कर दिए। बांध तो लिया उसे, लेकिन भीतर कुछ टूट गया उनके। यह आदमी बांधने जैसा है नहीं। इतना स्वतंत्र आदमी उन्होंने देखा ही न था, जो बंधने को इतनी आसानी से राजी हो।
सिर्फ परम स्वतंत्र आदमी ही बंधने को राजी हो सकता है। उसको अपने पर इतना भरोसा है, अपनी स्वतंत्रता की इतनी श्रद्धा है कि क्या तुम उसे मिटाओगे! और जिसको आठ आदमी मिलकर मिटा दें, वह भी कोई मोक्ष है? वह भी कोई स्वतंत्रता है, मुक्ति है? जिसको कोई गुरु मिटा दे, वह भी कोई मोक्ष है? कृष्णमूर्ति के पास कमजोर आदमी इकट्ठे हो गए हैं, अहंकारी और कमजोर। अपने को बचाने में लगे हैं, डर रहे हैं। इसलिए वे मेरे पास कैसे आएंगे! यहां खतरा हो सकता है।
डायोजनीज बंध गया। उसने फिर पूछा कि किस तरफ चलें? तुम बता दो, क्योंकि मैं जरा तगड़ा आदमी हूं। अगर मैं पूरब जाऊं, तो तुम को पूरब जाना पड़ेगा। तुम आठ कुछ कर न पाओगे। इसलिए तुम मुझे राह बता दो। और एक आदमी आगे हो जाए; कहां चलना है!
एक आदमी आगे हो गया। लेकिन रास्ते में उन लोगों पर उसका बड़ा प्रभाव पड़ने लगा। उसकी मस्ती, उसकी चाल! वह गीत गुनगुनाए! वह जैसे कि जंगल से लाया शेर हो! और इतना निर्भीक कि तुम उसे बांध भी न सको, बंधने को भी खुद ही राजी हो!
आखिर वे पूछने लगे, तुम आदमी किस तरह के हो? ऐसा आदमी हमने देखा नहीं, जिंदगी हमें गुलामों का धंधा करते हो गई। उसने कहा, तुम भी गुलाम हो। गुलामों का धंधा करने वाले गुलामों से बेहतर नहीं हो सकते।
जो तुम्हें बांधते हैं, याद रखना, वे भी बंधे हुए ही लोग हो सकते हैं। कौन मुक्त आदमी तुम्हें बांधेगा? क्योंकि मुक्त भलीभांति जानता है, जिसको तुम बांधोगे, उससे तुम बंध जाओगे। बंधन एकतरफा नहीं होता। बंधन दोधारी धार है। जब मैं तुम्हें बांधूंगा, तब मैं भी बंधा तुम्हारे साथ। तुम जहां घसिटोगे, मुझे भी घसिटना पड़ेगा।
डायोजनीज ने कहा, हम इस राज को समझ गए कि गुलाम ही गुलामों को बांधते हैं, परतंत्र लोग ही परतंत्रों को परतंत्र करते हैं। हम स्वतंत्र हैं। तुम हमें क्या बांधोगे? हम खुद ही बंधे हैं!
उससे बड़े प्रभावित हो गए। उन्होंने धीरे-धीरे अपनी जंजीरें भी निकाल लीं। उन्होंने कहा कि तुम पर जंजीरें! तुम तो वैसे ही चल रहे हो साथ।
वह साथ रहा। बाजार आ गया। भीड़ लग गई उसके आस-पास। लेकिन लोगों को तय करना मुश्किल हुआ कि मालिक कौन है, गुलाम कौन है! उन मालिकों ने, तथाकथित मालिकों ने आवाज भी दी, बताया भी कि हम एक गुलाम को ले आए हैं। लोगों ने गुलाम को देखा, बहुत शक्तिशाली, बिना जंजीरों के!

डायोजनीज ने कहा कि रुको, तुमसे न चलेगा काम। वह खड़ा हो गया टिकटी पर, जिस पर खड़े होकर नीलाम किए जाते थे गुलाम, और उसने खड़े होकर जो बात कही, वह बड़ी अनूठी है। उसने कहा, एक मालिक बिकने आया है, कोई गुलाम खरीदने को तैयार है?
एक मालिक बिकने आया है, कोई गुलाम खरीदने को तैयार है! मालिक तो मालिक है, कारागृह में भी। और गुलाम तो गुलाम ही रहेगा, खुले आकाश के नीचे भी। क्योंकि गुलामी या स्वतंत्रता बाहर की घटनाएं नहीं, जंजीरों से उनका कुछ लेना-देना नहीं; भीतर की गुणवत्ता है।
इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, झुको! जहां तुम्हारी मौज आए, वहां झुको।
कृष्णमूर्ति मिलें, तो नाचो, झुको, नमस्कार करो। वहां भी दीया जला है। वह दीया तो एक ही सूरज की रोशनी है। तुम्हें मेहरबाबा मिल जाएं रास्ते पर, उनके साथ भी हो लो, उनके साथ भी नाचो।
अगर तुम ठीक से समझो, तो यही मेरा तुम्हें मुक्त करने का उपाय है। इसलिए मैं कृष्ण पर बोलता हूं, बुद्ध पर बोलता हूं, महावीर पर बोलता हूं, ताकि तुम कहीं बंध न जाओ; सबसे मुक्त हो जाओ। तुम सबको प्रेम कर सको, और सबसे मुक्त हो जाओ।
और यह बड़े मजे की बात है और बड़ी जटिल है, विरोधाभासी है, अगर तुम सबसे मुक्त होना चाहते हो, तो सबके प्रति समर्पित हो जाने के सिवाय कोई उपाय नहीं। तब तुम्हें कोई भी न बांध पाएगा। तब न महावीर, न बुद्ध, न कृष्ण, तुम्हें कोई भी न बांध पाएगा। तुम परमात्मा हो, अगर तुम समर्पित हो। कौन तुम्हें बांध पाएगा?
फिर उस समर्पण के बाद तुम चाहे अकेले खड़े रहो, चाहे किसी के पीछे चलो, कोई भी फर्क नहीं पड़ता। चाहे तुम डोंगी में यात्रा करो, चाहे एक बड़े जहाज में बैठ जाओ, कोई फर्क नहीं पड़ता है।
भीतर से तुम कहीं जकड़ न जाओ, इसलिए मैं विपरीत मार्गों की बात भी तुमसे करता हूं। तुम उलझन में भी पड़ जाते हो। जब मैं महावीर पर बोलता हूं, तो तुम महावीर से प्रभावित हो जाते हो। लेकिन जल्दी ही मैं कृष्ण पर बोलूंगा, और दूसरी धारा आ जाएगी। और तुम चकित होओगे, और तुम मुश्किल में पड़ोगे, कि अब क्या करें!
तुम्हारी अड़चन यह है कि तुम चाहते थे, कुछ एक बता दो, जहां हम बंध जाएं। अब झंझट और न करो! एक मकान बन नहीं पाता कि आप दूसरा मकान शुरू कर देते हैं। हमारा उसमें अभी गृह-प्रवेश भी न हुआ था। अभी बैंड-बाजे हम इकट्ठे ही कर रहे थे, निमंत्रण भेजा ही था, कि उसको गिराने का वक्त आ गया, और आप दूसरा मकान बना रहे हो! और दूसरा और भी शोभायुक्त मालूम होता है। लेकिन दूसरे के साथ भी यही होगा; मैं तीसरा मकान बनाऊंगा। मैं असल में तुम्हें मकानों से मुक्त करना चाहता हूं। मैं चाहता हूं, तुम्हारा गृह-प्रवेश तो हो, लेकिन आकाश में हो, मकानों में न हो। और एक ही उपाय है कि मैं तुम्हें सारे मकान दिखला दूं, जहां-जहां तुम कारागृह में पड़ सकते हो। और उन सारे मकानों के भीतर छिपा हुआ आकाश भी दिखला दूं, जो कि भीतर भी है और बाहर भी है।
तो मेरा मार्ग बड़ा अन्य है। कृष्णमूर्ति तुम्हें स्वतंत्र करना चाहते हैं; एकाध व्यक्ति को कर पाते हैं, निन्यानबे अहंकार से बंधे रह जाते हैं। उससे तो बेहतर था गुरु से बंध जाना, थोड़ी आशा थी, थोड़ी किरण थी, शायद कोई मार्ग मिल जाता! किसी दीए से बंध जाते, तो कुछ मार्ग मिल जाता। अपने अंधेरे से ही बंधे हो, क्या मार्ग मिलेगा!
मेहरबाबा बंधने को कहते हैं। कहते हैं, सब छोड़ दो; अनन्य भाव से छोड़ दो; श्रद्धा पूरी रखो। वह कृष्णमूर्ति से ज्यादा कारगर हैं। लेकिन बहुत-से लोग उसमें भी चूक जाएंगे। क्योंकि बहुत तरह के लोग हैं। आलसी हैं, जो सदा से चाहते थे कि अच्छा ही हुआ, झंझट मिटी; अब हमें कुछ करना नहीं है। कृष्णमूर्ति के पास अहंकारी इकट्ठे हो जाएंगे और मेहरबाबा के पास आलसी इकट्ठे हो जाएंगे। कृष्णमूर्ति के पास वे लोग इकट्ठे हो जाएंगे, जिनमें रजस की मात्रा ज्यादा है। और मेहरबाबा के पास वे लोग इकट्ठे हो जाएंगे जिनमें तमस की मात्रा ज्यादा है; जो कहते हैं कि चलो अच्छा ही हुआ,

अब तुम करोगे सब; सम्हालो! अब हम निश्चिंत हुए; अब हमें कुछ करना ही नहीं है।
इसका यह मतलब नहीं है कि वे कुछ न करेंगे; वे सब जारी रखेंगे; जो कर रहे थे, वह तो जारी रखेंगे--दुकान पर काम जारी रखेंगे, चोरी जारी रखेंगे, बेईमानी जारी रखेंगे--और कहेंगे कि अब सब बाबा पर छोड़ दिया; अब अपना करने से क्या होगा! तो जो भगवान करवाए। भगवान लगता है, चोरी और बेईमानी ही करवाता है! वे कुशल लोग हैं, चालाक लोग हैं। सब बाबा पर छोड़ दिया है!
एक आदमी को मैं जानता हूं, जिसने तीस साल तक मेहरबाबा के सत्संग में बिताया है। और तीस साल बाद मेरी उनसे बात हुई, तो उन्होंने कहा कि हमें तो कुछ करने की जरूरत नहीं है। ध्यान भी हमें करने की कोई जरूरत नहीं है। प्रार्थना-पूजा की भी कोई जरूरत नहीं। हमने तो सब बाबा पर छोड़ दिया, अब वे जानें।
मैंने कहा, तीस साल हो गए छोड़े हुए, कुछ हुआ?
उन्होंने कहा, यह भी हम क्यों सोचें?
एक तरह से तो दिखता है कि श्रद्धा बड़ी गहरी है। मगर बड़ा चालाक है आदमी
का मन। चोरी, बेईमानी सब जारी है! सब बाबा पर छोड़ दिया, इसका यह मतलब नहीं है कि बाबा अगर कहे कि चोरी मत करो, तो ये चोरी बंद करेंगे; या बाबा अगर कहे कि शराब मत पीओ, तो ये शराब पीना बंद करेंगे! ये तो बाबा से भी कहेंगे, सब आप पर ही छोड़ दिया, अब हमको करना क्या है?
मेरे पास ऐसे लोग आ जाते हैं। वे मुझसे कहते हैं, अब जब सब आप पर ही छोड़ दिया, तो अब हमको क्यों ध्यान वगैरह में उलझाते हैं? अब आप ही करो! मैं उनसे कहता हूं, मुझ पर छोड़ दिया, तो मैं तुमसे कहता हूं कि ध्यान करो। वे कहते हैं, अब आपकी अनुकंपा चाहिए, और क्या! वे मेरी सुनते ही नहीं कि मैं उनसे क्या कह रहा हूं! मेरी सुनने का सवाल भी नहीं है। वे तो अपनी एक धुन लगाए हुए हैं कि सब आप पर छोड़ दिया।
सब आप पर छोड़ने का मतलब क्या होता है? मतलब यह होता है, अगर तुमने ठीक समझा, तो मैं जो कहूं, वह करो। लेकिन अगर गलत समझा, तो मतलब यह होता है कि अब मैं जो कहूं, उसको भी मत सुनो, और तुम यही कहे चले जाओ कि सब आप पर छोड़ दिया। अब हमको करना क्या है? अब आप जो करेंगे, ठीक है! और तुम जो करते थे, वह तुम करते चले जाते हो।
तो आलसी इकट्ठे हो जाते हैं, समर्पण की जहां धारणा होती है। और जहां अशरण की धारणा होती है, वहां अहंकारी इकट्ठे हो जाते हैं।
सत्व का व्यक्ति तो हर जगह से लाभ ले लेता है। वह कृष्णमूर्ति के पास
भी पार हो जाएगा, वह मेहरबाबा के पास भी पार हो जाएगा। क्योंकि वस्तुतः न तो कृष्णमूर्ति पार करते हैं, न मेहरबाबा पार करते हैं, न मैं पार करता हूं; सत्व पार करता है।
तो तुम अपने भीतर देखना कि तुम जो कर रहे हो, वह तमस से तो नहीं आ रहा है! रजस से तो नहीं आ रहा है! वह सत्व से आना चाहिए।
तो तुम मेहरबाबा के पास लोग पाओगे, बहुत तार्किक नहीं, बहुत बौद्धिक नहीं; ज्यादा हृदयपूर्ण, प्रेमी, उनकी आंख से तुम आंसू बहते हुए पाओगे, उन्हें तुम भजन गाते पाओगे। कृष्णमूर्ति के पास तुम पाओगे अधिक बौद्धिक लोग, जिनकी आंखों के आंसू सदा के लिए सूख चुके हैं; जिनके हृदय में कोई पुलक नहीं उठती; जो तर्क करने में कुशल हो गए हैं।
रजस तर्क है। तमस इतना आलस्य है कि तर्क भी कौन करे! सत्व, तर्क के बाद उपलब्ध हुई श्रद्धा है। सत्व, रजस और तमस का संतुलन है। सत्व वाला व्यक्ति हर कहीं लाभ उठा लेता है। वह जहां भी जाएगा, लाभ उठा लेगा। उसे कोई नुकसान नहीं है।
मैं कोशिश कर रहा हूं कि तुम यह संतुलन सीख जाओ। फिर कृष्ण मिल जाएं
तो उनसे भी तुम्हें लाभ होगा, बुद्ध मिल जाएं तो भी, कृष्णमूर्ति राह पर मिल जाएं तो उनसे भी लाभ होगा। और अगर तुम इस सत्व की अवस्था में नहीं उठते हो, तो चाहे बुद्ध मिलें तो भी नुकसान होगा, कृष्णमूर्ति मिलें तो भी नुकसान होगा। मेरे पास जिंदगी रहो तो भी नुकसान होगा, लाभ न हो पाएगा। लाभ और हानि किसी के कारण नहीं होती है, तुम्हारी चेतना की क्षमता से होती है, तुम्हारी पात्रता से होती है।

पर मैं सबके संबंध में बात किए जाता हूं, ताकि तुम झुकने की कला सीख लो। और तुम इस तरह झुकने की कला सीख लो कि तुम्हारे भीतर वह जो न झुकने वाला तत्व है अहंकार, वह विसर्जित हो जाए। तब तुम सब जगह से संपदा बटोर लाओगे।
तो अगर कृष्णमूर्ति के मार्ग को हम स्वतंत्रता का मार्ग कहें, अशरण का, और मेहरबाबा के मार्ग को परतंत्रता का मार्ग कहें, समर्पण का, तो मेरे मार्ग को तुम क्या कहोगे?
मेरा मार्ग है परस्पर-तंत्रता का, इंटर-डिपेंडेंस का। और मेरे हिसाब
से न तो कोई व्यक्ति पूर्ण रूप से स्वतंत्र है इस अस्तित्व में; हो भी नहीं सकता, क्योंकि तुम अकेले नहीं हो सकते। और न कोई पूर्ण रूप से परतंत्र है इस जगत में, क्योंकि वह भी संभव नहीं है। न तो पूरी परतंत्रता संभव है, न पूरी स्वतंत्रता संभव है; अस्तित्व का स्वभाव परस्पर-तंत्रता है, इंटर-डिपेंडेंस है। सब चीजें एक-दूसरे पर निर्भर हैं।
इसलिए परम ज्ञानी परस्पर-तंत्रता में जीता है। न तो वह परतंत्र होता है, न वह स्वतंत्र होता है। क्योंकि स्वतंत्रता भी अहंकार की घोषणा है और परतंत्रता भी अहंकार का बंधन है। जहां निरहंकार फलित होता है, वहां दिखाई पड़ता है, सभी चीजें जुड़ी हैं, एक-दूसरे सेशृंखला में बंधी हैं। कुछ भी अलग नहीं है। कोई आदमी अलग खंड नहीं है, भूखंड अलग नहीं है। सब जुड़ा है।
तुम चांद-तारों से जुड़े हो। तुम अपने आस-पास मनुष्यों से जुड़े हो, पक्षियों से जुड़े हो, पौधों से जुड़े हो, पत्थरों से जुड़े हो। तुम्हें लगी चोट, और सारे अस्तित्व में झंकार होता। तुम नाचते हो प्रसन्नता से, पूरा अस्तित्व तुम्हारे साथ प्रसन्न होता है।
अखंड है, एक है, तो कैसी स्वतंत्रता और कैसी परतंत्रता? अद्वैत अगर है,
तो स्वतंत्रता भी झूठी बात है; क्योंकि स्वतंत्रता का कोई अर्थ ही नहीं, जब दूसरा है ही नहीं, जो परतंत्र कर सके। और अगर एक ही है, तो कैसी परतंत्रता? किसकी परतंत्रता? उस एक पर ही अगर तुमने ध्यान दिया, तो तुम्हें मेरी बात समझ में आ जाएगी।
तो मैं कहता हूं कि ये बांसुरियां अलग-अलग होंगी--कृष्ण की, बुद्ध की, महावीर की, कृष्णमूर्ति की, मेहरबाबा की--मगर संगीत एक है। बांसुरियों पर बहुत ध्यान मत दो। इनके राग भी भिन्न-भिन्न हैं, इनके ढंग भी भिन्न-भिन्न हैं। तुम सिर्फ संगीत पर ध्यान दो। संगीत एक का ही है।
संगीत एक है, अगर यह तुम्हें दिखाई पड़ने लगे, तो तुम सब जगह से समृद्ध होकर लौटोगे। बड़ी संपदा तुम्हारे लिए राह देख रही है। सब खजाने तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। तुम सभी खजानों के मालिक हो सकते हो।
इसलिए मैं तुम्हें नहीं रोकता। मैं तुम्हें बढ़ावा देता हूं कि तुम जाओ, जहां तुम्हें कोई दीया जला हुआ मिले, उसके निकट बैठो। उस रोशनी से थोड़ा संग करो। सत्संग का वही अर्थ है। उस रोशनी को थोड़ा पीओ। उस रोशनी से थोड़े भरो। और डरो मत। वह क्या कहता है, इसकी भी फिक्र मत करो। वह उसका ढंग है कहने का। तुम चिंता ही मत करो।
तुम तो सिर्फ एक बात ख्याल रखो कि घाट अलग-अलग, गंगा एक है। तुम सभी घाटों से अपनी प्यास को बुझा लो। और जितने-जितने तुम घाटों पर जाओगे, उतनी- उतनी तुम्हें समझ आएगी कि घाट का कोई सवाल नहीं है, सवाल गंगा का है। इसलिए बुद्ध एक घाट हैं। हमने तो पुराने दिनों में उनको जो नाम दिया है, वही साफ है। जैन अपने बुद्धों को तीर्थंकर कहते हैं। तीर्थ का अर्थ होता है, घाट। तीर्थंकर का अर्थ होता है, घाट बनाने वाला।
गंगा एक है, घाट अनेक हैं, घाट बनाने वाले अनेक हैं। यह तीर्थंकर शब्द बड़ा मधुर है। यह खूबी पैगंबर शब्द में नहीं है और न अवतार शब्द में है, जो तीर्थंकर शब्द में है। इसका मतलब है, सिर्फ घाट बनाने वाले हैं महावीर, बुद्ध, कृष्ण, क्राइस्ट। गंगा बहुत बड़ी है, पूरी गंगा पर तो कोई घाट नहीं बना सकता।
मेरी चेष्टा है कि तुम्हें बहुत घाट दिखा दिए जाएं। क्यों? क्योंकि बहुत घाटों को देखकर ही तुम्हें समझ में आएगा कि गंगा एक है, घाट अलग हैं। घाटों के ढंग से कुछ फर्क नहीं पड़ता। कहीं संगमरमर का घाट है और कहीं संगेमूसा का। बड़े विपरीत हैं। एक काले पत्थर का है, एक सफेद पत्थर का; एक

कृष्णमूर्ति, एक मेहरबाबा! घाट पर नजर जाएगी, तो बड़े फर्क हैं; लेकिन अगर गंगा पर नजर गई जो घाटों के पास से बह रही है... ।
और गंगा का क्या लेना है घाट से? घाट न हो तो भी गंगा बहती है, गैर-घाट
भी बहती है, बिना घाट भी बहती है, घाट पर भी बहती है। अमीर के घाट से भी बहती है, गरीब के घाट से भी बहती है। मरघट के पास भी उसके नाद में कोई फर्क नहीं पड़ता और बस्ती के पास भी कोई फर्क नहीं पड़ता।
तुम्हें गंगा दिखाई पड़ जाए एक की, इसलिए सब पर बोलता हूं। और कठिनाई खड़ी होती है तुम्हें, क्योंकि जब मैं कृष्ण पर बोलता हूं, तो कृष्ण के घाट की चर्चा में ऐसा लीन हो जाता हूं कि मैं खुद ही भूल जाता हूं कि और घाट भी हैं। तो जो कृष्ण को मानने वाला है, बड़ा आह्लादित होता है कि यही तो हम मानते थे।
जल्दी मत करो; थोड़ा धैर्य रखो! क्योंकि जब मैं अष्टावक्र पर बोलूंगा,
तो इस तरह कृष्ण को भूल जाऊंगा, जैसे वह घाट ही नहीं है। तब अष्टावक्र का घाट ही मेरे लिए सब कुछ हो जाएगा।
और यही मेरी मान्यता है। क्षण-क्षण जीने की कला यही है कि तुम जिस क्षण को जीयो, उसे पूरी तरह जीयो। इसलिए तुम्हें मेरे वचनों में विरोधाभास दिखाई पड़ेंगे। कभी मैं कहता हूं कि महावीर का कोई मुकाबला नहीं, तो तुम सोचते हो, बात खतम हो गई। और तब मैं कहता हूं, कृष्ण का कोई मुकाबला नहीं; तुम कहते हो, यह तो अड़चन हो गई। पहले कहा, महावीर का कोई मुकाबला नहीं, अद्वितीय हैं; फिर कहते हैं, कृष्ण का कोई मुकाबला नहीं, अद्वितीय हैं!
और जब मैं कृष्ण से भरा हूं, अगर तुमने महावीर की बात छेड़ी, तो महावीर मुझे तुलना में कुछ भी न जंचेंगे। और जब मैं महावीर से भरा हूं, तब तुम कृष्ण की बात ही मत उठाना, नहीं तो नाहक कृष्ण की उपेक्षा होगी। जिस क्षण में मैं जो बोल रहा हूं, उसके साथ मेरा पूरा तादात्म्य है। उस क्षण वही घाट सब कुछ है; सारे घाट भूल गए, उतनी ही गंगा सब कुछ है। लेकिन यह तुम्हें तीर्थयात्रा करा रहा हूं।
तीर्थयात्री निकलते हैं। स्वामी अखंडानंद एक यात्रा लेकर निकलते हैं, स्पेशल ट्रेन, उसमें वे सभी तीर्थों की यात्रा कराते हैं। मैं भी निकला हूं तुम्हें तीर्थयात्रा पर लेकर। वे तीर्थ बहुत दृश्य के तीर्थ नहीं हैं, अदृश्य के तीर्थ हैं। वे ही असली तीर्थ हैं। वहां कोई स्पेशल ट्रेन नहीं जा सकती। वहां तो एक विशेष मनोदशा और भाव-दशा जाती है। उसको ही पैदा करने की कोशिश में लगा हूं।

दूसरा प्रश्नः आपने कहा है कि मांगो तो क्षुद्र मिलता है। पर हम तो भगवान मांगते हैं। क्या भगवान मांगने से भी क्षुद्र ही मिलेगा?

मांगोगे तो क्षुद्र ही मिलेगा, क्योंकि मांग का अर्थ ही क्षुद्र है। भगवान भी मांगो, तो भगवान के कारण क्षुद्र नहीं, तुम्हारी मांग के कारण वह भी क्षुद्र हो जाता है।
मांग क्षुद्र करती है। बिना मांगे जो मिले, वह संपदा; मांगकर जो मिले,
वह उच्छिष्ट! बिना मांगे जो मिले, वह विराट; भिक्षापात्र फैलाकर जो मिले, वह कैसे विराट होगा? वह तुम्हारे भिक्षापात्र में ही है। सीमा विराट के लिए नहीं है। मांग भिक्षापात्र है। मांगना यानी भिखारी होना।
तुमने अगर भगवान को भी मांगा, मांगोगे तो तुम! तुम्हारी मांग तो तुम्हारे ही जीवन से ओत-प्रोत होगी।
थोड़ा सोचो इसे। क्योंकि ऊपर से ऐसा लगता है कि भगवान को मांगा, यह कोई छोटी मांग तो नहीं। लेकिन तुम बाजार में खड़े धन मांग रहे थे, फिर किसी स्त्री के सामने हाथ जोड़कर शरीर मांग रहे थे, फिर किसी पद वाले व्यक्ति के सामने सुरक्षा मांग रहे थे; ऐसी तुमने हजारों मांगें की हैं हजार-हजार ढंग से। इन सब मांगों ने तुम्हें बनाया है। और इन सब मांगों ने तुम्हारी मांग को बनाया है, तुम्हारे मांगने का ढंग बनाया है, तुम्हारा भिक्षापात्र निर्मित किया है। अब अचानक तुम्हें भगवान का ख्याल आया।

क्यों ख्याल आता है तुम्हें भगवान का? भगवान का इसीलिए ख्याल आता है
कि ये मांगें पूरी नहीं हो पाईं। पूरी हो जातीं, तो शायद तुम भगवान की बात ही न उठाते। सुख में कौन स्मरण करता है भगवान का? दुख में लोग स्मरण करते हैं, विफलता में, विषाद में।
तुमने मांगा बहुत, मिला कुछ भी नहीं; दिनभर भिक्षापात्र लिए खड़े रहे, जन्मों भर खड़े रहे, सांझ आए तो ठीकरे! इतने ही ठीकरे पड़ते हैं भिक्षापात्र में कि तुम कल भी जिंदा रह सकते हो और मांग सकते हो, बस। मांगने लायक जिंदगी बाकी बच जाती है; इतना मांगने से मिल जाता है कि कल भी तुम घिसटोगे, कल फिर भिक्षापात्र फैलाओगे, फिर मांगोगे।
तुम्हारी निरंतर मांग ने क्षुद्र की, तुम्हारी मांग पर भी अपनी छाप छोड़ दी है। अचानक तुम खड़े हो गए, परमात्मा को मांगने लगे! तुम तो वही हो! तुम्हारा मन वही है! तुम्हारा अनुभव वही है!
और परमात्मा का तुम्हें पता ही क्या है? परमात्मा तुम्हारे लिए, अगर ठीक से तुम विचार करो, तो तुम्हारी सब मांगों का जोड़ है। तुम्हें ऐसा ख्याल है कि शायद परमात्मा के मिलने से सब मिल जाए जो मांगने से नहीं मिला, धन मिल जाए, पद मिल जाए।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, ध्यान करेंगे तो व्यवसाय में सफलता मिलेगी कि नहीं? आदमी की मूढ़ता की कोई सीमा नहीं मालूम पड़ती! अब ध्यान करने से व्यवसाय की सफलता का क्या लेना-देना है! बीमारी जाएगी कि नहीं?
एक सज्जन ने मुझसे पूछा कि ध्यान करेंगे तो चिंता मिटेगी कि नहीं? मैंने कहा, चिंता जरूर मिटेगी; लेकिन पहले तुम मुझे बता दो कि चिंता क्या है?
उन्होंने कहा कि मुझ पर एक मुकदमा चल रहा है।
मुकदमा थोड़े ही हट जाएगा ध्यान करने से! हां, तुम चिंतित न रहोगे इतने; मुकदमा चलता रहेगा, तुम निश्चिंत रहोगे, यह मैं तुमसे कह सकता हूं। लेकिन वे बोले, मुकदमा चलता रहे, तो कोई आदमी निश्चिंत कैसे रह सकता है? व्यवसाय में सफलता मिलेगी कि नहीं? व्यवसाय में तो सफलता नहीं मिल सकती; लेकिन असफलता भी मिले तो तुम्हें असफलता न लगेगी, यह ध्यान से मिल सकता है। पत्नी बीमार है, बचेगी कि मरेगी? नहीं, ध्यान से कुछ लेना-देना नहीं है। ध्यान कोई दवाई नहीं है तुम्हारी पत्नी के लिए। हां, इतना पक्का है कि बचे तो ठीक, न बचे तो भी ठीक, ऐसी दशा मिल जाएगी।
तुम जब ध्यान करने आते हो, तब भी तुम्हारे ध्यान के नीचे पर्त दर पर्त मांगें छिपी हैं। तुम जब परमात्मा भी मांगते हो, तो परमात्मा समूहवाची नाम है तुम्हारी सब वासनाओं का! भगवान का क्या अर्थ है अगर तुमसे हम पूछें? भगवान के ढक्कन को जरा उठाओ, तो नीचे तुम पाओगे, धन! क्योंकि ज्ञानियों ने कहा, परम धन परमात्मा है। पद! क्योंकि ज्ञानियों ने कहा, परम पद परमात्मा है। ऐश्वर्य! क्योंकि भगवान का नाम ही ईश्वर इसीलिए है, ऐश्वर्य वाला!
किन पागलों ने ईश्वर नाम दिया है भगवान को, पता नहीं। वह ऐश्वर्य से बना हुआ शब्द है। वह तुम्हारी मांग की खबर दे रहा है कि तुम चाहते क्या हो? ईश्वर को थोड़े ही चाहते हो; तुम तो ऐश्वर्य चाहते हो। और तुमने नाम में भी छिपा रखा है।
पूछो भक्तों से, तथाकथित भगवान के मानने वालों से, कि क्या? तो वैकुंठ, परम सुख, आनंद ही आनंद!
तुम सपने देख रहे हो। तुम सत्य नहीं मांग रहे हो। तुम्हारे सत्य में
भी सपने ही छिपे हुए हैं। तुम संसार से हारे नहीं हो अभी। तुम्हारा परमात्मा भी तुम्हारे संसार का आखिरी पड़ाव है।
तो मैं तुमसे कहता हूं, तुम जब तक मांगोगे, जो भी मांगोगे क्षुद्र होगा। तुम परमात्मा मांगोगे तो क्षुद्र होगा, तुम मोक्ष मांगोगे तो क्षुद्र होगा, तुम समाधि मांगोगे तो क्षुद्र होगी। तुम्हारे मांगने से हर चीज क्षुद्र हो जाएगी, क्योंकि तुम क्षुद्र हो। और मांग क्षुद्र है, तो फिर कैसे विराट होगी? क्या ऐसी भी कोई मांग हो सकती है, जो विराट हो जाए?

नहीं, मांग तो विराट नहीं हो सकती। थोड़ा सोचो! तुम कोई ऐसी मांग सोच सकते हो, जिसकी कोई सीमा न हो? तो वह मांग ही न रह जाएगी। असीम को कैसे मांगोगे? सीमित मांगी जा सकती है बात। असीम तो शब्द में भी नहीं समाएगा, भाव में भी नहीं समाएगा। असीम में तो तुम समा जाओगे, असीम थोड़े ही तुममें समाएगा। तो तुम कैसे विराट को मांगोगे?
मांग ही क्षुद्र कर देती है। जो मांगा, क्षुद्र हुआ। मांगना मत। इसलिए परम ज्ञानी क्या कहते हैं? वे कहते हैं, अचाह परमात्मा को पाने का उपाय है। निर्वासना, न मांगना। राजी हो जाना, जो है, उससे; मांग छोड़ देना। तृप्ति, संतोष; ऐसा परितोष कि जो है, वह काफी है, काफी से ज्यादा है, मांग कुछ भी नहीं है। तत्क्षण तुम पाओगे, विराट तुममें उतरने लगा; बिन मांगे! मांगने से खो जाता है। बिना मांगे मिलता है। इस गणित को तुम खूब याद
रख लो।
अगर तुम्हें परमात्मा नहीं मिल रहा है, तो तुम्हारी मांग ही बाधा बनी है। छोड़ो मांगना! बात ही शोभा नहीं देती। परमात्मा को, और मांगना? परमात्मा का मिलना तो सम्राटों से होता है, भिखारियों से नहीं होता। तुम सम्राट बनो थोड़ा।
और मजा ऐसा है कि तुम्हारे सम्राट भी भिखारी हैं, तो तुम तो सम्राट कैसे बनो? थोड़े मालिक बनो। थोड़ा धन्यवाद देना सीखो, मांगना कम करो। थोड़ा अनुग्रह से भरो, मांग क्षीण करो। थोड़ा उसके प्रसाद को, जो मिला है, उसको अनुभव करो, ताकि तुम अहोभाव से कह सको कि मेरी योग्यता से ज्यादा तूने मुझे दिया; धन्यवाद!
मैंने सुना है, सूफी फकीर बायजीद के जीवन में उल्लेख है कि बायजीद प्रार्थना करता रहा, पूजा करता रहा, स्मरण करता रहा; लेकिन उसने कभी मांगा नहीं। कहते हैं, परमात्मा मुश्किल में पड़ गया। क्योंकि जो मांगे न, अब इसके साथ क्या करो! और परमात्मा तक को बेचैनी लगने लगी। कहानी बड़ी मीठी है। परमात्मा को बेचैनी लगने लगी कि इस बायजीद के साथ क्या करो! इसका कोई निपटारा करना पड़े। नहीं तो वह ऋणी हुआ जा रहा है। यह आदमी ध्यान करता है, पूजा करता है, प्रार्थना करता है; मांगता कभी भी नहीं। कुछ मांगा ही नहीं कि इसको दे दो और छुटकारा हो।
तो कहते हैं, देवता भेजे। कहानी है, प्रतीक है। और देवताओं ने बायजीद
को कहा कि परमात्मा बड़ा प्रसन्न है, तुम कुछ मांग लो। उसने कहा, अब और मांगने को क्या बचा? जब वह प्रसन्न है, तो सब मिल गया। कह देना, धन्यवाद! देवताओं ने कहा, इतने सस्ते में हम न जाएंगे। क्योंकि तुमने अड़चन खड़ी
कर दी है। तुम उसे बेचैन किए दे रहे हो; कुछ मांग लो, तो निपटारा हो जाए। तुम्हारी प्रार्थनाएं उसके सिर पर घूम रही हैं। तुम्हारा ध्यान उसके चारों तरफ वर्तुल मार रहा है। और तुम किए जा रहे हो, किए जा रहे हो; मांगते तुम कुछ नहीं, तो काम कैसे समाप्त हो!
बायजीद ने कहा, जब वह प्रसन्न है, तो और अब क्या चाहिए? और अगर उसको मेरे न मांगने से बेचैनी हो रही है, तो एक बात मांगे लेता हूं। देवता प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा कि बस, क्या है, जल्दी कहो। उसने कहा, एक ही बात मांगनी है कि कभी कुछ मांगूं न।
उसने हरा दिया परमात्मा को। एक वरदान, कि कोई चाह कभी न आए! कभी भिखारी होकर उसके द्वार पर न आऊं! कभी मांगूं न! जिस दिन तुम न मांगोगे, उस दिन परमात्मा देने को व्याकुल हो जाता है।
और तुमसे मैं कहता हूं कि यह परमात्मा और तुम्हारे बीच का संबंध ही नहीं है, सारे जीवन का संबंध यही है। जिससे भी तुम मांगोगे, वही डर जाता है। पत्नी पति से प्रेम मांगती है; पति डर जाता है, देने में कंजूस हो जाता है; देता है, तो परेशानी से देता है। पति पत्नी से प्रेम मांगता है; बस, कुछ बात सिकुड़ जाती है।
कुछ जीवन-चेतना का लक्षण ऐसा है कि जब भी कोई कुछ मांगता है, तो सिकुड़न पैदा हो जाती है। और जब कोई नहीं मांगता, तो देने का फैलाव आता है।
तो जब पत्नी नहीं मांगती, देने का मन होता है। जब पति नहीं मांगता, देने का मन होता है। जब मित्र नहीं मांगता, देने का मन होता है। क्योंकि तब तुम देने में मालिक होते हो। और जब कोई मांगता है, तब तुम्हें ऐसा लगता है,

तुम्हारा शोषण किया जा रहा है, छीना जा रहा है, तुम्हारे ऊपर जबरदस्ती की जा रही है।
जीवन-चेतना का लक्षण यही है कि जब अचाह होती है, तब तुम्हारे द्वार पर वर्षा हो जाती है। और जब तुम चाह से भरे होते हो, तब सब द्वार बंद हो जाते हैं।
नहीं, परमात्मा को तो भूलकर मत मांगना। वह मांग ही तुम्हारे और उसके बीच दीवार है। तुम उसके पास ऐसे जाना, मांगने नहीं, धन्यवाद देने; जो उसने दिया ही हुआ है, उसके लिए अनुग्रह का भाव प्रकट करने।
मंदिर की प्रार्थनाएं तुम्हारी मांगें न हों, तुम्हारे धन्यवाद हों।

आखिरी प्रश्नः आपने कहा कि स्वयं पर संदेह श्रद्धा पर ले जाता है, तो बताएं कि श्रद्धा पर संदेह कहां ले जाएगा?

कुछ बातें समझें।
एक, संदेह साधारणतः संदेह पर संदेह नहीं करता; कर ले, तो संदेह मर जाता है। संदेह की पूर्णता तभी है, जब संदेह पर संदेह आ जाए। तभी तुम ढंग के विचारक हो; तभी तुममें कोई प्रतिभा है। सब चीजों पर संदेह करो और संदेह पर संदेह न करो, तो तुम्हारे विचार की पूर्णता नहीं है; तुम शिखर तक नहीं पहुंचे; तुम्हारा संदेह अधूरा है; तुम्हारी नास्तिकता प्रगाढ़ नहीं है। जब तुम संदेह करते-करते उस क्षण में आ जाओगे कि तुम्हें संदेह उठेगा संदेह पर, कि मैं जिसकी मानकर अब तक चल रहा हूं, वह मानने योग्य भी है? जिसके पीछे मैं चल रहा हूं छाया की तरह, वह चलने योग्य भी है? वह मुझे कहीं ले जाएगा? संदेह को मैंने गुरु बनाया है, वह गुरु बनने योग्य है? जिस दिन तुम संदेह पर संदिग्ध हो गए, उसी दिन संदेह की मृत्यु हो जाती है। संदेह की मृत्यु पर श्रद्धा का जन्म होता है। फिर एक नई यात्रा शुरू होती है।
तुम परमात्मा पर श्रद्धा करोगे, गुरु पर श्रद्धा करोगे, शास्त्र पर श्रद्धा करोगे; लेकिन यह श्रद्धा वैसी ही अधूरी है, जैसे संदेह पहले अधूरा था। श्रद्धा तो तभी पूरी होती है, जब न परमात्मा पर, न गुरु पर, न शास्त्र पर, वरन श्रद्धा पर ही श्रद्धा आ जाती है, तब श्रद्धा पूरी होती है।
संदेह पर संदेह आ जाए, संदेह पूरा हो जाता है और संदेह समाप्त हो जाता है। जब श्रद्धा पर श्रद्धा आ जाती है, तो श्रद्धा पूरी हो जाती है और श्रद्धा भी समाप्त हो जाती है।
संदेह में रहोगे, तो नास्तिक; श्रद्धा में रहोगे, तो आस्तिक; और जब संदेह और श्रद्धा दोनों के पार हो जाते हो, तब न तुम नास्तिक, न आस्तिक, तभी धर्म का जन्म हुआ, तब तुम धार्मिक! धार्मिक व्यक्ति द्वंद्व के पार है। श्रद्धा और संदेह का संघर्ष तो द्वंद्व है।
तो ध्यान रखना, जो संदेह करता है, उसमें भी थोड़ी श्रद्धा होती है; श्रद्धा संदेह पर होती है। और जो श्रद्धा करता है, उसमें भी थोड़ा संदेह होता है; संदेह अश्रद्धा पर होता है। संदेह करने वाले की श्रद्धा होती है संदेह पर, श्रद्धा करने वाले की श्रद्धा होती है अश्रद्धा के विपरीत, संदेह के विपरीत; लेकिन दूसरा मौजूद रहता है थोड़े परिमाण में। जब हम कहते हैं, फलां आदमी श्रद्धालु है, तो इसका मतलब है, अभी कहीं न कहीं कोने में संदेह भी छिपा होगा। नहीं तो श्रद्धा का क्या अर्थ?
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, हमारी दृढ़ श्रद्धा है। मैं कहता हूं, दृढ़ क्यों कहते हो? क्या श्रद्धा कहना काफी नहीं है? दृढ़ क्यों कह रहे हो? दृढ़ का मतलब है कि भीतर संदेह छिपा है, उसको दृढ़ से दबा रहे हो। नहीं तो श्रद्धा काफी है।
जब कोई कहे कि मेरा प्रेम बहुत दृढ़ है, तब खतरा है। प्रेम पर्याप्त है। प्रेम में कमी क्या रही? और दृढ़ क्या कर रहे हो उसको? प्रेम काफी नहीं था; भीतर घृणा छिपी है, दृढ़ता से उसको दबा रहे हो।
आस्तिक में नास्तिक छिपा रहता है थोड़ी मात्रा में। नास्तिक में आस्तिक छिपा रहता है थोड़ी मात्रा में। जब दोनों विदा हो जाते हैं, तब परम धर्म का जन्म होता है।

तो पहले संदेह पर संदेह करो, ताकि नास्तिक मरे। फिर श्रद्धा पर श्रद्धा करना, ताकि आस्तिक भी मर जाए। और जहां न संदेह बचा, न श्रद्धा बची, वहां अकेले तुम बचे। तुम यानी सब। तुम यानी सर्वस्व। तुम यानी सर्व अस्तित्व। फिर वहां कोई मन न रहा।
ध्यान रखना, संदेह में भी मन मौजूद रहता है, श्रद्धा में भी मौजूद रहता है। संदेह में समझो कि शीर्षासन करता है, श्रद्धा में पैर के बल खड़ा हो जाता है, बाकी मन जाता नहीं। जब दोनों चले जाते हैं, तभी मन जाता है। जहां तक द्वंद्व है, वहां तक मन है। जहां अद्वंद्व पैदा होता है, वहीं मन से छुटकारा होता है।
मन से मुक्ति मोक्ष है। मन से मुक्ति परमात्मा की उपलब्धि है। और इसलिए फिर दोहराता हूं, मन ही मांग है। जब तक मांग है, तब तक परमात्मा न मिलेगा।
मन गया, मांग गई, चाह गई। परमात्मा मिला ही हुआ है। ऐसा नहीं कि मिलता है। जब चाह गिर जाती है, अचानक तुम जागते हो कि वह सदा से भीतर मौजूद था। वह मंदिर में बैठा ही था; तुम कहां-कहां भटकते थे! तुम कहां-कहां खोजते थे! सिर्फ अपने भीतर छोड़कर, तुमने सारी पृथ्वी छान डाली, चांद-तारे छान डाले। एक जगह छोड़ गए थे। जिस दिन मन समाप्त होता है, उसी जगह प्रवेश होता है। तुम अपने भीतर के आकाश में आते हो। जिसे तुम खोजते थे, वह कभी खोया ही न था। वह तो सदा से वहां था। वह सदा से ही मौजूद है।

अब हम सूत्र को लें।
हे अर्जुन! दान देना ही कर्तव्य है, ऐसे भाव से जो दान देश, काल और पात्र के प्राप्त होने पर प्रत्युपकार न करने वाले के लिए दिया जाता है, वह दान सात्विक।
और जो दान क्लेशपूर्वक तथा प्रत्युपकार के प्रयोजन से अथवा फल को उद्देश्य रखकर दिया जाता, वह दान राजस।
और जो दान बिना सत्कार किए अथवा तिरस्कारपूर्वक अयोग्य देश, काल में कुपात्रों को दिया जाता है, वह तामस कहा गया है।
कृष्ण तीनों गुणों को जीवन की सब विधाओं में समझाने की कोशिश कर रहे हैं।
दान देना कर्तव्य है... ।
कर्तव्य शब्द को थोड़ा समझना चाहिए। क्योंकि जो अर्थ कृष्ण के समय में कर्तव्य का होता था, अब वह अर्थ रहा नहीं, विकृत हो गया है। शब्द पर बड़ी धूल जम गई है। शब्द खराब हो गया है।
तुम तो कर्तव्य तभी कहते हो किसी चीज को, जब तुम करना नहीं चाहते और करना पड़ता है। जैसे कि बाप बीमार है और तुम पैर दबा रहे हो; और तुम मित्रों से कहते हो, कर्तव्य है। तुम यह कह रहे हो कि करना तो नहीं था, लेकिन लोक-लाज करवाती है। तुम्हारे मन में कर्तव्य का अर्थ ही यह हो गया है कि जो जबरदस्ती करना पड़ता है।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, दुकान करनी पड़ रही है। अब कोई मन नहीं रहा, लेकिन बच्चे हैं छोटे, कर्तव्य है। बच्चे पैदा किए, कोई प्रेम नहीं मालूम पड़ता। बच्चों को बड़ा करना है, इसमें कोई अहोभाव नहीं मालूम पड़ता। बच्चों को शिक्षा देनी है, उनको जीवन की दिशाओं में यात्रा पर भेजना है, इसमें कोई रस नहीं मालूम पड़ता। कर्तव्य है! जैसे बच्चे खुद जबरदस्ती घर में घुस गए हों। जैसे बच्चों ने खुद ही आकर कब्जा कर लिया हो और घोषणा कर दी हो कि हम तुम्हारे बच्चे हैं; अब तुम दुकान करो और कर्तव्य करो! कर्तव्य शब्द की गरिमा खो गई। कृष्ण के समय में कर्तव्य शब्द बड़ा दूसरा अर्थ रखता था। कर्तव्य का अर्थ यह नहीं था कि जो नहीं करने की इच्छा है, और करना पड़ता है। नहीं, कर्तव्य का अर्थ था--बड़ा सात्विक भाव था उसमें छिपा--वह अर्थ था, जो करने योग्य है, जो ही करने योग्य है, जिसके अतिरिक्त करने योग्य कुछ भी नहीं है।
तुम पिता के पैर दबा रहे हो... ।

महाराष्ट्र में विठोबा की कथा है कि एक भक्त... । महाराष्ट्र में ही कृष्ण का नाम विठोबा है। विठोबा यानी कृष्ण। पर कैसे विठोबा हो गए कृष्ण! एक भक्त अपनी मां के पैर दबा रहा था। और कृष्ण उस पर बड़े प्रसन्न थे। वे आकर पीछे खड़े हो गए। और यह भक्त वर्षों से रोता था, विरहलीन रहता था, गीत गाता था, नाचता था। और इससे मिलने आ गए। और उन्होंने कहा कि देख, तू क्या उस तरफ मुंह किए हुए है? मैं तेरा भगवान, जिसकी तूने इतने दिन पूजा- प्रार्थना-अर्चना की, धूप-दीप जलाए। मैं मौजूद हूं! लौट, मेरी तरफ देख। उस भक्त ने कहा, अभी--एक ईंट पास में पड़ी थी, पीछे सरका दी और कहा--इस पर बैठ रहो। इसलिए विठोबा! बिठा दिया ईंट पर। इस पर बैठ रहो, अभी मैं मां के पैर दबा रहा हूं। तुम ठीक वक्त नहीं आए।
भगवान को जिसने छोड़ दिया मां के पैर दबाने के लिए, तब कर्तव्य! जो करने योग्य है! अभी भगवान भी बीच में आ जाए, तो कोई अर्थ नहीं रखता।
कहा, बेवक्त आए! समय से आना। और अगर रुकना ही हो, तुम्हारी मरजी है। यह ईंट है, बैठ रहो।
किसी भक्त ने कृष्ण को ऐसा नहीं बिठाया। इसलिए पंढरपुर के विठोबा का मंदिर अनूठा है। उसका कोई सानी नहीं। बहुत मंदिर हैं, जहां भगवान अपनी ही मरजी से खड़े हैं; यहां भक्त की मरजी से बैठे हैं! और ईंट पर बैठे हैं; कुछ खास बड़ा सिंहासन नहीं है।
लेकिन जब तक उसने अपनी मां को सुला न दिया, जब उसकी मां सो गई--घंटों लगे होंगे--तभी उसने मुंह किया। लेकिन कृष्ण को वह बड़ा प्यारा हो गया। क्योंकि जहां ऐसा प्रेम है, वहीं तो प्रार्थना का फूल खिलता है।
कर्तव्य का अर्थ है, जो करने योग्य है। तुम्हारे लिए कर्तव्य का अर्थ है, जो करना नहीं चाहते, करने योग्य मालूम भी नहीं पड़ता; मगर क्या करें, संसार करवा रहा है! लोक-लाज है, मर्यादा है, नियम हैं, संस्कार है, करना पड़ेगा। तुम बेमन से जो करते हो, उसी को तुम कर्तव्य कहते हो।
कृष्ण जब कहते हैं कि सात्विक व्यक्ति के लिए दान देना कर्तव्य है, तो
वे यह कह रहे हैं कि वह देता है, क्योंकि देने से बड़ा और कुछ भी नहीं है। वह देता है, क्योंकि देने में ही उसका आनंद प्रगाढ़ होता है। देना अपने आप में आनंद है।
दान देना कर्तव्य है, ऐसे भाव से जो दान दे। देश, काल और पात्र के प्राप्त होने पर... ।
निश्चित ही, सात्विक व्यक्ति हमेशा इस बात को ध्यान में रखेगा कि वह
जो कर रहा है, उस करने के व्यापक परिणाम क्या होंगे? क्योंकि तुम तुम्हारा कृत्य जब करते हो, तुम तो चाहे समाप्त भी हो जाओगे कभी--हो ही जाओगे--लेकिन तुम्हारा कृत्य जीवित रहेगा अनंत-अनंत काल तक।
ऐसे ही जैसे किसी ने एक कंकड़ फेंक दिया झील में। वह तो झील में कंकड़ फेंककर चला गया, कंकड़ भी जाकर झील की तलहटी में बैठ गया; लेकिन जो लहरें उठीं, वे चलती जाती हैं, चलती जाती हैं। वह आदमी मर जाए, रास्ते में एक्सीडेंट हो जाए कार का; लेकिन वे लहरें चलती रहेंगी। वे लहरें तो दूर तटों तक जाएंगी, जहां तक फैलाव होगा झील का। और जीवन की झील का कहीं कोई तट है? कहीं कोई तट नहीं। इसका अर्थ है कि तुम जो भी कृत्य करोगे, वह शाश्वत है, उसकी तरंग चलती ही रहेगी।
तुमने एक आदमी को दान दिया। तुम समाप्त हो जाओगे; जिसे दान दिया, वह समाप्त हो जाएगा; लेकिन दान का कृत्य चलता ही रहेगा। तो इसका अर्थ यह हुआ कि सात्विक व्यक्ति सोचेगा, अत्यंत समाधिस्थ भाव से सोचेगा देश, काल और पात्र को। क्योंकि यह हो सकता है, तुम अपात्र को दान दे दो। दिया तो तुमने सही; लेकिन वह दान न रहा और अधर्म हो गया।
तुमने एक हत्यारे को दान दे दिया... ।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन अपने पड़ोस में एक दानी के घर गया।
और उसने कहा कि हालत बहुत खराब है और बच्चे भूखे मर रहे हैं; आज तो रोटी का भी इंतजाम नहीं, आटा भी नहीं खरीद सके, तो कुछ दान मिल जाए! तो उस आदमी ने कहा, जहां तक मैं समझता हूं, गांव में सर्कस आया है; और तुम जरूर ही, जो पैसे मैं तुम्हें दूंगा, उससे सर्कस देखोगे। उसने कहा, नहीं, आप उसकी फिक्र ही

मत करो, उसके लिए तो हमने पैसे पहले ही बचा रखे हैं। सर्कस की तो कोई चिंता ही न करो आप।
तुम अगर एक आदमी को दान देते हो, और वह हत्यारा है और उससे जाकर बंदूक खरीदकर दस आदमियों को मार डालता है, तो क्या तुम सोचते हो कि तुम्हारा इसमें हाथ नहीं?
जानकर तो नहीं है, अनजाने तो हाथ है। और यह संभव था कि तुम अगर थोड़े सात्विक होते, तो इस आदमी की चित्त-दशा को पहचान पाते। जब यह तुमसे मांगने आया था, तब भी यह हत्यारा था, छिपा हत्यारा था, बीज में छिपी थी हत्या। तुममें अगर जरा-सी भी समझ होती, जितनी माली में होती है समझ, तो वह देख लेता है कि इस बीज में कौन-सा वृक्ष छिपा है, कड़वा वृक्ष छिपा है कि मीठा। तुम अगर सात्विक होते हो, तो दूसरे लोग तुम्हारे सामने दर्पण की तरह साफ हो जाते हैं।
इसलिए सात्विक व्यक्ति को कृष्ण कहते हैं, देश, काल और पात्र के प्राप्त होने पर ही वह देता है... ।
हर किसी को नहीं बांटता फिरता। वह भैंस के सामने बैठकर बीन नहीं बजाता। क्योंकि भैंस क्या करेगी? भैंस पड़ी पगुराय! तुम बीन बजाते रहो, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता भैंस को। वह सुअरों के सामने मोती नहीं फेंकता, क्योंकि वे व्यर्थ चले जाएंगे। वह हंस की खोज करता है। हंसा तो मोती चुगे! लेकिन सात्विक व्यक्ति ही यह खोज कर सकता है कि किसको देना, कब देना। क्योंकि यह भी जरूरी नहीं है कि जो आदमी सुबह ठीक है, वह सांझ ठीक हो; या जो आदमी एक दिन ठीक है, वह दूसरे दिन ठीक हो।
तो देश, काल... ।
और जो आदमी यहां ठीक है, वह वहां ठीक न हो! जो इस गांव में ठीक है, वह दूसरे गांव में ठीक न हो! क्योंकि आदमी का होना तो परिस्थिति पर निर्भर है, जब तक कि आदमी जाग न जाए। और बुद्ध तो तुम्हें मिलते नहीं हैं, जिनको तुम दान दोगे। तो तुम्हारा दान एक कृत्य है, जिसके परिणाम अनंत काल तक गूंजते रहेंगे।
तो सोचकर, होशपूर्वक देना। सिर्फ देना काफी नहीं है; देखकर देना, समझकर देना। देश, काल, पात्र को पूरा जब तुम देख लो, कि यह तुम्हारा कृत्य सदा के लिए शुभ रहेगा, तुम्हारा यह कृत्य सदा के लिए शुभ के फल लाएगा, फूल लाएगा, तो ही देना।
और प्रत्युपकार न करने वाले के लिए दिया जाता है... ।
क्योंकि दान का अर्थ ही है कि सौदा नहीं। उसी को देता है सात्विक व्यक्ति, जिससे लेने की कोई आकांक्षा नहीं। नहीं तो वह दान न रहा। अगर तुमने कुछ भी प्रत्युत्तर मांगा, तो वह सौदा हो गया। तुमने अगर धन्यवाद भी मांगा, तो वह सौदा हो गया। इसलिए गहरा दानी ऐसे देता है कि किसी को पता न चले।
मैंने सुना है कि एक गांव में अज्ञात दान की वर्ष में एक घड़ी आती थी, जहां गांव के सारे लोग अज्ञात दान करते थे, अनानिमस, कोई नाम नहीं लेता था। एक पेटी रखी रहती थी। पेटी के पास एक रजिस्टर रखा रहता था। लोग पेटी में दान डाल देते, रजिस्टर में संख्या लिख देते, और लिख देते, अज्ञात व्यक्ति द्वारा, अनानिमस।
मुल्ला नसरुद्दीन भी उस गांव में था और दान देने गया। किसी ने हजार दिए थे, किसी ने पांच हजार दिए थे, किसी ने दस हजार दिए थे। उसने भी पांच रुपए दिए। उसने डाल दिए पांच रुपए पेटी में। जिन्होंने पांच हजार दिए थे, उन्होंने भी छोटे-छोटे अक्षरों में लिखा था; उसने पांच रुपया इतने बड़े अक्षरों में लिखा कि पचास हजार भी देता, तो उतनी जगह में लिखे जा सकते थे। पांच रुपया! फिर उसने लिखा, मुल्ला नसरुद्दीन, इकतीस नंबर का मकान, फलां- फलां मोहल्ला, सब पता-ठिकाना, और नीचे बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा, अनानिमस, अज्ञात व्यक्ति के द्वारा।
आदमी दिखाना चाहता है। धन्यवाद पाना चाहता है। दो पैसा देता है, तो हजार गुना करके बताना चाहता है। उसकी चर्चा करता है, उसकी बात उठाता है।
उसका प्रचार करता है कि मैंने इतना दान दे दिया।

अगर जरा-सी भी आकांक्षा प्रत्युत्तर की है कि कोई धन्यवाद दे, कोई कहे, वाह! वाह! खूब किया! बड़ी ऊंची बात की! तो कृष्ण कहते हैं, दान सात्विक न रहा; सात्विक की कोटि से नीचे गिर गया। फिर वह राजस हो गया।
जो दान क्लेशपूर्वक तथा प्रत्युपकार के प्रयोजन से अथवा फल को उद्देश्य में रखकर दिया गया, वह दान राजस है।
और जब तुम कुछ प्रत्युत्तर चाहते हो, तो तुम दान आनंदभाव से देते ही नहीं। क्योंकि तुम्हारा आनंद तो तब होगा, जब फल मिलेगा, जब उत्तर आएगा। तो देने में तो तुम क्लेशपूर्वक ही दोगे, क्योंकि फल का क्या पक्का पता है? तुम दे रहे हो, यह आदमी लौटाएगा, इसका कुछ पक्का पता है? इसका कोई पक्का पता नहीं है। इसलिए क्लेश रहेगा कि दे तो रहे हैं, लौटेगा कि नहीं? कहीं व्यर्थ तो न चला जाएगा?
क्लेश रहेगा। और फल को उद्देश्य में रखकर दिया जाएगा, तो सौदा हो गया, दान न रहा। तुम खो ही दिए वह अदभुत क्षण, जो शुद्ध दान का है, जो सिर्फ कर्तव्य से किया जाता है।
और जो दान बिना सत्कार किए... ।
लेकिन राजस व्यक्ति कम से कम सत्कार करेगा देने वाले का। क्यों? क्योंकि पीछे उससे उत्तर पाना है। भीतर चाहे कितना ही क्लेश से भरा हो, ऊपर मुस्कुराकर देगा, ताकि इस आदमी को क्लेश की खबर न मिल जाए। यह तो यही समझे कि बड़े आनंद से दिया गया है, ताकि इतने ही आनंद से यह वापस भी कर सके। जो दान बिना सत्कार के अथवा तिरस्कारपूर्वक... ।
फिर कुछ दानी ऐसे भी हैं, जो न तो सत्कार करते, न सत्कार से कोई प्रयोजन है उनका; वस्तुतः दान देकर वे अपमान करते हैं, तिरस्कार करते हैं। दान देने का उनका मजा ही यह है कि हमारा हाथ ऊपर और तुम्हारा हाथ नीचे! दान देने का मजा ही यह है कि देखो, हम दान देने की स्थिति में हैं और तुम दान लेने की स्थिति में!
एक मेरे परिचित हैं, बड़े धनी हैं। मध्य प्रदेश में उनसे बड़ा कोई धनी नहीं। उन्होंने मुझसे कहा कि मैं जीवनभर से दान दे रहा हूं, अपने सब सगे- संबंधियों को मैंने बड़ा अमीर बना दिया; जो मेरे पास आया, उसको मैंने दिया; लेकिन लोग मुझसे खुश नहीं हैं। और जो एक दफा मुझसे ले लेता है, वह फिर मुझसे दूर हट जाता है। नमस्कार करने तक से लोग बचते हैं। क्या कारण है? मैंने कहा, कारण बिल्कुल साफ है। देते वक्त तिरस्कार रहा होगा। तो ले
तो लिया है उस आदमी ने मजबूरी में, लेकिन वह तुम्हें क्षमा नहीं कर सकता। अब यह बड़े मजे की बात है कि जिसको तुम दान देते हो, वह भी तुम्हें क्षमा नहीं कर पाएगा, अगर तिरस्कार रहा। क्योंकि दान तो दो दिन में चुक जाएगा, लेकिन तिरस्कार सदा बना रहेगा। तो मैंने कहा, वे आपसे बचते हैं, डरते हैं।
फिर मैंने उनसे पूछा कि एक बात मैं पूछता हूं; कभी आप उनको भी कोई मौका देते हैं कि वे आपकी थोड़ी सहायता कर सकें? वे कहते हैं, जरूरत ही नहीं। तो फिर, मैंने कहा, बहुत कठिन है। उनको आप कोई मौका नहीं देते कि वे आपकी थोड़ी सहायता करने का मजा ले सकें और आप उनको दान दिए जाते हैं, आप दबाए जाते हैं, उनकी छाती पर पत्थर की तरह चढ़ते जाते हैं। मजबूरी है तो आपसे दान लेना पड़ता है; लेकिन अगर मौका लगे तो वे आपको गोली मार दें।
उनको भी थोड़ा मौका दो। कभी-कभार, छोटा-मोटा, कि तुम बीमार पड़े हो, किसी
को बुला लो, ताकि तुम्हारे पास बैठकर सांत्वना प्रकट कर सके। उसमें भी उसको राहत मिलेगी कि हमने भी कुछ दिया। नहीं धन दे सकते, कोई बात नहीं, गरीब हैं; लेकिन सांत्वना दी। जब तुम मर रहे थे, तब हम ही ने तुमको सांत्वना दी और बचाया! उसको थोड़ा मौका दो कोई छोटे-मोटे काम का, जो जरूरी भी न हो; लेकिन उसे सिर्फ यह एहसास दो कि उसने भी तुम्हारे लिए कुछ किया। कभी उसे भी ऊपर होने का मौका दो, तो वह तुम्हें क्षमा कर पाएगा, अन्यथा क्षमा न कर पाएगा।
जो दान बिना सत्कार किए अथवा तिरस्कारपूर्वक दिया जाता... ।
स्वभावतः, तामसी दान न तो देश का विचार कर सकता है, न काल का, न पात्र का। वह दान दान ही नहीं है, नाम-मात्र को दान है। तामसी व्यक्ति खोज भी

कैसे सकता है, कौन है पात्र? अभी खुद की पात्रता नहीं। तुम दूसरे को वहीं तक पहचान सकते हो, जहां तक तुम्हारी जीवन-ऊर्जा का विकास हुआ है।
अक्सर तामसी व्यक्ति तामसी को खोज लेगा दान देने के लिए, क्योंकि समान समान में बड़ा तालमेल है। तामसी व्यक्ति किसी ऐसे आदमी को दान देगा, जो उस दान से नुकसान ही करेगा, लाभ नहीं पहुंचा सकेगा। वह खोजेगा अपने जैसों को। और हमेशा ऐसे समय में देगा, जब कि योग्य न तो काल था, न स्थान था, न पात्र था। और फिर सोचेगा कि कोई धन्यवाद तक नहीं देता!
तामसी धन्यवाद देना जानते ही नहीं। धन्यवाद तो सिर्फ सात्विक देना जानते हैं। लेकिन सात्विक को खोजना कठिन बात है।
बुद्ध ने कहा है, ध्यानी को, संन्यासी को, सात्विक को अगर तुम खोज लो भोजन देने के लिए, तो तुम धन्यभागी हो। तुम्हारा अहोभाग्य है। तुम्हारा पूरा जीवन सार्थक हुआ।
बुद्ध के पचास हजार भिक्षु थे। सुबह से कतार लग जाती थी लोगों की, निमंत्रण देने वालों की। और भिक्षु जहां जाता, वहीं उसका सम्मान था। भिखारी नहीं था भिक्षु।
इसलिए हमने अलग शब्द उसके लिए गढ़ा है। भिखारी नहीं है वह; वह हमसे कहीं ज्यादा बड़ा सम्राट है। वह ज्यादा सात्विक है। उसके जीवन की सारी ऊर्जा शांति और ध्यान और मोक्ष की तलाश में लगी है। उसने अपने को सब भांति मौन किया है। उसके उठने, चलने में सब तरफ सत्व का आभास है। वह तुम्हारे घर भोजन ले ले, तो तुम धन्यभागी हो। इसलिए भिक्षु धन्यवाद नहीं देता था; धन्यवाद तुम देते थे कि तुमने भोजन लिया, हम धन्यभागी!
इसलिए दान, जब तक दक्षिणा न दी जाए, तो पूरा नहीं है। आए तुम, स्वीकार किया हमारा भोजन, हम अपात्र को मौका दिया कि हम सुपात्र को कुछ दे सकें, ऐसी घड़ी हमारे जीवन में आ सकी कि जो करने योग्य था, हम कर सके, ऐसा अवसर तुमने जुटाया, उसके लिए दक्षिणा है।
सात्विक दान सात्विक पात्र की खोज, सात्विक क्षण की खोज, सात्विक स्थान की खोज से होगा; प्रत्युत्तर की बिना आकांक्षा के, चुपचाप होगा; देने वाला जैसे है ही नहीं। और देने वाला अनुगृहीत होगा कि तुमने लिया, स्वीकार किया; तुम इनकार भी कर सकते थे। वह दान के बाद दक्षिणा भी देगा। राजस दान क्लेशपूर्वक दिया जाएगा, आकांक्षापूर्वक, कि उत्तर ज्यादा आना चाहिए; पांच दे रहा हूं, तो दस लौटने चाहिए।
गंगा के किनारे मैं बैठा था एक कुंभ के मेले में। और एक पंडित वहां कुछ लोगों को समझा रहा था कि अगर तुम यहां एक पैसा दान करोगे, तो एक करोड़ गुना तुम्हें स्वर्ग में मिलेगा। लोग कर भी रहे थे एक पैसा, दो पैसा दान, एक करोड़ गुने की आकांक्षा में!
धंधा भी कुछ छोटा नहीं कर रहे हैं वे। जुआरी भी इतने जुआरी नहीं हैं।
वे भी एक पैसा लगाकर एक करोड़ गुना नहीं पाने की आकांक्षा रखते। सटोरिए भी क्या सटोरिए होंगे, जैसे स्वर्ग के सटोरिए हैं! दे रहे हैं एक पैसा, दो पैसा, करोड़ गुने की आकांक्षा कर रहे हैं। यह दान है? एक पैसा देकर भी कलपेंगे, तड़फेंगे, वह स्वर्ग कब आएगा, जब एक करोड़ पा लेंगे? तब इनको शांति मिलेगी!
ऐसा स्वर्ग कभी नहीं आता। स्वर्ग तो उसके ही पास है, जो देता है और मांगता नहीं। ये तो नरक में गिरेंगे। और जितना क्लेश इन्होंने एक पैसा देकर पाया है, उससे एक करोड़ गुना पाएंगे। क्लेश क्लेश बढ़ाएगा। आनंद आनंद बढ़ाता है। तुम जो बनते जाते हो, उसी के और होने की संभावना बढ़ती जाती है। जीसस का बड़ा अनूठा वचन है, जिनके पास है, उन्हें और दिया जाएगा; और जिनके पास नहीं है, उनसे वह भी छीन लिया जाएगा।
अगर तुम आनंदित हो, तो और आनंद मिलेगा। अगर तुम दुखी हो, और दुखी हो जाओगे; आनंद थोड़ा-बहुत होगा, वह भी छीन लिया जाएगा। जीवन का गणित जीसस के वचन में पूरी तरह है।
और फिर तामस दान है, जो दान नहीं है; जो सिर्फ अपमान के लिए दिया जाता है, जो अहंकार की तृप्ति के लिए दिया जाता है। वह निश्चित ही कुपात्रों के हाथ में पड़ेगा और उसके दुष्परिणाम होंगे।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग आठ
गीता दर्शन अध्याय 17
दसवां प्रवचन

क्रांति की कीमियाः स्वीकार

ओम तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा।। 23।।
तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम्।। 24।।
तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञतपःक्रियाः।
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्तेमोक्षकांक्षिभिः।। 25।।
और हे अर्जुन, ओम तत सत्, ऐसे यह तीन प्रकार का सच्चिदानंदघन ब्रह्म
का नाम कहा है, उसी से सृष्टि के आदि काल में ब्राह्मण और वेद तथा यज्ञादिक रचे गए हैं।
इसलिए ब्रह्मवादिन पुरुषों की शास्त्र-विधि से नियत की हुई यज्ञ, दान
और तप-रूप क्रियाएं सदा ओम, ऐसे इस परमात्मा के नाम को उच्चारण करके ही आरंभ होती हैं।
और तत अर्थात तत नाम से कहे जाने वाले परमात्मा का ही यह सब है, इस भाव
से फल को न चाहकर नाना प्रकार की यज्ञ, तप-रूप क्रियाएं तथा दान-रूप क्रियाएं मोक्ष की इच्छा वाले पुरुषों द्वारा की जाती हैं।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः क्या क्षण-क्षण जीने से परस्पर-तंत्रता का बोध शुरू होता है?

क्षण-क्षण जीने का अर्थ है, अतीत से मुक्त होकर जीना, भविष्य से भी मुक्त होकर जीना; जैसे न तो कोई अतीत था, न कोई भविष्य है। बस, यही क्षण सब कुछ है। इस क्षण के न तो पीछे की तरफ मन जाए, न आगे की तरफ; इस क्षण में ही जागकर जीए; इस क्षण से ज्यादा कुछ भी नहीं है; यही क्षण सारा आकाश, यही क्षण सारा जीवन। तो निश्चित ही परस्पर-तंत्रता का बोध होगा। क्योंकि अतीत जहां नहीं है, वहां अहंकार के खड़े होने का उपाय नहीं।
अतीत का जोड़ ही तो अहंकार है, जो तुम्हें तोड़ता है, जो तुम्हें कहता है, तुम अलग हो। और जहां भविष्य नहीं, कामना नहीं, आकांक्षा नहीं, जहां कोई दौड़ नहीं, कोई महत्वाकांक्षा नहीं, वहां तुम चाहो सपने में भी, तो भी तो अहंकार को खड़ा नहीं कर सकते।
तो अहंकार दो सहारों पर खड़ा है, उसकी दो टांगें हैं। एक तो है अतीत, जो तुम थे, जो तुमने किया, जो हुआ। उस सब का संग्रह है तुम्हारी स्मृति; वह एक पैर। और एक, जो तुम होना चाहते हो, जो तुम्हारी योजना है होने की, जो तुम चाहोगे कि हो--भविष्य, कल्पना, सपना--वह दूसरा पैर है अहंकार का।
वर्तमान में तो अहंकार को खड़े होने की जगह भी नहीं है। वर्तमान तो इतना भरा है जीवन से कि वहां अहंकार कहां पैर जमा पाएगा! वर्तमान तो इतना प्रकाशित है जीवन से कि वहां अहंकार के अंधेरे के लिए जगह खोजनी मुश्किल है।
और वर्तमान की गली कितनी संकरी है, एक पल! पल का भी लाखवां हिस्सा तुम्हारे हाथ में पड़ता है। जब वह चला जाता है, तब दूसरा हिस्सा हाथ में आता है। अगर तुम उस पल में जीने की कला सीख जाओ। सारे धर्म वही सिखाते हैं। इसलिए अचाह।
कृष्ण कहते हैं, चाहो मत, मांगो मत। क्योंकि मांग और चाह भविष्य को पैदा करती है। इसलिए अकर्ता भाव। क्योंकि तुमने क्या किया अतीत में, तुम कौन हो, तुम्हारा तादात्म्य फिर अहंकार को पैदा करता है। ऐसे ही तो तुम च्युत हो जाते हो इस क्षण से, जो मौजूद है अपनी विराटता में।
जैसे ही अहंकार नहीं होता, वैसे ही तुम्हें पता चलता है, तुम अलग और पृथक नहीं हो, जुड़े हो; जीवन एक संयुक्त घटना है। दूसरा तुम से कितना ही

भिन्न मालूम होता हो, उसी सागर की लहर है, जिसकी लहर तुम हो। तुम छोटी लहर हो या बड़ी लहर हो, दूसरा छोटी लहर है या बड़ी लहर है, तुम पूरब की तरफ जा रहे हो, दूसरी लहर पश्चिम की तरफ जा रही है, कोई फर्क नहीं पड़ता। सब एक ही सागर का खेल है।
वर्तमान के क्षण में जागे हुए व्यक्ति को मैं तो दिखाई नहीं पड़ता; यह विराट एक ही दिखाई पड़ता है। उस एक को ही हम ब्रह्म कहते हैं।
ब्रह्म का अर्थ है, जिसका विस्तार है, जो फैला हुआ है, जो सब में विस्तीर्ण है, जो सब में फैला है। पत्थर-पहाड़ से लेकर परम चैतन्य की घटना तक जिस एक का ही विस्तार है। क्षुद्र में भी, विराट में भी, सब में जो मौजूद है।
उस एक के दिखाई पड़ते ही अहंकार तो मिट जाता है। तो कौन होगा स्वतंत्र, कौन होगा परतंत्र! इसलिए एक अनूठी अनुभूति पैदा होती है, परस्पर-तंत्रता, इंटर-डिपेंडेंस।
यह शब्द भी ठीक नहीं है, क्योंकि इस शब्द को भी हमें उन्हीं दो शब्दों
के आधार पर बनाना पड़ रहा है, जो गलत हो गए हैं। लेकिन इससे थोड़ा एहसास होगा कि क्या मतलब है।
परस्पर-तंत्रता का इतना ही अर्थ है कि सब जुड़ा हुआ है, खंड-खंड नहीं है, सब अखंड है। दो नहीं है, अनेक नहीं है, एक है। नाम-रूप के भेद हैं; वस्तुतः कोई भी भेद नहीं है। परिधि पर भेद है, भीतर केंद्र पर कोई भेद नहीं है, अभेद है।
क्या इससे यह अर्थ हुआ कि तुम्हारी निजता मिट जाएगी? यहीं धर्म का सबसे बड़ा विरोधाभास, सबसे बड़ा पैराडाक्स है।
जब तक तुम अहंकार से भरे हो, तुम्हारी निजता पैदा ही नहीं होती। जब अहंकार शून्य हो जाता है, तब तुम्हारी निजता पैदा होती है। लेकिन यह निजता अस्मिता नहीं है। यह निजता बड़ी अनूठी है। इस निजता में मेरे होने का कोई भी भाव नहीं है। है तो वही, लेकिन एक खास ढंग से मुझ में है। और एक खास ढंग से तुम में है। और एक खास ढंग से वृक्ष में है। और एक और खास ढंग से आकाश में है। सब ढंग उसके हैं। लेकिन ढंगों में भेद है और हर ढंग अद्वितीय है, हर ढंग बेजोड़ है।
ब्रह्म पुनरुक्ति जानता ही नहीं। उसने वही गीत की कड़ी फिर कभी नहीं गुनगुनाई, जो एक दफा गुनगुना ली। वह एक-सी दो शक्लें पैदा नहीं करता; एक से दो पत्ते नहीं बनाता; एक से दो कंकड़ नहीं बनाता।
सब बेजोड़ है, हर चीज अद्वितीय है। निजता का अर्थ है, यह अद्वितीयता। लेकिन यह अद्वितीयता तुम्हारी नहीं है। अगर तुम्हारी है, तो अहंकार है। यह अद्वितीयता ब्रह्म की है; उसकी है। इसलिए तुम्हारा इसमें क्या लेना- देना!
अब यही समझ लेने जैसा है, निजता तुम्हारी नहीं है। क्योंकि निजता शब्द से तो ऐसा लगता है कि तुम्हारी। तुम से प्रकट हो रही है, तुम्हारी बांसुरी से गाया जा रहा है यह गीत; लेकिन गीत तुम्हारा नहीं है। यद्यपि किसी दूसरी बांसुरी से यह गीत नहीं गाया जा सकता, यह भी सच है। इसलिए तुम्हारा भी इसमें कुछ है--बांसुरी का ढंग।
यह बांस की जो पोंगरी है, यह तुम्हारी है। लेकिन इसमें गीत उसका है। इसलिए अहंकार का कोई प्रयोजन नहीं है। वह गीत बंद कर दे, बांसुरी समाप्त; बांस की पोंगरी पड़ी रह जाएगी। बांसुरी समाप्त; पोंगरी तो बांसुरी तभी होती है, जब उसका गीत बहता रहता है।
वही तुम से बह रहा है। बहने वाला एक है। कंठ अनेक हैं; वही गा रहा है। बांसुरियां बहुत हैं। कृष्ण के होंठ पर ही रखी हैं सब बांसुरियां। गाने वाला एक, पर गीत बड़े-बड़े अनेक भिन्न रूपों में पैदा हो रहा है। हर गीत की निजता है, खूबी है, अद्वितीयता है। पर उस अद्वितीयता में भी उसी का गुणगान है।
जब हम कहते हैं निजता, तो उस निजता में भी उसकी ही महिमा का स्मरण है, तुम्हारी महिमा का नहीं। अगर तुम्हें अपनी महिमा ख्याल आ गई, तो तुम टूट गए, तो तुम्हारा संबंध गीत से टूट गया; तुम बांस की पोंगरी रह गए। और तुमने

अगर यह अकड़ समझ ली कि यह गीत चूंकि किसी और से नहीं गाया जा सकता, क्योंकि ऐसी कोई बांसुरी नहीं है, इसलिए यह गीत मेरा है, तब तुम भटक गए।
अगर तुमने यह जाना कि खूबी बांस की पोंगरी की विशेषता में है, लेकिन
वह पोंगरी भी उसकी ही बनाई हुई है, वह पोंगरी भी उसी की और गीत गाने वाला भी वही; मैं बीच में कौन हूं? जिस दिन तुम अपने और परमात्मा के बीच से हट जाते हो, निजता का आविर्भाव होता है; तुम बड़े अद्वितीय हो जाते हो।
कहां खोजोगे बुद्ध जैसा पुरुष? कहां खोजोगे महावीर? कहां खोजोगे कृष्ण? कोई मुकाबला नहीं है। एकदम अनूठे हैं। कोई मार्ग नहीं है इन जैसा व्यक्ति दुबारा खोज लेने का। इसलिए तो सदियों तक हम इन्हें भूल नहीं पाते, क्योंकि अगर दूसरा कृष्ण पैदा हो जाता, तो पहले कृष्ण को हम कभी का भूल गए होते। क्या जरूरत थी? नए संस्करण को याद रखते, पुराने को भूल गए होते। लेकिन कोई दूसरा संस्करण पैदा ही नहीं होता। बस, पहला ही संस्करण है; वही आखिरी भी है। पुनरुक्ति होती नहीं, वही निजता है।
तुम दोहराए न जाओगे, यह निजता है; लेकिन तुम्हारी नहीं, यह भी ब्रह्म
की ही निजता है। बस, एंफेसिस, जोर का फर्क है। अगर कहा मेरी--चूक गए। अगर कहा उसकी--पा गए।
और ऐसी निजता स्वतंत्रता से भरी हुई है। इसलिए यह भी ध्यान रखना कि जब मैं कहता हूं परस्पर-तंत्रता, तो उसका मतलब तुम गुलामी मत समझ लेना, परतंत्रता मत समझ लेना। परस्पर-तंत्रता में सिर्फ स्वच्छंदता छूट जाती है, स्वतंत्रता नहीं। वस्तुतः तुम और स्वतंत्र हो जाते हो। क्योंकि जितने ही तुम नियम के करीब आते हो, उतनी ही स्वतंत्रता प्रकट होने लगती है। जितना ही तुम्हारा जीवन ब्रह्म से अनुशासित होता है, तुम उतना ही पाते हो, तुम मुक्त हो गए। इसलिए हम ब्रह्मज्ञानियों को मुक्त कहते हैं। कहने का क्या कारण है? क्या ब्रह्मज्ञानी मुक्त हो गया? अब उस पर कोई परतंत्रता न रही, कोई नियम न रहे?
नहीं, उलटी ही घटना घटी है। वह नियम के साथ इतना एकरूप हो गया कि अब नियम में और अपने में कोई फर्क न रहा। परतंत्र कौन करेगा?
तुम्हें परतंत्रता का पता चलता है, क्योंकि तुम नियम के विपरीत चलते हो। तुम रास्ते पर शराब पीकर चल रहे हो। आड़े-टेढ़े चलते हो; संतुलन खो गया है; गिर पड़ते हो; टांग टूट जाती है। तुम कहते हो, यह ग्रेविटेशन का नियम, यह जमीन में जो गुरुत्वाकर्षण है, इसने टांग तोड़ दी। न होता गुरुत्वाकर्षण, न हम गिरते।
ठीक है, अगर तुम चांद पर गिरो, तो टांग इतनी बुरी तरह से नहीं टूटेगी। अगर जमीन पर गिरो और आठ फ्रैक्चर होंगे, तो चांद पर एक होगा, क्योंकि गुरुत्वाकर्षण आठ गुना कम है। लेकिन ध्यान रखना, आठ गुनी ऊंची छलांग भी लगती है वहां।
तो मूढ़ चाहे जमीन पर हो, चाहे चांद पर, आठ ही फ्रैक्चर होंगे। क्योंकि वहां शराब पीकर वह आठ गुना ऊंची छलांग से चलने लगेगा। चांद पर तुम किसी के मकान पर सीधी छलांग लगाकर निकल सकते हो। क्योंकि चांद छोटा है, उसका खिंचाव कम है।
जमीन पर तुम गिरते हो, तो तुम्हारे कहने में सच्चाई है कि गुरुत्वाकर्षण ने टांग तोड़ दी। लेकिन कितने लोग चल रहे हैं बिना शराब पीए, गुरुत्वाकर्षण उनकी टांग नहीं तोड़ रहा है। और जो लोग सदा सम्हलकर और होश से चलते हैं, उनकी तो कभी नहीं टांग तोड़ता। उनको पता ही नहीं चलता कि जमीन में कोई दुश्मनी है।
जो व्यक्ति नियम के साथ एक हो जाता है, उसकी परतंत्रता समाप्त हो जाती है। क्योंकि परतंत्रता का पता ही चलता था इसलिए कि नियम के विपरीत तुम जाना चाहते थे, वहीं अड़चन आ जाती थी, वहीं सीमा आ जाती थी। तुम्हें लगता था, यह तो परतंत्रता है।
ज्ञानपूर्ण व्यक्ति जीवन के नियम के साथ एक हो जाता है, तब कोई परतंत्रता नहीं बचती। वह स्वयं ही नियम हो गया, अब कोई विपरीत बचा नहीं। वह परिपूर्ण स्वतंत्र हो जाता है।
यह बात तुम्हें विरोधाभासी लगेगी, अनुशासित व्यक्ति ही मुक्त होता है। जितना बड़ा अनुशासन होता है जीवन में, उतनी बड़ी मुक्ति होती है। और

जितना स्वच्छंद व्यक्ति होता है, उतना ही परतंत्र होता है। क्योंकि उतना ही नियम को तोड़ने जाता है।
नियम बहुत बड़ा है, तुमसे बड़ा है। तुम नहीं थे, तब भी था; तुम नहीं होओगे, तब भी होगा। नियम ही से तुम हो, उसकी ही एक तरंग। तुम नियम को कैसे तोड़ पाओगे? तुम ही टूटोगे। जब भी तुम पहाड़ से सिर टकराओगे, पहाड़ नहीं टूटेगा, तुम ही टूटोगे।
लेकिन सिर टकराने की जरूरत क्या थी? टकराकर तुम्हें अनुभव होगा कि यह
तो बात परतंत्रता की हो गई। आदमी स्वतंत्र नहीं है। क्योंकि हम सिर टकराते हैं पहाड़ से और सिर टूट जाता है।
आदमी बिल्कुल स्वतंत्र है। स्वतंत्रता को जरा और कहीं खोजो।
स्वतंत्रता इसमें है कि तुम चाहो तो सिर टकरा लो और चाहो तो मत टकराओ। वहां तुम्हारी स्वतंत्रता है। अगर तुम न टकराओ सिर, तो सिर न टूटेगा। पहाड़ आकर तुमसे नहीं टकरा सकता। इसे थोड़ा ख्याल रखो।
नियम आकर तुमसे कभी नहीं टकराता। तुम ही नियम के विपरीत जाकर टकराते हो। नियम तुम्हारा दुश्मन नहीं है। जब तुम नियम की दुश्मनी करते हो, तब तुम्हें फल भोगना पड़ता है।
सारे कर्म का सिद्धांत इस छोटी-सी बात पर खड़ा है कि नियम के विपरीत मत जाना, अन्यथा फल भोगना पड़ेगा। फिर तुम बच न सकोगे। और जो नियम के विपरीत नहीं जाते, उनका कर्मजाल समाप्त हो जाता है। वे नियम के अनुसार ही चलते हैं।
अब यह भी थोड़ा सोचो। जब मैं कहता हूं, नियम के अनुसार चलते हैं, तो हमारे मन में होता है कि यह तो परतंत्रता हो गई। नियम के अनुसार! हमें लगता है कि किसी की मानकर चलना पड़ रहा है, किसी नियम का बोझ ढोना पड़ रहा है; तो स्वतंत्रता कहां रही?
कठिनाई तुम्हारे अहंकार में है। तुम यह नहीं समझ पाते कि तुम भी नियम
की ही एक व्यवस्था हो। नियम तुम से भिन्न नहीं है। उसी ने तुम्हें पैदा किया है; उसी से तुम श्वास ले रहे हो; उसी से तुम जीवित हो, हृदय धड़क रहा है; उसी से तुम सोच रहे हो; मुझे सुन रहे हो; उसी से मैं बोल रहा हूं; उसी से तुम ध्यान करोगे; उसी से तुम शांत होओगे, मौन होओगे, समाधि को उपलब्ध होओगे। तुम नियम हो; तुम नियम का एक ढंग हो। नियम अगर तुम से भिन्न होता, तो परतंत्रता हो सकती थी; तुम ही नियम हो। यही तो अर्थ है, जब हम कहते हैं कि तुम ब्रह्म हो। कोई और अर्थ नहीं है।
इसलिए बुद्ध ने ब्रह्म शब्द को टाल ही दिया। कोई जरूरत न पाई। क्योंकि उन्होंने ब्रह्म की जगह धम्म शब्द का उपयोग कर लिया। धर्म का मतलब होता है, नियम।
लाओत्से ने धर्म का भी उपयोग नहीं किया। उसने ताओ का उपयोग किया। ताओ
का अर्थ होता है, नियम। जिसको वेदों ने ऋत कहा है। वह मधुरतम शब्द है परमात्मा के लिए। क्योंकि उसमें मनुष्य की कोई भी धारणा प्रविष्ट नहीं होती। ऋत!
साइंस उसी की तो खोज कर रही है, नियम की। और जैसे-जैसे साइंस खोज करती जाती है, वैसे-वैसे आदमी नियम से मुक्त होता जाता है। यह बड़े मजे की बात है।
हजारों साल तक आदमी ने सोचा, आकाश में उड़ें। नहीं उड़ सका। बड़ी परतंत्रता अनुभव हुई होगी! उड़ना चाहते हैं, नहीं उड़ सकते।
कितने सपने देखता है आदमी? तुम में शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो, जिसने आकाश में उड़ने का सपना न देखा हो। उसका अर्थ है कि मन में उड़ने की बड़ी आकांक्षा है। पुराने से पुराने सपने की खोजें की गई हैं। एक सपना सदा से आदमी को आता रहा है कि पंख लग गए, आकाश में उड़ रहा है। वह उड़ना स्वतंत्रता की आकांक्षा है।
लेकिन आदमी उड़ नहीं सका। उड़ा कब? जब हमने नियम समझ लिया। अब हम आकाश में उड़ रहे हैं, हवाई जहाज आकाश में उड़ रहे हैं, अंतरिक्ष यान चांद पर पहुंच रहे हैं। अब हमें लगता है, हम स्वतंत्र हैं उड़ने को।
लेकिन तुम्हारी स्वतंत्रता कैसे आई, इसका पता है? नियम को जानकर, नियम
के अनुसार चलने से। हमने कोई प्रकृति को जीत लिया है, इस ख्याल में मत

पड़ना। वैज्ञानिक कहे चले जाते हैं कि हमने प्रकृति को जीत लिया। गलत बात है। हमने सिर्फ प्रकृति के नियम को जाना और उसके अनुसार चल पड़े। प्रकृति ने ही हम को जीता है। प्रकृति को तुम कैसे जीतोगे? हमने सिर्फ जान लिया कि नियम यह है प्रकृति का। अब तक न जानते थे, तो न उड़ सकते थे। अब जान लिया और जानकर हम उसका अनुसरण कर रहे हैं जो प्रकृति का नियम है। अब हम उड़ सकते हैं; कोई अड़चन न रही।
इस बात की संभावना है--अभी तो केवल जो वैज्ञानिक उपन्यास लिखे जाते हैं, उनमें ये कथाएं हैं--लेकिन कभी इस बात की संभावना है कि यान की भी जरूरत न रह जाए। हम आदमी के शरीर में ही कुछ व्यवस्था खोज लें, जिससे व्यक्तिगत रूप से आदमी उड़ सके। उसके हाथ ही पंख का काम करें या उसके भीतर कोई प्रक्रिया हम खोज लें, जो जमीन के गुरुत्वाकर्षण को काट देती हो। इसकी संभावना है। योगियों ने सदा से कहा है कि उन्हें कभी-कभी अनुभव होते हैं जमीन के ऊपर उठ जाने के। और अब इसके वैज्ञानिक प्रमाण हैं कि कुछ लोग ध्यान की खास अवस्था में जमीन से ऊपर उठ जाते हैं।
यूरोप में एक महिला है, जिस पर हजारों प्रयोग किए गए हैं, जो चार फीट ऊपर उठ जाती है ध्यान की अवस्था में। और अब यह एक वैज्ञानिक सिद्ध बात हो गई कि कभी-कभी भाव की ऐसी शांत अवस्था होती है, जब शरीर बिल्कुल निर्भार हो जाता है।
तो अगर यह संभव है चार फीट, तो चार सौ फीट भी संभव है, चार हजार फीट भी संभव है। फिर तो गणित का विस्तार है। फिर इसकी जरा ठीक से खोज करने की जरूरत है कि कैसी भाव-दशा में गुरुत्वाकर्षण काम नहीं करता, कोई दूसरा आकर्षण काम करने लगता है।
जैसे जमीन खींचती है आदमी को, शायद एक और नियम है, जिसमें हम कहें कि आकाश खींचता है। होना ही चाहिए, क्योंकि नियम कभी अकेला नहीं होता; उससे विपरीत नियम भी होता है। तभी तो दोनों में तालमेल रहता है, नहीं तो तालमेल टूट जाए।
नदी दो किनारों से बहती है। अगर एक किनारे का पता चल गया, तो पक्का ही समझो, चाहे दूसरा दिखाई भी न पड़ता हो, धुंध में छिपा हो, होगा। कितने ही दूर हो, होगा। एक किनारे की कहीं नदी हो सकती है?
एक किनारा हमें ग्रेविटेशन का पता चल गया कि जमीन खींचती है। दूसरा किनारा भी है। तुम्हें भी अनुभव होता है, कभी जब तुम पानी में तैरते हो, तो हलके हो जाते हो। निश्चित, पानी पर कोई नियम काम कर रहा है आकाश का।
इसलिए अगर पानी में तुमसे भी बड़ा आदमी डूब रहा हो, तो तुम बचा सकते हो; क्योंकि वजन कम हो जाता है। इसलिए तैराने वाला किसी मोटे से मोटे आदमी को भी तैरना सिखा सकता है, दुबले से दुबला आदमी भी। क्योंकि वजन कम हो जाता है।
शायद जल आकाश के किसी नियम से अनुप्राणित है। आकाश ऊपर की तरफ खींच रहा है, जमीन नीचे की तरफ खींच रही है। जब तुम जमीन पर होते हो, तुम्हारा वजन बढ़ जाता है; पानी में कम हो जाता है। इसलिए तो पानी में तुम हलके लगते हो। इसलिए तो तैरने में इतना मजा आता है। वह मजा ध्यान का ही है। क्योंकि हलकापन हो जाता है। जैसे तुम उड़ सकते हो।
जरूर कोई नियम है आकाश का, जो ऊपर खींचता है। ध्यान की किसी घड़ियों में वह नियम काम करता है; किसी ठीक ट्यूनिंग में, जब तुम्हारा ध्यान उस अवस्था में आता है, जहां सूई मिल जाती है आकाश के नियम से।
निश्चित ही, आकाश का नियम पृथ्वी के नियम से बड़ा होगा; क्योंकि पृथ्वी बड़ी छोटी है, आकाश बहुत बड़ा है। अगर तुमने वह सूत्र खोज लिया, तो पृथ्वी के पार तुम हो जाते हो।
किसी न किसी दिन आदमी निजी रूप से भी उड़ सकेगा। आखिर पक्षी उड़ ही रहे हैं, बड़े-बड़े पक्षी उड़ रहे हैं, जिनका वजन आदमी के बराबर है। तुमने चीलों को आकाश में उड़ते देखा होगा, जब वे पंख भी नहीं हिलातीं, सिर्फ तिरती हैं। किसी नियम का अनुसरण चल रहा है।
विज्ञान जीतता नहीं प्रकृति को। विज्ञान केवल जानता है; जानकर अनुसरण करता है। अनुसरण में ही उसकी सारी शक्ति है। इसी अनुसरण का नाम योग है; इसी अनुसरण का नाम अनुशासन है, डिसिप्लिन है, साधना है।

साधना नियम के पार नहीं ले जाएगी; साधना केवल नियम को साफ कर देगी; तुम नियम के अनुकूल हो जाओगे। नियम से दुश्मनी टूट गई; अब तुम मालिक हो; अब तुम स्वतंत्र हो पहली दफा।
इसलिए मैं कहता हूं, यह उलटा दिखाई पड़ने वाला वचन बहुत महत्वपूर्ण है,
जब तुम परिपूर्ण रूप से नियम के अनुकूल होते हो, तभी तुम परिपूर्ण स्वतंत्र होते हो, तुम्हारी निजता पैदा होती है। अपनी ढपली पीटते-पीटते तुम रोज-रोज गुलाम ही होते जाओगे। स्वच्छंद होने की चेष्टा में तुम परतंत्र हो जाओगे। समर्पण स्वतंत्रता ले आता है।
इसलिए ज्ञानियों ने जो सबसे बड़ी स्वतंत्रता जानी है, वह समर्पण है। छोड़ दो अपने को चरणों में उसके, जिसका सब है। तुम अपने को मत ढोए फिरो।
अचानक सब बोझ खो जाता है। एक क्षण में क्रांति हो जाती है।
जागकर क्षण में जीने की जरूरत है, तुम्हें परस्पर-तंत्रता का बोध अनुभव होगा। सीमाएं टूट जाएंगी, पिघल जाएंगी। तुम कहां शुरू होते हो, कहां अंत होते हो, मिट जाएगा ख्याल।
न तुम कहीं शुरू होते, न कहीं तुम अंत होते। तुम्हारी शुरुआत वहीं है, जहां इस पूरे अस्तित्व की है। और तुम्हारा अंत भी वहीं है, जहां इस पूरे अस्तित्व का है। तुम्हारी और इस अस्तित्व की सीमाएं एक ही हैं, अगर कहीं कोई सीमाएं हैं। अन्यथा तुम उतने ही असीम हो, जितना यह अस्तित्व है।
इसको थोड़ा गणित की तरह भी समझ लो। दुनिया में दो तरह के गणित हैं। एक साधारण गणित है जिसे हम स्कूल में पढ़ते हैं, वह इस संसार में काम आता है। एक असाधारण गणित है; या तो बहुत पहुंचे हुए गणितज्ञ उसका अनुभव कर पाते हैं या ब्रह्मज्ञानियों को उसकी प्रतीति होती है। आइंस्टीन जैसे गणितज्ञ को उसका ख्याल आना शुरू हो जाता है। आस्पेंस्की जैसे गणितज्ञ को उसके सूत्र दिखाई पड़ने लगते हैं। और ब्रह्मज्ञानियों ने तो उसी गणित की बात की है, चाहे उनकी भाषा गणित की न हो। क्योंकि गणित का उनसे कोई परिचय नहीं है। उपनिषद में वचन है कि पूर्ण से हम पूर्ण को भी निकाल लें, तो भी पीछे पूर्ण ही शेष रह जाता है। यह उस परम गणित का सूत्र है। साधारण गणित में तो यह ठीक नहीं आता। क्योंकि अगर तुम किसी चीज में से कुछ भी निकाल लो, तो पीछे चीज उतनी ही शेष नहीं रह जाएगी, जितनी निकालने के पहले थी। उतना तो कम हो जाएगा, जितना निकाल लिया। और उपनिषद तो कहता है, अगर हम पूर्ण से पूर्ण भी निकाल लें, तो भी पूर्ण ही पीछे शेष रहता है। थोड़ा-बहुत नहीं, पूरा ही निकाल लें, तो भी पीछे उतना ही शेष रहता है।
यह तो किसी और गणित की बात है। यह उस गणित की बात है, जिससे असीमा का संबंध है, सीमित का नहीं।
पहली तो बात यह है कि पूर्ण से पूर्ण तुम निकाल न सकोगे। निकालकर कहां
ले जाओगे? रखोगे कहां निकालकर? और कहीं कोई जगह नहीं है।
कल्पना कर लो कि अगर निकाल लो पूर्ण से पूर्ण को, तो पूर्ण का अर्थ होता है, जो असीम है। असीम में से तुम कितना भी निकाल लो, असीम सीमित नहीं हो सकता। वह उसका स्वभाव नहीं है। इसलिए उसमें से घट न सकेगा।
सागर में से भी तुम एक बूंद निकालते हो, तो भी घट जाता है, क्योंकि सागर की सीमा है। लेकिन परमात्मा से तुम कुछ भी निकाल लो, घट नहीं सकता; क्योंकि उसकी सीमा नहीं है।
इस अस्तित्व की कोई सीमा नहीं है। पहले तो तुम निकाल ही न सकोगे, निकालकर ले कहां जाओगे? रखोगे कहां? और जगह कहां है? परमात्मा के अतिरिक्त और स्थान कहां है? लेकिन अगर निकाल लो, तो उपनिषद कहते हैं, तुम पूरा भी निकाल लो, तो भी पीछे पूरा ही शेष रहेगा। क्योंकि वह जो पीछे है, वह असीम है।
आस्पेंस्की ने दूसरा सूत्र अपनी एक बड़ी बहुमूल्य किताब टर्शियम आर्गानम में लिखा है कि साधारणतः किसी भी चीज का अगर हम कोई टुकड़ा निकालें, तो टुकड़ा पूरी चीज से छोटा होता है। होगा ही; यह साधारण गणित है। अगर मेरा हाथ तुम मुझसे निकाल लो, तो हाथ मुझसे बड़ा थोड़े ही हो सकता है, मुझसे छोटा ही होगा। हाथ मेरा अंग है। तुमने सागर से चुल्लूभर पानी ले लिया, तो चुल्लूभर पानी सागर से तो छोटा ही होगा।

आस्पेंस्की ने लिखा है कि उस बड़े गणित में खंड भी पूर्ण के बराबर होता है। तुम चुल्लूभर पानी निकाल लो, वह भी पूरे समुद्र के बराबर होता है।
यह बात जरा अजीब लगती है, तर्क के बाहर लगती है। लेकिन इसे थोड़ा समझ लेने जैसा है।
अगर यह पूरा अस्तित्व असीम है, तो इसका कोई भी खंड सीमित नहीं हो सकता। क्योंकि अगर खंड सीमित हो, तो कितने ही सीमित खंडों को जोड़ो, तो भी असीम नहीं बन सकता।
तुम करोड़ों ईंटें जोड़ते जाओ, लेकिन हर ईंट की सीमा है। तो तुम कितना
ही बड़ा भवन बना लो, हजार मंजिल का भवन बना लो, तो भी सीमित ही होगा। क्योंकि हर ईंट सीमित थी, दो सीमित मिलकर, तीन सीमित मिलकर, करोड़ सीमित मिलकर भी सीमित को ही बनाएंगे। सीमा बड़ी होती जाएगी, लेकिन असीमा नहीं हो सकती। अगर यह अस्तित्व असीम है, तो इसका हर खंड असीम होना चाहिए, नहीं तो कोई उपाय ही नहीं है इसके असीम होने का। इसका यह अर्थ हुआ कि यहां बूंद में भी सागर छिपा है। और एक छोटे-से कण में भी विराट छिपा है। और तुम में परमात्मा छिपा है। उतना ही पूरा का पूरा जितना पूरे में फैला है, इससे कम नहीं। क्योंकि अखंड अगर यह असीम है, तो इसका हर खंड असीम होना ही चाहिए, कोई दूसरा उपाय नहीं है।
इसलिए तुम्हारी सीमा वही है, जो परमात्मा की है, अगर उसकी कोई सीमा हो।
इसलिए हम परस्पर-तंत्रता को गहनतम खोज मानते हैं। उससे बड़ी कोई खोज नहीं है। उस खोज के लिए दो ही सूत्र ध्यान में रखने जरूरी हैं, एक तो सजगता और मौन। क्योंकि सजग तुम रहोगे, तो यहां और अभी जो मौजूद है, उसका तुम्हें अनुभव होगा। अगर मौन तुम रहोगे, तो ही तुम सजग रह सकोगे। नहीं तो विचार तुम्हें या तो अतीत में ले जाते हैं या भविष्य में।
एक बड़ी प्राचीन कथा है। शायद तुमने कभी पढ़ी हो। पढ़ी हो, तो भी तुम समझ
न पाए होओगे। क्योंकि वह कहानी इस ढंग से कही गई है कि उसे अज्ञानी पढ़ें, तो मनोरंजन समझें; ज्ञानी पढ़ें, तो जीवन का परम रहस्य बन जाए।
तुमने बैताल पचीसी का नाम सुना होगा। तुम कभी सोच भी नहीं सकते कि वह
भी कोई ज्ञानियों की बात हो सकती है, बैताल पचीसी। पर इस देश ने बड़े अनूठे प्रयोग किए हैं। इस देश ने ऐसी किताबें लिखी हैं, जिनको बहुत तलों पर पढ़ा जा सकता है, जिनमें पर्त दर पर्त अलग-अलग अर्थ हैं। जिनमें एक साथ दो, तीन, चार और पांच अर्थ दौड़ते रहते हैं। जैसे एक साथ पांच रास्ते चल रहे हों, पैरेलल, समानांतर।
तो जिसकी जो सुविधा हो। एक छोटा बच्चा भी बैताल पचीसी पढ़कर प्रसन्न होगा और परम ज्ञानी भी पढ़कर प्रसन्न होगा। खोजी को मार्ग मिल जाएगा, पहुंचे हुए को मंजिल की प्रत्यभिज्ञा होगी। जो नहीं खोजी है, नहीं पहुंचा हुआ है, उसके लिए सिर्फ चित्त का मनोरंजन होगा। वह भी क्या कम है! थोड़ी देर को मन बहलाव हो जाएगा।
बैताल पचीसी की पहली कथा है... । पच्चीसों ही कथाएं बड़ी अदभुत हैं, लेकिन पहली तुम से कहता हूं। पहली कथा है कि सम्राट विक्रमादित्य के दरबार में एक फकीर आया। सुबह का वक्त था। रिवाज के अनुसार लोग सम्राट को भेंट चढ़ाने सुबह-सुबह आते थे। उस फकीर ने भी एक जंगली-सा दिखाई पड़ने वाला फल सम्राट को भेंट किया। सम्राट थोड़ा मुस्कुराया भी। इस फल को भेंट करने के लिए इतने दूर आने की जरूरत भी क्या थी? लेकिन फकीर है, फकीर के पास कुछ और हो भी नहीं सकता, तो उसने स्वीकार कर लिया। पास में बैठे वजीर को वह देता जाता था, जो भी भेंट आती थी; उसने उसे दे दिया।
यह क्रम दस वर्षों तक चला। वह फकीर रोज सुबह आता। और रोज वही, उसी तरह
का फिर एक जंगली फल ले आता। दस वर्ष! और रोज सम्राट वजीर को फल दे देता। न तो उसने कभी पूछा, क्योंकि सुबह सैकड़ों भेंट देने वाले लोग थे। फुरसत भी न थी, समय भी न था। और इस फकीर से पूछने जैसा भी कुछ नहीं लगा।
पर एक दिन पास ही सम्राट का पाला हुआ बंदर भी बैठा हुआ था, और सम्राट
ने वजीर को फल न देकर बंदर को दे दिया। बंदर ने फल खाया और उसके मुंह से एक बहुत बड़ा हीरा, जो फल में छिपा था, नीचे गिर गया। सम्राट तो चौंका। इतना बड़ा हीरा तो उसने देखा भी नहीं था। वजीर से कहा कि बाकी फल कहां हैं?

वजीर ने भी यह सोचा था कि जंगली फल हैं। पर फिर भी उसने सोचा कि सम्राटों के पास सम्हलकर रहना पड़ता है, तो एक तलघरे में वह फेंकता जाता था। क्योंकि फलों का करोगे क्या? जंगली थे; खाने योग्य भी नहीं लगते थे।
स्वाद भी ठीक नहीं था।
तलघरा खोला गया। भयंकर बदबू से भरा था, क्योंकि सारे फल सड़ गए थे। लेकिन उन सड़े हुए फलों के बीच हीरे चमक रहे थे। ऐसे हीरे कभी सम्राट ने देखे नहीं थे।
फकीर को कहा कि यह क्या राज है? तुम क्या चाहते हो? किस लिए तुम दस साल
से यह भेंट ला रहे हो? और मैं कैसा अज्ञानी कि मैंने कभी देखा भी नहीं! मैंने समझा, जंगली फल है। उस फकीर ने कहा, होश न हो तो जिंदगी ऐसे ही चूक जाती है।
दूसरी समानांतर अर्थ की धारा शुरू होती है।
उस फकीर ने कहा, रोज ही जिंदगी लाती है। लेकिन जंगली फल समझकर तुम फेंकते चले जाते हो। और हर फल के भीतर हीरा छिपा है, जैसा तुमने कभी देखा नहीं। खैर, जो हुआ हुआ। अब पीछे की तरफ मत जाओ, अन्यथा फिर तुम चूक जाओगे।
और आगे की तरफ भी मत दौड़ो। क्योंकि मैं देखता हूं, सपने दौड़ रहे हैं।
क्योंकि इतने हीरे! दुनिया के तुम सबसे बड़े सम्राट हो गए। आगे भी मत जाओ, पीछे भी मत जाओ। मैं कुछ और तुमसे कहना चाहता हूं, वह सुन लो।
सम्राट सजग होकर बैठा, यह आदमी कोई साधारण नहीं है। अब तक समझे कि फकीर है।
जिंदगी साधारण नहीं है। और जिंदगी ने तुम्हें जो दिया है, वह बिल्कुल असाधारण है। लेकिन तुम्हें होश नहीं है। तुम हंसोगे कि दस साल तक यह आदमी क्यों बेहोश रहा? तुम कई जन्मों से हो। राजा वीर विक्रमादित्य तुम भी हो। हजारों साल से तुम ऐसे ही बैठे हो और जिंदगी रोज फल दिए जा रही है। हर पल, छिपा हुआ जीवन का हीरा तुम्हारे पास आता है।
अब यह कोई साधारण आदमी न था। राजा सम्हलकर बैठ गया। उसने कहा कि कहो, तुम्हारी एक-एक बात सुनने जैसी है। उसने कहा कि मैं दस वर्ष से आ रहा हूं इसी प्रतीक्षा में कि किसी दिन तुम जागोगे। क्योंकि मैं एक ऐसा आदमी चाहता हूं, जो वीर हो, वह तुम हो।
इसलिए विक्रमादित्य का नाम है, वीर विक्रमादित्य। सिर्फ दो आदमियों
को भारत ने वीर कहा है, एक महावीर को और एक विक्रमादित्य को।
निश्चित तुम वीर हो, इसमें कोई शक-शुबहा नहीं; लेकिन काफी नहीं है वीर होना। इसलिए मैं चाहता था कि जब तुम जाग जाओ वर्तमान के प्रति, तब मेरे काम के हो सकते हो। अब दोनों बातें घट गईं। अब तुम महावीर हो, होश और साहस। मैं एक बड़े महान तंत्र के कार्य में लगा हूं। उसमें मुझे एक ऐसे आदमी की जरूरत है, जो बहुत वीर हो, जिसे कोई चीज भयभीत न कर सके, और जो होशपूर्ण हो। अगर तुम तैयार हो, तो आज अमावस की रात है। तुम सांझ मरघट पर पहुंच जाओ। मैं तुम्हें वहीं मिलूंगा।
वह फकीर तो चला गया। सम्राट ने कई बार सोचा भी कि इस झंझट में पड़ना कि नहीं! लेकिन फिर यह तो कायरता होगी। और यह आदमी ऐसा है कि इसके साथ थोड़े दूर जाने जैसा है। पता नहीं जैसे हम जंगली फल को फेंकते रहे, पता नहीं मरघट में कौन से स्वर्ग का या मोक्ष का द्वार खुल जाए!
तो समझा-बुझाकर... । डर भी लगता था।
बहादुर से बहादुर आदमी भी डरता है। तुम यह मत सोचना कि सिर्फ कायर डरते हैं। डरते तो बहादुर भी हैं। फर्क क्या है बहादुर और कायर में? बहादुर डरता है, तो भी करता है। कायर डरता है, भाग खड़ा होता है। डरते दोनों ही हैं! डरने के संबंध में कोई फर्क नहीं है। क्योंकि जो डरे ही नहीं, वह तो बहादुर भी क्या उसको कहना! वह तो लोहे, लकड़ी, पत्थर का बना हुआ आदमी है। वह बहादुर भी नहीं है, जो डरे ही न। डर तो स्वाभाविक है। लेकिन बहादुर डर को किनारे पर रख देता है और घुस जाता है। और भयभीत डर को सिर पर रख लेता है, भाग खड़ा होता है।
खैर, आधी रात विक्रमादित्य पहुंच गया मरघट पर। बड़ा डर लगता था। बड़ी भयंकर रात थी। और साधारण रात नहीं मालूम होती थी। कभी मरघट आया भी नहीं था। महलों में ही सदा रहा था। मरघट सिर्फ शब्द ही था।

तुम भी कभी रात, अमावस की आधी रात मरघट जाओ, तब तुम्हें इस शब्द का अर्थ पता चलेगा। शब्दकोश में इसका अर्थ नहीं लिखा है।
मरघट एक बड़ी अनूठी घटना है। चारों तरफ रहस्य, भय, खतरा, भूत-प्रेत, चीख-पुकार। और वह तांत्रिक फकीर अपना मंडल रचकर बैठा है नग्न। खोपड़ियां! एक जिंदा लाश! लाश को काट रहा है। उसने सब इंतजाम अपना कर रखा है, जो उसे करना है।
सम्राट से उसने कहा, आ गए; ठीक। यहां से थोड़ी दूर, वह दूर दिखाई पड़ने वाला जो वृक्ष है, वहां एक लाश लटकी हुई है। तुम्हें उस लाश को वृक्ष से उतारकर ले आना है। लेकिन ध्यान रखना, सजग रहना और शांत रहना। क्योंकि जरा चूके, तो यह कृपाण की धार पर चलना है। जरा चूके कि गए। फिर मैं भी सहायता न कर सकूंगा।
धड़कती छाती से विक्रमादित्य उस वृक्ष के पास पहुंचा। वहां बड़ा भय लगने लगा उसे। क्योंकि वहां कोई भी न था। बिल्कुल अकेला था। और उस वट-वृक्ष में लाशें लटकी हुई थीं। एक नहीं, पच्चीस। बड़ी बदबू आ रही थी।
किसी तरह नाक को अवरुद्ध करके वृक्ष पर चढ़ा। हाथ-पैर कंप रहे थे। वृक्ष पर चढ़ना मुश्किल था। किसी तरह उस लाश की डोरी काटी। वह लाश जमीन पर धम्म से नीचे गिरी! न केवल गिरी, खिलखिलाकर हंसी! विक्रमादित्य के प्राण छूट गए होंगे। सोचा था, मुरदा है। यह तो जिंदा मालूम होता है। और जिंदा भी अजीब हालत में है। घबड़ाया हुआ नीचे आया और उससे पूछा, क्यों हंसे? क्या मामला है?
बस, इतना कहना था, कि लाश उड़ी, वापस जाकर वृक्ष से लटक गई। और लाश ने कहा कि शांत होना, तो ही तुम मुझे उस फकीर तक ले जा सकोगे। तुम बोले, चूक गए।
दोबारा लाश को काटकर नीचे लाया। बड़ा मुश्किल था चुप रहना। क्योंकि जब आदमी को भय लगता है, तब वह कुछ बोलना चाहता है। बोलने से भी थोड़ी राहत मिलती है। गीत गुनगुनाने लगता है, थोड़ी हिम्मत बढ़ती है। मंत्र पढ़ने लगता है; राम-राम जपने लगता है। कोई सहारा चाहिए। अब बोलना भी नहीं है, शांत भी रहना है। भयंकर सन्नाटा; और चारों तरफ मौत!
शायद आदमी इसीलिए अतीत की सोचता है, भविष्य की सोचता है, क्योंकि डरता है। वर्तमान के क्षण में जीवन भी है और मौत भी, दोनों। क्योंकि वर्तमान में ही तुम मरोगे और वर्तमान में ही जीते हो। न तो कोई भविष्य में मर सकता है और न भविष्य में जी सकता है।
तुम भविष्य में मर सकते हो? जब मरोगे, तब अभी और यहीं, वर्तमान के क्षण में मरोगे। आज मरोगे। कल तो कोई भी नहीं मरता। कल तो मरोगे कैसे? कल तो आता ही नहीं। जब मर नहीं सकते कल में, तो जीओगे कैसे? कल का कोई आगमन ही नहीं होता। कल है ही नहीं। जो है, वह अभी और यहां। बोले, कि चूक जाते हो। सोचे, कि चूक जाते हो।
बड़ा कसकर उसने अपने को रोका। आदमी बहादुर था। मुरदा नीचे फिर से काटकर गिराया। भयंकर खिलखिलाहट की आवाज आई। छाती कंप गई। नीचे उतरा। मुरदे को कंधे पर रखा। चलने लगा। मुरदे ने कहा कि सुनो, राह लंबी है, रात अंधेरी है, और तुम्हारा बोझ हलका करने के लिए एक कहानी कहता हूं। ऐसी पहली कहानी।
उसने कहा कि तीन युवक थे ब्राह्मण... ।
यह विक्रमादित्य सुनना भी नहीं चाहता था, पड़ना भी नहीं चाहता था चक्कर में। क्योंकि जब तुम सुनो, तो पता नहीं, बीच में बोल उठो। या कुछ हो जाए। या कम से कम सुनने में ही लग जाओ और जो तुमने सम्हाल रखा है अपने को, वह चूक जाए। क्षण में चूक सकती है बात। मगर इससे नहीं कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि नहीं कहते ही यह लाश उड़ जाएगी और फिर वृक्ष पर चढ़ना पड़ेगा। फिर काटो। तो वह चुप ही रहा। और वह मुरदा कहानी कहने लगा।
उसने कहा, एक गुरु के आश्रम में तीन युवक थे। तीनों ही गुरु की लड़की के प्रेम में पड़ गए... ।
कहानी में रस आने लगा। प्रेम की कहानी में किस को रस नहीं आता? विक्रमादित्य थोड़ा बेहोश होने लगा। सम्हाल रहा है, लेकिन उत्सुकता जग गई; जिज्ञासा, कि फिर क्या हुआ?

तीनों एक से थे, योग्य थे, अप्रतिम थे, प्रतिभाशाली थे। गुरु मुश्किल में था कि किस को चुने। युवती भी मुश्किल में थी कि किस को चुने। कोई उपाय न देखकर युवती ने आत्महत्या कर ली। कोई रास्ता ही न मिला। और इन तीन के बीच वह बड़े द्वंद्व में घिर गई। और तीनों चुनने योग्य थे और मुश्किल था किस को छोड़े। और जानती थी, जिसको छोड़ेगी, वही जीवनभर पछतावे का कारण रहेगा। दो को छोड़ना ही पड़ेगा। तीन से तो विवाह हो नहीं सकता।
बड़ी अड़चन थी। हल कोई था न। हल न देखकर आत्महत्या कर ली। लाश जलाई गई।
एक युवक उन तीन में से तो मरघट पर ही उसी राख के पास रहने लगा। उसी राख
की धूनी रमा लेता और वहीं बैठा रहता।
दूसरा युवक इतने दुख से भर गया कि यात्रा पर निकल गया, अपना दुख भुलाने को। घूमता रहेगा संसार में। अब बसना नहीं है; क्योंकि जिसके साथ बसना था, वही न रही। अब घर नहीं बसाना है। वह परिव्राजक हो गया, एक फकीर, भटकता हुआ आवारा।
और तीसरा युवक किसी आशा से भरा हुआ, क्योंकि उसने सुन रखा था कि ऐसे मंत्र भी हैं कि अस्थिपंजर को पुनरुज्जीवित कर दें, तो उसने सारी अस्थियां इकट्ठी कर लीं। रोज उनको गंगा ले जाता, धोकर साफ करता। फिर ले आकर रख लेता। उनकी रक्षा करता कि कभी कोई मंत्र का जानने वाला मिल जाए। वर्षों बीत गए। जो घूमने निकल गया था यात्रा पर, उसे एक आदमी मिल गया,
जो मंत्र जानता था। उससे उसने मंत्र सीख लिया। मंत्र का शास्त्र ले लिया। भागा। अब डरा वह, घबड़ाया, कि पता नहीं अब अस्थिपंजर बचे भी होंगे। क्योंकि वे तो कभी के फेंक दिए गए होंगे। लेकिन आकर आश्वस्त हुआ। अस्थिपंजर बचाए गए थे। उनको संजोकर रखा था उसके साथी ने।
उसने मंत्र पढ़ा; वह युवती पुनरुज्जीवित हो गई। पहले से भी ज्यादा सुंदर, मंत्र-सिक्त। उसकी देह स्वर्ण जैसी ताजी, जैसे कमल का फूल अभी-अभी खिला हो। फिर कलह शुरू हो गई कि अब वह किसकी?
अब तक सम्राट भी भूल चुका था कि वह क्या कर रहा है और यह सुनने में लग गया था, जैसा तुम सुनने में लग गए।
उस मुरदे ने पूछा कि सम्राट, गौर से सुनो। क्योंकि फिर झगड़ा खड़ा हो गया। अब सवाल है कि इन तीन में से युवती किसकी? तुम्हारा क्या ख्याल है? और अगर तुम्हारे भीतर उत्तर आ जाए और तुमने अगर उत्तर न दिया, तो तुम इसी क्षण मर जाओगे। हां, उत्तर न आए, कोई हरजा नहीं।
बड़ा मुश्किल है उत्तर का न आना। आदमी का इतना वश थोड़े ही है अपने मन पर। कोई बुद्ध पुरुष हो, तो न आए। ठीक है, सुन लिया प्रश्न; उत्तर न आया। कोई हरजा नहीं।
विक्रमादित्य बड़ी मुश्किल में पड़ा। उत्तर तो आ रहा है। बुद्धिमान आदमी था, तर्क-निष्ठ था, समझदार था, शास्त्र पढ़े थे, तर्क साफ था। अब वह बड़ी मुश्किल में पड़ गया। मुरदे ने कहा कि बोल, अगर उत्तर आ रहा है, तो बोल अन्यथा इसी वक्त मर जाएगा।
तो उसने कहा, उत्तर तो आ रहा है, इसलिए बोलना ही पड़ेगा। उत्तर मुझे यह
आ रहा है कि जिसने मंत्र पढ़कर युवती को जगाया, वह तो पितातुल्य है; उसने जन्म दिया। इसलिए वह विवाह नहीं कर सकता। वह तो कट गया। जिसने अस्थियां सम्हालीं और रोज गंगा में स्नान कराया, वह पुत्रतुल्य है, कर्तव्य, सेवा, उससे शादी नहीं हो सकती। प्रेमी तो वही है, जो धूनी रमाए, राख लपेटे, भूखा- प्यासा मरघट पर ही बैठा रहा, न कहीं गया, न कहीं आया। विवाह तो उसी से... । लाश छूटी, जाकर वृक्ष से फिर लटक गई; क्योंकि यह आदमी बोल गया।
ऐसी पच्चीस कहानियां चलती हैं।
जीवन में तुम चूकते हो, जब भी मूर्च्छा पकड़ लेती है। जब भी तुम होश खो देते हो, जब भी जागे हुए नहीं होते, तत्क्षण जीवन का सूत्र हाथ से छूट जाता है। जब भी तुम जरा से अशांत हो जाते हो, विचार की तरंगें चल जाती हैं, तभी जीवन का सूत्र हाथ से छूट जाता है। क्योंकि विचार की तरंग, और तुम वर्तमान से च्युत। इधर उठी तरंग, उधर तुम हटे वर्तमान से।
वह विक्रमादित्य हार गया। वह फिर... । ऐसी पच्चीस कहानियां चलती हैं पूरी रात। और हर बार चूकता जाता है, हर बार चूकता जाता है। पच्चीसवीं कहानी पर सम्हल पाता है। हर कहानी में ज्यादा हिम्मत बढ़ती है, साहस बढ़ता

है; ज्यादा देर तक रोकता है; ज्यादा देर तक विचार की तरंगें नहीं अनुकंपित करतीं। पच्चीसवीं कहानी आते-आते कहानी चलती रहती है, विक्रमादित्य सुनता रहता है, भीतर कुछ भी नहीं होता।
जीवन एक तैयारी है। यहां बहुत कुछ है तुम्हें उलझा लेने को। बाजार है पूरा, मीना बाजार! वहां सब तरफ बुलावा है--उत्सुकता को, जिज्ञासा को, मनोरंजन को। प्रश्न हैं, विचार की सुविधा है, सोच-विचार का उपाय है, चिंता का कारण है। सब तरह के उलझाव हैं।
अगर तुम इस सारे संसार से ऐसे गुजर जाओ, जैसे विक्रमादित्य उस मरघट से बिना बोले, चुप और जागा हुआ पच्चीसवीं कहानी पर गुजर सका, तो ही तुम वर्तमान क्षण की अनुभूति को उपलब्ध होओगे। अन्यथा तुमने वर्तमान जाना ही नहीं है।
तुम वर्तमान से गुजरे जरूर हो, क्योंकि और कोई जगह नहीं है जहां से तुम गुजरो, लेकिन बेहोश, सोए हुए गुजरे हो। या तो अतीत में खोए हुए गुजरे हो, या भविष्य में डूबे हुए गुजरे हो। वर्तमान से तुम्हारा कभी तालमेल नहीं बैठा है। वर्तमान से संगीत नहीं छिड़ा है। वर्तमान के साथ स्वर नहीं मिले।
वर्तमान से स्वर मिल जाए, तुम पाओगे, एक ही है; अनेक उसके रूप हैं। एक
है सागर; अनेक हैं लहरें।

दूसरा प्रश्नः अचाह होने का अर्थ है कि मैं जो भी हूं, जैसा भी हूं, उसे यथावत स्वीकार करूं। इस संबंध में विचार करते हुए बार-बार प्रश्न उठता है कि क्या यह संभव है? क्योंकि अभी जो मैं हूं, वह सर्वाधिक रुग्ण और गलत है। दूसरी ओर सिर पर आदर्शों की बड़ी गठरी है। उसे उतार फेंकना भी सरल नहीं दिखता!

निश्चित ही, अचाह होने का यही अर्थ है कि तुम जो हो, जैसे हो, वैसे ही अपने को स्वीकार कर लो। क्योंकि किया अस्वीकार, और चाह उठी। तुमने कहा, ऐसा नहीं होना चाहिए, तो स्वभावतः दूसरे पहलू से तुम कैसे बचोगे, जो कहता है, कैसा होना चाहिए।
अगर अभी तुम अतृप्त हुए, तो भविष्य में तुम तृप्ति खोजोगे। वही तो चाह है। लगा कि धन कम है, तो चाह उठेगी। लगा कि शांति कम है, तो भी चाह उठेगी कि और शांति चाहिए। लगा कि परमात्मा नहीं मिल रहा है, तो भी चाह उठेगी कि परमात्मा मिलना चाहिए।
चाह उठती कहां है? चाह उठती है तुम्हारी अतृप्ति से। कुछ कम है; कुछ नहीं है, जो होना चाहिए; कुछ खोया-खोया है; कोईशृंखला की कड़ी मिल नहीं रही है, तो चाह उठती है। और जिसकी चाह उठती है, वह कभी भी उस परम आनंद को उपलब्ध नहीं होता। क्योंकि एक चाह उठती है और हजार चाहों के बीज पड़ जाते हैं। तुम उस चाह को पूरा भी कर लोगे, तो भी कोई फर्क न पड़ेगा। क्योंकि जिस मन ने अतृप्ति उठाई थी, वह मन फिर अतृप्ति उठाएगा।
अभी तुम्हारे पास दस हजार रुपए हैं। चाह उठती है कि अगर दस लाख होते,
तो सब ठीक हो जाता; फिर कोई अड़चन न थी। लेकिन तुम, दस लाख जिनके पास हैं, उन्हें देखते हो? उनका सब ठीक हो गया है? वे भी उतनी ही अड़चन में हैं, जितनी में तुम हो।
अड़चन का अनुपात बदलता ही नहीं। हो सकता है, तुम्हारे पास दस हजार हैं, इसलिए तुम एक बड़ा मकान नहीं खरीद पा रहे हो। जिसके पास दस लाख हैं, वह भी बड़ा मकान नहीं खरीद पा रहा है। तुम्हें उसका मकान बड़ा लगता है, क्योंकि तुम्हें अभी दूर है। दूर के ढोल सुहावने मालूम होते हैं। उसे तो वह भी छोटा लगता है।
ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जो बड़े मकान में रहता हो। कितने ही बड़े में रहता हो, हमेशा और बड़ा मकान हो सकता है। कल्पना तो कर ही सकते हो और बड़े मकान की। वही कष्ट देगी।
जो भी है, वह तुम्हारी कल्पना के बराबर तो कभी भी नहीं हो सकता।
तुम्हारी कल्पना तो विस्तीर्ण है, अनंत है। तुम कल्पना तो कर ही सकते हो इससे बेहतर हालत की।

मनुष्य को कल्पना ही जलाए डालती है। क्या तुम ऐसी कोई स्थिति सोच सकते हो कि जिसके आगे बेहतर की कल्पना न उठे। स्वर्ग में भी तुम पहुंच जाओगे, कोई फर्क न पड़ेगा। तुम्हारे पास अगर कल्पना होगी, तो तुम बेहतर स्वर्ग की कल्पना कर सकते हो।
कल्पना ही तो मनुष्य की पीड़ा है। पशु-पक्षी जो इतने आनंदित दिखाई पड़ रहे हैं, उसका कुल एक कारण है कि उनमें कल्पना नहीं है। इसलिए जो है, ठीक है। इससे भिन्न होने का कोई उपाय नहीं दिखाई पड़ता।
ध्यान रखो कि ऐसी तो घड़ी कभी भी न आएगी, जब तुम अनुभव करो कि जो है, वह बिल्कुल कल्पना के अनुकूल है; अब कुछ नहीं चाहिए। ऐसी घड़ी कभी न आएगी। तब तो एक ही उपाय है कि तुम जलते ही रहो, सड़ते ही रहो, नरक में चलते ही रहो। तब तो कोई बचती नहीं है सुविधा इससे ऊपर उठने की।
सुविधा है। वही तो सारे धर्म का निचोड़ है। वह सुविधा यह है कि तुम जैसे हो, जो भी हो, यह देखकर कि ऐसी तो कोई घड़ी न होगी जिस दिन कि तुम बिल्कुल तृप्त हो जाओ अपने होने से, तुम अभी ही तृप्त क्यों नहीं हो जाते! कोई फर्क नहीं है, अभी होओ या दस हजार साल बाद होओ। जब भी तुम होओगे, तुम्हारी कल्पना तो पीड़ा देती ही रहेगी। दस हजार पर रुको, कि दस लाख पर, कि दस करोड़ पर, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। रुकना तो कभी पड़ेगा, तो अभी क्या हर्जा है?
तो मैं तुम से कहता हूं, कल्पना ही मनुष्य की पीड़ा है और कल्पना ही मनुष्य की सीढ़ी बन सकती है। अगर तुम समझदार हो, तो तुम यह कल्पना भी क्यों नहीं कर पाते कि जब कहीं भी रुकूंगा और यही अड़चन होगी, तो अभी क्यों न रुक जाऊं?
तो मैं तुमसे कहता हूं कि अधूरी कल्पना का आदमी सड़ता है नरक में, पूरी कल्पना का आदमी इसी वक्त मुक्त हो जाता है।
इतना भी देख नहीं पाते तुम! इतना परिप्रेक्ष्य नहीं कर पाते कि यह तो कभी हल होने वाला नहीं है! तो क्या करना? तो जैसे हो, राजी हो जाओ।
तुम कहते हो, यह असंभव है। तुम पूछते हो, क्या यह संभव है अपने से राजी
हो जाना?
इसके अतिरिक्त और कुछ संभव ही नहीं है। तुम अभी असंभव कोशिश कर रहे हो। इसीलिए तो परेशान हो। जो नहीं हो सकता, उसको करने की कोशिश में ही तो दुख होता है। क्योंकि वह हो ही नहीं सकता, विषाद आता है, असफलता मिलती है। जो हो सकता है, वह तुम कर नहीं रहे।
क्या अड़चन है इसमें? राजी होने में क्या अड़चन है? तुम जैसे हो, उससे ही राजी हो जाने में क्या अड़चन है?
मैं नहीं कह रहा कि तुम्हारे मकान से तुम राजी हो जाओ, तुम्हारी दुकान
से तुम राजी हो जाओ। उस कूड़े-कचरे की मैं बात ही नहीं करता। उससे तुम न भी राजी हुए तो चलेगा। मैं तो कह रहा हूं कि तुम अपने से राजी हो जाओ।
अब जैसा तुम्हें शरीर मिला है, मिला है। अब तुम अपने मां-बाप बदल नहीं सकते। बदल भी लो जाकर, रजिस्ट्री भी करवा लो अदालत में, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ेगा। वह घटना घट गई। तुम्हें कोष्ठ मिल गए तुम्हारे मां-बाप के, उसके बदलने का कोई उपाय नहीं है।
और तुम अगर सोचते हो कि यह तो हो सकता था कि मैं किसी और मां-बाप के घर जन्म ले लेता, तो तुम तुम न होते, कोई और होता। तुम तो इन्हीं मां-बाप से जन्म ले सकते थे। इसको समझ लो। तुम होते ही नहीं तुम। फिर कोई और होता। इतने तो लोग हैं दुनिया में दूसरे मां-बाप से पैदा हुए। इनमें से कोई भी तुम जैसा दिखता है? तुम जैसे हो, वैसे ही हो, वैसे ही हो सकते थे और कोई उपाय ही न था।
इसी को हिंदुओं ने भाग्य कहा। बड़ी गहरी खोज है भाग्य की। भाग्य बड़ा परम सूत्र है। उन्होंने कहा कि जो हो गया, वह हो गया। अब इसको अनकिया तो किया नहीं जा सकता! इसे स्वीकार कर लो। यही संभव है। और करोगे क्या? एक तरह की शक्ल है, एक तरह का मन है, एक तरह की शरीर की स्थिति है, एक तरह की चेतना है। नहीं तुम बहुत प्रतिभाशाली हो, नहीं तुम बहुत मूढ़ हो, मध्य में खड़े हो; या बहुत मूढ़ हो या बहुत प्रतिभाशाली हो; कोई भी स्थिति है, करोगे क्या?

तुमने कभी किसी को बदलते देखा? तुमने कभी मूढ़ को ज्ञानी होते देखा? तुमने कभी ज्ञानी को मूढ़ होते देखा? तुमने कभी किसी को बदलते देखा है? तुम जरा अपने पर ही विचार करो कि तुम अगर तीस साल जी लिए हो, चालीस साल जी लिए, पचास साल जी लिए, तुममें कुछ बदला है?
अगर तुम जरा ईमानदारी से खोज करोगे, तुम पाओगे, कुछ नहीं बदला। तुम वही के वही हो। अब भी क्रोध वैसे ही आता है। अब भी वासना वैसे ही उठती है। अब भी लोभ वैसे ही पकड़ता है!
अगर तुम गौर करोगे, तो तुम पाओगे, तुम्हारा बचकानापन तुम्हारे पूरे व्यक्तित्व पर छाया हुआ है। कहीं कोई फर्क नहीं हुआ है। अब भी खेल-खिलौनों में रस है। खेल-खिलौने जरा बदल गए हैं। छोटा बच्चा छोटी-सी मोटर चलाता है, जिसको चाबी भर दी। तुम जरा बड़ी मोटर चलाते हो। बाकी छोटा बच्चा जैसा पागल होता है मोटर के लिए, वैसे ही तुम भी पागल हो। छोटा बच्चा रातभर सो नहीं सकता, जब नई मोटर उसको मिलती है। बार-बार उठकर देख लेता है। तुम जब नई मोटर घर लाते हो, तो रात सो सके हो? क्या फर्क पड़ गया है?
छोटा बच्चा कंकड़-पत्थर बीन लाता है नदी के किनारे से। तुम कहते हो, नालायक। तुम क्या बीन रहे हो? तुमने हीरे-जवाहरात बीने हैं। वे कंकड़-पत्थर से ज्यादा हैं?
अगर जमीन पर किसी दिन आदमी न रहे, तो कंकड़-पत्थर में और हीरे-जवाहरात में कोई फर्क रहेगा? पशु-पक्षी कोई भेद करेंगे कि उसको मत खराब कर देना, वह कोहिनूर है। कोई भेद न करेगा। कोहिनूर पड़ा सड़ता रहेगा पत्थरों के बीच में। कोई फिक्र न करेगा। कोहिनूर की चिंता करने के लिए कोई पागल आदमी चाहिए।
क्या फर्क पड़ा है? छोटा बच्चा स्कूल में चेष्टा करता था कि प्रथम आ जाऊं क्लास में। तुम क्या कर रहे हो? मोरारजी, इंदिरा गुजरात में क्या कर रहे हैं? वही प्रथम आने की दौड़ है सब जगह। क्या फर्क है? नाम बदल जाते हैं, कहानी वही की वही है। दौड़ लगी है, प्रतिस्पर्धा लगी है।
अगर गौर से देखोगे, तो तुम पाओगे, तुम बदले नहीं हो। और बदलने की तुमने लाख कोशिश की है। ऐसा नहीं है कि कोशिश नहीं की है। कौन ऐसा आदमी होगा, जो बदलने की कोशिश नहीं करता! ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है। मुझे तो नहीं मिला अब तक। और मैं हजारों-लाखों लोगों के करीब आया हूं। निकट से उन्हें देखा है। उनके मन में झांका है।
ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जो बदलने की कोशिश नहीं करता। बुरे से बुरा आदमी भी बदलने की आकांक्षा करता है। चोर भी साधु होना चाहता है। बेईमान ईमानदार होना चाहता है। क्रोधी शांत होना चाहता है। भोगी त्यागी होना चाहता है। मुश्किल है।
और इससे उलटा भी चल रहा है। जो त्यागी हैं, उनके भीतर भोगी होने की आकांक्षा चल रही है। वे समझते हैं कि फंस गए। वे हैं तो तुम में ही से। बस, उनको ऐसा लग रहा है कि उलझ गए। अब किसी को कह भी नहीं सकते; पूंछ कटा बैठे, तो वे दूसरों को भी समझा रहे हैं कि तुम भी कटवा लो। क्योंकि अगर सब की कट जाए, तो अपने को भी हानि न मालूम पड़े। अपनी भी कटी, कोई हर्जा नहीं। मगर दूसरे लोग पूंछ घुमा रहे हैं; मजे से नाच रहे हैं पूंछ के साथ। और जिनकी कटी है, उनको पीड़ा दे रहे हैं।
मुझसे साधुओं ने कहा है निकटता में कि हमें लगता है कि कहीं हमने भूल
तो नहीं की संसार छोड़कर! क्योंकि अगर हम सच हैं, तो सभी लोग क्यों नहीं छोड़ देते! और हम कितना समझाते हैं, कोई नहीं समझता। तो भीतर शक पैदा होता है कि कहीं ऐसा तो नहीं कि हम ही भूलकर रहे हैं।
और फिर वासनाएं भी उठती हैं; कि क्या पाया? बैठे रहते हैं पद्मासन लगाए, भीतर कुछ मिलता तो नहीं; पैर दुखते हैं, परेशानी होती है। उपवास कर लेते हैं, भूखे मरते हैं, कुछ फल तो होता दिखाई नहीं पड़ता। और अगर इससे थोड़ी प्रतिष्ठा ही मिलती है, तो प्रतिष्ठा तो बाजार में भी मिल सकती थी।
बड़ा मकान बना लेते, तो भी मिल जाती, कुछ भूखा मरने की जरूरत न थी।
प्रतिष्ठा के तो हजार उपाय थे।
ऐसा आदमी मैं नहीं देख पाता, जो बदलना न चाहता हो; जो जहां है, वहीं बदलना चाहता है। और मेरा अनुभव यह है कि आदमी ऐसे बदलता नहीं।

सिर्फ एक ढंग का आदमी बदलता है। और उस ढंग के आदमी न्यून हैं, इसीलिए बदलाहट नहीं होती। वह वह आदमी है, जो अपने को स्वीकार कर लेता है। तत्क्षण क्रांति घटित हो जाती है।
तुम पूछोगे, यह क्रांति कैसे घटती है? क्योंकि कोशिश से नहीं घटती, और स्वीकार से घटती है! यह क्रांति कैसे घटती है जब तुम स्वीकार कर लेते हो? इसका गहरा सूत्र है, इसका शास्त्र है।
जब कोई व्यक्ति अपने क्रोध को बदलने की चेष्टा छोड़ देता है... । उदाहरण
के लिए, तुम क्रोधी हो और तुम क्रोध छोड़ने की कोशिश में लगे हो। क्या करोगे तुम? तुम तीन बातें करोगे।
एक, तुम अक्रोध का आदर्श बनाओगे। तुम महावीर की फोटो लटकाओगे अपने घर में। और कहोगे कि ऐसा आदमी होना चाहिए कि कान में खीलें ठोंक दिए और क्रोध न आया! एक आदर्श तुमने बना लिया।
आदर्श बनाकर, महावीर की फोटो लटकाकर तुम बड़े प्रसन्न हुए कि मैं कोई साधारण आदमी नहीं हूं, आदर्शवादी हूं। आज नहीं हूं महावीर जैसा, लेकिन कल तो हो जाऊंगा। तुमने भविष्य पैदा कर लिया। अगर इस जन्म में न हो पाया, अगले जन्म में हो जाऊंगा। अगर जिन नहीं हो पाया, तो जैन तो कम से कम हो ही गया हूं। इतना क्या कम है! दूसरे तो अभी तक असदगुरुओं के चक्कर में पड़े हैं। मैं देखो सदगुरु के चक्कर में पड़ा हूं।
इस आदर्श से तुम्हारा क्रोध नहीं मिटेगा। इस आदर्श के कारण तुम्हारे क्रोध के मिटने की संभावना ही समाप्त हो गई। क्योंकि तुमने अपने अहंकार को इस आदर्श से भर लिया। जो क्रोध से टूटता था और क्रोध कर-करके तुम्हें लगता था, मैं क्षुद्र, गया-बीता आदमी हूं, नारकीय हूं, पापी हूं, वह भी गया। अब तो तुम धार्मिक आदमी हो। रोज महावीर की पूजा करते हो, फूल चढ़ाते हो। अब तुमने क्रोध में आभूषण लगा लिए। क्रोध तुम्हारा वहीं के वहीं है। कोई महावीर की फोटो टांगने से क्रोध जाता होता, तो इससे सस्ता क्या था करना! तो दुनिया से क्रोध चला गया होता कभी का। इससे तो कोई क्रोध जाता नहीं; इससे क्रोध की रक्षा होती है।
आदर्श, तुम जो हो, तुम्हें वैसा ही बनाए रखने में सहयोगी है। क्योंकि आदर्श तुम्हें अहंकार की तृप्ति देते हैं, भविष्य में। वर्तमान में तो कोई तृप्ति का कारण नहीं है; तुम रुग्ण हो, दुखी हो, पीड़ित हो, नरक हो। लेकिन भविष्य का मोक्ष तुम्हें आशा देता है। आशा के सहारे तुम अपनी तसवीर बना लेते हो, भविष्य में, सुंदर प्रतिमा, महावीर जैसी; तुम भी खड़े हो नग्न; सब त्याग कर दिया है संसार का। यह सपना तुम्हारी असलियत के चारों तरफ एक झूठा व्यामोह पैदा कर देता है। तुम आदर्शवादी हो गए।
आदर्शवादी से ज्यादा बुरा आदमी खोजना मुश्किल है। वह कहता है कि आज
तो क्रोध है, ठीक है। इसमें कुछ हर्जा नहीं है। कल सब ठीक कर लूंगा। और कोई एक दिन में थोड़े ही बदलाहट होती है। धीरे-धीरे साधूंगा; क्रम-क्रम से जाऊंगा। पहले व्रत लूंगा एक, फिर दूसरा, फिर तीसरा। पहले अणु-व्रत लूंगा, फिर महाव्रत। धीरे-धीरे साधूंगा। पहले एक प्रतिमा साधूंगा, फिर दो प्रतिमा, फिर तीन प्रतिमा। ऐसे धीरे-धीरे साधते-साधते परम अवस्था को उपलब्ध हो जाऊंगा।
यह तरकीब है तुम्हारे मन की। यह मन यह कह रहा है कि भविष्य में सुंदर प्रतिमा बना लो, तो अभी तुम्हारी जो रुग्ण देह है, वह दिखाई पड़नी बंद हो जाएगी। यह सांत्वना है।
सब आदर्श जहर है। तुम जहर खा रहे हो। लेकिन जहर पर बड़ी मिठास लगी है।
जहर की गोली पर शक्कर चढ़ी है। आदर्श किसी को बदलता नहीं है; आदर्श बदलाहट को रोकता है।
तो एक तो यह तुम करोगे। और दूसरा तुम यह करोगे कि आदर्श की तरफ चलने की थोड़ी चेष्टा शुरू करोगे। तुम नियम लोगे, कसम खाओगे कि मैं क्रोध न करूंगा। लेकिन अगर तुम क्रोध को रोकोगे, तो तुम हैरान होओगे, क्रोध रोको तो कामवासना बढ़ती है। क्योंकि ऊर्जा कहीं से बाहर जानी चाहिए।
तुमने ख्याल भी किया होगा, अगर तुम कामवासना को रोको, तो क्रोध बढ़ जाएगा। थोड़ा प्रयोग करके देखो। एक महीने का ब्रह्मचर्य ले लो। तुम पाओगे, उस महीने में तुम ज्यादा चिड़चिड़े, क्रोधी हो गए।

ब्रह्मचारी चिड़चिड़े और क्रोधी हो जाते हैं। इसलिए तुम्हारे साधु दुर्वासा मालूम पड़ते हैं। तैयार ही खड़े हैं कि तुम कुछ कहो, वे अभिशाप दे दें। जन्म-जन्म बिगाड़ दें तुम्हारे।
तुमने देखा है, नाथ-पंथी साधु दरवाजे पर खड़े हो जाते हैं, अपना चमीटा हिलाते हैं, आगे-पीछे जाते हैं और घबड़ाहट पैदा कर देते हैं तुममें कि भैया दे ही दो कुछ। पता नहीं, क्या करे यह आदमी। तुम्हारी तरफ देखते ही नहीं, मांगते भी नहीं; बस, आगे-पीछे चलते रहते हैं और अपना चमीटा आगे करके बजाते रहते हैं कि सम्हल जाओ। वे तुमको डरवा रहे हैं।
तुम अगर ब्रह्मचर्य साधोगे, क्रोध बढ़ जाएगा। इसको तुम करके देखो। यह
तो सीधा गणित है; केमिस्ट्री है शरीर की। जो ऊर्जा क्रोध से बाहर निकल रही थी, वह कहीं से तो निकलेगी!
भोजन तो तुम करते जा रहे हो, और मल-मूत्र का त्याग बंद कर दिया है, तो क्या होगा? क्रोध की जिन चीजों से निर्मिति होती है, वह तो जारी है। और क्रोध तुमने करना बंद कर दिया है। थोड़ी-सी केमिस्ट्री समझो, शरीर का रसायन समझो। यह कहीं से तो निकलेगा। या तो यह लोभ बन जाएगा या यह काम बन जाएगा। यह कोई न कोई रास्ता, या यह अहंकार बन जाएगा, लेकिन कुछ न कुछ बनेगा।
तुम एक दरवाजे से रोकोगे, दूसरा दरवाजा खोलेगा। तुम दूसरे दरवाजे से रोकोगे, तीसरा खोलेगा। यह कुछ बचना नहीं है। यह तुम व्यर्थ ही जीवन को उलझा रहे हो।
और ध्यान रहे, अगर कामवासना शुद्ध कामवासना हो, तो ब्रह्मचर्य तक जाना आसान है। जब कामवासना क्रोध बन जाती है, तो ब्रह्मचर्य तक जाना मुश्किल है, क्योंकि क्रोध असली बीमारी नहीं है। और तुम समझोगे कि क्रोध मेरी बीमारी है। तुम क्रोध को सम्हालने के उपाय करोगे। और असली बीमारी दूसरी है।
ठीक बीमारी हो, तो ठीक निदान किया जा सकता है। ठीक निदान हो, तो इलाज
हो सकता है। अगर बीमारी ही झूठी हो, असली बीमारी ही न हो, किसी दमन से पैदा हुई हो, तो सब निदान के सूत्र खो जाते हैं, डायग्नोसिस खो जाती है, औषधि का उपाय नहीं बनता।
तो तुम यह करोगे कि तुम कसमें लोगे। इसलिए तुम पाओगे तुम्हारे साधुओं को, क्रोधी, दंभी, अकड़े हुए, झुक नहीं सकते!
साधु तो विनम्र होना चाहिए। यह अकड़ साधु में? तो फिर संसारी में अकड़ है, उसमें क्या हर्जा है? संसारी में कम अकड़ है, क्योंकि संसारी साधु के चरण छूता है। जैन साधुओं के संप्रदाय हैं, जो हाथ जोड़कर नमस्कार नहीं करते। क्योंकि साधु कैसे संसारी को नमस्कार कर सकता है?
यह बात बिल्कुल बेहूदी है। क्योंकि तुम संसारी को देखते ही क्यों हो? तुमको आत्मा नहीं दिखाई पड़ती भीतर! परमात्मा नहीं दिखाई पड़ता! तुम कपड़े देखते हो? तुम्हें प्राण नहीं दिखाई पड़ते? लेकिन जैन साधु किसी को नमस्कार नहीं कर सकता। क्योंकि नमस्कार और साधु और गृहस्थ को करे? असंभव! इससे तो सूफी फकीर बेहतर, जो किसी के भी पैर छू लेते हैं--किसी के भी। सूफी फकीर से कोई मिलने जाएगा और वह पैर छू लेगा। क्योंकि वह कहता है कि विनम्रता तो साधु का लक्षण होना चाहिए। सभी पैर परमात्मा के हैं। किस बहाने आए, तुम जानो; हम तो पैर छुए लेते हैं। किस शक्ल में आए, यह तुम फिक्र करो; हम क्यों चिंता करें! जैसे आए, राजी हैं हम।
इसलिए सूफी फकीर में जो विनम्रता दिखाई पड़ेगी, वह जैन साधु में नहीं दिखाई पड़ेगी।
दबाओगे, रोग कहीं न कहीं से उभरेगा। फिर तुम क्या करोगे? क्या उपाय है तुम्हारे पास? तीसरा उपाय यह है--ये तीन चीजें तुम करोगे, आदर्श पैदा करोगे, व्रत लेकर दमन पैदा करोगे--और तीसरा उपाय है कि जीवन की ऊर्जा को क्षीण करोगे। क्योंकि उससे तुम्हें भय पैदा हो जाएगा।
अगर तुम ठीक से भोजन करोगे, तो कामवासना पैदा होगी, तो तुम डरने लगोगे भोजन से। तो तुम उपवास करने लगोगे। हां, यह बात सच है कि अगर ठीक भोजन न किया जाए, जरूरत की ताकत शरीर को भोजन से न मिले, तो कामवासना पैदा नहीं होती है। लेकिन कामवासना मिटती नहीं है। वह ऐसी हो जाती है, जैसे तुमने कभी वर्षा के दिनों में किसी बाढ़ आई नदी को देखा हो, और फिर गर्मी के तप्त

दिनों में उसी नदी को देखो, तो रूखा-सूखा घाट रह जाता है! रेत रह जाती है; पानी खो जाता है। लेकिन फिर वर्षा आएगी, फिर नदी आपूर होकर बहेगी।
तो जिस व्यक्ति ने भोजन कम कर लिया, नींद कम कर ली--क्योंकि वह डरने लगता है; ज्यादा नींद ले, तो भय आता है; ज्यादा भोजन करे, तो भय आता है; ठीक से जीए, तो भय आता है--तो जिसने अपनी जीवन-ऊर्जा कम कर ली, वह सूखी हुई नदी हो जाएगा। नदी मिटती नहीं; नदी मौजूद है। सिर्फ वर्षा की प्रतीक्षा है, सब मौजूद है। पानी आया और बहने लगेगा।
तुम अपने साधुओं को एक महीना ठीक से भोजन दो, ठीक से विश्राम दो, आराम
से बिस्तर पर सोने दो, और तुम पाओगे कि वे तुम जैसे हो गए। तो फर्क क्या था, जो महीनेभर में मिट गया? कोई फर्क नहीं है। सिर्फ वे दीन-ऊर्जा से जी रहे हैं।
पश्चिम में बड़े प्रयोग किए गए हैं। इक्कीस दिन के उपवास के बाद कामवासना क्षीण हो जाती है। क्योंकि शरीर के पास शक्ति नहीं रहती। शक्ति हो, तभी तो कामवासना पैदा हो सकती है। लेकिन तीन दिन के भोजन के बाद फिर कामवासना लौट आती है। तो क्या फर्क पड़ा? यह तो धोखा हुआ, प्रवंचना हुई। ये तीनों बातें व्यर्थ हैं। फिर क्या करना? और तुम कहते हो, क्या यह संभव है कि हम अपने को स्वीकार कर लें?
यही केवल संभव है, बाकी सब असंभव है। असंभव तुम बहुत कर चुके, संभव करके देख लो। संभव यह है कि तुम स्वीकार कर लो अपने क्रोध को, अपने काम को। वे हैं; प्रकृति के हिस्से हैं; तुम्हारे हिस्से हैं। क्या फर्क होगा? जैसे ही तुम स्वीकार करोगे, तुम्हारा अहंकार नीचे गिरेगा, जो कि आदर्शों से सम्हाला गया है, वह तत्क्षण गिर जाएगा। जब तुम देखोगे अपना क्रोध, और नरक, और देखोगे अपना अज्ञान और मूर्च्छा, और देखोगे अपने भीतर की वासनाएं, सांप-बिच्छुओं, जहरीले जानवरों की तरह घूमती हुई, और देखोगे भीतर का अंधकार और दुर्गंध, और नर्क, तो तुम्हारा अहंकार कैसे टिकेगा?
तो पहली क्रांति घटती है, अपने को ठीक से देखने वाले व्यक्ति का अहंकार गिर जाता है। और अहंकार के गिरते ही क्रांति शुरू होती है।
दूसरी घटना घटती है, जब तुम अपने क्रोध को गौर से देखते हो, और स्वीकार करते हो, और कहते हो, मैं क्या कर सकूंगा, मेरी क्या सामर्थ्य है? न मैंने क्रोध पैदा किया है, न मैं मिटा सकूंगा। जब तुम अपने क्रोध को स्वीकार कर लेते हो, न केवल अपने भीतर बल्कि अपने आस-पास, मित्र-प्रियजनों को भी कह देते हो कि मैं क्रोधी आदमी हूं; तुम ज्यादा मुझ पर भरोसा मत करना। मैं किसी भी वक्त उपद्रव खड़ा कर सकता हूं। मैं एक जलती हुई आग हूं, जिसमें कभी भी विस्फोट हो जाए। मैं एक छिपा हुआ ज्वालामुखी हूं। जब तुम अपने प्रियजनों को ये सारी बातें कह दोगे, जब तुम अपने को उघाड़कर रख दोगे, तुम अचानक पाओगे कि इस उघाड़ने में ही क्रोध के प्राण निकल गए। और यह कहते-कहते ही तुम पाओगे कि तुम्हारे भीतर एक शांति आनी शुरू हो गई, जो तुमने कभी नहीं जानी थी।
जब बेईमान स्वीकार कर लेता है कि मैं बेईमान हूं; तो ईमानदारी की शुरुआत हो गई। क्योंकि इससे बड़ा कोई ईमान नहीं है दुनिया में, यह स्वीकार कर लेने से बड़ा कि मैं बेईमान हूं। बेईमान कोशिश करता है कि मैं बेईमान नहीं हूं।
क्रोधी कोशिश करता है कि मैं और क्रोधी? सारी दुनिया क्रोधी है। मुझे
तो अगर क्रोध करना भी पड़ता है, तो लोगों को सुधारने के लिए। अन्यथा मैं कभी क्रोध करता ही नहीं। या मैं तो सिर्फ दिखावा करता हूं। वह कोई क्रोध थोड़े ही है।
झूठ बोलने वाला कोशिश करता है समझाने की कि वह कभी झूठ नहीं बोलता। लेकिन अगर तुम घोषणा कर दो कि मैं झूठा आदमी हूं, बेईमान हूं, छिपाओ मत, तुमने सच्चा होना शुरू कर दिया।
यह तुम्हें बड़ा उलटा दिखाई पड़ेगा। झूठ को स्वीकार करके कि मैं झूठा आदमी हूं, तुमने सचाई की तरफ पहला कदम उठा लिया। इससे बड़ी कोई सचाई है? और जो आदमी कहता है, मैं झूठा हूं, क्रोधी हूं, कामी हूं, यह साधु होना शुरू हो गया। जैसे-जैसे इसकी प्रतीति गहरी होगी और यह अपने को प्रकट करेगा, जैसा यह है, वैसा ही प्रकट करेगा; न छिपाएगा, न दबाएगा... !

क्या फायदा है? किसके सामने प्रतिमा खड़ी करनी है? अहंकार के गिरते ही अपनी अच्छी प्रतिमा बनाने का मोह भी गिर जाता है। किसके सामने? किसको समझाना है? और दुनिया मुझे बहुत बड़ा साधु समझे, इससे लाभ क्या है? जो मैं हूं, मैं हूं। मेरा नर्क भीतर है। सारी दुनिया समझे कि मैं स्वर्ग में जी रहा हूं, इससे क्या फर्क पड़ता है!
जिस व्यक्ति ने अपने को स्वीकार कर लिया प्रामाणिकता से, राजी हो गया, क्रांति शुरू हो जाती है। क्रांति तुम्हारे करने से नहीं होती। क्रांति तो तुम्हारी स्वीकृति से होती है।
भाग्य बड़ी क्रांति का सूत्र है। वह शब्द बिगड़ गया। हमने खराब कर दिया। उसका राज चला गया। अन्यथा उसका मतलब केवल इतना है कि तुम अपने को स्वीकार करो। और तुम जैसे हो, वैसे ही रहो। और वैसे ही अपने को प्रकट करो। धीरे-धीरे तुम पाओगे कि तुम्हारे जीवन में एक क्रांति उतर रही है, जो तुम्हारे द्वारा नहीं लाई गई है, जो तुम्हारी स्वीकृति से अपने आप आई है। मैंने केवल उन्हीं लोगों को बदलते देखा है, जिन्होंने बदलने का प्रयास छोड़ दिया और अपने को अंगीकार कर लिया। स्वीकार, संतोष, सहजता, ये क्रांति के सूत्र हैं।

अब सूत्रः
हे अर्जुन, ओम तत सत्, ऐसे यह तीन प्रकार का सच्चिदानंदघन ब्रह्म का नाम कहा है। उसी से सृष्टि के आदि काल में ब्राह्मण और वेद तथा यज्ञादिक रचे गए हैं।
इसलिए ब्रह्मवादिन श्रेष्ठ पुरुषों की शास्त्र-विधि से नियत की हुई यज्ञ, दान और तप-रूप क्रियाएं सदा ओम, ऐसे इस परमात्मा के नाम को उच्चारण करके ही आरंभ होती हैं।
और तत अर्थात तत नाम से कहे जाने वाले परमात्मा का ही सब है, ऐसे इस भाव से फल को न चाहकर नाना प्रकार की यज्ञ, तप-रूप क्रियाएं तथा दान-रूप क्रियाएं मोक्ष की आकांक्षा वाले पुरुषों द्वारा की जाती हैं।
समझें।
हे अर्जुन, ओम तत सत्, ऐसे यह तीन प्रकार का सच्चिदानंदघन रूप ब्रह्म
का नाम कहा है... ।
तत का अर्थ होता है, वह, दैट। भक्त भगवान को कहता है तू, वह नहीं। क्योंकि भक्त कहता है, वह तो बड़ा बेजान शब्द है। इसमें कुछ रस नहीं मालूम होता। बड़ी दूरी मालूम पड़ती है। तू में निकटता है, आत्मीयता है, अपनापन है, सामीप्य है। वह, रेगिस्तान जैसा सूखा है। जहां जल की जरा भी धार नहीं मालूम होती; जहां कोई मरूद्यान दिखाई नहीं पड़ता; जहां हरियाली का कोई पता नहीं चलता।
वह शब्द बड़ा तटस्थ शब्द है, तत्, इसमें कोई भाव नहीं है; बड़ा अनासक्त, रूखा-सूखा, संगीत-शून्य। जैसे हमारा कोई संबंध नहीं है, कोई निकटता नहीं है। इसलिए भक्त तो तू का उपयोग करते रहे हैं, लेकिन ज्ञानी तत का उपयोग करते हैं।
पश्चिम में एक बहुत बड़ा यहूदी विचारक हुआ, मार्टिन बूबर। इस सदी की कुछ महत्वपूर्ण किताबों में उसकी एक किताब है, आई एंड दाऊ, मैं और तू। उसमें बूबर ने सिद्ध करने की कोशिश की है कि हिंदुओं का वह, तत्, यहूदियों के तू से ऊपर नहीं जाता।
बूबर गलत है। किताब बड़ी कीमती है। उसका भाव भी ठीक है, लेकिन उसकी धारणा सही नहीं है।
तू तो कितना ही निकट मालूम पड़े, उसमें मैं थोड़ा-सा मौजूद रहता है। क्योंकि बिना मैं के तू कैसे अर्थपूर्ण होगा? जब हम कहते हैं तू, तो मैं भी हूं। कौन कहेगा तू? मैं तो बना ही रहेगा। कितनी ही फीकी हो जाए रेखा, कितना ही छिप जाए, लेकिन छिपा हुआ भी तो होगा। अन्यथा कौन कहेगा तू? तू में तो मैं मिला ही हुआ है।
तू बहुत सामीप्य है, सुंदर है, प्रेमपूर्ण है, भक्त के भाव को प्रकट करता है, निकटता की सूचना देता है, आर्द्र है, हृदय से भरा है, धड़कता है। वह,

निर्जीव लगता है। लेकिन वह की अपनी खूबी है। वह तू से आगे जाता है। और वह में भी रस है। लेकिन वह तभी तुम्हें दिखाई पड़ेगा, जब तुम मैं और तू से आगे गए। उसके पहले नहीं दिखाई पड़ेगा।
उसके पहले तो हम वृक्षों को कहते हैं वह। तुम वृक्ष को तो तू नहीं कहते? पत्थर को कहते हैं वह। पत्थर को तो तुम तू नहीं कहते? तुम्हें पता ही नहीं है।
इसीलिए तुम जब ब्रह्म को भी वह कहोगे, तत्, तब तुम्हें लगेगा कि यह तो ज्ञानियों की बड़ी सूखी बात हो गई। इसमें हृदय में कहीं धड़कन नहीं होती, वीणा कहीं बजती नहीं भीतर की। यह तो कुछ बुद्धिगत, बौद्धिक मालूम होती है बात। भक्त को आप्लावित नहीं करती, नचाती नहीं।
वह के आस-पास नाचना बड़ा मुश्किल है। कृष्ण की गोपियां तू के आस-पास नाच रही हैं। वह के आस-पास कैसे नाचोगे? नाच बंद हो जाएगा। तार हाथ से छूट जाएंगे। गीत अवरुद्ध हो जाएगा।
तो सारे भक्तों ने--यहूदी, इस्लाम, हिंदू, जहां-जहां भक्ति पैदा हुई-- उन्होंने ओम तत सत को इनकार किया है। उन्होंने वह परमात्मा है, ऐसी बात नहीं कही। तू परमात्मा है, ऐसी बात कही है।
लेकिन कृष्ण कहते हैं, ओम तत सत्। वह ओंकार-स्वरूप है, वह-स्वरूप है और सत्य है।
इसे ठीक से समझ लें। इसका अनुभव तुम्हें नहीं है, वह के आनंद का, इसलिए सूखा लगता है। अन्यथा वह जैसे बादल कभी घिरते ही नहीं। और जैसी वर्षा उनसे होती है, तू से क्या खाक होगी! क्योंकि तू में तुम तो रहोगे मौजूद। मैं भी मौजूद रहेगा। और उतनी ही अड़चन रहेगी। तुम परमात्मा के निकट भला पहुंच जाओ, परमात्मा न हो सकोगे।
और जितनी निकटता बढ़ती है, उतनी ही दूरी खलती है। जितने-जितने पास आते हो, उतना ही लगता है, कब एक हो जाएं! छलांग हो जाए! उतना ही विरह का ज्वार पैदा होता है। सिर्फ वह की घड़ी ही तुम्हें एक कर पाएगी।
वह के दो हिस्से हैं, एक है, ओम तत सत्। परमात्मा वह-स्वरूप है, दैटनेस। और दूसरा सूत्र है उपनिषदों का, जो इसे पूरा करता है, तत्वमसि श्वेतकेतु--वह तू ही है श्वेतकेतु, वह कोई अलग नहीं है। तो इसे कैसे तुम अनुभव करोगे?
वह की थोड़ी साधना करनी पड़ेगी। वृक्ष के पास बैठो; शांत होकर बैठो। कोई शब्द, विचार न उठे मन में। सिर्फ बैठो। वृक्ष को छुओ भला, बोलो मत, सोचो मत; वृक्ष को आलिंगन कर लो; इस बात की प्रतीति करो कि तुम्हारे और वृक्ष के बीच में कोई शब्द न रह जाए।
अचानक तुम पाओगे, तुम वृक्ष हो गए, वृक्ष तुम हो गया। अचानक सीमा टूट गई। बीच में कुछ बहने लगा। दोनों के बीच कोई सेतु बन गया; कोई सागर लहराने लगा। वृक्ष तुम्हारे पास आने लगा। तुम वृक्ष के भीतर, वृक्ष तुम्हारे भीतर। वृक्ष की हरियाली तुम्हें हरा करने लगी। तुम्हारा चैतन्य वृक्ष को चेतन बनाने लगा। तब तुम्हें थोड़ी-सी प्रतीति वह की होगी। न तुम रहे, न वृक्ष रहा।
वृक्ष के साथ शायद कठिन हो। जिसे तुम प्रेम करते हो--पत्नी को, प्रेयसी को, मित्र को--कभी उसका हाथ हाथ में लेकर बैठ जाओ। और एक ही प्रयोग करो कि दोनों के चित्त में कोई विचार न हो। वहां जरा थोड़ी कठिनाई है वृक्ष से; क्योंकि वहां दूसरे के भी विचार बाधा बनेंगे। इसलिए मैंने पहले वृक्ष को कहा।
दोनों शांत बैठ जाओ। देखते रहो आकाश में उगे चांद को पूर्णिमा की रात में। शांत बैठे रहो, मौन। प्रेम को ध्यान बनाओ।
थोड़ी ही देर में तुम कभी-कभी झलक पाओगे; एकाध क्षण को तुम दोनों के विचार जब बंद हो जाएंगे, ऐसा मेल जब बैठ जाएगा संयोग से, तो तुम अचानक पाओगे, किसी विराट ऊर्जा ने तुम्हें घेर लिया; वह ने तुम्हें घेर लिया। तुम दोनों एक हो गए। और उस एकता के क्षण में न तो मैं था, और न तू था।
ऐसी ही अनुभूति की अंतिम सीमा है, ओम तत सत्। जब कोई व्यक्ति इस पूरे अस्तित्व के साथ एकता का अनुभव करता है, कोई भेद नहीं रह जाता; अंश अंशी के साथ मिल जाता है, लहर सागर में खो जाती है।

हे अर्जुन, ओम तत सत्, ऐसे यह तीन प्रकार का सच्चिदानंदघन ब्रह्म का नाम कहा है... ।
इसलिए हिंदुओं की जो परम प्रज्ञा है, उसने परमात्मा को वह कहा है। वह कोरा शब्द नहीं है, न रूखा शब्द है। हां, तुम्हें रूखा मालूम पड़ता है, क्योंकि तुमने उसका स्वाद कभी लिया नहीं। जिन्होंने उसका स्वाद लिया, उनके लिए मैं और तू शब्द बिल्कुल फीके हो गए। उन्होंने असली को जान लिया, तो मैं और तू छायाएं मालूम पड़ने लगे।
कितनी ही सुंदर हो छाया, चित्र कितना ही प्यारा हो, मूल के साथ एक-सा
तो नहीं हो सकता। और कितना ही प्यारा हो, मूल तो नहीं हो सकता। वह मूल है। वह दो में टूट गया है, मैं और तू। और जब तक मैं और तू न मिल जाएं, तब तक तुम्हें उसका कोई अनुभव न होगा। और ओम उसका नाम है।
ओम तीन मात्राओं से बना है, अ उ म, ए यू एम। यहां कृष्ण त्रिगुण की ही चर्चा किए चले जा रहे हैं। वे सब दिशाओं से अर्जुन को कह रहे हैं, सारा अस्तित्व तीन से बना है। ओम भी तीन से बना है।
ओम कोई शब्द नहीं है। उसका कोई भाषाकोशगत अर्थ नहीं है। वह ध्वनि है।
और बड़ी अदभुत ध्वनि है। और वह ध्वनि मनुष्य निर्मित नहीं है। वह ध्वनि तब उपलब्ध होती है, जब तुम्हारे सब विचार शून्य हो जाते हैं। जब तुम्हारी मनुष्यता खो जाती है, सभ्यता, संस्कृति सब खो जाती है। जब तुम कोरे आकाश जैसे खाली रह जाते हो, कोरे कागज जैसे, तब तुम्हारे भीतर एक नाद का आविर्भाव होता है।
आविर्भाव होता है, कहना ठीक नहीं। नाद तो बज ही रहा था; तुम खाली न थे, इसलिए सुन न पाते थे। अब तुम सुन रहे हो। खाली हो गए हो, अब बाजार का कोलाहल बंद हो गया, अब मन की बकवास बंद हो गई, अब तुम सुन पाते हो।
तुम्हारे भीतर जो नाद अहर्निश चल रहा था, उस अहर्निश नाद का ढंग ओम है। वह ओंकार जैसा मालूम होता है; जैसे भीतर कोई ओम, ओम, ओम की अहर्निश ध्वनि किए जा रहा है। तुम नहीं कर रहे हो; तुम तो चुप हो; तुम तो हो ही नहीं; तुम तो खो गए हो; ओंकार गूंज रहा है।
इसलिए मैं कहता हूं अपने साधकों को कि तुम ओंकार को साधना मत। नहीं तो तुम्हारा सधा हुआ ओंकार तुम्हें कभी उस ओंकार को न जानने देगा, उस ओंकार से तुम्हें वंचित रखेगा, जो अनाहत है।
अनाहत का अर्थ ही होता है कि जो तुम्हारे द्वारा पैदा नहीं हुआ; जो किसी से पैदा नहीं हुआ।
अब इसे थोड़ा समझ लो।
तुम ओंकार से पैदा हुए हो; ओंकार तुमसे पैदा नहीं हुआ। ओंकार तुमसे पूर्व है। तुम ओंकार का ही सघन रूप हो। ओंकार मूल तत्व है। ओंकार का मतलब है, वह नाद, जो सारे अस्तित्व में चल रहा है। उस नाद के अलग-अलग रूप अलग-अलग ढंग हैं। तुम जब बिल्कुल शांत हो जाओगे, तुम उसे बजता हुआ पाओगे।
बड़ी कठिनाई है। अगर तुमने ओम का रटन शुरू कर दिया, और तुमने इसका मंत्र बना लिया, और तुम ओम-ओम जपते रहे, तो तुम जो ओम सुनोगे, वह मन का ही नाद होगा। वह तुम्हारा ही ओम है। तुमसे पैदा हुआ है, झूठा है। वह वह ओंकार नहीं है, जिसकी कृष्ण अर्जुन से बात कर रहे हैं।
ओम तत सत्, ऐसे तीन प्रकार का सच्चिदानंदघन ब्रह्म का नाम कहा है... ।
यह सच्चिदानंद भी तीन शब्दों से बना है, सत चित आनंद। अ उ म; अ सत का प्रतीक है, उ चित का, म आनंद का। ओम प्रतीक है सच्चिदानंद का।
जब उस ओंकार की ध्वनि तुम्हारे भीतर बजेगी, तब तुम तीन चीजें अपने भीतर पाओगे। पाओगे कि तुम हो, तुम्हारा होना। तुम नहीं, होना। मैं नहीं, अस्तित्व। हम कहते हैं, मैं हूं। उसमें से मैं तो कट जाएगा, हूं बचेगा। हूं-भाव सत है।
और दूसरी चीज तुम पाओगे चित्, चैतन्य, कि तुम परम चैतन्य से भरे हो, होश, जागृति। दिन हो गया, रात कट गई। मूर्च्छा गई, प्रमाद टूटा। दीया जल रहा है; अकंप उसकी लौ है।
और आनंद। और तुम अपने को आनंद से घिरे हुए पाओगे; जैसे आनंद के बादल तुम पर बरस रहे हों।

ये तीन उसके लक्षण हैं, उसके मंदिर के करीब पहुंचने के। और ओंकार उसका नाद है।
उसी से सृष्टि के आदि काल में ब्राह्मण और वेद तथा यज्ञादिक रचे गए...
।
फिर तीनः ब्राह्मण, वेद और यज्ञ। यह बड़ा सारपूर्ण वचन है। उसी ओंकार से, उसी वह से सब जन्मा है। जन्म को तीन हिस्सों में बांट रहे हैं कृष्ण। ब्राह्मण। ब्राह्मण का अर्थ है वह, जिसने उसे जान लिया। ब्राह्मण का अर्थ है, ज्ञानी। ब्राह्मण का अर्थ है, ब्रह्म को उपलब्ध। ब्राह्मण का अर्थ है, जो ब्रह्म-स्वरूप हो गया; जिसने अपने भीतर अहर्निश अनाहत नाद को सुन लिया। जो सच्चिदानंदघन रूप हो गया, वह ब्राह्मण।
इसका क्या मतलब हुआ कि आदि में उससे ही ब्राह्मण पैदा होते हैं? इसका अर्थ हुआ कि जब भी कोई ब्रह्म को जानता है, तो अपने द्वारा नहीं जानता, ब्रह्म के द्वारा ही जानता है। खुद को तो मिटा लेता है। बस, इतना ही तुम्हें करना है कि तुम मिट जाओ, खाली जगह हो जाओ, सिंहासन से उतर जाओ। और ब्रह्म सिंहासन पर उतर आता है। ब्राह्मण तुम अपनी चेष्टा से नहीं हो सकते।
बड़ी पुरानी कथा है कि विश्वामित्र क्षत्रिय घर में पैदा हुए और ब्राह्मण होना चाहते थे। लेकिन कोई कैसे अपनी चेष्टा से ब्राह्मण हो सकता है? उन्होंने बड़ी चेष्टा की, बड़ा तप किया।
वशिष्ठ उन दिनों ब्रह्मज्ञानी थे। और जब तक वशिष्ठ न कह दें कि तुम ब्राह्मण हो गए, तब तक स्वीकृति न थी। बड़ी तपश्चर्या की, बड़ी कोशिश की। लेकिन वशिष्ठ ने न कहा, न कहा।
यह कथा कोई वर्ण-व्यवस्था की कथा नहीं है। यह चेष्टा और प्रसाद की कथा है। लोगों ने यही समझा है कि वर्ण-व्यवस्था की कथा है कि क्षत्रिय कैसे ब्राह्मण हो सकता है! क्योंकि वर्ण तो जन्म से है।
नहीं, इस कथा से वर्ण का कोई संबंध नहीं है। कथा चेष्टा और प्रसाद की है। कोई चेष्टा से कैसे ब्राह्मण हो सकता है? परमात्मा के प्रसाद से होता है। और विश्वामित्र तो क्षत्रिय थे। क्षत्रिय तो चेष्टा से जीता है। वही तो फर्क है।
राजस व्यक्ति चेष्टा से जीता है। सात्विक व्यक्ति प्रसाद से जीता है। आलसी व्यक्ति न तो चेष्टा से जीता है, न प्रसाद से जीता है, वह तो मुरदे की तरह पड़ा रहता है। ऐसे ही घसिटता है; जीता ही नहीं।
क्षत्रिय ने बड़ी चेष्टा की। महान तप किया। वर्षों बीत गए। लेकिन वशिष्ठ के मुंह से न निकली यह बात कि विश्वामित्र ब्राह्मण हैं। क्षत्रिय तो क्षत्रिय। और वशिष्ठ के मुंह से न निकली; कारण भी यही था कि अभी भी क्षत्रिय मौजूद था; अभी भी चेष्टा मौजूद थी। अहंकार मौजूद था कि मैं ब्राह्मण होकर रहूंगा! क्योंकि अगर ब्राह्मण जो कर सकता है, सब मैं कर रहा हूं। ब्राह्मण को जो शुद्धि चाहिए, सब मुझ में हो गई है। मंदिर पूरा तैयार है।
लेकिन मंदिर के पूरे तैयार होने से कोई परमात्मा की प्रतिष्ठा थोड़े
ही हो जाती है। मंदिर बिल्कुल तैयार है। सब ठीक है। लेकिन मंदिर में मूर्ति नहीं है। मूर्ति तुम न ला सकोगे। तुम तो मंदिर तैयार कर सकते हो। प्रार्थना कर सकते हो कि आओ, उतरो। आह्वान कर सकते हो। उतर आए परमात्मा, उतर आए। न उतरे, तुम क्या करोगे!
हमेशा उतर आता है, जब तुम खाली होते हो, जब मंदिर तैयार होता है। लेकिन थोड़ी अड़चन थी; विश्वामित्र खाली न थे; अहंकार से भरे थे, चेष्टा से भरे थे। वर्षों बीत गए, बुढ़ापा करीब आने लगा। और विश्वामित्र... । एक दिन शिष्यों ने कहा कि हम फिर गए थे पूछने। और वशिष्ठ को पूछा; उन्होंने कहा कि विश्वामित्र और ब्राह्मण? कभी नहीं। क्षत्रिय है और क्षत्रिय ही है। क्रोध आ गया; उठा ली तलवार। क्षत्रिय ही थे, भूल गए वे तप, तपश्चर्या,
सब तंत्र-मंत्र। सब बंद। खींच ली तलवार; एक क्षण में वर्षों की तपश्चर्या खो गई। वर्षों का ब्राह्मण का जो रूप था, खो गया।

रूप का कोई मूल्य नहीं है, अंतरात्मा चाहिए। अंतरात्मा क्षत्रिय की थी, चेष्टा, संकल्प। ब्राह्मण है समर्पण। क्षत्रिय है संकल्प, विल पावर। खींच ली तलवार; भागे।
पूरे चांद की रात थी। वशिष्ठ अपने झोपड़े के बाहर अपने शिष्यों से कुछ ब्रह्मचर्चा करते थे। मौका ठीक नहीं था, इस समय बीच में कूद पड़ना उचित न था। बहुत लोग थे। तो विश्वामित्र छिप गए एक झाड़ी के पीछे कि जब लोग विदा हो जाएंगे और वशिष्ठ अकेले रह जाएंगे, तो आज इसको खतम ही कर देना है। मैं और ब्राह्मण नहीं?
झाड़ी के पीछे छिपे बैठे सुनते रहे। चर्चा चलती थी, किसी शिष्य ने वशिष्ठ को पूछा कि आप विश्वामित्र को कब ब्राह्मण कहेंगे? उसकी पीड़ा को समझें! उसकी तपश्चर्या को देखें!
वशिष्ठ ने कहा, सब पूरा हो गया है। किसी भी क्षण कहने को मैं राजी हूं अब। जरा-सी कमी रह गई है। अहंकार शुद्ध हो गया है, लेकिन मौजूद है अभी। मैं ब्राह्मण कहने को तैयार हूं किसी भी क्षण। जरा-सी कमी है; एक बारीक रेखा अहंकार की रह गई है, बस। जिस क्षण पूरी हो जाए। विश्वामित्र करीब-करीब ब्राह्मण हैं। तुम से ज्यादा ब्राह्मण हैं।
वे जन्मजात ब्राह्मण थे, जो पूछ रहे थे। कहा, तुमसे ज्यादा ब्राह्मण हैं। लेकिन अगर इसी तरह का ब्राह्मण उनको बनना हो, तो मैं कहने को राजी हूं, इसमें क्या अड़चन है! मगर विश्वामित्र से बड़ी आशा है। बड़ी संभावना छिपी है उस आदमी के भीतर। और इसलिए मैं रोक रहा हूं, रोक रहा हूं, रोक रहा हूं। मैं उसी दिन कहूंगा, जिस दिन बात बिल्कुल पूरी हो जाए। उसके पहले कहने से रुकावट पड़ेगी।
सुना विश्वामित्र ने छिपे हुए झाड़ी में। फेंक दी तलवार, भागे। वशिष्ठ
के चरणों पर गिर पड़े। वशिष्ठ ने कहा, ब्राह्मण, उठो!
ब्राह्मण हो गए, एक क्षण में। हाथ में तलवार थी, क्षत्रिय था, राजस था।
एक क्षण में तलवार गिरी, संकल्प गिरा, समर्पण हुआ, पैर छू लिए, विनम्र हो गए। ब्राह्मण हो गए। ब्रह्म उतर आया।
ब्राह्मण का अर्थ है, जिसमें ब्रह्म उतर आया।
कृष्ण कहते हैं, पहली चीज ब्राह्मण परमात्मा ने बनाई। फिर ब्राह्मण
ने जो कहा, ब्रह्म को जानकर जो कहा, उससे वेद निर्मित हुए। वे परमात्मा से जरा दूर हैं; जरा-सी दूरी है। ब्राह्मण बीच में खड़ा है, ब्रह्मज्ञानी।
ब्रह्मज्ञानी परमात्मा के निकटतम है। फिर ब्रह्मज्ञानी ने जो कहा।
वह भी परमात्मा ही बोल रहा है; क्योंकि अब ब्रह्मज्ञानी है नहीं, अब तो ब्रह्म ही है; वही बोल रहा है। लेकिन एक सीढ़ी का फासला है। बीच में गुरु खड़ा है, ब्रह्मज्ञानी खड़ा है, ब्राह्मण खड़ा है।
ब्राह्मण ने जो बोला, वे वेद। और वेद को मानकर जो किया जा सकता है, वह यज्ञादि।
और एक कदम का फासला हो गया। वेद को मानकर जो कृत्य किए जा सकते हैं, कर्म-कांड, वह यज्ञ इत्यादि। परमात्मा, ब्राह्मण, वेद, यज्ञ।
जो तमस प्रकृति का व्यक्ति है, वह यज्ञादिकों को चुनेगा। जो रजस प्रकृति का व्यक्ति है, वह वेद आदि को चुनेगा। जो सत्व प्रकृति का व्यक्ति है, वह गुरु, ब्राह्मण, सदगुरु को चुनेगा।
अगर ब्राह्मण उपलब्ध हो, तो वेद को मत चुनना। क्योंकि क्या फायदा सेकेंड हैंड, बासे शब्दों में! जब ब्राह्मण उपलब्ध हो, जहां से कि ताजी सरिता अभी वेद की पैदा हो रही हो, तो वेद को मत चुनना।
अगर गुरु उपलब्ध हो, तो शास्त्र व्यर्थ। अगर गुरु उपलब्ध न हो, तो शास्त्र को चुनना, क्रिया-कांड को मत चुनना। शास्त्र को समझना। शास्त्र समझने के लिए है, करने के लिए नहीं। समझ से मुक्ति होती है। समझ पर्याप्त है।
जो शास्त्र के रहते क्रिया-कांड चुन लेता है, वह निपट मूढ़ है। लेकिन अगर शास्त्र भी उपलब्ध न हो, तब क्रिया-कांड ही शेष रह जाता है। क्रिया- कांड आखिरी प्रतिध्वनि है परमात्मा की।
एक आदमी मंदिर में थाली लेकर पूजा कर रहा है। यह आखिरी ध्वनि है परमात्मा की। फिर एक आदमी गीता का अध्ययन कर रहा है, स्वाध्याय कर रहा है,

समझने की कोशिश कर रहा है। यह जरा निकट है। यह मंदिर में आरती उतारने से ज्यादा निकट है। यह आग जलाकर, उसमें घी फेंकने से ज्यादा निकट है। यह क्रिया-कांड से ज्यादा गहरी है, क्योंकि यह चैतन्य में प्रवेश करेगी। फिर एक आदमी गुरु के पास बैठा है, कुछ भी नहीं कर रहा है। न क्रिया- कांड है गुरु के पास, न शास्त्र का अध्ययन है। सामीप्य है, सत्संग है। गुरु के पास बैठा है। सिर्फ पास होना है, निकटता है, कुछ घट रहा है।
तीन ही तरह के व्यक्ति हैं और तीन ही परमात्मा के कदम हैं।
यज्ञादिकों से बचा जा सकता है, तो बचना। शास्त्रों से बचा जा सके, बचना। अगर गुरु खोज सको जीवित, ब्राह्मण खोज सको जीवित, तो वहां से ब्रह्म का सीधा, निकटतम द्वार है।
यह भी संभव है कि बिना गुरु के भी ब्रह्म मिल जाए। अगर वह भी संभव हो सके, तो गुरु से भी बचना। लेकिन वह अति कठिन है। कठिन तो है यज्ञ से ही बचना। फिर और कठिन है शास्त्र से बचना। फिर अति कठिन है गुरु से बचना। अपनी जीवन-स्थिति को सोचकर अपने कदम को चुनना।
ब्राह्मण, वेद तथा यज्ञादिक रचे... ।
ब्रह्मवादिन श्रेष्ठ पुरुषों की शास्त्र-विधि से नियत की हुई यज्ञ, दान और तप-रूप क्रियाएं सदा ओम, ऐसे परमात्मा के नाम को उच्चारण करके ही आरंभ होती हैं।
सारे शास्त्र भारत के ओंकार से शुरू होते हैं, ओंकार पर पूर्ण होते हैं। यह प्रतीक है। यह प्रतीक है कि परमात्मा ही प्रारंभ है और परमात्मा ही अंत है। वहीं से तुम आते हो, वहीं लौट जाते हो। वहां वर्तुल पूरा होता है। वही पहला कदम, वही आखिरी कदम। वही जन्म, वही मृत्यु। इसलिए ओम से शुरू होते हैं, ओम पर पूर्ण होते हैं।
और ऐसा ही तुम्हारा जीवन होना चाहिए; ओम से शुरू हुआ है, ओम पर ही पूर्ण हो। शुरू तो ओम से ही हुआ है, तुम्हें चाहे पता भी न हो। तुम्हें पता भी नहीं हो सकता, जब तक ओम पर पूर्ण न हो। जिस दिन ओम पर पूर्ण होगा, उस दिन तुम जानोगे कि ओम से ही शुरू हुआ, ओम में ही चला, ओम में ही पूरा हुआ।
जैसे मछली सागर में पैदा होती है, सागर में ही जीती, सागर में ही लीन
हो जाती। ऐसे ही, शास्त्रों में प्रतीक है, कि ओम से शुरू होता, ओम पर पूर्ण होता। ऐसा ही तुम्हारा जीवन भी हो। तुम्हारा प्रत्येक कृत्य ओम से शुरू हो और ओम पर पूरा हो।
थोड़ा ख्याल करो। तुम दुकान पर बैठो, ओम से ही दुकान खोलो। यह ओम कई तरह
का हो सकता है। यह ओम सिर्फ यज्ञादिक हो सकता है। तब करीब-करीब व्यर्थ है। तुमने कह दिया, लेकिन कुछ प्रयोजन नहीं है। आदत है, एक औपचारिकता है; पूरा कर दिया।
लेकिन यह भाव का भी हो सकता है। यह गहरा भी हो सकता है। तुमने पूरे हृदय से कहा, तो तुम्हारे जीवन की प्रक्रिया में अंतर पड़ जाएंगे। तो तुम दुकान पर बैठोगे, लेकिन तुम वही न हो पाओगे, जो कल तक थे। और जब ग्राहक आएगा और तुम कुछ बेचना शुरू करोगे, अगर ओम से ही शुरू किया, तो तुम ग्राहक को उस आसानी से न लूट पाओगे, जिस आसानी से तुम लूट लेते। थोड़ी करुणा होगी, थोड़ी दया होगी, थोड़ा सदभाव होगा।
प्रत्येक कृत्य को ओम से शुरू करने की अगर दृष्टि आ जाए भाव से, तो तुम पाओगे, एक छोटी-सी घटना तुम्हारे पूरे जीवन को बदल देती है। लेकिन उपचार हो, तो कोई सार नहीं।
ऐसा हुआ, मैं एक घर में मेहमान था आगरा में। और घर के जो मालिक थे, एक बड़े फोटोग्राफर थे और बड़े भक्त थे। पहली ही दफा उनके घर मेहमान था, तो उन्होंने कहा कि आपको स्टूडियो चलना पड़ेगा। घर से ही लगा हुआ स्टूडियो था। और कुछ चित्र आपके मैं बिना लिए नहीं जाने दूंगा। तो मैंने कहा कि ठीक है। मैं गया।
देखा तो बड़े धार्मिक आदमी थे। धार्मिक अतिशय थे, जितनी कि अपेक्षा भी नहीं कर सकते। मुझे कुर्सी पर बिठाएं, तो ओम; प्लग लगाएं बिजली का, तो ओम; पंखा चलाएं, तो ओम। अदभुत आदमी हैं! और मैं तो पहली दफे ही, तो उनको जानता भी नहीं था। कुर्सी उठाएं, तो ओम। हर काम करें, तो ओम। बटन दबाएं कैमरे की, तो ओम।

और मेरे साथ एक मेरे मित्र थे, जो मिलने मुझे आए थे। आगरा ही रहते हैं।
वे मेरे पास ही बैठे थे एक कुर्सी पर। एक नौकरानी निकली और उन्होंने कहा कि मुझे जरा प्यास लगी है; एक गिलास पानी ले आओ।
वे फोटोग्राफर सज्जन एकदम नाराज हो गए, बोले, ओम। शर्म नहीं आती, मर्द होकर और स्त्री को आज्ञा देते हो!
मैं थोड़ा हैरान हुआ कि मामला क्या है। इसमें ऐसी कोई नाराज होने की बात न थी। लेकिन इसके पहले भी उन्होंने ओम जरूर कहा। ओम, शर्म नहीं आती, मर्द होकर स्त्री को आज्ञा देते हो? खुद जाते नहीं बनता?
तो वे आदमी उठकर बाहर चले गए। मैं थोड़ा चौंका। जब वे बाहर चले गए, तब उन्होंने कहा, यह आदमी कम्युनिस्ट है। मगर इसके पहले भी उन्होंने कहा, ओम। यह आदमी कम्युनिस्ट है और नास्तिक को मैं पानी भी नहीं पिलाना चाहता। आप कुछ और मत सोचना। इसलिए आप यह मत सोचना कि मैं कोई... मगर नास्तिक को मैं पानी भी नहीं पिलाना चाहता।
मगर यह आदमी ओम कहे जा रहा है; कोई प्यासा हो, उसको पानी नहीं पिला सकता। इसके पहले भी ओम कहता है। यह ओम यांत्रिक हो गया। अब इसको पता ही नहीं कि यह क्या कर रहा है; यह ओम पागलपन हो गया। इस ओम से इसका कोई संबंध भी न रहा। यह ओम अब अपने आप ही चल रहा है। यह किसी की हत्या भी करेगा, तो कहेगा, ओम, फिर छुरा मारेगा। निकालेगा छुरा, तो कहेगा, ओम! इसको कुछ पता नहीं रहा कि यह क्या कर रहा है।
अधिक लोगों का जीवन धर्म के नाम पर ऐसा ही यांत्रिक हो जाता है।
नहीं, ओम के भी तीन रूप हैं। एक--यज्ञादिक, कर रहे हैं। दूसरा--वेद से, बोध से, अध्ययन से, स्वाध्याय से, मनन से, चिंतन से। और तीसरा--ब्राह्मण जैसा, भाव से, अंतर्भाव से!
और तत अर्थात तत नाम से कहे जाने वाले परमात्मा का ही यह सब है, ऐसे भाव से फल को न चाहकर नाना प्रकार की यज्ञ, तप-रूप क्रियाएं तथा दान-रूप क्रियाएं मोक्ष की आकांक्षा वाले पुरुषों द्वारा की जाती हैं।
इस वचन में एक बड़ा गहरा विरोधाभास है। तुम्हें अड़चन मालूम होगी! क्योंकि यह कहता है कि ऐसा यह सब उसी का है, ऐसे भाव से फल को न चाहकर मोक्ष की आकांक्षा वाले पुरुषों द्वारा... ।
तो मोक्ष की आकांक्षा तो फल की चाह है। तो यह सूत्र तो बड़ी उलझन में डालने वाला है। मगर कोई उलझन है नहीं, अगर समझ लो, तो बात सीधी-सीधी है। मोक्ष की आकांक्षा पहले पैदा होती है। तुमने संसार की आकांक्षा की है। स्वभावतः, तुम आकांक्षा करने में कुशल हो गए हो। तुम कुछ और कर भी नहीं सकते। तुम अचानक अनाकांक्षा कैसे करोगे? अचाह कैसे करोगे? तुम्हें पहले तो संसार की आकांक्षा की जगह मोक्ष की आकांक्षा करनी पड़ेगी। लेकिन जैसे ही तुमने मोक्ष की आकांक्षा की, तुम मुश्किल में पड़ोगे। क्योंकि संसार की आकांक्षा से संसार मिल जाता है; मोक्ष की आकांक्षा से मोक्ष नहीं मिलता। इसे तुम थोड़ा ठीक से समझ लो। संसार की आकांक्षा से संसार मिल जाता है। अगर तुम ठीक से दौड़-धूप करोगे, तो धन कमा ही लोगे; इसमें ऐसी क्या अड़चन है? अगर न कमा पाओ, तो दौड़-धूप ठीक से नहीं की, इतना ही सिद्ध होता है।
अगर तुम पद पर पहुंचना चाहते हो, तो पहुंच ही जाओगे। गधे पहुंच गए हैं,
तो तुम्हें क्या अड़चन है! कोई भी पहुंच सकता है। सिर्फ एक पागलपन चाहिए दौड़ने का। और फिर किसी की सुनने की बुद्धि नहीं चाहिए, बुद्धि चाहिए ही नहीं पद पर पहुंचने के लिए। बुद्धि अड़चन बन जाती है। तुमने किसी की सुनी, तो दूसरा निकल जाएगा आगे उतनी देर में! तुम सुनना ही मत!
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन बाजार गया था, और एक दुकान पर साड़ियां खरीदने गया था। साड़ियां सस्ते में बिक रही थीं। दुकान बंद होने को थी। और सस्ते में साड़ियां नीलाम हो रही थीं। तो बहुत स्त्रियां पहुंच गई थीं। वह बेचारा सज्जनता के वश पीछे-पीछे खड़ा था। स्त्रियां कोई सज्जन तो होती नहीं! सज्जनता का स्त्रियों से क्या लेना-देना! स्त्री स्त्री है। सज्जनता तो पुरुषों के लिए है। वह पीछे खड़ा था। स्त्रियां तो धूम-धड़ाका मचाकर भीतर घुस रही थीं। वहां कोई क्यू नहीं, कोई हिसाब नहीं।
वह कोई घंटेभर खड़ा रहा, पीछे ही पीछे रहे, आगे जाने का कोई उपाय ही न था। और पत्नी जान खा लेगी कि साड़ी बिना लिए आ गए। आखिर उसने भी एकदम से

धक्का दिया। सिर झुकाकर नीचे, जैसे कि बैल घुस जाए भीड़ में, ऐसा वह स्त्रियों की भीड़ में घुस गया जोर से!
आखिर कई स्त्रियां चौंकीं और उन्होंने कहा कि शर्म नहीं आती, मर्द होकर और सभ्य आदमी होकर असभ्य व्यवहार कर रहे हो? पुरुषोचित व्यवहार करो! उसने कहा, चुप रहो! पुरुषोचित व्यवहार घंटेभर से कर रहा हूं। अब स्त्रियोचित व्यवहार करता हूं।
तो अगर पद चाहिए और तुम चूक जाओ, तो उसका कुल मतलब इतना ही है कि तुम जरा सज्जनता का व्यवहार कर रहे थे, और कुछ मामला नहीं है। तुम्हें पागल बैल की तरह सिर झुकाकर घुस जाना चाहिए था। तुम दिल्ली पहुंचकर ही रुकते। कोई बीच में रोकने वाला तुम्हें मिलने वाला नहीं था। एक दफा भीड़ में घुसने की हिम्मत हो, तो फिर भीड़ ही तुम्हें लिए चली जाती है। फिर तुम्हें पता ही नहीं चलता कि कैसे दिल्ली पहुंचे! पहुंच ही जाते हो।
संसार में तो आकांक्षा पूरी हो जाती है। आकांक्षा और संसार का कोई विरोध नहीं है। क्योंकि क्षुद्र की आकांक्षा है। क्षुद्र तो आकांक्षा से मिल जाता है, विराट नहीं मिलता।
अब यहां तुम बड़ी अड़चन पाओगे। तुम्हें धर्मगुरु समझाते हैं कि आकांक्षा से संसार में कुछ न मिलेगा। मैं तुमसे कहता हूं, आकांक्षा से सब मिल जाता है। जिनको नहीं मिलता, उन्होंने ठीक से नहीं की। या की, तो कुनकुनी! पूरी उबली नहीं; पूरे प्राण न लगाए। या प्राण भी लगाए, तो मोक्ष को भी बचाने की चेष्टा साथ में जारी रखी कि धन भी कमा लें और ईमानदारी भी बची रहे।
अब ऐसा कहीं हो सकता है! धन कमाना है, तो बेईमानी रास्ता है। वह तो उसका गणित है। धन कमाना है, तो बेईमान होने को राजी हो जाओ। फिर मोक्ष की फिक्र छोड़ दो। फिर धर्म और धन दोनों को सम्हाला, तो दो नावों पर सवार रहे; कहीं न पहुंचोगे।
तो जिसको जाना है संसार में, वह निश्चित पहुंच जाता है। धर्मगुरु तुमसे ठीक नहीं कहते। वे तुमसे कहते हैं, परमात्मा की आकांक्षा करो; क्या संसार की आकांक्षा कर रहे हो! और मैं तुमसे कहता हूं, यह बात ही उलटी है। संसार की आकांक्षा करने वाला तो संसार को पा ही लेता है। सिकंदर सिकंदर हो जाते हैं। नेपोलियन नेपोलियन हो जाते हैं। मिल जाता है।
परमात्मा की आकांक्षा असंभव आकांक्षा है। वह आकांक्षा से मिलता ही नहीं। लेकिन पहला कदम यही होगा कि संसार को चाह-चाहकर तुमने कुछ सार न पाया... ।
दो तरह के लोग हैं संसार में। एक, जिन्होंने पा लिया सब कुछ जो चाहते थे, लेकिन पाकर भी सार न पाया। क्योंकि सार तो यहां है नहीं। सार तो परमात्मा है। और दूसरे, जिन्होंने पाने की ठीक से कोशिश न की, इसलिए आकांक्षा में जले पड़े रहे।
पहले लोग ही ठीक अर्थों में धार्मिक हो सकते हैं। दूसरे तरह के लोग ठीक अर्थों में धार्मिक नहीं हो सकते। धार्मिक होने के लिए संसार की दौड़ असार सिद्ध हो जानी चाहिए; तब नई दौड़ शुरू होती है। तब तुम पूरे प्राणपण से नई दौड़ में लगते हो। तब तुम परमात्मा को चाहते हो, मोक्ष चाहते हो, सत्य चाहते हो। एक आकांक्षा पैदा होती है, मोक्ष की आकांक्षा!
लेकिन जब मोक्ष की आकांक्षा में तुम दौड़ोगे, तब तुम्हें धीरे-धीरे पता चलेगा कि मोक्ष की आकांक्षा करना मोक्ष से बचने का उपाय है। यहां तो आकांक्षा गिर जाए, तो मोक्ष मिलता है। क्योंकि मोक्ष का अर्थ ही आकांक्षा से मुक्त हो जाना है; कोई और अर्थ नहीं है। परमात्मा को पाने का अर्थ ही यह है कि जहां पाने की कोई चाह न रही, वहीं परमात्मा उपलब्ध हो जाता है। इसलिए विपरीत शब्दों का उपयोग कृष्ण ने किया है।
वे कहते हैं, फल को न चाहकर मोक्ष की आकांक्षा करने वाले पुरुषों द्वारा... ।
मोक्ष की आकांक्षा पैराडाक्सिकल है, विरोधाभासी है। वहां आकांक्षा बाधा है।

शुरू आकांक्षा से करोगे, अंत निराकांक्षा पर होगा। चढ़ोगे चाह से; धीरे-धीरे अनुभव बताएगा कि चाह पहुंचाती नहीं, भटकाती है। तब एक दिन चाह गिर जाएगी। और जहां तुम अचाह हुए, वहीं उपलब्धि है।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग आठ
गीता दर्शन अध्याय 17
ग्यारहवां प्रवचन

मन का महाभारत

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते।। 26।।
यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते।। 27।।
अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह।। 28।।
और सत्, ऐसे यह परमात्मा का नाम सत्य-भाव में और श्रेष्ठ-भाव में प्रयोग किया जाता है। तथा हे पार्थ, उत्तम कर्म में भी सत शब्द प्रयोग किया जाता है।
तथा यज्ञ, तप और दान में जो स्थिति है, वह भी सत है, ऐसे कही जाती है। और
उस परमात्मा के अर्थ किया हुआ कर्म निश्चयपूर्वक सत है, ऐसे कहा जाता है।
और हे अर्जुन, बिना श्रद्धा के होमा हुआ हवन तथा दिया हुआ दान एवं तपा हुआ तप और जो कुछ भी किया हुआ कर्म है, वह समस्त असत है, ऐसे कहा जाता है।
इसलिए वह न तो इस लोक में लाभदायक है और न मरने के पीछे ही।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः कहा जाता है कि कृष्ण द्वारा अठारहवां अध्याय पूरा करते ही महाभारत का युद्ध प्रारंभ हो गया था। क्या आपके द्वारा भी अठारहवां अध्याय पूरा होने पर किसी महाभारत की संभावना है? ज्योतिषी भी कहते हैं कि बाईस जुलाई को आठ ग्रह एक ही स्थान पर इकट्ठे हो रहे हैं।

महाभारत न तो कभी शुरू होता और न कभी अंत; वह मनुष्य के अज्ञान के साथ चलता ही रहता है। कृष्ण ने गीता कही, उसके पहले भी वह चल रहा था; कृष्ण ने गीता पूरी की, तब भी वह चलता रहा।
अज्ञान ही महाभारत है। कभी शीत, कभी गर्म; कभी प्रकट, कभी अप्रकट, लेकिन मूर्च्छा में तुम लड़ते ही रहोगे। मूर्च्छा में लड़ना ही जीवन मालूम होता है।
हजार रूपों में युद्ध चल रहा है; तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता। युद्ध के लिए कोई आकाश से बम-वर्षा होनी आवश्यक नहीं है। वह तो आखिरी परिणति है। वह तो युद्ध का आखिरी रूप है। लेकिन तैयारी तो घर-घर में चलती है; तैयारी तो हृदय-हृदय में चलती है। युद्ध युद्ध के मैदानों पर नहीं लड़े जाते, मनुष्य के अंधकार में लड़े जाते हैं।
इसे ठीक से समझ लो, अन्यथा धोखा खड़ा होता है। पहला तो धोखा यह खड़ा हो जाता है कि हम सोचने लगते हैं, महाभारत कोई बाहर का युद्ध है।
महाभारत बाहर का युद्ध नहीं है। अगर युद्ध बाहर का होता, तो गीता के जन्म का उपाय ही न था। युद्ध तो भीतर का है। बाहर भी उसकी प्रतिध्वनि सुनी जाती है; बाहर भी परिणाम होते हैं। लेकिन युद्ध सदा भीतर है।
तुम चौबीस घंटे बंटे हुए हो, लड़ रहे हो। किसी दूसरे से तो बाद में लड़ोगे, पहले तुम अपने से लड़ रहे हो।
एक भी ऐसी तुम्हारे जीवन की पल-दशा नहीं है, जब तुम्हारा किसी न किसी अर्थों में संघर्ष न चल रहा हो। और जहां संघर्ष है, वहां कैसे शांति होगी? और जहां संघर्ष है, वहां कैसे समाधि फलित होगी? फिर तुम्हारा संघर्ष, तुम जिनसे जुड़े हो, उनमें फैल जाता है--क्षुद्र बातों पर!
तुमने कभी ध्यान दिया, कितनी छोटी बातों पर तुम लड़ते हो। जैसे बातें
तो बहाना हैं; लड़ना तुम चाहते हो, इसलिए कोई भी बहाना काम दे देता है।
एक बड़ी प्रसिद्ध हंगेरियन कहानी है कि एक आदमी का विवाह हुआ। झगड़ैल प्रकृति का था, जैसे कि आदमी सामान्यतः होते हैं। मां-बाप ने यह सोचकर कि

शायद शादी हो जाए तो यह थोड़ा कम क्रोधी हो जाए, थोड़ा प्रेम में लग जाए, जीवन में उलझ जाए तो इतना उपद्रव न करे, शादी कर दी।
शादी तो हो गई। और आदमी झगड़ैल होते हैं, उससे ज्यादा झगड़ैल स्त्रियां होती हैं। झगड़ैल होना ही स्त्री का पूरा शास्त्र है, जिससे वह जीती है। मां-बाप लड़की के भी यही सोचते थे कि विवाह हो जाए, घर-गृहस्थी बने, बच्चा पैदा हो, सुविधा हो जाएगी। उलझ जाएगी, तो झगड़ा कम हो जाएगा।
लेकिन जहां दो झगड़ैल व्यक्ति मिल जाएं, वहां झगड़ा कम नहीं होता; दो गुना भी नहीं होता; अनंत गुना हो जाता है। जब दो झगड़ैल व्यक्ति मिलते हैं, तो जोड़ नहीं होता गणित का; दो और दो चार, ऐसा नहीं होता; गुणनफल हो जाता है। पहली ही रात, सुहागरात, पहला ही--भेंट में जो चीजें आई थीं, उनको खोलने
को दोनों उत्सुक थे--पहला डब्बा हाथ में लिया; बड़े ढंग से पैक किया गया था। पति ने कहा कि रुको, यह रस्सी ऐसे न खुलेगी। मैं अभी चाकू ले आता हूं। पत्नी ने कहा कि ठहरो, मेरे घर में भी बहुत भेंटें आती रहीं। हम भी बहुत भेंटें देते रहे हैं। तुमने मुझे कोई नंगे-लुच्चों के घर से आया हुआ समझा है? ऐसे सुंदर फीते चाकुओं से नहीं काटे जाते, कैंची से काटे जाते हैं। झगड़ा भयंकर हो गया कि फीता चाकू से कटे कि कैंची से कटे। दोनों की इज्जत का सवाल था। बात इतनी बढ़ गई कि डब्बा उस रात तो काटा ही न जा सका; सुहागरात भी नष्ट हो गई उसी झगड़े में। और विवाद, क्योंकि प्रतिष्ठा का सवाल था; दोनों के परिवार दांव पर लगे थे कि कौन सुसंस्कृत है!
वह बात इतनी बढ़ गई कि वर्षों तक झगड़ा चलता रहा। फिर तो बात ऐसी सुनिश्चित हो गई कि जब भी झगड़े की हालत आए, तो पति को इतना ही कह देना काफी था, चाकू! और पत्नी उसी वक्त चिल्लाकर कहती, कैंची! वे प्रतीक हो गए। वर्षों खराब हो गए। आखिर पति के बरदाश्त के बाहर हो गया। और डब्बा अनखुला रखा है। क्योंकि जब तक यही तय न हो कि कैंची या चाकू, तब तक वह खोला कैसे जाए। कौन खोलने की हिम्मत करे?
एक दिन बात बहुत बढ़ गई, तो पति समझा-बुझाकर झील के किनारे ले गया पत्नी को। नाव में बैठा; दूर जहां गहरा पानी था, वहां ले गया; और वहां जाकर बोला कि अब तय हो जाए। यह पतवार देखती है, इसको तेरी खोपड़ी में मारकर पानी में गिरा दूंगा। तैरना तू जानती नहीं है; मरेगी। अब क्या बोलती है? चाकू या कैंची? पत्नी ने कहा, कैंची।
जान चली जाए, लेकिन आन थोड़े ही छोड़ी जा सकती है! रघुकुल रीत सदा चली आई, जान जाय पर वचन न जाई।
पति भी उस दिन तय ही कर लिया था कि कुछ निपटारा कर ही लेना है। यह तो जिंदगी बरबाद हो गई। और चाकू-कैंची पर बरबाद हो गई!
लेकिन वह यही देखता है कि पत्नी बरबाद करवा रही है। यह नहीं देखता कि मैं भी चाकू पर ही अटका हुआ हूं, अगर वह कैंची पर अटकी है। तो दोनों कुछ बहुत भिन्न नहीं हैं। पर खुद का दोष तो युद्ध के क्षण में, विरोध के क्षण में, क्रोध के क्षण में दिखाई नहीं पड़ता।
उसने पतवार जोर से मारी; पत्नी नीचे गिर गई। उसने कहा, अभी भी बोल दे!
तो भी उसने डूबते हुए आवाज दी, कैंची। एक डुबकी खाई, मुंह-नाक में पानी चला गया। फिर ऊपर आई। फिर भी पति ने कहा, अभी भी जिंदा है। अभी भी मैं तुझे बचा सकता हूं, बोल! उसने कहा, कैंची। अब पूरी आवाज भी नहीं निकली; क्योंकि मुंह में पानी भर गया। तीसरी डुबकी खाई; ऊपर आई। पति ने कहा, अभी भी कह दे; क्योंकि यह आखिरी मौका है! अब वह बोल भी नहीं सकती थी। डूब गई। लेकिन उसका एक हाथ उठा रहा और दोनों अंगुलियों से कैंची चलती रही। दोनों अंगुलियों से वह कैंची बताती रही--डूबते-डूबते, आखिरी क्षण में।
महाभारत के लिए कोई कुरुक्षेत्र नहीं चाहिए; महाभारत तुम्हारे मन में है। क्षुद्र पर तुम लड़ रहे हो। तुम्हें लड़ने के क्षण में दिखाई भी नहीं पड़ता कि किस क्षुद्रता के लिए तुमने आग्रह खड़ा कर लिया है। और जब तक तुम्हारा अज्ञान गहन है, अंधकार गहन है, अहंकार सघन है, तब तक तुम देख भी न पाओगे कि तुम्हारा पूरा जीवन एक कलह है। जन्म से लेकर मृत्यु तक, तुम जीते नहीं, सिर्फ लड़ते हो। कभी-कभी तुम दिखलाई पड़ते हो कि लड़ नहीं रहे हो, वे लड़ने की तैयारी के क्षण होते हैं; जब तुम तैयारी करते हो।

गीता के शुरू और अंत होने से कोई संबंध नहीं है। न ही आठ ग्रहों के इकट्ठे होने से कुछ लेना-देना है।
आदमी हमेशा दोष दूसरे पर देने में बड़ा कुशल है। युद्ध तुम करोगे; आठ ग्रहों का मिलना जिम्मेवार होगा। वह भी तरकीब है; बेईमानी है। युद्ध तुम करोगे, लड़ोगे तुम, युद्ध तुम्हारे भीतर से आएगा, आठ निर्दोष ग्रहों के मिलने से युद्ध का क्या लेना-देना?
लेकिन हम हमेशा ही दोष किसी को देकर अपने को बचा लेना चाहते हैं। जब कोई भी नहीं मिलता, तो निर्दोष ग्रह मिल जाते हैं; कि ग्रह मिल रहे हैं, कि सूर्यग्रहण हो गया, कि चंद्रग्रहण हो गया।
आदमी क्या-क्या तरकीबें निकालता है, सिर्फ एक बात को देखने से बचने के लिए कि तुम्हारे भीतर शांति नहीं है। तुम अशांत हो। तुम जो भी करोगे, तुम जो भी छुओगे, वहीं तुम अशांति का रोग फैलाओगे। तुम जिसके पास जाओगे, वहीं कलह खड़ी हो जाएगी। तुम प्रेम करने जाओगे और सिर्फ घृणा पैदा होगी। तुम सोना छुओगे और मिट्टी हो जाएगा।
रोग तुम्हारे भीतर है, आठ ग्रह तुम्हारे भीतर मिले हुए हैं। और तब पंडित हैं, पुजारी हैं, वे मिल जाएंगे कि युद्ध आने के करीब है; आठ ग्रह मिल रहे हैं; शांति के लिए महायज्ञ होने चाहिए। करोड़ों रुपये महायज्ञों पर फूंके जाएंगे।
महायज्ञ की जरूरत तुम्हारे भीतर है। और वहां किसी अग्नि में घी डालने
से काम न चलेगा, वहां तो परमात्मा की अग्नि में तुम्हें स्वयं को ही डालना पड़ेगा। वही एक मात्र यज्ञ है, जीवन-यज्ञ, जहां तुम अपनी आहुति दे देते हो और अपने अहंकार को जल जाने देते हो। अहंकार के बाद जो बच रहता है, फिर कोई युद्ध नहीं है; फिर कोई उपाय ही नहीं है युद्ध का।
तुम्हारे भीतर सूत्र टूटना चाहिए।
आदमी जैसा है, वैसा तो लड़ता ही रहेगा। कितना ही बचाओ, कितना ही समझाओ, अहिंसा का पाठ पढ़ाओ, कोई फर्क न पड़ेगा। वह अहिंसा के लिए लड़ेगा। कोई फर्क नहीं पड़ता। तलवारें उठ जाएंगी, अहिंसा की रक्षा करनी है। कितना ही धर्म सिखाओ; वह धर्म के लिए लड़ेगा, इस्लाम खतरे में है, हिंदू धर्म खतरे में है। कोई भी मूढ़ जोर से शोरगुल मचा दे, हिंदू धर्म खतरे में है, फिर कोई नहीं पूछता कि हिंदू धर्म है कहां, जो खतरे में है? कहीं धर्म भी खतरे में होते हैं? लेकिन लड़ने के लिए बहाने हैं। कोई भी बहाने काम दे जाते हैं। आदमी ऐसी-ऐसी चीजों पर लड़ा है कि भरोसा नहीं आता अब। बड़ी क्षुद्र बातों पर लड़ा है। इससे एक बात सिद्ध होती है कि बातों से कोई संबंध ही नहीं है; आदमी लड़ना चाहता है। बातें तो बहाने हैं; वे तो खूंटियां हैं जिन पर हम अपने भीतर की घृणा, विद्वेष, ईर्ष्या, जलन टांग देते हैं। खूंटियों का क्या लेना-देना? कोट तुम खूंटी न मिलेगी, तो दरवाजे के कोने पर टांग दोगे। कहीं न कहीं जगह खोज लोगे टांगने के लिए।
असली सवाल युद्ध नहीं है; असली सवाल मनुष्य की युद्ध से भरी चित्त-दशा है। और इस चित्त-दशा को तुम थोड़ा गहराई से समझने की कोशिश करो। क्योंकि इस चित्त-दशा का जो पहला आधार-बिंदु है, वह अपने से लड़ना है।
दूसरे से लड़ने तो तुम बाद में जाते हो, पहले तुम अपने से लड़ते हो। और तुम्हारे तथाकथित आदर्शवादियों ने तुम्हें वह लड़ाई सिखाई है। वे कहते हैं, तुम्हारे भीतर क्रोध है, लड़ो क्रोध से। युद्ध शुरू हुआ। तुम्हारे भीतर कामवासना है, लड़ो कामवासना से। युद्ध शुरू हुआ। और जब तुम अपने से लड़ोगे, तो तुम दुनिया में किसी के भी साथ बिना लड़े नहीं रह सकते। जो अपने से बिना लड़े नहीं रह सका, वह किस से बिना लड़े रह जाएगा!
इसलिए समस्त युद्धों के पीछे शैतानों का हाथ नहीं है, तुम्हारे तथाकथित महात्माओं का हाथ है। उन्होंने तुम्हें विभाजित कर दिया, तोड़ दिया दो हिस्सों में। वे कहते हैं, तुम्हारे नीचे का हिस्सा बुरा, ऊपर का हिस्सा अच्छा। लड़ो! तुम्हारे भीतर शैतान छिपा है, उससे लड़ो। वे तुम्हें खंडित करते हैं। और तुम्हें एक युद्धस्थल में बदल देते हैं।
फिर तुम अपने से ही लड़ते हो। जैसे कोई अपने ही दाएं-बाएं हाथ को लड़ाए।
जीत कभी नहीं होती; सिर्फ मिटते हो, नष्ट होते हो, समाप्त होते हो, सड़ते हो।

और जितना ही जीवन खोता जाता है लड़ाई में, उतना ही क्रोध बढ़ता जाता है। क्योंकि तुम जीवन के आनंद को अनुभव नहीं कर पाए। आए और गए; अवसर ऐसे ही खो गया। मंदिर के द्वार तक पहुंच गए थे और द्वार के भीतर प्रवेश न हुआ। अधूरे, अपूर्ण, अतृप्त विदा हो गए। मौत करीब आ जाती है।
तुम्हारे आदर्शवादियों ने तुम्हें अपने से लड़ना सिखाया है। कृष्ण की सारी शिक्षा यही है अर्जुन से कि तू अपने से मत लड़, तू अपने को स्वीकार कर। तू क्षत्रिय है, तू ब्राह्मण होने की नाहक चेष्टा मत कर। वह तेरा गुणधर्म नहीं है; वह तेरा स्वभाव नहीं है।
कृष्ण सभी महात्माओं के विपरीत हैं। इसलिए महात्मा कृष्ण का नाम लेने में भी जरा डरते हैं। और अगर लेते हैं, तो कृष्ण के ऊपर अपनी धारणाएं थोप देते हैं, अपनी व्याख्या थोप देते हैं।
कृष्ण का मूल संदेश क्या है अर्जुन को? एक छोटी-सी बात कृष्ण उसे समझा रहे हैं कि जो तेरा स्वधर्म है, जो तेरा होने का ढंग है, जैसा तू आदमी है, तू क्षत्रिय है, तू लड़ाका है। तेरे जीवन की सारी कला, तेरी सारी कुशलता तेरी वीरता में है, तेरे क्षत्रियत्व में है। आज अचानक तू ब्राह्मण होने के ख्याल से भर रहा है; आज अचानक तू अपने क्षत्रिय से लड़ने जा रहा है... । अर्जुन सोचता है कि वह एक बड़े युद्ध से बच रहा है। और कृष्ण देख रहे हैं कि वह एक बड़े युद्ध की शुरुआत कर रहा है। यह बड़ा बुनियादी और बारीक मामला है।
अर्जुन तो ऊपर से ऐसे ही दिखाई पड़ता है, यह कह रहा है कि मुझे जाने दें; संन्यस्त हो जाऊंगा। वानप्रस्थ दशा पैदा हो गई। अब तो विराग आ गया। अब क्या मारना इन लोगों को! इस युद्ध में मुझे कोई रस नहीं मालूम होता।
हे कृष्ण, मेरा गांडीव शिथिल हो गया है; मेरे गात शिथिल हो गए हैं। लड़ने का कोई उन्मेष नहीं है, लड़ने की कोई ऊर्जा नहीं है, लड़ने का कोई भाव नहीं है। इन अपनों को मारकर मैं क्या करूंगा! इससे तो अच्छा है, मैं संन्यस्त हो जाऊं। क्या सार है धन को पा लेने में? पद-प्रतिष्ठा, राज, सिंहासन, करूंगा क्या? अपने ही न बचेंगे, भोगने वाले न बचेंगे, उत्सव मनाने वाले न बचेंगे; फायदा क्या है? मैं हट जाता हूं। सम्हालने दो कौरवों को; भोगने दो उन्हें। मैं युद्ध से अपने को अलग कर लेता हूं।
जो भी ऊपर से देखेगा, उसे लगेगा कि अर्जुन युद्ध से हटना चाह रहा है, शांतिवादी है। बर्टें्रड रसेल, महात्मा गांधी, विनोबा का अनुयायी है; पेसिफिस्ट है। पहला पेसिफिस्ट, शांतिवादी है। और जो ऊपर से देखता है, उसको लगेगा, कृष्ण युद्धवादी हैं; क्योंकि कृष्ण कहते हैं, तू लड़।
और मैं तुमसे कहता हूं, बात बिल्कुल उलटी है। कृष्ण अर्जुन को युद्ध
से बचा रहे हैं, क्योंकि अर्जुन एक भीतरी युद्ध में पड़ने की कोशिश कर रहा है। और बाहर के युद्ध तो सिर्फ प्रतिध्वनियां हैं; असली युद्ध तो भीतर है। अर्जुन अपने क्षत्रियत्व को इनकार कर रहा है, जिसका कि उसके खून-खून में, रोएं-रोएं में वास है। बूंद-बूंद में जो छिपा है, उसके कण-कण में जो बना है, उसके भीतर सब तरफ क्षत्रिय है। वह स्वभाव से क्षत्रिय है।
कृष्ण का वचन बड़ा अदभुत है, स्वधर्मे निधनं श्रेयः। अपने स्वभाव में, स्वधर्म में, अपने ढंग में, अपनी शैली में मर जाना बेहतर है। पर धर्मो भयावहः। और दूसरे के धर्म में, दूसरों की शैली में जाना बड़ा भयावह है अर्जुन। तू चूक जाएगा। ब्राह्मण होना तेरी नियति नहीं। क्षत्रिय होना तेरी नियति है। उसके लिए ही तू निर्मित हुआ है। वही तेरी मांस-मज्जा में समाया है; वह तेरी आत्मा है।
कृष्ण यह कह रहे हैं, तू अपनी निजता को मत झुठला। तू अगर जंगल में भी भाग जाएगा और संन्यासी होकर झाड़ के नीचे बैठ जाएगा और तुझे एक हरिण दिख जाएगा, तो हरिण को देखकर तुझे सौंदर्य का ख्याल न आएगा, तू आस-पास टटोलेगा कि मेरा धनुष-बाण कहां है! हरिण को देखकर कविता पैदा न होगी तेरे मन में, धनुष-बाण की खोज शुरू हो जाएगी। अगर सिंह तुझे दिख जाएगा और धनुष-बाण भी न हुआ, तो तू छलांग लगाकर कूद पड़ेगा और युद्ध में उतर जाएगा। तेरा रोआं-रोआं क्षत्रिय का है। वह तेरा गुणधर्म है; वह तेरा स्वधर्म है।
मैं भी तुमसे यही कहता हूं, स्वधर्मे निधनं श्रेयः। तुम अगर गृहस्थ हो, और वही तुम्हारा सुख और शांति है, और अगर तुमने वहीं पाया है अपनी

नियति को, तो तुम संन्यासियों की मत सुनना। होगा उनका स्वधर्म संन्यास; तुम्हारा नहीं है। जहां तुम्हें शांति मिल रही हो, जहां तुम्हें जीवन की ऊर्जा सहजता से प्रवाहित होती मालूम होती हो, जहां ऊर्जा में कोई स्खलन न होता हो, जीवन एक प्रवाह हो--अगर दुकान पर हो, तो दुकान; दफ्तर में हो, तो दफ्तर; पहाड़ पर हो, तो पहाड़।
मैं तुमसे यह नहीं कहता कि कोई स्थान चुनने योग्य है। तुम्हारे जीवन
की सहजता चुनने योग्य है।
एक बड़ी अनूठी कहानी है, अशोक के जीवन में घटी। कहना मुश्किल है कि कहां तक सच है। लेकिन बड़ी गहरी सचाई की खबर देती है।
एक संध्या, वर्षा के दिन हैं, पाटलीपुत्र में, पटना में अशोक गंगा के किनारे खड़ा है। भयंकर बाढ़ आई है गंगा में। सीमाएं तोड़कर गंगा बह रही है। बड़ा विराट उसका रूप है; भयंकर तांडव करता उसका रूप है। न मालूम कितने गांव बहा ले गई। न मालूम कितने खेतों को विनष्ट कर दिया; कितने पशु-पक्षी बहते चले जा रहे हैं।
अशोक खड़ा है अपने आमात्यों, अपने मंत्रियों के साथ। और उसने कहा कि क्या यह संभव है, क्या कोई ऐसा उपाय है कि गंगा उलटी बह सके? ऐसा अचानक उसको ख्याल उठ आया कि क्या कोई रास्ता है कि गंगा उलटी बह सके स्रोत की तरफ? आमात्यों ने कहा, असंभव। और अगर चेष्टा भी की जाए, तो अति कठिन है। एक वेश्या भी अशोक के साथ गंगा के किनारे आ गई है। वह नगर की सब से बड़ी वेश्या है। उन दिनों में वेश्याएं भी बड़ी सम्मानित होती थीं। वह नगरवधू है। उस वेश्या का नाम था, बिंदुमति। वह हंसने लगी और उसने कहा कि अगर आप आज्ञा दें, तो मैं इसे उलटा बहा सकती हूं।
अशोक चौंका। उसने कहा कि क्या ढंग है? क्या मार्ग है इसको उलटा बहाने का? तेरे पास ऐसी कौन-सी कला है? तो उस वेश्या ने कहा, मेरी निजता का सत्य। बड़ी अनूठी कहानी है। उसने कहा, मेरी निजता का सत्य, मेरे जीवन का सत्य मेरी सामर्थ्य है। मैंने उसका कभी उपयोग नहीं किया। बड़ी ऊर्जा मेरे जीवन के सत्य की मेरे भीतर पड़ी है। अगर आप कहें, तो यह गंगा उलटी बहेगी, मेरे कहने से बहेगी। इसका मुझे पक्का भरोसा है। क्योंकि मैं अपने सत्य से कभी भी नहीं डिगी।
सम्राट को भरोसा न आया, पर उसने कहा, देखें। वेश्या ने आंखें बंद कीं;
और कहानी कहती है कि गंगा उलटी बहने लगी। सम्राट तो चरणों पर गिर पड़ा वेश्या के। और उसने कहा, बिंदुमति, हमें तो कभी पता ही न चला कि तू वेश्या के अतिरिक्त भी कुछ और है। यह राज, यह रहस्य तूने कहां सीखा? यह तो बड़े सिद्ध पुरुष भी नहीं कर सकते हैं।
वेश्या ने कहा, मुझे सिद्ध पुरुषों का कोई पता नहीं। मैं तो सिर्फ एक सिद्ध वेश्या हूं। और वही मेरे जीवन का सत्य है।
क्या है तेरे जीवन का सत्य, तू खोलकर कह, अशोक ने कहा। उसने कहा, मेरे जीवन का सत्य इतना है कि मैं जानती हूं, वेश्या होना ही मेरे जीवन की शैली है, वही मेरी नियति है। अन्यथा मैंने कभी कुछ और होना नहीं चाहा। अन्यथा की चाह ही मैंने कभी अपने भीतर नहीं आने दी। मैं समग्र हूं; मैं सिर से लेकर पैर तक वेश्या हूं। मेरा रोआं-रोआं वेश्या है। और मैंने वेश्या के धर्म से कभी अपने को च्युत नहीं किया।
अशोक ने पूछा, क्या है वेश्या का धर्म? पागल, मैंने कभी सुना नहीं कि वेश्या का भी कोई धर्म होता है। हम तो वेश्या को अधार्मिक समझते हैं। और यही मैं मानता था कि तू कितनी ही सुंदर हो, लेकिन तेरे भीतर एक गहरी कुरूपता है। क्योंकि तू शरीर को बेच रही है, सौंदर्य को बेच रही है। इससे क्षुद्र तो कोई व्यवसाय नहीं!
वेश्या ने कहा, व्यवसाय क्षुद्र और बड़े नहीं होते, व्यवसायी पर सब निर्भर करता है। मेरे जीवन का सत्य यह है कि मेरे गुरु ने, जिसने मुझे वेश्या होने की शिक्षा और दीक्षा दी, उसने मुझे कहा कि एक सूत्र भर को सम्हाले रखना, तो तेरा मोक्ष कभी तुझसे छिन नहीं सकता। और वह सूत्र यह है कि चाहे धनी आए, चाहे गरीब आए; चाहे शूद्र आए, चाहे ब्राह्मण आए; चाहे सुंदर पुरुष आए, चाहे कुरूप पुरुष आए; चाहे जवान, चाहे बूढ़ा; कोढ़ी आए, रुग्ण आए; जो भी तुझे पैसे दे, तू पैसे पर ध्यान रखना और व्यक्तियों के साथ समान

व्यवहार करना। न तो तू कोढ़ी को और रोगी को घृणा करना, न सुंदर को प्रेम करना। वह वेश्या का काम नहीं है। तू तटस्थ रहना। तेरा काम है पैसा ले लेना। बस, बात खतम हो गई। तेरा ध्यान पैसे पर रहे। ब्राह्मण आए, तो तू अतिशय भाव से उसके पैर मत छूना। और शूद्र आए, तो तू उसे इनकार मत करना। तेरा काम है पैसा। वेश्या का ध्यान पैसे पर। बाकी कोई भी आए, तू सम-भाव रखना। वही तेरा सम्यकत्व है, वही तेरा सत्य है।
और मैंने उसे सम्हाला है। मैंने न तो कभी किसी के प्रति प्रेम किया, लगाव दिखाया, आसक्ति बनाई, मोह किया, नहीं। न मैंने कभी किसी को घृणा की, जुगुप्सा की, नहीं। मैं दूर तटस्थ खड़ी रही हूं।
तब तो वेश्या भी संन्यस्त हो जाती है। कृष्ण ठीक कहते हैं, स्वधर्मे निधनं श्रेयः।
वह अर्जुन को यही समझा रहे हैं कि तू ठीक से पहचान ले, तेरा स्वधर्म क्या है। अगर तू कहता है, संन्यासी होना तेरा स्वधर्म है, अगर तू मानता है, समझता है कि संन्यासी होना तेरा स्वधर्म है, तो तू जा। लेकिन आज तक तुझमें संन्यास की कोई झलक दिखाई नहीं पड़ी। काफी जीवन तेरा बीत गया। हम पुराने संगी-साथी हैं। कभी तुझमें मैंने ब्राह्मण की कोई झलक नहीं देखी; संन्यासी का कोई भाव नहीं देखा। तू शुद्ध क्षत्रिय है। अर्जुन से ज्यादा शुद्ध क्षत्रिय खोजना भी मुश्किल है। तो तू इससे भिन्न हो न सकेगा। तो एक ही उपाय है कि तू अपने ही धर्म के सत्य को उपलब्ध हो; निजता को मत छोड़। कृष्ण यह कह रहे हैं कि तू अपने भीतर अगर निजता को छोड़कर किसी और के पीछे चलेगा, किसी और की सुनेगा, किसी और आदर्श से प्रलोभित होगा, तो तेरे भीतर द्वंद्व पैदा हो जाएगा।
और जिस व्यक्ति के भीतर द्वंद्व पैदा हो गया, वहीं असली युद्ध है। फिर
एक संघर्ष शुरू होता है, जिसका कोई अंत नहीं है। क्योंकि तुम अपने से ही लड़ते हो, अंत हो कैसे सकता है!
और तुम सभी लड़ रहे हो। कोई क्रोध से लड़ रहा है, कोई काम से लड़ रहा है, कोई लोभ से लड़ रहा है। लोभ भी तुम्हारा है, क्रोध भी तुम्हारा है, लड़ने वाले भी तुम हो, करोगे क्या? तुम अपने को ही बांट लोगे दो हिस्सों में और अपने से ही लड़ोगे। कोई जीत सकता है? जीत संभव है? तुम व्यर्थ ही खो जाओगे। अपने को स्वीकार कर लो, स्वधर्मे निधनं श्रेयः। अपने को परिपूर्ण भाव
से स्वीकार कर लो। तुम जो हो, उससे अन्यथा होने का उपाय नहीं है।
मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम्हारे जीवन में क्रांति न होगी। जिस दिन तुम स्वीकार कर लोगे कि तुम जो हो, उससे अन्यथा होने का उपाय नहीं है, तुम्हें तुम्हारे धर्म का सत्य उपलब्ध हो जाएगा। तुम गंगा को उलटी बहा सकते हो। बड़ी ऊर्जा है तुममें, अगर तुम अखंड हो।
वह वेश्या अखंड रही होगी। और उसने बड़ी निष्णात कुशलता से सम्यकत्व को साध लिया था। वेश्या का सवाल नहीं है, न संन्यासी होने का सवाल है। क्योंकि यह हो सकता है, संन्यासी जंगल में बैठा हो और वेश्या का विचार करे; तब उसके भीतर द्वंद्व है, संघर्ष है, कुरुक्षेत्र है। और वेश्या वेश्यालय में बैठी हो और संन्यास की धारणा करे; उसके भीतर भी द्वंद्व है।
तुम जहां हो, वहां पूरे रहो। तुम्हारी समग्रता ही तुम्हें मोक्ष की तरफ ले जाएगी, मुक्ति की तरफ ले जाएगी।
और बड़ी अनूठी बात यह है कि जिस दिन तुम अपने को परिपूर्ण स्वीकार कर लेते हो, उसी दिन तुम्हारे भीतर क्रांति शुरू हो जाती है। जिसने स्वीकार कर लिया अपने क्रोध को, उसके स्वीकार में ही अतिक्रमण है। वह क्रोध से ऊपर उठ गया, वह क्रोध के पार हो गया। उस स्वीकार में ही वह अलग हो गया, साक्षी हो गया।
वह वेश्या अपने वेश्यापन को स्वीकार करके साक्षी हो गई, अलग हो गई, भिन्न हो गई। अब सब खेल रह गया, लीला रह गई। इसलिए तो कोढ़ी आए, स्वस्थ आए, बीमार आए, युवा आए, बूढ़ा आए, कोई अंतर न रहा, सब खेल हो गया, सब नाटक हो गया। वेश्या दूर खड़ी हो गई।
अर्जुन को कृष्ण यही कह रहे हैं कि तू बीच में मत आ, दूर खड़ा हो जा-- तटस्थ भाव से, फलाकांक्षाशून्य, अनासक्त। जो तेरी निजता है, उसको प्रकट होने दे। इस क्षण से भाग मत; और अपने से भाग मत।

अपने से कोई कहीं भाग नहीं पाया कभी। कहां जाओगे भागकर अपने से? जहां जाओगे, तुम तो तुम्हीं रहोगे। जिसने अपने को समग्ररूपेण स्वीकार कर लिया-- इसे लाओत्से ने तथाता कहा है--उसके जीवन में परितोष आ जाता है, संतोष बरस जाता है। उसी संतोष में क्रांति घटित होती है।
तुम जरा कोशिश करके देखो। लड़कर तो तुमने बहुत कोशिश करके देख ली जन्मों-जन्मों से। पिछले जन्म तुम्हें याद भी न हों, तो इस जन्म में भी तुमने लड़कर कोशिश कर ली। तुम एक सालभर के लिए मेरी मान लो कि तुम लड़ो मत, तुम अपनी निजता में बहो।
संसार कुछ भी कहे, लोग कितना ही समझाएं कि तुम्हें बुद्ध होना है, महावीर होना है, राम होना है, कृष्ण होना है, तुम किसी की मत सुनना। क्योंकि तुम्हें तुम ही होना है; न राम होना है, न बुद्ध होना है, न कृष्ण होना है। वे सब विजातीय हैं तुम्हारे लिए।
तुम चेष्टा करके राम अगर हो भी गए, तो झूठे, रामलीला के राम हो पाओगे। उसका कोई मूल्य नहीं है; दो कौड़ी भी मूल्य नहीं है। यह भी हो सकता है कि रामलीला के राम के भी लोग पैर छूते हैं, तुम्हारे भी छुएं। पर इससे तुम कुछ प्रसन्न मत होना। इसमें कुछ सार नहीं है। तुम तुम ही होने को पैदा हुए हो। कृष्ण के वचनों से बड़ी संसार में कोई दूसरी व्यवस्था नहीं है अनुशासन की, जिसने व्यक्ति को उसके निजता के परम स्वीकार के लिए आग्रह किया हो। अर्जुन जैसे ही राजी हो जाएगा, समझ लेगा कि मैं क्षत्रिय हूं और इससे अन्यथा मैं कैसे हो सकता हूं, कौन होगा इससे अन्यथा, मेरा सारा होना यही है, उसी क्षण क्षत्रिय के बाहर एक सूत्र खड़ा हो गया जो साक्षी का है। फिर युद्ध में उतर सकता है। फिर यह युद्ध एक नाटक है।
यदि चाहते हो कि महाभारत न हो, तो तुम्हारे हाथ में केवल इतना ही है कि भीतर जो युद्ध चलता है, उसे तुम रोक दो। और नकल में मत पड़ो। कोई और होने की कोशिश मत करो।
तुम्हारी कोशिश ऐसी ही है, जैसे गुलाब का फूल कमल होना चाहे। पागल हो जाएगा। कमल तो क्या होगा, गुलाब भी न हो पाएगा। शक्ति लग जाएगी कमल होने में, गुलाब होने से वंचित रह जाएगा।
तुम वही हो सकते हो, जो तुम हो। तुम्हें पूरा ही बनाया गया है; कुछ अधूरा नहीं है, कुछ कमी नहीं है। तुम जरा एक वर्ष के लिए अपने को स्वीकार करके देख लो; और देखो, कैसी शांति तुम्हारे चारों तरफ घनी हो जाती है!
बड़ी कठिनाई होगी। क्योंकि सैकड़ों वर्षों की शिक्षा तुम्हें सदा, जैसे बैल को कोई पीछे से कोंचे चला जाता है, ऐसे तुम्हें कोंच रही है, कोड़े लगा रही है। कुछ बनो! दौड़ो! ऐसे खड़े-खड़े जीवन गंवा दोगे। बुद्ध बनो, महावीर बनो, कृष्ण बनो। जैसे परमात्मा तुम्हें स्वीकार नहीं करता, सिर्फ बुद्धों को स्वीकार करता है।
और कभी तुम यह भी तो देखो, बुद्ध बुद्ध कैसे बने! उन्होंने कोई और बनने
की कोशिश नहीं की, इसलिए बुद्ध बने।
मैंने सुना है, एक सूफी फकीर अपने गुरु के आसन पर विराजमान हुआ गुरु
की मृत्यु के बाद। लोगों में बड़ी अफवाहें चलीं। लोगों में बड़े शक-संदेह उठे। आखिर गांव के लोग इकट्ठे हो गए। कहना जरूरी था। क्योंकि बात जरा गलत थी। क्योंकि इस शिष्य का व्यवहार गुरु से बिल्कुल भिन्न था। यह गुरु के पद का अधिकारी न था।
लोगों ने कहा कि क्षमा करें, नाराज न हों, लेकिन आप गुरु के पद के अधिकारी नहीं हैं। क्योंकि आप ऐसी कोई भी बात हमें नहीं दिखाई पड़ती, जो गुरु की मानते हों।
वह फकीर हंसने लगा। उसने कहा, इसीलिए। मेरे गुरु भी अपने गुरु की नहीं मानते थे। इसीलिए मैं उनका शिष्य हूं। मेरे गुरु अपने ढंग के आदमी थे। उनके गुरु अपने ढंग के आदमी थे। मैं अपने ढंग का आदमी हूं। और मेरे गुरु ने स्वयं को मेरे ऊपर नहीं थोपा। सिर्फ मुझे सहारा दिया कि मैं वही हो सकूं, जो मैं हो सकता हूं।
सदगुरु और असदगुरु का यही फर्क है। सदगुरु तुमसे कहेगा, स्वधर्मे निधनं श्रेयः। अपने धर्म में, अपनी निजता में मर जाना भी ठीक। दूसरे की निजता को ओढ़कर जीना भी गलत। सफलता भी मिल जाए दूसरे के पाखंड को ओढ़कर,

दूसरे के वस्त्रों में छिपकर, तो सफलता दो कौड़ी की है। असफल भी होना पड़े अपनी निजता को बचाते हुए, तो असफल होना भी श्रेयस्कर। क्योंकि उस असफलता में भी तृप्ति होगी कि तुम तुम ही रहे।
तुम्हारे कंठ पर ही जब पानी की बूंद पड़ेगी, तभी तृप्ति आएगी। दूसरे के कंठों पर पड़ने से कुछ हल न होगा। तुम्हारी आंख जब देखेगी प्रकाश को, तभी सूर्योदय होगा। दूसरों की आंखों से देखने से कुछ भी न होगा। तुम उधार मत बनना।
अर्जुन के मन में बड़े उधार बनने की चेष्टा पैदा हो गई थी। कृष्ण की सारी व्यवस्था यही है कि वह उधार न बने। नगद, स्वयं रहे।
वहीं से युद्ध शुरू होता है; फिर युद्ध फैलता चला जाता है। फिर तुम घर में लड़ते हो, परिवार में लड़ते हो, समाज में लड़ते हो, राज्य... । फिर युद्ध फैलता चला जाता है; फिर पूरी पृथ्वी एक युद्ध है।
चांद-तारों को दोष मत दो। थोड़ा भीतर देखो। आदमी के अतिरिक्त और कोई दोषी नहीं है।

दूसरा प्रश्नः इस अत्यंत आक्रमणशील युग में स्त्रैण-चित्त वाले लोगों को कोई भी जगह जीना कठिन लगता है; क्योंकि शिक्षा ही आक्रामक होकर जीने की दी जाती है। लोग अपने जैसा ही करके छोड़ेंगे, ऐसा लगता है। तो क्या करें?

तुम्हें एक पुरानी कहानी कहता हूं। यहूदियों में कथा है कि छत्तीस छिपे हुए संत सदा पृथ्वी पर घूमते रहते हैं। वे लोगों को जगाने की कोशिश करते हैं, गिरतों को सम्हालने की कोशिश करते हैं, भटकों को बुलाने की कोशिश करते हैं, दुखियों को सांत्वना बंधाते हैं। और छिपे हैं, उनकी कोई घोषणा नहीं होती। वे चुपचाप अदृश्य हाथों से इन सारे कामों को करते रहते हैं। यद्यपि--कहानी का जो असली सूत्र है, वह यह है--उनके करने से कुछ परिणाम नहीं होता। न तो वे गिरों को उठा पाते हैं, न वे सोयों को जगा पाते हैं, न वे दुखियों को सुखी कर पाते हैं। लेकिन उनकी चेष्टा के कारण परमात्मा संसार को बनाए रखता है।
यह बड़ी मीठी कथा है यहूदियों में। जिस दिन वे छत्तीस आदमी निराश हो जाएंगे, उस दिन पृथ्वी विलीन हो जाएगी। यद्यपि उन छत्तीस से कुछ भी नहीं होता; हो नहीं सकता। क्योंकि जो आदमी गिरा है, वह अपनी मरजी से गिरा है, उसकी मरजी के बिना तुम उसे उठा नहीं सकते। और तुम्हारी सब उठाने की चेष्टाएं उसे और गिरने का आमंत्रण बन जाएंगी।
और जो सोया है, वह जानकर सोया है। तुम उसे जगा नहीं सकते। और जो दुखी
है, उसने दुख में कुछ नियोजित कर रखा है, उसका इनवेस्टमेंट है; तुम उसे सुखी नहीं कर सकते। क्योंकि उसे तुम सुखी करोगे, तो उसके इनवेस्टमेंट का क्या होगा?
समझो कि एक पत्नी बीमार पड़ी है घर में। रोती रहती है; अपनी हजार झूठी- सच्ची बीमारियों की चर्चा करती रहती है। और तुम उसे सुखी करना चाहते हो। वह तुम उसे न कर पाओगे; क्योंकि उसकी इस बीमारी के पीछे एक राज है। यह बीमारी पति को नियंत्रित करने का उपाय है। वह उसका इनवेस्टमेंट है। इसी ढंग से वह पति... ।
क्योंकि जब पत्नी बीमार होती है, तो पति क्या कर सकता है। मानना पड़ता
है जो भी पत्नी कहती है। स्वस्थ पत्नी का इनकार भी कर दो। अब मर रही है, बिस्तर पर पड़ी है, उसको क्या कहो! झुकना पड़ता है।
एक दफा स्त्रियों को पता चल जाता है कि तानाशाही करने का सुगम उपाय बीमारी है, फिर बहुत मुश्किल है। तब ऐसा भी होता है कि पति जब बाहर जाता है, तब पत्नी बिल्कुल ठीक रहती है, पास-पड़ोस में जाती है, बातचीत करती है, रस लेती है; अखबार पढ़ती है, रेडियो चलाती है। जैसे ही पति के आने का वक्त होता है, रेडियो बंद, अखबार हट जाते हैं, बिस्तर पर लेट जाती है। और जितनी बीमारी होती है, उससे हजार गुना करके बताती है।
डाक्टरों को पता है कि स्त्रियों की बीमारियों पर एकदम से भरोसा नहीं किया जा सकता; पचास प्रतिशत झूठी होती हैं। और बाकी जो पचास प्रतिशत हैं,

जितना बड़ा पहाड़ बनाकर बताया जाता है, उतना नहीं होतीं। छोटा-सा राई, तिल और पर्वत जैसा बताया जाता है। कारण हैं।
इसलिए इस स्त्री को तुम सुखी नहीं कर सकते, क्योंकि वह सुखी होना नहीं चाहती। वह दुखी जानकर है। दुख उसका व्यवसाय है। उसने दुख में से रास्ता बना लिया है।
छोटे-छोटे बच्चे भी समझ लेते हैं। जब बच्चा बीमार होता है, तो बाप भी आकर पास बैठता है, पैर दबाता है। जब बच्चा बीमार होता है, पड़ोसी देखने आते हैं। जब बच्चा स्वस्थ होता है, कोई फिक्र नहीं करता; कोई देखता ही नहीं; कोई ध्यान ही नहीं देता।
बच्चे ने एक गणित सीख लिया, कि जब तक तुम दुखी न होओ, तुम पर ध्यान नहीं दिया जा सकता। और ध्यान की बड़ी गहरी आकांक्षा है सब में कि लोग ध्यान दें। लोग ध्यान दें, उससे तुम्हारे अहंकार की पुष्टि होती है।
तो बच्चा बीमार है। वह बाहर जाकर टांग तोड़कर आ जाता है, हाथ में चोट मारकर आ जाता है। ध्यान मांग रहा है। वह यह कह रहा है, ध्यान दो मेरी तरफ। तुमने कभी ख्याल किया है, छोटे बच्चों को जब तुम्हारे घर में मेहमान आते हैं तब तुम कह देते हो, शांत बैठना। ऐसे वे शांत ही बैठे रहते हैं, लेकिन जब मेहमान आ जाएं, फिर वे हजार उपद्रव खड़े करने लगते हैं। क्योंकि वे देखते हैं कि मेहमानों की सारी नजर और सारा ध्यान तुम ही लिए ले रहे हो। उन पर भी ध्यान जाना चाहिए। वे भी ध्यान का केंद्र होना चाहते हैं। और अड़चन नहीं है; बच्चे हैं छोटे। बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ, बड़े नेता भी ध्यान पर सारा जोर लगाए रखते हैं।
अभी मोरारजी ने अनशन किया। उस अनशन में उन्होंने एक पत्थर से दो चिड़ियां मारने की कोशिश की। एक तो इंदिरा को झुका लें और दूसरा जयप्रकाश को जगह पर बिठा दें। क्योंकि जयप्रकाश का नाम जोर से बढ़ता जाता है। और ऐसा लगता है कि विरोध में वे अग्रणी हो गए हैं; वह भी पीड़ा है। तो अगर आमरण अनशन कर दो, तो अखबार में नाम अग्रणी हो जाएगा।
अब ये बड़े खेल चलते हैं। छोटे बच्चों से लेकर बड़े-बूढ़ों तक कोई अंतर नहीं पड़ता। क्योंकि आकांक्षा अहंकार की तृप्ति की बनी रहती है।
तो यहूदियों में यह कथा है कि वे छत्तीस छिपे हुए संत पृथ्वी पर घूमते रहते हैं। यद्यपि उनसे किसी को सहायता नहीं मिलती, वे किसी को जगा नहीं पाते, कोई उनकी सुनता नहीं, मगर वे अपने प्रेम से अपना काम जारी रखते हैं। तुम क्या सोचते हो, मैं तुमसे बोल रहा हूं, तो इस भरोसे से कि तुम सुन
ही लोगे! वह सवाल बड़ा नहीं है। तुम सुनोगे, इसकी संभावना बहुत कम है। लेकिन मैं निराश नहीं हूं इससे। तुम सुनोगे या नहीं सुनोगे, यह तुम्हारे ऊपर है। मैं कहे चला जाऊंगा। मैं अपनी तरफ से तुम्हारी चिंता करता हूं, यह बताए चला जाऊंगा। तुम न सुनोगे, वह तुम्हारी जिम्मेवारी।
तो ऐसा हुआ कि एक नगर था सोदोम; पुराना नगर था इजरायल का। अंग्रेजी में एक शब्द है, सोदोमी। वह उसी नगर से बना है, सोदोम से। सोदोम में लोग बिल्कुल भ्रष्ट हो गए थे। वे इतने भ्रष्ट हो गए थे कि पुरुष पुरुषों से संभोग करते थे, स्त्रियां स्त्रियों से संभोग करती थीं। यहीं तक नहीं, लोग पशुओं के साथ संभोग करने लगे थे--कुत्ता, बिल्ली, जानवर... ।
इसलिए अंग्रेजी में जो शब्द है सोदोमी, उसका मतलब है, पशुओं के साथ संभोग करना। वह उसी नगर से आया है, सोदोम से।
परमात्मा बहुत नाराज हो गया, क्रुद्ध हो गया, इस नगर को तो बिल्कुल मिटा ही देना है, जला ही देना है।
जैसे ही उन छत्तीस में से एक को खबर मिली, जो कहीं पास ही सोदोम के घूम रहा था, वह भागा हुआ सोदोम आ गया। कहते हैं, उसके सोदोम में आ जाने के कारण परमात्मा को रुकना पड़ा। अब क्या करो! वह जलाने जा ही रहा था सोदोम को, मगर वह एक संत आ गया। और वह चिल्लाने लगा नगर के रास्तों पर; लोगों को समझाने लगा कि विनष्ट हो जाओगे। पाप से जागो! यह तुम क्या कर रहे हो? यह तो विकृति है। संस्कृति तो दूर, प्रकृति तक तुमने खो दी। धर्म तो दूर, तुमने जीवन का साधारण स्वास्थ्य भी खो दिया। यह तुम क्या कर रहे हो!
वह चिल्लाता फिरता, लोगों को जगाता फिरता, लेकिन कोई उसकी सुनता न। पहले तो लोगों ने समझा पागल है, हंसे। फिर धीरे-धीरे उपेक्षा करने लगे।

फिर तो उन्होंने हंसना भी बंद कर दिया। फिर तो कोई उसकी बात पर ध्यान ही न देता। लोग बहरे हो गए। लेकिन वह चिल्लाता रहा।
परमात्मा बड़ी अड़चन में पड़ गया; क्योंकि वह रुके और गांव छोड़े, तो वह गांव को जला दे। तो इस एक आदमी की वजह से, जो इतनी फिक्र करता है, जो इतनी चिंता करता है, जिसके मन में ऐसी करुणा है! लेकिन उसकी कोई नहीं सुनता है, तो भी वह लगाए जा रहा है अपनी रट... ।
एक दिन एक बच्चे ने उसे रोका; क्योंकि वह बच्चा उसे देखता था। कभी-कभी संतों और बच्चों के बीच संवाद हो जाता है। क्योंकि संत भी बच्चे हैं और बच्चे भी थोड़े-से संत हैं, इसलिए थोड़ा-सा सूत्र मिल जाता है। एक बच्चे ने कहा कि सुनो जी, कितने दफे तुम चिल्लाते हो, कोई सुनता नहीं। बंद क्यों नहीं हो जाते?
तो उसने कहा, पहले मैं चिल्लाता था कि लोग बदल जाएंगे, सुन लेंगे, राजी
हो जाएंगे; और यह दुर्भाग्य जो आ रहा है, बच जाएगा। उस बच्चे ने कहा, ठीक है, पहले की छोड़ो; अब किसलिए चिल्लाते हो? कोई नहीं सुन रहा है। उसने कहा, अब इसलिए चिल्लाता हूं... । पहले चिल्लाता था कि लोग बदल जाएंगे इस आशा से; अब इस आशा से चिल्लाता हूं कि कहीं लोग मुझे न बदल दें। चिल्लाना तो जारी ही रखूंगा। ये लोग बड़े कठिन मालूम पड़ते हैं। इनको मैं तो न बदल पाया, लेकिन कहीं ये मुझे न बदल दें।
यह जो प्रश्न है कि आक्रामक शिक्षा है, दीक्षा है, सारा समाज आक्रामक है। इसमें सरल-चित्त लोग, अनाक्रामक लोग, अहिंसक लोग, हृदय से भरे लोग-- जिनको स्त्रैण-चित्त कहता है लाओत्से--इनकी क्या जगह है? कहां ये खड़े हों? कहीं ऐसा तो न होगा कि लोग अपने जैसा ही करके छोड़ेंगे?
नहीं, ऐसा न होगा। अगर तुम लोगों को जगाने की, उठाने की चेष्टा में संलग्न रहे। अगर तुम लोगों की आक्रमणशीलता को क्षीण करने के उपाय करते रहे, यह जानते हुए भी कि शायद कोई भी न बदलेगा, निराश न हुए... ।
करुणा कभी निराश नहीं होती। करुणा को कभी कोई निराश नहीं कर पाया है। करुणा कभी हताश नहीं होती। करुणा ने हताशा जानी ही नहीं है।
तो अगर तुम्हें लगता है कि लोग आक्रामक हैं, युद्धखोर हैं, हिंसक हैं,
तो बैठे मत रहो, चुप मत रहो, जो तुम से बन सके उनकी आक्रमणशीलता को क्षीण करने के लिए, करो; यह जानते हुए कि शायद तुम कुछ भी न कर पाओगे।
लेकिन तुमसे मैं कहता हूं कि उन्हें बदलने की कोशिश में एक बात कम से
कम होगी, वे तुम्हें न बदल पाएंगे। और वह भी कुछ कम नहीं है। वह भी काफी है। इसलिए मुझसे जब कोई पूछते हैं मित्र कि हम क्या करें? आपकी बात हमारे हृदय को भर देती है। हम चाहते हैं कि जाकर लोगों को कहें, समझाएं। लेकिन फिर डर लगता है कि कोई सुनेगा तो नहीं।
सुनी कब किसकी है? बुद्ध की किसी ने सुनी है? कि महावीर की? या कि कृष्ण की किसी ने सुनी है? अगर सुन ही ली होती, तो दुनिया दूसरी होती; सुनाने को कोई बचता ही न। नहीं सुनी है किसी ने।
तुम क्यों फिक्र करते हो कि लोग सुनेंगे या नहीं! कम से कम तुम तो सुनोगे अपने को ही बोलते हुए। उससे तुम्हारा बल बढ़ेगा। उससे कम से कम एक बात पक्की है कि लोग तुम्हें न बदल पाएंगे। वह भी कुछ कम नहीं है।
जाओ! और इसकी भी फिक्र मत करो कि लोग हंसेंगे। लोग हंसेंगे ही। वे सदा
से हंसते रहे हैं। लोग अपना स्वभाव नहीं बदलते, तुम अपना क्यों बदलते हो? तुम्हारे मन में भाव उठा है कि लोगों को कुछ देना है, दे दो, बांट दो। इसकी चिंता मत करो कि वे हंसेंगे, फेंक देंगे। यह उनका काम है। यह तुम्हें विचार करने की जरूरत नहीं है। तुम अपने हृदय को उंडेल दो, उससे तुम हलके हो जाओगे।
जैसे कोई बादल आकाश में घिरता है जल से भरा हुआ; बरस जाता है। पहाड़ पर
भी बरसता है, झील पर भी बरसता है। पहाड़ इनकार कर देते हैं, तो भी बादल पहाड़ पर बरसना बंद नहीं करते। झील स्वीकार कर लेती है, भर लेती है, तो भी झील-झील पर ही नहीं बरसते, बरसते रहते हैं।
तुम बरसो। तुम्हारे भीतर अगर कोई थोड़ी-सी भी प्रतीति आई है, तो तुम डरो मत; उस प्रतीति को बांटो। बांटने से वह तुम्हारे भीतर बढ़ेगी। कम से कम घटने की संभावना मिट जाएगी।

तुम इसकी चिंता मत करो कि दूसरों को वह प्रतीति हो पाएगी या नहीं। वह तुमने चिंता की, तो तुम डर जाओगे, सिकुड़ जाओगे। और डरा हुआ, सिकुड़ा हुआ आदमी दूसरों के द्वारा बदला जा सकता है।
और ध्यान रखना, हिंसक, अज्ञानी आक्रामक होते हैं। हिंसक अज्ञानी पहल लेते हैं। शांत आदमी संकोच करता है; दो दफा सोचता है, कहना कि नहीं कहना! अशांत फिक्र ही नहीं करता। वह एकदम हमला कर देता है तुम्हारे ऊपर। तुम्हारी दया, तुम्हारी करुणा, तुम्हारा ज्ञान, तुम्हारा ध्यान तुम अगर बांटोगे, तो तुम्हारे चारों तरफ उनसे एक परकोटा बन जाएगा, वह तुम्हें बचाएगा।
उस फकीर ने ठीक ही कहा कि पहले मैं इस आशा में चिल्लाता था कि लोग बदल जाएंगे। अब मैं इस आशा में चिल्लाए चला जाता हूं कि कहीं लोग मुझे न बदल लें।
लेकिन जब तक वह फकीर उस गांव में रहा, सोदोम जलाया न जा सका। कहते हैं,
तब परमात्मा को कुछ उपाय करना पड़ा। और एक संदेशवाहक भेजना पड़ा कि तेरी दूसरे गांव में जरूरत है। दूसरा गांव था, गोमोरा। वहां जरूरत है, वहां लोग बड़े पाप से भरे हैं, यहां से भी ज्यादा।
संत वहां गया भागा हुआ। जैसे ही वह गांव के बाहर हुआ, सोदोम पर अग्नि बरसी, सोदोम सदा के लिए नष्ट हो गया।
ये कहानियां बड़ी महत्वपूर्ण प्रतीक हैं, बड़ी सिंबालिक हैं। यह हो सकता है कि संसार में आदमी जीता है सिर्फ इसीलिए कि कुछ लोग परमात्मा से जुड़े रहते हैं, अन्यथा तुम्हारा जीवन बिल्कुल सड़ जाए। कोई एक भी उस स्रोत से जुड़ा रहता है, तो थोड़ी-सी जीवन की धारा आती-जाती है। तुम्हारे मरुस्थल में एक मरूद्यान बना रहता है। तुम्हारी तपती दुपहरी में कहीं कोई एक वृक्ष होता है, जिसके नीचे कभी तुम क्षणभर छाया ले लो, विश्राम कर लो।

आखिरी प्रश्नः सजगता से आत्म-स्वीकार फलित होगा या कि आत्म-स्वीकार
से सजगता फलित होती है?

ऐसे प्रश्नों में मत पड़ो।
ये तो मुर्गी-अंडे जैसे प्रश्न हैं, कि मुर्गी पहले होती है कि अंडा पहले होता है। अंडा पास हो, आमलेट बना लो; मुर्गी पास हो, शोरबा बना लो।
इन सवालों में मत पड़ो। जहां से शुरू करना हो, अंडे से करना हो अंडे से; मुर्गी से करना हो मुर्गी से। दोनों तरह से शुरू हो सकता है। अंडा खरीद लाओ, मुर्गी बन जाएगी। मुर्गी खरीद लाओ, अंडा रख देगी। लेकिन दार्शनिक सवालों में मत पड़ो। क्योंकि उन्हें कभी कोई हल नहीं कर पाया--सिवाय मुल्ला नसरुद्दीन के लड़के के।
मैं उसके घर था एक सुबह और मुल्ला नसरुद्दीन बड़े दार्शनिक भाव में था। और उसने मुझसे पूछा कि आप बड़ी-बड़ी बातें किया करते हैं, एक सवाल का जवाब दे दो, कि मुर्गी पहले या अंडा? इसके पहले कि मैं कुछ कहूं, उसके बेटे ने कहा, इसका जवाब तो मैं ही दे सकता हूं। मैं भी प्रसन्न हुआ; मैं भी थोड़ा हैरान हुआ लेकिन कि वह जवाब देगा कैसे! पर उसने जवाब दे दिया। नसरुद्दीन ने कहा, तू? क्या जवाब है? उसने कहा, अंडा पहले, मुर्गी बाद में; अंडा नाश्ते में, मुर्गी भोजन में।
बस, यही मेरा जवाब भी है।
चीजें संयुक्त हैं। लोग पूछते हैं, ज्ञान पहले या आनंद पहले? संयुक्त हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इधर ज्ञान, उधर आनंद। इधर आनंद, उधर ज्ञान। या तो तुम आनंद पा लो, तो तुम ज्ञान को उपलब्ध हो जाओ। या तुम ज्ञान को पा लो, तो तुम आनंद को उपलब्ध हो जाओ।
सजगता से आत्म-स्वीकार फलित होता है। जैसे-जैसे तुम जागोगे, तुम अपने
को स्वीकार कर लोगे। क्योंकि तुम तुम ही हो; और तुम सिर्फ तुम ही हो सकते हो। और कुछ होने का उपाय ही नहीं है। और सब असंभव है, व्यर्थ है। उस दौड़ में जो भटका, वह भटका; कभी नहीं पहुंचा। तुम ही तुम्हारी मंजिल हो।

जैसे-जैसे सजग होओगे, वैसे-वैसे तुम स्वीकार करने लगोगे। और जैसे- जैसे तुम अपने को स्वीकार करोगे, तुम पाओगे, तुम्हारी स्वीकृति सजगता को बढ़ाती है। वे एक-दूसरे के सहारे बढ़ जाते हैं।
तुम बाएं पैर से चलते हो कि दाएं पैर से? कोई ऐसा सवाल नहीं पूछता; क्योंकि कोई सवाल का अर्थ ही नहीं है। तुम दोनों से चलते हो। जब तुम बायां उठाते हो, तब बायां उठता है, दायां सम्हाले रहता है तुमको। दाएं के सम्हालने के बिना बायां उठ न सकेगा। और जब बायां जमीन पर जम जाता है, तब दायां उठ आता है।
दो पैर हैं, दो पंख हैं; वे अलग-अलग नहीं हैं; तुमने उनको अलग बांट लिया
कि फिर उपद्रव शुरू हो जाता है। फिर सवाल खड़ा होता है, जिसका कोई हल नहीं हो सकता।
पश्चिम में एक बहुत बड़ा मनसविद हुआ, विलियम जेम्स। उसने एक बड़ी अनूठी किताब लिखी है, वैरायटीज आफ रिलिजस एक्सपीरिएंस, धार्मिक अनुभव के विविध रूप। फिर वैसी किताब दोबारा नहीं लिखी गई। बहुत लोगों ने कोशिश की, लेकिन विलियम जेम्स लाजवाब है।
बड़ी खोज की, सारी दुनिया में घूमा। वह भारत भी आया। यहां एक महात्मा
से मिलने वह हिमालय गया। उसने अपने संस्मरणों में लिखा है कि मैंने महात्मा से पूछा कि हिंदू शास्त्रों में कहा है कि परमात्मा ने पृथ्वी बनाई; फिर परमात्मा ने आठ श्वेत हाथी बनाए और आठों दिशाओं में हाथियों को खड़ा कर दिया; और पृथ्वी उन्हीं के ऊपर सम्हली है।
महात्मा ने कहा, बिल्कुल ठीक पढ़ा और ठीक समझे। पर विलियम जेम्स ने कहा, तब सवाल उठता है कि हाथी किस पर खड़े हैं? किस पर सम्हले हैं? महात्मा ने कहा, और बड़े-बड़े सफेद हाथी हैं, वे उन पर खड़े हैं। विलियम जेम्स थोड़ा हैरान हुआ कि क्या महात्मा समझ नहीं पाया मेरे प्रश्न को! उसने कहा, फिर सवाल उठता है कि वे बड़े-बड़े हाथी किस पर खड़े हैं? महात्मा ने कहा, और भी बड़े-बड़े हाथी हैं, वे उन पर खड़े हैं।
विलियम जेम्स ने कहा, आप समझ नहीं पा रहे हैं। महात्मा ने कहा, मैं समझ रहा हूं, पर मैं कर भी क्या सकता हूं! हाथी के ऊपर हाथी, हाथी के ऊपर हाथी; हाथी के नीचे हाथी, हाथी के नीचे हाथी। मैं कर भी क्या सकता हूं! जैसा है, वैसा कह रहा हूं। तुम पूछे चले जाओ जन्मों-जन्मों तक, मैं यही कहूंगा कि और हाथी नीचे खड़े हैं; क्योंकि शास्त्र गलत हो ही नहीं सकते।
दार्शनिक सवाल चीजों को दो में तोड़ लेते हैं और उलझन हो जाती है। पृथ्वी कहां सम्हली है तुमने पूछा कि गड़बड़ शुरू हो गई। पृथ्वी स्वयं सम्हली है, कोई हाथी सम्हाले हुए नहीं हैं। और अगर हाथी सम्हाले हुए हैं, तो अड़चन आने ही वाली है, क्योंकि फिर हाथी को कौन सम्हाले हुए है।
यहां सभी चीजें स्वयं सम्हली हुई हैं, क्योंकि स्वयं का सत्य ही परमात्मा का सत्य है। यहां कोई किसी को सम्हाले हुए नहीं है। अन्यथा कोई अंत न होगा सम्हालने का। मुर्गी से हटोगे, तो अंडा मिलेगा। फिर सवाल उठेगा कि अंडा कहां से आया? वह फिर मुर्गी से आएगा। फिर मुर्गी पूछोगे कि कहां से आई? वह फिर अंडे से आएगी। इसका कोई अंत न होगा।
लेकिन जीवन में इसका अंत हो जाता है। कौन फिक्र करता है कि मुर्गी पहले या अंडा पहले? जब भूख लगी हो, तो मुर्गी-अंडे को सामने रखकर कोई विचार करता है? तब आदमी भोजन करता है।
मैं तुमसे भी यही कहता हूं। तुम या चाहो तो सजगता से शुरू कर दो, तो भी तुम वहीं पहुंच जाओगे। सजगता से पैदा हो जाता है आत्म-स्वीकार। या आत्म-स्वीकार से शुरू कर दो, तो भी वहीं पहुंच जाओगे। बाएं पैर से यात्रा शुरू करो कि दाएं से, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता; क्योंकि दोनों पैर तुम्हारे हैं। और दोनों पैर तुम्हें ले जाएंगे।
तुम दोनों पैर के ऊपर सम्हले हुए हो। दोनों पंख तुम्हारे हैं। लेकिन अलग-अलग लोगों को अलग-अलग सुविधा होती है। कुछ लोग हैं, जो दाएं पैर से शुरू करेंगे; कुछ लोग हैं, जो बाएं पैर से शुरू करेंगे। अपनी-अपनी सुविधा, अपना-अपना ढंग।
दो तरह के लोग हैं। एक तरह के लोग हैं, जो आत्म-स्वीकार से शुरू करेंगे। ये शांत तरह के लोग हैं। ये बहुत अशांत नहीं हैं। ये संतुष्ट

प्रवृत्ति के लोग हैं। इनका ढंग जन्मों-जन्मों में संतोष का हो गया है, शांति का हो गया है। ये आत्म-स्वीकार से शुरू कर सकेंगे, और सजगता परिणाम में आएगी।
जो लोग अशांत हैं, परेशान हैं, वे कैसे स्वीकार कर सकेंगे अपने को? अशांति को कौन स्वीकार कर पाएगा? बहुत कठिन होगा। उनके लिए सजगता से यात्रा शुरू होगी। पर फर्क कुछ भी नहीं पड़ता; क्योंकि कहीं से शुरू करो, चलते तुम हो, मंजिल पर तुम पहुंचते हो।
मंजिल पर पहुंचकर आदमी भूल ही जाता है कि बाएं से शुरू किया था कि दाएं से शुरू किया था।
गुठलियां मत गिनो। रामकृष्ण कहते थे, जब आम पक गए हों, तो आम चूस लो; गुठलियां मत गिनो।
और ये सब गुठलियां हैं। और दर्शनशास्त्र गुठलियां गिनता रहता है और धार्मिक व्यक्ति आम चूस लेता है। फिलासफी और धर्म, दर्शन और धर्म का यही भेद है। दार्शनिक सोचता ही रहता है और धार्मिक अनुभव कर लेता है।
यहां मैं तुम्हें दार्शनिक बनाने को नहीं हूं, धार्मिक बनाने को हूं।

अब सूत्रः
और सत्, ऐसे यह परमात्मा का नाम सत्य-भाव में और श्रेष्ठ-भाव में प्रयोग किया जाता है। तथा हे पार्थ, उत्तम कर्म में भी सत शब्द प्रयोग किया जाता है।
तथा यज्ञ, तप और दान में जो स्थिति है, वह भी सत है, ऐसे कही जाती है। और
उस परमात्मा के अर्थ किया हुआ कर्म निश्चयपूर्वक सत है, ऐसा कहा जाता है।
हे अर्जुन, बिना श्रद्धा के होमा हुआ हवन तथा दिया हुआ दान एवं तपा हुआ तप और जो कुछ भी किया हुआ कर्म है, वह समस्त असत है, ऐसा कहा जाता है।
इसलिए वह न तो इस लोक में लाभदायक है और न मरने के पीछे उस दूसरे लोक में। ओम तत सत्। इन तीन शब्दों में सभी कुछ आ जाता है।
ओम शब्द नहीं है, ध्वनि है। इसका कोई अर्थ नहीं है; क्योंकि सभी अर्थ मनुष्यों के दिए हुए हैं। यह अर्थातीत ध्वनि है। जैसे नदी में कल-कल नाद होता है। क्या अर्थ है कल-कल का? कोई अर्थ नहीं है। हवाएं वृक्षों से गुजरती हैं, सरसराहट होती है। क्या अर्थ है सरसराहट का? कोई अर्थ नहीं है। आकाश में मेघ गरजते हैं। क्या अर्थ है उस गर्जना में? कोई भी अर्थ नहीं है। अर्थ तो आदमी के दिए हुए हैं।
ओंकार मौलिक ध्वनि है, जिससे सब विस्तार हुआ है। उस ध्वनि के ही अलग-अलग सघन रूप अलग-अलग ढंग से प्रकट हुए हैं।
उस ओंकार में कोई भी अर्थ नहीं है। तुम चाहो तो उसे अर्थहीन कह सकते हो, और चाहो तो अर्थातीत कह सकते हो। एक बात पक्की है कि वहां कोई अर्थ नहीं है। अर्थ हो नहीं सकता; क्योंकि उसके पूर्व कोई मनुष्य नहीं है। इसलिए हमने ओंकार को परमात्मा का प्रतीक बना लिया, क्योंकि परमात्मा कोई तुम्हारा दिया हुआ अर्थ नहीं है। परमात्मा तुम से पहले है और तुम से बाद में है। तुम में भी है, तुम से पहले भी है, तुम से बाद में भी है। परमात्मा तुम से विराट है। तुम छोटी तरंग की तरह हो, वह सागर है। तरंग कैसे सागर को अर्थ दे पाएगी? और तरंग का दिया हुआ अर्थ क्या अर्थ रखेगा? इसलिए हमने ओम परमात्मा का प्रतीकवाची शब्द चुना है। इसका हिंदुओं से कुछ लेना-देना नहीं है। अर्थ होता, तो हिंदुओं से कुछ लेना-देना होता। इसलिए यह अकेला शब्द है... । भारत में तीन धर्म पैदा हुए, चार धर्म कहना चाहिए, जैन, बौद्ध, हिंदू और सिक्ख। इनमें बड़े मतभेद हैं, बड़ी दार्शनिक झंझटें हैं, झगड़े हैं। लेकिन ओंकार के संबंध में कोई मतभेद नहीं है।
नानक कहते हैं, इक ओंकार सतनाम। ओम तत सत्, इसका ही वह रूप है। जैन ओम
का प्रयोग करते हैं बिना किसी अड़चन के। बौद्ध प्रयोग करते हैं बिना किसी अड़चन के।
यह एक शब्द गैर-सांप्रदायिक मालूम पड़ता है। बाकी सब पर झगड़ा है।
ब्रह्म शब्द का उपयोग जैन न करेंगे। आत्मा शब्द का उपयोग बुद्ध न करेंगे।
लेकिन ओम के साथ कोई झगड़ा नहीं है।

और ईसाई, इस्लाम, यहूदी, तीन धर्म जो भारत के बाहर पैदा हुए, उनके पास
भी ओंकार की ध्वनि है; उसे वे ठीक से पकड़ नहीं पाए। कहीं कुछ भूल हो गई। वे उसे कहते हैं, ओमीन, आमीन। हर प्रार्थना के बाद मुसलमान कहता है, आमीन। वह ओंकार की ही ध्वनि है; वह ओम का ही रूप है।
इसलिए यह एक ही अर्थहीन शब्द है, जो सारे धर्मों को अनुस्यूत किए हुए है। अगर दुनिया में हम कोई एक शब्द खोजना चाहें जो गैर-सांप्रदायिक है, जिसके लिए सभी धर्मों के लोग राजी हो जाएंगे, तो वह ओम है।
यह बड़ा अदभुत है। सभी ने इसकी प्रतिध्वनि सुनी है। जो भी भीतर गए हैं, उन्होंने ओंकार को सुना है। लेकिन ओंकार को सुनकर बाहर उसकी खबर देने में थोड़े-थोड़े भेद पड़ गए हैं; पड़ ही जाएंगे।
तुमने कभी गौर किया, ट्रेन में बैठे हो, ट्रेन चलती है। अब वह किस तरह
की आवाज हो रही है? झक-झक, छक-छक, भक-भक? तुम जैसा सुनना चाहो, वैसा सुन ले सकते हो। और एक दफे तुम्हें पकड़ जाए एक बात कि यह झक-झक हो रहा है, या भक-भक हो रहा है, फिर मुश्किल है; फिर वह पैटर्न पकड़ गया, फिर वह ढांचा पकड़ गया, फिर तुम्हें वही सुनाई पड़ेगा। फिर लाख तुम्हें कोई दूसरा समझाए कि नहीं, यह ठीक नहीं है, तो भी तुम्हें वही सुनाई पड़ेगा, क्योंकि तुम्हारे मन ने एक ढांचा पकड़ लिया।
ओम की शुद्धतम ध्वनि अलग-अलग लोगों ने अलग-अलग तरह से सुन ली होगी।
किसी ने आमीन की तरह सुन ली, वह संभव है। लेकिन इस संबंध में कोई विवाद नहीं है।
यह एकमात्र शब्द है, जो सारे धर्मों को जोड़े हुए है। यह शिखर शब्द है।
जैसे मंदिर के खंभे अलग-अलग खड़े हैं, लेकिन मंदिर का शिखर एक है।
अगर हम धर्म का कोई मंदिर बनाएं और हर संप्रदाय के लिए एक-एक खंभा बना दें, तो शिखर पर हमें ओंकार को रखना पड़ेगा।
ओम तत सत्। ओम, तत यानी वह, सत यानी है। तत के संबंध में हमने कल बात की
कि हम क्यों उसे तत कहते हैं, क्यों कहते हैं वह, दैट।
हम उसे तू नहीं कहते। तू कहने से हमारा मैं निर्मित होता है, बनता है।
और तू कहने से हम परमात्मा को थोड़ा नीचे लाते हैं उसके तत रूप से, उसकी दैटनेस से। वह इतना पार। उसे हम खींचकर अपने घर के पास ले आते हैं। तब वह हमारा प्रेमी हो जाता है, पिता हो जाता है, पत्नी हो जाता है, प्रेयसी हो जाता है। फिर हम उससे एक संबंध बना लेते हैं।
जैसे ही हमने परमात्मा को तू कहा, हम परमात्मा को खींचकर संसार में ले आते हैं। इसलिए भक्त तू के पार जाने में मुश्किल पाता है। क्योंकि फिर संबंध छूट जाएगा।
भक्ति संबंध है, ज्ञान असंबंध है। भक्ति तो संबंध है, ज्ञान असंबंध है। भक्ति में तुम कितने ही करीब आ जाओ, लेकिन फिर भी दूरी रहती है। ज्ञान में तुम एक ही हो जाते हो। इसलिए ज्ञानियों ने उसे तत कहा है, वह। एक तटस्थ शब्द, जिसमें हमारा कोई भी राग-रंग नहीं जुड़ता।
और तीसरा शब्द है, सत्।
इन तीन में सारे भारत का वेदांत, सारा सार, सारी भारत की आत्मा समाई है। सब बुद्ध, सब महावीर, सब कृष्ण इन तीन शब्दों में समाए हैं।
सत का अर्थ है, जो है। वृक्ष भी है, पहाड़ भी है, तुम भी हो, मैं भी हूं।
लेकिन परमात्मा का होना, इस होने से भिन्न है। क्योंकि वृक्ष कल नहीं हो जाएगा; मैं आज हूं, कल नहीं होऊंगा; पहाड़ अभी है, कल मिट जाएगा। बड़े से बड़ा पहाड़ भी मिट जाएगा।
वैज्ञानिक कहते हैं, जब आर्य भारत आए, आज से कोई तीस-पैंतीस हजार वर्ष पूर्व, तो हिमालय था ही नहीं। हिमालय बाद में पैदा हुआ। और हिमालय है भी बचकाना अभी भी। वह बड़ा बहुत है, जैसे कोई छोटा बच्चा बाप से बड़ा हो जाए, लंबा हो जाए, ऐसा हिमालय बड़ा बहुत है, ऊंचाई उसकी कोई नहीं छू सकता, लेकिन वह बिल्कुल नया है; बच्चा है। अभी भी बढ़ रहा है। हर वर्ष कोई चार इंच बढ़ जाता है। अभी भी बढ़ती जारी है। अभी भी प्रौढ़ नहीं हुआ है, बढ़ती रुकी नहीं। विंध्याचल सब से पुराना पहाड़ है। उसकी कमर झुक गई है, बूढ़ा है।
विंध्याचल के आस-पास की जो भूमि है, वह संसार की सबसे पुरानी भूमि है।

नर्मदा की खूबी उस भूमि में बहना है, जो सर्वाधिक प्राचीन है, जो सबसे पहले सागर के बाहर आई।
हिमालय बच्चा है; कभी पैदा हुआ, कभी नहीं था और कभी एक दिन विलीन हो जाएगा। पहाड़ भी बनते हैं, समाप्त हो जाते हैं।
इसलिए परमात्मा के है-पन में एक फर्क ध्यान रखना। हमारा होना एक तथ्य है, फैक्ट; कभी था, कभी फिर नहीं हो जाएगा। दो तरफ न-होने की खाई और बीच में होने की छोटी-सी ऊंचाई। जैसे एक पक्षी कमरे में चला आए तुम्हारे, क्षणभर तड़फड़ाए; एक खिड़की से प्रवेश करे, दूसरी खिड़की से निकल जाए। ऐसा क्षणभर को हमारा होना है, फिर गहन न-होना हो जाता है।
परमात्मा सदा है। सत का अर्थ है, जो सदा है, जिसके न-होने का उपाय नहीं है। इसलिए तुम तो मिटोगे, तुम्हारे भीतर का परमात्मा कभी नहीं मिटता है। और जब तक तुमने अपने मिटने वाले स्वरूप के साथ अपने को एक समझा, तभी तक तुम भटकोगे, तब तक तुम दुखी रहोगे, तब तक मौत तुम्हें डराएगी। लेकिन जिस दिन तुम्हारी नजर बदली और तुमने अपने भीतर उसको पहचान लिया, जो सत है; जो न कभी मिटता, न कभी पैदा होता; जो बस है, जो शुद्ध है-पन है, इ.जनेस... ।
इसलिए परमात्मा है, ऐसा कहना पुनरुक्ति है; गॉड इ.ज, ऐसा कहना पुनरुक्ति है। वृक्ष है, यह कहना तो ठीक है। क्योंकि वृक्ष कभी नहीं भी हो जाएगा। परमात्मा है, ऐसा कहना ठीक नहीं है, क्योंकि है का क्या मतलब? परमात्मा है, इसका तो मतलब हुआ कि जो है वह है; यह तो पुनरुक्ति है। इसलिए हमने परमात्मा को सत कहा है। हमने कहा कि वह है-पन है। उसको मत कहो कि परमात्मा है।
इसलिए उपनिषद को, वेदांत को नास्तिक भी इनकार नहीं कर सकता, क्योंकि वेदांत दावा ही नहीं करता कि परमात्मा है। इसलिए तुम कैसे खंडन करोगे! कैसे सिद्ध करोगे कि वह नहीं है!
यह बड़ी महत्वपूर्ण बात है। वेदांत यह नहीं कहता कि परमात्मा है। वेदांत यह कहता है, जो है, वही परमात्मा है। है-पन, होना मात्र परमात्मा है।
इसलिए भारत में नास्तिक पनप नहीं सके, क्योंकि हमारा दावा ही बड़ा अनूठा है। पश्चिम में नास्तिक पनपे। और ईसाई धार्मिक गुरु नास्तिकों को कभी भी समझा नहीं पाया। क्योंकि तुम कहते हो, ईश्वर है, जैसे वृक्ष है, पहाड़ है। और नास्तिक कहते हैं कि नहीं है। जो है, उसे सिद्ध किया जा सकता है कि वह नहीं है।
इसलिए नीत्से का बहुत प्रसिद्ध वचन है, जिसमें उसने कहा, गॉड इ.ज डेड। ईसाइयत से इसका कोई विरोध नहीं है। क्योंकि अगर तुम कहते हो कि परमात्मा भी वैसा ही है, जैसे और चीजें हैं, तो जैसे और चीजें मरती हैं, वैसे ईश्वर भी मर सकता है।
तो नीत्से ठीक कहता है कि ईश्वर मर गया है। अब तुम व्यर्थ पूजा कर रहे
हो चर्चों में। बंद करो; ईश्वर मर चुका; तुम किस की पूजा कर रहे हो? अब वह नहीं है।
जो है, वह नहीं है हो सकता है। लेकिन हमारी घोषणा ही भिन्न है। हम कहते हैं, वह सत्। सत उसका स्वरूप है, उसका गुण नहीं। यह थोड़ी सूक्ष्म बात है। गुण कभी खो सकता है, स्वरूप कभी खोता नहीं। तुम्हारा होना गुण है, स्वरूप नहीं। परमात्मा का होना स्वरूप है, गुण नहीं। वह सदा है। उचित तो यही होगा कि हम कहें, जो सदा है, उसी का एक नाम परमात्मा है।
इसलिए ओम तत सत्, इन तीन में सब आ जाता है।
मुल्ला नसरुद्दीन ने ये तीन शब्द एक बार पढ़ लिए कहीं किसी शास्त्र में। और यह भी पढ़ लिया कि इन तीन शब्दों से जो भी तादात्म्य बना ले, जो भी इन तीन को समझ ले, इसकी गहराई में उतर जाए, वह मोक्ष को उपलब्ध हो जाता है। वह बड़ा खुश और प्रसन्नचित्त घर लौटा। और उसने अपनी पत्नी से कहा कि सुनो, एक बड़ा हीरा हाथ लग गया है, राम रतन धन पायो।
पत्नी तो ऐसे कई हीरे उसके हाथ लगते पहले ही देख चुकी थी। पत्नी कहीं किसी पति को मानती है कि इनके हाथ और हीरा लग सकता है! हीरा भी लग जाए, तो समझेगी कि कहीं का कंकड़-पत्थर उठा लाए हैं। तुम्हारे हाथ और हीरा लग जाए! इतनी तुम्हारी योग्यता! कोई पत्नी पति की मानती ही नहीं। सारी दुनिया पति

को मानने लगे, लेकिन पत्नी को संदेह बना रहता है कि यह आदमी इतना प्रसिद्ध कैसे होता जा रहा है? यह आदमी में है तो कुछ भी नहीं।
पत्नी ने कहा कि छोड़ो बकवास, कहां का हीरा? देखें! उसने कहा, यह हीरा बड़ा भीतरी है। पत्नी ने कहा, हम पहले ही समझ गए थे कि हीरा भीतरी ही होगा; जिसमें कि बताने की जरूरत ही न रहे। नसरुद्दीन ने कहा, मजाक की बात नहीं है। मैंने तीन शब्द पढ़े; और शास्त्र कहता है कि इन तीन शब्दों को जो जान ले, वह मोक्ष को उपलब्ध हो जाता है।
पत्नी ने कहा कि तुम बेकार, व्यर्थ ही, नाहक ही मेहनत किए। हमसे पूछ लेते तीन शब्द। हम ही बता देते। नसरुद्दीन ने कहा, बोलो। उसने कहा, फांसी लगा लो। हैं तीन शब्द, मुक्ति हो जाएगी।
लेकिन अगर बहुत गौर से देखो, तो इन तीन शब्दों से फांसी लगती है। इसे तुम मजाक मत समझना। ओम तत सत यानी फांसी लगा लो। मैं भी इनका यही अर्थ करता हूं।
तुम मिटोगे, तो ही ओम तत सत सत्य हो पाएगा। तुम मरोगे, तुम खो जाओगे, विलीन हो जाओगे, तो ही परमात्मा के होने की प्रगाढ़ता का तुम्हें अनुभव होगा।
तुम ही बंधन हो। तुम बंधे हो, ऐसा नहीं; तुम ही बंधन हो। तुम मुक्त हो जाओगे, ऐसा भी नहीं; तुमसे ही मुक्ति चाहिए। जिस दिन तुम न रहोगे, उस दिन जो शेष रह जाता है, ओम तत सत्।
कृष्ण कहते हैं, सत्, ऐसे यह परमात्मा का नाम सत्य-भाव में और श्रेष्ठ-भाव में प्रयोग किया जाता है। तथा हे पार्थ, उत्तम कर्म में भी सत शब्द प्रयोग किया जाता है।
और जहां-जहां अहंकारशून्य होकर कुछ भी होगा, वहीं सत शब्द का प्रयोग किया जा सकता है। उस कर्म को हम सत कर्म कहते हैं, जो निरअहंकार भाव से किया जाए। इस परिभाषा को ठीक से याद रख लेना।
सत कर्म का अर्थ है, जिसे तुमने न किया हो, तुम्हारे द्वारा परमात्मा
से हुआ हो। सत कर्म का कोई अर्थ नहीं है दूसरा, कि तुमने दक्षिणा दी, दान दिया, सेवा की। कुछ फर्क नहीं पड़ता। तुमने अगर सेवा की और तुमने ही की, तो वह सत कर्म नहीं है। तुम से अगर सेवा हुई और परमात्मा ने की, तो वह सत कर्म है।
अगर दान देते वक्त अहंकार खड़ा हो गया, तो वह असत कर्म हो गया। अगर दान देते वक्त तुमने अपना हाथ परमात्मा के हाथ में दे दिया और उसने ही दान दिया, तुम सिर्फ उपकरण रहे, निमित्त मात्र, तो सत कर्म हो गया।
सत कर्म की यह व्याख्या अनूठी है। इसमें कुछ संबंध नहीं है दूसरे से।
इसमें अच्छे कर्म का सवाल नहीं है। इसमें सवाल है निरअहंकारिता का।
परमात्मा से हो, तो सत हो जाता है कृत्य। तुम से हो, तो असत हो जाता है कृत्य।
तथा यज्ञ, तप और दान में जो स्थिति है, वह भी सत है, ऐसे कही जाती है। और
उस परमात्मा के अर्थ किया हुआ कर्म निश्चयपूर्वक सत है, ऐसे कहा जाता है। कृष्ण यह कह रहे हैं, अर्जुन, युद्ध न तो सत है और न असत्। कैसे तू करता है, इस पर सब निर्भर है। तो तू यह मत कह कि युद्ध असत है, हिंसक है, बुरा है, दुष्कर्म है; मैं न करूंगा; पाप है।
कृष्ण पूरी व्याख्या को बड़ी गहराई पर ले जा रहे हैं। वे कह रहे हैं, सवाल युद्ध का नहीं है; सवाल करने वाले का है। अगर तू ऐसे युद्ध में उतरता है, जैसे तू है ही नहीं, परमात्मा ही तेरे द्वारा जो करवा रहा है, वह हो रहा है, तू बीच से हट जाए, तो सत कर्म है। तो युद्ध भी धर्म-युद्ध हो जाता है। और अगर तू युद्ध कर रहा है और परमात्मा को तू पीछे हटा लेता है, खुद आगे आ जाता है, तो वह असत हो जाता है।
इसका यह अर्थ हुआ कि कर्मों से कोई संबंध नहीं है सत और असत होने का।
एक वेश्या भी सत को उपलब्ध हो सकती है, एक चोर भी, एक हत्यारा भी, अगर उसने अपना अहंकार छोड़ दिया और परमात्मा ने जो करवाया वह निमित्त मात्र हो गया।
कबीर कहते हैं, मैं तो बांस की पोंगरी हूं। गीत तेरे।

बस, तब गीत जो भी हो, वह सत हो जाएगा। और चाहे तुम दान करो, तप करो, यज्ञ करो, लेकिन अहंकार के ही आभूषण जोड़ रहे हो, तो कृत्य अच्छे दिखाई पड़ते हैं, लेकिन सत नहीं हैं।
परमात्मा के हाथ की छाप जिस पर पड़ जाए, वही कृत्य सत है, क्योंकि परमात्मा सत है।
हे अर्जुन, बिना श्रद्धा के होमा हुआ हवन तथा दिया हुआ दान, तपा हुआ तप
और जो कुछ भी किया जाए, वह कर्म असत है, ऐसा कहा जाता है।
श्रद्धा का अर्थ है, समर्पण। श्रद्धा का अर्थ है, निमित्त हो जाना। श्रद्धा का अर्थ है, मैं नहीं हूं, तू है। श्रद्धा का अर्थ है, मैं हटा, तू आ और विराजमान हो जा। श्रद्धा का अर्थ है, मैं सिंहासन छोड़ता हूं तेरे लिए। श्रद्धा का अर्थ है, अब मैं ऐसे जीऊंगा, जैसे तू जिलाएगा; अब मेरी कोई मरजी नहीं, अब तेरी मरजी ही मेरी मरजी है। श्रद्धा का अर्थ है, फांसी। श्रद्धा का अर्थ है, मैं मरा; अब तू मुझसे जी।
जिस क्षण तुम शववत हो जाते हो, उसी क्षण तुम शिववत हो जाते हो। जिस क्षण तुम मुरदे की भांति हो जाते हो, उसी क्षण परमात्मा का शिवत्व तुम्हारे भीतर से अहर्निश बहने लगता है। फिर तप करो, न करो, करने वाला न रहा, कोई फल की आकांक्षा न रही, तुम उसके हाथ की लकड़ी हो गए। फिर न तो तुम्हें पाप लगते, न पुण्य लगता। फिर कर्म के सारे जाल तुम्हें नहीं छूते। तुम फिर कमलवत इस संसार में रह सकते हो, अस्पर्शित।
और वह सब असत है, जो बिना श्रद्धा के किया जाता है। इसलिए वह न तो इस लोक में लाभदायक है और न मरने के पीछे ही।
उसके धोखे में मत पड़ना।
सूत्र रूप में, सार रूप में एक आखिरी बात स्मरण रखना कि जो भी तुमसे हो, वह अधर्म है। जो तुम करो, वह अधर्म है। जो अहंकार से बहे, वह पवित्र गंगा नहीं है। उस किनारे तीर्थ न बनेंगे। जो निरअहंकार से आए!
एक ही यज्ञ है, तुम्हारा जल जाना। नाहक घी मत जलाओ; घी की वैसे ही कमी है। नाहक अनाज मत फेंको; अनाज वैसे ही बहुत कम है। मूढ़ताएं मत करो।
एक ही तप है... । धूप में मत खड़े रहो, क्योंकि उस धूप में तुम्हारा अहंकार ही और अकड़ेगा, भरेगा। व्यर्थ अपने को भूखा मत मारो, क्योंकि उस भूखे मरने में तुम्हारा अहंकार और सघन होगा।
एक ही तप है कि तुम मिटो। एक ही यज्ञ है कि तुम मिटो। एक ही दान है कि तुम अपने को दे डालो। फिर जो बच रहता है, लहर के खो जाने पर जो बच रहता है सागर, उसका ही नाम है, ओम तत सत्।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग आठ
गीता दर्शन अध्याय 18
पहला प्रवचन

अंतिम जिज्ञासाः क्या है मोक्ष, क्या है संन्यास

श्रीमद्भगवद्गीता
अथाष्टादशोऽध्यायः

अर्जुन उवाच
संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम्।
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन।। 1।।
श्रीभगवानुवाच
काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः।
सर्व कर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विच्रणाः।। 2।।
त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः।
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे।। 3।।
अर्जुन बोला, हे महाबाहो, हे हृषीकेश, हे वासुदेव, मैं संन्यास और त्याग के तत्व को पृथक-पृथक जानना चाहता हूं।
इस प्रकार अर्जुन के पूछने पर श्री भगवान बोले, हे अर्जुन, कितने ही पंडितजन तो काम्य कर्मों के त्याग को संन्यास जानते हैं और कितने ही विच्रण अर्थात विचार कुशल पुरुष सब कर्मों के फल के त्याग को त्याग कहते हैं।
तथा कई एक मनीषी ऐसा कहते हैं कि कर्म सभी दोषयुक्त हैं, इसलिए त्यागने के योग्य हैं। और दूसरे विद्वान ऐसा कहते हैं कि यज्ञ, दान और तप रूप कर्म त्यागने योग्य
नहीं हैं।

कूष्ण की गीता का अंतिम अध्याय आ गया। जो शुरू होता है, वह समाप्त भी होता है। कृष्ण जैसे अनूठे पुरुषों के वचन भी अंत पर आ जाते हैं। उनके द्वारा भी जिन शब्दों का उच्चार होता है, वे भी पानी पर खींची गई लकीरें सिद्ध होते हैं। कृष्ण भी उसे नहीं बोल पाते, जो कभी समाप्त न होगा। बोलने में वह आता ही नहीं।
जो भी बोला जाएगा, शुरू होगा, अंत होगा; उसकी सुबह होगी, सांझ होगी; जन्म होगा, मृत्यु होगी। सभी शास्त्र जन्मते हैं और मर जाते हैं। और सत्य तो वह है, जो कभी जन्मता नहीं और कभी मरता नहीं। सत्य तो शाश्वत है; शब्द क्षणभंगुर हैं।
शब्दों के क्षणभंगुर बबूलों पर सत्य का प्रतिफलन पड़ जाए, इतना काफी है। तुम्हारे शब्द भी बबूले हैं; कृष्ण के शब्द भी बबूले हैं। दोनों ही मिटेंगे। दोनों ही क्षणभंगुर हैं। फर्क इतना है कि तुम्हारे शब्द पर सत्य की कोई प्रतिच्छाया नहीं पड़ती। कृष्ण के शब्द पर सत्य की प्रतिच्छाया पड़ती है। जैसे पानी के बबूले पर सूरज झलकता हो; इंद्रधनुष खिंच गया हो बबूले के आस-पास, सातों रंग प्रकट हो गए हों। तुम्हारा बबूला, बस बबूला है खाली। बबूला तो कृष्ण का भी बबूला ही है; पर सत्य की छाया है।
तुम्हारी झील में चांद का कोई प्रतिबिंब नहीं है। कृष्ण की झील में चांद का प्रतिबिंब है। यद्यपि झील में बने चांद को चांद मत समझ लेना। झील में खोजने मत लग जाना। नहीं तो खोजोगे तो बहुत, पाओगे कुछ भी नहीं। चांद झील में नहीं है, झील में दिखाई पड़ता है। झील से इशारा सीख लो। झील से समझ लो कि प्रतिबिंब कहां से आ रहा है। इसका मूल उत्स कहां है। फिर झील की तरफ पीठ कर लो और चांद की तरफ यात्रा शुरू कर दो।
कृष्ण ने जो कहा है गीता में, उसमें मत उलझ जाना। न मालूम कितने उस अरण्य में उलझे हैं और भटक गए हैं। कितनी टीकाएं हैं कृष्ण की गीता पर! मैं कोई टीका नहीं कर रहा हूं।

एक अरण्य खड़ा हो गया है कृष्ण के शब्दों के आस-पास। न मालूम कितने लोग जीवन उसी में बिता डालते हैं। वे गीता के पंडित हो जाते हैं; कृष्ण से वंचित रह जाते हैं।
गीता थोड़े ही सार है; वह तो झील में बना प्रतिबिंब है चांद का। समझ लेना इशारा और झील को छोड़ देना। यात्रा बिल्कुल अलग-अलग है। अगर झील में छलांग लगा ली और चांद को खोजने के लिए डुबकियां मारने लगे, तो तुम टीकाएं ही पढ़ते रहोगे। तब तुम कृष्ण के शब्दों में ही उलझ जाओगे। शब्दों में तो कुछ सार नहीं है।
झील में उतरना ही मत। झील ने तो इशारा दे दिया है ठीक अपने से विपरीत।
दिखाई तो पड़ता है प्रतिबिंब झील के भीतर; चांद होता है झील के ऊपर, ठीक उलटा।
शब्द को सुनकर निःशब्द की यात्रा पर निकल जाना। ठीक उलटी यात्रा है।
कृष्ण को सुनकर गीता में मत फंसना; कृष्ण की खोज में निकल जाना।
जहां से उठती है गीता, उस चैतन्य का नाम कृष्ण है। गीता तो शब्द ही है; बड़ा बहुमूल्य शब्द है, पर शब्द ही है। हीरा बड़ा बहुमूल्य पत्थर है, पर पत्थर ही है। और इसीलिए गीता का अंत आ जाता है; कृष्ण का तो कोई अंत नहीं है।
जो है, उसका कभी कोई अंत नहीं है। सपने ही बनते और मिटते हैं। एक बड़ा प्यारा सपना है, गीता।
सपने में भी दो तरह के सपने होते हैं। एक तो बिल्कुल ही सपना होता है; जिससे यथार्थ का कोई भी नाता नहीं होता। और एक ऐसा भी सपना होता है, जिसमें यथार्थ की थोड़ी भनक होती है। सपना तो वह भी है; लेकिन यथार्थ की थोड़ी भनक है। सपने को छोड़ देना, भनक को पकड़ लेना। वह जो यथार्थ का घूंघर बज रहा है धीमा-धीमा, सपने के शोरगुल में उसे ठीक से पकड़ लेना, ताकि शोरगुल में न उलझ जाओ।
कृष्ण ने यह गीता कही, इसलिए नहीं कि कहकर सत्य को कहा जा सकता है। कृष्ण से बेहतर कौन जानेगा कि सत्य को कहकर कहा नहीं जा सकता! फिर भी कहा, करुणा से कहा है।
सभी बुद्ध पुरुषों ने इसलिए नहीं बोला है कि बोलकर तुम्हें समझाया जा सकता है। बल्कि इसलिए बोला है कि बोलकर ही तुम्हें प्रतिबिंब दिखाया जा सकता है। प्रतिबिंब ही सही, चांद की थोड़ी खबर तो ले आएगा! शायद प्रतिबिंब से प्रेम पैदा हो जाए और तुम असली की तलाश करने लगो, असली की खोज करने लगो, असली की पूछताछ शुरू कर दो।
लेकिन अक्सर ऐसा हुआ है कि बुद्ध पुरुषों के वचन इतने महत्वपूर्ण हैं, इतने कीमती हैं, इतने सारगर्भित हैं कि लोग उनमें ही उलझ गए हैं। फिर सदियां बीत जाती हैं, लोग शास्त्रों का बोझ बढ़ाए चले जाते हैं! और बात ही उलटी हो गई। कहा किसी और कारण से था। कहने के लिए न कहा था; न कहने की तरफ इशारा उठाया था। शब्द से भी तुम्हारे भीतर निःशब्द को जगाने की चेष्टा है। बोलकर भी बुद्ध पुरुष चाहते हैं कि तुम न-बोलने की कला सीख लो।
तो पहली बात, कृष्ण की गीता तक का अंत आ जाता है, तो तुम्हारे गीतों का
तो कहना ही क्या। वे अंत आ जाएंगे। और जिसका अंत ही आ जाना है, उसमें क्या उलझना! उसमें जितने उलझे, उतना ही समय गंवाया, उतना ही जीवन व्यर्थ खोया। खोजो उसे, जिसका कोई अंत नहीं आता।
शाश्वत है सत्य। सत्य को भी जो जान लेते हैं, वे भी समय की धार में उस सत्य को वैसा ही नहीं ला सकते, जैसा वह अपने में है। समय की धार में लाते ही प्रतिबिंब बन जाता है। समय दर्पण है। शाश्वत उसमें एक ही तरह से पकड़ा जा सकता है, वह प्रतिबिंब की तरह है। इसे थोड़ा समझ लेना।
इसलिए मैं कहता हूं, गीता तो इतिहास की घटना है, कृष्ण इतिहास की घटना नहीं हैं। कृष्ण तो पुराण-पुरुष हैं। गीता कभी घटी है, कृष्ण कभी घटते हैं? कृष्ण सदा हैं।
यह गीता का फूल तो लगा एक दिन; सुबह खिला; उठा आकाश में; सुगंध फैली; सांझ मुरझाया और गिर गया। अब फिर बहुत नासमझ हैं, जो उसी फूल पर अटके बैठे हैं। जिन्होंने उसी फूल पर टीकाएं लिखी हैं। उसी फूल के आस-पास सिद्धांतों का जाल बुना है। वे भूल ही गए। यह फूल असली बात न थी। यह तो एक

चेष्टा थी शाश्वत की, समय की धारा में प्रवेश की; ताकि तुम तक आवाज पहुंच सके।
बस, यह एक आवाज थी; यह अनंत की पुकार थी कि तुम सुन लो और चल पड़ो। यह कोई
घर बनाकर बैठ जाने का मामला न था। यह तो एक आवाहन था। एक आह्वान था।
लेकिन इस आह्वान को मानकर जाने के लिए तो बड़ी हिम्मत चाहिए। अर्जुन जैसा क्षत्रिय भी बामुश्किल जुटा पाया। जुटाता, बिखर जाता। सम्हालता अपने को, चूक जाता। सब तरफ से उसने भागने की कोशिश की।
लेकिन कृष्ण मिल जाएं, तो उनसे कभी कोई भाग पाया है? भागने का उपाय नहीं है। इसलिए अर्जुन न भाग पाया, अन्यथा अपनी तरफ से उसने सब चेष्टा की थी; सब तर्क लाया।
मनुष्य जाति के इतिहास में उस परम निगूढ़ तत्व के संबंध में जितने भी तर्क हो सकते हैं, सब अर्जुन ने उठाए। और शाश्वत में लीन हो गए व्यक्ति से जितने उत्तर आ सकते हैं, वे सभी कृष्ण ने दिए। इसलिए गीता अनूठी है। वह सार-संचय है; वह सारी मनुष्य की जिज्ञासा, खोज, उपलब्धि, सभी का नवनीत है। उसमें सारे खोजियों का सार अर्जुन है। और सारे खोज लेने वालों का सार कृष्ण हैं।
कृष्ण कभी घटे समय में, इस बात में पड़ना ही मत। ऐसे व्यक्ति सदा हैं। कभी-कभी उनकी किरण उतर आती है; कहीं से संध मिल जाती है। अर्जुन संध बन गया। प्रेमपूर्ण हृदय ही संध बन सकता है।
अर्जुन शिष्य ही नहीं है। वस्तुतः तो शिष्य वह था ही नहीं। क्षत्रिय
और शिष्य हो, जरा कठिन है! वह एक ही भाषा जानता है, मित्र की या शत्रु की। और कोई भाषा नहीं जानता। या तो तुम उसके मित्र हो या उसके शत्रु हो। उसका गणित सीधा साफ है, जो मित्र नहीं, वह शत्रु है।
कृष्ण से भी अर्जुन का प्राथमिक नाता मित्र का है। शिष्य तो वह फंस गया। शिष्य होने में तो जैसे उसकी चेष्टा न थी, अनजाने उलझ गया। बात तो उसने ऐसी ही शुरू की थी, जैसे मित्र से पूछ रहा हो।
इसमें थोड़ा समझ लेने जैसा है।
सत्य की खोज की दिशा में एक गहन मैत्री का भाव तो चाहिए ही। शिष्य का भाव तो तुम्हारे बस के भीतर नहीं है। वह गुरु पैदा करेगा। वह तो तुम्हारा अहंकार कैसे शिष्य हो सकता है प्रथम से! वह इतना भी राजी हो जाए मित्र होने को, तो भी काफी है। इतनी सुविधा दे दे तुम्हें, तो भी बहुत है।
अर्जुन बात तो शुरू किया था मित्र की तरह से, अंत होते-होते शिष्य हो गया। जैसे-जैसे पूछा, वैसे-वैसे मुश्किल में पड़ा। जैसे-जैसे पूछा, वैसे- वैसे कृष्ण का विराट रूप प्रकट होने लगा। जिसको सदा मित्र की तरह जाना था, जिसमें और किन्हीं गहराइयों की खबर ही न थी, जिसमें कभी झांका ही न था, जिसे स्वीकार ही कर लिया था कि अपना मित्र है... ।
यह भी थोड़ा समझ लेना।
तुमने जिन्हें मित्र ही समझ लिया है, उनके भीतर भी विराट छिपा है। जिनके ऊपरी व्यवहार से ही तुम समाप्त हो गए हो कि तुमने समझ लिया कि परिचित हो गए; गलती मत करना। अगर तुम थोड़े मित्र को संधि दोगे, तो तुम वहीं से विराट को पाओगे; वहीं से कृष्ण की किरण उतर आएगी।
इसलिए गहन मैत्री में धर्म की शुरुआत होती है। प्रेम में प्रार्थना
का प्रारंभ है। प्रेम में ही बीज बोए जाते हैं, जो किसी दिन परमात्मा बनते हैं।
यह भी समझ लेने जैसा है कि एक गहन सहानुभूति चाहिए, तो ही समझ पैदा हो सकती है। एक तरह की विवादग्रस्त मनोदशा से समझ पैदा नहीं हो सकती। अर्जुन ने तर्क तो सब उठाए, पर बड़ा संवादपूर्ण हृदय था। उन तर्कों में कृष्ण को गलत करने की चेष्टा न थी, सिर्फ अपने संशयों की अभिव्यक्ति थी, अभिव्यंजना थी।
जब तुम तर्क उठाते हो, तो दो तरह से उठा सकते हो। एक तो कि दूसरे को गलत करने की चेष्टा हो; तब तुमने शत्रुता खड़ी कर ली। संवाद बिखर गया। गीता पैदा न हो सकेगी।

गीत कहीं पैदा होता है, जहां संवाद ही पैदा न हो सके? संवाद का स्वर गीत है। संवाद का समस्वर हो जाना गीत है। जहां दो व्यक्ति एक ऐसी समस्वरता में बंध जाते हैं समाधि की, संगीत की, वहां गीत पैदा होता है।
भगवद्गीता पैदा हुई, उसमें अर्जुन का हाथ उतना ही है जितना कृष्ण का।
न तो अकेले कृष्ण से वह हो सकती थी, न अकेले अर्जुन से हो सकती थी। उन दोनों का समतुल हाथ है; वहीं से गीत जन्मा है।
अगर विवाद की दृष्टि हो, तो जिज्ञासा सुंदर नहीं रह जाती, कुरूप हो जाती है। जिज्ञासा जिज्ञासा ही नहीं रह जाती, एक तरह की शत्रुता हो जाती है। तुम पूछते ही हो गलत सिद्ध करने को। तुम पूछते हो मानकर कि तुम पहले से जानते ही हो।
मित्र भी पूछ सकता है। प्रश्न की शब्दावली एक ही जैसी भी हो, तो भी कोई भूल नहीं होने वाली है। मित्र जब पूछता है, तो वह इसलिए नहीं पूछता कि तुम गलत हो। वह इसलिए पूछता है कि मेरे मन में संदेह है। तुम तो ठीक ही होओगे; मैं ही कहीं गलत हूं। पर यह संदेह मेरे भीतर है, इसका भी मैं क्या करूं? कल एक संन्यासी मेरे पास आए। उनकी आंख में आंसू आ गए और उन्होंने कहा
कि कभी-कभी आपके संबंध में भी विरोध के विचार पैदा हो जाते हैं। पर आंख में आंसू हैं; पीड़ा है, तब तो यह विरोध का विचार भी अत्यंत प्रेम से भरा है। मैंने उनसे कहा, फिर होने दो। फिर कोई चिंता नहीं है। आने दो विरोध के विचार को। वह तुम्हें घेर न पाएगा; तुम उसे जीत लोगे। क्योंकि तुम विरोध में नहीं हो, फिर कोई विरोधी विचार कुछ फर्क नहीं ला सकता। लेकिन तुम अगर विरोध में हो, तो विरोधी विचार न भी हो तो भी क्या फर्क पड़ेगा! विवाद तो खड़ा ही है।
अर्जुन के मन में बड़े संदेह थे। कृष्ण गुरु हैं, ऐसी भी कोई धारणा न थी। हो भी कैसे सकती है?
बड़ी पुरानी तिब्बती कहावत है कि शिष्य गुरु को नहीं खोज सकता; गुरु ही शिष्य को खोजता है।
बात कुछ जंचती है, बेबूझ होती हुई भी जंचती है। बेबूझ तो इसलिए कि गुरु क्यों खोजने निकलेगा शिष्य को? उसे क्या जरूरत पड़ी है?
उसकी भी जरूरत है। वह जरूरत ऐसे ही है, जैसे मेघ जब जल से भर जाता है,
तो बरसना चाहता है, भूमि खोजता है, उत्तप्त भूमि खोजता है।
वह जरूरत ऐसी ही है, जैसे जब फूल गंध से भर जाता है, तो किन्हीं नासापुटों की प्रतीक्षा करता है। हवा के पंखों पर सवार होकर यात्रा पर निकलता है खोजने नासापुट। वह जरूरत वैसी ही है जैसे जब रोशनी जलती है, दीया प्रकाश से भरता है, तो बरसता है चारों तरफ, बंटता है।
मोहम्मद ने कहा है कि अगर पहाड़ मोहम्मद के पास न आएगा, तो मोहम्मद पहाड़ के पास जाएगा। जल से भर गया मेघ खोजता है उत्तप्त हृदय को।
बेबूझ इसलिए कि हम सोचते हैं, गुरु को क्या पड़ी है! और बेबूझ इसलिए भी
कि शिष्य की ही तलाश है, तो शिष्य को ही खोजना चाहिए। लेकिन फिर भी कहावत सही है।
शिष्य खोजेगा कैसे? उसके पास मापदंड कहां? उसके पास क्या है निकष? कैसे कसेगा? क्या है कसौटी? कैसे करेगा स्वीकार कौन गुरु है? किन चरणों में झुकेगा? किस सहारे झुकेगा? कौन-सा हिसाब है उसके पास? गुरु को जानता तो नहीं, पहचान तो कोई भी नहीं। इस अज्ञात मार्ग पर कैसे निर्णय करेगा कि यहीं छोड़ दूं, कर दूं समर्पण इन्हीं चरणों में, हो जाऊं यहीं निछावर। बस, अब आगे कोई मंजिल नहीं; आ गया घर। ऐसी कैसे प्रतीति होगी उसे?
गुरु एक दूसरे जगत में रहता है। वह यहां दिखाई पड़ता है, यहां होता नहीं। उसका शरीर यहां होता है, उसका स्वयं का होना तो बहुत दूर होता है। वह तो ऐसे वृक्ष की तरह है, जिसकी जड़ें जमीन में गड़ी हैं और शाखाएं-प्रशाखाएं आकाश को छू रही हैं। उसके पैर ही यहां हैं। इसलिए तो हम गुरु के पैर छूते हैं, क्योंकि उससे ज्यादा हम पहचान कैसे पाएंगे!
गुरु के पैर छूना बड़ा प्रतीकात्मक है। हम यह कह रहे हैं कि तुम्हारे पैर ही इस संसार में हमें मिल सकते हैं, इससे ज्यादा तो हम तुम्हें यहां न पा सकेंगे। इन पैरों के पार तो तुम किसी और लोक में हो। बस, तुम्हारे हम टटोलकर पैर भी पा लें, तो मार्ग मिल गया, राह मिल गई। फिर हम तुम्हें खोज ही

लेंगे। सहारा मिल गया। एक सूत्र हाथ में आ गया; फिर होओ तुम कितनी ही दूर, यात्रा हो कितनी ही लंबी, लेकिन अब भरोसे से हम इस धागे के सहारे चल लेंगे। लेकिन कैसे पहचानोगे चरणों को? कैसे पहचानोगे गुरु की उपस्थिति को? इसलिए कहावत बेबूझ होती हुई भी ठीक है कि गुरु ही खोजता है।
इसके पहले कि तुम गुरु को चुनो, गुरु तुम्हें चुन लेता है। इसके पहले
कि तुम उसकी तरफ चलो, उसकी पुकार तुम्हारे हृदय को खींचने लगती है। इसके पहले कि तुम होश से भरो कि तुम बुला लिए गए हो, तुम आ चुके होते हो।
अर्जुन को पता ही नहीं, कैसे सारा खेल हो गया है! कैसे उसने कृष्ण को अपना सारथी चुन लिया है। कैसे कृष्ण सारथी होकर उसके रथ पर सवार होकर इस महाभारत के युद्ध में आ गए हैं! कैसे अनायास किसी और को पास न पाकर कृष्ण से वह पूछ बैठा है! कोई और था भी नहीं जिससे पूछे। मजबूरी थी; जैसे वह अपने से ही बोला हो। सारथी भी था मौजूद, इसलिए सारथी को पूछ लिया है। और एक अनंत यात्रा शुरू हो गई। अनजाने में, अंधेरे में उसकी शुरुआत है, जैसे बीज अंधकार में जमीन के फूटता है। उसे पता भी नहीं होता, कहां जा रहा है। अंकुर को पता भी कैसे होगा, कहां जा रहा हूं! उसने पहले तो कभी आकाश देखा नहीं। उसने पहले तो कभी हवाओं में झोंके नहीं लिए। उसने पहले तो कभी सुबह की धूप में झपकी नहीं ली। वह जागा ही नहीं, बाहर आया ही नहीं; बीज में बंद था।
यह तो पहली ही बार यात्रा हो रही है। तोड़ता है जमीन की परतों को। बिल्कुल नाजुक कोमल अंकुर कठोर पृथ्वी को तोड़कर बाहर आ जाता है। कोई अज्ञात पुकार है, जैसे सूरज ही उसे खींचता हो जमीन के बाहर, कि आओ! कि जैसे हवाएं उसे बुलाती हों और वह रुक न पाता हो, अवश खिंचा हुआ चला आया है। धीरे- धीरे चीजें साफ होती हैं। धीरे-धीरे आकाश में उठता है और आश्वस्त होता है। अर्जुन को पता नहीं, वह क्यों पूछने लगा है! अर्जुन को पता नहीं, क्यों उसने सारथी बना लिया है कृष्ण को! क्यों सारथी से पूछ रहा है! यह सब हुआ है। अर्जुन की तरफ से यह सब अंधकारपूर्ण है; कृष्ण की तरफ से यह सब साफ-साफ है।
अर्जुन को ख्याल ही है कि उसने चुन लिया है कृष्ण को; कृष्ण ने ही उसे चुना है। अर्जुन को ख्याल है कि उसने प्रश्न उठाए हैं; कृष्ण ने ही उसे उकसाया है। अर्जुन को ख्याल है कि वह जिज्ञासा कर रहा है; कृष्ण ने ही उसे अतृप्त किया है।
अगर तुम मेरी बात समझो, तो यह भी हो सकता था कि कृष्ण की जगह अगर और कोई सारथी होता, तो अर्जुन को ये प्रश्न भी न उठे होते, यह जिज्ञासा भी न जगी होती। यह कृष्ण की मौजूदगी में फूटता हुआ अंकुर है। संभावना भीतर थी, अन्यथा पत्थर को थोड़े ही सूरज तोड़ लेगा, बीज को ही तोड़ सकता है। भीतर संभावना थी, इसलिए कृष्ण की पुकार सुनी जा सकी। लेकिन अर्जुन के जो कदम हैं प्राथमिक, वे बिल्कुल अज्ञात में हैं।
तुम भी मेरे पास चले आए हो, तुम्हारे पहले कदम बिल्कुल अंधकारपूर्ण हैं। अनेक व्यक्ति मेरे पास आकर कहते हैं कि हम क्यों आ गए हैं, हमें कुछ पता नहीं। हम यहां क्यों हैं? किसलिए यहां हम आपके पास रुक गए हैं, कुछ पता नहीं! कभी-कभी वे घबड़ा भी जाते हैं कि यहां क्या कर रहे हैं!
कोई दूर स्वीडन से आया है, डेनमार्क से आया है। उसे कभी सपना भी नहीं
हो सकता था पूना का। पूना है भी कहीं, इससे भी कोई उसका लेना-देना न था। और तब अचानक किसी दिन उसे यह बात यहां भी पकड़ लेती है कि मैं यहां क्या कर रहा हूं! छः महीने हो गए आए हुए। घर से पुकार आ रही है, वापस लौट आओ। किसी की पत्नी है, बच्चे हैं; किसी के पिता हैं, मां है। मैं यहां क्या कर रहा हूं? मेरे पास लोग आकर बार-बार कहते हैं कि आप हमें बताएं, हम यहां क्या कर रहे हैं? हम यहां क्यों हैं?
उनकी बात ठीक है। प्राथमिक क्षण अंधकार में ही हैं उनके लिए। मैं जानता हूं, वे यहां क्यों हैं; वे नहीं जानते हैं। गुरु ही खोज लेता है। जीसस ने कहा है, जैसे मछुआ जाल फेंकता है पानी में; मछलियों को पकड़ लेता है।
ऐसा ही एक जाल है, जो बड़ा अदृश्य है और चैतन्य के सागर में फेंका जाता है। और जब अर्जुन जैसी कोई मछली फंस जाती है, तो गीता का जन्म होता है।

अर्जुन कोई छोटी-मोटी मछली नहीं है। बड़ा बहुमूल्य व्यक्ति है, बड़ी मूल्यवान संभावनाएं हैं, बड़ा उसका भविष्य है। धीरे-धीरे एक-एक उत्तर कृष्ण का उसके भीतर और अनेक प्रश्नों को उठाता गया। लेकिन यह संवाद है; वह विवाद नहीं कर रहा है। वह कृष्ण को गलत सिद्ध नहीं करना चाहता है। बहुत गहरे में तो वह यही चाहता है कि कृष्ण ही सही हों और मैं गलत होऊं। लेकिन करूं क्या, मजबूरी है! प्रश्न उठते हैं, संदेह है, संशय है, तो कहूंगा न तो क्या करूंगा! कहना ही पड़ेगा।
वह बड़ी दुविधा में है। हृदय प्रेम करना चाहता है, मस्तिष्क संदेह उठाता है। हृदय चाहता है, हटाओ सब संदेह; डूब जाओ इस गहरी मैत्री में। लेकिन मन संदेह उठाए चला जाता है।
मन के संदेह हल करने ही होंगे। मन को निरस्त करना ही होगा। मन की शंकाएं काटनी ही होंगी। लेकिन अर्जुन का हृदय मन के साथ नहीं खड़ा है, इसलिए हल हो सका। अगर अर्जुन का हृदय भी मन के साथ खड़ा हो, फिर कोई हल नहीं है, फिर कोई समाधान नहीं है। फिर तुम हल करना ही नहीं चाहते।
इस बात को तुम अपने भीतर ठीक से पहचान लेना। क्योंकि मुझे क्या लेना- देना कृष्ण से और अर्जुन से! सवाल मेरे और तुम्हारे होने का है। ये सब तो मेरे लिए बहाने हैं। जिनके बहाने मैं तुमसे कुछ कह रहा हूं। तुम अपने भीतर गौर से देख लेना।
अगर तुम पाओ कि तुम मुझे गलत सिद्ध करना चाहते हो, यह तुम्हारे हृदय में है, तो तुम व्यर्थ ही अपना समय खराब कर रहे हो। अगर तुम चाहते हो कि अंततः मैं सही सिद्ध हो जाऊं और तुम गलत हो जाओ, फिर भी तुम्हारा मन संदेह उठा रहा है, फिर कोई अड़चन नहीं है। फिर तुम उठाए जाओ; सब संदेह काटे जा सकेंगे।
लेकिन अगर तुम्हारा हृदय ही उनसे जुड़ा हो, तो तुम्हारे विपरीत मैं तुम्हें मुक्त न कर पाऊंगा। हां, तुम मुक्त होना चाहो, तो कितनी ही बाधाएं हैं, सब काट डाली जाएंगी। कोई बाधा बाधा न बन सकेगी। तुम होना ही न चाहो, तो फिर कोई उपाय नहीं है। फिर मेरे दिए हुए सब उपाय भी नई जंजीरें बन जाएंगे।
तुम उनसे भी बंधोगे, छूटोगे नहीं।
आ गया यह आखिरी अध्याय अर्जुन की जिज्ञासा का, कृष्ण के समाधानों का।
इस आखिरी अध्याय का नाम है, मोक्ष-संन्यास-योग।
भारत के लिए मोक्ष अंतिम बात है। वह अठारहवां अध्याय है। उसके पार फिर कुछ नहीं है।
दुनिया में कहीं भी मोक्ष आखिरी बात नहीं है। दुनिया में मनुष्य के चैतन्य की इतनी गहराई से खोज ही नहीं हुई। भारत ने चार पुरुषार्थ कहे हैंः अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष। अधिक संस्कृतियां बहुत अगर ऊंची उठीं, तो धर्म तक जाती हैं।
अब यह बड़े मजे की बात है, मोक्ष धर्म के भी पार है। मुक्त तो कोई तभी होता है, जब धर्म भी छूट जाता है। वह आखिरी बंधन है; बड़ा प्रीतिकर, बड़ा मधुर, मगर वह भी बंधन है। अगर तुम हिंदू हो, मोक्ष दूर है अभी। अगर मुसलमान हो, तो मोक्ष अभी दूर है। धर्म तक आ जाओगे। हमने उसे तीसरा ही पड़ाव कहा है, मंजिल नहीं।
मोक्ष तो तब है, जब धर्म भी छूट गया, शास्त्र भी छूट गए, शब्द भी छूट गए। तुम्हें पता ही न रहा कि तुम कौन हो। कोई आइडेंटिटी, कोई तादात्म्य न रहा। कोई तुमसे पूछे, तो तुम हंसोगे; कुछ भी न कह पाओगे--हिंदू, कि मुसलमान, कि जैन, कि बौद्ध।
और एक गहरे अर्थ में तुम सभी हो गए। मंदिर भी तुम्हारा, मस्जिद भी तुम्हारी, गुरुद्वारा भी तुम्हारा; और न कोई गुरुद्वारा रहा तुम्हारे लिए, न कोई मस्जिद रही, न कोई... । कुरान भी गई, गीता भी गई, वेद भी गए, बाइबिल भी गई। और एक अर्थ में सब घर आ गया, वेद भी तुम्हारा, बाइबिल भी तुम्हारी, गीता भी तुम्हारी। तुम अब बंधे न रहे। तुम पार हो गए, एक अतिक्रमण हुआ। मोक्ष बड़ी अनूठी बात है। वह पूर्वीय धारणा है। दुनिया की कोई जाति उतनी ऊंची नहीं गई। ज्यादा से ज्यादा जातियां धर्म तक ऊंची गईं। जो उतने भी नहीं जा सके, वे काम तक गए--अर्थ, काम।

काम यानी वासना, सेक्स। अधिक लोग काम तक ही जा पाते हैं। जो उनसे भी नीचे हैं--वैसे भी बहुत लोग हैं; बड़ी संख्या है उनकी--जिनके लिए अर्थ ही सब कुछ है, धन।
अब यह थोड़ा सोचने जैसा है। जिसके जीवन में धन ही सब कुछ है, वह कामवासना वाले व्यक्ति से भी निम्न चेतना दशा का है। क्योंकि धन तो मुर्दा है। कामवासना कम से कम प्राकृतिक तो है, जीवंत तो है। धन तो जोड़ता नहीं, तोड़ता है। धन तो शोषण है, धन तो हिंसा है। प्रेम कम से कम जोड़ता तो है। किसी से भी जोड़ता है--एक स्त्री से, एक पुरुष से, परिवार से--कोई संबंध तो बनाता है। कामवासना में कुछ सेतु तो है! धन में तो कोई सेतु नहीं है। इसलिए धन का दीवाना किसी से भी नहीं जुड़ता। उसके आस-पास कोई जगह नहीं होती जहां से तुम संबंध बना लो। वह संबंधों से डरता है। क्योंकि संबंध बने कि झंझट आई। कहीं उसका धन न मांगने लगो! संबंध बने, तो कुछ खर्च भी करना पड़ेगा। संबंध बने, तो तुम्हें उसने निकट लिया। निकट डर है, क्योंकि तिजोरी के पास आ रहे हो। तुम्हारा हाथ उसकी जेब में जा रहा है। इतने पास वह किसी को भी न लेगा।
सबसे निम्नतम चेतना है, जिसका लक्ष्य जीवन में अर्थ है। धन, मकान, वस्तुएं, वह निम्नतम चेतना है। और वह संस्कृति निम्नतम है, जो अर्थ पर पूर्ण हो जाती है।
उसके ऊपर काम है। कम से कम दूसरे से जुड़ने की थोड़ी संभावना है, द्वार खुला है। कोई बहुत बड़ा द्वार नहीं है, बड़ा क्षुद्र द्वार है, लेकिन है। कोई बहुत विराट द्वार नहीं है, संकीर्ण है; उसमें से घसिटकर आना और जाना भी कष्टपूर्ण है। और उससे दूसरे से तुम जुड़ते भी हो और नहीं भी जुड़ते। क्योंकि जिससे भी तुम्हारा कामवासना का संबंध है, उससे गहरा संबंध हो ही नहीं पाता।
यह बड़े मजे की बात है। अगर तुम पति हो और तुम्हारी पत्नी से तुम्हारा केवल कामवासना का संबंध है, तो संबंध ही नहीं है। नाममात्र को है। एक ने दूसरे के हृदय को जाना नहीं, पहचाना नहीं। एक ने दूसरे के जीवन में न तो कोई गहराई छुई; एक ने दूसरे की गहराई को पुकारा ही नहीं। बस, शरीर के ऊपर परिधि पर थोड़ा-सा मिलन है। और वह भी मिलन क्षणभंगुर है। फिर फासला है, फिर मिलन है, फिर फासला है। मिलना और बिछुड़ना, मिलना और बिछुड़ना। और बिछुड़ना चौबीस घंटे है; मिलना क्षणभर को है। इसलिए कोई बड़ा संबंध नहीं है।
और जिससे भी तुम्हारा कामवासना का संबंध है, उससे तुम्हारा संघर्ष जारी रहेगा, द्वंद्व जारी रहेगा, विरोध जारी रहेगा। क्योंकि तुम्हें भीतर गहराई में ऐसा लगता ही रहेगा कि मैं निर्भर हूं; अपनी वासना की तृप्ति पर निर्भर हूं।
इसलिए पति पत्नियों से लड़ते ही रहेंगे, पत्नियां पतियों से लड़ती ही रहेंगी। जब तक उनके बीच से कामवासना तिरोहित न हो जाए, तब तक संघर्ष जारी रहेगा। जब तक पति-पत्नी उस जगह न आ जाएं, जहां उनके भीतर तीसरा चरण उठ जाए, धर्म का, तब तक कलह जारी रहेगी; तब तक उन दोनों के बीच शांति का राज्य स्थापित नहीं हो सकता। और ऐसा संबंध भी क्या, जो सिर्फ कलह का संबंध है! तो माना, रुपए-पैसे के बीच अगर तुलना करनी हो, अगर मुझसे कोई पूछे कि कामवासना या धन की दौड़? तो मैं कहूंगा, कामवासना। कम से कम थोड़े तो बाहर आओगे। बहुत सुंदर रूप से न आओगे, मगर आओगे तो! मुख्य द्वार से न आओगे, सरकते हुए, सेंध लगाकर आओगे किसी दीवाल में, आओगे तो! ठीक है; चलो, इतना ही सही। जुड़ोगे तो। जुड़ना कोई गहरा न होगा, परिधि-परिधि का मिलन होगा, हृदय हृदय से फासले पर रहेंगे। पर चलो, कुछ शुरुआत तो हुई।
जो संस्कृतियां अर्थ और काम, दो पर ही समाप्त हो जाती हैं, वही अधार्मिक संस्कृतियां हैं।
फिर तीसरा है द्वार धर्म का। धर्म तुम्हें खोलता है। तुम्हें तुम्हारे शरीर के ऊपर उठाता है। और कहता है, तुम शरीर ही नहीं हो। तुम्हें चैतन्य बनाता है। तुम्हें चैतन्य की पहली गंध देता है; चैतन्य का पहला स्वाद देता है। फिर तुम धर्म से जुड़ते हो जब, तब बड़ी और ही बात हो जाती है। जब पति-पत्नी ऐसी जगह आ जाते हैं, जहां उनके बीच नाता वासना का नहीं, काम का नहीं, धर्म का हो जाता है, तभी प्रेम पैदा होता है।

प्रेम धर्म की छाया है। धार्मिक व्यक्ति के आस-पास प्रेम बरसता है। तुम फर्क समझ सकते हो। कामवासना से भरे व्यक्ति के पास तुम एक तरह की दुर्गंध पाओगे। धर्म से भरे व्यक्ति के पास तुम एक तरह की सुगंध, एक ताजगी, सुबह की ओस की ताजगी, नए ताजे फूलों की गंध पाओगे।
जब धार्मिक व्यक्ति तुम्हारी आंखों में देखेगा, तो तुम्हारे भीतर आश्वासन का जन्म होगा, भय का नहीं। कामवासना से भरा हुआ व्यक्ति तुम्हारी आंखों में देखेगा, तो तुम भयभीत होओगे, तुम कंप जाओगे। वह तुम्हारे शरीर के पीछे है, तुमसे उसे कोई प्रयोजन नहीं है। तुम हो या नहीं, इससे कोई अर्थ भी नहीं है। उसका रस तुम्हारी देह में है। बस, देह से ज्यादा उसकी गहराई नहीं है।
धर्म प्रेम तक ले जाएगा। और धर्म तुम्हें एक से नहीं जोड़ेगा, बहुतों
से जोड़ देगा। काम तुम्हें एक से जोड़ेगा और बहुतों से तोड़ देगा। काम का संबंध ईर्ष्या का, वैमनस्य का, प्रतिस्पर्धा का संबंध है।
तुम्हारी पत्नी चौबीस घंटे डरी रहेगी कि तुम किसी और स्त्री की तरफ
तो नहीं देख रहे! तुम्हारा पति सदा भयभीत रहेगा कि पत्नी किसी और पुरुष में उत्सुक तो नहीं है! वह बड़ा संकीर्ण है और ओछा है; इतनी संकीर्णता में हृदय का कमल खिल ही नहीं सकता।
फिर एक धर्म का जगत है। वहां तुम्हारे जीवन में प्रतिस्पर्धा गिरती है, ईर्ष्या गिरती है, परिग्रह गिरता है। तुम धीरे-धीरे शांति की तरफ उत्सुक होते हो, मौन की तरफ उत्सुक होते हो। मंदिर की तरफ तुम्हारी यात्रा शुरू होती है।
धर्म के जगत में मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे, पूजागृह महत्वपूर्ण हो जाते हैं। गीता, कुरान, बाइबिल महत्वपूर्ण हो जाते हैं। सत्संग, सदवचनों का सुनना, सज्जनों का साथ रस देने लगता है। एक नई ही वीणा बजने लगती है। तुम पहली दफा अनुभव करते हो कि पदार्थ पदार्थ ही नहीं है, इसमें परमात्मा छिपा है। कण-कण में तुम्हें उसकी प्रतीति की थोड़ी-सी झलकें आनी शुरू हो जाती हैं। कभी-कभी अचानक वातायन खुल जाता है और तुम पाते हो कि लोग साधारण नहीं हैं, असाधारण हैं। यहां प्रत्येक वस्तु में, वह कितनी ही साधारण हो, बड़ी असाधारण गरिमा छिपी है। प्रत्येक वस्तु एक आभा से मंडित हो जाती है, एक गरिमा व्याप्त हो जाती है। यह जगत तुम्हें ऐसा नहीं लगता कि तुम किसी अजनबी जगह हो, यह तुम्हारा घर है। विरोध छूटता है, संघर्ष मिटता है, सहयोग शुरू होता है।
धार्मिक व्यक्ति के जीवन का स्वर सहयोग है। उसकी भाषा संघर्ष की नहीं
रह जाती।
कुछ संस्कृतियां धर्म तक जाती हैं। लेकिन पूरब वहां नहीं रुकता। वह कहता है, अभी एक कदम और। और वह है, मोक्ष। मोक्ष का अर्थ है, अब तुम इससे भी मुक्त हो जाओ।
मोक्ष बड़ी अनूठी धारणा है। क्योंकि सहयोग का भी मतलब है कि कहीं न कहीं संघर्ष की धुन मौजूद होगी, नहीं तो सहयोग किससे? किस बात का? मित्रता का अर्थ यह है कि कुछ शत्रुता शेष होगी, नहीं तो मित्रता की क्या जरूरत? प्रेम का अर्थ यह है कि घृणा कहीं छिपी होगी, मौजूद होगी, अन्यथा प्रेम का भी क्या सवाल? और तुम्हें कण-कण में परमात्मा दिखाई पड़ता है, इससे बात साफ है कि अभी पदार्थ और परमात्मा दो हैं, एक नहीं हुए। अभी कण भी है और उसमें परमात्मा दिखाई पड़ रहा है।
एक फकीर मेरे पास मेहमान थे, कोई पांच वर्ष पहले। वे मुझसे कहने लगे, मुझे तो कण-कण में परमात्मा दिखाई पड़ता है। मैंने पूछा कि कण-कण भी दिखाई पड़ता है और परमात्मा भी? दोनों! वे थोड़े चौंके। उन्होंने कहा कि दिखाई तो दोनों ही पड़ते हैं। तो फिर, मैंने कहा, परमात्मा अभी पूरा नहीं हुआ। नहीं तो कण खो ही जाएगा।
मोक्ष की दशा में परमात्मा ही है। फिर ऐसा नहीं है कि दिखाई पड़ता है वृक्ष में। वृक्ष है ही नहीं, परमात्मा ही है। वृक्ष परमात्मा का एक रूप है। परमात्मा कहीं छिपा है, ऐसा नहीं; परमात्मा प्रकट है।
धर्म के जगत में परमात्मा छिपा है, अप्रकट है। प्रतीति होती है। थोड़ी झलकें आती हैं। थोड़ा ख्याल आना शुरू होता है। चेतना जग रही है।

धर्म का जगत ऐसे है, जैसे सुबह तुम बिस्तर पर पड़े हो, उठना चाहते हो, थोड़ी नींद टूट भी गई है, नहीं भी टूटी है, अलसाए हुए हो। सड़क पर कोई दूध बेच रहा है, आवाज सुनाई पड़ती है। पत्नी उठ गई और बरतन साफ कर रही है, और आवाज सुनाई पड़ती है। और बच्चा स्कूल नहीं जाना चाहता, रो रहा है, और थोड़ा-सा ख्याल आता है। ऐसी झलक आ रही है कि दुनिया जाग गई; उठो।
धर्म अलसाई हुई दशा है। न तो आदमी सोया हुआ है, न अभी जागा हुआ है; मध्य में है। मोक्ष परिपूर्ण जाग्रत चैतन्य का नाम है। मोक्ष शब्द का ही अर्थ है, मुक्ति, जहां कोई परतंत्रता न रही।
और इसे तुम ठीक से समझ लो। क्योंकि पूरब में जिन्होंने बहुत गहन खोज
की है, उन्होंने कहा, जब तक दूसरा है, तब तक परतंत्रता रहेगी। दूसरे की मौजूदगी ही परतंत्रता है। जब तक दो हैं, तब तक अड़चन रहेगी। अद्वैत चाहिए, तभी स्वतंत्र हो पाओगे। जब स्व ही बचे और कुछ न बचे, तभी स्वतंत्र हो पाओगे। जब तक दूसरा है, तब तक दूसरा तुम्हारी सीमा बनाएगा।
तुमने कभी ख्याल किया, तुम अकेले अपने बाथरूम में होते हो, तब एक तरह
की स्वतंत्रता होती है। तुम मुस्कुराते हो, गीत गाते हो, गुनगुनाते हो। जिनको लाख समझाओ कि जरा गुनगुना दो लोगों के सामने, वे भी बाथरूम में बड़े मधुर गीत गाते हैं।
दूसरे की मौजूदगी में परतंत्रता है। दूसरा मौजूद है, तो तुम सिकुड़े।
अगर तुमको पता चल जाए कि कोई चाबी के छेद से झांक रहा है, तो तुम वहां भी सिकुड़ जाओगे, वहां भी डर जाओगे। वहां भी तुम्हारी स्वतंत्रता छिन जाएगी। तुम परतंत्र हो गए। दूसरे की नजर आई कि तुम परतंत्र हुए।
रास्ते पर तुम अकेले जा रहे हो, तुम्हारी चाल और होती है। फिर अचानक कोई रास्ते पर निकल आया; तुम्हारी चाल तत्क्षण बदल जाती है। तुम्हें होश नहीं है, इसलिए तुम्हें पता नहीं चलता; लेकिन सब बदल जाता है। अकेले में तुम और ही होते हो; दूसरे के सामने तुम और ही हो जाते हो, एकदम तुम्हारा चेहरा झूठा हो जाता है।
जिन्होंने खोजा, उन्होंने पाया है कि जब तक हम अकेले ही न बचें, तब तक कुछ पूरी स्वतंत्रता नहीं उपलब्ध हो सकती।
मोक्ष का अर्थ है, तुम डूब गए सर्व में और सर्व डूब गया तुममें। बूंद गिरी सागर में, सागर गिरा बूंद में। अब कोई दूसरा न रहा, दुई मिट गई। अब ऐसा नहीं है कि परमात्मा दिखाई पड़ता है कहीं, अब परमात्मा ही है, देखने वाला और दिखाई पड़ने वाला।
इसलिए कुछ ज्ञानियों ने तो परमात्मा को भी इनकार कर दिया, क्योंकि उससे दुई पता चलती है। महावीर ने कहा, कौन परमात्मा? कैसा परमात्मा? आत्मा ही परमात्मा है।
इसे तुम ठीक से समझना। यह महाज्ञान का शब्द है। नासमझ समझे कि महावीर नास्तिक हैं। बुद्ध ने इनकार ही कर दिया; परमात्मा से ही नहीं, आत्मा से भी, कि कौन? क्योंकि जब भी तुम कुछ कहो, कोई भी शब्द उपयोग करो, हर शब्द दूसरे की मौजूदगी को पैदा करता है।
अगर तुम कहो आत्मा है, तो उसका अर्थ यह हुआ कि तुम आत्मा को भिन्न कैसे करोगे? अनात्मा भी होगी। जब तुम कहते हो प्रकाश है, तुमने अंधकार स्वीकार कर लिया। जब तुम कहते हो परमात्मा है, तब तुमने संसार स्वीकार कर लिया। जब तुम कहते हो मोक्ष है, तो तुमने बंधन स्वीकार कर लिया।
इसलिए बुद्ध ने कहा कि न तो कोई आत्मा है, न कोई परमात्मा है, न कोई मोक्ष है। यह परम मोक्ष की अवस्था है; यह परम मुक्ति है; यह निर्वाण है। और यही लक्ष्य है।
ठीक ही है कि अठारहवां अध्याय मोक्ष-संन्यास-योग है। मोक्ष है परम लक्ष्य। संन्यास है मार्ग उस परम लक्ष्य को पाने का। मोक्ष को पाना है, संन्यास से पाया जाता है। और कोई पाने का उपाय नहीं है। अकेले होना है, इतने अकेले हो जाना है कि सब तुममें समाहित हो जाए, तो इसकी यात्रा का प्रस्थान बिंदु संन्यास है।
पूरब की दो ही खोजें हैं, मोक्ष--गंतव्य, संन्यास--मार्ग।
सिकंदर शिष्य था प्लेटो का। प्लेटो की धारणाएं धर्म तक पहुंच जाती हैं। लेकिन मोक्ष की उसे भी कोई समझ नहीं है। जब सिकंदर भारत आने लगा, तो

उसने कहा, भारत से लौटते वक्त तुम बहुत चीजें लूटकर लाओगे; एक चीज मेरे लिए ले लाना, एक संन्यासी ले आना। मैं एक संन्यासी को देखना चाहता हूं। यह संन्यास क्या है!
यह अनूठा फूल भारत में ही खिला है। यह खिल ही नहीं सकता था दूसरी संस्कृति में, क्योंकि मोक्ष की धारणा ही न थी तो संन्यास का सवाल कहां उठता है! जब मोक्ष का गंतव्य होता है सामने, तो फिर संन्यास का विज्ञान उठता है।
अर्जुन आखिरी जिज्ञासा कर रहा है। उसके पार फिर कोई जिज्ञासा नहीं होती। वह आखिरी जिज्ञासा कर रहा है, संन्यास की और मोक्ष की। इसे तुम समझो।
अर्जुन बोला, हे महाबाहो, हे हृषीकेश, हे वासुदेव, मैं संन्यास और त्याग के तत्व को पृथक-पृथक जानना चाहता हूं। मुझे साफ-साफ समझा दें, क्या है संन्यास और क्या है मोक्ष!
यह आखिरी जिज्ञासा है, इसके पार कोई जिज्ञासा हो नहीं सकती। और जो पूछना था, पूछ लिया। अब आखिरी बात पूछने को आ गई है।
मुझे अलग-अलग करके समझा दें... ।
क्योंकि धारणाएं संन्यास की, मोक्ष की, त्याग की बड़ी सूक्ष्म हैं और बहुत नाजुक हैं। और ज्ञानियों ने बहुत तरह के वक्तव्य दिए हैं, इसलिए बड़ी उलझन वहां भी है।
पहले कहता है, हे महाबाहो, हे हृषीकेश, हे वासुदेव... !
यह सिर्फ वह अपने हृदय की बात कह रहा है। हृदय थकता नहीं प्यारे को पुकारने से। तीन-तीन बार दोहराता है! वह यह कह रहा है कि हृदय तो आश्वस्त है कि तुम जो कहोगे, ठीक ही होगा; बुद्धि आश्वस्त नहीं है। पहले हृदय को रख देता है सामने।
पुरानी परंपरा थी कि जब तुम गुरु के पास जाओ, तो पहले चरण छुओ, फिर पूछो। वह केवल इतना ही कहना था कि ऐसे तो चरणों में झुका हूं; आप जो कहेंगे, वह ठीक ही होगा; उसमें गलत होने का कोई सवाल नहीं है। लेकिन मैं अबुद्धि हूं। और मेरी बुद्धि में अभी बहुत-सी चिंतनाएं चलती हैं... ।
तो चरण में झुकना प्रतीक है कि संवाद की तैयारी है, सुनने को राजी हूं, श्रावक बनने को आया हूं, विवाद की उत्सुकता नहीं है। तब पूछता है शिष्य। हे महाबाहो, हे हृषीकेश, हे वासुदेव, मैं संन्यास और त्याग के तत्व को पृथक-पृथक जानना चाहता हूं।
कृष्ण बोले, हे अर्जुन, कितने ही पंडितजन तो काम्य कर्मों के त्याग को संन्यास जानते हैं। और कितने ही विच्रण पुरुष सब कर्मों के फल के त्याग को त्याग कहते हैं। तथा कई मनीषी ऐसा कहते हैं कि कर्म सभी दोषयुक्त हैं, इसलिए त्यागने के योग्य हैं। और दूसरे विद्वान ऐसा भी कहते हैं कि यज्ञ, दान और तपरूप कर्म त्यागने योग्य नहीं हैं।
पंडित का अर्थ उस दिन कुछ और था, आज कुछ और है। पंडित का अर्थ उन दिनों प्रज्ञावान पुरुष था, जिसने जाना है। आज पंडित का अर्थ होता है शास्त्रज्ञ, जो शास्त्र को जानता है। इन दोनों में बड़ा फर्क हो गया है। आज पंडित शब्द तो निंदित है। किसी को पंडित कहने का अर्थ ही यह है कि वह कुछ नहीं जानता, कोरा पंडित है! शब्दों की भरमार है। अनुभव से खाली है।
उन दिनों पंडित का अर्थ था, जो प्रज्ञा को उपलब्ध हो गया है, जिसने अंतर्ज्योति को जला लिया है।
कृष्ण कहते हैं, हे अर्जुन, कितने ही पंडितजन, कितने ही प्रज्ञावान पुरुष काम्य कर्मों के त्याग को संन्यास जानते हैं... ।
काम्य कर्म क्या है? अगर तुम गीता की टीकाएं पढ़ोगे, तो काम्य कर्म के संबंध में गीता के टीकाकार जो कहते हैं, वह बिल्कुल ही गलत कहते हैं। गीता के सभी टीकाकार यह मानकर चलते हैं कि काम्य कर्म वे कर्म हैं, जो वेद-विहित हैं; करने योग्य हैं, जिनको करना ही चाहिए।
अगर यह बात ठीक हो... । यह बात भी ठीक हो सकती है, क्योंकि प्रज्ञावान पुरुष सदा ही शास्त्र, वेद से मुक्ति की तरफ ले जाना चाहते हैं।

लेकिन यह बात मुझे ठीक नहीं मालूम पड़ती। मेरी दृष्टि में काम्य कर्मों के त्याग को संन्यास कहने का अर्थ यह नहीं हो सकता कि जो कर्म वेद-विहित हैं, उनका त्याग।
काम्य कर्मों का त्याग एक ही अर्थ रख सकता है कि कर्म दो तरह के हैं। एक, जो आवश्यक हैं; और दूसरे, जो काम्य हैं। आवश्यक कर्म तो ऐसा है, जैसे भूख लगेगी, तो भोजन जुटाना पड़ेगा। कैसे तुम जुटाते हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। बुद्ध को भी जुटाना पड़ता है। वे भी भिक्षा के लिए गांव में निकलते हैं।
यह तो जरूरत है, यह तो आवश्यकता है। प्यास लगेगी, तो शरीर के लिए पानी देना पड़ेगा। न दोगे, तो आत्महत्या का पाप लगेगा। वर्षा है, छप्पर खोजोगे। धूप घनी है, तो बुद्ध भी छायापूर्ण वृक्ष के नीचे बैठते हैं। ये काम्य कर्म नहीं हैं, ये अनिवार्य कर्म हैं। इनका तो त्याग कोई प्रज्ञावान पुरुष नहीं कहता।
काम्य कर्म वे हैं, जो वासनाजन्य हैं। जैसे, बड़ा मकान चाहिए। जरूरत शायद न भी हो, सिर्फ अहंकार की आकांक्षा हो। क्योंकि छोटे मकान में छोटा अहंकार लग सकता है। बड़े मकान में बड़ा अहंकार लग सकता है। शायद सोने के लिए तो जितनी जगह तुम छोटे मकान में लेते हो, उतनी ही बड़े मकान में लोगे। लेकिन बड़ा मकान चाहिए।
लोग बड़ा मकान जिंदा में ही नहीं चाहते, मरकर भी चाहते हैं। सम्राट तो अपनी कब्र भी पहले से बनवा रखते हैं। क्योंकि पीछे क्या भरोसा, लोग बड़ी कब्र बनाएं न बनाएं! तो अपनी कब्र पहले ही बना रखते हैं। बड़ी-बड़ी कब्रें बनाई गई हैं। और आदमी मरकर उतनी ही जगह लेता है; जितना गरीब लेता है, उतना ही अमीर लेता है।
अगर जिंदगी में भी काम्य कर्म छूट जाएं, तो तुम्हारी जरूरतें भी वही हैं, जो गरीब की हैं। अमीर की भी वही हैं, गरीब की भी वही हैं। प्यास लगती है, पानी चाहिए। भूख लगती है, भोजन चाहिए।
त्याग का अर्थ होगा, संन्यास का अर्थ होगा, जरूरत ही शेष रह जाए, गैर-जरूरत हट जाए। जो गैर-जरूरी है, जो किसी कामना के कारण पैदा हुआ है, जो किसी पागलपन से पैदा हुआ है, वह हट जाए। अगर तुम इसे ठीक से समझ लो, तो तुम पाओगे, जीवन बड़ा सरल हो जाता है। चाहिए ही कितना कम है!
सुखी होने के लिए बहुत कम चाहिए; दुखी होने के लिए बहुत ज्यादा चाहिए। दुख छोटे से नहीं होता। दुख के लिए बड़ा विराट आयोजन चाहिए। अगर निश्चिंत रहना हो, बड़े थोड़े में हो जाता है। लेकिन चिंता चाहिए हो, तो थोड़े में नहीं होता; उसके लिए सिकंदर बनना जरूरी है।
इसलिए तुम जितना इकट्ठा करते जाओगे, उतना ही पाओगे कि दुखी और चिंतित होते जाते हो। फिर भी गणित तुम्हारी समझ में नहीं आता। तुम सोचते हो, शायद थोड़ा और ज्यादा हो जाए, तो फिर सुखी हो जाऊंगा। और ज्यादा हो जाता है, और दुखी हो जाते हो। वही मन जो तुम्हें यहां तक ले आया, कहता है, अब और थोड़ा कर लो, तो बिल्कुल सुखी हो जाओगे। और ऐसे वह तुम्हें लेता चलता है। अगर तुम गौर से देखोगे, तो तुम पाओगे, जब तुम्हारे पास कम था तब तुम सुखी थे।
सभी को ऐसा लगता है कि बचपन में सुख था, उसका कुल कारण इतना है कि बचपन में तुम्हारे पास कुछ भी नहीं था, कोई परिग्रह नहीं था। कुल कारण इतना है कि तुम्हारी जरूरतें भर जरूरतें थीं। भूख लगती थी, भोजन कर लेते थे। प्यास लगती थी, पानी पी लेते थे, फिर खेलने बाहर निकल जाते थे। थक गए, तो घर आकर सो जाते थे। कुछ भी न था, मालकियत कोई भी न थी।
छोटे बच्चों को गौर से देखो। रंगीन कंकड़-पत्थर उन्हें इतना आनंदित कर देते हैं, जितने हीरे-जवाहरात भी तुम्हें न कर सकेंगे। तितलियों के पंख बीन लाते हैं और घर ऐसे आते हैं, जैसे कि सम्राट होकर चले आ रहे हैं। उनके खीसों में हाथ डालो, कंकड़, पत्थर, सीप, न मालूम क्या-क्या तुम पाओगे! रात भी उनसे उन्हें निकालो तो उनका मन नहीं होता, वे कहते हैं कि रहने दो। वह उनका धन है, तुम्हें पता नहीं; तुम उनका धन ले रहे हो। बड़े सरल हैं; छोटा-सा सब कुछ है; बहुत है, पर्याप्त है।
फिर जैसे-जैसे तुम्हारे पास चीजें आनी शुरू होती हैं... । जिस दिन बच्चे के मन में मालकियत का स्वर उठता है, उसी दिन चिंता शुरू हो जाती है;

उसी दिन बचपन समाप्त हो गया; बच्चा मर गया। अब कोई और दूसरा प्रविष्ट हो गया। अब यह दौड़ चलेगी मरते दम तक। और जिंदगी भर बार-बार तुम्हें याद आएगी कि बचपन बड़ा सुखी था।
ज्ञानी पुरुष कहते हैं, बच्चे जैसे ही जीओ। जरूरत की चीज चाहिए, निश्चित चाहिए। उसके लिए जो कर्म करना पड़े, उसके त्याग को कोई भी नहीं कहता। लेकिन जो व्यर्थ की कामनाएं हैं, उनकी पूर्ति के लिए जो कर्म किए जाते हैं, वे छोड़ दो।
मुझसे लोग कहते हैं, समय नहीं है ध्यान के लिए। कर क्या रहे हो चौबीस घंटे? बहुत काम का जाल है। ध्यान ही आखिर में काम आता है; शेष सब किया हुआ व्यर्थ हो जाता है। जिसने जीवन में थोड़े से क्षण ध्यान के पा लिए, वही बचाए हुए सिद्ध होते हैं। बाकी सब, बाकी सब नाली में बह गया, कुछ काम का नहीं आता। लेकिन व्यर्थ को हम करने में संलग्न हैं; सार्थक को करने के लिए समय नहीं है!
कृष्ण कहते हैं, कितने ही पंडितजन काम्य कर्मों के त्याग को संन्यास कहते हैं... ।
यह एक दृष्टि है, यह एक मार्ग हुआ संन्यास तक पहुंचने का।
और कितने ही विच्रण पुरुष सब कर्मों के फल के त्याग को त्याग कहते हैं... ।
लेकिन कृष्ण कहते हैं, ऐसे भी विच्रण पुरुष हैं... ।
जीवन सुंदर है इसीलिए कि यहां बड़े भिन्न होने के उपाय हैं। यहां अगर गुलाब ही गुलाब के फूल होते, तो बड़ी ऊब पैदा कर देते। यहां हजार-हजार तरह के फूल हैं।
तो कृष्ण कहते हैं, वे जो कहते हैं--प्रज्ञावान पुरुष हैं वे भी--कि काम्य कर्म छोड़ दो, पर ऐसे विच्रण पुरुष भी हैं, जो कहते हैं, कुछ छोड़ने की जरूरत नहीं है, केवल फल का त्याग कर दो।
इनको विच्रण कहते हैं। वे कहते हैं कि इनको बड़ी अनूठी दृष्टि उपलब्ध हुई है। इनकी दृष्टि अनूठी है, साधारणतः समझ में न आएगी।
पहली तरह के जो पुरुष हैं, उनकी बात साधारणतः समझ में आ जाती है; अड़चन नहीं है। जरूरत का काम करो, गैर-जरूरत का छोड़ दो। सीधा गणित है। इसलिए पहले तरह के पुरुषों का भारी प्रभाव पड़ा है। महावीर, बुद्ध सभी पहली तरह के पुरुष हैं।
दूसरी तरह के पुरुष तो कृष्ण हैं, जनक हैं। वे बड़े विच्रण लोग हैं। वे कहते हैं, कुछ छोड़ने की जरूरत नहीं है। छोड़ना, पकड़ना क्या है? सिर्फ फल त्याग कर दो। वे कहते हैं, फल की भर आकांक्षा न हो। फिर तुम्हें राज्य भी बनाना हो, तो बनाए चले जाओ। कोई हर्जा नहीं है। फल की आकांक्षा न हो। पाने का कोई ख्याल न हो।
बहुत कठिन है लेकिन। तुम्हें भी लगेगा कि बात तो दूसरी ही ठीक है; इसलिए नहीं कि दूसरी ठीक लगती है। दूसरी ठीक लगेगी कि उसमें कामना को बचा लेने का उपाय लगता है। उसमें लगता है, तो फिर कोई हर्जा ही नहीं है। जब जनक भी ज्ञान को उपलब्ध हो गए राजमहलों में रहकर, तो हम भी हो जाएंगे।
मगर तब तुम चूक जाते हो। तुम अगर कामवासना के कारण सोच रहे हो कि दूसरी बात सरल है, तो तुम गलती में पड़ रहे हो। दूसरी बात पहली से ज्यादा कठिन है।
जिस काम की वासना चली गई हो, उसको न करना बहुत आसान है; सिर्फ फल त्याग करना बहुत कठिन है। उसका मतलब है, आधे का त्याग और आधे का जारी रखना। उसका अर्थ यह हुआ कि काम तो वैसा ही करना, जैसे सांसारिक लोग कर रहे हैं, लेकिन बिल्कुल विभिन्न दृष्टि से करना। दुकान चलाना, लेकिन लाभ की भावना न रखना। इससे सरल है दुकान छोड़कर पहाड़ भाग जाना। क्योंकि उसमें मामला बिल्कुल साफ है। दुकान करनी है, तो दुकान करो; पहाड़ जाना है, पहाड़ चले जाओ। लेकिन दूसरे जो विच्रण पुरुष हैं, वे कहते हैं, दुकान पर ऐसे बैठो, जैसे पहाड़ पर बैठोगे।
यह जरा सूक्ष्म है, ज्यादा नाजुक है। इसमें खतरा है। खतरा यह है कि कहीं तुम दुकान पर ऐसे ही न बैठे रहो, जैसे दुकान पर दूसरे लोग बैठे हैं; और यह भ्रांति बना लो कि हम पहाड़ पर हैं। हमारी कोई फलेच्छा थोड़े ही है! हमारी

कोई फल की आकांक्षा थोड़े ही है! हम तो यह कर्तव्यवश किए चले जा रहे हैं। और भीतर फल की इच्छा है।
तुम सारी दुनिया को धोखा दे सकते हो, लेकिन अपने को कैसे दोगे? और असली सवाल अपना है। अपने भीतर तुम जरा भी देखोगे, तो साफ पाओगे कि धोखा दे रहे हो। क्योंकि काम, फल तुम्हारे भीतर गूंजता ही रहेगा।
वस्तुतः दुकान पर बैठे लोग दुकान पर बैठना नहीं चाहते हैं, मजबूरी है,
फल पाने के लिए बैठना पड़ता है। अगर उन्हें भी कोई मिल जाए, कि दुकान पर न बैठो, यह ताबीज ले लो--कोई सत्य साईं बाबा--इससे बिना कुछ किए फल की प्राप्ति होगी, तो वे भी पहाड़ जाने को तैयार हैं। कौन नासमझ दुकान पर बैठने का रस ले रहा है! लेकिन बिना दुकान पर बैठे फल नहीं मिलता। बड़ा मकान बनाना है, वह नहीं बनता। पहाड़ पर बैठने से नहीं बनेगा। इसलिए मजबूरी में वे काम में लगे हैं।
अगर तुम बाजार में इस तरह हो सको, जैसे तुम एकांत में होओ; तुम काम ऐसे
कर सको, जैसा कि फलाकांक्षी करता है, बिना फलाकांक्षा के, तो तुमने बड़ी विच्रण दृष्टि पा ली। तब कुछ छोड़ने की जरूरत नहीं है। तब तो इतना ही समझना काफी है कि फल उसके हाथ में है, कर्म मेरे हाथ में है। करना मुझे है; फल देना न देना उसकी मर्जी। फिर जो वह तुम्हें दे दे, तुम उससे ही तृप्त हो। न दे, तो न देने से तृप्त हो। छीन ले, छिन जाने से तृप्त हो। फिर तुम्हारी तृप्ति को कोई नहीं तोड़ सकता।
इसको तुम कसौटी समझ लो। अगर तुम्हारी तृप्ति में अंतर पड़ता हो; दुकान में लाभ होता हो, तो तुम्हारे पैर जरा तेजी से और प्रसन्नता से चलते हों, तुम तृप्त मालूम होते हो; हानि होती हो, तो तुम उदास हो जाते हो, दीन-हीन हो जाते हो, पैर लथड़ाने लगते हैं; तो फिर मत समझना कि तुमने फलाकांक्षा का त्याग कर दिया है।
बुद्ध और महावीर का मार्ग सरल है; जनक और कृष्ण का बहुत कठिन है। इसलिए वे कहते हैं, कोई विच्रण पुरुष! कभी-कभी कोई ऐसा अदभुत, बहुत अनूठा व्यक्ति ही इसको साध पाता है; कि महल में बैठा है और उसे पता ही नहीं है कि यह महल है; कि हीरे-जवाहरातों से घिरा है, लेकिन घिरा हो न घिरा हो, सब बराबर है।
हे अर्जुन, कितने ही पंडितजन तो काम्य कर्मों के त्याग को संन्यास जानते हैं और कितने ही विच्रण पुरुष सब कर्मों के फल के त्याग को त्याग कहते हैं। तथा कई मनीषी ऐसा कहते हैं कि कर्म सभी दोषयुक्त हैं, इसलिए त्यागने के योग्य हैं... ।
ऐसा भी एक वर्ग है मनीषियों का, जानने वालों का, जो कहता है, सभी कर्म त्यागने योग्य हैं। कर्म मात्र दोषयुक्त है। तुम जो भी करोगे, उसमें ही दोष लगेगा। श्वास भी लोगे, तो भी हिंसा होती है। पानी भी पीओगे, तो पानी के कीटाणु मरेंगे। भोजन करोगे, हिंसा होगी। चलोगे, पैर रखोगे, छोटे जीवाणु दबेंगे और हत्या होगी।
तो ऐसे भी मनीषी हैं, जो कहते हैं कि कोई भी कर्म करोगे, दोष लगेगा ही। इसलिए अकर्म को उपलब्ध हो जाओ; कर्म करो ही मत। और धीरे-धीरे कर्म त्याग करते जाओ। और अंतिम लक्ष्य वह है, जहां तुम ऐसी घड़ी में पहुंच जाओ, जहां कोई भी कर्म न होता हो। तभी तुम मुक्त हो सकोगे।
वे भी ठीक कहते हैं।
कृष्ण एक गहन समन्वय हैं। उन्होंने भारत ने जो भी जाना था तब तक, उस सभी को गीता में समाविष्ट कर लिया है। उनका किसी से कोई विरोध नहीं है। वे सभी के भीतर सत्य को खोज लेते हैं।
इसलिए गीता सार-ग्रंथ है। वेद को अगर भूल जाओ, तो चलेगा। क्योंकि जो
भी वेद में सार है, वह गीता में आ गया। महावीर विस्मृत हो जाएं, चलेगा। क्योंकि महावीर का जो भी सार है, वह गीता में आ गया। सांख्य शास्त्र न बचे, चलेगा। गीता में सारी बात महत्व की आ गई है।
अगर भारत के सब शास्त्र खो जाएं, तो गीता पर्याप्त है। कोई भी प्रज्ञावान पुरुष गीता से फिर से सारे शास्त्रों को निर्मित कर सकता है।
गीता में सारे सूत्र हैं। तो गीता निचोड़ है।

गीता अकारण ही करोड़ों लोगों के हृदय का हार नहीं हो गई है; अकारण ही नहीं हो गई है।
जब पहली दफा जर्मनी के एक बहुत बड़े विचारक शापेनहार ने गीता पढ़ी, तो उसने सिर पर रखी और नाचने लगा। शापेनहार को किसी ने कभी नाचते नहीं देखा था। वह बहुत गंभीर चित्त आदमी था, नाचना जंचता ही नहीं था उसको। उसका पूरा दर्शन ही उदासी, दुखवाद है। वह कहता है, हंसी की तो कोई सुविधा ही नहीं है जगत में। वह नाचने लगा।
उसके पास बैठे मित्रों ने कहा, तुम पागल हो गए शापेनहार! क्या कर रहे हो? उसने कहा कि ऐसा ग्रंथ कभी देखा नहीं, जिसमें सब आ गया। ऐसा ग्रंथ कभी देखा नहीं, जिसमें सभी विरोधों के बीच सामंजस्य हो गया; जिसमें किसी का खंडन नहीं किया गया है और सभी को स्वीकार कर लिया गया है!
हिंदुओं ने ऐसे ही कृष्ण को पूर्ण अवतार नहीं कहा है। महावीर थोड़े अधूरे लगते हैं; एकांगी मालूम होते हैं। और अगर सभी महावीर हो जाएं, तो संसार को बड़ा धक्का लगेगा, भारी नुकसान होगा। फिर आगे महावीर होने की भी संभावना खतम हो जाएगी।
नहीं, महावीर इक्के-दुक्के ठीक, नमूने की तरह अच्छे हैं। लेकिन सभी जगह वे ही खड़े हो जाएं, जहां निकलो, वहीं वे ही खड़े हैं, बहुत घबड़ाने वाला हो जाएगा। नमक की तरह ठीक। पूरा भोजन महावीर का नहीं हो सकता।
इसलिए मैं निरंतर कहता हूं, जैन कोई संस्कृति पैदा नहीं कर पाए। वे कर नहीं सकते, क्योंकि नमक से कहीं पूरा भोजन बना है!
जैन केवल एक वैचारिक समाज रह गया, एक विचार का समूह रह गया। संस्कृति नहीं है जैनों के पास। अगर तुम जैनियों से कहो--जैसा मैंने कहा, लेकिन कोई जवाब नहीं देता--अगर तुम उनसे कहा कि पच्चीस सौ वर्ष महावीर के पूरे हो गए, तुम बड़ा शोरगुल मचा रहे हो, जगह-जगह आयोजन, सभा, समारंभ! तुम एक काम करके दिखा दो, एक जैन बस्ती बसाकर दिखा दो, जिसमें सब जैन हों, तो हम मान लेंगे कि तुम्हारे पास कोई संस्कृति है। तुम नहीं बसा सकते, क्योंकि चमार कौन होगा? भंगी कौन होगा? खेती कौन करेगा?
इसलिए जैन कभी समाज भी नहीं बन पाए, संस्कृति भी नहीं बन पाए; वे हिंदुओं की छाती पर बैठे रह गए। उनका अपना कोई आधार नहीं है जमीन में। इसलिए जैन समाज को अलग कहने का कोई अर्थ ही नहीं है; वह हिंदुओं का एक अंग है। उसको अलग कहने का अर्थ तभी हो सकता है, जब वे बता दें कि हम एक प्रयोग भी करके बता सकते हैं कि यह छोटी बस्ती है हजार लोगों की, इसमें सब जैन हैं। अगर तुम सब मिलकर एक बस्ती भी नहीं बसा सकते, तो तुम सर्वांग नहीं हो, अधूरे हो।
पूरा नमक भोजन नहीं बन सकता। नमक बिल्कुल जरूरी है; उसके बिना भोजन बड़ा बेस्वाद हो जाएगा।
तो कभी-कभी इक्का-दुक्का महावीर प्रीतिकर हैं, मगर उनका समूह नहीं। अन्यथा वे जान ले लेंगे। इसलिए महावीर अधूरे हैं। बुद्ध अधूरे हैं। यद्यपि महावीर से ज्यादा क्षमता है बौद्धों की। उन्होंने समाज बनाकर बता दिए हैं, उन्होंने संस्कृति सम्हालकर बता दी। लेकिन उनको समझौते करने पड़े। इसलिए अगर बुद्ध वापस लौटें, तो जापान, चीन, बर्मा या श्याम आदि बौद्धों के जो मुल्क हैं, वे किसी को बौद्ध नहीं कहेंगे। क्योंकि उन्होंने इतने समझौते कर लिए हैं, जिसका हिसाब नहीं है। वह बुद्ध की पूरी शुद्धता ही खो गई है।
बुद्ध ने खुद ही कहा है कि मेरा धर्म पांच सौ साल से ज्यादा नहीं चलेगा। क्या कारण होगा? जब तुम बहुत शुद्ध बात कहोगे, तो ज्यादा देर नहीं टिक सकती इस अशुद्ध दुनिया में। पांच सौ साल भी टिक जाए, तो बहुत। वह भी आशा है।
मेरे देखे तो जब तक बुद्ध रहते हैं, तभी तक बुद्धत्व टिकता है, उससे ज्यादा नहीं टिक सकता। क्योंकि वह बात ही इतनी शुद्ध है; उसमें जड़ें नहीं हैं जमीन में प्रवेश करने की। वह आकाश में मंडराता हुआ बादल है। वह ज्यादा देर नहीं टिक सकता। कभी-कभार आएगा, चला जाएगा।
कृष्ण संपूर्ण हैं। कृष्ण पूरी सीढ़ी हैं। बुद्ध, महावीर बस सीढ़ी का आखिरी हिस्सा हैं, अधर में लटके हुए। उनका दूसरा हिस्सा जमीन से नहीं टिका

है। वे शुद्ध हैं; अशुद्धि से बहुत भयभीत हैं। कृष्ण समाहित कर लेते हैं सभी को, अशुद्धि को भी।
और मेरे माने वही शुद्धि वास्तविक है, जो अशुद्धि को भी समाहित कर लेती हो। नहीं तो शुद्धि ही क्या? जो अशुद्धि को भी न पी जाए, वह शुद्धि क्या? वह अमृत अमृत नहीं है, जो जहर को न पी जाए। अगर जहर से अमृत नष्ट होता हो, तो जहर से कमजोर है, उसकी क्या कीमत! वह जहर को पी ले और अमृत बना दे। कृष्ण ने सारी दृष्टियों को समाहित कर लिया है, और बिना किसी अड़चन के!
जो कहते हैं कि काम्य कर्मों का त्याग संन्यास है, वे भी पंडितजन हैं,
वे भी जानने वाले लोग हैं। मगर उनका जानना भी एक दृष्टि है, एक अंग है, एक ढंग है; वह भी अधूरा है। फिर ऐसे विच्रण पुरुष हैं, जो कहते हैं, कर्मफल का त्याग ही त्याग है। वे भी ठीक ही कहते हैं। फिर ऐसे मनीषी हैं, जो कहते हैं, सभी कर्म दोषयुक्त हैं।
महावीर यही कहते हैं, कर्म मात्र दोषयुक्त है, इसलिए त्यागने योग्य है। वे भी ठीक कहते हैं। वे भी मनीषी हैं; उन्होंने भी बड़ा जाना है, ऐसे ही नहीं कह दिया है।
और दूसरे विद्वान भी हैं, जो कहते हैं, यज्ञ, दान और तपरूप कर्म त्यागने योग्य नहीं हैं।
एक और वर्ग है चौथा, वह भी बुद्धिमानों का है, वह भी नासमझों का नहीं है। वे कहते हैं कि तीन तरह के कर्म त्यागने योग्य नहीं हैंः यज्ञ, दान और तप।
तपरूप कर्म वे हैं, तुमने जो-जो गलत किया है, उसे काटने के लिए किए जाते हैं। कांटा लग गया है, तो एक और कांटा खोजना पड़ता है उसे निकालने को, नहीं तो लगे कांटे को कैसे निकालोगे? गलत कर्म तुमने किए हैं, तो उनको निकालने के लिए तुम्हें दूसरे शुभ कर्म करने पड़ेंगे। वे भी कर्म हैं। मगर करने पड़ेंगे, क्योंकि गलत कर्म तुम कर चुके हो।
तुमने किसी को गाली दे दी, अब माफी मांगनी पड़ेगी, ताकि सब संतुलित हो जाए। गाली से जो असंतुलन पैदा हुआ था, वह भी कर्म था। माफी मांगना भी उसी तरह कर्म है। दोनों में वाणी का उपयोग हुआ है, दोनों में मुंह का उपयोग हुआ। लेकिन माफी मांगनी पड़ेगी, ताकि संतुलन आ जाए।
तपरूप कर्म का अर्थ है, संतुलन लाने वाले कर्म; जिनसे जीवन संतुलित होता है। तुमने बहुत अपराध किए हैं, थोड़ी सेवा भी करो। तुमने बहुत चूसा है, विसर्जित भी करो। तुमने बहुत छीना है, बांटो भी।
नहीं तो यह होगा कि अब तक तो काफी छीना, लूटा, दुख दिया, और अब अचानक तुमको यह दर्शनशास्त्र समझ में आ गया कि सब कर्म त्याज्य हैं। अब तुम कुछ भी नहीं करते, अब तुम बैठ गए। तो वे जो कांटे लगे हैं, वे लगे रह जाएंगे, वे छिदे रह जाएंगे। उन्हें काटो, उन्हें निकालो। उनके लिए तपरूप कर्म। तुमने जो-जो छीना है, जहां-जहां हिंसा हुई है, जहां-जहां शोषण हुआ है--
और निरंतर हुआ है, सारे जीवन की यात्रा शोषण, हिंसा की है--दान करो, बांट दो। जहां से लिया है, वहां लौट जाने दो। ताकि संतुलन आ जाए।
और यज्ञ... ।
यज्ञ उस कर्म का नाम है, जो तुम अपने लिए नहीं करते, जो तुम समष्टि के लिए करते हो। जो तुम अपने लिए नहीं करते, सबके लिए करते हो। यज्ञ वैसा विराट कर्म है, जिसमें तुम्हारी अपनी कोई स्वयं की आकांक्षा नहीं है। जो स्वयं की आकांक्षा से किया जाए, वह यज्ञ नहीं है। सबके लिए करते हो।
समझो, तुम एक अस्पताल बनाते हो, वह यज्ञरूप हो जाता है। तुम अकेले ही थोड़े उसमें बीमार पड़कर इलाज करवाओगे; सभी के काम आएगा। तुम एक विद्यापीठ बनाते हो। तुम्हारे बच्चे ही थोड़े उसमें पढ़ेंगे; सबके बच्चे उसमें पढ़ेंगे।
जो-जो कर्म सिर्फ स्वार्थ के लिए नहीं किए जाते, वे सभी यज्ञरूप हैं। स्वार्थ के लिए तुमने बहुत कर्म किए हैं, अब तुम था.ेडे परार्थ के कर्म करो।
कृष्ण कहते हैं, ऐसे भी विद्वान हैं, जो कहते हैं, यज्ञ, दान और तपरूप कर्म त्यागने योग्य नहीं हैं। बाकी सब कर्म त्यागने योग्य हैं... ।

ये चार दृष्टियां हैं। चारों सही हैं और चारों तरह के लोग मिल जाएंगे जिनके लिए ये सही हैं। इसलिए तुम इसकी बहुत फिक्र मत करना कि कौन सही है, तुम ज्यादा इसकी फिक्र करना कि मेरे साथ किस विचार का तालमेल बैठता है। गीता तो ऐसे है, जैसे केमिस्ट की दुकान होती है। उसमें लाखों दवाइयां हैं; वे सभी काम की हैं, इसीलिए हैं। तुम कोई भी दवाई उठाकर मत ले आना! तुम अपने प्रिस्क्रिप्शन को ले जाना, वह जो डाक्टर ने लिखकर दिया है। तुम्हारे योग्य कोई दवा होगी; सभी दवाएं तुम्हारे योग्य न होंगी।
गीता भारत की खोजी गई सभी औषधियों का संग्रह है। उसमें से तुम चुन लेना; उसमें तुम्हें जो मौजूं लगे, उसमें तुम्हें जो सत्यरूप लगे। सभी सत्यरूप है, पर तुम्हें जो सत्यरूप लगे, तुम उसे आत्मसात कर लेना। तुम उससे यात्रा पर निकल जाना। और सभी मार्ग वहीं पहुंचा देते हैं।
मंजिल तो एक है, मार्ग अनेक हैं। दृष्टि साफ हो, तो किन्हीं भी मार्गों से चलकर आदमी वहीं पहुंच जाता है। तुम बैलगाड़ी से चलो, थोड़ी देर ज्यादा लगेगी। तुम ट्रेन से चलो, थोड़े जल्दी आ जाओगे। कुछ लाभ ट्रेन के हैं, कुछ लाभ बैलगाड़ी के हैं; कुछ हानियां बैलगाड़ी की हैं, कुछ हानियां ट्रेन की हैं।
बैलगाड़ी से चलोगे, तो गति तो नहीं होगी, लेकिन अनुभव ज्यादा होगा। गति
तो बहुत धीमी होगी, लेकिन पहाड़-पर्वत, नदी-नाले सभी को तुम देखते, जीते हुए आओगे। ट्रेन से चलोगे, जल्दी पहुंच जाओगे। लेकिन इतनी तेजी से निकलती रहेगी ट्रेन कि बस झलक मिलेगी पहाड़ की, नदी की, नालों की।
हवाई जहाज से आओगे, कोई झलक भी नहीं मिलेगी। यहां बैठे नहीं कि उतरने
का समय आ जाएगा। चाय पी पाओगे ज्यादा से ज्यादा। और अब और द्रुत वेग के यान बनते जा रहे हैं, जिनमें तुम पट्टी बांध पाओगे और खोल पाओगे। और पहुंच जाओगे। अनुभव से वंचित हो जाओगे।
राह का भी बड़ा आनंद है।
मेरे एक मित्र हैं, वह हमेशा पैसेंजर गाड़ी से ही चलते हैं। धनी हैं, पर बड़े समझदार हैं। दिल्ली पहुंच सकते हैं घंटे भर में; जहां रहते हैं, वहां से हवाई जहाज की भी सुविधा है। मगर वे जाते हैं ट्रेन में और पैसेंजर! कई जगह बदलते हैं। तीन दिन लग जाते हैं दिल्ली पहुंचने में।
एक दफा मुझे अपने साथ ले लिए। मैंने कहा, यह मामला क्या है? चलो मैं भी चलूं! निश्चित, वे आनंद लेते हैं राह का। उनको एक-एक स्टेशन की गतिविधि पता है। कहां रसगुल्ले अच्छे बनते हैं! कहां भजिए अच्छे बनते हैं! बड़ा भोगते हैं मार्ग को। वे दुख पाते ही नहीं पैसेंजर में। हर स्टेशन पर उतरते हैं; स्टेशन मास्टर से मिल आते हैं; कुलियों से पहचान... । जिंदगी भर वे उसी रास्ते पर तीन-तीन दिन यात्रा करते रहे हैं अनेक बार। वे कहते हैं, यह तो अपना... इतनी जल्दी क्या है? जाना कहां है?
वे भी ठीक कहते हैं। राह भी अपना आनंद लिए है। फिर राहें भी अलग-अलग हैं। मंजिल एक है।
तुम अपना रस पहचानना, अपना भाव समझना और राह चुन लेना।
कृष्ण सभी राहें बता देते हैं। फिर वे अपना भाव भी बता देंगे कि उनका भाव क्या है? उनकी क्या दृष्टि है? ऐसे तो उन्होंने अपनी दृष्टि कह ही दी। जैसे ही उन्होंने कहा कि कुछ विच्रण पुरुष, वहीं उन्होंने अपना रस भी बता दिया। जब उन्होंने कहा कि कुछ विच्रण पुरुष, कुछ अदभुत पुरुष। बस, उन्होंने चुनाव भी कर दिया। बाकी को कहा, पंडित हैं, ज्ञानी हैं, समझदार हैं, विद्वान हैं; पर एक को कहा, विच्रण, अनूठी दृष्टि वाले लोग। वहीं उन्होंने अपना झुकाव दिखा दिया।
कृष्ण स्वयं ही वे विच्रण दृष्टि वाले पुरुष हैं। अगर उनकी बात तुम्हें जंच जाए, तो बड़ी अनूठी है। क्योंकि कुछ छोड़ना नहीं पड़ता और सब छूट जाता है; कुछ करना नहीं पड़ता और सब हो जाता है।
सार में उस विच्रण दृष्टि की बात इतनी ही है कि तुम परमात्मा के उपकरण
हो जाते हो, निमित्त मात्र। वह कराता है, तुम करते हो। वह देता है, तुम लेते हो। वह छीनता है, तुम छिन जाने देते हो। तुम बीच से हट जाते हो।
तुम कहते हो, जो तेरी मर्जी। बाजार में रखेगा, बाजार में रहेंगे। मगर वहां भी तेरा ही आनंद है; तूने ही रखा है। और तुझसे हम ज्यादा समझदार नहीं

हैं। पहाड़ भेज देगा, पहाड़ चले जाएंगे। तू जहां भेज देगा, वहीं चले जाएंगे।
तेरे ही कारण जा रहे हैं, यह हमारी खुशी है। तेरे काम से जा रहे हैं, यह हमारा आनंद है। तू हमसे कुछ उपयोग ले रहा है, हम धन्यभागी हैं।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग आठ
गीता दर्शन अध्याय 18
दूसरा प्रवचन

सात्विक, राजस और तामस त्याग

निश्चयंशृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र त्रिविधः संप्रकीर्तितः।। 4।।
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।। 5।।
एतान्यपि तु कर्माणि सड्गं त्यक्त्वा फलानि च।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम्।। 6।।
परंतु हे अर्जुन, उस त्याग के विषय में तू मेरे निश्चय को सुन। हे पुरुषश्रेष्ठ, वह त्याग सात्विक, राजस और तामस, ऐसे तीनों प्रकार का ही कहा गया है।
तथा यज्ञ, दान और तपरूप कर्म त्यागने के योग्य नहीं है, किंतु वह निःसंदेह करना कर्तव्य है, क्योंकि यज्ञ दान और तप, ये तीनों ही बुद्धिमान पुरुषों को पवित्र करने वाले हैं।
इसलिए हे पार्थ, यह यज्ञ, दान और तपरूप कर्म तथा और भी संपूर्ण श्रेष्ठ कर्म आसक्ति को और फलों को त्याग कर अवश्य करने चाहिए, ऐसा मेरा निश्चय किया हुआ उत्तम मत है।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः आपने कहा कि समय के प्रवाह में शब्दों के अर्थ बदल जाते हैं। फिर हजारों वर्ष पूर्व कही गई गीता अब तक अर्थपूर्ण कैसे रह गई है?

कृष्ण ने जो कहा था, अगर और कृष्णों ने उस पर बार-बार नए अर्थों के कलम
न लगाए होते, तो वह अर्थहीन हो गई होती; बासी पड़ गई होती; सड़ गई होती; उसे समझने का फिर कोई उपाय न रह जाता। लेकिन इन हजारों वर्षों में, और बहुत कृष्णों ने गीता को फिर-फिर पुनरुज्जीवित किया, फिर-फिर कहा। हर बार गीता को फिर नया जीवन मिल गया। जब शंकर ने गीता को पुनरुज्जीवित किया, तब फिर कृष्ण दुबारा बोले।
कृष्ण कोई व्यक्ति की बात नहीं है; कृष्ण तो चैतन्य की एक घड़ी है, चैतन्य की एक दशा है, परम भाव है। जब भी कोई व्यक्ति परम भाव को उपलब्ध हुआ, उसने फिर गीता पर कुछ कहा। गीता से पुरानी राख झड़ गई, फिर गीता नया अंगारा हो गई।
ऐसे हमने गीता को जीवित रखा है। समय बदलता गया, शब्दों के अर्थ बदलते गए, लेकिन गीता को हम नया जीवन देते चले गए। गीता आज भी जिंदा है।
कुरान कभी मर जाएगा, क्योंकि कुरान पर व्याख्या की आज्ञा नहीं है। गीता कभी भी न मरेगी, क्योंकि गीता को फिर से जीवन देने की सुविधा है।
कुरान, जैसा मोहम्मद ने कहा था, उसे वैसा ही बचाने की चेष्टा की गई है। उस पर कोई दूसरा मोहम्मद कुछ जोड़ न दे, कुछ बदल न दे!
अगर दूसरे मोहम्मदों को बदलने और जोड़ने की सुविधा न हुई, तो समय मार डालेगा। समय किसी की भी चिंता नहीं करता। सभी कुछ बासा हो जाता है।
भारत ने एक कला खोज ली है अपने शास्त्रों को सदा जीवित रखने की। वह है, उनकी पुनः-पुनः व्याख्या। फिर-फिर हम विचार करते हैं। फिर-फिर कृष्ण की चेतना से उत्तर मिल जाता है। अर्थ बदलते जाते हैं, लेकिन गीता अर्थहीन नहीं हो पाती। हर युग के अनुकूल अर्थ हम फिर खोज लेते हैं। जितना युग से पीछे रह जाती है गीता, हम उसे फिर खींच लेते हैं।
जो मैंने गीता पर इधर इन पांच वर्षों में कहा है, उससे गीता अत्याधुनिक हो जाती है; बीसवीं सदी की घटना हो जाती है। अब पिछले पांच हजार साल को हम भूल सकते हैं। जो मैंने कहा है, उसने गीता के पुराने पड़ते रूप को एकदम अत्याधुनिक कर दिया। इन पांच हजार सालों में जो भी घटा है, मनुष्य की चेतना ने जो नई-नई करवटें ली हैं, नई-नई विधाएं खोजी हैं, मनुष्य

की चेतना ने जो नए अनुभव किए हैं, उन सबको मैंने समाविष्ट कर दिया है। अब गीता को नया खून मिल गया।
शब्दों पर अगर अर्थों की कलम लगती चली जाए, युग के अनुकूल अगर नए अर्थों की अभिव्यंजना होती रहे, तो किसी शास्त्र को पुराना पड़ने की जरूरत नहीं है। शास्त्र पुराना पड़ता है मतांधता से; लकीर के फकीर अगर लोग हो जाते हैं, तो शास्त्र पुराना पड़ जाता है।
हम शास्त्र के लिए थोड़े ही हैं, शास्त्र हमारे लिए है। इसलिए जब हम बदल जाते हैं, हम शास्त्र को बदल लेते हैं। ऐसे ही जैसे कि हजारों साल पहले घर में दीया जलता था, अब बिजली जलती है। अब भी तुम दीया जलाने की कोशिश करोगे, तो नासमझ हो। लेकिन दीया जलने से जो प्रकाश मिलता था, वही प्रकाश और भी प्रगाढ़ होकर बिजली से मिल जाता है।
जो शब्द कृष्ण ने अर्जुन से कहे थे, उन पर तो बहुत धूल जम गई है; उसे हमें रोज बुहारना पड़ता है। और जितनी पुरानी चीज हो, उतना ही श्रम करना पड़ता है, ताकि वह नई बनी रहे।
इसलिए समय का प्रवाह तो किसी को भी माफ नहीं करता, पर अगर हम हमेशा समय
के करीब खींच लाएं पुराने शास्त्र को, तो शास्त्र पुनः-पुनः नया हो जाता है। उसमें फिर नए अर्थ जीवित हो उठते हैं, नए पत्ते लग जाते हैं, नए फूल खिलने लगते हैं।
गीता मरेगी नहीं, क्योंकि हम किसी एक कृष्ण से बंधे नहीं हैं। हमारी धारणा में कृष्ण कोई व्यक्ति नहीं है, सतत आवर्तित होने वाली चेतना की परम घटना है। इसलिए कृष्ण कह पाते हैं कि जब-जब होगा अंधेरा, होगी धर्म की ग्लानि, तब-तब मैं वापस आ जाऊंगा--संभवामि युगे-युगे। हर युग में वापस आ जाऊंगा।
तुम यह मत सोचना कि मोर-मुकुट वाले कृष्ण हर युग में वापस आ जाएंगे।
जो गया, वह गया। अब मोर-मुकुट की कोई संगति न बैठेगी। और मोर-मुकुट लगाए अगर कृष्ण को तुमने खड़ा कर दिया बाजार में, तो तुम मखौल उड़वा दोगे; तुम उनका मजाक करवा दोगे। वे नाटकीय मालूम पड़ेंगे, स्वाभाविक न मालूम पड़ेंगे अब। जो उस दिन स्वाभाविक था, आज बिल्कुल नाटक हो जाएगा।
उन दिनों, कृष्ण के समय में, पुरुष पहनते थे आभूषण, स्त्रियां नहीं।
वह स्वाभाविक था, ज्यादा प्राकृतिक था। प्रकृति में भी तुम जाओ, तो वही पाओगे।
मोर नाचता है। जो मोर नाचता है और जिस मोर के पास इंद्रधनुषों जैसे रंगे हुए पंख हैं, वह पुरुष है। मादा के पास कोई इंद्रधनुषी रंग नहीं हैं। कोयल पुकारती है। वह जो पुकारती है कोयल, वह पुरुष है; मादा चुप है। मुर्गे की कलगी देखी है! और जिस शान से अकड़कर चलता है! मुर्गी के पास वैसी कलगी नहीं है।
सारी प्रकृति में मादा चुप है; अपने सौंदर्य का प्रचार नहीं करती; पुरुष करता है। होना भी यही चाहिए। क्योंकि मादा के होने में ही सौंदर्य है, किसी और अतिरिक्त होने की जरूरत नहीं है। मादा के होने में ही माधुर्य है, अब और आभूषण नहीं चाहिए। जो कमी है, वह पुरुष को पूरा करनी पड़ती है। मादा कोयल का तो चुप होना भी मधुर है; लेकिन पुरुष कोयल को तो गीत गाना पड़ेगा, तभी थोड़ा-सा माधुर्य आ सकेगा। इसलिए सारी प्रकृति में खोजने पर तुम पाओगे, पुरुष सजा-धजा है; मादा बिल्कुल सादी है। उसका सादा होना ही सौंदर्य है।
उन पुराने दिनों में मनुष्य भी प्रकृति के अनुकूल था। तो कृष्ण मोर-मुकुट बांधे खड़े हैं। स्वाभाविक था। आज हालत बिल्कुल उलटी हो गई है। आज पुरुष कोई आभूषण नहीं पहनता; पहने तो तुम समझोगे, कुछ दिमाग खराब है। स्त्रियां पहनती हैं। प्रकृति अस्तव्यस्त हो गई है। जो नहीं होना चाहिए, वह हो रहा है; जो होना चाहिए, वह नहीं हो रहा है। सभ्यता ने सब डांवाडोल कर दिया है। शिक्षण ने तुम्हारे मन की स्वाभाविकता को डिगा दिया है।
स्त्री तो अपने आप में ही सुंदर है, उसे निमंत्रण भी भेजने की जरूरत नहीं है। उसे पुकारने की भी आवश्यकता नहीं है। प्रेमी उसे खोजता आएगा। और ध्यान रखना, जब भी स्त्री आभूषण सजा लेती है... पुराने दिनों में भी स्त्रियां सजाती थीं, लेकिन वे सिर्फ वेश्याएं थीं, नगरवधुएं थीं, जिनको

बाजार में खड़ा होना था। स्त्री जब आभूषण से सज जाती है, और निमंत्रण भेजती है, तो उसने स्त्रैण तत्व खो दिया। उसने अपने भीतर के मादापन का माधुर्य खो दिया। उसे याद ही न रही कि उसका तो होना काफी है। अब सोने से लदने से उसके सौंदर्य में कुछ बढ़ेगा नहीं, घट सकता है।
तो आज कृष्ण को अगर उनकी ही रूप-रेखा में खड़ा कर दो जैसे वे थे, तो ठीक है, कोई नौटंकी, कोई नाटक में चलेगा, जीवन में नहीं चलेगा। जीवन में वे बड़े बेतुके लगेंगे। जो उनके इस बाहरी रूप-रेखा के संबंध में सच है, वही उनकी भीतरी रूप-रेखा के संबंध में भी सच है। सब बदला है।
जब कृष्ण बार-बार लौटेंगे, तो हर बार नए ही होकर लौटेंगे। और हर बार कृष्ण अपनी नई-नई संभावनाओं में, उदभावनाओं में गीता पर फिर से बोल देंगे। गीता फिर पुनरुज्जीवित हो जाएगी।
अगर तुम्हें बहुत कठिनाई न हो समझने में, तो मैं ऐसा कहना चाहूंगा कि कृष्ण ही बार-बार लौटकर अपनी गीता की पुनः-पुनः व्याख्या करते रहे हैं, इसलिए वह मर नहीं पाई है।

दूसरा प्रश्नः कल आपने कहा कि अर्थ, काम, धर्म और मोक्ष, ये चार पुरुषार्थ हैं। कृपापूर्वक समझाएं कि इन्हें पुरुषार्थ क्यों कहा गया है?

क्योंकि इन्हीं के माध्यम से तुम्हारे भीतर जो छिपा है अर्थ, वह प्रकट होता है। तुम कौन हो, इनकी ही चुनौती में प्रकट होता है। तुम क्या हो, एक विशेष परिस्थिति में ही तुम्हें उसकी स्मृति आनी शुरू होती है।
एक आदमी अर्थ के पीछे पागल है, धन का दीवाना है। वह धन की दीवानगी से कुछ कह रहा है कि वह कौन है। वह अपने पुरुष के अर्थ को प्रकट कर रहा है। वह निम्नतम पुरुष है। उसने जीवन के कोई ऊंचे काव्य नहीं जाने हैं। वह क्षुद्र से राजी है। वह ठीकरों को पकड़े बैठा है। जहां हीरे-जवाहरात बरस सकते थे, वहां उसने कंकड़-पत्थर चुन लिए हैं। वह अपना अर्थ प्रकट कर रहा है; वह यह कह रहा है, मैं कौन हूं।
जब कोई आदमी किसी स्त्री के पीछे भाग रहा है, तब भी वह अपना अर्थ प्रकट
कर रहा है। वह कह रहा है, मैं कौन हूं। वह कह रहा है, मैं कामी हूं। कामना उसका अर्थ है इस क्षण। वह कह रहा है, मैं गुलाम हूं; वासना का दास हूं। वह कह रहा है कि मेरी जीवन की इतिश्री कामवासना है, वही मेरी परिधि है; उसके पार न मेरे लिए कोई परमात्मा है, न कोई मोक्ष है।
तुम जो कर रहे हो, उससे प्रकट करते हो कि तुम कौन हो।
धन को पकड़ने वाला व्यक्ति तो कामवासना में भी जाने से डरता है कि कहीं
धन पर कोई आंच न आ जाए। कृपण तो विवाह भी करने में भयभीत होता है। कृपण किसी को पास नहीं आने देना चाहता। क्योंकि जो भी पास आएगा, वह भागीदार बनने लगेगा। कृपण की अपनी भाषा है।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन एक ट्रेन से यात्रा कर रहा था। उसके पास ही बैठा था एक युवक; और उसने पूछा, क्या महानुभाव आप बता सकेंगे कि समय क्या हुआ है? नसरुद्दीन के हाथ में घड़ी थी, लेकिन उसने जल्दी अपनी घड़ी छिपा ली। और उसने कहा, माफ करिए; मैं न बता सकूंगा कि समय क्या है।
वह युवक थोड़ा हैरान हुआ। इस तरह की घटना कभी जीवन में उसके घटी न थी कि कोई समय बताने से मना कर दे। उसने पूछा, मैं समझा नहीं। इसमें आपको क्या अड़चन हो रही है?
नसरुद्दीन ने कहा, अब अगर पूरी बात ही समझनी है, तो समझाए देता हूं। लेकिन बात जरा लंबी है। अभी तुम पूछोगे, समय क्या हुआ है। फिर मैं बता दूं, बात आगे बढ़ेगी। कहां जा रहे हो, पूछोगे। मैं कहूं, बंबई जा रहा हूं। तुम कहोगे, मैं भी बंबई जा रहा हूं। ऐसे ही तो आदमी बात-बात में फंसता है। तुम भी बंबई जा रहे हो; मैं बंबई ही रहता हूं। मैं कहूंगा, अच्छा, आना मेरे घर भोजन कर लेना। ऐसे ही तो आदमी उलझ जाता है। बात में से बात, बात में से बात निकलती आती है। जवान लड़की है घर में; तुम भी जवान हो; देखने-दाखने में अच्छे भी लगते हो। कोई न कोई झंझट हो जाएगी। आज नहीं कल तुम कहोगे, जरा आपकी बेटी को सिनेमा ले जा रहा हूं! और किसी न किसी दिन तुम आ जाओगे विवाह

के लिए। और मैं तुमसे कहे देता हूं, जिसके पास अपनी घड़ी भी नहीं, उससे मैं लड़की का विवाह नहीं कर सकता।
कृपण आदमी का अपना तर्क है। उसके देखने के अपने ढंग हैं। वह हर तरफ से रुपए को देखता है। उसको आदमी दिखाई ही नहीं पड़ते, रुपए ही दिखाई पड़ते हैं। जब वह किसी की तरफ देखता है, तो उसे रुपयों की गड्डियां दिखाई पड़ती हैं, आदमी नहीं दिखाई पड़ता। उसकी अपनी जीवन-शैली है। उसका एक ढंग है, जिसमें बंधा हुआ वह जीता है। अगर तुम्हारे पास रुपए हैं, तुमसे और तरह का व्यवहार करता है। नहीं हैं, तब और तरह का व्यवहार करता है। तुम्हारी आत्मा का कोई सवाल नहीं है; तुम्हारी जेब कितनी वजनी है, इसका ही सवाल है। जब धन होता है, तब तुम्हें पहचानता है; जब नहीं होता, तब बिल्कुल पहचान छोड़ देता है; भूल ही जाता है कि तुम हो। वह अपना अर्थ प्रकट कर रहा है।
तुम्हारी आकांक्षा बताती है, तुम्हारी आत्मा कहां है।
कामी कह रहा है कि मेरी आत्मा बस कामवासना में है। उसके पार उसे कुछ दिखाई नहीं पड़ता। वह मंदिर भी जाता है, तो मंदिर में प्रार्थना करती स्त्रियों को देखने जाता है। वह मंदिर जाता नहीं; वह प्रार्थना करता नहीं। उसका रस ही वहां नहीं है।
जो आदमी धर्म की आकांक्षा करता है, सदवचन सुनता है, सत्य की खोज में निकलता है; सोचता है, जीवन का रहस्य क्या है; वह भी अपने अर्थ को प्रकट कर रहा है। उसकी नजर मंदिर पर लगी रहेगी। वह भला बाजार में बैठा हो। भला बाजार से उठ भी न सकता हो, लेकिन नजर मंदिर पर लगी रहेगी। उसका पुरुषार्थ उसकी भावना से प्रकट हो रहा है। उसके भीतर एक अहोभाव चल रहा है निरंतर परमात्मा के प्रति। न भी जा सके, जाना उतना महत्वपूर्ण नहीं है, लेकिन एक अंतर्धारा बह रही है।
फिर जो आदमी मोक्ष की अभीप्सा करता है कि मुक्त हो जाऊं, सभी कुछ से मुक्त हो जाऊं; इतनी गहन अभीप्सा करता है कि अपने से भी मुक्त हो आऊं; यह स्व होने का बंधन भी न रहे; बंधन ही न रहे; शून्य होने की जो तैयारी दिखलाता है; वह एक बड़ी गहरी समझ, अपने भीतर के आखिरी फूल को प्रकट कर रहा है। उसका कमल खिल गया है।
इसलिए इनको पुरुषार्थ कहा है। ये तुम्हारे अर्थ को बताते हैं। ये तुम्हारे जीवन की सार्थकता को, व्यर्थता को सूचित करते हैं।

तीसरा प्रश्नः आपने कहा कि जैन एक पूरी बस्ती नहीं बसा सकते, इसलिए अधूरे हैं। लेकिन वही हाल तो संन्यासी का भी है, तो क्या संन्यास भी अधूरा नहीं है?

अब तक था, अब नहीं होगा। मेरा संन्यासी पूरी बस्ती बसा सकता है।
अब तक संन्यास लंगड़ा था, पंगु था, निर्भर था। और यह कैसी दुख की बात है
कि संन्यासी गृहस्थ पर निर्भर हो! और जिस पर तुम निर्भर हो, उससे ऊपर होने की आकांक्षा ही नासमझी है।
संन्यासी सोचता है कि ऊपर है; और होता है निर्भर उस पर, जो उसके नीचे है। जीता श्रावक के ऊपर है, लेकिन सोचता है, मैं ऊपर हूं। श्रावक ही ऊपर है; वह खुद के लिए भी आयोजन कर रहा है, तुम्हारे लिए भी आयोजन जुटा रहा है। उसका दान बड़ा है, उसकी सेवा बड़ी है।
अब तक संन्यासी अधूरा था। और निश्चित ही, अब तक संन्यासी बस्ती नहीं बसा सकते थे। संन्यासियों के लिए दूसरों की बस्तियां चाहिए, जिनको संन्यासी पापी कहता है, भटके हुए कहता है, अंधेरे में पड़े कहता है, मूर्च्छा में डूबे कहता है, जिनके लिए नरक का इंतजाम कर रखा है उसने, उनके ऊपर ही निर्भर होता है। यह बड़ी विडंबना की बात है। और फिर भी अपने को ऊपर मानता है।
तुम जिस पर निर्भर हो, उससे ऊपर नहीं हो सकते। और होता भी नहीं। बस, दिखावा होता है। संन्यासी को बिठा देते हो तुम तख्त पर ऊपर, नीचे तुम बैठते हो। लेकिन तुम जानते हो, बागडोर तुम्हारे हाथ में है।

मेरे पास संन्यासियों की खबरें आती हैं कि वे मुझसे मिलना चाहते हैं, लेकिन अपने अनुयायियों के कारण आ नहीं सकते। उनके अनुयायी उन्हें आने नहीं देते!
यह बड़े मजे की बात है। तो अनुयायी नेता है? मार्गदर्शक है? मालिक है? है, क्योंकि वही भोजन देता है, वही औषधि देता है, वही ठहरने को जगह देता है, वही स्वागत-समारंभ करता है। उसके बिना तुम कहीं भी नहीं हो सकते। और तुम्हें वह यह भी धोखा देता है कि तुम तख्त पर ऊपर बैठ जाओ, कोई हर्जा नहीं है। क्योंकि जानता है, तुम्हारी लगाम उसके हाथ में है। वह आखिरी निर्णायक है।
यह संन्यास लकवा लगा संन्यास है। बीमार संन्यास है, रुग्ण संन्यास है।
मेरा संन्यासी पूरी बस्ती बसा सकता है; बसाएगा। क्योंकि मैं, तुम जो
कर रहे हो, उससे तुम्हें नहीं तोड़ रहा हूं। तुम जो कर रहे हो, उसे पूरे भाव से करना है, यही कह रहा हूं। तुम जो कर रहे हो, उसे ईश्वर-अर्पण करके करना है, इतना ही कह रहा हूं। तुम जो भी कर रहे हो!
तुम सड़क पर बुहारी लगाते हो, कि जूते बनाते हो, कि क्या करते हो, यह सवाल नहीं है। तुम जो भी करते हो, उसे ही ध्यानपूर्वक करना है। उसे ही ऐसी तल्लीनता से करना है कि वही तुम्हारी प्रार्थना, वही तुम्हारी साधना हो जाए। तब संन्यासी पूरी बस्ती बसा सकता है। तब सारी दुनिया संन्यासी की हो सकती है।
अब तक जो संन्यासी था, वह कभी भी पूरी दुनिया में नहीं फैल सकता था। क्योंकि उसके ऊपर भारी बंधन थे।
जैन संन्यासी भारत के बाहर नहीं जा पाए, क्योंकि वहां जैन श्रावक नहीं है, जो उनको भोजन देगा। पहले जैन श्रावक वहां होना चाहिए, तब जैन संन्यासी जा सकता है। नहीं तो वह भोजन कहां लेगा? वह किसी और के घर तो भोजन ले नहीं सकता! वह तो अपवित्र है। अब जब तक जैन संन्यासी न जाए, जैन श्रावक वहां कैसे हो! इसलिए वह बात ही न उठी। इसलिए जाने का सवाल ही न उठा।
इसलिए जैन सिकुड़कर मर गए। उनकी कोई संख्या है? पच्चीस लाख संख्या है! अगर महावीर ने पच्चीस जोड़ों को भी दीक्षा दी होगी, तो पच्चीस सौ साल में पच्चीस जोड़े पच्चीस लाख बच्चे पैदा कर देंगे। यह भी कोई विकास हुआ! कुंद हो गया, बंद हो गया, सब तरफ से हाथ-पैर कट गए।
न; मेरा संन्यासी सारी दुनिया में फैल सकता है, क्योंकि वह किसी पर निर्भर नहीं है। स्वनिर्भरता तभी संभव है, जब तुम अपनी रोटी खुद कमा रहे हो; अपने कपड़े खुद बना रहे हो। अपने जीवन के लिए परम मुक्त हो, किसी पर निर्भर नहीं हो, तभी तुम वास्तविक रूप से स्वतंत्र हो सकते हो।
गृहस्थ ही जब तक संन्यासी न हो जाए, गृहस्थ रहते हुए ही संन्यासी न हो जाए, तब तक संन्यास जीवंत नहीं होगा, मुरदा होगा। उसमें वास्तविक प्राण नहीं हो सकते; धड़कन उधार होगी।

चौथा प्रश्नः आपने कहा कि भगवान कृष्ण और अर्जुन के बीच मैत्री का संबंध गहन था और उसी संबंध से गीता-ज्ञान का उदय हुआ। फिर अर्जुन संदेह भी उठाता है और शीघ्र ही समर्पित शिष्य हो जाता है। कृपापूर्वक इस पर प्रकाश डालें।

जहां प्रेम है, वहां श्रद्धा ज्यादा दूर नहीं। प्रेम के पास ही श्रद्धा का शिखर है। श्रद्धा प्रेम का ही निखार है, निचोड़ है।
अर्जुन प्रेम तो करता है कृष्ण को, मित्र की तरह करता है। एक गहन सहानुभूति है; कृष्ण को समझने के लिए तैयारी है। कृष्ण से मन में कोई विरोध नहीं है, कोई द्वेष नहीं है। कोई प्रतिरोध नहीं है कृष्ण के प्रति। द्वार खुला है। कृष्ण मित्र हैं और जो भी कहेंगे, वह कल्याणकर होगा। कृष्ण भटकाएंगे नहीं, इतना भरोसा है। इस भरोसे से देर नहीं लगती, और जहां मित्र-भाव था, वहीं गुरु-शिष्य का जन्म हो जाता है।
बुद्ध ने तो अपने संन्यासियों को कहा है कि तुम लोगों के कल्याण-मित्र होना। फिर उसी कल्याण-मैत्री से उनके मन में श्रद्धा उठेगी, तो

समर्पण भी फलित होगा। बुद्ध ने कहा है कि आने वाले संसार में जो बुद्ध होगा, उसका नाम मैत्रेय होगा।
मैत्रेय का अर्थ है, मित्र। मित्रता से ही शुरुआत होती है। अगर जरा-सी
भी शत्रुता है, तो श्रद्धा-भाव तो पैदा ही कैसे होगा? फिर तो द्वार ही बंद हैं। फिर तो तुम पहले से ही डरे हो; फिर पहले से ही तुम अपनी सुरक्षा कर रहे हो; फिर संवाद नहीं हो सकता।
गीता संवाद है। संवाद का अर्थ है, दो हृदयों के बीच होती बात है, दो मस्तिष्कों के बीच नहीं। दो विचार आपस में लड़ नहीं रहे हैं, संघर्ष नहीं कर रहे हैं। दो भाव मिल रहे हैं। एक संगम फलित हो रहा है।
शिष्य जब आता है शुरू में, तो शिष्य तो हो ही नहीं सकता। शिष्य होना तो बड़ी उपलब्धि है। इसलिए नानक ने अपने पूरे धर्म का नाम ही सिक्ख रख दिया।
सिक्ख शिष्य शब्द का रूप है। सारे धर्म का सार ही इतना है कि तुम शिष्य हो जाओ, सिक्ख हो जाओ; सीखने को तैयार हो जाओ।
साधारणतः अहंकार सीखने को तैयार नहीं होता, सिखाने को तैयार होता है। अहंकार का रस यह होता है कि किसी को सिखा दूं, सलाह दे दूं।
इसलिए दुनिया में इतनी सलाह दी जाती है; कोई नहीं लेता, फिर भी लोग दिए चले जाते हैं! बाप बेटे को दे रहा है, पति पत्नी को दे रहा है, पत्नी पति को दे रही है, पड़ोसी पड़ोसी को दे रहे हैं। लोग सलाह दिए चले जाते हैं। कोई मांग नहीं रहा है। दुनिया में सबसे कम मांगी जाने वाली चीज सलाह है और सबसे ज्यादा दी जाने वाली चीज भी सलाह है।
देने का बड़ा मजा है सलाह; क्योंकि देते वक्त तुम्हें लगता है कि तुम ज्ञानी हो गए और लेने वाला अज्ञानी हो गया। दूसरों को अज्ञानी सिद्ध करने का मजा लेना हो, तो सलाह देने से ज्यादा सुगम और कोई तरकीब नहीं है। बिना अज्ञानी कहे अज्ञानी सिद्ध कर दिया, दे दी सलाह!
इसलिए जिन चीजों का तुम्हें पता भी नहीं है, उनकी भी तुम सलाह देते हो। जिन्हें तुम्हारे स्वप्न में भी छाया तुमने नहीं देखी है जिनकी, उनके संबंध में भी जब सलाह देने का मौका आता है, तो तुम पीछे नहीं रहते।
सलाह देने को तो एकदम तुम उछलकर तैयार हो जाते हो। सलाह लेने को तुम इतने तैयार नहीं दिखाई पड़ते। और जो सलाह लेने को तैयार है, वही शिष्य हो सकता है। तो अहंकार तो बाधा देगा।
मित्रता का अर्थ है, तुम अपने अहंकार को बचाकर भी प्रेम कर सकते हो। शिष्यत्व का अर्थ है, तुम्हें अहंकार छोड़कर प्रेम करना पड़ेगा। मित्र का अर्थ है, मैं मैं हूं, तुम तुम हो; हम दोनों समान हैं। लेकिन हम एक-दूसरे में रस लेते हैं। शुरुआत तो मित्रता से ही होगी, अंत शिष्यत्व पर होगा।
तो अर्जुन के मन में भाव तो मैत्री का है; कृष्ण उसके सखा हैं, बचपन के सखा हैं। इस सखा-भाव से ही उसने अपने हृदय को उनके प्रति खुला छोड़ दिया है। जिज्ञासाएं उठाई हैं, लेकिन जिज्ञासाएं अदालत में उठाए गए तर्कों की भांति नहीं हैं। किसी को हराना नहीं है; कुछ जानना है; कुछ समझना है।
और कृष्ण जो उत्तर दिए हैं, धीरे-धीरे उसकी संदेह की व्यवस्था को उन्होंने तोड़ दिया; उसके संशय छिन्न हो गए। धीरे-धीरे उसके भीतर संशय की जगह श्रद्धा का आविर्भाव हुआ है। उसने आंख खोलकर देखा कि जिसे उसने सखा समझा था, वह सिर्फ सखा नहीं है। सखा में विराट के दर्शन हुए हैं।
तुमने भी जिसे सखा समझा है, वह सखा ही नहीं है। तुमने जिसे पत्नी समझा है, वह पत्नी ही नहीं है। तुमने जिसे बेटा समझा है, वह बेटा ही नहीं है। किसी दिन आंखें खुलेंगी, तो तुम पाओगे वही विराट! सभी तरफ विराट है; वही छिपा है।
तुम यह मत सोचना कि यह कोई चमत्कार है, जो कृष्ण ने दिखा दिया। यह चमत्कार नहीं है, जो कृष्ण ने दिखा दिया। यह चमत्कार है, जो अर्जुन ने देख लिया।
अर्जुन जैसे-जैसे खुलता गया और जैसे-जैसे सरल होता गया, उसकी ग्रंथि अहंकार की जैसे-जैसे टूटी, जैसे-जैसे उसने कृष्ण को गौर से देखा कि जिसमें हमने सखा देखा था, वह सिर्फ सखा नहीं है, परम गुरु उसमें छिपा है! जैसे-जैसे यह भाव प्रगाढ़ हुआ, वह पुराना सखा कृष्ण खो गए।

एक अर्थ में यह घटना बड़ी कठिन है, मित्र में परमात्मा को देखना।
क्योंकि जिसे तुमने मित्र की तरह जाना है, उसे परमात्मा की तरह जानने में बड़ी अड़चन हो जाती है।
इसलिए जीसस ने कहा है कि पैगंबर की पूजा अपने ही गांव में नहीं होती।
ठीक है बात। क्योंकि गांव के लोग जानते हैं, तुम कौन हो। अगर जीसस अपने गांव जाते, तो लोग कहते, बढ़ई का लड़का है, वह जोसेफ का लड़का है। दिमाग फिर गया है। ऊंची-ऊंची बातें करने लगा है। कोई मानने को राजी न होता कि बढ़ई का लड़का और ज्ञान को उपलब्ध हो गया है।
हम भूल ही नहीं सकते बाहर की परिधि को, क्योंकि वही हमारा परिचय है।
कबीर ज्ञान को उपलब्ध हो गए। एक सुबह नदी पर, गंगा पर स्नान करने गए हैं। देखा एक पड़ोसी, परिचित है, ऐसे हाथ से ही चुल्लू भर-भरकर स्नान कर रहा है। तो उन्होंने जल्दी से अपना लोटा मांजा और उसको दिया कि लोटे से स्नान कर लो; ऐसे चुल्लू से भर-भरकर स्नान कितनी देर में कर पाओगे!
उस आदमी ने कहा, सम्हालकर रख अपना लोटा, जुलाहे! क्या जुलाहे का लोटा लेकर हम अपने को अपवित्र करेंगे! वह मुहल्ले का ही आदमी था। कबीर जुलाहा हैं, यह भूलना उसे मुश्किल है।
कबीर ने कहा कि बड़ी गजब की बात तुमने कह दी। लेकिन जब यह लोटा ही तुम्हारी गंगा में स्नान करने से पवित्र न हुआ, तुम कैसे हो जाओगे? तुमने मेरी तो दृष्टि खोल दी; अब गंगा में नहाने न आऊंगा। क्या सार! लोटे को घिस-घिसकर परेशान हो गया और साफ न हुआ, शुद्ध न हुआ। जुलाहे का लोटा, जुलाहे का रहा। तो तुम स्नान कर-करके क्या पा लोगे?
लेकिन जिसको तुमने जुलाहे की तरह जाना है, उसे गुरु की तरह जानना मुश्किल हो जाता है। जीसस ठीक कहते हैं, पैगंबर की पूजा अपने ही गांव में नहीं होती। एक अर्थ में तो मित्र को परमात्मा की तरह जानना बहुत कठिन है। और एक अर्थ में बिना मित्र बनाए परमात्मा को पहचानना कठिन है। क्योंकि तब शुरुआत ही कैसे होगी!
तो तुम पर निर्भर करेगा। अगर तुम थोड़े सजग हो, तो मित्रता धीरे-धीरे, धीरे-धीरे गहरे में ले जा सकती है। अगर तुम बेहोश हो, तो मित्रता नीचे उतार सकती है। मित्रता ऊपर जाने वाली सीढ़ी भी बन सकती है और मित्रता नीचे जाने वाली सीढ़ी भी बन सकती है।
अक्सर तो ऐसे ही होता है कि मित्रता नीचे जाने वाली सीढ़ी बनती है। जब
तक दो व्यक्ति एक-दूसरे को मां-बहन की गाली न देने लगें, तब तक समझना मित्रता पूरी नहीं है; तब समझो कि पक्की है। इतने नीचे जब तक न उतर जाएं, तब तक मित्रता सिद्ध ही नहीं होती!
तुम दो व्यक्तियों के व्यवहार को देखकर कह सकते हो कि गहरी मित्रता
है या नहीं। अगर गाली वगैरह दे रहे हैं और मजे से हंस रहे हैं, तो समझो कि मित्रता है। साधारण सौजन्य भी छूट जाता है; साधारण संस्कार भी छूट जाते हैं। दोनों अपने निम्न तल पर उतर आते हैं, तब मित्रता मालूम पड़ती है। अर्जुन अनूठा व्यक्ति रहा होगा। इसलिए कृष्ण अगर उसे पुरुषश्रेष्ठ कहते हैं, तो कुछ आश्चर्य नहीं है। मित्र के भीतर परमात्मा को देख लिया! जिसे बचपन से जाना है, उसके भीतर अनजान की झलक पा ली। जो बिल्कुल ज्ञात मालूम होता है, उसके भीतर अज्ञात का द्वार खुल गया।
इस मैत्री से ही गीता जन्मी है। इस मैत्री के भाव से ही अर्जुन शिष्य हुआ और कृष्ण को गुरु होने का मौका दिया।
क्योंकि ध्यान रखना, कोई तुम्हारे ऊपर गुरु नहीं हो सकता; तुम मौका दे सकते हो। गुरु कोई जबरदस्ती नहीं है। गुरु तुम्हारे ऊपर अपने को थोप नहीं सकता। क्योंकि गुरु कोई हिंसा नहीं है, आक्रमण नहीं है। इसलिए दुनिया में कोई गुरु नहीं बन सकता, केवल शिष्य गुरु बना सकता है। वह तुम्हारी ही भाव-दशा है।
शिष्य ही गुरु को निर्मित करता है, एक अर्थों में। क्योंकि जैसे ही वह झुकता है, वैसे ही गुरु पैदा होता है। जितना झुकता है, उतनी ही गुरुता का दर्शन होता है।
अर्जुन धीरे-धीरे झुकता गया है। उसने अपनी सब जिज्ञासाएं उठा ली हैं;
सब प्रश्न उठा लिए हैं। कृष्ण उसके एक-एक प्रश्न को काटते गए हैं, बड़े धीरज

से। क्योंकि गुरु को तो बहुत धैर्य रखना जरूरी है। अज्ञान इतना गहरा है और मन के इतने पुराने जाल हैं कि तुम एक तरफ से सम्हालो, दूसरी तरफ से बिगड़ जाता है। दूसरी तरफ से सम्हालो, तीसरी तरफ से बिगड़ जाता है। और मन अंत तक चेष्टा करता है जीतने की।
जब शिष्य गुरु के पास आता है, तो गुरु और शिष्य के मन के बीच एक गहन संघर्ष शुरू होता है। इस बात को थोड़ा समझ लेना।
जब भी शिष्य गुरु के पास आता है, तब शिष्य के मन और गुरु के बीच संघर्ष शुरू होता है। शिष्य के हृदय और गुरु के बीच तो मैत्री होती है। लेकिन शिष्य की बुद्धि, विचार और गुरु के बीच बड़ा संघर्ष होता है।
ये दोनों ही बातें होनी चाहिए कि हृदय में मैत्री का भाव हो, तो संवाद पैदा हो सकेगा। गुरु जो कहेगा, वह समझ में आ सकेगा। क्योंकि समझ अंततः हृदय की है, प्रेम की है। और अगर हृदय में वह भाव न हो, सिर्फ बुद्धि में प्रश्न हों, तो तुम शिष्य नहीं हो। तुम सिर्फ कुतूहलवश, जिज्ञासावश आ गए हो। तुम रूपांतरित होने को नहीं आए हो। तुम कुछ शब्दों का संग्रह करके लौट जाओगे। तुम थोड़े पंडित हो जाओगे। तुम मिटोगे नहीं; तुम थोड़े-से और आभूषण अपने अहंकार के लिए जुटा लोगे।
मन में तो प्रश्न उठेंगे ही। जैसे वृक्षों में पत्ते लगते हैं, ऐसे मन में प्रश्न लगते हैं। लेकिन अगर हृदय में प्रेम हो, तो गुरु जीत जाएगा, शिष्य हारेगा। और शिष्य का हारना ही शिष्य की जीत है। गुरु का जीतना ही शिष्य की जीत है। क्योंकि गुरु जीत जाए, तो ही तुम उठोगे उस कचरे से, जहां तुम पड़े हो। अगर तुम जीत गए, तो तुम वहीं पड़े रह जाओगे।
अर्जुन हारने को राजी है; लेकिन जल्दी हारने को भी राजी नहीं है। क्योंकि अगर तुम जल्दी हार गए, तो भी धोखा होगा। मन में प्रश्न बने ही रह जाएंगे, जो बार-बार उठेंगे, हमेशा लौट-लौटकर आ जाएंगे।
तो अर्जुन अपनी सारी जिज्ञासाएं रख लेता है। मन जो भी उठा सकता है, उठा लेता है, उसमें कंजूसी नहीं करता। और हृदय के प्रेम में जरा भी बाधा नहीं डालता। हृदय का द्वार खुला रहता है और गुरु मन को काटे चला जाता है। कृष्ण तो एक तलवार हैं, वे अर्जुन के एक-एक संशय को गिराए जा रहे हैं। लेकिन इतना भरोसा होना चाहिए, किसी के हाथ में तलवार देखकर भय न पैदा हो जाए। किसी के हाथ में तलवार देखकर ऐसा न लगे कि क्या पता, यह संशय काटते- काटते मुझको ही नहीं काट देगा! इतना भरोसा चाहिए कि यह बीमारी ही काटेगा। जैसे तुम एक सर्जन के पास जाते हो, तो भरोसा चाहिए। तुम लेट जाते हो; तुम बेहोश कर दिए जाते हो। तुम भरोसा रखते हो कि यह आदमी बीमारी की ग्रंथि ही काटेगा, ट्यूमर ही निकालेगा। अब बेहोश हालत में यह क्या करेगा, पता नहीं। लेकिन एक भरोसा है, एक ट्रस्ट है, एक श्रद्धा है।
इसलिए धर्म की परम घटना बिना श्रद्धा के नहीं घटती, क्योंकि धर्म सबसे बड़ी सर्जरी है। जिसमें तुम्हारा सबसे बड़ा ट्यूमर, अहंकार निकाला जाएगा। और तुम्हारे जीवन की सारी संशय की रुग्ण, जितने रोगाणु हैं, उन सबको बाहर फेंका जाएगा। वह सबसे बड़ी शुद्धि है; आमूल रूपांतरण है; जड़-मूल से बदलाहट है। उतनी ही बड़ी श्रद्धा भी चाहिए। ऐसी श्रद्धा न हो, तो बेहतर है गुरु के पास मत जाना।
मैंने सुना, मुल्ला नसरुद्दीन गया था चिकित्सक के पास। जैसे ही चिकित्सक ने उसे कहा कि लेटो टेबल पर; उसने जल्दी से खीसे में हाथ डाला, अपना बटुआ निकाला। चिकित्सक ने कहा, कोई फिक्र नहीं; फीस बाद में दे देना। उसने कहा, फीस कौन दे रहा है! हम अपने रुपये गिन रहे हैं। आपरेशन के बाद गिनने में क्या सार! पहले गिन लेना उचित है। कितने थे, इतना पक्का तो होना चाहिए; आपरेशन के बाद वापस गिन लेंगे।
इतना भी भरोसा न हो, तो गुरु के पास जाना ही मत। अगर गुरु के पास भी हाथ जेब में पड़ा रहे और बटुए में नोट गिनते रहो और संदेह बना रहे... ।
संदेह के होने में कोई बुराई नहीं है; मन में ही हो, हृदय में न हो।
हृदय भरोसा करता हो। तो वह परम घटना घट सकती है। तुम्हारे मन की मृत्यु हो जाएगी और तुम विराट जीवन को उपलब्ध हो सकोगे।

पांचवां प्रश्नः आपने कहा कि सदगुरु ही शिष्य को खोजता है और विश्व
के सुदूर कोनों से अपने होने वाले शिष्यों को आप पूना बुला रहे हैं। यदि सदगुरु कुछ नहीं करता, तो यह शिष्य का खोजना, उसे अपने पास बुलाना आदि घटनाएं किस प्रकार घटती हैं?

बस, घटती हैं। जैसे पानी भागा चला जाता है सागर की तरफ। जैसे दीए की लौ उठती है आकाश की तरफ। कोई दीया चेष्टा थोड़े ही करता है कि आकाश की तरफ उठे। और चेष्टा करेगा, तो गिरेगा किसी न किसी दिन; थक जाएगा। लेकिन दीया थकता ही नहीं; उसकी ज्योति उठे ही चली जाती है। अगर नदियां चेष्टा करती हों, अगर गंगा श्रम करती हो सागर की तरफ जाने का, कभी तो थकेगी।
श्रम से तो कभी न कभी थक ही जाओगे। तो फिर गंगा कहेगी, जाने भी दो, कुछ दिन छुट्टी। लेकिन बहे चली जाती है, बहे चली जाती है। यह बहना एक स्वाभाविक कृत्य है।
जैसे पानी गड्ढे की तरफ बहता है, ऐसा जब भी कहीं गुरुत्व पैदा होता है,
तो जिनकी भी खोज है, वे बहे चले आते हैं। कोई कुछ करता नहीं। गुरु शिष्य को ऐसे ही बुलाता है, जैसा गड्ढा पानी को बुलाता है। कोई बुलाता नहीं है। जैसे चुंबक खींच लेता है, बिना खींचे। कोई खींचने के लिए उपक्रम थोड़े ही करना पड़ता है। नहीं तो चुंबक को भी विश्राम करना पड़े; बारह घंटे खींचे और बारह घंटे विश्राम करे! नहीं, विश्राम की जरूरत ही नहीं आती, क्योंकि श्रम नहीं है यह।
तुम मेरे पास हो; न तो तुम चेष्टा करके आ गए हो, न मैंने चेष्टा करके तुम्हें बुला लिया है। बस, यह घटना मेरे और तुम्हारे बीच घटी है कि तुम आ गए हो और मैं यहां हूं। यह उतनी ही प्राकृतिक है, जैसे गंगा सागर में गिरती है।
धर्म में, धर्म के गहनतम रूप में कर्तृत्व का सवाल ही नहीं है। और गुरु अगर कुछ करता हो, तो गुरु ही नहीं है। गुरु तो अकर्ता है। कर्ता तो खो गया है, क्योंकि कर्ता का तो अर्थ ही अहंकार होता है।
इसलिए एक बड़ी रहस्यपूर्ण बात है, वह यह कि गुरु के पास बैठ-बैठकर धीरे- धीरे कुछ होता है। गुरु करता नहीं है, तुम करते नहीं हो, पर घटता है। इसको हमने सत्संग कहा है। यह संसार का सबसे बड़ा रहस्य है।
सत्संग का अर्थ है, शिष्य बैठा है, गुरु बैठे हैं; साथ-साथ हैं। घटता है, इन दोनों की मौजूदगी में कुछ घटता है। जिसकी खोज है, वह खोज लेता है। जिसके पास देने को है, वह बांट देता है।
पर यह भाषा के साथ तकलीफ है, क्योंकि हम तो जो भी कहेंगे, उसमें ही क्रिया आ जाएगी। क्योंकि भाषा में हमने ऐसा कोई भी शब्द नहीं जाना, जान भी नहीं सकते। क्योंकि भाषा तो संसारी आदमी बनाता है; कर्ता का भाव वाला आदमी बनाता है। वहां तो सभी क्रियाएं हैं।
एक आदमी बैठता है, वह कहता है, हम ध्यान कर रहे हैं। अब ध्यान कहीं किया जाता है! तुम तो यह भी कहते हो कि हम प्रेम कर रहे हैं। प्रेम कहीं किया जाता है! होता है। जब होता है, तब होता है; नहीं होता, नहीं होता। जब नहीं होता, तब करके दिखाओ? जैसे मैं तुम्हें दे दूं किसी व्यक्ति को और कहूं, चलो, इसको प्रेम करके दिखाओ। दिखा सकोगे?
हां, अभिनय कर सकते हो। गले लगा लो। लेकिन हड्डियां हड्डियों से मिलेंगी, हृदय में कोई उदभावना न होगी। क्या करोगे अगर मैं कहूं कि इस व्यक्ति को प्रेम करो, इसी समय! कुछ न कर सकोगे। ज्यादा से ज्यादा अभिनय कर सकोगे। धोखा है अभिनय, झूठ है अभिनय। प्रेम तो होता है, तो होता है। नहीं होता, तो नहीं होता। लेकिन प्रेम में कितनी घटनाएं घटती हैं!
ध्यान, लोग कहते हैं, ध्यान कर रहे हैं। ध्यान कर रहे हैं, कहना ठीक नहीं है। ध्यान में हैं, इतना कहना ठीक है। क्योंकि करोगे कैसे ध्यान? अगर करने वाला मौजूद रहा, तो तुम बाहर ही बाहर घूमते रहोगे; भीतर कैसे जाओगे? करने वाला कभी भीतर गया है?
जब सब करना छूट जाता है, तब तुम भीतर होते हो। जब विचार का कृत्य भी नहीं रह जाता, कोई क्रिया की लहर तुम्हारे पास नहीं रह जाती, तब तुम भीतर होते हो। ध्यान में व्यक्ति होता है; ध्यान किया नहीं जा सकता।

प्रार्थना कर सकते हो? बकवास कर सकते हो; उसको तुम प्रार्थना कहते हो! प्रार्थना भाव-दशा है। तुम प्रार्थना में हो सकते हो। प्रार्थना में सन्नाटा हो जाएगा, मौन हो जाएगा। मन चुप होगा। कहीं कोई आवाज न उठेगी। एक गहन सन्नाटा छा जाएगा। उसी सन्नाटे में तुम झुकोगे। उसी सन्नाटे में तुम परमात्मा में गिरोगे। उसी सन्नाटे में तुम स्वीकार किए जाओगे, अंगीकार होओगे।
प्रार्थना में हो सकते हो, प्रार्थना कर नहीं सकते। और तुमने प्रार्थना की, तो वहां विवश अभिनय हो जाएगा।
मंदिरों में पुजारी प्रार्थना कर रहे हैं; अभिनय चल रहा है! कैसा मजा है! नौकर रख छोड़े हैं तुमने मंदिरों में, जिनको तुम तनख्वाह देते हो प्रार्थना करने की। वे जिंदगीभर प्रार्थना करते रहते हैं। और कुछ भी नहीं घटता।
रामकृष्ण को मंदिर में रखा गया था; भूल से ही हो गई यह बात। क्योंकि ऐसा पुजारी कोई नौकरी करने नहीं आता। गरीबी थी, तकलीफ में थे, राजी हो गए। राजी होने में गरीबी ही नहीं थी, करुणा भी थी। क्योंकि जिस महिला ने यह मंदिर बनाया दक्षिणेश्वर का कलकत्ते में, वह शूद्र थी। कोई ब्राह्मण उसके यहां नौकरी करने को राजी न था। शूद्र के मंदिर में कौन ब्राह्मण करने को प्रार्थना जाए?
भगवान भी शूद्र ने बनवाया हो, तो शूद्र हो जाता है। अब शूद्र भगवान की कौन पूजा करे! कोई भ्रष्ट होना है? आदमी के तर्क बड़े अदभुत हैं।
और वह महिला निश्चित ही बड़ी अदभुत महिला थी। रानी रासमणि उसका नाम था। वह बड़े भाव से उसने मंदिर बनाया था। लेकिन पुजारी न मिले मंदिर में। और वह शूद्र थी, इसलिए खुद मंदिर के गर्भ-गृह में प्रवेश करने से डरती थी कि अगर मैंने भीतर प्रवेश किया, तो कहीं लोगों को पीड़ा न हो, दुख न हो। अन्यथा वह भी पूजा कर सकती थी। वह मंदिर के द्वार पर बाहर से पूजा करके जाती थी। वह ज्यादा ब्राह्मण थी उन ब्राह्मणों से, जो मंदिर में पूजा करने को राजी नहीं थे, क्योंकि इसमें पैसा रासमणि का लगा था।
रामकृष्ण राजी हो गए, संयोग ही था, दयावश, करुणावश; और गरीबी थी, नौकरी चाहिए थी। और नौकरी उन्हें कहीं और मिल भी न सकती थी। क्योंकि वे कुछ अनूठे ढंग के पुजारी थे, जैसा कि पुजारी होते नहीं या कि सिर्फ असली पुजारी होते हैं।
तो यह संयोग मिल गया, रासमणि को पुजारी नहीं मिलता था, रामकृष्ण को पूजा का मंदिर नहीं मिलता था। जम गई बात।
मगर थोड़े ही दिन में अड़चन शुरू हो गई। ट्रस्टी थे मंदिर के, उन्होंने रासमणि को कहा कि यह पुजारी न चलेगा। इससे तो बिना पूजा का मंदिर रहे, वह बेहतर। प्रतीक्षा करें हम, कोई ब्राह्मण आ जाएगा ढंग का। यह तो ढंग का आदमी ही नहीं है। क्योंकि इसने तो ऐसे जघन्य अपराध किए हैं कि क्षमा नहीं किया जा सकता।
क्या अपराध थे? अपराध ये थे कि कभी तो पूजा करते वे, कभी न करते। एक अपराध तो यह था। कभी दिनों बीत जाते, वे जाते ही न मंदिर में और कभी दिन-दिनभर पूजा चलती।
अब यह भी कोई ढंग है! पूजा तो नियम से होनी चाहिए, पूजा तो एक रूटीन है। जैसे मिलिट्री में होता है, बाएं घूम, दाएं घूम। जल्दी से किया, पूजा पूरी हुई, अपने घर गए, पुजारी घर गया।
रामकृष्ण से पूछा गया, यह क्या गड़बड़ है? उन्होंने कहा कि जब होती है,
तब होती है। जब नहीं होती, मैं क्या करूं! क्या मैं झूठ करूं? क्या भगवान के सामने झूठा खड़ा होकर हाथ हिलाऊं, सिर हिलाऊं? कुछ बोलूं, जो मेरे हृदय में नहीं है! जब नहीं होती है, जब मैं रेगिस्तान की तरह हूं, तब कैसे जाऊं मंदिर में! जब होती है, तब जाता हूं। और जब होती है, तो जब तक होती रहती है, फिर निकलता नहीं हूं। फिर भूख-प्यास भूल जाती है, दिन बीत जाते हैं। कभी-कभी तो ऐसा है कि बीस-बीस घंटे वे खड़े हैं; आंसुओं की धार बह रही है, नाच रहे हैं। सुनने वाले आते हैं, चले जाते हैं; सुबह होती है, सांझ होती है; मगर पुजारी लगा है।

दूसरा अपराध था कि वे पहले खुद भोग लगा लेते हैं अपने को, और फिर भगवान
को प्रसाद चढ़ा देते हैं। पहले भगवान को भोग लगना चाहिए, फिर खुद प्रसाद लेना चाहिए। यहां तो सब बिल्कुल उलटा मामला है!
उनसे कहा गया, कम से कम इतना तो बंद करो। क्योंकि यह तो बिल्कुल ही शास्त्र के विपरीत है।
मगर प्रेम कहीं शास्त्र को मानता है? पूजा किसी शास्त्र के अनुसार चलती है? शास्त्र के अनुसार तो अभिनय चलता है, नाटक चलता है।
तो रामकृष्ण ने कहा, फिर मैं पूजा नहीं करूंगा। फिर मुझे छोड़ दें; छुट्टी दे दें। यह मैं कर ही नहीं सकता। यह मेरी मां नहीं कर सकती थी; मैं कैसे कर सकता हूं?
लोगों ने पूछा, क्या मतलब? उन्होंने कहा, मेरी मां जब भी कुछ बनाती थी,
तो पहले खुद चखती थी, फिर मुझे देती थी। देने योग्य भी है या नहीं, यह भी तो पक्का होना चाहिए। तो मैं बिना चखे भगवान को दे नहीं सकता। क्योंकि कई बार मैं पाता हूं कि शक्कर कम है; कई बार पाता हूं, ज्यादा है; कई बार पाता हूं, नमक है ही नहीं; कई बार कुछ भूल-चूक होती है। मैं भगवान को ऐसे नहीं कर सकता।
अब यह किसी बड़े गहन प्रेम से आती पूजा है। इसके लिए कोई शास्त्र निर्मित नहीं हुआ है, न हो सकता है। क्योंकि यह हर पुजारी की अलग होगी। हर पुजारी अपना ही शास्त्र होगा।
नहीं, गुरु कुछ करता नहीं है। वहां महान घटनाएं घटती हैं; बिना किए घटती हैं; बिना किसी की चेष्टा के घटती हैं। कोई उनके करने से थकता नहीं। शिष्य जहां राजी है, गुरु जहां मौजूद है, बस उनकी मौजूदगी दोनों की साथ चाहिए, सत्संग चाहिए; घटनाएं शुरू हो जाती हैं।

छठवां प्रश्नः अर्जुन संदेह और संदेह उठाता है; कृष्ण प्रत्युत्तर
भी देते जाते हैं। ठीक वैसे ही हमारे भीतर भी प्रश्नों का मंथन चलता है। लेकिन मुश्किल यह है कि आपको बहुत बार सुनकर, पढ़कर भीतर से ही उत्तर भी तत्क्षण आ जाते हैं। इससे अंततः उलझाव तो बना ही रहता है। क्या करें?

बुद्धि से आए हुए उत्तर काम नहीं आएंगे। तुमने अगर मुझे सुना, तो दो तरह से सुन सकते हो। एक तो तुम्हारी बुद्धि है, तर्क है, विचार है, वहां से सुन सकते हो। मेरी बात जंच सकती है, ठीक है। लेकिन यह जंचना हृदय का नहीं है। मेरा तर्क तुम्हारे तर्क को काट सकता है। लेकिन यह काट मन से गहरे न जाएगी।
तो तुम्हारे भीतर जब प्रश्न उठेंगे, उत्तर भी उठेगा। लेकिन प्रश्न भी मस्तिष्क में होंगे, उत्तर भी मस्तिष्क में होगा। उत्तर गहरे से आना चाहिए, हृदय से आना चाहिए, तब काटेगा। उत्तर प्रश्न से ज्यादा गहराई से आना चाहिए, तभी सुलझाव बनता है, नहीं तो सुलझाव नहीं बनता।
तो जब तुम पाओ--इसको कसौटी समझो--जब तुम पाओ कि कोई उत्तर तुम्हारे भीतर आया, लेकिन सुलझाव नहीं आता, समझ लेना, वह उत्तर उत्तर ही नहीं है। अभी खोज जारी रखनी है। अभी प्रश्न को सम्हालो, अभी उत्तर की फिक्र मत करो। अभी और पूछना है, अभी और जानना है, अभी और सिर रगड़ना है।
तुमने जल्दी उत्तर मान लिया है। प्रश्न मरा नहीं है और उत्तर मान लिया है। तो प्रश्न तो बार-बार सिर उठाएगा। और तुम्हारा उत्तर नपुंसक है; तुम्हारा प्रश्न ही बलवान है और तुम्हारा उत्तर कमजोर है। इसीलिए तो सुलझाव नहीं आता।
तो और पूछना पड़ेगा अभी। अभी और खोजना पड़ेगा। तुमने जल्दी ही उत्तर को स्वीकार कर लिया है, इसीलिए अड़चन आ रही है। इतनी जल्दी न करो।
कोई जल्दी नहीं है। अनंत काल शेष है। धीरज से चलो। ऐसा न हो कि उठाए गए कदम फिर-फिर उठाने पड़ें। ऐसा न हो कि फिर-फिर पीछे लौटना पड़े। कुछ अधूरा मत छोड़ जाओ।
जो प्रश्न तुम्हारे भीतर है, जब तक हल ही न हो जाए, तब तक जल्दी मत समझ लेना कि हल हो गया। मन चाहता भी है कि जल्दी हल हो जाए। क्योंकि मन की एक दूसरी बीमारी है, जल्दी, अधैर्य।

तो भोजन पका ही नहीं, तुम कच्चा ही उतार लेते हो चूल्हे से, फिर पेट में दर्द होता है। भोजन को पकने दो; इतनी जल्दी मत करो। जल्दी किए कुछ भी न होगा। जितनी जल्दी करोगे, उतनी देर हो जाएगी।
धीरज से चलो। कहीं पहुंचने की कोई आवश्यकता नहीं है। तुम जहां हो, वहीं सब मिल जाने वाला है। कोई यात्रा नहीं है। तुम जो हो, वहीं सब छिपा है। खजाना तुम्हारे साथ है, कुंजी भला खो गई हो, लेकिन खजाना नहीं खो गया है। इसलिए घबड़ाओ मत और जल्दी मत करो।
एक-एक प्रश्न को सुलझाओ और प्रेम से सुलझाओ, क्योंकि हर प्रश्न के सुलझाने में तुम भी सुलझोगे। अगर प्रश्न को तुमने ऐसे ही टाल दिया, समझा- बुझा लिया अपने को ऊपर-ऊपर कि हल हो गया; सांत्वना बना ली; संतोष तो न हुआ और सांत्वना बना ली, तो प्रश्न फिर सिर उठाएगा। तुम ज्यादा देर उससे बचे न रह सकोगे। फिर तुम उत्तर दिए चले जाओ, वह उत्तर उधार है, वह तुमने मुझसे ले लिया, वह तुम्हारे भीतर घटा नहीं।
जल्दी नहीं है। मैं जो उत्तर दे रहा हूं, उन्हें बीज की तरह लो। वे वृक्ष नहीं हैं। अगर तुमने मेरे उत्तर को वैसा ही स्वीकार कर लिया जैसा मैंने दिया है, तो तुम जरूर पाओगे, अड़चन आएगी। क्योंकि मेरा उत्तर मेरा उत्तर है। वह तुम्हारा कैसे हो सकता है?
मेरे उत्तर को तो इशारे की तरह लो, बीज की तरह लो। वृक्ष तो तुम्हारा तुम्हारे भीतर पैदा होगा। मेरी तरफ से इंगित ले लो, फिर अपने उत्तर को आने दो धीरज से। एक दिन तुम पाओगे, जैसे तुम्हारे भीतर प्रश्न उठा है, ऐसे ही तुम्हारा अपना उत्तर भी आ गया है।
तुम्हारा प्रश्न है, तो तुम्हारा ही उत्तर हल करेगा। मेरे उत्तर से तुम्हारे उत्तर को पास आने की सुविधा हो सकती है, लेकिन मेरे उत्तर को तुम अपना उत्तर मत बना लेना। अन्यथा तुम उधारी में पड़ जाओगे। और धर्म नगद सत्य है; वह उधार नहीं है।

अब सूत्रः
परंतु हे अर्जुन, उस त्याग के विषय में तू मेरे निश्चय को सुन... ।
कृष्ण कहते हैं, मेरे निश्चय को सुन। यह शब्द समझ लेने का है। बहुत कीमती है।
चित्त की दो दशाओं में निश्चय का भाव पैदा होता है। एक, जब तुम तर्क से, विचार से, मंथन से किसी निष्कर्ष पर पहुंचते हो, तब भी लगता है, निश्चय हुआ। लेकिन वह निश्चय क्षणभंगुर है। नए तर्क आएंगे, और वह निश्चय डगमगा जाएगा। नई संभावनाएं होंगी, और वह निश्चय टूट जाएगा।
तो तर्क से जो निश्चय आता है, उसको निष्कर्ष कहो, निश्चय मत कहो। वह सिर्फ निष्कर्ष है, कनक्लूजन है, डिसीजन नहीं है। इसलिए वह हमेशा अस्थायी है।
जैसे विज्ञान है। विज्ञान निष्कर्ष लेता है, निश्चय नहीं। न्यूटन ने कुछ खोजा, तो कुछ निष्कर्ष लिए। फिर आइंस्टीन ने उनको गलत कर दिया; खोज आगे बढ़ गई। आइंस्टीन न्यूटन का दुश्मन नहीं है। न्यूटन की खोज को ही आगे बढ़ाया। उसी खोज को आगे खींचने से पता चला कि बहुत-सी चीजें बदलनी पड़ेंगी; वह निष्कर्ष बदलना पड़ा। आइंस्टीन के जाते ही दूसरे लोग आइंस्टीन को आगे खींच रहे हैं, निष्कर्ष बदल रहे हैं।
इसलिए विज्ञान कभी भी निश्चयात्मक रूप से कुछ भी न कह सकेगा। उसके निष्कर्ष बदलते ही रहेंगे।
तर्क कभी भी निश्चय पर नहीं पहुंचता। उसके सभी निश्चय निष्कर्ष होते हैं। फिर नया कोई तर्क उठा, फिर कोई नई घटना घटी, फिर से डांवाडोल हो जाता है।
लेकिन कृष्ण यह नहीं कहते कि मैं तुझे अपना निष्कर्ष बताता हूं। वे कहते हैं, मैं तुझे अपना निश्चय बताता हूं। निश्चय हम उस अवस्था को कहते हैं, जिसमें कोई बदलाहट न होगी, समय की धारा जिसमें कोई परिवर्तन न लाएगी।
कुछ भी घट जाए, कैसी भी स्थितियां बदल जाएं, निश्चय नहीं बदलेगा।

निश्चय का अर्थ है, जिसे हमने तर्क के ऊहापोह से नहीं, बल्कि आत्म-जागरण से पाया है। अंधेरे में तुम टटोलते हो, उस टटोलने से तुम जो निष्कर्ष लेते हो, वह निष्कर्ष है। फिर रोशनी हो गई, उस रोशनी में तुम जो निष्कर्ष लेते हो, वह निश्चय है।
समझो कि राह पर तुमने देखा, तुम चले आ रहे हो, दूर तुम्हें दिखाई पड़ता
है कि कोई खड़ा है, मालूम होता है कोई चोर, कोई शरारती छिपा है वृक्ष के नीचे। बिल्कुल ठीक लगता है, निष्कर्ष तुमने ले लिया; घबड़ाहट भी आ गई। लेकिन मजबूरी है, राह से गुजरना ही पड़ेगा। तुमने अपने हाथ में डंडा भी सम्हाल लिया। तुम अपने निष्कर्ष के अनुकूल तैयार भी हो गए।
थोड़ी दूर आगे जाकर तुम पाते हो कि नहीं, यह कोई चोर नहीं है, यह तो पुलिसवाला है। निष्कर्ष बदल गया। तुमने अब डंडे को शिथिल छोड़ दिया। मस्ती से फिर चलने लगे। और पास गए, तो जाकर देखा, वहां पुलिसवाला भी नहीं है; वह तो सिर्फ बिजली का खंभा है।
परिस्थिति बदलती है, निष्कर्ष बदल जाते हैं। क्योंकि नई परिस्थिति के अनुकूल निष्कर्ष को होना चाहिए। लेकिन निश्चय नहीं बदलता। निश्चय परिस्थिति पर निर्भर ही नहीं है; नहीं तो बदलेगा। निश्चय तो आत्मनिर्भरता है। तुम अपने भीतर इतने इकट्ठे हो गए हो, एकजुट हो गए हो; तुमने भीतर एक ऐसी योग की स्थिति पा ली है, एक ऐसी समाधि पा ली है, एक ऐसा समाधान मिल गया है; अब कोई भी बदल न सकेगा।
विज्ञान निष्कर्ष तक पहुंचता है; धर्म निश्चय तक। विज्ञान संदेहों को
हल करके निष्कर्ष लेता है। धर्म संदेह से मुक्त होकर निश्चय लेता है। विज्ञान में संदेह मौजूद ही रहता है, छिपा रहता है भीतर, परदे की आड़ में।
धर्म में संदेह की मृत्यु हो जाती है, लाश निकल जाती है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, हे अर्जुन, उस त्याग के विषय में तू मेरे निश्चय को सुन। मैं कोई पंडित की तरह नहीं बोल रहा हूं, कृष्ण उससे कह रहे हैं। मैं कोई विचारक की तरह नहीं बोल रहा हूं। यह मेरे जीवन का निश्चय है। ऐसा मैंने जाना है।
एक अंधा आदमी प्रकाश के संबंध में बोले, तो वह निष्कर्ष से ज्यादा कभी नहीं हो सकता। क्योंकि अनुभव तो उसका कोई भी नहीं है। और एक आंख वाला आदमी प्रकाश के संबंध में बोले, तो वह निश्चय है। और सारी दुनिया भी उससे कहे कि तुम गलत हो, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। जो अनुभव से जाना गया है, उसमें अंतर नहीं आता। अनुभव शाश्वत की उपलब्धि है।
और हम उसी को सत्य कहते हैं, जो शाश्वत है, सनातन है। इसलिए विज्ञान के पास ज्यादा से ज्यादा परिकल्पनाएं हैं, हाइपोथीसिस हैं, सत्य नहीं। सत्य तो केवल धर्म की अनुभूति है।
हे अर्जुन, मेरे निश्चय को सुन। हे पुरुषश्रेष्ठ... ।
अर्जुन को कृष्ण बार-बार पुरुषश्रेष्ठ कहते हैं, बड़े भाव से कहते हैं।
शिष्य जितना ज्यादा झुकता जाता है, उतना ही श्रेष्ठ होता जाता है। यह विरोधाभास है। तुम सोचते हो, जितने अकड़े खड़े रहेंगे, उतने ही श्रेष्ठ हो जाएंगे। गुरु के सामने तुम जितने अकड़ते हो, उतने ही निकृष्ट सिद्ध होते हो। वहां तो झुकना ही कला है। वहां तो तुम जितने झुकते हो, उतने ही श्रेष्ठ होते चले जाते हो। वहां तो तुम बिल्कुल झुक जाते हो, तो तुम श्रेष्ठता की आखिरी परम सीमा हो जाते हो।
अर्जुन पुरुषश्रेष्ठ है। वह झुकता जा रहा है, प्रतिपल झुकता जा रहा है। और पुरुषश्रेष्ठ इसलिए भी है कि अब उसने संन्यास और मोक्ष की जिज्ञासा की है। वह पुरुषश्रेष्ठ ही करते हैं। निकृष्ट पुरुष धन के बाबत पूछता है।
मेरे पास लोग आ जाते हैं। अब मेरे पास आने के पहले ही उन्हें सोचना चाहिए कि मेरे पास किसलिए जा रहे हैं! वे पूछते हैं कि ध्यान करने से आर्थिक लाभ होगा कि नहीं?
नुकसान हो सकता है, लाभ कैसे होगा! ध्यान करोगे, तो घंटेभर तो दुकानदारी बंद हो जाएगी। उतना नुकसान होगा। ध्यान करोगे, तो लोगों की जेब से पैसा निकालने में थोड़ी-सी झिझक होने लगेगी। उतना नुकसान होगा। ध्यान

करोगे, तो शोषण जरा मुश्किल मालूम होगा। उतना नुकसान होगा। ध्यान करोगे, तो झूठ बोलने में अड़चन आएगी। उतना नुकसान होगा।
तो मैं उनसे कहता हूं, ध्यान की तरफ जाना ही मत। ध्यान से हानि है। वे कहते हैं कि नहीं, आप मजाक कर रहे होंगे। क्योंकि हमने तो यही सुना है कि ध्यान करने से सभी तरह का लाभ होता है। लौकिक, पारलौकिक सभी तरह का लाभ है। लाभ पर नजर है, परलोक से मतलब क्या है! ध्यान से धन पाने की आकांक्षा उठती हो, तो बड़ा निकृष्ट चित्त है।
पुरुष जब श्रेष्ठ चित्त से भरता है, तो उसकी जिज्ञासा मोक्ष की होती है। वह कहता है, मुक्त कैसे हो जाऊं? देख लिखा संसार, जान लिया संसार; दुख के अतिरिक्त कुछ भी न पाया; पीड़ा के अतिरिक्त कुछ भी न मिला। कांटे ही कांटे थे। फूल सिर्फ आश्वासन थे; आते कभी न थे; दूर दिखाई पड़ते थे; पास पहुंचने से सब कांटे ही सिद्ध होते थे।
संसार से, संसार की पीड़ा से जो ऊब गया, जाग रहा है, वही पूछता है, मुक्त कैसे हो जाऊं? वही पूछता है, संन्यास क्या है? त्याग क्या है? हे कृष्ण, मुझे साफ-साफ करके बता दें।
हे पुरुषश्रेष्ठ, वह त्याग सात्विक, राजस और तामस, ऐसे तीन प्रकार का कहा गया है।
कृष्ण सांख्य के गणित को पूरा का पूरा स्वीकार करते हैं। और हर चीज तीन प्रकार की है, तो त्याग भी तीन प्रकार का होगा, संन्यास भी तीन प्रकार का होगा।
एक तो वह आदमी है, जो त्याग करेगा, लेकिन उसके कारण तामसिक होंगे। अनेक लोग सिर्फ आलस्य के वश त्यागी हो जाते हैं। क्योंकि उन्हें लगता है कि त्यागी हो गए, फिर समाज खिलाता-पिलाता है, फिक्र लेता है, फिर खुद कुछ करना नहीं पड़ता। जिनको कुछ नहीं करना है, जिनका प्रमाद गहरा है, वे त्याग कर लेते हैं!
भारत में सौ संन्यासियों में से निन्यानबे तामसी मिलेंगे। बड़ी संख्या है उनकी। कोई पचपन लाख संन्यासी हैं भारत में। अब अगर पचपन लाख संन्यासी सात्विक हों, तो इस पृथ्वी पर स्वर्ग उतर आए। तामसी हैं; छोड़ने में रस नहीं है, पकड़ने की चेष्टा करने की इच्छा न थी। उतनी भी इच्छा न थी कि कुछ करें। निष्क्रिय हैं, अकर्मण्य हैं। मुफ्त खाने मिल जाए, पीने मिल जाए, तो बस यही उनके जीवन का परम लक्ष्य है। इस तरह का तमस त्याग कहां ले जाएगा!
फिर कुछ लोगों का त्याग राजस है। राजस का अर्थ है, जो उन्होंने जबरदस्ती किया है। एक तरह की हिंसा है उसमें, ऊर्जा है।
राजस व्यक्ति या तो दूसरे को दबाए या अपने को दबाए, दबाएगा जरूर। उसका सारे जीवन का ढंग हिंसा का है। अगर वह दूसरों को न दबा सके, तो अपने को दबाएगा। अगर वह दूसरों पर मालकियत सिद्ध न कर सके, तो अपने पर मालकियत सिद्ध करेगा।
तो राजस व्यक्ति भी त्याग कर सकता है, लेकिन उसके त्याग में हिंसा होगी। वह अपने को सताएगा। वह अपने पर मालकियत करने की कोशिश करेगा। वह अपने शरीर के साथ ऐसा व्यवहार करेगा, जैसे शरीर कोई दूसरा है। वह खड़ा रहेगा, जब शरीर को बैठना था। वह भूखा रहेगा, जब शरीर को भूख लगी थी। जब प्यास लगी थी, तब वह प्यासा रहेगा। वह कांटों पर लेटेगा। वह सब तरह से शरीर को सताएगा। वह मजा वही ले रहा है, जो वह दूसरे को सताने में लेता। यह त्याग भी कहां ले जाएगा! यह त्याग भी हिंसा है।
फिर एक सात्विक त्याग है, संतुलन का, सत्व का, समता का, बोध का, सम्यकत्व का, कि तुम्हारी समझ बढ़ी, तुमने जीवन को जाना-पहचाना। न तो तुम अकर्मण्यता के कारण छोड़कर भागते हो; न तुम भागने में मजा है, क्योंकि भागने में दौड़ है, इसलिए भागते हो। तुम्हारा संन्यास तुम्हारे बोध की एक परिपक्व दशा है। तुम्हारी समझ का ही परिणाम है।
तुमने देखा कि संसार में कुछ पकड़ने जैसा नहीं है, क्योंकि सभी छूट जाएगा। जो छूट ही जाना है, उसे पकड़ना क्या? जो छूट ही जाना है, वह छूट ही गया है। तुमने दौड़कर भी देख लिया और पाया कि कोई मंजिल नहीं आती; यह संसार

कोल्हू के बैल की तरह है, दौड़ो बहुत, पहुंचना नहीं होता। तुमने दौड़ भी छोड़ दी।
अब तुम एक सम्यकत्व में थिर हो गए हो। तुम्हारे जीवन में एक अनअतिशय
का भाव पैदा हुआ है। न तो तुम इस तरफ डोलते हो, न तुम उस तरफ डोलते हो, तुम मध्य में ठहर गए हो। घड़ी का पेंडुलम जैसे बीच में रुक गया है। न बाएं जाता, न दाएं जाता। क्योंकि कहीं जाने में कोई सार नहीं है। होने में सार है, जाने में सार नहीं है। दौड़ने में सार नहीं है, रुकने में सार है। कहीं पहुंचना नहीं है; जहां हो, वहीं पूरी तरह हो जाना है। स्वयं में थिर होना है। ऐसा जो संन्यास है, वह सात्विक है।
हे पुरुषश्रेष्ठ, वह त्याग, वह संन्यास तीन प्रकार का कहा गया है। तथा यज्ञ, दान और तपरूप कर्म त्यागने के योग्य नहीं हैं। वे निःसंदेह ही करने चाहिए, उनका करना कर्तव्य है, क्योंकि यज्ञ, दान और तप, ये तीनों ही बुद्धिमान पुरुषों को पवित्र करने वाले हैं। इसलिए हे पार्थ, यह यज्ञ, दान और तपरूप कर्म तथा और भी संपूर्ण श्रेष्ठ कर्म आसक्ति और फलों को त्यागकर अवश्य करने चाहिए, ऐसा मेरा निश्चित उत्तम मत है।
कृष्ण कहते हैं, यज्ञ, दान और तप, इन्हें भी छोड़ने की कोई जरूरत नहीं है। कृष्ण एक संतुलन बिठा रहे हैं लोक में और परलोक में। कृष्ण इस संसार के विरोध में नहीं हैं और उस संसार के पक्ष में हैं।
यह थोड़ी नाजुक बात है। क्योंकि साधारणतः जो लोग परलोक के पक्ष में हैं, वे इस लोक के विपक्ष में होते हैं। जो लोग इस लोक के पक्ष में हैं, वे परलोक के विपक्ष में होते हैं। जो भौतिकवादी हैं, वे अध्यात्मवादी नहीं होते। जो अध्यात्मवादी हैं, वे भौतिकवादी नहीं होते।
कृष्ण भौतिकवादी और अध्यात्मवादी दोनों हैं। पदार्थ और परमात्मा में किसी का तिरस्कार नहीं करना है। संसार में और मोक्ष में भी एक संतुलन साध लेना है। यह गहरे से गहरे संतुलन की बात है।
कृष्ण कहते हैं, इसलिए संसार में जो कर्तव्य है, उसे छोड़कर भाग जाना उचित नहीं। भागकर भी जाओगे कहां? संसार ही पाओगे, जहां भी भागकर जाओगे। कर्म को छोड़ोगे भी कैसे? छोड़ना भी कर्म है। पलायन करोगे, वह भी कर्म होगा; आंख बंद करके बैठोगे, वह भी कर्म होगा। बैठना भी कर्म है।
तो कर्म से तो भाग नहीं सकते। जब तक जी रहे हो, श्वास चलती है, कर्म चलता ही रहेगा। तब फिर ध्यान रखो कि जो कर्म हो, वह यज्ञरूप हो, वह दूसरे के हित के लिए हो। तुम्हारी श्वास भी चले, तो दूसरे के हित के लिए चले; वह स्वार्थ के लिए न चले। दानरूप हो। दूसरे को देने के लिए तुम्हारी चेष्टा हो, छीनने की चेष्टा न हो। तपरूप हो। तुम जो करो, वह स्वयं को निखारने और शुद्ध करने के लिए हो; अशुद्ध करने के लिए न हो।
तो कहीं कुछ भागने की जरूरत नहीं है। करने का इतना ही है कि हे पार्थ,
यह यज्ञ, दान और तपरूप कर्म और भी संपूर्ण श्रेष्ठ कर्म आसक्ति को छोड़कर और फल की आकांक्षा को छोड़कर किए जाएं।
तुम किसी की सेवा करो, तो धन्यवाद भी मत मांगना। अन्यथा सेवा व्यर्थ
हो गई। तुम तपश्चर्या करो, तो परमात्मा की तरफ शिकायत से मत देखते रहना कि मैं इतनी तपश्चर्या कर रहा हूं, अभी तक कुछ हुआ नहीं! तपश्चर्या को तुम आनंद मानकर करना। तुम अगर दान दो, तो तुम देने में सुख लेना। देने के पार और देने के बाद तुम्हारी कोई आकांक्षा न हो।
इसीलिए तो गुप्तदान को श्रेष्ठतम दान कहा गया है, कि जिसको दिया है, उसे धन्यवाद देने का भी मौका न मिले; उसे पता ही न चले कि किसने दिया है। और देने वाले को इतनी भी आकांक्षा न हो कि जब राह पर, जिसे उसने दिया है, वह मिले, तो नमस्कार करे; कि अखबार में खबर छपे; कि रेडियो पर घोषणा हो। आकांक्षा फल की बताती है कि तुम्हारे जीवन में साधन और साध्य अलग-अलग हैं; साधन अभी और साध्य भविष्य में। और योग का सार सूत्र यही है कि साधन ही साध्य हो जाए। यह वर्तमान क्षण ही तुम्हारा सारा भविष्य हो जाए। आज ही सब समा जाए; इस कृत्य में ही सारा समाविष्ट हो जाए, इसके पार कोई आकांक्षा न हो। जिस दिन साधन ही साध्य हो जाता है और जिस दिन कदम ही मंजिल हो जाती है, जिस दिन तुम जहां बैठे हो, वहीं होना मोक्ष हो जाता है, उसी दिन पा लिया।

कृष्ण की पूरी प्रक्रिया कर्मत्याग की नहीं, फलाकांक्षा के त्याग की है। और फलाकांक्षा का त्याग वही कर सकता है, जिसने बड़ी सात्विक प्रौढ़ता को पाया हो।
फलाकांक्षी का त्याग तामसी नहीं कर सकता। क्योंकि तामसी तो कर्म का त्याग कर सकता है, फल का त्याग नहीं कर सकता। तामसी की आकांक्षा क्या है? वह कहता है, फल तो सब मिलने चाहिए, कर्म कुछ भी न करना पड़े। यह तामसी की आकांक्षा है। वह कहता है, बैठे-बैठे मिल जाए, तो हम राजी हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन ने सिगरेट त्याग दी थी। फिर मैंने एक दिन उसे सिगरेट पीते देखा, तो पूछा, क्या हुआ नसरुद्दीन? उसने कहा, मैंने खरीदना त्यागा है। लेकिन कोई अगर पिला दे, तो क्या हर्ज है?
प्रमादी कर्म नहीं करना चाहता। इसे तुम ठीक से समझ लो। प्रमादी कर्म नहीं करना चाहता, फल चाहता है। सत्व को उपलब्ध व्यक्ति कर्म करता है, फल नहीं चाहता। एक छोर है प्रमाद, निम्नतम। दूसरा छोर है श्रेष्ठतम, सत्व। और मध्य में जो राजसी है, उसकी दशा बड़ी अलग है। उसे कर्म करने में ही मजा आता है; क्रिया में ही मजा आता है। उसमें इतनी ऊर्जा है, इतनी शक्ति है कि वह दौड़-धूप करने में रस लेता है। अगर उसे दौड़-धूप करने को न मिले, तो परेशानी होती है।
जैसे तामसी उठ नहीं सकता, वैसे राजसी बैठ नहीं सकता। जैसे तामसी को सुबह बिस्तर से उठने में भारी अड़चन आती है, संसार का सारा कष्ट आता है, वैसे राजसी को रात बिस्तर पर जाने में भारी कष्ट आता है। राजसी की रात लंबी होती जाती है, वह जागता है दो बजे, तीन बजे तक। कुछ नहीं तो नाचता है, होटल में, क्लब में; कहीं भी समय बिताता है। ताश खेलता है, कुछ करना है! उसके भीतर इतनी बेचैनी है कि उस बेचैनी को न निकाले, तो वह सम्हाल न सकेगा। तामसी पड़ा रहता है; उसे उठने में अड़चन है।
ऐसा हुआ जापान में कि जापान में एक सम्राट हुआ। वह झक्की था, आलसी था। उसे एक ख्याल आया कि आलसियों में कभी ही कोई सम्राट हो पाता है, अब मैं हो गया हूं, तो और आलसियों के लिए भी इंतजाम कर दूं। तो उसने राज्य में खबर भिजवाई कि जितने भी आलसी हों, वे सभी दरख्वास्त दे दें। उन्हें कुछ करने की जरूरत नहीं रहेगी। क्योंकि अगर तुम आलसी हो, इसमें तुम्हारा कसूर क्या! भगवान ने तुम्हें आलसी बनाया, उसका मतलब भगवान चाहता है, तुम आलसी रहो। जिन्हें उसने काम करने वाला बनाया, वे काम करें, अपने लिए भी, तुम्हारे लिए भी। मगर आलसी का कसूर क्या है? कोई अंधा है, कोई लंगड़ा है, कोई आलसी है, तो इसमें करोगे क्या!
हजारों लोगों की दरख्वास्तें आईं। मंत्री तो घबड़ा गए कि अगर इतने लोग खाली बैठ जाएंगे, तो डूब जाएगी नाव राज्य की। सम्राट से उन्होंने प्रार्थना की कि ये तो बहुत ज्यादा लोग आलसी होने के लिए दरख्वास्त दिए हैं; यह तो खजाना डूब जाएगा। यह चल न सकेगा मामला! सम्राट ने कहा, चलेगा; तुम उन सबको कह दो कि वे सब आ जाएं। जांच कर ली जाएगी। असली आलसी तो एक ऐसी अनूठी घटना है कि वह छिपाए छिप नहीं सकता।
बुला लिए गए आलसी, उनकी परीक्षा के लिए। परीक्षा यह थी कि उन्हें घास
के झोपड़ों में ठहरा दिया गया और रात आग लगा दी गई। भागे लोग निकलकर। जो भी नकली थे, भाग गए। चार लेकिन पड़े रहे। पड़े थे; उन्होंने और अपना कंबल ओढ़ लिया। किसी ने कहा भी कि आग लगी है। उन्होंने कहा, ऐसी बातें न करो आधी रात; नींद खराब न करो। अब जिसने लगाई है, वही बुझाएगा भी। निश्चित, बुझाई भी गई आग। चार बचे; हजारों आए थे!
आलसी की जीवन-ऊर्जा उठती नहीं। वह मरा-मरा है; जैसे मरने के पहले मरा हुआ है। वह लाश की तरह है; उसकी जीवन-ऊर्जा बैठी हुई है, सक्रिय नहीं है। राजसी उन्मत्त है ऊर्जा से। जरूरत से ज्यादा शक्ति है। भागेगा, दौड़ेगा, जमानेभर की राजनीति करेगा, उपद्रव खड़े करेगा; वह उसके बिना जी नहीं सकता।
अभी मैं एक लिस्ट देख रहा था, गुजरात में जो मंत्रिमंडल बना है, तो एक नाम मुझे बड़ा प्यारा लगा। नाम है, भाईदास भाई गड़बड़िया कांट्रैक्टर। यह तो सभी मंत्रियों का नाम यही होना चाहिए। पहले तो भाईदास भाई भी कोई नाम हुआ!

न तो भाई नाम है, न दास नाम है, भाईदास भाई! फिर गड़बड़िया। और उसमें भी जो कमी रह गई, वह कांट्रैक्टर!
राजसी का एक जगत है, उसका एक पागलपन है। वह दौड़ेगा, दौड़ेगा। उसे कहीं पहुंचना नहीं है, पहुंचने से कोई लेना-देना भी नहीं है। ऊर्जा है, बेचैनी है।
फिर सत्व को उपलब्ध व्यक्ति है; वह संतुलित है। वह उतना ही करता है, जितना करना जरूरी है। वह श्रम और विश्राम के बीच खड़ा है। वह सदा श्रम और विश्राम के बीच संतुलन को साधता है। उसका जीवन सम्यकत्व की धारा है। समत्व, अनतिशय, निरति, उसके सूत्र हैं। वैसा व्यक्ति ही आकांक्षा को छोड़ सकता है, फल की आसक्ति को। वैसा व्यक्ति ही अपने अहंकार को छोड़ देता है। क्योंकि जब तुम फल की आकांक्षा नहीं करते, तुम्हारा अहंकार गिर जाता है। बिना भविष्य के अहंकार जीएगा कैसे? भविष्य का सहारा चाहिए। वर्तमान में तो अहंकार होता ही नहीं। इस क्षण बोलो, कहां है तुम्हारा अहंकार? इस क्षण! इस क्षण तो भीतर सन्नाटा है। तुम खोजो भी, कहां हूं मैं? कहीं पाओगे न। कल है, बड़ा मकान बनाना है, बड़ी कार खरीदनी है; कल है अहंकार। चुनाव जीतना है। राष्ट्रपति होना है। कल है अहंकार। अभी इसी क्षण खोजोगे, पाओगे नहीं। जितना भविष्य बड़ा बनाओगे, उतना बड़ा अहंकार है। या अतीत में है अहंकार। जो तुमने किया या जो तुम करोगे, उन दोनों में अहंकार है। लेकिन जो तुम हो, वहां कोई अहंकार नहीं है। तुम्हारा होना निरअहंकारपूर्ण है। अस्तित्व की कोई अस्मिता नहीं है। अस्तित्व तो बस, है। बस, होना ही है।
इसलिए कृष्ण बार-बार सभी द्वारों से अर्जुन को समझाते हुए एक बात पर लौट आते हैं; वह उनके गीत की टेक है। वे बार-बार वह कड़ी पर लौट आते हैं, तू फलाकांक्षा छोड़ दे, और परमात्मा जो कराए तू कर। न तो तू अपनी तरफ से करने वाला हो, न अपनी तरफ से न करने वाला हो। न तो तामस, न राजस; परमात्मा जो कराए, तू कर। तू निमित्त मात्र हो जा।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग आठ
गीता दर्शन अध्याय 18
तीसरा प्रवचन

फलाकांक्षा का त्याग

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः।। 7।।
दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशमयात्त्यजेत्।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत्।। 8।।
कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन।
सड्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्त्विको मतः।। 9।।
और हे अर्जुन, नियत कर्म का त्याग करना योग्य नहीं है, इसलिए मोह से उसका त्याग करना तामस त्याग
कहा गया है।
और यदि कोई मनुष्य, जो कुछ कर्म है वह सब ही दुखरूप है, ऐसा समझकर शारीरिक क्लेश के भय से कर्मों का त्याग कर दे, तो वह पुरुष उस राजस त्याग को करके भी त्याग के फल को प्राप्त नहीं होता है।
और हे अर्जुन, करना कर्तव्य है, ऐसा समझकर ही जो शास्त्र-विधि से नियत किया हुआ कर्तव्य कर्म आसक्ति को और फल को त्याग कर किया जाता है, वह ही सात्विक कहा जाता है।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः आषाढ़ पूर्णिमा को गुरु-पूर्णिमा के रूप में मनाने का क्या राज है?

धर्म जीवन को देखने का काव्यात्मक ढंग है।
एक तो राह है जीवन को देखने की गणित की, और एक राह है जीवन को देखने की काव्य की। गणित की यात्रा विज्ञान पर पहुंचा देती है। और अगर काव्य की यात्रा पर कोई चलता ही चला जाए, तो परम काव्य परमात्मा पर पहुंच जाता है। लेकिन काव्य की भाषा को समझना थोड़ा दुरूह है, क्योंकि तुम्हारे जीवन
की सारी भाषा गणित की भाषा है। तो गणित की भाषा से तो तुम परिचित हो; काव्य की भाषा से परिचित नहीं हो।
दो भूलों की संभावना है। पहली तो भूल यह है कि तुम काव्य की भाषा को केवल कविता समझ लो, एक कल्पना मात्र! तब तुमने पहली भूल की। और दूसरी भूल यह है कि तुम कविता की भाषा को गणित की तरह सच समझ लो, तथ्य समझ लो, तब भी भूल हो गई। दोनों से जो बच सके, वह समझ पाएगा कि आषाढ़ पूर्णिमा का गुरु- पूर्णिमा होने का क्या कारण है।
काव्य की भाषा तथ्यों के संबंध में नहीं है, रहस्यों के संबंध में है।
जब कोई प्रेमी कहता है अपनी प्रेयसी से कि तेरा चेहरा चांद जैसा, तो कोई ऐसा अर्थ नहीं है कि चेहरा चांद जैसा है। फिर भी वक्तव्य व्यर्थ भी नहीं है। चांद जैसा तो चेहरा हो कैसे सकता है?
आइंस्टीन का बड़ा प्रसिद्ध मजाक है। उसने जिस युवती से विवाह किया था,
वह थोड़ी कविता करती थी, फ्रा आइंस्टीन। आइंस्टीन ने उससे कहा, मैं समझ ही नहीं पाता। क्योंकि आइंस्टीन तो गणित, साकार गणित, गणित का अवतार। शायद पृथ्वी पर वैसा कोई गणितज्ञ कभी हुआ ही नहीं, और होगा भी, यह भी संदिग्ध है। तो उसने कहा, यह मैं समझ ही नहीं पाता। ये कविताएं बिल्कुल बेबूझ मालूम पड़ती हैं। लोग कहते हैं, प्रेयसी का चेहरा चांद जैसा! चांद न तो सुंदर है... ।
चांद पर जाकर चांद-यात्रियों को पता चल गया कि आइंस्टीन सही है, सब कवि गलत हैं। खाई-खड्ड हैं; न कोई हरियाली है, न कोई लहलहाती झीलें हैं; न फूल खिलते हैं, न पक्षी गीत गाते हैं; मरुस्थल है। और इतना मुरदा मरुस्थल है कि जहां कोई, कुछ भी जीवित नहीं है। सौंदर्य की बात इस मरघट से क्या हो सकती है?

और स्त्री के चेहरे को चांद का चेहरा कहना! आइंस्टीन ने कहा, अनुपात
भी नहीं बैठता, कितना बड़ा चांद, कितना छोटा-सा चेहरा!
बात ठीक ही है। अगर काव्य की भाषा को तुमने तथ्य की भाषा समझा, तो यही स्थिति बनेगी।
फिर दूसरी तरफ ऐसे लोग हैं, जिन्होंने काव्य की भाषा को तथ्य की भाषा सिद्ध करने की चेष्टा की है। जैसे जीसस को कहा है ईसाइयों ने कि वे कुंआरी मां से पैदा हुए।
यह काव्य है। कुंआरी मां से कोई कभी पैदा नहीं होता। यह तथ्य नहीं है,
यह इतिहास नहीं है; पर फिर भी बड़ा अर्थपूर्ण है, इतिहास से भी ज्यादा अर्थपूर्ण है। यह बात अगर इतिहास से भी घटती, तो दो कौड़ी की होती। इसमें जानने वालों ने कुछ कहने की कोशिश की है, जो साधारण भाषा में समाता नहीं। उन्होंने यह कहा है कि जीसस जैसा व्यक्ति सिर्फ कुंआरी मां से ही पैदा हो सकता है। जीसस जैसी पवित्रता, कल्पना भी हम नहीं कर सकते कि कुंआरेपन के अतिरिक्त और कहां से पैदा होगी!
तो जिन्होंने कहा है कि जीसस कुंआरी मां से पैदा हुए, उन्होंने जरूर बड़ी गहरी बात कही है, बड़ी अर्थपूर्ण; लेकिन भाषा तथ्य की नहीं है, भाषा काव्य की है। वे यह कह रहे हैं कि जीसस को देखकर हमें इस असंभव पर भी भरोसा आता है कि वे कुंआरी मां से ही पैदा हुए होंगे।
इसे न तो सिद्ध करने की कोई जरूरत है, न असिद्ध करने की कोई जरूरत है। दोनों ही नासमझियां हैं। इसे समझने की जरूरत है। काव्य एक सहानुभूति चाहता है।
महावीर को प्रेम करने वाले लोग कहते हैं कि उनके शरीर से पसीना नहीं बहता था, दुर्गंध नहीं आती थी; वे मल-मूत्र विसर्जन नहीं करते थे। बिल्कुल झूठी बात है। तथ्य की तो बात हो ही नहीं सकती, अन्यथा महावीर
जी ही न सकते थे। तब तो महाकब्जियत की अवस्था होती, जैसी कि कभी किसी को न हुई हो। मल-मूत्र का विसर्जन ही न करें, उनकी तुम तकलीफ समझ सकते हो। आनंद तो दूर, नरक पैदा हो जाता।
नहीं; मल-मूत्र तो विसर्जन किया ही होगा। लेकिन इतने पवित्र पुरुष में मल पैदा हो सकता है, इसकी हम कल्पना नहीं कर सकते। पसीना तो बहा ही होगा। सूरज किसी को माफ नहीं करता और सूरज के नियम किसी के लिए बदलते नहीं। धूप पड़ी होगी, तो इस फकीर महावीर से पसीना बहा ही होगा। तुमसे ज्यादा बहा होगा; क्योंकि न कोई छप्पर, न कोई मकान रहने को, नग्न, प्रगाढ़ धूप हो कि वर्षा हो, आकाश के नीचे! इसलिए तो महावीर का नाम ही दिगंबर हो गया, आकाश ही जिनका एकमात्र वस्त्र है। खूब पसीना बहा होगा।
लेकिन कहने वाले जो कह रहे हैं, वह बिल्कुल ही ठीक कह रहे हैं। वे यह
कह रहे हैं कि इस पवित्रता से पसीने की बदबू पैदा हो सकती है, यह हम कैसे मानें! वे यह कह रहे हैं कि जरूर हमसे कहीं भूल हुई होगी, अगर हमने महावीर के शरीर से कोई दुर्गंध उठती देखी; तो वह हमारी ही नासापुटों की भूल रही होगी, वह महावीर से नहीं हो सकती।
ये सब काव्य हैं। इनको काव्य की तरह समझो, तब इनका माधुर्य अनूठा है;
तब इसमें तुम डुबकियां लगाओ और बड़े हीरे तुम ले आओगे, बड़े मोती चुन लोगे। लेकिन किनारे पर दो तरह के लोग बैठे हैं, वे डुबकी लगाते ही नहीं। एक सिद्ध करता रहता है कि यह बात तथ्य नहीं है, झूठ है। वह भी नासमझ है। दूसरा सिद्ध करता रहता है कि यह तथ्य है, झूठ नहीं है। वह भी नासमझ है। क्योंकि वे दोनों ही एक ही मुद्दे पर खड़े हैं। दोनों ही यह मान रहे हैं, उन दोनों की भूल एक ही है कि काव्य की भाषा तथ्य की भाषा है। दोनों की भूल एक है। वे विपरीत मालूम पड़ते हैं, विपरीत हैं नहीं।
सारा धर्म एक महाकाव्य है। अगर यह तुम्हें ख्याल में आए, तो आषाढ़ की पूर्णिमा बड़ी अर्थपूर्ण हो जाएगी। अन्यथा, एक तो आषाढ़, पूर्णिमा दिखाई भी न पड़ेगी। बादल घिरे होंगे, आकाश तो खुला न होगा, चांद की रोशनी पूरी तो पहुंचेगी नहीं। और प्यारी पूर्णिमाएं हैं, शरद पूर्णिमा है, उसको क्यों न चुन लिया? ज्यादा ठीक होता, ज्यादा मौजूं मालूम पड़ता।
नहीं; लेकिन चुनने वालों का कोई ख्याल है, कोई इशारा है। वह यह है कि गुरु तो है पूर्णिमा जैसा और शिष्य है आषाढ़ जैसा। शरद पूर्णिमा का चांद तो

सुंदर होता है, क्योंकि आकाश खाली है। वहां शिष्य है ही नहीं, गुरु अकेला है। आषाढ़ में सुंदर हो, तभी कुछ बात है, जहां गुरु बादलों जैसा घिरा हो शिष्यों से।
शिष्य सब तरह के जन्मों-जन्मों के अंधेरे को लेकर आ गए हैं। वे अंधेरे बादल हैं, आषाढ़ का मौसम हैं। उसमें भी गुरु चांद की तरह चमक सके, उस अंधेरे से घिरे वातावरण में भी रोशनी पैदा कर सके, तो ही गुरु है। इसलिए आषाढ़ की पूर्णिमा! वह गुरु की तरफ भी इशारा है उसमें और शिष्य की तरफ भी इशारा है। और स्वभावतः दोनों का मिलन जहां हो, वहीं कोई सार्थकता है।
ध्यान रखना, अगर तुम्हें यह समझ में आ जाए काव्य-प्रतीक, तो तुम आषाढ़
की तरह हो, अंधेरे बादल हो। न मालूम कितनी कामनाओं और वासनाओं का जल तुममें भरा है; और न मालूम कितने जन्मों-जन्मों के संस्कार लेकर तुम चल रहे हो, तुम बोझिल हो। तुम्हें तोड़ना है, तुम्हें चीरना है। तुम्हारे अंधेरे से घिरे हृदय में रोशनी पहुंचानी है। इसलिए पूर्णिमा!
चांद जब पूरा हो जाता है, तब उसकी एक शीतलता है। चांद को ही हमने गुरु
के लिए चुना है। सूरज को चुन सकते थे, ज्यादा मौजूं होता, तथ्यगत होता। क्योंकि चांद के पास अपनी रोशनी नहीं है। इसे थोड़ा समझना।
चांद की सब रोशनी उधार है। सूरज के पास अपनी रोशनी है। चांद पर तो सूरज की रोशनी का प्रतिफलन होता है। जैसे कि तुम दीए को आईने के पास रख दो, तो आईने में से भी रोशनी आने लगती है। वह दीए की रोशनी का प्रतिफलन है, वापस लौटती रोशनी है। चांद तो केवल दर्पण का काम करता है, रोशनी सूरज की है।
हमने गुरु को सूरज ही कहा होता, तो बात ज्यादा तथ्यपूर्ण होती। और सूरज के पास प्रकाश भी महान है, विराट है। चांद के पास कोई बहुत बड़ा प्रकाश थोड़े ही है, बड़ा सीमित है; इस पृथ्वी तक आता है, और कहीं तो जाता नहीं।
पर हमने सोचा है बहुत, सदियों तक, और तब हमने चांद को चुना है दो कारणों से। एक, गुरु के पास भी रोशनी अपनी नहीं है, परमात्मा की है। वह केवल प्रतिफलन है। वह जो दे रहा है, अपना नहीं है; वह केवल निमित्तमात्र है; वह केवल दर्पण है।
तुम परमात्मा की तरफ सीधा नहीं देख पाते, सूरज की तरफ सीधा देखना बहुत मुश्किल है। देखो, तो अड़चन समझ में आ जाएगी। प्रकाश की जगह आंखें अंधकार से भर जाएंगी। परमात्मा की तरफ सीधा देखना असंभव है, आंखें फूट जाएंगी, अंधे हो जाओगे। रोशनी ज्यादा है, बहुत ज्यादा है, तुम सम्हाल न पाओगे, असह्य हो जाएगी। तुम उसमें टूट जाओगे, खंडित हो जाओगे, विकसित न हो पाओगे। इसलिए हमने सूरज की बात छोड़ दी। वह थोड़ा ज्यादा है; शिष्य की सामर्थ्य
के बिल्कुल बाहर है। इसलिए हमने बीच में गुरु को लिया है।
गुरु एक दर्पण है, पकड़ता है सूरज की रोशनी और तुम्हें दे देता है। लेकिन इस देने में रोशनी मधुर हो जाती है। इस देने में रोशनी की त्वरा और तीव्रता समाप्त हो जाती है। दर्पण को पार करने में रोशनी का गुणधर्म बदल जाता है। सूरज इतना प्रखर है; चांद इतना मधुर है!
इसलिए तो कबीर ने कहा है, गुरु गोविंद दोई खड़े, काके लागूं पांय। किसके छुऊं पैर? वह घड़ी आ गई, जब दोनों सामने खड़े हैं।
फिर कबीर ने गुरु के ही पैर छुए, क्योंकि बलिहारी गुरु आपकी, जो गोविंद दियो बताय।
सीधे तो देखना संभव न होता। गुरु दर्पण बन गया। जो असंभवप्राय था, उसे गुरु ने संभव किया है; जो दूर आकाश की रोशनी थी, उसे जमीन पर उतारा है। गुरु माध्यम है। इसलिए हमने चांद को चुना।
गुरु के पास अपना कुछ भी नहीं है। कबीर कहते हैं, मेरा मुझमें कुछ नहीं। गुरु है ही वही जो शून्यवत हो गया है। अगर उसके पास कुछ है, तो वह परमात्मा का जो प्रतिफलन होगा, वह भी विकृत हो जाएगा, वह शुद्ध न होगा। चांद के पास अपनी रोशनी ही नहीं है जिसको वह मिला दे, मिश्रित कर दे।
चांद शून्य है; उसके पास कोई रोशनी नहीं है; लेता है सूरज से, देता है तुम्हें। वह सिर्फ मध्य में है, माधुर्य को जन्मा देता है।
सूरज कहना ज्यादा तथ्यगत होता, लेकिन ज्यादा सार्थक न होता। इसलिए हमने चांद कहा है।

फिर सूरज सदा सूरज है, घटता-बढ़ता नहीं। गुरु भी कल शिष्य था। सदा ऐसा
ही नहीं था। बुद्ध से बुद्ध पुरुष भी कभी उतने ही तमस, अंधकार से भरे थे, जितने तुम भरे हो। सूरज तो सदा एक-सा है।
इसलिए वह प्रतीक जमता नहीं। गुरु भी कभी खोजता था, भटकता था, वैसे ही, उन्हीं रास्तों पर, जहां तुम भटकते हो, जहां तुम खोजते हो। वही भूलें गुरु ने की हैं, जो तुमने की हैं। तभी तो वह तुम्हें सहारा दे पाता है। जिसने भूलें ही न की हों, वह किसी को सहारा नहीं दे सकता। वह भूल को समझ ही नहीं सकता। जो उन्हीं रास्तों से गुजरा हो; उन्हीं अंधकारपूर्ण मार्गों में भटका हो, जहां तुम भटकते हो; उन्हीं गलत द्वारों पर जिसने दस्तक दी हो, जहां तुम देते हो; मधुशालाओं से और वेश्यागृहों से जो गुजरा हो; जिसने जीवन का सब विकृत और विकराल भी देखा हो; जिसने जीवन में शैतान से भी संबंध जोड़े हों--वही तुम्हारे भीतर की असली अवस्था को समझ सकेगा।
नहीं, सूरज तुम्हें न समझ सकेगा; चांद समझ सकेगा। चांद अंधेरे से गुजरा है; पंद्रह दिन, आधा जीवन तो अंधेरे में ही डूबा रहता है। अमावस भी जानी है चांद ने; सदा पूर्णिमा ही नहीं रही है। भयंकर अंधकार भी जाना है; शैतान से भी परिचित हुआ है; सदा से ही परमात्मा को नहीं जाना है। यात्री है चांद। सूरज तो यात्री नहीं है, सूरज तो वैसा का वैसा है। अपूर्णता से पूर्णता की तरफ आया है गुरु चांद की तरह--एकम आई, दूज आई, तीज आई--धीरे-धीरे बढ़ा है एक-एक कदम। और वह घड़ी आई, जब वह पूर्ण हो गया है।
गुरु तुम्हारे ही मार्ग पर है; तुमसे आगे, पर मार्ग वही है। इसलिए तुम्हारी सहायता कर सकता है। परमात्मा तुम्हारी सहायता नहीं कर सकता।
यह तुम्हें थोड़ा कठिन लगेगा सुनना। परमात्मा तुम्हारी सहायता नहीं
कर सकता, क्योंकि वह उस यात्रा में कभी भटका नहीं है, जहां तुम भटक रहे हो।
वह तुम्हें समझ ही न पाएगा। वह तुमसे बहुत दूर है। उसका फासला अनंत है। तुम्हारे और उसके बीच कोई भी सेतु नहीं बन सकते।
गुरु और तुम्हारे बीच सेतु बन सकते हैं। कितना ही अंतर पड़ गया हो पूर्णिमा के चांद में--कहां अमावस की रात, कहां पूर्णिमा की रात--कितना ही अंतर पड़ गया हो, फिर भी एक सेतु है। अमावस की रात भी चांद की ही रात थी, अंधेरे में डूबे चांद की रात थी। चांद तब भी था, चांद अब भी है। रूपांतरण हुए हैं, क्रांतियां हुई हैं; लेकिन एक सिलसिला है।
तो गुरु तुम्हें समझ पाता है। और मैं तुमसे कहता हूं, तुम उसी को गुरु जानना, जो तुम्हारी हर भूल को माफ कर सके। जो माफ न कर सके, समझना, उसने जीवन को ठीक से जीया ही नहीं। अभी वह पूर्ण तो हो गया होगा--जो मुझे संदिग्ध है। जो दूज का चांद ही नहीं बना, वह पूर्णिमा का चांद कैसे बनेगा? धोखा होगा।
इसलिए जो महागुरु हैं, परम गुरु हैं, वे तुम्हारी सारी भूलों को क्षमा करने को सदा तत्पर हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि स्वाभाविक है, मनुष्य-मात्र करेगा। उन्होंने स्वयं की हैं, इसलिए दूसरे को क्या दोष देना! क्या निंदा करनी! उनके मन में करुणा होगी।
तुम गुरु की पहचान इससे करना कि कितनी करुणा है। तुम जब क्रोधित हो जाओ और गुरु अगर तुम्हें नरक भेजने की धमकी देने लगे, तो समझना, करुणा नहीं है। तुम भटक जाओ, तुम मार्ग से उतर जाओ, तुम कामवासना से घिर जाओ, और गुरु तुम्हें माफ न कर सके, तो समझना कि गुरु पूर्णिमा का चांद नहीं है। उसने आवरण बना लिया होगा पूर्णिमा के चांद का। वह नकली चांद है, जैसा कि फिल्म के परदे पर दिखाई देता है। वह असली चांद नहीं है।
चांद तो सारी यात्रा से गुजरा है, सारे अनुभव हैं उसके। मनुष्य-मात्र
के जीवन में जो हो सकता है, वह उसके जीवन में हुआ है। वही गुरु है, जिसने मनुष्यता को उसके अनंत-अनंत रूपों में जी लिया है--शुभ और अशुभ, बुरे और भले, असाधु और साधु के, सुंदर और कुरूप। जिसने नरक भी जाना है, जीवन का स्वर्ग भी जाना है; जिसने दुख भी पहचाने और सुख भी पहचाने; जो सबसे प्रौढ़ हुआ है। और सबकी संचित निधि के बाद जो पूर्ण हुआ है, चांद हुआ है।
इसलिए हम सूरज नहीं कहते गुरु को, चांद कहते हैं। चांद शीतल है। रोशनी
तो उसमें है, लेकिन शीतल है। सूरज में रोशनी है, लेकिन जला दे। सूरज की

रोशनी प्रखर है, छिदती है, तीर की तरह है। चांद की रोशनी फूल की वर्षा की तरह है, छूती भी नहीं और बरस जाती है।
गुरु चांद है, पूर्णिमा का चांद है। और तुम कितनी ही अंधेरी रात होओ
और तुम कितने ही दूर होओ, कोई अंतर नहीं पड़ता, तुम उसी यात्रा-पथ पर हो, जहां गुरु कभी रहा है।
इसलिए बिना गुरु के परमात्मा को खोजना असंभव है। परमात्मा का सीधा साक्षात्कार तुम्हें जला देगा, राख कर देगा। सूरज की तरफ आंखें मत उठाना। पहले चांद से नाता बना लो। पहले चांद से राजी हो जाओ। फिर चांद ही तुम्हें सूरज की तरफ इशारा कर देगा। बलिहारी गुरु आपकी, जो गोविंद दियो बताय।
इसलिए आषाढ़ पूर्णिमा गुरु-पूर्णिमा है। पर ये काव्य के प्रतीक हैं। इन्हें तुम किसी पुराण में मत खोजना। इनके लिए तुम किसी शास्त्र में प्रमाण मत खोजने चले जाना। यह तो जैसा मैंने देखा है, वैसा तुम से कह रहा हूं।

दूसरा प्रश्नः क्या हमारे रोज-रोज प्रश्न करने से किसी दिन संवाद घटित हो सकेगा? और क्या संवाद ही किसी दिन समझ बन जाएगा?

तुम्हारे रोज-रोज प्रश्न पूछने से संवाद नहीं घटेगा; रोज-रोज मैं तुमसे जो कह रहा हूं, उसे सुनने से घटेगा। पूछने से नहीं। पूछे तो तुम जा सकते हो अनंत जन्मों तक; पूछते ही रहे हो; सुना नहीं है। और अक्सर ऐसा होता है कि मन जितना ज्यादा प्रश्नों से भरा होता है, उतना ही सुनने में असमर्थ हो जाता है। तुम्हारे मन में तुम्हारा प्रश्न ही गूंजता रहता है। सुनने के लिए अवकाश नहीं होता, जगह नहीं होती। तुम अपने प्रश्न से इतने भरपूर होते हो कि कहां प्रवेश करे? जो मैं तुमसे कह रहा हूं, वह कहां जाए?
नहीं; पूछते तो तुम रहो जन्मों-जन्मों तक, उससे कुछ न होगा। पूछना तो
एक रोग है; वह कोई स्वास्थ्य की दशा नहीं है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि मत पूछो; क्योंकि रोगी हो, तो पूछना ही पड़ेगा। नहीं पूछने से यह मत समझ लेना कि तुम रोगी न रहे। अस्पताल से भाग जाने से कोई स्वस्थ नहीं हो जाता; और न ही कोई स्वस्थ है इस कारण, क्योंकि वह किसी डाक्टर से कभी अपनी बीमारी के संबंध में नहीं पूछता।
नहीं, पूछना तो तुम्हें होगा। तुम रुग्ण हो। रोग में प्रश्न उठते हैं। तुम्हारी स्थिति करीब-करीब विक्षिप्त की है। मन में गूंजती ही रहती हैं बातें; जागते-सोते तुम्हारे रोग तुम्हारा पीछा करते रहते हैं। सपने भी तुम वे ही देखते हो जो तुम्हारे रोग से पैदा होते हैं। दिन और रात, चौबीस घंटे, अहर्निश तुम्हारी रोग की धारा बहती रहती है।
पूछना तो पड़ेगा। पूछने से घबड़ाना मत। लेकिन पूछना अकेला काफी नहीं है। पूछकर चुप होना, ताकि सुन भी सको। पूछा इसीलिए था, ताकि सुन सको। पूछा इसीलिए था, ताकि राह बन सके संवाद के लिए। अगर तुम सुन सको, तो संवाद घटित होगा। मेरी तरफ से तो सदा घट रहा है, तुम्हारी तरफ से घटने की बात है।
मैं तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर दिए जाता हूं, सिर्फ इसी आशा में, कि तुम धीरे-धीरे सुनना सीख जाओगे। मगर इससे विपरीत भी हो सकता है। तुममें से कई असाध्य रोगी हैं। वे जितना पूछते हैं, उतनी ही उनकी पूछ बढ़ती चली जाती है। उनको एक प्रश्न का उत्तर दो, वे उस उत्तर में से दस प्रश्न लेकर दूसरे दिन हाजिर हो जाते हैं।
ऐसा लगता है, जैसे पूछना ही उनका व्यवसाय है; जैसे पूछने के लिए पूछ रहे हैं; जैसे नहीं पूछेंगे, तो कोई बड़ी हानि होगी! सुनने की चिंता नहीं मालूम पड़ती। क्योंकि अगर तुम मेरे एक भी प्रश्न का उत्तर सुन लो, तो तुम्हारे सब प्रश्नों का उत्तर मिल जाए। क्योंकि सुनने के क्षण में जो शांति तुम पर घटित होगी, वही उत्तर है।
मैं जो दे रहा हूं, वह थोड़े ही उत्तर है; वह तो बहाना है तुम्हें चुप करने का, तुम्हें मौन हो जाने का। अगर तुम सुनने के लिए भी मौन हो गए; कि मैं क्या कह रहा हूं, इसे सुनने के लिए तुम मौन हो गए; तो उस मौन में जो शांति घटित होगी, जो मधुर स्वर भीतर बजने लगेगा, जो वीणा छिड़ जाएगी, वही उत्तर है।

मैं उत्तर नहीं दे रहा हूं, उत्तर तो तुम्हारे भीतर छिपा है। मैं सिर्फ तुम्हें थोड़ा-सा चुप करना सिखा रहा हूं, ताकि तुम्हें अपना उत्तर सुनाई पड़ जाए।
प्रश्न तुम्हारा है, तो उत्तर मेरा कैसे हो सकता है? जिसका प्रश्न है उसको अपना उत्तर खोजना पड़ेगा। जहां से प्रश्न आया है, वहीं उत्तर खोजना पड़ेगा। जिस गहराई से प्रश्न उठा है, उसी गहराई में उत्तर खोजना पड़ेगा।
जहां से दर्द उठा है, दवा वहीं खोजनी पड़ेगी।
फिर मैं क्या कर रहा हूं? तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर दिए जाता हूं।
वे उत्तर नहीं हैं; वे केवल उत्तरों के नाम पर तुम्हारे हाथों को दिए गए खिलौने हैं। तुम शायद उन खिलौनों में थोड़ी देर उलझ जाओ और चुप हो जाओ।
शायद मुझे सुनते-सुनते ध्यान लग जाए।
वैसा घटता है। जो प्रथम कोटि के व्यक्ति हैं, जिनके लिए इशारे काफी होते हैं, उनको वैसे घट जाता है। वे सुनते-सुनते ही ध्यानमग्न हो जाते हैं। वे भूल ही जाते हैं कि मैं क्या कह रहा हूं। उन्हें तो दिखाई पड़ने लगता है कि मैं क्या हूं। वे भूल ही जाते हैं मेरे शब्दों को; शब्द के पीछे जो मौजूद है, उसकी उन्हें प्रतीति होने लगती है। मेरे पास, बात को सुनते- सुनते बात तो गौण हो जाती है, सत्संग शुरू हो जाता है। बात तो भूल ही जाती है। वह तो बहाना था। उसके बिना शायद तुम चुप न बैठ सकते, तुम्हें चुप बैठना कठिन होता।
तुम्हारे मन को थोड़े खिलौने दे रहा हूं, ताकि मन वहां उलझ जाए और तुम्हारी चेतना शांत हो जाए। जैसे छोटे बच्चों को हम करते हैं। ऊधम कर रहे हैं, शोरगुल मचा रहे हैं, उन्हें खिलौना दे दिया। थोड़ी देर को कोने में बैठकर वे खिलौने में लीन हो जाते हैं, घर को थोड़ी राहत मिलती है।
मैं जो कह रहा हूं, वे अगर उत्तर होते, तब तो तुम उन्हें कंठस्थ कर लेते, बात समाप्त हो जाती। लेकिन वे उत्तर नहीं हैं। उत्तर कभी किसी ने दिए ही नहीं हैं। बुद्ध पुरुष तो केवल तुम्हारे प्रश्न मिटाते हैं, उत्तर देते नहीं; तुम्हारे प्रश्नों को साफ करते हैं, ताकि मन खाली हो जाए। प्रश्न तो तुम्हारे भीतर हैं; अब अगर तुम मेरे उत्तरों को भी सम्हालकर रख लिए, तो भीड़ और बढ़ जाएगी। वैसे ही काफी तुम परेशान थे, प्रश्नों से परेशान थे; अब तुम उत्तरों से परेशान हो जाओगे। परेशानी तुम्हारी जारी रहेगी।
नहीं, सुनो... । और जब मैं कहता हूं सुनो, तो मेरा अर्थ है, परिपूर्णता
से सुनो। तुम्हारे कान ही न सुनें, तुम्हारे शरीर का रोआं-रोआं सुने। तुम्हारा मन ही न समझे, तुम्हारा हृदय, तुम्हारी हड्डी-मांस-मज्जा भी समझे। तुम अपनी पूर्णता में सुनो। सुनने में तुम ऐसे लीन हो जाओ कि तुम बचो ही न, सुनना ही रह जाए।
ऐसी घड़ी आती है। और जब ऐसी घड़ी आती है, सब प्रश्न हल हो जाते हैं। इस घड़ी को हमने सत्संग कहा है। सत्संग का मतलब है, ऐसे किसी व्यक्ति के पास होना, जिसके जीवन में ऐसी घड़ी घट गई है। उसके पास होकर ही किसी दिन तुम्हारे जीवन में भी घड़ी घट सकती है।
लेकिन पास होने का मतलब है, बीच में दीवालें खड़ी मत करना। तुम्हारे प्रश्न भी दीवाल हो सकते हैं। तुम्हारी जानकारी दीवाल हो सकती है। तुम्हारे शब्द दीवाल हो सकते हैं। उनको हटाओ।

तीसरा प्रश्नः आपने कहा कि कृष्ण एक समन्वय हैं संसार और संन्यास के बीच। और आपने कहा कि आपका संन्यास भी कृष्ण के संन्यास जैसा है। परंतु मुझे आश्चर्य होता है कि बुद्ध, महावीर और शंकराचार्य जैसे ज्ञानियों ने हजारों लोगों को संन्यास में दीक्षित किया और उन्हें भोजन आदि आवश्यकताओं के लिए समाज पर ही निर्भर रहने का आदेश दिया। यदि संन्यासी का समाज पर निर्भर रहना आपकी दृष्टि में गलत है, तो उपरोक्त परम ज्ञानियों ने क्या समझकर अपने संन्यासियों को अर्थोत्पादन की मनाही की?

बहुत-सी बातें समझनी पड़ें।

पहली बात, दिन और थे, समय और था। महावीर और बुद्ध के समय में एक घर में बीस लोग होते; एक आदमी कमाता, बाकी उन्नीस खाली बैठे रहते। उतना काफी था। लोगों की जरूरतें कम थीं और पृथ्वी की संपदा बहुत थी। लोगों की आकांक्षाएं जरूरतों पर सीमित थीं। बहुत आकाश के फूल तोड़ लाने के लिए कोई पागल नहीं था। पेट भर भोजन मिल जाए, तन ढंकने को वस्त्र मिल जाएं, विश्राम के लिए छप्पर मिल जाए, बस काफी था। हर व्यक्ति सिकंदर होने के लिए पागल नहीं था; कुछ थोड़े लोग पागल थे, पर उनकी संख्या बहुत थोड़ी थी। उन दिनों धर्म जीवन में व्यापक था; राजनीति बड़ी छोटी-सी बात थी। धर्म विराट था; राजनीति सिर्फ एक कोना-कातर थी।
अब हालत बिल्कुल उलटी है। अब राजनीति सब कुछ है; धर्म कोने-कातर में
भी जी नहीं पा रहा है, वहां भी उसकी जान निकली जा रही है, वहां भी बच नहीं सकेगा। महत्वाकांक्षा प्रबल हुई है। अब कोई एक-दो सिकंदर नहीं होते; अब सभी सिकंदर हैं।
और संख्या बढ़ी, और पृथ्वी बोझिल होती गई, और पृथ्वी की संपदा कम हो गई।
और हर आदमी पागल है असंभव वासनाओं के पीछे, जिनके मिलने से भी कुछ न होगा; न मिलीं, तो जिंदगी ऐसे गई; मिल गईं, तो भी जिंदगी ऐसे गई।
तो उन दिनों, जब एक घर में बीस आदमी होते और एक आदमी काम कर लेता और बाकी आराम से जीते, कोई अड़चन न थी कि बुद्ध ने, महावीर ने अपने संन्यासियों को अर्थोपार्जन के लिए नहीं कहा। जरूरत ही न थी; समाज करने भी न देता। यह बिल्कुल सुखद था कि गांव में दो-चार-पांच लोग संन्यस्त हो जाएं। वह घर अपने को धन्यभागी मानता था जिससे एकाध व्यक्ति संन्यस्त हो जाए। वह घर अपने को दीन मानता था जिसमें कोई संन्यासी पैदा न हो, जिसमें सभी संसारी हों।
पहली बात, जरूरत न थी।
दूसरी बात, लोग तामसी न थे; लोग बड़े सात्विक थे। संन्यास की तरफ वही जाता था, जिसके जीवन में संन्यास की संभावना आई। तामसी व्यक्ति संन्यास की तरफ जाता ही नहीं था। तामसी को संन्यास का ख्याल ही नहीं उठता था। संन्यास तो परम शिखर था जीवन का। सब कुछ जानकर, सब कुछ जीकर, सब कुछ अनुभव करके लोग संन्यास की यात्रा पर जाते थे।
अब हालत बिल्कुल उलटी है। अब तो जो अकर्मण्य हैं, जो कुछ नहीं कर सकते हैं, आलसी हैं, प्रमादी हैं, वे संन्यास में उत्सुक हो जाते हैं। क्योंकि वे फिर संन्यास लेकर समाज की छाती पर बैठ सकते हैं दावेदार की तरह, कि तुम्हें भोजन खिलाना पड़ेगा।
संन्यासी अब बोझ हैं; तब बोझ न थे। तब संन्यासी जीवन को हलका करता था, निर्भार करता था; अब भारी कर देता है। अब गलत तरह का आदमी संन्यास में उत्सुक होता है। सही तरह का आदमी तो हजार बार सोचता है, इस दिशा में जाना या नहीं! गलत तरह का आदमी हमेशा तत्पर होता है।
तो तुम अजीब किस्म के संन्यासी सारे मुल्क में देखोगे। कभी कुंभ मेला चले जाओ, तो तुम्हें दिखाई पड़ जाएंगे। ये संन्यासी हैं जिनकी महावीर, बुद्ध और शंकराचार्य ने आकांक्षा की थी? उनमें तुम सब तरह के लंपट, बिल्कुल तृतीय श्रेणी के व्यक्ति पाओगे, जिन्होंने अकर्मण्यता को अकर्म समझ लिया है।
अकर्म तो बड़ी अनूठी घटना है, कभी-कभी घटती है, सदियों में एकाध बार घटती है, कि करते हुए कोई व्यक्ति नहीं करता। ऐसा हो जाता है, जैसे कमल पानी में होते हुए पानी नहीं छूता। लेकिन अकर्मण्यता तो बड़ी सरल बात है। कोई भी खाली बैठना चाहता है। और अगर खाली बैठने से समाज आदर देता हो, तब तो कहना ही क्या!
सारी दुनिया में जो लोग जेलखानों में बंद होते, वे हिंदुस्तान में संन्यासी हैं। तुम जेल के अपराधियों में भी इनसे बेहतर लोग पा लोगे। मगर इनमें तुम बहुत बेहतर लोग न पाओगे; दुष्ट, आलसी, अत्यंत विकृत चित्त-दशाओं से भरे हुए लोग। अगर महावीर, बुद्ध और शंकराचार्य वापस लौट आएं, तो छाती पीटकर रोएंगे कि यह हमने क्या किया!
मगर यह होना स्वाभाविक है। इसके पीछे एक गणित है, एक अर्थशास्त्र है। उसे तुम समझ लो।

महावीर और बुद्ध ने संन्यास की जो महिमा गाई, संन्यास का सिक्का पैदा हुआ। जब भी असली सिक्का पैदा होगा, थोड़े दिन में नकली सिक्का भी अंदर आ जाएगा बाजार में। यह सीधा अर्थशास्त्र है। क्योंकि असली सिक्का इतना कीमती सिद्ध हुआ और उसको इतना सम्मान मिला, सम्राट उसके चरणों में झुके! असली सिक्के का सम्मान देखकर, न मालूम कितने अहंकारी, तामसी, व्यर्थ के लोगों को भी लगा कि यह तो बड़ा अच्छा धंधा है; इससे अच्छा कोई धंधा नहीं है। वे भी दौड़ आए मैदान में।
और तुम्हें पता हो, अर्थशास्त्र का छोटा-सा नियम है, कि जब भी नकली सिक्के बाजार में आ जाते हैं, तो असली सिक्कों का चलन बंद हो जाता है; नकली चलते हैं। तुम्हारी भी जेब में अगर एक नकली सिक्का पड़ा हो और एक असली, तो तुम पहले नकली को चलाने की कोशिश करते हो। सभी नकली को चलाने की कोशिश करते हैं! असली तिजोरियों में बंद हो जाते हैं, नकली बाजार में चलने लगते हैं।
वही हुआ। असली डरने लगे संन्यास लेने से। असली संन्यास में जाने से भयभीत हो गए। क्योंकि जो ढंग दिखाई पड़ा संन्यासियों का, वह तो बड़ा ही बेहूदा था, अशोभन था। वहां संन्यास तो कुछ भी न था; वहां तो अपाहिज, लंगड़े- लूले, अंधे, कोढ़ी, जिनकी जीवन में कोई जरूरत न थी, जिनका जीवन में कोई उपयोग न था, तिरस्कृत, वे सब इकट्ठे हो गए। संन्यास क्या हुआ, शंकरजी की बरात हो गई!
स्वभावतः, असली सिक्का हट गया। असली सिक्के ने कहा, छिप जाओ; इस भीड़ में तो जाना ठीक नहीं है। नकली चलता गया, असली हटता गया।
यह होना था। यह सदा होता है। जब भी कोई अच्छी चीज चलती है, तो जल्दी ही बुरी चीज भी बाजार में आ जाती है। स्वाभाविक है। क्योंकि बेईमान हैं, चोर हैं, शैतान हैं, वे इसी राह में होते हैं; वे थोड़े दिन का फायदा उठा लेते हैं।
बाजार में कोई भी एक चीज अच्छी चल रही हो, कोई दवा अच्छी चल रही हो, तुम तत्क्षण पाओगे कि झूठी दवाएं उसी नाम की बाजार में आ गईं। उन पर लेबिल वही होगा; भीतर पानी होगा। पानी भी संदिग्ध है कि शुद्ध हो; वह भी पता नहीं कहां से भर लिया गया होगा!
यही संन्यास के संबंध में हुआ। संसार में सभी चीजों के संबंध में यही होता है।
इसलिए मैं अब संन्यास को एक दूसरा आयाम देना चाहता हूं। महावीर वापस लौटें, वे मुझसे राजी होंगे। महावीर के संन्यासी राजी नहीं होंगे; वे तो महावीर से भी राजी नहीं होंगे, मुझसे कैसे राजी होंगे! महावीर, शंकराचार्य मुझसे राजी होंगे। इसमें कोई संदेह का सवाल ही नहीं है। क्योंकि वे देखेंगे, चीज तो साफ है।
अब हमें ऐसे संन्यास को पैदा करना होगा, जो संसार पर बोझरूप न हो। उसमें तामसी आदमी उत्सुक ही न होगा। क्योंकि दुकान भी करनी पड़े, बाजार भी जाना पड़े, और गेरुआ पहनकर गाली भी खानी पड़े और लोग हंसें भी।
तामसी यह झंझट न करेगा; वह कहेगा, यह उपद्रव किसको लेना! संन्यासी हो गए; बैठेंगे; तुम पैर छुओ; भोजन लाओ, भोग लगाओ। मगर यह क्या; फायदा ही क्या इस संन्यास का कि हम जाएं, सब्जी खरीदें; नोन, तेल, लकड़ी का हिसाब रखें; और उलटे इस कपड़े की वजह से झंझटें आती हैं!
अभी एक संन्यासी ने आकर कहा कि बड़ी मुश्किल हो गई है। आदत है पुरानी धूम्रपान करने की। अब इस गेरुआ वस्त्र में कहीं भी करो, तो लोग ऐसा चौंककर देखते हैं, जैसे हम कोई अपराध कर रहे हैं!
एक संन्यासी ने मुझे कहा कि सिनेमा देखने की आदत है! एक दिन क्यू में खड़े थे, लोग ऐसे गौर से देखने लगे कि जैसे मैं कोई पाप कर रहा हूं! मैं भी भागा वहां से कि इस गेरुआ को पहने हुए क्यू में सिनेमा के हाल के बाहर खड़े होना ठीक नहीं है।
तो मेरा संन्यास तो तुम्हें अड़चन देगा; तामसी को तो उत्सुक कर नहीं सकता; जो बहुत सात्विक हैं, केवल वे ही उत्सुक हो सकते हैं। क्योंकि उससे तुम्हें कुछ लाभ तो हो ही नहीं रहा; हानि हो सकती है।

लोभी भी उत्सुक नहीं हो सकते, क्योंकि इसमें हानि होगी, लाभ नहीं हो सकता। तुम जिस ग्राहक से दो पैसे ज्यादा ले लेते हो, उससे दो पैसे कम ले पाओगे। तुम्हारा होने का ढंग करुणा का होने लगेगा, ध्यान का होने लगेगा, प्रेम का होने लगेगा। तुम चोरी आसानी से न कर पाओगे। बेईमानी करोगे भी, तो पीड़ा ज्यादा होगी; कांटा गड़ेगा कि यह तुम क्या कर रहे हो! अंतःकरण का जन्म होगा। तुम्हारे भीतर की आवाज धीरे-धीरे प्रखर और प्रगाढ़ होगी, जो तुम्हें खींचेगी और रोकेगी और लगाम बनेगी।
तो इस संन्यास में तामसी को तो कोई रस हो ही नहीं सकता। इस संन्यास में लोभी को कोई रस हो नहीं सकता। क्योंकि मैं तुम्हारे जीवन की बाहर की व्यवस्था को तो बदलने को कह ही नहीं रहा हूं; मैं कह रहा हूं, तुम्हीं बदल जाओ।
इससे तुम्हें अड़चनें ही होंगी। इससे तुम समाज में पाओगे कि तुम बेमौजूं हो गए। इसमें तो जिनके पास साहस है, और जिनके पास इतना साहस है कि लोग हंसें और वे उस हंसने को सह सकें शांति से, संतुलन से, सौजन्य से; जो अपने पर भी हंसने में समर्थ हैं, अब वे ही केवल मेरे संन्यास में सम्मिलित हो सकते हैं।
लोग मुझसे कहते हैं कि अब आप कहते हो तो हम लिए लेते हैं, मगर मजाक हो जाएगी।
ऐसा हुआ। बंबई के एक युवक ने संन्यास लिया। पांच-सात दिन बाद वह आया
और उसने कहा कि आप मेरी पत्नी को संन्यास दे दें; बड़ी झंझट हो गई!
क्या हुआ?
उसने कहा कि पत्नी के साथ कहीं जाता हूं, लोग ऐसा देखते हैं कि... ! अब
एक आदमी पूछने लगा, किसकी औरत लेकर कहां जा रहे हो? अपनी ही औरत, लेकिन इन कपड़ों की वजह से मैं जवाब भी न दे पाया कि अब क्या करूं! संन्यासी की कहीं औरत होती है?
खैर, पत्नी को संन्यास दे दिया। एक सप्ताह बाद वह अपने छोटे लड़के को लेकर आया कि इसको भी दे दें।
क्या हुआ?
हम ट्रेन में बैठे थे; दो आदमी कहने लगे कि मालूम होता है कि ये इस लड़के को भगाकर ले जा रहे हैं, छोटे बच्चे को।
अब पूरा परिवार संन्यासी है!
युग बदलता है, जीवन की धाराएं बदलती हैं, धर्म की भी धाराएं बदलनी ही चाहिए। जो कभी सच था, वह सदा सच नहीं होता। जो आज सच है, वह शायद कल सच न रह जाए। लेकिन कल की क्या चिंता करनी? आज! तुम आज हो, आज तुम्हें जीना है, उसकी फिक्र कर लेनी चाहिए।
महावीर, बुद्ध और शंकर ने तो जो कहा, सोचकर ही कहा था, अपने युग के लिए कहा था। उन्होंने कोई ठेका सभी युगों का नहीं ले लिया है। मैं जो कह रहा हूं, तुमसे कह रहा हूं; कोई सारे युगों के लिए ठेका नहीं ले रहा हूं, कि हजार साल बाद तुम कहो कि यह फलां आदमी ने ऐसा कहा था।
यह हो सकता है कि मेरी बात फैलती जाए, वह इतनी फैल जाए कि संन्यासी ज्यादा हो जाएं और गृहस्थ कम रह जाएं, तो गड़बड़ खड़ी हो जाएगी। तो हजार साल बाद, दो हजार साल बाद किसी को कहना पड़ेगा, बंद करो यह सब! छोड़ो घर-द्वार! असली संन्यासी वही जो हिमालय जाता है। कहना पड़ेगा। क्योंकि अगर संन्यास इतना बढ़ जाए, तो उसका अर्थ खो जाएगा।
अगर संन्यासी की संख्या ज्यादा हो जाए और गृहस्थ की कम हो जाए, तो फिर संन्यासी फिक्र न करेगा, वह चोरी भी करेगा, बेईमानी भी करेगा। धीरे-धीरे गेरुआ वस्त्र स्वीकृत हो जाएंगे; फिर उनसे कोई दंश पैदा न होगा, कोई पीड़ा पैदा न होगी, कोई अंतःकरण न जगेगा। तो फिर किसी न किसी को उठकर कहना ही होगा कि अब जब यह सब ही कर रहे हो, तो यह गेरुआ तो कृपा करके छोड़ो, इसको क्यों खराब कर रहे हो?
जीवन एक वर्तुल है; वह रोज बदलता जाता है। और जो उसके साथ नहीं बदलते,
वे पिस जाते हैं।
न तो तुम अतीत की फिक्र करो, न तुम भविष्य की; तुम इस क्षण की फिक्र करो, जो मेरे और तुम्हारे बीच अभी मौजूद है। इसका तुम उपयोग कर लो।

चौथा प्रश्नः कृष्ण के पास तो एक अर्जुन था, इसलिए गीता का अंत आ गया।
आप तो रोज-रोज नए-नए अर्जुन जन्मा रहे हैं, आपकी गीता का अंत कैसे हो पाएगा?

होना भी नहीं चाहिए।
और कृष्ण की गीता का भी अंत अर्जुन के लिए हो गया हो, किसी और के लिए नहीं हुआ है। तुम्हारे लिए कृष्ण की गीता का अंत हुआ? वह तो तभी होगा, जब तुम भी उस जगह पहुंच जाओ, जहां अर्जुन पहुंच गया था, और उसने कहा कि हे महाबाहो, तुमने मुझे निःसंशय कर दिया; मेरे सारे भ्रम क्षीण हो गए; मुझे सत्य-दृष्टि उपलब्ध हुई।
अठारहवां अध्याय अर्जुन के लिए आ गया, तुम्हारे लिए थोड़े ही। तुम्हें
तो अभी काफी यात्रा करनी पड़ेगी, तब अठारहवां अध्याय आएगा। क्योंकि वह तो अंतर्यात्रा है।
और निश्चित ही, गीता का कभी क्या अंत होता है? गाने वाले बदल जाते हैं; गीत का कोई अंत नहीं है। जिसे कृष्ण ने गाया, उसे ही मैं गा रहा हूं, उसे कोई और गाएगा। सुनने वाले बदल जाते हैं, गाने वाले बदल जाते हैं; गीता तो चलती जाती है। क्योंकि गीत शाश्वत का है। अगर यह कृष्ण का ही गीत होता, तो इसका अंत आ जाता। यह तो अस्तित्व का गीत है, इसलिए तो हम इसे श्रीमद्भगवद्गीता कहते हैं; इसे हम भगवान का गीत कहते हैं, कृष्ण का नहीं। कृष्ण तो एक रूप हैं, अर्जुन भी एक रूप है। इन दो रूपों से वही बोला है, उसी ने सुना है। ऐसे रूप बदलते रहेंगे। सुनने वाले बदल जाएंगे, गाने वाले बदल जाएंगे; लेकिन अस्तित्व तो दोनों के भीतर एक है। गीत जारी रहता है। गीत सनातन है।

अब सूत्रः
और हे अर्जुन, नियत कर्म का त्याग करना योग्य नहीं है, इसलिए मोह से उसका त्याग करना तामस त्याग कहा गया है।
नियत कर्म कहते हैं उस कर्म को, जो शास्त्रों ने नियत किया है। शास्त्र हैं उन व्यक्तियों की वाणियां, जिन्होंने जाना है। जिन्होंने जाना है, उन्हें हम शास्ता कहते हैं; जो उन्होंने कहा है जानकर, उसे हम शास्त्र कहते हैं; जो उसे मानकर चले, उसे हम अनुशासन कहते हैं।
शास्त्र है अतीत में जाने हुए व्यक्तियों की वाणियां। उनमें बड़ा सार है। अगर आंख हो देखने की, तब तो शास्त्र में बड़ा सार है, सब छिपा है। और अगर आंख न हो देखने की, तो शास्त्र एक बोझ बन जाएगा। तब तुम गीता को ढोते रहो सिर पर।
मैंने तुमसे पीछे कहा कि शापेनहार ने जब पहली दफा गीता पढ़ी, जर्मन विचारक ने, तो गीता को सिर पर रखकर नाचने जगा। तुम कभी नाचे हो गीता को सिर पर रखकर?
नहीं; गीता से तुम्हारे पैरों में घूंघर नहीं बंधते, नाच नहीं आता। गीता से तुम्हारे हृदय में कोई गीत थोड़े ही गूंजता है। गीता तो एक बोझ है, जिसे तुम किसी तरह निभाए जाते हो; एक भार है, एक कर्तव्य है, प्रेम थोड़े ही है।
शापेनहार नाचा। उसने गीता पढ़ी। उसने गीता के शब्द के पार देखा, निःशब्द में झांका, बादल हट गए, खुला आकाश आ गया! शब्द को पार किया, शून्य में प्रतीति हुई! तो गीता फिर जीवंत हो गई।
शब्द की खोल को हटाओ, तुम सदा जीवित को छिपा पाओगे।
कृष्ण कहते हैं, शास्त्र ने जो नियत किया है, उसे छोड़ने की कोई जरूरत नहीं है।
उसे छोड़ने का मन करेगा, क्योंकि वह तामसी मन है। वह कुछ करना नहीं चाहता; वह हर कर्तव्य से बचना चाहता है।
कृष्णमूर्ति को सुनने वाले बहुत लोग हैं। उनमें से कोई कभी मेरे पास
आ जाता है, तो वह कहता है, आप गीता पर बोल रहे हैं! और कृष्णमूर्ति तो कहते

हैं कि सब शास्त्र बेकार हैं। मैं उनसे कहता हूं, सभी शास्त्रों ने यही कहा है। शास्त्रों का सार ही यही है कि सब शास्त्र बेकार हैं। मैं उनसे कहता हूं, तुम कृष्णमूर्ति को उद्धृत कर रहे हो, यह शास्त्र हो गया। कृष्ण को उद्धृत करो कि कृष्णमूर्ति को, इससे क्या फर्क पड़ता है? कृष्ण ने अर्जुन से कहा था, कृष्णमूर्ति ने तुमसे कहा है। तुम आकर मुझे बता रहे हो, तुम शास्त्र बता रहे हो।
फिर, तुमने शास्त्र पकड़ा था कभी? अगर पकड़ा ही न था, तो तुम छोड़ोगे कैसे?
कृष्णमूर्ति कहते हैं, शास्त्र छोड़ दो। वे बिल्कुल ठीक कहते हैं, अपने अनुभव से कहते हैं। उनको बचपन में एनी बीसेंट और लीडबीटर ने खूब शास्त्र पकड़ाया। वह इतना ज्यादा पकड़ा दिया कि वे अभी तक छोड़े चले जा रहे हैं!
थोड़ा ज्यादा हो गया। वह अति भोजन हो गया। उससे वमन हुआ। वह अतिशय हो गया। हुआ अतिशय करुणा के कारण ही, क्योंकि एनी बीसेंट और लीडबीटर की इच्छा थी कि कृष्णमूर्ति एक जगतगुरु की तरह प्रकट हों। बुद्ध ने जिस मैत्रेय की बात कही है कि आने वाले युगों में मैत्रेय-बुद्ध पैदा होगा, तो एनी बीसेंट और लीडबीटर ने चेष्टा की कि यह कृष्णमूर्ति वह मैत्रेय बन जाएं।
तो बड़ी कठिन चेष्टा थी, क्योंकि कोई किसी को मैत्रेय बना सकता है? और उन्होंने बड़ा उपाय किया। उन्होंने इतना पढ़ाया, इतना सिखाया, इतना ध्यान करवाया कि कृष्णमूर्ति उससे घबड़ा गए, जैसे सभी छोटे बच्चे घबड़ा जाते हैं। क्योंकि छोटी उम्र थी, नौ वर्ष की उम्र थी, तब यह उपद्रव शुरू हुआ। नियम से उठाया, नियम से बिठाया, सोना नियम से, खाना नियम से, सब चीज, एक-एक चीज का ख्याल रखा कि कोई भूल-चूक न हो जाए इस व्यक्ति के बुद्धत्व में।
और हुई भी नहीं; यह आदमी बुद्ध हो ही गया। लेकिन एक खरोंच छूट गई, जो बुद्ध के ऊपर नहीं थी, जो कृष्णमूर्ति पर है। क्योंकि बुद्ध पर किसी ने जबरदस्ती चेष्टा नहीं की थी; सहज लंबी यात्रा में घटनाएं घटी थीं। जो वर्षों में घटना चाहिए, वह एनी बीसेंट और लीडबीटर ने दिनों में घटाने की कोशिश की; जो जन्मों में घटता है, उसे वर्षों में सिकोड़ने की कोशिश की। उसका फायदा तो हुआ। कृष्णमूर्ति जो भी हैं आज, वह उसी बीज का वृक्ष है। लेकिन नुकसान भी हुआ। नुकसान यह हुआ कि जैसा सभी छोटे बच्चों को हो जाता है। उनसे कहो, मत करो यह, तो छोटे बच्चे के अहंकार में भाव उठता है कि करके दिखा दूं। उसके अहंकार को चोट लगती है। उसे पीड़ा होती है कि मुझे सब दबाए जा रहे हैं, तो वह मौका-बेमौका देखकर विरोध करता है।
अहंकार तो चला गया कृष्णमूर्ति का, वे जाग्रत पुरुष हो गए; लेकिन मन
पर जो संस्कार पड़े रह गए--वह ऐसे ही जैसे कि किसी ने छुरी से हाथ पर निशाना मार दिया, तो तुम बुद्ध भी हो जाओ, तब भी वह निशान तुम्हारे हाथ पर बना रहेगा--ऐसे मन पर निशान छूट गए। वे तो बुद्ध हो गए, लेकिन मन का यंत्र खरोंचपूर्ण हो गया। जो-जो बातें उनसे जबरदस्ती करवाई गई थीं, उन्हीं- उन्हीं के विरोध में वे चालीस साल से बोल रहे हैं। वह खरोंच जाती नहीं। वह जाएगी भी नहीं। वह खरोंच यह है कि ध्यान से कुछ भी न होगा। जरूर इस बच्चे को चार बजे, तीन बजे उठवाकर ध्यान करवाया है!
मेरे दादा थे, वे मुझे तीन बजे रात उठा लेते। उन्होंने मेरी जिंदगीभर
से तीन बजे रात का जो मजा है, वह खराब कर दिया। मैं छोटा, उठने का मन नहीं, उसी वक्त नींद गहरी आ रही है, और वे खींच रहे हैं। और वे उठा लेंगे, और ठंडे पानी से स्नान, और चार बजे वे घूमने ले जाएंगे! अभी मेरी आंखें झप रही हैं, हाथ-पैर हिल नहीं रहे, और वे भागे जा रहे हैं। और वे तेजी से चलते थे।
वे जिस दिन मरे, उस दिन मुझे उनके मरने से दुख नहीं हुआ। उस दिन मैंने कहा, हे भगवान! अब तीन बजे न उठना पड़ेगा। बाद में मुझे पछतावा भी हुआ कि यह भी क्या बात हुई! वे मुझे इतना प्रेम करते थे; वे तो मर गए और मुझे कुल इतना ही ख्याल आया कि अब तीन बजे न उठना पड़ेगा, अब सो सकते हैं!
कृष्णमूर्ति का पीछा नहीं छूटा। ध्यान से कुछ भी न होगा! ज्यादा करवा दिया ध्यान; अपच हुआ। शास्त्र से कुछ भी न होगा! शास्त्र बोझ बन गए। गुरु कहीं नहीं ले जा सकता! गुरु ने अतिशय धक्के दिए। वह खरोंच छूट गई।
कृष्ण कहते हैं, नियत कर्म... ।

शास्त्र ने जो कहा है, वह तो पूरा करो ही, क्योंकि वह जानने वालों ने कहा है। और अगर जानने वालों और तुम्हारी बुद्धि के बीच चुनाव करना हो, तो जानने वालों का ही चुनाव करना; तुम्हारी बुद्धि का क्या तुम भरोसा करते हो? हां, जब तुम बुद्ध पुरुष हो जाओ, तब तुम अपनी बुद्धि का भरोसा कर लेना। पर अभी!
और जो बुद्ध पुरुष हैं, उनका ढंग और ही है। वह हम समझने की कोशिश करेंगे।
तो कृष्णमूर्ति के पास, जो तामसी हैं, आलसी हैं, अहंकारी हैं, वे इकट्ठे हो गए हैं। क्योंकि वहां उन्हें एक रेशनलाइजेशन, एक तर्कयुक्त व्यवस्था मिल गई, कि न ध्यान करने से कोई सार है... । ध्यान उन्होंने कभी किया नहीं था। बिना ध्यान किए, ध्यान करने से कोई सार नहीं है, इससे एक छुटकारा मिल गया कि ध्यान की झंझट से मुक्त हुए। गुरु से कुछ होगा नहीं; इसलिए अब किसी के चरणों में झुकने की जरूरत न रही। झुकना वे चाहते न थे, झुकने में पीड़ा थी; अब एक तर्कयुक्त कारण भी मिल गया। शास्त्र को मानने से कुछ भी न होगा। मानना वे चाहते भी न थे, क्योंकि शास्त्र को मानोगे, तो जीवन में एक अनुशासन लाना होगा, तब जीवन में एक अराजकता नहीं चल सकती, स्वच्छंदता नहीं चल सकती। और बड़ी हैरानी की बात तो यह है कि जितना अराजक जीवन होगा, उतना परतंत्र होता है; और जितना अनुशासित जीवन होता है, उतना स्वतंत्र होता है।
तो इस तरह के गलत लोग कृष्णमूर्ति के पास इकट्ठे हो गए। और उन सबको अपनी गलत बातों के लिए सही आधार मिल गए।
कृष्णमूर्ति बहुत विचारने जैसी घटना हैं आध्यात्मिक जगत में, क्योंकि इस भांति पहले कभी किसी को जबरदस्ती बुद्धत्व की तरफ नहीं धकाया गया था। थियोसाफी ने एक अनूठा प्रयोग किया। उसका लाभ भी हुआ, उसका दुष्परिणाम भी हुआ।
व्यक्ति को जाने देना चाहिए चुपचाप अपनी ही यात्रा से, अपने ही कदमों से, अपने ही ढंग से; धकाना ठीक नहीं है। कृष्णमूर्ति के प्रयोग ने बता दिया कि अब किसी को बुद्धत्व की तरफ कभी भूलकर मत धकाना। अन्यथा वह बुद्धत्व को उपलब्ध भी हो जाए, तो भी खरोंच रह जाएगी। और खरोंच बड़े नुकसान पहुंचाएगी। कृष्ण कहते हैं, शास्त्र में जो नियत है, वह किन्हीं अंधों की वाणी नहीं है; उसे बहुत जानकर ही उन्होंने किया है। जब तुम बुद्ध पुरुष हो जाओ, जब तुम्हारी चेतना जागे, प्रज्ञावान हो जाओ, जब तुम्हारी अंतर्ज्योति जल उठे, तब तुम अपने निर्णय से चलना, अपने प्रकाश से। अभी तो तुम्हारे पास अपना प्रकाश नहीं है। अंधेरे में चलने से तो यही बेहतर है कि तुम उधार प्रकाश से ही चलो।
अंधे के पास अपनी आंख नहीं है, तो पचास-साठ साल का बूढ़ा अंधा भी एक छोटे बच्चे के कंधे पर हाथ रखकर चलता है। अपनी अंधी आंखों के बजाय--अनुभवी है माना, साठ-सत्तर साल का है--एक गैर-अनुभवी बच्चे के कंधे पर हाथ रखकर चलता है।
तो शास्त्रों के वचन तो अनुभवियों के वचन हैं। तुम अपनी अंधी आंख की सलाह मानने की बजाय उनकी ही सलाह मानकर चलना। और जिस दिन तुम जाग जाओगे, उस दिन अगर चाहो तो छोड़ देना। हालांकि अक्सर बुद्ध पुरुषों ने छोड़ा नहीं है। कभी-कभी छोड़ा है; और वह छोड़ा तभी है, जब शास्त्र समय के विपरीत पड़ा है, अन्यथा नहीं छोड़ा। क्योंकि तब बुद्ध पुरुष को यह देखना है कि कहीं शास्त्र समय के विपरीत पड़ गया, तो अब उसको मानकर चलने वाला भी गड्ढे में गिरेगा। अगर शास्त्र समय के विपरीत नहीं है, तो मानकर चलना ही उचित है। जीसस जिस रात विदा हुए अपने शिष्यों से, उन्होंने सब शिष्यों के पैर धोए। एक शिष्य ने पूछा, आप यह क्या करते हैं? तो उन्होंने कहा कि आज रात मैं विदा हो जाऊंगा। मैं तुम्हें बताना चाहता हूं कि जब मैं तुम्हारे बीच था, तो मैं तुम्हारे पैर छूता था। मैं तुम्हें यह बताना चाहता हूं कि तुम कभी अहंकारी मत बनना और जरूरत पड़े तो अपने शिष्यों के भी पैर छू लेना। क्योंकि मुझे डर है, मेरे हटते ही तुम दंभी हो जाओगे कि तुम जीसस के सबसे निकट लोग हो! तुम्हारा अहंकार प्रगाढ़ हो जाएगा।

सारिपुत्र ज्ञान को उपलब्ध हो गया, लेकिन बुद्ध के चरण छूने उसने बंद
न किए। किसी ने पूछा, सारिपुत्र, अब तुम स्वयं बुद्ध हो गए, अब तुम क्यों बुद्ध के पैर छुए जाते हो? सारिपुत्र ने कहा, और दूसरे बुद्धुओं को ध्यान में रखकर। अगर वे मुझे देख लेंगे कि मैं पैर नहीं छूता, वे झुकना बंद कर देंगे। मुझे तो कोई हानि न होगी, लेकिन उन्हें महाहानि हो जाएगी।
तो फिर बुद्ध पुरुष तय करेगा यह देखकर कि शास्त्र अगर समय के अनुकूल
है और तुम्हारे हित में है, तो वह मानता रहेगा। वह नियम नहीं छोड़ देगा। महावीर परम ज्ञान को उपलब्ध हो गए, लेकिन उन्होंने नियम नहीं छोड़े। नियम जैसे साधक के समय में थे, वैसे ही उन्होंने सिद्ध की अवस्था में भी जारी रखे। उसका कुल कारण इतना... । वे छोड़ना चाहते, छोड़ सकते थे, कोई अड़चन न थी। जो पाना था, वह पा लिया था; अब नियम को बांधने की कोई जरूरत न थी। लेकिन दूसरों के लिए! क्योंकि महावीर से बहुत लोग सीखेंगे। महावीर ने
तो पा लिया, इसलिए अब कोई खतरा नहीं है। अगर वे सुबह न उठें पांच बजे और दस बजे उठें, तो कोई उनका मोक्ष खो नहीं जाएगा।
क्या आप सोचते हैं, महावीर अगर सिद्ध हो जाने के बाद सुबह न उठकर दस बजे उठने लगते, तो मोक्ष खो जाता? या क्या आप सोचते हैं कि महावीर मोक्ष प्राप्त करने के बाद अगर धूम्रपान करने लगते, तो मोक्ष खो जाता? लगता बेहूदा है कि महावीर धूम्रपान करें; लेकिन अगर करने लगते, तो मोक्ष खो जाता? तब तो मोक्ष दो कौड़ी का है जो धूम्रपान करने से खो जाए, सिगरेट से भी कम कीमत का मालूम पड़ता है!
नहीं, लेकिन महावीर ने धूम्रपान नहीं किया; इसलिए नहीं कि मोक्ष खो जाएगा। न वे दस बजे सोकर उठे, इसलिए नहीं कि दस बजे तक सोने से कोई मोक्ष की विपरीतता है; बल्कि उन सबके लिए जो अभी अंधेरे में चल रहे हैं, और जिनके लिए महावीर का जीवन ज्योति-स्तंभ होगा। उनके लिए वे चुपचाप उन नियमों को पालते रहे, जिन नियमों की अब कोई सार्थकता महावीर के लिए नहीं।
कृष्ण को तो पक्का पता है, कृष्ण के लिए स्वयं तो नियत कर्मों का कोई मूल्य नहीं है। लेकिन अर्जुन के लिए! आने वाले अर्जुनों के लिए! सदियों तक उनका वक्तव्य अर्थपूर्ण रहेगा।
तो वे कहते हैं हे अर्जुन, नियत कर्म का त्याग करना योग्य नहीं। जो शास्त्र ने कहा है, उसे तो करना ही है। उसका त्याग करना तमस त्याग कहा गया है।
उसे अगर तुमने छोड़ा, तो उसका अर्थ होगा कि वह तुम आलस्य के कारण छोड़ रहे हो, तमस के कारण छोड़ रहे हो, मूर्च्छा के कारण। ज्ञान की भला तुम कितनी ही बातें करो, उन बातों का कोई मूल्य नहीं है।
और यदि कोई मनुष्य, जो कुछ कर्म है वह सब ही दुखरूप है, ऐसा समझकर शारीरिक क्लेश के भय से कर्मों का त्याग कर दे, तो वह पुरुष उस राजस त्याग को करके भी त्याग के फल को प्राप्त नहीं होता।
और ऐसा भी हो सकता है कि कोई सोच ले कि जीवन में सभी दुख है। जैसा बुद्ध ने कहा है, सब दुख है। दुख सार सत्य है; दुख प्रथम आर्य सत्य है। ऐसा सोचकर अगर सारे जीवन को छोड़कर कोई भाग जाए, तो भी कृष्ण कहते हैं, वह ठीक नहीं कर रहा है। इसका यह अर्थ नहीं कि कृष्ण कहते हैं, बुद्ध ने गलत किया। कृष्ण यही कह रहे हैं कि बुद्ध अपवाद हैं; अपवाद को नियम कभी मानना मत। बुद्ध ने जो किया, उससे अन्यथा वे कर ही न सकते थे। बुद्ध ने जो किया, वही होने को था। बुद्ध के जीवन में उसकी संगति है।
फिर बुद्ध ने किसी से पूछकर नहीं किया। बुद्ध को भयंकर प्रतीति हुई जीवन में, दुख ही दुख सब तरफ! वे छोड़कर चले गए। ऐसा सोचकर अगर तुम भी छोड़कर चले जाओ जीवन को, तो यह त्याग भयपूर्ण हुआ; तुम दुख से भयभीत हो गए। बुद्ध दुख से भयभीत नहीं हुए थे, दुख से जागे थे।
कृत्य तो एक-से हो सकते हैं, अर्थ अलग-अलग हो सकता है। इसे तुम याद रखना।
बुद्ध तो जागे कि जीवन दुख है, इसलिए छोड़ा। लेकिन तुम, जीवन दुख है, ऐसा भयभीत हो सकते हो कि यहां तो दुख ही दुख है, कोई सार नहीं, भय लगता है, मौत आ रही है, नरक में पड़ना पड़ेगा। इन सब भय को इकट्ठा करके अगर भाग जाओ, तो यह भय कोई जागरण नहीं है।

जो ऐसा समझकर छोड़ दे, उसके त्याग को, कृष्ण कहते हैं, वह राजस त्याग है। उसके पास ऊर्जा थी, शक्ति थी भागने की, त्यागने की, उसने उपयोग कर लिया; लेकिन उपयोग जागरणपूर्वक नहीं हुआ।
और हे अर्जुन, करना कर्तव्य है, ऐसा समझकर जो शास्त्र-विधि से नियत किया हुआ कर्तव्य कर्म आसक्ति को और फल को त्यागकर किया जाता है, वह ही सात्विक त्याग माना गया है।
करना कर्तव्य है, ऐसा जानकर तुम जो भी करते हो, उससे तुम मुक्त हो जाते हो। करना कर्तव्य है, ऐसा जानकर जो भी किया जाता है, उसकी कोई रेखा तुम्हारे ऊपर नहीं छूटती, जैसे तुमने किया ही नहीं, परमात्मा ने करवाया। उसकी मरजी थी, हुआ; तुम अपने को बीच में लाते ही नहीं। तुम ज्यादा से ज्यादा नाटक के एक पात्र हो जाते हो।
लेकिन हमारे जीवन की तो हालतें उलटी हैं। हम तो नाटक के पात्र में भी भूल जाते हैं; वहां भी ऐसा लगने लगता है कि हमारा जीवन दांव पर लगा है।
नाटक में अभिनय करने वाले लोग भी कभी-कभी भूल जाते हैं कि यह सिर्फ अभिनय कर रहे हैं; वास्तविक हो जाता है; भ्रांति गहन हो जाती है।
तुम्हें भी कभी ऐसा अनुभव हुआ हो, कभी तुम किसी चीज का नाटक करके देखो।
पश्चिम में एक नया मनोवैज्ञानिक प्रयोग चलता है, उसे वे साइकोड्रामा कहते हैं। समझो कि कोई आदमी कहता है कि मुझे क्रोध से बहुत तकलीफ होती है। तो मनसविद उससे कहता है, तुम बैठो इस कुर्सी पर, यह तकिया सामने रख लो; किस पर तुम्हें क्रोध आता है? वह कहता है, मेरी पत्नी पर। तो मनोवैज्ञानिक कहता है, तुम इस तकिए को पत्नी मान लो।
अब यह सिर्फ नाटक है। तकिया कोई पत्नी है? पत्नी सुन ले कि ऐसा माना गया, तो तलाक ही दे दे। तकिए को पत्नी!
लेकिन वह आदमी भी मानता है कि यह नाटक है। वह बैठ जाता है, तकिए को पत्नी मान लेता है। पहले वह हंसता है कि ऐसे कहीं क्रोध आएगा! वह कहता भी है कि ऐसे कहीं क्रोध आएगा! मनोवैज्ञानिक कहता है, तुम शुरू करो। तुम बोलना शुरू करो। फिर जब क्रोध आने लगे, तो पीटना शुरू करो तकिए को।
एक, दो-तीन मिनट लगते हैं और आदमी धीरे-धीरे आविष्ट हो जाता है; वह पीटने लगता है, फेंकने लगता है। और जब वह पीटने, फेंकने लगता है तकिए को, तब कोई भी भेद नहीं रह जाता; चित्त पूरा का पूरा पकड़ लेता है। कृत्य हो गया; वह जो अभिनय था, वास्तविक हो गया।
अभिनय में भी हम वास्तविकता को आरोपित कर लेते हैं। और कृष्ण कह रहे हैं, तुम वास्तविकता में भी अभिनेता हो जाओ। करना है; क्योंकि लिखा है नाटक के अंकों में, इसलिए पूरा करना है। तुम्हें कुछ बीच में आना नहीं है। लेकिन सपने तक में तुम बीच में आना चाहते हो।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन ने एक रात सपना देखा कि कढ़ाई के पास खड़ा है और गोबर तल रहा है। खुद भी घबड़ा गया कि यह भी कोई बात है! घबड़ाहट में नींद खुल गई। सुबह ही सुबह भागा हुआ एक ज्योतिषी के पास गया, जो कि सपनों के अर्थ बताता था। ज्योतिषी से कहा कि बहुत बुरा सपना आया। ऐसा सपना तो कभी सुना भी नहीं कि किसी को आया हो, बड़ा चित्त ग्लानि से भरा हुआ है। सपना यह है कि मैं गोबर तल रहा हूं। नींद टूट गई, इतना दुख हुआ। इसका क्या अर्थ है?
उस ज्योतिषी ने कहा कि एक रुपया लगेगा, अर्थ बता दूंगा। नसरुद्दीन ने कहा कि नासमझ, अगर एक रुपया ही मेरे पास होता तो गोबर तलता? मछलियां न खरीद लाता?
सपने को भी लोग वास्तविक समझते हैं! रुपया होता तो वह मछलियां खरीद लाता!
जिसने जीवन को ठीक से समझा, उसने समझा कि न तो तुम अपने कारण पैदा हुए हो, न अपने कारण जीते हो, न अपने कारण मरोगे; वह महाकारण, तुम्हारे सारे जीवन के भीतर छिपा परमात्मा है। कर्तव्य है, बस करना है, इसलिए किए चले जाओ। सब उस पर छोड़ दो।
कृष्ण का सार-सूत्र समर्पण है। समर्पण की इस भाव-दशा में ही फलाकांक्षा शून्य हो जाती है; फल का कोई सवाल नहीं है; फल की चिंता वह करे।

एक सूफी फकीर हज की यात्रा पर जा रहा था। जहाज पर हजारों यात्री थे। दूसरे ही दिन भयंकर तूफान आया। प्राण कंप गए जहाज के। बड़ा शोरगुल, उत्पात मच गया, त्राहि-त्राहि, हाहाकार! लगता था, अब गए, अब गए, बचेंगे नहीं! समुद्र बिल्कुल विक्षिप्त मालूम होता था! ऐसी उत्तुंग तरंगें उठ रही थीं कि जहाज को डुबा ही देंगी! जहाज छोटा मालूम पड़ने लगा, जैसे एक छोटी-सी नाव हो, तरंगें इतनी भयंकर थीं!
कैप्टेन चिल्ला रहा है लाउडस्पीकर पर, आज्ञाएं दे रहा है! जीवन को बचाने के लिए नावें उतारी जा रही हैं, मल्लाह सजग हो गए हैं। सब कंप रहे हैं। स्त्रियां रो रही हैं, चिल्ला रही हैं। बच्चे चीख रहे हैं। कुत्ते भौंक रहे हैं। भाग-दौड़ मची है। एकदम पागलपन है! मौत की घड़ी है! सिर्फ वह एक सूफी फकीर जगह-जगह खड़े होकर बड़े मजे से देख रहा है। न केवल देख रहा है, बल्कि बड़ा प्रसन्न भी हो रहा है, जैसे कि एक भीतरी आनंद हो!
एक बूढ़ा आदमी उसे देखते-देखते क्रोध से भर गया। उसने कहा, सुनो जी! होश में हो? इधर इतने लोगों की जान जा रही है, तुम कोई नाटक देख रहे हो? तुम्हारी अकल में आ रहा है कि क्या हो रहा है?
उस सूफी फकीर ने कहा, महानुभाव, आप इतने उत्तेजित क्यों हो रहे हैं? क्या जहाज आपके बाप का है? डूब रहा है, डूब रहा है!
एक ऐसी भाव-दशा है। जब डूबे तो उसका, न डूबे तो उसका; बचे तो उसका, न बचे
तो उसका; और आदमी अपने को बीच से हटा लेता है। तब कोई दुख तुम्हें दुख नहीं दे सकता, और कोई सुख तुम्हें विक्षिप्त नहीं कर सकता। तब तुम्हारे जीवन में एक परम शांति की दशा निर्मित हो जाती है। तब एक रसधार बहने लगती है, जिसे हम आनंद कहते हैं।
और हे अर्जुन, करना कर्तव्य है, ऐसा समझकर ही जो शास्त्र-विधि से नियत किया हुआ कर्तव्य कर्म आसक्ति को और फल को त्यागकर किया जाता है, वह ही सात्विक त्याग माना गया है।
सात्विक त्याग का अर्थ है, फल का त्याग। सात्विक त्याग का अर्थ कर्म
का त्याग नहीं। कर्म तो करना ही है। कर्म तो जीवन है। और परमात्मा ने जीवन दिया है, तुम भागने वाले कौन? और परमात्मा ने तुम्हें भेजा है, तुम त्यागने वाले कौन? जिस विराट से तुम्हारा आना हुआ है, उसी विराट पर छोड़ दो चिंताएं। जहाज तुम्हारा नहीं है। उसकी मर्जी! और उसकी मर्जी में पूरे राजी हो जाओ।
फिर तुम करोगे भी और कर्म की रेखा भी तुम पर न पड़ेगी। तुम फिर जल में कमलवत हो जाओगे! और जो जल में कमलवत हो जाए, उसके जीवन में परम धन्यता प्रकट होती है।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग आठ
गीता दर्शन अध्याय 18
चौथा प्रवचन

सदगुरु की खोज

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नानुषज्जते।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः।। 10।।
न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते।। 11।।
अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम्।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित्।। 12।।
और हे अर्जुन, जो पुरुष अकल्याणकारक कर्म से तो द्वेष नहीं करता है और कल्याणकारक कर्म में आसक्त नहीं होता है, वह शुद्ध सत्वगुण से युक्त हुआ पुरुष संशयरहित मेधावी अर्थात ज्ञानवान और त्यागी है।
क्योंकि देहधारी पुरुष के द्वारा संपूर्णता से सब कर्म त्यागे जाना शक्य नहीं है, इससे जो पुरुष कर्मों के फल का त्यागी है, वह ही त्यागी है, ऐसा कहा जाता है।
तथा सकामी पुरुषों के कर्म का ही अच्छा, बुरा और मिश्रित, ऐसे तीन प्रकार का फल मरने के पश्चात भी होता है और त्यागी पुरुषों के कर्मों का फल किसी काल में भी नहीं होता है।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः आपने कहा कि ज्ञानियों ने जो कहा, वह शास्त्र है और अज्ञानियों को उन्हें मानना ही चाहिए। लेकिन प्रश्न है कि शास्त्र अनेक हैं और उनके वचन अनंत, और अज्ञानी तो अज्ञानी ही ठहरा, फिर वह कैसे तय करे कि क्या उसके मानने योग्य है?

पहली बात, न तो शास्त्र अनेक हैं और न उनके वचन अनंत। एक ही बात को अनेक-अनेक रूपों से जरूर कहा गया है। लेकिन बात एक ही है।
एकं सद विप्राः बहुधा वदंति।
उस एक को ही जानने वालों ने बहुत-बहुत भांति से कहा है। कुरान का एक ढंग है, गीता का दूसरा ढंग है, बाइबिल का तीसरा। पर बात वही है। और अगर तुम वस्तुतः अज्ञानी हो, तो कठिनाई न होगी यह बात समझने में कि तीनों शास्त्रों ने एक ही बात कही है। कठिनाई तो तब होती है, जब तुम झूठे ज्ञानी होते हो; जब पांडित्य तुम्हारे सिर पर सवार होता है, तब कठिनाई होती है। अज्ञानी तो सरल होता है। अज्ञानी के पास शब्दों का कोई बोझ नहीं होता,
न आंख अंधी होती है, निर्मल होती है। ज्ञानी, तथाकथित ज्ञानी उपद्रव खड़ा करता है। वह तथाकथित ज्ञानी कहता है, जो गीता में कहा है, वह कुरान में नहीं है। क्योंकि इस तथाकथित ज्ञानी की पकड़ शब्दों पर है, सार पर नहीं; भाषा पर है, भाव पर नहीं। इसे शास्त्र की लकीरें घेर लेती हैं; शास्त्र के शून्य रिक्त स्थान इसे दिखाई नहीं पड़ते।
दुनिया में जो कलह है, वह पंडितों के कारण है, अज्ञानियों के कारण नहीं। मौलवी लड़ता है, लड़वाता है; पंडित लड़ता है, लड़वाता है। अज्ञानी का क्या झगड़ा है!
थोड़ी देर को सोचो, अगर दुनिया में पंडित न हों, तो दुनिया में हिंदू, मुसलमान, ईसाई होंगे? अगर होंगे भी, तो बड़े सरल होंगे। चर्च पड़ जाएगा, तो तुम वहां भी नमस्कार कर लोगे; और मस्जिद आ जाएगी पास, तो कभी वहां भी प्रार्थना कर लोगे; क्योंकि कोई तुम्हें समझाने वाला न होगा कि मंदिर अलग है, मस्जिद अलग है। यह तो समझाने वालों ने उपद्रव खड़ा किया है।
सरल आदमी का कोई भी झगड़ा नहीं है। और अज्ञान में बड़ी सरलता है।
तो तुम जब पूछते हो कि अज्ञानी कैसे तय करे कि कौन-सा शास्त्र ठीक है, तुम काफी ज्ञानी हो गए; अज्ञानी तुम हो नहीं। यह काफी ज्ञान की बात हो गई;

यह तो बड़ी समझदारी आ गई। अन्यथा तुम पहचान लोगे। तुम पहचान लोगे कि फर्क शब्दों का हो सकता है; लेकिन फर्क सत्य का नहीं है।
कोई एक ढंग से प्रार्थना करता है, कोई दूसरे ढंग से प्रार्थना करता है। कोई पूरब की तरफ सिर करके प्रार्थना करता है, कोई पश्चिम की तरफ सिर करके प्रार्थना करता है। लेकिन प्रार्थना का भाव, वह समर्पण, उस अनंत के चरणों में सिर रखने की वह धारणा, वह तो एक ही है।
अगर पंडित-मौलवी न हों, तो कोई झगड़ा नहीं है। तुम सभी जगह उस एक ही ध्वनि को सुनते हुए पाओगे, सभी जगह वही सार तुम्हें समझ में आ जाएगा। इसलिए पहली तो बात, शास्त्र अनेक नहीं हैं, दिखाई पड़ते हैं। हो नहीं सकते अनेक। सत्य अनेक नहीं है, तो शास्त्र कैसे अनेक हो सकते हैं? भाषाएं तो अनेक होंगी, क्योंकि जमीन पर कोई तीन सौ भाषाएं हैं। तो जो आदमी अरबी जानता है, जब सत्य को उपलब्ध होगा, तो संस्कृत नहीं बोलेगा, अरबी ही बोलेगा। उसमें जो गीत पैदा होगा, वह अरबी भाषा को ही पकड़कर तरंगित होगा, तुम तक आएगा। कुरान ऐसा ही गीत है।
गीत को देखो; शब्द को छोड़ो, छंद को पकड़ो। तो उपनिषद में जो छंद है, वही कुरान में है। उपनिषद में जो गीत है, वही कुरान में है। धुन को पकड़ो, मस्ती को पकड़ो, तो उपनिषद जिन्होंने गाया है, तुम उन्हें उसी मस्ती में, उसी नशे में डोलते पाओगे, जिस नशे में मोहम्मद को डोलते हुए पाया गया है।
क्या तुम समझते हो कि फर्क दिखाई पड़ेगा मस्ती में? नहीं, मस्ती में कोई फर्क न दिखाई पड़ेगा। हां, चोटी न बढ़ी होगी मोहम्मद की। चोटी कोई शास्त्र है? जनेऊ न पड़ा होगा गले में। जनेऊ कोई शास्त्र है?
तुमने अगर व्यर्थ को देखा, तो फर्क पाओगे; अगर सार्थक को देखा, तो जरा
भी फर्क न पाओगे।
और दूसरी बात कि उपद्रव तुम्हारे ज्ञान के कारण है, अज्ञान के कारण नहीं। अज्ञान की बड़ी मधुरिमा है। काश, तुम अज्ञानी हो सको, तो तुम्हारे ज्ञानी होने का द्वार खुल जाए।
लेकिन तुम ज्ञानी होने के पहले ज्ञान से भर जाते हो। वे शब्द तुम्हारे चारों तरफ इकट्ठे हो जाते हैं। फिर वे शब्द द्वार नहीं खुलने देते; फिर तुम शब्दों में जीते हो। तुम्हारे असली प्रश्न भी खो जाते हैं, वे भी नकली हो जाते हैं। तुम जीवन के साक्षात्कार की आकांक्षा नहीं करते, तुम सिद्धांतों को समझने की आकांक्षा करने लगते हो।
मेरे पास कोई आता है, दुखी है, अशांत है। और पूछता है, संसार परमात्मा
ने बनाया या नहीं?
तुम अपनी गृहस्थी से ही काफी परेशान हो रहे हो, इतनी बड़ी गृहस्थी का बोझ मत लो। संसार किसने बनाया या नहीं बनाया, यह तुम्हारे प्राणों का प्रश्न भी कहां है! इससे तुम्हें लेना-देना क्या है? और बनाया हो किसी ने, यह जान लेने से तुम्हारे जीवन के प्रश्न कहां हल होंगे? न बनाया हो किसी ने, तो भी क्या फर्क पड़ेगा; तुम तो तुम ही रहोगे।
ये व्यर्थ के प्रश्न हैं। सार्थक प्रश्न हमेशा वास्तविक होता है। तुम पूछते हो कि मैं अशांत क्यों हूं? तुम पूछते हो कि शांत होने का उपाय क्या है? तुम पूछते हो कि मैं दुख से भरा हूं, आनंद की एक किरण नहीं जानी, कैसे जानूं? कैसे खोलूं वातायन? कैसे आंख खुले? कैसे अंधेरे के बाहर आऊं? टटोलता हूं दीए को, पाता हूं, लेकिन कैसे जलाऊं? ज्योति कैसे जले?
और तुम्हारी ज्योति जले आनंद की, और शांति की बरखा होने लगे तुम्हारे आस-पास, तो तुम जानोगे। वे सब प्रश्नों के उत्तर भी जान लोगे, जो तुमने इसके पहले पूछे होते, तो व्यर्थ ही पूछे होते। और उन प्रश्नों के उत्तर जानने तुम्हें किसी के पास न जाना होगा।
जो शांत हुआ, उसे परमात्मा दिखाई पड़ने लगता है। असली सवाल परमात्मा नहीं है, असली सवाल शांति है।
शास्त्रों से तुम परमात्मा को मत पूछो, शास्त्रों से तुम शांति सीखो।
और सभी शास्त्र शांति सिखाते हैं। सभी शास्त्र ध्यान की विधियां बताते हैं। सभी शास्त्र इशारे करते हैं कि कैसे तुम आनंदित हो जाओगे। फिक्र छोड़ो, कुरान से सीखते हो कि गीता से सीखते हो! किस घाट से पीते हो पानी;

सारा पानी गंगा का है। कहीं से भी पी लो; घाटों के नाम पर बहुत ध्यान मत दो; उनका कोई भी मूल्य नहीं है।
उपद्रव लेकिन ज्ञान के कारण हो रहा है। तुम हिंदू हो, मुसलमान हो, ईसाई हो, जैन हो, यह अड़चन है। अज्ञानी हो, यह अड़चन नहीं है। अज्ञानी हो, तब तो बिल्कुल भले हो; कोई अड़चन नहीं है। सरल हो, सीधे हो; मन की पट्टी खाली है, उस पर कुछ लिखा जा सकता है। भरे नहीं हो, जगह है तुम्हारे भीतर; सत्य को निमंत्रण दिया जा सकता है।
मैं तो अज्ञान की महिमा के गीत गाता हूं। अगर तुम अज्ञानी ही हो सको,
तो तुम पाओगे, ज्ञान तुम पर बरसने लगा। अज्ञान को जान लेना ज्ञान का पहला कदम है।
लेकिन अड़चन कहां से आ रही है? अड़चन यहां से आ रही है, अज्ञान तो मिटा नहीं और तुमने कूड़ा-कचरा इकट्ठा कर लिया। शास्त्र से तुमने साधना नहीं सीखी, शास्त्र से तुमने सिद्धांत सीखे।
शास्त्र से अनुशासन सीखो! शास्त्र का मतलब ही यही होता है कि जिससे अनुशासन मिले, वह शास्त्र। जो तुम्हें जीवन की विधि दे, वह शास्त्र। लेकिन वह तुम्हें सुनाई नहीं पड़ती।
और तुम अपने शब्दों से इतने भरे हो कि मैं भी तुमसे जब बोल रहा हूं, तब पक्का नहीं है कि तुम वही सुनते हो, जो मैं तुमसे कहता हूं। तुम्हारे शब्द उसमें बाधा डालते होंगे; रंग बदल देते होंगे, धुन बदल देते होंगे, अर्थ बदल देते होंगे।
आदमी वही सुनता है, जो सुनना चाहता है। आदमी वही सुनता है, जो वह पहले
ही सुन चुका है। आदमी उसको छोड़ देता है, जो उसके भीतर न पच सकेगा। उसको पचा लेता है, जो पहले से पचा हुआ है।
तुम मेरे पास आकर, अगर हिंदू हो, तो वही सुन लोगे जो हिंदू सुन सकता है। अगर मुसलमान हो, तो वही सुन लोगे जो मुसलमान सुन सकता है। मुसलमान और मुसलमान होकर चला जाएगा; हिंदू और हिंदू होकर चला जाएगा। और मैं चाहता था कि हिंदू, मुसलमान मिट जाएं।
मैं एक वैद्यजी के घर में ठहरा हुआ था। पंडित आदमी हैं। वे स्नान कर रहे थे सुबह-सुबह। मैं अखबार पढ़ रहा था बाहर बैठकर। उनका लड़का एक कोने में बैठकर अपने स्कूल का काम कर रहा था। वह जोर-जोर से कुछ रट रहा था। वह रट रहा था, अलंकार के भेद चार होते हैं, लाटानुप्रास, वृत्यानुप्रास, छेकानुप्रास, अंत्यानुप्रास... ।
वह रट रहा था। मैंने उस पर कोई ज्यादा ध्यान भी नहीं दिया था। ध्यान
तो तब दिया जब वैद्यजी, जो स्नान कर रहे थे अंदर स्नानगृह में, वहीं से चिल्लाए, अरे नालायक, कहां की दवाइयों के नाम रट रहा है! अपना च्यवनप्राश! उसकी तो विदेशों तक में मांग है। रख नंबर एक पर, च्यवनप्राश। यह कहां का छेकानुप्रास, अंत्यानुप्रास... ।
लड़का भी चौंका, मैं भी चौंका। लेकिन तभी पत्नी, जो चौके में काम कर रही थी, जोर से भन्नाई। उसने कहा, तुम अपना स्नान करो और दूसरों को अपना काम करने दो। यह तुम्हारे च्यवनप्राश की वजह से इस घर में कोई बीमार तक नहीं पड़ सकता। च्यवनप्राश! च्यवनप्राश! कोई बीमारी आ जाए, तो डर लगता है बताने में कि तुम फिर वह च्यवनप्राश ले आओगे!
कोई किसी की सुनता हुआ मालूम नहीं पड़ता। पत्नी शांत हो गई। मैं अपना अखबार पढ़ने लगा। लड़का फिर देखकर कि उपद्रव जा चुका, फिर याद करने लगा, अलंकार चार प्रकार के होते हैं... ।
ऐसा वर्तुल है। कोई किसी की सुन नहीं रहा है। अपनी-अपनी सुन रहे हैं लोग।
शास्त्र की तुम कहां सुनते हो! शास्त्र के पास भी अगर तुम अज्ञानी होकर जाओ--अज्ञानी होकर जाओ मतलब, बालक की तरह होकर जाओ--तो शास्त्र भी तुम्हें जगा देगा। लेकिन तुम तो जीवित शास्त्रों के पास भी, गुरुओं के पास भी ज्ञानी होकर आते हो। वे भी तुम्हें नहीं जगा पाते।
शास्त्र तो मुरदा है, कागज पर खींची आड़ी-तिरछी लकीरें हैं। लेकिन वह
भी जगा देगा; अगर तुम पंडित की तरह न गए, प्यासे की तरह गए, तो शास्त्र भी जगा देगा। और अगर पंडित की तरह तुम आए सदगुरु के पास भी, तो सदगुरु भी

तुम्हें जगा नहीं पाएगा। तुम सदगुरु से भी अपनी नींद के बहाने खोजकर वापस लौट जाओगे।
इस बात को तय करने की जरूरत ही नहीं कि क्या मानने योग्य है, क्या मानने योग्य नहीं है। तुम कैसे तय करते हो, क्या खाने योग्य है, क्या खाने योग्य नहीं है? जो पच जाता है, जो स्वस्थ करता है, शक्तिवर्धक है, उसे तुम खाने योग्य समझ लेते हो। पत्थर-कंकड़ नहीं खाते। अज्ञानी से अज्ञानी नहीं खाता पत्थर-कंकड़। क्यों? जानता है, वे पचेंगे नहीं; दुख देंगे, पीड़ा देंगे।
जीवन जिससे रसपूर्ण हो जाए, वही चुनने योग्य है। जीवन में जिससे स्वास्थ्य बढ़े, सौरभ बढ़े, वही चुनने योग्य है। जीवन जिससे उत्सव बने, वही चुनने योग्य है। जिससे उदास हो जाए; टूट जाए, खंडहर हो जाए, वही छोड़ देने योग्य है।
मैं तुम्हें सिद्धांत चुनने की बात ही नहीं कर रहा; जीवन तुम्हारे पास है, वही कसौटी है। तुम उस पर ही कसे चलो।
जब तुम झूठ बोलते हो, तो जीवन में आनंद बढ़ता है? बस, इसको ही देखो। अगर बढ़ता हो, तो मैं कहता हूं, झूठ ही बोलो। मैं तुमसे कभी न कहूंगा कि सच बोलो।
अगर धोखा देने से, बेईमानी करने से, दूसरों को कष्ट देने से तुम्हारे जीवन में आनंद की वर्षा होती हो, तो वही धर्म है। तुम वही करो। किसी की मत सुनो।
लेकिन ऐसा कभी होता नहीं। ऐसा हो नहीं सकता। वह जीवन का विधान नहीं है। शास्त्र केवल इतना ही कहते हैं; वह जो अनंत-अनंत बार जाना गया है, उसी
को दोहराते हैं; हर जानने वाले ने जो अनुभव किया है, उसी को दोहराते हैं। वे इतना ही कहते हैं, कंकड़-पत्थर मत खाओ। झूठ दुख देगा; सुख का कितना ही आश्वासन दे, दुख देगा। दूसरे को दुख दोगे, दुख लौटेगा। दूसरे को सताओगे, सताए जाओगे। अशांति पैदा करोगे लोगों के जीवन में, तुम्हारे जीवन में अशांति की प्रतिध्वनि होगी। और कुछ भी न होगा। क्योंकि संसार तो दर्पण है। तुम्हें अपना ही चेहरा सब तरफ दिखाई पड़ने लगेगा। तुम अपने ही चेहरों से घिर जाओगे।
बस, शास्त्र इतना ही कहते हैं। शास्त्र सीधे-साफ हैं। उलझाया है तो पंडितों ने। वे एक-एक शब्द की इतनी बाल की खाल निकालते रहते हैं कि यह भूल ही जाता है कि शास्त्र भोजन की तरह है। वह चर्चा करने के लिए नहीं है बैठकर, वह पचाने के लिए है। वह तुम्हारा खून बने, हड्डी-मांस-मज्जा बने। बोधिधर्म चीन गया। जब वह वापस लौटने लगा नौ वर्ष के बाद, तो उसने अपने चार शिष्य, जो कि श्रेष्ठतम थे, जो अर्जुन जैसे होंगे, जो पुरुषश्रेष्ठ थे, जिन्होंने उसको पूरी तरह पचाया था, उनको बुलाया। और उसने पहले से पूछा कि मैं जाता हूं; परीक्षा की घड़ी आ गई। सार की बात जो तूने मुझसे सीखी हो, कह दे। उस व्यक्ति ने कहा, सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, अचौर्य, यही धर्म है। बोधिधर्म ने कहा, तेरे पास मेरा शरीर है।
दूसरे से पूछा। उसने कहा, योग, साधना, विधियां, अभ्यास, यही सार है।
बोधिधर्म ने कहा, तेरे पास मेरा मांस है।
तीसरे से पूछा। उसने कहा, ध्यान, शांति, शून्यता, यही सारा राज है, कुंजी है। बोधिधर्म ने कहा, तेरे पास मेरी हड्डियां हैं।
चौथे की तरफ आंख फेरी। चौथा उसके चरणों पर गिर पड़ा; बोला कुछ भी नहीं।
बोधिधर्म ने उठाया, उसकी आंखों में झांका। वह बोला कुछ भी नहीं। उसने कहा, तेरे पास मेरा सब कुछ है, मेरी आत्मा है।
क्या मामला था? एक ने इतना ही पचाया की चमड़ी बनी। बस, ऊपर-ऊपर रही।
पचाया उसने भी; क्योंकि चमड़ी भी बिना पचाए नहीं बनती। लेकिन परिधि पर ही छुआ। दूसरा थोड़ा भीतर गया; वह मांस बना। उसने गुरु को थोड़ा गहरा पचाया। तीसरा और भीतर गया। उसने गुरु को और आत्मसात किया, वह हड्डियां बन गया। चौथा इतना गहरा गया कि कह भी न सका कि कितना गहरा गया हूं। क्योंकि जो शब्द में आ जाए, वह कोई गहराई है? जो कही जा सके, वह भी कोई समझ है? समझ तो अतीत है सब वचनों के। इसलिए वह चुप ही रह गया। उसने सिर्फ अपनी आंखें गुरु के सामने कर दीं कि अगर कुछ हुआ हो, तो तुम देख लो। मैं क्या कहूं! कहने को कुछ भी नहीं है। धर्म क्या कहा जा सकता है!

कितना तुम पचाते हो? इसकी फिक्र छोड़ो कि शास्त्र अनेक हैं; कौन से चुनें। कोई भी चुन लो। जो हाथ आ जाए, वही काम दे देगा। इसकी बहुत बिगूचना में मत पड़ो, क्योंकि समय व्यतीत होगा, जीवन खोएगा।
इसलिए पुराने दिनों में एक सहज व्यवस्था थी, और वह यह थी कि तुम जिस परंपरा में पैदा हुए हो, चुपचाप उसके शास्त्र को मानकर चलते चले जाओ। ताकि व्यर्थ की उलझन न खड़ी हो, कहां चुनो, क्या करो। जिस परंपरा में पैदा हुए हो, चुपचाप उस शास्त्र में डूबते चले जाओ। उसी शास्त्र में डूबकर तुम एक दिन पाओगे, सब परंपराओं के पार निकल गए।
कोई परंपरा तोड़ने की भी जरूरत नहीं है। उसमें से भी ऊपर जाने का उपाय है। गहरे गए कि ऊपर चले जाओगे। उथले रहे कि भीतर रह जाओगे। परंपरा बांधती है उनको, जो डुबकी लगाते ही नहीं। जो डुबकी लगाना जानते हैं, वे तो परंपरा में से भी परम स्वतंत्रता को उपलब्ध हो जाते हैं।
मगर अब यह न हो सकेगा। बात बिगड़ गई। वह बात गई, वह समय न रहा। अब तो सारी दुनिया छोटा-सा गांव बन गई है। अब तो यह असंभव है कि हिंदू मुसलमान से अपरिचित रह जाए। यह संभव नहीं है कि ईसाई हिंदू से अपरिचित रह जाए। और बुरा भी नहीं है; एकदम शुभ है।
सारे शास्त्र सब के लिए खुल गए हैं। हिंदू के लिए मंदिर था, मुसलमान
के लिए मस्जिद थी, ईसाई के लिए चर्च था; अब सब मिश्रित हो गए। एक महासंगम घटित हुआ है पृथ्वी पर। इस महासंगम में जो नासमझ अपने को समझदार समझ बैठे हैं, वे बहुत कुछ गंवा देंगे। जो नासमझ अपने को नासमझ समझते हैं, वे बहुत कुछ बचा लेंगे।
अगर तुम अज्ञानी हो, तो इस महासंगम से बहुत लाभ होगा; क्योंकि तुम देख पाओगे। शब्दों से खाली आंखें कुरान में गीता को खोज लेंगी, गीता में कुरान को देख लेंगी। और तुम्हारा अहोभाव बढ़ेगा, तुम्हारी श्रद्धा और भरपूर होगी। क्योंकि सभी शास्त्र यही कहते हैं। सदियों-सदियों में, अलग-अलग देशों में, अलग-अलग हवाओं, परंपराओं में जो भी कहा गया है, वह सब एक ही तरफ इशारा करता है। अंगुलियां कितनी ही हों, चांद एक है।
तुम्हारी श्रद्धा बढ़ेगी, अगर तुममें थोड़ी-सी भी सरलता है। अगर नहीं है, तो तुम बड़े डांवाडोल हो जाओगे। तुम हिंदू थे अब तक; विश्वास था; वह विश्वास भी डगमगा जाएगा। क्योंकि कुरान कुछ और कहती मालूम पड़ेगी, बाइबिल कुछ और कहती मालूम पड़ेगी। तुम उस हालत में हो जाओगे, जैसे धोबी का गधा, न घर का न घाट का। मस्जिद जाओगे, तो मंदिर बुलाएगा। मंदिर जाओगे, तो मस्जिद पुकारेगी। कुरान पढ़ोगे, तो गीता याद आएगी। गीता पढ़ोगे, तो कुरान याद आएगा। और तालमेल कुछ बैठेगा नहीं। क्योंकि ये सभी संगीत बड़े अलग-अलग हैं। ये वाद्य अलग-अलग हैं। इनका स्वर संयोजन अलग-अलग है।
तो तुम बिल्कुल पगला जाओगे, विक्षिप्त होने लगोगे। तुम्हारा विश्वास
भी खो जाएगा, अगर तुमने समझदार और पंडित की तरह इस महासंगम को देखा। लेकिन अगर तुमने सरल निर्दोष बालक की तरह देखा, तो तुम्हारी श्रद्धा अनंत गुनी हो जाएगी।
विश्वास झूठा है; उसकी सुरक्षा करनी पड़ती है। तुम्हें पता ही न चले कि दूसरे लोग क्या सोचते हैं, तभी विश्वास बचता है। श्रद्धा बड़ी और बात है। श्रद्धा को तो खुला आकाश चाहिए, तभी बचती है। अगर घर में बंद कर दो, सड़ जाती है, मर जाती है।
तो अभी तक दुनिया विश्वास में जीयी है। हिंदू घर में तुम पैदा हुए थे, हिंदू पर विश्वास किया था। जैन घर में पैदा हुए थे, जैन पर विश्वास किया था। न केवल इतना कि जैन पर विश्वास किया था, हिंदू पर अविश्वास भी किया था। क्योंकि ये दोनों साथ-साथ रहेंगे; विश्वास अपने पर, दूसरे पर अविश्वास। ऐसे बाहर और भीतर से अपने को सम्हाले रखा था।
लेकिन अब इस तरह का विश्वास नहीं टिक सकता। अब तो ऐसी परम श्रद्धा टिकेगी, जिसके लिए न तो अपने पर विश्वास की कोई जरूरत है, न दूसरे पर अविश्वास की कोई जरूरत है। अब तो ऐसी परम श्रद्धा जगत में बचेगी, जिसको खुला आकाश घबड़ाता नहीं, जिसके लिए बंद घरों की दीवारों की जरूरत नहीं है। तो विश्वास तो गिरेगा। इसलिए जो लोग विश्वास से ही अब तक धार्मिक रहे थे, अब उनके धार्मिक होने का कोई उपाय नहीं है। वे तो अधार्मिक हो जाएंगे।

अब तो उन थोड़े से लोगों के जीवन में धर्म की हवा होगी, जिनके जीवन में श्रद्धा है।
लेकिन बस वही धर्म सच्चा है, जो खुले आकाश में बचता है। वही धर्म सच्चा है, जो विपरीत धारणाओं को भी सुनकर बच रहता है। वही धर्म सच्चा है, जो सभी तर्क के पार भी बच रहता है। विरोधी विरोध करता रहे, फिर भी तुम्हारी श्रद्धा डगमगाए न।
ऐसा नहीं कि तुम विरोधी को सुनते नहीं, कान में कंकड़ डाल लेते हो, कान बंद कर लेते हो। वह भी कोई श्रद्धा हुई, जो विरोधी को सुनने से डरती है! वह तो गहरे में संदेह है, इसीलिए भय है। संदेह के साथ भय है, श्रद्धा के साथ अभय है।
इसलिए तो मैं सभी शास्त्रों की तुम से बात कर रहा हूं। मेरे पास केवल
वे ही लोग टिक सकेंगे, जिनके भीतर श्रद्धा का जन्म हो रहा है। विश्वासी तो भाग जाएंगे घबड़ाकर कि यह आदमी तो हमारा विश्वास छीन लेगा! वे तो दूसरों को भी कहेंगे, वहां मत जाना, वहां नास्तिक हो जाओगे।
उनका कहना भी ठीक है। कमजोर आएगा, नास्तिक हो जाएगा; शक्तिशाली आएगा, आस्तिक हो जाएगा।
मुझे जीसस का एक वचन बहुत प्रिय है। जीसस ने कहा है, जिनके पास है, उन्हें और दिया जाएगा; और जिनके पास नहीं है, उनसे वह भी छीन लिया जाएगा जो उनके पास है।
तुम्हारे भीतर अगर श्रद्धा है, तो मैं उसे बढ़ा दूंगा। और अगर नहीं है,
तो और घटा दूंगा। कम से कम बात तो साफ हो जाए। यह बीच में आधी लटकी त्रिशंकु की स्थिति तो न रहे। या नास्तिक, या आस्तिक। यह बीच में अटका होना उचित नहीं है।

दूसरा प्रश्नः कल आपने कहा कि परमात्मा अनंत सूर्यों से भी अधिक ज्योतिपूर्ण है, इसलिए उसकी ज्योति को झेलना असंभव है। लेकिन यह भी आप रोज कहते हैं कि मनुष्य परमात्मा का ही अंश है, फिर अंश अंशी को कैसे नहीं झेल पाता है?

जैसे कि बूंद पर सागर टूट पड़े, तो अगर बूंद मिटने को राजी हो, तभी झेल सकती है। अगर बचने की चेष्टा करे, तो फिर न झेल पाएगी। इस गणित को ठीक से समझ लो।
अगर तुम मिटने को राजी हो, तब तो तुम झेल लोगे परमात्मा को, फिर तो कोई
डर ही न रहा। लेकिन अगर तुम बचना चाहते हो, तो फिर तुम परमात्मा को न झेल सकोगे। तब तुम मात्रा में झेलो।
गुरु मात्रा में है। धीरे-धीरे झेलो। गुरु तुम्हें धीरे-धीरे राजी करेगा।
गुरु भी तुम्हें मिटाएगा, पर वह तुम्हारे पूरे भवन को एक साथ आग नहीं लगा देता। वह धीरे-धीरे एक-एक सहारा खींचता है। तुम्हारे बाकी सहारे बने रहते हैं। तुम कहते हो, कोई हर्जा नहीं, यह एक डंडा अलग कर रहा है, कर लेने दो, इतने में क्या बिगड़ेगा! पूरा मकान तो खड़ा है। पर एक-एक डंडा करके वह सब खींच लेता है। एक दिन तुम अचानक पाते हो, सारा भवन गिर गया।
एक-एक ईंट खींचता है गुरु, इसलिए तुम सोचते हो, एक ईंट से क्या बिगड़ता है! ले जाने दो। तुम्हारी कृपणता में भी तुम सोचते हो, एक ईंट से क्या बिगड़ेगा। इतने कृपण तुम भी नहीं हो, एक ईंट तुम भी छोड़ देते हो। मगर तुम्हें पता नहीं कि सारा भवन एक-एक ईंट से बना है। एक ईंट खिंच गई कि गुरु आश्वस्त हो गया कि अब दूसरी भी खींच लेंगे। जब भी खींचेगा, एक ही खींचेगा। इसलिए अब पक्का है कि एक तो तुम खिंचने देते हो, इतने से काम चलेगा; थोड़ी देर लगेगी। और एक-एक ईंट खिंचते-खिंचते एक दिन तुम अचानक पाओगे, तुम्हारा भवन गिर गया।
परमात्मा मात्रा से नहीं खींचता। परमात्मा को आदमी होने का पता नहीं है, गुरु को पता है। परमात्मा अपने ढंग से चलता है; उसका ढंग बड़ा विराट है। उसे आदमी के छोटे-छोटे आंगनों का पता नहीं है; उसे तो बड़े आकाश का पता है।
वह बाढ़ की तरह आता है। तुम अभी बूंद को झेलने को तैयार न थे, वह सागर की तरह

आ जाता है; तुम घबड़ा उठते हो। वह भयंकर सागर की गर्जना और तुम भाग खड़े होते हो।
गुरु तुम्हें आहिस्ता-आहिस्ता थपकी दे-देकर मारता है। मारता वह भी है। क्योंकि तुम जब तक न मिटो, तब तक परमात्मा हो ही नहीं सकता। मिटना तो तुम्हें होगा। तुम्हारा होना ही बाधा है, इसलिए मिटना तो पड़ेगा। मिटने की तैयारी तो सीखनी ही पड़ेगी।
इसलिए मैं कहता हूं कि तुम परमात्मा हो। लेकिन जब तक तुम नहीं मिटे हो, इसका तुम्हें पता न चलेगा। जब तक तुम्हारी सीमा है, तब तक तुम परमात्मा हो, इसका तुम्हें पता न चलेगा। जब तुम्हारी सीमा खो जाएगी और तुम पाओगे कि तुम हो, पहले से भी ज्यादा, पहले से भी पूर्ण, तभी तुम पाओगे कि पहले तो तुम थे ही नहीं, अब पहली दफा हो। लेकिन वह तो मिटोगे तभी होगा।
वह तो बीज जब तक मिटेगा नहीं, तब तक अंकुर न हो पाएगा। और बीज कहता है, पहले भरोसा दिला दो। बीज कहता है, मैं बिना भरोसे के, जो हूं वह मिट जाऊं; फिर पता क्या कि मिटने के बाद जीवन की कोई नईशृंखला फूटेगी या नहीं!
अंडा टूटेगा, तब पक्षी बाहर आएगा। लेकिन पक्षी भीतर से ही कहता है, पहले मुझे भरोसा दिला दो। मेरी सुरक्षा है यह अंडा; इसके भीतर सुख-चैन है; यह टूट जाएगा, इसके टूटने पर मैं बचूंगा? मेरे घर के मिट जाने पर मैं बचूंगा?
तुम भी वही पूछते हो। यह अहंकार तुम्हारा खोल है, सुरक्षा है। इसके भीतर तुम बचे मालूम पड़ते हो। यह तुम्हारा अस्त्र-शस्त्र है, कवच है। और सारा धर्म कहता है, तोड़ो इस अहंकार को। तुम कहते हो, तोड़ तो दें, लेकिन फिर हम बचेंगे? इसके बिना तुम सोच भी नहीं सकते कि तुम कैसे बचोगे।
और कठिनाई यह है कि जब तक न टूटो, तब तक पता कैसे चले। और जब तक पता न चले, तब तक तुम टूटने को राजी कैसे होओ!
इसलिए परमात्मा तुम्हें न फुसला सकेगा। वह वृक्ष है, तुम बीज हो। गुरु बीज भी था, अब वृक्ष हुआ है। तुमने उसे बीज की तरह भी जाना; अभी भी तुम बीज की खोल उसके चारों तरफ टूट गई है, लेकिन लिपटी हुई पाओगे। अभी भी बीज की खोल पड़ी है; टूट गई है; अंकुर हो गया है... ।
गुरु तुम्हें पहले कदम से मिलता है, परमात्मा तुम्हें अंतिम कदम पर मिलेगा। अंतिम कदम बड़ा दूर है। पहला कदम पास मालूम पड़ता है। गुरु में एक सातत्य बन सकता है। परमात्मा में कोई सातत्य नहीं बनता।
इसलिए मैं कहता हूं कि गुरु के द्वार से तुम्हारा परमात्मा से मिलन होगा। और कोई उपाय नहीं है। गुरु के द्वार से ही सदा मिलन हुआ है।
इसलिए नानक ने तो अपने मंदिर को गुरुद्वारा नाम दे दिया। गुरुद्वारा है, वह सिर्फ द्वार है, वह एक खुला द्वार है, जिससे प्रवेश होना है। जिससे बस प्रवेश होना है और जिसे भूल जाना है। गुरु को सदा याद नहीं रखना है। द्वार को कोई याद रखता है? प्रविष्ट हो जाता है; भूल जाता है। मगर जब तक प्रविष्ट नहीं हुए हो, तब तक द्वार की तलाश रहती है। गुरु खाली जगह है। लेकिन बड़ी कठिनाई है गुरु के साथ भी। कठिनाइयां ऐसी हैं, तीन तरह के गुरु होते हैं। एक तो गुरु होता है, जिसको शास्त्रों ने सदगुरु कहा है। उसे तो पहचानना जरा कठिन होता है। उसे समझना भी थोड़ा कठिन होता है। वह थोड़ा बेबूझ होता है, अतर्क्य होता है। उसके पास, उसको समझने को तो बड़ा धीरज चाहिए। उसका व्यवहार भी, उसका बोलना, उसका कहना, उसकी जीवन-विधि, सभी तुम्हारे गणित से थोड़ी अलग होती है। होगी ही। क्योंकि तुमने जो गणित सोचा हुआ है, वह पुराने गुरुओं के आधार पर सोचा है। और कोई एक गुरु दूसरे गुरु जैसा नहीं होता।
अगर तुमने महावीर से गणित सीखा है गुरु का, तो तुम मेरे पास आकर देखोगे कि यह आदमी तो नग्न नहीं है, इसलिए ज्ञानी नहीं हो सकता। और ऐसा आज हो रहा है, ऐसा नहीं। महावीर के समय में भी महावीर से जिसने गणित सीखा गुरु होने का कि गुरु क्या है, वह बुद्ध के पास गया, तो उसने कहा, बुद्ध गुरु नहीं हो सकते, क्योंकि यह तो कपड़ा पहने हुए है। गुरु तो नग्न होता है। बुद्ध के पास जिन्होंने गुरु होने का अर्थ सीखा, वे महावीर को देखकर समझे कि यह जरा जरूरत से ज्यादा है। यह दिखावा है। नग्न होने की क्या जरूरत है? नग्न रहने की जरूरत है, होने की थोड़े ही जरूरत है।

उनका कहना भी ठीक है। अब यह बताने की क्या बात है! नग्न हो, यह पहचान लिया। अब कपड़े उतारकर बाजार में खड़े होना, यह तो जरा प्रदर्शन मालूम पड़ता है! गुरु प्रदर्शन थोड़े ही करता है। उनका कहना भी ठीक है। उनको महावीर गुरु न जंचे।
हिंदुओं को दोनों गुरु न जंचे, न महावीर, न बुद्ध। महावीर की तो हिंदुओं ने बात ही न की। महावीर की चर्चा ही न उठाई। चर्चा न उठाने का कारण था कि महावीर बिल्कुल समझ में ही न आए। चर्चा भी उठाओ तभी, विरोध भी करो तभी, जब कुछ समझ में आता हो।
यह आदमी बिल्कुल अतर्क्य मालूम पड़ा। बारह साल तो मौन रहा; नग्न घूमने लगा; महीनों उपवास करने लगा। इसका ढंग, शैली कुछ समझ में न आई। महावीर उकडूं बैठे थे, जब उनको समाधि हुई। उकडूं! जैसे कोई गौ को दोहता है, तब बैठता है, गौदोहासन में। कभी किसी को हुई थी ऐसी समाधि! लोग पालथी लगाकर समाधि के वक्त बैठते हैं। ये उकडूं काहे के लिए बैठे थे? कोई गौ का दूध लगा रहे थे? वह भी नहीं था। उकडूं बैठे थे। बड़ी हैरानी की बात है।
लेकिन अगर मनसविद से पूछो, शरीरशास्त्री से पूछो, तो इसमें थोड़ा राज मालूम पड़ता है। क्योंकि बच्चा मां के पेट में उकडूं होता है; उसके घुटने उसकी छाती से लगे होते हैं। वह गर्भ की अवस्था है। महावीर इतने सरल हो गए नग्न होकर, ऐसे निर्दोष हो गए, बचपन तो दूर छूट गया, गर्भ की अवस्था आ गई। जैसे छोटा बच्चा सिकुड़ा हुआ पड़ा हो, ऐसे वे उकडूं बैठे थे; जैसे यह सारा अस्तित्व गर्भ बन गया और महावीर उसमें लीन हो गए।
महावीर की सारी व्यवस्था पकड़ में न आ सकी। महावीर को उपेक्षा कर दिया हिंदुओं ने, बात ही उठानी ठीक नहीं है। बात में से बात निकलेगी और यह आदमी कहीं भी पकड़ में नहीं आता।
बुद्ध की बात उठाई, क्योंकि बुद्ध की बात में उपनिषद के स्वर बिल्कुल साफ थे। बुद्ध आधे हिंदू थे। महावीर बिल्कुल हिंदू नहीं थे, ढंग में, जीवन-व्यवस्था में।
बुद्ध की बात उठाई; लेकिन बुद्ध को भी स्वीकार तो करना मुश्किल था, और अस्वीकार भी करना मुश्किल था। इसलिए आधा हिंदुओं ने स्वीकार किया, आधा अस्वीकार किया। दसवां अवतार स्वीकार किया बुद्ध को कि वे भी परमात्मा के अवतार हैं। लेकिन एक शर्त के साथ, कि वे गलत अवतार हैं; ठीक अवतार नहीं हैं। हैं तो अवतार परमात्मा के, लेकिन ठीक नहीं।
और एक कथा हिंदुओं ने गढ़ी, कि बनाया परमात्मा ने नरक और स्वर्ग। नरक कोई जाए ही न, क्योंकि कोई पाप ही न करे। लोग सरल थे, सभी स्वर्ग चले जाएं। तो जिनको नरक में बिठाया था प्रधान बनाकर, वे सब हाथ जोड़कर एक दिन खड़े हुए कि यह तो हम बेकार ही बैठे हैं। रजिस्टर खोले बैठे रहते हैं, कोई आता ही नहीं, खाली पड़ा है। यह काहे के लिए खोला है यह दफ्तर; बंद करो; या किसी को भेजो। उन पर दया करके परमात्मा ने बुद्ध अवतार लिया कि लोगों को भ्रष्ट करो, ताकि लोग नरक जा सकें। ऐसी हिंदुओं ने कहानी गढ़ी।
तो बुद्ध ने लोगों को भड़का दिया, भरमा दिया। हैं तो वे परमात्मा के अवतार, लेकिन नरक की जगह जो खाली पड़ी है, उसको भरने के लिए पैदा हुए।
जैन कृष्ण को नहीं समझ सकते। कृष्ण को नरक में डाला हुआ है। जैन बुद्ध
को नहीं समझ सकते। बुद्ध को जैनों ने भगवान कभी नहीं कहा; महात्मा कहते हैं ज्यादा से ज्यादा, अच्छी आत्मा है। लेकिन अभी बहुत दूर, भगवत्ता से बहुत दूर। बुद्ध को वे कभी भगवान नहीं कह सकते, महात्मा कहते हैं। और महात्मा से तुम आदर मत समझना; वह अनादर का शब्द है। क्योंकि महावीर को भगवान कहते हैं, उनको वे महात्मा नहीं कहते।
तो बुद्ध को नीचे रखते हैं। बड़े होशियार लोग हैं; दुकानदार हैं। महात्मा कहने से कोई झगड़ा भी खड़ा नहीं होता; कोई कह भी नहीं सकता कि तुम कोई अनादर कर रहे हो; लेकिन वे अनादर कर रहे हैं। वे यह कह रहे हैं कि सिर्फ महात्मा ही हो; कोई भगवत्ता को उपलब्ध नहीं हो गए! अभी भगवान होना बड़ा दूर है।
लोग सीखते हैं एक गुरु से पाठ, फिर उस गुरु की शैली उनके मन में रम जाती है। फिर उसी शैली के आधार पर वे दूसरे गुरुओं की जांच करते फिरते हैं; अटकन हो जाती है। प्रत्येक गुरु अनूठा है, अद्वितीय है। उस जैसा न कभी हुआ

है, न कभी होगा। इसलिए सदगुरु को पहचानना बहुत कठिन है। उसको तो वही पहचान सकता है, जो सभी नक्शे, सभी मापदंड नीचे गिरा दे और सीधा आंख खोलकर देखे। जैसे शास्त्र को वही पहचान सकता है, जो अज्ञानी की तरह निर्दोष हो, वैसे ही सदगुरु को भी वही पहचान सकता है, जो निर्मल अज्ञानी है, सरल, खाली। सीधा देखता है, बीच में किसी को नहीं लेता, कि महावीर से सोचेंगे कि बुद्ध से कि कृष्ण से। किसी को बीच में नहीं लेता; आंख में आंख डालता है; सीधा हाथ में हाथ लेता है, साक्षात्कार करता है; तो सदगुरु की पहचान होती है।
मगर यह कठिन प्रक्रिया है। इसमें हिम्मत चाहिए, क्योंकि तुम्हें किसी दूसरे का सहारा नहीं मिलेगा। अकेले तुम ही जाओगे; अपनी किताब और गाइड और कुंजियां साथ न ले जा सकोगे। सब मापदंड छोड़कर जाओगे, भयभीत होने लगोगे; कई बार संदेह पकड़ेगा, संशय पकड़ेगा। सदगुरु के पास यह यात्रा तो करनी ही पड़ेगी।
सदगुरु की उपलब्धि कठिन है; मिल भी जाए, पहचान कठिन है। पहचान भी हो जाए, बहुत दफा छोड़ने का भाव पैदा होगा; बहुत दफा भाग जाना चाहोगे। लेकिन अगर टिके ही रहे, अगर हिम्मतवर रहे, अगर साहसी रहे, तो एक दिन उपलब्ध हो जाओगे। तब सदगुरु द्वार बन जाता है।
फिर दूसरे हैं, असदगुरु। असदगुरु से इतना ही मतलब है, जो द्वार हैं नहीं, लेकिन द्वार दिखाई पड़ते हैं। ये तुम्हें जल्दी से मिल जाएंगे। इनको तुम पहचान लोगे। क्योंकि ये बिल्कुल तुम्हारी भाषा के भीतर आते हैं; ये तुम्हारे तर्क के नीचे पड़ते हैं; अतर्क्य नहीं हैं। ये तुम्हारे हिसाब से चलते हैं। तुम जैसा इनको चाहते हो, वैसा ही ये व्यवहार करते हैं। वस्तुतः ये तुम्हें अपना अनुयायी नहीं बनाएंगे; क्या बनाएंगे! ये तुम्हारे अनुयायी हैं।
तुम कहते हो, सिर घुटाए हुए होना चाहिए गुरु, तो वे सिर घुटाए बैठे हैं। तुम कहते हो, दाढ़ी बढ़ाए होना चाहिए, वे दाढ़ी बढ़ाए बैठे हैं। तुम कहते हो, नग्न होना चाहिए, वे नग्न बैठे हैं। तुम जो कहो, वे तुम्हारी आज्ञा पर हाजिर हैं। बस, तुम्हें ख्वाइश प्रकट करनी है।
असदगुरु जड़ होता है, इस अर्थ में कि वह तुम्हारी आकांक्षा से अपने को ढालता है। वह तुम्हारी तरफ देखता है कि तुम कैसा चाहते हो। उसकी एकमात्र आकांक्षा यह है कि वह गुरु की भांति पूजा जाए, बस। तुम्हारी जो मांग हो, वह पूरी कर देगा। वह रेडीमेड गुरु है। वह तुम्हारी मांग के अनुसार तैयार हो जाता है।
सदगुरु तुम्हारी कोई मांग पूरी नहीं करेगा। वह सिर्फ अपने होने की मांग पूरी कर रहा है। तुम्हें जंचे, ठीक; तुम्हें न जंचे, ठीक। तुम प्रसन्न होओ, अच्छा; तुम अप्रसन्न होओ, अच्छा। तुम आओ तो ठीक, तुम चले जाओ तो ठीक। तुम्हारी भीड़ इकट्ठी हो जाए तो ठीक, सन्नाटा छा जाए, कोई भी न रहे, तो भी ठीक।
सदगुरु को इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम्हारा होना न होना अर्थ नहीं रखता। शिष्य की भीड़ का कोई भी मूल्य नहीं है। लाखों की भीड़ हो, तो भी ठीक है; इने-गिने लोग रह जाएं, तो भी ठीक है; सभी लोग चले जाएं, तो भी ठीक है। वह तुम्हारे आधार से नहीं चलता, वह अपनी आत्मा की आवाज से चलता है। उसके साथ जिनकी चलने की हिम्मत हो, वे थोड़े-से लोग चल पाएंगे। सदगुरु के साथ तो चुने हुए लोग होंगे।
जीसस के साथ मुश्किल से बारह आदमी चल सके। अब चल रहे हैं करोड़ों लोग, लेकिन अब उन्होंने अपनी कल्पना का जीसस पैदा कर लिया है, जो था ही नहीं। अब उन्होंने जो जीसस की धारणा बनाई है, वह झूठी है। जिंदा जीसस तो तोड़ देता उनकी धारणा, मरा जीसस क्या करे!
इसलिए सभी सदगुरु मरने के बाद धीरे-धीरे असदगुरु में परिणत हो जाते हैं--तुम्हारे कारण। अपने कारण नहीं, क्योंकि वे तो हैं ही नहीं। जिंदा में तो वे लड़ते रहते हैं तुमसे, तुम्हारी आकांक्षाओं को पूरा नहीं होने देते। लेकिन जब मर जाते हैं, तब तो कुछ भी नहीं कर सकते। तुम उनके संबंध में किताबें लिखते हो, चित्र बनाते हो; तुम जैसा चाहते हो, उनको बना देते हो। फिर तो वे परवश हैं।

इसलिए मरे हुए गुरुओं की बड़ी पूजा चलती है, सदियों तक चलती है। जिंदा गुरु के साथ बड़ा भय लगता है। जीसस को जिन्होंने सूली दी, उन्होंने ही मर जाने के बाद पूजा शुरू कर दी।
कृष्ण को सामने देखकर जो डर जाते, वे हजारों साल से उनकी गीता पढ़ रहे हैं और सिर झुका रहे हैं! अभी भी तुम्हें कृष्ण मिल जाएं रास्ते पर, तो तुम भयभीत होओगे। तुम कहोगे, गीता भली है। आप कैसे चले आए? गीता के साथ बिल्कुल ठीक चल रहा है। जो अर्थ निकालना है निकाल लेते हैं, जो नहीं निकालना है नहीं निकालते हैं। तुम्हारी सुनता कौन है! हम अपने को गीता में खोज लेते हैं। आपकी कोई जरूरत नहीं है, गीता काफी है। आप विश्राम करें वैकुंठ में; हम गीता पढ़ें यहां संसार में; बिल्कुल सब ठीक चल रहा है। आप यहां न आएं।
तुम थोड़ा सोचो, कृष्ण को घर में ठहरा सकोगे? भरोसे का आदमी नहीं है; पत्नी को भगाकर ले जाए!
अभी कल ही मैं अखबार में पढ़ रहा था कि यू.पी. में एक मुकदमा था अदालत में। एक जमीन का टुकड़ा है, छः एकड़ जमीन का टुकड़ा है, वह राधा-कृष्ण के नाम है। अब एक झंझट खड़ी हो गई कि इतनी जमीन, छः एकड़ बस्ती के भीतर, एक आदमी के नाम रह सकती है कि नहीं। छः एकड़ बस्ती के भीतर, एक आदमी के नाम नहीं रह सकती।
तो वकीलों ने तरकीब निकाली और तरकीब सफल हो गई। वकीलों ने कहा कि राधा कभी उनकी पत्नी तो थी नहीं, प्रेयसी थी। इसलिए दो व्यक्ति हैं ये। यह कोई परिवार नहीं है राधा-कृष्ण। इसलिए तीन-तीन एकड़ एक-एक के नाम है। तीन-तीन एकड़ रह सकती है। एक व्यक्ति के नाम पर पांच एकड़ तक रह सकती है; छः में झंझट थी।
बात हल हो गई। अदालत ने फैसला दे दिया कि यह बात बिल्कुल ठीक है। यह स्त्री राधा कभी इनकी पत्नी तो थी नहीं; पत्नी तो रुक्मिणी थी। यह तो परकीया थी, किसी और की पत्नी रही होगी। भगाई गई थी।
तुम कृष्ण को घर में सुविधा से न ठहरा सकोगे। और अगर कहीं राधा-कृष्ण दोनों ही आ गए, तब तो बिल्कुल न ठहरा सकोगे। कि यह तो जरा ज्यादा हो जाएगा। घर में बच्चों को भी देखना है; बिगड़ जाएं। आप कहीं और ठहर जाएं।
मर जाते हैं सदगुरु, तो लोग अपने अनुकूल उनको बना लेते हैं, साज-संवार लेते हैं, हाथ-पैर काट देते हैं, छांटकर उनकी ठीक मूर्ति बना देते हैं, फिर पूजा सुविधा से चलती है।
फिर तुम्हारा संबंध ही नहीं है गुरु से। जब तक तुम सदगुरु को भी असदगुरु की स्थिति में न ले आओ, तब तक तुम पूजा नहीं कर सकते। क्योंकि सदगुरु की स्थिति में जाने के लिए तो बड़ी कठिनाई से तुम्हें गुजरना पड़ेगा, यह ज्यादा आसान है कि सदगुरु को ही अपनी स्थिति में ले आओ। उन्हीं को उतार लेना आसान है, खुद का चढ़ना मुश्किल है। जिंदा गुरु तो लड़ता रहेगा, तुम्हें चढ़ाने की कोशिश करता रहेगा।
ये दो तरह के गुरु तो ठीक समझ में आते हैं। एक तीसरे तरह के गुरु हैं,
जो गोबर-गणेश हैं; जैसे गणेशपुरी के मुक्तानंद। जिनको न तुम सदगुरु कह सकते, न असदगुरु कह सकते। असदगुरु तो बिल्कुल नहीं हैं; कुछ बुराई नहीं है। सदगुरु भी बिल्कुल नहीं हैं; कुछ पाया भी नहीं है। पर गोबर-गणेशों की पूजा सबसे आसान है। क्योंकि तुमसे कोई किसी तरह के रूपांतरण की अपेक्षा ही नहीं है।
ऐसा हुआ कि मैं नारगोल शिविर को जाता था। गणेशपुरी आश्रम के एक भक्त
ने निमंत्रण दिया कि मैं एक आधा घड़ी वहां रुक जाऊं। मैंने भी सोचा कि चलो, मुक्तानंद को देखते चलें। वह देखना बड़ा महंगा पड़ गया। रुका आधा घड़ी को; मेरे साथ मेरी एक शिष्या थी। महंगा इसलिए पड़ गया कि निर्मला श्रीवास्तव मेरे साथ थी। मुक्तानंद से तो ज्यादा समझदार है। क्योंकि मुक्तानंद को देखकर उसने जो बात मुझे कही, वह यह कि यह आदमी तो बिल्कुल गोबर-गणेश है। आप यहां उतरे ही क्यों?
लेकिन उसी दिन मैंने देखा कि उसके मन में एक बीज आ गया, कि जब मुक्तानंद गुरु हो सकते हैं, तो मैं क्यों नहीं हो सकती! यह आदमी तो बिल्कुल गोबर-गणेश है। उसे उस दिन पता नहीं चला। लेकिन उस दिन मैं साफ-साफ

देख सका कि उसके अंतर्भाव में एक नए अहंकार का जन्म हो गया कि जब मुक्तानंद जैसा आदमी, कुछ भी नहीं है जहां, यह जब गुरु हो सकता है, और सैकड़ों लोग इसकी पूजा कर सकते हैं, तो फिर मैं क्यों गुरु नहीं हो सकती! और यह तो मैं भी स्वीकार करता हूं कि अगर मुक्तानंद और निर्मला श्रीवास्तव में चुनना हो, तो निर्मला ज्यादा होशियार है। पर उसकी यात्रा अभी अधूरी थी। अभी शिष्यत्व के कदम ही उसने रखने शुरू किए थे और गुरु का भाव पैदा हो गया, जो कि होता है पैदा।
इसलिए मैं कहता हूं, वह मुक्तानंद के आश्रम में उस दिन घड़ीभर के लिए जाना महंगा पड़ गया, निर्मला की जिंदगी बिगड़ गई। उसे उस दिन पता भी नहीं चला, उसे आज भी शायद साफ नहीं होगा कि क्या हुआ। लेकिन यह बात देखकर कि जिस आदमी में कुछ भी नहीं है... ।
मैंने उसे कहा भी नहीं कुछ कि कुछ भी नहीं है मुक्तानंद में। यह तो मैं आज कहता हूं। मैंने तो उसकी बात सुन ली। क्योंकि मैंने कहा, अगर मैं कुछ कहूंगा, तब तो और भी पक्का हो जाएगा इसको। मैंने कहा कि सब ठीक है; सब चलता है; लोगों को सब तरह के गुरुओं की जरूरत है। कुछ हैं, जिनको गोबर-गणेशों की जरूरत है, तो उनकी भी तो जरूरत पूरी होनी चाहिए। परमात्मा सभी का ख्याल रखता है!
लेकिन उसका जीवन भ्रष्ट हो गया। जो उसने थोड़ा-सा पाया था, वह भी खो गया अहंकार में।
यह तीसरे गुरु से बचना बहुत जरूरी है। क्योंकि यह तुम्हें कहीं न ले जाएगा। सदगुरु कहीं पहुंचाता है, असदगुरु भटकाता है। और गोबर-गणेश केवल भरमाते हैं। भटकाते भी नहीं, भटकाएं तो भी चलो कुछ हुआ, कहीं तो ले गए! नरक भी ले गए, तो कुछ तो अनुभव होगा; पाप में उतारा, तो भी कुछ तो अनुभव होगा; गलत में ले गए, तो भी सही की तरफ आने के लिए कुछ तो रास्ता बनेगा। क्योंकि गलत का अनुभव भी सही की तरफ लाने के लिए कारण बन जाता है।
एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक एडीसन एक प्रयोग कर रहा था। वह ग्यारह सौ दफा असफल हो गया; तीन साल व्यतीत हो गए। उसके शिष्य सब घबड़ा गए। जो उसके कार्यकर्ता थे साथी, वे सब थक गए। लेकिन वह रोज सुबह चला आता है प्रसन्नचित्त, फिर प्रयोगशाला में लग जाता है, फिर आधी रात तक लगा रहता है।
आखिर एक दिन उसके सहयोगी ने पूछा कि आप थकते ही नहीं! और आप उदास भी नहीं होते! और आप यह भी नहीं देखते कि ग्यारह सौ बार आप असफल हो चुके! एडीसन ने कहा कि इससे तो मैं प्रसन्न हूं। कम से कम ग्यारह सौ गलतियां
अब मैं न दोहराऊंगा। सत्य करीब आ रहा है। ग्यारह सौ रास्ते गलत सिद्ध हो गए; अब चुनने को बहुत थोड़े ही बचे होंगे; किसी भी दिन ठीक रास्ता आ ही जाएगा हाथ में। मैंने खोया नहीं है इन ग्यारह सौ में कुछ, पाया ही है।
अगर मान लो दस रास्ते हैं; और नौ गलत हैं और एक सही है। तो नौ पर तुम भटके और लौट आए, तो दसवां करीब आ रहा है। हाथ में कुछ दिखाई नहीं पड़ता कि क्या पाया; लेकिन तुम कुछ पा रहे हो।
तो असदगुरु भी सदगुरु तक पहुंचाने का कारण हो जाए, लेकिन गोबर-गणेश भरमाते हैं। वे न तो भटकाते हैं, न पहुंचाते। तुम कोल्हू के बैल के चक्कर में पड़ जाते हो, घूमते रहते हो। उनमें इतना बुरा भी नहीं है कि उससे भी कुछ अनुभव ले लो; उनमें इतना कुछ अच्छा भी नहीं है कि जो तुम्हें उत्तुंग शिखरों पर ले जाए। उनमें कुछ भी नहीं है। वस्तुतः उनमें तुम जो भी देख रहे हो, वह तुम्हारा प्रोजेक्शन है।
सदगुरु में कुछ है, असदगुरु में भी कुछ है। कृष्णमूर्ति में भी कुछ है
और रासपुतिन में भी कुछ है; ताकत है, शक्ति है। रासपुतिन भटकाएगा। अगर उसके चक्कर में पड़ गए, तो बुरे नरक में डाल देगा। लेकिन वह भी अनुभव होगा; वह भी शायद जरूरी था जीवन की प्रौढ़ता के लिए। शायद तुम अंधेरे में न गिरो, तो प्रकाश की अभीप्सा ही पैदा न हो। शायद आवश्यक था, अनिवार्य था।
लेकिन फिर गोबर-गणेश हैं, वे कुछ भी नहीं करते। उन पर तुम प्रोजेक्ट करते हो। तुम जो भी सोचते हो वे हैं, वह तुम्हारी धारणा है, वह तुम्हारी परिकल्पना है।

ऐसा हुआ, मेरे एक परिचित हैं, सीधे-सादे आदमी हैं। उनसे मैंने एक दिन कहा कि तुम्हें अगर गोबर-गणेश गुरु बनना हो, तो तुम बन सकते हो। तुम बिल्कुल सीधे-सादे हो; जीवन में कुछ बुराई भी नहीं है; कुछ भलाई भी नहीं है। इधर-उधर का कुछ भी नहीं है, कोई अति नहीं है। न मांस खाते, न शराब पीते, न सिगरेट पीते। कुछ भी नहीं। न कोई चोरी की। उतनी भी हिम्मत नहीं है। न झूठ बोले कभी। सच को भी नहीं पा लिया है। झूठ भी नहीं बोले हो। तुम बिल्कुल सज्जन आदमी हो; तुम गोबर-गणेश गुरु बन सकते हो।
उन्होंने कहा, क्या मतलब?
मेरे साथ यात्रा पर कलकत्ता जा रहे थे। तो मैंने कहा, तुम ऐसा करो, तुम सिर्फ चुप रहना; तुम बोलना भर नहीं कलकत्ते में। क्योंकि तुम बोले, तो पकड़े जाओगे। तुम बोलना भर नहीं। तुम चुप रहना। लोग मुझसे पूछेंगे, आप कौन हैं? मैं कहूंगा, आप बड़े गुरु हैं। बड़े पहुंचे ज्ञानी हैं। बोलते नहीं। मौन रहते हैं।
तीन दिन मेरे साथ रहे। हालत ऐसी आ गई कि लोग मेरे पैर पीछे छुएं, पहले उनके छुएं। तीन महीने रह जाते, तो लोग मुझे भूल ही जाते! लौटकर रास्ते में मुझसे कहने लगे, आपने ठीक कहा। और लोगों की कुंडलिनी जगने लगी उनके स्पर्श से। उनकी खुद नहीं जगी! मगर लोग मुझसे पूछने लगे कि ये बाबा तो बड़े चमत्कारी हैं। इन्होंने सिर पर हाथ रखा, हमारी कुंडलिनी जग गई। कल्पना, प्रक्षेपण, प्रोजेक्शन, तुम जो चाहते हो, वह होने लगा। किसी को रोशनी दिखने लगी। आदमी की कल्पना बड़ी प्रगाढ़ है!
तो पहले तो गोबर-गणेशों से बचना सर्वाधिक। अपने प्रक्षेपण, अपनी कल्पना, अपने सपनों को आरोपित करने से बचना।
सदगुरु कोई अनुभव नहीं देता, सदगुरु तो अनुभव छीनता है। वह तो तुम्हें उस जगह ले आता है, जहां सब अनुभव गिर जाते हैं। केवल तुम ही रह जाते हो, अत्यंत निर्दोष, अत्यंत निर्विकार।
अनुभव भी विकार है। कुंडलिनी जग रही है, प्रकाश दिखाई पड़ रहा है, कमल खिल रहे हैं, चक्र खुल रहे हैं--सब विकार हैं, सब रोग हैं। इनको तुम गुण मत समझ लेना; इन्हीं की वजह से गोबर-गणेश पुज रहे हैं। तुम पूज रहे हो, तुम ही प्रक्षेपण कर रहे हो। अनुभव भी तुम्हारा है, धारणा भी तुम्हारी है, घटना भी तुम्हें घट रही है, वहां कोई है ही नहीं। और जब एक दफा पता चल जाता है कि ऐसा हो रहा है... ।
निर्मला को पता चल गया मुक्तानंद के आश्रम में कि ऐसा हो रहा है; फिर
अब उसके द्वारा लोगों की कुंडलिनी जग रही है। वह समझ गई तरकीब कि यह तो गुरु होना बिल्कुल आसान है। हाथ रख दो किसी के सर पर, कुंडलिनी जग गई, किसी को प्रकाश दिखाई पड़ गया। सौ पर रखो, पच्चीस को कुछ न कुछ हरकत होगी। वह जो हरकत हो रही है, वह उसके मन की है। उससे लेने-देने का कोई संबंध नहीं है गुरु का।
सदगुरु तुम्हें सारे अनुभवों से मुक्त करता है। असदगुरु तुम्हें विकृत अनुभवों में ले जाता है। गोबर-गणेश तुम्हें काल्पनिक अनुभवों में ले जाते हैं।
अगर तुम निर्दोष चित्त हो, तो तुम सदगुरु को खोज लोगे। लेकिन अगर तुम कल्पनाशील हो और तुम मुफ्त कुछ चाहते हो, तो तुम गोबर-गणेशों के चक्कर में फंस जाओगे, क्योंकि वहां मुफ्त मिलता है। छूते वे हैं, कुंडलिनी तुम्हारी जगती है! मुफ्त मिलता है।
और अगर तुम कुछ विकृत आकांक्षाएं रखते हो, कि हाथ से राख आ जाए, कि ताबीज निकल आए, कि गड़ी संपत्ति दिखाई पड़ने लगे, तो फिर तुम किसी असदगुरु के चक्कर में पड़ जाओगे।
जब मैं ये तीन विभाजन कर रहा हूं, तो किसी गुरु के विरोध में या पक्ष में कुछ नहीं कह रहा हूं। मैं तुमसे कह रहा हूं कि ये तीन तुम्हारे भीतर की संभावनाएं हैं।
अगर तुम गलत मांग चाहते हो, कि गड़ा हुआ खजाना दिख जाए, छूने से लोहा सोना हो जाए, तो तुम असदगुरु के चक्कर में पड़ जाओगे। अगर तुम मुफ्त अनुभव चाहते हो, बिना कुछ किए कुछ मिल जाए, किसी के आशीर्वाद से, किसी के प्रसाद से, तो तुम गोबर-गणेशों के चक्कर में पड़ जाओगे। अगर तुम कुछ भी नहीं चाहते

हो सिवाय सत्य के; कुछ भी नहीं चाहते हो सिवाय परमात्मा के; कुछ भी नहीं चाहते हो केवल स्वयं की आत्मा के; स्वयं को जानना चाहते हो, तो ही तुम सदगुरु को खोज पा सकते हो।

तीसरा प्रश्नः अर्जुन गीता का ज्ञान सुनते-सुनते परम ज्ञान को उपलब्ध हो गया या उसके बाद से उसकी भक्ति-साधना या शिष्य-साधना का प्रारंभ हुआ? उसे भगवत्प्राप्ति कब और कैसे हुई?

अर्जुन सुनते-सुनते ही परम भाव को प्राप्त हो गया; उसे कुछ करना नहीं पड़ा। करना भी एक भ्रांति है। कुछ करना पड़ेगा परमात्मा को पाने के लिए, यह भी अहंकार की ही अवधारणा है। परमात्मा मौजूद है; तुम्हें जागना है, कुछ करना नहीं है। कुछ करना है तो बस जागना ही करना है, और कुछ भी नहीं करना है। आंख खोलनी है; सामने खड़ा है परमात्मा। भीतर देखना है; भीतर मौजूद है। वृक्ष को छूना है; वही तुम्हारे हाथ में आ जाएगा। पशुओं की आंखों में झांकना है। हवाओं के गुंजन को सुनना है वृक्षों से निकलते हुए। उसकी ही गूंज तुम्हें सुनाई पड़ जाएगी। असली सवाल उसे खोजना नहीं है, वह तो है। खो गए हो तुम। परमात्मा नहीं खो गया है।
मछली पूछती है, सागर कहां है! सागर में ही पैदा हुई है, सागर में ही लीन होगी। पूछती है, सागर कहां है! मछली सो गई है, होश से रिक्त हो गई है।
करने का सवाल नहीं है। अगर तुम सदगुरु को सुन लो, जो कि सबसे कठिन करना है। क्योंकि उस सुनने में ही तुम्हें अपने मन की सारी धारणाएं हटाकर रख देनी होंगी; उस सुनने में ही तुम्हें अपने मन के ऊपर छाए सारे विचारों के पत्ते अलग कर देने होंगे, ताकि नीचे की जल-धार प्रकट हो जाए। अगर तुम सदगुरु को सुन सको, तो सुनना ही ध्यान हो जाएगा। अगर तुम अपने को बीच में डालकर, सदगुरु जो तुमसे कहे, उसे विकृत न करो, तो उसकी हर चोट तुम्हें जगाने का कारण हो जाएगी।
अर्जुन जाग गया कृष्ण को सुनते-सुनते। इसलिए तो भारत में गीता के पाठ
का इतना माहात्म्य हो गया। वह माहात्म्य इसलिए नहीं हो गया कि गीता में कुछ ऐसी बातें कही हैं, जो उपनिषदों में नहीं कही हैं; या गीता में कुछ ऐसी बातें कही हैं, जो वेद में नहीं हैं। नहीं, गीता में कुछ भी नया नहीं कहा है; वह सभी उपनिषदों का निचोड़ है। लेकिन यह खबर फैल गई भारत के चित्त में कि अर्जुन सुनते-सुनते ज्ञान को उपलब्ध हो गया। ऐसा दावा किसी उपनिषद का नहीं है कि किसी उपनिषद को सुनते-सुनते कोई ज्ञान को उपलब्ध हो गया हो। लेकिन अर्जुन कृष्ण को सुनते-सुनते ज्ञान को उपलब्ध हो गया, यह बात फैल गई चेतना में। और तब से गीता का पाठ शुरू हुआ। लोग पाठ कर रहे हैं रोज कि शायद पाठ करते-करते ज्ञान को उपलब्ध हो जाएं।
हो सकते हैं, अगर पाठ हो। लेकिन पाठ कहां होता है! अगर तुम्हारा मन हट जाए और सिर्फ गीता ही गूंजती रह जाए, तुम्हारे अर्थ विलीन हो जाएं, सिर्फ गीता की ध्वनि ही तुम्हारे अंतर्तम में बजने लगे, तो घटना घट जाएगी। सुनते-सुनते ज्ञान घटा है।
महावीर ने कहा है कि मेरे चार घाट हैं, श्रावक, श्राविका, साधु, साध्वी। इन चार घाटों से मेरा तीर्थ है। इन चारों से लोग मोक्ष को जा सकते हैं।
यह बड़े मजे की बात है कि वे कहते हैं, श्रावक-श्राविका भी मेरे घाट हैं! श्रावक वह जो सुनने में समर्थ हो गया है, श्रवण में कुशल हो गया है। श्राविका वह स्त्री जो सुनने में योग्य हो गई है, जो हृदय से सुनने लगी है, जिसका मन बाधा नहीं देता।
मेरे देखे, जो श्रावक हो सकता है, उसे साधु होने की जरूरत ही नहीं; वह
तो जो श्रावक नहीं हो सकता, उसकी मजबूरी है कि वह साधु हो। साधु का मतलब है, कुछ करना पड़ेगा। साधना पड़ेगा, साधु का मतलब है। श्रावक का मतलब है, सुनना काफी है; सत्य का वचन सुनना काफी है, करने को कुछ भी नहीं है फिर। सब होना वैसे ही हो जाता है, सुनते ही हो जाता है।
कृष्णमूर्ति निरंतर इस पर जोर दे रहे हैं। वे यही कह रहे हैं कि न ध्यान की जरूरत, न साधना की जरूरत। मैं क्या कह रहा हूं, इसे सुन लो। राइट

लिसनिंग, ठीक-ठीक सुन लो। सम्यक श्रवण पर वे बहुत ज्यादा आग्रह कर रहे हैं। उनके सुनने वाले भी, जो चालीस-चालीस साल से सुनते हैं, वे भी उनसे पूछते हैं कि वह तो हम समझ गए; करें क्या?
कृष्णमूर्ति खीझने तक लगे हैं, चिड़चिड़ा जाते हैं। चालीस साल काफी होता है; पूरी जिंदगी गंवाई इन्हीं नासमझों के साथ समझा-समझाकर कि सिर्फ सुन लो। और वे फिर भी कहते हैं, करें क्या? कृष्णमूर्ति कहते हैं, कुछ न करो! वे पूछते हैं, कैसे करें? यह कुछ न करो, कैसे करें? यही तो नहीं हो रहा है!
कृष्णमूर्ति सिर्फ श्रावक के ही घाट से लोगों का तीर्थ बनाना चाहते हैं। महावीर ज्यादा समझदार हैं। उन्होंने कहा, तीर्थ मैं चार बनाता हूं, श्रावक-श्राविका के दो, साधु-साध्वी के दो। जानकर उन्होंने, क्योंकि कुछ लोग हैं, जो बिना किए मानेंगे ही नहीं। हालांकि करने में कोई मतलब नहीं है। जब जागेंगे, तब पाएंगे कि न भी किया होता तो भी हो जाता, लेकिन दौड़-धूप करनी बदी थी; उछलकूद करनी जरूरी थी; वह बिना किए उनसे नहीं हो सकता था।
वह ऐसा है कि तुम्हारे सारे संसार का अनुभव करने का अनुभव है। तुमने
सब किया है। जब भी किया है, तभी कुछ पाया है। जब नहीं किया है, तो खोया है। कर-करके भी खो देते हो, तो बिना किए तो पाने का सवाल ही नहीं है। संसार का पूरा सार अनुभव यह है कि करके मिल जाए, तो भी बहुत है। न करके तो कैसे मिलेगा!
इसी अनुभव को लेकर तुम मुझे भी सुनने आए हो, कृष्णमूर्ति को सुनने जाओगे, महावीर को सुनोगे, कृष्ण को सुनोगे, तो गड़बड़ होगी।
अर्जुन की भाव-दशा बड़ी अलग थी। अर्जुन ने करके देख लिया। और करने की आखिरी घड़ी आ गई इस कुरुक्षेत्र के मैदान में, युद्ध आ गया। करने का आखिरी परिणाम यह महाहिंसा आ गई। सब करके देख लिया, अब यह महामृत्यु हाथ में आ रही है। यह बड़ी प्रतीकात्मक बात है।
तुम कर-करके एक दिन पाओगे, मृत्यु हाथ में आती है, कुछ हाथ में नहीं आता। न करने से मिलता है जीवन, करने से मिलती है मृत्यु। न करने से मिलती है शांति, करने से मिलता है युद्ध।
यह अर्जुन कर-करके युद्ध की घड़ी में आ गया। सारा परिवार युद्ध में फंस गया। मित्र, प्रियजन सब खड़े हैं। मौत सब की गर्दन पर बंधी है। यह अर्जुन यह देखकर निष्पत्ति अपने सारे उपायों की अब तक, भयभीत हो गया। उसने कृष्ण को कहा कि मेरे हाथ ढीले हुए जाते हैं, गांडीव शिथिल हो गया है। मैं लड़ न सकूंगा। इसका सार क्या है? इनको मारकर अगर मैंने राज्य भी पा लिया, तो क्या पा लूंगा? जीवनभर रोऊंगा, पीड़ित होऊंगा। इतनों को मिटाकर सिंहासन पाया, तो वह सिंहासन ऐसा रक्त-रंजित हो जाएगा, उससे ऐसी दुर्गंध आएगी, कि मैं उस पर बैठ भी न सकूंगा। वह सोने का सिंहासन मरघट मालूम पड़ेगा। नहीं, मुझे इससे बचाओ। यह कर-करके मैं यहां आ गया। और अब यह करने की आखिरी निष्पत्ति है कि ये गर्दनें, ये जीते हुए लोग, ये सब मेरे प्रियजन हैं, उस तरफ, इस तरफ।
यह गृहयुद्ध था; इसमें सब बंट गए थे। एक भाई इस तरफ था, दूसरा भाई उस तरफ था। गुरु उस तरफ खड़े थे, जिनके चरणों में बैठकर अर्जुन ने सब सीखा। उन्हीं की गर्दन को काटना पड़ेगा! उन्हीं से सीखा सब, यह धनुर्विद्या उन्हीं का दान है। और आज उन्हीं की छाती बेधनी पड़ेगी! या जिस शिष्य को उन्होंने बड़ा किया और जिस शिष्य को इतना चाहा, इतना चाहा कि जिस पर सब उंडेल दिया, उसी शिष्य को आज इस बुढ़ापे में गुरु को मारना पड़ेगा! कि अपने बेटे की तरह जिसे बड़ा किया, सब दिया, आज उसकी गर्दन अपने हाथ से काटनी पड़ेगी! यह सब बड़ी बेहूदी बात हो गई है।
भीष्म उस तरफ खड़े हैं। जिनके प्रति अर्जुन के मन में बड़ी अगाध, प्रगाढ़ श्रद्धा है, जो उस कुल का गौरव हैं। इस भीष्म पितामह को, इस बूढ़े को मारना पड़ेगा? नहीं, यह बात जंचती नहीं। यह तो करने की बड़ी दुर्गति हो गई। यह कृत्य तो महाविभीषक हो गया।
यह करने की निष्पत्ति है। इसे थोड़ा समझो। करने के पीछे सदा अहंकार है। अहंकार सदा युद्ध में ले आता है। अहंकार यानी कलह; अहंकार संघर्ष है। और सभी अहंकार अंततः कुरुक्षेत्र में पहुंच जाते हैं। इसलिए अर्जुन के मन

में बड़ी बिगूचना है, बड़ी विडंबना है, बड़ी चिंता, ऊहापोह है। उसके हाथ निश्चित कंप गए होंगे। वह श्रेष्ठतम व्यक्ति था वहां। किसी और के न कंपे। अब यह थोड़ा समझने जैसा है, क्योंकि महाभारत की कथा बड़ी अनूठी है। वहां युधिष्ठिर थे, जिन्हें धर्मराज कहा जाता है। उनके कंपने थे हाथ! उनके नहीं कंपे। कोई पूछता नहीं कि यह कैसा अन्याय हो रहा है! युधिष्ठिर धर्मराज थे, उनके हाथ कंपने थे, उनका गांडीव गिरना था, उनके गात शिथिल हो जाते। वे कृष्ण के पैर पकड़ लेते और कहते कि मैं छोड़ता हूं; संन्यास लेता हूं। लेकिन नहीं, यह नहीं हुआ। कारण है।
महाभारत सूचक है। वह यह कह रहा है, युधिष्ठिर धर्मराज थे, एक महापंडित
की तरह। धर्म उनके जीवन की जिज्ञासा न थी, ऊपर का आचरण था। शास्त्र अनुकूल चलने की परंपरा थी, इसलिए चले थे। लेकिन कोई जीवन की क्रांति न थी। धर्मराज थे, फिर भी जुआ खेल सकते थे, पत्नी को दांव पर लगा सकते थे। पंडित थे, ज्ञानी नहीं थे। धर्म क्या कहता है, यह सब जानते थे, लेकिन यह धर्म की उदभावना अपने ही प्राणों से न हुई थी। सज्जन थे, धार्मिक न थे। इसलिए उनको कोई अड़चन न हुई।
पंडित लड़ सकता है। उसको कोई अड़चन नहीं है। पंडित कभी धर्म को जीवन का हिस्सा नहीं मानता, बुद्धि का हिस्सा मानता है।
अगर किसी को शास्त्र के संबंध में कोई अड़चन होती, तो युधिष्ठिर हल कर देते। लेकिन जीवन की अड़चन तो वे खुद ही हल नहीं कर सकते थे। वह प्रश्न भी उन्हें न उठा।
प्रश्न उठा अर्जुन को, जिसको धार्मिक कहने का कोई भी कारण नहीं है। न
तो वह कोई धर्मज्ञाता था, न कोई धर्मराज था। जीवनभर युद्ध ही किया था; एक शुद्ध क्षत्रिय था, अहंकारी था, अहंकार को प्रखर त्वरा में जाना था; वही उसकी जीवन-सिद्धि थी। इसको कठिनाई आ गई!
अहंकार को जिसने जीया है, एक न एक दिन कठिनाई उसे आ जाएगी। एक दिन वह पाएगा कि अहंकार तो बड़ी दुर्गति में ले आया।
तो इसके हाथ शिथिल हो गए हैं। यह कहता है, अब मैं यह करना छोड़कर भाग जाना चाहता हूं। इसका करना असफल हो गया है। इसलिए न करने की बात इसको समझ में आ सकी। यह कर-करके देख लिया, फल कुछ पाया नहीं, फल यह है कि युद्ध हो रहा है। बोए थे बीज आशा में कि मधुर फल लगेंगे। हिंसा लगी, जहरीले फल आ गए। अगर ये ही फल हैं कृत्य के, तो अर्जुन कहता है, छोड़ता हूं सब; मैं संन्यस्त हो जाता हूं। मैं जाता हूं, मैं भाग जाता हूं। इसी से उसकी गूढ़ जिज्ञासा उठी। इसलिए मैं निरंतर कहता हूं, जिनके अहंकार परिपक्व नहीं हैं, वे समर्पण नहीं कर सकते। अहंकार चाहिए पहले पका हुआ, तभी समर्पण हो सकता है। कच्चा, अनपका, अधूरा अहंकार है, कैसे समर्पण करोगे! कर भी दोगे, तो हो न पाएगा; अधूरा रहेगा। अनुभव ही न हुआ था।
यह अर्जुन पक गया था। क्षत्रिय यानी अहंकार। और फिर क्षत्रियों में अर्जुन, अहंकार का गौरीशंकर। वह कहता है, मुझे जाने दो।
कृष्ण ने इसलिए उसे जो संदेश दिया, वह बड़ा अनूठा है। वह कह रहा है कि मुझे जाने दो, मैं छोड़ दूं सब। लेकिन कृष्ण जानते हैं, वह इतना गहरा क्षत्रिय है अर्जुन कि यह छोड़ना भी कृत्य ही है, यह भी कर्म है, त्याग भी कर्म है। वह कहता है, मैं छोड़ दूं। मैं अभी भी बचा है। लडूंगा तो मैं, छोडूंगा तो मैं। युद्ध बेकार हुआ, इसलिए मैं त्याग करता हूं। लेकिन मैं त्याग के भीतर भी बचेगा। कृष्ण जानते हैं, यह जंगल भागकर संन्यासी हो जाएगा, तो भी अहंकार से बैठा रहेगा अड़ा हुआ। यह संन्यासी हो नहीं सकता। यह इतना आसान नहीं है।
संन्यास बड़ी गूढ़ घटना है; आसान नहीं है, बड़ी नाजुक है; तलवार की धार पर चलना है। इतना सरल होता कि भाग गए, संन्यासी हो गए, तब तो संन्यास में और संसार में बस जरा-सी दौड़ का ही नाता है; कि छोड़ दी दुकान, भाग गए; मंदिर में बैठ गए, संन्यासी हो गए। तो यह तो ऐसा हुआ कि जैसे संसार बाहर है, भीतर नहीं है।
संसार भीतर है और अर्जुन की दृष्टि में है। इसलिए कृष्ण ने कहा कि ऐसे छोड़ने से कुछ न होगा; असली छोड़ना तो वह है कि तू कर भी और जान कि नहीं करता है। ऐसे कर कि कर्ता का भाव पैदा न हो, वही संन्यास है। तू परमात्मा को

करने दे, तू बीच से हट जा। अगर तू सच में ही समझ गया है कि करने का फल दुखद है, कर्ता का भाव पीड़ा लाता है, हिंसा लाता है, अगर तू ठीक से समझ गया, तो अब यह संन्यास की बात मत उठा। क्योंकि तब संन्यास भी तेरे लिए करना ही होगा; तब तू संन्यासी हो जा, कर मत। यही फर्क है। कोशिश मत कर, हो जा। चेष्टा मत कर, बस हो जा।
अर्जुन यही पूछता है कि यह कैसे होगा! यह कैसे होगा! संदेह उठाता है।
और कृष्ण समझाए चले जाते हैं। इस समझाने में ही अर्जुन की पर्त-पर्त टूटती चली जाती है। एक-एक पाया कृष्ण खींचते जाते हैं। आखिरी घड़ी आती है, जहां अर्जुन कहता है, मेरे सारे संदेह गिर गए; मैं निःसंशय हुआ हूं; तुमने मुझे जगा दिया।
फिर वह युद्ध करता है; फिर वह भागता नहीं। फिर भागना कहां! फिर भागना किससे! फिर वह परमात्मा के चरणों में अपने को छोड़ देता है, वह निमित्त हो जाता है। वह कहता है, अब तुम जो करवाओ। लड़वाओ, लडूंगा। भगाओ, भागूंगा। अपनी तरफ से कुछ न करूंगा। अपने को हटा लेता है।
यह जो अकर्ता भाव से किया हुआ कर्म है, यही मुक्ति है। ऐसे कर्म की रेखा किसी पर छूटती नहीं, कोई बंधन नहीं बनता। करते हुए मुक्त हो जाता है व्यक्ति। गुजरो नदी से, और पैर पानी को नहीं छूते। बाजार में खड़े रहो, और बाजार का धुआं तुम्हें स्पर्श भी नहीं करता।

अब सूत्रः
और हे अर्जुन, जो पुरुष अकल्याणकारक कर्म से तो द्वेष नहीं करता है और कल्याणकारक कर्म से आसक्त नहीं होता है, वह शुद्ध सत्वगुण से युक्त हुआ पुरुष संशयरहित मेधावी अर्थात ज्ञानवान और त्यागी है।
जो अकल्याणकारक कर्म से द्वेष नहीं करता और कल्याणकारक कर्म की कामना नहीं करता है... ।
क्योंकि जब तक तुम कहोगे, यह न हो और यह हो; ऐसा न हो और ऐसा हो; रात न हो, दिन हो; दुख न हो, सुख हो; मृत्यु न हो, जीवन हो; जब तक तुम चुनोगे, तब तक अहंकार बना रहेगा। चुनाव अहंकार है। चुनावरहित हो जाना, च्वाइसलेस हो जाना, निरहंकारिता है।
तो कृष्ण कहते हैं, इसकी तू फिक्र ही मत कर कि क्या अकल्याणकारक है। छोड़ उसी पर। वही जानता होगा। जो पूरे को जानता है, वही जानता होगा। तू छोड़ दे उसी पर। और न तू कल्याण की कामना कर, कि जो ठीक है, वह मैं करूं। तू बिल्कुल छोड़ दे। तू बीच से हट जा। तू अपने हाथ उसके हाथ बन जाने दे। अपनी आंखें उसकी आंखें बन जाने दे। तेरे हृदय में तू मत धड़क, उसे धड़कने दे।
और यह महाभाव घटता है। ऐसा महाभाव जब घटता है, तभी हम कहते हैं, कोई व्यक्ति भगवत्ता को उपलब्ध हो गया। तब वह कोई चुनाव नहीं करता; तब उसका होना सरल है। जैसे नदी बहती है सागर की तरफ, ऐसा ही वह भी बहता है। उसके होने में फिर कोई कृत्य नहीं रह जाता। कर्म तो बहुत होते हैं, कर्ता नहीं रह जाता; करने का भाव नहीं रह जाता।
जो कल्याणकारक कर्म में आसक्त नहीं, अकल्याणकारक कर्म से द्वेष नहीं करता, वही संशयरहित होकर मेधा को, त्याग को उपलब्ध होता है।
त्याग, कर्ता का त्याग है; त्याग, अहंकार का त्याग है। तुमने अगर त्याग भी किया और अहंकार बच गया, तो त्याग झूठा हो गया, व्यर्थ हो गया। इस ढंग से करना त्याग कि अहंकार न बच पाए। बस, यही कला है; सारे धर्म की कला इतनी है। इस भांति छोड़ना कि छोड़ने वाला निर्मित न हो जाए। छोड़ना जरूर, छोड़ने वाले को मत बनने देना।
यह कैसे करोगे? इसका एक ही उपाय है कि तुम अपने को परमात्मा के हाथ में छोड़ दो। वह बुरा कराए तो बुरा, भला कराए तो भला। वह नाटक में तुम्हें रावण बना दे, तो रावण; वह राम बना दे, तो राम। तुम यह मत कहना कि हम रावण का पार्ट न करेंगे। तुम तो कहना कि तुम डायरेक्टर हो, तुम जो पात्र दे दोगे, हम वही करेंगे। हमारा कुल काम इतना है, जो तुम दे दोगे, हम उसे पूरी तरह करेंगे। वह रावण बना दे, तो रावण; वह राम बना दे, तो राम। वह राजा बना दे, तो राजा; वह रंक बना दे, तो रंक। जो उसकी मर्जी।

उसकी मर्जी से भिन्न जरा भी न सोचने का नाम संन्यास है।
क्योंकि देहधारी पुरुष के द्वारा संपूर्णता से सब कर्म त्यागे जाना शक्य भी नहीं है, इससे जो पुरुष कर्मों के फल का त्यागी है, वह ही त्यागी है, ऐसा कहा जाता है।
तुम सारे कर्म तो छोड़ ही नहीं सकते। छोड़ना भी कर्म है। आंख बंद करोगे,
वह भी कर्म है। भोजन करोगे, वह भी कर्म है। श्वास लोगे, वह भी कर्म है। जंगल जाओगे, वह भी कर्म है। सोओगे, सुबह उठोगे, भूख लगेगी, भिक्षा मांगोगे, वह भी कर्म है।
कर्म से भागोगे कैसे? राजा का कर्म अलग है, भिखारी का कर्म अलग है, लेकिन दोनों कर्म हैं। अलग कितने ही हों, उनका कर्म होना तो समान ही है। तो कृष्ण कहते हैं, यह शक्य भी नहीं है कि कोई सारे कर्मों को छोड़ दे।
फिर शक्य क्या है? शक्य इतना ही है कि फलाकांक्षा छोड़ दे; आकांक्षा न रखे। जब तुमने सारे कर्म उस पर छोड़ दिए, तो फल की आकांक्षा अपने आप छूट जाती है। इस कीमिया को ठीक से समझ लेना।
जब तक तुमने अपने हाथ में कर्मों का चुनाव रखा है, तब तक फल की आकांक्षा नहीं छूटेगी। तब तुम सफल होना चाहोगे, असफल न हो जाओ, यह भय पकड़ेगा। लेकिन जब तुमने सभी उस पर छोड़ दिया, तो वही असफल होता है, वही सफल होता है। उसको असफल होने का मजा लेना हो, ले; उसको सफल होने का मजा लेना हो, ले। तुम सिर्फ निमित्त हो जाते हो।
निमित्त शब्द बड़ा प्यारा है। इसे तुम कुंजी की तरह याद रखो, निमित्त। जैसे खूंटी है; तुम आए, कोट टांग दिया, तो खूंटी यह नहीं कहती कि कोट न टंगने देंगे। तुम आए, कमीज टांग दी, तो खूंटी यह नहीं कहती कि कमीज नहीं टंगने देंगे। कल कोट टांगा था, आज भी कोट टांगो। तुमने कोट टांगा, आज रुपए हैं, कल रुपए नहीं हैं। खूंटी यह नहीं कहती कि देखो, बिना रुपए के कोट मत टांगो, इससे मन में बड़ा विषाद होता है। और इससे चित्त में बड़ी ग्लानि और पराजय का भाव पैदा होता है। और एक दिन तुम खूंटी पर कुछ भी नहीं टांगते, तो खूंटी यह नहीं कहती कि बिल्कुल नंगा, भिखमंगा छोड़ दिया; कुछ तो टांगो। खूंटी निमित्त मात्र है; जो भी टांगो, टंग जाता है। ऐसे तुम खूंटी की तरह हो जाओ। परमात्मा जो टांगे, टंग जाने दो, तब फिर फल की कोई आकांक्षा नहीं है। किसी दिन न भी टांगे, तो भी मौज है।
तथा सकामी पुरुषों के कर्म का ही अच्छा, बुरा और मिश्रित, ऐसे तीन प्रकार का फल मरने के पश्चात भी होता है... ।
और वह जो व्यक्ति आकांक्षा नहीं छोड़ता फल की, वह जो भी करता है, इतनी कामना से भरकर करता है, इतने द्वेष और लोभ से भरकर करता है कि लोभ और द्वेष की लकीरें उसके चित्त पर छूटती हैं, गहरी होती हैं, बनती हैं, सघन होती हैं। और इस जीवन के बाद भी उसके साथ जाती हैं।
जो व्यक्ति कामना से भरकर कर्म करता है, अहंकार से भरकर कृत्य करता है, कर्ता को बचाता है, उसके ऊपर लकीरें ऐसे खिंच जाती हैं कर्म की, जैसे किसी ने पत्थर पर खींच दी हों। वह फिर उसका जीवन उन लकीरों से घिरा हुआ चलता है। इसको ही हमने कर्म का सिद्धांत कहा है।
जो व्यक्ति सब कुछ उस पर छोड़ देता है, सब कुछ अस्तित्व पर छोड़ देता है,
उस पर भी लकीरें खिंचती हैं, लेकिन वे ऐसे खिंचती हैं, जैसे पानी पर खिंची लकीरें, खिंच भी नहीं पातीं कि मिट जाती हैं। करता बहुत है वह, लेकिन कुछ पीछे लकीर नहीं छूटती। वह निर्मल विदा होता है।
कबीर ने कहा है, ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया, खूब जतन से ओढ़ी कबीरा।
जतन से ओढ़ी कबीरा! बड़ी जतन से, बड़े होशपूर्वक ओढ़ी कि कोई दाग न लग जाए।
और जैसी की तैसी उसे वापस लौटा दी।
ऐसा व्यक्ति जो फल की आकांक्षा छोड़ देता है, कर्ता का भाव छोड़ देता है... ।
बस, यही जतन है।
और मैं तो तुमसे कहता हूं कि फिर तो जतन की भी जरूरत नहीं है; फिर तो दिल खोलकर ओढ़ो। और जैसी भी तुम लौटाओगे, वह चादर निर्मल ही होगी।

मैं फिर से दोहरा दूं, शायद तुम्हें समझ में न आए। क्योंकि खूब जतन से ओढ़ने में भी थोड़ी साधना आ जाती है। जतन क्या! अगर तुम सब उस पर छोड़ दो, तो जतन की भी जरूरत नहीं; फिर दिल खोलकर ओढ़ो। और जितनी करवटें लेनी हों चदरिया में, लो। जब तुम लौटाओगे, चदरिया निर्मल ही होगी। क्योंकि चदरिया कृत्यों से मैली नहीं होती, कर्ता से मैली होती है। इसलिए जतन एक ही रखना कि कर्ता न बने। चदरिया दिल खोलकर ओढ़ो।
संसार में जीयो, जैसे जीना हो। संसार एक बड़ा अभिनय का मंच है। उसको तुम सच मत समझो, सपना समझो। एक अभिनय है, पूरा करो। बस, अभिनेता की तरह दूर-दूर रहो, पार-पार रहो, अतिक्रमण करते रहो। करते हुए भी तुम्हारे भीतर कोई अकर्ता बना रहे। चलते हुए भी तुम्हारे भीतर कोई चले न। भोजन करते हुए भी तुम्हारे भीतर कोई उपवासा रहे। भोग करते हुए भी तुम्हारे भीतर कोई संन्यस्त रहे।
इसलिए कृष्ण ने जगत को जो संन्यास दिया है, वह सबसे ज्यादा बारीक और महीन है।
ऐसे पुरुष को किसी भी काल में कर्मों का कोई भी बंधन नहीं होता।
फिर परमात्मा ही बंधे और वही मुक्त हो। तुम तो हट ही गए।
इससे ज्यादा सरल कोई साधना नहीं है। इससे ज्यादा कठिन भी कोई साधना नहीं है। सरल इसलिए नहीं है कि इसमें कुछ भी करना नहीं है, सिर्फ करने का भाव छोड़ देना है। कठिन इसलिए कि इसमें कुछ भी करने को नहीं है; तुम्हारा मन बड़ी मुश्किल पाएगा। कुछ करने को होता, तो कर लेते। अब इसमें कुछ करने को ही नहीं है, तो तुम एकदम अधर में पाओगे; शून्य में भटके पाओगे। लेकिन अगर सुनो, गौर से सुनो, तो सुनने से ही सत्य उपलब्ध हो जाता है।
मैं तुमसे कहता हूं कि अगर तुम मुझे सुन रहे हो, ठीक से सुन रहे हो, सम्यकरूपेण सुन रहे हो, तो तुम्हें कुछ भी करने की जरूरत न रह जाएगी। अगर करने की जरूरत रह जाए, तो समझना कि ठीक से सुना नहीं, सुनना चूक गया। फिर से गौर से सुनना। इसलिए मैं रोज बोले चला जाता हूं। कभी तो सुनोगे!
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग आठ
गीता दर्शन अध्याय 18
पांचवां प्रवचन

महासूत्र साक्षी

पंचैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे।
सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम्।। 13।।
अधिष्ठानं तथा कर्ता करणं च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पंचमम्।। 14।।
शरीरवाक्मनोभिर्यत्कर्म प्रारभते नरः।
न्याय्यं वा विपरीतं वा पंचैते तस्य हेतवः।। 15।।
तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः।। 16।।
यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते।। 17।।
और हे महाबाहो, संपूर्ण कर्मों की सिद्धि के लिए ये पांच हेतु सांख्य सिद्धांत में कहे गए हैं, उनको तू मेरे से भली प्रकार जान।
हे अर्जुन, इस विषय में आधार और कर्ता तथा न्यारे-न्यारे करण और नाना प्रकार की न्यारी-न्यारी चेष्टा एवं वैसे ही पांचवां हेतु दैव कहा गया है।
मनुष्य मन, वाणी और शरीर से शास्त्र के अनुसार अथवा विपरीत भी जो कुछ कर्म आरंभ करता है, उसके ये पांचों ही कारण हैं।
परंतु ऐसा होने पर भी जो पुरुष अशुद्ध बुद्धि होने के कारण उस विषय में केवल शुद्ध स्वरूप आत्मा को कर्ता देखता है, वह दुर्मति यथार्थ नहीं देखता है।
और हे अर्जुन, जिस पुरुष के अंतःकरण में मैं कर्ता हूं, ऐसा भाव नहीं
है तथा जिसकी बुद्धि सांसारिक पदार्थों में और संपूर्ण कर्मों में लिपायमान नहीं होती, वह पुरुष इन सब लोगों को मारकर भी वास्तव में न तो मारता है और न पाप से बंधता है।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः आपको वर्षों से रोज-रोज सुनते रहने से निर्विचार बढ़ा है, मौन गहन हुआ है, प्रेम अंकुरित हुआ है, अहोभाव की भी कुछ बूंदा-बांदी होती है। परंतु अनेक अवसरों पर लगता है कि बुद्धि और अहंकार की धार भी तेज और सूक्ष्म होती गई है। उपरोक्त दोनों बातों के साथ-साथ घटने से आश्चर्य भी होता है और चिंता भी। इस स्थिति पर प्रकाश डालें। क्या साधक को ऐसा हो सकता है?

जीवन के प्रत्येक आयाम में विपरीत साथ-साथ ही बढ़ते हैं। जन्म के साथ चलती है मृत्यु। हर जन्मदिन, मृत्यु का भी नया चरण है। श्रम के साथ-साथ चलती है थकान, विश्राम की आकांक्षा। प्रेम के साथ-साथ छाया की तरह लगी रहती है घृणा।
विपरीत जुड़े हैं। जितना ऊंचा होगा पर्वत-शिखर, उतनी ही गहरी होगी खाई। पर्वत-शिखर और ऊंचा होने लगेगा, खाई और गहरी होने लगेगी। पर्वत-शिखर की ऊंचाई और खाई की गहराई, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
जितने-जितने तुम समझदार होने लगोगे, उतनी-उतनी तुम्हें अपने भीतर नासमझी दिखाई पड़ने लगेगी। ज्ञान के साथ-साथ अज्ञान का बोध होता है। जैसे-जैसे तुम शांत होओगे, वैसे-वैसे तुम्हारे अशांत होने की क्षमता में भी बढ़ती होगी। क्योंकि जितने तुम शांत होओगे, उतने संवेदनशील हो जाओगे, उतने सेंसिटिव हो जाओगे। उस संवेदना में छोटी-सी घटना भी बड़ा गहरा तहलका मचा देगी।
जितने तुम स्वस्थ होओगे, उतनी तुम्हारी बीमार होने की क्षमता भी बढ़ेगी। मरा हुआ आदमी तो बीमार नहीं हो सकता। जीवित आदमी बीमार होता है। और

तुमने एक अनूठी घटना देखी होगी कि अक्सर ऐसा होता है कि बहुत स्वस्थ आदमी एक ही बीमारी में मर जाता है। अस्वस्थ आदमी कई तरह की बीमारियां आती रहें, तो भी सह जाता है। जो कभी बीमार नहीं पड़ा, वह पहली ही बीमारी में विदा हो जाता है। जो सदा खाट से बंधा रहा, उन्हें कोई बीमारी ले जाती नहीं।
जितना स्वस्थ आदमी हो, उतने ही उसके अस्वस्थ होने की क्षमता भी होती है। जितने ऊंचे चढ़ोगे, उतने गिरने का डर भी लगेगा। चढ़ोगे ही नहीं ऊंचे, तो गिरने के भय का कोई सवाल नहीं है।
योग-भ्रष्ट शब्द है हमारे पास; तुमने कभी भोग-भ्रष्ट सुना? भोग में भ्रष्ट होने का उपाय ही नहीं है। सिर्फ योगी भ्रष्ट हो सकता है।
जो ऊंचा जाता है, वह गिर सकता है। जो जमीन पर ही रेंगता है, वह गिरेगा
भी तो गिरेगा कहां? इसलिए ये दोनों बातें साथ-साथ चलेंगी। और साधक को रोज-रोज ज्यादा सावधानी चाहिए पड़ेगी।
तुम ऐसा मत सोचना कि साधना तुम्हारी आगे बढ़ेगी, तो सावधानी की जरूरत न रहेगी। सावधानी की जरूरत बढ़ेगी। सिद्ध तो प्रतिपल सावधान है।
लाओत्से कहता है, जिस पुरुष को ताओ उपलब्ध हो गया, वह ऐसे चलता है, सावधान, जैसे प्रतिपल शत्रुओं से घिरा है। वह एक-एक कदम ऐसे रखता है, सोचकर, विचारकर, जैसे कोई सर्दी के दिनों में बर्फीली नदी में उतरता हो। सिद्ध की सावधानी परम, आखिरी हो जाती है। सावधानी के लिए उसे प्रयास नहीं करना पड़ता। लेकिन सावधानी तो गहन होती ही है।
तो तुम जितने ऊंचे उठोगे, उतने ही गिरने का डर है। और खाई बड़ी होने लगेगी, और भी ज्यादा सावधानी की जरूरत होगी।
इसमें कुछ आश्चर्य का कारण नहीं है, यह बिल्कुल स्वाभाविक है। प्रेम अंकुरित होगा, तो घृणा भी साथ-साथ खड़ी है। अब थोड़े सावधान रहना। पहले तो जब प्रेम अंकुरित न हुआ था, तब तो तुम घृणा को ही प्रेम समझकर जीए थे। अब जब प्रेम अंकुरित हुआ है, तभी तुम्हें पहली दफे बोध भी आया है कि घृणा क्या है। और अब तुम गिरोगे, तो बहुत पीड़ा होगी।
अहोभाव की थोड़ी बूंदा-बांदी होगी, तो शिकायत भी बढ़ने लगेगी। क्योंकि
जब परमात्मा से मिलने लगेगा, तो तुम और भी मांगने की आकांक्षा से भर जाओगे। आज मिलेगा, तो अहोभाव। कल नहीं मिलेगा, तो शिकायत शुरू हो जाएगी। अहोभाव के साथ-साथ शिकायत की खाई भी जुड़ी है। सावधान रहना। अहोभाव को बढ़ने देना और शिकायत से सावधान रहना। शिकायत तो बढ़ेगी, लेकिन तुम उस खाई में गिरना मत।
खाई के होने का मतलब यह नहीं है कि गिरना जरूरी है। शिखर ऊंचा होता जाता है, खाई गहरी होती जाती है, इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम्हें खाई में गिरना ही पड़ेगा। सिर्फ सावधानी बढ़ानी पड़ेगी।
भिखमंगा निश्चिंत सोता है। सम्राट नहीं सो सकता। भिखमंगे के पास कुछ चोरी जाने को नहीं है। सम्राट के पास बहुत कुछ है। सम्राट को सावधान होकर सोना पड़ेगा। थोड़ी सावधानी बरतनी पड़ेगी। तो ही बचा पाएगा जो संपदा है, अन्यथा खो जाएगी।
जैसे-जैसे तुम गहरे उतरोगे, वैसे-वैसे तुम्हारी संपदा बढ़ती है। उसके खोने का डर भी बढ़ता है; खोने की संभावना बढ़ती है। उसके चोरी जाने का, लुट जाने का अवसर आएगा। जरूरी नहीं है कि तुम उसे लुट जाने दो। तुम उसे बचाना, तुम सावधान रहना।
अड़चन इसलिए आती है कि तुम तो सोचते हो कि एक दफा ध्यान उपलब्ध हो गया, समाधि उपलब्ध हो गई, तो यह सावधानी, जागरूकता, ये सब झंझटें मिटीं। फिर निश्चिंत चादर ओढ़कर सोएंगे।
इस भूल में मत पड़ना। निश्चिंत तो हो जाओगे, लेकिन असावधान होने की सुविधा कभी भी नहीं है। सावधान तो रहना ही पड़ेगा। सावधानी को स्वभाव बना लेना है। वह इतनी तुम्हारी जीवन-दशा हो जाए कि तुम्हें करना भी न पड़े, वह होती रहे। सावधान होना तुम्हारा स्वभाव-सहज प्रक्रिया हो जाए।
नहीं तो यह अड़चन आएगी। मुझे सुनोगे, समझ बढ़ेगी, समझ के साथ-साथ अहंकार
भी बढ़ेगा कि हम समझने लगे। उससे बचना। उस फंदे में मत पड़ना। पड़े, समझ कम हो जाएगी।

बड़ा सूक्ष्म खेल है, बारीक जगत है, नाजुक यात्रा है। स्वभावतः, जब समझ आती है, तो मन कहता है, समझ गए। तुमने कहा, समझ गए, कि गई समझ, गिरे खाई में।
क्योंकि समझ गए, यह तो अहंकार हो गया। अहंकार नासमझी का हिस्सा है। जान लिया, अकड़ आ गई; अकड़ तो अज्ञान का हिस्सा है। अगर अकड़ आ गई, तो जानना उसी वक्त खो गया। बस, तुम्हें ख्याल रह गया जानने का। जानना खो गया।
ज्ञान तो निरअहंकार है। जहां अहंकार है, वहां ज्ञान खो जाता है। इसलिए प्रतिपल होश रखना पड़ेगा। जैसे कोई दो खाइयों के बीच खिंची हुई रस्सी पर चलता है कोई नट, ऐसे ही चलना है। प्रतिपल सम्हालना है। कदम-कदम सम्हालना है। एक दिन ऐसी घड़ी आएगी कि सम्हालना स्वभाव हो जाएगा। सम्हालना न पड़ेगा और सम्हले रहोगे। लेकिन अभी वह घड़ी नहीं है।
न तो आश्चर्य करने की जरूरत है, क्योंकि यह स्वाभाविक है; विपरीत साथ-साथ बढ़ते हैं। और न चिंता में पड़ने की जरूरत है, क्योंकि यह स्वाभाविक है; विपरीत साथ-साथ चलते हैं। इस सत्य को समझकर, शिखर को तो बढ़ने दो, अपने पैरों को सम्हालते जाओ; खाई में मत गिरो।
खाई का निमंत्रण भी बड़ा महत्वपूर्ण होता जाएगा। खाई का बुलावा भी बड़ा आकर्षक होने लगेगा। खाई खाई जैसी न लगेगी, स्वर्ग मालूम होने लगेगी। जितने ऊंचे जाओगे, उतनी ही खाई पुकारेगी कि आ जाओ, यहां विश्राम है। उससे सावधान रहना। अगर गिर भी पड़ो, तो जितनी जल्दी हो सके, उठ आना और अपनी यात्रा पर निकल जाना।
गिरना भी होगा। जैसे छोटा बच्चा चलता है; उठता है, गिरता है; फिर उठता है, फिर गिरता है; फिर धीरे-धीरे गिरना बंद हो जाता है। अब तुम नहीं गिरते। कभी तुम भी छोटे बच्चे थे और गिरते थे।
सिद्ध का अर्थ इतना ही है कि अब वह चलने में कुशल हो गया; अब गिरता नहीं। पर कभी वह भी गिरता था। अभी तुम भी गिर रहे हो; कभी वह घड़ी तुम्हारे जीवन में आ जाएगी, जब न गिरोगे। लेकिन अहंकार को बनने मत देना। चिंता को सघन मत होने देना। सावधानी को सदा ही बरकरार रखना। सावधानी को कभी छोड़ना है, यह बात ही विचार में मत लाना। वह जब छूटने को होगी, छूटेगी। वह तभी छूटेगी, जब स्वभाव बन जाएगी। उसके पहले सावधानी नहीं छूटती है।

दूसरा प्रश्नः आप कहते हैं, जो उसकी मर्जी, हम निमित्त-मात्र हो जाएं;
जो भी जीवन में अभिनय मिला है, उसे हम पूरा करें। परंतु जो होता है, उसे होने देने से अर्थात शरीर, मन और अहंकार के साथ बहने से दुख उपजता है। तो क्या हम शरीर, मन और अहंकार के संबंध में भी निमित्त का सूत्र मानते रहें और दुख पाते रहें? निमित्त के सूत्र और दुख के सतत यथार्थ की पहेली को हम कैसे सुलझाएं?

तब तुम समझे ही नहीं निमित्त का अर्थ। निमित्त-मात्र हूं, इस भाव-दशा
की तुम्हें पकड़ न आई। तुम अपनी होशियारी लगा रहे हो। तुम सोच रहे हो, निमित्त हमें होना है, जहां-जहां सुख होगा, निमित्त हो जाएंगे; और जहां- जहां दुख होगा, वहां कर्ता हो जाएंगे। क्योंकि दुख तुम चाहते नहीं। निमित्त होने का अर्थ है, दुख देता है, तो तू देता है; तेरा दुख हमारा सौभाग्य है। कुछ तो दिया! सुख देता है, तो तू देता है। हमारा कोई चुनाव नहीं। हम दुख भी भोगेंगे, हम सुख भी भोगेंगे। तू जो देगा हमारे भिक्षा- पात्र में, हम अहोभाव से स्वीकार करेंगे।
सुख में तो कोई भी निमित्त होना चाहता है; उसके लिए कोई सिद्ध होने की जरूरत पड़ेगी! सुख में तो सभी मानते हैं कि हम निमित्त हैं। जहां मजा ही मजा है, वहां कर्ता को लाने का सवाल ही क्या है! कर्ता तो वहां आना शुरू होता है, जहां दुख शुरू होता है। क्यों? क्योंकि दुख को तुम्हें हटाना है। दुख तुम्हें स्वीकार नहीं है। हटाना है, तो हटाने वाले को लाना पड़ेगा। सुख तो स्वीकार है; उसे हटाना नहीं है। तो कर्ता को लाने की कोई जरूरत नहीं है। जिस दिन तुम सुख और दुख को एक-सा ही स्वीकार कर लोगे, उसी दिन कर्ता विलीन हो जाएगा। न तो सुख को चाहो, न तो सुख की आसक्ति करो और न दुख का द्वेष। न दुख को छोड़ना चाहो, न सुख को पकड़ना चाहो, तो तुम्हारा कर्ता खो जाएगा। फिर जो हो। फिर तुम बीच में हो नहीं सोचने को।

प्रश्न से तो लगता है कि तुम बीच में खड़े हो, छांट रहे हो। क्या फिर हम दुख भोगते रहें?
तुम हो कौन, अगर निमित्त-भाव को समझ गए? यह कौन है जो कहता है, फिर हम दुख भोगते रहें?
यह कर्ता है, जो कह रहा है, दुख तो हम भोगना नहीं चाहते। असल में तुम निमित्त-भाव को भी इसीलिए स्वीकार कर रहे हो कि शायद इससे बहुत सुख मिले। तुम गलती में हो। निमित्त-भाव को स्वीकार करने से दुख भी मिलेंगे, सुख भी मिलेंगे, लेकिन धीरे-धीरे न तो दुख दुख रह जाएंगे, न सुख सुख रह जाएंगे। क्योंकि जो दुख को स्वीकार कर लेता है, उसके लिए दुख दुख कैसे रह जाएगा। दुख का अनिवार्य लक्षण है, उसके प्रति अस्वीकार का भाव। वह त्याज्य है। मन उसे गले नहीं लगाना चाहता। जिस दिन तुम गले लगा लोगे दुख को, दुख का तुमने स्वभाव बदल दिया। वह सुख जैसा हो गया।
सुख का स्वभाव है कि उसे तुम गले लगाना चाहते हो। लेकिन जब तुमने सुख
को भी ऐसा ही स्वीकार किया, जैसा दुख को, कोई विशेष आदर न दिया, तो उसका गुणधर्म भी बदल गया।
ज्ञानी का सुख न तो सुख होता है, न दुख दुख होता है। धीरे-धीरे सुख-दुख
का भेद ही खो जाता है। एक ऐसी घड़ी आती है कि सुख दुख का रूप मालूम होता है, दुख सुख का रूप मालूम होता है और तुम दोनों के पार होने लगते हो। वह दोनों के पार जो दशा है, वही साक्षी की है।
कर्ता से मुक्त होओगे, तो साक्षी बनोगे।
कृष्ण का सारा संदेश साक्षी का है। अर्जुन की सारी दुविधा यह है कि वह कर्ता होने से छूट नहीं पाता। वह कहता है, ऐसा हो जाएगा, तो वह ठीक न होगा। वह यह कह रहा है कि मैं अपने निर्णय को कायम रखूंगा; मैं निर्णायक रहूंगा। निमित्त-भाव का अर्थ है, परमात्मा निर्णायक है, मैं कौन हूं! मैं किसलिए बीच में आऊं!
तो यह तो तुम पूछो ही मत कि क्या हम दुख पाते रहें? दुख से बचने की तुमने जन्मों-जन्मों कोशिश की है; दुख उससे मिटा? अब तक तो मिटा नहीं है, पाते ही रहे हो। सुख को पाने की भी तुमने जन्मों-जन्मों से कोशिश की है; सुख मिला? अब तक तो मिला नहीं है। सिर्फ आशा में कहीं इंद्रधनुष की भांति दिखाई पड़ता है।
अब बदलो जीवन की व्यवस्था को। अब तक कर्ता होकर देख लिया, न तो दुख मिटा, न सुख मिला। अब अकर्ता होकर भी देख लो। क्योंकि जो जानते हैं, वे कहते हैं कि अकर्ता होकर दुख भी मिट गया, सुख भी मिट गया। और फिर जिसका उदय होता है, उसे ही हमने सच्चिदानंद कहा है; उसे ही हमने परम आनंद कहा है।
वह परम आनंद सुख-दुख दोनों के पार है। वह न तो रात जैसा है, न दिन जैसा है। वह तो संध्याकाल है। सूरज जा चुका, रात अभी आई नहीं; रोशनी कायम है--बड़ी धीमी, मधुर, अनाक्रामक--वह संध्याकाल है। सुबह हुई, अभी सूरज आया नहीं, रात जा चुकी, ऐसा संध्याकाल है। उस संध्याकाल में जो ठहर गया, उसी को हम प्रार्थना करना कहते हैं। इसलिए हिंदू अपनी प्रार्थना को संध्या कहते हैं।
संध्या का अर्थ है, द्वंद्व के बीच में जो ठहर गया; दो के बीच में जिसने संधि खोज ली। सुख-दुख, प्रेम-घृणा, जीत-हार, रात-दिन, जीवन-मृत्यु, सब दो के बीच में जिसने संधि खोज ली, और जो संधि में खड़ा हो गया। उस संधिकाल को खोजो।
कृष्ण कहते हैं, सरल है खोज लेना। अगर तुम कर्ता न रह जाओ, तत्क्षण मिल जाएगा। तुम्हारे कर्ता होने से ही तुम चूकते चले जाते हो।
तो यह तो पूछो ही मत कि दुख उपजेगा, तो फिर हम क्या करेंगे। तुम तो रहे नहीं। जो होगा, होगा। क्या करोगे? तुम मर गए। तुम्हारी लाश पड़ी है। सुबह होगी, लाश क्या करेगी? दिन होगा, लाश क्या करेगी? रात आएगी, लाश क्या करेगी? घर खाली है, कोई है नहीं। सन्नाटा होगा, तो ठीक। गीत बजेगा, शोरगुल होगा, तो ठीक। घर खाली है, कोई है नहीं।
तुम खाली घर हो रहो। इसको बुद्ध ने शून्य होना कहा है; जिसको कृष्ण निमित्त मात्र होना कहते हैं, उसको ही बुद्ध ने शून्य होना कहा है। अगर

ईश्वर पर तुम्हारी श्रद्धा हो, तो निमित्त मात्र हो जाओ; अगर ईश्वर पर श्रद्धा न हो, तो शून्य मात्र हो जाओ। बात दोनों एक ही हैं।
क्योंकि निमित्त मात्र होने के लिए तो ईश्वर की धारणा चाहिए। निमित्त मात्र का यह अर्थ है, करने वाला तू है। मैं सिर्फ उपकरण हूं। मगर अगर तुम्हारी श्रद्धा ईश्वर पर न हो, तो कुछ घबड़ाने की जरूरत नहीं है। तुम शून्य मात्र हो जाओ। तुम कहो, मैं हूं ही नहीं। बस, वही घट जाएगा।
जो भक्त को भगवान के माध्यम से घटता है, वही ध्यानी को शून्य के माध्यम से घटता है। ध्यानी के लिए शून्य भगवान है, भक्त के लिए भगवान ही शून्यता है। पर शून्य या निमित्त मात्र, एक ही अर्थ रखते हैं। कुल प्रयोजन इतना है कि मैं बीच में नहीं हूं।

तीसरा प्रश्नः आप हमेशा कहते हैं, ध्यान है कुछ न करना, मात्र होना,
और समर्पण है द्वार। फिर आप अनेक योग और साधनाएं भी करने को कहते हैं। मेरी मुसीबत यह है कि कुछ न करने और समर्पण-भाव से जीने से तमोगुण बढ़ता नजर आता है और साधनाएं करने से अहंकार के तीक्ष्ण होने का खतरा आने लगता है। ऐसी दशा में क्या मार्ग है?

न तो समर्पण करते हो, न साधना करते हो। जब मैं समर्पण की बात करता हूं,
तब तुम साधना की बात सोचते हो। और जब मैं साधना की बात करता हूं, तब तुम समर्पण की बात सोचते हो। बेईमान चित्त की दशा है।
पश्चिम के बहुत बड़े विचारक पैस्कल ने कहा है कि एक सदी में अगर तीन ईमानदार आदमी भी मिल जाएं, तो बहुत है--सौ वर्षों में। क्योंकि बेईमानी जन्मजात है। और बेईमानी खून में छिपी है।
मेरे पास रोज यही प्रश्न खड़ा रहता है। अगर मैं किसी को कहता हूं कि कुछ न करो, तो वह कहता है, यह कैसे होगा? कुछ तो करना ही पड़ेगा। मैं कहता हूं, चलो, कुछ करो। वह कहता है, कुछ करेंगे, तो अहंकार बढ़ जाएगा।
ये बहाने हैं। ये जीवन को जैसा है, वैसा चलाए रखने के बहाने हैं। कुछ
भी चुन लो; दोनों से एक जगह पहुंचना हो जाता है। फिर दूसरे की बात ही मत करो। दोनों रास्ते वहीं पहुंचाते हैं। तुम एक रास्ते पर चार कदम चलते हो, फिर दूसरे रास्ते पर चार कदम चलते हो, फिर पहले रास्ते पर चार कदम चलते हो। तुम वहीं के वहीं बने रहोगे। तुम कभी पहुंचोगे नहीं।
तुम कोई भी एक रास्ता चुन लो, फिर फिक्र छोड़ो। हर रास्ते की सुविधाएं हैं और हर रास्ते की कठिनाइयां हैं।
तुम्हारी बेईमानी इसलिए पैदा होती है कि तुम चाहते हो, हर रास्ते की सुविधा भी तुम्हें मिल जाए, दोनों की सुविधाएं मिल जाएं। और तुम चाहते हो, दोनों की असुविधाओं से भी बचना हो जाए। तब तुम्हारे मन में एक दुविधा पैदा होती है। तब तुम त्रिशंकु हो जाते हो।
एक रास्ता चुन लो। अगर समर्पण ठीक लगता है, चुन लो। लेकिन समर्पण तुम वहीं तक चुनते हो, जहां तक तुम्हें आलस्य के लिए सुविधा मिले।
मैं चकित होता हूं कभी-कभी सोचकर कि लोग जिन शब्दों का उपयोग करते हैं, कभी उन पर विचार भी करते हैं या नहीं! समर्पण तुम चुनते हो सिर्फ इसलिए, ताकि कुछ न करना पड़े। समर्पण नहीं चुनते, कुछ न करना चुनते हो। खाली बैठे रहो।
तुम आलस्य चुनना चाहते हो, समर्पण में बहाना खोजते हो। फिर आलस्य से
तो कोई परमात्मा मिलता नहीं, कोई सत्य मिलता नहीं। तो जल्दी ही तुम्हारे भीतर यह लगने लगता है, समर्पण से कुछ नहीं मिल रहा है। समर्पण तुमने कभी किया नहीं। तुमने आलस्य के लिए समर्पण शब्द का बहाना खोज लिया। फिर आलस्य से तो परमात्मा मिलता नहीं, तो तुम्हारे मन में विचार उठना शुरू होता है कि अब इससे तो मिल नहीं रहा है।
समर्पण किया ही नहीं, मिलने की आकांक्षा रखे बैठे हो। तो फिर सोचते हो, कुछ करें। तो कुछ करना शुरू करते हो। वह करना भी संकल्प नहीं है, वह करना भी साधना नहीं है। वह करना भी आलस्य से अहंकार को जो चोट लगती है... । क्योंकि आलसी को कोई आदर तो मिलता नहीं, कहीं नहीं मिलता। संसार तो करने वालों का है।

आलसी को आदर नहीं मिलता। आलसी सोचता है, हम समर्पण किए हैं। आदर उसे मिलता नहीं। वह चाहता है, दुनियाभर में खबर हो जाए कि हमारा समर्पण हो गया, देखो। सम्मान मिले! सम्मान दुनिया आलस्य को नहीं देती। और समर्पण हो जाए, तो सम्मान की इच्छा नहीं होती।
तो धीरे-धीरे बेचैनी पैदा होती है कि यह तो जिंदगी ऐसे ही जा रही है; कुछ पा भी नहीं रहे, कुछ मिल भी नहीं रहा, सिर्फ मक्खियां उड़ रही हैं चारों तरफ आलस्य की। तो आदमी करने में लगता है। करता है, तो अहंकार खड़ा होता है। तब तुम्हारे मन में चिंताएं खड़ी हो जाती हैं कि अब क्या करें।
कुछ भी चुन लो एक। अगर तुम समर्पण चुनते हो, तो आलस्य से बचना वहां जरूरी है।
अब यह बड़े मजे की बात है। आलसी समर्पण चुनते हैं और समर्पण के मार्ग
पर आलस्य से बचना अनिवार्य है। क्योंकि वही खाई है वहां, वही खतरा है। अगर तुम संकल्प चुनते हो, तो अहंकार से बचना वहां जरूरी है, क्योंकि वही वहां खतरा है।
समर्पण में अहंकार का खतरा नहीं है और संकल्प में आलस्य का खतरा नहीं है। खतरे को देख लो। इसलिए अगर समर्पण करना है, तो समर्पण को अकर्मण्यता मत बना लेना। कर्म तो करना, कर्ता-भाव परमात्मा पर छोड़ देना।
लेकिन तुम कर्ता-भाव तो छोड़ते नहीं, कर्म छोड़ते हो परमात्मा पर। कर्ता-भाव बचाते हो और चाहते हो कि दुनिया तुम्हें सम्मान दे ऐसा, जैसे कि तुम बड़े साधक हो, बड़े कर्ता हो, बड़ी साधना की है, बड़े सिद्ध पुरुष हो। वह नहीं होगा।
चीजें बिल्कुल साफ हैं। और अगर धुंधला-धुंधला तुम्हें लगता है, तो तुम धुंधलापन पैदा कर रहे हो। तुम चीजों को साफ देखना नहीं चाहते।
कल ही एक युवक मेरे पास आया। वह कहता है कि सब आपको समर्पण। जो आप कहेंगे, वह मैं करूंगा। मैंने उससे पूछा, तू करता क्या है अभी? उसने कहा कि मैं फार्मेसी में पढ़ता हूं। मगर फेल हो गया हूं। तो मैंने उसको कहा कि तू जा फार्मेसी की पढ़ाई पूरी कर ले। वह कहता है, वह तो मुझसे हो ही नहीं सकता। अभी एक क्षण पहले मुझसे कहता है, जो आप कहेंगे, वह मैं करूंगा। फार्मेसी? वह तो मुझसे हो ही नहीं सकता। वह तो मैं कभी जीवन में उत्तीर्ण हो ही नहीं सकता। आप जो भी कहेंगे, वह मैं करूंगा, यह भी वह कहे चला जा रहा है।
हम अपने चित्त की दशा को भी नहीं देख पाते। अब फार्मेसी पूरी नहीं होती, परमात्मा को पूरा करने का इरादा हो रहा है। वह फार्मेसी से भागकर परमात्मा में शरण ले रहा है। और जिसकी इतनी भी हिम्मत नहीं है कि एक छोटे- से काम को पूरा कर ले, वह और क्या पूरा कर पाएगा?
तो मैंने उसे कहा, पहले फार्मेसी पूरी कर, फिर त्याग देना।
सफल आदमी त्याग कर सकता है; असफल आदमी त्याग नहीं कर सकता। कभी किसी चीज को असफल होकर मत त्यागना, नहीं तो वह तुम्हारे जीवन की शैली हो जाएगी। फिर तुम कभी सफल न हो पाओगे। जो भी छोड़ना हो, सफल होकर छोड़ना। अगर संसार छोड़ना हो, तो सफल होकर छोड़ना। पद छोड़ना हो, सफल होकर छोड़ना। धन छोड़ना हो, तो पाकर छोड़ना।
धन में तो कोई मूल्य नहीं है, लेकिन तुम पा सकते हो; वह जो भाव की बुनियाद बनती है, उसका मूल्य है। वह काम आएगी। तुम जहां भी जाओगे, जिस दिशा में भी जाओगे, वहां काम आएगी।
अपना मार्ग साफ कर लेना चाहिए। अगर तुम अहंकारी हो, तो समर्पण तुम्हारे लिए मार्ग है। अगर तुम आलसी हो, तो संकल्प तुम्हारे लिए मार्ग है।
तुम कहोगे, यह तो मैं उलटी बात बता रहा हूं। आलसी को तो बताना चाहिए समर्पण, और अहंकारी को बताना चाहिए संकल्प।
नहीं, तब तो तुम अपनी बीमारी को औषधि समझ रहे हो। अपने को ठीक से समझ लो। और तुम्हारी जो बीमारी हो, उसको समझ लो।
संकल्प के मार्ग पर अहंकार बढ़ता है। अगर अहंकार तुम्हारी बीमारी है,
तो उस मार्ग पर तुम मत जाओ, अन्यथा वह भयंकर हो जाएगा। समर्पण के मार्ग पर आलस्य के बढ़ने की संभावना है। अगर आलस्य तुम्हारी बीमारी है, तो कृपा करके उस तरफ मत जाओ। आलस्य वाला संकल्प की तरफ जाए, तो संकल्प आलस्य को काटता

है। अहंकारी समर्पण की तरफ जाए, तो समर्पण अहंकार को काटता है। गणित बिल्कुल सीधा-साफ है। कहीं भी कोई धुंधलका, अंधेरा, उलझन नहीं है।
लेकिन तुम बीमारी को औषधि समझ लो, फिर अड़चन आती है। और फिर तुम बदलते जाओ; दो-चार कदम चले नहीं कि फिर बदल लिया, फिर दो-चार कदम चले नहीं कि फिर बदल लिया; फिर तुम कभी भी न पहुंच पाओगे। लगेगा, चल बहुत रहे हो, लेकिन पहुंच कहीं भी नहीं रहे हो। यात्रा व्यर्थ ही जाएगी। और तुम धीरे-धीरे ज्यादा से ज्यादा भ्रम में भर जाओगे। तुम्हारे नीचे की बुनियाद कंपने लगेगी। तुम्हारा चित्त कंपित, भयभीत, डरा हुआ हो जाएगा। तुम अपने ऊपर आस्था खो दोगे। और इस जगत में सबसे बड़ी दुर्घटना है, स्वयं पर आस्था खो देना। जिसकी स्वयं पर आस्था नहीं है, वह किसी दूसरे पर आस्था कर ही नहीं सकता।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि हम दूसरे पर आस्था नहीं करना चाहते। हमारी तो अपने पर ही आस्था है। मैं उनसे कहता हूं, जिसकी अपने पर आस्था है, वह किसी पर भी आस्था कर सकता है। और जिसकी अपने पर आस्था नहीं है, वह किसी पर आस्था नहीं कर सकता। जो भीतर ही नहीं है, उसे तुम बाहर कैसे फैलाओगे?
गुलाब के फूल में जो गंध आती है, वह गुलाब के भीतर से आती है। गंध दूर-दूर फैल जाती है हवाओं में। तुम्हारे कपड़ों पर छा जाती है, तुम्हारे नासापुटों में भर जाती है। गुलाब के पास से गुजरो, तो घंटों तक तुम्हें गुलाब की भनक मालूम पड़ती रहती है। लेकिन सुगंध भीतर से आती है।
आस्था अगर तुम्हारी स्वयं पर है, तो तुम गुरु पर आस्था कर सकोगे, तो तुम परमात्मा पर आस्था कर सकोगे। स्वयं की आस्था में और दूसरे पर आस्था में विरोध नहीं है। वे एक ही सुगंध की दो तरंगें हैं।
लेकिन जिसकी स्वयं पर आस्था नहीं है, वह किसी पर आस्था नहीं कर सकेगा।
और जो किसी पर आस्था नहीं करता है, उसे सम्हल जाना चाहिए, संभावना है कि उसकी स्वयं पर भी आस्था नहीं होगी।
मनुष्य के जीवन में जितनी अड़चनें दिखाई पड़ती हैं, उतनी अड़चनें हैं नहीं। बहुत-सी तो बनाई हुई हैं। फिर तुम बना लेते हो, फिर अपने ही जाल में उलझ जाते हो। और फिर उस जाल से निकलना भी नहीं चाहते। और निकलना भी चाहते हो। क्योंकि जाल कष्ट देता है, तो निकलना चाहते हो। और जाल थोड़ा-सा सुख भी दे रहा है, इसलिए निकलना भी नहीं चाहते। एक हाथ से पकड़े रहते हो, एक हाथ से छोड़ना चाहते हो।

चौथा प्रश्नः आप कहते हैं, गुरु पृथ्वी पर परमात्मा की खबर है और यह
भी कि मिलन के लिए प्रेम और श्रद्धा ही सेतु है। लेकिन जिसका मस्तिष्क संदेहशील हो और हृदय कुंठित, वह धर्म की यात्रा पर निकलने के पूर्व क्या करे?

निकले ही क्यों? यह तो ऐसा मामला है कि तुम मुझसे पूछो कि जो बीमार नहीं है, वह डाक्टर के घर कैसे जाए! जाए ही क्यों? तुम मुझसे पूछते हो कि जो भूखा नहीं है, वह भोजन की तरफ कैसे बढ़े! लेकिन बढ़े ही क्यों?
अगर भूख नहीं है परमात्मा की, बात ही छोड़ो। ऐसी आवश्यकता क्या है? भूख
के पहले तो कोई भी कुछ नहीं कर सकता। कोई एपेटाइजर है नहीं, जो तुम्हें दिया जा सके, जिससे तुम्हारी भूख बढ़ जाए। एपेटाइजर भी काम करता है, क्योंकि भूख होती है, नहीं तो वह भी काम नहीं करेगा। अगर भूख न हो, तो वह और पेट को भर देगा। भूख और मर जाएगी।
अगर नहीं है परमात्मा की प्यास, तो छोड़ो परमात्मा को। वह अपने घर भला, तुम अपने घर भले। नाहक की झंझट क्यों खड़ी करते हो? जब प्यास जगेगी, तब जाना। और जल्दी क्या है? काल अनंत है। कोई जल्दी नहीं है। और परमात्मा किसी जल्दबाजी में, अधैर्य में नहीं है। तुम जब भी आओगे, उसे तुम पाओगे, वह सदा वहां है। कुछ देर से पहुंचोगे, तो ऐसा नहीं है कि तुम उसे नहीं पाओगे। कठिनाई क्या है? कठिनाई यह है कि परमात्मा को तुम पाना भी चाहते हो, क्योंकि सुन-सुनकर लोभ पैदा हो गया है। सुन रहे हो सदियों से कि परमात्मा को पाने पर आनंद मिलता है। आनंद से मतलब तुम लेते हो सुख, जो कि गलत है। सुख

की आकांक्षा है; और लोग कहते हैं, परमात्मा को पाने से मिलता है; और परमात्मा की कोई प्यास नहीं है।
सुख तुम भी पाना चाहते हो। संसार में सुख दिखाई पड़ता है, पैर उस तरफ जा रहे हैं। और ये ऋषि-मुनि कहे चले जाते हैं कि वहां सुख नहीं है। तुम्हें वहीं दिखाई पड़ता है। यह दूसरे कहते हैं कि वहां नहीं है। इन पर तुम्हें भरोसा भी नहीं आता, क्योंकि इन पर भरोसा कैसे आएगा! जो तुम्हारी प्रतीति नहीं है, उस पर तुम्हें भरोसा कैसे आएगा!
तुम्हारी तो प्रतीति यह है कि सुख वहां लुट रहा है बाजार में, और ये नासमझ समझा रहे हैं कि चलो हिमालय। बैठ जाओ शांत होकर, आंख बंद करके। सुख तो है रूप में, और ये कहते हैं, आंख बंद कर लो। सुख है स्वाद में, और ये नासमझ कहते हैं कि स्वाद त्याग कर दो। सुख है संसार में, और ये संन्यास सिखाते हैं। इसलिए तुम इनकी बात भी नहीं सुनते। पैर तुम्हारे संसार की तरफ बढ़े जाते हैं।
लेकिन संसार में तुम्हें दुख भी बहुत मिलता है, सुख की तो सिर्फ आशा
ही रहती है, मिलता कभी नहीं। दिखाई पड़ता है, अब मिला, अब मिला, अब मिला, मिलता कभी नहीं। मिलता दुख है। जब दुख मिलता है, इन ऋषि-मुनियों की बात याद आती है कि पता नहीं, ये पागल ठीक ही कहते हों। शायद हम ही गलती में हैं। लेकिन वह जो दूर खड़ा सुख है, वह कहता है, तुम गलती में नहीं हो। जरा और चेष्टा करने की जरूरत है, और मंजिल पास है। और इतने पास आकर लौट रहे हो? कहां की बातों में पड़ते हो!
सुख बुलाता है संसार की तरफ। तुम्हारी आशा भी, तुम्हारी श्रद्धा भी सुख की है; मिलता है दुख। दुख मिलने के कारण तुम भयभीत भी हो जाते हो। ऋषि- मुनियों की बात सुनाई पड़ने लगती है। इसलिए तो सुख में कोई स्मरण नहीं करता, दुख में स्मरण करता है। दुख में लगता है कि शायद ये लोग ठीक ही कहते हों। जंचती तो बात नहीं है कि ठीक कहते हों। इनकी संख्या भी थोड़ी है। तुम करोड़ हो, तो ये कभी एक। करोड़ की मानें कि एक की? और इसको भी मिला है, इसका भी क्या पक्का! पता नहीं, कहता ही हो।
तुम्हारे अनुभव में तो कोई ऐसी बात है नहीं, जिससे तुम्हें श्रद्धा बढ़े। तुमने तो जहां-जहां गए, धोखा ही पाया। संसार में जहां तलाशा, वहीं धोखा पाया। जहां खोदा, वहीं पानी न मिला। पता नहीं ये ऋषि-मुनि भी एक धोखा ही हों। इस संसार के बड़े धोखे में यह भी एक धोखा। बस, भरोसा नहीं आता, संदेह है। और आशा भी नहीं छूटती, क्योंकि जीवन के अनुभव से तुम कुछ सीखते भी नहीं।
तो मैं तुमसे क्या कहूं? मैं तुमसे इतना ही कहता हूं कि अगर परमात्मा
की तरफ प्यास नहीं है, तो परमात्मा की बात ही अभी छोड़ दो। यह बात तुम बेसमय उठा रहे हो। अभी मौसम नहीं आया। अभी ऋतु नहीं पकी। यह बात ही छोड़ दो। क्योंकि यह बेमौसम की बात खतरनाक है। इससे तुम संसार को भी न भोग पाओगे और परमात्मा की तरफ तो तुम जा ही नहीं सकते। इससे तुम बिल्कुल ही अधर में लटके हुए हो जाओगे।
तुम संसार की तरफ पूरी तरह दौड़ लो। मेरी समझ यह है कि तुम अगर परमात्मा को भूल जाओ कुछ समय के लिए और संसार की तरफ पूरी तरह दौड़ लो, तो परमात्मा की प्यास पैदा हो जाएगी। तुम संसार को ठीक से जान ही लो। अगर सुख मिल गया, तब तो कोई परमात्मा की जरूरत ही न रहेगी। बात ही खतम हो गई। अगर सुख न मिला, तो प्यास पैदा हो जाएगी।
अब तक किसी को सुख मिला नहीं है। इसलिए प्यास पैदा होना निश्चित है। अगर नहीं पैदा हो रही, तो तुम संसार में ठीक से गए नहीं। तुम अधकचरे हो। मैंने सुना है, एक यहूदी युवक अमेरिका जा रहा था। बाप-परिवार पुराने ढंग का था। वे बड़े चिंतित थे कि अमेरिका में लड़का बिगड़ न जाए। तो उन्होंने अपने धर्मगुरु को बुलाया और कहा, इसे कुछ समझाओ।
तो उस धर्मगुरु ने उसे बड़ा भयभीत किया। बड़े डर दिखाए कि अगर स्त्रियों के प्रति तूने रस लिया, तो नरक में कैसे-कैसे कढ़ाओं में सड़ाया जाएगा। अगर तूने शराब पी, तो कैसे कष्ट तुझे भोगने पड़ेंगे। कीड़े-मकोड़े तेरे शरीर में छेद करके निकलेंगे और सारे शरीर को गूंथ डालेंगे। ऐसे सारे भय उसे दिखाए।

वह कंपने लगा। वह युवक बिल्कुल कंपने लगा, उसको पसीना आ गया। उस युवक
ने कहा कि आप जो कह रहे हैं, इनसे क्या मेरे मन में कामवासना उठनी बंद हो जाएगी? इनसे क्या प्रलोभन बंद हो जाएगा? इनसे क्या जो उत्तेजना चारों तरफ से मुझे मिलेगी अमेरिका में, वह नहीं मिलेगी?
उस धर्मगुरु ने कहा, नहीं, वह तो मैं नहीं कह सकता। उत्तेजना तो मिलेगी कि नहीं मिलेगी, वह तो मैं नहीं कह सकता। लेकिन तू कुछ भी भोगेगा, ठीक से न भोग पाएगा, इतना पक्का है। अगर स्त्री के प्रेम में पड़ेगा, तो नरक बीच में खड़ा रहेगा, कड़ाही जलती रहेगी। इतना भर मैं कह सकता हूं कि तू कुछ भी ठीक से न भोग पाएगा।
यही तुम्हारी दशा है। तुम भोग ही नहीं पा रहे हो। भोगने जाते हो, तो नरक बीच में खड़ा है। शराब पीने जाते हो, तो पाप बीच में खड़ा है। धन कमाने जाते हो, तो स्वर्ग का प्रलोभन, नरक का भय बीच में खड़ा है। कहीं भी जाते हो संसार में, परमात्मा साथ चल रहा है। वह देख रहा है। तुम्हें छुट्टी नहीं है पूरी करने की।
ये तुम्हारी धारणाएं हैं, जो तुमने पुरोहितों से सीख ली हैं। तुम कृपा करके इन्हें छोड़ दो। तुम एक बार पूरी तरह सांसारिक हो जाओ। और मैं तुम्हें भरोसा दिलाता हूं कि अगर तुम पूरी तरह सांसारिक हो जाओ, तो सिवाय परमात्मा के और कोई प्यास बचेगी नहीं। क्योंकि संसार सिर्फ मरुस्थल है। लेकिन उसे खोजना पड़ेगा, सारे कोने-कोने खोज लेने पड़ेंगे। तुम्हारा भ्रम मिट जाना चाहिए कि हो सकता है, कहीं कोई मरूद्यान छिपा हो। विराट संसार है, कहीं कोई सुख छिपा ही हो, पता नहीं। तुम रत्ती-रत्ती नाप डालो। तुम एक-एक लहर को खोज लो। तुम एक-एक वासना का पीछा कर लो। उस पीड़ा से ही उठेगी प्यास। और कोई उपाय नहीं है।
संसार जब व्यर्थ होता है, तभी संन्यास सार्थक होता है। भोग जब दो कौड़ी
का हो जाता है, तभी योग का मूल्य समझ में आता है।
तुम्हारी अवस्था है, न घर के, न घाट के। संसार में जाते हो, ऋषि-मुनि पीछा कर रहे हैं। वे कमीज पकड़कर पीछे खींच रहे हैं। ऋषि-मुनियों के पीछे जाते हो, संसार पीछा करता है। वह कमीज पकड़कर पीछे खींचता है। तुम कहीं भी जा नहीं पाते। तुम एक तरफ जाओ। एक साधे, सब सधै।
मैं तुमसे कहता हूं, तुम संसार ही साध लो। कृपा करके परमात्मा को बीच में मत लाओ। और इतना पक्का है कि अगर तुमने संसार ही साधा, एक साधा, सब सध जाएगा। क्योंकि संसार में सिवाय असफलता के और कुछ उपलब्ध हो नहीं सकता।
वहां से आनंद पाने की आशा ऐसे ही है, जैसे कोई रेत से तेल निकालता हो। वह हारेगा ही।
उस हार से ही कुछ संभव है। परिपूर्ण पराजय से ही रूपांतरण संभव है।
तुम अभी हारे नहीं हो। आशा लगी है। वही आशा तुम्हें भटकाए है।
नहीं, प्यास पैदा करने का और कोई उपाय नहीं है। यही भूल तुमने जन्मों- जन्मों की है, इसलिए अब तक पैदा नहीं हो पाई है। अब मत करो इस भूल को।
और मैं नहीं उत्सुक हूं कि तुम धार्मिक हो जाओ। क्योंकि मैं देख रहा हूं कि जिन लोगों ने तुम्हें धार्मिक बनाने में उत्सुकता ली है, उन्होंने तुम्हें बरबाद किया है। मेरी उत्सुकता तुम्हें सच्चा बनाना है, धार्मिक बनाने से मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। संसार में हो, सच्चाई से संसार में हो जाओ।
जब मैं कह रहा हूं, सचाई से संसार में हो जाओ, तो मैं यह नहीं कह रहा हूं कि सत्य बोलो संसार में। मैं यह कह रहा हूं कि पूरे संसारी हो जाओ, प्रामाणिक रूप से संसारी हो जाओ। जो भोगना है, भोग ही लो। सब भोग दुख पर ले आते हैं। सब भोगों के बाद अंधकार छा जाता है। उस गहन अंधकार से ही सुबह पैदा होती है।

अब सूत्रः
और हे महाबाहो, संपूर्ण कर्मों की सिद्धि के लिए ये पांच हेतु सांख्य सिद्धांत में कहे गए हैं, उनको तू मेरे से भली प्रकार सुन।

हे अर्जुन, इस विषय में आधार और कर्ता तथा न्यारे-न्यारे करण, नाना प्रकार की न्यारी-न्यारी चेष्टा, वैसे ही पांचवां हेतु दैव कहा गया है। कृष्ण कहते हैं, पांच कारण हैं, हेतु हैं, सभी घटनाओं के। कोई आधार होता है घटना का, निराधार तो कुछ भी घट नहीं सकता। कोई करने वाला होता है घटना का, बिना कर्ता के घटना घट नहीं सकती। उपकरण होते हैं, उनके सहारे के बिना घटना नहीं घट सकती। चेष्टा होती है, यत्न होता है, प्रयास होता है, उसके बिना भी घटना नहीं घट सकती। और फिर जन्मों-जन्मों के संचित कर्म होते हैं, जिनको दैव कहा है। वे भी उस घटना को घटाने में सहयोगी होते हैं। ये पांच आधार हैं कर्म के।
मनुष्य मन, वाणी और शरीर से शास्त्र के अनुसार अथवा विपरीत जो कुछ भी कर्म करता है, उसके ये पांचों ही कारण हैं।
परंतु ऐसा होने पर भी जो पुरुष अशुद्ध बुद्धि होने के कारण उस विषय में केवल शुद्ध स्वरूप आत्मा को कर्ता देखता है, वह दुर्मति यथार्थ नहीं देखता है।
कारण तो हैं, पांच हैं, लेकिन फिर भी तुम उनके बाहर हो। घटना घटती है,
तो अकारण नहीं घट सकती। घटना घटती है, तो कर्ता भी होगा। घटना घटती है, तो घटाने की चेष्टा भी होगी। पूर्व-संस्कार पीछे खड़े होंगे। किसी भी घटना के लिए ये पांच सहारे चाहिए। लेकिन फिर भी तुम इन पांचों के बाहर हो। तुम साक्षी हो, तुम देखने वाले हो।
भूख लगी, तो शरीर ने आधार बनाया। भूख उठी। इसको तुम भूख की तरह समझ लेते हो, क्योंकि पहले भी तुमने भूख को भूख की तरह जाना है। अगर यह पहली ही दफे लगती, तो तुम पहचान भी न पाते कि यह भूख है। शायद तुम समझते पेट में दर्द हो रहा है। तुम कुछ भी समझते, लेकिन भूख नहीं समझ सकते थे।
पहले दिन का बच्चा भी पहली ही घड़ी, पैदा होते ही जो भूख पैदा होती है,
तो अनुभव कर लेता है कि भूख लगी और मां के स्तन को खोजने निकल जाता है। यह खबर है इस बात की कि यह स्तन बहुत बार पहले भी खोजा गया है। अन्यथा कैसे खोजोगे? पूर्व-संस्कार चाहिए।
तो यह बच्चा कैसे जानता है कि भूख लगी? इसको यह भूख की तरह कैसे पहचानता है? यह कैसे जानता है कि स्तन इसकी भूख की पूर्ति कर देंगे? इसका हाथ स्तन की तरफ क्यों बढ़ने लगता है? यह कैसे स्तन से दूध को पीता है? इसने कभी पहले पीया नहीं। तो दैव।
पहला अतीत, सारा अतीत पीछे से काम कर रहा है। भूख लगी, शरीर ने आधार दिया, संस्कार ने पहचाना, फिर तुमने चेष्टा की। क्योंकि भूख लगी, तो चेष्टा करनी पड़ेगी। भीख भी मांगने गए, तो भी चेष्टा होगी; दुकान गए, तो भी चेष्टा होगी; चोरी करने गए, तो भी चेष्टा होगी। धर्म के अनुकूल या प्रतिकूल कुछ भी करो, चेष्टा होगी।
जब तुम चेष्टा करोगे, तो तुम्हारा मन कर्ता भी होगा। बिना करने वाले
के चेष्टा कैसे होगी? तो मन करेगा। मन विचार करेगा, क्या करूं, क्या न करूं? कैसे रोटी पाऊं आज? चोरी से? भिक्षा से? किसी के घर मेहमान बनकर? कमाकर? क्या करूं? तो मन कर्ता बनेगा। और तुम जो भी उपकरण, जिन-जिन साधनों से भोजन जुटाओगे, वे करण हैं।
ये पांच हैं; तुम छठवें हो।
कृष्ण कहते हैं, इन पांचों में जिसने अपने को डूबा हुआ समझ लिया, वह दुर्मति। तुम इन पांचों के बाहर हो; तुम इन पांचों के देखने वाले हो।
भूख लगती है, वह तुम्हें नहीं लगती। तुम देखते हो, तुम पहचानते हो कि भूख लगी। भूख तुमसे बाहर है, तुमसे दूर है। भूख तुम्हारे आस-पास घटती है, तुममें नहीं घटती।
भूख लगते ही मन चेष्टा में लग जाता है। मन भी तुमसे बाहर है। उसकी भी जरूरत है। बिना मन के भूख लगी रहेगी और तुम्हें पता ही नहीं चलेगा। क्या करोगे? मर जाओगे। मन चेष्टा में लग जाता है, उपाय खोजने लगता है, हाथ-पैर चलने लगते हैं, उपकरण जुटाए जाने लगते हैं, आटा लाओ, पानी लाओ, आग जलाओ, व्यवस्था करो भोजन बनाने की।
लेकिन इस सब घटने में तुम बाहर हो। तुम्हारा होना साक्षी का होना है।
तुम सिर्फ देखने वाले हो, द्रष्टा हो।

ऐसा होने पर जो पुरुष अशुद्ध बुद्धि होने के कारण उस विषय में केवल शुद्ध स्वरूप आत्मा को कर्ता देखता है, वह दुर्मति यथार्थ नहीं देखता। अगर इन सब पांचों के कारण तुमने यह समझा कि तुम कर्ता हो, तो तुम यथार्थ नहीं देखते। तुम अज्ञान में पड़े हो।
और हे अर्जुन, जिस पुरुष के अंतःकरण में मैं कर्ता हूं, ऐसा भाव नहीं
है तथा जिसकी बुद्धि लिपायमान नहीं होती, वह पुरुष इन सब लोगों को मारकर भी वास्तव में न तो मारता है और न पाप से बंधता है।
कृष्ण कहते हैं, अगर इन पांच के बाहर तू अपने को जान ले, जो कि तेरा होना है ही, सिर्फ प्रत्यभिज्ञा चाहिए, होश चाहिए। अगर तू इन पांचों के बाहर अपने को मान ले, जान ले, पहचान ले, तो फिर तू जो भी करता है, उसका कोई पाप-बंध तेरे ऊपर नहीं है। फिर तू भोजन करते हुए उपवासा रहेगा, बोलते हुए मौन, चलते हुए अनचला, करते हुए अकर्ता, संसार में होते हुए भी संसार के बाहर। क्योंकि साक्षी सदा बाहर है। वह लिपायमान नहीं होता।
साक्षी का गुणधर्म क्या है? वह लिपायमान नहीं होता; वह किसी चीज में डूबता नहीं। तुम उसे डुबा नहीं सकते। वह सदा बाहर ही रहता है। वह बाजार में दुकान करेगा और डूबेगा नहीं। वह कर्मों में लीन होगा, फिर भी भीतर एक तत्व शेष रहेगा, जो लीन नहीं होगा। यह जो लिपायमान न होने की कला है, यही धर्म है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, हे अर्जुन, ऐसी अगर तेरी दशा हो जाए, अगर तू पहचान ले कि यह सारा कर्म इन पांच का है और तू अकर्ता है, तो फिर ये जो सारे लोग खड़े हैं, अगर तू इनको मार भी डाल, तो भी पाप से नहीं बंधता है। क्योंकि तूने कोई कृत्य किया ही नहीं; हुआ, किया नहीं। घटना जरूर घटी, उसके कारण थे, उपकरण थे, आधार थे, हेतु थे; लेकिन तू बाहर रहा।
वह पुरुष इन सब लोगों को मारकर भी वास्तव में न तो मारता है... ।
क्योंकि जब मारने वाला ही भीतर भाव नहीं है, तो कैसे हम कहें कि वास्तव में मारता है! सिर्फ अभिनय करता है मारने का।
और न पाप से बंधता है।
यह भारत की गहनतम खोज है। साक्षी तक विश्व का कोई धर्म इस भांति नहीं पहुंचा। बड़े से बड़े धर्म दुनिया में पैदा हुए हैं, लेकिन वे भी कर्ता तक ही पहुंचकर रुक जाते हैं। वे भी कहते हैं, अच्छा करो, बुरा मत करो।
यहूदियों की दस आज्ञाएं हैं या ईसाइयों की, वे सब करने पर आधारित हैं। चोरी मत करो, हिंसा मत करो; करुणा करो, दया करो। महावीर के वचन हैं, उनका भी सारा सूत्र करने से बंधा हुआ है। हिंसा मत करो, परिग्रह मत करो। सब अच्छी बातें हैं, लेकिन एक सीढ़ी नीचे रह जाती हैं, करने पर खड़ी हैं। कर्ता समाप्त नहीं होता।
कृष्ण आखिरी बात कह रहे हैं। इसके पार फिर कोई जाना नहीं है। इसके पार अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। यह आखिरी घड़ी है। साक्षी से पीछे नहीं जा सकते। साक्षी यानी बस आ गए आखिरी से आखिरी मंजिल तक। तुम साक्षी के साक्षी नहीं हो सकते। तुम सब चीजों को देख सकते हो दुनिया में, स्वयं को नहीं देख सकते। स्वयं तो देखने वाला है, वह सदा ही देखने वाला है; उसे तुम कभी देखा जाने वाला नहीं बना सकते। वह द्रष्टा है, उसे तुम कभी दृश्य नहीं बना सकते।
कृष्ण यह कह रहे हैं कि फिर ये सारे लोग भी तेरे द्वारा मारे जाएं, तो
न तो वास्तव में ये मारे जाते हैं, क्योंकि जिसने अपने साक्षी को जान लिया, उसने यह भी जान लिया कि भीतर का तत्व अमृत है। इन बाहर के लोगों को भी काटते समय वह जानेगा कि शरीर ही काट रहा हूं, इनको मार नहीं रहा हूं। मरता तो कोई है ही नहीं।
कृष्ण के हिसाब से हिंसा तो असंभव है। मरना तो होता ही नहीं, तो हिंसा कैसे संभव है? हिंसा इसलिए थोड़े ही होती है कि तुमने किसी को मार डाला। हिंसा सिर्फ इसलिए होती है कि तुमने समझा कि तुमने मार डाला।
तुम्हारे मारने से कोई मरता है? ऐसे ही जैसे कोई किसी के कपड़े छीन ले, इससे कोई मरता है? आदमी दूसरे कपड़े खरीद लेगा। तुमने किसी को मारा, देह छीन ली, देह दूसरी देह खोज लेगी। नई देह मिल जाएगी। शायद पुरानी जराजीर्ण

हो गई थी, तुमने बड़ी कृपा की। नई देह मिल जाएगी। जैसे कोई घर को बदल ले, ऐसे देहों को बदल लिया जाएगा।
तुम्हारे मारने से भी कोई मरता नहीं, इसलिए वस्तुतः तो हिंसा होती ही नहीं; हो नहीं सकती। और मारते समय तुम कर्ता नहीं हो। कृत्य हो रहा है, कारण सब मौजूद हैं, तुम बाहर खड़े हो। इसलिए मैं कहता हूं, कृष्ण का यह सूत्र जीवन को अभिनय बना देता है।
तुम एक अभिनेता हो, कर्ता नहीं। एक बड़ा मंच है जीवन का, उस पर तुम बहुत तरह के काम कर रहे हो। जो तुम्हें दिया गया है, जो तुमने पाया है कि तुम्हें दिया गया है, तुम उसे पूरा कर रहे हो बिना लिपायमान हुए।
इसे थोड़ा सोचो, इसे थोड़ा साधो, और तुम्हारे जीवन में संन्यास की सुगंध उतरनी शुरू हो जाएगी।
इसलिए मैं तुमसे नहीं कहता कि तुम छोड़ो घर को, गृहस्थी को, बच्चों को, परिवार को। उसके छोड़ने से कुछ अर्थ नहीं है। क्योंकि अगर छोड़ने वाला न छूटा, तो कुछ भी नहीं छूटा।
तुम रहो वहीं, जहां हो, सभी जगहें एक-सी हैं। रहो वहीं, रहने के ढंग को बदल दो। और तुम बड़े हैरान होओगे। जरा से ढंग को बदलने की बात है। और उस ढंग की बदलाहट का बाहर पता भी चलना जरूरी नहीं है। किसी को भी पता न चलेगा; कानों-कान खबर न होगी। लेकिन तुम्हारा जीवन आमूल बदल जाएगा।
तुम पति हो, इसको अभिनय समझो। पत्नी छोड़कर भागने की कोई भी जरूरत नहीं है। सिर्फ अभिनय समझो। और पति का काम जितनी कुशलता से कर सको, कर दो। तुम पत्नी हो, पत्नी का काम कुशलता से कर दो। अभिनय है, कुशलता से करना है। लिपायमान मत हो।
किसी को कहने की भी जरूरत नहीं है। किसी को पता चलने की भी जरूरत नहीं है। तुम भीतर सरक जाओ। सब काम वैसा ही चलता रहे। हाथ उठेंगे, बुहारी लगेगी; पति आएगा, चरण धोए जाएंगे; पति आएगा, बाजार से फूल ले आएगा; सब काम वैसे ही चलेगा। कहीं कोई भेद न होगा। कहीं रत्तीभर भेद की जरूरत नहीं है। भीतर कुछ सरक जाएगा। भीतर से कोई हट जाएगा। भीतर घर खाली हो जाएगा। कर्ता वहां नहीं रहा।
और जब कर्ता भीतर नहीं रह जाता, तो ऐसा सन्नाटा छा जाता है जीवन में,
कि कोई भी चीज उस सन्नाटे को तोड़ती नहीं। ऐसी गहन शांति उतर आती है, कि सारा संसार कोलाहल करता रहे, कोई फर्क नहीं पड़ता। तूफान और आंधी के बीच भी तुम्हारे भीतर सब शांत बना रहता है। सफलता हो, असफलता; सुख हो, दुख; हार हो, जीत; जीवन हो, मृत्यु--कुछ अंतर नहीं पड़ता। एक बात के साध लेने से, कि तुम पीछे हटना सीख गए, कोई अंतर नहीं पड़ता।
इसे तुम थोड़ा जीवन में इसकी कोशिश करो। यह बड़ी अनूठी कोशिश है और बड़ी रसपूर्ण। और इससे ऐसा आनंद का झरना फूटने लगता है, जिसका हिसाब रखना मुश्किल है। और तुम खुद मुस्कुराओगे कि यह क्या हो रहा है। इतनी सरल थी बात!
घर आए हो, बेटे की पीठ थपथपा रहे हो; मत थपथपाओ बाप की तरह। बस, थपथपाओ नाटक के बाप की तरह। और मजा यह है कि पीठ ज्यादा अच्छी तरह थपथपाई जाएगी। बेटा ज्यादा प्रसन्न होगा। कहीं कुछ अड़चन न आएगी, कहीं कुछ तुम्हारे कारण बाधा पैदा न होगी और तुम्हारे जीवन का सार सधने लगेगा।
अगर तुम इस जीवन के मंच से ऐसे आओ और ऐसे गुजर जाओ, जैसे अभिनेता आता है; मरते वक्त तुम्हारी मृत्यु तब ऐसे ही होगी, जैसे परदा गिरा; उसमें कोई पीड़ा न होगी। एक कृत्य को ठीक से पूरा कर लेने का अहोभाव होगा। विश्राम की तरफ जाने की भावना होगी। और काम पूरा हो गया, परमात्मा का आह्वान आ गया, वापस लौट चलें। परदा गिर गया।
गेटे, जर्मनी का एक बहुत बड़ा नाटककार, कवि हुआ। जीवनभर नाटकों का ही अनुभव था। और गेटे धीरे-धीरे नाटक के अनुभव से ही उस गहनता को अनुभव करने लगा, जिसको हम साक्षी-भाव कहते हैं। नाटक, और नाटक, और नाटक। धीरे-धीरे पूरा जीवन उसे नाटक जैसा दिखाई पड़ने लगा। जब गेटे मरा, तो उसके आखिरी शब्द ये थे। उसने आंख खोली और उसने कहा कि देखो, अब परदा गिरता है!

नाटककार की भाषा थी, पर चेहरे पर बड़ी प्रसन्नता थी, बड़ा आनंद का अहोभाव था। एक काम कुशलता से पूरा हो गया; परदा गिरता है। मौत तब परदे का गिरना है और जीवन तब खेल है, लीला है।
कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि बस, इतना तू समझ ले; भागने की जरूरत नहीं
है इस महायुद्ध से। और भागकर कोई कहीं जा नहीं सकता, क्योंकि जहां भी जाओगे, वहीं युद्ध है। जीवन महासंघर्ष है। वहां छोटी मछली बड़ी मछली के द्वारा खाई जा रही है। इसका कोई उपाय नहीं है।
शायद यही परमात्मा का नियोजित खेल है, कि इस युद्ध में तुम जागो, कि इस युद्ध के भी तुम पार हो जाओ। रहो निमित्त-मात्र, करने दो उसे जो उसकी मर्जी है। बहें उसकी हवाएं, तुम सिर्फ उन्हें गुजर जाने दो। तुम बाधा मत डालो, तुम बीच में मत आओ। और सब सध जाता है। बिना कहीं गए, सब मिल जाता है। एक बिना कदम उठाए, मंजिल घर आ जाती है।
साक्षी-भाव कुंजी है। इसे थोड़ा प्रयोग करना शुरू करो। यह परम ध्यान है। भूल-भूल जाओ, फिर-फिर याद कर लो। भोजन कर रहे हो, ऐसे ही करो जैसे कि बस, एक नाटक में कर रहे हैं। नाटक बड़ा है माना, बड़ा लंबा है, सत्तर साल चलता है, अस्सी साल चलता है, लेकिन है नाटक।
और तुम्हें भी कई दफे ख्याल आ जाता है कि क्या नाटक हो रहा है! लेकिन बार-बार भूल जाते हो। स्मरण को सम्हाल नहीं पाते, सुरति को बांध नहीं पाते, छूट-छूट जाती है हाथ से। बस, छूटे न। इतना-सा अगर तुम साध पाओ, एक छोटा-सा शब्द, साक्षी। उसमें सारे शास्त्र समाए हैं। यह जो विराट जीवन फैला दिखाई पड़ता है, जहां भी जाओ, रास्ते में खड़े होकर देखो ऐसे ही जैसे नाटक देख रहे हो।
मुल्ला नसरुद्दीन एक नाटक देखने गया था। एक अभिनेता बड़ा कुशल अभिनय
कर रहा था। और वह नाटक में कई बार अपनी पत्नी को आलिंगन करता है; उसका चुंबन लेता है। मुल्ला की पत्नी भी पास बैठी थी। उसने मुल्ला का हाथ हाथ में ले लिया और कहा, मुल्ला, तुम इस भांति मुझे कभी प्रेम नहीं करते। मुल्ला ने कहा, वह तो अभिनय है देवी; उस पर ज्यादा ध्यान मत दे। पत्नी
ने कहा, अभिनय नहीं है। वे वास्तविक जीवन में भी पति-पत्नी हैं, वे जो अभिनय कर रहे हैं पति-पत्नी का। मुल्ला ने कहा, तब तो यह अभिनेता गजब का है, कि अपनी ही पत्नी को इतने मुग्धभाव से चूमता है!
अपनी ही पत्नी को मुग्धभाव से चूमना बड़ा कठिन हो जाता है। उसके लिए बड़ा कुशल अभिनय चाहिए। और सभी चीजें लाभ की हैं।
पूरब में हमने सब चीजें थिर कर ली थीं। ज्यादा हमने स्वतंत्रता न दी
थी जीवन को। क्योंकि स्वतंत्रता से समय नष्ट होता है और मूल्यवान अनुभव करीब नहीं आ पाता। अगर तुम हर दो-चार महीने में पत्नी बदलते जाओ, तो यह खेल, अभिनय कभी भी न हो पाएगा। क्योंकि तुम हमेशा ही उत्तेजित रहोगे। लेकिन एक ही पत्नी चालीस साल, पचास साल; सब चीजें थिर हो जाती हैं, उत्तेजना खो जाती है। उस अनुत्तेजित अवस्था में चीजें अभिनय जैसी हो जाती हैं। तुम चीजों के आर-पार ज्यादा कुशलता से देख पाते हो।
हमने चीजें थिर कर ली थीं, सिर्फ इसीलिए, ताकि आंख ठीक से आर-पार जा सके। दृश्य अगर बदलते रहें दिन-रात, तो तुम किसी भी दृश्य में गहराई से नहीं उतर पाते। पूरब ने एक बड़ी थिर जीवन-व्यवस्था बनाई थी, जिसमें कुछ बहुत बदलता नहीं था।
तुम ऐसा समझो कि अगर रामलीला भी हर साल बदलने लगे, उसकी कहानी बदल जाए,
तो वह रामलीला जैसी न लगेगी। हर बार तुम उत्तेजित होकर वहां पहुंच जाओगे। तुम ऐसा समझो कि एक ही फिल्म तुम्हें पच्चीस बार देखनी है। आज देखकर आए, कल देखी, परसों देखी। आज जो उत्तेजना होगी, कल न रह जाएगी। कल तुम्हें घटना मालूम ही है कि क्या होने वाला है। परसों तो बात बिल्कुल ही फीकी हो जाएगी। तुम थोड़ी-थोड़ी झपकी भी बीच में लेने लगोगे। चौथे दिन तो तुम मजे से सोने लगोगे कि अब क्या, जानने को क्या है; सब जान लिया। अगर पच्चीस दिन तुम्हें एक ही फिल्म देखनी पड़े, तो तुम मुक्त हो जाओगे उस फिल्म से, बिल्कुल मुक्त हो जाओगे। लेकिन रोज नई फिल्म हो, तो उत्तेजना बनी रहेगी। नए को जानने के लिए मन आतुर होता है।

पश्चिम ने एक बदलता हुआ समाज बनाया है, जो रोज बदल रहा है। इसलिए पश्चिम में आखिरी क्षण तक बेचैनी बनी रहती है। मरते दम तक आदमी ऐसा व्यवहार करता है, जैसे अभी जवान है। सुनकर ही हैरानी होती है कभी हमें। एक संन्यासी से मैं पूछ रहा था। उसने कहा कि मेरे पिता की तबीयत खराब है। और वे बड़ी चिंता में पड़े हैं। आप कुछ सहायता करें। मैंने कहा, उनकी चिंता क्या है?
काफी पैसे वाले हैं। पचासी साल की उम्र है। चिंता यह है कि पत्नी भी
है और एक गर्ल-फ्रेंड भी है। पचासी साल की उम्र में, गर्ल-फ्रेंड। उससे झगड़ा-झांसा है। क्योंकि वह पत्नी बरदाश्त नहीं करती। वे पचासी साल के हैं, गर्ल-फ्रेंड पच्चीस साल की है।
अब यह जो पचासी साल का आदमी है, पचासी साल का हो ही नहीं पाया। यह पच्चीस साल की उम्र में तो समझ में आ जाती है बात, लेकिन पचासी साल की उम्र में समझ में नहीं आती।
लेकिन पश्चिम में समझ में आती है; कोई अड़चन नहीं है। जीवन कंपता हुआ है, कुछ थिर नहीं है। जैसे कि नदी डांवाडोल हो, तो उथली नदी की भी गहराई में देखना मुश्किल है। नदी थिर हो, लहर न उठती हो, तो गहरी से गहरी नदी की भी तलहटी में देखना संभव हो जाता है।
हमने एक थिर जीवन बनाया था। उसके पीछे राज था। हम हर आदमी को साक्षी बनाने की चेष्टा में संलग्न थे। हमारी कोशिश यह थी कि तुम जीवन को देखते- देखते ही यह समझ जाओ कि यह तो सिर्फ खेल है। इसके पीछे तुम्हें दिखाई पड़ने लगे। हर दृश्य के पीछे तुम्हें द्रष्टा दिखाई पड़ने लगे; हर शरीर के पीछे तुम्हें आत्मा दिखाई पड़ने लगे; हर घटना के पीछे तुम्हें परमात्मा का हाथ दिखाई पड़ने लगे।
इसलिए हमने सब चीजों को थिर कर दिया था, ताकि लहरों के कंपन के कारण दृष्टि में बाधा न पड़े। सब चीजें साफ हो जाएं।
साक्षी सूत्र है, महासूत्र है। छोड़ दो वेद, छोड़ दो उपनिषद, भूल जाओ गीता, अगर यह एक दो अक्षरों का छोटा-सा शब्द, साक्षी, याद रह जाए, तो तुम सारे शास्त्रों को अपने भीतर जन्म दे सकते हो। क्योंकि सभी शास्त्रों की बस इतनी सी ही शिक्षा है, कि तुम कर्ता न रहो, द्रष्टा हो जाओ।
इसे थोड़ा शुरू करो। मेरे समझाने से यह समझ में न आएगा। यह बात ही समझने-समझाने की नहीं है। लिखा-लिखी की है नहीं, देखा-देखी बात।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग आठ
गीता दर्शन अध्याय 18
छठवां प्रवचन

गुणातीत जागरण

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः।। 18।।
ज्ञानं कर्म च कर्ता च त्रिधैव गुणभेदतः।
प्रोच्यते गुणसंख्याने यथावच्छृणु तान्यपि।। 19।।
सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्त्विकम्।। 20।।
पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान्।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम्।। 21।।
यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम्।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम्।। 22।।
तथा हे भारत, ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय, ये तीनों तो कर्म के प्रेरक हैं अर्थात इन तीनों के संयोग से तो कर्म में प्रवृत्त होने की इच्छा उत्पन्न होती है। और कर्ता, करण और क्रिया, ये तीनों कर्म के संग्रह हैं अर्थात इन तीनों के संयोग से कर्म बनता है।
उन सब में ज्ञान और कर्म तथा कर्ता भी गुणों के भेद से सांख्य ने तीन प्रकार के कहे हैं, उनको भी तू मेरे से भली प्रकार सुन।
हे अर्जुन, जिस ज्ञान से मनुष्य पृथक-पृथक सब भूतों में एक अविनाशी परमात्मा को विभागरहित, समभाव से स्थित देखता है, उस ज्ञान को तू सात्विक जान।
और जो ज्ञान अर्थात जिस ज्ञान के द्वारा मनुष्य संपूर्ण भूतों में अनेक भावों को न्यारा-न्यारा करके जानता है, उस ज्ञान को तू राजस जान।
और जो ज्ञान एक कार्यरूप शरीर में ही संपूर्णता के सदृश आसक्त है तथा
जो बिना युक्ति वाला, तत्वअर्थ से रहित और तुच्छ है, वह ज्ञान तामस कहा गया है।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः आपकी ओर देखने से निष्काम कर्म का चमत्कार नजर आता है, लेकिन अपनी ओर देखने से वह एक असंभावना जैसा दिखता है, ऐसा क्यों?

जिस प्रेम से मेरी तरफ देखते हो, उसी प्रेम से अपनी तरफ देखो। जिस श्रद्धा से मेरी तरफ देखते हो, उसी श्रद्धा से अपनी तरफ देखो। फिर जरा भी फासला न रह जाएगा। फिर तुम्हें अपने भीतर भी वही दिखाई पड़ेगा, जो मेरे भीतर दिखाई पड़ता है।
प्रेम की आंख चाहिए। असली बात श्रद्धापूर्ण हृदय, प्रेम से भरी आंख है। लेकिन इस संसार में सबसे कठिन बात यही है, अपने को ही प्रेम से देखना। दूसरे के प्रति प्रेम रखना कठिन है, इतना कठिन नहीं। दूसरे के प्रति श्रद्धा रखना बहुत कठिन है, पर फिर भी असंभव नहीं है। सध जाता है, सधते- सधते सध जाता है। लेकिन अपनी तरफ श्रद्धा के भाव से देखना बड़ी असंभव-सी बात लगती है। लेकिन जिस दिन वह असंभव घटता है, उसी दिन जीवन में कुछ घटा, ऐसा जानना।
आंखें दूसरे को तो देख पाती हैं, क्योंकि दूसरा बाहर है; स्वयं को नहीं देख पातीं, क्योंकि स्वयं तो आंखों के भीतर छिपा है। वहां जाने के लिए तो आंख बंद करनी होगी। दूसरे की तरफ जाने के लिए तो यात्रा करनी पड़ती है जीवन-ऊर्जा को। अपने तक आने के लिए सब यात्रा छोड़नी पड़ेगी, शांत और थिर होकर बैठ जाना पड़ेगा। उस थिरता के क्षण में ही स्वयं से मिलन होगा।
बहुत कठिन है, लेकिन असंभव नहीं; घटता है। और यह मैं तुमसे कहूंगा, जब
तक वह तुम्हारे भीतर न घट जाए, तब तक तुम कितनी ही श्रद्धा करो किसी पर, उससे सहारा भला मिले, उससे मंजिल पूरी न होगी। अपने पर श्रद्धा लानी होगी।

कठिनाई और भी बढ़ गई है, क्योंकि तुम्हारे तथाकथित धर्मगुरुओं ने, तुम्हारे महात्माओं ने, तुम्हें स्वयं की निंदा सिखाई है; तुम्हें स्वयं का अपमान सिखाया है; तुम्हें स्वयं को ही तिरस्कृत करने की भावना सिखाई है। उन्होंने तुमसे यही कहा है कि तुम महापापी हो, चोर हो, बेईमान हो, झूठे हो, अंधेरे में हो, हिंसक हो। तुम्हारे भीतर उन्होंने नरक को चित्रित किया है। अग्नि की लपटें ही लपटें बताई हैं। तुम्हारे भीतर स्वर्ग के राज्य की तरफ तो उन्होंने इशारा नहीं किया। कभी कोई जीसस, कभी कोई बुद्ध, महावीर इशारा करता है, लेकिन वह आवाज खो जाती है लाखों महात्माओं के शोरगुल में। महात्मा का सारा धंधा इस बात पर निर्भर है कि तुम्हें निंदित करे। तुम जितने निंदित हो जाते हो, जितने भयभीत हो जाते हो, जितने घबड़ा जाते हो, उतने ही तुम महात्मा की शरण में चले जाते हो। तुम जितने अपराध-भाव से भर जाते हो, उतना ही तुम्हारा शोषण किया जा सकता है।
मंदिर-मस्जिदों में, गुरुद्वारों में झुके हुए लोग बड़ी गहन अपराध की भावना से झुके हैं। प्रार्थनाएं कर रहे हैं कि हम पतित हैं, तुम पतितपावन हो!
ध्यान रखना, अगर तुम पतित हो, तो पतितपावन से कभी तुम्हारा मिलन न होगा। क्योंकि समान से ही समान मिलता है। तुम अगर पतित ही हो, तो मिलन संभव नहीं है। तुम्हें भी पतितपावन होना पड़ेगा। परमात्मा से मिलना हो, तो परमात्मा की उदभावना तुम्हें अपने भीतर भी करनी होगी। वही तुम्हारी पात्रता बनेगी। जिस दिन तुम भी इस उदघोष से भरोगे कि मैं भी परमात्मा हूं... ।
यह कोई अहंकार नहीं है। यह सीधा सत्य है। तुम भी परमात्मा हो, उसी के अंश हो। छोड़ो निंदा, छोड़ो अपने प्रति दूषित-कलुषित भाव। भूलो नरक को। जैसे-जैसे तुम अपने प्रति सदभाव से भरोगे, अपने को स्वीकार करोगे, वैसे-वैसे तुम पाओगे कि स्वर्ग के राज्य के द्वार खुलने लगे। और बड़ा चमत्कार तो यह है कि जितना तुम अपने को पतित समझोगे, उतने पतित होते जाओगे। क्योंकि तुम्हारे विचार ही तो तुम्हारे जीवन को निर्मित करते हैं। तुम जितना अपने को बुरा समझोगे, उतना अपने आचरण में अपने को बुरा तुम्हें सिद्ध करना भी पड़ेगा, नहीं तो खुद की ही समझ गलत होने लगेगी।
तुम अपने को बेईमान समझते हो, इससे और बेईमानी पैदा होती है। और बेईमानी पैदा होती है, तुम अपने को और बेईमान समझते हो। उससे और बेईमानी पैदा होती है।
मनसविद कहते हैं कि अगर पापी व्यक्ति को भी, बुरे व्यक्ति को भी सारे लोग यही याद दिलाएं कि तू पापी नहीं है; उसके चारों तरफ की हवा उससे एक ही बात कहे कि तू परमात्मा है, पुण्यात्मा है। अगर पाप हो भी गया है, तो वह कृत्य है एक, वह तेरा स्वभाव नहीं है। वह भूल है, वह तेरा कोई स्वरूप नहीं है।
हजार काम आदमी कर रहा है, एक भूल हो जाती है, इससे कोई पापी नहीं हो जाता! कभी कोई आदमी बीमार हो जाता है, इसलिए बीमारी तुम्हारा स्वभाव नहीं हो जाती; कि कभी बुखार आ गया था, तो तुम्हारा बुखार स्वभाव हो गया! कि अब तुम जब भी मंदिर में जाओ तब भगवान को कहो कि मैं बुखार हूं और तुम महा चिकित्सक हो!
यह बकवास बंद करो। कभी आदमी बुखार से भर जाता है, कभी क्रोध से भी भर जाता है, पर ये दुर्घटनाएं हैं, ये तुम्हारा स्वभाव नहीं हैं। ये भूल-चूक हैं ज्यादा से ज्यादा, अपराध इसमें कुछ भी नहीं है। कमजोरियां होंगी, पाप कुछ भी नहीं है। इन्हें गौण करो, इन पर ज्यादा ध्यान मत दो। अगर तुमने इन्हीं पर ध्यान दिया, तो इन्हीं को पोषण मिलेगा।
तुम ध्यान तो अपने स्वभाव पर दो, अपने निर्विकार पर दो, अपने निर्दोष
पर दो। धीरे-धीरे तुम पाओगे, अपने ही प्रेम में गिरने लगे। अपने ही प्रेम में गिरने लगे, अपने में ही रस आने लगा, अपने ही जीवन का अंतर्गीत उठने लगा, अपने भीतर ही सुवास अनुभव होने लगी। और जैसे ही भीतर सुवास अनुभव होगी, फिर बढ़ती चली जाती है। फिर तुम्हारे जीवन-चेतना की धारा बदल जाती है।

ज्ञानी तो एक ही बात दोहराते हैं, तत्वमसि श्वेतकेतु! तू भी वही है श्वेतकेतु। जो वहां आकाश में है, वही तेरे अंतर-आकाश में है। उसको हीन मत कर, उसको छोटा मत मान, उसकी निंदा मत कर।
क्या फर्क पड़ता है कि तुम्हारे भीतर के परमात्मा ने एक दिन पान खा लिया; कोई पाप नहीं हो गया। कि एक सुंदर स्त्री को राह से निकलते देखकर तुम्हारे भीतर के परमात्मा पर थोड़ी-सी बदली छा गई; कुछ पाप नहीं हो गया। सूरज पर इतनी बदलियां छाती रही हैं, इससे कोई सूरज का प्रकाश नष्ट नहीं हो जाता है। इससे सूरज कोई चिल्ला-चिल्लाकर रो-रोकर छाती नहीं पीटता है कि मेरे चारों तरफ बदलियां छा गईं, मैं महापापी हो गया। सूरज के सूरजपन में कोई फर्क नहीं आता। बदलियां आती हैं, चली जाती हैं; सूरज का सूरजपन शाश्वत है।
तुम्हारा परमात्म-भाव शाश्वत है। जिस प्रेम से तुमने मेरी तरफ देखा है, उसी प्रेम से तुम अपनी तरफ देखो। मेरे पास तुम अगर प्रेम करना ही सीख लो, बस काफी है--अपने को प्रेम करना।
यह बात उलटी लगेगी, क्योंकि तुम्हें तो महात्मा समझाते हैं, दूसरों
को प्रेम करो। मैं तुम्हें समझाता हूं, अपने को प्रेम करो। क्योंकि जिसने अपने को नहीं किया, वह दूसरे को करेगा कैसे! उस करने में कहीं न कहीं धोखा होगा। जब घर में ही रोशनी नहीं है, तो तुम उसे दूसरे पर कैसे डालोगे? भीतर का दीया जलता हो, तो किसी दूसरे की आंख में भी उस ज्योति की झलक आ सकती है। भीतर का दीया ही न जलता हो, तो तुम दूसरों पर कैसे रोशनी डालोगे?
मैं तुमसे नहीं कहता, दूसरों को प्रेम करो। उससे ही तुम भटके हो। मैं तुमसे कहता हूं, तुम अपने को प्रेम करो। तुम जिस दिन अपने को प्रेम करोगे, तुम पाओगे, दूसरे को प्रेम करने के अतिरिक्त अब कोई उपाय न बचा। तुम्हारे भीतर प्रेम की लहरें उठेंगी। उसके अतिरिक्त तुम्हारे पास कुछ बचा नहीं जो तुम दूसरे को दे सको।
मैं तुमसे कहता हूं, स्वार्थी बनो। तुम्हें परार्थी बनाने वालों ने तुम्हें बिल्कुल बिगाड़ दिया है। मैं तुमसे कहता हूं, स्वार्थी बनो। क्योंकि स्व का अर्थ जान लेना ही धर्म है, और कुछ भी नहीं। स्वार्थ धर्म है।
लेकिन तुम घबड़ाते हो स्वार्थ शब्द सुनकर ही। यह तो बात ही पाप की हो गई। परार्थ! और जिसने जीवन में स्वार्थ न साधा, उसके जीवन में परार्थ कैसे आएगा? जो अपना ही न हो पाया, वह किसका हो पाएगा! जो अपने को भी गरिमा और गौरव से न भर पाया, वह किसके गौरव के गीत गा सकेगा! उसके तो जीवन में बीज ही नहीं है, वृक्ष की तो बात ही छोड़ दो। भूमि पर आधार ही न रख रहे हो, भवन कहां खड़ा होगा!
गुरु के पास अगर कोई एक घटना घटनी चाहिए, तो वह यह है कि तुम गुरु के प्रेम से धीरे-धीरे समझो, अपना प्रेम। गुरु को बाहर देखो, और गुरु वही है, जो तुम्हें धीरे-धीरे तुम्हारे प्रेम में डाल दे। और एक दिन तुम्हारे पैरों में वह गति आ जाए और तुम्हारी आंखों में वह रोशनी आ जाए और तुम्हारा हृदय एक नए अहोभाव से धड़कने लगे।
तब तुम पाओगे कि जीवन की पूरी प्रक्रिया और हो गई। कल तक तुम भूलों पर ध्यान देते थे, अब तुम स्वभाव पर ध्यान देते हो।
जिसको तुम ध्यान देते हो, वह परिपुष्ट होता है। जहां ध्यान जाता है, वहीं तुम्हारी जीवन-धारा पोषण करती है। भूल पर ध्यान दोगे, भूलें बढ़ती जाएंगी; भूल परिपुष्ट होंगी। ध्यान भोजन है।
भूल को गौण करो। ध्यान स्वयं पर दो, अस्तित्व पर दो। कृत्य पर नहीं, स्वभाव पर। कृत्य में भूल हो सकती है, तुम्हारे स्वभाव में तो अहर्निश परमात्मा वास कर रहा है। वहां कभी कोई भूल नहीं हुई। तुम्हारे होने में तो कोई भी भूल नहीं है, तुम्हारे करने में भूल हो सकती है।
करने की भूल सपने से ज्यादा नहीं है। जैसे रात तुमने सपना देखा कि किसी की हत्या कर दी। अब सुबह तुम छाती पीटकर रोते नहीं। न ही तुम चिल्लाते फिरते हो कि मैं महापापी हूं। सपना सपना था।
कृत्य सपने से ज्यादा नहीं है, यही माया का सिद्धांत है। कि जो तुम करते हो, वह सपने से ज्यादा नहीं है; जो तुम हो, वह सत्य है। जो तुम करते हो,

वह तो सपना है, वह तो विचार की तरंगें हैं। आएंगी, चली जाएंगी। तुम उनके पार अछूते रह जाओगे।
यह ठीक ही लगता है। मेरी ओर देखने से तुम्हें अगर निष्काम कर्म का चमत्कार नजर आता है और अपनी तरफ देखने पर असंभावना दिखाई पड़ती है, तो उसका कुल कारण सीधा-साफ है। तुम जिस भाव और प्रेम से मेरी तरफ देखते हो, उसी भाव और प्रेम से तुमने अपनी तरफ नहीं देखा। जिस भाव से तुमने मेरे चरण छुए हैं, उसी भाव से तुमने अपने चरण नहीं छुए।
जिस भाव से तुम मेरे सामने झुके हो, उसी भाव से अपने सामने भी झुक जाओ। क्योंकि मैं जो तुम्हारे बाहर हूं, वही तुम्हारे भीतर भी है।
कभी तुम ख्याल करो, अगर तुम अपने ही चरण छूने को झुक जाओ, तो तुम्हारे जीवन में कैसी क्रांति न घट जाएगी! तब तुम अपने भीतर परमात्मा को सम्हालकर चलोगे, जैसे गर्भवती स्त्री चलती है। एक नए जीवन का भीतर आविर्भाव हुआ है; एक-एक कदम सम्हालकर रखती है, होश से रखती है। उसकी सारी जीवन-धारा नए आने वाले शिशु के आस-पास घूमने लगती है, परिक्रमा करने लगती है। वह नया आने वाला जन्म मंदिर जैसा हो जाता है, उसके चारों तरफ परिक्रमा चलने लगती है। तुम अपने ही पैर छूकर किसी दिन देखो; कभी अपने ही सामने सिर झुकाओ। और तुम बड़े हैरान होओगे कि भीतर विराजमान है सम्राटों का सम्राट। तुम व्यर्थ ही भिखारी बने थे।
लेकिन तुम्हें भिखारी बनाया भी गया है। क्योंकि जब तक तुम भिखारी न
बन जाओ, तब तक पुरोहित का व्यवसाय नहीं चल सकता। तुम भिखारी बनो, तो ही मंदिर में जाओगे। अगर तुम सम्राट हुए, तो तुम स्वयं मंदिर हो गए। अगर तुम भिखारी बनो, तो ही तुम गुरुओं को खोजोगे। अगर तुम स्वयं सम्राट हो गए, तो गुरु को खोजने की क्या जरूरत रह जाएगी!
यह धर्म है, इतना विराट जाल चलता है धर्म का, वह तुम्हारे भिखमंगेपन
से चलता है। इसलिए धर्म तुम्हें समझाए जाता है--तथाकथित धर्म--कि तुम पापी हो, महापापी हो, तुम जमीन पर बोझ हो। तुमने उसको स्वीकार कर लिया है। बचपन से यही बात तुम्हें समझाई गई है।
बच्चा पैदा होता है। और दुनिया में एक बड़ी से बड़ी दुर्घटना घटनी शुरू
हो जाती है। जैसे ही बच्चा पैदा होता है, मां-बाप उसके होने पर जोर नहीं देते, उसके कृत्य पर जोर देते हैं। जैसे बच्चा अगर कुछ करता है, तो वे कहते हैं, गलत किया। कुछ और करता है; तो कहते हैं, ठीक किया। जब बच्चा ठीक करता है, तो वे उसे प्रशंसा देते हैं, मिठाई देते हैं, खिलौने देते हैं। जब बच्चा गलत करता है, तो पीटते हैं, मारते हैं।
बच्चे को पहले तो समझ में नहीं आता, क्योंकि बच्चे की भाषा अस्तित्व
की होती है, करने की नहीं होती। वह समझ ही नहीं पाता कि मामला क्या है! कभी पीटते हैं, कभी मिठाइयां देते हैं। मैं तो वही हूं। लेकिन कभी पीटने लगते हैं, कभी चिल्लाने लगते हैं, कभी बड़े प्रसन्न होकर गले लगा लेते हैं! बच्चा बड़ी विडंबना में पड़ जाता है। उसका मन समझ ही नहीं पाता कि यह राज क्या है! कौन सी तरकीब है, जिससे ये सदा प्रसन्न रहें! क्योंकि इनके ऊपर वह निर्भर है।
तो वह धीरे-धीरे वही काम करने शुरू कर देता है, जिनमें प्रशंसा पाता है; और वे काम बंद करने लगता है, जिनमें अप्रशंसा मिलती है। न केवल बंद करने लगता है, बल्कि दबाने लगता है, क्योंकि उनको भी करने की भावना मन में उठती है। उनका भी कोई नैसर्गिक अर्थ है। करना चाहता है, लेकिन करता नहीं। फिर एकांत में, अकेले में करने लगता है उन्हीं कर्मों को, उन्हीं कृत्यों को। तब ग्लानि पैदा होती है कि मैं अपराध कर रहा हूं, मैं बहुत बड़ा पाप कर रहा हूं।
फिर एक बात सूत्र की तरह साफ हो जाती है हर बच्चे को। और जिस दिन यह बात साफ हो जाती है, समझो उसी दिन बच्चा मर जाता है; उसी दिन से बचपन की सरलता, निर्दोषता मर गई; उसी दिन से बच्चे में विकार पैदा हो गया। वह क्या है धारणा?
वह धारणा यह है कि मैं जैसा हूं, वह स्वीकृत नहीं। स्वीकार होने के लिए मुझे कुछ करना पड़ेगा, तब मैं स्वीकार हो सकता हूं। मैं जैसा हूं, वैसा

प्रेम के योग्य नहीं हूं। प्रेम के योग्य होने के लिए कुछ शर्तें मुझे पूरी करनी पड़ेंगी, अन्यथा मैं घृणा के योग्य हो जाऊंगा।
बस, यहीं भूल शुरू हो गई। फिर वह भूल तुम्हारा पीछा करती है। पहले मां- बाप उसे पैदा करते हैं, फिर पंडित-पुरोहित उसे बढ़ाते हैं, फिर स्कूल के शिक्षक हैं, राजनीतिज्ञ हैं, महात्मा हैं। फिर पूरा तुम्हारा जीवन का जाल एक ही बात के इर्द-गिर्द घूमता रहता है कि तुम जैसे हो, वैसे स्वीकृत नहीं हो; तुम्हें कुछ करना होगा। होना काफी नहीं है; कृत्य का मूल्य है। और कृत्यों में भी भेद हैं। कुछ कृत्य पाप हैं और कुछ कृत्य पुण्य हैं। और कभी-कभी तो बिल्कुल साधारण से कृत्य भी... ।
कल एक युवक मुझे पूछ रहा था। वापस लौटता है डेनमार्क। वह मुझसे पूछने लगा कि यहां भारत में तो मैं अंगुलियां चटकाना सीख गया हूं। और मुझे अच्छा भी लगता है चटकाने से। और भारत में इसका कोई विरोध भी नहीं करता, लेकिन पश्चिम में अंगुलियां चटकाना बहुत बुरा समझा जाता है। तो जब मैं वापस जाऊंगा, मैं झंझट में पड़ने वाला हूं। अगर मैंने अंगुलियां चटकाईं, तो लोग इसको बुरा समझते हैं। यह अपशगुन है।
पूरब में तो इसका कोई विरोध नहीं है, बल्कि उपयोग है इसका। जब भी तुम थके होते हो, अंगुलियां चटका लेते हो, हाथ फिर से ऊर्जा से भर जाते हैं, हाथ फिर ताजे हो जाते हैं। लेकिन पश्चिम में इसका विरोध है। वह विरोध भी इसी कारण है। कारण वही है कि तुम जब किसी के सामने हाथ चटकाते हो, तो इसका मतलब यह है कि वह तुम्हें थका रहा है। तुम ऊब जाहिर कर रहे हो। कोई तुमसे बात कर रहा है और तुम अंगुलियां चटका रहे हो, इसका मतलब यह है कि तुम जम्हाई ले रहे हो उसके मुंह के सामने, जो कि अपशगुन है, सुसंस्कार नहीं है।
दोनों के पीछे कारण तो वही है, लेकिन एक तरफ उसको स्वीकार कर लिया गया है, एक तरफ अस्वीकार कर दिया गया है।
तो पश्चिम में अगर अंगुली चटकानी है, तो वह युवक मुझसे बोला, तो फिर मुझे एकांत में ही चटकानी पड़ेगी। वह मैं सीधे सबके सामने नहीं चटका सकता। साधारण-सा कृत्य, निर्विकार, जिसका कोई न किसी को नुकसान पहुंच रहा है, न किसी को हानि हो रही है, वह भी स्वीकार-अस्वीकार की दुनिया में तुलता है। तुम ऐसी-ऐसी बातों को स्वीकार-अस्वीकार करते हो, जिनका कोई भी निहित मूल्य नहीं है।
पर इसका परिणाम यह होता है कि बच्चे के भीतर एक दरार पड़ गई। वह आधा अस्वीकृत हो गया, आधा स्वीकृत हो गया। फिर वह यह जानकर भी हैरान होता है कि कभी-कभी वही कृत्य दूसरों के सामने अस्वीकार किए जाते हैं, घर के ही लोगों के सामने अस्वीकार नहीं किए जाते।
एक बच्चा खेल रहा है, दौड़ रहा है, ऊधम कर रहा है। परिवार के लोग कोई फिक्र नहीं करते, लेकिन घर में मेहमान आ रहे हैं कि उसे डांट-डपट शुरू हुई। उसकी समझ के बाहर होता है कि जो अभी क्षणभर पहले बिल्कुल ठीक था, वह क्षणभर बाद अचानक गड़बड़ क्यों हो गया! मेहमान के आने से क्या फर्क पड़ रहा है!
इसका मतलब यह हुआ कि तुम एक और धारणा उसके भीतर पैदा कर रहे हो, कि तुम एकांत में एक तरह से हो सकते हो, दूसरों के सामने दूसरी तरह से होना है। तुम एक झूठा आदमी पैदा कर रहे हो, जिसमें एक झूठा चेहरा लगाकर जाना पड़ेगा। संसार में जाना है, बाजार में जाना है, समाज में जाना है, तो तुम्हें बहुत-से मुखौटे उपयोग करने पड़ेंगे।
इन्हीं मुखौटों में तुम्हारी आत्मा खो गई है। और एक बहुत बहुमूल्य बात तुम्हें विस्मृत हो गई है कि तुम जैसे हो, परमात्मा को वैसे ही स्वीकृत हो। अन्यथा तुम होते ही नहीं। उपनिषदों का यह वचन, तत्वमसि श्वेतकेतु! इसी बात की उदघोषणा है। इस वचन पर पूरा का पूरा शिक्षाशास्त्र रूपांतरित हो सकता है। इस एक वचन पर पूरी दूसरी तरह की संस्कृति निर्मित हो सकती है।
इस वचन का मतलब यह है कि हे श्वेतकेतु, तू जैसा है, वैसा ही परमात्मा है। तुझे परमात्मा होने के लिए कुछ करना नहीं है। और तू जो करता है, उसकी तेरे परमात्मा होने से कोई संगति-असंगति नहीं है।
इससे क्या मैं यह कह रहा हूं कि बच्चों को हम कहें कि तुम्हें जो करना
है तुम करो? नहीं, वह तो संभव न होगा, व्यावहारिक भी न होगा। बच्चे को हमें

यह धारणा देनी चाहिए कि तुम तो स्वीकृत हो, तुम्हारे प्रति हमारा प्रेम तो बेशर्त है। तुम्हारे करने, न करने से तो हमारे प्रेम में कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन हम तो तुम्हें प्रेम करते हैं, यह सारी दुनिया तुम्हें प्रेम नहीं करती। इस दुनिया से अगर तुम्हें प्रेम पाना हो, तो तुम्हें कृत्य और अकृत्य का ख्याल रखना होगा।
लेकिन हमारी तरफ से तुम पूरे स्वीकृत हो। तुम अगर पाप भी करोगे, महापाप भी करोगे, तो भी हमारे प्रेम की धारा में क्षणभर भी बूंदभर की भी कमी न होगी। हम तुम्हें वैसे ही प्रेम किए चले जाएंगे। तुम चाहे मंदिर में विराजमान हो जाओ सिंहासन पर और चाहे कारागृह में बंद रहो, हमारा प्रेम तुम्हारे प्रति एक-सा रहेगा। प्रेम से तुम्हारे कृत्यों का कुछ लेना-देना नहीं है।
लेकिन दुनिया को तुमसे कोई प्रेम नहीं है। दुनिया को तुम्हारे कृत्यों से मतलब है। सारी दुनिया तुम्हारे माता-पिता नहीं हैं, न तुम्हारे मित्र हैं, न तुम्हारे प्रेमी हैं। वहां तो तुम जाओ, तो उनसे तुम्हारा संबंध कृत्य का है। हमसे तुम्हारा संबंध होने का है।
एक बार बच्चे को यह पता चल जाए कि उसका होना पूरा का पूरा स्वीकार करने वाला भी कोई है, तुमने उसके जीवन से निंदा हटा दी। तब उसके जीवन में कभी भी आत्मनिंदा न होगी।
मैं सदगुरु उसी को कहता हूं कि जो मां-बाप से नहीं हो पाया, वह कर दे।
तुम उसके पास आओ, और वह तुम्हारी निंदा न करे।
रोज घटना घटती है। परसों एक युवक ने आकर कहा कि मुझे शराब पीने की आदत पड़ी है। वह बहुत घबड़ाया हुआ था। शराब छूटती नहीं है।
तो मैंने उसको कहा, तू फिक्र मत कर, ऐसी छोटी-सी आदत के लिए इतनी क्या फिक्र! इतनी क्या चिंता लेनी! शराब ही पीता है न, कोई किसी का खून तो नहीं पी रहा!
उसका सिर जो नीचे झुका था, ऊपर उठ गया। उसने कहा कि नहीं, इसमें किसी
की हानि नहीं कर रहा हूं; अपनी ही हानि कर रहा हूं। लेकिन छूटती नहीं। मैंने कहा, तू उस पर ध्यान ही मत दे। तू ध्यान पर ताकत लगा। यह शराब को छोड़ने का ख्याल ही गलत है। दुनिया में छोड़ने की बात ही गलत है। दुनिया में पाने की बात करनी चाहिए। और जब भी तुम विराट को पा लोगे, क्षुद्र छूट जाएगा। श्रेष्ठ को पा लोगे, निकृष्ट छूट जाएगा। तू शराब इसीलिए पी रहा है कि तेरे भीतर कोई समाधि की गहरी आकांक्षा है। तू जानता नहीं कैसे समाधि लगे, इसलिए गलत ढंग से उसको लगाने की कोशिश कर रहा है।
शराब का मतलब ही केवल इतना है कि आदमी डूबना चाहता है। इसलिए तो फकीरों ने, संतों ने परमात्मा तक को शराब कहा है।
कबीर ने कहा है, सकल कलारी भई मतवारी, मधुवा पी गई बिन तौले। मधुशाला पूरी की पूरी पागल हो उठी कि बिना तौले लोग शराब पी गए।
अब परमात्मा की शराब भी कोई तौल-तौलकर पीनी पड़ती है! वह भी कोई तौलने
की बात है! वह तो जब पी गए, तो पी गए; पूरी पी गए।
संतों ने परमात्मा को शराब कहा है, समाधि को शराब कहा है। कारण है।
शराब में कुछ बात है।
मेरे देखने में यही आया है कि जो लोग भी शराब की तरफ उत्सुक होते हैं,
वे जरा-सी चूक कर रहे हैं; बड़ी जरा-सी चूक। उन्हें ध्यान की तरफ उत्सुक होना था। उनकी गहरी आकांक्षा ध्यान की है।
इसलिए मेरे अनुभव में ऐसा आया है कि जिसने कभी शराब नहीं पी है, वह शायद ध्यान कर भी न पाए। उसके भीतर आकांक्षा नहीं है। वह शराब तक नहीं पीया है, ध्यान क्या खाक करेगा! उसे बेहोश होने की, मस्त होने की धारणा ही नहीं है। डूबने का उसने मजा ही नहीं जाना है, उसको रस ही नहीं आया है, स्वाद ही नहीं पकड़ा है।
तो मेरे पास उस तरह के लोग भी आ जाते हैं। वे कहते हैं, हम शराब भी नहीं पीते, सिगरेट भी नहीं पीते, पान भी नहीं खाते, शाकाहारी हैं, समय पर सोते हैं, समय पर उठते हैं, लेकिन जीवन में कोई आनंद नहीं है।
क्या तुम सोचते हो, इन सब बातों से जीवन में आनंद होने का कोई भी संबंध है! तुम सिगरेट न पीयो, इससे क्या आनंद होने का कोई संबंध है? सिगरेट न

पीने से आनंद होने का कौन-सा संबंध है? किस मूढ़ ने तुम्हें समझाया कि तुम सुबह ठीक रोज समय पर उठ आते हो, इससे तुम्हारे जीवन में कोई आनंद हो जाएगा! नहीं, तुम्हें पता ही नहीं है।
शराबी मुझे स्वीकृत है, क्योंकि मैं जानता हूं कि उसके शराब के कृत्य में भूल हो सकती है, लेकिन शराब की आकांक्षा में भूल नहीं है। उसने गलत शराब चुन ली है, इतनी भर भूल है। उसे ठीक शराब चुननी थी, वह हम चुना देंगे; वह हम उसे पकड़ा देंगे। वह ठीक मधुशाला में आ गया, अब भाग न पाएगा।
वह शराबी युवक मुझसे कहने लगा कि यही मुसीबत है। आपसे बचने का उपाय नहीं है। कई दफे सोचता हूं, छोड़ दूं संन्यास; शराब नहीं छूटती, संन्यास छोड़ दूं। लेकिन कैसे छोडूं?
मैं शराब छोड़ने को कहता भी नहीं। मैं कहता हूं, हम बड़ी शराब बनाने की कला सिखाते हैं; और घर-घर भट्टी खोलने की कला सिखाते हैं। अपनी ही बना लो और पी लो; और बिना तौले पी जाओ। छूट जाएगी शराब।
मेरे देखे, गलत कृत्य सिर्फ इसीलिए जीवन में हैं, क्योंकि उनके द्वारा तुम कुछ पाना चाहते हो; तुम्हें होश नहीं है, वह उनसे मिलेगा नहीं। शराब से कहीं समाधि मिली है? थोड़ी देर के लिए विस्मरण मिलेगा और बड़ा महंगा। शरीर को नुकसान होगा, मन को नुकसान होगा। और यह भी संभावना है कि अगर यह बहुत ज्यादा शराब चलती रही, चलती रही, तो तुम्हारा होश इतना खो जाए कि तुम्हें समाधि की तरफ जाने में पैर ही डगमगाने लगें। उस तरफ तुम कभी जा ही न सको।
कृत्य का कोई बहुत मूल्य नहीं है, तुम्हारे होने का मूल्य है। तुम्हारा होना इतना मूल्यवान है, इतना परम मूल्य है उसका कि तुम क्या करते हो, इसका हम कहां हिसाब रखें! उस पर ध्यान देते हैं भीतर, तो परमात्मा खड़ा दिखाई पड़ता है, हाथ में भला हो कि तुम सिगरेट पी रहे हो। अब सिगरेट पर ध्यान दें कि भीतर के परमात्मा पर ध्यान दें!
पंडित-पुरोहित का जोर हाथ की सिगरेट पर है। ज्ञानियों का जोर भीतर के परमात्मा पर है।
हम तो भीतर के परमात्मा को पुकारेंगे। अगर वह पुकार सुन ली गई, सिगरेट हाथ से छूट जाएगी। वह छूट जानी चाहिए। छोड़ने की जरूरत नहीं आनी चाहिए, छूट जानी चाहिए।
हम तो भीतर की शराब पिलाएंगे, बाहर की छूट जाएगी। छोड़ने के लिए हमारी कोई जल्दी भी नहीं है, कोई आग्रह भी नहीं है। छूटनी चाहिए। यह सहज ही फलित होगा। यह तुम्हारा कृत्य नहीं होगा।
जिस आंख से तुमने मेरी तरफ देखा है, उसी आंख से अपनी तरफ देखो। और जिन हाथों से और जिस श्रद्धा से तुमने मेरे पैर छुए हैं, उसी श्रद्धा और उन्हीं हाथों से अपने पैर छुओ। मैं तुम्हारे भीतर भी हूं। बस, उसी दिन रूपांतरण शुरू हो जाता है।

दूसरा प्रश्नः जिसके जीवन में सुबह घट जाए, क्या उसके जीवन में फिर सांझ नहीं आती?

जिसके जीवन में सुबह घट जाए, उसके जीवन में सांझ तो आती है, लेकिन सांझ जैसी मालूम नहीं पड़ती। जिसके जीवन में आनंद घट जाए, उसके जीवन में भी दुख आता है, लेकिन दुख जैसा मालूम नहीं पड़ता।
बुद्ध के पैर में भी कांटा चुभे, तो पीड़ा होगी। शायद तुमसे थोड़ी ज्यादा ही हो, क्योंकि तुम्हारी संवेदना बुद्ध जैसी नहीं हो सकती। बुद्ध की संवेदनशीलता तो बिल्कुल शुद्ध है; तुम्हारी संवेदनशीलता तो कठोर है।
बुद्ध के पैर में कांटे का चुभना तो कमल की पखुड़ी में कांटे का चुभना है।
तुम्हारा पैर तो जड़ है।
बुद्ध को पीड़ा तो होगी, और पीड़ा नहीं होगी। इस विरोधाभास को ठीक समझ लेना चाहिए।
बुद्ध पीड़ा को तो जानेंगे, लेकिन बुद्ध को पीड़ा नहीं होगी। सांझ तो आएगी, लेकिन सुबह बनी रहेगी। सांझ सुबह के चारों तरफ आ जाएगी, लेकिन सुबह को स्थानांतरित न कर पाएगी। सुबह की जगह न आएगी सांझ। सुबह तो जलती ही

रहेगी भीतर। बुद्ध का आनंद तो वैसा का वैसा बना रहेगा। इस पीड़ा की बदली से कोई भी फर्क न पड़ेगा।
पीड़ा आएगी, पीड़ा का पता भी चलेगा। कांटा चुभ रहा है, दर्द दे रहा है, यह
सब होश होगा। बुद्ध को न होगा, तो यह होश किसको होगा! थोड़ा ज्यादा ही होगा, क्योंकि होश पूरा है। जैसे सन्नाटा गहन हो, तो सुई भी गिर जाए तो आवाज सुनाई पड़ती है। ऐसा सन्नाटा है बुद्ध का। वहां सुई भी गिरेगी, तो सुनाई पड़ेगी।
तुम तो एक बाजार हो। वहां कोई बैंड-बाजा बजाए, तब कहीं मुश्किल से तुम्हें सुनाई पड़ता है कि अच्छा, कुछ हो रहा है। तुम तो एक भीड़ हो। तुम्हारे भीतर छोटी-छोटी घटनाओं का तो पता ही नहीं चल सकता। सुई के गिरने का क्या खाक पता चलेगा! उसका कोई तुम्हें पता न चलेगा। लेकिन बुद्ध को पता चलेगा। पर पता चलेगा। बुद्ध उसके पार ही रहेंगे।
सुबह होने का अर्थ है, पार होने की कला। सुबह होने का अर्थ है, अतिक्रमण, ट्रांसेंडेंस। घट रही है पीड़ा, कांटा चुभ रहा है। लेकिन बुद्ध को नहीं चुभेगा; शरीर को ही चुभेगा। पीड़ा शरीर में ही घटेगी। बुद्ध दर्शक की तरह ही होंगे।
बुद्ध को ऐसी पीड़ा होगी, जैसी किसी और को होती हो। निश्चित ही, बुद्ध उपेक्षा न करेंगे, क्योंकि बुद्धत्व का अर्थ ही परम करुणा है। जिनकी करुणा दूसरे की पीड़ा पर होती है, क्या उनकी अपने शरीर पर करुणा न होगी? तुम्हारे पैर में कांटा चुभे, तो बुद्ध निकालने दौड़ आते हैं, तो अपने पैर में चुभेगा तो न दौड़े जाएंगे? बराबर जाएंगे।
तुम जैसे दूर हो, ऐसे ही अपना शरीर भी दूर है। तुम जैसे पराए हो, ऐसा अपना शरीर भी पराया है। बुद्ध कांटा भी निकालेंगे, पीड़ा भी होगी, और बुद्ध बाहर भी रहेंगे। यह घटना बुद्ध को डुबा न पाएगी। इससे उनका होश न खो जाएगा। ऐसा न होगा कि यह पीड़ा का बादल उनके होश को इस भांति छा ले कि होश का पता ही न रहे, पीड़ा ही रह जाए। यह न होगा।
जिसके जीवन में सुबह हो गई, सांझ तो आती रहेगी, लेकिन सांझ सुबह को मिटा न पाएगी।
और यह बड़े मजे की बात है, जब भीतर सुबह होती है और बाहर सांझ होती है,
तब भीतर की सुबह इतनी प्रगाढ़ होकर प्रकट होती है, जितनी कभी नहीं। क्योंकि अंधेरा और प्रकाश साथ-साथ होते हैं, अंधेरा पृष्ठभूमि बन जाता है। भीतर की ज्योति उस पृष्ठभूमि में बड़ी प्रखर होकर जलती है।
दिन में दीया जलाओ, कैसा मंदा-मंदा मालूम पड़ता है। फिर आने दो रात, घिरने दो अंधेरा, छा जाने दो सब तरफ गहन अंधकार, और दीए की रोशनी प्रगाढ़ होने लगती है। दीए में एक रूप-रेखा प्रकट होती है। जितना गहन हो जाता है अंधेरा चारों तरफ, दीए की ज्योति में उतना ही स्वर्ण बरसने लगता है।
पीड़ा के क्षणों में बुद्धत्व का दीया भी प्रगाढ़ होकर जलता है। जब आती
है सांझ, तब सुबह और भी गहरी हो जाती है।
सुबह और सांझ तो चलती ही रहेंगी, जब तक शरीर है। क्योंकि सुबह और सांझ
का संबंध शरीर से है। शरीर इस पृथ्वी का हिस्सा है। इस पृथ्वी पर सुबह और सांझ आती है, सुख-दुख आते हैं। इस पृथ्वी के हिस्से जब तक हम हैं, तब तक सुख-दुख आते रहेंगे।
जब शरीर छूट जाता है किसी बुद्ध पुरुष का, तब फिर जो होता है, उसे सुबह कहना भी ठीक नहीं। क्योंकि जब सांझ ही नहीं आती, तो अब इसको सुबह क्या कहना! फिर न तो सुबह आती है, न सांझ आती है।
इसलिए बुद्ध ने निर्वाण के दो चरण कहे हैं। एक, जो उनको चालीस वर्ष की उम्र में हुआ, तब वे निर्वाण को उपलब्ध हुई, समाधि को उपलब्ध हुए, संबुद्ध हुए, उन्होंने जाना। फिर चालीस वर्ष तक शरीर की यात्रा और भी जारी रही। इसी पृथ्वी पर रथ चलता रहा। इस पृथ्वी के ऊबड़-खाबड़ मार्ग पर रथ को नीचा- ऊंचा भी देखना पड़ा।
फिर हुआ महापरिनिर्वाण। तब देह भी छूट गई। देह के छूटते ही सुबह-सांझ दोनों चली गयीं। फिर तो एक ऐसे प्रकाश का आविर्भाव होता है, जिसको प्रकाश भी क्या कहें, क्योंकि उसका अंधेरे से कोई नाता ही नहीं है। फिर तो एक ऐसे जीवन का प्रादुर्भाव होता है, उसको जीवन भी कैसे कहें, क्योंकि उसका

मृत्यु से कोई भी संबंध नहीं है। इसलिए बुद्ध उस संबंध में बिल्कुल चुप रह जाते हैं, कुछ भी नहीं कहते। क्योंकि जो भी कहेंगे, उसी में भूल हो जाएगी।
हमारे सभी शब्द विरोधियों से बंधे हैं। कहो प्रकाश, अंधेरा याद आता है। कहो प्रेम, घृणा याद आती है। कहो मित्र, शत्रु की स्मृति बन जाती है। हमारे सब शब्द विरोधी से जुड़े हैं। कहो जीवन, मृत्यु खड़ी है। जो भी कहोगे शब्द में, उसका विपरीत शब्द ही उसकी सीमा बनाता है, परिभाषा बनाता है। अगर तुमसे कोई पूछे, प्रकाश क्या है? तो तुम यही कहोगे न कि जो अंधेरा नहीं है। तो अंधेरा परिभाषा है, प्रकाश की! बड़ी बेबूझ दुनिया है! कहो, जीवन क्या है, तो तुम यही कहोगे न कि जो मृत्यु नहीं है। जीवन की परिभाषा मृत्यु से करनी पड़ती है!
हमारे सभी शब्द विपरीत से परिभाषा पाते हैं। इसलिए तो हम परमात्मा की परिभाषा नहीं कर सकते, क्योंकि उससे विपरीत कुछ भी नहीं है। वह अपरिभाष्य है। उसे हम भाषा में नहीं बांध पाते। बांधते ही भूल हो जाती है।
इसलिए ज्ञानी सतत कहते हैं कि जो कहा जा सके, वह फिर सत्य न रहा। जो नहीं कहा जा सकता--नहीं ही कहा जा सकता, किसी काल में नहीं कहा जा सकता--वही सत्य है। फिर भी ज्ञानी बोलते हैं। उनका बोलना तुम्हें जगाने के लिए है, सत्य कहने के लिए नहीं।
जैसे तुम सोए हो, सुबह हो गई, पक्षियों ने गीत गाए, सूरज उगने लगा, फूल खिले, गंध उठी, लोक रूपांतरित हुआ, रात का अंधेरा, तमस गया। तुम सोए पड़े हो। इस सोए हुए आदमी को कोई भी उपाय नहीं है समझाने का कि फूल गंध दे रहे हैं, पक्षी गीत गा रहे हैं, सूरज उगा है। इसकी आंखें बंद हैं। इसका होश खोया है। इसको बताने का कोई भी उपाय नहीं है कि सुबह हो गई है, जागो और देखो।
एक ही उपाय है, इसे हिलाओ, चौंकाओ, इसकी नींद तोड़ो। नींद तोड़ी, यह खुद
ही देख लेगा।
सत्य कहा नहीं जा सकता। और जो भी कहा जाता है, वह सिर्फ तुम्हारी नींद
को तोड़ने का उपाय है। खुल जाने पर सत्य तो तुम देखोगे, वह कभी भी किसी ने कहा नहीं है। सदा से सत्य अनकहा है और सदा अनकहा रहेगा। अच्छा ही है, क्योंकि शब्द तो बासे हो जाते हैं। कितने होंठों पर से गुजरते हैं, कितने गंदे हो जाते हैं!
सत्य कुंआरा है। वह किसी होंठ से कभी नहीं गुजरा, कभी बासा नहीं हुआ।
वह सिक्का हाथ-हाथ में चलता नहीं, और बासा नहीं होता। वह चला ही नहीं, वह ढला ही नहीं। वह शुद्ध सोना अपनी खदान में ही छिपा है और उसे हम कभी खोज नहीं पाते। कोई उपाय नहीं शब्दों से खोजने का, जब तक कि हम उसमें छलांग ही न ले लें।
सत्य तुम हो सकते हो, सत्य को जान नहीं सकते। सत्य की तरफ इशारे किए जा सकते हैं, सत्य कहा नहीं जा सकता।

तीसरा प्रश्नः आपने कल कहा, एक साधे सब सधै, कोई भी एक साध लो, सब सध जाता है। क्या कुछ भी न साधें, तब भी सब सध जाता है?

वह तो बहुत बड़ी साधना है, कुछ भी न साधें। अगर वह सध गया, तो सब सध जाएगा।
लेकिन तुम शब्दों की भ्रांति में मत पड़ जाना। कुछ भी न साधने का मतलब
यह नहीं होता कि खाली बैठे रहना। क्योंकि खाली बैठने में तुम खाली ही कहां होते हो! हजार विचार चलते हैं। चुप बैठे होते हो, चुप कहां होते हो! मन तो गूंथता ही चला जाता है। न मालूम कितनी कहानियां, न मालूम कितनी वासनाएं, न मालूम कितने जाल! कुछ न करते वक्त भी तुम कुछ नहीं करते हो? कितने कृत्य, कितनी बेचैनियां भीतर उबलती हैं!
कुछ न करना तुम्हारा अगर सच में ही कुछ न करना हो, तो परम दशा है। उससे ऊपर फिर कुछ भी नहीं। अगर तुम साध सको, न करने को साध सको, तो उससे ऊपर कोई भी साधना नहीं है। वह तो परम योग है। उस एक को साध लो। कुछ तो साधो; कुछ न करना ही साधो।

यह मत समझना कि जब कुछ नहीं करना है, तो हम जैसे थे वैसे ही रहेंगे। तब तुम धोखा दे रहे हो, तब तुम शब्द की आड़ में बचाव कर रहे हो।
एक जर्मन विचारक हेरिगेल एक झेन फकीर के पास तीर चलाना सीखता था, धनुर्विद्या सीखता था। उसके गुरु का कहना था, तीर ऐसे चलाओ कि तुम चलाने वाले न होओ। तीर को चलने दो, तुम मत चलाओ।
अब हेरिगेल जर्मन विचारक! सीधी बात है कि यह पागलपन की बात कर रहा है।
तो हेरिगेल उससे कहता है, अगर मैं न चलाऊं, तो यह चलता नहीं। अगर मैं चलाऊं, तो तुम्हारी तृप्ति नहीं होती! तो करना क्या है? तुम कोई उपाय नहीं छोड़ते। अगर तुम कहते हो कि न चलाऊं, तो फिर मैं बैठ जाता हूं; फिर चलता ही नहीं। तब तुम कहते हो, बैठे-बैठे क्या कर रहे हो? उठो; साधो तीर को। अगर लगाता हूं, निशाना भी ठीक लग जाता है, तब भी तुम्हारी तृप्ति नहीं है। क्योंकि तुम कहते हो, तीर को चलने दो, चलाओ मत।
तीन साल मेहनत की गुरु के पास, थक गया। तीन साल लंबा वक्त है, और कोई परिणाम हाथ न आया। सौ प्रतिशत निशाने ठीक लगने लगे, लेकिन गुरु रोज इनकार किए चला जाता है कि नहीं, यह भी नहीं।
वह गुरु कहता, हमें निशाने से प्रयोजन नहीं है। तुम हो हमारा निशाना।
हम तुम्हारी तरफ देख रहे हैं। तुम वहां देख रहे हो कि वह जो निशाना लगा है, उसकी तरफ। तुम सोचते हो, निशाना मार लिया तो बात हो गई। तीर चलाना तो तुम सीख गए, लेकिन ध्यान नहीं सीखे। ध्यान सीखने तुम आए हो। और हमारे लिए तीर चलाना तो सिर्फ ध्यान सिखाने का बहाना है। वह नहीं सीखा तुमने।
अब हेरिगेल निश्चित ही मुश्किल में पड़ गया होगा कि इस आदमी के साथ क्या करना। पश्चिम की एक सोचने की प्रक्रिया है। हेरिगेल को सर्टिफिकेट मिलना चाहिए, क्योंकि वह सौ प्रतिशत निशाने ठीक मारने लगा। अब और क्या जानने को बाकी रहा! और गुरु सर्टिफिकेट तो दूर, अभी यह भी नहीं मानता कि तुमने पहला कदम भी उठाया है।
तीन साल बाद वह थक गया। और उसने कहा, अब मैं जाता हूं। वह आखिरी दिन विदा लेने गया। चूंकि अब जा ही रहा था, इसलिए चिंता भी नहीं थी मन पर, जाकर बैठ गया कुर्सी पर, जहां गुरु दूसरे लोगों को तीर चलाना सिखा रहा था। बैठकर देखता रहा कि वे निपट जाएं, तो उनसे विदा ले लूं।
पहली दफा उसने गौर से देखा, क्योंकि अब अपनी कोई चिंता न थी। वह जो भीतर की दौड़ थी, वह तो बंद थी। अब जा ही रहे हैं, बात खतम हो गई। अब कुछ नाता न था। पहली दफे बिना लिपायमान हुए उसने देखा कि यह आदमी कैसे तीर चला रहा है। यह तो मैंने कभी ख्याल ही न किया। यह तो कुछ और ही ढंग से चला रहा है! उसे पहली दफे अनुभव हुआ कि तीर चल रहा है, गुरु चला नहीं रहा है। रखता है; हाथ खींचता है; लेकिन गुरु वहां नहीं है। जैसे कोई दूसरी ही ऊर्जा चला रही है।
वह उठा। कहना ठीक नहीं है कि उठा, क्योंकि उसे पता ही नहीं कि वह कब उठ गया। गुरु के पास पहुंच गया। और उसने गुरु से प्रत्यंचा अपने हाथ में ले ली, तीर चढ़ाया। तीर छूटा भी न था और गुरु ने कहा, शाबास! बस, पर्याप्त है। निशाना लगे न लगे। समझ गए तुम। इसी दिन की प्रतीक्षा थी।
तीर अभी चला भी न था और गुरु तृप्त हो गया। तीन वर्ष में जो न हुआ, वह क्षण में हो गया।
पर हेरिगेल ने कहा, अब मैं कह सकता हूं कि वह बात ही अलग थी, अनुभव ही अलग था। इसके पहले तो मैं भी नहीं मान सकता था कि यह हो सकता है कि ऐसी आविष्ट दशा आ जाए, जब कि तुम नहीं करते और होता है!
मैं एक अमेरिकी साधक का जीवन पढ़ रहा था। वह एक सदगुरु को मिलने गया। अकारण पहुंच गया। कई बार अकारण घटनाएं घट जाती हैं। क्योंकि जब तुम कारण से जाते हो, तो तुम तने होते हो। जब तुम अकारण जाते हो, तो कोई तनाव नहीं होता।
वह ऐसे ही रास्ते से घूमने निकला था। एक जगह द्वार पर तख्ती लगी देखी
कि कोई ध्यान केंद्र है। कभी उसकी ध्यान में उत्सुकता न रही थी। अचानक उस दिन उसे लगा कि आज घूमना छोड़कर भीतर जाकर देखा जाए, यहां क्या हो रहा है! ऐसे ही कुतूहलवश भीतर पहुंच गया।

वहां कोई दस-बारह लोग बैठे ध्यान करते थे। वह भी जाकर उनके पास बैठ गया। वह देखने लगा, क्या हो रहा है! वह किसी बड़े प्रयोजन से आया ही न था। गुरु ने उसकी तरफ देखा। उसकी आंखों में आंखें डालीं। उसे कुछ पता ही न था कि यह क्या हो रहा है, तो उसने भी गौर से गुरु की आंखों में आंखें डालकर देखा कि यह आदमी क्या देख रहा है। लेकिन उस क्षण कुछ हो गया। और एक ऐसा धक्का उसको पेट पर लगा; आनंद भी बहुत मालूम हुआ। लेकिन उस दिन से उसको पेट में एक पीड़ा शुरू हो गई।
पांच-सात दिन तो वह परेशान रहा। डाक्टरों को दिखाया। उन्होंने कहा, कुछ दर्द हम तो नहीं पकड़ सकते! जहां से हुआ है, वहीं जाओ। उसने कहा, यह तो झंझट हो गई। मैं तो ऐसे अकारण ही, ऐसे ही चलते राह से कुछ उत्सुकतावश पहुंच गया था!
गुरु से मिलने गया। कहा कि पीड़ा हो रही है और मिटती नहीं। गुरु ने कहा, जैसे आई है, चली जाएगी; तुम फिक्र न करो।
यह बात उसे कुछ जंची नहीं। यह तो उपेक्षा हुई। और यह तो कोई रस ही न लिया इस आदमी ने। लेकिन अब कोई उपाय भी नहीं है। वह पीड़ा बढ़ती ही चली गई। वह संगीत की साधना करता था; तबला सीखता था। कोई दो साल पीड़ा रही। क्योंकि चिकित्सक पकड़ न सकें; और गुरु के पास दो-चार बार गया, उसने ऐसी उपेक्षा की कि हो जाएगा। जैसे आया है, वैसे चला जाएगा। न तुमने अपनी तरफ से बनाया है, न तुम मिटा सकते हो। साक्षी रखो। यह तो ऐसा लगा, जैसे टालना है। लेकिन एक दिन दो साल बाद, तबला बजा रहा था, अचानक उसने देखा कि कुछ घटना घटी। हाथ उसके अपने से चलने लगे, जैसे वह खुद नहीं चला रहा। आविष्ट हो गया। उसने पहली दफे तबले को बजते देखा अपने से; वह बजा नहीं रहा है! कोई आधा घंटे तक वह सुर-धुन बंधी रही। बड़ा आनंद अनुभव हुआ।
सुना था उसने कि ऐसा कभी घटता है संगीतज्ञ को, और तभी संगीत का जन्म होता है, जब संगीतज्ञ तो मिट जाता है, कोई विराट ऊर्जा पकड़ लेती है आविष्ट हो जाता है। तब वह खुद नहीं बजाता, कोई बजवाता है। तब तबले पर हाथ उसके नहीं पड़ते, किसी और के हाथ उसके हाथ से पड़ते हैं। ऐसा सुना था, भरोसा इसका था नहीं। लेकिन यह घटा।
आधे घंटे के बाद जब वह थककर लेट गया, क्योंकि बड़ा अनूठा अनुभव था, अचानक उसने पाया कि वह जो दर्द था पेट में, वह जा चुका है। वह जो दो साल तक पीछा नहीं छोड़ा, वह जैसे आया था, वैसे चला गया। और उस दर्द के साथ जीवन में से बहुत कुछ चला गया; जैसे उस दर्द में सभी कुछ जीवन का रोग इकट्ठा हो गया था।
न कुछ साधने का अर्थ होता है, तुम परमात्मा को द्वार दो। उसे आविष्ट होने दो। तुम जगह खाली करो। वह तुम्हारे सिंहासन पर विराजमान हो जाए। अगर तुम न करना साध लो, तो जगत की सबसे बड़ी चीज साध ली। उससे बड़ी कोई भी साधना नहीं है। उसको ही ज्ञानियों ने सहज-योग कहा है।
कबीर कहते हैं, साधो सहज समाधि भली।
यह है सहज समाधि। तुम खाली हो। तुम सिर्फ परमात्मा को जगह देने के लिए आतुर हो; प्रतीक्षा करते हो। चलते हो तो सोचते हो, वही चले मेरे भीतर। भोजन करते हो तो सोचते हो, वही भोजन करे मेरे भीतर। सोते हो तो सोचते हो, उसी के लिए सेज लगाऊं, वही सोए मेरे भीतर। ऐसे धीरे-धीरे तुम परमात्मा के मंदिर बनते जाते हो। तुम कुछ नहीं करते। तुम अपने करने को उस पर छोड़ते जाते हो। एक ऐसी घड़ी आती है, महाघड़ी, जब तुम्हारा सब कृत्य उसका कृत्य हो जाता है। उस घड़ी ही समझना कि न करना सधा। उसके पहले न करना नहीं सधा। जब तक तुम्हारा कर्ता भीतर है, न करना कैसे सधेगा? कर्ता तो करवाता ही रहेगा। यह कृष्ण की पूरी शिक्षा अर्जुन से यही है कि तू कर्ता मत बन। तू न करने में हो जा। उसी को साधने दे तेरे हाथ में प्रत्यंचा को, उसी को उठाने दे गांडीव को, उसी को चलाने दे तीर, उसी को लड़ने दे युद्ध, उसी को जीतने दे, उसी को हारने दे, तू बीच में मत आ। तू निमित्त मात्र हो जा।

चौथा प्रश्नः आप कहते हैं, जो व्यक्ति साक्षित्व को उपलब्ध होता है, उसकी समस्त वासनाएं और विकार मिट जाते हैं। तब क्या यह संभव है कि ऐसा मुक्त पुरुष भी हत्या जैसे वासनाजन्य और विकारग्रस्त कृत्य में उतर सके?

उतर तो नहीं सकता; स्वयं तो नहीं उतर सकता, लेकिन अगर परमात्मा की मर्जी हो, तो रोक भी नहीं सकता। क्योंकि जब तुम मिट ही गए, तो करने वाला भी न बचा, रोकने वाला भी न बचा। फिर जो हो, हो। फिर ऐसा व्यक्ति तो ऐसा हो जाता है, जैसे बादल। हवाएं जहां ले जाएं।
तुम यह नहीं कह सकते कि वह क्या नहीं कर सकता और क्या करेगा। वह बचा ही नहीं। उसके सारे विकार शून्य हो गए। वह तो खाली शून्य गृह हो गया। अब उसमें परमात्मा की हवाएं, जिस भांति बहें, बहें। न तो करने वाला कोई बचा, न रोकने वाला कोई बचा। रोकने वाला भी करने वाला ही है।
तो जरूरी नहीं है कि उससे ऐसे कृत्य हों, लेकिन अगर परमात्मा की मर्जी हो, तो होंगे। लेकिन तब वह यह नहीं कहेगा, मैंने किए हैं। न तो वह अपने कृत्यों से कोई गुण-गौरव लेगा और न अपने कृत्यों से कोई निंदा लेगा। न तो वह दान करते समय सोचेगा कि मैं कोई महान कार्य कर रहा हूं और न हिंसा करते वक्त सोचेगा कि मैं कोई महापातक कर रहा हूं। वह है ही नहीं। वह बीच से हट ही गया। अब परमात्मा की जो मर्जी, वह करवा ले।
संभव है कि परमात्मा को जरूरत हो--परमात्मा जब भी मैं कहता हूं, तो मेरा मतलब होता है समष्टि--यह सारे अस्तित्व को जरूरत हो, जरूरत हो कि कोई मिटाया जाए, जरूरत हो कि कोई हटाया जाए, तो वह काम में आ जाएगा। लेकिन इससे एक रेखा भी न खिंचेगी उसके भीतर कि मैंने कुछ किया।
वही तो कृष्ण की पूरी की पूरी इतनी-सी बात है अर्जुन के लिए कि तू बीच में मत आ। तू यह मत सोच कि तू मारेगा। तू यह मत सोच कि फल क्या होगा। तू छोड़ ही दे; सारी बात ही छोड़ दे।
अगर उस घड़ी में छोड़ने के बाद जब अर्जुन ने कहा, मेरे सब संशय जाते रहे,
हे महाबाहो, मेरे सब संदेह क्षीण हो गए, अगर उस क्षण में समष्टि की यही आकांक्षा होती कि वह संन्यस्त हो जाए, तो वह उठा होता, रथ से उतरा होता और जंगल चला गया होता।
वह नहीं थी इच्छा। जो अर्जुन सोच रहा था कि मैं करूं, वह समष्टि की इच्छा न थी। इसलिए कृष्ण उसको कहे चले गए।
मैं निरंतर सोचता हूं कि अगर महावीर जैसा व्यक्ति होता अर्जुन की जगह, तो क्या कृष्ण इतनी बातें कहते! बिल्कुल नहीं कह सकते थे। क्योंकि महावीर को देखकर ही वे समझ लेते कि यही अस्तित्व की घटना घट रही है; अस्तित्व यही चाहता है कि महावीर नग्न हो जाएं, जंगलों में भटकें। युद्ध महावीर के लिए नहीं है। वह उनका स्वधर्म नहीं है।
कृष्ण ने अर्जुन को देखकर गीता कही। महावीर को देखकर तो चुप ही रह गए होते। क्योंकि महावीर का जाना, महावीर का अपना जाना न था।
महावीर के जीवन में बड़ा मीठा प्रसंग है। वे संन्यस्त होना चाहते थे। उनकी मां ने कहा कि मेरे जीते नहीं। वे चुप हो गए। बात ही छोड़ दी संन्यास की। जैसे कोई आग्रह ही न था संन्यास का।
आग्रह तो अहंकार का होता है। संन्यास का भी क्या आग्रह! छोड़ने का भी क्या आग्रह! पकड़ने के आग्रह से जब छूट गए, तो छोड़ने का आग्रह भी छोड़ देना चाहिए। अगर कोई दूसरा होता, तो जिद पकड़ जाता। मां जितना रोकती, उतनी जिद बढ़ती। घर के लोग जितने परेशान होते, उतनी ही अकड़ आती कि मैं तो संन्यासी होकर रहूंगा।
दुनिया में सौ में से निन्यानबे संन्यासी, दूसरों की वजह से हो जाते हैं, रोकने वालों की वजह से। क्योंकि जब भी कोई रोकता है, तब बड़ा अहंकार को मजा आता है कि हम कोई महान कार्य करने जा रहे हैं।
लेकिन महावीर चुप ही हो गए। मां भी शायद सोची होगी कि यह भी कैसा संन्यास! एक बार कहा नहीं, कि चुप हो गया! सभी माताएं कहती हैं। यह कोई नई बात थी कि महावीर की मां ने कहा कि मत लो संन्यास मेरे जीते-जी। मैं मर जाऊंगी। ऐसा सभी माताएं कहती हैं। कोई मां मरी है कभी किसी के संन्यास लेने से! यह तो मां-बाप के कहने के ढंग हैं। इनका कोई मूल्य नहीं है। मां भी थोड़ी चिंतित हुई होगी कि यह भी संन्यास कैसा संन्यास था!
फिर मां मरी। मरघट से लौटते थे। रास्ते में अपने बड़े भाई को कहा कि अब
तो ले सकता हूं? रास्ते ही में! अभी विदा ही करके लौटते थे। बड़े भाई ने कहा,

यह भी कोई बात हुई? इधर मां मर गई है, इधर हम परेशान हो रहे हैं और तुम्हें संन्यास की पड़ी है! एक दुख काफी है, अब तुम और यह दुख मेरे ऊपर मत लाओ। चुप रहो, यह बात ही मत उठाना।
अब जब बड़े भाई ने कहा, चुप रहो, तो वे चुप हो गए। हमें भी लगेगा, यह भी कैसा संन्यासी है। यह तो होगा ही नहीं कभी, ऐसा अगर चला तो। क्योंकि कोई न कोई मिल ही जाएगा। बड़ा घर रहा होगा, बड़ा परिवार था। राज-परिवार था, संबंधी रहे होंगे। ऐसे अगर हर एक के कहने से रुके, तब तो जन्म-जन्म बीत जाएं, महावीर का संन्यास होने वाला नहीं। भाई ने भी सोचा होगा कि यह भी कैसा संन्यास है! एक दफा कहो नहीं कि यह चुप हो जाता है। यह जैसे रास्ते ही देखता है कि तुम रोक दो बस, हम रुक जाएं!
मगर नहीं, बात कुछ और थी। महावीर आग्रही नहीं थे। संन्यास का भी क्या आग्रह करना! छोड़ने का भी क्या आग्रह करना! नहीं तो वह पकड़ने जैसा ही हो गया। संन्यास को भी क्या पकड़ना! जब संसार ही छोड़ दिया, तो संन्यास को क्या पकड़ना! तो वह ठीक।
लेकिन धीरे-धीरे घर के लोगों को लगा कि वे घर में हैं ही नहीं। रहते घर में हैं। भोजन करते, उठते-बैठते, लेकिन ऐसे शून्यवत हो रहे कि उनके होने का किसी को पता ही न चलता।
आखिर भाई और घर के लोग मिले। उन्होंने कहा, अब इसे रोकना व्यर्थ है।
यह तो जा ही चुका। सिर्फ शरीर है घर में। शरीर को भी रोकने के लिए हम क्यों पापी बनें! नहीं तो कहने को होगा कि हमारी वजह से यह संन्यस्त न हुआ। और यह हो ही गया। यह यहां है नहीं। इसकी मौजूदगी यहां मालूम नहीं पड़ती। किसी को पता ही नहीं चलता महीनों, दिन बीत जाते हैं कि महावीर कहां है! वह अपने में ही समाया है।
तो घर के लोगों ने ही हाथ जोड़कर कहा कि अब तुम जा ही चुके हो, तो अब तुम हमको नाहक अपराधी मत बनाओ। अब तुम जाओ ही। अब तुम यहां हो ही नहीं, अब रोकें हम किसको! रोकना किसको है! जब उन्होंने ऐसा कहा, तो महावीर उठकर चल दिए।
ऐसे संन्यास को कृष्ण न रोक सकते थे। अर्जुन का संन्यास ऊपर-ऊपर था।
वह घबड़ाकर भाग रहा था, जानकर नहीं। वह खुद भाग रहा था, परमात्मा उसे भगा नहीं रहा था। इसलिए जब उसके सब संशय गिर गए थे और जब उसने सब छोड़ दिया था, तब फिर जो घटित हुआ, हुआ। फिर वह न जा सका जंगल की तरफ, क्योंकि वह परमात्मा की मर्जी न थी।
कृष्ण का जो संघर्ष है अर्जुन से, वह अर्जुन की मर्जी के खिलाफ है, परमात्मा की मर्जी के पक्ष में है। वे इतना ही कह रहे हैं। कृष्ण ने भी न रोका होता, अगर सब संशय गिर जाने पर, अहंकार को अलग रख देने पर, अर्जुन उतरता, चरण छूता और कहता कि अब जाता हूं; सब संशय समाप्त हुए, बात खतम हो गई; तो मैं जानता हूं कि कृष्ण रोक न पाते। न रोकने की कोई जरूरत रह जाती।
रोक हम उसी को सकते हैं, जो अपने से जा रहा हो। रोकने की जरूरत उसी को है, जो अस्तित्व के विपरीत जा रहा हो।
गीता को लोग समझ नहीं पाए। गीता को लोगों ने समझा कि यह युद्ध में जाने का संदेश है; गलत। गीता को लोगों ने समझा, यह संसार में अड़े रहने का संदेश है; गलत। एक तरफ यह गीता को मानने वालों की भूल है। दूसरी तरफ जैनों ने समझा कि यह गीता संन्यास के विरोध में है; गलत। कि गीता त्याग से बचाती है; यह भी गलत।
गीता कुल इतना कहती है कि परम की जो आकांक्षा है, तुम उसके साथ बहो, विपरीत मत बहो। फिर वह जो भी हो आकांक्षा। कभी संन्यास की होगी; महावीर के लिए संन्यास की थी; अर्जुन के लिए संन्यास की नहीं थी। जो परम की आकांक्षा हो।
नदी की धार के विपरीत मत बहो। नदी की धार के साथ हो रहो। फिर नदी पूरब
जा रही हो, तो पूरब; और नदी पश्चिम जा रही हो, तो पश्चिम।
अब कुछ नदियां पश्चिम जाती हैं, कुछ पूरब जाती हैं। गंगा पूरब की तरफ भागी जा रही है, नर्मदा पश्चिम की तरफ भागी जा रही है। विपरीत नहीं हैं वे।
जो आदमी गंगा में बह रहा है, वह पूरब की तरफ बहेगा; जो आदमी नर्मदा में बह

रहा है, वह पश्चिम की तरफ बहेगा। लेकिन दोनों नदी के साथ बह रहे हैं। दोनों एक हैं।
गीता को जो ठीक से समझेगा, गीता का और कुछ भी संदेश नहीं है, इतना ही संदेश है कि परमात्मा की धारा के विपरीत मत बहना; स्वभाव के अनुकूल बहना। इसलिए कृष्ण बार-बार कहते हैं, स्वधर्मे निधनं श्रेयः। वह जो स्वयं का, भीतर का आत्यंतिक धर्म है, उसमें मर जाना भी बेहतर। परधर्मो भयावहः। और दूसरे का धर्म, वह चाहे सफलता ले आए, जीवन दे, तो भी भयपूर्ण है। उसमें मत जाना।
स्वभाव में बहने का अर्थ परमात्मा में समर्पित होकर बहना है। स्वभाव यानी परमात्मा, जिसको लाओत्से ताओ कहता है।

आखिरी प्रश्नः आप कहते हैं, साक्षी-भाव से निमित्त मात्र होकर यदि कोई हत्या भी करे, तो उसे न कर्म-बंध होगा और न कोई पाप लगेगा। लेकिन किसी भी प्राणी को कष्ट देने पर या उसकी हत्या करने पर उस प्राणी को पीड़ा तो होगी ही, तो उसके दुख की तरंगों का कार्य-कारण के नियमानुसार क्या परिणाम होगा?

यह थोड़ा-सा सूक्ष्म, लेकिन समझने योग्य और अत्यंत जरूरी सवाल है। बात बिल्कुल ठीक है। तुम ज्ञान को उपलब्ध हो गए। परम की मर्जी यही थी कि तुम युद्ध में जाओ; तुम गए। तुमने अर्जुन की तरह महाभारत का युद्ध किया। उसमें लोग मरे। तुमने काटे। उनको पीड़ा हुई।
तुम्हारे ज्ञान से उनकी पीड़ा तो न रुकेगी। तुम साक्षी-भाव से कर रहे हो, इससे उन्हें मरने में कोई मजा तो न आएगा। मरने में तो पीड़ा उतनी ही होगी। तुम चाहे साक्षी-भाव से करो, चाहे तमस-भाव से करो; तुम चाहे परमात्मा पर छोड़कर करो, चाहे खुद करो; मरने वाले को तो इससे कोई फर्क न पड़ेगा। वह तो दोनों हालत में पीड़ित होगा। तो सवाल यह है कि उसे जो पीड़ा हो रही है, उसका क्या परिणाम होगा?
उसका परिणाम होगा, उसी को होगा। पीड़ा उसको हो रही है, वही जिम्मेवार है। अब इसे तुम थोड़ा समझो।
ऐसा समझो कि अर्जुन मारने वाला है, बुद्ध मरने वाले हैं। तो क्या बुद्ध को पीड़ा होगी? अर्जुन मारेगा परम की मर्जी के अनुसार; बुद्ध मरेंगे परम की मर्जी के अनुसार; पीड़ा की घटना ही न घटेगी।
तो अगर तुम मारे जा रहे हो अर्जुन से और तुम्हें पीड़ा हो रही है, तो जिम्मेवार तुम हो, अर्जुन नहीं। अर्जुन तो जिम्मेवार तब है, जब वह मार रहा हो; जब वह स्वयं मार रहा हो, अपनी आकांक्षा से मार रहा हो, तब जिम्मेवार है; तब कर्म का बंध उसे होगा।
और ध्यान रखना, अगर अर्जुन बुद्ध को मार रहा हो और अपनी इच्छा से मार रहा हो, और बुद्ध को पीड़ा भी न हो, तो भी उस पीड़ा का, जो कभी नहीं हुई, उसका पाप-बंध अर्जुन को होगा।
अहंकार ने मारा; तो मारने की जो धारणा है अर्जुन की कि मैं मार रहा हूं, वही उसके पाप-बंध का कारण होगी। बुद्ध को पीड़ा हुई या नहीं हुई, यह सवाल ही नहीं उठता। तुमने मारने की आकांक्षा की, तुमने मारा, तुमने परमात्मा के हाथ में अपने को न छोड़ा, तुम कर्ता रहे, तो तुम्हें कर्म का बंध होगा।
फिर तुम्हारे मारने से जो आदमी मर रहा है, उसकी पीड़ा के लिए वही जिम्मेवार है। क्योंकि यह भी हो सकता है, अगर वह साक्षी-रूप हो, तो पीड़ा न हो। तो वह देखे कि मरना घट रहा है, लेकिन पीड़ा से लिप्त न हो। अगर वह लिप्त हो रहा है, तो स्वयं ही जिम्मेवार है।
तुम्हारे मारने से... । अगर तुमने परमात्मा पर छोड़कर किसी को मारा, इसे ध्यान रखना। और तुम ऐसा सोच मत लेना कि जिसको भी तुम मार रहे हो, परमात्मा पर छोड़कर मार रहे हो। इतना आसान नहीं है। धोखा देना आसान है। तुम बिल्कुल ठीक भीतर पहचान सकते हो कि तुम मार रहे हो या परमात्मा के द्वारा यह कृत्य किया जा रहा है।

अगर मारने के द्वारा कोई भी पिछला प्रतिशोध लिया जा रहा है, तो तुम मार रहे हो; परमात्मा का क्या प्रतिशोध! अगर मारने के द्वारा भविष्य की कोई फलाकांक्षा की जा रही है, तो तुम मार रहे हो; परमात्मा को भविष्य से क्या लेना-देना! अगर यह आदमी मर जाएगा तो तुम प्रसन्न होओगे, न मरेगा तो अप्रसन्न होओगे, तो तुम मार रहे हो; परमात्मा को प्रसन्नता-अप्रसन्नता क्या!
अगर तुम्हें न कोई अतीत की आकांक्षा हो कि कोई प्रतिशोध ले रहे हो; न भविष्य का कोई सवाल हो कि किसी फल की कोई आकांक्षा है; न हार जाओ, जीत जाओ, कोई फर्क पड़े; तो समझना कि परमात्मा की मर्जी तुम पूरी कर रहे हो; तुम निमित्त मात्र हो।
वैसी दशा में अगर यह आदमी मरते वक्त दुख पाता है, पीड़ा पाता है, तो यह इसका अज्ञान है। यह अपने शरीर को समझ रहा है कि मैं हूं। इसलिए शरीर के कटने को समझता है कि मैं मर रहा हूं। यह इस अज्ञान के कारण दुख पा रहा है और इस दुख के कारण भविष्य में और दुख अर्जन करेगा, और अज्ञान घनीभूत करेगा, और पीड़ित होगा। तुम इसके बिल्कुल बाहर हो गए; तुम्हारा इससे कुछ लेना-देना नहीं है।

अब सूत्रः
तथा हे भारत, ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय, ये तीनों तो कर्म के प्रेरक हैं अर्थात इनके संयोग से तो कर्म में प्रवृत्त होने की इच्छा उत्पन्न होती है। और कर्ता, करण और क्रिया, ये तीनों कर्म के संग्रह हैं अर्थात इनके संयोग से कर्म बनता है।
उन सब में ज्ञान और कर्म तथा कर्ता भी गुणों के भेद से सांख्य ने तीन प्रकार के कहे हैं, उनको भी तू मेरे से भली प्रकार सुन।
दो वर्तुल हैं तुम्हारे जीवन के। भीतर का वर्तुल है, ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय। वह विचार का वर्तुल है, जहां तुम जानने वाले हो, जहां कुछ जाना जाता है और जहां दोनों के बीच में ज्ञान घटता है। जब तुम कुछ भी नहीं कर रहे हो, तब भी तुम ज्ञाता होते हो, ज्ञान घटता है, ज्ञेय होता है। तुम्हारे अकृत्य में भी विचार का कृत्य तो जारी रहता है। इसलिए विचार तुम्हारे भीतर का कृत्य है।
ज्ञाता का अर्थ है, कर्ता, विचार का कर्ता, विचारक। ज्ञेय का अर्थ है, जिस पर तुम अपने ज्ञाता को आरोपित करते हो, आब्जेक्ट, विषय। और दोनों के बीच जो घटना घटती है, वह ज्ञान। यह तुम्हारे मन की प्रक्रिया है।
तो पहली परिधि तुम्हारे आत्मा के आस-पास मन की है; एक वर्तुल। फिर दूसरा वर्तुल तुम्हारे शरीर का है। शरीर में दूसरा वर्तुल है कर्ता, करण और क्रिया का। जब विचार कृत्य बनता है, तब तुम कर्ता हो जाते हो। कोई उपकरण, हाथ, आंख करण बन जाते हैं। और बाहर के जगत में कृत्य घटित होता है। कर्ता, करण और क्रिया, यह तुम्हारा दूसरा वर्तुल है।
ऐसा समझो कि मध्य का बिंदु, केंद्र, तुम्हारी चेतना है। उसके बाद पहला धुआं इकट्ठा होता है विचार का, ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान। फिर जब धुआं और भी सघन हो जाता है, ठोस हो जाता है, तो कृत्य का जन्म होता है, तब कर्ता, करण और क्रिया।
संसार से तुम्हारा संबंध कर्म का है। इसलिए जब तक तुम कुछ कर्म न करो,
तब तक अदालत तुम्हें नहीं पकड़ सकती। अगर तुम बैठकर रोज हजारों लोगों की हत्या करते हो विचार में, तो कोई अदालत तुम पर मुकदमा नहीं चला सकती। वह यह नहीं कह सकती कि यह आदमी रोज बैठकर बिना हजार की हत्या किए नाश्ता नहीं करता! मजे से करो, कोई मनाही नहीं है। और तुम अदालत के सामने वक्तव्य भी दे सकते हो कि मैं रोज एक हजार की हत्या करके, फिर नाश्ता करता हूं, लेकिन विचार में।
समाज का विचार से कोई लेना-देना नहीं है। तुम समाज की परिधि में उतरते
ही तब हो, जब विचार कृत्य बनता है। जब विचार कृत्य बन जाता है, तब तुम्हारा संबंध दूसरे से जुड़ा। शरीर हमें दूसरे से जोड़ता है। इसे तुम ठीक से समझो।

मन तुम्हारी आत्मा को शरीर से जोड़ता है। इसलिए जब तक तुम ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय के बीच उलझे हो, तुम्हारा संबंध शरीर से बना रहेगा; वह सेतु है। फिर कर्म तुम्हें अपने शरीर को दूसरों के शरीरों से जोड़ता है, संसार से जोड़ता है। संसार और समाज तुम्हारे कर्म की चिंता करते हैं।
इसलिए अदालत उस बात को पाप कहती है, जो कृत्य हो जाए। विचार में घटे पाप को पाप नहीं कहती, अपराध नहीं कहती। लेकिन धर्म? धर्म तो उसको भी पाप कहता है, जो तुम्हारे भीतर विचार में घटे। यही अपराध और पाप का भेद है। अपराध ऐसा पाप है, जो कृत्य बन गया; और पाप ऐसा अपराध है, जो केवल विचार
रह गया। जहां तक तुम्हारा संबंध है, विचार करने से ही कृत्य हो गया। तुम उतने ही पाप के भागीदार हो गए विचार करके भी, जितना तुम करके होते, यद्यपि दूसरा तुमसे अप्रभावित रहा। दूसरे पर प्रभाव तो तब पड़ेगा, जब तुम विचार को कृत्य बनाओगे।
तो समाज तुम्हारे कृत्य पर रोक लगाता है, धर्म तुम्हारे विचार पर। समाज की नीति सिर्फ इसी बात पर निर्भर है कि तुम शुभ कर्म करो, अशुभ कर्म मत करो। धर्म की चिंतना इस पर है कि तुम शुभ विचार करो, अशुभ विचार मत करो। धर्म ज्यादा गहरे जाता है। क्योंकि अंततः अशुभ विचार ही अशुभ कर्म बन जाएगा किसी दिन। वह बीज है; अभी दिखाई नहीं पड़ता, सूक्ष्म है। फिर वह प्रकट होगा।। फिर वह वृक्ष बनेगा। फिर उसमें शाखाओं पर शाखाएं निकलेंगी और वह फैल जाएगा। और उसका जहर अनेकों लोगों के जीवन को प्रभावित करेगा।
इसलिए इसके पहले कि कोई विचार कृत्य बने, उसे विचार के जगत में ही शून्य कर दो। वही आसान भी है। बीज को मिटाना बहुत आसान है, वृक्ष को मिटाना मुश्किल हो जाएगा। वृक्ष बड़ी शक्ति बन जाता है। विचार को लौटा लेना आसान है, कृत्य को लौटाना मुश्किल हो जाएगा। वह छूटा हुआ तीर है। वह फिर वापस कैसे लौटेगा?
ये दो वर्तुल हैं। और इन दोनों वर्तुलों से जो मुक्त हो जाता है, वही साक्षी है। जब तुम कृत्य के भी देखने वाले हो जाते हो और कर्ता नहीं रह जाते और तुम विचार के भी देखने वाले हो जाते हो और ज्ञाता नहीं रह जाते, तुम मात्र साक्षी हो जाते हो। इसे थोड़ा समझना।
बहुत-से लोग साक्षी और ज्ञाता का अर्थ एक-सा ही कर लेते हैं। वे उसे पर्यायवाची समझते हैं। वे भूल में हैं। ज्ञाता तो कर्ता हो गया। उसने कहा, मैंने जाना। मैंने किया, तो कर्ता हो गए; मैंने जाना, तो भी कर्ता हो गए, सूक्ष्म में। मैंने सोचा। मैं आ गया। ज्ञाता भी कर्ता का सूक्ष्म रूप है। साक्षी सबके पार है। साक्षी में कोई मैं-भाव नहीं है। न तो जाना, न किया; सिर्फ देखते रहे। साक्षी में द्रष्टा तक भी नहीं है, क्योंकि द्रष्टा जैसे कहा, फिर कर्ता बना।
साक्षी बड़ा अनूठा शब्द है। उसमें कर्ता का भाव बिल्कुल नहीं है। द्रष्टा में देखने का भाव आ गया, कि देखा। तत्काल तीन हो गए। देखा, द्रष्टा बने, तो दर्शन और दृश्य।
साक्षी सबका अतिक्रमण कर जाता है। तुम सिर्फ हो; न तुम करते, न तुम देखते, न तुम सोचते। सारी क्रियाएं शून्य हो गईं। जो साक्षी में जीता है, वही कर्म करते हुए अकर्म में जीता है। देखते हुए देखता नहीं, जानते हुए जानता नहीं, सिर्फ होता है। यह शुद्धतम अस्तित्व है। यह आत्यंतिक परिशुद्धि की धारणा है।
कृष्ण कहते हैं, सांख्य ने ज्ञान, कर्म और कर्ता को भी तीन गुणों के अनुसार विभाजित किया है। तू उन्हें भी मुझसे भली प्रकार सुन।
जिस ज्ञान से मनुष्य पृथक-पृथक सब भूतों में एक अविनाशी परमात्मा को विभागरहित, समभाव से स्थित देखता है, उस ज्ञान को तू सात्विक जान।
सांख्य का एक सुनिश्चित सिद्धांत है कि प्रत्येक चीज तीन-रूपी होगी, क्योंकि सारे अस्तित्व की सभी चीजें त्रिगुण से बनी हैं। तो वह विभाजन हर जगह करते हैं। और वह विभाजन कीमती है। उससे साधक को साफ सीढ़ियां हो जाती हैं, कैसे आगे बढ़ना।
सत्व कहते हैं उस ज्ञान को, जब सब जगह अनेक रूपों में एक ही दिखाई पड़ने लगे। रूप हों अनेक, नाम हों अनेक, सभी नामों में एक ही अनाम की प्रतीति होने लगे और सभी रूपों में एक अरूप झलकने लगे, सभी आकार एक ही निराकार की

तरंगें मालूम होने लगें, तब ज्ञान सात्विक। जब अनेक में एक दिखाई पड़े, तो ज्ञान सात्विक।
और जब मनुष्य संपूर्ण भूतों में अनेक-अनेक भावों को न्यारा-न्यारा करके जानता है, उस ज्ञान को राजस जान।
और जब अनेक अनेक की भांति दिखाई पड़ें! अनेक एक की भांति दिखाई पड़े, तो सत्व। अनेक अनेक की भांति दिखाई पड़ें, तो राजस। भेद दिखाई पड़े, द्वंद्व दिखाई पड़े, विरोध दिखाई पड़े, सीमाएं दिखाई पड़ें, तो राजस।
क्षत्रिय की सारी जीवन-धारा सीमा से बंधी है। वह लड़ता है सीमा के लिए।
सीमा को बड़ा करने की चेष्टा में लगा रहता है। पर सीमा है।
ब्राह्मण का सारा जीवन असीम से बंधा है। लड़ने का कोई उपाय नहीं है।
सीमा बनाने की कोई सुविधा नहीं है। परिभाषा करना गलत है।
फिर तीसरा है तमस से भरा हुआ व्यक्ति। तीसरे व्यक्ति को हम ऐसा समझें
कि उसे न तो एक दिखाई पड़ता, न अनेक दिखाई पड़ते; उसे दिखाई ही नहीं पड़ता। वह अंधा है। जैसे दीया बुझा है। दीया तो रखा है, पर ज्योति नहीं है। तो नाम मात्र का दीया है, उसको क्या दीया कहना! मिट्टी का दीया रखा है, तेल भरा है, बाती लगी है, पर ज्योति नहीं है।
फिर ज्योति जलती है। थोड़ा-सा प्रकाश होता है। अंधेरे में चीजें नहीं दिखाई पड़ती थीं, अब अनेक चीजें दिखाई पड़ने लगती हैं; थोड़ा-सा प्रकाश है। इस थोड़े-से प्रकाश में अनेक का अनुभव होता है।
फिर महाप्रकाश का जन्म है। जहां दीए की बाती, दीया, तेल, सब खो जाते हैं। बिन बाती बिन तेल! तब सिर्फ प्रकाश रह जाता है। उस प्रकाश में सभी रूप लीन हो जाते हैं।
तमस यानी अंधकार। इस शब्द का अर्थ भी अंधकार है। सत्व का अर्थ, प्रकाश। सत्व का अर्थ है, जहां परम प्रकाश हो गया। तमस का अर्थ है, जहां परम अंधकार है। अंधकार में कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता। न एक, न अनेक। सत्व में सब कुछ दिखाई पड़ता है और इतनी गहराई से दिखाई पड़ता है कि परिधियों में जो अनेकता है, वह खो जाती है और केंद्र की एकता अनुभव होने लगती है। और दोनों के मध्य में है राजस। कुछ दिखाई पड़ता है, कुछ नहीं भी दिखाई पड़ता। कुछ अंधेरा है, कुछ प्रकाश है। प्रकाश-अंधेरे का तालमेल है। तो सीमाएं दिखाई पड़ती हैं, अनेक दिखाई पड़ता है।
ये तीन चित्त की दशाएं हैं। तुम कहां हो, अपने को ठीक से पहचान लेना चाहिए, क्योंकि वहीं से तुम्हारी यात्रा हो सकेगी।
अगर तुम तमस में हो, तो घबड़ाना मत। अगर यह भी तुम्हें समझ में आ जाए कि मैं तमस में हूं, तो राजस शुरू हो गया। क्योंकि इतना बोध भी दीए में थोड़ी रोशनी आने से शुरू होता है।
अगर तुम्हें ऐसा लगे कि मैं तमस में हूं, घबड़ाना मत। जो भी सत्व को उपलब्ध हुए हैं, सभी तमस से गए हैं। तमस में होने का अर्थ है, तुम अभी गर्भ में हो। बस, कुछ घबड़ाने की बात नहीं। जन्म होगा। थोड़ा जागो। थोड़े होश को सम्हालो। तमस से उठो। ऊर्जा को उठाओ। रजस का जन्म शुरू हुआ।
रजस यानी ऊर्जा, शक्ति। थोड़ा हिलो-डुलो। थोड़ा जीवन में गति लाओ। अगति में मत पड़े रहो। थोड़ा घूमो आस-पास; देखो। अनेक का जन्म होगा।
जैसे ही अनेक का जन्म हो जाए, फिर एक-एक में थोड़ा गहरा देखना शुरू करो
कि वस्तुतः अनेक हैं या सिर्फ दिखाई पड़ते हैं। जैसे सागर के पास खड़े रहो, कितनी लहरें दिखाई पड़ती हैं! फिर हर लहर में गौर से देखो, तो वही सागर है, एक ही सागर है। ऊपर से जो अनेक दिखाई पड़ता है, वह भीतर से एक है। फिर सत्व का जन्म होता है।
और इन तीनों के पार है साक्षी। इसलिए उसको हमने तुरीय कहा है, चौथा। सत्व को भी मंजिल मत समझ लेना। क्योंकि तुम कहते हो कि हमें लहरों में सागर दिखाई पड़ता है, पर अभी लहरें भी दिखाई पड़ती हैं। अभी ऐसा नहीं हुआ कि सागर ही सागर हो गया हो। लहरों में सागर दिखाई पड़ता है। नामों में अनाम दिखाई पड़ता है, रूप में अरूप दिखाई पड़ता है, पर रूप भी दिखाई पड़ता है। फिर इन तीनों के पार तुम हो, वह जो साक्षी है।
जैसे कभी अंधेरा दिखाई पड़ा, फिर अंधेरा चला गया। फिर थोड़ी रोशनी आई, जिससे अनेक का जगत फैला, संसार का फैलाव हुआ, दुकान खुली, पसारा फैला, बहुत

कुछ दिखाई पड़ा। जन्मों-जन्मों उसमें यात्रा की। फिर अनुभव गहरा हुआ। सत्व की प्रतीति हुई, प्रकाश सघन हुआ; अनेक में एक की झलक आने लगी। वह भी दिखाई पड़ा।
लेकिन जिसको ये तीनों दिखाई पड़े, जो इन तीनों से गुजरा, वह चौथा है।
इसलिए हम उस चौथी अवस्था को गुणातीत कहते हैं।
ये तीन तो गुण की अवस्थाएं हैं, चौथी गुणातीत है। इन तीन से गुजरना है
और चौथे को पाना है। और जब तक चौथी न आ जाए, तब तक रुकना मत। तब तक कहीं ठहरना पड़े, तो ठहर जाना; रातभर का विश्राम कर लेना। सराय समझना।
तमस को तो समझना ही सराय, सत्व को भी सराय ही समझना। असाधु को तो छोड़ना
ही है, साधु को भी छोड़ना है। झूठ को तो छोड़ना ही है, सत्य को भी छोड़ना है। क्योंकि अंततः पकड़ ही छोड़नी है। और एक ऐसी चैतन्य की अंतिम अवस्था में आ जाना है, जहां न तो पकड़ने वाला है, न पकड़ने को कुछ है। सिर्फ बोध-मात्र है।
उसको महावीर ने कैवल्य कहा; उसको बुद्ध ने शून्य कहा; उसको पतंजलि तुरीय कहते हैं; उसको कृष्ण गुणातीत अवस्था कहते हैं।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग आठ
गीता दर्शन अध्याय 18
सातवां प्रवचन

तीन प्रकार के कर्म

नियतं सड्गरहितमरागद्वेषतः कृतम्।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्त्विकमुच्यते।। 23।।
यत्तु कामेप्सुना कर्म साहड्कारेण वा पुनः।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम्।। 24।।
अनुबन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम्।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते।। 25।।
तथा हे अर्जुन, जो कर्म शास्त्र-विधि से नियत किया हुआ और कर्तापन के अभिमान से रहित, फल को न चाहने वाले पुरुष द्वारा बिना राग-द्वेष से किया हुआ है, वह कर्म तो सात्विक कहा जाता है।
और जो कर्म बहुत परिश्रम से युक्त है तथा फल को चाहने वाले और अहंकारयुक्त पुरुष द्वारा किया जाता है, वह कर्म राजस कहा गया है।
तथा जो कर्म परिणाम, हानि, हिंसा और सामर्थ्य को न विचारकर केवल अज्ञान से आरंभ किया जाता है, वह कर्म तामस कहा जाता है।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः गीता कृष्ण और अर्जुन के बीच व्यक्तिगत संवाद है। लेकिन आपके गीता-प्रवचनों में आप समूह को संबोधित कर रहे हैं। कृपया समझाएं कि भगवद्गीता क्या समूह को संबोधित की जा सकती है?

किसने कहा तुम्हें कि मैं समूह को संबोधित कर रहा हूं! समूह के पास कोई प्राण होते हैं समझने के? या कि सुनने के लिए कोई कान होते हैं? समूह के पास कोई हृदय होता है धड़कने को? कोई प्रज्ञा होती है जिसे जगाया जा सके? समूह तो मात्र शब्द है। समूह कोई व्यक्ति थोड़े ही है।
जब भी संवाद घटित होगा, तब व्यक्ति-व्यक्ति के बीच ही घटित होता है। समूह और व्यक्ति का तो कोई मिलना कभी होता नहीं। तुम कभी समूह से मिले हो? जहां भी पाओगे, व्यक्ति को पाओगे।
यहां भी तुम मौजूद हो, और भी लोग तुम्हारे साथ मौजूद हैं। लेकिन वह सिर्फ साथ होना है। समूह थोड़े ही मौजूद है। व्यक्तिगत रूप से तुम अलग-अलग मौजूद हो। और अगर एक-एक व्यक्ति यहां से विदा हो जाए, तो क्या पीछे समूह छूट जाएगा? व्यक्तियों के विदा होते ही समूह भी विदा हो जाएगा।
मैं तुम्हारी भीड़ से नहीं बोल रहा हूं, मैं तुम्हारे व्यक्ति से ही बोल रहा हूं। एक-एक से यह बात हो रही है। यह बात सीधी है।
और यह भी तुम ख्याल रखना कि तुम जो समझ रहे हो, वह तुम्हीं समझ रहे हो, तुम्हारे पड़ोस में बैठा व्यक्ति हो सकता है बिल्कुल भिन्न समझ रहा हो। तुमने जो मेरी बात का अर्थ किया है, वह तुमने किया है। तुम्हारे पड़ोस में बैठे व्यक्ति ने कुछ और किया होगा। वह तुम्हारे पास बैठा है, इसलिए यह मत सोचना कि वह भी तुम्हारे जैसा ही सुन रहा है या तुम जो सुन रहे हो, वही सुन रहा है।
सुनते हम वही हैं, जो हम सुन सकते हैं। अर्थ हमारे भीतर वही उदभूत होता है, जो हमारे भीतर छिपा होता है। अगर मैं ऐसे फूलों की चर्चा कर रहा हूं जो तुमने नहीं देखे, तो शब्द तो कानों पर पड़ेंगे, हृदय में कोई झंकार न होगी। लेकिन जिसने उन फूलों को देखा है, उसके कानों में सिर्फ शब्द नहीं पड़ रहे हैं, उसके हृदय में अर्थ का भी आविर्भाव हो रहा है। उसने स्वाद लिया है, उसने अनुभव किया है। और जब मैं फूलों की चर्चा में लीन हूं, तब वह भी फूलों के अनुभव में लीन हो जाएगा। उसके और मेरे बीच संवाद घटेगा।
तुम मुझे सुनोगे, शब्द ही सुनोगे। वह मुझे सुनेगा, शब्द के पार अर्थ
की प्रतीति होगी।

तो यह तुमसे कहा किसने कि मैं समूह से बोल रहा हूं! कृष्ण भी अर्जुन से बोले, मैं भी अर्जुन से ही बोल रहा हूं।
यह अर्जुन शब्द बड़ा मधुर है। इस शब्द का अर्थ होता है कुछ। ऋजु शब्द तुमने सुना है। ऋजु का अर्थ होता है, सीधा। ऋजुता का अर्थ होता है, सरलता। अऋजु का अर्थ होता है, तिरछा, आड़ा, उलझा, सुलझा हुआ नहीं; सरल नहीं, जटिल। कृष्ण अर्जुन से बोल रहे हैं, क्योंकि वहां एक चित्त है जो उलझा हुआ है, जटिल है, सुलझा हुआ नहीं है, जिसमें गांठें पड़ी हैं। बड़ी समस्याएं हैं, समाधान नहीं है। अगर समाधान ही हो, तो दोनों तरफ कृष्ण हो जाएंगे; अर्जुन कोई बचेगा नहीं।
गुरु शिष्य से बोलता है; समाधान समस्या से बोलता है। तुम्हारे पास अगर समस्या है, तो तुम आ गए हो। तुम्हारी समस्या से मैं बोल रहा हूं, तुम्हारे अर्जुन से बोल रहा हूं। मन अर्जुन है, क्योंकि वह समस्याएं पैदा करता है, उलझाता है। मन के पार जो छिपा है तुम्हारे भीतर परमात्मा, वही कृष्ण है।
मेरे बोलने का या कृष्ण के बोलने का प्रयोजन कुछ कहना कम है, कुछ जगाना ज्यादा है। तुम्हारे भीतर मन तो जागा हुआ है, तुम सोए हुए हो। सारी चेष्टा यही है कि तुम जाग जाओ। तुम्हारे जागते ही मन तिरोहित हो जाता है। जैसे सुबह के सूरज के उगते ही रात का अंधेरा विदा हो जाता है, ऐसे ही तुम जागे कि मन गया, कृष्ण उठा कि अर्जुन गया।
कृष्ण कुछ बोल रहे हैं, इस भूल में भी मत पड़ना। बोलना तो केवल उपाय है। बोलने के लिए नहीं बोला जा रहा है। बोलने के द्वारा कुछ करने का आयोजन किया जा रहा है, कोई कीमिया का इंतजाम किया जा रहा है। कोई एक महाप्रयोग उसके आस-पास घटने की चेष्टा की जा रही है।
मेरे पास भी तुम अगर सुनने ही चले आए हो, तो सुनकर ही लौट जाओगे; हाथ कुछ भी न लगेगा। अगर तुम वस्तुतः समस्या को लेकर आए हो; सुनने का कुतूहल कम, समस्या को हल करने का सवाल है; धर्म अगर तुम्हारे जीवन-मरण का प्रश्न बन गया है, सिर्फ एक बौद्धिक खुजलाहट नहीं; तो तुम मेरे पास से कुछ जागृति लेकर जाओगे।
लेकिन बोल मैं व्यक्तिगत रहा हूं। तुममें से एक-एक से अलग-अलग बोल रहा हूं। समूह से तो कुछ बोला ही नहीं जा सकता। जहां तक समूह जाता है, वहां तक तो धर्म का कोई सवाल ही नहीं है। धर्म की यात्रा तो निजी है, वैयक्तिक है, अत्यंत वैयक्तिक है। प्रेम से भी ज्यादा वैयक्तिक है। कम से कम प्रेम में तो दूसरा भी रहता है, धर्म में वह भी खो जाता है।
संसार में तीन यात्राएं हैं। एक पद की यात्रा है, धन की यात्रा है, महत्वाकांक्षा की। उस सब को, संसार की यात्रा को मैं पद की यात्रा कहता हूं। उसमें समूह के साथ संबंध है। उसमें व्यक्तियों से कुछ लेना-देना नहीं।
एक राजनेता तुमसे वोट मांगने आता है। वह तुमसे वोट मांगने नहीं आता। तुम्हारी जगह कोई भी काम देगा। तुम सिर्फ एक आंकड़े हो। तुम्हारी जगह, अ की जगह ब होता, ब की जगह स होता, कोई फर्क न पड़ता था। प्रयोजन वोट से है। तुम्हारे होने न होने का कोई लेना-देना नहीं है। तुम हो ही नहीं। तुम एक नंबर हो, एक आंकड़े हो।
जैसा कि मिलिटरी में नंबर होते हैं। तो तख्तियों पर लग जाता है कि आज
दस नंबर गिर गए, दस नंबर मर गए। नंबर भी कहीं मरते हैं! लेकिन मिलिटरी में आदमी तो होता ही नहीं, नंबर होते हैं। बारह नंबर का सिपाही मर गया, बारह नंबर की तख्ती दूसरे सिपाही पर लग जाएगी। बारह नंबर नहीं मरेगा, वह जीता रहेगा।
व्यक्तियों से कुछ लेना-देना नहीं है। समूह की दुनिया में व्यक्ति का कोई मूल्य नहीं है। राज्य है, वह समूह से चलता है; बाजार है, वह समूह से चलता है। पद की यात्रा समूह की यात्रा है। वहां भीड़-भड़क्के का सवाल है; वहां तुम्हारे सत्य होने का सवाल नहीं है; कितने लोग तुम्हारे साथ हैं, इसका सवाल है।
तुम अगर सत्य भी हो और अकेले हो, तो हारोगे। तुम अगर असत्य भी हो और भीड़ तुम्हारे साथ है, तुम जीतोगे। वहां जीत संख्या की है। वहां भीतर की

प्रतिभा नहीं आंकी जाती, खोपड़ियां गिनी जाती हैं, हाथ गिने जाते हैं। वह दुनिया व्यक्ति की नहीं है। वहां व्यक्ति की गरिमा और व्यक्ति के काव्य का कोई मूल्य नहीं है।
फिर दूसरी यात्रा प्रेम की यात्रा है; वह दो के बीच की यात्रा है। इसलिए तो प्रेमी अलग हट जाना चाहते हैं भीड़ से। बाजार में खड़े होकर प्रेम का वार्तालाप करना असंगत मालूम होता है। बीच सड़क पर खड़े होकर प्रेयसी को मिलना अर्थहीन मालूम पड़ता है। प्रेमी एकांत चाहते हैं, अकेलापन चाहते हैं। कोई न हो! क्योंकि तीसरा मौजूद हो जाए, तो समूह शुरू हो जाता है। जब तक दो हैं, तब तक समूह नहीं है। जैसे ही तीसरा आया कि समूह शुरू हुआ। दो तक यात्रा प्रेम की है, तीन से यात्रा पद की हो जाती है।
फिर एक और यात्रा है, जिसको मैं परमात्मा की, प्रार्थना की यात्रा कहता हूं। वहां दूसरा भी छूट जाता है। वहां बिल्कुल निजता रह जाती है। अगर प्रेमी और प्रेयसी भी दोनों बैठकर ध्यान करें, तो दोनों अकेले रह जाएंगे, साथ नहीं रह जाएंगे। अगर दोनों समाधि में प्रवेश करेंगे, तो साथ-साथ प्रवेश न करेंगे। तुम हाथ फैलाकर अपनी प्रेयसी को अपने साथ न ले जा सकोगे। वहां तो अकेले ही जाना होगा। वह तो कैवल्य है, नितांत अकेलापन है। वहां दूसरे की मौजूदगी भी उपद्रव है। वहां दूसरे का होना भी बाधा है।
तो ये तीन हैंः पद, भीड़ का संसार; प्रेम, दो का संसार; प्रार्थना, परमात्मा, एक का संसार। पद, अनेक। प्रेम, दो। प्रभु, एक।
जब हम परमात्मा की चर्चा करते हैं, तब तक भी प्रेम की ही दुनिया रहती है। क्योंकि चर्चा करने वाला है, चर्चा सुनने वाला है। जब मैं तुमसे बोल रहा हूं, तो बोलना तो एक ढंग का प्रेम है। यह बोलने के द्वारा मैं तुम्हें स्पर्श कर रहा हूं। यह बोलने के द्वारा मैं तुम्हारे भीतर प्रवेश कर रहा हूं। यह बोलने के द्वारा मैंने तुम्हें निकट बुलाया है। इस बोलने के द्वारा मैं तुम्हारी निजता में आ रहा हूं, तुम मेरी निजता में प्रवेश कर रहे हो। बोलने का जगत प्रेम से आगे नहीं जाता। इसे थोड़ा समझो।
भीड़ में तो बोलना भी नहीं होता। बात बहुत चलती है भीड़ में, बोलना बिल्कुल नहीं होता। लोग अपनी-अपनी बोले जाते हैं, कोई किसी की सुनता है! किसी को किसी से प्रयोजन है! दूसरे का उपयोग करते हैं लोग, दूसरे से बोलते नहीं। संवाद थोड़े ही होता है, कम्युनिकेशन थोड़े ही होता है, विवाद चलता है।
अगर तुम बाजार में जाओ और लोगों को गौर से सुनो, तो तुम पाओगे, अपनी- अपनी बोले जा रहे हैं। कोई किसी की सुन नहीं रहा है। अपने-अपने में लीन हैं।
तुम्हें भी कई बार, अगर तुम थोड़ी-सी समझ के हो, तो लगेगा कि तुम जब किसी
से बात कर रहे हो, तो तुम उसे सुनते नहीं। तुम अपनी कहते हो, वह अपनी कहता है। पर तुम पागल नहीं हो, इसलिए थोड़ी व्यवस्था से चलते हो। जब वह कहता रहता है, तब तुम चुप बैठे रहते हो। तब भी तुम सोच रहे हो, तुम्हारा भीतरी सिलसिला जारी है। तब भी तुम चुप होकर सुन नहीं रहे हो।
बिना चुप हुए कोई सुनेगा कैसे! सुनने के लिए तुम्हारा भीतर का अंतर-संवाद तो बंद हो जाना चाहिए। भीतर की चर्चा तो बंद होनी चाहिए। अन्यथा तुम सुनोगे कैसे! बाहर की चर्चा तो दूर पड़ जाएगी, भीतर का वर्तुल तुम्हारी चर्चा का तुम्हें घेरे रहेगा; वह दीवाल बन जाएगा।
जब तुम दूसरे से बात कर रहे हो, तब तुम अपनी सोचे जा रहे हो। तुम सिर्फ प्रतीक्षा कर रहे हो कि कब आप रुकें और मैं शुरू करूं। यह बात सच है कि तुम वहीं से शुरू करोगे, जहां दूसरा रुकेगा, लेकिन वह सिर्फ बहाना है। असली शुरुआत, अगर तुम गौर करोगे, तो तुम्हारे भीतर से जुड़ी है। बाहर के आदमी से असली शुरुआत नहीं जुड़ी है।
यह भीड़ की दुनिया है। वहां कोई किसी से बोल नहीं रहा है। वहां संवाद नहीं है, विवाद है।
फिर प्रेम की दुनिया है; वहां संवाद है। एक बोलता है, दूसरा सुनता है।
एक शब्द का उपयोग करता है, तो दूसरा शून्य होकर उसे पीता है। लेकिन दो मौजूद हैं।

इसलिए तो हम कहते हैं, परमात्मा तक शब्द भी न जाएगा। वहां तो सिर्फ निःशब्द जाएगा; वहां तो मौन ले जाएगा, शून्य ले जाएगा। शब्द भी वहां बाधा हो जाएगा।
लेकिन शब्द से कम से कम हम भीड़ के बाहर आते हैं। गुरु के साथ शिष्य का जुड़ जाना, संसार के साथ टूट जाना है।
इसलिए जब भी तुम गुरु के पास आओगे, संसार तुम्हारे विरोध में खड़ा होने लगेगा। क्योंकि अनजाने रूप से तुम संसार से टूटने लगे। तुमने एक नया यात्रा-पथ चुन लिया, जहां दो काफी हैं, तीसरे की जरूरत नहीं है। और तीसरे के साथ ही संसार है।
गुरु को चुनते ही तुमने संसार की उपेक्षा शुरू कर दी। संसार सब तरह की बाधा खड़ी करेगा। खींचेगा, समझाएगा, कि यह आदमी गलत है, कहां पागलपन में पड़े हो! किस सम्मोहन में उलझ गए हो! लौटो; सब अस्तव्यस्त हो जाएगा, सब ठीक चलता था। काम-धंधा करते थे, दुकानदार थे, व्यवस्था थी। यह सब क्या कर रहे हो! यह तुम्हारे जीवन में कौन-सी नई धारा आ रही है! तुम पछताओगे। ऐसा लोग तुम्हें समझाएंगे।
जैसे ही तुम्हारा गुरु से संबंध हुआ कि तुम पाओगे, सारा संसार तुम्हें खींचने की कोशिश करेगा। स्वाभाविक है। वह अनेक का जगत, जब तुम दो को चुनना शुरू करते हो, तुम्हें खींचता है।
यह बड़े मजे की बात है कि संसार प्रेम के भी पक्ष में नहीं है। अगर तुम्हारा बेटा किसी युवती के प्रेम में पड़ गया, तो तुम्हारी पूरी चेष्टा यह होगी कि उसे रोको। हालांकि तुम विवाह के लिए राजी हो, लेकिन प्रेम के लिए राजी नहीं हो।
बाप विवाह करने के लिए उत्सुक है। वह कहता है, मैं अच्छी लड़की खोजे देता हूं। और बड़े मजे की बात है कि जिस लड़की से भी लड़के का प्रेम हो जाता है, वह अच्छी लड़की कभी होती ही नहीं। और जिसको भी बाप खोजता है, वह सदा अच्छी लड़की होती है!
अच्छी लड़की का मतलब क्या है? अच्छे लड़के का मतलब क्या है? अच्छी लड़की
और अच्छे लड़के का मतलब है कि हम तुम्हें अनेक के बाहर न जाने देंगे। प्रेम का मतलब है कि अब तुम दो अपने को काफी समझोगे; तुम दुनिया छोड़ने
की बात करोगे। तुम अपने भीतर अपनी दुनिया बसा लोगे। तुम अपने भीतर एक दुनिया बन जाना चाहते हो, तुम दुनिया के प्रतियोगी हो जाओगे।
नहीं, प्रेम के लिए संसार विरोध में है। न बाप पक्ष में है, न मां पक्ष में है। कहते वे सब हैं कि हम तुम्हारे हित के लिए हैं, कि यह लड़की ठीक नहीं है, यह लड़का ठीक नहीं है। हम तुम्हारे हित का सोचते हैं। तुम नासमझ हो; तुम अनुभवी नहीं हो; हम अनुभव से सोचते हैं।
हर कोई समझाने लगेगा प्रेमी को कि तू पागल हुआ जा रहा है। कुछ मामला
है प्रेम में। समाज विरोध में है। समाज कभी भी प्रेम के पक्ष में नहीं रहा।
मामला यह है कि प्रेमी की वृत्ति होती है कि वह दो में समझता है, पूरा
हो गया, पर्याप्त हो गया। वह एक दुनिया बन जाता है अपने भीतर। तो फिर इस दुनिया की तरफ उपेक्षा होती है, वह पीठ कर लेता है।
अगर तुम दो प्रेमियों के घर मिलने जाओ, तो वे उत्सुकता न लेंगे तुमसे मिलने में। हां, पति-पत्नी के पास जाओ, बड़ा स्वागत करते हैं। क्योंकि प्रतीक्षा ही करते हैं, कोई तीसरा आ जाए। क्योंकि दो के बीच तो सिर्फ कलह होती है, कुछ और होता नहीं। पति-पत्नी हमेशा राह देखते हैं कि कोई तीसरा बीच में खड़ा रहे। तीसरे की वजह से थोड़ी-सी सुविधा रहती है।
मेरे एक मित्र हैं। बड़े कुशल आदमी हैं, खूब पैसा कमाया। तो मैंने उनसे कहा कि तुमने अब इतना पैसा कमा लिया है कि अब कोई जरूरत नहीं है। अब इस दौड़ को बंद करो। अब तुम पचास के हो गए। अब यह तुम छोड़ दो। उन्होंने कहा, आप कहते हैं तो इनकार नहीं करता। छोड़ दिया!
और इतना कहते ही उन्होंने सब छोड़ दिया उसी दिन। सब बंद कर दिया काम-धंधा; कहा कि काफी है। अब शांति से रहेंगे। पर उन्होंने कहा, अब उलझन खड़ी है, आप सुलझा दें। अब हम, मैं और मेरी पत्नी ही बचे। बच्चे सब बड़े हो गए; वे गए। लड़कियां ही थीं। उन सबका विवाह हो गया। तीन लड़कियां थीं। अब हम दोनों

बचे। अब हमें तीसरा सतत चाहिए। आप रुकेंगे? क्योंकि अगर तीसरा न हो, तो बस सिवाय कलह के कुछ होता नहीं। तीसरा हो, तो थोड़ा हम एक-दूसरे की तरफ मुस्कुराते हैं--औपचारिक ही सही, तीसरे को देखकर सही--अच्छी-अच्छी बातें करते हैं। दोनों रह जाते हैं, तो भारी होने लगता है।
विवाह में समाज की जरूरत बनी रहती है। प्रेमी कहता है, तुम्हारी अब कोई जरूरत नहीं, हम काफी हैं। इसलिए समाज कभी प्रेम के पक्ष में होगा नहीं। और जिस दिन होगा, उसी दिन समाज नष्ट होने लगेगा।
पश्चिम में समाज टूट रहा है। उसका कारण है कि प्रेम मुक्त हो गया है। पश्चिम में समाज ज्यादा दिन टिक नहीं सकता। और अगर समाज को टिकना होगा, तो प्रेम को मिटाना पड़ेगा। क्योंकि वे यात्रा-पथ अलग हैं।
और साधारण प्रेम, एक स्त्री-पुरुष का प्रेम तो बहुत खतरनाक नहीं है, क्योंकि वह नशा जल्दी उतर जाता है। प्रेयसी भी कुछ दिनों बाद बोझिल हो जाती है। प्रेमी भी कुछ दिनों बाद उबाने वाला हो जाता है। क्योंकि जब एक-दूसरे के भूगोल से ठीक से परिचित हो गए और एक-दूसरे की जीवन-दिशा को ठीक से पहचान लिया, अजनबीपन मिट गया, आकर्षण खो गया।
प्रेमी जल्दी ही परिचित हो जाते हैं और समाप्त हो जाते हैं। इसलिए प्रेम अंततः विवाह में गिर ही जाता है। इसलिए साल, दो साल भी अगर समाज प्रतीक्षा रखे, तो प्रेमी खुद विवाहित हो जाते हैं; कोई चिंता की बात नहीं है। इतनी ज्यादा परेशान होने की जरूरत नहीं है।
लेकिन अगर कोई व्यक्ति किसी गुरु के प्रेम में पड़ गया, तो खतरा भारी है। क्योंकि यह यात्रा पूरी होती नहीं। यह यात्रा बड़ी है। और अगर सच में ही कोई गुरु मिल गया, जो अनंत की यात्रा पर ले जा सके, तो इसका तो फिर कोई अंत आने वाला नहीं है। फिर तो जो पीठ समाज की तरफ हो गई, वह हो गई।
अब यह बड़े मजे की बात है। समाज प्रेम के विपरीत है; प्रेमी भी गुरुओं
के विपरीत होते हैं!
इधर मेरे पास रोज लोग आते हैं। अगर पत्नी आ जाती है, तो पति दुश्मनी में खड़ा है। अगर पति आ जाता है, तो पत्नी दुश्मनी में खड़ी है। ऐसा कभी-कभी घटता है कि दोनों साथ आ जाते हैं। कभी-कभी घटता है। और जब ऐसा घटता है, तब एक संवाद है।
अन्यथा एक आता है, तो दूसरा उसकी टांग खींच रहा है, क्योंकि अगर पति गुरु की तरफ चला, तो पत्नी घबड़ाई, कि इसका मतलब यह हुआ कि हमसे भी ज्यादा महत्वपूर्ण कोई आदमी जीवन में प्रवेश कर रहा है, जिसके लिए हमारी भी उपेक्षा की जा सकती है! कि मैं घर में बीमार पड़ी हूं, कि मेरे सिर में दर्द हो रहा है और तुम ज्ञान-चर्चा को चले! मेरे सिरदर्द से भी ज्यादा मूल्यवान कोई चीज हो सकती है!
नहीं, प्रतिस्पर्धा शुरू हो गई। पत्नी सोचती है कि यह गुरु तो भारी प्रतिस्पर्धी हो गया। पति भी यही सोचता है।
एक महिला मेरे पास आती हैं। पूना की हैं। पति सख्त खिलाफ हैं। वे इतने खिलाफ हैं कि मेरी किताबें भी घर के बाहर फेंक देते हैं, चित्र फाड़ डालते हैं। मैंने उनकी पत्नी को कहा कि आखिर उनका विरोध क्या है?
पत्नी ने कहा कि विरोध कुछ नहीं है। वे यह कहते हैं कि ऐसा कौन-सा सवाल है, जो मैं हल नहीं कर सकता? तुझे कहीं जाने की जरूरत क्या है? वे यह कहते हैं। और मैं उनको जानती हूं कि इनसे ज्यादा मूढ़ आदमी दुनिया में दूसरा नहीं है। मगर वे पति हैं और परमात्मा समझे बैठे हैं। अगर मैं उनको सत्य कहूं कि तुम अपना तो हल कर लो, तो लड़ाई-झगड़ा बढ़ता है।
झगड़ा यह है कि मुझसे भी ज्यादा महत्वपूर्ण कोई व्यक्ति है! इसका मतलब हुआ कि पति अपने स्थान से हटाया जा रहा है जैसे। पत्नी उसके स्थान से हटाई जा रही है जैसे।
संसार प्रेम के विपरीत में है, प्रेम धर्म के विपरीत में है। तीसरी यात्रा है परमात्मा की। समाज भी बाधा डालेगा, परिवार भी बाधा डालेगा, प्रेम भी बाधा डालेगा।
गुरु जो बोल रहा है, उसकी शुरुआत तो प्रेम से होगी, अंत परमात्मा पर होगा। शुरुआत तो दो से होगी, अंत एक पर होगा। सभी संवाद दो के बीच है, वैयक्तिक है।

तो एक तो विवाद है, अनेक के यात्री का। फिर संवाद है; एक प्रेमपूर्ण, सहानुभूतिपूर्ण, श्रद्धापूर्ण भाव-दशा है; जहां दो व्यक्ति मिलते हैं और एक-दूसरे को समझने के लिए आतुर होते हैं। और फिर एक तीसरी दशा है, जहां दो बिल्कुल खो जाते हैं, एक शून्य होता है, एक सन्नाटा होता है।
पहली अवस्था विवाद की, दूसरी अवस्था संवाद की, तीसरी अवस्था सत्य की, सम्मिलन की। वहां इतनी भी दुई नहीं रह जाती कि कुछ बोला जाए। बिना बोले समझा जाता है।
भारत के मनीषियों ने कहा है, नायं आत्मा प्रवचनेन लभ्यो, न मेधया, न बहुधा श्रुतेन। यह आत्मा न तो प्रवचन से मिल सकती है, न बड़ी मेधा से, बुद्धि से, न बहुत सुनने से। न मेधया, न बहुधा श्रुतेन। बहुत सुनो, तो भी नहीं मिल सकती; बहुत समझो, तो भी नहीं मिल सकती; बहुत पढ़ो, तो भी नहीं मिल सकती; क्योंकि दुई तो बनी रहेगी। मिटो, तो ही मिलती है। न हो जाओ, तो ही मिलती है। शब्द खो जाएं, शून्य ही रह जाए। उस शून्य के मंदिर में ही परमात्मा से मिलन है।
गुरु शुरू करता है दो से, चेष्टा है एक पर पहुंचाने की।
जो संसार से ऊब गया, वही गुरु के पास आ सकेगा। जो प्रेम से भी ऊब गया, वही गुरु के साथ जा सकेगा। इसे ठीक से समझ लो। जो संसार से ऊब गया, वह गुरु के पास आ सकेगा। लेकिन अगर प्रेम से न ऊबा हो, तो गुरु के पास ही रुक जाएगा, आगे न जा सकेगा। जो प्रेम से भी ऊब गया है, वह फिर गुरु के साथ आगे जा सकेगा, जहां गुरु-शिष्य दोनों उस महासागर में खो जाते हैं, जो परमात्मा है।
सदा ही कृष्ण अर्जुन से ही बोले हैं, और कोई बोलने का उपाय नहीं है। मैं भी अर्जुन से ही बोल रहा हूं। यह तुमसे कहा किसने कि मैं समूह से बोल रहा हूं! समूह से बोलने का कोई उपाय ही नहीं है, मार्ग ही नहीं है।

दूसरा प्रश्नः हम अभी जैसे हैं, उसमें तो निमित्त-भाव का मात्र अभिनय
सध सकता है। क्या निमित्त-भाव का अभिनय करते-करते किसी दिन कृष्ण के कहे निमित्त-भाव को उपलब्ध हो जाएंगे?

कहीं से तो शुरू करो, अभिनय ही सही। लेकिन यह अभिनय अनूठा है।
इसे तुम ऐसा समझो कि असली राम संसार में खो गए और भूल गए कि राम हैं। बहुत दिन संसार में भटकते-भटकते भूल गए कि राम हैं। फिर संसार में एक दिन रामलीला होने लगी और किसी ने असली राम को कहा कि तुम रामलीला में राम का पार्ट क्यों नहीं कर लेते? बिल्कुल राम जैसे दिखाई पड़ते हो! शक्ल-सूरत, नाक-नक्श, शरीर का ढंग, ये लंबी भुजाएं, यह वक्ष। तुम राम का पार्ट कर लो। तो राम राजी हो गए, जो कि भूल गए कि राम हैं, राम का अभिनय करने को। लेकिन अभिनय करते-करते भीतर की परतें टूटने लगीं मूर्च्छा की और कुछ याद आने लगी कि जो हम कह रहे हैं, जो हम कर रहे हैं, वह तो ऐसा लगता है जैसे किया हुआ हो, कहा हुआ हो। वह तो ऐसे लगता है, जैसे कभी देखा हुआ हो। वह तो ऐसे लगता है, जैसे अभिनय नहीं कर रहे हैं, कोई पुरानी स्मृति पुनरुज्जीवित हो गई है। और अभिनय करते-करते राम को स्मरण आ गया कि मैं तो राम हूं। ऐसी दशा है।
जब हम तुमसे कहते हैं, निमित्त मात्र हो रहो; तुम कहते हो, अभी शुरू करेंगे, तो अभिनय ही होगा। चलो, अभिनय से ही सही। न शुरू करने से तो अभिनय में शुरू करना भी बेहतर है। लेकिन असलियत यही है कि तुम निमित्त हो। परमात्मा तुम्हें पैदा करता है, तुम पैदा नहीं हुए हो अपने हाथ से। अस्तित्व तुम्हें उपजाता है, अस्तित्व तुम्हें बढ़ाता है, बड़ा करता है। अस्तित्व की कामनाएं ही तुम्हारे अंतस-हृदय में जीवित हैं। अस्तित्व की वासनाएं ही तुम्हें धकाती हैं, चलाती हैं। अस्तित्व ही तुम्हें दौड़ाता है, तुम्हारे भीतर श्वास लेता है। फिर एक दिन अस्तित्व तुम्हें वापस घर बुला लेता है। तुम गिर पड़े, मौत आ गई, वापस अस्तित्व में खो गए।
तुम थे ही नहीं। तुम निमित्त-मात्र थे। तुम्हारे बहाने कोई अदृश्य हाथ काम करते थे, कोई अदृश्य तुम्हारे पैरों से चलता था।

दादू ने कहा है, हाथ नहीं हैं और धनुष साधा हुआ है। धनुष नहीं है और तीर चढ़ा हुआ है। तीर नहीं है और चोट लग रही है गहरे। निशाना ठीक बैठ रहा है।
यह परमात्मा के लिए कहा है। उसके हाथ नहीं हैं, वह तुम्हारे हाथों से चलता है। उसके पैर नहीं हैं, वह तुम्हारे पैरों से रास्ता खोजता है। उसके पास आंख नहीं है, वह तुम्हारी हजार-हजार आंखों से देखता है।
तुम निमित्त हो, लेकिन तुम यह भूल गए हो। चलो, अभिनय सही। रामलीला में राम बन जाओ। कौन जाने, अभिनय करते-करते याद आ जाए! आ ही जाएगी। क्योंकि जो अस्तित्व है तुम्हारा भीतर, उसे तुम कितना ही भूल जाओ, मिटा थोड़े ही सकोगे?
ऐसा हुआ। मैंने सुना, एक आदमी ने हत्या की। राज्य उसके पीछे पड़ गया। सम्राट के सिपाही उस पर घेरा डालने लगे। वह बहुत घबड़ा गया। कोई उपाय न देखा। एक नदी के किनारे पहुंचा। नाव नहीं थी। पुल नहीं था। बरसात की बाढ़ थी। उस पार जाना खतरनाक था। उससे तो पुलिस के हाथ में पड़ जाना बेहतर था। साल, दो साल की सजा, किसी तरह बचने का उपाय; वकील भी हैं ही सदा मौजूद। कुछ रास्ता बन सकता था। यह नदी तो प्राण ले ही लेगी। भयंकर बाढ़ है। कुछ न सूझा। अचानक उसे ख्याल आया कि यह मैं क्यों न करूं! देखा कि नदी के किनारे एक आदमी भभूत रमाए साधु बना बैठा है। उसने भी जल्दी से डुबकी मारी, राख लपेटकर वह भी आंख बंद करके एक वृक्ष के नीचे बैठ गया।
जब पुलिस के घुड़सवार पहुंचे, तो उन्होंने इस साधु को बैठे देखा। यह बिल्कुल बनकर ही बैठा था। चोर था, हत्यारा था, सब तरह के जुर्म उसके ऊपर थे। मगर जब कोई बुद्ध की मुद्रा में बैठता है, तो कोई याद आनी शुरू हो जाती है। वह मुद्रा ऐसी है। वह तुम्हारे भीतर की मुद्रा है। वह शरीर पर दिखाई पड़ती है, शरीर की है नहीं। वह तुम्हारे भीतर की शांत चित्त-दशा का उसके साथ जोड़ है।
तुमने कभी कोशिश की अगर कि तुम क्रोध का अभिनय करो, थोड़ी ही देर में पाओगे कि क्रोध आ गया। गाली देना शुरू करो, जोर से पैर पटको, दीवाल पीटने लगो। थोड़ी देर में तुम पाओगे कि क्रोध सवार हो गया। ठीक ऐसी ही घटना विपरीत भी घटती है।
वह आदमी साधु होने का धोखा ही कर रहा था, अभिनय ही कर रहा था, लेकिन साधुता तो स्वभाव है। वह जब शांत होकर बैठा, उसे बड़ा रस मालूम होने लगा। ऐसा रस तो उसने कभी न जाना था। और यह भी वह जान रहा है कि यह तो बस अभिनय है। मगर यह रस कहां से आ रहा है!
तभी घुड़सवार आए; वे रुके। उन्होंने इस दिव्य प्रतिमा को बैठे देखा।
वे झुके। इसके चरणों पर सिर रख दिए। उनके सिर चरणों पर रखे, इस आदमी के भीतर कोई जागने लगा। यह बड़ा हैरान हुआ कि सिर्फ धोखे का साधु हूं। ऐसा झूठा ही साधु बनकर बैठा हूं; अभी घड़ीभर पहले ही बना हूं। किसी ने बनाया भी नहीं, अपने हाथ बन गया हूं। राख भर लगा ली है, कुछ किया भी नहीं है। इस झूठ में इनको क्या दिखाई पड़ रहा है कि ये मेरे पैर छू रहे हैं! और अगर झूठ इतना कारगर हो सकता है, तो सत्य का क्या पता, कितना कारगर हो!
सिपाही तो पैर छूकर चले गए, वह आदमी बदल गया, वह आदमी रूपांतरित हो गया। उसके जीवन में क्रांति घट गई। क्योंकि उसने देखा कि जब झूठी साधुता को इतना सम्मान मिल गया, तो सच्ची साधुता का क्या अर्थ होगा! एक झलक आ गई। बंद द्वार थे बहुत दिन से, वातायन न खुले थे, जरा-सी संध मिल गई। बाहर की खुली हवा आ गई। वह ताजी हवा प्राणों को पुलकित कर गई। आंखें बंद थीं जन्मों से; जरा-सी खुल गईं, झटके में खुल गईं, सूरज की रोशनी की किरण से पहचान हो गई। बुलावा आ गया। यात्रा बदल गई। सब बदल गया।
तुमसे मैं कहता हूं, तुम निमित्त-मात्र का अभिनय ही करो। अभी अभिनय ही
कर सकोगे। एकदम से सत्य कैसे होगा? और बहुत अभिनय किए हैं, यह भी करो। यह अभिनय कुछ विशिष्ट है, क्योंकि तुम्हारे भीतर के सत्य से इसका तालमेल है। और तुमने जो अभिनय किए हैं, वे सिर्फ अभिनय ही रह जाएंगे, क्योंकि उनका तुम्हारे भीतर के सत्य से कोई तालमेल नहीं है। वे ऊपर ही ऊपर रह जाएंगे। वे कभी तुम्हारा प्राण न बनेंगे। उनका स्पंदन कभी गहरे न जाएगा।

तुम जरा निमित्त-मात्र का अभिनय करके देखो। एक महीने अभिनय ही सही।
एक महीने ऐसे ही जीयो, जैसे वह तुम्हारे भीतर से जी रहा है। उठो, तो वह उठाए; बैठो, तो वह बैठाए; भूख लगे, तो उसे ही लगे; भोजन दो, तो उसे ही दो। जो भी जीवन का सामान्य कृत्य है, उसको वैसा ही रखना। सिर्फ भीतर की एक दृष्टि बदल जाए, कि करने वाला वह है, मैं केवल उपकरण हूं। मेरी रस्सियां उसके हाथ में हैं, मैं केवल पुतली हूं, कठपुतली हूं, नाचती हूं।
शायद इस बाहर के अभिनय का और भीतर की सचाई का अगर स्वभाव एक है, तो तालमेल किसी दिन बैठ जाएगा। किसी दिन अचानक ही घटना घटती है। अचानक ही भीतर का सुर बजने लगता है। सब बदल जाता है। एक क्षण में कुछ का कुछ हो जाता है। अंधेरे की जगह प्रकाश; अंधेपन की जगह आंखें; मूर्च्छा की जगह होश। चलो, अभिनय से ही शुरू करो।

तीसरा प्रश्नः महावीर अनाग्रही थे, पर जैन धर्म आग्रह का धर्म हो गया। आप भी अनाग्रही हैं, क्या आपका धर्म भी भविष्य में आग्रह का धर्म न हो जाएगा?

भविष्य की चिंता क्यों तुम्हें पकड़ती है? भविष्य का ठेका तुम्हें किसने दिया? भविष्य भी तुम्हारे अनुकूल हो, इसकी आकांक्षा क्यों जन्मती है? भविष्य को भविष्य पर छोड़ो।
मैं कुछ कह रहा हूं, अगर वह सार्थक है, तो तुम उपयोग कर लो। वह कभी व्यर्थ हो जाएगा, इस डर से क्या तुम उपयोग न करोगे! जब तुम मकान बनाते हो, तब तुम यह नहीं पूछते कि बड़े-बड़े महल खंडहर हो गए, यह मकान खंडहर न हो जाएगा? अगर खंडहर हो जाएगा, तो इसमें कैसे रहें?
नहीं, तुम यह नहीं पूछते। क्योंकि तुम जानते हो कि खंडहर तो होगा ही, लेकिन तुम्हारे रहने लायक काफी है। तुम्हें कोई सदा थोड़े ही रहना है। जो बना है, वह मिटेगा। लेकिन तुम्हारे रहने के लिए तो पर्याप्त है। तुम्हें सत्तर-अस्सी साल रहना है, खंडहर होने में इसको हजारों साल लगेंगे; तुम क्यों चिंता करते हो? और फिर अगर पुराने महल खंडहर न हों, तो नए महल खड़े कहां होंगे? अगर पुराने महल सब बने रहते, तो दुनिया में बड़ी मुसीबत हो जाती।
अगर पुराने सारे लोग जिंदा होते, तो तुम्हें पता है, कैसी हालत हो जाती? इस समय कोई चार अरब संख्या है दुनिया की। अगर जितने आदमी अब तक पैदा हुए हैं, वे सब जिंदा होते, तो एक सौ बीस अरब संख्या होती दुनिया की इस समय। तब हाथ हिलाने की भी जगह न होती। सोने का तो सवाल ही नहीं उठता, बैठना मुश्किल होता। बैठे कि मारे गए! सब तरफ भीड़!
वे जो मर गए हैं, उनकी तुम पर बड़ी कृपा है। तुम उन्हें धन्यवाद दो। और ध्यान रखना, तुम न मरोगे, तो तुम्हारी भविष्य पर कृपा नहीं है। फिर भविष्य के बच्चे कैसे पैदा होंगे? इधर बूढ़ा जाता है, उधर बच्चा आता है। इधर बड़े वृक्ष गिरते हैं, छोटे अंकुर फूटते हैं। और हर अंकुर कल बड़ा होगा वृक्ष बनेगा और गिरेगा। यह नियति है। इसमें परेशान क्या होना!
महावीर ने जो कहा, जो समझदार थे, उन्होंने उपयोग कर लिया। जो नासमझ होंगे, उन्होंने यही सवाल उनसे भी पूछा होगा, कि यह तो आप जो कह रहे हैं, होगा ठीक, लेकिन भविष्य में क्या होगा? धर्म संप्रदाय बन जाएगा, शब्द शास्त्र हो जाएंगे, लोग अंधविश्वासी हो जाएंगे। लोग जन्म से ही अपने को जैन समझ लेंगे, बिना किसी आंतरिक प्रक्रिया और रूपांतरण के! तुम जैसे पागल जरूर रहे होंगे, उन्होंने यह भी पूछा होगा। जो समझदार थे, उन्होंने महावीर की कुंजी से ताले खोल लिए। जो नासमझ थे, वे सोचते रहे, कहीं भविष्य में जंग तो न लग जाएगी!
सभी कुंजियों पर लग जाती है। और उचित है कि लग जाए, क्योंकि ताले बदल जाते हैं, तो कुंजियां भी बदल जाती हैं।
जैसे आज पुराने धर्म जराजीर्ण हो गए, मैं जो कह रहा हूं, किसी दिन वह
भी जराजीर्ण हो जाएगा। लेकिन जब होगा, तब होगा। और हो जाना चाहिए, नहीं तो नए धर्म कैसे पैदा होंगे, नई उदभावना कैसे होगी! पुराने गीत ही गूंजते रहें, तो नए गीत को गाने की जगह ही न बचेगी, अवकाश न बचेगा।

जैसे आज कोई आदमी जैन घर में पैदा होकर जैन हो जाता है, बिना जिन हुए। जिन होना तो बड़ा कठिन है। जिन होने का मतलब तो परिपूर्ण विजेता होना है स्वयं का। वह तो बड़ा शिखर है, गौरीशंकर है। उस तक तो कोई कभी पहुंचता है। लेकिन जैन घर में पैदा हो गए, बचपन से थोड़ा जिन-वाणी के शब्द सीख लिए, कि जैन हो गए। हिंदू घर में पैदा हो गए, गीता पढ़ ली या सुन ली, हिंदू हो गए। यह होना कोई वास्तविक होना नहीं है। पर यह स्वाभाविक है।
आज जो मैं कह रहा हूं, कल पुराना हो जाएगा; हो ही जाएगा। कहा हुआ सदा ताजा कैसे रह सकता है? और कहा हुआ सदा मौजूं भी नहीं रह सकता। क्योंकि समय बदलेगा, परिस्थिति बदलेगी, जो कहा हुआ है, वह बेमौजूं हो जाएगा। फिर यह उचित भी है, अन्यथा नए बुद्धों के लिए जगह न रह जाएगी। नए सदगुरुओं का अवतरण कैसे होगा! पुराने कृष्ण अगर विदा न होंगे, तो नए कृष्ण पैदा कैसे होंगे!
जो समझता है, वह जानता है कि कहा हुआ धर्म तो बनेगा, मिटेगा। अनकहा हुआ धर्म शाश्वत है। वह जो महावीर ने नहीं कहा, वह नहीं बदलेगा। जो महावीर ने कहा है, वह तो बदलेगा। उस पर तो धूल जम जाएगी। जो मैं कह रहा हूं, उस पर तो धूल जम जाएगी; जो मैं नहीं कह रहा हूं, वह नहीं बदलेगा। जो मैं नहीं कह रहा हूं, वह वही है जो महावीर ने नहीं कहा, कृष्ण ने नहीं कहा, बुद्ध ने नहीं कहा।
लेकिन तुम जब न कहने को सुन पाओगे, तब तुम्हें शाश्वत की पहचान होगी।
जब तक तुम कहने को ही सुन पाते हो--वह भी मुश्किल है, उसको भी ठीक से नहीं सुन पाते--जब तक तुम कहने को ही सुन पाते हो, जब तक तुम कथन को ही सुन पाते हो, तब तक तो सभी चीजें बासी हो जाएंगी।
स्वाभाविक है। इसमें कुछ रोने और परेशान होने की जरूरत नहीं है; और न
ही इसके विपरीत कोई इंतजाम करने की जरूरत है। क्योंकि कोई इंतजाम काम न करेगा, सब इंतजाम व्यर्थ हो जाएंगे। प्रकृति किसी को मानती नहीं और अपवाद नहीं स्वीकार करती।
कृष्ण, महावीर, बुद्ध, जरथुस्त्र, मोहम्मद, मूसा, सब बासे पड़ गए। तो यह कैसे संभव है कि मैं जो कह रहा हूं, वह सदा ताजा रहेगा! वह भी बासा हो जाएगा। हो ही जाना चाहिए। उसके बासे हो जाने में भी अर्थ है। क्योंकि जब वह बासा होकर गिर जाएगा, तभी जगह खाली होगी कि फिर कोई ताजा स्वर पैदा हो।
वह ताजा स्वर मेरा ही स्वर है। वह ताजा स्वर कृष्ण का ही स्वर है। लेकिन उस स्वर का आना होता है शून्य से। उससे तुम्हारी पहचान नहीं है। धर्म सनातन है, संप्रदाय सभी सामयिक हैं; बनते हैं, मिटते हैं। धर्म न कभी बनता है और न मिटता है।
इसलिए हिंदू को धर्म नहीं कहना चाहिए, जैन को धर्म नहीं कहना चाहिए, मुसलमान को धर्म नहीं कहना चाहिए। ये सब संप्रदाय हैं। ये धर्म तक पहुंचने के ढंग हैं। ये धर्म तक पहुंचने के मार्ग हैं। ये धर्म नहीं हैं। धर्म तो तुम्हारे गहन निबिड़ शून्य में छिपा है, गहन मौन में छिपा है।

चौथा प्रश्नः आपके प्रवचन-प्रवाह के बीच-बीच में जो क्षणों का रुकना
या मौन घटित होता है, वह बोलने से भी अधिक मार्मिक और प्रीतिकर लगता है; ऐसा क्यों?

है ही; लगना ही चाहिए। प्रश्न की जरूरत ही नहीं है। पूछो ही मत। उसका स्वाद लो, पीओ, डूबो। क्योंकि तुमने पूछा कि तुम फिर वापस सुनने की दुनिया में, शब्द की दुनिया में उतरने की चेष्टा में लग गए।
मौन ही सार्थक है। शब्द तो बड़े छोटे हैं; सत्य उनमें समाता नहीं। वे
तो तुम्हारे घर के आंगन जैसे हैं। महाआकाश उसमें कहां समाएगा! यद्यपि महाआकाश उसमें भी है। छोटा-सा टुकड़ा समाया है।
अगर तुम्हें आंगन से मुक्ति मिलती है किसी क्षण और मौन की प्रतीति होती है, तो ऐसा क्यों, यह पूछकर खराब मत करो। पूछा, कि फिर तुम शब्द की दुनिया में वापस आए। पूछने की ऐसी बीमारी लग गई है कि तुम किसी चीज को चुपचाप, आनंद तो ले ही नहीं सकते!

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन की एक मनोवैज्ञानिक चिकित्सा कर रहा था। उसे भेजा पहाड़ पर कि थोड़े दिन हवा-पानी बदलकर आओ। बड़े चिंतित, दिन-रात परेशान, दिन-रात बेचैन, रोज नई बीमारियां लेकर हाजिर। भेज दिया पहाड़ पर। तीन दिन बाद नसरुद्दीन का तार आया, फीलिंग वेरी हैप्पी, व्हाय? बहुत प्रसन्न हूं, क्यों? अब प्रसन्नता भी बिना क्यों के नहीं चलती!
यह क्यों की बीमारी छोड़ो। हां, अगर बीमार हो, प्रसन्न नहीं हो, दुखी हो, तो पूछो कि क्यों। क्योंकि दुख को मिटाना है, इसलिए पूछना है क्यों। कारण खोजने हैं उसके, जिसको मिटाना है। जिसको पाना है, उसके कारण क्या खोजने। क्यों क्यों पूछना? मत पूछो।
और अगर मेरे बोलने के प्रवाह में, कहीं ऐसा क्षण आ जाता है, अंतराल आ जाता है, जीओ उसे, स्वाद लो उसका। मैं बोल ही इसलिए रहा हूं कि वह अंतराल तुम्हें दिखाई पड़ने लगे। अगर मैं न बोलूं, तो तुम्हें दिखाई न पड़ेगा।
दो शब्दों के बीच में जब कभी मैं चुप हो जाता हूं, तो ऐसा ही हो जाता है, जैसे दो किनारों के बीच में नदी दिखाई पड़ जाए। दो तरफ शब्द हैं, बीच में थोड़ी देर को अंतराल की धारा है। मौन की नदी बह जाती है। तुम सुनने को उत्सुक थे, तुम शब्द की प्रतीक्षा करते थे और मैं चुप हो गया। एक क्षण को तुम्हारा मन समझ नहीं पाता, अब क्या करें!
बस, उसी थोड़े-से क्षण में तुम्हें मौन का स्पर्श होता है। क्यों मत उठाओ, अन्यथा मन उसे भी खराब कर देगा, दूषित कर देगा। क्यों को उठाया कि तुम्हारा मौन भी कुंआरा नहीं रह जाता। मौन का कुंआरापन भी नष्ट कर दिया तुमने।
कुंआरे मौन को जीओ। धीरे-धीरे प्रश्न उसी चीज के संबंध में उठाओ, जिसे मिटाना है। निदान बीमारी का किया जाता है, स्वास्थ्य का तो नहीं। डायग्नोसिस बीमारी की होती है, स्वास्थ्य की तो नहीं।
अगर तुम स्वस्थ हो, तो डाक्टर कहेगा, कोई बीमारी नहीं है। सब निगेटिव रिजल्ट आएंगे। कोई बीमारी नहीं है, तो निगेटिव रिजल्ट आते हैं।
बीमारी हो, तो पता चलना शुरू होता है, कौन-सी बीमारी है। फिर बीमारी की खोज शुरू होती है। पूछो क्यों, कारण में जाओ, निदान करो, चिकित्सा खोजो, औषधि खोजो। स्वास्थ्य तो बस स्वास्थ्य है, उसके संबंध में प्रश्न नहीं उठाना है।
इसलिए तुम समझो थोड़ा।
ज्ञानियों ने कहा है, परमात्मा के संबंध में प्रश्न मत उठाओ। इसलिए नहीं कि उत्तर नहीं है; इसलिए कि परमात्मा यानी परम स्वास्थ्य; बात ही क्या उठानी है! क्यों क्यों पूछना! भोगो, नाचो, डूबो।
परमात्मा के संबंध में जो प्रश्न उठाता है, उसने स्वास्थ्य के संबंध में प्रश्न उठाया। वह मुल्ला नसरुद्दीन जैसा है। वह पूछता है, आनंद में हूं; क्यों? जैसे आनंद में होने पर भरोसा नहीं आता। वही दशा तुम्हारी हो जाती होगी।
कभी-कभी मेरे बोलते-बोलते मेरे रुक जाने से तुम्हारी भी अंतर्धारा मेरे साथ चलती-चलती रुक जाती है; तुम्हारे बावजूद रुक जाती है। तुम्हारा चलता, तो तुम चलाए जाते। वह तो मेरे साथ सुर तुम्हारा बंध गया बोलने में, तुम मुझे सुनने में तल्लीन हो गए, जब मैं रुक गया एक क्षण को, तो एक क्षण को तुम पटरी पर नहीं आ पाते एकदम से। थोड़ी देर लग जाती है। स्टार्ट करो गाड़ी फिर, गेयर में डालो, तब कहीं फिर विचार शुरू हो पाते हैं। वह जो एक क्षण का तुम्हें मौका मिल जाता है, तुम्हारे बावजूद, उसको खोओ मत क्यों पूछकर। उसमें कोई नई बेचैनी और प्रश्न मत लाओ। उसे बिना प्रश्न के स्वीकार कर लो। मौन के साथ श्रद्धा को जोड़ो, स्वास्थ्य के साथ श्रद्धा को जोड़ो, परमात्मा के साथ श्रद्धा को जोड़ो, बीमारी के साथ संदेह को। क्योंकि बीमारी को मिटाना है, स्वास्थ्य को बढ़ाना है। पूछने से कोई स्वास्थ्य बढ़ता नहीं। पूछने से ही बीमारी शुरू हो जाती है।
अब जब ऐसा घटे, डुबकी लगा लो; सिर डुबा लो नीचे उस मौन की धार में। तुम
नए होकर बाहर आओगे। और तब धीरे-धीरे ऐसा भी होगा कि मैं बोलता भी रहूंगा और तुम्हारे भीतर कई बार सन्नाटा आ जाएगा। तुम यहां से उठकर जाओगे, और तुम पाओगे, सन्नाटा तुम्हारे साथ चल रहा है। धीरे-धीरे संगीत बैठने लगता है।

और मौन सध जाए, तो सब सध गया। मौन खो गया, तो सब खो गया। क्योंकि उस मौन में ही तुम्हें अंतर्जगत के दर्शन शुरू होते हैं। उस मौन में ही तुम्हें बाहर भी परमात्मा की छवि दिखाई पड़नी शुरू होती है। मौन द्वार है। मौन मंदिर है।

पांचवां प्रश्नः आपने बताया है कि एक अमेरिकी दर्शक को सदगुरु से आंखें चार होते ही पेट में दर्द शुरू हो गया। मेरा अनुभव भी कुछ ऐसा ही है। संन्यास-दीक्षा के बाद से ही मेरे सिर में अक्सर ऊर्जा इकट्ठी होकर दर्द बन जाती है। कभी-कभी तेज सिरदर्द भी महसूस होता है। ध्यान, प्रवचन और दर्शन के समय भी यह प्रक्रिया तीव्र हो उठती है। सिर में तनाव और शरीर में पसीना भी आता है। मैं क्या करूं?

और छठवां प्रश्नः कल एक अमेरिकी साधक के अनुभव के प्रसंग में आपने बताया कि ध्यान साधना में ऐसी शारीरिक बीमारियां पैदा हो सकती हैं, जिनका इलाज सामान्य चिकित्सा नहीं कर सकती। मुझे खुद ऐसा पेट-दर्द महीनों से है और एक डाक्टर के नाते आपके अन्य साधकों में भी मुझे ऐसे रोग दिखाई पड़े हैं। कृपापूर्वक बताएं कि उनके निराकरण के लिए सिर्फ साक्षी-भाव रखना है या कि कुछ और विधि भी काम में लाई जा सकती है?

ऐसा घटता है। घटने के कारण समझ लें।
बच्चा पैदा होता है, तब उसकी जीवन-ऊर्जा सारे शरीर पर एक-सी बहती है, धारा अखंडित होती है। इसलिए तो बच्चे इतने सुंदर मालूम पड़ते हैं। तुमने कोई कुरूप बच्चा देखा? कुरूप से कुरूप बच्चा भी सुंदर मालूम पड़ता है। और सुंदर से सुंदर पुरुष भी कुछ गहरी कुरूपता को लिए हुए चलता लगता है। सभी बच्चे सुंदर पैदा होते हैं, फिर मुश्किल से एकाध प्रतिशत लोग सुंदर रह जाते हैं, बाकी सबका सौंदर्य खो जाता है। क्या मामला है?
बच्चे के सौंदर्य का कारण है, उसकी जीवन कीशृंखला, उसके भीतर की ऊर्जा-धारा, उसकी जीवन-धारा अभी पूरी एक-सी बह रही है। शरीर में कहीं भी अवरोध नहीं है। ऊर्जा कहीं भी रुकी नहीं है। झरने पर कहीं भी पत्थर नहीं पड़े हैं। लेकिन जैसे-जैसे बच्चा बड़ा होगा, शिक्षा होगी, दीक्षा होगी, संस्कार डाले जाएंगे, ऊर्जा में बंधन आने शुरू हो जाएंगे।
छोटा बच्चा है; अपनी जननेंद्रिय से खेल रहा है। सारे बच्चे सारी दुनिया में खेलते हैं। कहीं कुछ स्वाभाविक बात है उसमें। लेकिन मां ने देख लिया। मां चिल्लाई, बंद करो, अलग करो हाथ। बच्चे ने हाथ तो अलग कर लिया, लेकिन ऊर्जा में खंडन हो गया। पहली बार ऊर्जा भयभीत हुई। डर पैदा हो गया। अपने ही शरीर को दो टुकड़ों में तोड़ना जरूरी हो जाएगा। नीचे का शरीर, लोग धीरे-धीरे समझने लगते हैं, गंदा है।
अब यह बड़े आश्चर्य की बात है। शरीर एक है; उसके भीतर बहती खून की धार
एक है; उसके भीतर हड्डी-मांस-मज्जा का समूह एक है; उसके भीतर कहीं भी कोई कंपार्टमेंट, कहीं कोई विभाजन नहीं है। लेकिन सभी समाजों ने कामवासना के प्रति ऐसी अपराध-भावना पैदा कर दी है कि नीचे का शरीर गंदा है; नीचे के शरीर में कहीं कुछ पाप है, कहीं कोई बुराई है।
कामवासना बुरी है। उसके साथ ही शरीर के वे हिस्से जो कामवासना से जुड़े हैं, गंदे हो गए, त्याज्य हो गए, उनको छिपाना है। उनको स्वीकार नहीं करना है। उनका स्पर्श नहीं करना है।
यह जो बचपन से बच्चे के ऊपर थोपी गई धारणा है, तो ठीक पेट के पास, जहां
से काम-ऊर्जा शुरू होती है, नाभि के दो इंच नीचे, वहां दरार पड़ जाती है। शरीर दो हिस्से में बंट गया, निम्न और उच्च। तुम्हारी चेतना में भी दरार पड़ गई। अब तुम धीरे-धीरे अपने को नीचे के शरीर के साथ तादात्म्य नहीं करते, तुम ऊपर के शरीर के साथ ही तादात्म्य करते हो।
वस्तुतः धीरे-धीरे ऐसी घड़ी आ जाती है कि तुम समझते हो कि तुम खोपड़ी में ही रहते हो, बाकी शरीर तो बस गौण है, खोपड़ी में रहते हो। अगर तुम गौर भी करो, विचार भी करो, तो तुमको यही याद आएगा कि खोपड़ी के भीतर हो। खोपड़ी स्वीकृत मालूम होती है।

सारे शरीर को हमने ढंक दिया है; सिर्फ चेहरे को खुला छोड़ दिया है। अगर तुम्हारा सिर काट लिया जाए, तो तुम्हारी मां, तुम्हारी पत्नी, तुम्हारे पिता भी तुम्हारे बाकी शरीर को न पहचान पाएंगे कि तुम ही हो। तुम खुद भी न पहचान पाओगे, अगर सिर काट दिया जाए। अगर ऐसा कोई उपाय हो कि सिर को काटकर, और सिर से पूछा जा सके कि यह शरीर तुम्हारा है? तुम खुद ही कहोगे, पता नहीं, अपना है या नहीं।
सारा शरीर अस्वीकृत है। अस्वीकार के कारण ऊर्जा का प्रवाह खंडित हो गया है। और इस प्रवाह के दो-तीन विशेष स्थान हैं, जहां खंडन हुआ है। पहला खंडन नाभि के नीचे है।
तो जिन लोगों को ध्यान, ऊर्जा के प्रवाह को फिर से शुरू कर देगा; जिनका ध्यान गहरा जाएगा, नाभि पर चोट पड़ेगी, ऊर्जा फिर से उठेगी, जो प्रवाह रुक गया बचपन में दमनकारी विचारों के कारण, वह फिर से प्रवाहमान होगा। वर्षों तक बंद पड़ी हुई धारा फिर से बहेगी; दर्द मालूम होगा; पीड़ा मालूम होगी। जैसे किसी का हाथ बहुत दिन तक बांधकर रखा गया हो और अब फिर अचानक उसे स्वतंत्रता दी जा रही है, तो हाथ गति भी न कर सकेगा। लकवा लग गया। बड़ी मुश्किल होगी। स्नायु जड़ हो गए, हड्डी सख्त हो गई। पीड़ा होगी।
तो एक तो साधक को पेट में पीड़ा शुरू होती है। कभी-कभी दीक्षा के समय ही, संन्यास के समय ही शुरू हो जाती है। अगर साधक की भाव-दशा बहुत गहरी है, तो वह जैसे ही मेरे पास झुकता है, वैसे ही काम शुरू हो जाता है। बहुत पीड़ा हो सकती है।
उस पीड़ा के लिए कुछ भी नहीं करना है। उस पीड़ा को स्वीकार करना है। उसे अहोभाव की तरह स्वीकार करना है कि यह अच्छा हुआ कि बंद ऊर्जा का द्वार खुल रहा है। उसे धन्यभाव की तरह स्वीकार करना है और परमात्मा को धन्यवाद देना है कि तूने मेरी फिर जीवन-धारा को प्रवाहित कर दिया।
जितने धन्यवाद से तुम भरे रहोगे, उतने ही जल्दी काम हो जाएगा। अगर तुमने पीड़ा के विपरीत कुछ भी चेष्टा की, तो फिर से तुम द्वार को बंद कर सकते हो। इसलिए अच्छा तो यही है कि तुम कोई इलाज मत करना, क्योंकि कोई भी इलाज ज्यादा से ज्यादा पीड़ा को भुलाने का इलाज हो सकता है।
और यह पीड़ा शारीरिक नहीं है। यह पीड़ा तुम्हारी अंतर-ऊर्जा की है; और इसको मुक्त करना है; इसको बाहर लाना है, इसको फिर गतिमान करना है। तुम्हें फिर छोटे बच्चे की तरह बनाना है। तभी तुम परमात्मा के राज्य में स्वीकृत हो सकोगे।
जीसस ठीक कहते हैं, जो छोटे बच्चों की भांति न होंगे, वे मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश न कर सकेंगे।
तुम्हें फिर से जीवंत होना है। तुम्हारे जड़ हो गए अंगों में फिर धार बहानी है जीवन की। फिर से गतिमान करना है तुम्हारे झरने को।
तो एक तो चोट लगती है नाभि के पास। और वह वर्षों तक भी रह सकती है, अगर तुम उससे लड़ते रहो, अगर तुम कोशिश करो कि यह न हो, तो अभी भी तुम जो खाई पैदा हो गई है, उसे पूरी नहीं होने दे रहे हो। तुम शिथिल हो जाओ; तुम उसे स्वीकार कर लो। जब भी बहुत पीड़ा होने लगे, लेट जाओ, आंख बंद कर लो। और ऐसा भाव करो कि वहीं ठीक नाभि पर, जहां पीड़ा हो रही है, ऊर्जा ऊपर की तरफ उठ रही है; और तुम बाधा नहीं डाल रहे हो। तुम्हारी कोई बाधा नहीं है; तुम अंगीकार कर रहे हो; तुम्हारा स्वागत है, आओ। तुम बुलाते हो ऊर्जा को।
एक दिन अचानक तुम पाओगे, एक सरसराहट की तरह, जैसे बहुत दिन से दबा हुआ स्प्रिंग, पत्थर हटा दिया गया हो और स्प्रिंग झटके से उठकर खड़ा हो गया हो। बहुत दिन से दबा हुआ झरना; और शिला हटा दी गई हो और एक भयंकर तूफान की तरह झरना फूट पड़ा हो, ऐसा तुम्हारे भीतर से नाभि के पास से ऊर्जा फूटेगी।
उस ऊर्जा के फूटने के साथ ही तुम्हारे जीवन में क्रांति घट जाएगी। तुम दूसरे ही व्यक्ति हो जाओगे। तब तुम समाज के द्वारा दमित व्यक्ति नहीं रहे। योग ने तुम्हें मुक्त किया।
एक तो यहां कठिनाई होती है। दूसरा कठिनाई का क्षेत्र है, हृदय। एक तो काम का दमन किया है समाज ने, तो वहां अड़चन है। दूसरा प्रेम का दमन किया है, वहां अड़चन है।

प्रेम को कोई भी स्वीकार नहीं करता है। प्रेम खतरनाक मालूम होता है। इसलिए तुम हृदय की बातें करते हो, लेकिन हृदय से तुम्हारी कोई पहचान नहीं है। हृदय के साथ खतरा है। हृदय अंधा है, लोग कहते हैं। प्रेम अंधा है, लोग कहते हैं। जब कि वस्तुतः प्रेम ही एकमात्र आंख है। और जिसके पास हृदय जीवित नहीं है, उसके पास कुछ भी जीवित नहीं। वह केवल हड्डी-मांस-मज्जा की बनी मुरदा देह है, लाश है।
तुम जिसको हृदय की धड़कन समझते हो, वह केवल फुफ्फुस की धड़कन है, हृदय की नहीं। वह केवल पंपिंग, खून का पंप किया जाना है। उस हृदय के पीछे छिपा हुआ एक और अनुभूति का बड़ा मार्मिक स्थल है।
उसे भी समाज ने रोक दिया है। समाज ने तुम्हें विचार सिखाया, तर्क सिखाया, प्रेम से बचाया है। क्योंकि प्रेमी आदमी को धोखा दिया जा सकता है; और प्रेम करने वाला व्यक्ति न तो शोषण कर सकता है, न लूट सकता है। और इस समाज में शोषण और लूट का ही रास्ता है। यहां तो बड़ी मछली छोटी मछली को खाए, यही नियम है।
तो अगर तुम तर्क, संदेह से न जीए, तो लुट जाओगे, मिट जाओगे संसार में। बड़ी दुकान न बना पाओगे, बड़े नेता न हो पाओगे, बड़े पद पर न पहुंच पाओगे, महत्वाकांक्षा क्षीण हो जाएगी। इसलिए हृदय को दबा दिया है।
तो दूसरी पीड़ा हृदय में होती है, वह दूसरा स्थल है। अगर प्रेम जगेगा,
तो हृदय में बड़ी गहन पीड़ा होगी। ऐसी ही जैसे कि हार्ट अटैक हुआ हो, जैसे हृदय का दौरा पड़ गया हो। लेकिन वह सौभाग्य है, उससे घबड़ाना मत। उसके इलाज की कोई भी जरूरत नहीं। अगर ध्यान से वह हो, तो जरा भी चिंता की कोई बात नहीं है। लेट गए, हृदय पर हाथ रख लिया और सहारा दिया कि ठीक है, जागो, उठो, फैलो, फिर से गतिमान हो जाओ, फिर से धड़को। परमात्मा को धन्यवाद देना।
जल्दी ही वह पीड़ा पार हो जाएगी। उस पीड़ा के पार होते ही तुम पाओगे, नहा
गए प्रेम में। उस पीड़ा के जाते ही तुम पाओगे, तुम्हारी आंख के देखने का ढंग बदल गया, तुम्हारे अस्तित्व की गरिमा और गुण बदल गया। तुम कुछ और ही हो गए। जहां सूखा तर्क चलता था, वहां प्रेम के फूल लगने लगेंगे। जहां केवल संदेह के मरुस्थल थे, वहां प्रेम के मरूद्यान उठने लगेंगे। हरियाली फैलने लगेगी तुम्हारे जीवन में। तुम हरे होने लगोगे।
वह एक पीड़ा की जगह है। और तीसरी एक पीड़ा की जगह है, कंठ। ये तीन स्थान हैं आमतौर से। कुछ और स्थान भी हैं, वे कभी-कभी अपवाद रूप किन्हीं व्यक्तियों के जीवन में होते हैं, अन्यथा तीन सामान्य स्थल हैं।
कंठ भी अवरुद्ध है। क्योंकि जो तुम कहना चाहते थे, कहने नहीं दिया गया। हंसना चाहते थे, हंसने नहीं दिया गया। रोना चाहते थे, रोने नहीं दिया गया। जब रोए तो कहा, चुप हो जाओ। हंसने लगे जोर से, तो असभ्यता थी! जो कहने का मन था, वह कहा नहीं; जो नहीं कहने का मन था, वह कहलवाया गया। तो कंठ में भी अवरोध है।
ये तीन क्षेत्र पीड़ा के हैं। और इन तीनों में पीड़ा हो ध्यान के बाद, संन्यास के बाद, तो घबड़ाना मत। कोई चिकित्सा की जरूरत नहीं। यह बीमारी है ही नहीं। यह तो स्वास्थ्य का लौटना है। लेकिन तुम इतने दिन बीमार रह गए हो कि अब स्वास्थ्य भी तुम्हें बीमारी जैसा लगता है। अब तो स्वास्थ्य के लौटने में भी तुम्हें घबड़ाहट लगती है, क्योंकि तुम खाट से बंध गए हो। खाट से बंधे होने को तुमने जीवन समझ लिया है। अब यह जो जीवन-धारा आती है, तो भयभीत करती है कि यह क्या हो रहा है!
घबड़ाओ मत। इसलिए निरंतर गुरु की जरूरत है। क्योंकि तुम जहां-जहां घबड़ाओगे, वहीं-वहीं वह सहारा दे सकेगा। जहां-जहां भय पकड़ेगा, वहीं-वहीं निर्भय कर सकेगा। और इनके अतिरिक्त भी कई स्थानों पर भी दर्द और पीड़ा हो सकती है। सिर में भी पीड़ा हो सकती है। उसके होने का कारण भी है। सिर में भी बड़े दमन हैं।
सिर के दो हिस्से हैं, मस्तिष्क के दो भाग हैं, बायां और दायां। दोनों
के बीच में छोटा-सा सेतु है, जो दोनों को जोड़े हुए है। और समाज बड़ा अदभुत है। उसने जो-जो चीजें लेफ्ट हैं, बाईं हैं, उनका दमन किया है। तो तुम्हारा दायां मस्तिष्क दमन किया गया है।

अगर कोई बच्चा बाएं हाथ से लिखता है, तो हम उसे लिखने नहीं देते। दस प्रतिशत बच्चों को बाएं हाथ से ही लिखना चाहिए, क्योंकि वे वैसे ही पैदा हुए हैं; उनका बायां हाथ ही सक्रिय है। लेकिन शिक्षक पीछे पड़े हैं, माताएं डंडा लिए खड़ी हैं, बाप खड़े हैं, कि लिखो दाएं से।
अब जो बच्चा बाएं से ही लिखने को पैदा हुआ है, वह दाएं से लिखेगा, लेकिन तुमने उसकी जीवन-ऊर्जा कुंठित कर दी। उसका बायां हाथ दमित किया गया। बाएं हाथ से दायां मस्तिष्क जुड़ा है और दाएं हाथ से बायां मस्तिष्क जुड़ा है। क्रास की तरह जुड़े हैं। अगर तुमने उसको बाएं हाथ से न लिखने दिया, तो तुमने उसके दाएं मस्तिष्क को दमित कर दिया। वह दायां मस्तिष्क तड़फड़ाएगा। वह बंद पड़ा रह जाएगा। और वही उसका असली मस्तिष्क था। यह बच्चा सदा के लिए बुद्धू हो जाएगा और तुम इसी को जिम्मेवार ठहराओगे।
अभी पश्चिम में मनोवैज्ञानिक और वैज्ञानिकों का बड़ा समूह इस पक्ष में
हो गया है कि जो बच्चे बाएं से लिखते हैं, उनको बाएं से ही लिखने दो। अन्यथा तुम उनको जीवनभर के लिए बुद्धिहीन बना दोगे। उनका असली मस्तिष्क तो रोक दिया जाएगा और जो मस्तिष्क काम करना नहीं चाहता था, कर नहीं सकता था, उसके सहारे उनको चलाया जाएगा। तुमने उन्हें नाहक ही बैसाखियां पकड़ा दीं। वे अपने ही पैर से दौड़ सकते थे।
तो जो लोग, दस प्रतिशत लोग, काफी बड़ी संख्या है, उनको बगावत करनी ही चाहिए। ये दाएं हाथ वाले लोगों ने, नब्बे प्रतिशत लोगों ने, दस प्रतिशत लोगों की गर्दन दबा ली है।
अगर तुम्हारा लिखने का ढंग बाएं से शुरू हुआ हो--तुम भूल भी गए हो शायद--और जब जीवन-ऊर्जा फिर से बहेगी, तो तुम्हारा दायां मस्तिष्क सक्रिय होगा, वहां पीड़ा शुरू हो जाएगी।
जहां भी पीड़ा हो ध्यान के बाद, चिकित्सक को दिखा लेना। अगर चिकित्सक कहे कि शरीर में कोई खामी नहीं है, कोई खराबी नहीं है, तो फिक्र मत करना। अगर वह कहे, शरीर में कोई खराबी है, तो दवा ले लेना। अगर शरीर में कोई खराबी नहीं है, तो ध्यान से जो काम हो रहा है, उसकी कोई चिकित्सा नहीं है। चिकित्सा की जरूरत नहीं है। वह तो स्वास्थ्य का लौटना है।
वह तो ऐसी धार हो गए हो तुम नदी की, जहां सिर्फ रेत रह गई है, पत्थर पड़े
रह गए हैं। कहीं-कहीं डबरे भरे रह गए हैं। वर्षा हो गई है ध्यान की, फिर से जल आया है नदी में। फिर से धार बहने की कोशिश कर रही है। कई जगह पत्थर तोड़ने पड़ेंगे, आवाज होगी, पीड़ा होगी। कई जगह मार्ग बनाना पड़ेगा, पीड़ा होगी।
लेकिन यह सब पीड़ा सौभाग्य है। इसे अगर तुमने धन्यवाद से स्वीकार किया
और परमात्मा के प्रति अनुग्रह का भाव रखा, तुम पाओगे, जल्दी ही पार हो गई।
साक्षी रहना और परमात्मा को काम करने देना।
अपने को छोड़ दो उसके हाथ में, निमित्त मात्र हो जाने का यही अर्थ है।
वह जो कराए, होने दो। वह जो न कराए, उसकी आकांक्षा न करो।

अब सूत्रः
तथा हे अर्जुन, जो कर्म शास्त्र-विधि से नियत किया हुआ और कर्तापन के अभिमान से रहित, फल को न चाहने वाले पुरुष द्वारा बिना राग-द्वेष से किया हुआ है, वह कर्म तो सात्विक कहा जाता है।
और जो कर्म बहुत परिश्रम से युक्त है तथा फल को चाहने वाले और अहंकारयुक्त पुरुष द्वारा किया जाता है, वह कर्म राजस कहा गया है।
तथा जो कर्म परिणाम, हानि और हिंसा और सामर्थ्य को न विचारकर केवल अज्ञान से आरंभ किया जाता है, वह कर्म तामस कहा जाता है।
तामस का अर्थ है, मूर्च्छा की एक दशा, जिसमें तुम सोए-सोए हो। जैसे कोई नींद में चलता हो। कई लोगों को निद्रा में चलने का रोग होता है। रात उठते हैं, फ्रिज के पास पहुंच जाते हैं, खोल लेते हैं फ्रिज, आइसक्रीम खा लेते हैं, कोका-कोला पी लेते हैं; बंद कर देते हैं, वापस लौट जाते हैं; सो जाते हैं।

सुबह उनसे पूछो; उन्हें कुछ याद नहीं। अगर बहुत चेष्टा करेंगे, तो इतनी ही याद आएगी कि एक सपना देखा कि फ्रिज के पास खड़े हैं। सपने में फ्रिज खोला, सपने में सपने की ही आइसक्रीम खाई, ऐसी उनको याद ज्यादा से ज्यादा आ सकती है।
ऐसे लोगों ने कई बार दुनिया में बड़ी मुश्किलें खड़ी कर दी हैं। क्योंकि खुद ही आदमी रात उठता है, घर में गड़बड़ कर आता है, सो जाता है। सुबह पुलिस में खबर करता है कि रात घर में कोई घुसा था, क्योंकि चीजें अस्तव्यस्त हैं! कई स्त्रियां पकड़ी गई हैं, जो खुद ही रात को उठकर अपनी साड़ियों को काट देती हैं और सुबह उपद्रव खड़ा हो जाता है कि किसने साड़ियां काटीं? कोई भूत-प्रेत घर में घुस गया है! आग लगा दी है लोगों ने अपने ही सामानों में।
धीरे-धीरे मनोविज्ञान एक तथ्य पर पहुंचा कि बहुत-से लोगों को यह बीमारी है। जब इस तरह का बीमार आदमी रात में उठकर चलता है, तो उसकी आंख खुली होती है और नींद नहीं टूटती। इसलिए वह टकराता भी नहीं।
न्यूयार्क में एक घटना घटी कुछ वर्षों पहले। एक आदमी रोज रात में उठकर अपनी साठ मंजिल के मकान से पास की साठ मंजिल के दूसरे मकान पर छलांग लगाता था। यह रोज का कृत्य था। धीरे-धीरे लोग भी जानने लगे कि रात ठीक दो बजे वे सज्जन आते हैं, दो-चार बार उस तरफ जाते हैं, दो-चार बार इस तरफ। बड़ा खतरनाक मामला था। बड़ी खाई थी साठ मंजिल की!
धीरे-धीरे खबर फैल गई। एक रात बहुत लोग इकट्ठे हो गए देखने। जैसे ही
उस आदमी ने छलांग लगाई, कि उन सारे लोगों ने शोरगुल कर दिया। उसकी नींद टूट गई। नींद टूट गई कि वह घबड़ा गया। वह पहुंच गया दूसरे की छत पर, खड़ा हो गया। लेकिन इतना घबड़ा गया, उसे भरोसा ही नहीं आया कि यह क्या हो रहा है, कि घबड़ाहट में उसका पैर फिसल गया और गिर गया। मर गया वह आदमी। रोज कर रहा था; उसे याद ही न थी। इसको निद्रा में चलने का रोग, सोम्नाबुलिज्म कहते हैं। तामस ऐसी ही जीवन-दशा है, जिसमें तुम चलते हो, फिर भी क्यों चल रहे हो, पता नहीं। दुकान करते हो, क्यों कर रहे हो, पता नहीं। झगड़ा भी हो जाता है, किसी की हत्या भी कर देते हो, पता ही नहीं। पीछे तुम्हीं कहते हो, कुछ पता नहीं, मेरे बावजूद हो गया! मैं करना नहीं चाहता था और हो गया। मैंने सोचा ही नहीं, और हो गया। क्रोध के क्षण में हो गया। होश ही न था।
ऐसी नशे की दशा में जो जीवन-व्यवहार चल रहा है, उसे कृष्ण कहते हैं, वह तामस की अवस्था है।
परिणाम का विचार किए बिना, हानि और हिंसा का विचार किए बिना, सामर्थ्य
का ध्यान दिए बिना, केवल अज्ञान से, केवल अंधेरे से जो उठता है कृत्य; जिसके लिए तुम अपना उत्तरदायित्व भी नहीं मानते, जिसके लिए तुम यह भी नहीं कह सकते कि मैंने किया है, क्योंकि तुमने होशपूर्वक किया ही नहीं है। बहुत-से हत्यारे अदालतों में कहते हैं कि उन्होंने हत्या की ही नहीं। पहले तो समझा जाता था कि वे झूठ बोल रहे हैं। लेकिन अब तो झूठ को पकड़ने के लिए लाई-डिटेक्टर की मशीन तैयार हो गई है। ऐसे हत्यारों को लाई-डिटेक्टर पर खड़ा करके भी पूछा गया है। वे तब भी कहते हैं कि नहीं, हमने हत्या की ही नहीं। और मशीन भी कहती है कि वे ठीक कहते हैं। और सब गवाह मौजूद हैं कि उन्होंने हत्या की है। रंगे हाथ वे पकड़े गए हैं। क्या मामला है?
मनसविद इस पर काफी अध्ययन किए हैं पिछले तीस वर्षों से। और उन्होंने पाया कि इन्होंने हत्या की है, लेकिन इतने गहन तमस में की है कि इनको पता ही नहीं है कि इन्होंने की है। नींद में हो गई है।
इसलिए पश्चिम में मनोविज्ञान और कानून के बीच एक बड़ा संघर्ष शुरू हुआ है। क्योंकि मनोविज्ञान कहता है, इस तरह के आदमी को सजा देना गलत है। जब उसने किया ही नहीं, किसी मूर्च्छा के क्षण में हुआ है, तो सजा देने का क्या सार है? उसने किया होता, जानकर किया होता, तो सजा का कोई अर्थ था।
छोटे बच्चों को तो हम सजा नहीं देते, क्योंकि हम कहते हैं कि उनकी समझ नहीं, उत्तरदायित्व नहीं। अगर शराबी कोई पाप कर ले, कोई अपराध कर ले, तो उसको भी हम कम सजा देते हैं, क्योंकि वह शराब पीए था। अगर यह सिद्ध हो जाए कि आदमी पागल है और पागलपन में उसने कुछ किया, तो हम उसे माफ कर देते हैं, क्योंकि पागल को क्या दंड देना! अब मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि तमस में

जिन्होंने किया है, उनको भी क्या दंड देना। उनका भी कोई उत्तरदायित्व थोड़े ही है।
लेकिन अगर उन्हें छोड़ दो, तो सभी अपराधी छूट जाएंगे। अगर उन्हें छोड़ दो, तो सभी अपराधी छूट जाएंगे। तब तो बुद्ध जैसा आदमी पाप करे, तो ही सजा दे सकते हो। क्योंकि वही केवल बोधपूर्वक कर सकता है, बाकी लोग तो बोधहीनता में करेंगे ही।
मुझे भी लगता है, सजा देना तो उचित नहीं है, छोड़ना भी उचित नहीं है। चिकित्सा करनी चाहिए। सजा देना उचित नहीं है, क्योंकि सोए हुए आदमी को क्या सजा देनी! और कौन सजा देगा? हत्या करने वाला सोया है, पकड़ने वाला पुलिसवाला सोया है, अदालत में निर्णय देने वाला जज सोया है, जूरी तो घुर्राटे ले रहे हैं। उनका तो कोई पता ही नहीं! सजा कौन दे रहा है इसको? किसलिए दे रहा है? कौन इसको सजा देने का हकदार है?
सभी एक से अपराधी हैं। पूरा समाज अपराधी है। इसका इलाज होना चाहिए। इसकी चिकित्सा होनी चाहिए। दुनिया में शीघ्र ही वह घड़ी आ जाएगी, जब अपराधी बीमार समझा जाएगा। वह बीमार ही है, वह अपराधी है नहीं।
दूसरे तरह का ऐसा कर्म है, जिसको हम राजस कहते हैं। एक, पहला तामस, दूसरा जिसे हम राजस कहते हैं।
बहुत परिश्रम से युक्त, फल को चाहने वाले, अहंकारयुक्त पुरुष द्वारा किया जाता है, वह कर्म राजस कहा जाता है।
राजस ऐसा कर्म है, जो तुम्हारी उत्तेजना के कारण तुम करते हो। तामस ऐसा, जो तुम अपनी मूर्च्छा के कारण करते हो।
लोग हैं, जिनके जीवन में ऐसी रेस्टलेसनेस, ऐसी उत्तेजना है कि वे खाली नहीं बैठ सकते; उन्हें कुछ करने को चाहिए। अगर वे न करें, तो बड़े बेचैन होने लगते हैं। अगर कुछ न हो, तो उसी अखबार को दुबारा पढ़ेंगे, तीसरी बार पढ़ेंगे; रेडियो खोल लेंगे; खिड़की खोलेंगे, बंद करेंगे; सामान उठाकर रखने लगेंगे यहां-वहां। महिलाएं घर में निरंतर करती रहती हैं इस तरह का काम। फर्नीचर ही जमा रही हैं! घर की सफाई ही कर रही हैं! सफाई जो कि काफी हो चुकी, उसको किए चली जा रही हैं।
कुछ एक भीतरी उत्तेजना है, जो उससे निकल रही है। लोगों को इसीलिए तो ध्यान करना सबसे कठिन मामला है।
मूर्च्छित ध्यान करे, सो जाता है। राजसी ध्यान करे, हजार तरह के काम उसके शरीर में उठने लगते हैं। कहीं पैर में चींटी काटती है, देखता है, चींटी है ही नहीं। मगर चींटी काटती है। कहीं खुजलाहट उठती है। पहले कभी न उठी थी, जिंदगीभर न उठी थी। आज कमर खुजला रही है, कहीं पीठ खुजलाती है, कहीं सिर खुजलाता है।
ये सब भीतरी उत्तेजनाएं हैं। इसलिए राजस शांत नहीं बैठ सकता। राजस के लिए सबसे कठिन बात है, थोड़ी देर शांत बैठ जाना।
राजस तामस से भी खतरनाक लोग हैं। क्योंकि तामसी आदमी तो कभी-कभार कुछ करता है। वह तो आलसी होता है। इतना पक्का है कि तामसी आदमी से अच्छा काम नहीं होता, बुरा काम भी नहीं होता। राजस बहुत उपद्रवी है।
चंगेज खां और तैमूरलंग और नेपोलियन और स्टैलिन और दुनिया के सब राजनीतिज्ञ, वे सब राजस, उपद्रवी लोग हैं। वे खाली नहीं बैठ सकते। कुछ न कुछ करते ही रहेंगे। कहीं न कहीं क्रांति सुलगाएंगे; कहीं न कहीं परिवर्तन चलवाएंगे; कहीं न कहीं कुछ न कुछ उपद्रव! शांत बैठना उन्हें असंभव है। ये दुनिया के सबसे ज्यादा खतरनाक लोग हैं। इतिहास में जिनके तुम नाम पाते हो, वे सब राजस हैं।
तामसियों के नाम तुम्हें इतिहास में न मिलेंगे; इतना उपद्रव वे करते नहीं कि इतिहास तक आ पाएं; कि अखबार में उनकी खबर छपें, ऐसा उपद्रव वे करते नहीं। वे पाप भी करते हैं, तो छोटे-मोटे, क्योंकि बड़े पाप करने के लिए बड़ा आयोजन चाहिए। इतनी भी नींद तोड़ने की उनकी इच्छा नहीं होती। वे तो कभी- कभार, बेबस ही हो गए, तो कुछ थोड़ा उपद्रव कर लेते हैं। उपद्रव उनका सतत रोग नहीं है।
इसलिए दुनिया में राजनीति जितने अपराध करती है, और कोई इतने अपराध नहीं करता। किसी दिन अगर मनुष्य-जाति समझदार होगी, तो राजनीतिज्ञों से

छुटकारा पाने की चेष्टा करेगी। उसमें अच्छे से अच्छा राजनीतिज्ञ भी बुरा ही है। राजनीतिज्ञ और अच्छा, यह ऐसे ही है, जैसे नीम और मीठी! यह होता ही नहीं। जहर ही होगा भीतर। वह राजस की दौड़ है एक। उसे कुछ करना है, करके दिखाना है। वह जब तक कुछ कर न ले, जब तक उसके चारों ओर आस-पास झंझावात न चलने लगे घटनाओं का, तब तक उसे चैन नहीं है।
कहते हैं, नेपोलियन जब हार गया और सेंट हेलेना के द्वीप में उसे बंद
कर दिया गया, तो वह परिपूर्ण स्वस्थ था। लेकिन हारते ही और सेंट हेलेना के द्वीप में छोड़ते ही... । द्वीप बड़ा सुंदर था और उस पर कोई बंधन न थे। घूम-फिर सकता था, कोई जंजीरें न थीं। सम्राट, हारे हुए सम्राट की तरह ही उससे व्यवहार किया गया था। लेकिन वह जल्दी ही रुग्ण हो गया। बीमार हो गया और मर गया।
चिकित्सक कहते हैं कि उसके रोग को हम समझ न पाए। उस पर बड़े चिकित्सक लगे थे। क्योंकि वह कीमती आदमी था। हारा था, तो भी था तो नेपोलियन ही। चिकित्सक समझ ही न पाए कि इसकी बीमारी क्या है! मैं जानता हूं उसकी बीमारी क्या थी।
सभी राजनीतिज्ञ हारते ही मरने को तैयार हो जाते हैं। जिस दिन भारत चीन के साथ पराजित हुआ, उसी दिन नेहरू बीमार पड़ गए। उसके बाद फिर वे स्वस्थ न हो सके। अगर राजनीतिज्ञ जीतता ही चला जाए, तो वह कभी बीमार ही नहीं पड़ता। तुम उस जैसा स्वस्थ आदमी न पाओगे। अगर वह लगा ही रहे उपद्रव में, तो तुम पाओगे, उसके पास बड़ा स्वास्थ्य है।
अगर उसकी आशा लगी ही रहे, जैसे मोरारजी हैं, वे बिल्कुल स्वस्थ हैं। अस्सी पार कर गए; अभी भी आशा लगी है। स्वस्थ रहेंगे, जब तक आशा है, तब तक उनके स्वास्थ्य को तुम हिला नहीं सकते। लेकिन अगर आशा टूट जाए, तो वे इसी दिन डूब जाएंगे।
उत्तेजना का जीवन है। चौबीस घंटे कुछ होता रहे!
जब औरंगजेब ने अपने बाप को बंद कर दिया कैदखाने में, तो उसके बाप ने खबर भेजी कि कुछ तू न कर, इतना तो कर मेरे लिए कि तीस लड़के भेज दे, तो मैं एक मदरसा खोल दूं, एक स्कूल चलाऊं। औरंगजेब ने अपनी जीवनी में लिखवाया है कि मेरे बाप ने जिंदगीभर कुछ न कुछ किया ही। वह जेलखाने में भी शांत नहीं बैठ सकता। सब सुविधा है। विश्राम करे, कुरान पढ़े, नमाज पढ़े, आराम करे; कोई तकलीफ नहीं है। लेकिन वह बैठ नहीं सकता खाली। उसको उपद्रव चाहिए!
और ध्यान रखो, तीस लड़के इतना उपद्रव कर सकते हैं, जितना पूरी राजधानी
न कर सके। तो उसको मदरसा खोलना है। तीस लड़के उसको भेज दिए गए। बस, वह फिर कुर्सी पर बैठ गया डंडा लेकर। न हुए सम्राट, हेड मास्टर ही हुए, क्या हर्जा।
मगर हेड मास्टर होने में भी बड़ा मजा है। तुम जरा हेड मास्टरों को देखो स्कूल में जाकर। उनकी अकड़ देखो! छोटे-छोटे बच्चों के सामने वे ऐसे बैठे हैं, जैसे सिकंदर, नेपोलियन, और परम ज्ञान को उपलब्ध! जो वे कहें, वह कानून है। जो वे कहें, वही नियम है।
मनसविद कहते हैं कि शिक्षक होने की जिन लोगों के मन में उत्सुकता है, उसमें थोड़ी हिंसा है। और दुनिया में तुम बच्चों से ज्यादा हिंसा के लिए योग्य पात्र नहीं पा सकते। उनको सताना जितना आसान है और जितना सुलभ है, और किसी को सताना आसान नहीं है। क्योंकि वे बिल्कुल निहत्थे हैं, असहाय हैं। और तुम सताओ, तो बच्चों के मां-बाप भी तुम्हारे साथ हैं। क्योंकि न सताओगे, तो विद्या कैसे आएगी! ज्ञान कैसे पैदा होगा!
स्कूल का अध्यापक एक छोटा-मोटा राजनीतिज्ञ है। वह कुछ भी बकवास करता रहता है, लोग सुनते रहते हैं। राजनेता कुछ भी बकवास बोलते रहते हैं, लोग सुनते रहते हैं। ताकत उनके हाथ में है।
मैंने सुना है, एक गांव के एक लायंस क्लब में एक राजनेता व्याख्यान दे रहा था। बड़ा राजनेता था, और वह दिए ही चला जा रहा था व्याख्यान। लोग घबड़ा गए। खा रहे हैं, पी रहे हैं, जैसे लायंस क्लब और रोटरी क्लब का रिवाज है।
मगर वह बोले ही चला जा रहा है। उस घबड़ाहट में लोग और ज्यादा पीते गए।

आखिर एक आदमी इतना पी गया कि उसने अध्यक्ष से कहा कि कृपा करके जिस हथौड़ी से आप घंटी बजाते हैं, इस नेता के सिर पर चोट मारो। मत डरो इमरजेंसी है या नहीं, मारो। फिर देखेंगे, जो होगा। यह चुप ही नहीं हो रहा है।
लेकिन अध्यक्ष भी काफी पी चुका था। बात तो उसे भी जंची। उसने हथौड़ी उठाई, लेकिन हाथ हिल रहा था। मारा भी उसने, लेकिन उस नेता को तो न लगा, जो प्रधान अतिथि था, उसकी खोपड़ी पर लगा। वह प्रधान अतिथि अर्ध-मूर्च्छा में टेबल के नीचे सरकने लगा। नीचे से उसकी आवाज आई, एक बार और मारो, मुझे व्याख्यान अभी भी सुनाई पड़ रहा है!
ताकत के खोजी हैं। फिर वे सता सकते हैं। फिर तुम उन्हें रोक नहीं सकते। फिर वे हजार बहाने खोज लेते हैं, उन्हें जो करना है, जो बोलना है। वह सारी राजस की व्यवस्था है। बहुत परिश्रम करते हैं वे, इसमें कोई शक नहीं। अगर श्रम को ही मूल्य देना हो, तो राजसी लोग बड़ी मेहनत उठाते हैं। परिणाम कुछ नहीं आता, मगर मेहनत बड़ी उठाते हैं। दौड़ते बहुत हैं, पहुंचते कहीं नहीं। कोल्हू के बैल सिद्ध होते हैं। लेकिन यात्रा काफी करते हैं।
और तीसरा है सत्व कर्म, सात्विक कर्म। जो शास्त्र-विधि से नियत... । शास्ताओं द्वारा कहा हुआ; जिन्होंने जाना है, जो जागे हैं, उनके इशारे
के अनुसार जो किया जाए।
तामसी व्यक्ति अपने अज्ञान के इशारे से करता है, राजसी व्यक्ति अपने भीतर अतिशय शक्ति के कारण करता है, उत्तेजना के कारण करता है, ऊर्जा के कारण करता है। सात्विक व्यक्ति न तो अपने अज्ञान से करता है, न अपनी ऊर्जा के कारण करता, शास्ताओं के वचनों के अनुसार करता है। जो जागे, उन बुद्ध पुरुषों से सूत्र लेता है। उन्होंने जो कहा, वही करता है। अपने पर भरोसा नहीं करता, बुद्ध पुरुषों पर भरोसा करता है। अपने को बाद दे देता है, बुद्ध पुरुषों को आगे ले लेता है।
जो कर्म शास्त्र-विधि से नियत, कर्तापन के अभिमान से रहित... ।
स्वभावतः, जब तुम शास्ताओं का नियम मानकर चलोगे, तो तुम्हें कर्तापन
का भाव होगा ही नहीं, तुमने किया ही नहीं।
अब तुम राजनीतिज्ञ से कहो कि तू कर्तापन छोड़ दे, तब तो सारी राजनीति
ही छूट जाती है! फिर करेंगे ही क्यों! राजनीतिज्ञ तो दौड़ ही रहा है, ताकि कर्तापन सिद्ध हो जाए कि मैंने करके दिखा दिया।
सात्विक व्यक्ति, जो शास्ताओं के वचन मानकर चलता है, जो उनके दीए की ज्योति में चलता है, जो अपने अहंकार से इशारे नहीं लेता और न अपने अज्ञान से इशारे लेता है; जो कहता है, तुम दोनों चुप रहो; जिन्होंने जाना है, उनका सूत्र मेरा जीवन-सूत्र होगा। स्वभावतः, उसका कर्तापन गिर जाता है। उसको फल की भी कोई चाहना नहीं होती। वह तो, जो जानने वालों ने कहा है, उसे करने में ही इतना आनंदित हो जाता है कि अब और फल क्या चाहिए! उसे साधन ही साध्य हो जाता है। उसे इसी क्षण सब कुछ मिल जाता है; उसे कल की कोई वासना नहीं रह जाती। वैसा कर्म सात्विक कहा जाता है।
ये तीन कर्म हैं, मगर तीनों के भीतर तुम्हारी तीन तरह की चेतना की अवस्थाएं हैं। असली सवाल कर्म का नहीं है, असली सवाल तुम्हारी चेतना- अवस्था का है। तमस का अर्थ है, तुम मूर्च्छित। रजस का अर्थ है, तुम विक्षिप्त। सत्व का अर्थ है, तुम होशपूर्वक, जागे हुए, ध्यानपूर्वक, सुरति से भरे।
मूर्च्छा से खींचो अपने को, अहंकार से भी उठाओ अपने को। न तो अज्ञान
के कारण कुछ करो; न करना है, करने में रस आ रहा है, उत्तेजना मिल रही है, इसलिए करो; बल्कि इसलिए करो, ताकि प्रत्येक कृत्य तुम्हारे भीतर और नए जीवन की, जागरण की सुविधा बन जाए। प्रत्येक कृत्य तुम्हें और जगाए, तुम्हारा प्रत्येक कृत्य तुम्हें और सावधानी से भरे। प्रत्येक कृत्य कदम बन जाए तुम्हारे अंतर-जागरण का, तो एक दिन तुम्हारे भीतर सोया हुआ बुद्ध उपलब्ध हो सकता है।
पाने को कहीं जाना नहीं; भीतर ही खोदना है। होने को कहीं जाना नहीं; खजाना तुम लेकर ही आए हो। जो है, उसे तुम लिए ही हुए हो, इस क्षण भी। सिर्फ जागना है, सिर्फ होश से भरना है।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग आठ
गीता दर्शन अध्याय 18
आठवां प्रवचन

समाधान और समाधि

मुक्तसड्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते।। 26।।
रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः।
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः।। 27।।
अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते।। 28।।
तथा हे अर्जुन, जो कर्ता आसक्ति से रहित और अहंकार के वचन न बोलने वाला, धैर्य और उत्साह से युक्त एवं कार्य के सिद्ध होने और न होने में हर्ष-शोकादि विकारों से रहित है, वह कर्ता तो सात्विक कहा गया है।
और जो आसक्ति से युक्त कर्मों के फल को चाहने वाला और लोभी है तथा दूसरों को कष्ट देने के स्वभाव वाला, अशुद्धाचारी और हर्ष-शोक से लिपायमान है, वह कर्ता राजस कहा गया है।
तथा जो विक्षेपयुक्त चित्त वाला, शिक्षा से रहित, घमंडी, धूर्त और दूसरे की आजीविका का नाशक एवं शोक करने के स्वभाव वाला, आलसी और दीर्घसूत्री है, वह कर्ता तामस कहा जाता है।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः आपको सुनने से जो समाधान मिलता है, वह स्थायी रहे, इसके लिए जी तड़पता है। इस तड़पन में यदि मृत्यु घटित हो जाए, तो क्या वह समाधि नहीं होगी? भगवान महावीर ने तो ऐसी मृत्यु की इजाजत दी है। क्या आप वैसी इजाजत नहीं दे सकते?

प्रश्न को तीन हिस्सों में समझें।
पहला, आपको सुनने से जो समाधान मिलता है, वह स्थायी रहे, इसके लिए जी तड़पता है।
समाधान मिलेगा, तो स्थायी होगा ही। उसके लिए जी को तड़पाना व्यर्थ है। समाधान न मिलता हो, तो ही स्थायी करने की आकांक्षा पैदा होती है। जो बात समझ में आ गई, आ गई; उसे भूलने का उपाय भी नहीं। उसे तुम चाहोगे भी कि छूट जाए, तो छूटेगी नहीं। जो बात समझ में नहीं आई, उसे ही पकड़ने की चाहना पैदा होती है, क्योंकि उसके छूटने का डर है। समाधान नहीं मिलता होगा, सांत्वना मिलती होगी। और तुम भूल कर रहे हो।
मुझे सुनकर सांत्वना मिलती होगी, तब तो छूट जाएगी। जब तक सुनोगे, तब
तक मिलेगी। क्योंकि जो मुझे सुनकर सांत्वना मिलती है, वह मेरे शब्दों से मिल रही है। मेरे शब्दों के आस-पास तुम्हारे मन का एक अलग रूप प्रकट होने लगता है। थोड़ी देर को तुम भूल जाते हो संसार को, व्यवसाय को, जीवन की चिंता, आपा-धापी को। थोड़ी देर को तुम मेरे पास शांत होकर बैठ जाते हो; थोड़ी देर तुम मुझे प्रतिध्वनित करने लगते हो।
लेकिन वह ध्वनि तुम्हारी नहीं है, वह ध्वनि मेरी है। वह जो तुम्हें आभास होता है, वह प्रतिफलन है। मुझसे दूर हटोगे, प्रतिफलन छूटने लगेगा। घर पहुंचते-पहुंचते पाओगे, वापस संसार में आ गए। वही चिंता है, वही पीड़ा है, वही अशांति है, वही उपद्रव है। तब एक सवाल उठेगा। तुम सोचोगे, समाधान मिला था, लेकिन स्थायी नहीं हुआ।
समाधान तो स्थायी ही होता है। समाधान तो परिवर्तित होता ही नहीं। यह सांत्वना थी। जैसे तुम किसी बड़े वृक्ष की छाया में बैठ गए। वहां धूप तुम पर न पड़ी। फिर तुम यात्रा पर निकले। फिर धूप तुम पर पड़ने लगी।
मेरे पास तुम एक छाया में बैठ जाते हो। उतनी देर को छाया मिल जाती है।
वह छाया तुम्हारी नहीं है। उससे तुम्हें विश्राम तो मिल सकता है, लेकिन वह तुम्हारी जीवन-संपदा नहीं बन सकती।

समाधान का अर्थ है, जो मैं कह रहा हूं, उसका प्रतिफलन नहीं, बल्कि जो मैं कह रहा हूं, उसकी समझ तुम्हारे भीतर हो रही है। तुम मुझे सुन रहे हो, सिर्फ बुद्धि से नहीं, तुम्हारी समग्रता से, तुम्हारा रोआं-रोआं सुन रहा है। तुम्हारी धड़कन-धड़कन सुन रही है। सुनते समय तुम बिल्कुल ही मिट गए हो। ऐसा नहीं कि संसार को भूल गए हो, सुनते समय तुम हो ही नहीं, तुम एक रिक्त शून्य हो; तो समझ पैदा होगी।
तब मुझसे दूर जाओगे, तो समझ घटेगी नहीं, बल्कि बढ़ेगी। वैसे ही बढ़ेगा, जैसा छोटा पौधा बड़े वृक्ष के नीचे नहीं बढ़ पाता है। थोड़ा उसे दूर जाना पड़ता है, थोड़ा हटना पड़ता है।
मुझसे दूर जाओगे, समझ बढ़ेगी, क्योंकि संसार में कसौटी मिलेगी। वहां परीक्षा होगी समझ की। वहां अवसर होंगे, जब कि समझ खो सकती थी और नहीं खोएगी। भरोसा बढ़ेगा; पैर जमीन पर थिर हो जाएंगे; आस्था गहन होगी। और वह आस्था मुझ पर गहन नहीं होगी; वह आस्था तुम्हारी अपने पर गहन होगी। और जब तक तुम्हें अपने पर आस्था न आ जाए, तब तक यह डर बना ही रहेगा कि जो समझ है, वह उधार है, वह कहीं खो न जाए।
तो पहली तो बात सांत्वना को कभी भूलकर भी समाधान मत समझना। सांत्वना ऊपर-ऊपर है। वह किसी और के कारण है, तुम्हारे कारण नहीं है। समझ तुम्हारे कारण पैदा होती है, उसका बीजारोपण तुम्हारे भीतर होता है। वह तुम्हारे भीतर बढ़ती है। वह तुम्हारी चेतना का विकास है।
समाधान तुम्हारी अपनी संपदा है, सांत्वना किसी और की संपदा है। ऐसे ही, जैसे किसी के पास बहुत संपदा हो और तुम उस संपदा की गिनती करते रहो और भूल जाओ कि यह तुम्हारी है या तुम्हारी नहीं है।
बुद्ध ने कहा है, एक आदमी राह पर बैठकर दूसरे लोगों की गाय-भैंसों की गिनती करता रहता है। वे निकलती हैं सांझ, घर वापस लौटती हैं, सुबह नदी की तरफ जाती हैं। वह उनकी गिनती करता रहता है।
उस गिनती का क्या मूल्य है! उस गिनती में थोड़ी देर तुम भूल सकते हो कि तुम दरिद्र हो, कि तुम दीन हो। भिखारी भी सम्राट के महल के सामने खड़े होकर थोड़ी देर को भूल जा सकता है, चमत्कृत हो सकता है। लेकिन देर-अबेर यथार्थ प्रकट होगा, भिक्षापात्र दिखाई पड़ेगा। तब सांत्वना खो जाएगी।
सांत्वना किसी बहुत गहरे काम की नहीं है। समाधान की फिक्र करो। समाधान का अर्थ है, जो मैं कह रहा हूं, उसके काव्य में नहीं, जो मैं कह रहा हूं, उसके संगीत में नहीं, बल्कि उसके अर्थ में डूबो। और उसके अर्थ को अपने में गहराओ। जो मैं कह रहा हूं, उसे जीवन में कसो, उसे उतारो। जब मौका मिले, तभी घड़ी है पहचान की कि सांत्वना है या समाधान है।
क्रोध के संबंध में मैंने तुमसे कहा कि जागकर क्रोध को देखना। भाषा
तो समझ में आ गई, लेकिन जागकर देखना थोड़े ही समझ में आ गया। मैंने जो कहा, वह शब्दशः समझ में आ गया, लेकिन अर्थशः थोड़े ही समझ में आया।
घर जाओगे, पत्नी कुछ कहेगी, क्रोध की अग्नि उठेगी, भभकेगी, तब जागकर देखना। वहां असली कसौटी है। सांत्वना तो जल जाएगी, समाधान निखरकर प्रकट होगा। सांत्वना तो राख हो जाएगी, कूड़ा-कर्कट है। समाधान शुद्ध स्वर्ण की तरह बाहर आ जाएगा। अग्नि में ही कसौटी है।
इसलिए तो मैं कहता हूं कि भागो मत संसार से। समझो बुद्धों से, जीओ संसार में। समझ लो उनसे, ले लो सारसूत्र, पर कसौटी बाजार में है। ध्यान की परीक्षा हिमालय में नहीं है, बाजार में है।
नहीं तो तुम सुनते-सुनते खो भी जा सकते हो। सुनते-सुनते ही तुम्हारे
मन में यह एहसास और भ्रम पैदा हो सकता है, समझ गए। तब तुम एक बड़ी विडंबना में पड़ जाओगे। जो नहीं है तुम्हारे पास, समझोगे, तुम्हारे पास है। ऐसे वर्ष खो सकते हैं। जीवन बहुमूल्य है; ऐसे मत खोना, सांत्वना बटोरने में मत खोना। क्योंकि गए क्षण वापस नहीं लौटते हैं।
तो पहली तो बात, सुनकर तुम्हें जो मिलता है, वह सांत्वना है, समाधान नहीं। इसीलिए उसे स्थायी बनाए रखने की कामना पैदा होती है, क्योंकि वह छूट-छूट जाता है। सांत्वना को स्थायी बनाया ही नहीं जा सकता। तब तुम क्या करो?

कामना की कोई जरूरत नहीं है, सिर्फ समाधान खोजने की जरूरत है। समाधान खोजने का मार्ग है, जो मैं तुमसे कहता हूं, उसे जीवन की परिस्थितियों में कसो। उसे मौके दो कि वह टकराए तूफानों से, आंधियों से। कई बार दीया बुझेगा। घबड़ाने की जरूरत भी नहीं है। लेकिन कभी ऐसी घड़ी आएगी कि तूफान चलता रहेगा और दीया नहीं बुझेगा। बस, उसी दिन समाधान मिला। कभी ऐसी घड़ी आएगी, आंधियां उठेंगी और भीतर कोई कंपन न आएगा। उसी दिन समाधान आया।
समय लगता है। समाधान कोई बच्चों का खेल तो नहीं; बड़ी प्रौढ़ता है; बड़ा आंतरिक विकास है। समाधान ही तो अंततः समाधि बनेगा। वह तो समाधि की तैयारी है तुम्हारे भीतर। समाधान समाधि के भवन की नींव है। सस्ते मिल नहीं सकता। मुझे सुनने से कैसे मिल जाएगा? कितने बुद्ध पुरुष हुए हैं! कितने लोगों ने सुना है! सुनकर अगर कुछ होता, तो दुनिया रूपांतरित हो गई होती। उस भूल में तुम मत पड़ना।
नहीं, वह आत्मा न तो प्रवचन से मिलती है, न शास्त्रों से, न बहुत सुनने से। नायं आत्मा प्रवचनेन लभ्यो, न मेधया, न बहुधा श्रुतेन। कितना ही सुनो, सुनकर वह नहीं मिलेगा।
क्या मैं यह कह रहा हूं कि सुनना बंद कर दो? नहीं, यह भी मैं नहीं कह रहा हूं। सुनो, लेकिन सुनने से वह नहीं मिलता। जीओ! सुनने से सूत्र मिलते हैं जीने के, जीने से समाधान मिलता है। सुनने और जीने के बीच जो फासला है, वही सांत्वना और समाधान के बीच दूरी है।
और समय को खोओ मत, अन्यथा पीछे पछताओगे। जब मैं हूं तुम्हारे साथ, तुम्हें कुछ सूत्र दे रहा हूं, इनका उपयोग कर लो।
एक बहुत पुरानी अरेबियन कथा है कि तीन यात्री तीर्थयात्रा पर जा रहे थे। धूप भयंकर थी। मरुस्थल का सूर्य! दिन को चल नहीं सकते थे। तो दिनभर तो विश्राम करते थे, रात की शीतलता और ठंडक में यात्रा करते थे। एक अमावस की रात, घनघोर अंधेरा है। कहीं कुछ सूझता नहीं। वे एक ऐसे स्थल से गुजर रहे हैं, जहां बड़े कंकड़-पत्थर हैं। कोई सूखी नदी का स्थान है।
अचानक अंधेरे से एक आवाज आई, रुको! घबड़ाकर रुक गए। प्राण कंप गए। कौन होगा इस अंधेरे में! और उस आवाज ने कहा, घबड़ाओ मत; झुको। झुक गए। जब आज्ञा थी और कोई खतरा लेना अंधेरे में उचित न था। शायद अब गर्दन पर उतरी तलवार, अब उतरी। लेकिन आवाज ने कहा कि कंकड़-पत्थर बीनो और खीसों में भर लो। बात जरा बेहूदी-सी लगी। किसी प्रयोजन की न मालूम पड़ी। लेकिन न कहना उचित भी न था। अंधेरे में पता नहीं कौन है, क्या है। कंकड़-पत्थर खीसों में भर लिए। उस आवाज ने कहा, अब उठो और अपनी यात्रा पर चलो। और कहीं भी पास पड़ाव मत करना; और सुबह के पहले ठहरना मत।
वे चलने लगे, घबड़ाए हुए, कंपित। चलते-चलते आवाज ने कहा, और तुमसे कहे देता हूं, सुबह तुम सुखी भी होओगे और दुखी भी। रातभर चलते रहे और सोचते रहे, मतलब क्या है! प्रयोजन क्या है! और सुबह तुम सुखी भी होओगे और दुखी भी। यह सुबह कौन-सा उपद्रव ला रहा है!
सुबह हुई; सूरज उगा। रुके। कंकड़-पत्थर निकालकर देखे। खुश भी हुए, रोए भी। क्योंकि वे कंकड़-पत्थर न थे, हीरे-जवाहरात थे। खुश हुए कि इतने हीरे- जवाहरात मुफ्त मिल गए। रोए कि और क्यों न भर लिए।
मेरे साथ हो जब तक, जितना समेट सको, समेट लो। अन्यथा एक दिन खुश भी होओगे और दुखी भी।
सांत्वना काफी नहीं है। उस मोह से ऊपर उठो। समाधान जरूरी है। और समाधान का अर्थ है, जो मैं कहता हूं, वह तुम्हारे जीवन में उतरे। और मजा यह है कि कठिन नहीं है, अगर तुम उतारना शुरू करो। एक-एक कदम से हजारों मील की यात्रा पूरी हो जाती है।
लेकिन तुम बैठे ही रहो यह सोचते कि हजारों मील की यात्रा, मेरी दुर्बल देह, छोटे पैर, कहां पूरा करूंगा! तुम पहला कदम ही न उठाओ, तब तो छोटी-सी यात्रा भी पूरी नहीं होती।
दुर्बल देह है माना। पैर छोटे हैं माना। एक कदम ही चल सकोगे एक दफा माना। लेकिन एक-एक कदम चलकर हजारों मील की यात्रा पूरी हो जाती है। सांत्वना से उठो, समाधान की तरफ चलो। छोटे-छोटे कदम होंगे, लेकिन मंजिल आ जाती है।

धर्म नष्ट हो जाता है सांत्वना में ही; तब धर्म एक अफीम का नशा है। मार्क्स ने ठीक ही कहा है कि हजारों लोगों के लिए धर्म अफीम का नशा है। ठीक भी कहा है और इससे गलत बात भी कभी नहीं कही गई।
ठीक कहा है, जहां तक नौ सौ निन्यानबे लोगों का संबंध है। उन्होंने धर्म को सांत्वना समझ लिया है। तब वह अफीम है; तब तुम पीओ और मस्त रहो। कुछ फल नहीं होता, सिर्फ जीवन व्यय होता है, व्यर्थ होता है; नाली की धार में बहा जाता है। गंवाते हो, कमाते कुछ भी नहीं। नौ सौ निन्यानबे आदमियों के संबंध में मार्क्स ने जो कहा है, बिल्कुल ठीक कहा है; धर्म अफीम का नशा है। लेकिन हजार में एक आदमी ऐसा भी है, जिसके लिए मार्क्स ने गलत कहा है।
और वह एक आदमी काफी है मार्क्स को गलत करने के लिए। उसके लिए धर्म परम जागरण है; नशा नहीं, होश है। और वही असली आदमी है, जिसके द्वारा धर्म का सार समझा जाना चाहिए। नौ सौ निन्यानबे उपयोग ही नहीं कर रहे हैं। भूल उनकी है, धर्म की कोई भूल नहीं है।
धर्म तो जगाने को है। लेकिन तुम धर्म की चर्चा सुनते-सुनते सिर्फ नींद ही लेते रहो, तो कसूर किसका है!
सांत्वना से सजग, पहली बात। और दूसरी बात, स्थायी करने की बात ही मत उठाओ। वह कामना ही गलत है। उसका मतलब है कि तुम इस क्षण में नहीं हो; आगे जा चुके। तुम कल की सोचने लगे। समझ आज पैदा होगी। तुम कल का विचार करते हो कि स्थायी कैसे हो जाए।
एक मेरे मित्र हैं। वे यहां आते हैं। डाक्टर हैं, सुसंस्कृत हैं। उनको मैं कुछ कहता भी नहीं, क्योंकि वे बड़े संकोची आदमी हैं। कहूंगा, उनको दुख होगा। वे ऐसा बैठकर, झुककर नोट लेते रहते हैं। उन्हें पता है कि मैं इसके पक्ष में नहीं हूं। यह भी पता है कि मुझे पता है, क्योंकि वे मुझसे छिपते हैं और अपनी डायरी छिपाए रहते हैं। उनका इरादा क्या है? वे यह सोच रहे हैं कि कहीं भूल न जाए जो सुन रहा हूं, तो उसे नोट कर रहे हैं।
मगर मुझे सुनते वक्त समझ में न आया, तो अपनी डायरी को घर जाकर पढ़ते वक्त क्या खाक समझ में आएगा! यहां मैं जिंदा बोलता हूं, वहां डायरी मुर्दा होगी। मगर यह उनकी ही भूल है, ऐसा नहीं है। करोड़ों की भूल है।
सदगुरु जीवित होता है, उसकी तो लोग फिक्र नहीं करते। जब शास्त्र बन जाता है सदगुरु का, जब डायरी लिखी जा चुकी होती है, तब विचार करना शुरू करते हैं।
तुम भी कृष्ण के समय में रहे होओगे। अन्यथा होने का उपाय नहीं है, क्योंकि जो भी है, वह सदा से है। तब तुम चूक गए। अब तुम गीता पढ़ रहे हो। तुम बुद्ध के समय में रहे होओगे, तब तुम चूक गए। अब तुम धम्मपद पढ़ रहे हो। तुमने मोहम्मद की वाणी से भी कुरान सुना होगा, लेकिन वह तुम्हारे कंठ न उतरा। अब तुम कुरान कंठस्थ कर रहे हो। जान दांव पर लगाए देते हो।
क्या मामला है? तुम अभी क्यों नहीं जी पाते? वही एकमात्र ढंग है जीने
और होने का और समाधान का।
मैं जो कह रहा हूं, उसे समझो। स्थायी करने की क्या चिंता है? एक बात ख्याल रखो, अगर समझ गए, तो स्थायी रहेगा, इसलिए विचार करने की जरूरत नहीं। अगर न समझे, तो लाख विचार करो स्थायी करने का, स्थायी नहीं रह सकता। उतर जाए तुम्हारे मांस-मज्जा में, तुम्हारे प्राणों में; ऐसा गहरा पहुंच जाए कि तुम उससे छुटकारा भी पाना चाहो तो न पा सको; तुम उसे भुलाना भी चाहो तो न भूल सको। भूलोगे कैसे?
मेरा अपना अनुभव यह है कि जो समझ में आ जाता है, फिर भूलता नहीं। और अगर भूलता है, तो उसका मतलब इतना ही है कि समझ में आया नहीं था।
तुमने जो भी स्कूल में, कालेज में, विश्वविद्यालय में पढ़ा होगा, करीब-करीब सब भूल गया, निन्यानबे प्रतिशत भूल गया। क्योंकि वह समझ में तो कभी आया ही न था। और विश्वविद्यालयों में किसी को चिंता भी न थी कि तुम्हें समझ में आए। उनकी चिंता थी कि परीक्षा में काम आ जाए, बस। इतनी देर समझ रह जाए, काफी है। इतनी देर टिक जाए याददाश्त, पर्याप्त है, कि तुम परीक्षा में उत्तर लिख दो; बस। फिर तुम भूल जाना।
इससे ज्यादा और मूढ़तापूर्ण क्या दशा हो सकती है शिक्षा की कि सिर्फ परीक्षा के लिए सब सिखाया जा रहा है। परीक्षा के बाद परीक्षार्थी को कोई

फिक्र नहीं कि उसमें से कुछ याद रहता है कि नहीं रहता। कितना समय व्यतीत और व्यर्थ खराब होता है!
थोड़ी ही बातें समझ लो, पर समझ लो, ताकि वे तुम्हारे प्राणों का हिस्सा
हो जाएं। तो उनका दीया जलता रहेगा; अंधेरे रास्तों पर रोशनी मिलेगी। और जब जीवन की दुर्गंध तुम्हें घेरने लगेगी, तो तुम्हारे भीतर की सुगंध तुम्हें बचाएगी। और जब रास्ते के कांटे तुम्हारे पैरों में चुभेंगे, तो भीतर के फूल तुम्हें सुरक्षा देंगे।
समझ सूत्र है, संसार से पार होने का। वही नाव है, वही एकमात्र उपाय है। सांत्वना के झूठे सिक्कों से राजी मत हो जाना। सांत्वना अफीम है। धर्म सांत्वना नहीं है। धर्म समाधि है, जागरण है।
दूसरी बात, इस तड़पन में यदि मृत्यु घटित हो जाए, तो क्या वह समाधि नहीं होगी?
तड़पन में तो समाधि हो ही कैसे सकती है! समाधान ही नहीं होगा, समाधि तो बहुत दूर। हजारों समाधान मिलकर समाधि बनती है। जैसे हजारों नदियां गिरकर सागर बनता है; जैसे हजार-हजार वृक्ष मिलकर अरण्य बनता है; ऐसा हजारों समाधान मिलकर समाधि बनती है। अनेक-अनेक मार्गों से, अनेक-अनेक आयामों से समाधान की नदियां गिरती हैं तुम्हारे प्राणों में और एक ऐसी घड़ी आती है, जहां तुम लबालब हो जाते हो, भरपूर हो जाते हो, इतने भर जाते हो कि तुम उलीचने लगते हो, बांटने लगते हो, तब समाधान समाधि बनता है।
नहीं, तड़पन से काम न होगा। तड़पन तो रुग्ण दशा है; वह तो भिखारी की अवस्था है, जिसके हाथ में कुछ भी नहीं है; जो रो रहा है, मांग रहा है। जब तक मांग है, तब तक समाधि कैसी? जब तक आंखों में आंसू हैं, तब तक दर्शन कैसा? दृष्टि कैसी? जब तक हृदय में तड़पन है, तब तक तूफान है, शांति कहां! वह संगीत कहां, जिससे परम का साक्षात हो सके!
नहीं, अगर तड़पते हुए मरोगे, तो तड़पते हुए फिर पैदा हो जाओगे, समाधि नहीं पैदा होगी। तड़पते हुए तुम मरते रहे हो बहुत बार, अब भी होश नहीं आया! कभी धन के लिए तड़पते मरे, कभी प्रेम के लिए तड़पते मरे, कभी पद के लिए तड़पते मरे। अब तुम कुछ बदलाहट नहीं कर रहे हो, परमात्मा के लिए तड़पते मरे; लेकिन मर रहे हो तड़पते। वह पुरानी आदत जारी है। विषय बदल जाते हैं, तुम नहीं बदलते।
धन के लिए तड़पो, क्या फर्क पड़ता है! कि धर्म के लिए तड़पो, क्या फर्क पड़ता है! तड़पता हुआ हृदय... । ऐसा समझो कि मछली पड़ी है रेत में और तड़प रही है। अब वह पैसिफिक महासागर के लिए तड़प रही है कि हिंद महासागर के लिए, इससे क्या फर्क पड़ता है! तड़प रही है। रेत पर प्राण जल रहे हैं।
तड़पने का मतलब है, जो है, उससे तुम तृप्त नहीं; जो नहीं है, उसकी मांग है। तड़पने का और क्या अर्थ होता है? तुम जैसे हो, उससे राजी नहीं; और तुम्हें जैसा होना चाहिए, जैसी तुम्हारी कामना है होने की, वह पूरी नहीं होती। तड़पने का मतलब है कि तुम्हारे होने में और तुम्हारे होने के आदर्श में फासला है।
तो मैं तुमसे कहता हूं कि धन के लिए तड़पने वाले आदमी की तड़पन छोटी ही होगी, लेकिन जो आदमी समाधि के लिए तड़प रहा है, उसकी तड़पन तो और भी ज्यादा हो जाएगी। क्योंकि धन तो मिल भी जाए, समाधि?
धन तो कितनों को मिल जाता है, गधों को मिल जाता है। इसमें कुछ तड़पने का बड़ा भारी मामला भी नहीं है। अगर तुममें थोड़ी बुद्धि हो, तो जिनको धन मिल रहा है, उनको देखकर ही तुम अपने हाथ जोड़ लोगे कि अब इस दिशा में जाने की कोई जरूरत नहीं।
पद मूढ़ों को भी मिल जाता है। अब उसमें जाने की कोई जरूरत नहीं है। किसी को भी मिल जाता है। जो भी पागल की तरह लगा रहता है, उसी को मिल जाता है। तो अब तुम्हारी कुछ प्रतिभा के लिए वहां कोई चुनौती नहीं है। देखो अपने पदाधिकारियों को, राजनेताओं को। वहां अगर बुद्धि हो, तो अड़चन होती है; बुद्धि न हो, तो बड़ी गति होती है।
मैंने सुना है कि एक मस्तिष्क के सर्जन ने एक आदमी का आपरेशन किया, एक राजनेता का। मस्तिष्क में कुछ खराबी थी। उसने पूरा मस्तिष्क बाहर निकाल

लिया। लेकिन कई घंटे लगने थे, तो उसने खोपड़ी वगैरह सीकर राजनेता को सुला दिया। वह अपने काम में लग गया।
लेकिन राजनेता और एक जगह बैठा रहे! उसने देखा, सर्जन काम में लगा है और
वह बिल्कुल ठीक है, तो वह निकल भागा। सर्जन बड़ा हैरान हुआ। जब मस्तिष्क ठीक हो गया, तो वह आदमी नदारद। बहुत खोजबीन की, उसका कोई पता न चला।
पांच साल बाद पता चला कि वह देश के प्रधानमंत्री हो गए हैं। वह सर्जन उनके मस्तिष्क को लेकर गया कि महाराज, हम खोज-खोजकर परेशान हो गए, अब पता चला कि आप प्रधानमंत्री हो गए हैं। उसने कहा, अब तुम यह मस्तिष्क ले ही जाओ। इसी से तो अड़चन हो रही थी। जब से इसको खोया है, तब से ऐसी गति हो रही है।
मस्तिष्क बाधा है कहीं। वहां तुममें थोड़ी बुद्धि हो, तो अड़चन आएगी। थोड़ी समझ होगी, तो अड़चन आएगी। वहां तो नासमझी की गति है। वहां तो अगर तुम देख लोगे शक्लें राजनेताओं की, उनकी सुंदर देहें, उनके चेहरे, तुम भाग खड़े होओगे। धनपतियों की तरफ गौर से देख लो।
नहीं; वह तो शायद पूरी भी हो जाए, धन की, पद की आकांक्षा। वह तड़पन कोई बड़ी तड़पन नहीं है; वह कोई आंधी-तूफान नहीं है। वह तो ऐसी ही छोटी-मोटी हवाओं का बहना है। लेकिन परमात्मा के लिए तड़पोगे, तब तो रोआं-रोआं कंप जाएगा।
उस कंपते हुए मरोगे, तो समाधि कैसे होगी? समाधि का तो अर्थ होता है, निष्कंप! जीवन की चेतना, जीवन की ज्योति निष्कंप हो जाए। ज्ञानियों ने कहा है, ऐसी जले, जैसे कि किसी घर में द्वार-दरवाजे बंद हों, हवा का कोई झोंका भी भीतर न आता हो, और दीए की लौ अकंप जलती हो, जरा भी न कंपती हो, ऐसी दशा है चेतना की। तड़पते हुए तो कैसे अकंप रहेगी? सब तड़प जब खो जाती है, तभी वह दशा उपलब्ध होती है।
तो यह मत सोचो कि तड़पते हुए मरोगे, तो समाधि हो जाएगी, नहीं। मरने का विचार भी अभी क्या कर रहे हो? इतने थक गए कि अब जीवन में समाधान की आशा नहीं रही। कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता।
और ध्यान रखो, जो जीते-जी नहीं घटेगा, वह मृत्यु में भी नहीं घट सकता। मृत्यु तो पूरे जीवन की पूर्णाहुति है, वह तो जीवन का ही निष्कर्ष है। मृत्यु कहीं बाहर से थोड़े ही आती है, तुम्हारे भीतर ही जन्मती है, बड़ी होती है, बढ़ती है। मृत्यु में तुम वही हो पाओगे अपने पूरे निखार में, तुम्हारे जीवन का सारा सार शिखर पर पहुंच जाएगा। वह तो वीणा की आखिरी चोट है, आखिरी झंकार है, वह तो स्वरों का आखिरी आरोहण है। उसके पार फिर कुछ नहीं। लेकिन जीवनभर तुम उसी को इकट्ठा करते हो। जैसे कोई लहर उठती है, उठती है, ऊपर जाती है। वह जो आखिरी ऊंचाई है लहर की, वही मृत्यु है।
तो जो तुमने जीवन में नहीं साधा, उसे तुम मृत्यु में पाने की कामना मत करो। जो तुमने आज नहीं साधा, वह कल तुम्हारे पास कैसे होगा? जो तुमने इस क्षण नहीं पाया, वह अगले क्षण कहां से आएगा?
अगला क्षण इस क्षण से पैदा हो रहा है। कल आज से निकलेगा। मृत्यु तुम्हारे जीवन के भीतर से आएगी। फिक्र छोड़ो, आज के इस क्षण को पूरा जी लो। इसी से कल का क्षण सुधर जाएगा। कल के क्षण से परसों निकलेगा। एक-एक कदम, तुम्हारे भीतर से उठते जाएंगे।
जीवन सम्हलता गया, तो मौत में तुम पाओगे, तुम सम्हल गए। तब मृत्यु शत्रु नहीं मालूम होगी; तब मित्र मालूम होगी। वह जीवन की परम ऊंचाई है। आखिरी उदघोष है। लेकिन जो तुम्हारे जीवन में नहीं, उसे तुम मृत्यु में पाना चाहो, तो तुम नासमझी में हो।
और तुम पूछते हो कि महावीर ने तो मृत्यु की इजाजत दी है, क्या आप वैसी इजाजत नहीं दे सकते?
नहीं, मैं मृत्यु की नहीं, जीवन की इजाजत देता हूं। मैं चाहता हूं, तुम जीओ। मैं चाहता हूं, तुम प्रगाढ़ता से जीओ। मैं चाहता हूं, तुम इतनी गहराई से जीओ कि मृत्यु भी रूपांतरित हो जाए। तुम्हारे जीने की शैली ही मृत्यु को भी बदल दे। मृत्यु भी तुम्हारे जीवन में समाविष्ट हो जाए। वह कुछ अलग-थलग चीज न रह जाए। वह भी तुम्हारे इस महोत्सव में सम्मिलित हो जाए।

नहीं, मृत्यु पर मेरा जोर नहीं है। मेरा जोर जीवन पर है। और इतने जीवन
पर है, इतने प्रगाढ़ जीवन पर है, इतने समग्र जीवन पर है कि मृत्यु उसके बाहर नहीं रह जाती, भीतर समाविष्ट हो जाती है।
और जिस दिन तुम मृत्यु में भी जीते हो, उसी दिन मृत्यु समाप्त हो गई। जिस क्षण मरते समय भी तुम्हारे जीवन की प्रगाढ़ता में कोई अंतर नहीं पड़ता, तुम्हारे जीवन का संगीत अपने आत्यंतिक स्वरों में बजता है और मृत्यु भी उस महासंगीत में स्वर जोड़ती है, उसी दिन जानना, अब तुम मृत्यु के पार हो गए। वह जीवन की विजय है। मरकर भी न मरना, मरते हुए भी न मरना, वही मृत्यु में अमृत को खोज लेना है।
मेरा जोर जीवन पर है। और मैं तुम्हें किसी भी तरह के पलायन की शिक्षा नहीं देता। न तो मैं तुमसे कहता हूं, बाजार को छोड़कर जंगल जाओ। न तुमसे कहता हूं, घर को छोड़कर बेघर हो जाओ। न तुमसे कहता हूं, जीवन को उजाड़ो और मृत्यु को आलिंगन करो। नहीं। मैं तुमसे कहता हूं, विरोधों के बीच चुनना नहीं है, दोनों विरोधों के बीच एक समन्वय को साधना है।
महावीर ने ऐसी आज्ञा दी होगी, क्योंकि महावीर संसार-विरोधी हैं। उनका संन्यास एकांगी है, उनका संन्यास मृत्यु-उन्मुख है। वे कहते हैं, सब बेकार है, छोड़ो। मैं कहता हूं, सब इतना बेकार है, छोड़ना भी क्या! छोड़ने में भी तो ऐसा लगता है, कुछ न कुछ सार रहा होगा, तभी तो छोड़ा। नहीं तो छोड़ते? छोड़ने योग्य कुछ भी नहीं है।
महावीर कहते हैं, हटो, यहां सब व्यर्थ है। मैं कहता हूं, हटकर भी कहां जाओगे? जहां जाओगे, तुम तो तुम ही रहोगे। कोई फर्क न पड़ेगा। मैं कहता हूं, हटो मत; बदलो। महावीर का आग्रह परिस्थिति के बदलने पर है, मेरा आग्रह तुम्हारी अंतर्स्थिति बदलने पर है।
इसलिए महावीर कहते हैं कि अगर जीवन से परमात्मा न सधता हो, तो मर ही जाओ; उसमें कोई सार नहीं है जीवन में। मैं तुमसे कहता हूं, मरकर भी कहां जाओगे? फिर पैदा हो जाओगे। बहुत बार मर गए, अब तक समझ न आई? कितनी बार तुम मर चुके हो, कोई संख्या है! कोई हिसाब है! लेकिन आदमी को समझ आती ही नहीं। अनुभव से आदमी सीखता नहीं।
मुल्ला नसरुद्दीन ने शादी की। यह कोई सातवीं शादी थी। फिर भी वही बैंडबाजे बजाए। बिल्कुल शोभा न देती थी; बुढ़ापे की शादी थी। और जब रात सुहागरात के दिन पत्नी के पास लेटा, तो पत्नी ने उससे पूछा कि नसरुद्दीन, मुझसे पहले कितनी स्त्रियां तुम्हारे साथ इस बिस्तर पर लेट चुकी हैं? क्षण बीते, मिनट बीतने लगे; आधा घंटा होने को आया। पत्नी ने कहा कि मैं अभी भी प्रतीक्षा कर रही हूं; तुमने उत्तर नहीं दिया। उसने कहा, गिनती तो पूरी कर लेने दो। अभी मैं गिनती कर रहा हूं। आधा घंटा बीत गया, अभी गिनती चल रही है।
लेकिन कितनी ही बार, वही कृत्य से गुजर जाओ, समझ पैदा नहीं होती मालूम पड़ती। हजार बार प्रेम करो, अनुभव आ जाए, तो प्रेम प्रार्थना बन जाती है। अनुभव न आए, तो प्रेम एक सड़ांध हो जाती है। हजार बार जन्मो, अनुभव आ जाए, तो जीवन धर्म बन जाता है; अनुभव न आए, तो जीवन एक दुर्गंधयुक्त, सड़ी हुई जीवन-दशा रह जाती है। अनुभव आ जाए, तो तुम्हारे भीतर रूपांतरण होने शुरू होते हैं।
मरे तो तुम बहुत बार हो। और अब भी जरा सी गड़बड़ होती है कि मरने की तैयारी हो जाती है। मरने को कोई भी तैयार है। मैं तुमसे कहता हूं, तुम जीओ। मरना कोई बहादुरी नहीं है। वह तो कायर का ही हिस्सा है; वह भागने का आखिरी हिसाब है। जंगल भी भाग गए, वहां भी भाग नहीं पाते। मर गए। मरने का मतलब बिल्कुल भाग गए। अब कोई भीतर खींचकर नहीं ला सकता।
लेकिन तुम खुद ही आ जाओगे। भागने वाला कहां भागकर जाएगा! भागना ही बताता है कि वासना मरी नहीं; पाने की आकांक्षा मरी नहीं। फिर लौट आओगे। किसी और द्वार से, किसी और देह में, किन्हीं और वस्त्रों में, किन्हीं और रूपों में फिर हाजिर हो जाओगे।
ऐसे कोई भाग नहीं सका है कभी। इसलिए मैं तुम्हें मरने की बात ही नहीं कहता कि मरो। मैं कोई आत्मघात नहीं सिखाता। मैं तुमसे कहता हूं, जीओ, परिपूर्णता से जीओ। तुम इतनी परिपूर्णता से जीओ कि मृत्यु भी तुम्हारे

जीवन को खंडित न कर पाए। तुम ऐसे जीवन को उपलब्ध हो जाओ कि मृत्यु घटे, तुम्हारे बाहर ही घटे, तुम्हारे भीतर उसका कोई भी प्रभाव न पहुंच पाए। तुम मृत्यु से अछूते मर जाओ।
बस, फिर तुम्हारे आने का कोई उपाय नहीं। फिर तुम गए पार। तब तुम्हें महाजीवन मिलेगा। मरने से नहीं मिलता महाजीवन, इस जीवन को रूपांतरित करने से मिलता है।

दूसरा प्रश्नः कर्म के सात्विक होने के लिए गीता कहती है कि उसे कर्तापन के अभिमान से मुक्त और फलाकांक्षा से रहित होने के साथ-साथ शास्त्र-विहित भी होना चाहिए। लेकिन क्या कर्तापन और फलाकांक्षा से मुक्त कर्म शास्त्र-सम्मत होने के लिए काफी नहीं है?

मनुष्य बहुत जटिल है और जीवन बड़ा सूक्ष्म है। इसलिए बहुत होश से कदम उठाना आवश्यक है। देखने पर तो ऐसा लगता है कि फलाकांक्षा से मुक्त हो गया कर्म, अहंकार से मुक्त हो गया। अब शास्त्र-सम्मत होने की क्या जरूरत है? इतना काफी होना चाहिए। अब यह शास्त्र की भी शर्त क्यों लगी है इसके पीछे कि शास्त्र-सम्मत हो? यह शर्त भी समझने जैसी है। कृष्ण ने लगाई है, तो बड़े गहरे कारण हैं।
तुम अपने को धोखा दे सकते हो अनंत-अनंत प्रकारों से, इसलिए यह शर्त है। अगर तुम अपने को धोखा न दो, तब तो किसी शास्त्र-सम्मत होने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन तुम्हारे जैसा अपने को ही धोखा देने वाला खोजना मुश्किल है।
तुम अहंकारशून्य हो गए, ऐसा तुम मान ले सकते हो बिना अहंकारशून्य हुए। वस्तुतः न मालूम कितने लोग मानते हैं कि उनका कोई अहंकार नहीं है। और जब वे यह कह रहे हैं, तब भी तुम उनकी आंखों में देख सकते हो, अहंकार की लपटें जल रही हैं।
कितने ही लोग कहते हैं कि हम कोई फलाकांक्षा से थोड़े ही काम में लगे हैं। यह तो परमात्मा करवा रहा है, कर रहे हैं। लेकिन तुम गौर करो। इस परमात्मा का उन्हें कोई भी पता नहीं है, जिसकी वे बात कर रहे हैं जो करवा रहा है। वस्तुतः वे इस परमात्मा का भी अपने ही स्वार्थों के लिए उपयोग कर रहे हैं। जो उन्हें करना है, उसी को वह परमात्मा करवा रहा है, ऐसा कहते हैं।
और धोखा अगर कोई अपने को देता ही चला जाए, तो ऐसा उलझ जाता है अपने ही बनाए जाल में कि उसे पता ही नहीं चलता कि कहां से निकले, कैसे निकले। तुम्हारा मन ही तुमसे कहे चला जाएगा कि यह परमात्मा कर रहा है; किए जाओ। तुम कैसे पहचानोगे कि यह तुम्हारा मन कह रहा है या परमात्मा करवा रहा है? तुमने परमात्मा की कभी कोई वाणी सुनी है, जिससे तुम परख कर लो, पहचान कर लो कि अपना मन नहीं बोल रहा है, परमात्मा करवा रहा है?
अहंकार इतना कुशल है कि वह निरहंकार के भीतर भी छिप सकता है। वह कह सकता है, मुझ जैसा विनम्र आदमी कौन! लेकिन मुझ जैसा विनम्र आदमी कौन, यह अहंकार की घोषणा है। मुझ जैसा कौन?
लोग आते हैं, वे कहते हैं, मैं तो आपके पैरों की धूल हूं। वे यह कह रहे हैं कि आप इनकार करो कि नहीं-नहीं; आप और पैरों की धूल! अगर तुम स्वीकार कर लो कि आप बिल्कुल ठीक ही कह रहे हैं, मुझे तो पहले से ही पता है कि आप पैरों की धूल हैं। वह आदमी नाराज होगा। वह जो कह रहा था, उसको ही स्वीकार करने से नाराज होगा।
मेरे पास लोग आ जाते हैं, वे कहते हैं, हम बिल्कुल बेईमान, चोर, हम कैसे समर्पण करें! अगर मैं उनसे कह दूं, बिल्कुल ठीक कह रहे हो, तो वे बड़े चौंककर देखते हैं कि मैं बिल्कुल असंस्कारी मालूम होता हूं। यह भी बात कोई कहने की थी। वे तो शिष्टाचार निभा रहे थे। यह मैंने स्वीकार कर लिया। न, वे यह कह रहे हैं कि मैं उनसे कहूं, आप और बेईमान? कभी नहीं! तब उनका अहंकार तृप्त होता है।
ऐसे जटिल जाल हैं। इसलिए कृष्ण ने एक शर्त लगाई है कि वह शास्त्र-सम्मत हो।

शास्त्र क्या है? शास्त्र उन पुरुषों की वाणी है, जिन्होंने जाना। उनकी वाणी से अगर तुम्हारे जीवन का मेल खा जाए, तो मन धोखा न दे पाएगा। अगर मेल न खाए, तो मन धोखा दे सकता है। उन्होंने जो कहा है, अगर तुम्हें लगे कि तुम्हारी जीवन-धारा बिल्कुल उसके अनुकूल बह रही है, तो वह कसौटी हो गई तुम्हारे लिए। शास्त्र तो भर कसौटी है। मन धोखा न दे पाए, इसलिए एक उपाय है, एक व्यवस्था है।
अगर तुम सोचते हो कि शास्त्र से कोई अड़चन पड़ रही है, तो उसका मतलब साफ है। उसका मतलब साफ है कि मन शास्त्र से डरता है। क्योंकि शास्त्र तो सीधी- सीधी बात कह देगा। और मन डरता है कि धोखा देने के उपाय कम हो जाएंगे, प्रवंचना मुश्किल हो जाएगी; आत्मवंचना की संभावना टूट जाएगी। इसलिए मन कहता है, मुझे मुझ पर छोड़ दो। जब मैं ही हूं, तो किस शास्त्र की कोई जरूरत है?
लेकिन अगर तुम ही काफी होते, तब तो निश्चित ही शास्त्र की कोई जरूरत न थी। तुम काफी नहीं हो। तुम्हारे भीतर कोई न कोई कसौटी चाहिए, जिससे तुम कसते रहो और धोखे से बचते रहो।
शास्त्र तो सदियों-सदियों का सार है। हजारों-हजारों वर्षों में सैकड़ों बुद्ध पुरुषों ने जो जाना है, उसका निचोड़ है। वह किसी एक फूल की सुगंध भी नहीं है। वह तो हजारों फूलों से निचोड़ा गया इत्र है। तो करोड़ों- करोड़ों अनुभवों का निचोड़ है और बड़ी दूर की यात्रा करके तुम्हारे पास से गुजर रहा है। शास्त्र की गंगा तुम्हारे पास से बह रही है। तुम्हें जब भी कुछ संदेह हो, जब भी कोई दुविधा हो, तब तुम उस गंगा के पास जाकर निर्णय ले सकते हो।
लेकिन आदमी के धोखे का कोई अंत नहीं है। शास्त्र से भी आदमी अपने को धोखा दे सकता है। क्योंकि शास्त्र तो मुर्दा है। तुम उसमें भी तो व्याख्या अपनी थोप सकते हो। शास्त्र पढ़ते वक्त तुम शास्त्र थोड़े ही पढ़ते हो, तुम अपने को ही शास्त्र में पढ़ लेते हो। तुम जो पढ़ना चाहते हो, वही पढ़ लेते हो।
इसलिए शास्त्र से भी ऊपर सदगुरु को रखा है। ये सब तुम्हारी बेईमानी
की वजह से इंतजाम करने पड़े हैं। क्योंकि सदगुरु की तुम व्याख्या न कर सकोगे। वह जीवित बैठा है। तुम अपनी व्याख्या से अपने को धोखा न दे सकोगे। इसलिए सदगुरु को तो हम श्रेष्ठतम रखते हैं।
अगर कृष्ण उपलब्ध हों, तब गीता की फिक्र मत करो। क्योंकि गीता में तो
डर है।
एक हजार व्याख्याएं हैं गीता की। अभी कृष्ण भी आ जाएं, तो उनका दिमाग
भी विक्षिप्त हो जाए, एक हजार व्याख्याएं कृष्ण के वचन की! इसका मतलब यह हुआ कि या तो कृष्ण जो बोले हैं, उसके एक हजार अर्थ थे। तो अर्जुन पागल हो गया होता बजाय समाधि को उपलब्ध होने के। कृष्ण का तो एक ही अर्थ रहा होगा। कृष्ण का तो एक ही स्वर रहा होगा, एक ही सतत चोट रही होगी अर्जुन के ऊपर। लेकिन ये हजार व्याख्याएं कैसे पैदा हो गई हैं? यह हजार लोगों का अपना-अपना अनुभव गीता के ऊपर आरोपित करना है।
अगर कृष्ण उपलब्ध हों, तो गीता की फिक्र मत करना। पहला तो काम है, कृष्ण को खोजना। इसलिए पुराने दिनों में पहले तो साधक सदगुरु को खोजता था। अगर सदगुरु न मिले, अगर सदगुरु का मिलना असंभव हो, तो फिर शास्त्र। वह नंबर दो है, दोयम। वह नंबर एक नहीं है।
अगर शास्त्र भी उपलब्ध न हो, तब फिर स्वयं का विवेक। वह नंबर तीन है। लेकिन स्वयं के विवेक में डर है, शास्त्र से सहारा ले लेना। उसमें भी थोड़ा- सा डर तो है। सदगुरु न मिले, तो मजबूरी में शास्त्र। अन्यथा कोई जरूरत नहीं है। तब सदगुरु ही शास्त्र है।
अर्जुन ने कृष्ण से पूछा। तुम क्या सोचते हो, शास्त्र मौजूद न थे उस दिन। वेद थे, उपनिषद थे। अर्जुन जाकर वेद और उपनिषदों से पूछ लेता। लेकिन नहीं, जब जीवित शास्त्र मौजूद हो, तो क्या वेद को पूछना! जब वेदों में जिसकी वाणी गूंजी हो वह खुद मौजूद हो, तो क्या वेद को पूछना! उसने कृष्ण से पूछ लिया। अब तुम गीता से पूछते हो जब जरूरत पड़ती है। तुम वही भूल कर रहे हो, जो अर्जुन ने नहीं की।

जाओ, खोजो सदगुरु को। शास्त्र सस्ते में मिल जाता है, यह सच है, बाजार में बिकता है। गुरु को खोजना कठिन होगा। लेकिन जो खोज ले गुरु को, वह सौभाग्यशाली है। क्योंकि फिर खुद का धोखा बंद हो जाता है।
ये सारी शर्तें लगाई गई हैं, तुम्हारे कारण। अगर तुम अपने को धोखा न दो, तो न तो गुरु की कोई जरूरत है, न शास्त्र की कोई जरूरत है। पर वह बड़ी भारी समस्या है कि तुम अपने को धोखा न दो। यह होना ही मुश्किल दिखता है कि तुम अपने को धोखा न दो। तुम धोखा दोगे ही।
मैं तुमसे जो कह रहा हूं, तुम वही थोड़े ही सुनते हो जो मैं तुमसे कह रहा हूं। क्योंकि जब मेरे पास लोग आकर मुझे बताते हैं कि आपने ऐसा कहा, तब मैं चौंकता हूं।
एक युवक ने मुझे आकर एक दस दिन पहले कहा कि जब से आपकी किताबें पढ़ीं,
जब से आपको सुना, बस तब से एक ही आकांक्षा पैदा हो गई है कि विल पावर, संकल्प की शक्ति कैसे पैदा हो। मैंने कहा कि तू मेरे ही सामने कह रहा है! मैं चिल्लाए चला जाता हूं कि समर्पण कैसे हो और विल पावर तूने कहां पढ़ लिया! उसने कहा, आपकी ही किताबों में और आपके ही वचनों में।
वह थोड़ा चौंका, जब मैंने उसे मना किया। लेकिन वह बिल्कुल आश्वस्त था,
जब उसने पहली दफा कहा कि उसने मेरे ही द्वारा सीखा है। मैंने कहा, तू कहीं भूल कर रहा है। तू चाहता होगा, संकल्प शक्ति कैसे बढ़े, क्योंकि तेरे भीतर कहीं न कहीं कोई हीनता की ग्रंथि होगी। तू अपने को इनफीरिअर समझता है। तू कहीं न कहीं अपने को ओछा समझता है, कमजोर समझता है।
तेरे ढंग से दिखता है। तू चलता है, तो उसमें कोई बल नहीं है। तेरी आंखों से दिखता है कि अगर कोई तेरी तरफ गौर से देखे, तू आंखें बचा लेता है। तू बोल भी रहा है, तो सिर नीचे किए हुए है। तू शंकित है, संशयग्रस्त है। तेरा हाथ कंप रहा है। वह जो कागज हाथ में लेकर तू आया है, जिसमें तू लिख लाया है अपने सब प्रश्न, वह हाथ में कागज रखे बैठा है, तो तेरा हाथ कंप रहा है।
और तू कागज में लिखकर क्यों आया? जब तू मिलने ही आया था, तो सीधी बात
हो जाती। वह भी तुझे भरोसा नहीं है अपने पर कि तुझे जो पूछना है, तू पूछ सकेगा। तो कागज में लिख लाया है। तेरे भीतर कोई बड़ी हीनता की ग्रंथि है। उसके कारण तेरे भीतर आकांक्षा है कि संकल्प की शक्ति, विल पावर कैसे बढ़े। मैंने कभी नहीं कहा है। तू गलत आदमी के पास आ गया।
अब इस आदमी ने कैसे पढ़ा? पढ़ा-लिखा युवक है, विश्वविद्यालय से शिक्षित युवक है, किसी कालेज में लेक्चरर है। इसने यह पढ़ा कैसे जो कि मैंने कभी कहा नहीं?
अपने ही मन को फैला लिया। अपने ही मन पर रंग लिया जो मैंने कहा है उसको। तो उसने कहा, जाने दें वह, लेकिन यह बताएं कि विल पावर कैसे बढ़े! जाने दें, आपने न कहा होगा। उस झंझट में मैं नहीं पड़ता, लेकिन विल पावर कैसे बढ़े, यह बता दें।
तो मैंने कहा, तू सीधे ही पूछ। मुझे बीच में क्यों लेता है! और मैं तो विल पावर के विरोध में हूं। क्योंकि मेरा सारा कहना ही यह है कि सारी संकल्प की शक्ति अहंकार को ही बढ़ाती है। समर्पण चाहिए। कैसे छूट, यह पूछ। बढ़ाने की क्या जरूरत है? मिटाना है; खोना है अपने को; लीन होना है।
बस, जैसे संबंध छूट गया। जैसे अब मुझसे उसका कोई नाता नहीं, बात टूट गई। जीवित आदमी के पास भी जाकर हम अपने को थोपने की कोशिश करते हैं, तो मरे हुए शास्त्र का तो क्या कहना! तुम उसके साथ क्या-क्या दुर्व्यवहार करते होओगे, कहना मुश्किल है। तुम जो अर्थ निकालना चाहते हो, निकाल लेते हो। इसलिए मैं तो तुमसे कहता हूं, अगर कृष्ण मिलते हों, आग में डाल दो गीता को, स्वाहा कर दो। न मिलते हों, तब क्या करो। मजबूरी है, शब्द से फिर सहारा खोजो। अगर वह भी उपलब्ध न हो, तो फिर और बड़ी मजबूरी है। तब अपने ही पैर से चलने की कोशिश करो, जितना भी चल सको। देखें, शायद कुछ रास्ता बन जाए। लेकिन सदगुरु सदा उपलब्ध है। ऐसा हो भी नहीं सकता इस परमात्मा के विराट विस्तार में कि जो चाहता हो, जिसकी अभीप्सा हो, उसके लिए सदगुरु किसी क्षणों में अनुपलब्ध हो जाए।

भूख है, तो भोजन है। प्यास है, तो पानी है। अगर अभीप्सा है, तो सदगुरु
भी होगा; कहीं न कहीं होगा। शायद थोड़ा खोजना पड़े। और जितनी बहुमूल्य चीज खोजनी हो, उतनी देर लगती है, मुश्किल लगती है, श्रम उठाना पड़ता है। अड़चन भी है, तो तुम्हारे कारण होगी। अड़चन भी कोई सदगुरु अपने आस-पास खड़ी नहीं किए हुए है। तुम ही अपनी अड़चन अपने चारों तरफ लेकर चल रहे हो।
मैं एक अमेरिकन कवि का संस्मरण पढ़ रहा था। उसने लिखा कि वह एक रात ट्रेन में सवार हुआ केलिफोर्निया जाने को। डब्बे में एक और युवक था। होगी कोई तीस साल की उम्र। और तो कोई था नहीं। रात तो दोनों सो गए। सुबह एक-दूसरे से परिचय हुआ। जिस जगह कवि बैठा था, उस युवक ने कहा, क्षमा करें, मुझे उस खिड़की पर बैठ जाने दें। तो कवि ने पूछा कि क्या कारण है? इतनी खिड़कियां हैं, इस पर ही बैठने का क्या कारण है? उस कमरे में केवल दो ही आदमी हैं।
तो उस युवक ने कहा, अब आप पूछते हैं तो आपको कहता हूं। आज से दस साल पहले मैंने एक जघन्य अपराध किया। मैं जेल में डाल दिया गया। दस साल की सजा हुई। छूटकर घर वापस लौट रहा हूं। शंकित हूं। दस साल में मेरे परिवार से कोई मुझे जेल में मिलने नहीं आया। आशा तो यही करता हूं कि वे लोग सीधे-सादे हैं, ग्रामीण हैं, इतनी दूर की यात्रा सैकड़ों मील की उनके लिए करनी असंभव रही होगी। पर कौन जाने, शायद उन्होंने मुझे त्याग ही दिया! दस वर्षों में एक पत्र भी मेरे परिवार से नहीं आया। आशा तो यही करता हूं कि वे लोग गैर पढ़े-लिखे हैं, इसलिए न लिख सके होंगे। लेकिन मन में यह भय भी है कि हो सकता है, उन्होंने जानकर ही न लिखा हो। किसी और से तो लिखवा ही सकते थे! वे लोग गरीब हैं, गैर पढ़े-लिखे हैं, पर कुलीन हैं और बड़े स्वाभिमानी हैं। मेरे कारण जो उनकी प्रतिष्ठा को धक्का पहुंचा है, शायद वे मुझे अंगीकार करने को राजी भी न हों।
तो मैंने उनको लिखा है कि फलां-फलां ट्रेन से मैं आ रहा हूं। सुबह होते ही, सूरज के उगते ही, गांव में यह ट्रेन प्रवेश करेगी। गांव के बाहर ही, स्टेशन के पूर्व ही हमारा खेत है। उसमें सेव का एक बड़ा वृक्ष है। वह स्टेशन की लाइन के बिल्कुल करीब है। तो मैंने उनको लिखा है, उस पर तुम एक सफेद झंडी लगा देना, ताकि मुझे पता चल जाए कि मैं लौट सकता हूं घर। अगर सफेद झंडी लगी मिली, तो मैं स्टेशन पर उतर जाऊंगा और घर आ जाऊंगा। अगर न लगी मिली, तो ट्रेन पर सवार रहूंगा। कहीं भी उतर जाऊंगा फिर, और संसार में खो जाऊंगा। फिर तुम मेरा नाम दुबारा न सुन सकोगे।
इसलिए इस जगह मुझे बैठ जाने दें। इस खिड़की से वह वृक्ष ठीक से दिखाई पड़ेगा। कवि भी अभिभूत हो गया। जगह दे दी। लेकिन जैसे-जैसे गांव करीब आने को होने लगा, युवक बेचैन हो गया। उसकी आंखों से आंसू बह रहे हैं।
उसने कवि से फिर प्रार्थना की कि आप कृपा करके वापस यहां बैठ जाएं, क्योंकि मेरी आंखों में इतने आंसू भर गए हैं कि मैं देख भी नहीं पा रहा हूं। आप मेरे लिए देख दें। कहीं ऐसा न हो कि झंडी हो और मुझे दिखाई न पड़े। या ऐसा भी हो सकता है कि झंडी न हो और मेरी कल्पना के कारण मुझे दिखाई पड़ जाए, मैं इतना भावाविष्ट हूं। आप वापस आ जाएं और मुझे बता दें।
कवि भी भावाविष्ट हो गया। वह बैठ गया है। वह देख रहा है बाहर टकटकी लगाए। उसकी आंख से भी, जैसे ही वृक्ष दिखाई पड़ा, आंसुओं की धार लग गई। उस युवक ने उसे हिलाया और कहा कि क्या झंडी नहीं है? उसने कहा, नहीं, मैं इसलिए नहीं रो रहा हूं। मैं इसलिए रो रहा हूं कि पूरे वृक्ष पर झंडियां ही झंडियां हैं। पत्ते तो दिखाई ही नहीं पड़ते। हजारों झंडियां बांध दी हैं उन्होंने।
बाधाएं हैं, तो तुम्हारे कारण हो सकती हैं। परमात्मा तो तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है वृक्ष पर हजारों झंडियां बांधकर। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। तुम उससे पैदा हुए हो। तुम कितने ही संसार में भटक जाओ और कितने ही जघन्य तुमने कृत्य किए हों, इससे क्या फर्क पड़ता है! वह तुम्हें मिलने भी न आया हो, इससे भी क्या फर्क पड़ता है! कोई चिट्ठी-पाती भी उसने न लिखी हो, इससे भी क्या फर्क पड़ता है! हृदय के द्वार बंद होते ही नहीं। तुम जिससे पैदा हुए हो, उसके द्वार तुम्हारे लिए बंद नहीं हैं।

तुम जरा खोजो। तुम थोड़ा-सा प्रयास करो। तुम अगर अपनी आंखों से न देख सको, तो सदगुरु की आंखों से देख लो। शायद तुम्हारी आंखें बहुत पीड़ा से भरी हैं, बहुत आंसुओं से, भाव से, संभावनाओं से, भय से।
सदगुरु का इतना ही मतलब है, उसके पास अब साफ आंख है, जिसमें न आंसू तिरते हैं, न पीड़ा उतरती है, न सुख उत्तेजित करता है, न दुख विह्वल करता है।
उसकी आंख अब कोरी और साफ और निर्दोष है। वह सीधा देख सकता है।
अगर तुम कंप रहे हो, तो उसके द्वारा देख लो, जो नहीं कंप रहा है। वह तुम्हें ठीक-ठीक तुम्हारे घर का पता बता दे।
अगर सदगुरु उपलब्ध न हो सके... । इस कारण नहीं कि सदगुरु होते नहीं। सदगुरु सदा हैं। पृथ्वी कभी उनसे खाली नहीं होती। अगर सदगुरु न मिल सके, तो उसका कारण तुम्हीं होओगे। क्योंकि सदगुरु को पाने का अर्थ है, किसी के चरणों में झुकने की कला। वह तुम्हें मुश्किल पड़ेगी। और अगर यह तुम्हारे लिए मुश्किल है, तो जान लेना कि शास्त्र भी तुम्हारे काम न आएगा। क्योंकि अगर तुम किसी गुरु के चरण में नहीं झुक सकते, तो तुम शास्त्र के चरणों में कैसे झुकोगे! सिर झुका लोगे, मगर झुकोगे नहीं। तुम शास्त्र पर आरोपित हो जाओगे, शास्त्र को स्वयं पर आरोपित न होने दोगे।
इसलिए बड़े मजे की बात है, जो सदगुरु से लाभ ले सकता है, वह शास्त्र से
भी लाभ ले सकता है। जो शास्त्र से लाभ ले सकता है, वह बिना शास्त्र के भी चल सकता है। जो सदगुरु से लाभ नहीं ले सकता, वह शास्त्र का भी लाभ न ले पाएगा। जो शास्त्र का लाभ नहीं ले पाएगा, वह अपने से भी लाभ नहीं ले पाएगा।
इसलिए मुझे जीसस का वचन बार-बार प्रीतिकर लगता है कि जिनके पास है, उन्हें और दिया जाएगा; और जिनके पास नहीं है, उनसे वह भी छीन लिया जाएगा जो उनके पास है।
जो सदगुरु से लाभ ले सकता है, वह शास्त्र से भी लाभ ले सकेगा; उसे और दे दिया जाएगा। जो शास्त्र का लाभ ले सकता है, वह अपने से भी लाभ ले सकता है; उसे और दे दिया जाएगा।
तुम खुलो, शर्तों से मत डरो। अपने मन पर थोड़ा नियंत्रण करना होगा। उस नियंत्रण की थोड़े दिन के लिए ही जरूरत है। एक बार तुम मन से अलग होकर जीवन को जीने लगो, फिर न गुरु की जरूरत है, न शास्त्र की। फिर तुम ही गुरु हो, तुम ही शास्त्र हो।
और सारे गुरुओं की चेष्टा यही है कि तुम्हारे भीतर का गुरु तुम्हें उपलब्ध हो जाए।
तीसरा प्रश्नः मैंने जीवन में जो बड़ी से बड़ी चीजें अब तक देखी हैं, वे हैं, हिमालय, आकाश और रजनीश। और आपने उस दिन कहा कि मैं तुम्हारे भीतर भी हूं। मुझे विश्वास नहीं होता कि यह विराट मुझ क्षुद्र के भीतर कैसे समाया है?

तीसरा प्रश्नः मैंने जीवन में जो बड़ी से बड़ी चीजें अब तक देखी हैं, वे हैं, हिमालय, आकाश और रजनीश। और आपने उस दिन कहा कि मैं तुम्हारे भीतर भी हूं। मुझे विश्वास नहीं होता कि यह विराट मुझ क्षुद्र के भीतर कैसे समाया है?

क्षुद्र कहीं है ही नहीं; विराट ही विराट है। क्षुद्र होता, तो विराट नहीं समाता, यह बात सच है। क्षुद्र कहीं होता, तो विराट कैसे समाता, यह बात भी बिल्कुल ठीक है। लेकिन क्षुद्र कहीं है ही नहीं। वह तुम्हारी देखने की भूल है। सीमा यहां कहीं है ही नहीं। सीमा तुम्हारी देखने की भ्रांति है। है तो असीम।
ऐसी ही है सीमा, जैसे कोई अपनी खिड़की के भीतर से आकाश को देखता है, तो खिड़की की चौखट आकाश पर लगी मालूम पड़ती है। चौखट खिड़की की है, आकाश पर कोई चौखट नहीं है। लेकिन खिड़की की सीमा आकाश की सीमा बन जाती है। आकाश भी ऐसा लगता है, जैसे कि फ्रेम किया हुआ कोई आकाश का चित्र हो।
पश्चिम के एक बहुत बड़े चित्रकार सलवादोर डाली ने अपने जीवन के अंतिम दिनों में अपने चित्रों पर फ्रेम लगाने बंद कर दिए थे। मित्रों ने पूछा, क्या हो गया? तो डाली ने कहा कि जीवन के अनुभव से जाना कि फ्रेम कहीं भी

नहीं है। यह आदमी की ईजाद है। आकाश पर कहीं कोई फ्रेम है? कहां शुरू होता है आकाश? कहां अंत होता है? किस चीज पर तुमने अब तक पाया है कि कोई सीमा है? यह छोटा-सा वृक्ष, जो तुम्हें छोटा-सा दिखाई पड़ता है, छोटा नहीं है। देखने की भूल है। इस वृक्ष की जड़ें जमीन में समाई हैं। यह जमीन का हिस्सा है। जमीन बहुत बड़ी है। इस वृक्ष के पत्ते आकाश में फैले हैं। वह आकाश में समाया है। यह वृक्ष छोटा नहीं है। इस वृक्ष के प्राण सूरज की किरणों से बंधे हैं। तभी तो सुबह होती है, तो प्रफुल्लित हो जाता है; सांझ होती है, कुम्हला जाता है। सूरज इसका हिस्सा है। सब जुड़ा है। यहां अनजुड़ा कुछ भी नहीं है।
तुम सीमित हो? तुम अपने पिता से जुड़े हो, मां से जुड़े हो। तुम्हारी मां अपने मां और पिता से जुड़ी है; तुम्हारे पिता अपने मां और पिता से जुड़े हैं। लौटो जरा पीछे, जोड़ की खोज करो, तो तुम पाओगे कि सृष्टि के आदि में--अगर कभी कोई आदि रहा हो, प्रारंभ रहा हो--तो उससे तुम जुड़े हो। तुम्हारे बच्चे तुमसे जुड़े होंगे, उनके बच्चों के बच्चे तुमसे जुड़े होंगे। अगर सृष्टि का कभी कोई अंत होगा, तो तुम्हारा उसमें हाथ होगा; तुम जुड़े रहोगे। एक हाथ इस तरफ, एक हाथ उस तरफ। दोनों तरफ अनंत से जुड़े हो।
तुम छोटे हो? यह तुम्हारी चमड़ी सूरज से जुड़ी है। तुम्हारा रोआं-रोआं श्वास ले रहा है, हवाओं से जुड़ा है। तुम्हारे पैर पृथ्वी से जुड़े हैं। तुम्हारा कण-कण पृथ्वी से आ रहा है। कभी फलों की शक्ल में, कभी भोजन की शक्ल में तुम रोज पृथ्वी को खा रहे हो। तुम कहां समाप्त होते हो? कहां तुम्हारा प्रारंभ है?
नहीं, क्षुद्र यहां कुछ भी नहीं है। सब फ्रेम आदमी की ईजाद है। जीवन बिल्कुल ही निराकार है।
इसलिए जब मैं कहता हूं कि विराट तुममें है, तब मैं यह नहीं कह रहा हूं
कि विराट क्षुद्र में है। मैं यह कह रहा हूं, तुम विराट हो। असल में मैं यह कह रहा हूं--अगर तुम और भी ठीक से समझ सको--कि तुम हो ही नहीं, विराट है।

चौथा प्रश्नः अभी आपको मैं कहीं से भी चखूं, खारा ही खारा पाता हूं।
वह घड़ी भी कभी आएगी जब आप मीठे ही मीठे लगने लगें?
चौथा प्रश्नः अभी आपको मैं कहीं से भी चखूं, खारा ही खारा पाता हूं।
वह घड़ी भी कभी आएगी जब आप मीठे ही मीठे लगने लगें?

जब तक तुम हो, मुझे तुम खारा ही खारा पाओगे। जब तुम मिटोगे, तब तुम मुझे मीठा ही मीठा पाओगे। यह मेरा स्वाद नहीं है, जो तुम्हें खारा लगता है। अगर यह मेरा ही स्वाद है, तब तो फिर सदा ही खारा रहेगा। फिर तो यह कभी मीठा न हो सकेगा।
नहीं, तुम्हारे अहंकार के कारण यह स्वाद है। अहंकार हटते ही तुम पाओगे कि सब मीठा हो गया। मैं ही मीठा हो जाऊंगा, ऐसा नहीं है, सब कुछ मीठा हो जाएगा। सारा अस्तित्व एक माधुर्य से भर जाता है, जब तुम्हारा अहंकार मिट जाता है। तुम्हारा अहंकार खारा करने वाला तत्व है। खारा भी ठीक नहीं है, कडुवा करता है, विषयुक्त कर देता है।
उससे छूटो। तब पूरी प्रकृति बड़ी मिठास से भरी है। उसी मिठास में तुम परमात्मा की पहली पगध्वनियां सुनोगे। परमात्मा तो मीठा है, तुम्हारी जीभ पर नमक लगा है।
तुमने कभी देखा, बुखार के बाद उठते हो, मीठा भी मीठा नहीं लगता; स्वादिष्ट भी स्वादिष्ट नहीं लगता।
अहंकार का एक ज्वर है, जो तुम्हारे स्वाद को बिगाड़ रहा है। उसे जाने दो। जीवन बड़ा स्वादिष्ट है, बड़ा सुस्वादु है। जीवन अमृत है।

आखिरी सवालः झेन गुरु अक्सर अपने शिष्यों से पूछते हैं, एक हाथ से ताली कैसे बजेगी? हम नए-नए शिष्य आपसे पूछते हैं, एक हाथ से ताली कैसे बजेगी?

रोज बजती है और तुम सुनते ही नहीं। जो तुम नहीं चाहते, वह मैं तुम्हें
दे रहा हूं। जो तुमने कभी नहीं मांगा, वह मैं तुम्हें बांट रहा हूं। ताली एक हाथ से बज रही है। जिसके लिए तुम तैयार भी नहीं हो, वह मैं तुम में उंडेल रहा हूं। ताली बिल्कुल एक हाथ से बज रही है। इसे थोड़ा समझने की कोशिश करो। तुम जहां नहीं जाना चाहते, या तुमने कभी सपना भी जहां जाने का नहीं देखा था, वहां मैं तुम्हें ले चल रहा हूं। तुम्हारी तरफ से जो हाथ होना चाहिए ताली बजने को, वह तो नहीं है। मेरे अकेले हाथ से ताली बज रही है। और जिस दिन तुम्हारा हाथ वहां मौजूद हो जाएगा, मैं अपने हाथ को खींच लूंगा। फिर भी एक ही हाथ से ताली बजेगी। फिर कोई जरूरत न रहेगी मेरे हाथ की। फिर तुम स्वयं समर्थ हो गए।
एक हाथ से ताली बजना तो प्रतीक है। वह तो बहुत गहरा प्रतीक है अनाहत नाद का।
दुनिया में सभी चीजें दो हाथों से बजती हैं, परमात्मा में एक हाथ से बजती है। क्योंकि वहां दूसरा कोई है नहीं। इस संसार में सभी नाद आहत नाद है। तबला बजाओ, तो ठोंकना पड़े; सितार बजाओ, तो तार खींचने पड़ें। दो की चोट चाहिए। बोलो, तो कंठ का संघर्षण चाहिए।
परमात्मा तो अकेला है। वहां दूसरा कोई है नहीं। वहां गायक और गीत एक हैं। वहां मूर्तिकार और मूर्ति एक हैं। वहां दूसरा तो है ही नहीं। उस एक को ही हम परमात्मा कहते हैं। लेकिन वह बज रहा है, अनंत से बज रहा है।
सुनो उसका नाद। उसको ही हमने अनाहत नाद कहा है, जो बिना दो चीजों के संघर्षण से, बिना आहत बजता है, अनाहत। उस नाद को हमने ओंकार नाम दिया है। मैं तुमसे बोल रहा हूं। जो मैं कह रहा हूं, वह तो आहत है। लेकिन जो मैं कहना चाहता हूं, वह अनाहत है। जो तुम सुन रहे हो, वह तो आहत है; जो तुम्हें सुनना चाहिए, वह अनाहत है। जैसे-जैसे तुम राजी होओगे, तरल होओगे, पिघलोगे, वैसे-वैसे तुम्हें वह सुनाई पड़ने लगेगा, जो कहा नहीं जा सकता, लेकिन फिर भी बज रहा है। जिसे कोई बजा नहीं रहा है, फिर भी अहर्निश उसकी ही गूंज है। रोज एक हाथ की ताली बज रही है। जल्दी करो; सदा न बजती रहेगी। तैयार हो जाओ।

अब सूत्रः
तथा हे अर्जुन, जो कर्ता आसक्ति से रहित और अहंकार के वचन न बोलने वाला, धैर्य और उत्साह से युक्त एवं कार्य के सिद्ध होने और न होने में हर्ष-शोकादि विकारों से रहित है, वह कर्ता तो सात्विक कहा जाता है।
और जो आसक्ति से युक्त, कर्मों के फल को चाहने वाला, लोभी, दूसरों को कष्ट देने के स्वभाव वाला, अशुद्धाचारी, हर्ष-शोक से लिपायमान है, वह कर्ता राजस कहा गया है।
तथा जो विक्षेपयुक्त चित्त वाला, शिक्षा से रहित, घमंडी, धूर्त और दूसरों की आजीविका का नाशक एवं शोक करने के स्वभाव वाला, आलसी और दीर्घसूत्री है, वह कर्ता तामस कहा जाता है।
तामस से समझें। कृष्ण तो सदा सात्विक से शुरू करते हैं। पर अच्छा है, तामस से समझें। क्योंकि वहीं कहीं पास में आप खड़े होंगे। प्रथम से ही समझना ठीक है।
विक्षेपयुक्त चित्त वाला... ।
ऐसा चित्त जो करीब-करीब विक्षिप्त है। तुम क्या करते हो, क्यों करते हो, वह भी साफ नहीं।
कल एक युवक ने मुझे रात आकर कहा कि महीनेभर पहले एक लड़की से मिलना हो गया। उससे शादी कर ली। क्यों कर ली, यह भी ठीक पता नहीं। स्वयं उसने कहा, क्यों कर ली, यह भी ठीक पता नहीं। बस, कर ली। फिर आपके वचनों के संपर्क में आ गया। दूर केलिफोर्निया से आया है। संन्यास ले लिया। क्यों ले लिया, पक्का साफ नहीं। बस, हो गया। अब यहां आ गया।
अब पत्नी, जिससे शादी कर ली और उसके दो बच्चे हैं पिछले पति से, वह वहां परेशान है। वह कहती है, वापस आओ, क्योंकि वह दिक्कत में है। जाना नहीं

चाहता। क्यों नहीं जाना चाहता? मालूम नहीं। और यहां एक दूसरी स्त्री के प्रेम में पड़ गया; अब क्या करूं?
यह विक्षिप्त चित्त है। यह तुम्हारा ही चित्त है। ऐसे ही तो तुम करते रहे हो। कर लेते हो, फंस जाते हो, ढोते हो। क्यों किया था पहले चरण में, यह भी साफ नहीं। अंत आ जाता है जीवन का, शुरुआत क्यों की थी, इसका कोई पता नहीं।
होश नहीं है, तो ऐसा होगा। तब कोई भी तरंगें तुम्हारे जीवन में आती रहेंगी और तुम्हें बहाती रहेंगी। तुम पागल आदमी की तरह दौड़ते रहोगे, कभी उत्तर, कभी दक्षिण। लेकिन क्यों दौड़ते हो, कहां जाना चाहते हो, कुछ साफ नहीं।
तामस चित्त का लक्षण है कि होश नहीं होगा, मूर्च्छा होगी। होश होगा,
तो करने के पहले तुम सोचोगे। होश होगा, तो उत्तरदायित्व होगा। तुम सोचोगे, इस स्त्री से विवाह कर रहा हूं, दायित्व ले रहा हूं; इन बच्चों का पिता हो जाऊंगा, इनकी चिंता करनी होगी। तैयारी है भविष्य के बोझ को लेने की? कोई ऐसा कारण है, कोई ऐसा गहन प्रेम है, जिसके कारण फिर यह सारा बोझ लेने से बचने की आकांक्षा पैदा न होगी? तो ठीक है।
लेकिन पक्का पता ही नहीं है कि प्रेम भी है या नहीं। एक हवा का झोंका आया और बह गए। जैसे पानी पर कोई लकड़ी का टुकड़ा बहता रहता है। कोई घाट पहुंचना नहीं, हवा जहां पहुंचा देती है, थोड़ा पहुंच जाते हैं। कहीं रुक भी जाते हैं, कहीं बह भी जाते हैं। कहीं भी अंत हो जाएगा आखिर में।
मैंने एक घटना सुनी है। वास्तविक घटना है। उन्नीस सौ उनचास में एक आदमी, जिसका नाम जैक वर्म, समुद्र के तट पर अमेरिका में बैठा था। हारा-थका, जुआरी है, सब हार चुका है, आत्महत्या की सोच रहा है। ऐसा बैठा-बैठा उठाकर कंकड़ पानी में फेंकने लगा। रेत के घरघूले बनाने लगा। बड़ा बेचैन है, कुछ करने को चाहिए।
ऐसा रेत में हाथ डाला, तो एक बोतल दबी हुई हाथ में आ गई। उत्सुकतावश बोतल खींच ली। देखा, तो बोतल बंद है और भीतर एक कागज का टुकड़ा है। खोली, तो कागज के टुकड़े में--बड़ी हैरानी में पड़ गया, समझा कि किसी ने मजाक किया है-- कागज के टुकड़े में लिखा है कि मेरी संपदा के तुम आधे अधिकारी नियुक्त किए जाते हो। मेरा वकील--उसका पता दिया है--इससे मिलो। बारह करोड़ रुपए मैं छोड़कर मर रही हूं। उसमें आधे मेरे वकील के होंगे, आधे तुम्हारे। किसी महिला अलेक्जेंड्रा के दस्तखत हैं।
सोचा कि जरूर किसी ने मजाक किया है। ऐसे ही बोतल डाल दी, बैठा रहा। लेकिन फिर यह भी हुआ कि पता नहीं, इस दुनिया में अघट भी घटता है। हर्ज भी क्या है; फोन करके पूछ लिया जाए इस आदमी को। क्योंकि वकील तो लंदन में है। फोन किया रात। वकील ने कहा कि ठीक है, मजाक नहीं है। वह महिला अलेक्जेंड्रा, थोड़ी विक्षिप्त स्वभाव की थी। और जीवनभर उसने ऐसे ही जीया। मरते वक्त जब मैंने उससे पूछा कि तू संपत्ति का क्या कर जा रही है? तो उसने कहा कि जिस तरह मैं जीयी हूं, पानी में हवा के झोंकों में बहती हुई, ऐसी ही मेरी संपत्ति पानी में बहती हुई किसी को मिलेगी। ऐसे मैं किसी का नाम नहीं लिख जाती। यह बोतल उसने बंद की और थेम्स नदी में डाली, लंदन में।
बारह साल लग गए उस बोतल को पहुंचने में अमेरिका के सागर तट पर, पर पहुंच गई। एक आदमी को मिल भी गई। वह आदमी छः करोड़ रुपए की संपत्ति का मालिक भी हो गया। ये जो बारह करोड़ रुपए हैं, ये सिंगर मशीन के जो मालिक हैं, उनकी ही वह वसीयतदार थी महिला। वह तो मर चुकी है। उसे कभी पता भी न चलेगा, किसको मिले। लेकिन उसने एक अच्छा मजाक किया।
वह जीवनभर भी ऐसे ही जीयी। उसने विवाह भी किया, तो ऐसे ही। वह जाकर एक होटल के बाहर खड़ी हो गई। करोड़पति महिला थी। उसने कहा, जो आदमी होटल से बाहर निकलेगा, पहला आदमी, उससे विवाह का निवेदन करूंगी। और उसने उसी से विवाह किया। वह आदमी राजी हो गया, क्योंकि इतनी बड़ी करोड़पति महिला। वह एक वेटर था होटल का, जो बाहर निकल रहा था।
लेकिन तुम कहोगे, यह पागल थी। लेकिन तुम्हारी जिंदगी में कुछ इससे ज्यादा भिन्न घटनाएं हैं? अगर गौर से देखोगे, तो बहुत भिन्न न पाओगे।

पड़ोस में कोई लड़की रहती है; उसके प्रेम में पड़ गए। कुल कारण इतना है कि
वह पड़ोस में थी। पड़ोस में कोई और भी हो सकता था। कोई वजह नहीं है। स्कूल में गए। पचास स्कूल थे गांव में। एक स्कूल में भर्ती मिली। वहां किसी लड़की के प्रेम में पड़ गए, क्योंकि वह क्लास में थी। इसमें और होटल से निकलने वाले पहले आदमी में तुम कोई बुनियादी गणित का भेद देखते हो?
कोई भेद नहीं है। जीवन करीब-करीब विक्षिप्त है। ऐसे ही चल रहा है; ऐसे
ही बहा जा रहा है। इसको कृष्ण कहते हैं, तामस चित्त।
विक्षिप्त चित्त वाला, घमंडी, भयंकर अभिमान ग्रस्त, अहंकार से भरा हुआ... ।
ध्यान रखना, राजस व्यक्ति भी अभिमानी होता है और तामसी भी। दोनों में क्या फर्क है?
तामसी व्यक्ति अभिमानी होता है बिना कारण। और राजस व्यक्ति अभिमानी होता है सकारण। अगर वह अभिमान करता है, तो उसका कारण है। अभिमान तो दोनों करते हैं। तामसी को कोई कारण भी नहीं है अभिमान करने का। उस घमंड को हम तामसी कहते हैं जिसमें कोई कारण भी नहीं।
एक आदमी बहुत बुद्धिमान है और इसलिए अहंकारी है। समझ में आता है। एक आदमी महाबुद्धू है, फिर भी अहंकारी है और सोचता है कि मैं महाबुद्धिमान हूं। तो पहले को हम अहंकार कहते हैं, दूसरे को घमंड कहते हैं। घमंड जिसमें कोई आधार भी नहीं है। आधार भी हो, तो थोड़ा क्षम्य है।
धूर्त... ।
वह कभी भरोसा न करेगा किसी का भी। और किसी को कभी जीवन में मौका न देगा
कि कोई उस पर भरोसा कर ले। हर जगह चालबाजी करेगा। असल में वह सोचता है कि चालबाजी से ही सब कुछ उपलब्ध होता है। आलसी है, करने से बचता है, चालबाजी से रास्ता निकालता है।
दूसरों की आजीविका का नाशक... ।
और उसके जीवन की प्रक्रिया विध्वंसक होगी, डिस्ट्रक्टिव होगी। वह कुछ
कर तो न सकेगा, क्योंकि करने में श्रम चाहिए, सातत्य चाहिए, लगन चाहिए, पूरे जीवन को समर्पित करने की क्षमता चाहिए। वह तो उसमें नहीं है। उसमें तो एक क्षण में हवा बदल जाती है, उसका मौसम बदल जाता है, तो जीवनभर को किसी चीज में लगाकर सफलता की तरफ ले जाने की संभावना उसकी नहीं है।
तो वह कभी क्रिएटिव, सृजनात्मक तो नहीं होगा, लेकिन सृजन की कमी वह विध्वंस से पूरी करेगा। वह चीजों को तोड़ने में मजा लेगा। वह लोगों के जीवन को नष्ट करने में मजा लेगा। उसका रस मिटाना होगा, बनाना नहीं। इसलिए तामसी व्यक्ति कभी भी कुछ सृजन न कर पाएगा। न तो उससे एक गीत बनेगा, न वह एक मूर्ति बनाएगा। वह मूर्ति तोड़ सकता है।
तुमने सुनी होगी एक घटना, कुछ ही महीनों पहले रोम, वेटिकन में जीसस की
सब से सुंदर मूर्ति एक अमेरिकन ने तोड़ दी।
बड़ी हैरानी की बात मालूम पड़ती है। वह मूर्ति इस पृथ्वी पर जीसस की सबसे सुंदर मूर्ति थी; माइकलएंजलो की सबसे महान कृति थी। अरबों रुपयों में भी उसका मूल्य नहीं आंका जा सकता। माइकलएंजलो ने अपना सारा प्राण उस मूर्ति में समा दिया था। वह एक मूर्ति बचती और माइकलएंजलो की सारी कृतियां खो जाएं, तो भी माइकलएंजलो अप्रतिम रहेगा। किसी ने कभी सोचा भी न था कि उस मूर्ति के पास पहरा बिठाने की जरूरत है। कौन पागल उसको तोड़ेगा! और एक अमेरिकन ने जाकर, एक हथौड़े को छिपाकर वह भीतर गया वेटिकन के चर्च में, और जाकर जीसस की मूर्ति पर हथौड़े से चोट की। इसके पहले कि वह पकड़ा जा सके, उसने हाथ, सिर, कई अंग खंडित कर दिए।
पूछे जाने पर कि तेरा क्या विरोध है इस मूर्ति से? उसने कहा, अगर माइकलएंजलो इसको बनाकर प्रसिद्ध हो गया, तो मैं इसको तोड़कर प्रसिद्ध होना चाहता हूं।
वह प्रसिद्ध हो गया, इसमें कोई शक नहीं। सदियों-सदियों तक, जब तक वह खंडित मूर्ति रहेगी, इस पागल का नाम भी संयुक्त हो गया।
एक माइकलएंजलो है, जो वर्षों में बना पाता है; और एक आदमी है, जो क्षण में तोड़ देता है। तोड़ने में क्षण लगता है। इसलिए तामसी कर सकता है, क्योंकि उसके पास क्षण की मनोदशाएं होती हैं। बनाने में वर्षों लगते हैं;

तामसी नहीं कर सकता। वर्षों तक तो कोई भाव टिकता ही नहीं है। मिटाना तो क्षण में हो जाता है, बनाना तो जीवनभर की प्रक्रिया है।
इसलिए तामसी को कृष्ण कहते हैं, वह नाशक है।
शोक करने के स्वभाव वाला... ।
उसको शोक की स्थितियों की जरूरत नहीं रहती, उसका स्वभाव शोक करने का है। वह दुखी रहता है। तुम उसके लिए कोई भी कारण नहीं जुटा सकते, जिससे वह सुखी हो जाए। वह हर जगह दुख के कारण खोज लेगा। कितनी ही सुंदर स्थिति हो, कितनी ही सुखद स्थिति हो, उसमें वह कुछ न कुछ दुख के कारण खोज लेगा। वह उसका स्वभाव है।
दुख में रमे रहना, उसके जीवन की चर्या है, उसका ढंग है। वह उदास रहेगा। उदासी उसकी जीवन-शैली है। शिकायतें ही उससे उठेंगी; धन्यवाद उससे कभी नहीं उठ सकते। इसलिए तामसी कभी प्रार्थना नहीं कर सकता।
आलसी, दीर्घसूत्री... ।
हमेशा चीजों को पोस्टपोन करने वाला होगा। दीर्घसूत्री, कल कर लूंगा, परसों कर लूंगा। जो अभी हो सकता है, उसे वह कल पर छोड़ेगा; फिर कल आएगा, फिर कल पर छोड़ेगा। ऐसे उसका जीवन एक लंबा पोस्टपोनमेंट होगा, स्थगन होगा। वह जीएगा कभी नहीं। वह सिर्फ जीने की सोचेगा, कभी जीऊंगा।
ऐसे उसके जीवन का अवसर खो जाता है। उसके हाथ मौत ही लगती है, जीवन नहीं
लग पाता। क्योंकि जीवन तो उसका है, जो अभी जी ले, यहीं जी ले, इसी क्षण जी ले। जिसने कल पर टाला, उसके हाथ में आखिर मौत की राख लगेगी।
फिर दूसरा है राजस पुरुष, राजस कर्ता।
जो आसक्ति से युक्त, कर्मों के फल को चाहने वाला... ।
वह आसक्तिपूर्ण है। कर्मों के फल चाहता है, कर्मों में उसे उत्सुकता नहीं है। वह वर्षों तक कर्म कर सकता है। लेकिन उसकी उत्सुकता कर्म में नहीं है, उसकी उत्सुकता फल में है। वह वर्षों तक संलग्न रह सकता है; आलसी नहीं है। वह एक ही काम को कर सकता है जीवनभर; फल की आशा भर बनी रहे। तो अपनी पूरी जीवन-ऊर्जा को उंडेल देगा। लेकिन लक्ष्य भविष्य में है। कृत्य करना पड़ता है, इसलिए करेगा। असली बात फल है। आसक्ति उसमें गहन होगी।
लोभी तथा दूसरों को कष्ट देने के स्वभाव वाला होगा... ।
जहां भी लोभ है, वहां दूसरे को कष्ट देना ही पड़ेगा। क्योंकि लोभ छीनेगा, शोषित करेगा। फर्क समझ लेना।
तामसी स्वभाव वाला व्यक्ति भी नाशक होता है, लेकिन वह नाश में रस लेता है। राजस स्वभाव का व्यक्ति नाश में रस नहीं लेता, लोभ उसका कारण है। लोभ के लिए नाश करना पड़े, तो वह करता है। लेकिन राजस व्यक्ति अकारण नाश नहीं करेगा। तामस व्यक्ति अकारण नाश कर देगा। उसका रस ही नाश है। राजस व्यक्ति को कोई लोभ होगा, तो करेगा।
जैसे कि कोई राजस व्यक्ति जीसस की मूर्ति को नहीं तोड़ सकता था, जब तक
कि कोई कहता कि हम तुझे एक करोड़ रुपया देंगे; जा तू तोड़ दे। तो तोड़ देता। लेकिन ऐसे अकारण नहीं तोड़ता; सिर्फ तोड़ने के लिए नहीं तोड़ता। वह कहता, मैं कोई पागल हूं! मिलेगा क्या? वह हमेशा लोभ के कारण जीएगा।
अशुद्धाचारी... ।
क्योंकि जहां लोभ है, वहां आचरण शुद्ध नहीं हो सकता। लोभ ही तो अशुद्धि है।
हर्ष-शोक से लिपायमान... ।
तामसी व्यक्ति शोक में लिपायमान होता है। उसको हर्ष घटता ही नहीं।
राजसी व्यक्ति को कभी-कभी हर्ष की घड़ियां आती हैं। शोक तो आता है, लेकिन हर्ष भी आता है। तुम उसे कभी हंसते हुए भी पाओगे। तुम उसे कभी रोते हुए भी पाओगे, लेकिन रोना उसकी शैली नहीं है। अगर वह रोता है, तो सिर्फ इसलिए रोता है कि हंसने की जो चेष्टा कर रहा था, वह सफल नहीं हो पाई। हारकर रोता है। चाहता था हंसना, मजबूरी है, इसलिए रोता है।
तामसी व्यक्ति रोना ही चाहता था। तुम उसको हंसा न सकोगे। तुम हंसाने
की कोशिश करोगे, तो और जोर से वह रोने लगेगा। रोने में उसका रस है। रोना ही उसका सुख है।

हर्ष-शोक से लिपायमान कर्ता राजस कहा जाता है। और फिर सबसे ऊपर सात्विक कर्ता है। जो कर्ता आसक्ति से रहित, अहंकार के वचन न बोलने वाला, धैर्य-उत्साह से युक्त, कार्य के सिद्ध होने न होने में हर्ष, शोकादि विकारों से रहित है, वह कर्ता सात्विक कहा जाता है।
उसकी कोई आसक्ति नहीं है। वह करता है, इसलिए नहीं कि कोई लोभ है, कि कुछ पाना है। वह करता है, कर्तव्यवश। वह करता है, क्योंकि परमात्मा ने भेजा है। वह करता है, क्योंकि पाता है, मैं जी रहा हूं और जीवन कृत्य है। वह पाता है कि मैं जीवन के मध्य में खड़ा हूं और जीवन में कर्म से जाने का कोई उपाय नहीं है। तो कर्म करता है।
जो भी कर्तव्य है, वह करता है। जो भी शास्त्र-सम्मत है, करता है। जो भी सदगुरु उपदेशित है, करता है। लेकिन करने में कोई आसक्ति नहीं है। ऐसा नहीं है कि अगर आज मृत्यु आ जाए, तो वह कहेगा, मुझे काम पूरा कर लेने दो। वह कहेगा कि मैं राजी हूं।
आसक्ति से रहित, अहंकार के वचन न बोलने वाला... ।
उसकी कोई अपनी अस्मिता नहीं है। परमात्मा के साथ ही उसका ऐक्य है। वह कहता है, वही अकेला मैं कहने का हकदार है। और कोई मैं कहने का हकदार नहीं है। जो सबका केंद्र है, वही कह सकता है, मैं। हम तो उसकी परिधि हैं, उसकी वल्लरियां हैं, तरंगें हैं, लहरें हैं। सागर कहे मैं, ठीक। लहर कैसे कहे! धैर्य... ।
परम धैर्य उसमें तुम पाओगे। राजसी व्यक्ति में तुम धैर्य न पाओगे। तामसी में तुम धैर्य पाओगे, लेकिन वह धैर्य नहीं है, आलस्य है। वह धैर्य का धोखा है। राजसी व्यक्ति सदा जल्दी में होगा, क्योंकि फल पाना है। सात्विक व्यक्ति प्रतीक्षा कर सकता है। वह प्रतीक्षा के मधुर आनंद को जानता है। कोई जल्दी नहीं है। जब होगा, तब होगा। वह किसी भी घटना को समय के पहले नहीं करवा लेना चाहता। उसे बेमौसम के फल नहीं चाहिए। जब पकेगा मौसम, जब फल आएंगे, तब तक वह बैठा प्रतीक्षा कर सकता है। उसकी प्रतीक्षा आलस्य नहीं है, क्योंकि वह श्रम पूरा करेगा। उसका श्रम तनाव नहीं है राजसी व्यक्ति जैसा, क्योंकि उसके श्रम में प्रतीक्षा है, आतुरता नहीं है। उत्साह से युक्त... ।
उसे तुम हमेशा हलका-फुलका, नाचता, उत्साहयुक्त पाओगे। तुम कभी उसे हारा-थका न पाओगे। तुम कभी उसे बेमन न पाओगे। तुम कभी उसे ऐसा न पाओगे, जैसा कि आलसी सदा मिलता है और राजसी कभी-कभी मिलता है--उदास, पराजित, सर्वहारा, जैसे सब खो गया। तुम उसे सदा खिला हुआ पाओगे, सुबह के फूल की भांति। तुम सदा उसे ज्योतिर्मय पाओगे। क्योंकि फल की जिसकी कोई आकांक्षा नहीं, कर्म ही उसे फल हो जाता है। वह जो कर रहा है, वही उसका आनंद हो जाता है। प्रतिपल जीवन है। वह कभी पोस्टपोन नहीं करता, वह कल के लिए छोड़ता नहीं। आज ही कर लेता है।
सात्विक व्यक्ति ऐसे जीता है, जैसे यह आखिरी दिन है। और ऐसे भी जीता है, जैसे जीवन का कभी अंत न होगा। सात्विक व्यक्ति एक विरोधाभास है, एक पैराडाक्स है। वह रोज सुबह उठता है और सोचता है, यह आखिरी दिन है, आज की सांझ आखिरी होगी। इसलिए पूरी तरह जी लूं, कल तो है नहीं।
कल नहीं है, इसलिए आज को पूरी तरह जीता है। लेकिन आतुरता से नहीं जीता, जल्दी में नहीं जीता, कि जीवन को आज में ही सिकोड़ लूं पूरा, क्योंकि कल नहीं है। तब वह इस तरह भी जीता है, जैसे अनंत है काल, कभी अंत न होगा, समय की कोई सीमा न आएगी। तुम उसके पैरों में गति भी पाओगे और धैर्य भी। तुम उसके कृत्य में उत्साह भी पाओगे, गति भी पाओगे, प्रतीक्षा भी।
सात्विक व्यक्ति इस जगत में सबसे बड़ा संगीत है। उसके पार जो हो जाता है, जिसको गुणातीत कृष्ण कहते हैं, वह फिर इस जगत के पार है। सात्विक व्यक्ति इस जगत की आखिरी ऊंचाई है। तामसिक व्यक्ति आखिरी खाई है, सात्विक आखिरी गौरीशंकर।
उसके पार भी एक व्यक्तित्व है, जो गुणातीत है--कृष्ण का, बुद्ध का। उनको हम सिर्फ सात्विक नहीं कह सकते। वे बचे ही नहीं, उनको सात्विक कहने का भी उपाय नहीं है।

धैर्य और उत्साह से युक्त, कार्य के सिद्ध होने और न होने में हर्ष-शोकादि विकारों से रहित... ।
उसके लिए हर्ष और शोक दोनों विकार हैं, बीमारियां हैं। न तो वह सुख चाहता, न वह दुख चाहता। तब उसके जीवन में महासुख घटता है। महासुख सुख नहीं है। महासुख दुख का अभाव नहीं है। महासुख सुख-दुख दोनों से मुक्ति है। तब उसके जीवन में बड़ी शांति होती है, बड़ी निगूढ़ शांति होती है, जिसको खंडित करने की कोई भी संभावना नहीं है। क्योंकि न उसे दुख मिटा सकता, न उसे सुख मिटा सकता।
क्या तुमने कभी यह गौर किया कि सुख भी एक तरह का ज्वर है! जब पकड़ता है,
तो थकाता है। सुख भी एक तरह की उत्तेजना है, बेचैन कर जाती है। दुख तो है ही बेचैनी, लेकिन सुख भी बेचैनी है। और तुमने यह कभी ख्याल किया कि दुख में तुमने किसी को मरते न देखा होगा, सुख में बहुत लोग मर जाते हैं। अति सुख हो जाए, हृदय ठप्प हो जाता है; अति दुख में नहीं होता।
तो सुख बड़ी गहन उत्तेजना है, शायद दुख से भी ज्यादा। शायद दुख तो हमें इतना मिलता है कि हम उसके लिए राजी हो गए हैं। सुख हमें कभी-कभी मिलता है; ऐसा अनजाना अतिथि, कि जब आता है, तो हम इतने उत्तेजित हो जाते हैं कि तोड़ जाता है।
दुनिया में जितने भी हृदय के दौरे पड़ते हैं, वे चालीस और पैंतालीस के बीच अधिकतम, चालीस और पैंतालीस की उम्र के बीच, क्योंकि ये ही सफलता के दिन हैं। आदमी चालीस और पैंतालीस के बीच सफल होने के करीब आता है--धंधे में, पद में, प्रतिष्ठा में। ये दिन हैं। इनमें जो चूक गया, फिर बहुत मुश्किल है। पैंतालीस तक भी जो संसार में कुछ न पा सका, फिर वह न पा सकेगा। क्योंकि
अब शक्ति के दिन गए, खोज के दिन गए, लड़ने के दिन गए। पैंतालीस और चालीस के पहले बहुत कम लोग पा सकते हैं; वे ही लोग पा सकते हैं, जिनको वंश-परंपरागत सुविधा मिली हो। जिसे अपने ही पैरों से खड़ा होना हो, वह करीब चालीस और पैंतालीस के बीच सफल होता है; वहीं हार्ट अटैक, वहीं हृदय के दौरे, वहीं हार्ट फैल्योर, वहीं हृदय का बंद होना भी घटता है।
अमेरिका में ऐसा मजाक है कि जिस आदमी को पैंतालीस साल की उम्र तक हृदय
का दौरा न पड़ा, उसका जीवन बेकार ही गया; बेकार ही गया, क्योंकि वह असफल आदमी है। सफलता आती है, तो हृदय का दौरा भी आता है।
तुम अब की बार जब तुम्हारे जीवन में सुख आए, तो जरा गौर करना कि सुख भी कैसी बेचैनी की अवस्था है! कैसा चित्त उद्विग्न होता है!
सात्विक व्यक्ति जान लेता है, दुख तो बेचैनी है ही, सुख भी बेचैनी है।
और सात्विक व्यक्ति यह भी जान लेता है कि सुख-दुख दो नहीं हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जो सुख है, वही दुख हो जाता है। अगर सुख ज्यादा देर रुक जाए, तो दुख हो जाता है। अगर दुख भी ज्यादा देर रुक जाए, तो उसका दुख मिट जाता है, वह भी सुख जैसा लगने लगता है। वे अलग-अलग नहीं हैं, वे एक ही वस्तु के दो पहलू हैं। वह दोनों को छोड़ देता है।
न तो उसे कार्य के सिद्ध होने पर हर्ष होता, न शोक होता। हारने पर रोता नहीं, जीतने पर हंसता नहीं। क्योंकि न अब हार अपनी है, न जीत अपनी है। हारे तो परमात्मा; जीते तो परमात्मा। जो उसकी मर्जी। सात्विक व्यक्ति तो सिर्फ निमित्त हो रहता है।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग आठ
गीता दर्शन अध्याय 18
नौवां प्रवचन

तीन प्रकार की बुद्धि

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधंशृणु।
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनंजय।। 29।।
प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी।। 30।।
यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी।। 31।।
अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी।। 32।।
तथा हे अर्जुन, तू बुद्धि का और धारणा-शक्ति का भी गुणों के कारण तीन प्रकार का भेद संपूर्णता से विभागपूर्वक मेरे से कहा हुआ सुन।
हे पार्थ, प्रवृत्ति-मार्ग और निवृत्ति-मार्ग को तथा कर्तव्य और अकर्तव्य को एवं भय और अभय को तथा बंधन और मोक्ष को जो बुद्धि तत्व से जानती है, वह बुद्धि तो सात्विकी है।
और हे पार्थ, जिस बुद्धि के द्वारा मनुष्य धर्म और अधर्म को तथा कर्तव्य और अकर्तव्य को भी यथार्थ नहीं जानता है, वह बुद्धि राजसी है।
और हे अर्जुन, जो तमोगुण से आवृत हुई बुद्धि अधर्म को धर्म ऐसा मानती
है तथा और भी संपूर्ण अर्थों को विपरीत ही मानती है, वह बुद्धि तामसी है।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः आप निरंतर एक हाथ से ताली बजा रहे हैं और हम नहीं सुन रहे हैं, यह हम समझे। लेकिन हमारी ताली एक हाथ से कैसे बजेगी?

समझे नहीं। क्योंकि मेरी एक हाथ की ताली समझ में आ जाए, तो एक हाथ से ताली बजाने की कला भी समझ में आ गई। उसे फिर अलग से समझना न होगा। अगर उसे भी अलग से समझने की गुंजाइश बाकी रही, तो यही समझना कि अभी समझे ही नहीं। आदमी का अहंकार मानने की जल्दी में होता है कि हम समझ गए। और वहीं सारी भूलें हो जाती हैं।
समझने के मामले में जल्दी करना ही मत। समझ को तो जितना कस सको, कसना।
सौ में से निन्यानबे मौके पर तो तुम अपनी समझ को कच्ची पाओगे। वह ऐसे ही होगी, जैसे कुम्हार ने कच्चा घड़ा बनाया हो। वह घड़े जैसा दिखाई पड़ता है, अभी पका नहीं, अभी घड़ा नहीं। इस कच्चे घड़े में पानी मत भर लेना, अन्यथा मिट्टी बिखर जाएगी। इसे अग्नि से गुजारना होगा, तब यह पकेगा। तब तुम मजे से पानी भरना। तब यह घड़ा बिखरेगा नहीं, टूटेगा नहीं।
सुनकर ऐसा लगता है, समझ गए। काश, इतना आसान होता। मैं बोलता, तुम समझते
और समझ घट जाती।
बौद्धिक समझ, समझ है ही नहीं; समझ का धोखा है। मेरे शब्द तुम्हारी समझ में आ जाते हैं। मेरी भाषा तुम्हारी समझ में आ जाती है। मेरा तर्क तुम्हारी समझ में आ जाता है। इससे समझ थोड़े ही पैदा हो जाती है। इससे तो समझ की पूर्व-भूमिका भी बन जाए, तो धन्यभागी हो। इससे तो कच्चा घड़ा भी बन जाए, तो भी धन्यभागी हो, क्योंकि फिर कच्चे घड़े को पकाया जा सकता है अग्नि में।
लेकिन कच्चे घड़े का आकार पक्के घड़े जैसा ही होता है। धोखे में मत पड़ जाना। उससे तुम जीवन के अमृत को न भर पाओगे। वह समझ व्यर्थ सिद्ध होगी। और इसलिए एक बड़े मजे की घटना घटेगी। तुम्हें लगेगा भी कि तुम समझे, और फिर जो तुम सवाल उठाओगे, उनसे पता चलेगा कि तुम कुछ भी नहीं समझे। पहली पंक्ति में कहोगे, समझ गए, दूसरी पंक्ति में खंडन करोगे। तुम्हारे वक्तव्य सूचना दे देंगे।

समझ का धोखा तुम्हें हो भला, तुम्हारी समझ के धोखे से तुम मुझे धोखे में नहीं डाल सकते। अगर समझ हो, तो प्रश्न शांत हो जाए।
अगर तुम्हें यह समझ में आ गया कि मेरी एक हाथ की ताली बज रही है, तो उसी में तो सारी बात समझ में आ गई। फिर तुम्हें यह भी समझ में आ गया कि कैसे एक हाथ की ताली बजती है। फिर क्या तुम पूछोगे, कैसे?
मेरी एक हाथ की ताली के बजने में और तुम्हारी एक हाथ की ताली के बजने में क्या कोई वैज्ञानिक भेद होगा? कोई विधि का भेद होगा? हाथ तो हाथ हैं। अगर समझ में आ गया, तो आ गया; ताली बजने ही लगी। फिर कुछ करने को बाकी न रहा। अगर जरा-सा भी करने को बाकी रह जाए, तो समझना कि समझ पूरी नहीं है। उस समझ की कमी को तुम कुछ करके पूरा करना चाहते हो। इसलिए तत्क्षण, कैसे करें, यह सवाल उठता है।
कैसे करें, हमेशा नासमझी का सवाल है। समझदार ने यह कभी पूछा ही नहीं है। क्योंकि समझ सब कर देती है, कुछ और करने को बाकी नहीं रह जाता। आध्यात्मिक जीवन में समझ लेना, हो जाना है। वहां समझ सिद्धि है; वहां समझ और सिद्धि के बीच कोई रास्ता नहीं है, जिसको पार करना है। कोई विधि नहीं है, जिससे जोड़ना है; कोई सेतु नहीं बनाना है; कहीं जाना नहीं है। समझ के क्षण में तुम पाते हो कि तुम वहीं हो, जहां तुम जाना चाहते थे। कुछ होना नहीं है। समझ के क्षण में आविष्कार होता है कि तुम वही हो, जो तुम होना चाहते थे। कोई मंजिल नहीं है। तुम जहां खड़े हो, वहीं मंजिल है। और तुममें कोई कमी नहीं है, तुम अपूर्ण नहीं हो।
समझ के क्षण में अहं ब्रह्मास्मि का उदघोष तुम्हारे भीतर गूंजने लगता है। तुम्हारा रोआं-रोआं कहने लगता है, अनलहक! मैं वही हूं। मैं सत्य हूं। और इस उदघोष में मैं नहीं होता; इस उदघोष में सत्य ही होता है। फिर कहां जाना? क्या खोजना? क्या पाना? वह सब नासमझी की ही दौड़ थी। होश आ गया, दौड़ मिट गई।
समझ लेना ठीक से। मंजिल दौड़ने से नहीं मिलती, दौड़ के मिटने से मिलती है। मंजिल पूछने से नहीं मिलती, पूछने के गिरने से मिलती है।
उत्तर तुम्हारे पास है, तुम उत्तर हो। तो जब तुम पूछते हो कि आप निरंतर एक हाथ से ताली बजा रहे हैं और हम नहीं सुन रहे हैं, यह हम समझे। यह तुम समझे नहीं। अगर समझ गए, तो सुनो। फिर पूछने को कुछ रह न जाएगा। सुनने में ही घट जाएगी घटना।
इधर मैं बोलूंगा, उधर तुम सुनोगे। इधर बोलने वाला कोई भी नहीं है, उधर सुनने वाला कोई न होगा, घटना घट जाएगी।
सुनने के क्षण में तुम थोड़े ही रहोगे। अगर तुम रहे, तो कैसे सुनोगे! तुम बिल्कुल मिट जाओगे, तुम होओगे ही नहीं। तुम एक खाली, रिक्त मंदिर रह जाओगे, जिसमें मेरी आवाज गूंजेगी। उस सुनने में ही एक हाथ की ताली बजने लगेगी। उस सुनने में ही तुम पाओगे, जिसे हम बाहर टटोलते थे, वह भीतर मौजूद है।
लेकिन तुम्हारा हर प्रश्न बताता है कि तुम कुछ कच्ची समझ को असली समझ समझ लेते हो। मैं तुम्हारी मजबूरी भी समझता हूं। तुम बौद्धिक रूप से समझ लेते हो।
इस संसार में सभी चीजें बौद्धिक रूप से समझी जा सकती हैं, सिर्फ स्वयं
को नहीं समझा जा सकता। स्वयं को बौद्धिक रूप से समझना तो ऐसा है, जैसे अपनी ही आंख से उसी आंख को देखने की कोशिश; अपने ही हाथ से उसी हाथ को पकड़ने की कोशिश।
इस मेरे हाथ से मैं सब कुछ पकड़ लेता हूं, दुनिया की हर चीज पकड़ सकता हूं। दूर के चांद-तारे भी दूर नहीं हैं, वे भी पकड़े जा सकते हैं। लेकिन इस हाथ से मैं एक चीज कभी नहीं पकड़ सकता, वह यही हाथ है। जो इतने निकट है, जो इसमें ही छिपा है, उसे नहीं पकड़ सकता।
तुम्हारी समझ सब समझ सकती है, स्वयं के होने को नहीं समझ सकती। उसे समझने को तो समझ के भी पार जाना पड़ता है। तभी असली समझ, पक्की समझ पैदा होती है।
तुम्हारे प्रश्न तत्क्षण बता देते हैं कि तुम्हारी अड़चन, उलझन क्या है। तुम शब्द को समझ लेते हो। शब्द को समझकर लगता है, बात समाप्त हो गई। अब

और क्या समझने को बचा! अब कुछ करने को बचा। अब बताएं कि हम क्या करें, विधि बताएं।
विधि कोई भी नहीं है। और विधि से जो पाया जा सके, वह तुम्हारा स्वभाव न होगा। मार्ग से जहां तुम पहुंचोगे, वह तुम्हारी आत्मा न होगी। वह तुमसे बाहर होगी कोई चीज।
तुम्हारी खोज तो तुम्हारे भीतर छिपी है। जिसे तुम खोजते हो, वह तुम्हीं हो। वह खोजने वाला ही है। इसी हाथ से इसी हाथ को कैसे पकड़ोगे, अगर यह समझ में आ गया, तो क्या तुम रोओगे; पूछोगे कि अब इस हाथ को कैसे पकड़ें? तब तुम जानोगे कि यह हाथ पकड़ा ही हुआ है, इसीलिए पकड़ में नहीं आता। यह हाथ मेरा ही है, इसे पकड़ने की जरूरत ही नहीं है। यह बिना पकड़े ही मेरे साथ चलता है। इसे मैं भूल भी जाऊं, तो भी यह छूट नहीं जाता कहीं। यह कोई छाता थोड़े ही है कि कहीं भूल आए। यह कोई जूता थोड़े ही है कि कहीं भूल आए, तो याद रखना पड़े। याद रखो, न रखो, यह तुम्हारे साथ है। यह पकड़ा ही हुआ है।
और हाथ भी कहीं छूट जाए, क्योंकि वह बाहर का हिस्सा है, तुम्हारी आत्मा कहां छूटेगी? तुम भटको संसारों में अनंत काल तक, तुम अपनी आत्मा को कहीं भूल थोड़े ही आओगे। यह कैसे घट सकता है! आत्मा ही भूल जाएगी, तो तुम कहां बचोगे! आत्मा का सिर्फ विस्मरण हो सकता है। उसे तुम खो नहीं सकते। मुझसे जब लोग पूछते हैं कि हम आत्मा को खोजना चाहते हैं, तो मैं उनसे पूछता हूं, पहले तुम मुझे यह बता दो, ताकि बात पहले से ही उलझे न, तुमने आत्मा खोई कहां? खोया हो, तो खोजा जा सकता है। खोया ही न हो, तो यह सारा प्रयास ऐसा है, उस आदमी को जगाना, जो सोया ही न हो। लाख उपाय करो, तुम जगा न पाओगे। सोए को जगाया जा सकता है। जागे को कैसे जगाओगे? खोया हो, तो खोजा जा सकता है। लेकिन तुमने खोया कहां है?
स्वभाव का अर्थ होता है, जो खोया न जा सके। सारे पाप, सारे कर्म, तुम्हारे ऊपर से गिरते हैं और गुजर जाते हैं। तुम अछूते, निष्कलुष, निर्दोष पीछे शेष रह जाते हो। वहां कोई रेखा भी नहीं खिंचती। आकाश में बादल आते हैं, बिजलियां कौंधती हैं, तूफान उठते हैं, चले जाते हैं। आकाश निर्दोष, निर्विकार, जैसा था पहले, वैसा ही रह जाता है। कोई काले बादल काली रेखाएं नहीं छोड़ जाते, न आकाश को गंदा कर जाते हैं।
ऐसे ही तुम हो। तुम्हें गंदा करने का उपाय नहीं। तुम्हें विकृत करने
का उपाय नहीं। तुम पर कोई रेखा नहीं खींची जा सकती। तुम लाख-लाख उपाय कर लिए हो, फिर भी तुम्हारा ब्रह्म वैसा का वैसा है।
पाने को कुछ भी नहीं है, सिर्फ थोड़ा जागना है; आंख खोलनी है।
यह तो पूछो ही मत कि कैसे हमारी एक हाथ की ताली बजेगी, वह बज ही रही है। तुम जरा कान बंद किए बैठे हो, कानों को खोलो। तुम्हारे भीतर अनाहत का नाद हो ही रहा है। कोई उस नाद को करना थोड़े ही पड़ेगा। और जो नाद किया जा सके, वह अनाहत न होगा।
अनाहत का अर्थ ही यह है कि जो अपने आप हो रहा है, जिसे करने की जरूरत नहीं। क्योंकि जिसे तुम करोगे, वह फिर सदा नहीं हो सकता। थकोगे, बंद भी करना पड़ेगा।
अगर श्वास तुम ले रहे होते, तो तुम कभी के मर गए होते। भूल जाते; दुकानदारी में उलझ गए और श्वास लेना भूल गए। लाटरी जीत गए और घड़ीभर को होश खो गया; श्वास लेना भूल गए। रात सो गए और श्वास लेना भूल गए। शराब पी ली और श्वास लेना भूल गए। कभी के मर चुके होते। सच तो यह है कि तुम जिंदा ही नहीं रह सकते थे। लेकिन श्वास लेना तुम पर निर्भर ही नहीं है। बस, तुम ले रहे हो। तुम कुछ भी करते रहो, श्वास चली जा रही है, अपने आप चली जा रही है।
पर श्वास भी बाहर है। उससे भी भीतर जो है, वह तुम्हारा स्वभाव है। उसको तो तुम छोड़ ही नहीं सकते, वह तुम ही हो। वह तुम्हारा सारभूत है। वह तुम्हारा तात्विक अर्थ है, वह तुम्हारा तात्विक अस्तित्व है, वह तुम्हारी सत्ता है। वह बज रहा है। तुम जरा बाहर के शोरगुल से हटा लो अपने को, आंख बंद करो, भीतर के शोरगुल को भी थोड़ा शांत हो जाने दो। अचानक तुम पाओगे, अहर्निश बज रही थी जो धुन, अब तक न सुनी।

कबीर कहते हैं, अनहद बाजत बांसुरी! सदा से बज रही थी, बिना हद के बज रही थी, बिना किसी सीमा के बज रही थी और सुनी न। सुनने में कमी हो रही है, बजने में जरा भी कमी नहीं है।
इसलिए सत्संग को इतना मूल्य दिया है कि शायद गुरु को सुनते-सुनते- सुनते लौ लग जाए। क्योंकि गुरु वहीं से बोल रहा है, जहां अनहद बांसुरी बज रही है। वहीं से बोल रहा है, जहां शाश्वत का स्वर गूंज रहा है। उसके शब्द वहीं से नहाए हुए आ रहे हैं, उसी शून्य से भरे आ रहे हैं, उसी सुगंध के लोक से आ रहे हैं। थोड़ी-सी गंध उनमें भी चिपटी चली आती है। जैसे बगीचे से गुजरो, तो घर जाकर वस्त्रों में भी थोड़ी गंध मालूम पड़ती है। थोड़ी लग गई। शब्द ला नहीं सकता सत्य को, लेकिन अगर सत्य के पास से निकल भी जाए, तो सत्य की थोड़ी-सी सुवास ले आता है। अगर उस सुवास में तुम्हारा मन लग गया, अगर तुमने मुझे सुना और समझा, अगर उस समझने में तुम शांत और चुप हो गए, मौन हो गए, धुन बंध गई; जिसको कबीर कहते हैं, तारी लग गई; तो तुम मुझे सुनते- सुनते अचानक एक क्रांति घटित होती पाओगे। मुझे सुनते-सुनते-सुनते किसी क्षण अचानक तुम्हें भीतर की बांसुरी, जो सदा से बज रही है, सुनाई पड़ने लगेगी। उसके लिए कुछ और करना नहीं है।
यह तो पूछो ही मत कि वह एक हाथ से कैसे बजेगी। और इस भ्रांति में मत पड़ो कि मैंने जो तुम्हें कहा है, तुम समझ गए। समझ लेते, बज ही जाती। बज ही रही थी, तुम सुन लेते। समझे नहीं, तो पूछते हो, कैसे।
सारी विधियां अज्ञान से पैदा होती हैं। ज्ञान की कोई भी विधि नहीं है। ज्ञानी पुरुषों ने विधियां बताई हैं, तुम पर दया करके। समझौता किया है। अन्यथा कोई विधि नहीं है, कोई मार्ग नहीं है।

दूसरा प्रश्नः आपने कहा है कि ऐसा हो ही नहीं सकता कि अभीप्सा हो और सदगुरु न हों, कृष्ण न हों। फिर ये शास्त्र, यह गीता किनके लिए है?

जिनके भीतर अभीप्सा है, उनके लिए तो शास्त्र का कोई भी मूल्य नहीं है;
वे तो सदगुरु को खोज लेंगे। उनके लिए तो शास्त्र तृप्त न कर पाएगा।
जिनके पास गहरी प्यास है, जल के ऊपर लिखी गई किताब उन्हें तृप्त न कर पाएगी; उन्हें सरोवर चाहिए। कोई कितना ही समझाए कि एच टू ओ, इसमें सारे पानी का शास्त्र लिखा है। बस, पानी कुछ और नहीं है। उदजन दो भाग, आक्सीजन एक भाग, बस इन दो के मिलन से जल पैदा हो जाता है।

तो कागज पर कोई लिखकर भी दे दे, एच टू ओ, इसमें जल की सारी परिभाषा, सारा शास्त्र आ जाता है। तो भी तुम कहोगे, ठीक होगा; लेकिन इसको अगर मैं गले में ले जाऊंगा, तो प्यास न बुझेगी। और हो सकता है, गला रुंध जाए, प्राणों की आ बने, उलझन हो जाए। वैसे ही गला सूख रहा है और यह कागज और अटक जाए गले में।
जिसकी प्यास सच्ची है, शास्त्र उसे तृप्त न करेगा; वह सदगुरु की खोज में निकल जाएगा। अगर शास्त्र में से गुजरेगा भी, तो शास्त्र उसे सदगुरु की खोज की तरफ ही भेजेगा। सभी शास्त्र भेजते हैं। इसलिए शास्त्र सदगुरु की प्रशंसाओं के गीतों से भरे हैं।
अगर वह शास्त्र को पढ़ेगा भी, तो शास्त्र स्वयं उसे अपने से पार जाने
का इशारा करता है। सभी शास्त्रों के ऊपर वैसे ही निशान लगे हैं, जैसे मील के पत्थर पर लगे होते हैं। तीर बना होता है, और आगे। मील का पत्थर तो सिर्फ आगे भेजता है। शास्त्र सदगुरु की तरफ भेजते हैं।
शास्त्र पुराने सदगुरुओं के वचन हैं। और पुराने सदगुरुओं ने उन वचनों में वे सारे सूत्र रख दिए हैं, जिनसे तुम पुनः-पुनः सदगुरु को खोज लो। शास्त्र तो नक्शे हैं। उनकी खोज सदगुरु की ही खोज है।
कृष्ण की गीता का इतना ही मूल्य है कि तुम फिर-फिर कृष्ण को खोज लो।
लेकिन जिनकी प्यास अधूरी है, वे अटक सकते हैं शास्त्र में। या जिनकी प्यास झूठी है, वे अटक सकते हैं शास्त्र में। उन्हें सिद्धांत ही तृप्त करता मालूम हो सकता है। इसलिए शास्त्र खतरनाक भी हैं।

शास्त्र सार्थक भी हैं, खतरनाक भी हैं। सार्थक उनके लिए हैं, जिनकी प्यास प्रगाढ़ हो। मील का पत्थर उन्हें इशारा देगा, उनके पैरों को बल देगा। कहेगा, घबड़ाओ मत, इतनी यात्रा तो हो गई, थोड़ी और बाकी है; थोड़ा और चलना है, मंजिल पास है। हर मील का पत्थर करीब ला रहा है मंजिल के, भरोसा देगा, आश्वासन देगा, बल देगा, चलने की हिम्मत देगा, चुनौती देगा। इतने चल लिए, इतने पहुंच गए, मंजिल और करीब हुई जा रही है। इससे तुम थकोगे न, हताशा से न भरोगे।
लेकिन मील का पत्थर नासमझों के लिए खतरनाक भी हो सकता है। मील के पत्थर पर लिखा देखकर कि दिल्ली लिखा है, उसको छाती से लगाकर बैठ जाएं कि आ गई दिल्ली। उस तीर को देखें ही न, जो आगे की तरफ जा रहा है। तो शास्त्र छाती पर रखे पत्थर हो जाएंगे।
तो सदगुरु की खोज अगर शास्त्र दे दे, तो तुमने उसका उपयोग कर लिया। और अगर शास्त्र ही सदगुरु बन जाए, तो तुम पत्थर के नीचे दब गए।
तुम पर निर्भर है। समझदार विष को भी अमृत बना लेता है; नासमझ अमृत का
भी विष कर लेता है। समझदार जहर में से भी औषधि खोज लेता है। नासमझ औषधियों से भी आत्महत्या कर लेता है। दोनों तरह के लोग हैं।
शास्त्र का कोई कसूर नहीं है। शास्त्र तो तलवार है। तुम चाहो तो किसी
की हत्या कर दो; चाहो अपनी हत्या कर लो; चाहे किसी की होती हत्या को रोक दो, बचा लो, किसी की सुरक्षा कर लो। तलवार तो तटस्थ शक्ति है। शास्त्र एक शक्ति है।
शास्त्र शब्द बड़ा अच्छा है, वह शस्त्र के बहुत करीब है; शस्त्र की भांति है। चाहे सुरक्षा कर लो; चाहे आत्मघात कर लो। चाहे किसी पर जबरदस्ती कर दो और चाहे किसी पर होती जबरदस्ती को बचा दो, रोक लो।
शस्त्र स्वतंत्रता भी बन सकता है और शस्त्र किसी की परतंत्रता भी बन सकता है। अगर नासमझ हो, तो अपने ही हाथ का शस्त्र अपने को ही चोट पहुंचा देगा। अगर समझदार हो, तो वही शस्त्र तुम्हारा कवच बन जाएगा। दुनिया का कोई शस्त्र तुम्हें चोट न पहुंचा पाएगा। अंततः तुम्हारी ही समझ काम आती है। ऐसा निश्चित ही नहीं हो सकता कि अभीप्सा हो और सदगुरु न हों। ऐसा होता
ही नहीं। जीवन का गणित ऐसा नहीं है। प्यास है, तो पानी होगा। भूख है, तो भोजन होगा। अन्यथा हो ही नहीं सकता।
यह जगत एक बहुत संयोजित व्यवस्था है, एक संगीतपूर्ण लयबद्ध व्यवस्था है। इसमें ऐसा नहीं होता कि एक चीज हो और अधर में लटकी हो। तब तो जगत एक अराजकता हो जाएगा। अगर तुम्हारे हृदय में प्रेम है, तो तुम्हें कोई न कोई प्रेम-पात्र मिल जाएगा। अगर प्रेम-पात्र होते ही न होते, तो प्रेम की आकांक्षा भी न उठती।
वस्तुतः जो जानते हैं, वे कहते हैं, इसके पहले परमात्मा प्रेम की आकांक्षा उठाए, उसने प्रेम-पात्र बना दिए हैं। इसके पहले कि प्यास उठे, सरोवर तैयार है। इसके पहले कि भूख लगे, वृक्षों में फल लगे हैं।
अराजकता नहीं है अस्तित्व। अस्तित्व एक लयबद्ध काव्य है। उसमें कोई
भी चीज अधर में नहीं लटकी है। प्रत्येक चीज की पूर्ति का उपाय है। जरा खोजने की बात है; जरा गतिमान होने की बात है; और तुम जो भी चाहते हो, वह तुम पा लोगे।
अगर तुम्हारी सौंदर्य की खोज है, तो जगत में सौंदर्य के खजाने हैं। अगर तुम्हारी सत्य की खोज है, तो हर पत्थर के नीचे सत्य दबा है। अगर तुम सदगुरु की खोज में निकले हो, तो ज्यादा देर न लगेगी कि तुम उस द्वार पर पहुंच जाओगे, पहुंचा दिए जाओगे।
वस्तुतः इसके पहले कि तुम्हारे भीतर सदगुरु की प्यास उठे, सदगुरु मौजूद होता है। नहीं तो जगत एक बेबूझ उलझन होती। लोग चिल्लाते और चीखते और प्यासे होते और पानी न होता।
तो एक बात ध्यान रखना कि जगत में कमी नहीं है। और अगर तुम्हें कमी लग रही है, तो तुमने खोजा नहीं, तुम उठे नहीं, तुमने आंख नहीं खोली है। तुम जिस क्षण तैयार होओगे, जिस क्षण तुम्हारी प्यास पक जाएगी और ठीक मौसम आ जाएगा, घड़ी आ जाएगी, उसी क्षण तुम पाओगे कि सदगुरु का हाथ तुम्हारे सिर पर है।

और शास्त्रों का एक ही उपयोग है। वे पुराने सदगुरुओं के छोड़े हुए चिह्न हैं। वे पुराने सदगुरुओं के द्वारा छोड़े गए इशारे हैं, ताकि तुम सदा नए सदगुरुओं को खोज लो। क्योंकि सदगुरु तो एक ही है, कृष्ण हों कि क्राइस्ट, मोहम्मद हों कि महावीर, कोई फर्क नहीं पड़ता। सदगुरु की घटना तो एक ही है। वह जो भीतर का जलता हुआ दीया है, वह महावीर में जले कि मोहम्मद में, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वह दीया एक है, वह उसी परमात्मा का है। हजार हों दीए, रोशनी एक ही है।
तो सभी पुराने सदगुरु आने वाले शिष्यों की खोज के लिए शास्त्र छोड़ गए हैं।
तुम अगर मुझे प्रेम करते हो, तो मैं हटते ही तुम्हारे लिए वह व्यवस्था छोड़ जाऊंगा, कि तुममें अगर थोड़ी-सी भी समझ हो, तो तुम उसके आधार पर नए सदगुरुओं को, जीवित सदगुरुओं को खोज लोगे। अगर तुम मूढ़ हुए, तो मुझसे बंधे रह जाओगे। अगर समझदार हुए, तो तुम नए सदगुरु को खोज लोगे। और तुम उस सदगुरु में मुझको ही पाओगे। अगर तुम मुझसे बंधे रहे, तो तुम मुझसे चूक जाओगे। इसलिए जो आज महावीर से बंधा है, वह महावीर से चूक रहा है। जो आज कृष्ण
से बंधा है, वह कृष्ण से चूक रहा है। यह बड़ी अजीब-सी अवस्था है। बंधे हुए चूक जाते हैं।
अगर तुमने सच में ही कृष्ण को प्रेम किया है, तो तुम फिर कृष्ण को खोज लोगे। तुम किताब से कैसे राजी होओगे! जीवन चाहोगे, जीवंतता चाहोगे। फिर तुम्हारे लिए कृष्ण आविर्भूत हो जाएंगे किसी व्यक्ति में। नाम अलग होगा, रूप अलग होगा, लेकिन अगर तुम्हारे पास आंखें हैं, तो तुम भीतर उस अरूप को, अनाम को खोज ही लोगे।
शास्त्र तुम्हारे लिए इशारे हैं कि तुम नए गुरु को खोज लो। और शास्त्र इस बात के भी इशारे हैं कि तुम पुराने गुरु से कैसे मुक्त हो जाओ। शास्त्र का भी अपना शास्त्र है, अपनी व्यवस्था है। वे पद-चिह्न हैं। उनकी दिशाओं का अगर तुम ठीक उपयोग कर लो, तो तुम बहुत कुछ पा सकते हो। नए को खोज लोगे, पुराने से मुक्त हो जाओगे।
और यही मार्ग है पुराने के साथ बने रहने का। यही मार्ग है, सदा-सदा नए में उतर जाने का, ताकि कृष्ण से तुम्हारा संबंध न छूट जाए। अन्यथा लाश से संबंध रह जाएगा, जीवन से संबंध छूट जाएगा। तुम दीए की पूजा करते रहोगे, जिसकी ज्योति जा चुकी; और ज्योति दूसरे दीयों में जलेगी और तुम वहां पीठ किए रहोगे।
दीए की पूजा थोड़े ही होती है, पूजा तो ज्योति की है। जब तुम्हारा दीया बुझ जाए, तब तुम यह आग्रह मत करना कि मैं तो इसी दीए की पूजा करूंगा।
तब तुम भूल ही गए कि तुम ज्योति की पूजा करने आए थे, दीए की पूजा करने नहीं। दीए की भी पूजा हो गई थी ज्योति के सहारे, लेकिन जब ज्योति ही जा चुकी, तो अब दीया कितना ही बहुमूल्य हो, हीरे-जवाहरात जड़े हों, सोने का हो, क्या करोगे!
और अगर दीया होशियार था--होना ही चाहिए, अन्यथा उसमें ज्योति न होती--
तो वह तुम्हारे लिए इशारे छोड़ गया है, ताकि तुम पुनः-पुनः फिर ज्योति का आविष्कार कर लो। कहीं भी जले, कैसे भी दीए में जले, उसका रूप-रंग अलग होगा, मिट्टी अलग होगी, सोने का होगा, धातु का होगा, कैसा बना होगा, कहा नहीं जा सकता, लेकिन ज्योति तो वही होगी।
शास्त्र ज्योति को पहचानने की तरकीबें हैं। बहुमूल्य हैं। लेकिन अगर प्यास हो, तो ही तुम उनका उपयोग कर पाओगे। और अगर प्यास न हो, तो छाती के पत्थर हो जाएंगे। अनेक तो शास्त्रों में दबकर मर जाते हैं। बहुत कम शास्त्रों का उपयोग कर पाते हैं।
लोग मुझसे पूछते हैं कि आप क्यों गीता की व्याख्या कर रहे हैं?
इसीलिए कर रहा हूं, ताकि तुम कृष्ण से मुक्त हो जाओ, ताकि तुम नए कृष्ण
को खोज लो।
अब यह बड़ी उलटी बात है। पर अगर तुम समझोगे, तो बात बिल्कुल साफ-साफ है, जरा भी कुछ उलझन नहीं है।

तुम्हें गीता समझा रहा हूं, ताकि गीता में कृष्ण जो छोड़ गए हैं सूत्र,
वे तुम्हारे ख्याल में आ जाएं। और तुम गीता को छाती पर न ढोते रहो। उसका तीर तुम्हें दिख जाए कि आगे जाना है, जीवंत को खोजना है।
जीवंत की ही पूजा करना, मृत को मत पूजना। क्योंकि जीवंत में ही तुम पुनः-पुनः उसे खोज लोगे, जिसे तुम मृत में पूजते थे और कभी न पा सकते थे।

तीसरा प्रश्नः आपने कहा कि सफल होकर त्याग करना ही त्याग है। लेकिन संसार में सफल होने के लिए पाप और बेईमानी से गुजरना जरूरी है। तो क्या पाप और बेईमानी से गुजरना त्याग के लिए अनिवार्य है?

अंधेरे से गुजरे बिना तुम्हारे मन में प्यास ही पैदा न होगी प्रकाश की। और पाप से गुजरे बिना तुम पुण्य की आकांक्षा न करोगे। महादुख से गुजरकर ही आनंद की अभीप्सा जगती है। संसार के रास्तों पर, कंटकाकीर्ण रास्तों पर, खाई-खड्डों में गिर-गिरकर, लहूलुहान होकर ही तुम्हारे मन में उस मंजिल की आकांक्षा का सूत्रपात होता है, जहां पहुंचकर सभी यात्रा समाप्त हो जाएगी। जिसने नरक नहीं जाना है, वह स्वर्ग को पाने के लिए पात्र नहीं हो सकता।
इसलिए मैं तो तुमसे यही कहता हूं कि संसार से अधूरे मत भागना, नहीं तो तुम परमात्मा तक कभी भी न पहुंच पाओगे। अगर तुम संसार से अधूरे-अधूरे भाग गए, बिना जाने भाग गए, बिना पाप को जाने तुमने पुण्य की आकांक्षा की, तुम्हारी पुण्य की आकांक्षा नपुंसक होगी। तुम्हारे पुण्य का अर्थ ही क्या होगा?
शायद भय के कारण, शायद दूसरों के अनुकरण के कारण, शायद शिक्षा-दीक्षा
के कारण, लेकिन उसमें बल न होगा, भीतरी प्राण न होंगे। तुम्हारी जीवन-धारा उसमें न बहेगी। उधार होगी बात। और भीतर-भीतर, चुपके-चुपके, छिपे-छिपे तुम संसार की कामना करोगे, पाप में रस लोगे। ऊपर-ऊपर एक व्यक्तित्व होगा, भीतर-भीतर बिल्कुल विपरीत होओगे। पाखंड का जन्म होगा, पुण्य का नहीं।
ऐसा ही तो हुआ है। जिसने झूठ बोलना नहीं जाना, उसे हमने सच बोलने की शिक्षा दे दी। उसे सत्य की परिभाषा भी समझ में नहीं आती, क्योंकि झूठ ही परिभाषा बनेगा। जो कांटों से चुभा नहीं, वह फूल के सौंदर्य को, माधुर्य को नहीं समझ पाएगा।
दुख अनिवार्य है। दुख से गुजरना अनिवार्य है। दुख मांजता है, निखारता है, प्रौढ़ करता है। दुख से भागने वाले भयभीत लोग हैं। इन कायरों के लिए कोई पुण्य नहीं हो सकता। भगोड़ों के लिए परमात्मा नहीं है। जीओ। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि उसी-उसी में बने रहो। मैं यह कह रहा हूं कि उसे इतनी पूर्णता से जी लो कि तुम उसके पार ही हो जाओ।
ध्यान रखो एक सूत्र, जो बात भी पूर्णता से जी ली जाए, हम उससे मुक्त हो जाते हैं। अगर पाप अब भी मन को बुलाता है, तो उसका अर्थ है, तुम कच्चे-कच्चे लौट आए। अभी पाप का अनुभव भी न हुआ था। अभी पाप का दंश पैदा भी न हुआ था।
अभी तुमने पीड़ा भोगी न थी। तुमने खुद न जाना था कि जीवन दुख है; तुमने बुद्ध का वचन सुन लिया था कि जीवन दुख है।
यह बुद्ध का वचन बुद्ध के लिए अनुभव है, तुम्हारे लिए उधार है।
तुम्हें तो अभी भी कामना थी कि भोग लें। बुद्ध ने तुम्हें भटका दिया।
बुद्ध के वचन से तुम भटके।
तुम बुद्ध पुरुषों से कहना कि रुको। जो तुमने जाना है, वह मुझे भी जान लेने दो। अभी मेरा ऐसा अनुभव नहीं है। तुम कहते हो, जीवन दुख है। ठीक ही कहते होओगे, जानकर ही कहते होओगे, अनुभव से कहते होओगे। और यह भी मैं देखता हूं कि तुम्हें महाआनंद हुआ है। उसकी मेरे हृदय में भी आकांक्षा है। लेकिन अभी मेरा अनुभव नहीं कहता कि जीवन दुख है। अभी मुझे उसमें सुख
की आशा है। मुझे थोड़ा भटक लेने दो। मुझे थोड़ा गिरने दो। मुझे मेरे अनुभव से ही जानने दो, क्योंकि दूसरा कोई जानने का उपाय नहीं है।
काश, तुम इतनी हिम्मत जुटा सको, जल्दी ही जो बुद्ध ने कहा है, वह तुम्हारा भी अनुभव बन जाएगा। क्योंकि बुद्ध का अनुभव सार्वलौकिक है। जिसने भी जीवन को जाना है, उसने यही जाना है कि वहां सिवाय दुख के कुछ भी

नहीं है। अंधेरी रात है। एक गहरा सपना है। उससे जागकर पता चलता है, सब झूठ था; सब मन का खेल था, माया थी।
लेकिन यह तो जागकर पता चलता है। सोए-सोए तो माया बड़ी लुभावनी है; बड़ी मधुर है।
कबीर कहते हैं, माया महाठगनी हम जानी।
मगर यह कबीर ने जानी है। अभी तुमने नहीं जानी। अभी ठगनी का प्रभाव तुम
पर है। अभी ठगनी तुम्हें सम्मोहित करती है।
अभी अगर तुम छोड़ोगे, तो ऐसा होगा, जैसे कि वृक्ष से कच्चे फल को कोई तोड़ ले। तुमने ख्याल किया, अगर तुम कच्चा ही फल तोड़ लो वृक्ष से, तो उसके बीज व्यर्थ हो जाते हैं। जब तक कि फल पक न जाए, तब तक उसके भीतर के बीज भी नहीं पकते। और जब तक बीज पक न जाएं, तब तक उनसे नए अंकुर नहीं निकलते। पके से ही नया अंकुरण होता है।
जो व्यक्ति किन्हीं और कारणों से, बिना जीवन को जाने, भाग गया, वह कच्चा भाग गया। उसके जीवन से परमात्मा के अंकुर न निकलेंगे। वह वापस भेजा जाएगा। बार-बार वापस भेजा जाएगा। ऐसे ही तो तुम बार-बार वापस आए हो।
ऐसा थोड़े ही है कि तुमने महापुरुषों के वचन नहीं सुने। ऐसा थोड़े ही है
कि शास्त्र तुम्हारे मार्ग में नहीं आया। ऐसा थोड़े ही है कि कभी-कभी बुद्ध पुरुष तुम्हें रास्ते पर नहीं मिल गए। मिले हैं। उनकी वाणी तुममें गूंज गई है। उनका आनंद भी तुम्हारे भीतर लोभ को जगाया है कि ऐसा हमारे जीवन में भी हो जाए। कभी-कभी तुम उनके पीछे भी चले हो। थोड़ी दूर साथ भी दिया है।
पर तुम्हारे जीवन में सिर्फ पाखंड आया। जो बुद्ध के लिए महासत्य है,
वह तुम्हारे लिए पाखंड हो गई, प्रवंचना हो गई। क्योंकि तुमने थोपा अपने ऊपर।
तुम अपने ही ज्ञान पर भरोसा करो। बुद्ध पुरुषों से सीखो, मगर संसार से भागो मत। बुद्ध पुरुषों से इशारे लो, संसार से अनुभव लो। और जिस दिन संसार का अनुभव और बुद्ध पुरुषों के इशारे दोनों एक ही तरफ दिखाने लगें, दोनों की सुइयां एक ही तरफ दिखाने लगें, उस दिन जानना, घड़ी आ गई। अब तुम पक गए। और तब जिसको तुम पाप कहते हो, उसे छोड़ना न पड़ेगा। वह गिर जाता है।
मेरे लेखे, जब तक पाप छोड़ना पड़े, तब तक छोड़ना मत। छोड़ना पड़े, छोड़ना मत। जिस दिन गिर जाए, उस दिन पकड़ना मत; उस दिन गिर जाने देना। अपने से गिर जाने देना।
पका पत्ता गिर जाता है। न वृक्ष को खबर होती, न पके पत्ते को खबर होती।
चुपचाप जमीन पर बैठ जाता है, सो जाता है, खो जाता है। कहीं कोई कानों-कान खबर नहीं पड़ती। ऐसा ही महासंन्यास है। ऐसा ही महात्याग है।
उपनिषद कहते हैं कि जिन्होंने भोगा, उन्होंने ही त्यागा--तेन त्यक्तेन भुंजीथा। जिन्होंने भोगा, उन्होंने ही त्यागा।
महासूत्र है। दुनिया के किसी शास्त्र में ऐसा वचन नहीं है। हिम्मतवर हैं उपनिषद के ऋषि। वे कहते हैं, जिन्होंने भोगा, उन्होंने ही त्यागा। वे यह कह रहे हैं, जल्दी मत करना। अधूरे-अधूरे अधपके मत भाग खड़े होना। अन्यथा लौट-लौटकर आना पड़ेगा संसार की भट्टी में, क्योंकि बिना पके यहां से किसी को भी जाने की आज्ञा नहीं है।
पके हुए को नहीं लौटना पड़ता, कच्चे को वापस लौटना पड़ेगा। उसका सब भागना व्यर्थ है। वह ऐसे ही है, जैसे कोई स्कूल से भाग रहा है और वापस भेजा जा रहा है, शिक्षा पूरी करके लौटो।
तो न तो पाप से डरो, न बेईमानी से डरो। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि बेईमानी करो। मैं कहता हूं, डरो मत। संसार तो बेईमानी है, हजार-हजार तरह की बेईमानी है, पाखंड है, प्रवंचना है। गुजरो! और जल्दी करो। अनुभव को पूरी प्रगाढ़ता से ले लो।
अगर तुम समझदार हो, तो बेईमानी का एक ही अनुभव तुम्हें बेईमानी से मुक्त कर जाएगा। अगर तुम्हें जरा भी होश है, तो एक ही झूठ का अनुभव तुम्हें सदा के लिए झूठ के बाहर कर देगा। क्योंकि बार-बार क्या दोहराना! भूल तो वही है। बार-बार तो नासमझ दोहराते हैं। समझदार तो भूल करता है, लेकिन एक बार। समझदार बहुत भूलें करता है, लेकिन हर बार नई करता है। पुरानी क्या करनी! उसको अगर ठीक से जी लिया, तो बात खतम हो गई। एक दफे झूठ बोलकर देख लिया,

उसकी पीड़ा भोग ली, फिर कितने ही बार करो, वही होगा, पुनरुक्ति होगी। पुनरुक्ति से कुछ ज्ञान नहीं मिलने वाला है, जो मिलना था वह पहले में ही मिल गया।
पूरी प्रगाढ़ता से संसार को भोग लो। परमात्मा तुम्हें संसार में यों
ही नहीं भेज दिया है। कोई पीछे गणित है। वह गणित यही है कि संसार से तुम पको, ताकि तुम स्वर्ग के योग्य हो सको। परतंत्रता से पको, ताकि स्वतंत्रता का तुम अनुभव कर सको।
जिन्होंने कारागृह ही नहीं जाने, वे मुक्ति का आकाश कैसे जान सकेंगे!
वे पहचान भी न सकेंगे। वह पहचान विपरीत के अनुभव से आती है।

चौथा प्रश्नः गीता में इतनी पुनरुक्ति क्यों है?

निश्चित ही बहुत पुनरुक्ति है। कृष्ण दोहराए ही चले जाते हैं; वही बात फिर, वही बात फिर। अगर तुम बुद्ध के वचन पढ़ो, तो तुम और भी हैरान हो जाओगे। उन्होंने कृष्ण को भी मात कर दिया दोहराने में। वे दोहराए ही चले जाते हैं--वही बात, वही बात, वही बात।
कृष्ण और बुद्ध जैसे लोग जब बात को दोहराते हैं, तो कुछ राज होगा। कुछ राज है।
पुराने दिनों में अलार्म की घड़ियां जो होती थीं, वे एक ही बार अलार्म बजाती थीं। अब नई घड़ियां रुक-रुककर बजाती हैं। क्योंकि मनोवैज्ञानिक इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि अगर नींद लगी हो और घड़ी एक ही बार अलार्म बजाए, चाहे पूरा एक मिनट तक बजाए, दो मिनट तक बजाए, तो भी नींद के टूटने की संभावना कम है। लेकिन अगर दो मिनट ही बजाए और बार-बार रुक-रुककर फिर वही बजाए, फिर वही बजाए, चोट!
अगर सतत बजता रहे अलार्म, तो उसके सातत्य के कारण चोट नहीं पड़ती। उसके सातत्य के कारण तुम उसके सुनने के भी आदी हो जाते हो। चोट पड़ती है रुक-रुककर फिर; एक क्षणभर को रुक गया, फिर; फिर क्षणभर को रुका, फिर। हथौड़ी की तरह चोट पड़ती है।
तो अब नई घड़ियों में अलार्म रुक-रुककर बजता है। ज्यादा संभावना है कि रुकने वाली घड़ी तुम्हें जल्दी जगा देगी।
कृष्ण, बुद्ध, महावीर दोहराते हैं। वह दोहराना रुक-रुककर चोट करना है। कहना वही है, चोट वही है, अलार्म वही है। आदमी सोया हुआ है। उसके सिर पर चोट करनी है।
चीन में एक पुरानी दंड देने की विधि है कि सख्त जघन्य अपराधियों को वे
एक कोठरी में खड़ा कर देते हैं और एक-एक बूंद पानी ऊपर से टपकाते हैं। उसके सिर पर एक-एक बूंद पानी टपकता रहता है। तुम कहोगे, यह भी कोई दंड हुआ! तुम्हें अंदाज नहीं है। चौबीस घंटे में आदमी पागल होने की हालत में
हो जाता है। नींद लग नहीं सकती; कुछ सोच नहीं सकता। बस, वह टप! टप! टप! उन्होंने यह भी करके देखा कि अगर धार गिराई जाए, तो कोई हर्जा नहीं होता। अगर सतत धार गिरे पानी की, तो आदमी बल्कि आनंदित होता है, स्नान कर लेता है। उसमें कोई हर्जा नहीं होता। लेकिन वह जो टप-टप है, एक-एक बूंद गिरता है, वह हथौड़ी की तरह पड़ता है।
बुद्ध पुरुषों ने अपनी बातों को बहुत दोहराया है। बातें वही हैं। कृष्ण की पूरी गीता एक पोस्टकार्ड पर लिखी जा सकती है, जो भी सार की बातें हैं, जिनको उन्होंने फिर-फिर दोहराया है। कारण है।
अर्जुन सोया है। कारण कृष्ण में नहीं है। कारण अर्जुन में है। और सभी बुद्ध पुरुष अलार्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं हैं। जगा रहे हैं, उठा रहे हैं। चोट करनी जरूरी है। पहली बात।
दूसरी बात, तुम्हारे जीवन में तुम खुद भी देख सकते हो कि चौबीस घंटे एक-सी मनोदशा नहीं होती। सुबह उठे हो, तब तुम कुछ जागरण के ज्यादा करीब होते हो। सांझ थके हो, तब तुम नींद के ज्यादा करीब होते हो। सुबह उठे हो, तब एक तरह की शुचिता, एक तरह की पवित्रता, तुम्हें घेरे होती है। सांझ थके- मांदे, संसार से ऊबे, धूल-भरे लौटते हो, तब एक तरह की कठोरता, क्रोध तुम्हें घेरे होता है।

भिखमंगे भी सुबह भीख मांगने इसीलिए आते हैं, कि उस वक्त तुमसे धार्मिक होने की जरा ज्यादा आशा है। शाम तुमसे धार्मिक होने की ज्यादा आशा नहीं है। शाम तुमसे हां निकलेगा, इसकी संभावना कम है; न निकलेगा, इसकी संभावना ज्यादा है। और चौबीस घंटे में बहुत बार तुम्हारे चित्त का मौसम बदलता है, चित्त की भाषा बदलती है।
मुसलमानों में जो उनका महावाक्य है--उनकी गायत्री कहो, उनका नमोकार कहो, जिसे वे सतत दोहराते हैं--वह है, और कोई परमात्मा नहीं, सिवाय परमात्मा के।
बड़ा प्यारा वचन है, और कोई परमात्मा नहीं, सिवाय परमात्मा के। इसको मुसलमान निरंतर दोहराते हैं। लेकिन सूफी फकीर इसको नहीं दोहराते। वे कहते हैं, यह बहुत बड़ा है। समझो।
सूफी फकीर कहते हैं कि हम मर रहे हैं, सांस टूट रही है और हमने कहा और कोई परमात्मा नहीं, और मर गए, तो हम नास्तिक की तरह मर गए। कोई परमात्मा नहीं, यह कहते हुए मर गए। कोई परमात्मा नहीं, सिवाय परमात्मा के। अब वह सिवाय परमात्मा के अगर न कह पाए, तो आखिरी घड़ी जबान नास्तिक की हो गई, आखिरी क्षण प्राण नास्तिक के हो गए। यह तो बड़ा दुर्भाग्य हो जाएगा। इसलिए वे कहते हैं, इतना बड़ा सूत्र हम नहीं दोहराते। हम तो सिर्फ परमात्मा, परमात्मा, अल्लाह, अल्लाह; कौन जाने किस घड़ी मरना हो जाए!
और वे यह भी कहते हैं कि कौन जाने किस घड़ी तार मिल जाएं। तो हम इतनी लंबी लकीर नहीं दोहराते। क्योंकि कहीं तार मिलने का वक्त हो और हम दोहरा रहे हैं कि नहीं कोई परमात्मा, और तभी वह घड़ी चूक जाए जब कि संयोग होने के करीब था; और जब हम आएं इस शब्द पर, सिवाय परमात्मा के, तब घड़ी ही न हो।
सूफी दिन-रात दोहराते हैंः अल्लाह, अल्लाह, अल्लाह। क्योंकि कौन जाने किस घड़ी मन शुचिता में हो, किस घड़ी मन पवित्र हो, किस घड़ी मन नाचता हो, मिलन हो जाए, कौन जानता है। मिलन पहले कभी हुआ नहीं, इसलिए हमें उसका कुछ हिसाब भी नहीं है। अंधेरे में टटोलते हैं। कब द्वार पर हाथ पड़ जाएगा, कौन जानता है। चौबीस घंटे टटोलते हैं।
कृष्ण और बुद्ध और महावीर और मोहम्मद अपने शिष्यों के सामने दोहराए चले जाते हैं एक ही बात हजार बार। कौन जाने, कब सुनाई पड़ जाए। क्षण होते हैं। एक बार कहकर चुप हो सकते थे, लेकिन उससे कुछ सार होता न होता।
एक झेन फकीर हुआ। उससे किसी ने जाकर पूछा कि मैं जरा जल्दी में हूं। तुम सार की बात मुझे कह दो; फिर मिलना हो न हो। तो वह चुप ही रहा। उसने कहा कि तुम चुप मत रहो, मैं जल्दी में हूं, जा रहा हूं, फिर दुबारा तुमसे मिलना हो या न हो। कुछ कह दो!
उस फकीर ने कहा, मैंने कहा। सार की बात तो कह दी, चुप हो जाना। अब तुम
जो भी मुझ पर जोर डालोगे, वह पुनरुक्ति होगी। उस आदमी ने कहा कि तुम कुछ कहे ही नहीं, पुनरुक्ति कैसे होगी! कुछ तो कहो, शब्द में कहो। तो उसने कहा, मौन। पर यह पुनरुक्ति है। तुम नाहक जबरदस्ती कर रहे हो। जो मुझे कहना था, वह मैंने कह दिया।
उस आदमी ने कहा कि थोड़ा और स्पष्ट करो, अकेले मौन से कुछ स्पष्ट नहीं होता। तो उस फकीर ने कहा, मौन, मौन, मौन।
अब ऐसे लोग सदगुरु नहीं बन सकते। यह झेन फकीर बिल्कुल ठीक कर रहा है। इसमें कोई अड़चन नहीं है। यह जो कर रहा है बिल्कुल ठीक है। लेकिन इससे किसी को कोई सहारा नहीं मिल सकता। यह कहता है बिना बोले कि अब पुनरुक्ति हो जाएगी, अगर मैंने कुछ कहा। कहने पर आग्रह करने पर भी मजबूरी में मौन कहता है। फिर मौन ही दोहराए जाता है। इससे तुम कुछ सीख न पाओगे।
दुनिया में सदज्ञान को तो बहुत लोग उपलब्ध होते हैं, सदगुरु बहुत नहीं होते। सदगुरु वह है, जो करुणावश तुम्हारे लिए बहुत बार दोहराने को राजी है। सदज्ञान को तो बहुत लोग उपलब्ध होते हैं, लेकिन वे दोहराने को राजी नहीं होते। कौन सिर पचाए!
कृष्ण दोहराए जाते हैं। उनका प्रेम अनूठा है। उनकी करुणा महान है। वे अर्जुन पर बरसते ही चले जाते हैं। अर्जुन बचता है एक तरफ से, तो दूसरी तरफ से बरसते हैं। मेघ तो वही है, जल भी वही है। कृष्ण का मेघ है, कृष्ण का ही जल है; उसका स्वाद भी वही है। शब्द बदल देते हैं, थोड़ी विधि बदल देते हैं, फिर

बरसते हैं। अर्जुन वहां से भी बच जाता है बिना नहाया, फिर बरसते हैं। ऐसा अठारह अध्यायों में अठारह हजार बार वही-वही बात दोहराए चले जाते हैं। पुनरुक्ति का कारण है। कब तुम सुनोगे, कुछ पता नहीं। किस क्षण घट जाएगी बात, वह क्षण अनप्रेडिक्टेबल है। उसकी कोई भविष्यवाणी नहीं हो सकती। कब ऐसी घड़ी तालमेल पा जाएगी, कब सब ग्रह-नक्षत्र तुम्हारे ठीक होंगे, कब तुम द्वार दे दोगे। तो कृष्ण दोहराए जा रहे हैं। जो दोहराने योग्य है, उसे दोहराए जा रहे हैं।
दोहराने का भी अपना कारण है। उसको तुम पुनरुक्ति मत समझना। उसे तुम महाकरुणा समझना। वह एक बार कहकर भी चुप हो सकते थे। पर अर्जुन समझ न पाता। अर्जुन के संशय न गिर पाते। फिर अर्जुन उस जगह न पहुंच पाता, जहां उसने कहा कि क्षीण हुए मेरे संशय। मैं बोध को उपलब्ध हुआ। तुम ने मुझे जगा दिया। वे बजाए ही गए अलार्म को। वे दोहराए ही गए अलार्म को।
अर्जुन ने बहुत करवटें लीं और बहुत बार दुलाई ओढ़कर सो-सो गया। लेकिन कृष्ण का अलार्म बजता ही रहा। वह जब तक उठा नहीं, जब तक उसने कहा नहीं कि जाग गया हूं, जब तक हाथ-मुंह ही न धो लिया, चाय का एक कप न पी लिया, जब तक पूरे होश से न भर गया, तब तक वे जगाए ही गए।
अगर अर्जुन न जागता, तो मैं जानता हूं कि अगर अठारह हजार अध्याय भी कृष्ण को कहने पड़ते, तो वे कहते।
मुझ से लोग पूछते हैं कि कृष्ण की गीता तो थोड़े में समाप्त हो गई, आप पांच साल से बोले चले जा रहे हैं!
क्योंकि आधुनिक अर्जुन और भी गहरी नींद में हैं। क्योंकि तुम और भी बुरी तरह सोए हो। तुम्हें उस घड़ी तक ले आऊं, जहां तुम कहो कि संशय क्षीण हुए, मैं जाग गया; और भी मेहनत करनी पड़ेगी।
कृष्ण हुए पांच हजार साल पहले। तब उन्होंने अठारह अध्याय में गीता कह दी। बात उन्होंने पूरी कर दी। फिर बुद्ध हुए ढाई हजार साल पहले। उन्होंने चालीस साल तक वही-वही दोहराया।
अब तो बौद्धों ने जो बुद्ध के वचन छापे हैं, उन में वे छापते भी नहीं पूरे वचन। उन्होंने सिर्फ निशान बना लिया है, डिट्टो। निशान लगाए चले जाते हैं। फिर वही, फिर वही, फिर वही। एक बार छाप देते हैं कि ऐसा कहा, फिर नीचे कहते जाते हैं, फिर वही, फिर वही, फिर वही। फिर जब कोई नया वचन वे बोलते हैं, तब छाप देते हैं, फिर लिखे जाते हैं, फिर वही, फिर वही, फिर वही। कोई छापने तक को राजी नहीं है बुद्ध के पूरे वचन। क्योंकि चालीस साल वे पुनरुक्ति कर रहे हैं।
लेकिन वह भी वक्त गया, ढाई हजार साल बीत गए। तुम्हें मेरी तकलीफ, तुम्हें मेरी अड़चन समझ में आ नहीं सकती। मैं भी दोहराए चला जा रहा हूं। तुम सोचते हो, मैं कुछ नई बातें रोज कह रहा हूं। परमात्मा के संबंध में नया कहने को हो भी क्या सकता है! वही कहता हूं। थोड़ा रंग-रूप बदल देता हूं। बाएं से बोलता, दाएं से बोलता, ऊपर से बोलता, नीचे से बोलता, दिशाएं थोड़ी बदलता हूं। कभी कथाओं से बोलता हूं, प्रतीकों से, संकेतों से, कभी सीधा- सीधा बोलता हूं। कभी पतंजलि की भाषा में, कभी कृष्ण की भाषा में, कभी बुद्ध, कभी लाओत्से की भाषा में। पर बोलता तो वही हूं।
बोलता तो उतना ही हूं, जितना झेन फकीर बोला चुप रहकर। और फिर कहने लगा, पुनरुक्ति हो जाएगी। पुनरुक्ति ही है। फिर भी तुम नहीं जागते हो।
और जब तक तुम न जागो, तब तक नए-नए उपाय खोजने पड़ेंगे, पुनरुक्ति को दोहराना पड़ेगा। और इस भांति दोहराना पड़ेगा कि तुम्हें पुनरुक्ति भी न मालूम पड़े। क्योंकि अगर तुम्हें पुनरुक्ति भी मालूम पड़ने लगे, तो भी तुम नींद में सो जाओगे। क्योंकि पुनरुक्ति भी नींद लाती है।

पांचवां प्रश्नः अभीप्सा है कि मिट जाऊं, निमित्त-मात्र हो जाऊं और उसकी मर्जी के अनुसार ही मेरा जीवन बहे। कुछ छोटी-मोटी झलकें भी इसकी मिली हैं। लेकिन अनेक अवसरों पर मैं द्वंद्व और दुविधा में पड़ जाता हूं कि यह उसकी मर्जी है या मेरी मर्जी है!

इस वचन को थोड़ा ठीक से समझो।

अभीप्सा है कि मिट जाऊं... ।
जोर मैं पर ही है, जोर उस पर नहीं है। यह भी तुम्हारी अभीप्सा है कि मिट जाऊं। यह अभीप्सा भी मैं ही है।
निमित्त-मात्र हो जाऊं... ।
गौर से सुनो, तो भीतर तुम्हें मैं सुनाई पड़ेगा, मैं निमित्त-मात्र हो जाऊं।
और उसकी मर्जी के अनुसार मेरा जीवन बहे... ।
जीवन मेरा होगा, बहे उसकी मर्जी के अनुसार, लेकिन मेरा जीवन।
कुछ छोटी-मोटी इसकी झलकें भी मिली हैं... ।
वह मैं पीछे खड़ा है। वह कह रहा है कि कुछ नहीं मिला है, ऐसा भी नहीं है।
काफी मिला भी है, कुछ झलकें भी मिली हैं।
लेकिन अनेक अवसरों पर मैं द्वंद्व और दुविधा में पड़ जाता हूं... ।
वह मैं खड़ा ही है द्वंद्व और दुविधा में पड़ने को।
और यह समझ में नहीं आता कि यह उसकी मर्जी है या मेरी मर्जी है।
मैं के खेल को थोड़ा समझो। अगर अभीप्सा सच में ही मिटने की है और यह भी मैं का ही एक खेल नहीं है, तो कौन रोक रहा है? कोई परमात्मा तो रुकावट डाल नहीं रहा है कि मत मिटो।
लेकिन मुझे ऐसा लगता है कि अभीप्सा सब ऐसी ही है, जैसा एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मेरे पास आई और उसने कहा, अब चलना होगा आपको। बहुत अड़चन हो गई है, मुल्ला आत्महत्या कर रहा है। मैंने कहा, तुम घबड़ाओ मत। जिसने कभी कुछ नहीं किया, वह आत्महत्या भी क्या करेगा! पर वह बोली कि नहीं, यह मामला ही और है। आप मजाक-हंसी मत समझें। वह गंभीर है। सब इंतजाम कर लिया है और दरवाजा बंद किए है। कहीं कुछ हो न जाए। आप चलो।
मैं गया। दरवाजा खटखटाया। मैंने पूछा कि सुना है नसरुद्दीन, आत्महत्या कर रहे हो? ऐसा शुभ अवसर हमें भी देख लेने दो। खोलो। रोकेंगे नहीं, क्योंकि रोकने का हम कोई कारण ही नहीं पाते, कि रोकने की कोई जरूरत पड़ेगी। कोई बाधा न डालेंगे। सिर्फ देखना है कि कैसे करते हो।
दरवाजा खोला। स्टूल पर खड़े थे। छप्पर से रस्सी बांध रखी थी और कमर में बांध रहे थे। मैंने कहा, कमर में रस्सी बांध रहे हो। आत्महत्या करनी है, तो गले में बांधो। बोला कि पहले गले में बांधी, लेकिन बड़ी रुकावट मालूम पड़ती है, गला रुंधता मालूम पड़ता है, तकलीफ मालूम पड़ती है। इसलिए कमर में बांध रहे हैं।
तो कमर में बांधकर तुम झूलते रहो सदा-सदा के लिए, इससे मरोगे नहीं। इस तरह की धारणा के पीछे उसी तरह की आत्महत्या है। करना भी चाहते हो, लेकिन गले में बांधने पर गला रुंधता है, तकलीफ मालूम पड़ती है, आंख में आंसू आते हैं। तो फिर कमर में बांध लेते हो और यह ख्याल रखते हो कि हम मरने की तैयारी कर रहे हैं।
अभीप्सा है कि मिट जाऊं... ।
जोर बड़ा मालूम पड़ता है अभीप्सा का। मिटने की अभीप्सा में ऐसा जोर होना ही नहीं चाहिए। वह तो एक निवेदन होगा।
और फिर रोक कौन रहा है? सिवाय तुम्हारे तुम्हें कोई मिटने से रोक नहीं सकता। कोई दुनिया की शक्ति तुम्हें रोक नहीं सकती मिटने से, सिवाय तुम्हारे। वस्तुतः सारी दुनिया चाहती है कि तुम मिट ही जाओ। एक तुम ही अड़े हो कि नहीं मिटेंगे। सब तुम्हें सहयोग देना चाहते हैं कि चलो एक प्रतियोगी कम हुआ है, यही कुछ कम है! एक से उपद्रव मिटा।
दुनिया तुम्हें रोकना नहीं चाहती, तुम्हीं रुके हो। और रुकने का कारण
यह है कि तुम्हारी मिटने की अभीप्सा के पीछे भी तुम्हीं खड़े हो। तुम घोषणा करना चाहते हो दुनिया के सामने कि देखो, मैं मिट गया। तुम्हारे जैसा नहीं हूं; मिट गया। निमित्त-मात्र हो गया। अहंकार बड़े सूक्ष्म रूपों से चलता है, कि परमात्मा के हाथ का उपकरण हो गया। परमात्मा मेरा उपयोग कर रहा है। मैंने सुना है कि दो ईसाई पादरी एक रास्ते पर मिले; एक कैथोलिक, एक प्रोटेस्टेंट। उनमें कुछ विवाद हो गया। आखिर कैथोलिक पादरी ने कहा कि भाई, हम दोनों एक ही के भक्त, एक ही भगवान के मानने वाले, विवाद उचित नहीं है। और हम दोनों ही उसी परमात्मा के काम में लगे हैं, तुम अपनी मर्जी के

हिसाब से, मैं उसकी मर्जी के हिसाब से। हम दोनों उसी के काम में लगे हैं, तुम अपनी मर्जी के हिसाब से, मैं उसकी मर्जी के हिसाब से।
वहां भी विवाद। वह हल करता दिखाई पड़ रहा है कि समझौता करने की तैयारी
है, कि हम उसी का काम कर रहे हैं, क्या झगड़ा करना! लेकिन झगड़ा तो कायम है। झगड़े में बारीक भेद उसने पीछे कर ही लिया कि मैं उसकी मर्जी के हिसाब से कर रहा हूं और तुम अपनी मर्जी के हिसाब से। तो जो परमात्मा के हाथ का उपकरण हो गया, उसकी तो ऊंचाई कहनी ही क्या!
ऊंचाई पाने के लिए उपकरण तो नहीं बनना चाहते हो? श्रेष्ठता पाने के लिए तो निमित्त बनने की चेष्टा नहीं है?
इस पर जरा भीतर हिसाब लगाना। और अगर होगी, तो साफ देख लोगे। क्योंकि तुम अपने को कैसे धोखा दे सकते हो!
और उसकी मर्जी के अनुसार ही मेरा जीवन बहे... ।
अब जब उसकी ही मर्जी है, तो तुम्हारा क्या खाक जीवन है! उसको ही बहने दो। उसकी ही मर्जी, उसका ही जीवन, तुम बीच में क्यों आते हो? लेकिन नहीं, तब तो मजा ही चला गया। अगर उसकी ही मर्जी और उसका ही जीवन है, और तुम बीच में बिल्कुल न आए, तब तो अहंकार का सारा रस चला गया।
कुछ छोटी-मोटी झलकें भी मिली हैं... ।
अहंकार के रहते हुए झलकें भी कल्पना ही होंगी। और अगर झलक मिल जाए उसकी, तो फिर भी तुम अहंकार को पकड़े रहोगे? हीरे-जवाहरात दिखाई पड़ जाएं, फिर तुम कंकड़-पत्थर हाथ में लिए रहोगे? फिर तुम मुझसे पूछने आओगे, कैसे छोड़ें कंकड़-पत्थर? कैसे झोली खाली करें, ताकि हीरे भर लें? तुम भर ही लोगे, तुम पूछने भी न आओगे, तुम बताने भी न आओगे। तुम हीरे भरकर अपने हीरों के भोग में लग जाओगे।
कबीर ने कहा है, हीरा पाया गांठ गठियाया, फिर बाको बार-बार क्यों खोले।
अब मिल गया हीरा, उसको जल्दी से आदमी गांठ में लपेट लेता है। फिर खोलकर भी नहीं देखता कि कोई और न देख ले। फिर भागता है वहां से कि किसी को पता न चल जाए। हीरा पाकर तुम चिल्लाते थोड़े ही हो कि मिल गया। और जब हीरा मिल जाता है, तो तुम हाथ में जगह हमेशा बना ही लेते हो।
कुछ छोटी-मोटी झलकें मिली हैं... ।
वे कल्पना रही होंगी। अगर वे कल्पना न थीं, तो अनेक अवसरों पर फिर मैं द्वंद्व और दुविधा में पड़ जाता हूं कि यह उसकी मर्जी है या मेरी मर्जी है! जब भी द्वंद्व और दुविधा हो, तब समझना कि यह तुम्हारी ही मर्जी है।
क्योंकि द्वंद्व और दुविधा का उसकी मर्जी से कोई संबंध ही नहीं है।
उसकी मर्जी निर्द्वंद्व है। उसका इशारा दुविधामुक्त है। उसके सामने कोई विकल्प ही नहीं है। उसका भाव निर्विकल्प है। उसके सामने यह या वह, ऐसे कोई विकल्प नहीं हैं। नहीं तो वह इस प्रकृति को बना ही न पाता।
तुम थोड़ा सोचो, यह इतना विराट जो चलता है, अगर इसके पीछे भी कोई दुविधापूर्ण चित्त हो, जो सोचे कि आज सूरज को उगाना कि नहीं, कि आज तारों को चलाना कि नहीं, कि आज लोगों को सांस लिवाना कि नहीं, कि आज फूल खिलें या नहीं, कि इस बार आम में आम ही लगे कि नीम चल जाए। तुम थोड़ा सोचो, अगर कोई दुविधापूर्ण चित्त इस अस्तित्व के पीछे हो, तो खूब भयंकर मजाक हो जाए। फिर तो कुछ भरोसा ही करना संभव न हो; फिर तो इस जीवन में रत्तीभर खड़े होने की जगह न रह जाए। यह तो एक महाभयंकर नरक हो जाए।
नहीं, उसके पीछे कोई दुविधा नहीं है। वहां कोई विकल्प नहीं है। चीजें सहज हो रही हैं, जैसी हो रही हैं।
अगर तुम्हें द्वंद्व और दुविधा मालूम पड़े, तो पहचान लेना, यह तुम्हारी ही मर्जी है। इसको मैं कसौटी कहता हूं। जिस दिन उसकी मर्जी होगी, उस दिन न कोई द्वंद्व है, न कोई दुविधा है। जब तक तुम्हारी मर्जी है, तब तक द्वंद्व और दुविधा है।
निर्द्वंद्व, दुविधामुक्त, निर्विकल्प, कोई विकल्प ही न रह जाए, ऐसा
भी न हो कि बाएं जाऊं कि दाएं जाऊं। बस, तुम पाओ कि कोई उपाय ही नहीं है, तुम दाएं चले जा रहे हो, बाएं है ही नहीं। बाएं जैसी कोई चीज ही नहीं है, बस तुम

चले जा रहे हो, बहे जा रहे हो। इससे अन्यथा हो ही नहीं सकता, जिस दिन ऐसी प्रतीति होने लगे, समझना कि उसकी मर्जी है।
लेकिन ध्यान रखना, इस अभीप्सा में भी अहंकार न बच जाए। यह भी कहीं अहंकार का ही मजा न हो कि हम उसकी मर्जी से चल रहे हैं। उसने हमें इस योग्य माना है कि उसके उपकरण हो जाएं। अहंकार बड़ा सूक्ष्म है। बड़े बारीक उसके रास्ते हैं। उससे थोड़े सावधान रहना। अन्यथा साधक के लिए सब से बड़ी कठिनाई अहंकार से आती है, संसार से नहीं।
संसार भी क्या कठिनाई पैदा करेगा? असली कठिनाई अहंकार से है। और साधना के जगत में बड़े सूक्ष्म अहंकार की तृप्ति हो सकती है। जो जागकर न चलेगा, वह बुरी तरह भटक जाएगा।
लेकिन सूत्र साफ है। अगर तुम अपने को भटकाना ही चाहो, तो बात अलग, अन्यथा सूत्र बिल्कुल साफ है। अगर तुम ठीक से खोजोगे, तो तुम्हें हमेशा चीजें साफ दिखाई पड़ जाएंगी।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन एक मित्र के घर आया। मैं भी बैठा था। मित्र शराब ढाल रहे थे। पुराने पियक्कड़ हैं। नसरुद्दीन भी पुराना पीने वाला है, यह मैं भी भलीभांति जानता था। लेकिन मेरे सामने पता न चले। मित्र को तो कुछ ख्याल न रहा। उन्होंने कहा कि अच्छे आए बड़े मियां, अकेला था और अकेले पीने में कुछ मजा आता नहीं। ठीक मौके पर आ गए।
नसरुद्दीन ने मेरी तरफ देखा और कहा, क्या? मैंने कभी जीवन में शराब छुई भी नहीं। मैं पीने से इनकार करता हूं। तीन कारण हैं न पीने के। पहला, मैंने कभी शराब पी ही नहीं। दूसरा, मैं एक सभा में बोलने जा रहा हूं शराब के खिलाफ। सो पीकर जाना उचित न होगा। और तीसरा, मैं घर से ही पीकर चला हूं। जरा ही तुम भीतर झांकोगे, तुम खुद ही पकड़ लोगे। पर्त-पर्त तुम्हारा अहंकार है। कोई दूसरा तुम्हें बताएगा, तो अड़चन भी होगी। इसलिए मैं कभी-कभी ऐसे प्रश्न छोड़ भी देता, नहीं लेता। क्योंकि अगर मैं बताऊंगा, तो वह भी अड़चन होगी। उससे भी चोट लगेगी। उससे तुम अपने अहंकार की रक्षा में लग सकते हो कि नहीं, मैं गलत कह रहा हूं। इसलिए मैं ऐसे प्रश्न छोड़ भी देता हूं कि इनको न उठाऊं, क्योंकि सीधे तुम्हें समझना कहीं इसी कारण मुश्किल न हो जाए। लेकिन अगर तुम सच में ही खोज में निकले हो, तो तुम्हें समझ में बात आ जाएगी।
बात बड़ी सीधी है। अगर तुम छिपाना ही न चाहो, तो छिपने की कोई जगह नहीं है। और छिपाओगे, तो तुम्हारी हानि है, किसी और की हानि नहीं है। धोखा अंततः अपने को ही दिया गया सिद्ध होता है, किसी और को दिया गया सिद्ध नहीं होता।

अब सूत्रः
तथा हे अर्जुन, तू बुद्धि का और धारणा का भी गुणों के कारण तीन प्रकार
का भेद संपूर्णता से विभागपूर्वक मेरे से कहा हुआ सुन।
हे पार्थ, प्रवृत्ति-मार्ग और निवृत्ति-मार्ग को तथा कर्तव्य और अकर्तव्य को एवं भय और अभय को तथा बंधन और मोक्ष को जो बुद्धि तत्व से जानती है, वह बुद्धि तो सात्विकी है।
और हे पार्थ, जिस बुद्धि के द्वारा मनुष्य धर्म और अधर्म को तथा कर्तव्य और अकर्तव्य को भी यथार्थ नहीं जानता है, वह बुद्धि राजसी है।
और हे अर्जुन, जो तमोगुण से आवृत हुई बुद्धि अधर्म को धर्म ऐसा मानती
है तथा और भी संपूर्ण अर्थों को विपरीत ही मानती है, वह बुद्धि तामसी है। कृष्ण हर वचन के पहले कहते हैं, हे पार्थ, मुझसे कहा हुआ सुन।
सुनने पर बड़ा जोर है। अर्जुन चूकता जाता है, सुन नहीं पाता। कृष्ण कहे जाते हैं और अर्जुन नहीं सुन पाता। कृष्ण कुछ कहते हैं, अर्जुन कुछ सुनता है। वह सुनने से चूकता जा रहा है। सुई बैठती ही नहीं कृष्ण के हृदय पर उसकी। वह वही नहीं सुन पाता जो कृष्ण कहना चाहते हैं, कह रहे हैं। इसलिए संवाद लंबा हुआ जाता है। इसलिए हर वचन के पहले वे कहते हैं, हे पार्थ, मेरे से कहा हुआ सुन।
ये जो तीन गुण हैं सांख्य के, बड़े अनूठे हैं। जीवन के हर पहलू पर लागू हैं। यह कोई दर्शनशास्त्र नहीं है। यह जीवन का सीधा-सीधा विश्लेषण है।

ऐसा है; प्रकृति त्रिगुणमयी है। इसलिए स्वभावतः प्रत्येक चीजों के तीन गुण होंगे। और उन तीन के विभाजन से समझ के लिए बड़ी सुविधा मिलती है। उन कोटियों से चीजें साफ दिखाई पड़ने लगती हैं। और जिनके मन अंधेरे में दबे हैं, धुएं से घिरे हैं, उलझे-उलझे हैं, उनके लिए काफी सहारा हो जाता है। तमोगुण से आवृत हुई बुद्धि अधर्म को धर्म ऐसा मानती है... ।
वह जो तमस से दबा हुआ व्यक्ति है, उसका लक्षण, वह अधर्म को धर्म जैसा मानता है। उसकी बुद्धि विपरीत होती है। वह प्रकाश को अंधेरा मानता है; अंधेरे को प्रकाश मानता है। वह जीवन को मृत्यु की तरह जानता है; वह मृत्यु को जीवन की तरह जानता है। उसका सब कुछ विपरीत है। वह शीर्षासन कर रहा है। उसे सब उलटा दिखाई पड़ता है। उसकी खोपड़ी उलटी है।
मुल्ला नसरुद्दीन के संबंध में कहानी है कि जब वह लड़का था, छोटा था, तो उसका नाम उलटी खोपड़ी था। क्योंकि अगर तुम्हें चाहिए हो कि वह चुप बैठे, तो तुम्हें कहना चाहिए कि नसरुद्दीन शोरगुल कर। तब वह चुप बैठता था। अगर तुम चाहते हो कि वह शोरगुल करे, तो तुम्हें कहना चाहिए, नसरुद्दीन चुप बैठ। तब वह शोरगुल करेगा। तुम जो कहोगे, वह उससे विपरीत करेगा।
अहंकार विपरीत करने में जीता है। तमस गहन अहंकार है।
एक दिन बाप नसरुद्दीन के साथ नदी से लौट रहा है। गधे पर नसरुद्दीन के रेत के बोरे लादे हुए हैं। पुल पर से दोनों गुजर रहे हैं। बोझ भारी है और गधे की बाईं तरफ बोरा ज्यादा झुका हुआ है। बाप डरा। उसने दूर से अपने गधे को सम्हालते हुए नसरुद्दीन को कहा कि देख, बाईं तरफ बोझा ज्यादा झुक रहा है। तो कहना चाहिए था बाप को, अगर कोई साधारण लड़का होता, कि दाईं तरफ जरा बोझ को झुका। लेकिन यह उलटी खोपड़ी है। अगर इसे कहो, दाईं तरफ झुका, तो यह बाईं तरफ झुका देगा और बोरा गिर ही जाएगा।
तो बाप ने कहा कि देख बेटा, बाईं तरफ बोरे को जरा झुका, दाईं तरफ ज्यादा झुक रहा है। और नसरुद्दीन ने पहली दफे जीवन में बाईं तरफ ही झुका दिया। बोरा भी गिरा, गधा भी गिर गया।
बाप ने कहा, नसरुद्दीन, आज तूने यह अपने आचरण से विपरीत व्यवहार कैसे किया! नसरुद्दीन ने कहा, मैं अठारह साल का हो गया। अब मैं कोई बच्चा नहीं हूं। अब मैं भी प्रौढ़ हो गया। अब जरा सोचकर बातें कहा करें।
तमस विपरीत बुद्धि का नाम है। जो करवाना हो, उसे तमस करने को राजी नहीं होता; वह उससे विपरीत करने को राजी होता है। और इसलिए कई बार तामसी व्यक्ति के साथ तुम्हें बहुत समझकर व्यवहार करना चाहिए। हो सकता है, तुम्हारे उसे सुधारने के सारे उपाय ही उसे बिगाड़ने के कारण हो जाएं।
एक महिला मेरे पास आती है। पति शराब पीते हैं। वह सुधार रही है जिंदगीभर से उनको। वे सुधरते नहीं, और बिगड़ते जाते हैं। आमतौर से शराबी तामसी प्रवृत्ति के होते हैं।
मैं उनकी पत्नी को कह-कहकर थक गया कि तू कम से कम सुधारना बंद कर दे। बीस साल तू सुधार भी चुकी। बीस साल काफी लंबा वक्त होता है। कुछ परिणाम नहीं हुआ; सिर्फ जीवन बर्बाद हो गया। कलह और कलह। या तो तू उन्हें सुधार रही है या वे शराब पीकर घर में उपद्रव कर रहे हैं। बस, दो ही घटनाएं घटती रही हैं बीस साल से। दोनों ही असुखद हैं, दोनों ही दुखपूर्ण हैं। पति नहीं छोड़ते, कृपा करके तू उनको सुधारना ही छोड़ दे।
वह सुधारना नहीं छोड़ सकती। मैंने उससे कहा कि तीन दिन तू कृपा कर; तीन दिन कुछ भी मत कह। उसने दूसरे दिन मुझे आकर कहा कि यह नहीं हो सकता। मुझसे भी नहीं रहा जाता। वह भी तामसी प्रवृत्ति है।
तो मैंने कहा कि मैं ही कम से कम तेरे से कहना बंद करूं, कि तू सुधारना बंद कर; क्योंकि यह तो झंझट बड़ी है। मैं सोचता था, पति ही तामसी प्रवृत्ति है; तू भी वही है। अब तू यह भी नहीं समझ सकती कि पति के लिए तो शराब पीना बीस साल की लंबी आदत है, बड़ी मुश्किल होगी। तुझे तो कुछ नशा नहीं छोड़ना है, सिर्फ कहना छोड़ना है। अगर कहने में इतना नशा है, तो शराब में कितना होगा, तू थोड़ा हिसाब तो लगा, बीस साल!
वह कहती है कि जो भी हो, मगर यह मुझसे भी रहा नहीं जाता कि मैं कुछ न कहूं। देखती हूं, तो बस आग लग जाती है। तो मैं कहे बिना नहीं रुक सकती।

और मैं जानता हूं कि जब तक वह कहे बिना नहीं रह सकती, तब तक पति शराब छोड़ नहीं सकता। वह अहंकार की जिद्द हो गई है। उस पर सारा अटका है अहंकार, कौन जीतता है?
अहंकार को जीत की चिंता है। न सुख की चिंता है, न शांति की चिंता है, न मुक्ति की चिंता है, जीत की चिंता है। और जीतना भी किससे है? इस गरीब पत्नी से जीतने के लिए वह अपना जीवन गंवा रहा है। और यह गरीब पत्नी भी उस गरीब पति से जीतने के लिए अपना जीवन गंवा रही है। इन बीस साल में मोक्ष मिल सकता था। इस बीस साल में सिर्फ नरक बढ़ा है।
लेकिन तामसी प्रवृत्ति के व्यक्ति की वह आदत है। उसे बदलना भी बड़ा कठिन मामला है। उससे थोड़ा सोचकर बोलना चाहिए। उससे जो करवाना हो, वही करने को नहीं कहना चाहिए।
क्योंकि हे अर्जुन, जो तमोगुण से आवृत हुई बुद्धि है, वह अधर्म को धर्म ऐसा मानती है, संपूर्ण अर्थों को विपरीत मानती है, वह बुद्धि तामसी है।
और हे पार्थ, जिस बुद्धि के द्वारा मनुष्य धर्म और अधर्म को तथा कर्तव्य और अकर्तव्य को भी यथार्थ नहीं जानता, वह बुद्धि राजसी है। तामसी बुद्धि उलटा करके देखती है, सात्विक बुद्धि सीधा-सीधा देखती है। वह शुद्ध प्रत्यक्षीकरण है। जैसा है, वैसा देखती है। पत्थर को पत्थर, फूल को फूल; धर्म को धर्म, अधर्म को अधर्म। जैसा है, वैसे को वैसा ही देखना सात्विक बुद्धि है। जैसा नहीं है, वैसा देखना, उलटा देखना तामसी बुद्धि है। दोनों के मध्य में राजसी बुद्धि है।
राजसी बुद्धि, जिस बुद्धि के द्वारा धर्म और अधर्म को तथा कर्तव्य-अकर्तव्य को भी यथार्थ नहीं जानता है... ।
ठीक-ठीक समझ में नहीं आता कि क्या क्या है, वह मध्य में उलझा हुआ है, बिगूचन में पड़ा हुआ है। कुछ-कुछ समझ में भी आता है, कुछ-कुछ समझ में नहीं भी आता। धर्म भी कुछ धर्म मालूम पड़ता है, अधर्म भी कुछ धर्म मालूम पड़ता है। अधर्म भी अधर्म जैसा दिखाई पड़ता है और धर्म में भी कुछ अधर्म दिखाई पड़ता है। राजसी व्यक्ति मध्य में खड़ा है। वह आधा-आधा बंटा है, वह त्रिशंकु है। इसलिए तुम तामसी व्यक्ति को भी राजसी व्यक्ति से ज्यादा शांत और स्वस्थ पाओगे। यह बड़ी अनूठी घटना है।
तामसी वृत्ति के व्यक्ति आमतौर से ज्यादा सरलता से जीते हुए मिलेंगे, क्योंकि कोई दुविधा नहीं है। साफ ही है उन्हें। जो साफ है, वह बिल्कुल गलत है, लेकिन उनकी तरफ से उन्हें साफ है। खाओ-पीओ, मौज करो; यह उनकी परम गति है। इसके पार कुछ है नहीं।
चार्वाक ने कहा है, ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत। अगर ऋण लेकर भी घी पीना पड़े, पीओ! क्योंकि मरकर कोई लौटता है? चुकाना किसको है? उधारी कहीं होती है इस संसार में? जिसने ले लिया, ले लिया। जिसने न लिया, वह नासमझ है। लूट-खसोट भी करनी पड़े, तो कर लो। क्योंकि चार दिन की जिंदगी है, गई तो गई। भोगना मत छोड़ देना। क्योंकि मरकर फिर कोई वापस नहीं लौटता।
अब यह चार्वाक का जो पूरा जीवन-दर्शन है, वह तमस पर आधारित है। वह जो तामसी वृत्ति का व्यक्ति है, उसका ही जीवन-दर्शन है।
यह चार्वाक शब्द भी बड़ा अच्छा है। चार्वाक का अर्थ है, जिसके वचन बड़े मधुर हैं, चारु-वाक, मधुर वचनों वाला। अब यह बात बड़ी मधुर लगती है कि खाओ-पीओ, मौज करो; उधार भी लेकर करना पड़े, करो। चुकाना किसको है? ये कानून, अदालत, ये सब आदमी के ढोंग-धतूरे हैं। कोई फिक्र नहीं। न कोई पाप है, न कोई पुण्य है; न कोई स्वर्ग है, न कोई परलोक है। यह सब पंडितों, ब्राह्मणों, पुरोहितों की ईजाद है। इनके धोखे में मत पड़ो।
चार्वाक ने कहा है, यह धूर्तों की खोज है। स्वर्ग, मोक्ष, धर्म, पुण्य,
यह सब बकवास है। सार इतना है कि भोग लो, पी लो जितना पीना हो, फिर दुबारा आना न होगा। न कोई आत्मा है, न कोई अमरत्व है। क्षणभंगुर जीवन है, पर बस यही जीवन है।
चार्वाक-दर्शन को चारु-वाक नाम मिल गया। करोड़ों लोगों को उसके वचन बड़े प्रीतिकर लगे होंगे। दूसरा नाम है चार्वाक का, लोकायत। लोकायत का

अर्थ है, जिसे लोक में स्वीकृति है, जिसे अनेक लोग मानते हैं, बहुसंख्या मानती है।
तुम हैरान होओगे, क्योंकि तुम्हें चार्वाकवादी कहीं भी नहीं मिलेगा। लेकिन अगर तुम खोजोगे, तो तुम्हें सौ में से निन्यानबे चार्वाकवादी मिलेंगे। कोई हिंदू बनकर बैठा है, कोई मुसलमान बनकर बैठा है, कोई ईसाई बनकर बैठा है, लेकिन जरा कपड़े उतारकर भीतर खोजो, तुम पाओगे चार्वाक। लोकायत नाम बिल्कुल अच्छा है। अधिक लोग चार्वाक को ही मानते हैं। वे भला पूजा महावीर की करते हों, नाम मोहम्मद का लेते हों, अंततः चरण चार्वाक के पकड़े हुए हैं। उनका जीवन बताएगा। क्योंकि कहते वे कुछ हों, जो वे करते हैं, उससे ही प्रमाण मिलेगा।
मगर फिर भी तुम पाओगे कि ये लोग एक तरह से शांत होंगे। इनके जीवन में बहुत दुविधा नहीं है। अज्ञानी आदमी में भी एक तरह की शांति होती है। जैसा ज्ञानी आदमी के जीवन में एक महाशांति होती है। उसकी थोड़ी-सी झलक अज्ञानी में भी मिलती है। कारण हैं।
ज्ञानी भी सुनिश्चित है कि सत्य सत्य है, असत्य असत्य है। अज्ञानी भी सुनिश्चित है कि उसे, जिसे वह सत्य समझता है, वह सत्य है; और जिसे असत्य समझता है, वह असत्य है।
दोनों कम से कम सुनिश्चित हैं। मध्य में दोनों के राजसी व्यक्ति है;
वह डांवाडोल है। वह ऐसे है, जैसे रस्सी पर चल रहा हो; कभी बाएं झुकता, कभी दाएं झुकता। उसे दोनों बातें ठीक भी लगती हैं और इतनी ठीक भी नहीं लगतीं कि चुन ले। वह हमेशा दुविधा में है।
राजसी व्यक्ति हमेशा उलझन में है। वह निर्णय नहीं कर पाता; आधा-आधा जीता है। इसलिए राजसी व्यक्ति सब से ज्यादा तनावग्रस्त होगा। उसके जीवन में सब से ज्यादा तनाव, अशांति, बेचैनी, उत्तेजना होगी।
और हे पार्थ, जिस बुद्धि के द्वारा धर्म और अधर्म को तथा कर्तव्य और अकर्तव्य को भी यथार्थ नहीं जानता है, वह बुद्धि राजसी है। प्रवृत्ति-मार्ग और निवृत्ति-मार्ग को तथा कर्तव्य और अकर्तव्य को,
भय और अभय को, बंधन और मोक्ष को जो बुद्धि तत्व से जानती है, जैसा है वैसा जानती है, वह बुद्धि सात्विकी है।
अपने भीतर खोजना कि कौन-सी बुद्धि तुम्हारे भीतर सक्रिय है। और जब तक सात्विक बुद्धि तक पहुंचना न हो जाए, तब तक समझना कि धर्म से संबंध न हो सकेगा।
अगर तामसी व्यक्ति मंदिर भी जाएगा, तो गलत कारणों से जाएगा। राजसी व्यक्ति मंदिर जाएगा, तो पूरा न जा सकेगा, अधूरा जाएगा, आधा बाजार में छूट जाएगा। सात्विक व्यक्ति को मंदिर जाने की जरूरत नहीं, वह जहां होता है, वहीं मंदिर आ जाता है।
अपने भीतर ठीक से विश्लेषण कर लेना जरूरी है।
यह अर्जुन तामसी तो नहीं है; दुर्योधन तामसी है। इसलिए गीता दुर्योधन
से नहीं कही जा सकी। कहने का कोई उपाय ही न था। प्रश्न ही नहीं है।
दुर्योधन तो चार्वाकवादी है; तो खाओ-पीओ, मौज करो, यही सब कुछ है। इसके पार कुछ भी नहीं है। जाना कहां, पाना क्या, आत्मा क्या, परमात्मा क्या--सब व्यर्थ बकवास है। भोग ही एकमात्र मोक्ष है।
दुर्योधन के लिए कोई सवाल ही नहीं उठा। कोई सवाल है ही नहीं। दुर्योधन एक अर्थ में सीधा-सादा है। उसकी बुद्धि कितनी ही गलत हो, मगर वह सीधा-सादा आदमी है। उसके जीवन में प्रश्न भी नहीं है। वह अंधेरे से तृप्त है। उसकी जिज्ञासा भी अभी उठी नहीं। अभी बीज टूटा ही नहीं, अंकुर फूटा ही नहीं। कृष्ण से पूछने का सवाल ही नहीं है।
सात्विक बुद्धि का वहां कोई व्यक्ति नहीं है, नहीं तो वह भी नहीं पूछता। इसलिए मैं कहता हूं, अगर महावीर वहां होते, तो वे चुपचाप उतरकर रथ से चले गए होते। वे कृष्ण से पूछते भी नहीं कि हे महाबाहो, मेरे हाथ शिथिल हुए जाते हैं, मेरा गांडीव गिरा जाता है; कि मैं कंप रहा हूं, मैं भयभीत हूं। मैं जानता नहीं, क्या करने योग्य है, क्या करने योग्य नहीं है। मुझे बोध दें।

महावीर यह बात ही नहीं करते, बुद्ध यह बात ही नहीं करते। वे भी क्षत्रिय थे। वे भी धनुष-बाण ऐसा ही चलाना जानते थे जैसा अर्जुन जानता था। उनके भी अपने गांडीव थे। अगर युद्ध के स्थल पर वे होते, वे चुपचाप उतरकर चल दिए होते। कृष्ण पूछते उनके पीछे भी दौड़ते, तो भी वे कहते, नाहक... हमें कुछ पूछना नहीं है।
न दुर्योधन को कुछ पूछना है, न बुद्ध को कुछ पूछना है। पूछना अर्जुन
को है, अर्जुन राजसी है। वह मध्य में है। जो मध्य में है, उसे पूछना है। क्योंकि उसे निश्चय करना है। उसे डर है, अगर कृष्ण सहारा न देंगे, तो वह गिर जाएगा, जहां दुर्योधन है वहां। वह नहीं चाहता, दुर्योधन की तरह युद्ध में उतरना नहीं चाहता। वह तो बिल्कुल व्यर्थ मालूम पड़ रहा है। वह तो साफ है कि उसमें सिर्फ हिंसा होगी, हत्या होगी, लाखों लोग मरेंगे, पाप फैलेगा। वीभत्स है। उसमें कुछ रस नहीं मालूम होता।
वह महावीर की अवस्था में भी नहीं है कि साफ हो जाए, दृष्टि खुल जाए, रख
दे गांडीव और जंगल की तरफ चला जाए। वह सात्विक स्थिति भी नहीं है। वह राजस है, वह मध्य में खड़ा है--अनिर्णीत, बेचैन, डांवाडोल, कंपता हुआ। इसलिए कृष्ण से मेल है।
तामसिक व्यक्ति शिष्य बनता ही नहीं। सात्विक को बनने की जरूरत नहीं। राजसिक को! अर्जुन को! सभी शिष्य अर्जुन हैं। अर्जुन तो शिष्यों का सार प्रतीक है।
अपने भीतर खोजना। लेकिन ध्यान रखना, कई और खतरे भी हैं।
जैसे मैंने कहा, यह महाभारत का युद्ध और यह महाभारत की कथा बड़ी अनूठी है। वहां युधिष्ठिर भी है। वह भी प्रश्न नहीं पूछता। वह धर्मराज है, लेकिन वह महावीर की तरह युद्ध छोड़कर भी नहीं चला जाता। वह सिर्फ पंडित है। वह सात्विक है नहीं। सात्विक का ख्याल है, धारणा है, शब्द हैं। वह पंडित है, उसे प्रज्ञा नहीं हुई है। उसे कोई बोध नहीं हुआ है; वह कोई जाग नहीं गया है। वह वहीं है, जहां अर्जुन है, लेकिन पांडित्य में दबा है। अर्जुन सीधा- सादा है। वह पांडित्य में दबा नहीं है। इसलिए प्रश्न पूछ सकता है। युधिष्ठिर प्रश्न नहीं पूछ सकता, उत्तर उसे खुद ही मालूम है। उत्तर, जो उसने खुद जीवन से खोजे नहीं हैं, उधार हैं।
तुम महाभारत में सभी को पा लोगे; वह सारी दुनिया का संक्षिप्त चित्र है। अगर एक-एक पात्र को महाभारत के तुम खोजने जाओगे, तो तुम पाओगे कि वह प्रतीक है। और उस पात्र के पीछे उस तरह के लोग सारी दुनिया में हैं, वह टाइप है।
लेकिन अगर तुम्हारे मन में जिज्ञासा उठी है, तो तुम जानना कि तुम मध्य में खड़े हो। अगर जिज्ञासा के सूत्र को पकड़कर आगे न बढ़े, तो पीछे गिर जाने का डर है। अगर ऊपर न उठे, तो दुर्योधन हो जाने का डर है।
और कृष्ण की पूरी चेष्टा यही है कि वे अर्जुन को दुर्योधन होने से बचा लें और अर्जुन को अर्जुन होने से भी बचा लें। और अगर अर्जुन युद्ध में उतरे, तो ऐसे उतरे, जैसे बुद्ध अगर युद्ध में उतरते तो उतरते--इतनी पवित्रता से, इतनी निर्दोषता से, इतने निर्विकार होकर, एक उपकरण-मात्र, निमित्त-मात्र।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग आठ
गीता दर्शन अध्याय 18
दसवां प्रवचन

गुरु पहला स्वाद है

धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः।
योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी।। 33।।
यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन।
प्रसड्गेन फलाकाड्क्षी धृतिः सा पार्थ राजसी।। 34।।
यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च।
न विमुंचति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी।। 35।।
और हे पार्थ, ध्यान-योग के द्वारा जिस अव्यभिचारिणी धृति अर्थात धारणा से मनुष्य मन, प्राण और इंद्रियों की क्रियाओं को धारण करता है, वह धृति तो सात्विकी है।
और हे पृथापुत्र अर्जुन, फल की इच्छा वाला मनुष्य अति आसक्ति से जिस धृति के द्वारा धर्म, अर्थ और कामों को धारण करता है, वह धृति राजसी है। तथा हे पार्थ, दुष्ट बुद्धि वाला मनुष्य जिस धृति अर्थात धारणा के द्वारा निद्रा, भय, चिंता और दुख को एवं उन्मत्तता को भी नहीं छोड़ता है अर्थात धारण किए रहता है, वह धृति तामसी है।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः कल आपने कहा है कि संसार के अनुभवों में जल्दी मत करना। लेकिन आप तो अत्यंत जल्दी में हैं, फिर आप मिलेंगे कहां? मिलेंगे कैसे?

जल्दी से ज्यादा देर कराने वाला और कोई तत्व नहीं है। जितनी जल्दी करोगे, उतनी देर हो जाएगी। क्योंकि जल्दी में कुछ भी गहरा तो हो ही नहीं पाता; सतह पर ही हो सकता है।
अगर संसार से भागने की भी जल्दी की, तो गहरे में संसार से बंधे रह जाओगे। तब तुम्हारी स्वतंत्रता वैसी ही होगी, जैसे घोड़े को खूंटे से बांध दिया हो, लेकिन काफी लंबी रस्सी दे दी हो। घूमता रहता है उसी रस्सी से बंधा। सोचता है, स्वतंत्र है। लेकिन स्वतंत्र नहीं है। जल्दी ही अनुभव में आ जाएगा कि बंधा है।
रस्सी लंबी हो सकती है। संसार से बिना अनुभव के जो भाग गया, उसकी रस्सी लंबी हो सकती है। वह हिमालय में भी रहे, बाजार की खूंटी से ही बंधा रहेगा; चित्त तो वहीं घूमेगा।
चित्त तो वहीं घूमता है, जहां अधूरा अनुभव रह जाता है। फिर तुम चित्त
के घूमने से मुक्त होना चाहते हो। वह तुम न कर पाओगे। अड़चन चित्त की नहीं है, अधूरे अनुभव की है।
अब एक आदमी मेरे पास आता है। वह कहता है, जब भी ध्यान करने बैठता हूं, संसार भर की चीजें याद आती हैं।
इसका अर्थ क्या है? इसका अर्थ है, मन वहां जाना चाहता है, जहां से अतृप्त लौट आया है। अतृप्त तो वह भी लौटेगा, जो पूरा जानकर लौटा है, लेकिन तब अतृप्ति सुनिश्चित हो जाएगी। अभी इसकी अतृप्ति सुनिश्चित भी नहीं है। अभी यह सोचता है, शायद तृप्ति मिल जाती, शायद मैं जल्दी आ गया। मैंने पूरा खोजा नहीं, कहीं कोई खजाना हो ही। किसी और उपाय से सफलता मिल जाती। सारा संसार गलत तो नहीं हो सकता। इतने लोग घूम रहे हैं, खोज रहे हैं--धन, पद, प्रतिष्ठा। सभी पागल तो नहीं हो सकते। इसे अपने पर संदेह आता है, क्योंकि अपना अनुभव मजबूत नहीं है।
मैं एक सड़क से गुजर रहा था एक नगर में और एक चर्च के द्वार पर मैंने एक तख्ती लगी देखी। छपी हुई तख्ती लगी थी। शायद और चर्चों के द्वार पर भी लगाई गई होगी। तख्ती पर लिखा था, इफ टायर्ड आफ सिन, कम इन--अगर पाप से थक गए, तो भीतर आ जाओ।

तख्ती बड़ी मौजूं मालूम पड़ी। लेकिन तख्ती के नीचे हाथ से घसीटे अक्षरों में जैसे किसी ने लाल लिपिस्टिक से लिखा था, इफ नाट, देन फोन, फोर सेवन वन वन--अगर न थके हों, तो फोन नंबर चार सात एक एक पर खबर करें। किसी वेश्या का पता था।
बात तो और भी मौजूं लगी। थक गए हों पाप से, तो ही मंदिर में जाने का उपाय है। न थके हों, तो वेश्यागृह खोजना ही उचित है। क्योंकि जो थककर नहीं जाएगा, वह मंदिर में तो चला जाएगा, लेकिन मन वेश्यागृह में छूट जाएगा।
और असली सवाल मन का है, तुम्हारी देह का नहीं है। तुम अपनी देह को तो पूरा का पूरा साष्टांग मंदिर में ले जा सकते हो, लेकिन मन को कैसे ले जाओगे? मन तुम्हारी सुनता नहीं। तुम मंदिर में होते हो, मन अपने मंदिरों में भटकता है। तो मंदिर में बीता वह समय व्यर्थ ही गया, जब मन वहां न था। इसलिए कहता हूं, जल्दी मत करना। और मैं रहूं या न रहूं, अगर तुमने जल्दी न की, तो कोई न कोई तुम्हें मिल जाएगा। रूप-रंग बदल जाते हैं, नाम बदल जाते हैं, पर कोई राह पर तुम्हें मिल जाएगा, जो आगे का इशारा कर देगा।
जब भी तुम तैयार हो, इशारा करने वाला मिल ही जाता है। वह जीवन के गणित
का हिस्सा है। उसमें जरा भी संशय का कोई कारण नहीं है। उससे भिन्न कभी हुआ ही नहीं है। जब शिष्य तैयार है, गुरु उपलब्ध हो जाता है।
हां, अगर तुमने जिद्द की मुझसे ही मिलने की, तो तुम वंचित रह जाओगे। अगर तुम्हें गुरु चाहिए, तो गुरु मिल जाएगा। लेकिन अगर गुरु का भी आग्रह है कि वह इसी रूप-रंग में मिले, तो तुम मुश्किल में पड़ जाओगे। तो तुम गुरु खोज ही नहीं रहे हो। तुम कोई मोह, कोई आसक्ति खोज रहे हो। तब तुम्हारा संसार इतना बड़ा है कि उसने गुरु को भी डुबा लिया है। तब तुम्हारा गुरु भी संसार का ही हिस्सा है।
अन्यथा तुम्हें क्या प्रयोजन है कि महावीर से राह मिलती है, कि बुद्ध से, कि क्राइस्ट से, कि मोहम्मद से! जो भी मिल जाएगा, तुम उससे पूछ लोगे। तुम स्टेशन की तरफ भागे जा रहे हो, राह पर कोई आदमी मिल जाता है। तुम उससे पहले यह पूछते हो कि आप हिंदू हैं या मुसलमान, क्योंकि मैं पूछना चाहता हूं, स्टेशन का रास्ता कहां है! कोई भी नहीं पूछता हिंदू-मुसलमान को, तुम रास्ता पूछ लेते हो। तुम यह भी नहीं पूछते रास्ता पूछने के बाद कि तुम हिंदू थे कि मुसलमान! रास्ते से प्रयोजन है, मंजिल से प्रयोजन है। जिसने भी बता दिया, धन्यवाद देकर आगे बढ़ जाते हो।
मुझसे क्या लेना-देना है? कोई न कोई मिल जाएगा, जल्दी मत करना। और मजे
की बात यह है कि अगर तुम जल्दी न करो, तो शायद मुझसे ही तुम्हें राह मिल जाए। अगर तुम जल्दी करो, तो मुझसे तो मिल ही न पाएगी, आगे भी वह जो जल्दबाजी है, वह तुम्हें चुकाती चली जाएगी। जल्दबाजी चुकाती है, क्योंकि जल्दबाजी उत्तेजना है। वह एक तने हुए चित्त का लक्षण है। वह एक परेशान, व्यथित-चित्त की दशा है।
इस दशा में कहीं कोई परमात्मा से मिला है! किसी ने सत्य को जाना है! कोई समाधि को उपलब्ध हुआ है! धैर्य, अत्यंत धैर्य चाहिए। इतना धैर्य चाहिए कि जब भी होगा, हम राजी हैं। तब तो अभी भी हो सकता है।
जल्दी में ही तो तुम चूके हो पहले भी। तुम इतनी भाग-दौड़ में हो कि तुम सुन ही नहीं पाते, क्या मैं कह रहा हूं। तुम पहुंचने को इतने उत्सुक हो कि तुम सुन ही नहीं पाते कि मैं तुम्हें कहां पहुंचाने के लिए इशारा कर रहा हूं। तुम देख ही नहीं पाते। तुम्हारी आंखें जल्दी से भरी हैं। तुम्हारे प्राण जल्दी से कंप रहे हैं।
धैर्य हो, तो ही बीज रोपित हो सकेगा। धैर्य हो, तो ही बीज तुम्हारे हृदय की भूमि में उतर सकेगा, अंकुरित हो सकेगा। बीज को तुम डालते हो जमीन पर और जमीन कंपती रहे और भूकंप आते रहें, तो बीज टिक ही न पाएगा। वह अपनी जड़ें फैला ही न पाएगा। फेंक-फेंक दिया जाएगा। उखड़-उखड़ जाएगा। बार-बार बाहर आ जाएगा।
तुम थोड़े भूकंप से बचो। जल्दी, भूकंप लाती है। वह चित्त की बड़ी ही कंपायमान दशा है। जल्दी नहीं। होगा। और जब भी होगा, तुम प्रतीक्षा करने को राजी हो। ऐसी अगर प्रतीक्षा हो, तो अभी भी हो सकता है।

यही जटिलता है, जो तुम्हारी समझ में नहीं बैठ रही है। अगर तुम अनंत तक राजी हो प्रतीक्षा करने को, तो इसी क्षण हो सकता है, क्योंकि फिर कोई कारण न रहा देर तक रुकने का। जल्दी खो गई, धैर्य बैठ गया, बीज रोपित हो गया। बीज रोपित हो जाए, रूपांतरित भी हो जाएगा।
भूलकर भी जल्दी मत करना। खोना हो, तो वही रामबाण उपाय है। पाना हो, तो धैर्य।

दूसरा प्रश्नः साधक सदगुरु को खोज ले, तो क्या खोज मिट जाती है?

तभी खोज शुरू होती है। उसके पहले तो खोज के नाम पर ऐसे ही व्यर्थ का चलना-फिरना था। उसके पहले तो टटोलना था अंधेरे में। न कोई मार्ग था, न कोई दिशा थी, न कोई दृष्टि थी।
सदगुरु के मिलते ही खोज शुरू होती है। व्यर्थ दौड़-धूप समाप्त हो जाती है। वह खोज थी ही नहीं। असली खोज शुरू होती है। और असली खोज शुरू हो जाए, तो आधी तो पूरी ही हो गई। बहुत थोड़ा ही बचता है गुरु के बाद।
गुरु को जिसने खोज लिया, उसका अर्थ है, वह झुका, मिटा, अहंकार से थोड़ा हटा। तभी तो गुरु को खोज पाया, नहीं तो गुरु को नहीं खोज पाएगा। और इसी मार्ग पर तो गुरु और आगे ले जाएगा कि बिल्कुल मिट जाओ, थोड़े क्या मिटे! जब मिटे, तो बिल्कुल ही मिट जाओ। थोड़े से मिटने से गुरु मिलता है, पूरे मिटने से परमात्मा मिल जाता है। अब तो मार्ग साफ है। थोड़े से हटे, गुरु मिला। बिल्कुल ही हट जाओ बीच से, परमात्मा मिल जाता है।
गुरु तो पहला स्वाद है, पहली सुगंध है। बगीचा बहुत करीब है। ठंडी हवाएं छूने लगीं, सुवासित हवाएं छूने लगीं। अब तुम निश्चिंत हो सकते हो। गुरु को पाकर आश्वासन मिल गया कि जो एक को हो सकता है, वह तुम्हें भी हो सकता है।
गुरु तो एक झरोखा है, एक वातायन; उससे तुम झांक लोगे दूर के दृश्यों को। उन्हें पाने के लिए तुम्हें यात्रा करनी पड़ेगी। लेकिन उनका होना सुनिश्चित हो जाए, तो यात्रा कठिन नहीं है।
असली कठिनाई है आश्वासन की। तुम खोजते हो, तब भी तुम्हें पक्का नहीं
है कि तुम जिसे खोज रहे हो, वह है भी। कैसे खोज होगी जब तुम्हारे पैर ही डगमगा रहे हैं! जब तुम्हारा हृदय ही निश्चित नहीं है! जब भीतर श्रद्धा का उदय ही नहीं हुआ है! तुम खोज रहे हो किसी चीज को, और पक्का ही नहीं है कि वह है। तुम कैसे पूरे प्राणपण से इस खोज में उतरोगे? तुम कैसे अपने जीवन को दांव पर लगाओगे?
गुरु को मिलकर कुछ और थोड़े ही मिलता है, भरोसा मिलता है, आस्था मिलती है। इस व्यक्ति को हो सका, तो तुम्हें भी हो सकता है। इसके माध्यम से एक झलक मिलती है दूर के पर्वत शिखरों की। पहुंचने में समय लगेगा, यात्रा होगी। लेकिन एक बार दूर का गौरीशंकर दिखाई पड़ जाए, आंखें उस दृश्य को देख लें, उस शीतलता को थोड़ा-सा पी लें, उस सौंदर्य में थोड़ी डूब जाएं, तो फिर मंजिल बड़ी आसान हो जाती है। फिर तुम दौड़कर चलने लगते हो। मार्ग साफ है, दिशा स्पष्ट है, भीतर आस्था का उदय हुआ है। अब देर कितनी ही लग जाए, लेकिन मंजिल है। फिर देर क्या है, पहुंच ही जाओगे।
गुरु के बिना बड़ी कठिनाई जो है कि तुमने किसी ऐसे आदमी को नहीं जाना, जिसे हो गया हो। इसलिए संदेह बना रहता है। मन में यह बना ही रहता है, निर्वाण होता है? समाधि घटती है? कहीं लोग झूठ ही तो नहीं बोलते रहे? शास्त्रों में लिखा है, कहीं कपोल-कल्पना तो नहीं है? कहीं चालबाजों की चालबाजी तो नहीं है? कहीं धूर्तों की ईजाद तो नहीं है? परमात्मा है?
जीवन को देखकर भरोसा नहीं आता। इतनी पीड़ा, इतना दुख, इतना नर्क। अगर परमात्मा है, तो इतना नर्क क्यों है? इतना दुख क्यों है? इतनी पीड़ा क्यों है? अगर परमात्मा है, तो जीवन एक उत्सव क्यों नहीं है? जीवन एक महारोग जैसा क्यों है? मृत्यु क्यों है? हजार-हजार प्रश्न हैं।
परमात्मा कोरा शब्द मालूम पड़ता है। शायद नासमझों ने ईजाद कर लिया या धूर्तों ने या शायद भयभीत लोगों ने, सांत्वना के लिए, समझाने के लिए। एक

कल्पना मालूम पड़ती है। सुखद हो सकती है, लेकिन भ्रांत है। सपना मालूम होता है। तो तुम बढ़ोगे कैसे? सपने को कोई खोजने निकलता है?
इंद्रधनुष कितना सुंदर मालूम पड़ता है, लेकिन कोई भी तो खोजने नहीं जाता। तुम जानते हो, वहां कुछ भी नहीं है, किरणों का जाल है। पानी की बूंदों से गुजरता हुआ रंग का धोखा है। पास जाओगे, मिलेगा नहीं। लोग, जिन्होंने जाना है, वे संसार को मृग-मरीचिका कहते हैं। और जिन्होंने नहीं जाना, उन्हें परमात्मा सब से बड़ी मृग-मरीचिका मालूम होता है।
संसार फिर भी यथार्थ है। दीवार से सिर टकराओ, तो सिर टूटता है; खून, लहू बहता है। यह परमात्मा कहां है? इसको कहीं छूने का उपाय नहीं। और ज्ञानी कहते हैं कि इसे सोचने तक का उपाय नहीं है, छूने की तो बात दूर। यतो वाचो निवर्तन्ते--वहां से वाणी भी गिर जाती है, लौट आती है। अप्राप्य मनसा सः--उसे मन से पाने का कोई उपाय ही नहीं है। न च्रुः गच्छति--न आंख वहां तक जाती। न वाक गच्छति--न वाणी वहां तक जाती। न मनाः--मन भी वहां तक नहीं जाता।
जहां न वाणी जाती है, न आंख जाती है, न मन जाता, जहां से शब्द लौटकर गिर जाते हैं, वह है भी? वहां जाने का फिर उपाय क्या है? सारी बात पहेली जैसी मालूम पड़ती है; पागलपन की मालूम पड़ती है।
सदगुरु को मिलने से सिर्फ एक घटना घटती है, वह यह कि जो कल तक बेबूझ मालूम पड़ता था, उसमें सूझ-बूझ आ जाती है। सदगुरु को देखकर लगता है कि वाणी चाहे वहां तक न पहुंचती हो, पर चेतना पहुंच जाती है। आंखें न पहुंचती हों, लेकिन और भी आंखें हैं भीतर की, जो पहुंच जाती हैं। वाणी न कह पाती हो, मौन कह देता है। मन से न मिलता हो, लेकिन मिलता है।
सदगुरु को देखकर पता चलता है कि ऐसी भी दशा है चैतन्य की, जहां मन नहीं होता और तुम पूरे-पूरे होते हो--अपनी समग्रता में, अपनी संपूर्ण गरिमा में।
सदगुरु परमात्मा की एक झलक है। झलक, एक वातायन, एक छोटा-सा झरोखा, जिसको तुम खोल लेते हो और दूर के दृश्य, जो कल तक अपरिचित अनजाने थे, भरोसे योग्य न थे, अतर्क्य थे, वे तर्क्य हो जाते हैं। असंभव थे, संभव हो जाते हैं। होने की कोई आशा न थी, अचानक सुनिश्चित हो जाते हैं।
इतना ही नहीं, संसार जो यथार्थ मालूम पड़ता था, फीका मालूम पड़ने लगता है। संसार जो सत्य मालूम पड़ता था, स्वप्न हो जाता है। इस बड़े यथार्थ की तुलना में, सापेक्षता में, संसार एकदम माया हो जाता है। फिर यात्रा बड़ी आसान है।
पर यात्रा गुरु से ही शुरू होती है। उसके पहले तो तड़पन थी, टटोलना था, अंधेरे में भटकना था। अंधे आदमी की यात्रा थी। कुछ पता न था; चल रहे थे। शायद कोई धक्का दे रहा था। धक्के में बहे जाते थे। आंख खुलती है, पैर थमते हैं, होश आता है, आस्था दृढ़ होती है। तब यात्रा का रंग-रूप बदल जाता है, गुणधर्म बदल जाता है।
इसलिए ज्ञानी निरंतर कहे जाते हैं कि गुरु के बिना बहुत कठिन है; करीब-करीब असंभव है। जिसने स्वाद ही न जाना हो, वह खोज पर पूरा जीवन दांव पर कैसे लगाएगा? जिसे एक भी अनुभव न हुआ हो, जिसके स्वप्न में भी छाया न पड़ी हो परमात्मा की, वह कैसे अचानक जुआरी हो जाएगा और सब दांव पर लगाकर निकल जाएगा? असंभव है।
गुरु पर यात्रा समाप्त नहीं होती, शुरू होती है। लेकिन करीब-करीब पूरी भी हो जाती है। फिर बस, दो-चार कदम ही चलने की बात है। वह तुम पर निर्भर है। लेकिन फिर तुम न भी चलो, तो भी तुम जानते हो कि जब चाहो, चल सकते हो। फिर तुम न भी चलो, तब भी तुम जानते हो कि बस, यह रहा किनारे पर। जरा हाथ फैलाना है और पा लेंगे।
फिर तुम लाख उपाय करो, जो तुमने गुरु की आंखों से झांककर देख लिया है, उसकी स्मृति तुम्हें घेरे रहती है। उसकी स्मृति तुम्हें कचोटती रहती है।
एक मीठा दर्द तुम्हारे हृदय में भर जाता है। तीर लग गया, वह चुभता रहता है।
वह तुम्हें चैन से न बैठने देगा। वह तुम्हें मंजिल तक पहुंचाकर रहेगा।
सत्य का स्वाद हो, तो सत्य की पीड़ा पैदा होती है। पीड़ा हो, तो फिर यात्रा से बचा नहीं जा सकता।

तीसरा प्रश्नः कल आपने कहा, हम कहां हैं, सत्व, तमस या रजस में, यह हमें ही खोजना होगा। और यह कि साधक के लिए यह जरूरी है। पर मुझे तो कुछ पता नहीं चलता कि मैं कहां हूं!

अगर पता न चले कहां हो, समझना तमस में हो। अगर धुंधला-धुंधला पता चले, कुछ-कुछ पता चले, कुछ-कुछ न चले, समझना रजस में हो। अगर साफ-साफ पता चले, समझना कि सत्व में हो।
घबड़ाने की कोई जरूरत नहीं। सौ में निन्यानबे लोग तमस में हैं। यह स्वाभाविक है। तमस में हम पैदा हुए हैं, अंधकार में। तमस में हम बड़े हुए हैं। अंधकार हमारी स्थिति है। वह हमारी नियति नहीं है, वह हमारी स्थिति है। वह हमारी मंजिल नहीं है, लेकिन हमारा आज का होने का क्षण उसी में है। बड़ी अमावस की रात है।
लेकिन इससे कुछ न तो हताश हो जाने की जरूरत है, क्योंकि जितनी अंधेरी रात हो, उतनी ही सुंदर सुबह होती है। रात को रात की तरह जानने से ही तुम तमस के बाहर उठने शुरू हो जाते हो।
अगर पता न चलता हो कहां हो, तो समझना कि तमस में हो, क्योंकि अंधेरे में ही पता नहीं चलता कि कहां हैं।
घबड़ाना मत इससे कि तमस में हैं, अब क्या होगा! यह जान लिया कि तमस में हैं, तो तुम तमस के पार उठने ही लगे। जान लिया कि नींद में हैं, नींद टूटने ही लगी। जान लिया कि पागल हूं, पागलपन हटने ही लगा।
जानना बड़ी भारी क्रांति है। कृष्णमूर्ति निरंतर कहते हैं, ज्ञान एकमात्र क्रांति है। है भी। क्योंकि जिस चीज को भी तुम जान लो, उसी में क्रांतिकारी परिवर्तन हो जाते हैं।
जिस व्यक्ति ने जान लिया, मैं आलसी हूं, आलस्य टूटने लगा। क्योंकि यह जानना भी आलसी को संभव नहीं है। आलसी कभी अपने को आलसी नहीं मानता। तामसी कभी अपने को तामसी नहीं मानता। तुम कहो, तो लड़ने को खड़ा हो जाएगा। और सौ में निन्यानबे लोग तामसी हैं।
यह स्वाभाविक है। तामसी न होते, तो बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाते। अंधेरे में हैं। अभी रोशनी नहीं हुई। अभी भीतर का दीया नहीं जला।
अगर तुम्हें समझ में आने लगे कि तुम तामसी हो, तो दूसरी दशा पैदा होगी
जो राजस की है। कुछ-कुछ समझ में आएगा, कुछ-कुछ समझ में नहीं आएगा। कभी ऊपर उठ आओगे, कभी डुबकी मार जाओगे; कभी अंधेरे में दब जाओगे, कभी घड़ीभर को ऊपर आ जाओगे।
किसी को नदी में डूबते देखा है? बाहर निकलता, भीतर जाता, बाहर निकलता। वैसी दशा होगी। जब बाहर आओगे, तब कुछ-कुछ साफ मालूम होगा। जब डूबोगे, तब सब सीमाएं खो जाएंगी।
लेकिन ठीक से अपनी स्थिति को समझ लेना बहुत जरूरी है, क्योंकि वहीं से काम होगा शुरू। तुम हो तमस में और समझो कि सत्व में हो, तो तब तुम कभी काम न कर सकोगे। तुम थे बीमार और समझा कि स्वस्थ हो, तो इलाज कैसे होगा! तुम चिकित्सक के पास ही न जाओगे।
इसलिए तो बहुत लोग गुरु की खोज नहीं करते। जरूरत नहीं है। वे मानते हैं कि उन्हें ज्ञान है ही। वे मानकर ही चलते हैं कि अब और कुछ जानने को शेष नहीं है। जानने योग्य सब उन्होंने जान लिया है। किससे पूछना? किसके पास जाना? किसलिए जाना?
जब तुम किसी की खोज में जाते हो, तो स्वभावतः भीतर एक स्थिति आ गई है,
जब तुम्हें लगता है कि तुम नहीं जानते हो।
तमस की स्थिति है। उसके प्रति होश से भर जाओ, उसे छिपाओ मत। छिपाने से कोई बीमारी कभी मिटती नहीं, बढ़ती है। घाव को दबाओ मत, उघाड़ो, खुली रोशनी में रखो, हवाओं को छूने दो, घाव भरता है। सूरज को खेलने दो घाव के ऊपर, घाव भरता है। उसे ढांको मत, छिपाओ मत, अन्यथा और सड़ेगा। जो छोटा-मोटा घाव था, वह नासूर हो जाएगा। जो नासूर था, वह कभी कैंसर हो जाएगा। छिपाओ मत। बीमारी छिपाने से मिटती नहीं।

लेकिन हम सब बीमारी को छिपाते हैं और झूठे स्वास्थ्य को प्रकट करते हैं। तो बीमारी बढ़ती जाती है और तुम भीतर सड़ते जाते हो। जीवन एक लंबी सड़ांध हो जाती है।
उघाड़ो; अपने को वैसा ही जानो, जैसे हो। यह सत्य का पहला कदम हुआ। पहले धुंधलका रहेगा; कुछ जागे, कुछ सोए। चेष्टा जारी रहेगी, धुंधलका भी मिट जाएगा। जागे ही जागे; तब सत्व का जन्म होगा।

चौथा प्रश्नः क्या आप तामसी लोगों को भी अपने संन्यास में दीक्षित करते हैं?

यह पूछा है मुक्ति ने। अगर न करते होते, तो मुक्ति का क्या होता!
तामसी ने कोई कसूर नहीं किया है, न कोई उसने अपराध किया है। तामसी का
तो कुल इतना ही अर्थ है कि अभी जीवन की संपदा अंधेरे में छिपी पड़ी है। उसे उघाड़ना है। तो मेरा उपयोग ही इसलिए है। सात्विक तो मेरे बिना भी खोज ले सकता है, तामसी कैसे खोजेगा?
मैंने सुना है कि चीन में एक बहुत बड़ा सदगुरु हुआ, हुवांग-पो। उसके पांच सौ शिष्य थे। बड़ा आश्रम था। पांच सौ भिक्षु उसके पास रहते थे। लेकिन एक भिक्षु बहुत उपद्रवी था। चोर भी था, और भी अनेक तरह की नशे की आदतें थीं। किसी तरह योग्य न था भिक्षु होने के। कई बार पकड़ा भी गया, रंगे हाथों भी पकड़ा गया। सारा आश्रम परेशान था। कि वह चोरी भी करता, नशा भी करता। कभी शराब पीए हुए चला आता है। बदनामी फैलती पूरे इलाके में कि यह किस तरह का संन्यासी है! शराबघरों में पाया गया है, जुआघरों में बैठा मिला है और भिक्षु है!
गुरु के पास बहुत शिकायतें आती रहीं। हुवांग-पो सुनता और बात टाल देता। लेकिन एक दिन तो हद हो गई। वह शराब पीकर बाजार में किसी से लड़ा, मार-पीट की, किसी का सिर फोड़ दिया। वहां से लोग उसे पकड़े हुए लाए, लहूलुहान, और नशे में धुत और गालियां बकता हुआ। उस दिन तो बाकी शिष्यों ने कहा, आज कुछ निर्णय हो ही जाना चाहिए। अब यह आदमी एक क्षण भी भीतर नहीं रखा जा सकता। उन चार सौ निन्यानबे शिष्यों ने गुरु से एक स्वर से प्रार्थना की कि
अब हम सब एक स्वर से प्रार्थना करते हैं, इसे यहां नहीं रखा जा सकता। गुरु ने कहा, तुम सब अच्छे लोग हो, तुम कहीं और भी चले जाओगे, तो शायद वहां से भी तुम सत्य को खोज लोगे, लेकिन इसका क्या होगा? तो तुम जा सकते हो, इसे छोड़ दो। इसको तो मेरी बहुत जरूरत है। तुम मेरे बिना भी खोज लोगे, यह मेरे बिना न खोज पाएगा। इसे छोड़ना तो ऐसे होगा, जैसे कि चिकित्सक बीमार को छोड़ दे और स्वस्थ का इलाज करे। तुम भले-चंगे हो; तुम जा सकते हो।
मेरे पास तो सब तरह के लोग आएंगे। अगर मैं उनके लिए हूं जो स्वस्थ हैं,
तो मेरे होने का कोई अर्थ ही नहीं है। मैं उनके लिए भी हूं जो अस्वस्थ हैं।
वस्तुतः तो उन्हीं के लिए हूं।
मेरे पास रोज ऐसे मामले आते हैं। कोई आकर कहता है, फलां संन्यासी ऐसा काम करता पाया गया। आप कुछ कहते क्यों नहीं हैं? आप प्रोत्साहन देते हैं। आप चुप हैं।
वह जो करता हुआ पाया गया है, वह तो स्थिति है, वह कोई नियति नहीं है। उस स्थिति को बदलना है। और वह अकेला नहीं बदल सकता, इसलिए तो मेरे पास आया है, नहीं तो खुद ही बदल लेता। वह अपने पैर से नहीं चल सका, इसलिए तो मेरे सहारे आया है। अब मैं सहारा खींच लूं?
और दुनिया में बुराई बढ़ती है, क्योंकि भले लोग बुरे आदमियों के हाथ से सहारा छीन लेते हैं; उनको बुरा होने के लिए छोड़ देते हैं। जो उनकी स्थिति है, उसको उनकी नियति मान लेते हैं।
जब भी मैं देखता हूं कि कोई आदमी कुछ बुरा कर रहा है, तो मेरी इच्छा यह नहीं होती कि उससे कहूं कि तू बुरा मत कर। क्योंकि यह तो बहुत बार उससे कहा गया है। अगर यही सुनकर वह ठीक हो सकता, तो ठीक हो गया होता। यह कहना तो व्यर्थ की पुनरुक्ति होगी। यह तो मूढ़ता होगी। यह तो कितने लोगों ने उससे नहीं कहा है कि बुरा मत कर।

मैं उससे बुरे की बात ही नहीं करता। मैं उससे कुछ और करने को कहता हूं। निषेध पर मेरा जोर नहीं है। मैं उससे कहता हूं, ध्यान कर, प्रार्थना कर, पूजा कर। मैं उसे कुछ करने में लगाना चाहता हूं। न करने की बात नहीं करता। जैसे-जैसे ध्यान गहरा होगा, कुछ चीजें छूटनी शुरू हो जाती हैं। आदमी शराब पीता है; ध्यान गहरा होगा, छूट जाएगी। क्योंकि मेरा अनुभव यही है कि वह शराब भी इसीलिए पीता है कि एक तरह की ध्यान की आकांक्षा है। कोई और अमृतरूपी ध्यान उसे पता नहीं है। शराब सस्ती है, बाजार में मिल जाती है। वह शराब पीकर अपने को भुलाने की कोशिश में लगा है।
भुलाने की कोशिश वहां है। अगर उसे ध्यान की कोई विधि मिल जाए, जिसमें
वह सरलता से अपने को डुबा दे, तो शराब छूट जाएगी। उसका प्रयोजन ही न रहा। धीरे-धीरे तो वह पाएगा कि ध्यान में वह इतना डूब जाता है कि दुनिया की कोई शराब नहीं डुबा सकती। तब दुनिया की सब शराबें छूट जाएंगी।
कोई व्यक्ति धन के पीछे पागल है, तो उसे रोकने का क्या प्रयोजन है? धन में ही उसने कुछ चीज देखी है, कोई शाश्वत की थोड़ी-सी झलक देखी है। बाकी सब चीजें तो बदल जाती हैं; इस संसार में धन थोड़ा-सा स्थिर मालूम पड़ता है। प्रेम का भरोसा नहीं है; आज करे व्यक्ति, कल न करे। प्रियजनों का भरोसा नहीं है; आज जिंदा हैं, कल मर जाएं। आज मुंह है अपनी तरफ, कल पीठ कर लें। धन साथी मालूम पड़ता है।
यह आदमी किसी साथी की तलाश में है। बाकी कोई भी साथी भरोसे योग्य नहीं मिलता। तो इसने धन से साथ जोड़ लिया है। इसको तुम कंजूस कहते हो, कृपण कहते हो। लेकिन गालियों से यह नहीं बदलने वाला। इसकी खोज भी बहुत गहरे में संग-साथ की चल रही है। कोई ऐसा साथी चाहता है जो कभी न छूटे। यह परमात्मा की खोज करना चाहता है। परमात्मा की छोटी-सी झलक, गलत ही सही, इसे धन में दिखाई पड़ी है। इसलिए तो ज्ञानियों ने परमात्मा को परम धन कहा है।
कोई आदमी किसी स्त्री के पीछे दीवाना है, या कोई किसी पुरुष के पीछे दीवानी है। उस पुरुष में कुछ परमात्मा की छाया दिखाई पड़ी है। इसलिए तो पत्नियों ने पति को परमात्मा कहा है। किसी स्त्री में किसी पुरुष को सौंदर्य के द्वार खुलते हुए दिखाई मालूम पड़े हैं। चाहे वे सदा खुले न रहें, चाहे जल्दी ही बंद हो जाएं, चाहे वे द्वार वस्तुतः वहां न हों, काल्पनिक हों, लेकिन कुछ दिखाई पड़ा है, कुछ अलौकिक, कोई ज्योति किसी और लोक की। उसी के पीछे आदमी पागल है। उसको रोकना क्या है? जिसके पीछे वह पागल है, उसकी और बड़ी झलक देना जरूरी है। रुक जाएगा।
अगर परमात्मा की सीधी झलक मिले, तो कौन उसे माध्यम से खोजना चाहता है! कौन फिक्र करता है फिर कि हम किसी पुरुष में या किसी स्त्री में उसके सौंदर्य को देखें! अगर उसका सौंदर्य सीधा दिख जाए, सामने आ जाए, आंख पर आ जाए, तो फिर कौन मध्यस्थ को लेना पसंद करेगा! क्योंकि मध्यस्थ में तो विकृति हो ही जाती है।
मैं तुमसे कहता हूं, तुम कैसे हो, इसकी मैं चिंता नहीं करता, क्योंकि तुम जैसे हो, वह तुम्हारी स्थिति है तुम्हारा स्वभाव नहीं। मैं तुम्हारे स्वभाव को देखता हूं। तुम्हारा स्वभाव परम है। तुम्हारा स्वभाव परमात्मा का स्वभाव है। उस पर कितनी ही राख की पर्तें जमी हों, मैं तुम्हारे भीतर के अंगार को देखता हूं। तुम्हारी राख की पर्तों को झाड़ देंगे। राख की पर्तें हैं, कुछ बहुत झाड़ने में समय भी नहीं लगता। राख ही है, जरा-सा हवा का झोंका भी झाड़ देगा; भीतर का अंगार साफ हो जाएगा।
मैं तुम्हें राख में बहुत उत्सुक होने को भी नहीं कहता कि तुम इसे झाड़ने की पहले फिक्र करो। मैं तो कहता हूं, तुम्हें भीतर के अंगारे का स्मरण आ जाए। राख रही तो, न रही तो, झड़ गई। रही तो भी अंतर नहीं पड़ता, जिसको भीतर के अंगार का अनुभव होने लगा, वह क्या फिक्र करता है कि बाहर थोड़ी राख जमी है; जमी रहे।
अंगार की प्रतीति हो जानी चाहिए। भीतर के प्रभु का अनुभव हो जाना चाहिए। फिर तुम क्या करते हो, क्या नहीं करते हो, वह तुम जानो। इस भेद को ठीक से समझ लो।
मैं कोई नैतिक शिक्षक नहीं हूं। तुम अगर तमस में हो, तो मेरे मन में तुम्हारे प्रति कोई निंदा नहीं है, न कोई अस्वीकार है। ठीक है। खूब हो, भले

हो। कुछ हर्जा नहीं है। हर्ज तो तब होगा, जब तुम जिद्द करो इस तमस में रहने की।
तुम मेरे पास आए हो, वही बताता है कि तुम जिद्द तोड़ना चाहते हो। मेरे पास तुम आए हो, वह बताता है कि तुम तमस के पार उठना चाहते हो। बस, काफी है। तुम्हारे लिए प्रमाण काफी है कि तुम खोज कर रहे हो कि कोई उपाय मिल जाए। एक शराबी ने चार दिन पहले मुझे कहा कि छूटती नहीं। मैंने कहा, तू फिक्र ही छोड़ दे। छोड़ना भी क्या है? शराब ही पीता है; किसी का खून तो नहीं पी रहा! वह थोड़ा चौंका। उसने कहा, लेकिन शराब बड़ी बुरी चीज है। मैंने कहा, रहने दे बुरी है। बुरी पर ज्यादा ध्यान मत दे। क्योंकि जीवन के बड़े जटिल नियम हैं।
अगर तुम बुरे को छोड़ने पर ज्यादा ध्यान दो, तो तुम बुरे से ही आविष्ट होते जाओगे। जिस चीज पर ध्यान दो, उसी से सम्मोहन हो जाता है। आंख लगाकर देखते रहो किसी चीज को, तुम उसके प्रभाव में पड़ जाते हो।
तू छोड़ दे फिक्र। शराब की फिक्र मत कर, ध्यान की फिक्र कर। तेरी जीवन-ऊर्जा ध्यान की तरफ जाने लगे, किसी दिन अपने आप तू पाएगा, शराब गई। पता भी नहीं चलेगा, कैसे छूटी। पता चले, तो मजा नहीं रहा। छोड़ना पड़े, तो बात ही क्या हुई। छोड़-छोड़कर छोड़ी, तो क्या खाक छोड़ी। छोड़ी ही नहीं। छोड़-छोड़कर छोड़ी, तो रेखा छूट जाएगी, घाव बन जाएगा।
घाव बन जाए सदा के लिए, वह उचित नहीं है। फिर कभी गिरने का डर रहेगा।
छूटनी चाहिए, छोड़नी नहीं चाहिए। कुछ विराट मिले, कुछ बड़ा मिले, तो छूट जाए।
छूट जाती है।
इस संसार में कुछ भी नहीं है, जो तुम्हें परमात्मा के पास जाने से रोक सके। हां, तुम ही रुकना चाहो, तो बात अलग।
लेकिन जब तुम मेरे पास आए हो, तो उसका अर्थ है कि तुम जाना चाहते हो, बात पूरी हो गई। तुम तामसी हो, कि राजसी, कि सात्विक, कुछ अंतर नहीं पड़ता। तुम जहां हो, मैं वहीं से काम शुरू करता हूं। मेरे द्वार सबके लिए खुले हैं।

पांचवां प्रश्नः रात अच्छी नींद लेने के बाद भी प्रातः कई बार आपके प्रवचन में ध्यान खो-खो जाता है। इससे बचने को क्या किया जाए?

कुछ भी मत करो। खो जाए, खो जाने दो। इतना ही ध्यान रखो कि खो गया। गैर-ध्यान की अवस्था को भी ध्यान बनाओ। और निषेध को मत देखो, विधेय को देखो। तुम पूछते हो, अच्छी नींद लेने के बाद भी प्रातः कई बार प्रवचन में ध्यान खो-खो जाता है... ।
कई बार खो जाता है, कई बार नहीं भी खोता। नहीं खोता, उस पर ध्यान दो। जितनी बार नहीं खोता, उतनी बार परमात्मा को धन्यवाद दो। जितना सधता है, उतनी ही अनुकंपा है। उतना भी क्या कम है।
अगर मैं डेढ़ घंटा बोलता हूं, और डेढ़ घंटे में अगर पांच मिनट को भी ध्यान लग जाए मेरी बात पर, तो हो गया। पचासी मिनट जाने दो। कोई चिंता न करो। पांच मिनट भी, क्षण-क्षण करके भी पांच मिनट जुड़ जाएं, तो काफी है। उसके लिए भी धन्यवाद दो। क्योंकि उसमें भी नींद आ सकती थी, नहीं आई; प्रभु की कृपा है, अनुकंपा है।
और जो हो रहा है, उसको अगर तुम अनुग्रह मानोगे, तो तुम पाओगे, वह बढ़ने लगा। तुमने उसे भोजन दिया। तुमने उसे प्रोत्साहन दिया। धीरे-धीरे क्षण बढ़ते जाएंगे।
अभी क्या करते हो, तुम्हारी पूरी जीवन-दिशा निषेधात्मक है। जो नहीं होता, उस पर नजर लगाते हो, कि कई बार झपकी लग गई, ध्यान खो गया, ध्यान नहीं रहा। अब इसके लिए दुखी हुए। इसके दुखी होने में बाकी जो क्षण थे, वे भी व्यस्त हो जाएंगे, नष्ट हो जाएंगे। इसके लिए परेशान हुए, इसके लिए शिकायत उठने लगी मन में, चेष्टा उठने लगी, विचार चलने लगा; जल्दी ही तुम पाओगे, जो कुछ देर ध्यान लगता था, वह भी अब नहीं लगता। तब तुम और चिंतित हो जाओगे। बस, धीरे-धीरे चिंता ही चिंता फैल जाएगी।

चौबीस घंटे में अगर एक क्षण को भी आनंद आ जाता हो, तो उस क्षण के लिए धन्यवाद दो और बाकी चौबीस घंटों के लिए शिकायत मत करो। और तुम पाओगे एक दिन, सारे चौबीस घंटे उसी एक क्षण में समा गए। वही एक क्षण सब पर फैल गया। वही स्वाद पूरे समय का हो गया।
अगर तुमने चौबीस घंटे के लिए शिकायत की और एक क्षण के लिए धन्यवाद न दिया, वह क्षण बहुत छोटा है, बड़ा कोमल है; वह दब जाएगा। ये चौबीस घंटे के पत्थर-पहाड़ काफी हैं। तुम उसके प्राण ले लोगे। वह अंकुर मर जाएगा।
इसे तुम पूरे जीवन की शैली बना लो; जो मिले, उसके लिए धन्यवाद; जो न मिले, उसके लिए शिकायत नहीं। तब तुम पाओगे, धीरे-धीरे एक घड़ी आती है, शिकायत करने को कुछ बचता ही नहीं।
ये जीवन को देखने के दो ढंग हैं, निषेधात्मक, विधेयात्मक। संसार निषेध से चलता है, परमात्मा विधेय से। संसार में सारी शिक्षा इसी बात की है कि जो तुम्हारे पास नहीं है, उस पर ध्यान रखो।
एक आदमी के पास दस रुपये हैं। उनसे वह आनंदित नहीं है। नब्बे रुपये नहीं हैं, सौ होते, वह नब्बे के लिए दुखी है। तो वह दौड़ेगा। कोशिश करेगा, किसी तरह नब्बे कमाएगा, सौ करेगा। जैसे ही सौ हो जाएंगे, वह नौ सौ के लिए दुखी हो जाएगा, क्योंकि हजार चाहिए। तब वह सौ को नहीं देखेगा। हजार भी हो जाएंगे, तो वह लाख के लिए दुखी होने लगेगा, जो उसके पास नहीं हैं।
संसार का पूरा गणित यह है कि जो तुम्हारे पास नहीं है, उसे देखो।
एक छोटे बच्चे ने अपने स्कूल में जाकर अपनी शिक्षिका को कहा कि एक सवाल है। क्या ऐसे काम के लिए भी किसी व्यक्ति को दंडित किया जा सकता है, जो उसने किया ही न हो? शिक्षिका ने कहा, कभी नहीं। क्योंकि वह धर्म की कक्षा थी और शिक्षिका धर्म पढ़ा रही थी। उसने कहा, परमात्मा के जगत में ऐसा कभी भी नहीं होता। जो किया ही नहीं तुमने, उसके लिए तुम्हें क्यों दंडित किया जाएगा! तो उस लड़के ने कहा, आज मैं होम-वर्क करके नहीं लाया हूं। जो किया ही नहीं है... ।
लेकिन अगर तुम गौर से देखो, तो तुम अपने जीवन में पाओगे कि जो तुमने नहीं किया है, उसके लिए तुम स्वयं अपने को दंडित कर रहे हो। जो तुमने नहीं पाया है, उसके लिए पीड़ित हो रहे हो। जो नहीं हुआ है, वह तुम्हारे प्राण पर फांसी का फंदा बना है। जो हुआ है, उससे तुम प्रसन्न नहीं हो। जो पाया है, उससे तुम नाचे नहीं। जो बरसा तुम पर, उसके लिए तुमने कभी कोई अहोभाव प्रकट नहीं किया।
इसे बदलो। यह संसार का गणित संसार में तो ठीक है, क्योंकि वहां सिवाय दुख के और कुछ मिलना नहीं है। यह दुख का ही सार है, यह दुख का ही आधार है। लेकिन जहां तुम महाआनंद की खोज में चले हो, वहां विधेय पर दृष्टि दो।
एक कांटा गड़ जाए, तो चिल्लाओ मत, चीखो मत। हजारों फूल मिले हैं तुम्हें जीवन में। उन हजारों फूल का स्मरण करो, इस कांटे की चुभन अपने आप कम हो जाएगी। और तुम धीरे-धीरे पाओगे कि उन हजारों फूलों की याददाश्त तुम्हें ऐसी दशा में ले आती है कि कांटा चुभ भी जाए, तो पता नहीं चलता। कहां पता चलेगा हजारों फूलों में एक कांटा! फिर धीरे-धीरे कांटा चुभता भी नहीं।
कांटा थोड़े ही चुभता है, तुम्हारी गलत दृष्टि चुभती है। और तब तुम पाओगे, जो तुम्हारे पास है, वह बहुत है; तुम्हारी पात्रता से ज्यादा है। तुमने उसे कमाया भी नहीं है; वह प्रसाद-रूप बरसा है।
कोई फिक्र नहीं है। अगर मुझे सुनते-सुनते कभी झपकी लग जाए, तो वह झपकी
भी उसी परमात्मा की है। ले लो, लड़ो मत। जल्दी ही वह खो जाएगी। लड़े, कि बढ़ जाएगी। ले लो, ठीक है। यही शुभ होगा तुम्हारे लिए अभी। जितना जरूरी होगा, उतना ही सुन पा रहे हो। जितना जरूरी नहीं है, वह नहीं सुन पा रहे हो। छोड़ दो इसे भी। ऐसे ही धीरे-धीरे अहंकार को छोड़ने के पाठ सीखोगे।
कोई चिंता न लो। जितना सुन लिया, उसको ही जीवन में लाने की फिक्र करो, उतने से ही काफी मिल जाएगा। मैंने तुमसे जो कहा है, अगर उसमें से एक शब्द भी तुम ठीक से समझ गए, तो काफी है। सब समझना जरूरी भी नहीं है। सब तो मैं इसलिए कहे जाता हूं कि तुम एक शब्द भी नहीं समझ पाते हो। इसलिए कहे जाता

हूं कि शायद कभी किसी भाव-दशा में एक शब्द तुम्हारे द्वार पर कुंजी बन जाएगा और ताला खुल जाएगा।
लेकिन सभी कुंजियों की कोई जरूरत नहीं है। एक कुंजी पर्याप्त है। बस, हीरा मिल जाए, जल्दी से गांठ बांधी, गठियाया। थोड़ी झपकी ली, कोई हर्जा नहीं। धीरे-धीरे झपकी मिट जाएगी। जैसे-जैसे संपदा बढ़ने लगेगी, वैसे-वैसे नींद घटने लगेगी।
लोग उलटी बातें पकड़ लिए हैं। लोग समझते हैं कि अगर तुम कम सोओगे, तो तुम योगी हो जाओगे।
तुम पागल हो जाओगे। योगी कम सोता है, यह बात सच है। मगर कम सोने से कोई योगी नहीं होता। विक्षिप्त हो जाओगे। पागलखाने में भरती करना पड़ेगा। हां, योग से आदमी कम सोने लगता है। जैसे-जैसे जाग बढ़ने लगती है, जरूरत
कम होने लगती है नींद की। जैसे-जैसे तुम आनंदित होओगे, वैसे-वैसे झपकी कम आने लगेगी। क्योंकि झपकी एक तरह की उदासी है, एक तरह की तमस अवस्था है, बोझ है। तुम हलके नहीं हो; तुम पथरीले हो। ऐसा नहीं है कि तुम्हारे पंख लगे हों, तुम आकाश में उड़ जाओ। तुम बड़े वजनी हो। इसलिए झपकी लग-लग जाती है। लग जाने दो, कोई अड़चन नहीं है। उसे भी आनंद-भाव से ले लो। उसे भी स्वीकार कर लो।
अस्वीकार करना छोड़ो। क्योंकि अस्वीकार करने से अहंकार बढ़ता है; स्वीकार करने से टूटता है।

छठवां प्रश्नः सांख्य ने प्रकृति का गुण विभाजन किया। इसे आपने बहुत वैज्ञानिक बताया और यह भी कि यह ज्ञान तक पर लागू है। केवल परमात्मा गुणातीत है। तो क्या समझा जाए कि ज्ञान भी प्रकृति या पदार्थ का ही सूक्ष्म रूप है?

निश्चित ही। होना, परमात्म-भाव है। जानना, प्रकृति का विकार है। होना, जानने के बिना हो सकता है। जानना, होने के बिना नहीं हो सकता। तुम हो सकते हो बिना जाने, इसलिए होना तो मूल आधार है। लेकिन जानना तो होने के बिना नहीं हो सकता, इसलिए जानने को गौण रखो। जानना दोयम है, द्वितीय है, मूल केंद्र नहीं है। छोड़ा जा सकता है, उसके बिना हुआ जा सकता है। जानना प्रकृति के माध्यम से है।
इसलिए तो जानने के लिए संसार में भेजना पड़ता है, आना पड़ता है। बिना प्रकृति के संयोग के जानना न होगा। और जब कोई जान लेगा पूरा, तब फिर प्रकृति में नहीं लौटता। अब कोई जरूरत न रही। अब होने में लीन हो गया। उस होने को ही हम परमात्म-भाव, ब्रह्म-भाव, निर्वाण कहते हैं।
फिर तुम्हारा जानना भी तुम्हारे गुणों पर निर्भर होता है। अगर तुम्हारी प्रकृति तामसी है, तो तुम्हारा जानना भी तामसी होगा। तुम जो जानने की उत्सुकता रखोगे, वह भी तमस से पैदा होगी।
अब ऐसे लोग हैं कि अगर तुम उनकी जिज्ञासा पूछो, तो हैरान होओगे। उनकी जिज्ञासा बताएगी कि वे क्या जानना चाहते हैं। वे क्षुद्र में उत्सुक हैं, व्यर्थ में उत्सुक हैं, बुराई में उत्सुक हैं, निंदा में उनका रस है।
अगर तुम संसार में घूमकर देखो, तो जितने लोगों को निंदा-रस में डूबे पाओगे, उतना तुम किसी रस में डूबे हुए न पाओगे। निंदा अमृत मालूम पड़ती है। कोई किसी की निंदा कर रहा है, गाली दे रहा है। कोई किसी का खंडन कर रहा है, कोई किसी की बुराइयां बता रहा है। कितने लोग प्रसन्न होकर सुनते हैं और कितनी सरलता से श्रद्धा करते हैं। कोई संदेह भी नहीं उठाता।
बुराई पर तो संदेह कोई उठाता ही नहीं। बुराई को तो लोग बिल्कुल चुपचाप स्वीकार कर लेते हैं, जैसे तैयार ही बैठे थे। बस, किसी के बताने की जरूरत थी।
अगर तुम किसी की भलाई बताओ, कोई सुनने को उत्सुक नहीं है। लोग कहते हैं, क्यों उबाते हो? क्यों बोरियत पैदा करते हो? तुम भलाई की बात करो, भीड़ छंट जाएगी। भीड़ निंदा में उत्सुक है।
राजनैतिक की सभा हो, बड़ी भीड़ इकट्ठी होगी। क्योंकि वहां सारी चर्चा तमस की होने वाली है; गाली-गलौज होने वाली है। धर्म की चर्चा हो, भीड़ छंट

जाएगी। जैसे-जैसे सत्य की चर्चा गहरी होने लगेगी, वैसे-वैसे लोग छंटने लगेंगे। रस न आएगा।
रस तुम्हारी प्रकृति से आता है।
राजसी व्यक्ति का रस महत्वाकांक्षा में है, वासना में है। वह उसकी तलाश में लगा है। अगर कोई उसे नए रास्ते बता दे महत्वाकांक्षा पूरी करने के, तो वह सुनेगा। सात्विक व्यक्ति की आकांक्षा सत्य को जानने में है। सत्व, रज, तम, ये तीन प्रकृति के गुण हैं, जो तुम्हारी आत्मा को घेरे हैं। जैसे तीन चश्मे लगे हों। तो जिस रंग का चश्मा है, वैसी तुम्हें प्रकृति दिखाई पड़ती है। अगर तुमने लाल चश्मा लगा लिया, तो सारा संसार लाल मालूम पड़ता है।
तुम्हारी आत्मा पर ये तीन गुण हैं। इनके माध्यम से तुम देखते हो। जो
भी तुम देखते हो, वह इनसे प्रभावित होता है। जब ये तीनों गिर जाते हैं, तब तुम गुणातीत हो जाते हो। तब देखने को कुछ बचता नहीं और देखने वाला भी नहीं बचता, क्योंकि एक ही रह जाता है। फिर द्रष्टा और दृश्य, दोनों खो जाते हैं। शुद्ध ऊर्जा रह जाती है।
इसलिए परमात्मा को तुम न तो अज्ञानी कह सकते, न ज्ञानी। ज्ञानी कहना
भी उचित न होगा। अज्ञानी कहना तो उचित होगा ही नहीं। तो परमात्मा को हम क्या कहें?
इसलिए तो परमात्मा बेबूझ पहेली है। उसे ज्ञानी कहें, तो भी ठीक नहीं मालूम पड़ता। क्योंकि ज्ञानी का मतलब है, वह कुछ जानता है; और जानने की तो सीमा होगी। कितना ही जानता हो, तो भी सीमा होगी। बड़े से बड़े ज्ञानी की भी सीमा होगी। अज्ञानी तो कह ही नहीं सकते। फिर परमात्मा को हम क्या कहें? ज्ञानातीत है, भावातीत है, गुणातीत है। हमारे सब विभाजन नीचे छूट जाते हैं। वहां तक कोई भी हमारा विभाजन नहीं जाता है।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी ने उसे किसी दूसरी स्त्री के साथ बैठे हुए देख लिया कमरे के भीतर, प्रेमालाप में संलग्न। दरवाजा लगाना भूल गया था नसरुद्दीन। दरवाजा खुला; पत्नी भीतर आ गई। चीखी- चिल्लाई और उसने कहा कि अब मुझे सब पता चल गया। नसरुद्दीन ने कहा, ठीक है, अगर सब पता चल गया, तो लाटरी में कौन-सा नंबर जीतेगा, बता।
पत्नी कह रही है, मुझे सब पता चल गया अब, क्योंकि देख लिया यह स्त्री
के साथ बैठे हुए। अब सब रहस्य जाहिर हो गया कि क्या गड़बड़ चल रही थी। लेकिन नसरुद्दीन के मुंह से जो बात निकली वह यह कि अगर सब पता चल गया, तो बता लाटरी में कौन-सा नंबर निकलेगा!
हमारे भीतर हमारी जानने की उत्सुकताएं हैं।
मैं बहुत परेशान था सफरों में। खासकर बंबई से जब भी मैं वापस यात्रा करता, तो हमेशा झंझट होती। क्योंकि वह जो एयरकंडीशंड कमरे के नौकर होते, वे देख लेते, इतने लोग छोड़ने आए हैं। तो बंबई में तो इतने लोग छोड़ने आते हैं तभी, जब कोई लाटरी के नंबर बताता हो, रेस के घोड़े का नाम बताता हो। और तो कोई कारण नहीं बंबई के लोगों को इतने आदमी छोड़ने आने का।
तो वे मेरी जान खा जाते। इधर तो लोग छोड़कर गए और नौकर मेरे पैर पकड़ लें, कि आप इस बार तो बता ही दें। मैं बहुत गरीब आदमी हूं; मेरी पत्नी बीमार है और बच्चे की शादी भी करनी है। अब आप मिल ही गए, तो अब न छोडूंगा।
क्या बता दूं तेरे को?
अब आप तो जानते ही हैं। नंबर बता दें।
हमारी जिज्ञासाएं भी हमारे तमस, हमारे रजस, हमारे सत्व से निकलती हैं। हम वही सोच सकते हैं। और कई बार तो अजीब हालतें हो जाती हैं।
मैं एक बार जबलपुर में खड़ा था अपने घर के बाहर। एक सज्जन मुझे मिलने
आए थे पंजाब से। तो मैं बाहर ही खड़ा था बगीचे में। ऐसी कार खड़ी थी, मैं उससे टिका हुआ खड़ा था। वहीं आए, तो उनसे वहीं मैं बात करने लगा। कार के नंबर पर मेरा हाथ था। उन्होंने देखा; उन्होंने जल्दी से डायरी निकालकर नोट किया। मैंने कहा, क्या मामला है? उन्होंने कहा, मैं समझ गया। मैं कुछ नहीं समझा कि बात क्या हुई। फिर भी मैंने कहा, मुझे भी तो कुछ समझाओ। उन्होंने कहा, अब क्या कहना। जिस काम से आया था, वह पूरा हो गया। मैंने कहा, मुझे भी थोड़ा ज्ञान दो; मामला क्या है? क्योंकि मुझे ख्याल ही नहीं कि मैं उस नंबर

पर हाथ रखे हूं। वह नंबर उन्होंने नोट कर लिया। वे इशारा समझ गए। वे इशारा यह समझे कि यह नंबर आने वाला है।
वे पंजाब से नंबर खोजने मेरे पास आए थे। अब अगर कहीं भूल-चूक से वह नंबर आ जाए, तो पंजाब जाना ही मेरा मुश्किल हो जाए।
आदमी की जिज्ञासा उसके अपने गुण से उठती है, उसकी खोज, उसका ज्ञान।
तुम क्या जानना चाहते हो, गौर से देखना। उससे तुम्हारे गुण का तुम्हें पता चलेगा। और जिस दिन तुम कुछ भी नहीं जानना चाहते, सिर्फ होना चाहते हो, उस दिन तुम समझना कि परमात्मा की तरफ यात्रा शुरू हुई।
क्योंकि हो सकता है, तुम कहो कि मैं परमात्मा को जानना चाहता हूं। लेकिन जरा गौर से सोचना कि अगर परमात्मा मिल जाए, तो तुम क्या पूछोगे, लाटरी का नंबर? बात खतम हो गई। परमात्मा से तुम्हारा कोई लेना-देना नहीं है। परमात्मा मिल जाए, तो तुम क्या पूछोगे कि मुझे अमर बना दे? बात खतम हो गई। तुम्हारी परमात्मा से कोई जिज्ञासा नहीं, परमात्मा की कोई खोज नहीं। तुम मृत्यु से भयभीत हो! परमात्मा मिल जाए, तुम क्या कहोगे कि मुझे सम्राट बना दे दुनिया का! तो परमात्मा से तुम्हें कुछ लेना-देना नहीं।
गौर से अपनी जिज्ञासा को खोजोगे, तो तुम्हारा अपना गुण भी तुम्हें पकड़ में आ जाएगा। कम से कम तमस से ऊपर उठो, रजस से ऊपर उठो, सत्व तक आओ। उठना तो सत्व के भी ऊपर है।
इसी संबंध में भारत की खोज सारी दुनिया की खोज से ऊपर जाती है। सारे दुनिया के धर्म सत्व पर आकर रुक जाते हैं। अंग्रेजी का शब्द गॉड गुड का ही रूपांतर है--सत्व, भला, अच्छा, शुभ।
सारी दुनिया के धर्म सत्व तक आकर रुक जाते हैं। सिर्फ भारत में पैदा हुआ धर्म सत्व के भी पार ले जाता है। वह कहता है, वह भी गुण है। अच्छा है, माना। जंजीर वह भी है। सोने की है, माना। लेकिन लोहे की जंजीर हुई कि सोने की जंजीर, इससे क्या फर्क पड़ता है। तमस से बंधे रहे कि सत्व से बंध गए, इससे क्या फर्क पड़ता है। बुरे कारागृह में पड़े रहे कि एक महल में बंद हो गए, इससे क्या फर्क पड़ता है। बंधन बंधन है।
भारत की कामना है मुक्ति की, जहां कोई गुण न रह जाए; जहां तुम निर्गुण, निराकार से एक हो जाओ; जहां गुणातीत हो जाओ।

अब सूत्रः
और हे पार्थ, ध्यान-योग के द्वारा, अव्यभिचारिणी धृति अर्थात धारणा
से मनुष्य मन-प्राण और इंद्रियों की क्रियाओं को धारण करता है, वह धृति तो सात्विकी है।
फल की इच्छा वाला मनुष्य अति आसक्ति से जिस धृति के द्वारा धर्म, अर्थ
और कामों को धारण करता है, वह धृति राजसी है।
तथा हे पार्थ, दुष्ट बुद्धि वाला मनुष्य जिस धृति अर्थात धारणा के द्वारा निद्रा, भय, चिंता और दुख को एवं उन्मत्तता को भी नहीं छोड़ता है और धारण किए रहता है, वह धृति तामसी है।
धृति है धारणा की शक्ति। ये सूत्र बहुत कीमती हैं। तुम्हारे कदम-कदम
पर काम पड़ेंगे। इसलिए किसी की झपकी लग गई हो, तो कृपा करके थोड़ी देर को तोड़ ले।
हमारी खोज यही है कि मनुष्य के जीवन में वही घटता है, जो उसकी धारणा होती है। धारणा ही तुम्हारे जीवन का मूल सूत्र और आधार है। तुम जैसी धारणा करते हो, वही हो जाते हो।
कोई दूसरा तुम्हें न तो सताता है, न कोई दूसरा तुम्हें सुख देता है। तुम्हारी धारणा ही तुम्हें सुख देती है, तुम्हें दुख देती है। न तो किसी ने तुम्हें बांधा है और न तुम्हें कोई मुक्त करेगा; तुम्हारी धारणा ही तुम्हें बांधती है और तुम्हें मुक्त करती है। इसलिए धारणा बड़ी बहुमूल्य है।
बुद्ध ने कहा है धम्मपद में, कि जैसा करोगे विचार, वैसे हो जाओगे। इसलिए विचार करते वक्त सावधानी बरतना, क्योंकि उसी वक्त तुम अपने भविष्य के आधार रख रहे हो, नींव भर रहे हो। फिर भवन बन जाता है, तब तुम रोते हो।

लेकिन तुम्हारे जीवन में आज जो हो रहा है, यह कल बीते अतीत में की गई धारणा का परिणाम है। यह तुमने ही चाहा है, इसलिए हो रहा है। और आज तुम जो धारणा करोगे, वह कल घटित होगा।
अब बड़ी कठिनाई यह है कि धारणा और फल के बीच तुम संबंध नहीं जोड़ पाते, इसलिए बड़ी अड़चन में पड़ते हो। तुम सोचते हो, दुख तुम्हें कोई और दे रहा है।
वह तुम्हारी ही धारणाओं का परिणाम है।
तुम सोचते हो, दूसरे तुम्हें सता रहे हैं। कोई तुम्हें सताता नहीं।
किसी को क्या प्रयोजन है! तुम अपनी ही धारणाओं में घिरे परेशान हो रहे हो।
एक मेरे मित्र हैं। एक कालेज में मैं प्रोफेसर था। वे भी वहां प्रोफेसर थे। होली के दिन में भांग पी गए। कभी पी न थी, सीधे-सादे आदमी थे।
ज्यादा पी गए, लोगों ने मजाक कर दी। चौरस्ते पर उन्होंने उपद्रव कर दिया, कुछ मार-पीट कर दी, नग्न होकर दौड़ गए। पुलिस पकड़कर ले गई। रातभर बंद रखा।
मेरे साथ रहते थे। दो बजे तक तो उनकी राह देखी, फिर मैं थोड़ा चिंतित हुआ। ऐसा कभी हुआ न था। बिल्कुल सीधे-सादे आदमी थे। इसीलिए झंझट में पड़े। थोड़े तिरछे होते, तो इतनी जल्दी भांग का नशा भी न आता। अनुभवी होते, तो कुछ गड़बड़ भी न होती। कभी पी ही न थी। ज्यादा पी गए। होश के बाहर हो गए।
खोजने निकला, पता चला कि पकड़कर पुलिस ले गई है उनको। खोज-बीन की। कोई तीन बजे रात उनको छुड़ा पाया। उनको घर तो ले आए, लेकिन उस दिन से उनको एक धारणा पकड़ गई। धारणा, कि पुलिस उनके खिलाफ है। धारणा, कि सारी सरकार उनके खिलाफ है। वह धारणा इतनी गहन होती चली गई... ।
पहले तो सब ने मजाक में लिया कि दो-चार दिन में ठीक हो जाएंगे। भांग का नशा उतर जाएगा, ठीक हो जाएंगे। भंग तो चली गई, लेकिन वह धारणा न गई। रास्ते पर पुलिसवाले को देख लेते, तो घर लौट आते कि वहां पुलिसवाला खड़ा है। वह पकड़ ही लेगा।
फिर तो बहुत मुसीबत हो गई। मेरा भी उन्होंने जीना मुश्किल कर दिया। क्योंकि रात पुलिसवाले की सीटी सुन लें, वे जल्दी से मेरे बिस्तर में आ जाएं, कि वह सीटी बजा रहा है। आ गए वे लोग। अब तक कहता था, आप सुनते नहीं थे। अब देखो पैर की आवाज आ रही है, जूते की आवाज आ रही है। कोई कार रुक जाए, कुछ भी हो जाए। रातभर मुसीबत हो गई।
फिर वे बताने लगे। उनका बढ़ने लगा जाल धारणा का कि पुलिस के पास बड़ी फाइल है और मैंने जो भी किया जिंदगी में, वह सब वहां तैयार है। वे पकड़कर मुझे... । अब की बार न छोड़ेंगे। इस बार तो किसी तरह छोड़ दिया, अब न छोड़ेंगे। कालेज से छुट्टी लिवानी पड़ी, क्योंकि वहां जाना भी मुश्किल हो गया उनको।
चलते तो चौंके हुए चलते, खिड़की से झांककर दिन-रात देखते। एकदम भयभीत चित्त हो गया।
फिर कोई रास्ता न रहा। तो पुलिस के एक इंस्पेक्टर को, जिनसे मेरी पहचान थी, उनको मैंने समझाया कि अब कुछ करो। तुम एक फाइल लेकर आ जाओ। क्योंकि वे कहते हैं कि जब तक फाइल न जलेगी, तब तक कुछ भी न होगा। कोई भी फाइल लेकर आ जाओ कचरा, कूड़ा-करकट की। क्योंकि उनके खिलाफ कुछ है नहीं। बस, उसने एक ही जुर्म किया जिंदगी में भंग पीने का। वह भी कोई खास जुर्म नहीं है
और तुम जल्दी मत छोड़ देना, नहीं तो वे समझेंगे कि कोई मेरा हाथ है। तुम उनको दो-चार चांटे भी लगाना और कोड़ा भी बताना और हथकड़ी डाल देना हाथ-पैर में, ताकि उनको पक्का हो जाए कि वे जो कहते थे, बिल्कुल ठीक कहते थे। फिर मैं तुम्हें बहुत समझाऊंगा-बुझाऊंगा। ये दस हजार रुपये तुम्हें दूंगा उनके सामने--फिर तुम लौटा देना--और मेरे सामने उस फाइल में आग लगा देना वहीं, ताकि यह झंझट; शायद कुछ रास्ता बन जाए।
करना पड़ा यह पूरा काम। जब वे पिटे, तब वे बड़े प्रसन्न हुए। वे मुझसे कहने लगे कि देखो, कोई मेरी मानता न था। अब यह हो रहा है। आंख से देख रहे हो। अब तो गवाह हो! देख ही रहे हैं, हो ही रहा है। और वह फाइल है। वह रखे है पुलिसवाला बगल में दबाए। पिटे-कुटे, उनको हथकड़ी डल गई। तब उनको शांति थोड़ी मिली, क्योंकि धारणा पूरी हो गई कि बिल्कुल ठीक थे वे।
आदमी गलत भी हो, तो भी अहंकार अपने को ठीक सिद्ध करने के लिए इतना आतुर
है कि नरक भी जाना पड़े, लेकिन मेरी धारणा गलत न हो जाए।

उसने काफी अपमानित किया, मारा-पीटा; रुपये दिए, बामुश्किल राजी हुआ।
आग लगाकर फाइल जलवा दी। दूसरे दिन से ठीक हो गए।
लेकिन तब से उन्होंने मुझसे मिलना-जुलना बंद कर दिया, क्योंकि अब मैं
ही एक गवाह हूं उनके सारे अपराध का और अपराध में रिश्वत देने का और फाइल का। एक मैं ही देखने वाला हूं कि वे पिटे-कुटे। तब से उन्होंने मुझसे मिलना-जुलना बंद कर दिया। वह मेरा कमरा भी छोड़ दिए, जहां मेरे पास रहते थे। मगर ठीक है।
तुम न मालूम कितनी धारणाओं के जाल जन्मों-जन्मों में अपने पास बुन लिए हो। और बड़े मजे की बात यह है कि तुम उन्हें सही सिद्ध करने की कोशिश करते हो, चाहे उनसे कितना ही कष्ट क्यों न मिले।
कृष्ण कहते हैं, हे पार्थ, दुष्ट बुद्धि वाला मनुष्य जिस धृति अर्थात धारणा के द्वारा निद्रा, भय, चिंता और दुख को एवं उन्मत्तता को भी नहीं छोड़ता है अर्थात धारण किए रहता है, वह धृति तामसी है।
तो तीन तरह की धारणाएं हैं; तीन तरह के ध्यान हैं; तीन तरह की धृतियां हैं।
तामसी, कि तुम उसको पकड़े रहते हो, जो तुम्हारा नरक है। तुम्हें नरक से
भी कोई निकालने को राजी हो जाए, तो तुम जाने को राजी नहीं होते। क्योंकि तुम उसके आदी हो गए होते हो। तुम कहते हो, यह मेरा घर है।
अभी पिछले वर्ष अमेरिका में एक आदमी मरा। वह जब बीस साल का था, तब हत्या के अपराध में उसे पचास साल की सजा हुई। लेकिन वह अपराधी नहीं था, हत्या भावावेश में हो गई थी। वह कोई वस्तुतः अपराधी नहीं था। बस, एक भाव-दशा में हो गया। पचास साल की सजा हुई उसे। लेकिन उसका जीवन-व्यवहार इतना अच्छा रहा जेल में कि पच्चीस साल बाद उसको माफी मिल गई। उसे छोड़ दिया गया। वह थोड़ी देर घूमकर गांव में वापस लौट आया। उसने कहा कि बाहर मैं नहीं जाना चाहता। क्योंकि जब वह पकड़ा गया था, तब न तो कारें थीं रास्तों पर, न बसें थीं। दुनिया ही और थी। और अब तो सारी दुनिया बदल गई थी पच्चीस साल में। वह ठीक से समझ भी नहीं पाता था कि क्या हो रहा है, लोग क्या कह रहे हैं। भाषा भी बदल गई थी। लोगों के ढंग, रीति-रिवाज बदल गए थे। वह बिल्कुल घबड़ा गया। उसके परिवार का कोई भी बचा नहीं था। बाप मर चुका था, मां मर चुकी थी। शादी उसकी कभी हुई नहीं थी।
वह वापस लौट आया। उसने कहा कि मैं नहीं जाना चाहता। अधिकारी जबरदस्ती किए कि जाना ही पड़ेगा, क्योंकि तेरा काम ही यहां खतम हो गया। अब जेल के भीतर नहीं रह सकता। तो उसने कहा, मैं बाहर ही रहा आऊंगा। लेकिन रहूंगा यहीं।
वह पैंतीस साल और जीया, लेकिन जेल के बाहर ही जीया। बस, वहीं वह जेल के बगीचे में काम करता रहता। अधिकारी उसे खाने को दे देते। वहीं जेल की दीवार के पास वह सो रहता। धीरे-धीरे उन्होंने इसके लिए कोठरी का इंतजाम कर दिया कि अब यह जाएगा भी कहां। जाना भी नहीं चाहता। वह कभी जेल की परिधि को छोड़कर बाहर नहीं गया पैंतीस साल दुबारा फिर।
तुम्हारे जीवन में भी ऐसे कारागृह तुमने बना लिए हैं। वे दुख दे रहे हैं। बंधन में डाले हैं। उनके कारण क्रोध होता है। उनके कारण भय होता है। उनके कारण पीड़ा होती है। लेकिन फिर भी तुम उनके आदी हो गए हो और उनकी धारणा को पकड़े हुए हो, छोड़ना नहीं चाहते।
गलत को भी पकड़कर ऐसा लगता है, कुछ तो हाथ में है। बुरे को भी पकड़े ऐसा लगता है, कम से कम हाथ खाली तो नहीं है। इसको कहते हैं, तामस धृति। जानते हुए कि दुख पा रहा हूं, इस धारणा को छोड़ दूं, नहीं छोड़ते। जानते हुए कि आलस्य पीड़ा दे रहा है, जीवन बोझ हुआ जा रहा है, नहीं छोड़ते। सोचते ही नहीं कि मेरी धारणा का फल है।
फल की इच्छा वाला मनुष्य अति आसक्ति से जिस धृति के द्वारा धर्म, अर्थ
और कामों को धारण करता है, वह धृति राजसी है।
फल की इच्छा वाला पुरुष... ।
वह धर्म भी करता है, प्रार्थना भी, पूजा भी, तो भी फल की इच्छा से करता है। यज्ञ करता है, दान करता है, वह भी फल की आकांक्षा से करता है। वह सब

करता है, लेकिन आकांक्षा फल की होती है, समझते हुए, जानते हुए कि फल की आकांक्षा से कोई कभी सुख को उपलब्ध नहीं होता।
फल की आकांक्षा दुख में ले जाती है। फल की आकांक्षा विषाद में ले जाती है। क्योंकि एक तो सौ में निन्यानबे मौकों पर तुम्हारी आकांक्षा कभी पूरी नहीं होती, इसलिए दुख होता है। और अगर कभी पूरी भी हो जाए, तो सुख नहीं होता, क्योंकि जैसे ही पूरी होती है, फल की आकांक्षा आगे बढ़ जाती है। वह क्षितिज की भांति है। उसे तुम कभी छू नहीं पाते। वह सदा दूर ही दूर रहती है। तुम कभी पहुंच नहीं पाते, उपलब्ध नहीं हो पाते।
कितना ही धन हो, दरिद्रता नहीं मिटती। कितना ही बड़ा पद हो, और पद की आकांक्षा नहीं मिटती। कितनी ही जीवन में सुख-सुविधा हो, और सुख-सुविधा की दौड़ समाप्त नहीं होती। और अनुपात हमेशा वही रहता है।
एक भिखमंगा है। उसके पास एक पैसा है। वह दस पैसे की कामना करता है। एक करोड़पति है। उसके पास एक करोड़ रुपया है। वह दस करोड़ की आकांक्षा करता है। दोनों का अनुपात बराबर है। दोनों का दुख बराबर है। एक जिसके पास है, वह दस की आकांक्षा कर रहा है। नौ की कमी खल रही है। भिखमंगा भी उतने ही दुख में मर रहा है, जितना कि करोड़पति मर रहा है।
भिखमंगा मरे, समझ में आता है। करोड़पति क्यों दुख में मरा जा रहा है? अनुपात वही है। लोगों के पास धन बढ़ जाता है, लेकिन दरिद्रता नहीं मिटती, दीनता नहीं मिटती।
फलाकांक्षा दुख देती है। सब फलाकांक्षाएं अंततः विषाद में ले जाती हैं, हाथ में कुछ आता नहीं, हाथ खाली रह जाता है; तो भी राजसी व्यक्ति पकड़े रहता है।
और हे पार्थ, ध्यान-योग के द्वारा अव्यभिचारिणी धृति अर्थात धारणा से मन, प्राण और इंद्रियों की क्रियाओं को धारण करता है, वह धृति सात्विकी है।
जहां अव्यभिचारिणी ध्यान या धृति पैदा हो जाए... ।
जब तुम शांत बैठते हो, तब भी मन का व्यभिचार चलता रहता है। तुम शांत बैठे हो, मन हजार यात्राएं करता है। तुम चुप बैठना चाहते हो, मन बोले ही चला जाता है। तुम रुकना चाहते हो, मन रुकता नहीं। यह मन का व्यभिचार है, यह बलात्कार है। और तुम मन के बलात्कार को सहे चले जाते हो। न केवल सहे जाते हो, सहयोग दिए जाते हो।
इस सहयोग को हटा लो। एकदम से बलात्कार न रुक जाएगा मन का। यह व्यभिचार बड़ा पुराना है, जन्मों-जन्मों का है। इसकी बड़ी गहरी गांठें हैं। नदी की धार बन गई है। पानी बहाओगे, वहीं से बहेगा। लेकिन टूट जाता है। टूट जाती हैं धारें पुरानी और एक ऐसी घड़ी भी आ जाती है कि कुंआरी चेतना पैदा होती है।
मन व्यभिचारिणी स्थिति है। कितने विचार! कितना व्यभिचार! मन एक बाजार
की तरह है, एक पागलखाना, जहां कितनी आवाजें एक साथ गूंज रही हैं!
कृष्ण कहते हैं, ध्यान-योग के द्वारा जो अव्यभिचारिणी धृति को उपलब्ध
हो जाता है... ।
ऐसी धारणा जो शुद्ध है, कुंआरी है, जिसमें विचार का व्यभिचार नहीं है, निर्विचार है। और जो निर्विचार है, वही निर्विकार है। और जहां विचार की तरंग नहीं उठती, वहीं कुंआरापन है। वहां शुद्धतम चैतन्य की अवस्था है। ऐसी धारणा मन, प्राण और इंद्रियों की क्रियाओं को धारण करती है, लेकिन व्यभिचारित नहीं होती। ऐसी धृति मन को चलाती है, मन द्वारा नहीं चलती। ऐसी धृति हाथ, पैर, इंद्रियों को चलाती है, इंद्रियों के द्वारा चलती नहीं। इंद्रियां मालिक नहीं रह जातीं। ऐसी कुंआरी धृति मालिक हो जाती है। यही स्वामित्व है।
इसलिए हम संन्यासी को स्वामी कहे हैं। वह सत्व की दशा है। वह संन्यासी की मंजिल है, कि वह स्वामित्व को उपलब्ध हो जाए; वह कुंआरी धारणा को उपलब्ध हो जाए। इसलिए ध्यान पर इतना जोर है। गैर-ध्यान की अवस्था संसार है। ध्यान संन्यास है।
और जिस दिन तुम अपने मन, तन, प्राण, सबके मालिक हो जाते हो, उसी दिन तुम योग्य हुए, पात्र हुए। अब परमात्मा तुम्हारे भीतर उतर सकता है।

इसलिए मैं निरंतर कहता हूं, उससे मिलना हो, तो सम्राट होकर ही उसके द्वार पर जाना, भिखारियों की तरह नहीं। मन के गुलाम हुए उसके द्वार पर तुम न जा सकोगे। गुलामों के लिए वह नहीं है; मुक्त पुरुषों के लिए है।
तो इतनी मुक्ति तुम साध लो कि मन निर्विकार हो जाए, चेतना शांत और कुंआरी हो जाए; बस, तुम्हारा काम पूरा हो गया। तुमने कदम उठा लिया; अब परमात्मा के कदम उठाने की बारी है।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग आठ
गीता दर्शन अध्याय 18
ग्यारहवां प्रवचन

तामस, राजस और सात्विक सुख

सुखं त्विदानीं त्रिविधंशृणु मे भरतर्षभ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति।। 36।।
यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्।। 37।।
विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्।। 38।।
यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम्।। 39।।
न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिःस्यात्त्रिभिर्गुणैः।। 40।।
हे अर्जुन, अब सुख भी तू तीन प्रकार का मेरे से सुन।
हे भरतश्रेष्ठ, जिस सुख में साधक पुरुष ध्यान, उपासना और सेवादि के अभ्यास से रमण करता है और दुखों के अंत को प्राप्त होता है, वह सुख प्रथम साधन के आरंभ काल में यद्यपि विष के सदृश भासता है, परंतु परिणाम में अमृत के तुल्य है। इसलिए जो आत्मबुद्धि के प्रसाद से उत्पन्न हुआ सुख है, वह सात्विक कहा गया है।
और जो सुख विषय और इंद्रियों के संयोग से होता है, वह यद्यपि भोग काल में अमृत के सदृश भासता है, परंतु परिणाम में विष के सदृश है, इसलिए वहसुख राजस कहा गया है।
तथा जो सुख भोग काल में और परिणाम में भी आत्मा को मोहने वाला है, वह निद्रा, आलस्य और प्रमाद से उत्पन्न हुआ सुख तामस कहा गया है। और हे अर्जुन, पृथ्वी में या स्वर्ग में अथवा देवताओं में ऐसा वह कोई भी प्राणी नहीं है कि जो इन प्रकृति से उत्पन्न हुए तीनों गुणों से रहित हो।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः आपने कहा कि गुरु के बाह्य आकार से आसक्त हो जाना भी ठीक नहीं है। पर मेरे मन में बार-बार भाव होता है कि नहीं चाहिए ज्ञान और मोक्ष। बस, गुरु के साथ ही घुल-मिलकर एक हो जाऊं। क्या यह भी आसक्ति है?

जब तक चाह है, तब तक आसक्ति है। वह चाहे गुरु से मिलने की चाह हो, चाहे ज्ञान प्राप्त करने की चाह हो, चाहे मोक्ष की चाह हो; चाह-मात्र आसक्ति है। जहां सभी चाहें छूट जाती हैं, वहीं मोक्ष है। और जहां सब चाहें छूट जाती हैं, वहीं गुरु से मिलन भी है। क्योंकि जो गुरु बाहर दिखाई पड़ता है, वह तो केवल प्रतिबिंब है। सब चाह के छूट जाने पर भीतर के गुरु का आविर्भाव होता है। और जब तक तुम्हें तुम्हारे भीतर ही गुरु न मिल जाए, तब तक तुम संसार में भटकते ही रहोगे।
कब तक किसी के पीछे चलोगे? पीछे चलने में अंधापन तो कायम ही रहेगा। कब
तक किसी के हाथ का सहारा लोगे? सहारा तुम्हें पंगु बनाएगा। सहारे से कभी कोई स्वतंत्र थोड़े ही हुआ है। सहारे से तो पंगुता बननी निर्मित हो जाती है। बाहर किसी में तुम्हें दिखाई पड़ा है आविर्भाव चैतन्य का, उससे अपने भीतर के चैतन्य को स्मरण करो।
गुरु में मिल जाने की कामना भी कामना है। इस कामना से तुम मुक्त न हो सकोगे। यह तुम्हें भटकाए रहेगी, भरमाए रहेगी। अंततः एक ऐसी चैतन्य दशा को पाना है, जिसके पार पाने को कुछ भी शेष न हो, जहां होना परम तृप्ति हो, जिसके पार क्षणभर के लिए भी भविष्य की आकांक्षा न उठती हो। ऐसी चैतन्य दशा को पाना है, जिसमें भविष्य शून्य हो जाए, समय मिट जाए। जहां समय मिट जाता है, वहीं अमृत का अनुभव होता है।

इसलिए हमने मृत्यु को नाम दिया है, काल। काल का एक अर्थ समय भी होता है
और दूसरा अर्थ मृत्यु भी होता है। जब तक समय है, तब तक मृत्यु है। जब समय खो गया, अकाल अनुभव हुआ। अकाल का अर्थ है, अमृत। अकाल का अर्थ है, तुम्हारा शाश्वत होना।
यह कौन चाहता है गुरु के साथ मिल जाना? इसने विषय तो बहुत अच्छा चुना, गुरु चुना, लेकिन वह मिलने की कामना तो बहुत पुरानी है। कभी प्रेमी के साथ मिल जाना चाहा था और एक हो जाना चाहा था; कभी धन के साथ मिल जाना चाहा था, एक हो जाना चाहा था; कभी पद के साथ मिलकर एक हो जाना चाहा था। हजार-हजार विषय चुने हैं तुम्हारी वासना ने।
तुम गुरु को बना सकते हो वासना का बिंदु। इससे कुछ अंतर न पड़ेगा। तुम्हारी वासना वैसे की वैसी रही। विषय बदल गया, खूंटी बदल गई, लेकिन तुम जो टांग रहे हो, वह वही है, जो तुम सदा से टांगते रहे हो। वैकुंठ चुन लो, स्वर्ग चुन लो, मोक्ष चुन लो।
बुद्ध ने कहा है, जब तक तुम निर्वाण चाहते हो, तब तक निर्वाण की कोई प्रतीति न होगी। और जब तक तुम मुक्त होना चाहते हो, तब तक तुम बंधे ही रहोगे। क्योंकि चाह ही बंधन है। मुक्त होने की चाह भी चाह है।
इसलिए करना क्या? तब तो बात बड़ी उलझी मालूम पड़ती है। मुक्त होने की चाह भी चाह है। परमात्मा को पाने की चाह भी चाह है। फिर करें क्या? फिर छूटें कैसे?
चाह को समझो, चाह को बदलो मत। चाह के स्वभाव को समझो कि चाह का स्वभाव बांधना है। और चाह की गहरी से गहरी तरकीब यह है कि जब भी तुम उसके स्वभाव को समझने के करीब होते हो, तभी वह अपना विषय बदल लेती है। विषय बदलने से तुम्हें ऐसा लगता है कि चाह बदल गई। चलो, कुछ दिन के लिए बोझ नया हो गया। एक कंधे का भार दूसरे कंधे पर ले लिया।
बस, थोड़े दिन रहेगी यह राहत।
संसार से थक गए, चाह बदल जाती है। चाह कहती है, मंदिर चलो, दुकान में क्या रखा है। धन में क्या रखा है, धर्म खोजो। इन सोने-चांदी के ठीकरों में क्या रखा है, ये सब तो पड़े रह जाएंगे। वह चाह ही कह रही है। चाह ही कहती है, सब ठाठ पड़ा रह जाएगा, जब बांध चलेगा बंजारा। तो फिर कुछ ऐसा खोजो, जो पड़ा न रह जाए। कुछ मोक्ष के सिक्के खोजो, कुछ ऐसी संपदा खोजो, जो मौत के पार भी तुम्हारे साथ जाए। अग्नि की लपटें भी तुम्हें जला दें, लेकिन तुम्हारी संपदा को न जला पाएं।
तब तुम बड़े कुशल हो रहे हो। तुम फिर संसार ही खोज रहे हो। अनुभव से तुम जागे नहीं। अनुभव से तुमने नया सपना पैदा कर लिया।
अगर तुम चाह का स्वभाव समझोगे, तो तुम पाओगे, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता
कि तुम क्या चाहते हो। चाहते हो, बंधन रहेगा। चाह ही बंधन है। इसलिए विषय मत बदलो, खूंटियां मत बदलो, इस चाह को ही गिरा दो।
बड़ी कठिनाई मालूम पड़ती है। क्योंकि तुम कहते हो, यह भी समझ में आता है
कि धन न खोजें, धर्म खोजें; दुकान न जाएं, मंदिर जाएं; यह बिल्कुल समझ में नहीं आता कि कहीं न जाएं; कुछ भी न खोजें।
पर मैं तुमसे कहता हूं, जिस दिन तुम कहीं न जाओगे, कुछ भी न खोजोगे, तुम्हारे भीतर ही रमने लगोगे... । चाह तो बाहर ले जाती है। कभी बाएं, कभी दाएं; कभी उत्तर, कभी पूरब; इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, ले जाती बाहर है। जिस दिन तुम कहीं भी न जाओगे, तुम्हारे भीतर ही तुम ठहरोगे, रमोगे, उसी दिन, उसी दिन मिल गया मोक्ष। उसी दिन हो गया गुरु से मिलन, उसी दिन पा लिया परमात्मा को।
चाह को समझो, ताकि चाह विसर्जित हो जाए। मैं चाह को छोड़ने को भी नहीं कहता। क्योंकि छोड़ने में भी खतरा है कि तुम छोड़ोगे तभी, जब भीतर तुम्हारे मन में कोई दूसरी चाह पैदा हो गई हो।
तुम संसार छोड़ोगे, जब मोक्ष की चाह पैदा हो जाएगी। तुम धन छोड़ दोगे, जब त्याग की चाह पैदा हो जाएगी। तुम कामवासना छोड़ दोगे, जब ब्रह्मचर्य की वासना पैदा हो जाएगी। मगर सूक्ष्म हो गई वासना, मिटी नहीं।

छोड़ने को भी नहीं कहता, बदलने को भी नहीं कहता, समझने को कहता हूं। समझना एकमात्र नियम है। वह सब शास्त्रों का शास्त्र है। तुम चाह को समझो कि चाह कैसे बांधती है? चाह का ढंग क्या है? चाह का शास्त्र क्या है?
चाह का शास्त्र यह है, चाह सदा यह कहती है कि तुम जहां हो, वह ठीक होना नहीं है। और जो ठीक होना है, वहां तुम नहीं हो। तुम्हारे पास दस रुपए हैं, यह ठीक अवस्था नहीं है। दस करोड़ होने चाहिए, तब आनंद ही आनंद होगा। तुम शरीर में हो, शरीर में तो दुख ही दुख है, व्याधियां, बीमारियां। जब देह-मुक्त होकर स्वर्ग में रमोगे, तभी आनंद होगा। यह वही चाह का शास्त्र है। तुम जो हो, उसमें अधैर्य। तुम जो हो, उसमें अशांति। तुम जो हो, उसमें राजीपन नहीं, स्वीकार नहीं। तुम जो हो, उसका निषेध। और तुम जो नहीं हो, उसकी कामना, उसकी वासना, उसको पाने का ख्याल। बस, यह चाह का शास्त्र है। इसे फिर तुम कहीं भी लगा लेना। धन पर लगाना, धर्म पर लगाना, वस्तुओं पर लगाना, मोक्ष पर लगाना, कोई अंतर न पड़ेगा। एक बात पक्की रहेगी, तुम जहां हो, वहीं दुखी रहोगे। और जहां तुम नहीं हो, वहां तुम्हारे स्वर्ग की मृग-मरीचिका होगी। और स्वर्ग तुम्हारे भीतर है। स्वर्ग वहीं है, जहां तुम हो। कबीर कहते हैं, कस्तूरी कुंडल बसै।
वह मृग के भीतर ही कस्तूरी का नाफा है। गंध उसे लगती है कहीं से आती। भागता है पागल होकर, खोजता है वनों में, चीखता-चिल्लाता है, विक्षिप्त हो जाता है, क्योंकि पुकारे ही चली जाती है वह गंध। और गंध उसकी नाभि में है, आती भीतर से है। लेकिन भीतर का उसे पता नहीं। सोचता है, जरूर कहीं से आती होगी। जब आती है, तो जरूर कहीं से आती होगी। उसका तर्क वही है, जो तुम्हारा है। दूर दिखती है मृग-मरीचिका; भागता है, चीखता-चिल्लाता है, विक्षिप्त हो जाता है--उसके लिए जो भीतर था।
जो तुम्हारे पास सदा से है, उसे तुम देख न पाओगे, जब तक तुम्हारी आंखें उसे पाने में लगी हैं, जो तुम्हारे पास नहीं है। छोड़ो मोक्ष, छोड़ो विचार गुरु का, स्वर्ग का, सत्य का। तुम इतनी ही कृपा करो कि तुम जो हो, जहां हो, जैसे हो, उसके प्रति जाग जाओ। अपने भीतर के नाफे को थोड़ा खोलो। कस्तूरी कुंडल बसै!
और तब तुम पाओगे कि तुम अकारण ही भागते थे। भागने की कोई जरूरत ही न थी। तुम्हें वह मिला ही था, जिसकी तुम खोज कर रहे थे।
इसलिए ज्ञानी कहते हैं, अचाह से मिल जाता है, चाह से खो जाता है। तृष्णा भटकाती है, पहुंचाती नहीं। अतृष्णा पहुंचा देती है, भटकाती नहीं। तो तुम नाम मत बदलो। नाम बदलने से कुछ अर्थ न होगा। नए-नए रूपों में चाह पुनः-पुनः जीवित हो जाएगी। तुम तो चाह के प्राण को समझ लो, उसके मूल को समझ लो, ताकि फिर वह कोई नए रूप न ले पाए, वह कोई नए वेश न ले पाए। वह किसी भी वेश में आए, तुम उसे तत्क्षण पहचान लो कि आ गई चाह। कल की पुकार आ गई; भविष्य का निमंत्रण आ गया। बाहर खींचने की तरकीब शुरू हो गई। यह मुझे हटा देगी मेरी जगह से। जहां मेरी चेतना की लौ अकंप जलती है, वह कंप जाएगी। उसके कंपते ही सब धूमिल हो जाता है, सब अंधकारपूर्ण हो जाता है।
अचाह तुम्हें ध्यान में ले जाएगी, ध्यान मोक्ष है। इसलिए हमने ध्यान
को समाधि कहा है। क्योंकि ध्यान आखिरी समाधान है। पर ध्यान में जाने के लिए अचाह मार्ग है।

दूसरा प्रश्नः ध्यान और धैर्य में क्या संबंध है?

बडा संबंध है, बहुत गहरा संबंध है। और अक्सर ऐसा हो जाता है, तुम्हें ऐसे लोग भी मिल जाएंगे, जो ध्यान कर रहे हैं, लेकिन जिनमें धैर्य नहीं। और ऐसे लोग भी मिल जाएंगे, जो धैर्यवान हैं, लेकिन जिनमें ध्यान नहीं। ये दोनों कहीं नहीं पहुंचेंगे। उनकी नाव ऐसे है, जैसे उसमें एक ही पतवार हो। एक सूफी फकीर हुआ, जुन्नैद उसका नाम था। उसने अपने गुरु से पूछा कि क्या ध्यान काफी नहीं है? फिर यह धैर्य और बीच में क्यों?
सूफी तो जीवन से भागते नहीं। वे तो जीवन में ही रहते हैं। गुरु एक मांझी था। वह लोगों को एक किनारे से दूसरे किनारे पहुंचाने का काम करता था। ऐसे भी गुरु मांझी है। इसलिए जैनों ने तो अपने महागुरुओं को तीर्थंकर

कहा है। तीर्थंकर का मतलब होता है, मांझी। तीर्थंकर का मतलब है, जिनके द्वारा तुम उस पार पहुंच जाते हो। तीर्थ का अर्थ होता है, घाट। तीर्थंकर का अर्थ होता है, जो पहुंचा दे उस पार, इस घाट से उस घाट।
वह गुरु जुन्नैद का मांझी था, तीर्थंकर था। ऐसे बाहर की दुनिया में भी
वह लोगों को एक घाट से दूसरे घाट पहुंचाता; भीतर की दुनिया में भी उसका काम वही था। उसने जुन्नैद से कहा कि मैं उस तरफ जा रहा हूं, कुछ यात्री पहुंचाने हैं, तू भी आ जा। और कौन जाने रास्ते में तेरा समाधान भी हो जाए! जुन्नैद थोड़ा चकित हुआ, क्योंकि समाधान यहीं किया जा सकता है। इसमें नदी में जाने की और नाव में बैठने की क्या जरूरत! गुरु दो पतवार लेकर नाव चलाता है। लेकिन उस दिन उसने एक पतवार तो अंदर रख दी, नाव जैसे ही मझधार में पहुंची, एक ही पतवार से चलाने लगा। नाव गोल-गोल घूमने लगी।
अब एक ही पतवार से नाव चलाओगे, तो गोल घूमने लगेगी। संतुलन खो जाएगा। अगर तुम बाएं हाथ की पतवार से नाव चला रहे हो, तो बाईं तरफ नाव घूमने लगेगी और चक्कर खाने लगेगी।
यात्री चिल्लाए कि क्या तुम्हारा दिमाग खराब हो गया, मांझी। क्योंकि यात्रियों को तो कुछ पता नहीं। यह तुम क्या कर रहे हो? ऐसे तो हम कभी न पहुंचेंगे।
गुरु ने जुन्नैद से कहा, बोल, एक पतवार से पहुंचना हो सकता है या नहीं? उसने कहा, एक से पहुंचना मुश्किल होगा। गुरु ने कहा, तो दोनों पतवार को गौर से देख। एक पतवार पर उसने लिखा था ध्यान और एक पतवार पर लिखा था धैर्य।
समझें थोड़ा।
अगर आदमी अकेला ध्यान करे और धैर्य न हो, तो ध्यान भी न हो पाएगा। क्योंकि जल्दी में होगा। मिल जाए करने के पहले, ऐसा आदमी का मन है। बिना किए मिल जाए, ऐसी आदमी की आकांक्षा है। फल हाथ लग जाए, कर्म न करना पड़े।
तो ध्यान तो किसी तरह करेगा, लेकिन आकांक्षा फल पर लगी रहेगी, जल्दी
हो जाए ध्यान और फल मिल जाए! अगर मोक्ष है कोई, तो हर दो-चार-पांच क्षण बाद आंख खोलकर देख लेगा, अभी तक मोक्ष पास आया, नहीं आया!
ध्यान हो कैसे पाएगा? क्योंकि ध्यान तभी हो सकता है, जब फलाकांक्षा न हो। फलाकांक्षा हो, तो मन फल में लगा रहता है। ध्यान की थिरता आती ही नहीं। ध्यान का अर्थ है, तनावशून्य हो जाना। फल की आकांक्षा तो तनाव है। ध्यान का तो अर्थ है, अभी और यहीं, परिपूर्ण डूब जाना। लेकिन फल की आकांक्षा तो आने वाले कल की आकांक्षा है। ध्यान का अर्थ है, कृत्य ही फल हो जाए, साधन ही साध्य हो जाए, मार्ग ही मंजिल हो जाए। लेकिन जब तक मन में फल है, तब तक तो यह नहीं हो सकता।
मेरे पास लोग आते हैं वे कहते हैं, रात नींद नहीं आती। क्या ध्यान से
यह ठीक हो जाएगी?
मैं उनसे कहता हूं कि ध्यान बड़ी तलवार है। तुम उससे सुई का काम मत लेना। सुई का काम तलवार से लोगे, कपड़ा और फट जाएगा, सीना तो मुश्किल है। ध्यान बड़ी तलवार है। तुम बात ही बड़ी छोटी लेकर आ गए हो कि रात नींद नहीं आती, ध्यान से आ जाएगी।
हां, जो ध्यान करता है उसे नींद अच्छी आती है, भली आती है, गहरी आती है,
वह सच है। लेकिन नींद ही लाने के लिए जो ध्यान करने गया है, उसका तो ध्यान ही नहीं हो पाएगा। नींद तो दूर की बात हो गई। बड़ी छोटी आकांक्षा पीछे पड़ी रहेगी।
लोग कहते हैं, मन अशांत है, ध्यान से शांति मिल जाएगी? एक सज्जन ने मुझे आकर कहा, न मुझे परमात्मा की इच्छा है, न मुझे कोई मोक्ष चाहिए... । वह कुछ इस ढंग से कह रहे थे, जैसे बड़े त्यागी हैं। संसार भी छोड़ते हैं, मोक्ष, परमात्मा, सब छोड़ते हैं। मन में जरा अशांति रहती है, बस इसको रास्ता मिल जाए।
अगर मन की अशांति को मिटाने के लिए तुम ध्यान करने बैठे हो, तो तुम बार-बार लौटकर देखोगे, अब तक मिटी नहीं! और मजा तो यह है कि जब ध्यान शुरू करोगे, तो अशांति बढ़ेगी। क्योंकि जो दबी पड़ी है, वह भी प्रकट होगी। जो सदा- सदा से दबाई है, उसका भी रेचन शुरू होगा, कैथार्सिस होगी।

जो कूड़ा-करकट भीतर छिपाकर बैठे रहे हो, प्रकट नहीं किया है, ध्यान उन द्वारों को भी तोड़ेगा। घर की सफाई करेगा। वर्षों की जमी धूल, जन्मों की जमी धूल उठेगी फिर से, अंधड़-तूफान होंगे। कुछ देर तो थोड़ी-बहुत जो शांति तुम्हारे पास थी, वह भी खो जाएगी।
तब तो तुम घबड़ा जाओगे कि लेने आए थे शांति और यह हाथ में जो थी, वह भी गई। अगर धैर्य न हुआ, तो तुम विक्षिप्त भी हो सकते हो, क्योंकि ध्यान इतना बड़ा तूफान लाएगा। क्योंकि वह एक दिन की जमी हुई रोग की अवस्था नहीं है, जन्मों-जन्मों की है। ध्यान तो सारी परतों को तोड़ेगा, ताकि तुम्हारे भीतर के अंतरतम तक पहुंच जाए।
तो परतों को तोड़ने में सारी व्यवस्था, अब तक के दमन की, उखड़ेगी। एक झंझावात! सब कंप जाएगा। जमा हुआ थिर सब खो जाएगा, बना-बनाया सब गिर जाएगा। अगर तुम इसी बीच भाग गए, धैर्य न हुआ, तो तुम विक्षिप्त भी हो सकते हो।
बहुत लोग ध्यान करते हैं, धैर्य नहीं होता। दो दिन करते हैं, फिर दो साल नहीं करते। फिर एक-दो दिन कर लेते हैं, फिर भूल जाते हैं।
मेरे पास ऐसे लोग आ जाते हैं, जिनकी सत्तर साल उम्र है। वे कहते हैं,
कई दफे शुरू किया, कई दफा छूट गया।
ध्यान भी कहीं छूटता है शुरू किया? स्वाद लग जाए, रस आ जाए, तो ध्यान कहीं छूटता है शुरू किया? और जो छूट-छूट जाए, वह ध्यान ही न रहा होगा। धैर्य न था, एक बात पक्की है। इसलिए थोड़ी देर नाव गोल-गोल घूमी, फिर तुम थक गए, क्योंकि कहीं जाती मालूम न पड़ी।
कभी बैठो बिना धैर्य के, तो मन गोल-गोल घूमेगा। थोड़ी देर चक्कर मारेगा। फिर तुम कहोगे, इसमें क्या सार है! इससे तो अखबार ही पढ़ते, या दुकान ही चले जाते। थोड़े ग्राहक ही निपटा लेते, फाइल ही देख लेते दफ्तर की। ताश ही खेल लेते, वह भी सार्थक मालूम पड़ता है। यह बैठे-बैठे सिर में गोल नाव घुमाने से क्या फायदा है!
नहीं, अगर धैर्य न होगा, तो ध्यान की जड़ ही न जमेगी। बिना धैर्य के ध्यान तो ऐसा है, बीज बोए, उखाड़कर देखे कि अभी तक अंकुर आए या नहीं। ऐसे कई बार बोए, फिर उखाड़कर देख लिए घड़ीभर बाद। अंकुर आने भी दोगे? थोड़ी देर बीज को भूमि में तो पड़ा रहने दो।
एक महिला मेरे पास आई। उसने कहा कि ज्यादा मेरे पास समय नहीं है। स्कूल में अध्यापिका हूं। सात दिन की छुट्टी लेकर आई हूं। परमात्मा का दर्शन हो जाएगा? सात दिन की छुट्टी।
मैंने उससे कहा, तू भी परमात्मा पर बड़ी कृपा कर रही है। एकदम सात दिन
की छुट्टी लेकर आ गई। परमात्मा भी सदा-सदा अनुगृहीत रहेगा। कौन लेता है परमात्मा के लिए सात दिन की छुट्टी! तूने खूब गजब कर दिया।
वह थोड़ी चौंकी। नहीं, उसने कहा कि दो दिन तो छुट्टी है ही, पांच ही दिन
की ली है।
फिर भी कृपा है। पर अब ऐसा व्यक्ति कहीं परमात्मा को उपलब्ध होने वाला है! ऐसा व्यक्ति तो किसी भी चीज को उपलब्ध नहीं हो सकता है। इस व्यक्ति की तो चित्त की दशा बड़ी मूढ़ है। यह तो क्या कह रहा है, इसे पता ही नहीं है।
सात जन्म में भी परमात्मा मिल जाए, तो जल्दी मिल गया। यह सात दिन की छुट्टी लेकर आ गई है। उसमें भी दो दिन की छुट्टी थी ही, पांच दिन की और ले ली है। और इस भाव से आई है कि अगर न मिला परमात्मा, तो सिद्ध ही हो जाएगा कि है ही नहीं।
अब मैंने उससे कहा, तू ऐसा कर छुट्टी बचा ही ले। वापस चली जा। इतनी जल्दी होगा भी नहीं और नाहक तेरे मन में ऐसा हो जाएगा, हमने इतनी कृपा की परमात्मा पर, उधर से कोई उत्तर न आया। तू नाहक नास्तिक हो जाएगी। नास्तिक तू है ही, क्योंकि आस्तिक ने कभी यह सोचा ही नहीं कि सात दिन में परमात्मा मिलने वाला है। मिल जाता है कभी-कभी सात क्षण में भी, पर आस्तिक ने कभी सोचा नहीं कि सात दिन में मिल जाएगा।
सात जन्मों में भी मिल जाए, तो जल्दी हो गई। योग्यता क्या है? पात्रता क्या है? जब भी मिलता है, तभी प्रसादस्वरूप है। हमारे प्रयत्न से मिला नहीं।

लेकिन मन जल्दी में है। हम वैसे ही चाहते हैं ध्यान भी, जैसे कि इंस्टैंट काफी। जल्दी से डाली, चम्मच हिलाया, तैयार हो गई। सब चीजें जल्दी हो जाएं। बटन दबाई, काम हो जाए।
जीवन काश, ऐसा होता! लेकिन अच्छा ही है कि नहीं है।
बटन दबाई, परमात्मा आ गए; बटन दबाई, ध्यान हो गया, समाधि लग गई। तब तो कबीर और कृष्ण सड़क-सड़क बिकते। अकेले भी न बिकते, दर्जन में बिकते। कोई मतलब ही न था, कोई बात ही अर्थ की न थी।
ध्यान बहुत लोग शुरू करते हैं बिना धैर्य के, तब ध्यान टूट-टूट जाता है। उसका सातत्य नहीं जमता, क्योंकि सातत्य के लिए धैर्य चाहिए।शृंखला नहीं बनती, माला के मनके रह जाते हैं, माला नहीं बन पाती। क्योंकि वह धागा, जो सब मनकों को जोड़ दे धैर्य का, वह भीतर होता नहीं। तो एक ढेर लग जाता है मनकों का, लेकिन माला नहीं बनती। और जब तक ध्यान माला न बन जाए, तब तक कुछ भी न होगा। वह दिखाई नहीं पड़ता धागा भीतर पिरोया हुआ, पर वही सम्हाले हुए है।
ध्यान करने वालों में तुम्हें शायद धैर्य का अनुभव भी न हो, तुम्हें दिखाई भी न पड़े, क्योंकि मनके ही दिखाई पड़ते हैं। लेकिन भीतर असली चीज जो सम्हाले है, वह धैर्य है। ध्यान के मनके, धैर्य का धागा, फिर बन जाती है माला।
फिर बहुत लोग हैं जो धैर्यवान हैं, लेकिन जिन्होंने कभी ध्यान नहीं किया। उनका धैर्य सिवाय आलस्य के और कुछ भी नहीं है। वस्तुतः वे यह कह रहे हैं कि हम बिल्कुल धैर्यवान हैं, जब मिलेगा मिल जाएगा। असलियत में यह है कि उन्हें कोई चाहना भी नहीं है, पाने की कोई आकांक्षा भी नहीं है। वे कहते हैं, ऐसे ही बैठे-बैठे चलते-चलते मिल जाएगा। जंचा तो ठीक है, चुन लेंगे; अन्यथा कोई जल्दी नहीं है।
अगर गौर से उनके भीतर देखो, तो उनको कोई आकांक्षा ही नहीं है, कोई अभीप्सा ही नहीं है, कोई प्यास ही नहीं है। आलसी हैं, तामसी हैं।
अब यूं समझो कि जिसने बिना धैर्य के ध्यान किया, वह राजसी है। जिसने बिना ध्यान के धैर्य रखा, वह तामसी है। और जिसने धैर्य और ध्यान का संतुलन बना लिया, वह सात्विक है। तब तुम्हें कृष्ण का सूत्र समझ में आ जाएगा कि सत्व का क्या अर्थ है।
धैर्य ऐसा, जैसे आलसी पुरुषों में होता है। आलसी पुरुषों में बड़ा धैर्य होता है। अगर धैर्य सीखना हो, तो उन्हीं से सीखना चाहिए। उन्हें कुछ पाने की जल्दी ही नहीं होती। पाने का ख्याल ही नहीं होता, कोई दौड़ नहीं होती। वे बैठे ही हैं; मिट्टी के ढेर हैं। कोई जीवन नहीं है, कोई ऊर्जा नहीं है, कोई गति नहीं है।
फिर राजसी पुरुष हैं। उनमें दौड़ तो बहुत होती है; रुकने की क्षमता नहीं होती। ठहर नहीं सकते, प्रतीक्षा नहीं कर सकते, भाग सकते हैं।
जब कभी राजसी व्यक्ति जैसी ऊर्जा और आलसी जैसा धैर्य होता है, तब ध्यान और धैर्य का संगम होता है। तब सोने में सुगंध आ जाती है। तब सत्व का जन्म है।
अकेला ध्यान बिना धैर्य के जमेगा ही नहीं, बनेगा ही नहीं, तार ही न जुड़ेगा। अकेला धैर्य बिना ध्यान के किसी अर्थ का नहीं है, सिर्फ आलस्य है। कुछ तो हैं, जो बीज बोते हैं, उखाड़-उखाड़कर देख लेते हैं; प्रतीक्षा नहीं कर सकते। कुछ हैं, जिन्होंने बीज ही नहीं बोए हैं, आराम से बैठे प्रतीक्षा कर रहे हैं। बीज ही न बोए हों, तो प्रतीक्षा से कुछ आएगा न। बीज बोए हों और प्रतीक्षा न हो, तो भी बीज बंठर हो जाएंगे। तो भी उनसे कुछ न आएगा।
जीवन एक कला है। वहां विपरीत को मिलाने की क्षमता होनी चाहिए। ध्यान
और धैर्य दो विपरीतताएं हैं। ध्यान और धैर्य के जोड़ का अर्थ है, पाना चाहता हूं अभी, रुकने को राजी हूं सदा के लिए। इसे समझ लेना।
पाना चाहता हूं इसी क्षण, रुकने को राजी हूं सदा के लिए। शक्ति तो पूरी लगा दूंगा कि अभी मिल जाए, लेकिन जानता हूं कि मेरी शक्ति से क्या मिलने वाला है! तेरी कृपा से मिलेगा। इसलिए अगर अनंत जन्मों में भी मिला, तो भी तेरा अनुग्रह रहेगा। अपने को पूरा डुबा दूंगा, लेकिन मेरी पात्रता

क्या है! मेरे हाथ कितने दूर जाएंगे! अपने हाथ पूरे फैला दूंगा, उसमें कोई कमी न रखूंगा, लेकिन मेरे हाथ छोटे हैं। इसलिए जानता हूं कि तू अभी मिलेगा नहीं, लेकिन प्रयास मैं ऐसा करूंगा, जैसे अभी मिल रहा है। घर को सजाऊंगा ऐसे, जैसे अतिथि आज ही आ रहा है। जन्म-जन्म बीत जाएं, तो भी शिकायत न आएगी। जब भी आएगा, समझूंगा, आज ही आ गया। यही क्षण था ठीक आने का।
ध्यान और धैर्य जहां मिल जाते हैं, वहां जीवन का परम संगीत बजता है; वहां सत्व की धुन गूंजती है।
इन दोनों पर ख्याल रखो। अक्सर तुम पाओगे, जब तुम ध्यान करोगे, तब धैर्य खो जाएगा; जब तुम धैर्य रखोगे, तब ध्यान खो जाएगा। पर एक पतवार से नाव कहीं जाएगी न। दोनों पतवार चलनी चाहिए, साथ-साथ चलनी चाहिए।

तीसरा प्रश्नः आपने पूर्व में कहा है, आनंद कसौटी है मार्ग मिलने की।
पर सदगुरु के पास पहुंचकर भी आनंद क्यों नहीं मिलता?

क्योंकि पास तुम पहुंच ही नहीं पाते। निकट होने को तुम पास होना मत समझ लेना। पास होने को तुम पास होना मत समझ लेना। शारीरिक निकटता तो बिल्कुल आसान है।
अनेक बार बुद्धों से कंधा रगड़ते हुए तुम निकल गए हो। पर इससे तुम उनके पास पहुंच गए, ऐसा मत समझ लेना। कितनी ही बार जीवन की अनंत राहों पर तुम्हें बुद्ध पुरुष मिल गए हैं। क्षणभर उनका साथ भी हो लिया है, थोड़ी गपशप भी कर ली है। थोड़ी अपनी भी कही है, उनकी भी सुन ली है। पर इससे तुम यह मत समझ लेना कि साथ हो गया। साथ ही हो जाता, तो तुम कभी के लीन हो गए होते विराट में। साथ नहीं हुआ।
साथ होना बड़ी अदभुत घटना है। इसलिए तो हम सत्संग को इतना मूल्य देते हैं। सत्संग को हमने द्वार कहा है सत्य का। सत्य बड़ी से बड़ी घटना है। उसकी महिमा का कोई अंत नहीं। उसका भी द्वार हमने सत्संग कहा है।
सत्संग का क्या अर्थ होगा? हृदयपूर्वक निकट होना।
शरीर की निकटता का कोई बड़ा मूल्य नहीं है। शरीर पास हो सकते हैं, प्राण करोड़ों मील के फासले पर हो सकते हैं। तुम यहां मेरे सामने बैठे हो सकते हो, दो कदम उठाओ और मेरे पास आ जाओ, लेकिन हृदय करोड़ों मील के फासले पर हो सकता है। इससे उलटी बात भी सच है कि तुम करोड़ों मील के फासले पर होओ और हृदय तुम्हारा बिल्कुल पास हो, मेरे हृदय के पास धड़के।
प्रेम चाहिए; प्रेम ही पास होना है। तुम मेरे पास हजार कारणों से आ सकते हो, लेकिन आ न पाओगे। एक कारण ही तुम्हें मेरे पास ला सकेगा, वह प्रेम है।
तुम मेरे पास आ सकते हो, क्योंकि मेरी बातें तुम्हें ठीक मालूम पड़ती हैं। तो तर्क के कारण तुम मेरे पास आ गए। वह कोई पास आना नहीं है। तुम्हारे-मेरे बीच कोई हृदय का लेन-देन नहीं हुआ; बुद्धि का सौदा हुआ। तुम्हें मेरी बात जमी, तुम्हें मेरी बात पटी; तर्क ने हामी भरी। तुमने कहा, हां, बात ठीक लगती है। तुम बात के कारण मेरे पास हो, मेरे कारण नहीं। कल बात ठीक न लगेगी, दूर हो जाओगे। कल किसी और की ठीक लगेगी, वहां चले जाओगे। तुम बात के पारखी थे; जहां ले जाएगी, वहां जाओगे।
और बात भी तुम्हारी बुद्धि को ठीक लगी। इसलिए तुम, मेरी बात ठीक लगी, ऐसा मत कहो। ऐसा ही कहो कि तुम्हारी बुद्धि जैसी है, उसमें मेरी बात ठीक लगी। अंततः तो तुम अपनी बुद्धि को ही चुन रहे हो, मुझे नहीं चुन रहे हो। निर्णय तो तुम्हारे तर्क का तुम्हारे ही पास है, तो मेरे पास कैसे आओगे! तुम हो सकता है, किसी और कामना से मेरे पास हो। कुछ हो जाए, मुकदमा जीत जाओ, बीमारी दूर हो जाए; बच्चा घर में नहीं पैदा होता, वह पैदा हो जाए।
अभी कुछ दिन पहले एक सज्जन आ गए। वे इसीलिए आए कि उनको बच्चा नहीं पैदा होता। मैंने उनको कहा कि तुम किसी चिकित्सक के पास जाओ। मेरे पास आने से क्या लेना-देना है! और मैं क्यों जिम्मेवार होऊंगा तुम्हारे बच्चे के पैदा होने न होने का! तुम मुझे बख्शो।
पर वे कहने लगे, नहीं, बड़ी आशा से आया हूं, और सदा आपकी याद आती है।

मेरी याद आती है? यहां भी आकर वह बच्चे की आकांक्षा है, मेरी क्या याद लेने का संबंध है। अगर बच्चा यहां आने से पैदा नहीं हुआ, जो कि कोई कारण नहीं है यहां आने से बच्चा पैदा होने का, तो तुम कहीं और जाओगे। वहां भी तुम यही कहोगे कि आपकी बड़ी याद आती है।
नहीं, अगर तुम किसी और कारण से आ गए हो, कोई वासना है, कोई इच्छा है, कोई कामना है, वह पूरी करनी है, तो तुम मेरे पास आए ही नहीं हो। फिर आनंद की झलक न होगी। तुम आए ही नहीं, तुम्हें भ्रांति रही कि तुम आ गए थे, क्योंकि तुमने ट्रेन में सफर की और तुम पूना पहुंच गए। मेरे पास आने के लिए कुछ और आंतरिक और सूक्ष्म यात्रा चाहिए। वह हृदय की यात्रा है; तुम अकारण आते हो। अगर तुमसे कोई पूछे कि तुम ठीक-ठीक बताओ, क्यों तुम इस आदमी के पास हो?
और तुम न बता पाओ, और तुम कहो कि कुछ कहना मुश्किल है, बेबूझ है बात, कोई कारण नहीं है होने का। असल में दूर जाने के सब कारण हैं, पास होने का कोई कारण नहीं है। पर एक लगाव है। हृदय में कोई बात धड़कती है। यह आदमी गलत हो या सही हो; तर्कयुक्त हो या अतर्क से भरा हो; जो कहता हो, वह ठीक हो, गलत हो; इस सबका हिसाब नहीं है। यह आदमी भा गया। यह क्या करता है, क्या नहीं करता है, इस सबका भी प्रयोजन नहीं है।
जैसे कोई किसी के प्रेम में पड़ जाता है, तो प्रेम तो अंधा है। अगर तुम वैसे अंधे होकर मेरे पास हो! और मैं तुमसे कहता हूं कि प्रेम एकमात्र आंख है। लोग कहते हैं, प्रेम अंधा है, क्योंकि लोगों के पास प्रेम की आंख नहीं है। उनके पास तो सिर्फ संदेह की आंख है। श्रद्धा की आंख से उनका कोई परिचय नहीं है।
अगर तुम संदेह की आंख से ही आए हो, तो दूर ही दूर रहोगे, फासला बना ही रहेगा, सीमाएं टूटेंगी नहीं।
अगर तुम श्रद्धा के अंधेपन को लेकर आए हो, या जिसे मैं कहता हूं श्रद्धा की आंख--दोनों एक ही बात हैं--तो सीमाएं खो जाएंगी। और तब तुम पाओगे, एक अपूर्व आनंद से तुम्हारा मन-मंदिर भरने लगा, एक नई पुलक तुम्हारे जीवन में आई, एक नई थिरक, जिससे तुम अपरिचित थे। एक नई धुन बजी। तुम एक नए नाच, एक नए उत्सव में सम्मिलित हुए। तुम मेरे भीतर आ गए।
मेरे पास आने का अर्थ है, मेरे भीतर आ गए। मेरे पास आने का अर्थ है, मुझे तुमने अपने भीतर आने दिया। सब सुरक्षा की फिक्र छोड़ दी। सब सुरक्षा के आयोजन छोड़ दिए। सब दीवारें अलग कर लीं।
खतरनाक है। इसलिए तो प्रेम मुश्किल हो गया है। क्योंकि प्रेम का मतलब है, तुम असुरक्षित हो जाओगे। प्रेम धीरे-धीरे कठिन होता गया है।
और जब प्रेम ही कठिन हो गया, तो श्रद्धा तो बहुत असंभव हो गई। क्योंकि श्रद्धा तो प्रेम का नवनीत है; वह तो उस प्रेम का शुद्धतम सार है। प्रेम अगर दूध है, तो श्रद्धा नवनीत है। मनों दूध में से निकालो, तब थोड़ा-सा नवनीत निकल पाएगा।
लेकिन दूध आज नहीं कल सड़ जाता है। इसलिए सब प्रेम सड़ जाता है। जो अपने प्रेम को श्रद्धा तक नहीं पहुंचाता, उसका प्रेम सड़ ही जाएगा।
अब यह बड़े मजे की बात है। दूध पुराना हो, तो सड़ जाता है। घी पुराना हो,
तो मूल्यवान हो जाता है। जितना पुराना घी हो, उतना पौष्टिक हो जाता है। औषधि में बड़े पुराने घी का प्रयोग करते हैं। अगर कई साल पुराना घी मिल जाए, तो उसकी शीतलता ही अनूठी है; वह प्राणों से ताप को हर लेता है।
दूध तो सड़ ही जाता है। इसके पहले कि दूध सड़ जाए, दही बना लेना। अगर तुमने दही बना लिया, तो तुमने सड़ने से बचा लिया। इसके पहले कि दही सड़ जाए, तुम नवनीत अलग कर लेना। तब तुमने शाश्वत को बचा लिया।
सब प्रेम सड़ जाता है। तुम भी जानते हो कि सब प्रेम सड़ जाता है। पत्नी
से करो, वह भी सड़ जाता है। बच्चों से करो, वह भी सड़ जाता है। मित्रों से करो, वह भी सड़ जाता है। सब प्रेम सड़ जाता है। कुछ प्रेम का कसूर नहीं है। प्रेम तो दूध है। उसमें सिर्फ संभावना है। तुम दूध को ही लिए बैठे रह गए, वह सड़ ही जाएगा।
जल्दी करो, नवनीत बनाओ! प्रेम को श्रद्धा तक ले आओ। तब प्रेम भी श्रद्धा में बच जाता है। और श्रद्धा तो कभी सड़ती नहीं। और श्रद्धा तो

जितनी प्राचीन होने लगती है, उतनी ही अनूठी होने लगती है, उतनी ही उसकी औषधि का गुण बढ़ता जाता है; वह अमृत होने लगती है।
तुम अगर श्रद्धा से मेरे पास हो, अगर प्रेम के नवनीत को तुमने मेरे पास सीखा है, जीया है, निर्मित किया है, तो तुम आनंद से भर जाओगे। उसमें फिर कोई दो मत नहीं हैं। उससे अन्यथा होता ही नहीं है।
लेकिन अगर तुम आनंद से न भरो, तो समझना कि तुम पास आए ही नहीं। तुम दूर
ही दूर थे। शारीरिक निकटता को तुमने निकटता समझकर भूल कर ली। वह कोई निकटता नहीं है। वह तो निकट होने का भ्रम और आभास है।
निकटता तो केवल एक है, वह हृदय की है। सामीप्य एक है, वह प्रेम का है। नवनीत एक है, वह श्रद्धा का है।

चौथा प्रश्नः हम दुख से तो सदा बचना चाहते हैं, पर जीवन की शैली निषेधात्मक क्यों कर बन जाती है?

बचना चाहते हो, तो जीवन की शैली निषेधात्मक बन ही जाएगी। वह बचने में
ही तो निषेध है। भागना चाहते हो। किसी भी चीज को आमने-सामने साक्षात्कार नहीं करना चाहते।
दुख है तो भागोगे कहां? और दुख है तो परिस्थिति के कारण अगर होता, तो भाग भी जाते। दुख तो तुम्हारे ही कारण है। यही तो सभी ज्ञानियों का विश्लेषण है।
दुख परिस्थिति के कारण नहीं है। परिस्थिति बदली जा सकती है। पूना में दुख है, भाग जाओ कलकत्ता। शायद दो-चार दिन पाओ कि परिस्थिति के बदलने से दुख नहीं है। लेकिन जैसे ही व्यवस्थित हो जाओगे, पाओगे कि फिर दुख पैदा हो गया। क्योंकि तुम तो अपने साथ ही पहुंच जाओगे। तुम अपने को पीछे कहां छोड़ जाओगे।
तुम अपने दुख की सारी व्यवस्था अपने साथ लिए जा रहे हो। अगर यहां तुम्हारी लोगों से कलह हो जाती थी, क्रोध हो जाता था, कलकत्ते में नहीं होगा? फिर होगा। हिमालय पर जाओगे, क्या होगा? वहां भी वही होगा। अगर तुम यहां उदास होते थे, दुखी होते थे, तो हिमालय पर बैठकर दुखी और उदास होओगे। तुम्हारा होना तुम्हारे दुख का कारण है। भागो मत। पलायनवादी मत बनो। भगोड़ों से सारी पृथ्वी भरी है, पूरा मनुष्य जाति का इतिहास भरा है। उनसे कुछ बदला नहीं। उनसे जीवन में निषेध की शैली आई। उनसे लोगों ने यही सीखा कि जहां भी घबड़ाहट, परेशानी मालूम पड़े, वहां से भाग जाओ। भागकर जाओगे कहां? जो तुमने यहां पैदा किया था, वही तुम नई जगह फिर पैदा कर लोगे, थोड़ी देर लगेगी।
लोग मरघट ले जाते हैं किसी की अर्थी को, तो रास्ते में कंधा बदल लेते हैं। एक कंधे पर से अर्थी दूसरे कंधे पर रख ली; थोड़ी देर को राहत मिलती है। थका हुआ कंधा सुस्ता लेता है। सुस्ताया कंधा थोड़ा ताकतवर होता है। पर थोड़ी देर बाद फिर वही हालत आ जाती है।
कंधे मत बदलो। कंधे बदलने से कोई सार नहीं है। इसलिए मैं कहता हूं, संसार को छोड़कर मत भागो। क्योंकि एक बार छोड़कर भागना तुम्हारी जीवन-शैली बन गई, तो तुम भागते ही रहोगे और पहुंचोगे कहीं भी नहीं। क्योंकि रोग तुम्हारे भीतर है, रोग तुम हो। औषधि वहीं करनी है, चिकित्सा वहीं करनी है, समाधान वहीं खोजना है, बाहर नहीं।
दुख से क्यों भागते हो? अगर दुख है, तो तुमने बुलाया होगा; बिना बुलाए संसार में कुछ आता नहीं। अगर दुख है, तो तुमने इसे संवारा होगा; अनजाने सही, बेहोशी में सही। तुमने शायद सुख ही चाहा होगा। तुम शायद सुख की आकांक्षा से ही कुछ किए थे। लेकिन दुख आया है। उससे साफ है कि तुम दुख के लिए निमंत्रण दिए थे।
तुमने बीज बोए। तुम आम की प्रतीक्षा करते थे, आम नहीं लगे; नीम के कड़वे
फल लग गए। तो क्या तुम यह कहोगे कि आम के बीजों में नीम के फल लग गए? यह तो होता नहीं। होने की संभावना यही है कि जिन्हें तुमने आम के बीज समझा था, वे नीम के बीज थे। बीज बोने में भूल हो गई।

तुम चेष्टा तो करते हो सुख की, लेकिन मिलता दुख है। तुम ठीक से नहीं समझ पा रहे कि तुम नीम के बीज बो रहे हो, आकांक्षा आम की कर रहे हो। और रोज यही करते हो, फिर भी नहीं जागते।
भागो मत। दुख है, तो तुम्हारे कारण। दुख है, तो तुमने बुलाया था, इसलिए आया है। दुख है, तो तुमने वर्षों तक इसकी प्रतीक्षा की थी, अब उसका आगमन हुआ है, अब भागते कहां हो! अब इस अतिथि का स्वागत करो। अब इस अतिथि को ठहराओ, इससे परिचित हो जाओ। इससे इतने परिचित हो जाओ कि दुबारा भूल-चूक से निमंत्रण न दिया जा सके। इसका नाम-पता, इसका जीवन-ढंग, इसकी स्थिति सब समझ लो, ताकि दुबारा तुम फिर से इनको पत्र न लिख दो। नहीं तो तुम फिर वही भूल करोगे।
भागने वाला बार-बार वही भूल करता है। तुम अब जागकर दुख को समझ लो।
मेरी जीवन-दृष्टि जागने पर जोर देती है, भागने पर नहीं; समझने पर जोर देती है, पलायन पर नहीं। वह तो कायर का मार्ग है। साहसी, थोड़ा भी साहसी हो, तो जो आ गया जीवन में उसका साक्षात्कार करता है।
दुख है, ठीक है। उसे देखो, क्यों है? कैसे आया? कैसे तुमने बुलाया? और
अब तुम आगे बुलाने से कैसे बच सकते हो? नहीं तो तुम फिर-फिर वही भूल करोगे। आदमी का बड़ा अदभुत लक्षण यह है कि वह अनुभव से सीखता ही नहीं। वही-वही
तो घटनाएं तुम रोज करते हो। कल भी क्रोध किया, परसों भी क्रोध किया, जीवनभर क्रोध किया, आज भी क्रोध किया, कल भी क्रोध करोगे। तुम कुछ नया कर रहे हो? अगर तुम अपनी जीवनचर्या लिखो, तो तुम पाओगे, तुम्हारी जीवनचर्या वही की वही है, पुनरुक्ति होती है रोज। तुम गाड़ी के चाक हो, घूमते चले जाते हो, वही के वही; कोई फर्क नहीं पड़ता।
अब रुको और समझो। दुख है। निश्चित, बहुत दुख है। क्योंकि तुमने अब तक दुख के बीज बोए। अब तुम फसल काट रहे हो।
इसको तुम किसी और का उत्तरदायित्व मत समझो। नहीं तो फिर चूक जाओगे।
पूरा उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लो कि मैंने जो किया, मैं भोग रहा हूं। यही तो सारा कर्म का सिद्धांत है। जो बोएगा, वह काटेगा। जो बोएगा, वही काटेगा।
जो करेगा, वही भरेगा। बिल्कुल साफ है।
समझो। दुख द्वार आया है, इस अवसर को ऐसे ही मत खो दो। यह समझने का बड़ा सुखद अवसर है। इसे ठीक से पहचान लो, ताकि दुबारा ये बीज तुम न बोओ।
और मैं नहीं कहता कि तुम कसम खाओ कि अब दुबारा बीज न बोएंगे, क्योंकि कसम भी नासमझ खाते हैं। समझ लिया, फिर क्या कसम खानी है। अगर तुमने क्रोध को समझ लिया कि दुख है, तो क्या तुम मंदिर में जाकर कसम खाओगे कि अब क्रोध कभी न करूंगा! यह बात ही फिजूल हो गई। तुमने दुख समझ लिया क्रोध को, बात खतम हो गई। अगर समझ लिया, तो तुम दुबारा इसी मार्ग से न गुजरोगे।
एक दफा आदमी दीवार से निकलने की कोशिश किया, सिर टूट गया; अब वह कसम थोड़े ही खाता है मंदिर में जाकर कि अब दुबारा दीवार से निकलने की कोशिश न करूंगा। चाहे दीवार कितना ही प्रलोभन दे और चाहे लोग कितना ही प्रचार करें, मैं तो अब दरवाजे से ही निकलूंगा। नहीं, ऐसा आदमी अपने आप दरवाजे से निकलता है। बात खतम हो गई।
दुख को ठीक से देख लो, वहां दीवार है। दरवाजा अगर तुमने देखा था, तो वह तुम्हारी भ्रांति थी। वहां सिर्फ सिर टकराएगा, पीड़ा होगी, लहू बहेगा। द्वार को खोजो। द्वार पास ही है, दूर नहीं है। क्रोध में द्वार नहीं है, करुणा में द्वार है। हिंसा में द्वार नहीं है, घृणा में द्वार नहीं है।
क्योंकि कभी कोई उनके द्वारा सुख नहीं पा सका।
प्रेम में द्वार है, दया में द्वार है। उनसे जो गुजरे, वे प्रभु के मंदिर में प्रविष्ट हो गए।
तो दुख को ठीक से पहचान लो। और तब तुम पाओगे कि तुम्हारे जीवन में सुख अपने आप बरसने लगा।
ऐसा समझो कि दुख का तो अर्जन करना पड़ता है, सुख बरसता है। दुख तुम्हारी उपलब्धि है, सुख तुम्हारा स्वभाव। सुख के लिए किसी कारण की कोई जरूरत नहीं, दुख के लिए कारण होते हैं।
अगर तुम चिकित्सक के पास जाओ, तो वह तुम्हारी बीमारी के कारण खोज सकता है, तुम्हारे स्वास्थ्य के कारण नहीं खोज सकता। स्वास्थ्य का कोई कारण

होता ही नहीं। स्वास्थ्य स्वाभाविक है। जब बीमारी होती है, तब कारण होता है। तो चिकित्सक बीमारी का निदान कर देता है।
चिकित्साशास्त्र के पास स्वास्थ्य की कोई परिभाषा तक नहीं है। इतनी
ही परिभाषा है कि जब कोई बीमारी न हो। यह भी कोई परिभाषा हुई? बीमारी से स्वास्थ्य की परिभाषा! कोई बीमारी न हो, तुम स्वस्थ हो।
इसका अर्थ यह हुआ कि स्वास्थ्य तो स्वभाव है, बीमारी पर-भाव है। बीमारी बाहर से आती है, इसलिए कारण खोजे जा सकते हैं। स्वास्थ्य तुम्हारे भीतर ही खिलता है, अकारण है। वह फूल अकारण है।
शांति भी अकारण है, अशांति सकारण है। दुख सकारण है, सुख अकारण है। अगर
यह बात तुम्हें ठीक से समझ में आ जाए, तो जब भी दुख हो, कारण खोजना; और जब भी सुख हो, तब सुख को भोगना, कारण वहां कोई है ही नहीं।
सुख को भोगो, दुख को समझो, परमात्मा दूर नहीं है फिर। सुख को जीओ, दुख
को पहचानो, मोक्ष दूर नहीं है फिर। तुम ठीक रास्ते पर चल रहे हो।
सुख को पहचानते-पहचानते महासुख हो जाएगा। दुख को पहचानते-पहचानते दुख के कारण तिरोहित हो जाएंगे। उस घड़ी को हमने सच्चिदानंद कहा है। तब तुम्हारे जीवन की शैली विधायक होगी।
अभी तुम्हारे जीवन की शैली निषेधात्मक है। भागो, यह न करो, वह न करो। यहां से हटो, बचो। इससे तुम कहीं पहुंचे नहीं हो। न कहीं पहुंच सकते हो।

अब सूत्रः
और हे अर्जुन, अब सुख भी तू तीन प्रकार का मुझसे सुन। हे भरतश्रेष्ठ, जिस सुख में साधक पुरुष ध्यान, उपासना और सेवादि के अभ्यास से रमण करता है और दुखों के अंत को प्राप्त होता है, वह सुख प्रथम साधन के आरंभ काल में यद्यपि विष के समान भासता है, परंतु परिणाम में अमृत-तुल्य है। इसलिए जो आत्मबुद्धि के प्रसाद से उत्पन्न हुआ सुख है, वह सात्विक कहा गया है।
और जो सुख विषय और इंद्रियों के संयोग से होता है, वह यद्यपि भोग काल में अमृत के सदृश भासता है, परंतु परिणाम में विष सदृश है, इसलिए वह सुख राजस कहा गया है।
तथा जो सुख भोग काल में और परिणाम में भी आत्मा को मोहने वाला है, वह निद्रा, आलस्य और प्रमाद से उत्पन्न हुआ सुख तामस कहा गया है।
और हे अर्जुन, पृथ्वी में या स्वर्ग में अथवा देवताओं में ऐसा वह कोई
भी प्राणी नहीं है कि जो इन प्रकृति से उत्पन्न हुए तीनों गुणों से रहित हो।
तामसिक सुख से प्रारंभ करें।
जो सुख भोग काल में और परिणाम में भी आत्मा को मोहने वाला है... । मूर्च्छित करने वाला है, जिसका गुण शराब जैसा है, जिससे चैतन्य खोता है; जिससे समझ तिरोहित होती है, ढंकती है; जिसमें भीतर की प्रज्ञा पर राख जम जाती है। जिससे तुम ऐसा व्यवहार करने लगते हो, जैसा तुम भी होश के क्षणों में सोच न सकते थे कि करोगे।
तुम ऐसे आच्छादित हो जाते हो मूर्च्छा से, जैसे शराबी गालियां बकने लगता है, रास्ते पर उलटा-सीधा चलने लगता है और सुबह उठकर उसे याद भी नहीं रहती कि मैंने क्या किया। और सुबह तुम उसे कहो कि तुमने ऐसा-ऐसा व्यवहार किया, तो वह कहेगा, क्या मैं पागल हूं! ऐसा मैं कैसे कर सकता हूं।
जो सुख भोग-काल में और परिणाम में भी आत्मा को मोहने वाला है... ।
सुख को भोगते समय भी जो मनुष्य को मूर्च्छित करता है और परिणामतः भी, अंततः भी जो अपने पीछे मूर्च्छा को ही छोड़ जाता है।
निद्रा, आलस्य और प्रमाद से उत्पन्न हुआ... ।
ऐसा सुख निद्रा से उत्पन्न होता है, आलस्य से उत्पन्न होता है, प्रमाद
से उत्पन्न होता है।
उसे तामस कहा गया है।
तुम्हारे जीवन में कुछ सुख हैं, जो आलस्य से, प्रमाद से और निद्रा से उत्पन्न होते हैं। उन सुखों को वस्तुतः सुख कहना ठीक नहीं है, क्योंकि

उनका आत्यंतिक परिणाम महादुख में ले जाना है। लेकिन वे प्रतीत तो सुख जैसे होते हैं।
एक आदमी ने ज्यादा खाना खा लिया है। खाना खाते वक्त कितना ही सुखद मालूम पड़े, दुखद है। शरीर का संतुलन खो जाएगा। शरीर पर बोझ पड़ेगा, मूर्च्छा होगी, आलस्य बढ़ेगा। यह आदमी पड़ा रहेगा घंटों तंद्रा में। और तब भी उठकर यह न पाएगा, ऊर्जस्वी हुआ, सतेज हुआ, शक्ति जागी। तब भी ऐसा ही पाएगा, धुंध-धुंध से घिरा, ढंका-ढंका, मरा-मरा, जीवंत नहीं।
एक उदासी ऐसे आदमी को घेरे रहेगी। चलेगा, तो जबरदस्ती, जैसे धकाया जा रहा है। करेगा कुछ, तो मजबूरी में। लेकिन प्राण में कोई प्रफुल्लता न होगी। ऐसे व्यक्ति के जीवन में रात ही रात रहेगी, सुबह का सूरज उगता ही नहीं। ऐसा व्यक्ति ज्यादा खाएगा, ज्यादा सोएगा, नशे खोजेगा।
और उसका रस हमेशा इस बात में होगा कि जहां भी किन्हीं कारणों से होश
खो जाए, वहीं उसे सुख मालूम पड़ेगा। सिनेमा में बैठ जाएगा तीन घंटे के लिए, ताकि होश खो जाए। उसकी चेष्टा होगी मूर्च्छा की तलाश की। जिन चीजों में भी जागरण आता है, वहां उसे रस न आएगा। उसकी आकांक्षा यह है कि अगर वह सदा सोया रहे, तो बड़ा सुखी होगा।
इसका बहुत गहरा अर्थ क्या हुआ? इसका गहरा अर्थ हुआ, यह आदमी जीना ही नहीं चाहता; यह आदमी मरना चाहता है। यह मरे-मरे जीना चाहता है। नींद छोटी मौत है। मूर्च्छा अपने हाथ से बुलाई गई मौत है।
ऐसा आदमी यह कह रहा है कि परमात्मा तुझसे मुझे बड़ी शिकायत है कि तूने मुझे जीवन दिया। यह आदमी चाहता है कि कब्र में ही पड़ा रहे, तो अच्छा है।
इसका जीवन करीब-करीब कब्र में ही जीया जाएगा। और इसको यह समझता है सुख।
इसे पता ही नहीं है कि महासुख संभव था, इसने आंख ही न खोली। बड़े सुख के बादल घिरे थे, इसने झोली ही न फैलाई। सूरज ऊगा था, यह आंख बंद किए बैठा रहा।
चारों तरफ जीवन नृत्य कर रहा था, परमात्मा का उत्सव था, यह सम्मिलित न हुआ।
तामस सुख, भोग काल में और परिणाम में भी आत्मा को मोहने वाला है। मोह यानी मूर्च्छा, मोह यानी शराब।
तो तुम अपने सुखों में खोज करना। अगर तुम्हारा सुख ऐसा हो कि नींद में
ही सुख आता हो, ज्यादा खाना खा लेने में सुख आता हो, शराब पीने में सुख आता हो। बस, किसी भी तरह अपने को भूल जाएं कहीं, इसमें सुख आता हो। कामवासना में सुख आता हो। तो समझना कि ये सब तामस सुख हैं। ये तुम्हें और-और गहरे नरक में ले जाएंगे। इनसे तुम जीवन के आरोहण को उपलब्ध न होओगे; जीवन का सोपान न चढ़ोगे। इनसे तुम नीचे गिरोगे। तुम मनुष्य जीवन का ठीक-ठीक उपयोग ही नहीं कर पा रहे हो। अवसर ऐसे ही खोया जाता है।
वह निद्रा, आलस्य और प्रमाद से उत्पन्न हुआ सुख तामस कहा गया है। और
जो सुख विषय और इंद्रियों के संयोग से होता है... ।
ऐसा समझ लें कि भीतर दीया जल रहा है चेतना का। तामस सुख ऐसा है, जैसे दीए के चारों तरफ अंधेरे को इकट्ठा कर लो और अंधेरे में ही सुख पाओ। दिन दुख दे, रात में ही सुख पाओ।
तो जिन समाजों में तामस सुख बढ़ जाता है, उनमें लोगों का रात्रि-जीवन बड़ा महत्वपूर्ण हो जाता है। दिनभर तो वे किसी तरह गुजारते हैं। रात के लिए क्लब, होटल, सिनेमाघर, थियेटर, नाच, वेश्या; रात का ही जीवन महत्वपूर्ण हो जाता है। दिन तो उन्हें व्यर्थ मालूम पड़ता है, रात में ही सार्थकता दिखाई पड़ती है। अंधकार कीमती मालूम पड़ता है।
अगर इस तरह के लोग उपनिषद लिखें, तो वे कहेंगे, हे परमात्मा, हमें प्रकाश से अंधकार की तरफ ले चल; जीवन से मृत्यु की तरफ ले चल। अमृत हम नहीं चाहते, हमें मृत्यु दे। उनकी यही प्रार्थना है।
जो सुख विषय और इंद्रियों के संयोग से होता है... ।
फिर, चेतना का दीया जल रहा है। कुछ लोग उसके आस-पास के अंधेरे में ही सुख पाते हैं। उन्हें पूरा सुख तो तभी मिलेगा, अगर दीया बिल्कुल बुझ जाए, अंधेरा ही अंधेरा रह जाए। ऐसे तामस से भरे व्यक्ति कभी-कभी आत्महत्या में भी सुख पाते हैं; अपने को मिटा लेने में भी सुख पाते हैं। क्योंकि तब उन्हें पूरा विश्राम हो जाता है। सुबह न तो घड़ी का अलार्म उठा सकेगा, न

ब्रह्ममुहूर्त के पक्षी जगा सकेंगे, न मंदिरों की बजती हुई घंटों की आवाज, न चर्च, न मस्जिद की अजान परेशान करेगी। खो गए; झंझट से बाहर हुए।
आत्मघातियों में बड़ा वर्ग तामसियों का होता है। वे जीवन को इनकार कर रहे हैं। एक परम प्रसाद था परमात्मा का, उसको इन्होंने इनकार कर दिया। दूसरा सुख है, तामसी सुख के बाद राजसी सुख। यह इंद्रियों और विषयों के संयोग से उत्पन्न होता है।
चैतन्य का दीया जल रहा है। अगर इसके पास अंधेरे में सुख लेते हो, तो तामसी। अगर इस चैतन्य के दीए का सुख सीधा नहीं लेते, इंद्रियों के माध्यम से, शरीर के माध्यम से, भोग के माध्यम से लेते हो, तो सुख राजसी है। और अगर इस दीए की ज्योति का सुख दीए की ज्योति के ही कारण लेते हो, बिना किसी माध्यम के--न इंद्रियों का माध्यम, न विषय का माध्यम, न शरीर का, न मन का-- सीधे इस प्रकाश में ही आह्लादित होते हो, तो सात्विक।
जो सुख विषय और इंद्रियों के संयोग से होता है, वह भोग काल में अमृत के सदृश मालूम पड़ता है, परंतु परिणाम में जहर की भांति है... ।
इंद्रियों के सभी सुख भोगते समय सुखद मालूम पड़ते हैं, भोगते ही दुख बन जाते हैं। धोखा है।
कामवासना सुख देती मालूम पड़ती है। गई भी नहीं, कि पीछे विषाद, पीड़ा, थकापन, हारापन! और एक आत्मग्लानि पकड़ लेती है कि फिर वही नासमझी की, जिसका कोई मूल्य नहीं है, जो कहीं पहुंचाती नहीं है, जिससे कभी कोई कहीं गया नहीं है। फिर एक बार उसी गड्ढे में गिरे।
संभोग के बाद ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, ऐसी स्त्री खोजनी मुश्किल है, जिसे आत्मग्लानि का स्वर सुनाई न पड़ता हो। अगर न सुनाई पड़ता हो, तो समझना कि उसका सुख तामसी है। तब कामवासना भी सिर्फ अंधेरे में खो जाने का उपाय है। अगर यह ग्लानि का स्वर सुनाई पड़ता हो संभोग के बाद, तो समझना कि सुख राजसी है।
सभी सुख, इंद्रियों के माध्यम से जो लिए गए हैं, वे क्षणभंगुर होंगे।
वे ऐसे ही होंगे, जैसे रास्ते पर चलते वक्त अचानक एक तेज प्रकाश वाली कार पास से गुजर जाए। एक क्षण लगेगा, फिर गहन अंधेरा हो जाएगा। अंधेरा पहले से भी ज्यादा अंधेरा हो जाएगा। इतना अंधेरा पहले भी नहीं था। इस प्रकाश ने आंखें चौंधिया दी।
इंद्रियों से मिले सुख और भी गहरे अंधेरे की प्रतीति करवाते हैं सुख
के बाद। इसलिए मिलते समय तो अमृत जैसा मालूम होता है, परिणाम में विष जैसा मालूम होता है।
और वह सुख जिसमें साधक पुरुष ध्यान, उपासना और सेवादि के अभ्यास से रमण करता है और दुखों के अंत को प्राप्त होता है, वह सुख प्रथम साधन के प्रारंभ काल में विष के समान और परिणाम में अमृत के तुल्य है।
ठीक राजस से उलटी दशा सात्विक की है। प्रारंभ में तो दुखद मालूम होगा। सभी तपश्चर्या दुख मालूम होती है। ध्यान करो, प्रार्थना करो, पूजा करो, ऐसा लगता है कि कोई सुख नहीं है। लेकिन जो कर गुजरते हैं, वे महासुख के अधिकारी हो जाते हैं।
ध्यान करो, कोई सुख नहीं सुनाई पड़ता कहीं भी। ऐसा लगता है, समय व्यर्थ गंवा रहे हो। पैर दुखते हैं, चींटियां काटती हैं, मच्छर सताते हैं, हजार तरह के मन में विचार उठते हैं, कल्प-विकल्प का तूफान उठ जाता है। इससे तो वैसे ही बेहतर थे; इतना उपद्रव नहीं होता था। गौर से खोजते हो, पैर के पास चींटी है ही नहीं, लेकिन काटना मालूम पड़ता है। कहीं शरीर खुजलाता है। ये सब के सब उपद्रव खड़े हो जाते हैं। बड़ा कठिन मालूम पड़ता है। एक चालीस मिनट शांत बैठना बड़ा दुखद मालूम पड़ता है।
तपश्चर्या दुखद है, लेकिन उसके फल बड़े मीठे हैं। सात्विक सुख प्रारंभ में तो दुखपूर्ण और अंत में महासुख।
अब समझें। सात्विक सुख राजस के विपरीत है इस अर्थों में कि उसका माध्यम इंद्रियां नहीं हैं। उसका माध्यम है ही नहीं। वह ध्यान, उपासना और सेवादि में अभ्यास के रमण से उत्पन्न होता है। वह तुम्हारे चैतन्य का स्वभाव ही है। तुम उसे किसी माध्यम से उपलब्ध नहीं करते।

ध्यान में क्या माध्यम है? ध्यान का अर्थ है, तुम खाली होकर बैठ रहे। धीरे-धीरे अगर तुमने हिम्मत रखी और बैठते ही गए, बैठते ही गए, एक दिन ऐसा आएगा कि विचार खो जाएंगे। तुम अकेले छूट जाओगे। उस दिन उस एकांत क्षण में, उस मौन में, कहीं से कोई संबंध न रह जाएगा। भीतर ही झरने फूटने लगेंगे। भीतर ही कोई नई सुगबुगाहट, कोई नई तरंग तुम्हें डुबा लेगी। भीतर ही लहरें आने लगेंगी। और ये लहरें भीतर की ही हैं, बाहर से नहीं आतीं।
सात्विक सुख तुम्हारे भीतर से ही आता है। तामसिक सुख तुम अपने भीतर
के दीए को बुझाकर पाते हो। राजसिक सुख तुम इंद्रियों और शरीर के माध्यम से खोजते हो।
सात्विक सुख राजसिक सुख से विपरीत है, क्योंकि इंद्रियों का कोई माध्यम नहीं है। इसलिए भी विपरीत है कि राजसिक सुख में पहले तो सुख मिलता, फिर दुख। सात्विक सुख में पहले दुख मिलता, फिर सुख।
सात्विक सुख तामसिक सुख के विपरीत है। क्योंकि तामसिक सुख मूर्च्छा
पर निर्भर है और सात्विक सुख अमूर्च्छा पर, ध्यान पर, उपासना पर, जागरण पर। तामसिक सुख शरीर की बोझिलता पर निर्भर है, आलस्य, प्रमाद। सात्विक सुख हलकेपन पर; जैसे पंख लग गए प्राणों को, जैसे तुम उड़ सकते हो आकाश में, ऐसे हलकेपन पर निर्भर है।
ये तीन तरह के सुख हैं।
और कृष्ण कहते हैं, पृथ्वी पर या स्वर्ग में ऐसा कोई प्राणी नहीं है,
जो इन प्रकृति से उत्पन्न तीनों गुणों से रहित हो।
सभी प्राणी इन तीनों तरह के सुखों के बीच दबे हैं, पृथ्वी पर या स्वर्ग में। लेकिन कृष्ण के संबंध में क्या कहोगे? कृष्ण तो पृथ्वी पर खड़े थे, जब यह कह रहे थे। क्या कृष्ण भी इन तीन तरह के सुखों में दबे हैं? नहीं, जो इन तीनों को जान लेता है, वह तीनों के पार हो जाता है। उसको हमने तुरीय कहा है, चौथी अवस्था कहा है। वह गुणातीत हो जाता है।
लेकिन जैसे ही तुम गुणातीत हो जाते हो, दूसरों को तुम दिखाई पड़ते हो
कि पृथ्वी पर हो, फिर तुम पृथ्वी पर नहीं हो। फिर तुम्हारे पैर पृथ्वी पर पड़ते हैं और नहीं भी पड़ते। फिर तुम यहां दिखाई भी पड़ते हो और यहां हो भी नहीं। फिर तुम प्राणी नहीं हो। तुम्हारी कोई सीमा नहीं है। तुम तो प्राण का स्रोत हो गए। तुम परमात्मा हो गए।
तीन तरह के सुख हैं, तीन तरह के सुखों में जो घिरा है, वह प्राणी है। तीन के जो पार हो गया, वह सृष्टि के पार हो गया, वह स्वयं स्रष्टा का अंग हो गया, गुणातीत हो गया।
इन तीनों सुखों को गौर से समझने की कोशिश करना। समझने का अर्थ है, अपने जीवन में परखने की कोशिश करना। तुम्हारा जीवन अभी तमस से भरा है, तो थोड़ा उठाओ अपने को रजस की तरफ। रजस से भरा है, तो उठाओ अपने को सत्व की तरफ। सत्व से भरा है, तो उठाओ अपने को गुणातीत की तरफ, क्योंकि गुणातीत मंजिल है।
सभी गुणों के जो पार हो गया, वह प्रकृति के पार हो गया। प्रकृति के पार
हो जाना परमात्मा हो जाना है।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग आठ
गीता दर्शन अध्याय 18
बारहवां प्रवचन

गुणातीत है आनंद

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः।। 41।।
शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्।। 42।।
शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्।। 43।।
कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्।। 44।।
इसलिए हे परंतप, ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों के तथा शूद्रों के
भी कर्म स्वभाव से उत्पन्न हुए गुणों के आधार पर विभक्त किए गए हैं।
शम अर्थात अंतःकरण का निग्रह, दम अर्थात इंद्रियों का दमन, शौच अर्थात बाहर-भीतर की शुद्धि, तप अर्थात धर्म के लिए कष्ट सहन करना, क्षांति अर्थात क्षमा-भाव एवं आर्जव अर्थात मन, इंद्रिय और शरीर की सरलता, आस्तिक बुद्धि, ज्ञान और विज्ञान, ये तो ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म हैं। और शौर्य, तेज, धृति अर्थात धैर्य, चतुरता और युद्ध में भी न भागने का स्वभाव एवं दान और स्वामी-भाव, ये सब क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म हैं। तथा खेती, गौपालन और क्रय-विक्रय रूप सत्य व्यवहार, वैश्य के स्वाभाविक कर्म हैं। और सब वर्णों की सेवा करना, यह शूद्र का स्वाभाविक कर्म है।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः भीष्म और कर्ण जैसे धार्मिक लोगों ने अधर्मी दुर्योधन
का पक्ष क्यों लिया था? और महाभारत के अंतिम काल में कृष्ण ने अर्जुन आदि पांच पांडवों को भीष्म पितामह के पास उनकी मृत्युशय्या पर धर्म का उपदेश लेने क्यों भेजा था?

पहली बात, धार्मिक व्यक्ति का अर्थ है समर्पित व्यक्ति। जीवन जहां ले जाए; उसकी अपनी कोई मर्जी नहीं है। अगर जीवन दुर्योधन के पक्ष में खड़ा कर दे, तो वह वहीं खड़ा हो जाएगा। अगर जीवन अर्जुन के पक्ष में खड़ा कर दे, तो वह वहीं खड़ा हो जाएगा।
धार्मिक व्यक्ति की अपनी मर्जी होती, अपना निर्णय होता, तो सवाल उठता
था कि भीष्म क्यों दुर्योधन के पक्ष में खड़े हैं। धार्मिक व्यक्ति तो निमित्त-मात्र है। इसलिए जहां परमात्मा की मर्जी हो, वहीं खड़ा हो जाता है।
उसने अपनी तरफ से निर्णय लेना छोड़ दिया है। वह समर्पित है।
इसलिए भीष्म ने जहां पाया, उसे स्वीकार कर लिया। इस स्वीकृति के कारण ही, जो कि बड़ी कठिन है... ।
इसे थोड़ा समझें।
अगर भीष्म ने पांडवों के पक्ष में अपने को पाया होता, तो स्वीकृति ज्यादा सरल थी, समर्पण ज्यादा आसान था।
जब तुम शुभ दशा में पाते हो, तब समर्पण कठिन होता ही नहीं। स्वर्ग में अपने को पाकर कौन समर्पण न कर देगा! नरक में पाकर जो समर्पण करे, वही समर्पण है। जहां जीत होने को ही हो, और यह स्पष्ट ही था कि पांडवों की जीत सुनिश्चित है, फिर भी अपने को छोड़ दिया भीष्म ने उनके साथ जिनकी हार निश्चित थी।
भीष्म को भलीभांति पता है।
भारत की सारी बोध की संपदा एक छोटे-से सूत्र में समाई है, सत्यमेव जयते नान्यर्तम। सत्य जीतता है, असत्य कभी नहीं।

उन्हें पता है कि सत्य कहां है। उन्हें यह भी पता है कि जीत कहां होगी, कैसी होगी, फिर भी उन्होंने छोड़ दिया। इसलिए गुण-गौरव और भी बढ़ जाता है। भीष्म की गरिमा बढ़ जाती है, घटती नहीं।
भीष्म अगर कहते कि युधिष्ठिर और अर्जुन और पांडवों के पक्ष में तू मुझे खड़ा कर दे, तो मैं समर्पण को राजी हूं, तब तो समर्पण कुछ बहुत गहरा न हुआ होता। जिस बात के लिए तुम राजी हो, उसमें समर्पण करने में कौन-सी कठिनाई है! वस्तुतः तुम समर्पण का आवरण ओढ़ रहे हो; मर्जी तुम्हारी ही है। लेकिन भीष्म ने अपने को ऐसी विपरीत दशा में छोड़ दिया, जहां कि समर्पण अति कठिन है, असंभव है। अंधेरे के पक्ष में छोड़ दिया। अगर प्रभु की यही मर्जी है, तो यही होगा।
और यही कारण है कि पांडवों को कृष्ण ने अंततः भीष्म के पास धर्म की शिक्षा के लिए भेजा। क्योंकि जिसका समर्पण इतना गहरा है कि परमात्मा के भी विपरीत लड़ना हो, अगर परमात्मा की यही मर्जी है, तो यह भी करेगा। वहां भी ना-नुच न करेगा, वहां भी इनकार न करेगा। जिसका आस्तिक भाव इतना परम है, उसके पास उसके मरण के क्षण में शिक्षा लेने योग्य है, जाने योग्य है। उसके चरणों में बैठकर उससे सीखने योग्य है।
इससे तुम एक बात समझ लेना कि जो व्यक्ति जैसी भी परिस्थिति हो, बिना किसी शर्त के समर्पण करता है, वही समर्पण करता है। तुम्हारी मर्जी के अनुसार स्थिति हो और तुम समर्पण करो, तो तुम समर्पण के धोखे में पड़ना मत। तुम चालबाजी कर रहे हो।
जब सुख बरसता हो, स्वर्ग पास हो, तब तुम यह मत कहना कि प्रभु, तेरी ही मर्जी पूरी हो। जब नरक द्वार पर दस्तक देता हो, अंधकार सब तरफ से घेरे हो, पराजय सुनिश्चित हो, पैर के नीचे की भूमि खिसकती हो, कहीं सहारा न मिलता हो, नाव डूबने ही वाली हो, आंधियां हों, अंधड़ हों, तब भी तुम कहना, प्रभु तेरी ही मर्जी पूरी हो। तो तुम्हारे समर्पण की जो गहराई होगी, वही असली गहराई है।
भीष्म ने अदभुत किया। बड़ा कठिन था दुर्योधन के साथ खड़ा होना। साधारण बुद्धि का आदमी भी देख लेता कि दुर्योधन के साथ खड़ा होना कितना कठिन है। भाग खड़ा होता। या तो भीष्म जैसे लोग खड़े थे दुर्योधन के साथ, जिनका समर्पण पूरा था; या वैसे लोग खड़े थे, जिनकी दुष्टता पूरी थी।
अधार्मिकों की जमात थी। दुष्टों का गिरोह था। उसके बीच भीष्म खड़े थे चुपचाप, क्योंकि उसकी अगर यही मर्जी है, तो ठीक। उसकी मर्जी के मार्ग पर मर जाना बेहतर, मिट जाना बेहतर। उसकी मर्जी से नरक में गिर जाना बेहतर, महाअंधकार में उतर जाना बेहतर। अपनी मर्जी का प्रकाश कोई प्रकाश सिद्ध होने वाला नहीं है।
इस महा समर्पण के कारण ही यह गरिमा उनको कृष्ण ने दी।
महाभारत बहुत अनूठा है। उसकी हर घटना अनूठी है। महाभारत जैसा महाकाव्य इस संसार में दूसरा नहीं। उसमें जीवन के बड़े गहन तत्वों को बड़ी सरलता से प्रकट किया गया है। मगर बड़ी सूझ चाहिए, तो ही दिखाई पड़ेगा कि मामला क्या है।
मरणशय्या पर पड़े भीष्म के पास भेजते हैं कि सीख लो उनसे धर्म की असली बात। क्योंकि जिसने इतना महा समर्पण किया है, उसने असली धर्म को पहचान लिया है।
उलटा ही होता, तुम अगर होते, तो तुम कहते, इसके पास क्या जाना, जो दुष्टों के साथ खड़ा रहा! जिसको धर्म की इतनी भी बुद्धि नहीं है कि असद को छोड़ो, सद को पकड़ो; बुराई को त्यागो, भलाई को पकड़ो; जिसको इतनी भी सदबुद्धि नहीं है, इसके पास धर्म सीखने जाना? बात ही उलटी है!
लेकिन कृष्ण ने भेजा, पांडव गए। न तो पांडवों ने यह बात उठाई कि हम जाएं, इस आदमी से सुनने! नहीं, वे समझे इस राज को कि भीष्म वहां अपनी मर्जी से नहीं हैं, वे परमात्मा की मर्जी से हैं।
जिसने इस तरफ लोगों को खड़ा किया है, उसी ने उस तरफ भी लोगों को खड़ा किया है। खेल उसका है। हम उसके हाथ में चलने वाले प्यादे, सिपाही, घोड़े, हाथी, राजा, रानी, कुछ भी हों, लेकिन शतरंज के मोहरे हैं। हाथ उसका है, वह जहां उठाए, जैसे चलाए। जो उसके साथ पूरी तरह चलने को राजी है, जिसने अपने

अहंकार को बिल्कुल छोड़ा है, वही धर्म के गुह्य राज को जानने में समर्थ होता है।
मरने के पहले पूछ लो उससे, कृष्ण ने कहा, यह अवसर न खो जाए। क्योंकि जो नासमझ उसके आस-पास खड़े हैं, वे तो उससे पूछेंगे भी नहीं।
शायद दुर्योधन तो यही सोचता रहा होगा मन में कि ये भीष्म पितामह और ये
सब मेरी दुष्टता के कारण ही मेरे साथ हैं। मेरे भय के कारण मेरे साथ हैं। या मेरे साथ रहने से कुछ लोभ पूरा होगा, धन-संपदा, यश-प्रतिष्ठा मिलेगी, विजय मिलेगी, इसलिए मेरे साथ हैं। मेरे डर के कारण मेरे साथ हैं। उसने तो कभी सोचा भी न होगा कि ये एक परम समर्पण के कारण मेरे साथ हैं।
उस राज को तो कृष्ण के सिवाय कोई भी नहीं जानता है कि दुर्योधन के साथ भीष्म का खड़ा होना किसी और कारण से नहीं है, प्रभु की मर्जी के कारण है। इसलिए जाओ, इसके पहले कि यह जीवन-ज्योति खो जाए, इससे इसके जीवन का निचोड़ पूछ लो, सार पूछ लो। इससे पूछ लो, धर्म क्या है! इसने धर्म को बड़ी विपरीत अवस्थाओं में जाना है। और जिसने जाना है अंधकार में प्रकाश को, उसकी पहचान, प्रत्यभिज्ञा बड़ी गहरी होती है।
जब सूरज उगा हो और तुमने एक जलते हुए दीए को देखा हो, तो तुम्हारी प्रत्यभिज्ञा होती ही नहीं गहरी। दीया दिखाई ही नहीं पड़ता। अमावस की घनी अंधेरी रात में, जब तारे भी छिपे हों, तब दीया प्रकट होता है। तब उसकी ज्योति को जिसने देखा है, उसने ज्योति का रोआं-रोआं देखा है, उसने ज्योति का रेशा-रेशा देखा है, उसने ज्योति को अंधेरे की पृष्ठभूमि में देखा है। उससे पूछ लो ज्योति का नक्शा, ज्योति का रहस्य, ज्योति को जलाने की विधि। उसके पास दृष्टि है। इसलिए भीष्म के पास भेजा है।
और एक बात समझ लेनी जरूरी है, क्योंकि वह सवाल भी मन में उठेगा, कि आखिर परमात्मा की भी ऐसी मर्जी क्यों? क्या परमात्मा असत्य को जिताना चाहता है? क्यों परमात्मा ऐसा चाहे? क्यों समग्र की ऐसी आकांक्षा हो कि भीष्म और कर्ण जैसे लोग, महिमाशाली, पवित्र, जिनकी शुचिता का कोई अंत नहीं, वे दुष्टों के गिरोह में खड़े हो जाएं?
कारण है। और कारण समझने जैसा है।
इस संसार में बुराई भी भलाई के पैरों पर ही खड़ी हो सकती है, अन्यथा खड़ी
ही नहीं हो सकती। झूठ भी सत्य का सहारा ही लेकर खड़ा हो सकता है, अन्यथा खड़ा ही नहीं हो सकता। झूठ के पास अपने कोई पैर ही नहीं हैं। पाप के पास अपनी कोई शक्ति ही नहीं है कि वह खड़ा हो जाए, उसको भी पुण्य का सहारा चाहिए।
तो वहां रावण के खेमे में कोई है, जो राम को प्रेम करता है। रावण के खेमे में कुछ सत्य की किरण है, नहीं तो रावण का खेमा ही गिर जाए।
दुर्योधन के खेमे में कोई है कि अगर उसके प्राणों के प्राणों से पूछा जाए, तो वह कहेगा, पांडव जीत जाएं। लेकिन वह खेमे में खड़ा है दूसरे, विपरीत। वहां अर्जुन के गुरु द्रोण हैं, वहां कर्ण जैसा महारथी है, वहां भीष्म जैसा अनूठा पुरुष है, अन्यथा पलड़ा पहले ही गिर जाएगा। युद्ध हो ही न पाएगा। संघर्ष खड़ा ही न हो सकेगा।
झूठ के पास अपने पैर नहीं हैं, सत्य के पैर चाहिए। लेकिन तुम कहोगे, अगर ऐसा सत्य के उधार पैर लेकर लड़ना पड़ता है, तो झूठ को लड़ाने की जरूरत ही क्या है?
यहीं जीवन की एक बड़ी गहरी कीमिया है। अगर झूठ न लड़े, तो सत्य कभी जीतेगा भी नहीं। झूठ को लड़ाना भी होगा, सत्य को जिताना भी होगा। झूठ के पार होकर ही सत्य निखरेगा। अंधेरी रात के बाद ही सुबह होगी।
तुम कहो, अंधेरी रात की जरूरत ही क्या है? दुख की जरूरत ही क्या है? दुख के बाद ही सुख का फूल खिलेगा और समझ में आएगा। संसार की जरूरत क्या है? संसार से गुजरकर ही मोक्ष की प्रतीति होगी। विपरीत से आकर ही तुम अनुभव को उपलब्ध हो सकते हो, अन्यथा जीवन का सारा खेल पंगु हो जाएगा, लंगड़ा हो जाएगा।
तो परमात्मा झूठ को भी सच के सहारे देता है। उससे सच हारता नहीं, उससे झूठ जीतता नहीं, सिर्फ झूठ और सच का संघर्ष हो पाता है। उस संघर्ष में सत्य ही सदा जीतता है। उस संघर्ष में झूठ ही सदा हारता है। लेकिन वह संघर्ष भी

अनिवार्य है और जरूरी है, एक अनिवार्य शिक्षण है। उससे गुजरना आवश्यक है। वह विद्यापीठ है।
असत्य को भी सहारा तो भगवान का ही है, इतना नहीं है कि वह जीत जाए, पर इतना जरूर है कि सत्य से लड़ सके। क्योंकि उसकी लड़ाई से ही सत्य को बल मिलेगा, उसके संघर्ष से ही सत्य निखरेगा, नया होगा, उभरेगा, प्रकट होगा। वह सत्य के विपरीत नहीं है वस्तुतः, सत्य को प्रकट होने का अवसर है।

दूसरा प्रश्नः आप कहते हैं कि कामना धन की है अथवा धर्म की, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। लेकिन धर्म की यात्रा का आरंभ तो उसकी कामना से ही होता है या कि उसका उतना उपयोग भी नहीं है!

नहीं, धर्म की यात्रा का प्रारंभ धर्म की कामना से नहीं होता, संसार
की कामना के असफल होने से होता है। इसे ठीक से गांठ बांध लो। इसे सम्हालकर रख लो।
धर्म की यात्रा धर्म की कामना से शुरू नहीं होती, क्योंकि कामना से तो धर्म की यात्रा शुरू ही नहीं हो सकती। कामना तो संसार है। कामना का फैलाव ही तो संसार है। तो कामना से कैसे धर्म की यात्रा शुरू होगी? अन्यथा धर्म भी संसार हो जाएगा। कामना से ही तुम कामना के पार कैसे जाओगे? यह तो कीचड़ से कीचड़ धोना हो जाएगा।
नहीं, संसार की कामना जब हार जाती है, समग्ररूपेण, परिपूर्णता से। तुम
सब तरफ से जीतने की कोशिश कर लेते हो, सब तरफ के सहारे खोजते हो, बैसाखियां लगाते हो, लेकिन गिर-गिर जाते हो। एक ऐसी घड़ी होती है कि तुम जान लेते हो कि संसार पराजय है। वहां दुख ही दुख है। वहां सुख की केवल आशा है। और वह आशा जिस दिन निराशा बन जाती है, प्रगाढ़ निराशा बन जाती है, कि उसमें फिर आशा की एक भी किरण नहीं बचती, इस अनुभव से कि संसार व्यर्थ हो गया, तुम धर्म की तरफ चलते हो।
धर्म की कामना से नहीं, संसार की कामना के टूट जाने से। संसार व्यर्थ
हो गया, पैर धर्म की तरफ उठने लगते हैं। यह कोई नयी कामना नहीं है, वासना की कोई नयी यात्रा नहीं है। सभी वासनाएं हार गयीं, यह तो निर्वासना की तरफ जाना है।
दो तरह के लोग धर्म की तरफ जाते हैं। एक, कामना से ही जाते हैं। वे जा
ही नहीं पाते। उन्हें लगता है कि वे धर्म की यात्रा पर हैं; वह भ्रांति है उनकी। धर्म के नाम पर संसार ही चलता है। मंदिर जाते हैं--धन चाहिए, मुकदमा जीतना है, विवाह करना है, बच्चे नहीं होते हैं, दुकान नहीं चलती, नौकरी नहीं मिलती है। मंदिर वे जाते हैं; जाते नहीं।
मंदिर भी बाजार है, बाजार का ही हिस्सा है। दिखता भर है कि मंदिर है,
वह है नहीं मंदिर। मंदिर में क्या कुछ मांगने जाना! जिसकी मांग समाप्त हो गयी, वही मंदिर में जाता है। जिसने जान लिया कि कुछ सार नहीं; मिल जाए संसार तो सार नहीं, न मिले तो सार नहीं; जिसने सब भांति पहचान लिया कि असार ही असार है, वही धर्म की तरफ जाता है। तब वह मांगने नहीं जाता, कुछ पाने नहीं जाता।
मांग और पाने का कोई संबंध ही धर्म से नहीं है। तब वह सब छोड़कर, सब व्यर्थता को पहचानकर, एक नयी यात्रा पर निकलता है जो निर्वासना की है। यहां न तो परमात्मा पाना है, न मोक्ष पाना है। कुछ पाना नहीं है। यहां
तो सिर्फ होने का आनंद लेना है।
होना और पाना, इन दो शब्दों को ठीक से ख्याल रखो। जब होने की यात्रा शुरू होती है, तब धर्म। जब पाने की यात्रा चलती रहती है, तब संसार। तुम सिर्फ होना चाहते हो अपनी परिपूर्णता में। यह कोई चाह नहीं है, यह तुम हो ही। सब चाह छूट जाए, तो यह तुम्हें दिखायी पड़ जाए।
चाह के कारण दिखायी नहीं पड़ता। चाह घेरे रहती है, चाह का धुआं चारों तरफ घिरा रहता है। तुम अपने को नहीं पहचान पाते। चाह के कारण दौड़ते हो, बैठ नहीं पाते। चाह के कारण सपने संजोते हो, शांत नहीं हो पाते। चाह के कारण चित्त विचार और विचार करता है, हजार आयोजनाएं करता है। और उस कारण, वह

तुम्हारे भीतर जो छिपा है, उसके साथ मैत्री नहीं बन पाती, उसके साथ संबंध नहीं जुड़ पाता।
चाह लाखों संबंध बनवाती है अपने से बाहर, भीतर से संबंध नहीं जुड़ने देती। जब सब चाह छूट जाती है--छूट जाने का मतलब यह नहीं कि तुम छोड़कर भाग जाते हो--छूट जाने का मतलब, जब तुम समझ जाते हो, व्यर्थ है। बोध होता है; सुरति जगती है। तब ऐसा नहीं है कि कोई नयी यात्रा शुरू हो जाती है। बस, पुरानी यात्रा बंद हो जाती है। तुम अपने को वहीं पाते हो, जहां तुम जाना चाहते थे।
तुम अपने को परिपूर्ण पाते हो, तुम अपने को ब्रह्मस्वरूप पाते हो। उस क्षण तुम्हारे भीतर अहर्निश एक नाद गूंजने लगता है, अहं ब्रह्मास्मि! मैं ही ब्रह्म हूं। बिना कहीं गए मंजिल मिल जाती है।
धर्म यात्रा ही नहीं है। क्योंकि यात्रा में तो वासना होगी, कहीं जाना है। धर्म तो पहुंचना है, यात्रा नहीं है। धर्म मार्ग नहीं है, मंजिल है। और तुम वहां इस क्षण भी हो, अभी भी हो। लेकिन तुम्हारी वासनाएं तुम्हें दौड़ाती हैं। अवसर नहीं मिलता, समय नहीं मिलता, सुविधा नहीं मिलती कि तुम पहचान लो, भीतर क्या घटित हो रहा है! क्या सदा से ही घटित हुआ हुआ है!
तुम्हारे भीतर अहर्निश परमात्मा विराजमान है। श्वास-श्वास में, हृदय
की धड़कन-धड़कन में वही रमा है। पर फुरसत कहां, सुविधा कहां, समय कहां है! अभी बहुत बड़ी दौड़ है; संसार जीतना है। सिकंदर छाती पर सवार है। वह खींचे लिए जा रहा है। बहुत पाना है। सोचते हो कि जब सब पा लेंगे, तब फिर इस तरफ भी ध्यान देंगे।
ध्यान रखो, धर्म यात्रा ही नहीं है। धर्म वासना ही नहीं है। उतना भी उपयोग नहीं है, धर्म के लिए।
धर्म संसार की असफलता से उठा हुआ फूल है, जीवन के विषाद से उठा हुआ फूल है, विफलता से खिला हुआ फूल है। कामना की मृत्यु पर धर्म का जन्म है। कामना की राख पर धर्म का अंकुर फूटता है।

तीसरा प्रश्नः कल के श्लोक में ध्यान, उपासना आदि से उत्पन्न सात्विक सुख को दुख का अंत करने वाला, अमृत-तुल्य और आत्मबुद्धि के प्रसाद से उत्पन्न हुआ कहा गया है। कृपया समझाएं कि कृष्ण ने इसे सुख क्यों कहा है? आनंद क्यों नहीं कहा?

सुख दुख के विपरीत है। संसार में तुम जानते हो दुख, स्वयं में तुम जानोगे सुख। संसार भूल जाएगा, तो सुख का उदय होगा। जब स्वयं भी भूल जाएगा, तब आनंद का उदय होगा।
पहले संसार से मुक्त होना है, फिर स्वयं से भी। संसार से मुक्ति पर दुख न रहेगा, सुख हो जाएगा, अमृत-तुल्य हो जाएगा। बड़ा अनूठा है; प्रसादरूप है; भीतर से उपजता है; सतत धार बहती है। संगीत में नहा जाते हो उसके; प्रफुल्लित हो उठते हो। लेकिन संसार में जो दुख जाना था, यह उसके विपरीत अवस्था है। और आनंद दुख के विपरीत नहीं है। आनंद तो दुख और सुख दोनों के अतीत है।
तो पहली अवस्था है, दुख। संसार, जहां तुम दुख ही दुख जानते हो। सुख की सिर्फ आशा होती है; मिलता कभी नहीं। बस मिला, मिला, ऐसा मालूम पड़ता है। मिलता कभी नहीं। अब आया हाथ, अब आया हाथ, हाथ कभी आता नहीं। दूर-दूर हटता चला जाता है। दुख मिलता है, सुख की आशा रहती है। सुख की आशा के कारण ही तुम दुख झेलने में राजी रहते हो, नहीं तो तुम कभी के भाग खड़े होओ।
वह तो ऐसा ही है जैसे कि गाय को घर लाना हो, तो घास की एक गठरी लेकर चल पड़ो घर की तरफ। गाय उसके पीछे चली आती है। आशा बंधी रहती है कि अब यह घास है, मिलेगा।
लेकिन गाय को तो घर आने पर घास मिल भी जाता है; तुम जिस घास के पीछे चल रहे हो, वह कभी मिलता ही नहीं। बस, वह आगे चलता ही रहता है। तुम भी चलते रहते हो, घास भी चलता रहता है। फासला उतना ही रहता है, जितना पहली बार था; आखिरी बार भी उतना ही रहता है। वह भ्रामक है, माया जैसा है, सपने जैसा है।

संसार में दुख मिलता है, सुख की आशा रहती है। आनंद की तो बात ही मत उठाओ। आनंद का तो तुम सपना भी नहीं देख सकते संसार में। सुख की ही जहां आशा है, वह भी कभी नहीं मिलता, वहां आनंद का तो सवाल क्या! आनंद की तो भनक भी नहीं पड़ती।
इसलिए आनंद शब्द तुम्हारे शब्दकोश में है ही नहीं; हो नहीं सकता। तुम ज्यादा से ज्यादा आनंद का अर्थ भी सुख ही कर पाते हो, बड़ा सुख, महासुख, बहुत गुना सुख। लेकिन तुम्हारा आनंद गुणात्मक रूप से सुख से भिन्न नहीं होता। सुख का ही बहुत गुना होता है, लेकिन सुख ही होता है। तो सुख होगा तुम्हारा एक रेत के कण जैसा और आनंद होगा सागर की तटों पर फैली हुई सारी रेतों के जैसा। लेकिन गुणात्मक कोई फर्क नहीं है, परिमाण का भेद है। बड़ा होगा, भिन्न नहीं होगा।
और आनंद भिन्न है, बड़ा नहीं है। इसलिए आनंद का तो तुम सुख ही अर्थ ले सकते हो। अभी सुख भी तो जाना नहीं है। वह भी आशा में झलका है।
जब संसार छूटता है, असार होता है, आंख भीतर मुड़ती है, अपने पर आती है,
तो सुख वास्तविक हो जाता है। जिसकी कल तक आशा थी, वह बहने लगता है।
तुम भटकते थे, क्योंकि बाहर खोजते थे और वह भीतर था। कस्तूरी कुंडल बसै! तुम उसकी सुगंध में कहां-कहां यात्रा नहीं किए! लोक-परलोक छान डाले, कितनी पृथ्वियों पर भटके, कितनी योनियों में भटके; सब तरफ टटोला, खोजा, सिर टकराया, हाथ-पैर मारे, कुछ भी अनकिया न छोड़ा। वह मिला नहीं। क्योंकि वह भीतर था। अब तुम थके-हारे भीतर लौटे। अचानक पाया कि यहां तो अहर्निश उसी की धुन बज रही है, उसी का दीया जल रहा है।
तो कृष्ण कहते हैं, अमृत-तुल्य। अमृत ही नहीं, अमृत-तुल्य; अमृत जैसा। प्रसादरूप, क्योंकि कुछ कर नहीं रहे हो और मिल रहा है। बस भीतर गए और मिलने लगा है। भीतर था ही। यात्रा गलत हो रही थी; जो भीतर था, उसे तुम बाहर खोजते थे। यात्रा ठीक हो गयी, सुख भरने लगा।
लेकिन यह सुख संसार के दुख के विपरीत है। यह वही सुख है, जिसकी आशा संसार में तुमने बांधी थी और कभी पाया नहीं। वही सुख अब तुम्हें मिल रहा है। लेकिन यह भी संसार से जुड़ा है। कितना ही सात्विक हो, संसार से जुड़ा है। क्योंकि तुम्हारा होने का ख्याल कि मैं हूं, यह भी संसार का ही हिस्सा है। दूसरे हैं, तू है, उन्हीं से जुड़ा हुआ ख्याल है, मैं हूं। मैं और तू एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
अब तक तुमने तू में खोजा था, दुख पाया; अब तुमने मैं में खोजा और सुख पाया। सुख मिलने के बाद तुम्हारे जीवन में पहली दफे आनंद की आशा बंधेगी। जैसे दुख में सुख की आशा थी, सुख में आनंद की आशा बंधेगी। सुखी व्यक्ति आनंद की तलाश पर निकलेगा।
वह पूछेगा, आनंद! क्योंकि सुख थोड़े ही दिनों में उबाने लगेगा। कितना
ही अमृत-तुल्य हो, रोज-रोज पीने से बेस्वाद हो जाएगा। कितना ही प्रसादरूप हो, रोज-रोज वही भोगने से ऊब जाओगे, रसहीन हो जाएगा। उससे भी थक जाओगे।
और अक्सर ऐसा हुआ है कि जब तुम भीतर के सुख से थक जाओगे, तो तुम बाहर की तरफ फिर आंख खोलने लगोगे, थोड़ा-सा दुख मिल जाए, थोड़ा स्वाद बदल जाए। जंगलों में बैठे हुए संन्यासी सुख पाते हैं। लेकिन सुख से फिर ऊबने लगते हैं। फिर संसार उन्हें पुकारने लगता है। क्योंकि जब तक मैं जिंदा है, तब तक संसार स्थूल रूप से मर गया, सूक्ष्म रूप से नहीं मरा है। उसका मौलिक आधार अभी भी शेष है। ब्लू प्रिंट मौजूद है। फिर से भवन बनाया जा सकता है। बीज बना है, वृक्ष फिर बन सकता है। तुमने वृक्ष तो काट दिया, बीज अभी सम्हला हुआ है। मैं ही, अहंकार ही तो बीज है सारे फैलाव का।
कभी तुमने ख्याल किया, अगर कभी ध्यान में थोड़ी शांति भी लगने लगती है,
तो जल्दी ही तुम पाते हो कि मन चाहता है, थोड़ी अशांति भी भोगें। चलो, फिल्म ही देख आएं! मित्रों से मिल आएं! कुछ उपद्रव कर लें! क्योंकि शांति भी सतत पड़ती रहे, तो तुम झेल नहीं पाते। उसमें भी ऊब आने लगती है।
स्वर्ग भी अगर सतत ही मिलता रहे, तो जल्दी ही तुम नरक जाने की अर्जी दे दोगे। तुम कहोगे कि थोड़े दिन के लिए जरा बाहर हो आएं। थोड़ी हवा बदल हो जाएगी।

सुख से भी आदमी ऊब जाता है। क्योंकि सुख भी एक अनुभव है। और सभी अनुभव बार-बार मिलते रहें, तो उबाने वाले हो जाते हैं।
आनंद अनुभव नहीं है। वह प्रसादरूप भी नहीं है, वह स्वभावरूप है। वह अमृत-तुल्य नहीं है, वह अमृत है। वहां भोगने वाला कोई भी नहीं है। वहां ऐसा नहीं है कि तुम हो और आनंद मिल रहा है। वहां बस आनंद है और तुम नहीं हो। जिसको सुख मिलता है, वह अधर में अटक जाता है। दो उपाय हैं। अगर समझदार
न हो, अगर संगी-साथी न हों, जो उसे ऊपर खींच सकें, अगर गुरु उपलब्ध न हो, तो बहुत डर है कि वह वापस संसार में लौट जाए। बहुत बार लोग लौट गए हैं। तुम में से भी बहुत लौट गए हैं।
इसी तरह के लोगों को तो हम योगभ्रष्ट कहते हैं। वे करीब-करीब आ गए थे। मंजिल बस हाथ के करीब थी और लौट गए! पर मजबूरी है। वे कर भी क्या सकते हैं! मैंने सुना है, कोलरेडो में जब पहली दफा सोने की खदानें खोजी गयीं, तो लोग एकदम पागल की तरह कोलरेडो की तरफ भागने लगे। क्योंकि वहां सोना ही सोना बरस रहा था। खेतों में सोना पड़ा था। पहाड़ों पर सोना था। जहां खोदो, वहां सोना मिल रहा था।
एक करोड़पति ने अपनी सारी जमीन-जायदाद, अपने सब महल बेच दिए और एक पूरा पहाड़ खरीद लिया। संयोग की बात, पहाड़ सोने से खाली था। बहुत खोजा, लेकिन कुछ न मिला। कर्ज लिया उसने; बड़े यंत्र लगवाए। लोग खेतों में हाथ से खोद रहे थे और सोना मिल रहा था। नदी के किनारे रेत खोद रहे थे और सोना मिल रहा था। और उसने पूरा पहाड़ खरीद लिया था इसी आशा में कि वह दुनिया का सबसे बड़ा धनपति हो जाएगा। वह कंगाल हुआ जा रहा है! उसने बड़ा कर्ज लिया, बड़ी मशीनें ले गया। पहाड़ खुदवा डाले, लेकिन सोने का कोई पता नहीं।
एक दिन उसने अखबारों में खबर दी कि मैं अपने सारे यंत्र, सारी संपत्ति, सारा पहाड़ बेचना चाहता हूं। उसके मित्रों ने कहा, कौन खरीदेगा? यह खबर तो सबको मिल गयी है। तो पूरे अमेरिका में चर्चा है इसकी कि भाग्य की बात कि राह पर पड़ा मिल रहा है सोना, और एक आदमी ने इतनी मेहनत की और एक कण भी न पाया, आश्चर्य! भाग्य में ही न होगा। तो अब तुम क्या सोचते हो, कोई पागल होगा, जो इतनी बड़ी व्यवस्था को खरीदे। जैसे तुमने अपने को दांव पर लगाया, कौन लगाएगा! और जानते हुए! तुमने तो खैर अंधेरे में दांव लगाया था। अब तो जानी हुई बात है।
उसने कहा, कौन जाने! दुनिया कभी पागलों से खाली नहीं।
और एक आदमी मिल गया, जिसने करोड़ों रुपए देकर वह पूरी जायदाद खरीद ली। उसके घर के लोगों ने कहा, तुम पागल हो गए हो? उस आदमी ने कहा कि जहां तक उसने खोजा है, वहां तक नहीं मिला; लेकिन आगे नहीं होगा, इसका कुछ पक्का है? एक कोशिश कर लेनी जरूरी है।
और वह दूसरा आदमी दुनिया का अरबपति हो गया, क्योंकि सिर्फ एक फीट और खोदा। और इससे बड़ी खदानें कोलरेडो में मिली ही नहीं। सिर्फ एक फीट! पहले ही दिन मशीनों ने काम शुरू किया और खदानें प्रकट हो गयीं। और वह आदमी पचासों फीट खोद चुका था।
पर तुम जानोगे भी कैसे कि एक फीट पहले ही लौट आए हो! बस, एक फीट दूर थी तुम्हारी संपदा। तुम्हारा भाग्य प्रतीक्षा करता था; बस एक इंच दूर भी हो सकता था। सिर्फ मिट्टी की एक पतली सतह एक इंच की हो सकती थी। और तुम लौट आए होते।
सुख की अवस्था से बहुत लोग वापस गिर जाते हैं। क्योंकि जब सुख उबाने लगता है, तब अगर कोई सम्हालने को न हो और कोई कहे कि भागो मत, यही तो मौका है। आंख ऊपर उठाओ, आनंद की झलक मिल सकती है अभी!
सुख में ही आनंद की झलक मिलती है, दुख में नहीं। दुख में तो सुख की झलक मिलती है। स्वाभाविक है। दुख की सीढ़ी से सुख की सीढ़ी जुड़ी है। सुख की सीढ़ी के पार आनंद की सीढ़ी है।
भागो मत, सुख का उपयोग कर लो। अगर तुमने दुख को ठीक से समझा, तुम सुख में पहुंच जाओगे। अगर तुमने सुख को ठीक से समझा, तुम आनंद में पहुंच जाओगे।

दुख है संसार और तुम। दो मौजूद रहो तो दुख है, मैं और तू। बस, मैं और तू
की सारी बकवास है संसार। फिर मैं ही बचे, आधा रोग रह जाए, तो सुख मालूम होता है। फिर मैं भी चला जाए, तो आनंद बरसता है। लेकिन तब तुम नहीं होते।
आनंद अनुभव नहीं है। कोई है ही नहीं वहां, जो अनुभव करता है। आनंद ही हो। इसलिए हमने परमात्मा का लक्षण कहा है, सच्चिदानंद।
परमात्मा आनंदित हो रहा है, ऐसा नहीं कहा है। परमात्मा आनंद है। क्योंकि आनंदित हो रहा है, तो कभी-कभी दुखी भी होगा। कभी-कभी आनंद से हाथ छूट भी जाएगा। कभी-कभी उदास भी हो जाएगा। नहीं; परमात्मा आनंद है। यह उसका होना है।
इसलिए कृष्ण इसे सुख कह रहे हैं, आनंद नहीं कह रहे हैं। समझो। अगर सत्व की दशा सध जाए, तो सुख मिलेगा; अगर गुणातीत दशा सध जाए, तो आनंद मिलेगा। तीनों गुणों के जो पार हो जाता है, वह आनंद को उपलब्ध होता है। सत्व की दशा, शुद्धतम गुण की दशा में सुख होता है, महासुख होता है, आनंद नहीं। अभी एक रेखा बनी ही रहती है तुम्हारे होने की। वही कांटे की तरह चुभती रहती है। सुख में भी दुख का बीज बना रहता है।

चौथा प्रश्नः आपने समझाया कि तमस से रजस में, फिर रजस से सत्व में उठना है। फिर कहा गया है कि स्वधर्म में जीना ही धर्म का लक्ष्य है। तो यदि किसी व्यक्ति का स्वधर्म राजसिक होना हो, तो क्या उसे भी अपना स्वधर्म छोड़कर सत्व में उठना जरूरी है?

कोई गुण स्वधर्म नहीं है। गुण तो बाहर के आवरण हैं। स्वधर्म का अर्थ
तो स्वभाव में जाना है। वह तो गुणातीत है।
रजस, तमस या सत्व स्वधर्म नहीं हैं, धर्म पर आरोपण हैं। किसी के ऊपर लोहे का आवरण है, वह तमस। किसी के ऊपर चांदी का आवरण है, वह रजस। किसी के ऊपर सोने का आवरण है, वह सत्व। बाकी तीनों आवरण हैं। भीतर जो छिपा है, गुणातीत, स्वधर्म तो वहां है।
तो स्वधर्म का अर्थ तुम गुणों से मत करना। स्वधर्म तो आकाश की भांति है। उसमें तो तुम जाओगे, तो ही पहचान पाओगे; उसका कोई गुण नहीं है। स्वधर्म का कोई गुण नहीं है; गुणातीत अवस्था ही उसका होना है। इसलिए सभी को तमस से उठना है, रजस से उठना है, सत्व से भी उठना है। और अंततः स्वधर्म को पाना है। अब यह स्वधर्म--न तो इसका हिंदू धर्म से कोई मतलब है, न मुसलमान धर्म
से कोई मतलब है, न जैन धर्म से कोई मतलब है--स्वधर्म का अर्थ तो है तुम्हारे चैतन्य की परम अनुभूति, आत्यंतिक अनुभूति।

पांचवां प्रश्नः बर्ट्रेंड रसेल ने कहीं कहा है कि आधुनिक मनुष्य की सबसे बड़ी समस्या अपराध-भाव है। क्या यह बात सही है? और यदि सही है, तो उससे मुक्त होने को वह क्या करे?

यह बात बहुत गहरे अर्थों में सही है। और आज ही ऐसा है, ऐसा नहीं; सदा से मनुष्य की समस्या रही है अपराध-भाव। जब मैं कहता हूं सदा से, तो मेरा अर्थ है, जब से आदमी सभ्य हुआ।
असभ्य आदमी को कोई अपराध-भाव नहीं होता। वह ऐसे ही सरलता से जीता है, जैसे बच्चे, जैसे पशु-पक्षी, पौधे। सभ्यता का जन्म ही अपराध-भाव से होता है।
अपराध-भाव का अर्थ है, हम प्रत्येक बच्चे को कहते हैं कि तुम्हें ऐसा होना चाहिए और ऐसा नहीं होना चाहिए। फिर बच्चा जब भी अपने को पाता है उस दिशा में झुकता, जैसा नहीं होना चाहिए, तो अपराध की वृत्ति पैदा होती है, गिल्ट पैदा होती है, ग्लानि पैदा होती है। और जब भी पाता है उस दिशा में झुकता हुआ, जैसा हम कहते हैं होना चाहिए, तो अहंकार पैदा होता है।
सभ्यता दो रोग पैदा करवाती है, एक तरफ अहंकार और एक तरफ अपराध।
तुमने किसी बच्चे को कहा, सिगरेट नहीं पीना; महापाप है, नरक में सड़ोगे। तुमने डरवाया। अब अगर पीएगा, तो अपराध-भाव पैदा होगा कि मैंने कुछ पाप किया। मां-बाप से झूठ बोला, छिपाया। वह डरा-डरा घर आएगा। चौकन्ना

रहेगा कि कहीं न कहीं से खबर मिलने ही वाली है। कोई न कोई ने देख ही लिया होगा। कपड़े में बास आ जाएगी मां को। मुंह को पास लाएगा, तो मुंह से पता चल जाएगा। वह पकड़ा ही जाने वाला है। वह अपराध से भरा हुआ है, डर रहा है, घबड़ा रहा है।
अगर यह भय बहुत गहरे बैठ जाए, तो तुम जीवनभर डरते ही डरते समाप्त हो जाते हो। तुम जी ही नहीं पाते। भयभीत जीएगा कैसे! अपराध तुम्हारे जीवन को चूस डालता है।
अगर सिगरेट न पी; पीने की आकांक्षा थी, पीने का मन था, हाथ में उठा ली थी, फिर छोड़ दी, त्याग कर दी, तो अकड़ पैदा होगी, अहंकार पैदा होगा। यह लड़का घर और ही चाल से चलता हुआ आएगा, कि इसने कोई महाकार्य कर लिया है, कि जैसे यह परमात्मा की नजरों में बहुत ऊपर उठ गया। स्वर्ग बिल्कुल निश्चित है! छोटे बच्चों को तो छोड़ दो, तुम्हारे बड़े साधु-संन्यासी भी ऐसी ही छोटी बातों में स्वर्ग और नरक का हिसाब लगा रहे हैं! किसी ने उपवास कर लिया; वह पक्का मानकर बैठा है कि स्वर्ग में बैंड-बाजे लिए परमात्मा खड़ा है। जैसे ही वह मरेगा कि बैंड-बाजे बजे, हाथी पर जुलूस निकला!
बचकानी बुद्धि है। तुमने किया क्या है? भोजन नहीं किया, कि सिगरेट नहीं पी, कि पान नहीं खाया। कुछ हैं कि जिन्होंने पान खा लिया है, सिगरेट पी ली है, वे घबड़ा रहे हैं कि नरक का द्वार खुला, अब खुला। अब देर नहीं है और शैतान ने दबोचा!
दोनों ही बातें नासमझी की हैं। और दोनों ही के पीछे कारण है। कारण है, समाज, राज्य, धर्म। समाज जीता है व्यक्ति को डराकर, भयभीत करके। पुरोहित भी जीता है व्यक्ति को डराकर, भयभीत करके। पहले डराओ। जब आदमी बिल्कुल घबड़ा जाए, तब उसको बचाने आ जाओ। यह जाल है।
मैंने सुना है, एक गांव में दो भाई थे। उनका धंधा बहुत अच्छा चलता था।
एक भाई रात में जाकर लोगों की खिड़कियों पर डामर फेंक आता था। और दूसरा भाई सुबह से निकलता था चिल्लाता हुआ, किसी को कांच तो साफ नहीं करवाने हैं? धंधा बड़ा परिपूर्ण था। उसमें कभी ऐसा होता ही न था कि ग्राहक न मिलें। पहला भाई ग्राहक पैदा कर जाता था, दूसरा भाई सुबह जाकर लोगों के कांच पर डामर साफ कर आता था।
पहले पुरोहित तुम्हें डराता है। जब तुम भयभीत हो जाते हो, तब तुम्हें सांत्वना देता है कि घबड़ाओ मत। हमारे पास कुंजियां हैं, उपाय हैं, जिनसे तुमने अगर पाप भी किए हैं, तो भी क्षमा हो जाओगे। जिनसे अगर तुमने अपराध भी किए हैं, तो अपराध तुम्हें नरक में न ले जाएंगे। हमारे पास मंत्र हैं, यज्ञ का साधन है। अगर तुमने हमारी सुनी और मानी, तो क्षमा कर दिए जाओगे। घबड़ाओ मत, बचाने का उपाय है। बचने की संभावना है।
मनुष्य को पहले हम रुग्ण करते हैं, फिर इलाज। पहले बीमार करते हैं, फिर चिकित्सा करते हैं। ऐसे धंधा चलता है।
आदमी स्वस्थ है, कुछ करने की जरूरत नहीं है। लेकिन यह जारी रहेगा, क्योंकि राजनेता व्यर्थ हो जाएगा, अगर तुम घबड़ाए न। अगर तुम डरे न, तो राजनेता तुम्हें युद्धों में न झोंक सकेगा। अगर तुम डरे न, तो मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे खाली हो जाएंगे। क्योंकि कौन वहां घुटने टेककर प्रार्थना करेगा? अगर तुम डरे न, तो समाज की छाती पर जो लोग बैठे हैं, वे बैठे न रह सकेंगे। तब व्यक्ति मुक्त होने लगेगा। समाज बिखरने लगेगा। लोग सरल हो जाएंगे, लोग नैसर्गिक हो जाएंगे, लोग आनंद-भाव को उपलब्ध हो जाएंगे, लेकिन तब दुष्टों की, शोषकों की, पीड़ित करने वालों की, परपीड़कों की बड़ी कठिनाई हो जाएगी। वे क्या करेंगे?
इसलिए यह सारा खेल है। जैसे ही आदमी सभ्य हुआ है, सबसे बड़ी दुर्घटना
जो घटी है, वह है, उसके भीतर अपराध-भाव पैदा हो गया। और कैसी-कैसी छोटी बातों पर अपराध-भाव पैदा हो जाता है!
मैं छोटा था। तो मेरे घर में पर्युषण के दिन आते, जैनों का त्योहार आता, तो सब बड़े उपवास करते। स्वभावतः, जब बड़े उपवास करते हैं, तो छोटे भी अनुकरण करते हैं। न करो, तो ऐसा लगता है, पाप कर रहे हैं; करो, तो बड़ी अकड़ पैदा होती है कि कोई महाकार्य कर लिया! सिर्फ भूखे मरे हैं, महाकार्य कर लिया!

मैं छोटा था, तो जब घर में सभी उपवास कर रहे हों, तो मुझे भी करना चाहिए। कोई जबरदस्ती न थी। लेकिन न करो, तो ऐसा लगता कि जैसे अभी तक मनुष्य जाति के हिस्से नहीं हैं। अभी थोड़े मनुष्य जाति से नीचे हो।
फिर दूसरों के घरों में दूसरों के बच्चे कर रहे हैं। वह भी बड़ी पीड़ा
का कारण था, कि फलाने के लड़के ने उपवास कर लिया। या तो भूखे न मरो, तब अहंकार की तृप्ति नहीं होती। भूखे मरो, तो अहंकार की तृप्ति हो सकती है। अगर न करो, तो अपराध-भाव पैदा होता है कि तुम्हीं कुछ गलत हो, बाकी सब कर रहे हैं।
रात प्यास लग आए, तो पानी नहीं पी सकते। घर के लोग समझाएं भी कि पी लो, तुम अभी बच्चे हो। उससे भी दुख होता है कि अभी हम बच्चे हैं, इसीलिए पीने को कहा जा रहा है, वैसे तो यह पाप है। तो अकड़ पैदा होती है कि मत पीओ, रात गुजार ही दो किसी तरह। बच्चे तो जिद्दी होते भी हैं। किसी तरह रात तकलीफ में गुजार दो, सुबह की राह देखो।
प्रकृति के विपरीत जो भी करवाया जा रहा है, उससे अहंकार पैदा होगा, अगर करोगे। अगर न करोगे, तो अपराध पैदा हो जाएगा, क्योंकि दूसरे कर रहे हैं, आगे निकले जा रहे हैं, तुम पीछे छूटते जा रहे हो। आत्मनिंदा पैदा होगी।
और इस संसार में सबसे बड़ी बुरी बात है, आत्मनिंदा का भाव पैदा हो जाए। क्योंकि जिसको आत्मनिंदा पैदा हो गयी, वह कैसे पहचानेगा भीतर के परमात्मा को? वह तो इतना निंदित हो गया कि वह कभी सोच भी नहीं सकता कि मेरे भीतर और परमात्मा हो सकता है! महावीर के भीतर होगा, बुद्ध के भीतर होगा, कृष्ण के भीतर होगा, मेरे भीतर हो सकता है? रात पानी पी लिया! उपवास का दिन था; भूख लग गयी!
तुम्हारे भीतर परमात्मा हो सकता है, यह बात ही मुश्किल हो जाएगी, जितनी अपराध की पर्त मजबूत हो जाएगी। और अहंकार की पर्त मजबूत हो जाए, तो भी मुश्किल हो जाएगी कि तुम्हारे भीतर परमात्मा है।
अहंकार भी जानने नहीं देता और अपराध भी जानने नहीं देता। दोनों से जो मुक्त हो जाता है, उसको ही मैं सरल-साधु कहता हूं। न तो जो अपराध की धारणा रखता है अपने भीतर। भूख लगी तो भोजन किया, प्यास लगी तो पानी पीया, नींद आयी तो सो गए। जो जीवन को इतनी सरलता से चलाता है कि प्रकृति को नाहक लड़ाई-झगड़े में नहीं डालता। और न ही किसी अहंकार को अर्जित करता है। कर भी नहीं सकता।
अगर तुम नींद आए तभी सो जाओ, तो अहंकार कैसे अर्जित करोगे? तुम कैसे कहोगे कि मैं सिर्फ दो ही घंटे सोता हूं! तुम कैसे कहोगे कि मैं रोज ब्रह्ममुहूर्त में उठता हूं; मैं कोई साधारण आदमी नहीं हूं। पूरे जीवन मैं ब्रह्ममुहूर्त में ही उठा हूं। तुम कैसे कहोगे कि मैंने कितने उपवास किए, कितने व्रत रखे।
अगर तुम समझ लो, अपराध छूट जाए, तो अहंकार भी छूट जाता है, क्योंकि उसका कोई उपाय ही नहीं बचता। तब तुम होते हो, जैसे नहीं हो। और यही होने का श्रेष्ठतम ढंग है। ऐसे, जैसे नहीं हो। न तुम ग्लानि से भरे हो और न तुम किसी की छाती पर खड़े होने की चेष्टा कर रहे हो। न तुम अपने को नीचा मानते हो कि दूसरों को अपने सिर पर खड़ा करो, न तुम अपने को ऊंचा मानते हो कि किसी के सिर पर खड़े हो जाओ।
तुम न नीचे हो, न तुम ऊपर हो। तुम बस तुम हो। तुम न तुलना करते हो किसी
से अपनी, न निंदा करते हो; न अपना गुणगान करते हो, न अपनी स्तुति करते हो। इस सहजता का नाम ही स्वभाव है, स्वधर्म है। और तभी तुम अपने भीतर के परमात्मा का आविष्कार कर पाओगे।
बचने के दो उपाय हैं, अपराध और अहंकार। पाने का एक ही उपाय है, दोनों
को छोड़ दो, दोनों को गिरा दो। स्वीकार कर लो अपनी सहजता को, निसर्ग को। मत व्यर्थ का संघर्ष खड़ा करो। लड़ो मत नदी से; बहो।

अब सूत्रः

इसलिए हे परंतप, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के तथा शूद्रों के भी कर्म स्वभाव से उत्पन्न हुए गुणों द्वारा विभक्त किए गए हैं। शम--अंतःकरण का निग्रह, दम--इंद्रियों का निग्रह, शौच--बाहर-भीतर की शुद्धि, तप, क्षांति, क्षमा-भाव एवं आर्जव अर्थात मन, इंद्रिय और शरीर की सरलता, आस्तिक बुद्धि, ज्ञान और विज्ञान, ये तो ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म हैं। और शौर्य, तेज, धृति अर्थात धैर्य, चतुरता और युद्ध में भी न भागने का स्वभाव एवं दान और स्वामी-भाव, ये सब क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म हैं। तथा खेती, गौपालन, क्रय-विक्रय रूप सत्य व्यवहार वैश्य के और सब वर्णों की सेवा करना, यह शूद्र का स्वाभाविक कर्म है।
पहली बात। अगर संसार में लोग ठीक-ठीक गुणों में विभाजित होते, तो तीन
ही वर्ण होने चाहिए, चार नहीं--ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र। अगर लोग ठीक-ठीक विभाजित हों, तो तीन ही वर्ण होंगे। चौथा वर्ण भी है, क्योंकि लोग ठीक-ठीक विभाजित नहीं हैं।
वैश्य वस्तुतः कोई वर्ण नहीं है, सभी वर्णों का बाजार है। शूद्र और क्षत्रिय के बीच में जो हैं, क्षत्रिय और ब्राह्मण के बीच में जो हैं, शूद्र और ब्राह्मण के बीच में जो हैं, वह जो-जो बीच में हैं, उन सबका इकट्ठा समूह वैश्य है। वैश्य कोई वर्ण नहीं है; मिश्रण है, खिचड़ी है।
लेकिन उसकी भी जरूरत है, वह चौराहा है। वहां से एक वर्ण का व्यक्ति दूसरे वर्ण में प्रवेश करता है। वहां से एक गुण का व्यक्ति दूसरे गुण में प्रवेश करता है। तीन तो यात्रा-पथ हैं, चौथा चौराहा है।
इसलिए वैश्य बड़ा से बड़ा वर्ण है। होना नहीं चाहिए। अगर प्रकृति बिल्कुल नियम से चलती हो और सब चीजें बंटी हों, जैसी कि हम गणित और तर्क में बांट लेते हैं, विभाजन साफ हो, तो वैश्य खो जाएगा। तब तीन ही रह जाएंगे।
तमस से भरे हुए व्यक्ति का नाम शूद्र है, सोया, मूर्च्छित। रजस से भरे हुए, तीव्र त्वरा और कर्म से भरे हुए व्यक्ति का नाम क्षत्रिय है। सत्व, शांति, पवित्रता से भरे हुए व्यक्ति का नाम ब्राह्मण है।
ये तीन तो गणित के विभाजन हैं, लेकिन जीवन गणित को नहीं मानता। तो जीवन में ब्राह्मण तो मुश्किल से मिलेगा, शूद्र भी मुश्किल से मिलेगा, क्षत्रिय भी मुश्किल से मिलेगा। जहां जाओगे, वहां वैश्य मिलेगा। क्योंकि तुम पाओगे, ब्राह्मण भी धंधा कर रहा है। चाहे वह धंधा यज्ञ का हो, पूजा-पाठ का हो, पुरोहित का हो, धंधा कर रहा है। धंधा कर रहा है, तो वैश्य है।
तुम पाओगे, शूद्र भी सेवा कहां कर रहा है, वह भी धंधा कर रहा है। चाहे जूता बना रहा हो, चाहे मालिश कर रहा हो, चाहे बुहारी लगा रहा हो, वह भी धंधा कर रहा है, वह भी वैश्य है।
और क्षत्रिय तुम कहां पाओगे? वे भी धंधा ही करने वाले लोग हैं। वे अपनी जान बेच रहे हैं। मरने-मारने के लिए वे तैयार हैं, क्योंकि सौ रुपए महीना तनख्वाह मिलती है! वे भी वैश्य हैं।
तीन तो होते, अगर जीवन बिल्कुल गणित से चलता। लेकिन जीवन गणित से चलता
ही नहीं। तो तुम तो इन तीनों का संगम पाओगे। गंगा, यमुना, सरस्वती, तीनों को तुम प्रयाग में मिलता पाओगे। वैश्य तीर्थ बन गया है। वह सब उसमें गड्डमगड्ड है। वह सबसे बड़ा वर्ण बन गया है, जो होना ही नहीं चाहिए।
और दूसरी बात ध्यान रखो कि इनका जन्म से कोई भी संबंध नहीं है। जन्म
से तुम ब्राह्मण के घर में पैदा हो सकते हो, इससे तुम्हारे ब्राह्मण होने का कोई संबंध नहीं है। जन्म से तुम क्षत्रिय के घर में पैदा हो सकते हो, लेकिन इससे तुम्हारे क्षत्रिय होने का कोई संबंध नहीं है। तुम डरपोक क्षत्रियों को खोज ही लोगे। और ब्राह्मण के घर में पैदा होने से कोई ब्रह्मज्ञान को थोड़े ही उपलब्ध हो जाता है। और शूद्र के घर में पैदा होने से ही कोई शूद्र थोड़े ही होता है।
अब डाक्टर अंबेदकर थे, वे शूद्र के घर में पैदा हुए। लेकिन उन जैसा कानून का पंडित तुम मुल्क में खोज ही न सकोगे। भारत को अपना विधान बनाना पड़ा, तो कोई ब्राह्मण पंडित न खोज सके वे अंबेदकर से श्रेष्ठ, जो उस विधान को बनाता। अंबेदकर शास्त्र का ज्ञाता, विधि का ज्ञाता। ब्राह्मण के घर में पैदा नहीं हुआ है।

जीवन का कोई संबंध जन्म से बहुत ज्यादा नहीं है। जन्म से तो केवल संभावना मिलती है।
श्वेतकेतु घर लौटा शिक्षित होकर। गुरुकुल से वापस आया। बाप ने पूछा
कि तू सच में ही ब्राह्मण होकर लौटा है? क्योंकि तुझे मैं एक बात कह दूं, हमारे कुल में नाम से ब्राह्मण कभी भी कोई नहीं हुआ। तो तू उस एक को जानकर लौटा है, जिसको जानने से सब जान लिया जाता है? अगर न जानकर लौटा हो उस एक को, तो अभी तू नाम-मात्र को ब्राह्मण है। और हमारे कुल में कभी कोई नाम-मात्र का ब्राह्मण नहीं हुआ। हम सदा ही वस्तुतः ब्राह्मण होते रहे हैं। यह हमारे कुल की धारा है, प्रतिष्ठा है। तो तू जा।
उसने कहा, उसको तो मैं जानकर नहीं लौटा। जो भी सिखाया गया है, वह सब जानकर लौटा हूं। लेकिन मेरे गुरु ने उसकी तो कोई बात ही नहीं की, उस एक की, जिसको जान लेने से सब जान लिया जाए! उस एक की तो बात ही नहीं उठी। और मैं ऐसा नहीं मानता कि मेरे गुरु को उसका पता होता और वे छिपाते। उन्हें पता ही न होगा, क्योंकि उन्होंने तो अपनी पूरी मुट्ठी खोल दी और जो भी था, मुझे दिया है।
तो उद्दालक ने कहा, फिर? फिर मैं ही तुझे उस एक की शिक्षा दूंगा। लेकिन
उस एक को जाने बिना कभी भूलकर अपने को ब्राह्मण मत कहना।
तो ब्राह्मण के घर में तो कोई नाम का ब्राह्मण हो सकता है। जब तक ब्रह्म को न जान लो, तब तक अपने को ब्राह्मण थोड़ा सोच-समझकर कहना।
कोई शूद्र के घर में पैदा होने से शूद्र नहीं हो जाता। हमारी मुल्क की परंपरा तो यह है कि सभी शूद्र की तरह पैदा होते हैं। क्योंकि सभी आलस्य से पैदा होते हैं, गहन तमस से आते हैं।
मां के पेट में नौ महीने बच्चा सोया रहता है। अब इससे बड़ा और आलस्य कुछ खोजोगे! नौ महीने पड़ा ही रहता है तमस, अंधकार में। सभी अंधकार में से आते हैं, आलस्य और तमस से पैदा होते हैं। सभी शूद्र हैं।
सब शूद्र की तरह पैदा होते हैं और सब ब्राह्मण की तरह मरने चाहिए। यह
तो जीवन की कला होगी। लेकिन जिसने ब्राह्मण के घर में पैदा होकर समझ लिया, मैं ब्राह्मण हो गया, वह चूक जाएगा। वह नाम-मात्र का ब्राह्मण था। उसने लेबल को असलियत समझ लिया। क्षत्रिय के घर में पैदा होने से कोई क्षत्रिय नहीं होता।
समझने की कोशिश करें उन तीनों के लक्षण।
शम अर्थात अंतःकरण का निग्रह... ।
जिसके भीतर एक गहरी शांति की अवस्था आ गयी है, जिसके भीतर कोई उत्तेजित लहरें नहीं हैं, अंतःकरण विक्षिप्त नहीं रहा, मौन हो गया है। आंख बंद कर लो, तो भीतर सन्नाटा, और सन्नाटा, और सन्नाटा खुलता जाता है। स्वर की व्यर्थ गूंज नहीं होती; शब्द अकारण नहीं तिरते; विचार यों ही नहीं घूमते रहते। भीतर एक परम शांति है। अंतःकरण निगृहीत हो गया। अब अंतःकरण पागल की तरह नहीं दौड़ रहा है। जब जरूरत होती है, तब चलता है; जब जरूरत नहीं होती, तब विश्राम करता है। तुम मालिक हो गए हो अपने अंतःकरण के।
दम... ।
जिसकी इंद्रियां अब मालिक नहीं रहीं; जिसका होश मालिक हो गया है। तुम्हें तो इंद्रियां चलाए जाती हैं। सुंदर स्त्री जा रही है, तुम ध्यान करने बैठे थे और आंख कहती हैं, देखो, सुंदर स्त्री जाती है। तुम मालिक नहीं हो। आंख मजबूर कर देती है; तुम्हें देखना पड़ता है; आंख उठानी पड़ती है। आंख उठाकर पछताते हो कि क्या होगा देखे लेने से भी! और सौंदर्य में देखने योग्य भी क्या है! हवा में खिंची लकीरें हैं; थोड़ी अनुपातपूर्ण होंगी। हड्डी-मांस-मज्जा पर चढ़ी हुई लकीरें हैं; थोड़ी अनुपातपूर्ण होंगी। लेकिन क्या होगा? पर नहीं। ध्यान टूट गया,शृंखला मिट गयी। आंख ने पुकार लिया। आंख ने पकड़ लिया।
इंद्रियां जिसकी वश में आ गयी हैं।
शौच--बाहर-भीतर की शुद्धि... ।
जो सदा नहाया हुआ है; जिसके भीतर विकार की धूल नहीं उठती।
तप... ।

जो जीवन में दुख झेलने को तैयार है, अगर उस दुख से शुद्धि होती हो। दुख झेलने को तैयार है, अगर उस दुख से शांति आती हो। दुख झेलने को तैयार है, उससे अगर सत्य की खोज होती है। जो सुख का आकांक्षी नहीं है; सुख से बड़ी आकांक्षा का जिसके भीतर आविर्भाव हुआ है। जो सत्य का खोजी है। क्षमा-भाव... ।
जिसको भी शांति पैदा होगी, क्षमा-भाव पैदा होगा ही। अगर क्षमा-भाव पैदा न हो, तो तुम शांत कभी हो नहीं सकते। इतना बड़ा संसार है, चारों तरफ चल रहा है। हजारों तरह के काम हो रहे हैं, लोग हजारों तरह की बातें कह रहे हैं, पक्ष में, विपक्ष में। अगर तुम एक-एक की बात पर विचार करो, चोट पाओ, घाव बनाओ, क्षमा न कर सको, माफ न कर सको, भूल न सको, तुम कहीं शांत हो सकोगे! तुम पागल हो जाओगे। तो जिसके भीतर क्षांति पैदा हुई है, जो क्षमा-भाव को उपलब्ध हुआ है।
आर्जव... ।
जिसका मन, इंद्रिय और शरीर सरल हो गए हैं, नैसर्गिक हो गए हैं। जो छोटे बच्चे की तरह जीता है।
आस्तिक बुद्धि... ।
जिसके भीतर से हां तो सरलता से आता है, न मुश्किल से आता है। हां जिसका स्वभाव हो गया है, आस्तिक बुद्धि।
तुमने देखा होगा, लोग भी तुम जानते होगे, हां कहने वाले लोग और न कहने वाले लोग। ऐसे लोग हैं, जिनके भीतर से न ही आता है। ऐसे कामों में भी न आता है, जहां कि कोई जरूरत ही न थी। नहीं उनके लिए स्वाभाविक है। वह पहला उनका उत्तर है। तुम कुछ कहो, वह नहीं पहले उनके भीतर उठेगा। वे नास्तिक बुद्धि हैं, जिनके भी जीवन में निषेध है, जो इनकार से चलते हैं।
आस्तिक बुद्धि का अर्थ है, जिसके भीतर हां है, आस्था है।
ज्ञान और विज्ञान... ।
पुराने शास्त्रों में, गीता में भी, ज्ञान का अर्थ तो साधारण ज्ञान होता है--संसार का, पदार्थ का। जिसको हम आज विज्ञान कहते हैं, साइंस कहते हैं, उसको गीता ज्ञान कहती है।
और उन दिनों, कृष्ण के दिनों में, विज्ञान कहते थे उस विशेष ज्ञान को जिससे स्वयं जाना जाता है। साधारण ज्ञान और विशेष ज्ञान। जिससे और सब जाना जाता है, वह ज्ञान; और जिससे स्वयं जाना जाता है, वह विज्ञान।
ये ब्राह्मण के स्वाभाविक लक्षण हैं। यही उसका स्वभाव है।
शौर्य, वीरता, साहस, तेज, एक अदम्य ऊर्जा, शक्ति, धृति, धैर्य, चतुरता...
।
एक जीवन में संघर्ष की कुशलता।
युद्ध में भी न भागने का स्वभाव... ।
चाहे मौत ही क्यों न आ जाए, लेकिन क्षत्रिय पीठ दिखाना पसंद न करेगा।
मौत वरणीय है, पीठ दिखाना वरणीय नहीं है।
दान... ।
कुछ भी न हो उसके पास और अगर कोई मांगे, तो वह इनकार न कर सकेगा। देना उसके लिए स्वाभाविक है।
और स्वामी-भाव... ।
और वह मालिक है। वह अकड़ भी उसके लिए स्वाभाविक है। वह अहंकार भी उसके लिए स्वाभाविक है। क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म हैं। वे राजस के कर्म हैं, साहस, न भागने की वृत्ति, देने की सहज स्वाभाविकता, मांगने से बचने की चेष्टा।
क्षत्रिय मांग न सकेगा। तुम उसे मांगता हुआ न पाओगे। इसलिए तो बुद्ध
के पिता को बड़ी पीड़ा हुई, जब बुद्ध राह पर भिक्षा मांगने लगे। उन्होंने कहा, यह हमारे कुल में कभी हुआ ही नहीं। यह तू क्या कर रहा है? यह ब्राह्मणों जैसा व्यवहार क्यों कर रहा है? ब्राह्मण मांग सकता है।
अब यह थोड़ा समझने जैसा है। ब्राह्मण मांग सकता है, क्योंकि उसके पास कोई अहंकार नहीं है। क्षत्रिय मांग नहीं सकता। अहंकार ही तो उसके जीवन की रीढ़ है; मांगा कि गया। दे सकता है।

तो क्षत्रिय महादानी होगा। ब्राह्मण महाभिक्षु होगा। लेकिन हमने ब्राह्मण को क्षत्रिय से ऊपर रखा है। हमने दानी से भिक्षु को ऊपर रखा है। क्योंकि दानी में भी अकड़ है।
अभी कुछ दिन पहले कर्नल राज की मां ने संन्यास लिया। क्षत्रिय की अकड़! प्यारी बुढ़िया है। उसने जो बातें मुझे कहीं, उनमें एक बात यह भी थी कि अगर मुझे कोई एक रुपया दे, तो मैं सौ रुपए लौटाती हूं। आपका क्या कहना है? इसमें कोई गलती तो नहीं।
यह क्षत्रिय की अकड़ है कि कोई अगर एक पैसा दे दे, तो सौ लौटा देने हैं। उसने कहा, एक तो मैं लेती ही नहीं किसी से। कोई मजबूरी आ जाए, कोई भेंट ही दे दे कुछ, तो तत्क्षण लौटाना है, सौ गुना करके लौटाना है। इसमें कोई गलती तो नहीं?
क्षत्रिय होने तक तो कोई गलती नहीं है, लेकिन अगर ब्राह्मण होना हो,
तो महा गलती है। यह देने का भाव बुरा नहीं है, लेकिन इस देने से भी अहंकार ही सघन होगा, मजबूत होगा, विनम्रता न आएगी।
स्वामी-भाव... ।
कुछ भी न रह जाए क्षत्रिय के पास, तो भी स्वामी-भाव बना रहता है। कुछ
भी न हो, तो भी वह मूंछ पर अकड़ देकर चलता हुआ दिखायी पड़ेगा। वह उसका स्वाभाविक गुण है।
मैंने सुना है, अकबर के दरबार में दो राजपूत युवक गए और उन्होंने कहा
कि हम चाहते हैं कि हमें नौकरी मिल जाए। अकबर ने उनसे ऐसे ही मजाक में पूछा... । अभी मूंछ की रेख भी आनी शुरू न हुई थी, लेकिन अकड़ भारी थी। जो मूंछ थी नहीं, उस पर भी उन्होंने अकड़ दे रखी थी। अकबर ने पूछा, लेकिन तुम्हारा गुण क्या है? उन्होंने कहा, क्षत्रिय का गुण क्या? हम लड़ सकते हैं। अकबर ने पूछा, तुम्हारी बहादुरी का कोई प्रमाणपत्र लाए हो?
बात अखर गयी। दोनों भाई थे, जुड़वां भाई थे। तलवारें खिंच गयीं। इसके पहले कि कुछ अकबर कहे, दोनों की तलवारें एक-दूसरे की छाती में घुस गयीं। दोनों लाशें पड़ी थीं।
अकबर तो घबड़ा गया। अकबर ने अपनी आत्मकथा में लिखवाया है कि जैसा मैं
उस दिन घबड़ाया, कभी नहीं घबड़ाया। और जब मैंने मानसिंह को बुलाकर कहा कि यह क्या मामला है! तो मानसिंह ने कहा, कभी किसी क्षत्रिय से भूलकर मत पूछना प्रमाणपत्र। और क्या प्रमाणपत्र हो सकता है? यह रही जान! कहीं बहादुरी का कोई प्रमाणपत्र होता है? और जो प्रमाणपत्र बहादुरी का लाए, वह क्षत्रिय न होगा, कोई और होगा। प्रमाणपत्र लिखवाकर किससे लाएगा?
अकबर ने लिखा है, फिर मैंने किसी क्षत्रिय से नहीं पूछा। क्षत्रिय को देखकर डरने लगा, कि यह तो आदमी खतरनाक है। यह भी कोई बात हुई! अभी तो बात ही चल रही थी। इसमें कोई जान गंवाने का सवाल था!
लेकिन जीवन का प्रश्न उठ गया। कोई बहादुरी का प्रमाणपत्र पूछ ले। हद
हो गयी! क्षत्रिय का होना ही उसकी बहादुरी है।
और खेती, गौपालन, क्रय-विक्रय रूप सत्य व्यवहार, वैश्य के स्वाभाविक कर्म हैं।
सत्य व्यवहार... ।
वह जो भी करे, उसमें सच्चाई हो, ईमानदारी हो।
हमने एक अनूठी ही अर्थशास्त्र की धारणा खोजी थी। उस धारणा में, उस अर्थशास्त्र में, अर्थ कम था, नीति ज्यादा थी। अर्थ कम था, धर्म ज्यादा था।
और हमने चाहा था कि वैश्य भी व्यापार भला करे, लेकिन व्यापार अधर्म आधारित न हो; उसके पीछे भी सत्य की खोज चलती रहे। वह जो भी करे, उसमें से उतना ही ले, जितना जरूरी है। वह ज्यादा न चूस ले।
खेती, गौपालन, क्रय-विक्रय रूप सत्य व्यवहार, वैश्य के स्वाभाविक कर्म हैं।
इसलिए जो वैश्य सचमुच वैश्य थे, उनके लिए हमने जो नाम दिया है, वह है, सेठ। मूल शब्द उसका है श्रेष्ठ, जिसका वह अपभ्रंश है। जिसने जीवन के उलझे हुए व्यापार में सत्यता को साधा है, वह श्रेष्ठ है ही। श्रेष्ठ का ही विकृत रूप सेठ हो गया। वह बड़ा सम्मानित शब्द था कृष्ण के समय में,

श्रेष्ठी। क्योंकि व्यापार में और ईमानदारी साधने से ज्यादा कठिन कोई बात नहीं हो सकती।
ब्राह्मण ईमानदार हो सकता है, क्योंकि कोई व्यवसाय नहीं कर रहा है। क्षत्रिय ईमानदार हो सकता है, क्योंकि सीधा तलवार का ही काम है। लेकिन वैश्य? वहां तो सारा धंधा ही उपद्रव का है। वहां तो सब चोरी, शड्यंत्र, धन की दौड़, महत्वाकांक्षा, मिलावट, सब वहां है। वह बीच बाजार में खड़ा है।
इसलिए हमने ब्राह्मणों तक को श्रेष्ठी नहीं कहा; क्षत्रियों को श्रेष्ठी नहीं कहा; और वैश्य को श्रेष्ठी कहा। क्योंकि वहां जिसने साध लिया, उसने निश्चित ही कुछ गजब की बात साध ली है।
और सेवा करना शूद्र का स्वाभाविक कर्म है।
ये स्वाभाविक कर्म कृष्ण कह रहे हैं। इनको तुम अगर ढंग से न करो, तो तुम विकृत हो जाओगे।
शूद्र सेवा करे, क्योंकि वह ज्यादा से ज्यादा सेवा ही कर सकेगा।
लेकिन उसमें भी भाव सेवा का हो। आलसी है, तामसी है, इससे ज्यादा उससे न हो सकेगा। थोड़ा-बहुत काम कर लेगा, बस इतना काफी है। रोटी-रोजी कमा ले, इतना उसे मिल जाए। लेकिन उसकी भाव-दशा सेवा की हो।
अब असंभव है। दुनिया में शूद्र अब भी हैं, सदा रहेंगे। क्योंकि उनका समाज के रूपांतरण से कोई संबंध नहीं, व्यक्तियों के भीतरी गुणों से संबंध है। लेकिन अब शूद्र का नाम, प्रोलिटेरिएट, सर्वहारा है। वह क्रोध से भरा है, वह घिराव करता है, हड़ताल करता है, वह झंझट खड़ी करता है। सेवा करने की उसकी उत्सुकता नहीं है। वह मालिक होना चाहता है।
अब भी वैश्य वैश्य है, लेकिन सत्य व्यवहार नहीं है उसका। अब तो वैश्य बिल्कुल ही असत्य पर खड़ा है। झूठ ही उसके धंधे का आधार है--बेईमानी, अप्रामाणिकता।
क्षत्रिय अब भी है, लेकिन शौर्य जा चुका है। अकड़ भला रह गयी हो; अकड़ ही
रह गयी है। अकड़ के पीछे अब कोई कारण नहीं रह गया है। कभी कारण था। अकड़ माफ की जा सकती थी, क्योंकि खूबियां थीं।
अगर कर्ण अकड़ता क्षत्रिय की तरह, तो हम माफ कर सकते थे, क्योंकि दान की बात थी। अपने कान भी काटकर दे दिए। अब तो राख रह गयी है, रस्सी रह गयी है जल गयी। रस्सी में अकड़ के निशान रह गए हैं।
ब्राह्मण भी नाम का ब्राह्मण है। पोथी-पंडित है, तोते की भांति है। शास्त्र कंठस्थ हैं। अब शास्त्र उसके भीतर से पैदा नहीं होते। जमाने हुए तब से उसकी भीतर की धारा सूख गयी है, रस-स्रोत विलीन हो गए हैं। अब वह उधार है। वह पुरानी बाप-दादों की संपत्ति को दोहराए चला जाता है। उसके होंठों पर भी वे शब्द सच्चे नहीं मालूम होते, क्योंकि उनके भीतर प्राणों का कोई सहयोग नहीं है।
सब विकृत हो गया है। लेकिन अगर सुकृत सब हो, तो शूद्र धीरे-धीरे सेवा
से ऊपर उठेगा। क्योंकि सेवा अंततः सत्य में ले जाएगी, सत्य व्यवहार में ले जाएगी।
सत्य का व्यवहार करने वाला व्यक्ति धीरे-धीरे व्यवसाय से उठकर दान में जाएगा। श्रेष्ठी कभी न कभी दानी हो जाएगा। जिस दिन दानी हो गया, वह क्षत्रिय के जगत में प्रवेश कर गया।
और अकड़े तुम कब तक रहोगे? अगर ठीक-ठीक क्षत्रिय का व्यवहार रहा, जीवन
से भागने की वृत्ति न रही, तो तुम जीवन को समझ ही लोगे। और जीवन की समझ ही तुम्हें ब्राह्मण की तरफ ले जाएगी, ज्ञान की तरफ ले जाएगी।
और जो ब्राह्मण है, वह सत्व से कभी न कभी ऊब ही जाएगा। सत्व बहुत सुख देता है, लेकिन आनंद नहीं। वह एक दिन गुणातीत होने की चेष्टा करेगा।
ऐसी अगर सुकृत व्यवस्था हो, तो! तो शूद्र भी ब्राह्मण हो जाएगा और ब्राह्मण भी गुणातीत होने की तरफ यात्रा करेगा। अगर सुकृत व्यवस्था न हो, तो सारा समाज धीरे-धीरे गड्डमड्ड हो जाएगा। और अगर तीनों वर्ण खो जाएं, तो वैश्य का अकेला वर्ण रह जाएगा, जैसा कि हुआ है।
आज अगर गौर से देखो, तो वैश्य का वर्ण ही रह गया है, बाकी सब वर्ण उसमें
खो गए, गड्डमड्ड हो गए। यह एक बड़ी विकृत स्थिति है, रुग्ण स्थिति है। इसका गहन इलाज होना जरूरी है।

□□ □□□□ □□□

गीता दर्शन, भाग आठ
गीता दर्शन अध्याय 18
तेरहवां प्रवचन

स्वधर्म, स्वकर्म और वर्ण

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु।। 45।।
यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।। 46।।
श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्।। 47।।
सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः।। 48।।
एवं इस अपने-अपने स्वाभाविक कर्म में लगा हुआ मनुष्य भगवत्प्राप्तिरूप परम सिद्धि को प्राप्त होता है। परंतु जिस प्रकार से अपने स्वाभाविक कर्म में लगा हुआ मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त होता है, उस विधि को तू मेरे से सुन।
हे अर्जुन, जिस परमात्मा से सर्व भूतों की उत्पत्ति हुई है और जिससे
यह सर्व जगत व्याप्त है, उस परमेश्वर को अपने स्वाभाविक कर्म द्वारा पूजकर मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त होता है।
इसलिए अच्छी प्रकार आचरण किए हुए दूसरे के धर्म से गुणरहित भी अपना धर्म श्रेष्ठ है, क्योंकि स्वभाव से नियत किए हुए स्वधर्मरूप कर्म को करता हुआ मनुष्य पाप को नहीं प्राप्त होता।
अतएव हे कुंतीपुत्र, दोषयुक्त भी स्वाभाविक कर्म को नहीं त्यागना चाहिए, क्योंकि धुएं से अग्नि के सदृश सब ही कर्म किसी न किसी दोष से आवृत हैं।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः आपने कहा कि जब शिष्य तैयार होता है, तो गुरु मिल जाते हैं; जैसे अर्जुन को गहन विषाद के समय कृष्ण का सहारा मिला। तो क्या कारण है कि नीत्से जैसे लोगों को उनके चरम विषाद में भी किसी गुरु का सहारा नहीं मिल पाता है?

शिष्य तैयार हो, तो गुरु मिल जाता है। लेकिन शिष्य शिष्य होने को राजी
ही न हो, तब गुरु मिल भी जाए, तो भी मिलने का कोई अर्थ नहीं, सार नहीं। अर्जुन को विषाद हुआ और उसने जिज्ञासा की, मुमुक्षा की; वह किन्हीं के चरणों में झुका, किन्हीं से जानने के लिए आतुर हुआ, तो गुरु की वर्षा हो सकी उसके ऊपर। प्यास थी, तो जल सरोवर निकट आ गया।
नीत्से अर्जुन से भी ज्यादा बड़े विषाद से भरा है; उसका विषाद अर्जुन
से कम नहीं है, ज्यादा है; उसकी पीड़ा भयंकर है। उसकी पीड़ा अंततः उसे विक्षिप्तता में ले गयी। जीवन के अंतिम दिन पागलखाने में ही बीते। लेकिन सीखने की उसकी कोई मंशा नहीं है, जिज्ञासा करने की कोई आकांक्षा नहीं है; किसी से पूछने को वह तैयार नहीं है।
न केवल यही कि वह किसी से पूछने को तैयार नहीं है, वह यह भी मानने को तैयार नहीं है कि कोई बता सकता है या कोई जानता है। उसके द्वार गुरु के लिए बिल्कुल बंद हैं। गुरु को निमंत्रण तो उसने दिया ही नहीं है; द्वार भी बंद कर रखे हैं। गुरु द्वार पर भी खड़ा हो जाए, तो वह स्वीकार करने को राजी नहीं है। झुकने की वृत्ति उसमें नहीं है।
और जो झुकना न जानता हो, वह शिष्य कैसे हो सकेगा? शिष्य की सारी कला तो झुकने की कला है। निश्चित ही, मैं कहता हूं कि जब भी कोई शिष्य तैयार होता है, गुरु उपलब्ध हो जाते हैं। लेकिन शिष्यत्व को मत भूल जाना। वह तैयारी प्राथमिक है।

नीत्से तो तैयार ही न था सीखने को; कहीं भूल-चूक से कोई सिखा न दे, इसके लिए भी उसने सब विपरीत आयोजन कर रखा था। वह अगर दस्तखत भी करता था, तो उसमें भी एंटी क्राइस्ट लिखता था; जीसस का शत्रु, पीछे दस्तखत करता।
जीसस से शत्रुता का क्या कारण है उसके लिए? एक ही कारण है कि यह एक आदमी मालूम पड़ता है, जिसके सामने शायद झुकना पड़े। जिसके सामने झुकना पड़े, उसके तो वह विरोध में है।
उसने जगह-जगह घोषणा की है कि ईश्वर मर चुका है और मनुष्य पूर्णरूपेण स्वतंत्र है। और जब भी उससे पूछा गया कि तुम क्यों कहते हो कि ईश्वर मर चुका है? तो वह कहता है कि दो ईश्वर कैसे हो सकते हैं! या तो ईश्वर हो सकता है या मैं हो सकता हूं। और अगर कोई और ईश्वर है, तो यह मेरे बरदाश्त के बाहर है। उस सिंहासन पर तो केवल मैं ही हो सकता हूं।
ऐसा जहां अहंकार हो, वहां गुरु से मिलन नहीं हो सकता। ऐसी जहां दुर्दम्य अस्मिता हो, अनमनीय जहां भाव हो, वहां सरोवर भी पास रहे, तो भी तुम्हारी प्यास न बुझेगी। झुकोगे, अंजुलि में भरोगे जल को, तो ही तो कंठ तक ले पाओगे। सरोवर उछलकर तुम्हारे कंठ में न चला जाएगा। और अगर तुम जिद्द ही कर रखे हो, तो सरोवर उछले भी, तो तुम भाग खड़े होओगे।
नीत्से बचता रहा। और इसका स्वाभाविक जो परिणाम होना था, वह हुआ। वह विक्षिप्त हुआ। इतना अहंकार विक्षिप्तता में ले जाएगा। विनम्रता विमुक्ति में ले जाती है; अहंकार विक्षिप्तता में।
झुको, मिटो, तो तुम्हारे ऊपर जीवन के सभी आनंद बरस जाते हैं; तुम जीवन
की परम संपदा के मालिक हो जाते हो। मत झुको, सूखते जाते हो, जड़ें टूटती जाती हैं। एक दिन तुम जीर्ण-जर्जर, एक खंडहर मात्र रह जाते हो।
अर्जुन के लिए गुरु मिला, नीत्से को गुरु नहीं मिल सका, क्योंकि नीत्से इनकार कर रहा है। अर्जुन में संदेह भला हों, अस्वीकार नहीं है। अर्जुन अपने संदेहों को रखता है। अर्जुन कोई अंधा अनुयायी नहीं है, कि कृष्ण जो कहते हैं, उसे मान लेता है। लेकिन मौलिक रूप से, कृष्ण जो कहते हैं, ठीक ही कहते होंगे; मेरे संदेह ही गलत हो सकते हैं, कृष्ण का वक्तव्य नहीं; यह उसकी श्रद्धा है। संदेह हैं; उनका निवारण करना है। लेकिन संदेह कोई सत्य नहीं है। उनसे मुक्त होना है, उनको पकड़ नहीं रखना है।
नीत्से बिल्कुल उलटा है; संदेह उसे नहीं है, सत्य ही उसके पास है! वह
तो दूसरों का संदेह मिटाने के लिए सत्य देने को तैयार है। नीत्से गुरु बनने को तैयार है, शिष्य बनने को नहीं।
और जो शिष्य नहीं बना, वह गुरु तो कभी बन ही न सकेगा। उसकी गुरुता तो पागलपन होगी। जिसने सीखा नहीं है, वह देगा कैसे? जिसने पाया नहीं, वह लुटाएगा कैसे? जिसके पास है नहीं, वह बांटेगा कैसे?

दूसरा प्रश्नः आपने कल कहा कि जो हां में जीता है, जो भी हो, उसे स्वीकार करता है, वह आस्तिक है। परंतु अनेक बार मुझसे समग्रता से न भी निकला है। यदि अस्तित्व की समग्रता से न निकले, तो क्या वह भी आस्तिकता ही नहीं है?

न समग्रता से निकलता ही नहीं; निकल ही नहीं सकता; वह उसका स्वभाव नहीं।
इसे थोड़ा समझो। मामला थोड़ा नाजुक है।
जब भी तुम नहीं कहते हो, तब तुम टूट जाते हो समग्रता से। यह जो विराट अस्तित्व है, नहीं कहते ही तुम्हारे और इसके बीच एक खाई खड़ी हो जाती है। तुम जिससे भी नहीं कहते हो, उसी से टूट जाते हो। तुम जहां नहीं कहते हो, वहीं तुम एक छोटे-से खंड हो जाते हो। अखंड से तुम्हारा नाता अलग हो जाता है। नहीं दरार है।
और जब भी तुम नहीं कहते हो, तब तुम्हारे भीतर की समग्रता से भी नहीं निकल सकता है। क्योंकि नहीं में विरोध है, नहीं में प्रतिरोध है, रेसिस्टेंस है, संघर्ष है। संघर्ष कभी तुम्हारी पूर्णता से नहीं निकल सकता। विश्राम ही तुम्हारी पूर्णता से निकल सकता है।

संघर्ष से तुम आज नहीं कल थक ही जाओगे। नहीं कहने वाला आदमी आज नहीं
कल टूट ही जाएगा।
और जब तुम नहीं कहते हो, तो उसका मतलब क्या है? उसका मतलब यह है कि तुम अपने को ऊपर रखते हो, अपने को ज्यादा समझदार मानते हो। तभी नहीं कहते हो। आस्तिक कहता है, यह जो समग्रता है जीवन की, यही ऊपर है। मैं तो इसी की
एक तरंग हूं। सागर की तरंग सागर से नहीं कैसे कह सकती है! और अगर कहेगी, तो टूट जाएगी। तो जमकर बर्फ बन जाएगी; तब कह सकती है।
नहीं कहने के लिए दूर होना जरूरी है, फासला जरूरी है। तुम जब नहीं का उपयोग भी करते हो, तब भी तुम पाओगे, तत्क्षण बड़ा फासला पैदा हो जाता है। जब भी तुम हां कहते हो, सेतु बन जाता है; टूटी हुई चीजें जुड़ जाती हैं। खाई पट जाती है। बंद द्वार खुल जाते हैं। तुम अलग नहीं रह जाते।
अगर तुम्हारी न तुम्हें तोड़ती है समग्र से, तो तुम्हारे भीतर भी तुम्हारी समग्रता में नहीं हो सकती। अगर तुम वहां भी खोज करोगे, तो पाओगे कि वहां भी नहीं कहने वाला अलग खड़ा है।
नहीं कहने के लिए अहंकार को अलग खड़ा होना अत्यंत जरूरी है। अन्यथा नहीं कौन कहेगा? वहां कहने वाला और जो कहा गया है, वे अलग-अलग होंगे।
जब तुम हां कहते हो, तब वस्तुतः हां कोई कहता नहीं, हां निकलता है। नहीं कही जाती है। हां तुमसे उठता है, जैसे श्वास उठती है।
तुम इसको प्रयोग करके देखो। जब भी तुम नहीं कहो, तब गौर करना, तुम्हारे भीतर क्या घटता है? तुम्हारी श्वास अवरुद्ध हो जाती है; पूरी श्वास तुम नहीं ले सकते। जब तुम नहीं कहते हो, तब श्वास पूरी नहीं जाती, वह भी टूट जाती है। जब तुम नहीं कहते हो, तब तुम्हारे भीतर कोई चीज सिकुड़ जाती है, फैलती नहीं। जब तुम नहीं कहते हो, तब अचानक तुम क्षुद्र हो जाते हो। जब तुम हां कहते हो, तब तुम्हारे भीतर कोई चीज फैलती है। जब तुम हां कहते हो, तब तुम्हारी श्वास पूरी चलती है, हृदय पूरा धड़कता है। हां कहकर एक हल्कापन मालूम होता है। नहीं कहकर एक बोझ बन जाता है। नहीं कहते ही चित्त में तनाव खिंच जाता है। हां कहते ही सब विराम हो जाता है।
यह बहुत मजे की बात है। दुनिया की सब भाषाओं में हां के लिए अलग-अलग शब्द हैं, लेकिन न के लिए करीब-करीब न ही शब्द है। नो हो, नहीं हो, नू हो, लेकिन न के लिए सारी दुनिया की भाषाओं में न ही शब्द है। यह बड़े आश्चर्य की बात है।
हां के लिए अलग-अलग शब्द हैं। पर अधिकतम भाषाएं न के लिए एक ही शब्द उपयोग करती हैं। न में ही कुछ नहीं है, कुछ इनकार है। न में नकार है, निगेशन है। न ध्वनि में ही कुछ तोड़ने वाली बात है।
तुम हां के लिए उपयोग किए जाने वाले शब्दों को विचार करो। हां कहो, यस कहो; इनकार नहीं है, अस्वीकार नहीं है, विरोध नहीं है। तुम किसी चीज से मिलने के लिए आगे बढ़ते हो, तुम्हारा हाथ फैलता है, तुम आलिंगन को तत्पर हो। और इसको तुम सूत्र समझ लो, जो तुम्हें बाहर समग्र से जोड़ता है, वही तुम्हारे भीतर के समग्र से आ सकता है। अगर बाहर के समग्र से तुम्हें तोड़ता है, तुम्हारे भीतर कभी समग्र से नहीं आ सकता।
लेकिन अहंकार नहीं कहने में मजा पाता है। नहीं अहंकार की सुरक्षा है।
और जितना तुम नहीं कहोगे, उतना ही अहंकार में धार आती जाती है। ऐसी जगह भी तुम नहीं कहते हो, जहां कहने की कोई जरूरत ही न थी।
छोटा बच्चा मां से पूछता है, बाहर खेल आऊं? नहीं! कोई मतलब न था। वह बिना पूछे भी जाएगा, पूछकर भी जाएगा, नहीं कहने के बाद भी जाने वाला है। और बाहर खेल आने में हर्ज भी क्या था! लेकिन नहीं स्वाभाविक मालूम होता है, आदत बन गई है।
नौकर पूछता है, आज तनख्वाह मिल जाए। नहीं! ऐसा भी नहीं कि आज पैसे घर में न थे या देने में कोई अड़चन थी; लेकिन नहीं कहने में एक सुविधा है। जाकर देखो रेलवे स्टेशन पर; बुकिंग क्लर्क देखते ही नहीं। तुम खड़े हो;
वह अपने काम में लगा हुआ है। काम में शायद लगने की जरूरत भी न हो; क्योंकि जब वहां कोई नहीं होता, तब वह विश्राम करता है। जब खिड़की पर कोई टिकट लेने वाला नहीं होता, तब वह सिगरेट पीता है पैर फैलाकर, आराम करता है। जैसे ही

कोई खिड़की पर दिखाई पड़ा, कि रजिस्टर पर झुक जाता है। वह नहीं कह रहा है। वह कह रहा है, रुको, ठहरो; क्या समझ रखा है अपने आपको!
छोटी-सी सत्ता मिल जाए, कि तुम क्लर्क हो गए, कि पुलिसवाले हो गए, कि फिर देखो तुम्हारा नहीं कैसा प्रकट होने लगता है! कि तुम बाप हो गए, बेटे के ऊपर सत्ता मिल गई, कैसा नहीं प्रकट होने लगता है!
इसे जरा गौर करना। सौ में निन्यानबे मौके पर तो तुम पाओगे, नहीं की कोई जरूरत ही न थी; वह निष्प्रयोजन था। लेकिन एक प्रयोजन वह पूरा करता है, वह तुम्हारे अहंकार को भरता है।
अगर तुम हां कह दो, तो ताकत मालूम नहीं होती, शक्ति नहीं मालूम होती। हां में ऐसा लगता है कि अपनी कोई शक्ति नहीं कि न कह सकें। न कहने में ताकत, शक्ति, अधिकार मालूम होता है। इसलिए न से अहंकार भरता है।
न अहंकार का भोजन है। हां अहंकार की मृत्यु है। और जहां अहंकार मिट जाएगा, वहीं तुम समग्र हो सकोगे; क्योंकि अहंकार तुम हो नहीं। अहंकार तो गांठ है, रोग है, बीमारी है। वह तुम्हारा स्वभाव नहीं है; तुम्हारे स्वभाव में पड़ गई गांठ है। उस गांठ के साथ तुम कितने ही अपने को बांध लो, तुम गांठ हो नहीं। इसलिए तुम कभी पूरे हो नहीं सकते।
और अगर तुम धीरे-धीरे न कहना बंद कर दो, होश से भर जाओ, न के कारण पहचानने लगो कि क्यों कहते हो, और धीरे-धीरे न गिरती चली जाए, वैसे-वैसे तुम पाओगे, तुम भीतर भी जुड़ने लगे, बाहर भी जुड़ने लगे।
एक ऐसी घड़ी आती है, जब हां ही भीतर का स्वर रह जाता है, तभी परम आस्तिकता है। तब मृत्यु भी आती हो, तो नहीं का स्वर नहीं उठता। अभी तो छोटी-छोटी बातों में उठता है। जरूरत नहीं है, वहां भी उठता है। जीवन भी आता हो, तो भी उठता है। फिर तो मृत्यु भी आती हो, तो हां का स्वर ही स्वागत करता है। और जिस दिन तुमने हां के साथ मृत्यु का स्वागत कर लिया--मृत्यु को मार डाला, मृत्यु को जीत लिया, अमृत को उपलब्ध हुए।
जिस दिन तुमने सुख में, दुख में, पराजय में, जीत में, हर घड़ी हां कहने
का राज सीख लिया, उसी दिन तुम निमित्त हो गए, उसी दिन तुम परमात्मा के उपकरण बन गए। अब तुम्हारी कोई फलाकांक्षा न रही; अब उसकी ही मर्जी तुम्हारी मर्जी है। अब वह जहां ले जाए, तुम जाने को राजी हो। न ले जाए, तो न जाने को राजी हो। भटकाए तो भटकने को राजी हो, पहुंचाए तो पहुंचने को राजी हो। अब वह बीच मझधार में डुबा दे तुम्हारी नाव को, तो यही किनारा है। उस डूबते क्षण में भी तुम्हारे मन से इनकार न उठेगा।
जीसस आखिरी क्षण में, सूली पर लटके हुए एक क्षण को न से भर गए। अहंकार
की आखिरी रेखा शेष रह गई होगी; पता भी नहीं चला था; सूली के क्षण में ही पता चला होगा स्वयं को भी। सूली पर जब लटकाए गए और जब हाथों में खीले ठोंके गए, तो एक क्षण को विह्वल हो गए। मौत द्वार पर खड़ी थी। और साधारण मौत न थी। बिस्तर पर लेटे हुए नहीं आ रही थी; सूली लग रही थी। हजारों लोग पत्थर और गालियां फेंक रहे थे। अपमान का स्वर गूंज रहा था; चारों तरफ निंदा थी; जैसे कि जघन्य अपराधी को मारा जा रहा हो। एक क्षण को किसी के भी प्राण कंप जाएंगे।
मुझे अच्छा भी लगता है कि जीसस के प्राण भी कंपे, इससे पता चलता है कि जीसस मनुष्य हैं और मनुष्यता से ही आए हैं। मनुष्य के ही बेटे हैं। परमात्मा के बेटे बने, लेकिन मूलतः मनुष्य के बेटे हैं। पूरी मनुष्यता सूली पर उस दिन लटकी थी। और मनुष्य दीन है, दुर्बल है, कंपता है, डरता है, गिरता है, उठता है; सभी कमजोरियां हैं।
जीसस ने उस दिन जो कमजोरी प्रकट की, वह बड़ी प्रीतिकर है। एक क्षण को वे भूल गए सारी आस्तिकता। भूल गए एक क्षण को अपना सारा स्वीकार-भाव। उठाया सिर आकाश की तरफ और कहा कि यह तू मुझे क्या दिखा रहा है? यह क्या हो रहा है मेरे ऊपर? एक क्षण को शिकायत आ गई, इनकार आ गया।
लेकिन सम्हल गए। तत्क्षण सम्हल गए कि यह इनकार, यह अस्वीकार, यह शिकायत तो यही बताती है कि मैं अभी परमात्मा से पूरा-पूरा राजी नहीं हूं। आंखें नीचे झुक गईं; उनमें आंसू भर गए होंगे; और उन्होंने प्रार्थना की कि हे परमात्मा, मेरी नहीं, तेरी ही मर्जी पूरी हो। तू जो कर रहा है, ठीक ही कर रहा है।

इस एक क्षण में क्रांति घटी। वह जो मनुष्य था, अचानक दिव्य हो गया। वह
जो साधारण हड्डी, मांस, मज्जा की देह थी, अब हड्डी, मांस, मज्जा की देह न रही। मृण्मय का जगत पार हो गया। वह देह अब चिन्मय से भर गई। वह ज्योति जग गई, परम ज्योति उतर गई। उसी हां के क्षण में जीसस जोसेफ नाम के बढ़ई के लड़के न रहे। उसी क्षण में जीसस जीसस न रहे, क्राइस्ट हो गए। वे परम भाव को उपलब्ध हो गए।
बस, इतना ही फासला है तुम्हारी दीनता में और परम धन में, तुम्हारी दुख
की अवस्था में और तुम्हारे आनंद में। तुम्हारे नर्क और स्वर्ग में नहीं और हां का फासला है। जितनी बड़ी नहीं, उतना बड़ा नर्क। नहीं यानी नर्क। छोटी नहीं, छोटा नर्क; थोड़ी-सी नहीं, तो थोड़ा-सा नर्क। नहीं बिल्कुल नहीं, हां ही हां रह जाए, तो स्वर्ग ही स्वर्ग है।

तीसरा प्रश्नः मनुष्य का स्वधर्म क्या है और परधर्म क्या है?

कृष्ण दो शब्दों का उपयोग करते हैं। दोनों ठीक से समझ लेने चाहिए। एक
तो है स्वधर्म और एक है स्वकर्म।
स्वधर्म का तो अर्थ है, तुम अपनी आत्यंतिक निजता में जो हो; तुम्हारे स्वभाव का जो मौलिक स्वर है। जहां सब विचार खो गए, सब कर्म खो गए, गहन शून्य बचा; उस भीतर के शून्य का जो गुणधर्म है, उसका नाम स्वधर्म है।
इसका तो यह अर्थ हुआ कि स्वधर्म वस्तुतः एक-सा ही होगा। मेरा स्वधर्म
और तुम्हारा स्वधर्म अलग नहीं हो सकता। क्योंकि जब मैं पहुंचूंगा उस पड़ाव पर, तो वही शून्य मिलेगा, जो तुम्हें मिला है। लेकिन वह तो आत्यंतिक घटना है, आखिरी घटना है।
कृष्ण, बुद्ध और क्राइस्ट एक ही शून्यता को उपलब्ध हो गए हैं; एक ही शुद्ध भाव को उपलब्ध हो गए हैं। लेकिन उसको तो बाहर से देखने का कोई उपाय नहीं है। वह तो भीतर की अनुभूति है। उसको तो पहचानने का कोई लक्षण भी नहीं है। बाहर से तो तुम जिसे पहचानोगे, वह है स्वकर्म। वह भिन्न-भिन्न है। कर्म है तुम्हारी परिधि और धर्म है तुम्हारा केंद्र। तुम्हारे केंद्र पर तो तुम्हारे अतिरिक्त कोई कभी नहीं पहुंच सकता। इसलिए तुम ही जानोगे। यद्यपि वह केंद्र एक ही जैसा है सभी के भीतर। लेकिन तुम्हारे केंद्र पर तुम्हीं पहुंचोगे, मेरे केंद्र पर मैं ही पहुंचूंगा। अगर तुम मेरे केंद्र पर पहुंच जाओ, तो वह मेरा केंद्र ही न रहा। वह गली इतनी संकरी है कि उसमें दो समाते ही नहीं।
केंद्र पर तो मैं ही अकेला रह जाऊंगा। अगर वहां दो बिंदु भी बन सकते हैं, तो वह अभी केंद्र नहीं है। जहां सिर्फ एक ही बिंदु बनता है, जहां केवल परकार की नोक ही समाती है, बस वही।
परिधि पर बहुत बिंदु बन सकते हैं। परिधि भिन्न-भिन्न होगी, अलग-अलग रंग की होगी। तो स्वकर्म।
यह जो विभाजन है, क्षत्रिय, शूद्र, वैश्य, ब्राह्मण, यह स्वकर्म का विभाजन है। यह तुम्हारी परिधि है। क्षत्रिय की गहराई में भी तुम उसी ब्रह्म को पाओगे, जिसको ब्राह्मण की गहराई में पाओगे। उसी को शूद्र की गहराई में भी पाओगे। लेकिन कर्म भिन्न-भिन्न हैं, परिधि भिन्न-भिन्न हैं। कृष्ण बहुत बार स्वधर्म को स्वकर्म के अर्थ में भी प्रयुक्त करते हैं, इससे तुम्हें भ्रांति हो सकती है। भ्रांति का कोई कारण नहीं है। समझ लेना चाहिए।
शूद्र को वे कहते हैं कि तू अपने स्वकर्म में रहकर ही उपलब्ध हो सकता है। ब्राह्मण को कहते हैं, तू अपने स्वकर्म में रहकर ही उपलब्ध हो सकता है। बोलचाल की भाषा में इसी को स्वधर्म कहा जाता है। कामचलाऊ है; बहुत पारिभाषिक नहीं है। कहना चाहिए, स्वकर्म।
कृष्ण का कहना यह है कि जिस कर्म में तुम पैदा हुए हो, जिस परिवार में, जिस वर्ण में तुम पैदा हुए हो, उसमें पैदा होना भी अकारण तो नहीं हो सकता। तुमने चाहा होगा, तुमने कमाया होगा, तुमने पिछले जन्मों में उस तरह की वासना की होगी। अब तुम पैदा हो गए हो।

क्योंकि जन्म भी अकारण नहीं है। वह भी तुम्हीं ने चुना है। वह भी तुम्हारा ही चुनाव है। कोई शूद्र के घर में अकारण नहीं आ जाता, न कोई ब्राह्मण के घर में अकारण आ जाता है। अकारण इस जगत में कुछ होता ही नहीं, हो भी नहीं सकता।
जन्मों-जन्मों की वासना, आकांक्षा, अभीप्सा तुम्हें लाती है। तुम पुरुष बन गए हो, स्त्री बन गए हो, वह तुम्हारी जन्मों-जन्मों की आकांक्षाओं का परिणाम है। तुमने उसे संजोया है, बीज की तरह बोया है। अब तुम फसल काट रहे हो। हालांकि जब तुमने बीज बोए थे, वह तुम्हें सारी स्मृतियां भूल गईं। अब जब तुम फसल काट रहे हो, तुम्हें याद भी नहीं आता कि ये बीज तुमने कभी बोए थे! और आज तुम यह भी सोचोगे कि कैसे कोई आदमी शूद्र होना चाहेगा!
होना चाहने का सवाल नहीं है। अब तुम थोड़ा समझने की कोशिश करो। तुम चाहे शूद्र न भी होना चाहते हो, लेकिन जिस ढंग से तुम जीते हो, उस ढंग से तुम कुछ अर्जित कर रहे हो।
एक आदमी है, जो सिर्फ खाता है, पीता है, सोता है। जिसका जीवन तमस से भरा है। वह ब्राह्मण हो इस जन्म में; मगर जिसका जीवन केवल खाने-पीने, सोने का जीवन है, यह आदमी अगले जन्म में शूद्र होने की तैयारी कर रहा है। प्रकृति इसे शूद्र की तरफ भेज देगी। क्योंकि जो यह आदतें बना रहा है, वे शूद्र की आदतें हैं।
और प्रकृति तो सदा तुम्हारे साथ सहयोग करने को राजी है। तुम्हें अगर इसमें ही सुख मिल रहा है, तो तुम्हें शूद्र ही बना देना अच्छा है। असल में ब्राह्मण घर में रहकर और इस तरह का व्यवहार करके तुम्हें दुख ही मिलेगा। क्षत्रिय घर में रहोगे और तलवार उठाना न जानोगे, तो कष्ट ही पाओगे। क्षत्रिय घर में रहोगे और वेद, उपनिषद पढ़कर उन्हीं में डूबे रहोगे, तो बड़ी लोकनिंदा होगी। वहां तलवार हाथ में उठाने की क्षमता चाहिए ही; वह संघर्ष का जगत है।
लेकिन अगर तुम वेद, उपनिषद में डूबे रहे, तो तुम अगले जन्म में ब्राह्मण हो जाओगे। तुम्हारी जीवन-यात्रा उस तरफ मुड़ जाएगी। तुम ऐसे घर को खोज लोगे, जहां तुम्हारी आकांक्षाओं की सहज तृप्ति हो सके।
कोई ब्राह्मण है और तलवार लिए घूमता है! उचित होगा कि यह क्षत्रिय घर में पैदा हो, ताकि पहले ही क्षण से इसे तलवार की छाया में ही बढ़ती मिले। उसी तरह का वातावरण हो, उसी तरह के संस्कार हों, उसी तरह की हवा हो, जो इसे सहारा दे, ताकि इसके भीतर जो तलवार लेकर घूमने का नशा है, वह पूरा हो जाए। जो भी घटता है, अकारण नहीं घटता।
तो कृष्ण कहते हैं, अगर तुम शूद्र घर में पैदा हुए हो, तो तुमने बहुत बार चाहा। अब पैदा हो गए; अब परेशान हो रहे हो। अब इस जीवन को परेशानी में मत बिताओ और इस जीवन में अब नाहक दूसरे वर्ण में और दूसरे कर्म के जगत में प्रवेश करने की चेष्टा मत करो। उससे समय व्यय होगा, शक्ति व्यय होगी, जीवन खराब होगा।
ज्यादा उचित यही है कि जो कर्म तुम्हें मिल गया है, जो पात्र होने की तुमने अब तक कमाई की थी, वह तुम्हें मिल गया है; अभिनय में वही तुम्हें मिल गया है, अब तुम उसे पूरा करते रहो। और उसको पूरा करते हुए ही तुम परमात्मा को साधने में लग जाओ। यह ज्यादा आसान होगा।
अपने कर्म को करते हुए अगर तुम ध्यान में उतरने लगो, तो तुम यहीं से मुक्त हो जाओगे। कोई वर्ण बदलने की जरूरत नहीं है। कोई देह बदलने की जरूरत नहीं है। कुछ ऊपर की परिधि बदलने की जरूरत नहीं है। जो जहां है, वहीं से अपने केंद्र में सरक सकता है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, कर्म को बदलने के लिए बहुत चिंता मत करो; स्वकर्म में ही जीओ, ताकि तुम अपने स्वधर्म को उपलब्ध हो सको। लेकिन स्वकर्म में जीते हुए स्वधर्म को उपलब्ध करने की चेष्टा, यत्न चलता रहे, होश सधा रहे। सूत्र खोए न।
नहीं तो तुम अभी शूद्र हो, ब्राह्मण बनने की कोशिश कर रहे हो। क्षत्रिय हो, शूद्र बनने की कोशिश कर रहे हो। कोई ब्राह्मण है, वह क्षत्रिय बनने की कोशिश कर रहा है। यह जीवन यूं ही खो जाएगा।

और जहां तुम पैदा हुए हो, जहां तुम्हें जन्म से एक हवा मिली है, उस हवा में जीवन को बिता लेना सबसे ज्यादा सुगम है; उसके लिए तुम तैयार हो। इसलिए व्यर्थ उपद्रव खड़ा मत करो। जीवन ऐसा बिता दो बाहर, जैसा मिला है; और भीतर उसकी खोज कर लो, जो तुम्हारे भीतर छिपा है।
स्वकर्म में जीते हुए स्वधर्म को पाना आसान है। स्वकर्म को बदलकर स्वधर्म को पाना मुश्किल हो जाएगा; क्योंकि एक नया उपद्रव तुम्हारे जीवन में स्वकर्म को बदलने का हो जाएगा। और यह कठिन है।
यह ऐसे ही है, जैसे एक आदमी डाक्टर की तरह तो शिक्षित हुआ। जब वह सारी शिक्षा लेकर एमड़ी. होकर घर वापस लौटा, तब उसको ख्याल चढ़ा कि संगीतज्ञ हो जाए! अब ये इतने दिन बेकार गए। यह आधा जीवन जो डाक्टर होने में गंवाया; वह गया। उसका कोई सार न हुआ। अब वह संगीतज्ञ होने की धुन में लग गया।
अब संगीतज्ञ की शिक्षण-व्यवस्था बिल्कुल अलग है, चिकित्सक की शिक्षण-व्यवस्था बिल्कुल अलग है। उनमें कोई तालमेल नहीं है। इसे अ ब स से शुरू करना पड़ेगा। और आधी उम्र तो गई और अब यह फिर अ ब स से शुरू करता है। और अ ब स से शुरू करके जब यह मरने के करीब होगा, तब कहीं यह थोड़ी-बहुत संगीत की कुशलता को उपलब्ध हो पाएगा। तब भी यह तृप्त न जा सकेगा इस दुनिया से। अतृप्ति बनी रह जाएगी।
उचित तो यही था कि अगर इसे स्वधर्म को खोजना हो, तो स्वकर्म को करते- करते चुपचाप खोज ले; क्योंकि स्वकर्म सुविधापूर्ण है।
स्वधर्म तो तुम्हारा भी वही है, जो मेरा है। सबका वही है। क्योंकि स्व
की गहराई पर तो एक का ही वास है। लेकिन परिधियां सब की अलग हैं, देहें सब की अलग हैं, आत्मा एक है। तुम्हारे भीतर का शून्य तो एक है; लेकिन उस शून्य को ढांके हुए वस्त्र अलग-अलग हैं। उनके रंग अलग, रूप अलग, ढंग अलग।
कोई जरूरत नहीं है कि तुम वस्त्र बदलो। तुम्हारे वस्त्रों में ही घटना घट जाएगी।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, कभी तुम्हें ऐसा भी लगे कि दूसरे का कर्म अपने
से सुविधापूर्ण है, तो भी तुम झंझट में मत पड़ना। दूर के ढोल सुहावने मालूम होते हैं। जब तुम पास जाओगे, तब कठिनाइयां तुम्हें मालूम पड़ेंगी। जिसके तुम पास होते हो, उसकी कठिनाइयां दिखाई पड़ती हैं। जिसके तुम दूर होते हो, उसके सुख दिखाई पड़ते हैं।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, अपने ही कर्म में जीते हुए अपने धर्म को पा लेना। इसको गहरे से समझ लें। क्योंकि हमारा प्रयोजन कर्म को साधना नहीं है, हमारा प्रयोजन मूलतः धर्म को साधना है। तो इन व्यर्थ की बातों में समय मत गंवाना; जितना समय इनमें जाएगा, वह व्यर्थ गया। उतने समय को तुम जीवन-संपदा की खोज करने में लगा सकते थे।
तो कोई हर्ज नहीं, जूता बनाते हो, जूते बनाते रहना। कुछ तो करना ही होगा। चाहे जूते बनाओ, चाहे सोने के आभूषण बनाओ; कुछ तो करना ही होगा। और अगर जूते बनाने वाले घर में पैदा हुए हो, तो कुछ हर्ज नहीं है। ज्यादा कुशल हो। बचपन से ही जाना है। वही घटता रहा है चारों तरफ। वह तुम्हारे खून में समा गई है कला। वह जो सोनी के घर पैदा हुआ है, उसके खून में समा गई है कला कि वह सोने को गलाने में, ढालने में कुशल हो गया है।
हमने इस देश में एक फिक्र की थी कि जहां तक बने, बाहर का जीवन ज्यादा समय न ले और ज्यादा शक्ति न ले। इसलिए हमने व्यवस्थित कर दिया था वर्णों को, कि अपने-अपने वर्ण में व्यक्ति चुपचाप काम करता रहे।
शूद्र के लिए हमने कहा कि वह जो भी करे, सेवा की भांति करे। बस, उससे जीवन-यापन पूरा हो जाता है, इतना काफी है। शेष जो बच जाए समय, वह भीतर के लिए लीन होने में लगा दे।
वैश्य को हमने कहा है, वह सत्य की तरह व्यवसाय करता रहे। व्यवसाय ही करे, सिर्फ सत्य को उसमें जोड़ दे। जैसे शूद्र काम करे, लेकिन सेवा को जोड़ दे। उसके लिए सेवा ही स्वधर्म तक जाने का मार्ग बन जाएगी। वैश्य को सत्य व्यवहार ही स्वयं तक जाने का मार्ग बन जाएगा।
क्षत्रिय को अपलायन; भागे न, पीठ न दिखाए जीवन की समस्याओं से; वही उसके लिए है। जीवन के घने संघर्ष में बिना भय के खड़ा रहे, अभय। वही उसके लिए मार्ग बन जाएगा।

ब्राह्मण के लिए? वह सिर्फ ब्राह्मण नाम-मात्र को न रहे, ब्रह्म का उदघोष! सोते, उठते-बैठते, ब्रह्म का भाव, सुरति बनी रहे, स्मृति बनी रहे। फिर करता रहे, जो उसे करना है। जो करने योग्य है, कर्तव्य है, वह करे। लेकिन भीतर वह साधे रहे। ब्राह्मण ब्रह्म की स्मृति से पहुंच जाता है वहीं, जहां शूद्र सेवा के भाव से पहुंचता है।
इसलिए एक बहुत मजे की बात है। दुनिया में इतने धर्म पैदा हुए हैं, इन सभी धर्मों का अलग-अलग बातों पर जोर है। और अगर तुम गौर करोगे, तो तुम पाओगे कि वह जोर इसी कारण है।
जैसे कि जीसस का जोर सेवा पर है। जीसस शूद्र घर से आए हैं, बढ़ई के लड़के हैं; जोर सेवा पर है।
हमने बहुत पहले यह खोज लिया था कि शूद्र के जीवन में सेवा पर जोर होगा। इसलिए ईसाइयत खूब फैली; दुनिया का कोई धर्म इतना नहीं फैला। आधी दुनिया आज ईसाई है। स्वाभाविक है।
तुम यह मत समझना कि वह ईसाई मिशनरी लोगों को जबरदस्ती ईसाई बना रहा है इसलिए; स्वाभाविक है। क्योंकि शूद्र दुनिया में बड़ी से बड़ी जमात है।
सभी शूद्र की तरह पैदा होते हैं। इसलिए सेवा की बात सभी को जम सकती है। और जो लोग इस मुल्क में भी शूद्र के वर्ग से आए हैं, उनका जोर भी सेवा पर है।
विवेकानंद; वे शूद्र हैं, कायस्थ घर से आए हैं। उनका जोर सेवा पर है।
इसलिए रामकृष्ण मिशन पूरा का पूरा सेवा में लग गया, वह विवेकानंद की वजह से।
रामकृष्ण मिशन रामकृष्ण मिशन नाम को ही है; वह विवेकानंद मिशन है।
विवेकानंद ने ही बनाई सारी जीवन-दृष्टि। रामकृष्ण को तो कभी ख्याल भी नहीं था यह सेवा और इस सबका! लेकिन विवेकानंद को है। तो पूरा मिशन अस्पताल खोलता है, स्कूल चलाता है, बीमारों के हाथ-पैर दबाता है, इलाज करता है।
सेवा में संलग्न हो गया है।
जो-जो धर्म जहां-जहां से आए हैं, उस स्रोत को अपने साथ लाएंगे। यह बिल्कुल स्वाभाविक है।
वैश्यों में जो मनीषी पैदा हुए हैं, जैसे श्रीमद राजचंद्र, तो सारा जोर सत्य पर है, सत्य व्यवहार, प्रामाणिकता। वह वैश्य की जीवन-धारा का अंग है। वही उसके लिए सबसे महत्वपूर्ण मालूम होगा।
जो धर्म ब्राह्मणों से अनुस्यूत हुए हैं, उनका सारा जोर प्रभु-स्मरण, ब्रह्म-स्मरण, उस पर ही है।
क्षत्रियों से आने वाले जितने धर्म हैं, जैसे जैन; उनका सारा जोर संघर्ष पर है, संकल्प पर है, लड़ने पर है। महावीर सोच ही नहीं सकते कि समर्पण, क्षत्रिय सोच नहीं सकता, वह भाषा उसकी नहीं है। किस परमात्मा के चरणों में समर्पण? कोई परमात्मा नहीं है। आत्मा ही परमात्मा है। इसलिए कोई समर्पण नहीं। गहन संकल्प। कहीं कोई भक्ति, भाव की गुंजाइश नहीं है। शुद्ध विचार! और विचार से पलायन न करना, भागना नहीं। विचार को ही उसकी परम शुद्धि तक ले जाना और संघर्ष को उसके आखिरी रूप में प्रकट करना; अपने से ही संघर्ष! ताकि जो-जो गलत है, वह काट डाला जाए।
महावीर योद्धा हैं, इसीलिए तो उनको नाम महावीर का दिया है। उनका नाम वर्धमान था; वह हमने बदल दिया। क्योंकि वह नाम जमा नहीं फिर। उनकी सारी जीवन-दृष्टि योद्धा की है, संघर्षशील की है, अपलायनवादी की है, लड़ने की है। लड़कर ही उन्होंने पाया है।
ब्राह्मण की सारी दृष्टि समर्पण की है; उसके चरणों में सब छोड़ देने की है। उससे भाव उठा है, भक्ति उठी है, ब्रह्म-स्मरण उठा है।
पर सभी पहुंचा देते हैं वहीं। स्वधर्म तो एक है; लेकिन स्वकर्म अनेक हैं। और तुम अपने स्वकर्म से भागने की व्यर्थ चिंता मत करना। उससे कुछ सार नहीं है। उससे तो जन्मों-जन्मों भागते रहे हो।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, अपना स्वकर्म अगर थोड़ा पीड़ादायी भी मालूम पड़े
और दूसरे का थोड़ा सुखद भी मालूम पड़े, तो भी उसे मत चुनना। अपने पीड़ादायी स्वकर्म को ही करते-करते पाना हो जाता है। दूसरे के स्वकर्म को चुनने में

उपद्रव है। वह भयावह है। स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः। वह बहुत भयभीत करने वाला है, उससे बचना।
लेकिन यहां परधर्म और स्वधर्म का उपयोग वे परकर्म और स्वकर्म के लिए
कर रहे हैं।

चौथा प्रश्नः तीर्थंकर या अवतार होने के लिए क्षत्रिय होना क्यों जरूरी बन गया?

कारण हैं, कर्म की व्यवस्था में ही कारण हैं।
जैसा मैंने कहा कि तीन गुण हैं, तमस, रजस, सत्व; और तीन ही मौलिक वर्ण हैं, शूद्र, क्षत्रिय, ब्राह्मण। वैश्य सभी का मिश्रण है। वह एक समझौता है, चौराहा है, भीड़ है। वह वस्तुतः वर्ण नहीं है, बल्कि सभी वर्णों का संगम है। ये जो तीन वर्ण हैं, इन तीनों की तीन अलग जीवन-धाराएं हैं।
शूद्र आत्यंतिक रूप से बहिर्मुखी है; एक्सट्रोवर्ट जिसको जुंग ने कहा है। उसकी दृष्टि बाहर देखती है, भीतर नहीं। इसीलिए तो सेवा ही उसके लिए धर्म हो सकता है। दूसरे को ही वह देख सकता है। या तो दूसरे को लूटे या दूसरे की सेवा करे। लूटे तो अधर्म हो जाता है; सेवा करे तो धर्म हो जाता है। लेकिन नजर उसकी दूसरे पर है। शूद्र है एक्सट्रोवर्ट, बहिर्मुखी, बाहर ही उसकी आंख खुलती है।
ब्राह्मण है अंतर्मुखी; उसकी बाहर आंख नहीं खुलती, वह है इंट्रोवर्ट। इसलिए स्मरण, प्रभु का स्मरण, भाव, ध्यान, समाधि, ये उसके लिए सार्थक हैं। ब्राह्मण से तुम सेवा की बात ही कहो, तो उसके समझ में नहीं आती कि क्या बात कर रहे हो! किसकी सेवा करनी?
शूद्र से कहो कि भाव करो, ध्यान करो; उसे समझ में नहीं आता, क्या ध्यान करना है! कैसा ध्यान करना है! ध्यान का मतलब ही उसे होता है, बाहर कुछ आलंबन चाहिए।
ब्राह्मण भीतर की तरफ जाता है; उसकी अंतर्धारा बह रही है। वह उसकी सारी जीवन-ऊर्जा भीतर की तरफ बहती है। शूद्र की बाहर की तरफ बहती है। क्षत्रिय द्वार पर खड़ा है।
ऐसा समझो कि एक ब्राह्मण है, वह आंख बंद किए बैठा है भीतर के भाव में लीन। इसलिए ब्राह्मणों ने जितनी ध्यान की विधियां खोजी हैं, उन सबमें आंखें बंद, इंद्रियों को बंद करो, इंद्रियों का नियमन करो, सब इंद्रियों के द्वार बंद कर दो और भीतर डूब जाओ; अपने में खो जाओ; वहीं सब पाने को है। शूद्र की आंख पूरी खुली हुई है। उसने अगर कभी धर्म भी पाया है, तो किसी
के चरणों की सेवा करते हुए पाया है, वे चाहे असली चरण हों, चाहे परमात्मा की मूर्ति के चरण हों। वह किसी मूर्ति के मुख को देखकर आनंदित हुआ है। उसने परमात्मा के मुखारविंद को देखा है, उसके चरणों को छुआ है, नाचा है। पर उसकी आंख खुली रही है। सेवा से ही उसने जाना है, दूसरे से ही उसने जाना है। क्षत्रिय मध्य में खड़ा है। उसकी आधी आंख खुली है, आधी बंद है। वह द्वार पर है। वह जरा आंख बंद करे, तो भीतर देख सकता है; जरा आंख खोले, तो बाहर देख सकता है। वह दोनों के बीच सेतु है, अर्ध-बहिर्मुख, अर्ध-अंतर्मुख है।
अब यह थोड़ी समझने की बात है कि तीर्थंकर होने के लिए या अवतार होने के लिए क्षत्रिय ही ठीक हो सकता है। क्योंकि जो बहिर्मुख है, वह स्वयं को उपलब्ध ही नहीं होता; वह दूसरे के चरणों में समर्पित हो जाता है। इसलिए उससे कभी जीवन-साधना का शास्त्र निर्मित नहीं हो सकता। जो अंतर्मुख है, वह अपने में ही डूब जाता है। वह इतना गहरा डूब जाता है कि उससे भी जीवन का शास्त्र निर्मित नहीं होता। वह इतनी भी चिंता नहीं करता कि दूसरे को समझाए, कि दूसरे को उठाए, कि सहारा दे।
एक अपने में खो जाता है, एक दूसरों में खो जाता है। जो मध्य में खड़ा है,
वह अपने में भी डुबकी लेता है और बाहर भी डुबकी लेता है। वह अपने को भी जानता है और दूसरों को भी जानता है। और जब उसके जीवन में फूल खिलते हैं, तो उसकी सुगंध बाहर जानी शुरू होती है। और जब उसके जीवन में ज्ञान का प्रकाश होता है, तो वह बांटना भी चाहता है। वह सिर्फ दीए को भीतर छाती में छिपाकर

नहीं जीता। वह बांटना चाहता है। वह अर्ध-बहिर्मुखी है। इसलिए वह गुरु बन सकता है, तीर्थंकर बन सकता है, अवतार बन सकता है।

अवतार या तीर्थंकर का अर्थ है, जिसने स्वयं पा लिया और अब जो हजारों के लिए पाने का मार्ग बने। इसलिए जैन कहते हैं कि अवतार न तो ब्राह्मण के घर से आ सकता है, न शूद्र के घर से आ सकता है। इसमें बड़ा अर्थ है, इसमें बड़ा मनोविज्ञान है। यह बात बड़ी गहरी है और साफ है।

अवतार बनने के लिए या तीर्थंकर बनने के लिए दोनों बातें चाहिए, अपने में गहरी डुबकी भी चाहिए और दूसरे में रस न खो जाए। तो महावीर और बुद्ध दोनों कहते हैं, प्रज्ञा हो और करुणा हो, तभी कोई तीर्थंकर हो सकता है।

अगर सिर्फ प्रज्ञा हो, बोध हो जाए और करुणा पैदा न हो, तो वह आदमी खुद लीन हो जाएगा परमात्मा में, लेकिन उसके द्वारा कोई घाट न बनेगा, नाव न बनेगी, जिस पर बैठकर दूसरे लोग यात्रा करें। अगर प्रज्ञा के साथ-साथ करुणा का जन्म हो, मैंने जान लिया, दूसरों को भी जनाऊं, ऐसा भाव भी जन्मे, तो ही वह आदमी दूसरों के काम आ सकेगा।

तो जो भीतर डूब गया, वह तो अपनी डोंगी लेकर पार हो जाएगा। वह कोई बड़ी भारी नाव न बनाएगा, जिसमें हजारों लोग जा सकें। वह तीर्थंकर न हो सकेगा। या जो दूसरों की सेवा में डूब गया, वह सेवा के द्वारा पहुंच जाएगा, लेकिन उसके भीतर के जीवन का शास्त्र तो कभी उसे प्रकट न होगा। वह उसके भीतर की भूगोल से तो परिचित न होगा कि दूसरों को भी नक्शा दे सके।

इसलिए शूद्र तीर्थंकर नहीं हो सकता; खुद ज्ञान को उपलब्ध हो सकता है। ब्राह्मण तीर्थंकर नहीं हो सकता, खुद ज्ञान को उपलब्ध हो सकता है। क्षत्रिय ही तीर्थंकर हो सकता है, जो द्वार पर खड़ा है; जो एक झलक भीतर की लेता है और एक झलक बाहर की लेता है; जो भीतर से खजाना लाता है और बाहर लुटाता है; इस कारण।

पांचवां प्रश्नः आपने कहा है कि आनंद का कोई अनुभव नहीं होता। क्या संतों के गीत, बुद्ध पुरुषों के वचन, सदगुरुओं की वाणी आनंद-अनुभव से नहीं आती?

नहीं; आनंद से आती है, आनंद-अनुभव से नहीं आती। फर्क बारीक है, लेकिन महत्वपूर्ण है।

आनंद-अनुभव का तो यह अर्थ हुआ कि तुम अलग हो और अनुभव अलग है। प्यास लगी, तुमने जल पीया। कंठ जलता था, तब एक अनुभव हो रहा था पीड़ा का, प्यास का। लेकिन तुम वह पीड़ा न थे। कंठ में पीड़ा थी, तुम जानने वाले थे। फिर जल पीया, ठंडी धार, शीतल धार जल की भीतर गई, कंठ तृप्त हुआ। अब तृप्ति का अनुभव हो रहा है कंठ में; अब भी तुम देखने वाले हो।

अनुभव तो अलग होता है, देखने वाला अलग होता है। तुम साक्षी हो। आनंद का कोई साक्षी नहीं होता। क्योंकि जिसके भी तुम साक्षी हो, वह संसार।

आनंद हमने परमात्मा का स्वभाव कहा है। हमने ऐसा नहीं कहा कि परमात्मा आनंदित है। हमने कहा, परमात्मा आनंद है, सच्चिदानंद है। यह उसका स्वभाव है।

जब कोई व्यक्ति आनंद को उपलब्ध होता है, तो ऐसा नहीं जैसा कि और चीजों को उपलब्ध होता है, ऐसे आनंद भी हाथ में आ गया, नहीं। अचानक पता चलता है कि मैं आनंद हूं। तब आनंद का अनुभव नहीं होता, तुम आनंद ही होते हो।

जिसका भी अनुभव होता है, वह तो पराया है। वह तो आज है, कल छूट जाएगा। वह तो पानी का बुदबुदा है, बनेगा, मिटेगा; लहर आई, गई। उसका तो ज्वार भी होगा, भाटा भी होगा।

आनंद आता है, तो फिर जाता नहीं। आनंद होता है, तो फिर नहीं नहीं होता। आनंद तुम्हारा स्वभाव है, तुम उससे रत्तीभर भी फासले पर नहीं होते। तुम उसे देखते नहीं, तुम उसका अनुभव नहीं करते; तुम वही हो जाते हो। तुममें और उसमें इंचभर का फासला नहीं होता।

इसलिए मैं कहता हूं कि आनंद का अनुभव नहीं होता। दुख का अनुभव होता है; सुख का अनुभव होता है; आनंद का अनुभव नहीं होता। इसलिए सुख-दुख दोनों ही संसार के ही सिक्के हैं। आनंद भर परमार्थ है।

बुद्ध पुरुषों की वाणी आनंद के अनुभव से नहीं पैदा होती, आनंद से ही पैदा होती है; सीधे आनंद से ही बहती है। बुद्ध पुरुष तो मिट ही गए; आनंद ही बचा है।
अगर बुद्ध पुरुष भी बचा है और आनंद, तो अभी बुद्ध पुरुष पैदा ही नहीं हुआ और आनंद भी पैदा नहीं हुआ। जहां बुद्ध पुरुष स्वयं तो खो जाता है और आनंद ही रह जाता है। कोई नहीं रहता भीतर जानने वाला कि आनंद हो रहा है, आनंद ही बस होता है, अकेला आनंद ही होता है; फिर जो बहता है! फिर वह शांति में बहे, मौन में बहे, वाणी में बहे, मीरा का गीत बन जाए, चैतन्य का नृत्य बने, कुछ कहा नहीं जा सकता।
ये सब कर्म हैं, ये स्वकर्म हैं; ये अलग-अलग हैं। मीरा नाचेगी, बुद्ध चुप होकर बैठ जाएंगे। चैतन्य मदमस्त हो जाएंगे, गांव-गांव डोलेंगे। महावीर नग्न खड़े हो जाएंगे, किसी से बोलेंगे भी नहीं। ये सब के अलग-अलग ढंग हैं; जो घटा है, वह एक है।
किसी को मौन कर जाता है, किसी को मुखर कर जाता है; किसी को नचा देता है, किसी को बिल्कुल मौन पत्थर की मूर्ति बना देता है। पर जो घटा है, वह एक है। परिधि अलग-अलग हैं।

छठवां प्रश्नः कहा जाता है कि रावण भी ब्रह्मज्ञानी था। क्या रावण
भी रावण उसकी मर्जी से नहीं था?
क्या रामलीला सच में ही राम की लीला थी?

निश्चित ही, रावण ब्रह्मज्ञानी था। और रावण के साथ बहुत अनाचार हुआ है। और दक्षिण में जो आज रावण के प्रति फिर से समादर का भाव पैदा हो रहा है, वह अगर ठीक रास्ता ले ले, तो अतीत में हमने जो भूल की है, उसका सुधार हो सकता है।
लेकिन वह भी गलत रास्ता लेता मालूम पड़ रहा है दक्षिण का आंदोलन। वे रावण को तो आदर देना शुरू कर रहे हैं, राम को अनादर देना शुरू कर रहे हैं। आदमी की मूढ़ता का अंत नहीं है; वह अतियों पर डोलता है। वह कभी संतुलित
तो हो ही नहीं सकता।
यहां तुम रावण को जलाते रहे हो, वहां अब उन्होंने राम को जलाना शुरू किया है। तुमने एक भूल की थी, अब वे दूसरी भूल कर रहे हैं।
रावण ब्रह्मज्ञानी था। यह भी परमात्मा की मर्जी थी कि वह यह पार्ट अदा करे। उसने यह भली तरह अदा किया। और कहते हैं, जब राम के बाण से वह मरा, तो उसने कहा कि मेरी जन्मों-जन्मों की आकांक्षा पूरी हुई। राम के हाथों मारा जाऊं, इससे बड़ी और कोई आकांक्षा हो भी नहीं सकती। क्योंकि जो राम के हाथ मारा गया, वह सीधा मोक्ष चला जाता है। गुरु के हाथ जो मारा गया, वह और कहां जाएगा!
और जैसे पांडवों को कहा है कृष्ण ने कि मरते हुए भीष्म से जाकर धर्म
की शिक्षा ले लो, वैसे ही राम ने लक्ष्मण को भेजा है रावण के पास कि वह मर न जाए, वह परम ज्ञानी है; उससे कुछ ज्ञान के सूत्र ले आ। उस बहती गंगा से थोड़ा तू भी पानी पी ले।
लेकिन कठिनाई क्या है? कठिनाई हमारी यह है कि हमारी समझ चुनाव की है। अगर हम राम को चुनते हैं, तो रावण दुश्मन हो गया। अगर हम रावण को चुनते हैं, तो राम दुश्मन हो गए। और दोनों को तो हम चुन नहीं सकते। क्योंकि हमको लगता है, दोनों तो बड़े विरोधी हैं, इनको हम कैसे चुनें!
और जो दोनों को चुन ले, वही रामलीला का सार समझा। क्योंकि रामलीला अकेली राम की लीला नहीं है, रावण के बिना हो भी नहीं सकती। थोड़ा रावण को हटा लो रामलीला से, फिर रामलीला बिल्कुल ठप्प हो जाएगी, वहीं गिर जाएगी। सब सहारे उखड़ जाएंगे।
राम खड़े न हो सकेंगे बिना रावण के। राम को रावण का सहारा है। प्रकाश
हो नहीं सकता बिना अंधेरे के। अंधेरा प्रकाश को बड़ा सहारा है। जीवन हो नहीं सकता बिना मृत्यु के। मृत्यु के हाथों पर ही जीवन टिका है। जीवन विपरीत में से चल रहा है।

राम और रावण, मृत्यु और जीवन, दोनों विरोध वस्तुतः विरोधी नहीं हैं, सहयोगी हैं। और जिसने ऐसा देखा, उसी ने समझा कि रामलीला का अर्थ क्या है। तब विरोध नाटक रह जाता है। तब भीतर कोई वैमनस्य नहीं है। न तो राम के मन में कोई वैमनस्य है, न रावण के मन में कोई वैमनस्य है। और इसीलिए तो हमने इस कथा को धार्मिक कहा है। अगर वैमनस्य हो, तो कथा नहीं रही, इतिहास हो गया।
इस फर्क को भी ठीक से समझ लो। पुराण और इतिहास का यही फर्क है। इतिहास साधारण आदमियों की जीवन घटनाएं हैं। वहां संघर्ष है, विरोध है, वैमनस्य है, दुश्मनी है। पुराण! पुराण नाटक है, लीला है। वहां वास्तविक नहीं है वैमनस्य; दिखावा है, खेल है। जो मिला है अभिनय, उसे पूरा करना है।
कथा यह है कि वाल्मीकि ने राम के होने के पहले ही रामायण लिखी। अब जब लिख ही दी थी, तो फिर राम को पूरा करना पड़ा। कर भी क्या सकते थे। जब वाल्मीकि जैसा आदमी लिख दे, तो तुम करोगे क्या! फिर उसको पूरा करना ही पड़ा। यह बड़ी मीठी बात है। द्रष्टा कह देते हैं, फिर उसे पूरा करना पड़ता है। इसका अर्थ कुल इतना ही है, जैसे कि नाटक की कथा तो पहले ही लिखी होती है, फिर कथा को पूरा करते हैं नाटक में। नाटक में कथा पैदा नहीं होती। कथा पहले पैदा होती है, फिर कथा के अनुसार नाटक चलता है। क्या किसको कहना है, सब तय होता है।
जीवन का सारा खेल तय है। क्या होना है, तय है। तुम नाहक ही अपना बोझ उठाए चल रहे हो। अगर तुम समझ लो कि सिर्फ नाटक है जीवन, तो तुम्हारा जीवन रामलीला हो गया, तुम पुराण-पुरुष हो गए, फिर तुम्हारा इतिहास से कोई नाता न रहा। फिर तुम इस भ्रांति में नहीं हो कि तुम कर रहे हो। फिर तुम जानते हो कि जो उसने कहा है, हो रहा है। हम उसकी मर्जी पूरी कर रहे हैं। अगर वह रावण बनने को कहे, तो ठीक।
रावण को तुम मार तो नहीं डालते! जो आदमी रावण का पार्ट करता है रामलीला में, उसको तुम मार तो नहीं डालते कि इसने रावण का पार्ट किया है, इसको मार डालो। जैसे ही मंच के बाहर आया, बात खतम हो गई। अगर उसने पार्ट अच्छा किया, तो उसे भी तगमे देते हो।
असली सवाल पार्ट अच्छा करने का है। राम का हो कि रावण का, यह बात अर्थपूर्ण नहीं है। ढंग से पूरा किया जाए, कुशलता से पूरा किया जाए। अभिनय पूरा-पूरा हो, तो तुम पुराण-पुरुष हो गए। लड़ो बिना वैमनस्य के, संघर्ष करो बिना किसी अपने मन के; जहां जीवन ले जाए बहो। तब तुम्हारे जीवन में लीला आ गई।
लीला आते ही निर्भार हो जाता है मन। लीला आते ही चित्त की सब उलझनें
कट जाती हैं। जब खेल ही है, तो चिंता क्या रही! फिर एक सपना हो जाता है। इसी अर्थ में हमने संसार को माया कहा है। माया का अर्थ इतना ही है कि तुम माया की तरह इसे लेना। अगर तुम इसे माया की तरह ले सको, तो भीतर तुम ब्रह्म को खोज लोगे। अगर तुमने इसे सत्य की तरह लिया, तो तुम भीतर के ब्रह्म को गंवा दोगे।

अब सूत्रः
एवं इस अपने-अपने स्वाभाविक कर्म में लगा हुआ मनुष्य भगवत्प्राप्तिरूप परम सिद्धि को प्राप्त होता है। परंतु जिस प्रकार से अपने स्वाभाविक कर्म में लगा हुआ मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त होता है, उस विधि को तू मेरे से सुन।
हे अर्जुन, जिस परमात्मा से सर्व भूतों की उत्पत्ति हुई है और जिससे
यह सर्व जगत व्याप्त है, उस परमेश्वर को अपने स्वाभाविक कर्म द्वारा पूजकर मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त होता है।
तुम्हारी जीवन-धारा ही तुम्हारी पूजा हो। उससे अन्यथा पूजा की कोई भी जरूरत नहीं है। तुम जो कर रहे हो, उसके ही फूल तुम उसके चरणों में चढ़ा दो। किन्हीं और फूलों को तोड़कर लाने की जरूरत नहीं है। तुम्हारा कर्म ही तुम्हारा अर्ध्य, तुम्हारा कर्म ही तुम्हारी अर्चना हो जाए।

हे अर्जुन, जिस परमात्मा से सर्व भूतों की उत्पत्ति हुई है और जिससे
यह सर्व जगत व्याप्त है, उस परमेश्वर को अपने स्वाभाविक कर्म द्वारा पूजकर मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त होता है।
इसलिए कर्मों को बदलने की व्यर्थ की झंझट में मत पड़ना। जो करते हो, उस करने को ही उसके चरणों में चढ़ा देना। कह देना कि अब तू ही कर; मैं तेरा उपकरण हुआ। अब मेरे हाथ में तेरे हाथ हों, मेरी आंख में तेरी आंख हो, मेरे हृदय में तू धड़क।
वही धड़क रहा है। तुमने नाहक की नासमझी कर ली है। तुम बीच में अकारण आ
गए हो।
इसलिए अच्छी प्रकार आचरण किए हुए दूसरे के धर्म से गुणरहित भी अपना धर्म श्रेष्ठ है, क्योंकि स्वभाव से नियत किए हुए स्वधर्मरूप कर्म को करता हुआ मनुष्य पाप को नहीं प्राप्त होता।
और कृष्ण कहते हैं, दूर के ढोल सुहावने हैं, उनसे बचना।
यह सदा होता है कि दूसरा तुम्हें ज्यादा ठीक स्थिति में मालूम पड़ता है। ऐसा है नहीं कि वह ठीक स्थिति में है; मालूम पड़ता है।
उसके कारण हैं। क्योंकि दूसरे के भीतर को तो तुम देख नहीं पाते, न उसकी पीड़ा को, न उसके दंश को, न उसके नर्क को। तुम देख पाते हो उसके ऊपर के व्यवहार को, उसकी परिधि को, उसके आवरण को।
मुस्कुराता हुआ देखते हो तुम अपने पड़ोसी को, तुम सोचते हो, पता नहीं कितने आनंद में है! वह भी तुम्हें मुस्कुराता हुआ देखता है बाहर खड़ा हुआ। वह भी सोचता है, पता नहीं तुम कितने आनंद में हो! ऐसा धोखा चलता है। न तुम आनंद में हो, न वह आनंद में है।
हर आदमी को ऐसा ही लग रहा है कि सारी दुनिया सुखी मालूम पड़ती है एक मुझको छोड़कर। हे परमात्मा, मुझ ही को क्यों दुख दिए चला जाता है! क्योंकि तुम्हें अपने भीतर की पीड़ा दिखाई पड़ती है और दूसरे का बाहर का रूप दिखाई पड़ता है।
बाहर तो सभी सज-संवरकर चल रहे हैं। तुम भी चल रहे हो। तुम भी किसी की शादी में जाते हो, तो जाकर रोती शक्ल नहीं ले जाते; हंसते, मुस्कुराते, सजकर, नहा धोकर, कपड़े पहनकर पहुंच जाते हो। वहां एक रौनक है। और ऐसा लगता है कि सारी दुनिया प्रसन्न है।
सड़कों पर चलते लोगों को देखो सांझ, सब हंसी-खुशी मालूम पड़ती है। लेकिन लोगों के जीवन में भीतर झांको, और दुख ही दुख है। जितने भीतर जाओगे, उतना दुख पाओगे।
इसलिए किसी के ऊपर के रूप और आवरण को देखकर मत भटक जाना। और यह मत सोचने लगना कि अच्छा होता कि मैं ब्राह्मण होता, कि देखो ब्राह्मण कितने मजे में रह रहा है! कि अच्छा होता मैं क्षत्रिय होता, कि क्षत्रिय कितने मजे में रह रहा है!
अब यह बहुत हैरानी की बात है कि सम्राट भी ईर्ष्या से भर जाते हैं साधारण आदमियों को देखकर। क्योंकि उनको लगता है, साधारण आदमी बड़े मजे में रह रहे हैं।
सुना है मैंने कि नेपोलियन लंबा नहीं था, ऊंचाई उसकी ज्यादा नहीं थी। उसके सिपाही उससे बहुत लंबे थे। इससे उसे बड़ी पीड़ा होती थी। वह सम्राट भी हो गया, महासम्राट हो गया, लेकिन जब भी कोई लंबा आदमी देख लेता, उसके प्राण में दंश हो जाता।
एक दिन वह अपने कमरे में घड़ी को ठीक करना चाहता था, लेकिन घड़ी ऊंची लगी
थी और उसका हाथ नहीं पहुंच रहा था। तो उसके कायारक्षक ने, बाडीगार्ड ने कहा, रुकिए, मैं आपसे बड़ा हूं, मैं ठीक किए देता हूं। नेपोलियन ने कहा, क्षमा मांगो इस वचन के लिए! तुम मुझसे लंबे हो, बड़े नहीं।
उसके मन में सदा पीड़ा थी कि लोग लंबे हैं। वह छोटा था, जरा बौना था।
तुमने कभी पंडित नेहरू के चित्र देखे माउंटबेटन और लेडी माउंटबेटन के साथ! तुम बहुत हैरान होओगे। मैंने जितने चित्र देखे, उनमें हमेशा वे सीढ़ियों पर खड़े हैं। माउंटबेटन दो सीढ़ियां नीचे खड़े हैं, वे सीढ़ी पर खड़े हैं। लेडी माउंटबेटन एक सीढ़ी नीचे खड़ी हैं, वे एक सीढ़ी ऊपर खड़े हैं।

क्योंकि वे पांच फीट पांच इंच! और लेडी माउंटबेटन और माउंटबेटन जैसे लंबे आदमी जरा मुश्किल से खोजे जा सकते हैं।
वह अनजाना ही रहा होगा। जानकर वे हर बार जब फोटो उतरती है, ऐसा खड़े हो जाते हों, तो कभी चूक भी जाते। वह अनजाना ही रहा होगा, लेकिन भीतर अचेतन में कहीं कोई बात रही होगी।
सम्राट भी राह पर चलते मस्त फकीर को देखकर ईर्ष्या से भर जाते हैं कि काश! इसकी मस्ती हमारे पास होती! अपने महल में रात उदास, विषाद से भरे हुए, बाहर किसी भिखमंगे का गीत सुनने लगते हैं और प्राणों में ऐसा होने लगता है, काश, हम भी इतने स्वतंत्र होते और इस तरह राह पर गीत गाते और कोई चिंता न होती और वृक्ष के तले सो जाते!
अगर ऐसा न होता, तो बुद्ध महल छोड़कर ही क्यों आए होते? महावीर ने क्यों महल छोड़े होते? जरूर भिखमंगों की मस्ती से ईर्ष्या आ गई होगी। नहीं तो जाने का कोई कारण न था।
कृष्ण कहते हैं, दूसरे से बहुत प्रलोभित मत हो जाना। और अगर तुम अपने
ही नियत कर्म में, जो तुमने जन्मों-जन्मों में अर्जित किया है, जिसके लिए तुम्हारे संस्कार तैयार हैं, वहां तुम दुखी हो, तो अपरिचित कर्म में तो तुम और भी दुखी हो जाओगे, तुम और भी कष्ट पाओगे, क्योंकि उसके तो तुम आदी भी नहीं हो। इसलिए अपने स्वाभाविक कर्म और आचरण में रहते हुए, उस कर्म को नियत मानकर करते हुए, परमात्मा की मर्जी है ऐसा जानते हुए, व्यक्ति स्वधर्म को प्राप्त हो जाता है, पाप से मुक्त हो जाता है।
अतएव हे कुंतीपुत्र, दोषयुक्त भी स्वाभाविक कर्म को नहीं त्यागना चाहिए... ।
और कभी ऐसा भी लगे कि यह कर्म तो दोषयुक्त है, तो भी इसे मत त्यागना। क्योंकि धुएं से अग्नि के सदृश सभी कर्म किसी न किसी दोष से आवृत हैं।
यह बड़ी महत्वपूर्ण बात है। तुम ऐसा तो कोई कर्म खोज ही न सकोगे, जिसमें दोष न हो। अगर तुम दोष ही खोजने गए, तो तुम कुछ भी न कर पाओगे। तुम दोष भी न खोज पाओगे, क्योंकि उस खोज में भी कई दोष होंगे। श्वास लेने तक में हिंसा हो रही है। तो करोगे क्या?
कृष्ण कहते हैं, अगर तुम बधिक के घर में पैदा हुए हो और हत्या ही तुम्हारा काम है, तो भी तुम मत घबड़ाना; तुम इसको भी परमात्मा की मर्जी मानना। तुम चुपचाप किए जाना उसको ही सौंपकर, तुम अपने ऊपर जिम्मा ही मत लेना। तुम कर्ता मत बनना, फिर कोई कर्म तुम्हें नहीं घेरता है।
और तुम यह मत सोचना कि यह पापपूर्ण कर्म है, इसे छोडूं। कोई ऐसा पुण्य कर्म करूं, जिसमें पाप न हो।
ऐसा कोई कर्म नहीं है। क्या कर्म करोगे, जिसमें पाप न हो? यहां तो हाथ हिलाते भी पाप हो जाता है, श्वास लेते भी प्राणी मर जाते हैं। तुम जीओगे, तो पाप होगा; चलोगे, तो पाप होगा; उठोगे-बैठोगे, तो पाप होगा। और अगर इस सबसे तुम सिकुड़ने लगे, तो तुम पाओगे कि जीवन एक बड़ी दुविधा हो गई।
कहते हैं, महावीर रात करवट भी नहीं बदलते हैं। क्योंकि वे डरते हैं कि कहीं रात करवट बदली, कहीं कोई कीड़ा-मकोड़ा आ गया हो, रात सरककर पास बैठ गया हो, दब जाए! तो रातभर एक ही करवट सोए रहते। अब यह भी बड़ी अजीब-सी अवस्था हो जाएगी।
महावीर भोजन करने में भयभीत हैं, क्योंकि पाप होगा। खेती-बाड़ी करने में भयभीत हैं, क्योंकि पौधे मरेंगे, कटेंगे। चलने में डरते हैं, क्योंकि कहीं कोई कीड़ा-मकोड़ा न मर जाए। वर्षा में चलना रोक देते हैं, क्योंकि वर्षा में बहुत कीड़े-मकोड़े पैदा हो जाते हैं। रात नहीं निकलते, अंधेरे में बाहर नहीं जाते। क्योंकि अंधेरे में कोई दब जाए, कोई हिंसा हो जाए।
अब इतने भयभीत हो जाओगे, और तो भी हिंसा होती ही रहेगी। श्वास तो लोगे, पलक तो झपोगे, होंठ तो खोलोगे। एक बार होंठ के खुलने और बंद होने में कोई एक लाख कीटाणु मर जाते हैं। तो महावीर बारह साल मौन रह गए, कि होंठ ही नहीं खोलेंगे!
अब महावीर के भक्तों का एक वर्ग है, जो मुंह पर पट्टी बांधे हुए है। वह इसी डर से कि मुंह से जो गर्म हवा निकलती है, वह जब दूर तक जाती है, तो कई

कीटाणुओं को मार देती है। तो वह दूर तक न जाए। मगर फिर भी गर्म हवा तो निकलती ही रहेगी।
स्नान न करो, क्योंकि जल के कीटाणु मर जाएंगे। क्या करोगे? ऐसे अगर जीए, तो तुम नर्क बना लोगे चारों तरफ। और फिर भी, फिर भी कर्म तो दोषयुक्त हैं ही। जैसे हर जगह जहां अग्नि है, वहां धुआं है, ऐसे जहां कर्म है, वहां दोष है। तो फिर क्या उपाय है?
एक ही उपाय है कि तुम कर्ता मत रहो। तुम उससे कह दो, तू जो करवाएगा, हम करते रहेंगे। हम तेरे संदेशवाहक हैं।
जैसे पोस्टमैन आता है चिट्ठी लेकर। अब किसी ने गाली लिख दी चिट्ठी में, इसलिए पोस्टमैन जिम्मेवार नहीं। कि तुम उससे लड़ने लगते हो, कि उठा लेते हो लट्ठ कि खड़ा रह, कहां जाता है! तू यह चिट्ठी यहां क्यों लेकर आया! या कोई प्रेम-पत्र ले आया, तो तुम उसे कोई गले लगाकर और नाचने नहीं लगते हो। तुम जानते हो कि यह तो पोस्टमैन है। चिट्ठी कोई और भेज रहा है। यह तो सिर्फ बेचारा बोझा ढोता है। ले आता है, घर तक पहुंचा देता है।
परमात्मा कर्ता हो जाए और तुम केवल उसके उपकरण। इसलिए फिर जो भी कर्म नियति से, प्रकृति से, स्वभाव से, संयोग से तुम्हें मिल गया है, तुम चुपचाप उसे किए चले जाओ, कर्ता-भाव छोड़ दो; जहां भी हो, वहीं कर्ता-भाव छोड़ दो। कृष्ण का सारा जोर है कर्ता-भाव छोड़ देने पर, कर्म को छोड़ने पर नहीं।
क्योंकि छोड़-छोड़कर भी कहां जाओगे! जहां जाओगे कर्म तुम्हें घेरे ही रहेगा।
हे कुंतीपुत्र, दोषयुक्त भी स्वाभाविक कर्मों को त्यागना नहीं, क्योंकि धुएं से अग्नि के सदृश सभी कर्म किसी न किसी दोष से आवृत हैं।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग आठ
गीता दर्शन अध्याय 18
चौदहवां प्रवचन

पात्रता और प्रसाद

असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति।। 49।।
सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाप्नोति निबोध मे।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा।। 50।।
बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च।। 51।।
विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः।। 52।।
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम्।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते।। 53।।
तथा हे अर्जुन, सर्वत्र आसक्तिरहित बुद्धिवाला, स्पृहारहित और जीते हुए अंतःकरण वाला पुरुष संन्यास के द्वारा भी परम नैष्कर्म्य सिद्धि को प्राप्त होता है अर्थात क्रियारहित हुआ शुद्ध सच्चिदानंदघन परमात्मा की प्राप्ति रूप परम सिद्धि को प्राप्त होता है।
इसलिए हे कुंतीपुत्र, अंतःकरण की शुद्धिरूप सिद्धि को प्राप्त हुआ पुरुष जैसे सच्चिदानंदघन ब्रह्म को प्राप्त होता है तथा जो तत्वज्ञान की परा-निष्ठा है, उसको भी तू मेरे से संक्षेप में जान।
हे अर्जुन, विशुद्ध बुद्धि से युक्त, एकांत और शुद्ध देश का सेवन करने वाला तथा मिताहारी, जीते हुए मन, वाणी व शरीर वाला और दृढ़ वैराग्य को भली प्रकार प्राप्त हुआ पुरुष निरंतर ध्यान-योग के परायण हुआ सात्विक धारणा से अंतःकरण को वश में करके तथा शब्दादिक विषयों को त्यागकर और राग-द्वेष को नष्ट करके तथा अहंकार, बल, घमंड, काम, क्रोध और परिग्रह को त्यागकर ममतारहित और शांत हुआ सच्चिदानंदघन ब्रह्म में एकीभाव होने के लिए योग्य होता है।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः आप कहते हैं कि जीवन ऐसे जीओ कि वह एक अभिनय हो। उस हालत में आध्यात्मिक साधना, धर्म और मोक्ष की खोज भी अभिनय से ज्यादा क्या रहेगी?

अभिनय से ज्यादा कुछ है ही नहीं। अभिनय से ज्यादा की आकांक्षा ही दुख
का कारण है। अभिनय से ज्यादा तुम चाहते हो कुछ, वही मृग-मरीचिका है। संसार में जो भी किया जा सकता है, वह चाहे बाजार में हो और चाहे मंदिर में हो, वह चाहे धन की दौड़ में हो और चाहे धर्म की दौड़ में हो, जो भी किया जा सकता है, जहां तक करने की सीमा है, वहां तक अभिनय है। और इसे जो जान लेता है कि सभी करना मात्र अभिनय है, उसका कर्ता-भाव गिर जाता है।
जब अभिनय ही है, तो कर्ता-भाव कैसे बचेगा? कर्ता-भाव न हो, तो साक्षी- मात्र शेष रह जाता है। करने वाला तो खो जाता है, केवल देखने वाला शेष रह जाता है। और वही ब्रह्मज्ञान की पराकाष्ठा है, जहां तुम सिर्फ देखने वाले ही रह गए।
इसलिए ब्रह्मज्ञानियों ने सारे संसार को माया कहा है। शंकराचार्य ने ईश्वर को भी माया का ही हिस्सा कहा है। क्योंकि ईश्वर को पाने की खोज, ईश्वर को पाने की आकांक्षा का अर्थ ही यही है कि ईश्वर भी वासना का विषय बन सकता है।
इसलिए बुद्ध ने कहा है कि तुम मोक्ष को चाहना मत; चाहोगे तो चूक जाओगे। क्योंकि जो चाह का विषय बन जाए, वह मोक्ष ही नहीं है; वह संसार हो गया।

जिसको भी हम चाह सकते हैं, हमारी चाह के कारण ही वह संसार हो जाता है। चाह भ्रांति का सूत्र है, स्वप्न की जन्मदात्री है। तो तुमने अगर धर्म चाहा है, तो वह भी स्वप्न है। तुमने अगर संन्यास किया है, तो वह भी स्वप्न है। तुमने अगर साधना साधी है, तो वह भी स्वप्न है।
जहां तक तुम्हारा कर्ता बचा है, जहां तक तुम हो, वहां तक सत्य नहीं हो सकता। अहंकार से तो संबंध ही असत्य का जुड़ता है, सत्य का नहीं जुड़ता। अंधेरे से अंधेरे का ही मिलन हो सकता है।
जब मैं कहता हूं कि सभी कुछ अभिनय है, वही कृष्ण कह रहे हैं। वे अर्जुन
को इतना ही समझा रहे हैं कि तू कर्ता मत हो। तू अपने को करने वाला मत समझ। तू जैसे उपकरण है, निमित्त है। परमात्मा जो करवाना चाहे, तू कर। न करवाना चाहे, मत कर। लेकिन तू बीच में मत आ। युद्ध करवाना चाहे, युद्ध कर। न करवाना चाहे, उसकी मर्जी। तू निर्णायक मत बन। क्योंकि जैसे ही तू निर्णायक बना, जैसे ही अहंकार आया, वैसे ही सब झूठ हो गया। तू अपने को दूर रखकर, उसे जो करना है, करने दे। तू सिर्फ माध्यम बन जा, निमित्त-मात्र हो जा।
तब तो जीवन अभिनय हो जाएगा, तुम कर्ता नहीं रह जाओगे। परमात्मा लिखेगा नाटक, तुम केवल उसे दोहराओगे।
अभिनय और जीवन में फर्क क्या है? अभिनय का अर्थ होता है, जो पूर्व-निर्धारित है। राम-कथा लिखी हुई रखी है। फिर तुम राम बने। तुम्हें कुछ करना नहीं है, सब तैयार ही है; एक-एक शब्द तैयार है। तुम्हें वही कहना है, जो पूर्व से ही निर्णीत है। तुम्हें कुछ नया जोड़ना नहीं है। तुम्हें अपने को बीच में लाना नहीं है। तुम कुशलता से वही कर सको; जो करने को कहा गया है, तो अभिनय है।
जीवन में भ्रांति होती है, क्योंकि तुम सोचते हो, शायद जीवन में तुम
कर रहे हो। मंच बहुत बड़ी है, तुम्हें दिखाई नहीं पड़ती। नाटक बहुत अदृश्य ढंग से लिखा गया है, तुम पढ़ नहीं पाते। जो हाथ तुम्हारी कठपुतली को सम्हाले हैं, तुम्हारी आंखें बड़ी छोटी हैं, उन विराट हाथों को देख नहीं पातीं। जिन धागों से तुम बंधे हो और नाच रहे हो, वे धागे तुम्हारी पकड़ में नहीं आते। लेकिन अगर थोड़ा समझने की कोशिश करोगे, तो धागे पकड़ में आने लगेंगे।
तुमने कभी भी कुछ अपने से किया है? प्रेम में पड़ गए किसी के। तुमने प्रेम किया था? अचानक पाया कि प्रेम हो गया है। जैसे किसी ने धागा खींचा; कठपुतली नाचने लगी। तुम प्रेम का गीत गाने लगे। तुम जीने-मरने को तैयार हो गए। तुमने कहा, यह स्त्री न मिलेगी तो मैं बचूंगा नहीं।
एक क्षण पहले तक यह स्त्री नहीं थी; तुम भली प्रकार बचे थे। इसके न होने से कोई अड़चन न आ रही थी। एक क्षण पहले इसे तुमने न देखा था; सब ठीक चल रहा था। अचानक इस स्त्री का दिखाई पड़ जाना, तुमने कुछ किया नहीं है, तुम्हारे भीतर किसी और ने कुछ किया। कोई वासना का धागा खींचा गया। अब तुम कहते हो, इसके बिना मैं जी न सकूंगा।
यह भी तुम कह रहे हो, ऐसा नहीं है। क्योंकि इसके बिना भी तुम जीते हुए पाए जाओगे। यह भी तुमसे कहलवाया जा रहा है। कल यह स्त्री मर जाएगी, रोओगे- धोओगे। तुम रोओगे-धोओगे, ऐसा भी मैं नहीं कहता; वह भी होगा। वह भी तुम्हारे घाव से आंसू बहेंगे।
फिर घाव भर जाएगा। फिर तुम किसी दूसरी स्त्री के पीछे दौड़ने लगोगे। तुम फिर-फिर यही कहोगे कि तेरे बिना न जी सकूंगा। तुम हर स्त्री से यही कहोगे कि तेरे बिना संसार में कोई अर्थ ही नहीं है। तू ही मेरे जीवन का अर्थ है। और बिना जाने कहोगे कि जैसे यह तुम कह रहे हो।
समझो; ऐसा कुछ है, जैसे किसी ने एक नाटक लिखा हो और पात्रों को तैयार किया हो। लेकिन पात्रों को सम्मोहित करके तैयार किया हो; उन्हें सम्मोहित कर दिया हो। जिसको राम बनना है, उसे सम्मोहित करके मूर्च्छित कर दिया हो और फिर सारे राम का अभिनय उसे सिखा दिया हो सम्मोहित अवस्था में। फिर वह जागा, होश में आया। अब वह राम का पार्ट करेगा, लेकिन वह यही समझेगा कि मैं राम हूं।

प्रकृति तुम्हें सम्मोहित किए है। उस सम्मोहन की शक्ति को हमने माया कहा है। माया का अर्थ है, प्रकृति का जादू। तुम उसमें खिंचे जी रहे हो। तुम बहुत कुछ करते मालूम पड़ते हो, करते तुम कुछ नहीं। तार कोई और खींचता है। धागे बड़े अदृश्य हैं, छिपे हैं। कठपुतलियां सामने हैं, धागे पीछे हैं, पृष्ठभूमि में हैं।
जिनको तुम वासनाएं कहते हो, वे धागों से ज्यादा नहीं हैं। उनके ही वशीभूत तुम काम किए चले जाते हो। न तो तुम पैदा हुए हो। किसने तुम्हें पैदा किया? न तुम जी रहे हो अपनी तरफ से। क्योंकि आज अगर श्वास बंद हो जाए, तो तुम क्या करोगे? एक दिन बंद हो ही जाएगी। फिर तुम शिकायत भी न कर सकोगे, क्योंकि श्वास बंद हो गई, शिकायत कौन करेगा?
जन्म होता है, जीवन होता है, प्रेम घटता है। हजार-हजार घटनाएं होती हैं। मौत घट जाती है। और सब ऐसे मिट जाता है, जैसे पानी पर खींची गई लकीरें।
कितने लोग तुमसे पहले इस पृथ्वी पर रहे हैं! जहां तुम बैठे हो, वहां कम
से कम एक-एक इंच जमीन पर तीस-तीस आदमियों की लाशें दबी हैं। अरबों लोग रहे हैं तुम्हारी ही तरह। तुम्हारी ही तरह उनकी भी भ्रांति थी कि वे जी रहे हैं; कर्ता हैं! बड़ी अकड़ में जीए हैं। उस अकड़ के कारण बहुत पीड़ा और दुख भी पाया है।
उनमें से कुछ समझदार भी हुए हैं। कोई बुद्ध हुआ, कोई कृष्ण हुआ, जिसने देख लिया पीछे मुड़कर, कि धागे हैं, मैं कुछ कर नहीं रहा हूं, हो रहा है। उसने तत्क्षण कह दिया कि यह सब अभिनय है।
इसका यह अर्थ नहीं कि तुम भाग जाओ छोड़कर। अभिनय को छोड़कर भी क्या भागना है! इसलिए कृष्ण कहते हैं, डटे रहो, जिसके हाथ में धागे हैं, वही जाने। तुम अपने ऊपर सिर पर बोझ मत लो। वह लड़वाए, तो लड़ो। इसलिए कृष्ण कहते हैं, जिन्हें तू अर्जुन सोचता है कि मारने वाला है, वह उसने पहले ही मार रखे हैं। बस, तेरे धक्के की जरूरत है। उसने उनके प्राण पहले ही खींच लिए हैं। वे मारे जा चुके हैं, वे मुरदा ही खड़े हैं। तू केवल निमित्त बनेगा। और तू निमित्त न बनेगा, तो कोई और निमित्त बन जाएगा। इसलिए तू व्यर्थ अपने को बीच में मत ले।
अभिनय अगर पूरा जीवन दिखाई पड़ने लगे, तो तुम कहां रहोगे! सिर्फ साक्षी में तुम रह जाओगे। उतना भर अभिनय नहीं है। वह देखने वाला भर अभिनय नहीं है; वह सच है। क्योंकि झूठ को देखने के लिए भी सच देखने वाला चाहिए। इसे तुम थोड़ा समझो।
रात तुमने सपना देखा। सपना झूठ था। सुबह उठकर पाया कि सब व्यर्थ था, कुछ सार न था। कहीं कुछ हुआ न था। बस, मन की ही कल्पना थी। मन में ही लहरें उठीं और खो गईं; तरंगें आईं और गईं। सुबह तुम पाते हो, कुछ भी हुआ नहीं है। सिर्फ ख्याल थे।
लेकिन क्या तुम यह कह सकते हो कि जिसने रात सपना देखा, वह भी इतना ही झूठ है जितना सपना झूठ था? यह तो तुम न कह सकोगे। क्योंकि अगर देखने वाला भी झूठ हो, तब तो कुछ देखा ही नहीं जा सकता; सपना भी नहीं देखा जा सकता। झूठ को देखने के लिए भी कम से कम सच देखने वाला चाहिए। झूठ ही तो झूठ
को नहीं देख सकता, क्योंकि तब तो दोनों ही अनस्तित्व हो जाएंगे।
यह हो सकता है कि एक रस्सी पड़ी है रास्ते पर और तुमने भ्रांति से सांप देखा। भूल हो गई, यह बात पक्की है। लेकिन अगर रास्ते पर से कोई भी न गुजरे, तो भी क्या यह भूल हो सकेगी कि रस्सी सांप जैसी देखी जा सके? कौन देखेगा? अगर रास्ते पर से गुजरने वाले भी इतने ही झूठ हों, जितना रस्सी का सांप होना झूठ है, तब तो कोई देखने वाला ही न होगा।
झूठ को देखने के लिए भी कोई सच चाहिए। इसलिए जिन्होंने जीवन को बहुत गहरे खोजा है, जो कर्म की सतह पर ही नहीं भटके, जो नीचे गहरे में डुबकी लिए हैं, जो अस्तित्व में परतों में उतरे हैं, उन्होंने पाया, सब झूठ हो सकता है, लेकिन यह जो भीतर बैठा साक्षी है, यह झूठ नहीं हो सकता।
सब भ्रांतियां हो सकती हैं, लेकिन एक अस्तित्व भीतर जो है, वह भ्रांत नहीं हो सकता। भ्रांतियों के लिए भी उसका सच होना जरूरी है। वही भर अभिनय नहीं है।

और अगर तुमने जीवन को जीवन समझा, अभिनय न समझा, तो साक्षी खो जाएगा, तुम उसको भूल जाओगे। तुम कर्ता बन जाओगे, जो कि सच नहीं है। अगर तुमने जीवन को अभिनय समझा, यथार्थ नहीं, तो कर्ता खो जाएगा और कर्ता की राख में छिपा भीतर साक्षी का अंगार प्रकट होने लगेगा।
साक्षी को जान लेना ब्रह्मज्ञान की पराकाष्ठा है। और जीवन को अभिनय कहना, केवल एक विधि है उस साक्षी को खोज लेने की। क्योंकि जहां-जहां तुम्हें अभिनय समझ में आ जाता है, वहीं-वहीं पकड़ छूट जाती है। जब तक तुम सोचते हो यह सच है, तब तक तुम मुट्ठी बांधे रखते हो। जब तुम देखते हो, यह सच है ही नहीं, तो तुम मुट्ठी नहीं बांधते।
इसलिए कृष्ण की जीवन-दृष्टि में एक बड़ी अनूठी बात है। वे भागने के लिए
भी नहीं कहते हैं। वे कहते हैं, संसार इतना झूठा है कि भागना भी क्या?
अब जो रस्सी सांप जैसी दिखाई पड़ रही है, उसे मारना तो गलत है ही, क्योंकि मारोगे क्या। वहां कोई सांप है नहीं मरने को। तुम लकड़ी लेकर और बड़ी मशाल लेकर और बड़ा शोरगुल मचाते आ रहे हो! वहां कुछ है नहीं। और कोई आदमी रास्ते पर खड़ा तुमसे कहता है, कहां जा रहे हो? वहां कोई सार नहीं है, वहां सिर्फ रस्सी पड़ी है, सांप है नहीं; मारोगे किसको? अच्छा है, भाग खड़े होओ। त्याग ही कर दो इस माया का। तो वह आदमी भी भ्रांत है। क्योंकि जिस सांप को मारा नहीं जा सकता, उसको छोड़ोगे भी क्या! जिसको मारा नहीं जा सकता, उससे भागोगे कैसे! भागते भी हम उससे हैं, जो सत है। लड़ते भी उससे हैं, जो सत है।
इसलिए कृष्ण का कहना है, जहां हो वहीं जाग जाओ, भागने से कुछ भी न होगा। जागते ही पाओगे, सब सपना है।
इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम्हारे जानने से कि यह सपना है, सपना टूट जाएगा। इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम्हारे यह जानने से कि सपना है, अर्जुन के लिए युद्ध खो जाएगा; नहीं।
रात तुम फिल्म देखने बैठते हो। तुम भूल जाते हो देखते-देखते। तुम्हें याद ही नहीं रहता कि जो तुम देख रहे हो, वह केवल धूप-छाया का खेल है। परदे पर कुछ है नहीं। परदा बिल्कुल खाली है। जो दिखायी पड़ रहा है, वह सरासर झूठ है। यह तुम जानते हो, लेकिन कई बार भूल जाते हो। जब कभी कोई फिल्म में ऐसे क्षण आते हैं, भावावेश के, तुम आविष्ट हो जाते हो।
कोई किसी की हत्या कर रहा है, तुम्हारे हृदय में भी पीड़ा होने लगती है। कोई किसी स्त्री को सता रहा है, परेशान कर रहा है, तुम भी रीढ़ ऊंची करके बैठ जाते हो। बचाने की उत्सुकता पैदा होने लगती है। दो कारें भाग रही हैं एक-दूसरे के पीछे पहाड़ों की कगारों से; खतरा है; तुम तब कुर्सी पर टिके नहीं बैठे रहते; तुम बिल्कुल सीधे बैठ जाते हो। जैसे तुम कार में बैठे हो, जैसे कि खुद का भी जीवन खतरे में है। तुम कंपने लगते हो, तुम्हारा हृदय जोर से धड़कने लगता है। कोई मर गया है, तुम रोने लगते हो।
वह तो अच्छा है कि सिनेमागृह में अंधेरा होता है। लोग अपने रुमाल निकालकर, आंसू पोंछकर, खीसे में रख लेते हैं। आंसू भी आते हैं; तुम हंसते भी हो; तुम डरते भी हो; तुम प्रसन्न भी होते हो। ये सब घटनाएं घटती हैं। और तुम भली-भांति जानते हो कि वहां परदा है। और परदे पर कुछ भी नहीं हो रहा है, धूप-छाया का खेल है। लेकिन फिर भी भूल-भूल जाता है।
अगर तुम्हें पूरी तरह भी याद रहे, पूरे तीन घंटे जब तुम सिनेमागृह में बैठे हो, पूरे समय याद रहे कि वह सब झूठ है, तो भी परदे पर धूप-छाया का खेल तो जारी रहेगा, तुम्हारे जानने से खेल नहीं मिट जाएगा। तुम्हारे जानने से तुम्हारे भावावेश मिट जाएंगे। तुम्हारे जानने से अब तुम रोओगे नहीं, हंसोगे नहीं। या अगर तुम रोओगे भी, तो अभिनय होगा; दूसरों को दिखाने को होगा, तुम्हारे लिए न होगा। अगर तुम हंसोगे भी, तो दूसरों के लिए होगा, क्योंकि दूसरे अभी नहीं जागे हैं। नाहक उनको कष्ट क्यों देना!
किसी के घर में कोई मर गया है, तो तुम जाकर शायद आंसू भी बहा आओगे। लेकिन भीतर तुम जानते रहोगे, सब धूप-छाया का खेल है। न कोई कभी मरता है, न कभी कोई मारा जाता है। शरीर के मरने से कभी कोई मरता है? यह तो परदा है। जो है, वह सदा है।

लेकिन यह तुम्हारी प्रतीति है। जिसका पति मर गया है, जिसकी पत्नी मर
गई है, जिसका बेटा मर गया है, उसको तो अभी इसका कोई बोध नहीं है। वह तो रस्सी को सांप ही समझ रहा है। तुम उसके लिए रो भी आते हो। तुम दो आंसू भी गिरा आते हो। लेकिन तुम्हारे भीतर कुछ भी घटता नहीं। तुम निर्विकार ही बने रहते हो। आंसू तुम्हारे भीतर गिरते नहीं। उनका घाव नहीं छूटता। उनका धब्बा नहीं लगता।
कोई हंसता है, तो तुम हंस भी लेते हो। लेकिन तुम जानते हो कि न अब हंसने को कुछ है, न अब रोने को कुछ है। संसार चलता रहता है। तुम्हारे लिए स्वप्न हो गया, इससे मिट नहीं जाता। वृक्षों में फूल लगेंगे, पक्षी गीत गाएंगे, लोग प्रेम में पड़ेंगे, मृत्युएं होंगी, जन्म होंगे, बैंड-बाजे बजेंगे, विवाह होगा, शहनाई बजेगी, कोई मरेगा, रामनाम सत्त का पाठ होगा, यह सब चलता रहेगा।
तुम्हारे लिए यह मिट गया। तुम्हारे लिए मिट जाने का अर्थ यह है कि अब तुम इसमें कुछ भी आविष्ट नहीं होते। तुम्हारे लिए सब अभिनय हो गया। लेकिन सब जारी रहेगा।
भागकर भी कहां जाना है? भागकर भी क्या प्रयोजन है? क्योंकि भागे भी अगर तुम, तो कर्ता हो गए। इसलिए कृष्ण का सारा जोर यह है कि भागो मत, अन्यथा भागना भी कर्तृत्व है।
और भागने का भी यह अर्थ हुआ कि तुम जिससे भागे, उसको तुमने सच माना।
रस्सी थी, तुमने सांप माना; तुम भाग खड़े हुए। कोई नासमझ लट्ठ लेकर मारने चला गया, कोई नासमझ पीठ करके भाग खड़ा हुआ। लेकिन समझदार न तो भागता है और न मारने जाता है, वह सिर्फ देखता है।
समझ का नाम दर्शन है; वह सिर्फ देखता है, वह सिर्फ साक्षी हो जाता है।
तब कुछ भी छूता नहीं; तब तुम नदी से निकल जाते हो, पैर में पानी नहीं छूता। तब कबीर ठीक कहते हैं, तुम चदरिया वापस लौटा देते हो जीवन की, वैसी की वैसी, जैसी पाई थी; एक धब्बा नहीं लगता।
इसलिए अभिनय का सूत्र ख्याल में रखो। कृष्ण की सारी गीता उसमें समाई है। जीवन अभिनय है, तब तुम्हारे साक्षी का प्रादुर्भाव होगा। और निश्चित ही, भेद मत करना कि हमारा जीवन तो आध्यात्मिक है, इसलिए यह अभिनय नहीं है। यह अभिनय है; आध्यात्मिक अभिनय है। कोई नीले, हरे कपड़े पहने हुए है; तुमने गेरुआ पहने हैं। यह आध्यात्मिक अभिनय है; यह आखिरी अभिनय है। इसके पार फिर पराकाष्ठा है। इसको भी अभिनय ही जानना।
संन्यास को भी बहुत गंभीरता से मत लेना, अन्यथा उलझ गए। जहां गंभीर हुए वहीं फंसे। हलके मन से लेना; जानते हुए लेना। संन्यास केवल इस बात की सूचना है कि अब हमारे लिए सब अभिनय है। लेकिन इस सब में संन्यास भी समाविष्ट है। यह इस बात की खबर है कि हमने अपनी दुकान समेट ली। अब अभिनय में हमें कोई रस न रहा।
वह तुम्हारा गैरिक रंग इस बात की खबर है कि लोग समझें कि तुम्हें अब अभिनय में रस नहीं रहा। अगर तुम वहां खड़े भी हो, तो इसीलिए कि कहीं और जाने को नहीं है। लेकिन तुमने कर्तृत्व परमात्मा पर छोड़ दिया। अब तुम कर्ता नहीं हो।
संन्यास लिया नहीं जा सकता; अगर लिया, तो तुम कर्ता हो जाओगे। संन्यास घटित होता है, वह समझ का फूल है। जैसे-जैसे तुम समझते हो, वैसे घटित होता है। एक दिन घट जाता है; अचानक तुम पाते हो, संसार गया, संन्यास आ गया। यह प्रभु का प्रसाद है। वह तुम्हारे लिए भेंट है परमात्मा की, जैसे कि सभी कुछ भेंट थी। यह आखिरी भेंट है। यह तुम्हारी जीवन-प्रौढ़ता की सूचना है कि तुम जाग गए हो।
आध्यात्मिक खेल भी खेल हैं। कोई पूजा कर रहा है मंदिर में, कोई राम-राम जप रहा है, कोई राम-नाम की चदरिया ओढ़े हुए है, कोई तीर्थयात्रा को जा रहा है। अगर इनके भीतर कहीं भी कर्ता का भाव है, तो तुम चूक रहे हो; तब तुम गलती में पड़ रहे हो। अगर कर्ता का कोई भाव नहीं है, तो सब सुंदर है।
सार की बात इतनी है कि कर्ता का भाव ही इस जगत में सब से कुरूप घटना है। और अकर्ता का भाव ही इस जगत में सौंदर्य है।

कठिन होगा। क्योंकि धार्मिक गुरु तो तुम्हें समझाते हैं कि संसार छोड़ो, धर्म को पकड़ो। वे तो कहते हैं कि संसार माया है, धर्म थोड़े ही माया है। वे कहते हैं, दुकान माया है, मंदिर थोड़े ही माया है!
बड़े मजे की बात है। उसी बाजार में मंदिर खड़ा है, जिस बाजार में दुकान खड़ी है। जिन्होंने दुकानें चलाई हैं, उन्होंने ही मंदिर बनाया है। जो दुकान को चलाते हैं, वे ही मंदिर के भी ट्रस्टी हैं। दुकान पर कमाते हैं, उसी से मंदिर भी चलता है। वह मंदिर का पुजारी दुकानदारों का नौकर है। जो सोना-चांदी बाजार में मूल्यवान है, वही सोना-चांदी मंदिर में मूल्यवान है। जो सिक्के बाजार में चलते हैं, उन्हीं सिक्कों का चलन मंदिर में भी है।
मंदिर बाजार के बाहर नहीं है। मैं यह कह भी नहीं रहा हूं कि होना चाहिए। हो भी नहीं सकता। मगर जानना चाहिए मंदिर को भी कि तुम भी बाजार के भीतर हो।
इस जगत में जो भी किया जा सकता है, वह सभी संसार है। जो नहीं किया जा सकता, वही किरण जो तुम्हारे अकर्ता-भाव से उठती है, वही किरण संसार के बाहर ले जाती है।
कर्तृत्व संसार है, अहंकार संसार है। अकर्ता हो जाना, निमित्त हो जाना, अभिनेता हो जाना मोक्ष है, मुक्ति है।

दूसरा प्रश्नः जीवन एक कथानक है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का अभिनय नियत है और जिसे नियत ढंग से उसे अभिनीत भर करना है, क्या यही भाग्यवाद नहीं है?

शब्द बिगड़ गया; बहुत चल-चलकर खोटा हो गया। अन्यथा बड़ा प्यारा शब्द है भाग्य। भाग्य का अर्थ है, चीजें होती हैं, की नहीं जातीं। भाग्य का अर्थ है, कथानक तय है, तुम नाहक चिंता मत लो। भाग्य का अर्थ है, जो होना है, होगा; जो होना था, हुआ है; जो होना है, होता रहेगा; तुम सिर पर बोझ मत लो। तुम उत्तरदायी नहीं हो।
जैसे समझो, रामलीला का खेल हो रहा है; लीला हो रही है। राम भली-भांति जानते हैं कि सीता चोरी जाएगी। अब इसमें कोई रात-रातभर जागकर परेशान होने की जरूरत नहीं है। यह सब तय है। यह कथानक है। सीता चोरी जाएगी, राम भटकेंगे जंगल-जंगल, वृक्ष-वृक्ष से पूछेंगे, कहां मेरी सीता है! और बड़े भाव से पूछेंगे। और फिर परदा गिरेगा और पीछे बैठकर वे हंसेंगे और गपशप करेंगे। रावण भी वहीं बैठे होंगे। चाय पीएंगे; घर चले जाएंगे।
इस जीवन के बड़े परदे के पीछे राम-रावण सब मिल जाते हैं; शत्रु-मित्र सब मिल जाते हैं। सब भेद परदे पर सामने हैं।
भाग्य बड़ा प्यारा शब्द था, लेकिन खराब हो गया। आदमी के हाथों में चलते-चलते सभी सिक्के खराब हो जाते हैं, बासे हो जाते हैं, घिस जाते हैं।
बहुत दिन चलने के बाद शब्दों का माधुर्य खो जाता है।
भाग्य का अर्थ तुम्हारा निष्क्रिय होकर बैठ जाना नहीं है। लेकिन वही अर्थ हो गया। भाग्य का अर्थ अकर्मण्यता नहीं है। भाग्य का अर्थ अकर्ता- भाव है। दोनों में बड़ा फर्क है।
लेकिन आदमी कुशल है, चालबाज है, चालाक है; वह मतलब की बात निकाल लेता है। उसने भाग्य से अकर्ता-भाव तो नहीं निकाला, अकर्मण्यता निकाली। उसने कहा, फिर करना ही क्या है! जब सब अपने आप हो ही रहा है, तो करना क्या है! फिर होता रहेगा। ऐसे वह बैठ गया काहिल होकर, सुस्त होकर।
इस सुस्ती और काहिलपन से तमस तो बढ़ा, सत्व का कोई प्रादुर्भाव न हुआ। इससे वह आलस्य में डूबा, अंधकार में गिरा; प्रकाश में न उठा। और उसे एक बहाना मिल गया कि सब भाग्य है।
पूरा भारत ऐसे ही तमस में गिरा, कि भाग्य है; करना क्या है? जो होना है,
वह होगा। हमारे किए क्या हो सकता है?
लेकिन जिन्होंने शब्द गढ़ा था, उनके प्रयोजन बड़े दूसरे थे। उनका प्रयोजन यह था कि अकर्ता-भाव को उपलब्ध होना। करने वाले तुम नहीं हो, परमात्मा है। वह जो करवाए, करना। तुम अकर्मण्य होकर मत बैठ जाना। भाग मत

खड़े होना। तुम जीवन में चलते रहना; कहना, तू जो करवाएगा हम करेंगे। जो तेरी मर्जी। इसलिए अच्छा होगा, तो हम सुखी न होंगे; बुरा होगा, तो दुखी न होंगे।
क्योंकि हमारा कुछ किया नहीं है, सब तेरी मर्जी है। तू जान। आखिरी हिसाब तेरे पास है। बीज तू बोता है; फसल तू काटता है; हम तो बीच के रखवाले हैं।
हमारा कुछ भी नहीं है। लेना-देना हमारा नहीं है। पसारा तेरा है। थोड़ी देर को तूने बिठा दिया है, तो दुकान पर बैठ गए हैं। जब उठा लेगा, उठ जाएंगे। दुकान हमारी नहीं है। यहीं पड़ी रह जाएगी।
ऐसी भाव-दशा हो, तो अकर्मण्यता तो न आएगी; कर्म बड़ा प्रखर हो जाएगा, शुद्ध हो जाएगा, तेजस्वी हो जाएगा। और कर्म के पीछे से कर्ता हट गया, तो कर्म ही पूजा, कर्म ही योग, कर्म ही साधना हो जाती है। फिर कर्म तुम्हें निखारता है, सड़ाता नहीं। फिर कर्म तुम्हें अग्नि से गुजारता है, तुम्हें कंचन बनाता है।
भाग्य का अर्थ था, छोड़ दो परमात्मा पर और जो वह करवाए, किए जाओ। हमने मतलब लिया, जब वही कर रहा है तो हम क्यों करें! छोड़ दिया उसी पर, हम बैठ रहे। अब हम न करेंगे। जब दुकान तेरी है, तो तू ही चला। हम चले।
या तो दुकान हमारी हो, तो हम चलाने को राजी हैं। या दुकान तेरी है, तो
तू जान; हम चले। दुकान हमारी हो, तो हम चलाएंगे, तो चिंता पकड़ेगी। दुकान हमारी न हो, हम न चलाएंगे!
तो जीवन से अगर कर्म खो जाए, तो तेजस्विता खो जाती है। ऐसे ही जैसे झरना बहना बंद कर दे, तो सड़ जाता है। वृक्ष बढ़ना बंद कर दे, सड़ जाता है। जहां-जहां गतिरोध आ जाता है, वहीं-वहीं सड़ांध हो जाती है।
अगर जीवन से कर्म खो जाए, तो तुम्हारा झरना बहता नहीं है। चेतना बहती नहीं है, यात्रा नहीं करती। तुम सड़ने लगोगे, तुम सरोवर बन जाओगे, डबरे हो जाओगे। उसमें कीचड़ ही कीचड़ होगा।
या तो हम आलसी हो जाते हैं। और या हम कर्ता हो जाते हैं। और दोनों के बीच में होने की बात है। आलसी होना नहीं है, कर्ता बनना नहीं है। बस, उसको जिसने पकड़ लिया, उसने तलवार की धार पकड़ ली। उसके लिए मार्ग मिल गया। कर्ता से बचना है, कर्म से भागना नहीं है। फिर तुमने कृष्ण का सार समझ लिया। फिर भाग्य शब्द बड़ा प्यारा है, तब उसमें बड़ी गरिमा है, बड़ी महिमा है। तब तुम इस छोटे शब्द की नाव पर बैठकर पूरा भवसागर तर जाओगे।
लेकिन अगर तुमने चालबाजी की, तो जिस नाव से आदमी तरता है, उसको ही अगर उलटा ले, तो उसी से डूब भी जाता है। जो नाव तैराती है, वही डुबा भी देती है। भाग्य के शब्द को तुमने उलटाकर रख लिया है अपने जीवन में। उलटी नाव पर यात्रा करना चाह रहे हो! वह डूब-डूब जाती है।

तीसरा प्रश्नः महाभारत को आपने बहुत-बहुत महिमा दी है, उसे जीवन का पूरा काव्य कहा है। तब क्या यह दावा सही है कि जो महाभारत में नहीं है, वह कहीं भी नहीं है? और क्या यह दावा विराट जीवन को सीमित नहीं करता है?

दो हिस्सों में समझें।
पहली बात, दावा सही है। जो महाभारत में नहीं है, वह कहीं भी नहीं है। महाभारत का जन्म हुआ उस आत्यंतिक शिखर पर, जहां तक कोई भी सभ्यता पहुंच सकती है। जैसे ऋतुओं में वसंत है; और वसंत में जो सौंदर्य जाना है, वह आत्यंतिक है। फिर वर्ष में बहुत बार उसकी भनक मिलेगी, लेकिन शिखर तो वसंत में ही छुआ जाएगा।
हर सभ्यता के जीवन में वसंत आता है। लेकिन फिर वसंत के बाद ही तो उतार शुरू हो जाते हैं। हर सभ्यता अपने ऊंचे शिखर पर पहुंचती है। फिर वहीं से उतार शुरू हो जाता है। क्योंकि जहां पूर्णता होती है, वहीं से मृत्यु घटने लगती है।
महाभारत भारत की सभ्यता का आत्यंतिक शिखर था। पर शिखर से पतन होता है। जैसे गाड़ी का चाक घूमता है; जो हिस्सा ऊपर पहुंचता है, ठीक ऊपर पहुंच जाता है, बस फिर नीचे उतरना शुरू हो जाता है। जैसे जीवन का चाक घूमता है; बच्चा है, जवान होता है, बूढ़ा होता है, मरता है।

तुमने कभी ख्याल किया कि कब तुम बूढ़े होने शुरू हो जाते हो! ठीक पैंतीस वर्ष की उम्र में तुम बूढ़े होने शुरू हो जाते हो। पता तुम्हें शायद पचास साल की उम्र में चलता है, वह दूसरी बात है। लेकिन बूढ़े तो तुम पैंतीस साल के--अगर तुम सत्तर साल जीने वाले हो, तो वर्तुल सत्तर साल में पूरा होगा, तो पैंतीस साल में आखिरी ऊंचाई छू लेगा।
तो पैंतीस साल में तुम्हारी प्रतिभा अपने निखार पर होती है। शरीर अपनी स्वास्थ्य की आखिरी ऊंचाई पर होता है। फिर वहां से ऊर्जा गिरनी शुरू होती है। इसलिए कोई चालीस-पैंतालीस के बीच हार्ट अटैक और सब तरह की बीमारियां आनी शुरू होती हैं। ऊर्जा उतरने लगी। मौत खबर देने लगी, द्वार पर दस्तक मारने लगी।
यह उचित ही है कि कृष्ण भारत के परम शिखर हैं। हमने उनको पूर्णावतार कहा है।
पूरब की सभ्यता ने अपनी आत्यंतिक ऊंचाई गौरीशंकर को छुआ। महाभारत में
वह सारा सार-निचोड़ है, जो पूरब ने जाना था अपनी लंबी यात्रा में जीवन की; हजारों वर्षों का सार-निचोड़ है। लेकिन फिर पतन हो गया, होना ही था।
तो महाभारत ऊंचाई भी है, और पतन भी है। वहीं से वर्तुल फिर नीचे उतरना शुरू हुआ। फिर उस ऊंचाई को हम दुबारा नहीं छू सके हैं अभी तक। फिर हम भटक रहे हैं, फिर हम खोज रहे हैं।
और भारत का मन सदा ही पीछे की तरफ लगा है। क्योंकि जो ऊंचाई हमने एक दफा देख ली थी, जो स्वर्ण-शिखर हमने छू लिए थे, वे भूलते भी नहीं। वे हमारे स्वप्नों में आ जाते हैं; हमारे काव्य में उतरते हैं; छाया की तरह हमें वे घेरे रहते हैं, उनका माधुर्य हमें बुलाता है। इसलिए सारी दुनिया में भारत शायद अकेला मुल्क है, जो पीछे की तरफ देखता है। अमेरिका में लोग आगे की तरफ देखते हैं। उन्होंने अभी अपना आखिरी शिखर नहीं छुआ है। जैसे छोटा बच्चा भविष्य की तरफ देखता है; बूढ़ा पीछे की तरफ देखने लगता है। अमेरिका में लोग कल की सोचते हैं। भारत में हम गए, बीते कल की सोचते हैं।
कारण है। हमने ऊंचाई देख ली; अब उससे और ऊंचे जाना संभव नहीं मालूम होता, असंभव मालूम होता है। महाभारत उस सारी सभ्यता का सार-निचोड़ है, जो बिखर गई, खो गई। और भी सभ्यताएं दुनिया में पैदा हुई हैं, बिखर गईं, खो गईं। लेकिन वे अपना सार-निचोड़ छोड़ नहीं पाईं।
जैसे कि बेबीलोन की सभ्यता खो गई। कुछ थोड़े से खंडहर रह गए हैं। कोई ऐसा महाग्रंथ नहीं छूटा, जो उनके पूरे गौरव की कथा कहता।
असीरिया की सभ्यता खो गई; इजिप्त की सभ्यता खो गई। पिरामिड खड़े हैं, पत्थर के शिलालेख। लेकिन ज्ञान-गरिमा का कोई स्रोत नहीं छूट गया है, जिससे कि हम फिर से समझ लें कि इजिप्त ने क्या छुआ था अपनी जवानी में, अपनी पूर्णता की अवस्था में! यौवन की आखिरी ऊंचाई पर इजिप्त ने क्या जाना था, कहना मुश्किल है। कल्पना की जा सकती है।
अकेला भारत ऐसा मुल्क है कि उसने जो जाना था, वह महाभारत में छूट गया है। वह लिखा हुआ है। आज उस पर भरोसा भी नहीं आ सकता। बहुत-सी बातें गैर-भरोसे की हो गई हैं। क्योंकि उन्हें आज सिद्ध करना भी मुश्किल है। लेकिन जैसे-जैसे विज्ञान की खोज आगे बढ़ती है, वैसे-वैसे लगता है कि जो भी महाभारत में लिखा है, वह सब सही हुआ होगा। क्योंकि विज्ञान उस सब को फिर से प्रत्यक्ष किए ले रहा है।
अब यह थोड़ा सोचने जैसा है कि महाभारत में जिन अस्त्र-शस्त्रों की धारणा है, वे ठीक आणविक मालूम होते हैं। उनसे जैसा विराट विध्वंस हुआ, वह केवल अणु अस्त्रों से हो सकता है।
पश्चिम फिर अणु अस्त्रों के करीब पहुंच गया है। और इस बात की संभावना
है कि अगर कोई तीसरा महायुद्ध हुआ, तो सारी सभ्यता विनष्ट हो जाएगी। फिर जो उल्लेख रह जाएंगे, हजारों साल तक उन पर भरोसा न आएगा कि यह हो सकता है, क्योंकि उनका कोई प्रमाण न छूट जाएगा।
और आश्चर्य की बात यह है कि जब भी कोई सभ्यता नष्ट होती है, तो उसके महानगर, जहां सभ्यता केंद्रित होती है, पहले नष्ट होते हैं। छोटे गांव, दूर आदिम कबीले बच जाते हैं। जैसे आज अगर भारत नष्ट हो जाए और बस्तर के

आदिवासी बच जाएं, तो उनकी कहानियों में यह बात रह जाएगी कि रेलगाड़ियां चलती थीं, हवाई जहाज उड़ते थे। लेकिन वे अपने बच्चों को समझा न सकेंगे। और अगर बच्चे पूछेंगे, कैसे उड़ते थे? तो बस्तर का आदिवासी कैसे समझाएगा कि हवाई जहाज कैसे उड़ता था! उसने देखा था उड़ते हुए, बाकी कैसे उड़ता था, यह बस्तर का आदिवासी कैसे समझाएगा! वह तो पूरा शास्त्र है उसको समझना तो। अगर तीसरा महायुद्ध हुआ, तो न्यूयार्क, लंदन, बंबई, दिल्ली, पेरिस नष्ट हो जाएंगे; महानगरियां तो नष्ट हो जाएंगी। बचेंगे छोटे-मोटे गांव, दूर पहाड़ों में दबे। उनकी कहानियों में याद रह जाएगी। और हजारों साल तक वे कहानियां दोहराएंगे, और बड़े उससे दोहराएंगे कि हमने जाना है। लेकिन बच्चों को संदेह होगा, क्योंकि सब कहानियां मालूम होती हैं; कोई प्रमाण उनके पास न होगा।
जब भी कोई महा सभ्यता खोती है, तो उसके सारे प्रमाण टूट जाते हैं।
यह जो कहा जाता है कि महाभारत में जो है, वह सब है, और जो वहां नहीं है,
वह कहीं भी नहीं है, वह बहुत अर्थों में सही है। क्योंकि जब भी कोई एक सभ्यता अपनी ऊंचाई को छूती है, तो वह उन सभी बातों को छू लेती है, जो कोई भी सभ्यता अपनी ऊंचाई में छुएगी। थोड़े-बहुत फर्क फासले होंगे, लेकिन मौलिक बात एक ही होने वाली है।
मैं भी कहता हूं कि जो महाभारत में नहीं है, वह कहीं भी नहीं है। अगर न मिले महाभारत में, तो जरा गौर से खोजना। बस, मिल जाएगा। जो भी तुम्हें कहीं मिल जाए, उसको तुम महाभारत में गौर से खोजना।
महाभारत हमारा इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका है। जैसे कि जो तुम्हें इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में न मिले, वह समझना कि होगा ही नहीं। वह उनका सार संचय है। अगर योरोप की सभ्यता खो जाए और ब्रिटानिका रह जाए, तो जैसी हालत होगी, वैसे ही महाभारत रह गया, हमारी सभ्यता खो गई।
वह हमारा शब्दकोश, हमारा भाषाकोश, हमारा ज्ञानकोश, विश्वकोश, सब कुछ है। यद्यपि उन दिनों चीजों को कहने के ढंग अलग थे। कथाओं में हमने कहा था। और वे कहने के ढंग भी सोचने जैसे हैं।
कथाओं को याद रखना आसान है; हजारों साल तक याद रखा जा सकता है।
क्योंकि कहानी में याददाश्त में उतर जाने की एक क्षमता होती है। इसलिए हमने कहानियों में लिखा था। और कहानियों में हमने सब रख दिया था। जब भी किसी के पास आंख होगी, खोलने की समझ होगी, कुंजी होगी, वह खोल लेगा।
और महाभारत के मध्य में है गीता। महाभारत में सब है। जो महाभारत में नहीं है, वह कहीं भी नहीं। और जो भी महाभारत में है, उसका नवनीत गीता में है। और जो गीता में नहीं है, वह महाभारत में नहीं है। गीता हमारी सारी आध्यात्मिक खोज की नवनीतशृंखला है।
दूसरा सवाल है, तब तो इसका अर्थ यह हुआ कि विराट जीवन की हमने सीमा बांध दी महाभारत से?
नहीं, इससे केवल इतना ही साफ होता है कि विराट भी क्षुद्र में समा सकता है; बड़ा वृक्ष भी बीज में समा सकता है। इसका इतना ही अर्थ हुआ कि क्षुद्र को क्षुद्र मत जानना, उसमें विराट छिपा हो सकता है। इससे विराट की सीमा नहीं बंधती, इससे क्षुद्र विराट होता है। यह देखने के ढंग पर निर्भर है।
ऐसा भी तुम देख सकते हो कि यह तो विराट की सीमा बंध गई, विराट जीवन बस महाभारत में हो गया।
नहीं; इससे विराट की सीमा नहीं बंधती। इससे केवल इतना ही पता चलता है
कि क्षुद्र भी विराट है; बीज भी वृक्ष है; अणु भी ब्रह्मांड है।
एक छोटी-सी बूंद में सागर का सारा राज समाया होता है। तब तुम नहीं कहते कि यह तो सागर की सीमा बंध गई! एक सागर की बूंद को तुम ठीक से जान लो, पूरा सागर जान लिया। कुछ जानने को बचता नहीं। अगर एक बूंद का विश्लेषण कर लिया और जान लिया कि एच टू ओ उसका सूत्र है, सारा सागर विश्लिष्ट हो गया। अब तुम्हें पूरे सागरों को विश्लिष्ट करने की जरूरत नहीं है। एक बूंद पहचान ली कि सब महासागर पहचान लिए।
ये सारे ग्रंथ सूत्रों में हैं, एक-एक सूत्र में हजारों-हजारों लोगों
के अनुभव का सार समाया हुआ है। उन्हें बड़ा मंथन करके, बड़े चिंतन से, बड़े

ध्यान से निर्मित किया गया है। इसलिए हम उनको सूत्र कहते हैं। वे बीजरूप हैं।
एक छोटा-सा वचन है। उसको तुम छोटा मत समझना। उसके परिणाम विराट हैं।
एक छोटी-सी चिनगारी है, उसे तुम छोटी मत समझना। उस छोटी-सी चिनगारी से सारा ब्रह्मांड राख हो सकता है।
नहीं, विराट की कोई सीमा नहीं बंधती, केवल क्षुद्र की सीमा टूट जाती है।
असल में क्षुद्र और विराट दो तो हो ही नहीं सकते। अगर विराट है, तो क्षुद्र है ही नहीं। क्योंकि क्षुद्र में भी विराट ही होगा। और अगर क्षुद्र है, तो विराट हो ही नहीं सकता। क्योंकि फिर क्षुद्र का ही जोड़ तो विराट होगा; वह कैसे विराट हो सकेगा!
इसे ठीक से ख्याल में ले लो। चूंकि सारा अस्तित्व असीम है, इसलिए इसका
हर खंड भी असीम ही होगा। क्योंकि सीमित खंडों से मिलकर असीम नहीं बन सकता। यह गणित की एक सीधी-सी धारणा है।
अगर हम सीमित खंडों को जोड़ते जाएं, तो कितनी ही बड़ी चीज बन सकती है, लेकिन असीम नहीं बन सकती। क्योंकि सीमित टुकड़ों को जोड़कर असीम कैसे बनेगा? ईंट पर ईंट रखते जाओ, तुम बड़ा महल बना सकते हो, लेकिन असीम नहीं बना सकते।
ठीक विपरीत चलो। अगर यह अस्तित्व असीम है, इसका कोई आदि नहीं, अंत नहीं, तो इसका खंड-खंड भी असीम होगा। नहीं तो खंडित सीमाओं से बने हुए इस विराट की भी सीमा हो जाएगी।
क्षुद्र भी क्षुद्र नहीं है, जानने वालों ने ऐसा ही जाना है। छोटा भी छोटा नहीं है, बूंद भी बूंद नहीं है, जानने वालों ने ऐसा ही जाना है।

चौथा प्रश्नः आपने कहा कि महावीर हिंसा के भय से अनेक कर्मों से बचते रहे। यह हिंसा का भय था अथवा अहिंसा और करुणा का उद्रेक?

महावीर के लिए तो अहिंसा और करुणा का उद्रेक ही था, लेकिन महावीर के अनुयायियों के लिए हिंसा का भय। वहीं सदगुरु और अनुयायियों में फर्क पड़ जाता है। कारण बदल जाते हैं, कृत्य एक से मालूम पड़ते हैं।
अगर करुणा का उद्रेक हुआ हो, तो तुम दूसरा मर न जाए, इससे चिंतित नहीं हो, क्योंकि तुम जानते ही हो कि मृत्यु तो घटती ही नहीं। तुम सिर्फ इससे चिंतित हो कि मेरे कारण पीड़ा न पहुंचे! अकारण मैं किसी की पीड़ा के लिए आधार न बनूं! तुम्हारी करुणा के कारण ही तुम अपने को हटाते हो उन-उन जगह से, जहां किसी के लिए पीड़ा बन सकती थी, दुख हो सकता था।
महावीर तो बचते हैं इसीलिए कि महाकरुणा का जन्म हुआ है। लेकिन महावीर
के पीछे चलने वाला महाकरुणा के जन्म के कारण नहीं बच रहा है। वह केवल हिंसा न हो जाए, हिंसा होकर कहीं पाप न लग जाए, पाप लगकर कहीं नर्क में न पड़ना पड़े, कर्मबंध न हो जाए, वह हिसाब कर रहा है। उसे दूसरे से प्रयोजन नहीं है। उसे अपने से ही प्रयोजन है। वह हिसाब स्वार्थ का ही है।
लेकिन दोनों के कृत्य एक जैसे हैं। पहचानना बहुत मुश्किल है। क्योंकि दोनों बचते हैं। और बाहर से कोई भेद करना आसान नहीं है। इसलिए प्रत्येक को अपने भीतर ही भेद करने की क्षमता पैदा करनी चाहिए कि मैं किस कारण बच रहा हूं!
तुम किसी को दान देते हो, तुम दान इसलिए भी दे सकते हो कि देने में तुम्हें आनंद आता है। तुम दान इसलिए भी दे सकते हो कि दान इनवेस्टमेंट है। भविष्य में, मोक्ष में, स्वर्ग में कहीं प्रतिकार, प्रत्युत्तर मिलेगा। तब तुम ब्याज सहित लेने की तैयारी रखोगे।
तुम दान इसलिए भी दे सकते हो कि यह आदमी सामने खड़ा है, मोहल्ले में परेशानी होती है, बेइज्जती होती है। यह मांगे चला जा रहा है और तुम दो पैसा नहीं दे रहे हो। तुम पड़ोस में प्रतिष्ठा बचाने के लिए दान दे सकते हो। तुम इससे छुटकारा पाने के लिए दान दे सकते हो।
हर हालत में कृत्य एक ही होगा कि तुमने कुछ दिया, लेकिन हर हालत में कृत्य का गुणधर्म बदल जाएगा। अगर तुमने आनंद-भाव से दिया है, तो ही दिया।

अगर तुम इससे छुटकारा पाना चाहते हो, तो तुमने रिश्वत दी; कि बाबा, क्षमा कर; यहां से हट; कहीं और जा। ये दो पैसे ले और छुटकारा कर। तुमने रिश्वत दी। अगर तुम पड़ोस के लोगों को दिखाना चाहते हो कि तुम महादानी हो--दो पैसे
से महादानी होने में किसको लोभ नहीं सताता--तो तुमने पड़ोस के लोगों से अहंकार खरीदा; तुमने सौदा किया। अगर तुमने इसलिए दिया कि स्वर्ग में इसका प्रतिफल पाओगे और अपने हिसाब की किताब में लिख लोगे कि ब्याज सहित परमात्मा से वसूल करना है... ।
मैंने सुना है, एक मारवाड़ी मरा। कुछ भूल-चूक हो गई; वह सीधा स्वर्ग पहुंच गया। द्वारपाल भी देखकर उसे घबड़ाया कि मारवाड़ी और स्वर्ग आ गया! उसने कहा, आप यहां कैसे? उसने कहा कि यहां क्यों न आऊंगा; दान दिया है। द्वारपाल भी डरा। खाते-बही खोले, देखा कि तीन पैसे उसने एक बुढ़िया को दिए हैं। तीन पैसों के बल वह स्वर्ग आ गया है। और द्वार पर उसने ऐसे दस्तक दी है कि जैसे उसने सब जीवन लुटा दिया हो दान में। द्वारपाल ने अपने सहयोगी से पूछा कि अब क्या करना? यह छोड़ेगा नहीं। यह ब्याज सहित वसूल करेगा; यह जिस अकड़ से खड़ा है। करना क्या है?
सहयोगी ने खीसे में हाथ डाला; चार पैसे निकालकर उसको दे दिए कि ले, यह
तू चार पैसे ले और नर्क जा। और कोई उपाय नहीं है। तू अपना दान ब्याज सहित वापस ले ले और नर्क में निवास कर।
कृत्य तो एक जैसे हो सकते हैं। कृत्य का सवाल ही नहीं है। वह भाव-दशा,
वह अंतःस्रोत जिससे कृत्य डूबकर आता है, जिसमें से निकलता है, वही निर्णायक है। और उसके लिए तुम्हारे सिवाय और कोई नहीं जांच सकता कि तुम कैसे कर रहे हो।
महावीर की फिक्र छोड़ो। महावीर भय के कारण कर रहे हैं, करुणा के कारण
कर रहे हैं, महावीर जानें। तुम अपने जीवन को जांचकर चलो। तुम जो भी करो, वह नकारात्मक न हो, विधायक हो। वह प्रेम से निकले, करुणा से निकले, देने के भाव से निकले, बांटने से निकले, तो तुम्हें अहोभाव उपलब्ध होगा। स्वर्ग में नहीं, क्योंकि इतनी देर नहीं है, यहीं और अभी। प्रेम से किए गए कृत्य में ही तुम्हें आनंद की झलक मिल जाएगी। फल दूर थोड़े ही है।
मैं उन लोगों में भरोसा नहीं करता, जो कहते हैं, तुम करोगे अभी, और स्वर्ग में या नर्क में फल पाओगे या अगले जन्म में फल पाओगे! हाथ तो तुम आग में अभी डालोगे, अगले जन्म में जलोगे। मैं नहीं मानता। हाथ आग में अभी डालोगे, अभी जलोगे। फूलों के बगीचे से अभी गुजरोगे, अभी सुगंध लोगे।
जीवन तो बहुत नगद है। उधार की बात ही कुछ शरारत की मालूम पड़ती है। उसमें कुछ चालबाजी है, कुछ चालाक लोगों का हाथ है। वे तुम्हें भरमा रहे हैं।
जीवन बिल्कुल नगद है। होना भी चाहिए। जीवन कल के क्षण पर अपने को छोड़ता ही नहीं। तुमने प्रेम किया, तुम इसी क्षण आनंद से मगन हुए। तुमने घृणा की, तुम इसी क्षण नर्क की अग्नि में जले। तुमने क्रोध किया, तुमने विष पीया। तुमने क्षमा की, तुमने अमृत चखा। इसी क्षण! कृत्य में ही छिपा है फल। उससे दूर जाने की कोई भी जरूरत नहीं है।

आखिरी दो छोटे प्रश्न।
क्या बुद्धत्व को उपलब्ध होना भी नियत है? अगर ऐसा है, तो फिर कुछ करने या न करने से क्या फर्क पड़ता है?

कोई भी फर्क नहीं पड़ता; लेकिन करना जारी रखना। करना अभिनय की तरह। बुद्धत्व तुम्हारे द्वार अपने आप आ जाएगा। बुद्धत्व का किसी करने, न करने से कोई संबंध भी नहीं है। बुद्धत्व का संबंध साक्षी-भाव से है। जाग गया जो, उसे हम बुद्ध कहते हैं।
अहंकार सुलाए हुए है। वह तुम्हारी नींद है। बस, अहंकार टूट जाए, करने
का भाव गिर जाए। करना जारी रखना। क्योंकि तुम्हारी जल्दी है करना ही छोड़ने की, करने का भाव गिराने की जल्दी नहीं है।

तुम चाहते हो, जब कुछ फर्क ही नहीं पड़ता; बुद्धत्व नियत ही है; तो बस आंख बंद करो, चादर ओढ़ो, सो जाओ। तो बुद्ध कोई पागल नहीं थे, नहीं तो वे भी चादर ओढ़कर सो गए होते!
बुद्धत्व नियत है, वह होगा ही, वह घटेगा ही। देर कितनी ही कर सकते हो। कितने ही भटको, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि बुद्धत्व तुम्हारा स्वभाव है। लेकिन अगर चादर ओढ़कर सोए रहे, तो बहुत लंबा हो जाएगा भटकाव। बुद्धत्व तो मिलेगा आखिर में। जब भी चादर से उठोगे, आंख खोलोगे; पाओगे, तुम बुद्धत्व को उपलब्ध हो।
आंख खोलने की कला है, साक्षी हो जाना, कर्ता न होना। इसलिए कर्म छोड़ने
की जल्दी मत करना, कर्ता-भाव को गिराने की फिक्र करो।

और दूसरा प्रश्न है, साक्षी-भाव से अभिनय की कला तो आती दिखती है, पर आनंद-भाव क्यों कर नहीं जुड़ पाता?

तब तुम अभिनय का भी अभिनय ही कर रहे हो। वह असली नहीं है। अभिनय असली होना चाहिए। अगर तुमने अभिनय का भी अभिनय किया, कि भीतर तो तुम जानते हो कि कर्ता हो, मगर अब क्या करें, यह कृष्ण पीछे पड़े हैं; चलो, अभिनय करो! तो आनंद का भाव उदय नहीं होगा।
आनंद का भाव तो कसौटी है कि तुमने अगर अभिनय अभिनय की तरह किया, तो आनंद-भाव घटता ही है, उसमें कभी कोई अंतर नहीं पड़ता। वह होता ही नहीं उससे विपरीत।
तो वह परीक्षा है। अगर आनंद न घटे, तो समझना, अभिनय भी झूठा है। अगर आनंद घटे, तो समझना कि तुमने अभिनय का सूत्र पकड़ लिया है। तुम राह पर हो, ठीक मार्ग पर हो। मंदिर दूर भला हो, बहुत दूर नहीं है। कलश उसके दिखाई पड़ने लगेंगे, आनंद थिरकने लगेगा। सच्चिदानंद ज्यादा दूर नहीं है, जब आनंद थिरकने लगे।

अब सूत्रः
तथा हे अर्जुन, आसक्तिरहित बुद्धि वाला, स्पृहारहित और जीते हुए अंतःकरण वाला पुरुष संन्यास के द्वारा भी परम नैष्कर्म्य सिद्धि को प्राप्त होता है अर्थात क्रियारहित हुआ शुद्ध सच्चिदानंदघन परमात्मा की प्राप्तिरूप परम सिद्धि को प्राप्त होता है।
कृष्ण को सभी स्वीकार है। उनके स्वीकार पर कोई शर्त और सीमा नहीं है।
वे बड़े बेशर्त आदमी हैं। वे कहते हैं, संन्यास की कोई जरूरत नहीं है अर्जुन। तू जहां है, वहीं कर्म को करते हुए, फलाकांक्षा के त्याग से त्याग सिद्ध हो जाता है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि जो संन्यास ले लेते हैं, दूर हिमालय में खो जाते हैं, एकांत में चले जाते हैं, उन्हें परमात्मा नहीं मिलता।
हम जल्दी ही धारणाएं खड़ी कर लेते हैं। एक तरफ लोग हैं, जो कहते हैं, जब
तक संन्यस्त होकर सब न छोड़ दोगे, तब तक मोक्ष न मिलेगा। इनके विपरीत दूसरी तरफ लोग हैं, वे कहते हैं, संन्यस्त का सवाल ही क्या है! संसार में ही रहना है। कर्म करना है, परमात्मा पर कर्ता-भाव छोड़ देना है। बस, मोक्ष मिल जाएगा।
जो दूसरी बात मानते हैं, उनको संन्यासी गलत मालूम होता है। जो पहली बात मानते हैं, उनको दूसरा आदमी गलत मालूम होता है।
कृष्ण का कोई भी पक्षपात नहीं है। कृष्ण कहते हैं, कुछ लोग ऐसे भी होंगे, जिनसे परमात्मा संन्यास ही करवाना चाहता है। इसे थोड़ा समझना, यह थोड़ा नाजुक है। क्योंकि कुछ लोग जरूर ऐसे होंगे।
अब जैसे कि अर्जुन समझ गया, उसके संदेह क्षीण हो गए, वह युद्ध में उतर गया। क्या तुम सोचते हो, अर्जुन की जगह सिद्धार्थ गौतम होते, बुद्ध होते या वर्धमान महावीर होते, तो भी ऐसी ही घटना घटती?

नहीं, महावीर के होने में ही कुछ ऐसा है कि उसमें से संन्यास का फूल ही निकलेगा। महावीर ने संन्यास अपने पर थोपा थोड़े ही है। वह संन्यास भी परमात्मा ने ही करवाया है।
तो कृष्ण कहते हैं, संन्यासी भी उपलब्ध हो जाता है। वे यह नहीं कह रहे हैं कि तू ऐसा मत सोच लेना कि संन्यासी उपलब्ध होता ही नहीं। उपलब्ध होने का सूत्र न तो संन्यास है, न गृहस्थ है। उपलब्ध होने का सूत्र फलाकांक्षा का त्याग है। फिर चाहे तुम घर में फलाकांक्षा का त्याग कर दो; अगर तुम्हें घर मौजूं आए।
कुछ लोग हैं, जिन्हें बेघर होना ही मौजूं आता है। वह उनके स्वभाव में है। वह उनका स्वधर्म है। उनको भी रोकना उचित नहीं है। वे जब तक बेघर न हो जाएं, तब तक उन्हें ठीक ही न लगेगा। वे स्वभाव से बेघर, स्वभाव से परिव्राजक, भटकने वाले हैं। उनको घर में बांध दोगे, तो मौत हो जाएगी। उनके लिए घर कारागृह मालूम होगा।
जैसे संसार में स्त्रियां हैं और पुरुष हैं; दोनों विपरीत हैं, दोनों भिन्न हैं, दोनों के जीवन-कोण और मनस अलग-अलग हैं। ऐसे ही जीवन में हर पहलू पर विपरीत लोग हैं। कुछ हैं, जो गृहस्थ हैं। कुछ हैं, जो संन्यस्त हैं। वह उनके स्वभाव में है।
तो सारे लोगों को जबरदस्ती संन्यासी बना दो, तो उपद्रव होगा, क्योंकि उसमें कई गृहस्थ फंस जाएंगे। अगर गृहस्थ को तुमने संन्यासी बना दिया, वह जल्दी ही संन्यास में भी गृहस्थ-धर्म को उपलब्ध हो जाएगा। वह जल्दी ही अपने संन्यास को भी घर बना लेगा। वहां भी सारी दुनिया धीरे-धीरे, धीरे- धीरे आ जाएगी; बच न सकेगा। उसका कोई उपाय नहीं है। उसके गृहस्थ का सूत्र उसके भीतर है। बचने की कोई जरूरत भी नहीं है। तुम उसे जहां बैठा दोगे, वहीं वह अपना काम शुरू कर देगा।
मैंने सुना है, एक जहाज से कुछ यात्री यात्रा कर रहे थे। एक बड़ी भयंकर मछली ने हमला किया। कोई उपाय न था। जहाज छोटा था, और मछली डुबा सकती थी। तो उन्होंने मछली के मुंह में भोजन फेंका, ताकि वह भोजन कर ले, शांत हो जाए। वह थोड़ी देर शांत रहे, फिर आ जाए। फिर उन्होंने और सामान भी फेंकना शुरू किया। फिर ऐसी हालत आ गई कि उससे भी काम न चला। भोजन फेंक चुके, फर्नीचर भी फेंक दिया। फिर आदमियों को फेंकने की नौबत आ गई! तो नाम डाले, क्योंकि कोई फिंकने को राजी नहीं। एक यहूदी फंस गया। उसको फेंक दिया।
फिर उन्होंने देखा, उससे भी कोई हल नहीं। तो उन्होंने सोचा, ऐसे तो सब
के प्राण जाएंगे; अब इससे संघर्ष ही कर लेना चाहिए। तो भाले लेकर वे कूद पड़े। मछली उन्होंने मार डाली। जब मछली का पेट फाड़ा, तो कहानी यह कहती है कि वह जो फर्नीचर उन्होंने फेंका था--यहूदी कुर्सी पर बैठा था, टेबल उसने सामने रख ली थी, और जो भोजन फेंका था, उसकी दुकान लगा ली थी। और मछली जिन लोगों को पहले खा चुकी थी, उनको वह आने, दो-दो आने में सामान बेच रहा था। कुछ आप कर नहीं सकते। यहूदी यानी यहूदी! उसको मारो, कहीं भी भेजो, क्या करोगे। वह जहां जाएगा, वहां दुकान बना लेगा। कहानी मुझे ठीक लगती है। लोगों का स्वभाव है!
संसार में दो तरह के लोग हैं। एक, जिनको हम गृहस्थ कहें; और एक, जिनको
हम संन्यस्त। वे स्त्री-पुरुषों जैसे ही हैं। उन दोनों का तालमेल है।
और संन्यस्त को भी अगर जीना हो, तो उसको भी कुछ गृहस्थ चाहिए। महावीर बिल्कुल संन्यस्त हैं। लेकिन जीना तो पड़ेगा गृहस्थों पर ही। हाथ में लोटा भी नहीं रखते, भिक्षापात्र भी नहीं रखते। पर इससे क्या फर्क पड़ता है! दूसरे हैं, जो उनके लिए भोजन तैयार कर रहे हैं।
जैन मुनि चलते हैं, तो उनके पीछे चौका चलता है। मैं बड़ा हैरान हुआ कि
यह चौका क्या मामला है! क्योंकि जैन मुनि चलता है, वह हर गांव में सिर्फ जैन के घर ही भोजन ले सकता है। हर किसी के घर तो भोजन ले नहीं सकता। और उसके योग्य शुद्ध आहार मिले, न मिले। तो भक्त उसके चौका लेकर चलते हैं।
और एक चौका नहीं चलता। जितना बड़ा मुनि हो, उतने ज्यादा चौके चलते हैं। मुनि की प्रतिष्ठा पर निर्भर है। साधारण मुनि हुआ, तो एक महिला एक पुरुष, ऐसे दो-तीन लोग चलते हैं। वे कहीं भी जंगल में, गांव में चौका लगा देते हैं। वह आकर अपना भोजन ग्रहण कर लेता है।

लेकिन अगर बड़ा मुनि हो, तो मुनि-धर्म का यह नियम है कि वह मांगकर न खाए। तो मुनि सुबह ही प्रतिज्ञा ले लेता है अपने मन में, कि जिस घर के सामने दो केले लटके होंगे, वहीं भोजन लूंगा। यह उसके भाग्य पर छोड़ने का ढंग है। यह उसने भाग्य पर छोड़ दिया। न लटके होंगे केले किसी के घर के सामने, बात खतम हो गई, आज भोजन नहीं लूंगा।
यह जब शुरू हुई थी बात, तो बड़ी महत्वपूर्ण थी, बड़ी गहरी थी। इसका मतलब
था कि अब इतना भी कर्ता-भाव उसने अपने लिए नहीं रखा है। अगर परमात्मा को देना ही है, तो लटकाएगा दो केले। कभी-कभी मुनि इस तरह की धारणा कर लेते थे कि महीनों लग जाते थे, पूरी न होती थी।
महावीर कई बार गांव में आते और वापस लौटे जाते। और वे किसी को बताते नहीं थे, क्योंकि बता दिया तो बात ही खतम हो गई। वह तो भीतर ही रखनी है। सुबह की प्रार्थना के वक्त, ध्यान के वक्त तय कर लेना है कि आज क्या! एक प्रतीक।
महावीर ने एक बार ऐसा कर लिया कि प्रतीक आ गया कि जिस घर के सामने गाय खड़ी हो, काले रंग की गाय हो, सफेद चिट्टे हों, सींग में गुड़ लगा हो।
खूब दूर की सोची उन्होंने भी। वे कई दिनों तक गांव में गए और नहीं भोजन मिला, क्योंकि अब यह कोई रोजमर्रा की बात तो नहीं है कि गाय खड़ी हो और फिर उसके सींग में... !
लेकिन एक दिन ऐसा हुआ। बैलगाड़ी में गुड़ भरा निकलता था, एक गाय ने सींग मार दिया होगा; उसके सींग में गुड़ लग गया। वह घर के सामने खड़ी थी।
पर इतने से ही कुछ हल नहीं होता। घर के लोग प्रार्थना करें कि आप भोजन स्वीकार करें। अगर घर के लोग प्रार्थना न करें, तो गाय के खड़े होने से क्या होने वाला है! क्योंकि महावीर की धारणा यह थी कि अगर मेरे लिए भोजन बनाया गया है, तो ही स्वीकार करने योग्य है। मांगकर क्या लेना! अगर देना है परमात्मा को, तो बनवाकर रखेगा, और सब आयोजन कर देगा। जो भी मेरी शर्त है, पूरी कर देगा।
तीन महीने लगे, तब यह पूरी हुई घटना।
तो जो जैन मुनि थोड़े ज्यादा प्रसिद्ध हैं, वह एक ही चौके मैं जंचता नहीं, तो दस-बीस चौके चलते हैं। दस-बीस चौके का मतलब है, सौ-पचास स्त्री- पुरुष पीछे उनके चलेंगे। जहां वे रुकेंगे, ये दस-बीस चौके लगेंगे। दस-बीस तंबुओं में भोजन बनेगा। फिर वे आकर तंबुओं के सामने खड़े होंगे और उन्होंने जो नियम लिया है सुबह, वह पूरा होगा।
और वह अब पूरा होता है सदा, क्योंकि अब उनके सब बंधे हुए नियम हैं। जैसे केला एक खास नियम है। दो केले लटके हों। अब वह सबको मालूम है, तो सभी लटका लेते हैं। महिला बच्चे को लेकर द्वार पर खड़ी हो। तो महिलाएं वैसे ही खड़ी हैं बच्चों को लिए द्वार पर! उसमें कोई भारत में तो कोई अड़चन है ही नहीं; सभी जगह खड़ी हैं। कि हाथ जोड़कर गृहस्थ प्रार्थना करे। तो वह करता ही है। इस तरह के दो-चार सीधे नियम बना लिए हैं। अब वह सबको मालूम है। उनके भक्तों को मालूम है। पर बीस चौके लगते हैं!
अब यह बड़ी हैरानी की बात है। एक साधारण गृहस्थ के लिए एक ही चौका लगता है। और एक मुनि के लिए बीस चौके लगते हैं! यह तो गृहस्थी बीस गुनी हो गई। जो काम दो रोटी से एक ही चौके में बनने से चल जाता, अब वे बीस चौके लगते हैं। और वह सब भोजन फिजूल जाता है। क्योंकि वे लेते तो एक जगह से हैं।
ख्याल रखें, जब नियमों का जन्म होता है, तब तो उनमें बात कुछ और होती है। जल्दी ही आदमी की चालें उनमें प्रविष्ट हो जाती हैं। सब विकृत हो जाता है।
मेरे देखे, संसार में दो तरह के लोग हैं, संन्यस्त और गृहस्थ। अगर तुम संन्यासी को घर में भी रख दो, तो थोड़े दिन में घर आश्रम जैसा हो जाएगा। क्योंकि वह ज्यादा धन कमा नहीं सकता; वह दौड़ ही उसके भीतर नहीं है, वह स्पृहा नहीं है। कुछ मिल भी जाएगा, तो बांट आएगा। बांटने में ज्यादा रस है; इकट्ठा करने में रस कम।
संन्यासी को घर में रख दो, तो घर थोड़े दिनों में आश्रम और धर्मशाला की शक्ल ले लेगा। गृहस्थ को तुम मंदिर में बिठा दो, थोड़े दिन में पाओगे, मंदिर दुकान हो गया। क्योंकि हमारे भीतर बीज हैं।

और बड़ी कठिनाई यह है कि अक्सर विपरीत में आकर्षण होता है। जो गृहस्थ है, उसको आकर्षक लगता है संन्यासी। जो संन्यस्त है, उसको आकर्षक लगता है गृहस्थ। और यह विपरीत का आकर्षण भटका देता है। अपने को ठीक से पहचानना जरूरी है कि मेरी वृत्ति क्या है, मेरा स्वभाव क्या है, मेरा गुणधर्म क्या है।
इसको ही कृष्ण स्वधर्म की पहचान कहते हैं। वे कहते हैं, स्वधर्मे निधनं श्रेयः--अपने धर्म में मर जाना बेहतर है।
इसका यह मतलब मत समझना कि हिंदू रहकर मर जाना बेहतर, कि मुसलमान रहकर
मर जाना बेहतर। इससे इन धर्मों का कोई संबंध नहीं है। स्वधर्म का अर्थ है जो तुम्हारा स्वभाव है, जो तुम्हारी प्रकृति है, उसमें मर जाना भी बेहतर है। क्योंकि प्रकृति को तृप्त करते अगर तुम मरे, तो मृत्यु भी महाशांति और महासंतोष और समाधि बन जाती है।
और परधर्म बहुत भयावह है, कृष्ण कहते हैं, कि दूसरे धर्म में चाहे कितना ही आकर्षण मालूम पड़े, वह तुम्हारा नहीं है, तुम्हारे स्वभाव से मेल नहीं खाता। उसमें उलझना मत, अन्यथा तुम अड़चन में पड़ जाओगे। तब तो जीए भी, तो भी कष्ट ही रहेगा। पूरा जीवन नर्क हो जाएगा।
लेकिन कृष्ण पक्षपाती नहीं हैं। वे कहते हैं, जहां तुम हो, जैसा तुम्हारा भाव है; अगर तुम कर्म में रहना सरल पाते हो, सुगम पाते हो, तो फलाकांक्षा छोड़ दो; काफी है। अगर तुम कर्म का त्याग ही सुगम पाते हो, तो कर्म का त्याग भी कर दो; लेकिन ध्यान रखना, कर्म के त्याग में भी फलाकांक्षा पैदा न हो, क्योंकि मूल बात फलाकांक्षा है।
कहीं संसार को त्यागकर मत बैठ जाना। कि अब मोक्ष मिला, अब मोक्ष मिला,
अब मिलना चाहिए! फल मिलने में देर हो रही है! परमात्मा अभी तक क्यों द्वार पर नहीं आया! मैं इतना सब त्याग करके चला आया हूं!
सूत्र है, फलाकांक्षा का त्याग। चाहे घर में, चाहे संन्यास में; चाहे कर्म में, चाहे अकर्म में; चाहे बाजार में, चाहे हिमालय में; एक बात ध्यान रखना कि फलाकांक्षा छूट जाए, कर्ता का भाव छूट जाए।
हे अर्जुन, आसक्तिरहित, स्पृहारहित, जीते हुए अंतःकरण वाला पुरुष संन्यास के द्वारा भी परम नैष्कर्म्य सिद्धि को प्राप्त होता है।
हे कुंतीपुत्र, अंतःकरण की शुद्धिरूप सिद्धि को प्राप्त हुआ पुरुष जैसे सच्चिदानंदघन ब्रह्म को प्राप्त होता है तथा जो तत्वज्ञान की परा- निष्ठा है, उसको भी तू मुझसे जान।
विशुद्ध बुद्धि से युक्त, एकांत और शुद्ध देश का सेवन करने वाला, मिताहारी, जीते हुए मन, वाणी व शरीर वाला और दृढ़ वैराग्य को भली प्रकार प्राप्त हुआ पुरुष निरंतर ध्यान-योग के परायण हुआ सात्विक धारणा से अंतःकरण को वश में करके तथा शब्दादिक विषयों को त्यागकर और राग-द्वेषों को नष्ट करके, अहंकार, बल, घमंड, काम, क्रोध और परिग्रह को त्यागकर ममतारहित और शांत हुआ सच्चिदानंदघन ब्रह्म में एकीभाव होने के योग्य होता है।
बहुत-सी बातें कृष्ण इस सूत्र में कहे हैं। जो आधारभूत हैं, उन्हें ख्याल ले लें।
स्पृहारहित... ।
जिसकी दूसरे से कोई ईर्ष्या नहीं है। जब तक तुम्हारी दूसरे से कोई स्पृहा है, प्रतिस्पर्धा है, तब तक तुम इसी संसार की किसी चीज की खोज कर रहे हो। क्योंकि इस संसार में चीजें कम हैं, चाहने वाले ज्यादा हैं। इसलिए हर चीज पर संघर्ष है।
परमात्मा में संघर्ष की कोई जरूरत नहीं है। चाहने वाले हैं ही नहीं;
और परमात्मा बहुत है। और परमात्मा को एक चाहे, हजार चाहें, इससे परमात्मा खंडित नहीं होता। इसलिए स्पृहा की वहां कोई भी जरूरत नहीं है।
जहां तक स्पृहा है, वहां तक संसार है। तुम परमात्मा को सीधा ही चाहना।
किसी दूसरे से प्रतिस्पर्धा का कोई प्रश्न मत उठाना। वहां इतना है कि सभी चाहें, तो भी पूरा न होगा।

उपनिषद कहते हैं, उस पूर्ण से हम पूर्ण को भी निकाल लें, तो भी पीछे पूर्ण ही शेष रह जाता है। कितना ही उसमें से लेते जाओ, चुकेगा नहीं। इसलिए घबड़ाना मत और स्पृहा मत करना।
विशुद्ध बुद्धि से युक्त... ।
विचार से भरी बुद्धि अशुद्ध बुद्धि है। बुद्धि तो है, लेकिन धुएं से दबी है। जैसे ज्योति जलती हो दीए की, और धुएं में घिरी हो। विशुद्ध बुद्धि का अर्थ है, जहां धुआं खो गया, विचार न रहे। सिर्फ ज्योति रह गई, सिर्फ बुद्धि का शुद्ध स्वरूप रह गया।
एकांत और शुद्ध देश का सेवन करने वाला... ।
और जैसे-जैसे व्यक्ति कर्ता का भाव छोड़ता है, विचार छोड़ता है, वैसे- वैसे उसके भीतर एकांत का उदय होता है।
अभी तो तुम सदा चाहते हो, दूसरा, भीड़, समाज। अकेले हुए कि डरे। अकेले हुए कि लगता है, क्या करें, क्या न करें! अकेले में ऊब आती है। अपने से साथ होने को तुम राजी ही नहीं हो। और जो अपने साथ होने को राजी नहीं है, वह परमात्मा के साथ न हो सकेगा। क्योंकि अंततः अपने साथ होना ही परमात्मा के साथ होना है। क्योंकि वह तुम्हारे आत्यंतिक जीवन का सारभूत अंग है। वह तुम्हारा केंद्र है।
एकांत, शुद्ध देश का सेवन करने वाला, मिताहारी, जीते हुए मन, वाणी और शरीर वाला, दृढ़ वैराग्य को भली प्रकार प्राप्त हुआ पुरुष... ।
क्या है दृढ़ वैराग्य? कच्चा वैराग्य ऐसा वैराग्य है कि अभी तुमने राग
की पीड़ा भी न पाई थी और छोड़ दिया संसार। जरा-सी कुछ अड़चन हुई और भाग खड़े हुए संसार से। यह कच्चा वैराग्य काम न आएगा। तुम वापस लौट आओगे। संसार तुम्हें बुलाता रहेगा।
जीवन को ठीक से जान लेना, उसकी पीड़ा को पूरा ही भोग लेना, उसके दुख को रोएं-रोएं में उतर जाने देना, ताकि उसकी आकांक्षा शून्य हो जाए। जब कोई ठीक से जल जाता है संसार में, तभी परमात्मा के योग्य होता है।
दृढ़ वैराग्य को भली प्रकार प्राप्त हुआ पुरुष निरंतर ध्यान-योग के परायण हुआ... ।
और करो तुम कुछ भी--उठो, बैठो, सोओ, चलो, चुप रहो, बोलो--पर ध्यान की सतत धारा भीतर बहती रहे, होश बना रहे। भोजन करो तो होशपूर्वक, राह पर चलो तो होशपूर्वक। ऐसे शराबी की तरह तुम्हारा जीवन न हो; मूर्च्छा न हो, जागा हुआ हो, जो भी तुम करो। तुम्हारे प्रत्येक कृत्य के मनके में ध्यान समा जाए, ध्यान का धागा पिरो जाए। तो ही वह जो तत्वज्ञान की परा-निष्ठा है सच्चिदानंदघन ब्रह्म, वह उपलब्ध होता है।
अहंकार, बल, घमंड, काम, क्रोध और परिग्रह को त्यागकर ममतारहित और शांत हुआ सच्चिदानंदघन ब्रह्म में एकीभाव होने के योग्य होता है।
परमात्मा तो इसी क्षण मिल सकता है; तुम तैयार नहीं हो।
लोग मुझसे पूछते हैं, परमात्मा को कैसे पाएं? मैं उनसे कहता हूं, यह पूछो ही मत। तुम इतना ही पूछो कि हम परमात्मा के योग्य कैसे बनें। तुम जिस क्षण योग्य हो जाओगे, वह मिला ही हुआ है।
लेकिन यह कोई पूछता ही नहीं कि हम परमात्मा के कैसे योग्य बनें। ऐसा
तो हम मानकर ही चलते हैं कि हम तो योग्य ही हैं; परमात्मा कैसे मिले! और अगर नहीं मिलता, तो हम कहते हैं, परमात्मा है ही नहीं। होता तो मिलता। परमात्मा के न मिलने से हमें यह बोध नहीं होता कि हो सकता है, हम पात्र
न हों, योग्य न हों। अंधा कहता है, प्रकाश होगा ही नहीं, इसलिए मुझे दिखाई नहीं पड़ता। बहरा कहता है, शब्द होते ही न होंगे, संगीत है ही नहीं, इसीलिए तो मुझे सुनाई नहीं पड़ता।
तुम भी कहते हो, परमात्मा होगा ही नहीं, इसीलिए तो मुझे मिलता नहीं। अपने को तो तुम मान ही लेते हो कि आंख वाले हो, कान वाले हो, पात्र हो। वहीं भूल हो जाती है।
अगर परमात्मा न मिले, तो पूछना कि मैं कैसे पात्र बनूं। अगर आनंद न मिले, तो पूछना कि मैं कैसे पात्र बनूं। अगर जीवन में अमृत का स्वाद न आए, तो पूछना कि मैं कैसे पात्र बनूं।

यहीं से फर्क हो जाता है दर्शन और धर्म का। दार्शनिक खोज में निकल जाता है, परमात्मा है या नहीं। और धार्मिक अपनी पात्रता को निर्मित करने लगता है कि मैं पात्र हूं या नहीं। और दार्शनिक खोजता ही रहता है, कभी पाता नहीं; धार्मिक पा लेता है।
तुम्हारी पात्रता ही अंततः परमात्मा का मिलन बनेगी। वह तो मौजूद ही है। शायद तुम्हारी आंख के सामने, आंख के पीछे, आस-पास, सब तरफ उसने ही तुम्हें घेरा हुआ है।
कबीर ने कहा है कि मुझे बड़ी हंसी आती है यह देखकर कि मछली पानी में प्यासी है। चारों तरफ पानी ने घेरा हुआ है, फिर भी मछली प्यासी है। तुम्हारे चारों तरफ वही है, जिसको तुम खोज रहे हो। तुम हाथ हिलाते हो,
तो उसी में। तुम बोलते हो, तो उसी में। तुम चलते हो, तो उसी में। तुम सोते हो, तो उसी में। तुम उसी से आए हो; उसी में खो जाओगे। और पूछते हो, वह कहां है?
निश्चित ही, तुम्हारे पास वह संवेदनशील हृदय नहीं है, जो उसे पहचान ले; वह संवेदनशील आंख नहीं है, जो उसे देख ले; वह संवेदनशील हाथ नहीं है, जो उसे छू ले।
इसलिए तुम परमात्मा के संबंध में प्रश्न ही मत उठाना; अपनी पात्रता
के संबंध में ही प्रश्न उठाना। और जिसने भी अपनी पात्रता के संबंध में प्रश्न उठाया, वह एक दिन परमात्मा को पाने वाला हो ही गया। और जो परमात्मा के संबंध में पूछता रहा, एक न एक दिन उसे यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि परमात्मा नहीं है। क्योंकि जब तुम खोजोगे, न पाओगे; खोजोगे, न पाओगे; हर तरह से उपाय करोगे, न पाओगे; अंततः नास्तिकता हाथ लगेगी। ईश्वर पर ध्यान दिया, तो नास्तिक हो जाओगे। अपने पर ध्यान दिया, तो आस्तिक होना सुनिश्चित है।
इसलिए कुछ ऐसे भी आस्तिक पृथ्वी पर हुए, जिन्होंने ईश्वर की बात ही न की; बुद्ध और महावीर ने चर्चा ही नहीं उठाई। उसकी कोई बात उठानी ही बेकार है। उन्होंने तो सिर्फ अपनी ही बात की। अपने को शुद्ध किया, निर्विकार किया, अपने भीतरी कुंवारेपन को उपलब्ध किया। उसी क्षण सब मिल गया।
बुद्ध से जब भी कोई पूछता है ईश्वर के संबंध में, वे कहते हैं, व्यर्थ
के प्रश्न मत उठाओ। यह बकवास छोड़ो। यह बात करने की ही नहीं है। तुम तो अपनी बात करो। तुम्हारे पात्र को कैसे शुद्ध किया जाए, यही काफी है।
यहां पात्र तैयार हुआ नहीं, कि वहां घन घिरे नहीं, वर्षा हुई नहीं।
क्षणभर की भी देरी नहीं होती।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग आठ
गीता दर्शन अध्याय 18
पंद्रहवां प्रवचन

गीता-पाठ और कृष्ण-पूजा

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काड्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्।। 54।।
भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्।। 55।।
सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्।। 56।।
चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव।। 57।।
मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।
अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनड्क्ष्यसि।। 58।।
फिर वह सच्चिदानंदघन ब्रह्म में एकीभाव से स्थित हुआ प्रसन्नचित्त वाला पुरुष न तो किसी वस्तु के लिए शोक करता है और न किसी की आकांक्षा ही करता है एवं सब भूतों में समभाव हुआ मेरी परा-भक्ति को प्राप्त होता है। और उस परा-भक्ति के द्वारा मेरे को तत्व से भली प्रकार जानता है कि मैं जो और जिस प्रभाव वाला हूं तथा उस भक्ति से मेरे को तत्व से जानकर तत्काल ही मेरे में प्रविष्ट हो जाता है।
और मेरे परायण हुआ निष्काम कर्मयोगी संपूर्ण कर्मों को सदा करता हुआ
भी मेरी कृपा से सनातन अविनाशी परम पद को प्राप्त हो जाता है।
इसलिए हे अर्जुन, तू सब कर्मों को मन से मेरे में अर्पण करके, मेरे परायण हुआ समत्वबुद्धिरूप निष्काम कर्मयोग को आलंबन करके निरंतर मेरे में चित्त वाला हो।
इस प्रकार तू मेरे में निरंतर मन वाला हुआ, मेरी कृपा से जन्म-मृत्यु आदि सब संकटों को अनायास ही तर जाएगा। और यदि अहंकार के कारण मेरे वचनों को नहीं सुनेगा, तो नष्ट हो जाएगा अर्थात परमार्थ से भ्रष्ट हो जाएगा।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः ब्रह्म में एकीभाव के लिए कल के सूत्र में विशुद्ध बुद्धि, एकांत, मनोविजय, दृढ़ वैराग्य, ध्यान-योग की परायणता आदि अनेक शर्तें बतायी गयी हैं, जब कि उनमें से किसी एक के भी ठीक से सध जाने से सब सध जा सकता है। ऐसा क्यों है?

निश्चय ही, एक के सध जाने से सब सध जाएगा, लेकिन वह एक प्रत्येक के लिए अलग-अलग होगा। किसी के लिए दृढ़ वैराग्य होगा वह एक; किसी के लिए ध्यान-योग होगा; किसी के लिए समत्व; किसी के लिए कुछ और। इसलिए कृष्ण ने सारी बातें गिना दी हैं। उनमें से एक ही तुमने साध लिया, तो सब सध जाएगा।
सब साधना नहीं है। लेकिन अनेक प्रकार के लोग हैं, भिन्न-भिन्न उनकी जीवन-व्यवस्था है, भिन्न-भिन्न उनके प्रकार हैं। उन सबके लिए एक ही मार्ग नहीं हो सकता। इसलिए तुम इस चिंतना में मत पड़ना कि इतने सब कैसे सधेंगे! तुम इन सब में उस एक को चुन लेना, जिससे तुम्हारे हृदय की वीणा बजती हो। इसमें से एक को चुन लेना, जिससे तुम्हारा तालमेल बैठता हो।
जैसे हो सकता है, तुम अगर बुद्धि-केंद्रित व्यक्ति हो, तो भक्ति की बात तुम्हें न जमेगी। किसी के परायण होना, किसी के लिए समर्पित होना, किसी के चरणों में अपने को डाल देना, तुम्हें जंचेगा ही नहीं। तुम डाल भी दोगे, तो भी अधूरा-अधूरा होगा। और अधूरे से कभी भी पूरे को नहीं पाया जा सकता। और तुम जबरदस्ती अपने को समझाकर अपने से विपरीत कुछ कर भी लोगे, तो सतह पर ही होगा। ऊपर से रंग-रोगन हो जाएगा; भीतर तुम वही रहोगे, जो तुम थे।

इसलिए भूलकर भी ऐसी कोई बात मत करना जो तुम्हें जंचती ही न हो। जो तुम्हें प्रथम से ही न जंचे, अंततः उससे तुम कहीं पहुंच न पाओगे। उसे तुम पहले ही छोड़ देना। और घबड़ाने का कोई कारण नहीं है, क्योंकि और मार्ग हैं, जिनमें से कोई तुम्हें जम जाएगा, जंच जाएगा।
अगर तुम बुद्धिवादी व्यक्ति हो, तो हृदय की बात तुम्हें बेतुकी मालूम होगी। तो तुम्हारे लिए तो उपाय यही होगा कि तुम बुद्धि को शुद्ध करने में लग जाओ। तुम बुद्धि के सोने को ही निखारो। तुम विचार का सब कूड़ा-करकट छोड़ दो; तुम निर्मल बुद्धि हो जाओ। तुम्हारी बुद्धि एक दर्पण बन जाए, जिसमें कोई तरंगें न उठती हों। जैसे शांत झील हो और पूर्णिमा का चांद उसमें झलके, ऐसी तुम्हारी बुद्धि हो जाए।
वही विशुद्ध बुद्धि है। और ऐसा करके तुम वही पा लोगे, जो हृदय वाला व्यक्ति भक्ति से पाता है, पूजा-प्रार्थना से पाता है। प्रेमी जिसे प्रेम से पाता है, उसे तुम ऐसे शुद्ध बुद्धि के द्वारा भी पा लोगे।
क्योंकि वह अगर एक ही द्वार से मिलता होता, तो बड़ी मुश्किल हो जाती। अनंत उसके द्वार हैं। वस्तुतः जितने व्यक्ति हैं, उतने ही उसके द्वार हैं। तुम जहां खड़े हो, वहीं से उसका मार्ग है। तुम्हें किसी दूसरे व्यक्ति जैसा नहीं होना है। न तुम्हें किसी और के वस्त्र ओढ़ने हैं, न किसी और के विचार धारण करने हैं। तुम्हें तो अपने को समझना है। और तुम्हारी उस समझ से ही तुम्हारा द्वार खुल जाएगा।
लेकिन हो सकता है, तुम बुद्धिवादी व्यक्ति न हो, तो चिंता का कारण नहीं है, तो तुम भक्ति को चुनना, प्रेम-प्रार्थना-पूजा को चुनना; अर्चना तुम्हारा जीवन बन जाए, आराधना तुम्हारे भाव की दशा बने। वहां से भी तुम वहीं पहुंच जाओगे।
तुम्हारा हृदय शुद्ध हो जाए, तो बुद्धि शुद्ध हो जाती है। तुम्हारी बुद्धि शुद्ध हो जाए, तो हृदय शुद्ध हो जाता है। तुम्हारे भीतर कहीं से भी शुद्धि की किरण उतर आए। कहां से उतरती है, यह बात गौण है। बस, उतर आए कि तुम्हारे भीतर का अंधकार टूट जाएगा।
ऐसा समझो कि तुम्हारे भवन के बहुत द्वार हैं, बहुत वातायन, खिड़कियां हैं। कमरे में अंधेरा भरा है। अब पूरब की खिड़की से सूरज की किरण आए, कि पश्चिम की खिड़की से सूरज की किरण आए, कि दक्षिण की खिड़की से सूरज की किरण आए, इससे क्या फर्क पड़ता है! किरण किसी भी खिड़की से आए, भीतर का अंधकार मिट जाएगा।
तो तुम ध्यान, भीतर का अंधकार मिटे, इस पर देना। इसलिए कृष्ण ने सारे मार्ग कहे हैं।
दो तरह के व्यक्ति हैं। एक हैं, जो जीवन के अंतर्संबंधों में ही परमात्मा की झलक पाते हैं। एकांत में होते ही वे मरुस्थल जैसे हो जाते हैं। उनके भीतर सब सूख जाता है। उनके लिए तो अंतर्संबंध में ही झरना बहता है जीवन का।
तो ऐसे व्यक्ति अगर महावीर जैसे पर्वत-पहाड़ों में एकांत खड़े हो जाएंगे, तो सिर्फ सूखेंगे, मुरझाएंगे। उनके जीवन का कमल खिलेगा नहीं। वह बात उनके लिए थी ही नहीं। उनके जीवन में प्रफुल्लता न आएगी। तुम पाओगे कि वे कुम्हला गए। वे जितने बाजार में थे, उससे भी कम हो गए जंगल में जाकर। उनके भीतर कुछ नष्ट हो गया, टूट गया। उनके लिए तो उचित था कि वे जीवन के संघर्ष में ही, लोगों की भीड़ में ही, अंतर्संबंधों में ही खोजते उसे। एकांत उन्हें न जमेगा।
पर दूसरे तरह के लोग भी हैं कि भीड़ में जाते ही उन्हें लगता है कि उनका जीवन संकट में पड़ गया। दूसरे की मौजूदगी कांटे की तरह चुभने लगती है। अंतर्संबंध सिर्फ दुख देते हैं। भीड़ सिर्फ उपद्रव मालूम पड़ती है। समाज में उन्हें रस नहीं है। जब भी वे कभी खोज लेते हैं एक कोना, एकांत, जहां थोड़ी देर को अकेले में हो जाते हैं, वहीं उनके जीवन का वैभव खिलता है। तो उनके लिए कोई जरूरत नहीं है कि वे संबंधों में खोजें।
कृष्णमूर्ति निरंतर लोगों से कहते हैं, अंतर्संबंध दर्पण है। उस अंतर्संबंध में ही तुम अपने ध्यान को खोजना।

कुछ लोगों के लिए यह बात ठीक है; सभी के लिए ठीक नहीं। जिनके लिए यह ठीक नहीं है, उन्हें तो एकांत ही खोजना पड़ेगा। वे तो जब बिल्कुल अकेले हो जाएंगे, उस परम एकाकीपन में ही उनके भीतर का नाद उन्हें सुनायी पड़ेगा। उन्हें दूसरे के माध्यम से जाने की जरूरत नहीं है।
पर कुछ लोग हैं, जिन्हें एकांत में कुछ भी सुनायी न पड़ेगा, जिन्हें एकांत भयावना मालूम होगा, जो अकेले में सिर्फ मृत्यु का अनुभव करेंगे, जीवन की कोई भी झलक न आएगी।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, विशुद्ध बुद्धि, एकांत, मनोविजय, दृढ़ वैराग्य, ध्यान-योग परायणता... । कुछ भी, जो तुम्हें ठीक लग जाए। और इसलिए भी वे कहते हैं कि तुम्हें ठीक-ठीक पता भी नहीं है कि कौन-सी बात ठीक जमेगी। तुम्हें प्रयोग करने पड़ेंगे।
जीवन तो एक निरंतर प्रयोग है। उसमें गणित के फार्मूले नहीं हैं कि तुमने पकड़ ली लकीर और चल पड़े। पहले तो तुम्हें खोजना ही होगा कि कौन-सा मार्ग तुम्हें जमेगा। बहुत बार भटकोगे, बहुत बार गलत मार्ग पर चलोगे, लौटोगे, वापस आओगे। अनेक भूलें होंगी, चूकें होंगी, तब कहीं ठीक से साज बैठेगा। तो इसलिए अगर एक ही मार्ग बता दिया जाए, तो डर है कि तुम पहुंच ही न पाओगे।
ऐसा हुआ, एक मजे की घटना घटी। मैं वर्धा में बजाजवाड़ी में मेहमान था। जमनालाल जी का अतिथिगृह। जमनालाल जी के पुराने मुनीम, वृद्ध, बड़े अनुभवी और अनूठे सज्जन चिरंजीलाल बड़जात्या मेरी देख-रेख करते थे।
जिस दिन मुझे बजाजवाड़ी छोड़नी थी, जाना था वर्धा से, ट्रेन मेरी रात तीन बजे जाती थी। तो मैंने उन्हें कहा कि तीन बजे मुझे जाना है। तो उन्होंने कहा, आप चिंता न करें। मैं सभी इंतजाम किए देता हूं। मैंने उनसे पूछा, सभी इंतजाम? उन्होंने कहा, आप रुकें, आप देखेंगे।
उन्होंने ड्राइवर को बुलाया, कहा कि कार ठीक दो बजे यहां द्वार पर लग जानी चाहिए। फिर तांगे वाले को बुलाया और उसे कहा कि ठीक दो बजे तांगा खड़ा कर देना। फिर एक रिक्शे वाले को बुलाया और कहा कि तू तो रिक्शा अभी ले आ और यहीं सो जा।
मैंने उनसे पूछा, मुझ अकेले के लिए तीन बहुत ज्यादा हो जाएंगे। कोई जरूरत नहीं है। उन्होंने कहा कि जमनालाल जी से मैंने कुछ बातें सीखीं, उनमें एक यह है कि एक काम करना हो, तो तीन इंतजाम करने चाहिए। अगर कार आ गयी, तो ठीक। क्या भरोसा, आदमी सो जाए, झपकी लग जाए! सर्द रात है, कार स्टार्ट ही न हो! तो तांगा वाला आ जाएगा। मगर घोड़ा बीमार पड़ जाए; तांगा वाला किसी और काम में उलझ जाए, भूल जाए, न आ सके। तो यह रिक्शे वाला यहां सोया ही हुआ है। और अगर कोई भी न रहा, तो मैं तो यहां हूं ही। सामान मैं ढोऊंगा; हम पैदल चलेंगे। तो मैंने सब इंतजाम कर लिए हैं!
कृष्ण सारे इंतजाम किए दे रहे हैं। इसलिए कृष्ण बार-बार बहुत-से शब्द दोहराते हैं। तुम कहोगे, एक से कहने से ही काम चल जाता, इतने शब्द क्यों दोहराते हैं? क्यों बार-बार दोहराते हैं?
वे सब इंतजाम कर रहे हैं, ताकि कोई भी संभावना शेष न रह जाए, जिससे तुम पहुंच सकते थे और जिसका तुम्हें पता न हो। सब द्वार खोल देते हैं। फिर तुम्हें जिससे आना हो, जिससे आना तुम्हें जमे, रास पड़े, तुम उसी से आ जाना। मार्ग सब उसी के हैं। सब मार्ग उसी की तरफ ले जाते हैं। लेकिन कोई मार्ग किसी को ले जाएगा, कोई मार्ग किसी और को ले जाएगा।

दूसरा प्रश्नः आपने कहा कि भगवत्ता हमें घेरकर खड़ी है; उसकी अहर्निश वर्षा हो रही है; सिर्फ हमारी पात्रता नहीं है। हमें हमारी अपात्रता का बोध आत्महीनता के भाव से भरने लगता है। उससे बचकर पात्रता को कोई कैसे उपलब्ध हो?

अगर आत्महीनता का भाव पैदा हो गया, तो पात्रता तो बढ़ेगी नहीं, अपात्रता मजबूत हो जाएगी। क्योंकि उसे पाने चले हो, हीन-भाव से उसे न पा सकोगे। हीन-भाव में तो आदमी सिकुड़ जाता है। हीन-भाव में तो आदमी अपने पर ही आस्था खो देता है। हीन-भाव में तो आदमी डर जाता है, मैं न पा सकूंगा! मेरी

योग्यता नहीं है! परमात्मा मिलने को भी राजी हो, तो वह भाग खड़ा होता है कि यह हो ही नहीं सकता। मैं, और परमात्मा को पा लूं? यह नहीं हो सकता। मैं तो अपात्र, मैं तो महापापी, मैं तो दीन-हीन, अपराधी!
जब मैं तुमसे कहता हूं कि उसकी अहर्निश वर्षा हो रही है, तो सत्य ही कह रहा हूं। क्योंकि उसके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। हवाओं में वही बहता है, फूलों में वही खिलता है, चांद-तारों में उसी की रोशनी है, झरनों में उसी का नाद है। मैं बोलता हूं, तो वही बोलता है; तुम सुनते हो, तो वही सुनता है। उसके अतिरिक्त कुछ और है नहीं। इसलिए वह तो निरंतर ही बरस रहा है; अपने पर ही बरस रहा है; क्योंकि उसके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। अपने को ही अपने को दिए जा रहा है, क्योंकि कोई दूसरा भी लेने वाला नहीं है।
लेकिन यह भी मैं जानता हूं कि तुम उससे चूकते जा रहे हो। उसकी वर्षा
हो रही है, लेकिन तुम पहचान नहीं पाते। वह द्वार पर दस्तक देता है, लेकिन तुम कुछ समझ नहीं पाते। तुम अपनी नींद में हो, अपनी तंद्रा में हो। वह सामने भी खड़ा हो जाता है, तो तुम्हें प्रत्यभिज्ञा नहीं होती। फूल के पास से तुम गुजर जाते हो; फूल ही दिखता है, वह नहीं दिखाई पड़ता। झरने में नाद हो रहा है; पानी की आवाज सुनाई पड़ती है, वह नहीं सुनाई पड़ता।
मैंने सुना है, दो ईसाई फकीर एक पहाड़ी रास्ते से गुजरते थे। दूर पहाड़
के शिखर पर बने एक चर्च की संध्या घंटियां बजने लगीं। बड़ी मधुर घंटियों का नाद था। सारा पहाड़ अनुगूंज से भर गया। घाटियां प्रतिध्वनि से भर गयीं। एक फकीर ने आह्लादित होकर दूसरे से कहा, सुनते हो, कितना मधुर नाद है! इससे प्यारी घंटियां मैंने कभी नहीं सुनीं। और घाटियों ने भी किस स्वागत से प्रतिध्वनि की है!
उस आदमी ने कहा, जब तक यह घंटियों का उपद्रव बंद नहीं होता, तब तक मैं कुछ भी नहीं सुन पाऊंगा। तुम क्या कह रहे हो, यह भी मुझे सुनाई नहीं पड़ रहा है। इन घंटियों को बंद हो जाने दो।
झरने में तुम्हें नाद सुनाई पड़ता है, नदी का, पानी का। और अगर मैं तुमसे कहूं, सुनो परमात्मा का नाद! तो तुम कहोगे, पहले यह पानी की बकवास तो बंद हो जाने दो। फिर ही मैं सुन सकूंगा। और वही बकवास उसका नाद है।
जहां भी तुम देखते हो, तुम उसी को देखते हो; पहचान नहीं पाते। देखते तो उसी को हो, भूल अगर है तो पहचान की है। लेकिन इससे तुम यह मत समझ लेना कि तुम अपात्र हो। पात्र तुम पूरे हो, जरा से होश की जरूरत है। आंखें तुम्हारे पास हैं, जरा खोलने की बात है। हाथ तुम्हारे पास हैं, जरा फैलाने की बात है। हृदय तुम्हारे पास है, जरा धड़कने की बात है। सब तुम्हारे पास है। जरा-सा संयोग बिठाना है और संगीत का जन्म हो जाएगा।
इसलिए जब मैं कहता हूं कि तुम्हारी पात्रता के कारण ही तुम मिलते हो, नहीं मिलते हो, तो इससे तुम अपराध-भाव से मत भर जाना कि मैं अपात्र हूं, अन्यथा मेरी बात का तुमने उलटा ही अर्थ लिया। क्योंकि जितनी ग्लानि पैदा हो जाएगी, उतनी ही अपात्रता सुनिश्चित हो जाएगी।
मैं जब कह रहा हूं कि अहर्निश उसकी वर्षा हो रही है, तो तुम नाचो कि कोई फिक्र नहीं। मैं पात्र नहीं हूं, लेकिन वह तो बरस रहा है; पात्रता पैदा कर लेंगे। मैं पात्र भी होता और उसकी वर्षा सदा न होती, तो फिर मैं क्या करता? वह ज्यादा दुखद हालत होती। अभी तो बरस रहा है, है मौजूद। हम नहीं पहचान रहे। पहचान लेंगे; आज नहीं कल।
देखने की दृष्टि पर निर्भर करता है। आनंदित हो जाओ कि सिर्फ तुम्हारी
ही पात्रता का सवाल है। उसकी तरफ से कोई बाधा नहीं है।
थोड़ा सोचो, बाधा उसकी तरफ से होती और तुम पात्र भी होते, तो क्या करते! मैंने सुना है, एक जापानी कंपनी ने, एक जूता बनाने वाली कंपनी ने अपने एजेंट को अफ्रीका भेजा। कोई सौ वर्ष पहले की बात है। और एक अमेरिकी कंपनी ने भी अपने जूता बनाने वाले, जूता बेचने वाले एजेंट को अफ्रीका भेजा। दोनों एक ही दिन उतरे। दोनों ने साथ ही जाकर बाजार की तलाश की। दोनों साथ ही लौटे। पोस्ट आफिस से जाकर दोनों ने तार किए अपने-अपने मालिकों को।
अमेरिकन ने लिखा कि तत्काल दूसरे हवाई जहाज से वापस आ रहा हूं, क्योंकि यहां जूते बिकने की कोई संभावना नहीं। कोई जूता पहनता ही नहीं।
जापानी ने लिखा कि यहां दो-तीन महीने लगेंगे। धंधे की बड़ी संभावना है।

जूते इतने बिक सकते हैं, जितने की आप कल्पना ही नहीं कर सकते। क्योंकि जूते किसी के पास भी नहीं हैं!
तथ्य एक ही था कि लोग जूता नहीं पहनते थे। एक ने देखा, जब पहनते ही नहीं हैं, तो खरीदेगा कौन! बात खतम हो गयी। वह निराश हो गया। वह लौटने की तैयारी करने लगा। एक ने देखा, जब किसी के पास भी जूते नहीं हैं, सभी बिना जूते के घूम रहे हैं, तो बाजार की पूरी संभावना है। इससे बड़ा बाजार कहां मिलेगा! तो जरा वक्त लगेगा, लोगों को समझाना पड़ेगा कि तुम नंगे पैर हो। लेकिन जूते की बिकने की बड़ी संभावना है।
तथ्य तो एक ही होता है, देखने के ढंग अलग-अलग होते हैं। तुम्हारी अपात्रता को तुम ग्लानि मत बनाओ। तुम्हारी अपात्रता को तुम प्रसन्नता समझो। क्योंकि परमात्मा मौजूद है, सिर्फ तुम्हारी जरा-सी भूल से चूक रहा है। तो भूल सुधार लेंगे। जैसे ही भूल सुधर जाएगी, सब ठीक हो जाएगा।
और ध्यान रखना, तुम कोई पाप नहीं कर रहे हो, सिर्फ भूल कर रहे हो। यहीं भारतीय जीवन-दृष्टि में और ईसाइयत-यहूदी जीवन-दृष्टि में भेद है।
यहूदी और ईसाई कहते हैं, आदमी पापी है। हम कहते हैं, आदमी अज्ञानी है।
इसमें बड़ा फर्क है। जब हमने किसी को पापी कह दिया, तो हमने निर्णय ले लिया।
हमने सुधार का द्वार बंद कर दिया। हमने घोषणा ही कर दी कि अब कोई संभावना नहीं है। हमने वक्तव्य दे दिया मूल्य का, कि तुम पापी हो। हमने गाली दे दी।
लेकिन भारत में हम इतना ही कहते हैं कि आदमी से भूलें होती हैं, पाप नहीं होता।
एक छोटा बच्चा दो और दो जोड़ रहा है और पांच लिख देता है। इसको तुम पाप कहोगे या भूल? दो और दो चार होते हैं; माना। छोटा बच्चा जोड़ता है, दो और दो पांच लिख देता है। यह पाप है या भूल?
इसको तुम कहोगे, यह भूल है। पाप कहना जरा जरूरत से ज्यादा हो जाएगा। इसमें पाप जैसा कुछ भी नहीं है। और भूल भी कोई बहुत बड़ी नहीं है, क्योंकि चार और पांच में फासला कितना है? जरा-सा ही फासला है। बच्चा काफी करीब पहुंच गया है। जरा एक कदम इधर-उधर और, कि सब ठीक हो जाएगा।
हम कहते हैं, जीवन में आदमी की भूलें हैं, पाप कुछ भी नहीं है। भूलें सुधारी जा सकती हैं। पाप को सुधार भी लो, तो भी कचोट रह जाती है। पाप को सुधार भी लो, तो दाग छूट जाता है। पाप को सुधार भी लो, तो यह ख्याल रह जाता है कि कभी मैं पापी था। भूल ऐसे मिट जाती है, जैसे पानी पर खींची रेखाएं मिट जाती हैं। पाप ऐसा है, जैसे पत्थर पर खींची गयी रेखा हो।
यदि तुम पूरब की मनोभावना को समझो, तो हमने पूरब में पाप माना ही नहीं है। पाप को भी हम एक भूल ही कहते हैं। बस, भूल है; छोटे बच्चे हैं, होगी ही, स्वाभाविक है। इसमें छोटे बच्चों को कोई बहुत आत्मग्लानि से भरने की जरूरत नहीं है।
अगर तुम परमात्मा को चूक रहे हो, तो बिल्कुल स्वाभाविक है। इससे कोई दंश मत लो, सिर पर बोझ मत लो।
अगर तुम अहोभाव से भरकर चलो, विधायक दृष्टि से भरकर चलो, तो पात्रता पैदा होने लगेगी। जितने ही तुम हलके हो जाओगे बोझ से, उतने ही पात्र हो जाओगे, उतने ही तुम्हें पंख लग जाएंगे। तब तुम उड़ सकते हो।
नहीं; मेरी बातों को सुनकर अगर आत्मदीनता का भाव आने लगा, तो तुम चूक
ही गए मेरी बात ही। तुम कुछ और ही समझ गए, जो मैंने कहा ही न था।
यही तो मुझमें और तुम्हारे और महात्माओं में फर्क है। उनकी चेष्टा है
कि वे तुम्हें अपराधी सिद्ध करें। उनकी चेष्टा है कि वे तुम्हें दीन सिद्ध करें। उनकी चेष्टा है कि वे तुम्हें ग्लानि से भर दें, तुम्हें नर्क भेज दें।
मैं तुमसे कहता हूं कि नर्क कहीं है ही नहीं, स्वर्ग को ही गलत ढंग से देखना है। नर्क तुम्हारी भ्रांत दृष्टि है। ऐसे ही जैसे गुलाब की झाड़ी के पास तुम गए। बड़े फूल खिले हैं। और तुम फूलों को तो न देखे और कांटों से उलझ गए और कांटे गिनने लगे। और तब कांटे गिनने में कोई कांटा चुभ गया। फिर तुम डर गए। फिर तुम डर गए कि इस फूल के पास जाना भी उचित नहीं है। तुम घबड़ा गए। न तो तुम फूल की सुगंध जान पाए, न उसका सुकुमार, कुंवारापन जान पाए; न फूल की ताजगी जान पाए, न फूल का गीत सुन पाए। कांटे से उलझ गए।

जैसे गुलाब के फूल में कांटे हैं, ऐसे स्वर्ग में गलत ढंग से प्रवेश कोई कर जाए, तो नर्क है। तुम सुख को भी दुख बना लेते हो अपनी ही दृष्टि के कारण। दुख भी सुख बन जाता है दृष्टि के रूपांतरण से।
मुसलमान फकीर बायजीद एक रास्ते से गुजरता था। चोट लग गयी। एक पत्थर
से पैर टकरा गया। आकाश की तरफ देखकर प्रार्थना कर रहा था चलते-चलते। स्मरण कर रहा था प्रभु का। चोट लग गई। पैर लहूलुहान हो गया। वहीं घुटने टेककर बैठ गया। लेकिन उसकी आंखों से खुशी के आंसू बहने लगे।
उसके भक्तों ने कहा, यह जरा जरूरत से ज्यादा है। जिसकी तुम प्रार्थना करते हो, वह तुम्हारी इतनी भी फिक्र नहीं करता कि तुम आकाश की तरफ देख रहे हो, तो वह कम से कम तुम्हारे पैर को बचाए! उसको कुछ पड़ी ही नहीं है। तुम खाली आकाश में ही अपनी बातें किए चले जा रहे हो। यह सब प्रार्थना बेकार है। कोई है नहीं वहां। और अब तुम किसलिए प्रसन्न हो रहे हो? पैर से खून बह रहा है!
बायजीद ने कहा, नासमझो, तुम्हें पता नहीं। फांसी हो सकती थी, उसने बचा दी। बुराइयां और भूलें तो मैंने इतनी की हैं कि अगर आज फांसी भी लगती, तो भी कम थी। लेकिन सिर्फ पैर में थोड़ी-सी पत्थर की चोट लगी; थोड़ा-सा खून बहा; उसकी बड़ी कृपा है। प्रार्थना सुन ली गयी।
बायजीद ने कहा, तुम्हें पता नहीं है, क्या हो सकता था। मुझे पता है, क्या हो सकता था। प्रार्थना न होती आज बचाने को, तो फांसी लगती। प्रार्थना ने छाते की तरह ढांक लिया, बचा लिया। जरा-सी चोट लगी, बच गए। धन्यवाद न दूं! प्रसन्नता से नाचूं न!
अगर देखने की दृष्टि विधायक हो, तो तुम शिकायत में से भी धन्यवाद खोज लोगे। देखने की दृष्टि निषेधात्मक हो, तो तुम अहोभाव में भी शिकायत खोज लोगे। तुम पर निर्भर है। स्वर्ग तुम्हारी दृष्टि है, नर्क तुम्हारी दृष्टि है।
मेरी बातों को सुनकर तुम अपात्रता के भाव से मत भर जाना, अपात्रता की ग्लानि से मत भर जाना। मेरी बात को सुनकर तो तुम इस आनंद से भरना कि परमात्मा अहर्निश बरस रहा है। जरा-सी भूल है।
बुद्ध कहते थे, वर्षा हो रही हो, तुम घड़े को उलटा रख दो; पानी गिरता रहेगा, घड़ा खाली का खाली रह जाएगा। जरा-सी ही बात थी। ऐसा न रखकर, वैसा रख दिया होता; उलटा न रखा होता। कोई बहुत बड़ी भूल नहीं हो रही थी; लेकिन इतनी- सी भूल और घड़ा पानी से खाली रह जाएगा। उलटा रख दिया।
तुम्हारी अपात्रता भी इतनी ही है, जैसे घड़ा उलटा हो। कोई बहुत बड़ी समस्या मत बनाओ।
मेरे अनुभव में ऐसा है कि तुम छोटी-छोटी समस्याओं को भी बड़ा बना लेते हो। क्योंकि तुम्हारा अहंकार हर चीज को बड़ा बनाने में कुशल हो गया है; छोटी बातें मानता ही नहीं। फोड़ा-फुंसी हो जाए, तुम कैंसर की बात शुरू कर देते हो। तुम्हारा अहंकार मानता ही नहीं कि तुम जैसे महापुरुष को फोड़ा- फुंसी हो सकता है! होगा, तो कैंसर ही होगा।
मैं एक कालेज में प्रोफेसर था। एक महिला भी वहां प्रोफेसर थी। उसकी बकवास मुझे रोज ही सुननी पड़ती। जब भी मैं उसके आस-पास कहीं पड़ जाता, वह अपना रोना शुरू कर देती।
उसके पति ने एक दिन मुझे फोन किया कि आप मेरी पत्नी की बातों को ज्यादा गंभीरता से मत लेना। वह बढ़ा-चढ़ाकर कहती है। तो मैंने उसको कहा कि आज ही वह मुझे कह रही थी कि उसको कैंसर की बीमारी है! उसका पति हंसने लगा। उसने कहा कि कोई बीमारी वगैरह नहीं है। लेकिन उसके अहंकार को छोटी चीजें जंचती ही नहीं। छोटी-मोटी बीमारी उसे होती ही नहीं। उसे बड़ी बीमारियां होती हैं।
तुम्हारा अहंकार ऐसा है कि तुम हर चीज को बड़ी कर लेते हो। बुराई को भी बड़ा कर लेते हो। और बड़ी हैरानी की बात है।
संत अगस्तीन ने कन्फेशंस लिखे हैं अपने जीवन के। उनको पढ़ते वक्त बहुत बार ऐसा लगता है कि वह बढ़ा-चढ़ाकर कह रहा है। इतने पाप आदमी कर नहीं सकता।
यह आदमी की हैसियत के बाहर है। यह मुझे सदा से शक था कि इसमें कुछ बढ़ा- चढ़ाकर इसने कहा है।

लेकिन कोई पापों को क्यों बढ़ा-चढ़ाकर कहेगा! अब मनोवैज्ञानिक भी मुझसे राजी हैं। जितना वे अध्ययन कर रहे हैं कन्फेशंस का, उतना ही वे कहते हैं कि इस आदमी ने बढ़ा-चढ़ाकर बात कही है।
गांधी ने अपनी आत्मकथा में जिन पापों का उल्लेख किया है, वह काफी बढ़ा- चढ़ाकर किया है। उतने पाप किए नहीं हैं।
अब तुम कहोगे कि आदमी अच्छाइयों को बढ़ा-चढ़ाकर कहे, यह तो समझ में आता है। बुराइयों को क्यों कोई बढ़ा-चढ़ाकर कहेगा? बुराइयों को तो आदमी ढांकता है!
यह बात सच है कि बुराइयों को आदमी ढांकता है। वह भी अहंकार के लिए, ताकि किसी को पता न चले। बुराइयों को वह उघाड़ता भी है, वह भी अहंकार के लिए, ताकि किसी को पता चले कि इतनी बुराइयां मैंने कीं और उनको मैं पार भी कर गया और अब मैंने सब छोड़ दिया है।
एक संत के संबंध में मैं पढ़ रहा था। कहते हैं, वह बड़ा विनम्र आदमी था। लेकिन मरते वक्त जो वचन उसने कहे... उसके भक्त तो ऐसा ही मानते हैं कि बड़ी विनम्रता में कहे, लेकिन मैं थोड़ा हैरान हुआ। मरते वक्त उसने परमात्मा की तरफ आंखें उठायीं और कहा कि देख, मुझसे बड़ा पापी कोई भी नहीं।
भक्त तो सोचते हैं कि उसने कहा कि मुझसे बड़ा पापी कोई भी नहीं। कैसा विनम्र आदमी है! लेकिन वह यह कह रहा है कि मुझसे बड़ा पापी कोई भी नहीं।
पापियों में भी मैं प्रमुख हूं। मुझे कोई मात नहीं कर सकता।
अहंकार अदभुत है। वह पुण्य में भी आगे खड़ा होना चाहता है, पाप में भी आगे खड़ा होना चाहता है! असल में अहंकार को मजा सिर्फ आगे खड़े होने का है।
कहीं भी खड़ा करो, आगे खड़ा करो।
बर्नार्ड शा ने कहा है कि मैं मरकर स्वर्ग जाना पसंद न करूंगा, अगर मुझे नंबर दो खड़ा होना पड़े। मैं मरकर भी नर्क जाना ही पसंद करूंगा, अगर मुझे नंबर एक खड़ा होना मिल जाए तो।
नर्क भी तैयार है, जाने को, लेकिन नंबर एक। दोयम, दूसरे नंबर खड़े होना पड़े स्वर्ग में, कि जीसस आगे खड़े हों, बर्नार्ड शा पीछे खड़ा हो; नहीं जंचता। इससे तो नर्क ही बेहतर। कम से कम वहां आगे तो खड़े होंगे; नंबर एक तो खड़े होंगे।
अहंकार नंबर एक होना चाहता है, कुछ भी उपाय से। इसे थोड़ा ख्याल रखो। आत्मग्लानि का अतिशय रूप कहीं अहंकार का ही एक ढंग न हो। कहीं अपने पाप को ज्यादा समझकर तुम अपने अहंकार को मत भर लेना। ऐसी जटिलता है। इसलिए जब मैं कहता हूं कि परमात्मा बरस रहा है, तब तुम वर्षा पर ध्यान दो। और तुम्हारी पात्रता अगर नहीं बैठ रही है, तो कुल मतलब इतना है कि इरछा-तिरछा रखा है पात्र, उलटा रखा है, मुंह ढंका है। बस, ऐसी कोई छोटी-मोटी भूलें हैं, जिनमें कोई बड़े गौरव की जरूरत नहीं है। इनको ऐसे ही ठीक किया जा सकता है, जैसे कोई दो और दो को पांच जोड़ता हो; फिर दो और दो को चार जोड़ ले और सब ठीक हो जाता है।
अपने को ज्यादा मूल्य मत दो, अपात्रता के लिए भी मत दो।

तीसरा प्रश्नः गीता में जगह-जगह परमात्म-प्राप्ति के लिए आसक्ति और ममत्व से रहित बुद्धि की मांग है, साथ-साथ प्रेम और भक्ति की भी। क्या आसक्ति और लगाव के बिना प्रेम और भक्ति संभव है?

तभी संभव है। अगर प्रेम में आसक्ति है, तो वह मोह हो गया। अगर प्रेम में आसक्ति नहीं है, तो वह भक्ति हो गयी। प्रेम तो दोनों के मध्य में है, मोह और भक्ति। अगर प्रेम आसक्ति में गिर जाए, तो मोह हो जाता है। अगर प्रेम आसक्ति से मुक्त हो जाए, तो भक्ति हो जाता है। और प्रेम दोनों के मध्य में है।
अगर ठीक से समझो, तो प्रेम कोई अवस्था नहीं है, संक्रमण है। अगर तुमने जल्दी न की, तो प्रेम नीचे गिरेगा और मोह बन जाएगा। अगर तुमने जल्दी की, तो प्रेम भक्ति बन जाएगा। प्रेम अपने आप में एक यात्रा है। प्रेम कोई स्थिर स्थिति नहीं है, संक्रमण है; मोह और भक्ति के बीच की यात्रा है।

और अगर तुमने किसी को भी प्रेम किया है, किसी को भी, तो तुमने दोनों बातें जानी होंगी। अगर तुमने अपने बेटे को प्रेम किया है, अगर तुम मां हो और अपने बेटे को प्रेम किया है; या पत्नी हो और पति को प्रेम किया है; या पति हो और अपनी पत्नी को प्रेम किया है; या मित्र को प्रेम किया है; अगर तुमने प्रेम किया है, तो तुमने सब बातें जानी होंगी। कभी-कभी तुमने पाया होगा कि प्रेम मोह बन जाता है और तब दुख देता है। और कभी-कभी तुमने यह भी पाया होगा कि प्रेम अचानक भक्ति बन जाता है और तब परम प्रसाद रूप हो जाता है।
मां अपने बेटे को अगर प्रेम कर सके ऐसा कि उसमें आसक्ति न हो, तो बेटे में उसे कृष्ण ही दिखाई पड़ने लगेंगे। तो वह बेटा चलेगा, उसकी पायल बजेगी और उसे कृष्ण का स्मरण आने लगेगा। उसे बेटे की उस छोटी-सी छवि में परमात्मा विराजमान दिखाई पड़ेगा।
जहां भी तुम्हारा प्रेम आसक्ति से मुक्त होता है, वहीं परमात्मा को देखने के लिए द्वार खुल जाता है। अगर तुमने अपनी पत्नी को भी प्रेम किया है और उसमें आसक्ति धीरे-धीरे समाप्त हो गयी है, तो पत्नी की चेतना में तुम्हें परमात्मा दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा।
प्रेम जब ऊंचाई पर उठता है, उसको पंख लगते हैं, आसक्ति के पत्थर उससे
हट जाते हैं, फंदा छूट जाता है, तब वह भक्ति की तरफ उड़ने लगता है। और जब प्रेम का पक्षी दब जाता है पत्थरों से, गले में फांसी लग जाती है, आसक्ति से घिर जाता है, तो मोह हो जाता है।
प्रेम दोनों के बीच में है। और ध्यान रखना, अगर तुमने कुछ न किया, तो प्रेम अपने आप तो नीचे गिरता है। क्योंकि सभी चीजें अपने आप नीचे की तरफ जाती हैं; स्वाभाविक है। जैसे पानी नीचे की तरफ जाता है। छोड़ दो, बहता रहेगा। जहां भी नीचाई पाएगा, वहीं चला जाएगा। गड्ढों में पहुंच जाएगा अपने आप। गड्ढों में जाने के लिए कोई आयोजन न करना पड़ेगा। लेकिन ऊपर चढ़ाना हो, पहाड़ पर ले जाना हो, तो फिर पानी को चढ़ाने का आयोजन करना पड़ेगा, फिर शक्ति लगानी पड़ेगी। वहीं साधना शुरू होती है। वहीं तप का प्रारंभ है। कृष्ण ठीक कहते हैं, प्रेम और भक्ति, उनसे ही परमात्मा को कोई पाता है। और आसक्ति और ममत्व से ही कोई परमात्मा से चूकता है।
एक से लगते हैं। तुम्हें तो कोई फर्क ही नहीं लगता। तुम तो सोचते हो, प्रेम, मोह, भक्ति, इनमें कुछ फर्क दिखाई नहीं पड़ता। असल में तुम न तो प्रेम को जानते हो, न भक्ति को। तुम सिर्फ मोह को जानते हो। तुमने निम्नतम दशा जानी है प्रेम की।
तुम्हारी अवस्था ऐसी है, जैसे किसी आदमी ने बर्फ जाना हो। न तो पानी जाना, न भाप जानी। बर्फ जाना सख्त पत्थर की तरह, जमा हुआ। अगर तुम उसे समझाओ भी कि इसकी एक ऐसी भी दशा है, जब बर्फ पानी बन जाता है; पिघलता है, बहता है। तो वह मानेगा नहीं कि यह पत्थर जैसी चीज कैसे पिघलेगी! कैसे बहेगी!
लेकिन तुमने अगर पानी जाना है, तो तुम पाते हो कि पानी बहता है। बर्फ
तो जमा है, सख्त, मृत; पानी में जीवन है।
और भी एक दशा है, वह भाप की है, कि पानी वाष्पीभूत हो जाता है, आकाश की तरफ उठने लगता है, अदृश्य में खो जाता है। वह भक्ति है।
और जीवन में प्रत्येक चीज के तीन रूप होते हैं। ऐसा कोई वैज्ञानिक कहते हों, ऐसा ही नहीं है, आध्यात्मिक भी ऐसा ही कहते हैं कि जीवन में हर चीज के तीन रूप होते हैं। एक तो बर्फ की तरह जमा हुआ, एक पानी की तरह पिघला हुआ, एक भाप की तरह उड़ता हुआ।
मोह बर्फ है, प्रेम पानी है, भक्ति भाप है।

चौथा प्रश्नः गीता इस मुल्क में सर्वाधिक पढ़ी और सुनी गयी और कृष्ण
भी सर्वाधिक पूजे गए। फिर ऐसा कैसे हुआ कि इस देश से गीत और उत्सव खो गया और संन्यास सड़ांध से भर गया?

गीता को पढ़ने से कोई जीवन में गीत नहीं आता। गीता को पढ़ना गीतामय हो जाना नहीं है। वहीं भूल हो गयी।

कृष्ण से सुनकर इन अनूठे शब्दों को, अर्जुन जागा। हमने सोचा, इन शब्दों में कुछ जादू है। हमने सोचा, इन शब्दों में कुछ कुंजियां हैं। हमने सोचा, ये शब्द अर्जुन के हृदय के ताले को खोल दिए, तो हमारे हृदयों के ताले भी इन शब्दों से खुल जाएंगे। तो गीता का पाठ शुरू हुआ।
पांच हजार साल से हम गीता का पाठ कर रहे हैं। किसी का ताला खुलता नहीं। लगता है, शब्दों में कोई चाबी नहीं है। न केवल ताला खुलता नहीं, बल्कि गीता को दोहरा-दोहराकर ताला और जंग खा जाता है। खुलता तो है ही नहीं, खुलने की आशा भी टूट जाती है।
इस भ्रांति के पीछे कारण है। पहली बार घटना घटी थी, ताला खुला था। हमने देखा था कि अर्जुन जागा, अनूठा हो गया, नया हो गया, अद्वितीय हो गया। उठ गया गर्त से अंधकार के और प्रकाश हो गया। निश्चित ही, उसके संदेह मिट गए और उसने आत्म-भाव को पाया; वह कृष्णमय हो गया। यह हमने देखा था। स्वभावतः, देखकर हमें लगा कि इन्हीं शब्दों को हम भी दोहराए जाएं।
लेकिन जो घटना घटी थी, वह शब्दों की नहीं थी। कृष्ण जो कह रहे थे, वह तो बहाना था। कृष्ण का होना असली चीज थी।
अर्जुन जो जागा, वह कृष्ण के कहने से नहीं जागा। वह कृष्ण के होने से जागा। अर्जुन जो जागा, वह कृष्ण के शब्दों के कारण नहीं जागा, कृष्ण को पीकर जागा। शब्द तो बहाना था। शब्द की यात्रा तो ऊपर-ऊपर थी, भीतर एक गहरा लेन-देन चल रहा था, हृदय का हृदय से, प्राणों का प्राणों से। असली गीता वहां संवादित हो रही थी। वह तो हमारे हाथ से चूक गयी।
मैं यहां बोल रहा हूं। कुछ होंगे, जो केवल मेरे शब्दों को सुनकर चले जाएंगे। उनके हाथ में कचरा ही रहेगा। शब्द कितने ही सुंदर क्यों न हों, कचरा ही हैं। मूल्य तो निःशब्द का है, मौन का है। लेकिन कुछ निश्चित यहां हैं, जो सुनते वक्त शब्दों पर चिंतित नहीं हैं। शब्द के बहाने तो वे यहां बैठे हैं, सुन वे मुझे रहे हैं।
अगर मैं बोलना बंद कर दूं, तो जो लोग शब्द सुन रहे थे, वे आना बंद कर देंगे। फिर तो केवल वे ही बच रहेंगे दो-चार, जो मौन सुन रहे थे। उनके जीवन में ही क्रांति घटित होगी।
शब्द तो तुम्हारे मन को दिया गया खिलौना है। मन चुप नहीं होता; मैं बोलता हूं, उतनी देर को चुप हो जाता है; लग जाता है। इधर मन लग गया, मन उलझ गया, तो हृदय से संबंध जोड़ने की सुविधा हो जाती है।
एक हाथ से बोलता चला जाता हूं, ताकि तुम्हारा मन उलझा रहे, दूसरे हाथ
से तुम्हारे हृदय को स्पर्श करता हूं। वह तो दिखाई नहीं पड़ता। वह तो जिसका हृदय स्पर्शित होगा, वही जानेगा। वह अनुभव ही ऐसा है कि जानने वाला ही जानता है। वह गूंगे का गुड़ है; वह प्रतीति है।
तो कृष्ण ने जो अर्जुन से कहा, वह तो गौण है। जो नहीं कहा और दिया, वही मूल है। उससे अर्जुन जागा। लेकिन हम को तो सिर्फ शब्द ही सुनाई पड़े थे। यह गीता की कथा बड़ी अनूठी है। इसे तुम समझने की कोशिश करो।
कौरवों के पिता अंधे हैं। वे अंधे हैं, युद्ध पर जा नहीं सकते। वे घर बैठे हैं। लेकिन अंधी भी क्यों न हो, पिता की आकांक्षा; उसके पुत्र जीत जाएं, राज्य को उपलब्ध हों, वह महत्वाकांक्षा तो पीछे खड़ी है। अंधा पिता बेचैन है जानने को कि क्या हो रहा है! जा नहीं सकता खुद, आंख नहीं है देखने की, लेकिन जानने की आतुरता है, क्या हो रहा है! वह पूछता है संजय को।
संजय भी वहां मौजूद नहीं है। बड़े दूर से, सैकड़ों मील के फासले से संजय देखता है, जो वहां हो रहा है। क्या अर्जुन ने पूछा, क्या कृष्ण ने कहा; वह संजय धृतराष्ट्र को दोहराता है। ये प्रतीक बड़े कीमती हैं।
कृष्ण ने अर्जुन से कुछ कहा। जो कहा, वह तो ऊपर-ऊपर है; जो नहीं कहा, वही असली है। जो बिना कहे उंडेला, वही असली है। अर्जुन के पात्र को सीधा रख लिया और खुद उसमें उंडल गए। यह तो सिर्फ समझाना था कि पात्र सीधा बैठने को राजी हो जाए। यह तो फुसलाना था। यह तो उसे राजी करना था, ताकि वह अपने संदेह छोड़ दे, डांवाडोल होना छोड़ दे, बैठ जाए, तो कृष्ण पूरे उसमें उतर जाएं।

यह घटना तो अदृश्य में घटी। यह तो आंख वालों को भी दिखाई नहीं पड़ेगी, अंधे की तो बात ही छोड़ दो! यह तो वहां युद्ध के मैदान पर जो लोग खड़े थे, उनको भी दिखाई नहीं पड़ी। उन्होंने भी शब्द ही सुने होंगे।
सैकड़ों मील दूर संजय ने ये शब्द सुने। टेलीपैथी से सुने होंगे; या हो सकता है, रेडियो से सुने हों। दोनों एक-सी बातें हैं। पर बड़े दूर से सुने, यह बात महत्वपूर्ण है।
कृष्ण जैसे व्यक्ति जब बोलते हैं, तो एक तो अर्जुन है, जो पास से सुनता है। पास का अर्थ है, हृदय से सुनता है। और एक संजय है, जो दूर से सुनता है सैकड़ों मील फासले से। उसके पास शब्द ही पहुंचते हैं। और फिर संजय अंधे को बता रहा है, अंधे धृतराष्ट्र को, कि क्या हुआ।
सब उधार होता जा रहा है। हजारों मील का फासला, सुने गए शब्द। और संजय टेक्निकल आदमी है। वह कोई हृदय का आदमी नहीं है। वैज्ञानिक रहा होगा, रेडियोविद रहा होगा, टेलीपैथी में कुशल रहा होगा; विशेषज्ञ है, एक्सपर्ट है। उसके पास तकनीक है। वह जानता है कि सैकड़ों मील दूर से कैसे सुना जा सके। लेकिन उसके पास पास होने की कला नहीं है। नहीं तो संजय ही स्वयं ज्ञान को उपलब्ध हो जाता। वह तो सिर्फ रिपोर्टर है, अखबारनवीस।
उसको कुछ भी नहीं हुआ। वह अछूता ही रह गया। उसके चिकने घड़े पर कोई परिणाम न हुआ। इधर अर्जुन सोया था, जाग भी गया। इधर कृष्ण ने अर्जुन में अपने को उंडेल दिया। इस पृथ्वी पर घटने वाली कुछ अनूठी घटनाओं में एक घट गयी।
संजय को सारी खबर मिल रही है, मगर सब तकनीकी है। संजय पर ही दूर हो गयी बहुत, शब्दों की हो गयी, फासले की हो गयी, हृदय की न रही, मस्तिष्क की हो गयी। फिर संजय ने धृतराष्ट्र को कहा। फिर अंधे धृतराष्ट्र ने क्या समझा? कोरे शब्द रह गए, जिनमें से निःशब्द की ध्वनि भी खो गयी।
और फिर अंधे धृतराष्ट्र हजारों साल से गीता रट रहे हैं। आंखें नहीं हैं देखने की, कान नहीं हैं सुनने के, हृदय नहीं है अनुभव करने का। लिए हैं गीता, रखे बैठे हैं। रटे जा रहे हैं, दोहराए जा रहे हैं। कंठस्थ हो जाता है, लेकिन आत्मस्थ नहीं होता।
ऐसा सदा ही हुआ है और सदा ही होगा। क्योंकि बहुत कम होंगे, जो अपने हृदय को, पात्र को सीधा रखकर सुन पाएंगे। बड़े साहस की जरूरत है, क्योंकि बड़े से बड़ा खतरा है, दुस्साहस है किसी दूसरे व्यक्ति को अपने में निमंत्रित कर लेना, किसी दूसरे से आविष्ट हो जाना, किसी दूसरे के हाथ में अपने को सर्वांगीण रूप से छोड़ देना।
वही तो कृष्ण चाहते थे अर्जुन से, सर्व धर्मान परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। सब छोड़, और मेरी शरण आ जा। बड़े साहस की बात है। क्योंकि बेईमान मन, चालाक मन कहे जाता है, कहीं धोखा न हो! पता नहीं, इस आदमी को कुछ पता भी है या नहीं है; और कहीं हम ऐसे ही ठगे न जाएं! और तुम्हारे पास कुछ है भी नहीं ठगे जाने को। मगर फिर भी डर लगता है, कहीं चोरी न हो जाए। जो है ही नहीं, वह खो न जाए, इसका भी डर लगता है!
अर्जुन ने हिम्मत की। उतनी हिम्मत तुम्हारे पास नहीं है, तो तुम गीता
को याद करते रहो, तो तुम पंडित हो जाओगे, गीत पैदा न होगा। और पंडित के जीवन में तो गीत होता ही नहीं। उसके जीवन में कितना ही गद्य हो, पद्य नहीं होता। उसके जीवन में कविता नहीं होती, गीत नहीं होता, सुर नहीं होता, संगीत नहीं होता। व्याकरण होगी, गणित होगा, तर्क होगा, काव्य नहीं होता।
काव्य के लिए तो प्रेमी चाहिए, पंडित नहीं। और काव्य के लिए तो एक और
ही तरह की संवेदनशीलता चाहिए, जो सौंदर्य की पारखी है।
इसलिए गीता इस मुल्क में सर्वाधिक पढ़ी गयी, सुनी गयी, लेकिन कुछ हुआ नहीं। गीत खोता चला गया। हमारे हाथ में धुएं की लकीर रह गयी। जैसे आकाश से जेट निकल जाता है और पीछे धुएं की लकीर छूट जाती है, ऐसे गीता का प्राण तो निकल गया कभी का, एक धुएं की लकीर छूट गयी। उस लकीर को ही हम पकड़े बैठे हैं। और तुमने पूछा है कि कृष्ण सर्वाधिक पूजे भी गए!
वह भी झूठ है पूजा। कृष्ण को पूजना सर्वाधिक कठिन बात है। महावीर को पूजना आसान, बुद्ध को भी पूजना आसान, क्राइस्ट को भी पूजना आसान, मोहम्मद को भी पूजना आसान, लेकिन कृष्ण को पूजना बहुत कठिन है। क्योंकि महावीर के

जीवन में एक व्यवस्था है। तुम भी उस व्यवस्था को समझ सकते हो। एक नीति है, एक नियम है, एक अनुशासन है, एक मर्यादा है।
कृष्ण तो अमर्याद हैं। उनके जीवन में कोई मर्यादा नहीं है। वे तो मुक्त हवा हैं, अनप्रेडिक्टेबल हैं, उनके संबंध में कोई भविष्यवाणी नहीं हो सकती। तुम यह नहीं कह सकते कि कृष्ण क्या करेंगे। एक क्षण बाद क्या करेंगे, इसका भी कुछ पक्का नहीं है। उनके वचन तक का भरोसा नहीं किया जा सकता। वे अपना वचन भी तोड़ दे सकते हैं। क्योंकि वे क्षण-क्षण जीते हैं; उनके जीवन में कोई ढांचा नहीं है।
वे कोई नहर की तरह नहीं हैं, नदी की तरह हैं। बाढ़ भी आती है; गरमी में सूख भी जाती है। गरमी में सूख जाती है, तो पतली धार हो जाती है। बाढ़ आती है, तो गांव को बहा ले जाती है, मार्ग छोड़ देती है। कृष्ण का जीवन रेलगाड़ी की पटरियों जैसा नहीं है कि उस बंधी हुई लकीर पर दौड़ रहे हैं।
इसलिए कृष्ण बहुत बेबूझ हैं। कृष्ण को पूजना आसान नहीं है। ऐसे तुम ठीक कहते हो कि लोगों ने कृष्ण को पूजा, लेकिन बिना समझे। बिना समझे की गयी पूजा का क्या मूल्य हो सकता है!
मेरी अपनी समझ ऐसी है कि तुम दो कारणों से पूजते हो। एक तो छुटकारा पाने को। जिससे भी तुम छुटकारा पाना चाहते हो, तुम कहते हो, अच्छा बाबा, हाथ जोड़े, पैर छुए; रास्ते पर जाने दो।
कृष्ण की पूजा कुछ ऐसी है, अच्छा बाबा वाली पूजा, कि क्षमा करो; आप भले, एकदम ठीक हैं; विवाद भी करना उचित नहीं आपसे, क्योंकि ज्यादा देर पास खड़े होना भी ठीक नहीं।
तुम थोड़ा सोचो कृष्ण के जीवन को, ठीक शुरू से लेकर अंत तक। तुम इतने कंट्राडिक्शंस, इतनी असंगतियां पाओगे कि तुम्हारा मन कहेगा, यह आदमी पूजा योग्य है? यह आदमी धार्मिक है, यह भी संदेह की बात मालूम पड़ती है। कूटनीतिज्ञ मालूम होता है; राजनीतिज्ञ मालूम होता है; अनैतिक मालूम होता है। कोई मर्यादा नहीं है इस आदमी की। कोई भरोसा नहीं किया जा सकता है। लेकिन फिर भी तुम कहते हो कि पूजा है, तो उसमें थोड़ी बात तो है।
पूजा है छुटकारा पाने को, कि ठीक है। हाथ जोड़ लिए; छूटे! ऐसा सदा हुआ है। अगर कृष्ण जीवित मिल जाएं, तो तुम भाग खड़े होओगे। क्योंकि तुम्हारी सब धारणाएं खंडित हो जाएंगी।
तुम थोड़ा सोचो, कृष्ण बांसुरी बजाते तुम्हें कहीं मिल जाएं। राधा, जो उनकी पत्नी नहीं है, पास खड़ी हो। दूसरों की पत्नियां आस-पास नाच रही हों, रासलीला चल रही हो। तुम पुलिस में खबर करोगे कि पूजा करोगे?
तुम पुलिस में खबर करोगे। तुम कहोगे, यह कृष्ण कहानियों में ठीक है।
यह तुम्हारे घर आकर मेहमान हो जाएं मोर-मुकुट बांधे हुए आज। तुम कहोगे, कहीं और ठहर जाओ तो अच्छा होगा। आखिर हमें इस संसार में रहना है और पड़ोस के लोग भी हैं। कोई देख ले, किसी को पता चल जाए कि आप आ गए।
इस व्यक्ति को जिन्होंने जाना, उन्होंने पूर्णावतार कहा है। पूर्णावतार अमर्याद होगा। सब मर्यादा आदमी की है; परमात्मा के लिए क्या मर्यादा हो सकती है? सब सीमा आदमी की है; परमात्मा के लिए क्या सीमा हो सकती है? सब नियम आदमी के हैं; परमात्मा के लिए क्या नियम हो सकता है? इसलिए इसमें बड़ा रहस्य है कि कृष्ण के जीवन को हमने अमर्याद बनाया है, अमर्याद जाना है, क्योंकि परमात्मा नियम के ऊपर होगा। अगर परमात्मा नियम के नीचे है, तो परमात्मा की कोई जरूरत ही नहीं है। फिर तो नियम काफी है। परमात्मा नियम के ऊपर होना चाहिए।
इसलिए तो जैनों ने परमात्मा को इनकार कर दिया। उनके इनकार में बड़ा अर्थ है। वे कहते हैं, अगर परमात्मा को स्वीकार किया, तो नियम का क्या होगा? उनका तर्क यह है कि अगर परमात्मा भी नियम ही मानकर चलता है, तो वह व्यर्थ है; उसकी कोई जरूरत नहीं है। नियम काफी है। और अगर परमात्मा नियम तोड़ सकता है, तब तो उसकी बिल्कुल भी जरूरत नहीं है, क्योंकि तब तो सब अनियम हो जाएगा। जीवन अराजक हो जाएगा। तब तो जो पाप करता है, वह स्वर्ग भेजा जा सकता है; जो पुण्य करता है, वह नर्क में सड़ाया जा सकता है। तब तो त्यागी संसार में फेंका जा सकता है; भोगी मोक्ष में डाला जा सकता है। अगर परमात्मा नियम के ऊपर है।

तो जैनों ने कहा, यह खतरा मोल लेने जैसा नहीं है। परमात्मा को हम बीच में रखते ही नहीं। नियम काफी है। और नियम के ऊपर कोई भी नहीं है।
लेकिन हिंदुओं ने यह खतरा मोल लिया है। सिर्फ हिंदू अकेली जाति है संसार में, जिसने परमात्मा की एक छवि कृष्ण में बांधी है, अमर्याद। बड़ी गहरी बात है। समझ के पार जाती है। समझ तो कहेगी, कुछ मर्यादा होनी ही चाहिए, नहीं तो हम सबका क्या होगा!
लेकिन एक घड़ी तो ऐसी आनी ही चाहिए, जहां सब मर्यादाएं खो जाएं, जहां नदी सब कूल-किनारे तोड़ दे और सागर में लीन हो जाए। सागर का कोई कूल-किनारा नहीं होना चाहिए।
तो कृष्ण उस अमर्याद दशा की बात है। वह हमारा संकेत है आत्यंतिक, आखिरी सत्य की तरफ। उसकी तुम पूजा करते हो बिना समझे। अगर समझकर तुम पूजा करोगे, तो तुम रूपांतरित हो जाओगे। लेकिन तुम्हारी पूजा अंधी है। तुम आंख बंद करके घंटी हिलाकर, फूल-पत्ती रखकर भाग खड़े होते हो। तुमने गौर से कभी कृष्ण के साथ आंखें नहीं मिलायीं। अन्यथा या तो तुम बदलते या कृष्ण को उठाकर फेंक देते। दो में से कुछ होता।
तुम पूजा करते हो बिना आंख उठाए। ठीक से देखते भी नहीं, किसकी पूजा कर रहे हो! क्योंकि तुम खुद भी डरते हो कि अगर ठीक से आंख उठायी, तो निपटारा करना पड़ेगा। या तो यह कृष्ण जाएंगे और या फिर मुझे बदलना होगा। फिर सब तर्क छोड़ना पड़ेगा।
कृष्ण तो पागलों की दुनिया है, अतर्क्य की, दीवानों की। मीरा ने कहा है, सब लोक लाज खोयी। चैतन्य नाचने लगे सड़कों पर, जब कृष्ण की चैतन्य-धारा से उनका संबंध हुआ। चैतन्य ने की है पूजा, तो वे कृष्ण-रूप हो गए। मीरा ने की है पूजा, तो वह कृष्ण-रूप हो गयी।
लेकिन बाकी लोग तो धोखा दे रहे हैं; खुद को धोखा दे रहे हैं। पूजा नहीं है; सब बहाना है। करनी चाहिए; एक औपचारिक कृत्य है। हिंदू घर में पैदा हुए हो; कृष्ण की पूजा चलती रही है; कर लेनी चाहिए; कौन जाने वक्त-बेवक्त काम पड़ जाए!
मैंने सुना है, एक बूढ़ी स्त्री चर्च में जब भी शैतान का नाम लिया जाता,
तो जल्दी से सिर झुकाती थी। शैतान का जब भी नाम लिया जाए, पादरी जब भी शैतान के संबंध में बोले, जल्दी से सिर झुकाती। पादरी भी चकित हुआ। उसकी उत्सुकता बढ़ती गयी। एक दिन उसने चर्च के बाहर पकड़ा उस बुढ़िया को और कहा कि मैं कुछ समझ नहीं पाता। परमात्मा का जब नाम लेता हूं, तब तू सिर झुकाती है, ठीक। मगर जब शैतान का नाम लेता हूं, तब भी तू सिर झुकाती है! उसने कहा, कौन जाने, वक्त पर काम पड़ जाए। कुछ कहा नहीं जा सकता!
तो तुम पूजा किए जाते हो। कौन जाने, वक्त पर काम पड़ जाए! लेकिन यह कोई हृदय की आराधना नहीं है। औपचारिकता है, चली आती है। लकीर को पीटे चले जाते हो, क्योंकि तुम्हारे पिता भी करते थे, उनके पिता भी करते थे।
पूजा का कहीं कोई किसी के पिता से संबंध जुड़ता है? पूजा तो अपने हृदय
का भाव है। जब उठती है, तो सब बांध तोड़ देती है। फिर तुम हिसाब-किताब न रख पाओगे। जैसा प्रेम पागल है, भक्ति तो और भी बहुत पागल है। वह तो बहुत बावली है।
बंगाल में भक्तों का एक संप्रदाय है, उसका नाम है बाउल। बाउल का अर्थ होता है, बावले। वे सिर्फ नाचते हैं, गाते हैं। वे कृष्ण पर फूल नहीं चढ़ाते हैं। उन्होंने अपने को चढ़ाया है। वे कृष्ण की मूर्ति भी नहीं रखते। वे कहते हैं, क्या मूर्ति रखनी! जहां नाचते हैं, वहीं कृष्ण साकार हो जाते हैं। उनकी पूजा-पाठ का कोई नियम, विधि-विधान नहीं है। क्योंकि वे कहते हैं, कृष्ण की पूजा-पाठ का क्या विधि-विधान! जिस आदमी के जीवन में ही कोई विधि- विधान न था, हम क्या उसकी पूजा में विधि-विधान बनाएं! जब उठती है मौज, जब पकड़ लेती है मौज, तो पूजा हो जाती है।
पढ़ी भी गयी गीता, सुनी भी गयी, पूजा भी तुमने की है, सब ऊपर-ऊपर है। सब
दो कौड़ी का है। इसीलिए ऐसा हुआ कि इस देश से गीत भी खो गया, नृत्य भी खो गया, उत्सव भी खो गया; और संन्यास में वह सुगंध न रही, जो कृष्ण चाहते थे कि उसमें हो।

कृष्ण का संन्यास संसार के विरोध में नहीं है। कृष्ण का संन्यास संसार के मध्य में है।
और जो संन्यास भी संसार के विरोध में होगा, वह आज नहीं कल सड़ जाएगा। उसकी जड़ें उखड़ जाएंगी। वह बहुत व्यापक नहीं हो सकता। क्योंकि उसे दूसरों पर निर्भर होना पड़ेगा।
और संन्यासी को गृहस्थ पर निर्भर होना पड़े, वह संन्यास कितने दिन टिक सकता है! संन्यासी को बाजार पर निर्भर होना पड़े, दुकान पर निर्भर होना पड़े, वह कितने दिन टिक सकता है!
इसलिए सभी संन्यास की परंपराएं धीरे-धीरे सड़ जाती हैं। क्योंकि उन्हें अपने से विपरीत पर निर्भर रहना पड़ता है, मोहताज होना पड़ता है। कृष्ण ने एक और ही संन्यास की धारणा दी थी--करते हुए, जीते हुए, सिर्फ फलाकांक्षा को तोड़ दो, छोड़ दो। कर्म को करते जाओ, कर्म की फलाकांक्षा भर न रह जाए। किसी को कानों-कान पता भी न चलेगा कि तुम संन्यस्त हो गए हो। यह एक भीतरी भाव-दशा होगी। ऐसा संन्यास कभी न सड़ेगा, क्योंकि ऐसे संन्यास की जड़ें संसार की भूमि में होंगी।
संन्यास ऐसा वृक्ष होना चाहिए, जिसकी जड़ें तो संसार में हों और जिसकी शाखाएं आकाश में; जो पृथ्वी को और स्वर्ग को जोड़ता हो। तब नहीं सड़ता है; तब नए फूल आते चले जाते हैं।

अब सूत्रः
फिर वह सच्चिदानंदघन ब्रह्म में एकीभाव से स्थित हुआ प्रसन्नचित्त वाला पुरुष न तो किसी वस्तु के लिए शोक करता है और न किसी की आकांक्षा ही करता है एवं सब भूतों में समभाव हुआ मेरी परा-भक्ति को प्राप्त होता है। परा-भक्ति भक्ति की ऐसी अवस्था है, जहां कुछ भी मांगने को शेष न रह जाए। जहां भक्ति ही अपने आप में अपना आनंद हो, जहां भक्ति साधन न हो, साध्य हो जाए, वहां परा-भक्ति हो जाती है।
अगर तुम कुछ भी मांगते हो, तो भक्ति अभी परा-भक्ति नहीं है। अगर तुमने कहा, मोक्ष मिल जाए; तुमने अगर इतना भी कहा कि आनंद मिल जाए, सत्य मिल जाए, तो भी अभी भक्ति परा-भक्ति नहीं है। अभी मांग जारी है। अभी तुम भिखारी की तरह ही भगवान के द्वार पर आए हो।
और वहां तो स्वागत उन्हीं का है, जो सम्राट की तरह आते हों, कुछ भी न मांगते हों। वह इतना ही है कि बस, भक्ति करने का अवसर मिल जाए, काफी है। भक्ति ही अपने आप में इतना महाआनंद है, इतना बड़ा सत्य है, कि कुछ और चाह नहीं; तब परा-भक्ति।
उस परा-भक्ति के द्वारा मेरे को तत्व से भली प्रकार जानता है कि मैं
जो और जिस प्रभाव वाला हूं तथा जिस भक्ति से मेरे को तत्व से जानकर तत्काल ही मेरे में प्रविष्ट हो जाता है।
और परा-भक्ति के क्षण में भक्त और भगवान एक हो जाते हैं। भक्ति में अलग रहते हैं। भक्ति में भक्त भक्त है, भगवान भगवान है। भक्त की आकांक्षा है कुछ अभी। और आकांक्षा ही दोनों को विभाजित करती है। अभी भक्त पूरा नहीं खुला है; अभी अपनी मांग है। अभी अपने मन की कोई सूक्ष्म रेखा शेष रह गयी है। अभी कोई अपनी आकांक्षा का बारीक बीज बचा है, जल नहीं गया है।
अभी भगवान मिल जाए... अगर तुम अपने से पूछो, अभी भगवान मिल जाए, तो तुम उससे क्या मांगोगे? क्या कहोगे? अगर तुम गौर से देखोगे, तुम्हारी सब वासनाओं के बीज उभरने लगेंगे। मन कहने लगेगा, यह मांग लेंगे, वह मांग लेंगे। तुम मुश्किल में पड़ जाओगे। हजार बातें मन मांगने लगेगा।
तो अभी तो भक्ति भी पैदा नहीं हुई। भक्ति तब पैदा होती है, जब मन मुक्ति मांगे, कि इस संसार से ऊब गया, थक गया। अब और जन्म, जीवन नहीं चाहता। अब परम विश्राम में लीन हो जाना चाहता हूं, मोक्ष, निर्वाण, मुक्ति; तब भक्ति।
लेकिन मांग अभी है। जब यह मांग भी खो जाती है, जब तुम मुक्ति भी नहीं मांगते। जब तुम कहते हो, जो है बिल्कुल ठीक है; जैसा है बिल्कुल ठीक है।

तुम्हारे मन में अस्वीकार की कोई रेखा भी नहीं रही। इस क्षण तुम जैसे हो, परिपूर्ण हो। ऐसी परम तृप्ति का क्षण परा-भक्ति है।
उस क्षण परमात्मा और भक्त में कोई फासला नहीं रह जाता। सब सीमाएं टूट जाती हैं। उसकी तरफ से तो कोई सीमा कभी है ही नहीं। तुम्हारी तरफ से थी, वह तुमने हटा ली।
ऐसे क्षण में मेरे में तत्क्षण प्रवेश कर जाता है।
एक क्षण भी नहीं खोता।
और मेरे परायण हुआ निष्काम कर्मयोगी संपूर्ण कर्मों को सदा करता हुआ
भी मेरी कृपा से सनातन अविनाशी परम पद को प्राप्त होता है।
कुछ छोड़ना नहीं पड़ता, कोई कर्म त्यागना नहीं पड़ता। सब करते हुए! और यही सौंदर्य है कि सब करते हुए मुक्त हो जाओ।
भागकर मुक्त हुए, वह कायर की मुक्ति है, डरे हुए की मुक्ति है, भयभीत
की मुक्ति है। और भागकर मुक्त हुए, तो पूरे मुक्त कभी भी न हो पाओगे। जिससे तुम भागे हो, उससे थोड़ा बंधन बना ही रहेगा।
एक जैन मुनि की मृत्यु हुई। वे कोई तीस साल पहले अपनी पत्नी को त्याग दिए, घर-द्वार छोड़ दिया। उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी जैनों में। प्रतिष्ठा का बड़ा कारण तो यही था कि वे मूलतः हिंदू थे और फिर जैन हो गए।
अब यह बड़े मजे की बात है। अगर कोई मुसलमान हिंदू हो जाए, तो उसको बहुत सम्मान मिलेगा। मुसलमान अपमान करेंगे। अगर कोई हिंदू मुसलमान हो जाए, तो हिंदू अपमान करेंगे, मुसलमान बहुत सम्मान करेंगे।
तो हिंदुओं में तो उनकी कोई प्रतिष्ठा न थी, लेकिन जैनों में उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। क्योंकि जब भी कोई व्यक्ति अपने धर्म को छोड़कर किसी और धर्म को स्वीकार करता है, तो उस धर्म के मानने वालों को यह प्रमाण मिलता है कि हमारा धर्म दूसरे धर्म से श्रेष्ठ है। अन्यथा इस आदमी ने छोड़ा क्यों! तो उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी, बड़ा सम्मान था। आदमी भी ऐसे सरल थे, साधु थे, निष्ठा से अपने को साधा था। लेकिन कहीं कोई बात चूकती गयी थी। संत नहीं थे, साधु ही थे, सज्जन थे।
पत्नी मरी; खबर आयी; तो उनके मुंह से निकला कि चलो, झंझट मिटी। तो उनकी जिन्होंने आत्मकथा लिखी है, जीवन-कथा लिखी है, उन्होंने बड़े गौरव से यह लिखा है कि पत्नी के मरने पर कैसा वीतराग भाव कि उन्होंने कहा कि चलो झंझट मिटी!
जिसने लिखी है, वे मेरे पास किताब लेकर आए थे भेंट करने। मैंने किताब उलट-पुलटकर देखी। मैंने उनसे कहा कि यह तुमने सम्मान से लिखा है कि चलो झंझट मिटी? मेरे लिए तो यह बड़ी हैरानी की बात है।
तीस साल पहले जिस पत्नी को तुम छोड़कर चले आए थे, अभी उसकी झंझट बाकी थी! वह मरी और तुम कहते हो, झंझट मिटी। झंझट जरूर बाकी रही होगी। भीतर कहीं मन में लगाव बना रहा होगा।
और मैंने कहा, यह तो बड़ी हिंसात्मक बात है, किसी के मरने पर कहना कि झंझट मिटी। इसका मतलब है, तुम्हारे मन में कभी उसे मारने की भी आकांक्षा रही होगी; मर जाए, ऐसा भाव रहा होगा। उसकी मृत्यु से तुम्हें हलकापन लगा! तो उसकी मृत्यु की आकांक्षा तुममें सोयी ही होगी, ज्ञात-अज्ञात।
और झंझट क्या थी तुम्हें? जिस पत्नी को तीस साल पहले छोड़ आए, कभी मिलने नहीं गए, कि वह भूखी है, कि मरती है। मुनि को तो बहुत सम्मान मिलता रहा। लाखों रुपए आस-पास लुटते रहे। बड़े मंदिर बने, धर्मशालाएं खड़ी हुईं। और पत्नी पीस-पीसकर अपना जीवन चलाती रही। और झंझट थी तुम्हें! थोड़ी हैरानी की बात है।
लेकिन कभी-कभी आकस्मिक क्षणों में सच्चाइयां बाहर आ जाती हैं। पत्नी मरी, उस वक्त एक सच्चाई बाहर आ गयी कि झंझट मिटी। झंझट थी।
मेरे देखे, बात ठीक है। जिसको भी तुम छोड़कर जाओगे, उससे तुम्हारी झंझट बनी रहेगी। छोड़कर जाने का मतलब ही है कि डरकर भाग गए, समझकर मुक्त नहीं हुए।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, जिसने जीवन में भक्ति के सूत्र को समझ लिया और मेरे ऊपर सब छोड़ दिया, वह सब कर्म करता हुआ परम पद को प्राप्त हो जाता है।
उसे कुछ छोड़ना नहीं पड़ता, उससे सब छूट जाता है।

छोड़ना और छूट जाना, बड़ा फासला है दोनों में। छोड़ने में तो तुम होते हो, छूट जाने में तुम नहीं होते। और जहां तुम होते हो, वहां अहंकार निर्मित होता ही रहेगा। त्यागी हो जाओगे, तो त्याग का अहंकार आ जाता है।
इसलिए हे अर्जुन, तू सब कर्मों को मन से मेरे में अर्पण करके, मेरे परायण हुआ समत्वबुद्धिरूप निष्काम कर्मयोग को अवलंबन करके निरंतर मेरे में चित्त वाला हो।
इस प्रकार तू मेरे में निरंतर मन वाला हुआ, मेरी कृपा से जन्म-मृत्यु आदि सब संकटों को अनायास ही तर जाएगा। और यदि अहंकार के कारण मेरे वचनों को नहीं सुनेगा, तो नष्ट हो जाएगा अर्थात परमार्थ से भ्रष्ट हो जाएगा।
एक ही कारण है न सुनने का, बहरा होने का, वह अहंकार है। अगर तुम्हें यह पहले से ही पता है कि तुम जानते हो, तो फिर तुम सुन नहीं सकते। तुम ज्ञानी हो, सुन नहीं सकते।
अहंकार बहरापन है। वह एकमात्र बधिरता है। बहरे भी सुन लें, अहंकारी नहीं सुन सकता। कोई बहरा हो, तो जरा जोर से बोलकर बोल दो, चिल्लाकर बोल दो।
लेकिन अहंकारी की बधिरता ऐसी है कि कोई भी चीज प्रवेश नहीं कर सकती।
अहंकार लौह-कवच है।
तो कृष्ण कहते हैं, अगर तू केवल अहंकार में घिरा रहा, समर्पण न कर सका,
और मेरी बात तुझे सुनायी न पड़ी, तो तू नष्ट हो जाएगा।
नष्ट होने का इतना ही अर्थ है, यह जीवन फिर व्यर्थ हो जाएगा। ऐसे बहुत जीवन व्यर्थ और नष्ट हुए। अगर इस बार तू सुन ले, तो यह जीवन सार्थक हो जाए, सुकृत हो जाए, नष्ट न हो।
जिस दिन भी तुम अहंकार को छोड़कर देख पाओ, सुन पाओ, हो पाओ, उसी दिन जीवन सार्थक हो जाता है। उसी दिन तुम्हें जीवन का शास्त्र समझ में आ जाता है।
फिर गीता पढ़ी हो, न पढ़ी हो; कुरान सुना हो, न सुना हो; कोई अंतर नहीं पड़ता।
तुम्हारे भीतर ही वह भगवद्गीता का नाद शुरू हो जाता है।
कृष्ण तुम्हारे भीतर हैं। वहां से अभी गीता फिर पैदा हो सकती है।
सिर्फ तुम्हारे अहंकार के टूटने की बात है।
समर्पण सूत्र है, अहंकार बाधा है।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग आठ
गीता दर्शन अध्याय 18
सोलहवां प्रवचन

संसार ही मोक्ष बन जाए

यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे।
मिथ्यैष व्यवसायस्ते प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति।। 59।।
स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात करिष्यवशोऽपि तत्।। 60।।
ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया।। 61।।
तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम।। 62।।
इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु।। 63।।
और जो तू अहंकार को अवलंबन करके ऐसे मानता है कि मैं युद्ध नहीं करूंगा, तो यह तेरा निश्चय मिथ्या है, क्योंकि क्षत्रियपन का स्वभाव तेरे को जबरदस्ती युद्ध में लगा देगा।
और हे अर्जुन, जिस कर्म को तू मोह से नहीं करना चाहता है, उसको भी अपने पूर्वकृत स्वाभाविक कर्म से बंधा हुआ परवश होकर करेगा।
क्योंकि हे अर्जुन, शरीररूप यंत्र में आरूढ़ हुए, संपूर्ण प्राणियों
को परमेश्वर अपनी माया से, उनके कर्मों के अनुसार भ्रमाता हुआ, सब भूत-प्राणियों के हृदय में स्थित है।
इसलिए हे भारत, सब प्रकार से उस परमेश्वर की ही अनन्य शरण को प्राप्त हो, उस परमात्मा की कृपा से ही परम शांति को और सनातन परम धाम को प्राप्त होगा।
इस प्रकार यह गोपनीय से भी अति गोपनीय ज्ञान मैंने तेरे लिए कहा। इस रहस्ययुक्त ज्ञान को संपूर्णता से अच्छी प्रकार विचार करके, फिर तू जैसा चाहता है, वैसा ही कर।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः निष्काम कर्मयोगी संपूर्ण कर्मों को करता हुआ अविनाशी
पद को उपलब्ध हो, यह गीता की साहसी परिकल्पना थी। आपने शायद पहली बार व्यापक पैमाने पर संन्यास को संसार के बीच खड़ा कर उस परिकल्पना को साकार किया है। गीता-दर्शन के समापन सत्र में इस कठिन साधना में हमारा मार्ग दर्शन करें।

निश्चय ही, गीता की परिकल्पना जितनी महत है, उतनी ही दुस्साहसपूर्ण भी। संसार आसान है, संन्यास के बिना। संन्यास भी आसान है, संसार के बिना। दोनों को अलग रखें, गणित सीधा-साफ है। लेकिन अलग-अलग दोनों ही अधूरे हैं। संन्यासी जो संसार को छोड़कर संन्यासी है, पंगु है, लंगड़ा है, आधा है।
यदि कुछ छोड़ना पड़े, तो परिपूर्ण परमात्मा स्वीकार नहीं हुआ। यदि कुछ छोड़ना पड़े, तो समर्पण पूरा नहीं हुआ। यदि कुछ छोड़ना पड़े, तो कुछ छोड़ने योग्य था; परमात्मा पूरा का पूरा ही वरणीय न था; अस्तित्व समग्र का समग्र ही स्वीकार न था, इस बात की घोषणा है।
जो संसार को छोड़ता है, वह परमात्मा को भी पूरा स्वीकार नहीं करता। उसने अपने विचार को परमात्मा के ऊपर रखा; उसने अपनी चिंतना को परमात्मा से भी श्रेयस्कर समझा। वह निर्णय कैसे लेता है संसार को छोड़ने का?
परमात्मा ने अब तक संसार छोड़ा नहीं! छोड़ दे, संसार तिरोहित हो जाए। परमात्मा बनाए ही जाता है। महात्मा कहे जाते हैं, संसार व्यर्थ है, असार है। परमात्मा संसार बनाए ही चला जाता है। उस खेल से वह थकता नहीं; उस खेल से वह विरत नहीं होता!

एक बात तय है, कितने ही महात्माओं ने संन्यास लिया हो संसार छोड़कर, परमात्मा ने अभी तक संन्यास नहीं लिया है संसार छोड़कर। अब भी उसका रस कायम है। वह उसी आनंद से अब भी सृजन किए जाता है, जैसा कभी अतीत में किया हो या कभी वह भविष्य में करे। उसके रस में एक बूंद भी कम नहीं हुई है। उसकी रस-धार वैसी ही बही चली जाती है।
अब भी फूलों को बनाते समय वह बेमन से नहीं बना रहा है! अब भी पक्षियों
के कंठ में गाते समय वह बेमन से नहीं गा रहा है! अब भी तुम्हारे हृदय में वह वैसा ही धड़कता है, उसी ताजगी, उसी आशा, उसी स्वप्न से, जैसा सदा धड़का है! गुरजिएफ ने कहा है और महत्वपूर्ण रूप से कहा है कि सभी धर्म परमात्मा
के विरोध में हैं।
इस बात में थोड़ी सचाई है। क्योंकि जो भी सिखाता है, संसार छोड़ दो, वह कहता है, परमात्मा को आधा छोड़ दो। बनाने वाले को स्वीकार करो, लेकिन जो उसने बनाया है, उसे इनकार कर दो। यह तो ऐसे ही हुआ कि तुमने कवि की प्रशंसा की और उसकी कविता की निंदा की।
अब यह थोड़ा समझने जैसा है। अगर कविता की निंदा कर रहे हो, तो कवि की प्रशंसा असंभव है, क्योंकि वह कवि है कविता के कारण। उसके काव्य में ही प्रकट हुआ है उसके भीतर का महिमावान स्वर; उसके प्राणों का गीत पंक्तिबद्ध हुआ है। उन पंक्तियों को तुम अस्वीकार करते हो!
यह ऐसे ही है, जैसे गीतांजलि को तो कचरे में फेंक दो और रवींद्रनाथ का गुणगान करो। यह बात बड़ी बेहूदी है, असंगत है। क्योंकि रवींद्रनाथ का मूल्य ही क्या है! मूल्य ही प्रकट हुआ है गीतांजलि से। यह बात जरूर सच है कि रवींद्रनाथ पूरे-पूरे गीतांजलि में नहीं समा गए हैं। और बड़ी गीतांजलियां पैदा हो सकती हैं। लेकिन गीतांजलि में भी उन्हीं के हाथ हैं, उन्हीं के हस्ताक्षर हैं।
परमात्मा संसार से विराट है, बड़ा है।
स्वभावतः, कवि सदा बड़ा होगा अपनी कविता से, क्योंकि कविता तो उसकी अनंत संभावनाओं में से एक है। अनंत कविताएं पैदा हो सकती हैं। किसी कविता पर उसका काव्य-धर्म चुक नहीं जाता है। वस्तुतः हर कविता के द्वारा उसका काव्य-धर्म और निखरता है; झरना और बहता है; पत्थर और हट जाते हैं द्वार से। जैसे-जैसे काव्य में कवि उतरता है, वैसे-वैसे उसकी कविता ज्यादा गरिमापूर्ण, गर्भवती होने लगती है।
तो कोई कवि कविता पर चुक नहीं जाता। लेकिन कोई कवि, अगर तुम उसकी कविता को ही अस्वीकार कर दो, तो सार्थक भी नहीं रह जाता। मूर्ति को तो इनकार कर दो और मूर्तिकार को स्वीकार करो, तुमने बड़ी तरकीब से मूर्तिकार को अस्वीकार कर दिया।
दोस्तोवस्की का एक पात्र, उसकी बड़ी अनूठी पुस्तक ब्रदर्स कर्माजोव में परमात्मा से कहता है कि तू तो मुझे स्वीकार है; तेरा संसार नहीं। लेकिन यह स्वीकृति कैसी है! फिर परमात्मा क्यों स्वीकार है, अगर उसका संसार स्वीकार नहीं? संसार के अतिरिक्त तुमने परमात्मा की छवि कहां देखी है? संसार के अतिरिक्त तुमने उसके पदचाप कहां सुने हैं, चरण कहां देखे हैं? संसार के अतिरिक्त, अगर संसार बिल्कुल ही खो जाए, क्या तुम्हें परमात्मा की परिकल्पना भी पैदा हो सकती है?
संसार में ही तो तुमने उसका आभास पाया है, उसकी छाया देखी है, उसका प्रतिबिंब पकड़ा है। संसार ही तो दर्पण बना है, जिसमें तुमने पहली बार उसे पहचाना है; धुंधला सही, साफ नहीं; लेकिन उसके अतिरिक्त तो कोई पहचान ही नहीं है।
और जब भी कोई कहता है, तू तो मुझे स्वीकार है, तेरा संसार नहीं, तब वह बड़ी चालबाजी कर रहा है। हो सकता है, उसे स्वयं भी पता न हो कि वह क्या कह रहा है। यह चालबाजी अचेतन हो। शायद वह खुद भी चौंके अगर हम उससे कहें कि तू यह क्या कह रहा है! तू बड़े होशियार ढंग से परमात्मा को अस्वीकार कर रहा है। इससे तो वह नास्तिक ही बेहतर, जो कहता है, कोई परमात्मा नहीं है, यही संसार सब कुछ है।
इसे जरा सोचो। जो कहता है, कवि का तो हमें कुछ पता नहीं है, यह कविता मधुर है। यह भी कवि का थोड़ा गुणगान कर रहा है।

उस आस्तिक से तो बेहतर है, जो कहता है, तेरा संसार अस्वीकार; तू स्वीकार है। तब तो तुम परमात्मा के ऊपर अपने को रखते हो। तुम निर्णायक हो, तुम न्यायाधीश हो। तुम निर्णय लेते हो, क्या ठीक है, क्या गलत है। और तुम परमात्मा को प्रमाणपत्र देते हो कि तू ठीक है, तेरे संसार में कुछ ठीक दिखाई पड़ता नहीं।
बहुत आसान है संसार को छोड़कर भाग जाना। संसार को छोड़कर संन्यास आसान है। आसान इसलिए है कि तुमने विरोधाभास छोड़ दिया। तुमने जो पहेली थी, वह छोड़ ही दी, उसका हल नहीं किया है।
ध्यान रखना, पहेली को छोड़ देने और हल करने में बड़ा फर्क है। छोड़कर भाग जाना हल करना नहीं है। वह तो हल करने के प्रयास से भी बच जाना है।
तो दुनिया में संन्यासी हुए जिन्होंने संसार छोड़ दिया। उनके जीवन में
एक तरह की सरलता आ जाएगी। मेरे मन में उस सरलता की बहुत प्रशंसा नहीं है। क्योंकि वह सरलता अनुभव-पकी नहीं है। वह सरलता संसार की भट्टी से गुजरी नहीं है। वह सरलता छोटे बच्चे की भांति हो सकती है, लेकिन संत की भांति नहीं है।
छोटे बच्चे सरल होते हैं; इसलिए नहीं कि सरलता उन्होंने अर्जित की है, इसलिए कि अभी जीवन का अनुभव नहीं हुआ है। उनकी सरलता खो जाएगी। आज नहीं कल, जीवन का अनुभव उनके कुंवारेपन को छीन लेगा। उनकी अनलिखी किताब जल्दी ही जीवन के अनुभव से लिख जाएगी, गंदी हो जाएगी। वे बचा न पाएंगे अपनी सरलता को। वे जानते भी नहीं हैं कि सरलता क्या है। उनकी सरलता बेहोश है; उनकी सरलता अचेतन है।
जिन्होंने संसार छोड़ा, पहाड़ों पर भाग गए, उन्होंने भी एक तरह की सरलता
पा ली। वह बचपन जैसी सरलता है। फिर उन्हें भी डर लगता है संसार में वापस लौट आने का। क्योंकि वे जानते हैं भलीभांति कि संसार में गए कि उनकी सरलता खो जाएगी।
विनोबा के सामने कोई रुपया रखे, तो वे आंख बंद कर लेते हैं। रुपए से इतना डर क्या हो सकता है! रुपए जैसी कमजोर चीज से इतना भय? रुपया छूते नहीं। रुपया अगर मिट्टी ही है, तो मिट्टी को तो छूने से इनकार नहीं करते हो! रुपया अगर धातु ही है, तो और धातुओं को तो छूने से इनकार नहीं करते हो! रुपए से ही ऐसी क्या नाराजगी है!
नहीं; रुपए में भय है। नाराजगी नहीं है, डर है। रुपए में संसार है। रुपए में संसार बीज की तरह छिपा है। रुपए के पीछे पूरा संसार चला आता है। रुपए को जगह दो, कि तुमने पूरे संसार को आमंत्रण दे दिया। फिर सब चीजें धीरे-धीरे चली आएंगी। तुमने बीज सम्हाला कि वृक्ष हो जाएगा। भय है।
आखिर हिमालय पर जाने से क्या सार होता होगा? भय है। संसार में रहते हैं, तो संसार कलुषित करता है। संसार में रहते हैं, तो भूल-भूल जाते हैं सरलता को; जटिल हो-हो जाते हैं। बेईमानी, धोखा, प्रवंचना, सब पकड़ लेते हैं। अगर बेईमानी, धोखा और प्रवंचना पकड़ लेते हैं, इस कारण कोई भाग गया है,
तो वह इनसे मुक्त नहीं हुआ है। जब भी लौटेगा, फिर पकड़ा जाएगा। इस जन्म में भाग जाओगे, फिर गर्भ बनेगा, फिर संसार में आओगे। इससे कुछ सार नहीं है। जीवन की समस्या का समाधान खोजना है; और पलायन समाधान नहीं है। सरल है, इससे समाधान मत समझ लेना। सरल होने से कोई चीज श्रेयस्कर नहीं हो जाती। यद्यपि जब परम समाधान फलित होता है, तब भी एक सरलता बरसती है। लेकिन वह सरलता बड़ी और है। उसका गुण और, उसका सौंदर्य और, उसका आनंद और। और फर्क क्या है?
फर्क यही है कि वह अनुभव कसी है। उसको ही कृष्ण दृढ़ वैराग्य कहते हैं।
वह अनुभव पका है। वह कच्चा फल नहीं है, जो तोड़ लिया गया हो। वह पका फल है, जो अपने से गिर जाता है। उसने सब ले लिया, जो वृक्ष से लेना था; पा लिया, जो पाना था। अब वह राजी है, तैयार है। अब गिर जाने को प्रतिपल तैयार है। हवा का जरा-सा झोंका, या झोंका न भी हो, तो भी गिरेगा।
संसार से पककर जो संन्यास आविर्भूत होता है, वह पका फल है। वह दृढ़ वैराग्य है।

कठिन लगेगा, क्योंकि कठिनाई से गुजरना होगा। पर ध्यान रखना, जीवन में कुछ भी मुफ्त नहीं मिलता। हर चीज के लिए चुकाना पड़ता है। और वास्तविक संन्यास पाना हो, तो बड़ी कठिनाइयों से गुजरना पड़ता है।
भागना कोई कठिनाई है? वह कायर की जीवन-दृष्टि है। उससे कुछ भी हल नहीं होता। वह शुतुरमुर्ग का तर्क है। शुतुरमुर्ग देखता है, कोई हमला करने आ रहा है, सिर रेत में गड़ाकर खड़ा हो जाता है। दुश्मन दिखाई नहीं पड़ता; शुतुरमुर्ग प्रसन्न हो जाता है कि झंझट मिटी। न दिखेगा, न है।
तुम भाग जाओगे जंगल में; संसार रहेगा, मिट नहीं गया। बीज में रहेगा, तुम्हारे भीतर रहेगा, तुम्हारी वासना में रहेगा, तुम्हारी आकांक्षा में रहेगा, तुम्हारे भय में रहेगा। तुम कैसे दूर-दूर भागते रहोगे? कब तक भागते रहोगे? तुम्हें वापस बार-बार लौट आना पड़ेगा। और तुम्हारे मन में भी संसार के ही विचार चलेंगे, संसार की ही हवाएं बहेंगी। तुम उनसे ही जूझोगे, उनसे ही लड़ोगे।
तुमने संतों की जीवन-कथाएं पढ़ी हैं जो संसार को भाग गए हैं छोड़कर, तो उनकी कल्पना में संसार कैसे हमले करता है! ईसाई महात्माओं के जीवन हैं; तो शैतान हजार तरह के हमले करता है। वह शैतान कोई भी नहीं है। वह तुम्हारी ही विचार-वासनाएं हैं, जो अधूरी रह गयी हैं, विकृत हो गयी हैं, विकराल हो गयी हैं। पक नहीं पायी हैं, घाव बन गयी हैं; उनका ही हमला होता है।
बुद्ध की जीवन-कथा है कि बुद्ध जब ध्यान के लिए बैठते हैं, तब मार, कामदेव सताता है। वह आता है हजार रूपों में; डिगाता है।
कोई कामदेव कहीं है नहीं। अगर कहीं कामना अधूरी रह गयी है, तो ही सताएगी। जो अधूरा रह गया, वही दुख-स्वप्न बन जाता है। जो पक गया, उसमें से तो सोना निकल आता है। जो अधूरा रह गया, वह घाव हो जाता है। वह रिसता है, उसमें मवाद बनती है, उसमें पीड़ा पलती है।
पर सरल दिखता है पलायन, हमेशा सरल दिखता है पलायन। घर में पत्नी बीमार पड़ी है, इलाज करना है, दवा लानी है; तुम भाग गए, सिनेमा में बैठ गए। तीन घंटे के लिए भूल गए, सही। बच्चा मर रहा है, इलाज करना है, चिकित्सा करनी है, तुम मंदिर चले गए। घड़ीभर भजन-कीर्तन में अपने को डुबा लिया; भूल गए।
पर इससे कुछ हल नहीं होता। बच्चा मर रहा है, पत्नी बीमार पड़ी है, घर में भूख है; भाग-भागकर तुम कहां जाओगे? यही भगोड़ा तो शराबखाने पहुंच जाता है, शराब पी लेता है। जीवन में समस्याएं हैं, यह शराब पीकर बैठ जाता है! अगर तुम ठीक से समझो, तो भागने वाले संन्यासी का ढंग और शराबी का ढंग
एक ही है, अलग-अलग नहीं है। वे दोनों यह कह रहे हैं कि किसी तरह भाग जाना है। संन्यासी भौगोलिक रूप से भागता है, शराबी मानसिक रूप से भागता है, लेकिन दोनों भाग रहे हैं। जीवन की स्थिति घबड़ाने वाली है। वह दिखाई न पड़े, आंख बंद हो जाए।
सूरदास की कथा है। मैं नहीं जानता, कहां तक सही है। सही हो, तो सूरदास बिल्कुल बेकार हो जाते हैं। सही न हो, तो ही कुछ सार है। कथा है कि आंखें फोड़ लीं, क्योंकि आंखों से सुंदर स्त्रियां दिखाई पड़ती हैं। सुंदर स्त्रियां दिखाई पड़ती हैं, तो वासना उठती है। वासना उठती है, तो मन विकारग्रस्त होता है। मन विकारग्रस्त होता है, तो परमात्मा का स्मरण नहीं हो पाता। आंखें फोड़ लीं!
क्या तुम सोचते हो, आंख फोड़ लेने से वासना चली गयी होगी? और भी प्रगाढ़
हो गयी होगी। आंख बंद करके देख लो। आंख बंद करने से वासना चली जाएगी? तो आंख फोड़ने से कैसे चली जाएगी?
वासना आंख के कारण थोड़े ही पैदा होती है; वासना के कारण आंख पैदा होती है। वासना गहरी है, आंख से ज्यादा गहरी है। आंख तोड़ दो, हाथ काट दो, इससे कुछ फर्क न पड़ेगा। कान बहरे कर लो, इससे कुछ फर्क न पड़ेगा। सब इंद्रियों को जला डालो, लेकिन तुम जब तक हो, सारी वासना रहेगी।
वासना तुममें है। इंद्रियां तो उपकरण हैं, जो तुम्हारी भीतर की वासना
ने निर्मित किए हैं; अपने को पूरा करने के लिए उसने उपकरण बनाए हैं।
उपकरणों को तोड़ने से क्या होगा! फिर तुम नए उपकरण बना लोगे। इसीलिए तो
हर जन्म में तुम बार-बार उपकरण बनाते हो।
तो सरल भला दिखाई पड़े, भगोड़ा संन्यास संन्यास ही नहीं है।

अगर कभी भागे हुए लोगों में से भी कुछ लोग उपलब्ध हो गए हैं, तो तुम इससे यह मत समझ लेना कि वे भागने के कारण उपलब्ध हो गए हैं। वे भागने के बावजूद उपलब्ध हो गए हैं।
मेरा मतलब ठीक से समझ लेना; क्योंकि बुद्ध और महावीर भी भागे हैं। फिर
भी वे उपलब्ध हो गए हैं, इसमें कोई शक नहीं है। लेकिन भागने के कारण उपलब्ध नहीं हो गए हैं, भागने के बावजूद उपलब्ध हो गए हैं।
ऐसा समझो कि तुम यहां चलकर आए हो और एक दूसरा आदमी सड़क पर लोटता हुआ आया है। वह लोटने के कारण यहां तक नहीं आ गया है; लोटने के बावजूद आ गया है। तुम चलते हुए आ गए हो, वह लोटता आया है, कोई घसिटता आया है। किसी ने अपने पैर काट डाले हैं, वह बिना पैर के सरकता हुआ आया है। इससे तुम यह मत सोचना कि सरकने के कारण यहां आ गया है, पैर काटने के कारण यहां आ गया है; पैर काटने के बावजूद आ गया है। यह चमत्कार है कि वह आ गया है। यह अपवाद है कि वह आ गया है।
जिन लोगों ने संसार छोड़कर संन्यास लिया और संन्यास से सत्य को पाया,
वे अपवाद स्वरूप हैं; उनको तुम नियम मत बनाना। ऐसे कुछ लोग हैं। वे महाशक्तिशाली हैं। शायद इसीलिए विपरीत मार्ग से भी पहुंच गए हैं।
ऐसा समझो कि तुम्हें मेरे पास आना है, तो तुम पूरब चलकर आते हो। और कोई आदमी पूरब तो नहीं चलता मेरे पास आने के लिए, पश्चिम चलता है। वह भी आ जाएगा, अगर चलता ही रहा। लेकिन सारी पृथ्वी का चक्कर लगाकर आ पाएगा। इससे तुम यह मत समझना कि पश्चिम चलना मार्ग है यहां आने का। पूरब चलकर दस कदम में जो घटना घट जाती थी, पश्चिम चलकर हजारों मील में घटेगी। लेकिन अगर कोई चलता ही रहा, चलता ही रहा, तो पहुंच जाएगा। हजार चलेंगे, एक पहुंचेगा। नौ सौ निन्यानबे रास्ते में गिरेंगे और खो जाएंगे।
इसलिए तो महावीर और बुद्ध के पीछे हजारों लोग चले, लेकिन बहुत कम लोग पहुंच पाए। महावीर और बुद्ध पहुंच गए, वे बड़े असाधारण पुरुष हैं। वे चलते ही रहे। कितनी ही लंबी यात्रा थी, लेकिन वे करते ही रहे। वे नहीं पहुंचे, ऐसा मैं नहीं कहता हूं, लेकिन उनके पहुंचने को तुम नियम मत मानना। वह अपवाद है, चमत्कार है। होना नहीं चाहिए था और हुआ है। उससे गणित नहीं बनता। उससे सामान्य यात्री के लिए सूत्र नहीं मिलते।
भागना सरल दिखाई पड़ता है। ऐसे बहुत कठिन है वह भी, क्योंकि भागने की वजह से पहुंचना बहुत मुश्किल हो जाता है। ऊपर से सरल दिखाई पड़ता है। दिखावे के धोखे में मत पड़ना। समस्या को हल ही करना उचित है। कितनी ही कठिनाई लगे हल करने में, हल कर लेना ही उचित है। क्योंकि उस हल करने के माध्यम से ही तुम बढ़ोगे, विकसित होओगे। तुम्हारी जीवन-संपदा खुलेगी। तुम अपनी ही अंतर-आत्मा के मालिक बनोगे।
भागना ऊपर से सरल दिखाई पड़े, पीछे बहुत कठिनाइयों में ले जाएगा। और पहुंचना असंभव हो जाएगा।
तो एक तो सरल बात दिखाई पड़ती है, संन्यास ले लो, छोड़ दो संसार। और अक्सर गलत लोग ही छोड़ते हैं। जो यहां हार जाते हैं, उदास हो जाते हैं, जिनकी अपेक्षाएं पूरी नहीं होतीं; जो बड़ी महत्वाकांक्षा से भरे थे और महत्वाकांक्षा पराजित हो जाती है, टूट जाती है; जो खंडहर की भांति हो जाते हैं; वे भाग जाते हैं। वे संसार को छोड़ते हैं, ऐसा नहीं है। उन्होंने जो चाहा था, वह संसार में नहीं पाया; भागते हैं। चाह को नयी तरफ लगाते हैं। जो उन्होंने संसार में पाना चाहा था, अब वह ईश्वर में पाना चाहते हैं, मोक्ष में पाना चाहते हैं। उनका मोक्ष भी संसार का ही फैलाव है। क्योंकि वे कच्चे हैं।
मोक्ष तो पकी हुई चेतना को हो सकता है। कच्ची चेतना तो वही मांगती रहेगी, जो वह संसार में मांग रही थी। इसलिए इन्हीं तरह के लोगों ने स्वर्ग की कल्पना की है, जहां संसार में जो नहीं मिला, उस सब सुख का आयोजन कर लिया है। यहां सुंदर स्त्रियां नहीं मिलीं, तो स्वर्ग में अप्सराएं बना ली हैं। यहां शराब नहीं पी पाए, तो स्वर्ग में शराब के चश्मे बहा लिए हैं। जो यहां नहीं मिला, वह स्वर्ग में बना लिया।

स्वर्ग इसी तरह के असफल लोगों की कामना है। स्वर्ग कहीं है नहीं। वह हारे हुए मनों का स्वप्न है। और इन्हीं लोगों ने नर्क की कल्पना की है दूसरों के लिए, जो जीत गए हैं, जिनसे ये हार गए हैं।
तुम पद की दौड़ में थे और दिल्ली नहीं पहुंच पाए, दूसरा पहुंच गया। तो अपने लिए तुम स्वर्ग बना लोगे, क्योंकि तुमने संसार त्याग कर दिया। और जो दिल्ली पहुंच गया, इसके लिए तुम नर्क में डालोगे। क्योंकि संसार की सफलता नर्क में ले जाती है, ऐसी तुम धारणा करोगे।
तुम अपने से विपरीत को नर्क में डाल दोगे, आग में जलाओगे, तेल के कड़ाहों में भूनोगे, तलोगे। और अपने को स्वर्ग में रखोगे; अप्सराएं नाचेंगी चारों तरफ।
यह घाव भरा मन है। यह कच्चा फल है।
जो वस्तुतः संसार से पककर जाते हैं, उनके लिए स्वर्ग और नर्क दोनों नहीं हैं। उनके लिए दो और चीजें हैं, संसार और मोक्ष।
संसार है तुम्हारा अंधा होना। संसार है तुम्हारी आंख का बंद होना।
मोक्ष है तुम्हारी आंख का खुल जाना। संसार है अंधेरा; मोक्ष है प्रकाश।
संसार और मोक्ष दो हैं, ऐसा कहना शायद ठीक नहीं। संसार और मोक्ष तो एक
ही हैं, तुम्हारे देखने के ढंग दो हैं। जब तुम अज्ञान से भरे हुए देखते हो, तो वही संसार है। और जब तुम ज्ञान से भरकर देखते हो, तो वही मोक्ष है। जीवन तो एक है।
इसलिए झेन फकीरों ने कहा है, संसार और मोक्ष दो नहीं हैं। संसार ही मोक्ष है।
दूसरा वर्ग है, जो संसार को पकड़कर बैठा रहता है। एक भागता है, एक पकड़कर बैठा रहता है। जो पकड़कर बैठा रहता है, वह ईश्वर को इनकार करता है।
यह थोड़ा समझ लेने जैसा है। इनकार दोनों करते हैं। भागने वाला संसार
को इनकार करता है, स्रष्टा को स्वीकार करता है। संसार को पकड़ने वाला सृष्टि को स्वीकार करता है, स्रष्टा को इनकार करता है। पर दोनों के भीतर इनकार है, दोनों आधे-आधे को मानते हैं।
संसार को पकड़ने वाला कहता है, कहां का धर्म? कहां का मोक्ष? कहां का संन्यास? सब धोखा है, सब पाखंड है। सब हारे हुए लोगों के मन की सांत्वना है। मार्क्स ने कहा है, अफीम का नशा है। कुछ है नहीं; हारे-थके लोगों को अपने आपको भुला लेने का उपाय है; शराब है, अफीम है, नशा है। कोई परमात्मा नहीं है।
जो संसार को पकड़ना चाहता है, वह कहता है, कोई परमात्मा नहीं। उसे परमात्मा से डर लगता है। क्योंकि अगर परमात्मा है, तो संसार को ठीक से पकड़ न पाएगा। अगर परमात्मा है, तो संसार काफी नहीं है। यह बात बेचैनी पैदा करेगी। अगर परमात्मा है, तो संसार से ऊपर उठना है। तो यात्रा जारी रखनी पड़ेगी। तो फिर अभी मंजिल नहीं आ गयी है।
जिसको संसार पकड़ना है, वह परमात्मा से भयभीत है। जिसको परमात्मा पकड़ना है, वह संसार से भयभीत है। लेकिन दोनों भयातुर हैं।
संसार पकड़ना भी आसान मालूम पड़ता है, आसान है नहीं। तुम सभी जानते हो।
संसार में हो, जानते हो; कितना ऊपर से आसान दिखता है, भीतर कितना कठिन है।
हमने धोखा दिया है ऊपर से आसान बना लेने का।
किसी की शादी होती है। बैंड-बाजे बजाते हैं; फूल, गीत-गान। ऐसा ढंग देते हैं, जैसे कि स्वर्ग का द्वार खुल रहा है। खुलता नर्क का द्वार है। लेकिन एक बार शादी हो गयी किसी की, लोग आशीर्वाद देकर विदा हो गए। जो आशीर्वाद देकर विदा हो जाते हैं, वे भी भली-भांति जानते हैं, क्योंकि यह दुखद घटना उनके साथ भी घट चुकी है। लेकिन फिर भी चेहरे से मुस्कुरा रहे हैं, आशीर्वाद दे रहे हैं!
और हमारी कहानियां हैं, जो कहती हैं, युवक-युवती की शादी हो गयी; फिर
वे दोनों सुख से रहने लगे। यहीं खतम हो जाती हैं। फिल्में हैं, जिनमें यहीं परदा गिर जाता है; नाटक यहीं समाप्त हो जाते हैं। क्योंकि इसके बाद जो असली चीज शुरू होती है, वह दिखाने योग्य नहीं है। वह बहुत दुखपूर्ण है। उसको बताना क्या! उसको तुम जिंदगी में ही देख लोगे। जिंदगी ही उसे बहुत दिखा देगी।

तो कहानी को तो हम मधुर रखते हैं। बस, शहनाई बजती है, फूलमाला डलती है
और परदा गिर जाता है। और फिर हम कहते हैं, वे दोनों सुख से रहने लगे!
उसके बाद ही असली दुख शुरू होता है। उसके पहले शायद थोड़ा-बहुत सुख रहा हो; कम से कम आशा में तो रहा ही होगा, कल्पना में रहा होगा, स्वप्न में रहा होगा। फिर सब स्वप्न बिखर जाते हैं।
और ऐसा ही ढंग पूरे जीवन का है।
कोई धनी हो जाता है, तो हम कहते हैं कि कैसा सौभाग्यशाली है! शुभकामनाएं करते हैं। और हम कभी धनी के मन से नहीं पूछते कि तेरे भीतर कैसे नर्क खुल रहे हैं! तू कैसी पीड़ा में पड़ गया है!
न वह भोजन कर सकता है, क्योंकि धन कमाने में भूख मर गयी। धन इतना कमा लिया कि भोजन करने की सुविधा ही न रही जीवन में। धन इतना कमा लिया, उसकी दौड़-धूप में इतने व्यस्त हो गए कि शरीर की कौन फिक्र करे? कौन भोजन करे ठीक से? कौन ठीक से सोए?
सदा सोचा कि जब धन कमा लेंगे, करोड़पति हो जाएंगे, तब ठीक से सोएंगे बिस्तर लगाकर, चादर तानकर। लेकिन इस बीच सोना ही भूल गया। धन तो हाथ में आ गया, लेकिन नींद नहीं आती। धन तो हाथ में आ गया, लेकिन भूख नहीं लगती। धन तो हाथ में आ गया, लेकिन अब इसका क्या करें? क्योंकि जीवन की सारी की सारी शैली विकृत हो गयी।
धनी से पूछो उसका दुख। न वह सो सकता है, न वह ठीक से भोजन कर सकता है; न
वह ठीक से हंस सकता है, न रो सकता है। तुम उसके कारागृह को समझ ही नहीं पाते। तुम शुभकामनाएं लेकर जाते हो। तुम कहते हो, धन्यभाग! किए होंगे पिछले जन्म में पुण्य कर्म, उनका फल भोग रहे हो।
वह इसी जन्म के पाप कर्मों का फल भोग रहा है। तुम बता रहे हो कि पिछले जन्म में पुण्य कर्म किए होंगे, उसका फल भोग रहे हो। लेकिन वह भी ऊपर से चेहरा बनाता है। क्या सार है अपने भीतर के घाव खोलने से! ऊपर मुस्कुराता है, भीतर कांटे बढ़ते चले जाते हैं। ऊपर झूठे फूल लगाए चला जाता है। राजनीतिज्ञ से पूछो; सफल हो जाता है, पद पर पहुंच जाता है। हिटलर से पूछो, मुसोलिनी से पूछो, क्या पाया है? सिवाय पीड़ा के कुछ भी नहीं पाया, सिवाय विक्षिप्तता के कुछ भी नहीं पाया। जीवन एक महानर्क हो गया, एक बड़ा दुख-स्वप्न, जिसका कोई अंत आता नहीं मालूम होता। और अंततः आत्मघात हाथ में रह जाता है।
लेकिन इतिहास इनकी कहानियां लिखेगा और नए बच्चों को भरमाएगा। इनको इतिहास सफल पुरुषों में गिनेगा, विजेता कहेगा। इतिहास-पुरुष बन जाएंगे ये पागल लोग, जिनका नाम भी पोंछ दिया जाना चाहिए, कि भविष्य में किसी को याद भी न रहे कि हिटलर और मुसोलिनी जैसे लोग भी हुए हैं।
लेकिन अगर तुम इतिहास को ऐसे पोंछने लगो, तो तुम्हारा पूरा इतिहास ही पुंछ जाएगा, क्योंकि सिवाय युद्धों के, युद्ध में जीतने और हारने वालों के और तो तुम्हारा इतिहास कुछ भी नहीं है। बुद्ध पुरुषों की तो भनक भी उसमें सुनाई नहीं पड़ती। उसमें तो पागलों का ही शोरगुल मालूम पड़ता है! और पागल इतने जोर से चीखते, पुकारते, चिल्लाते हैं कि बुद्ध पुरुषों के वचन कहां खो जाते हैं, पता ही नहीं चलता।
एक तरफ संसार है। वह सरल लगता है, ऊपर से पकड़ लेना। ऐसा भीतर से इतना सरल नहीं है।
इसलिए जो भी संसार में है, उसके मन में संन्यास का आकर्षण पैदा होता है। वह सोचता है, यहां तो दुख पा रहा हूं, शायद वहां सुख मिले। विपरीत का आकर्षण पैदा होता है। यह तो देख लिया, यहां तो दुख पाया; शायद सुख वहां हो। इसलिए तुम धनपतियों को, संसारियों को, राजनेताओं को संन्यासियों के चरणों में बैठे देखोगे। ज्ञान-चर्चा सुनने गए हैं! सत्संग करने गए हैं!
दिल्ली में जितने नेता हैं, सबके गुरु हैं। जरूरी है। वह गुरु बिल्कुल आवश्यक है, वह सहारा है। उससे यह लगता है कि कोई फिक्र नहीं है, अभी दुख झेल रहे हैं, जल्दी ही हम भी इसी यात्रा पर चले जाएंगे। और जब भी कोई राजनेता हार जाता है, तब तो वह निश्चित किसी गुरु की तलाश में निकल जाता है। जब तक जीतता है, तब तक चाहे फुरसत न भी मिले, हारते ही फुरसत मिलती

है। वह भागता है। खोजो किसी बाबा को, किसी के चरण को पकड़ो। अब सम्हालो दूसरा सत्य; यह तो नहीं सम्हला, और इसमें तो दुख पाया।
संसारी के मन में संन्यास का आकर्षण बना रहता है। बादशाहों के मन में
भी, भिखारी में मस्ती है, इसका आकर्षण बना रहता है। महलों में जो रहते हैं, वे ईर्ष्या करते हैं उनसे, जो झोपड़ों में सोते हैं। क्योंकि वे सोते हैं। उनकी नींद देखने जैसी है, उसका सौंदर्य अनूठा है। घोड़े बेचकर सोते हैं। घोड़े नहीं हैं उनके पास। यह कहावत उनके लिए लागू है, जिनके पास घोड़े हैं ही नहीं। वे घोड़े बेचकर सोते हैं। जिनके पास घोड़े हैं, वे तो सोते ही नहीं। घोड़े इतने हिनहिनाते हैं, सोएं कैसे!
गरीब सोता है, अमीर के मन में ईर्ष्या आती है।
गरीब को भोजन करते देखो। जिस उत्साह, जिस आवेश से और जिस आनंद से भूख उसे पकड़ती है, उसके लिए अमीर ईर्ष्या से भर जाता है। हजार चिकित्साएं करवाता है, उपवास करता है, प्राकृतिक चिकित्सकों तक के चक्कर में पड़ जाता है कि किसी तरह भूख लग आए। भूख नहीं लगती। भूख मर गयी। ईर्ष्या से देखता है भिखमंगे को, जिसके हाथ में रूखी रोटी है, लेकिन जिसका पेट अभी जवान है और जिसके प्राण अभी पचाते हैं।
स्वाभाविक है कि विपरीत का आकर्षण बना रहे। भिखमंगा बड़ी आशा और आकांक्षा से देखता है महलों की तरफ, जरूर वहां सुख बरस रहा होगा! महलों में रहने वाले लोग भिखमंगे की तरफ देखते हैं। इसकी ताजगी, इसके चलने की रौनक, इसकी मस्ती। कमा लीं दो-चार रोटी दिन में, बस बात खतम हो गयी। संसार समाप्त हुआ। फिर यह संन्यासी है। फिर यह बैठकर अपनी ढपली पर गीत गाता है। यह रात देर तक नाचता रहता है। कल जैसे है ही नहीं। क्या फिक्र! कल फिर मांग लेंगे; कल फिर भीख मिल जाएगी। भिक्षा-पात्र काफी संपदा है। उसको ही सिर के नीचे तकिया बनाकर रात सो जाता है। ईर्ष्या लगती है।
तो जो संसार को पकड़े हुए है, वह संन्यास के लिए हमेशा ईर्ष्यातुर रहेगा। उसके मन में संन्यासी की आकांक्षा रहेगी। वह हमेशा खोजेगा अपने से विपरीत को और सोचेगा कि विपरीत में आनंद है। और यही हालत संन्यासियों की है।
मेरे पास बुजुर्ग से बुजुर्ग संन्यासियों का मिलना हुआ है। वे भी मुझसे एकांत में यही कहे हैं कि कभी-कभी हमें शक होने लगता है कि हमने भूल तो नहीं की सब छोड़कर! सब छोड़ तो दिया, पाया कुछ भी नहीं। कहीं ऐसा तो नहीं है कि संसार से हटकर हमने गलती कर ली! कहीं ऐसा तो नहीं है कि संसार ही सब कुछ था! कुछ और है ही नहीं, मन की वंचना है, धोखा है।
और संन्यासी देखता है, तो उसे लगता है कि संसारी सुखी मालूम पड़ते हैं। हंसते भी हैं, नाचते भी हैं, गीत भी गाते हैं, उत्सव भी होता है। तुम समझ नहीं सकते कि संन्यासी के मन में तुम्हारे प्रति ईर्ष्या जगती है! वह भी भीतर-भीतर रस लेता है कि शायद वहीं सब कुछ घट रहा है।
मैंने सुना है कि एक वेश्या और एक संन्यासी आमने-सामने रहते थे। एक ही दिन मरे। देवदूत इकट्ठे हुए और संन्यासी को नर्क ले जाने लगे और वेश्या को स्वर्ग। फिर किसी को संदेह पैदा हुआ, क्योंकि संन्यासी चिल्लाया, यह क्या कर रहे हो? कुछ गलती हो गयी! मुझे स्वर्ग ले जाओ, मैं संन्यासी हूं; इस वेश्या को स्वर्ग ले जा रहे हो! इससे ज्यादा पापिनी, व्यभिचारिणी कोई स्त्री न थी। जरूर साथ हम मरे हैं, साथ ही आर्डर निकले हैं; कहीं कुछ भूल-चूक हो गयी है, दफ्तरों में अक्सर हो जाती है। तुम गलत जगह ले जा रहे हो। यात्रा रोक दी गयी। देवदूत भागे। उनको भी शक हुआ कि हो सकता है; गलती
तो दिखती है। लौटकर आए, कहा कि कोई गलती नहीं है। हमने पूछा, तो पता चला कि संन्यासी ऊपर-ऊपर संन्यासी था और भीतर उसके मन में ऐसा ही होता था निरंतर, जब वह परमात्मा की पूजा भी करता था सुबह अपने मंदिर में, तो घंटी तो परमात्मा की प्रार्थना में बजती थी; उसके हृदय की घंटी वेश्या के घर ही बजती रहती थी। पूजा करता था, प्रार्थना करता था, लेकिन रस उसका वेश्या में लगा था। रात राम-राम जपता था, लेकिन मन में यही भाव होता था कि वेश्या के घर जो लोग इकट्ठे हैं, आनंद ले रहे होंगे! वहां गीत होता, नाच होता। वे जरूर आनंदित हो रहे हैं। मैं यहां दुख में मरा व्यर्थ ही राम-राम जप रहा हूं। मैंने अपने हाथ यह रेगिस्तान चुन लिया। राम-राम जपो और रेगिस्तान में रहो!

कोई मरूद्यान भी पता नहीं चलता; न कहीं राम मिलते हैं। वेश्या मजा लूट रही है। वेश्या के घर से उठते हुए आनंद के, हंसी के झोंके, और ईर्ष्या भर जाती। और वेश्या थी जो कि निरंतर, जब भी मंदिर की घंटी बजती, संन्यासी की पूजा-प्रार्थना का शोर उठता, उसके राम-राम का नाद गूंजता, तो रोती कि मैंने जीवन ऐसे ही गंवा दिया। काश, मैं भी किसी मंदिर में प्रविष्ट हो जाती! मैं शरीर में ही रही; मैंने कभी आत्मा की खोज न की। धन्यभागी है यह संन्यासी! ऐसे जो संन्यासी था, वह वेश्या के घर में रहा मन से। ऐसे जो वेश्या थी,
वह संन्यासी के मंदिर में रही मन से। इसलिए उन्होंने कहा, भूल-चूक नहीं हुई है। हम पता लगाकर आ गए। उन्होंने कहा कि ठीक ही है। वेश्या को स्वर्ग आना है, क्योंकि जहां तुम मन से हो, वहीं तुम हो।
शरीर से होना भी कोई होना है! शरीर मंदिर में हो सकता है। अगर मन वहां नहीं, उसको क्या मंदिर कहते हो! मंदिर तो वहीं है, जहां मन हो। इसलिए तो हमने उसे मंदिर कहा है। अगर मन ही वहां नहीं है, तो लाश पड़ी है। उस लाश के होने से कुछ भी न होगा।
संन्यासी अगर अधूरा भाग जाए, तो संसार खींचता है; आकर्षण कायम रहता है। रहना ही चाहिए, यह नियम है; सीधी बात है।
संसारी अगर भय के कारण परमात्मा को इनकार कर दे, भय के कारण कह दे, कोई धर्म नहीं, कोई मोक्ष नहीं, कोई आत्मा नहीं, तो ऐसा अपने को ज्यादा देर समझा न पाएगा। जल्दी ही ये तर्क जो ऊपर-ऊपर से थोपे हैं, हटने लगेंगे, गिरने लगेंगे। जीवन इन्हें धक्के देगा, डांवाडोल करेगा और मन में एक गहन आकांक्षा संन्यास की पैदा होगी।
ये दो तरह के लोग तो दुनिया में सदा से रहे हैं। कृष्ण ने एक तीसरे आदमी की कल्पना की। वह जो संसार में है, और संन्यासी है। जो संन्यासी है, और संसार में है। जो परमात्मा को स्रष्टा के रूप में भी स्वीकार करता है, सृष्टि के रूप में भी। जो परमात्मा को अस्वीकार ही नहीं करता। जो कहता है, तुम जिस रूप में आओ, मैं राजी हूं। तुम पत्नी के रूप में आए हो; भले आए, स्वागत है। तुम बेटे के रूप में आए हो; भले आए, स्वागत है। तुम ग्राहक के रूप में आए हो, नमस्कार है। तुम जिस रूप में भी आए हो, स्वीकार हो। तुम मुझे धोखा न दे सकोगे। तुम विपरीत रूप में भी आओ, तो भी मैं तुम्हें पहचान लूंगा।
एक झेन फकीर को मारा गया। जब हत्यारे ने उसको छुरा भोंका, तो उसने झुककर नमस्कार किया, और मरते हुए शरीर, कंपते हुए हाथ से उसने उस हत्यारे के पैर छुए। हत्यारा घबड़ा गया। उसने कहा, तुम यह क्या करते हो!
उस फकीर ने कहा, तू बीच में मत पड़। तेरा कुछ लेना-देना नहीं। तेरे हम पैर छूते भी नहीं। यह तो मैं उससे कह रहा हूं कि तू किसी भी रूप में आ, तू मुझे धोखा न दे सकेगा। मैं तुझे पहचान ही लूंगा। यह तो मेरे-उसके बीच बात है, तू परेशान न हो। तुझे जो करना है, तू कर। लेकिन आखिरी वक्त भी मेरी सांस यही कहते हुए समाप्त हो कि तू जिस रूप में भी आया, मैंने तुझे चाहा। मैंने कोई रूप की शर्त न लगायी थी। मैंने तुझ पर कोई नियम न बांधे थे कि ऐसे तू आएगा, तो ही मैं राजी होऊंगा। तू जैसे भी आएगा, हम तुझे देख ही लेंगे, क्योंकि तेरे सिवाय और कुछ भी नहीं है।
संसार मोक्ष है, सृष्टि स्रष्टा है, कृष्ण का यह महासूत्र है। कृष्ण
का यह सूत्र फलित नहीं हुआ। होना तो चाहिए था, क्योंकि बिल्कुल ही ठीक है। लेकिन बिल्कुल ठीक फलित नहीं हो पाता, क्योंकि हम बहुत गलत हैं। हमसे उसका मेल नहीं बैठता।
मैं जो प्रयास कर रहा हूं, वह कृष्ण के सूत्र को ही फलित करने का प्रयास है।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, आप यह क्या कर रहे हैं? आप संन्यास
को भ्रष्ट किए दे रहे हैं। गृहस्थों को संन्यासी बना रहे हैं!
और किसको बनाऊं? गृहस्थ ही होते हैं दुनिया में। जिनको तुम संन्यासी बनाते हो, वे भी गृहस्थों के बेटे-बेटियां होते हैं। और संन्यासी होकर भी क्या हो जाएगा!

लेकिन पुरानी धारणा है, वह कहती है, संन्यासी का अर्थ है, वह छोड़कर भाग जाए। दुकान पर न बैठे, दफ्तर में न पाया जाए। और मैं कह रहा हूं कि हमने वह धारणा प्रयोग करके देख ली, वह सफल नहीं हुई।
संन्यास एक असफल प्रयोग सिद्ध हुआ है। संन्यासी संन्यासी होकर सड़ गए, क्योंकि उनके जीवन में ऊर्जा न रही, प्रवाह न रहा। अवरुद्ध हो गयी सब धारा। पलायन से कहीं प्रवाह हो सकता है? भागने से कहीं ऊर्जा का आविर्भाव हो सकता है? भयभीत और कायर की तरह जाने से कहीं जीवन के वरदान मिल सकते हैं?
संसार को जिसने पीठ दिखायी, उसने परमात्मा को भी पीठ दिखा दी। उसने कह दिया कि नहीं, तुम पूरे के पूरे मुझे स्वीकार नहीं हो। और परमात्मा अगर स्वीकृत होता है, तो पूरा ही स्वीकृत होता है। आधा भी कहीं कोई परमात्मा हो सकता है!
वह संन्यास हार गया। और उस संन्यास की वजह से संसार भी सड़ गया। क्योंकि जो संसार में है, वह सोचने लगा, अभी तो हम संसारी हैं, तो संसारी के ढंग से रहें। फिर संन्यास ले लेंगे, तब संन्यासी का ढंग सोचेंगे।
संसारी ने सोचा, धर्म हमारे लिए नहीं, वह संन्यासी के लिए है। संन्यासी ने सोचा कि संसार हमारे लिए नहीं है, वह गृहस्थ के लिए है। धर्म और संसार का संबंध टूट गया।
फिर बड़े मजे की बात है, संन्यासी गाली दिए जाता है, निंदा किए जाता है लोगों की, कि तुम धार्मिक क्यों नहीं हो! उसी ने तोड़ा है संबंध। लोग भी सिर हिलाते हैं, लेकिन वे जानते हैं, हम हो भी कैसे सकते हैं! हम संसार में हैं, समझो! घर-गृहस्थी है, बाल-बच्चे हैं, दुकानदारी है। अभी हम कैसे धार्मिक हो सकते हैं! हमें तो झूठ में रहना ही होगा।
संसार को ही संन्यास बना लेना जीवन को धर्म बना लेना है। तुम जहां हो, जैसे हो, वहीं जीवन के हो। रूपांतरित करो। धर्म को पाने कहीं जाओ मत, धर्म को वहीं बुलाओ, निमंत्रण दो। तीर्थ की यात्रा मत करो, तीर्थ को बुलावा दो। खुलो, ताकि परमात्मा तुम में आए। तुम्हें उसे खोजने कहीं जाना न पड़े।
तुम जाओगे भी कहां? उसका कोई पता-ठिकाना भी नहीं है। पुराने पतों पर तुम जाते हो, वहां वह अब रहता नहीं है। हिमालय जा रहे हो, वहां वह रहता ही नहीं। थोड़े दिन में वहां माओत्से तुंग मिलेंगे, और कोई नहीं मिलेगा।
तुम जाओ कहीं भी, पुराने घरों को उसने छोड़ दिया है; अब वहां नहीं है।
अब तो तुम अगर उसे कहीं पा सकते हो, तो वह तुम्हारा अपना ही घर है। वह तुम ही हो।
इसलिए बड़ी दुस्साहस की कल्पना है कृष्ण की कि घर मंदिर हो जाए; कर्म कर्म-त्याग हो जाए; युद्ध भी धर्मयुद्ध हो जाए; संघर्ष भी समर्पण बन जाए; कुछ त्यागना न पड़े और त्याग फलित हो। बारीक है, सूक्ष्म है, नाजुक है। पूरी नहीं हो सकी, लेकिन होनी चाहिए।
इसलिए मैं तुम्हें संन्यास दे रहा हूं और तुमसे कहता नहीं कि तुम भागो। तुमसे कहता हूं, टिके रहो। कठिनाइयां आएंगी। तालमेल बिठाना बड़ा मुश्किल होगा। क्योंकि हजारों साल से विरोध पड़ गया, खाई पड़ गयी, पुल बनाने पड़ेंगे। हर व्यक्ति को अपना-अपना सेतु निर्मित करना पड़ेगा। लेकिन जिस दिन तुम उस सेतु को निर्मित कर लोगे, तुम अहोभागी होओगे।
इसको तुम मूल बीज-मंत्र समझ लो कि स्वीकार करना है अगर परमात्मा को,
तो उसकी सृष्टि ही उसके स्वीकार का द्वार है। तुम उसमें चुनाव मत करो, चुनावरहित उसे स्वीकार कर लो। और तभी तुम्हारे जीवन में धन्यता शुरू हो जाती है।
संसार मोक्ष बन जाए, इस महापरिकल्पना के साथ जीओ। कर्म अकर्म बन जाए,
इस अनूठे सूत्र को अपने हृदय में लेकर चलो। और पदार्थ में ही उसे खोजेंगे; जहां हैं, वहीं उसे पाएंगे; इस महाआशा से तुम्हारा हृदय धड़कता रहे। तो दूर नहीं है, परमात्मा पास ही है। तुम जरा धड़के, तुम इस आशा से भरे कि मिलन हो जाएगा।
प्रश्न दूसराः आप पुकार-पुकारकर हमें कह रहे हैं कि अपना बोझ, अपना दुख, अपनी चिंता मुझे सौंपकर निर्भार और निश्चिंत जीओ। और हम हैं कि उससे भी बचते रहते हैं। हम इतने नादान क्यों हैं?

प्रश्न दूसराः आप पुकार-पुकारकर हमें कह रहे हैं कि अपना बोझ, अपना दुख, अपनी चिंता मुझे सौंपकर निर्भार और निश्चिंत जीओ। और हम हैं कि उससे भी बचते रहते हैं। हम इतने नादान क्यों हैं?

नादान नहीं हो; बहुत समझदार हो। नादान ही होते, फिर तो कहना ही क्या! नादान होते, तो बचने की कोशिश न करते। नादान कैसे बचेगा! होशियार बचता है। मन तर्कयुक्त है, विचार से भरा है। कैसे छोड़ दें! हिफाजत करनी है; अपनी रक्षा करनी है। है कुछ भी नहीं रक्षा करने को।
क्या है तुम्हारे पास जिसे तुम बचा रहे हो? सिवाय दुख के और क्या है तुम्हारी गांठ में जिसे तुम सम्हाल-सम्हालकर रख रहे हो? कबीर कहते हैं, हीरा पायो, गांठ गठियायो। तो तुम किस चीज को गठिया रहे हो? हीरा पा लो, फिर गांठ गठिया लेना। फिर मैं तुमसे कितना ही कहूं, छोड़ दो मुझ पर, मत छोड़ना। मगर अभी तो तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है; पर गांठ गठिया रहे हो! अगर दूसरों को धोखा देने के लिए गठिया रहे हो कि दूसरे समझें कि गांठ में कुछ है, तो भी ठीक है। लेकिन धीरे-धीरे दूसरों को धोखा देते-देते खुद को धोखा हो जाता है कि जब गांठ को इतना गठिया रहे हैं, जरूर कुछ होगा। भीतर हीरा होना ही चाहिए, नहीं तो हम इतने नासमझ थोड़े ही हैं कि गांठ को गठियाते! फिर तुम उसकी रक्षा में लगे हो।
और जीवन ने तुम्हें तर्क सिखाया है। समाज ने तुम्हें विचार सिखाया है। अनुभव ने दूसरे पर भरोसा न करना, इसकी तुम्हें शिक्षा दी है। क्योंकि कहीं धोखा हो जाए! कहीं कोई धोखा न दे दे! कहीं कोई लूट न ले। इसलिए जहां भी तुम सुनते हो यह स्वर, समर्पण, वहीं तुम चौंककर तत्पर हो जाते हो कि खतरा है।
नादान होते, तो चौंकते न, राजी हो जाते। होशियार हो। तुम्हारी होशियारी ही तुम्हारी नादानी है। तुम्हारा अति समझदार होना ही तुम्हारी नासमझी है। इसे गौर से देखने की कोशिश करो।
जब मैं कहता हूं, छोड़ दो, तो तुम एकदम यह सोचने लगते हो कि जरूर तुम्हारे पास कुछ होगा, जिसे पाने के लिए मैं तुमसे कह रहा हूं, छोड़ दो। स्वभावतः, तुम्हारे मन में डर पैदा होता है।
जब मैं तुमसे कहता हूं, छोड़ दो, तब तुम मेरी फिक्र छोड़ो। तुम यह देखो
कि तुम्हारे पास कुछ है? कुछ भी तो नहीं है।
जिस दिन तुम्हें यह भान होगा कि कुछ भी तो नहीं है छोड़ने को, उसी दिन छूट जाएगा। उस भान में ही गांठ खुल जाती है। उस भान में ही तुम झुक जाते हो। कुछ भी तो नहीं है बचाने को। कोई लूट भी लेगा, तो क्या है लुट जाने को! और जैसे ही तुम छोड़ना सीख लेते हो... ।
क्योंकि मेरे पास तो तुम्हें मैं सिर्फ छोड़ना सिखा रहा हूं, ताकि तुम आखिरी छोड़ने के लिए राजी हो जाओ। नहीं तो तुम परमात्मा पर भी न छोड़ पाओगे। गुरु के माध्यम से परमात्मा को सीखना है। गुरु तो सिर्फ एक रिहर्सल है, एक तैयारी है, ताकि तुम झुकने की कला सीख जाओ। और किसी दिन परमात्मा मिले, तो वहां तुम अकड़े न खड़े रह जाओ।
गुरु दो बात की तैयारी है। तुम झुकना सीख जाओ; और गुरु के भीतर जो महिमावान प्रकट हुआ है, उससे तुम्हारी थोड़ी पहचान हो जाए। ताकि जब परम महिमा घटित हो, परमात्मा तुम्हारे सामने आ जाए, तो तुम उसे पहचान लो, रिकग्नीशन हो, प्रत्यभिज्ञा हो जाए।
गुरु से जो स्वाद मिला है, जो बूंद मिली है, उसका सागर जब तुम्हें दिखाई पड़ेगा, तुम पहचान लोगे। और गुरु के सामने जो थोड़ा-सा झुकना सीखा था, उस झुकने का अभ्यास हो जाएगा, तो उस महामहिमा के सामने तुम अपने को डाल दोगे साष्टांग, सारे अंगों को तुम उसके सामने डाल दोगे, सिर झुका लोगे। उस झुकने में ही मिलन है, महामिलन है।
नादान ही तुम होते, तो अच्छा था। तुम समझदार हो गए हो बिना समझदार हुए। तुम पंडित हो गए हो बिना प्रज्ञावान हुए। तुमने तर्क सीख लिया है। और तर्क नासमझ के हाथ में ऐसा ही है, जैसे छोटे बच्चे के हाथ में तलवार हो। वह खुद को ही काट लेगा। वह खुद के ही अंगों को नुकसान पहुंचा लेगा।

तुम अपने तर्क से अपने को ही काट रहे हो, अपने को ही नुकसान पहुंचा रहे हो। इसे थोड़ा समझो और इसे थोड़ा पहचानो कि तुम क्या कर रहे हो? तुमने अब तक क्या किया है? तुमने जो भी किया है, वह तुम्हें कहां ले गया है?
तो अगर कोई नया स्वर तुम्हें सुनायी पड़ता है, प्रयोग करने जैसा है। मार्क्स ने कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो में एक अनूठा वचन लिखा है, आखिरी वचन, कि दुनिया के मजदूरो एक हो जाओ, तुम्हारे पास खोने को कुछ भी नहीं है सिवाय जंजीरों के।
यह शायद मजदूरों के संबंध में सच न भी हो, लेकिन हर आदमी के संबंध में धर्म की यात्रा में सच है। तुम्हारे पास खोने को कुछ भी नहीं है सिवाय जंजीरों के, सिवाय दुख, पीड़ा और नर्क के।
लेकिन तुमसे मैं एक होने को नहीं कहता, क्योंकि एक होने की बात तो राजनीति की है, संघर्ष की है, युद्ध की है। मैं तुमसे कहता हूं, झुक जाओ। तुम्हारे पास खोने को कुछ भी नहीं है सिवाय जंजीरों के। पाने को सब कुछ है, पाने को पूरा परमात्मा पड़ा है।
लेकिन तुम अकड़े खड़े हो। नदी बही जाती है; तुम प्यासे खड़े हो; लेकिन तुम झुक नहीं सकते। झुकना पड़ेगा, अंजुलि में जल भरना पड़ेगा, तभी तुम कंठ तक जल को ला सकोगे।
कंठ और नदी की धार में ज्यादा फासला नहीं है, थोड़ा झुकना पड़ेगा। प्यास
और परमात्मा बहुत पास हैं, सिर्फ न झुकना दूर किए हुए है। झुके कि पास हो गए; न झुके कि दूर रहे।

आखिरी प्रश्नः यह कोई कैसे जाने कि परमात्मा किस रूप में मेरा उपयोग करना चाहता है कि वह अपने को उसके हाथ में उसी रूप में छोड़ दे?

इसकी भी चिंता क्या करनी है! और अगर इसकी भी चिंता तुम्हीं करोगे कि पहले हम पक्का कर लें कि वह किस भांति उपयोग करना चाहता है, तब हम छोड़ेंगे, तब तो तुम छोड़ ही नहीं रहे हो। छोड़ने का मतलब यह है कि जिस भांति उसे उपयोग करना हो, कर लेगा; और न करना होगा उपयोग, तो न करेगा। फेंक देना होगा कूड़े- करकट में, तो फेंक देगा। जहां लगाना होगा, लगा देगा। छोड़ने का मतलब अपनी बुद्धि छोड़ना है।
लेकिन अगर तुम पूछते हो कि क्या उपयोग करेगा, उसका पक्का हो जाए, तो हम छोड़ने का विचार करें। कैसे उपयोग करेगा? तो तुम छोड़ ही नहीं रहे हो। तब तो तुम उन्हीं बातों के लिए छोड़ोगे, जो बातें तुम्हारे मन के अनुकूल हैं। तो तुमने परमात्मा पर छोड़ा ही नहीं। अच्छा तो यह होगा कि तुम कहो कि तुमने परमात्मा को अपने मन के अनुकूल उपयोग कर लिया।
और अक्सर ऐसा होता है कि जो छोड़ने वाले भी सोचते हैं कि हम छोड़ रहे हैं, वे भी छोड़ते नहीं।
मैंने एक कहानी सुनी है, पता नहीं कहां तक सच है। डर लगता है कि सच होगी। कहते हैं कि तुलसीदास मथुरा गए। तो उन्हें कृष्ण के मंदिर में ले जाया गया। उन्होंने झुकने से इनकार कर दिया। उन्होंने कहा कि जब तक धनुष-बाण हाथ न लोगे, मैं न झुकूंगा। वहां कृष्ण खड़े हैं बांसुरी लिए। लेकिन तुलसी हैं राम के भक्त। तो उन्होंने कहा, जब तक धनुष-बाण हाथ न लोगे, राम न बनोगे, तब तक मैं न झुकूंगा। मैं राम के लिए झुकता हूं। धनुर्धारी राम का मैं भक्त हूं।
यह भी कोई झुकना हुआ! अगर बांसुरी वाले में भी तुम धनुर्धारी को न पहचान पाए, तो यह भी कोई आंखें हुईं? यह तो तुम्हारा झुकना न हुआ, परमात्मा को झुकाने का आयोजन हुआ। यह तो बड़ी चालबाजी हुई। यह तो स्त्रैण ढंग की राजनीति हुई।
स्त्रियों की एक राजनीति होती है। वे कहती हैं, हम आपकी दासी, और गरदन पकड़ लेती हैं। उनका यह ढंग है। यह स्त्रैण मनोविज्ञान है। वे ऐसा नहीं कहतीं कि हम आपके मालिक। न; यह कोई स्त्री नहीं कहती। लेकिन प्रत्येक स्त्री जानती है कि वह मालिक है। वह पैर पकड़ती है; वह कहती है, मैं आपकी दासी। स्त्री कहती है, मैं आपकी दासी, और पुरुष को दास बना लेती है।

ये जो तुलसीदास हैं, पक्के दास हैं। ये कहते हैं, धनुष-बाण हाथ लो, मैं
तो झुका ही हुआ हूं तुम्हारे लिए। बाकी तुम अपने असली रूप में आओ। मेरा चुना हुआ रूप है, वही ग्रहण करो।
मैं नहीं जानता, यह कहां तक सच है। लेकिन डर होता है कि सच होगा, क्योंकि तथाकथित धार्मिक लोग इस तरह की बातें करते हुए देखे गए हैं।
मैं एक यात्रा पर था और एक जैन महिला मेरे साथ थी। तो जब तक मंदिर में जाकर नमस्कार न कर आए, तब तक भोजन न करे। एक दिन ऐसा हुआ कि उस गांव में कोई जैन मंदिर न था, तो वह भोजन न कर पायी। तो मैं भी परेशान हुआ।
दूसरे गांव हम पहुंचे। तो मैंने गांव जाने के पहले ही पता लगा लिया कि वहां कोई जैन मंदिर है? वहां मंदिर था। पर मुझसे भूल हो गयी। गए। मैंने उसको कहा कि अब तू बिल्कुल निश्चिंत होकर, स्नान करके मंदिर हो आ। वह गयी और वापस आ गयी। उसने कहा, वह तो श्वेतांबर जैन मंदिर है। मुझे दिगंबर जैन मंदिर चाहिए।
अब दिगंबर और श्वेतांबर जैन मंदिर में एक ही महावीर की प्रतिमा है। जरा-सा फर्क है। और फर्क ऐसा कि फर्क कहा नहीं जा सकता। श्वेतांबर महावीर की खुली आंख रखते हैं प्रतिमा में और दिगंबर बंद आंख रखते हैं। बस इतना ही फर्क है।
और महावीर ने दोनों ही काम किए होंगे। कभी आंख बंद भी की होगी; कभी आंख खोली भी होगी। अगर आंख खोले ही रहे हों चौबीस घंटे, तो पागल हो गए होते। आंख बंद ही रखी होती चौबीस घंटे, तो भी पागलपन में चले जाते।
वह श्वेतांबर महावीर चौबीस घंटे आंख खोले बैठे हैं! उनका दिमाग खराब
हो जाए।
मगर यह महिला वहां न झुक सकी। यह गयी, इसने देखा; लौट आयी। मैंने कहा, तूने नमस्कार तो किया? उसने कहा, कैसे करें! अपने महावीर हैं ही नहीं। तुम यह पूछो ही मत कि कोई कैसे जाने। जानना भी छोड़ दो। तुम जानोगे भी कैसे? उसी को जानने दो। अंग जानेगा भी कैसे? हिस्सा जानेगा भी कैसे? वह पूर्ण है, उसी को जानने दो।
कोई कैसे जाने कि परमात्मा किस रूप में मेरा उपयोग करना चाहता है?
उसी पर छोड़ दो, वही जाने। और जैसा उपयोग करना चाहे, तुम करते जाओ।
तुम बात ही नहीं समझ रहे। तुम समझ रहे हो, शायद कोई बहुत बड़ा उपयोग करना चाहता है तुम्हारा। तो पक्का साफ हो जाना चाहिए। सारा सूत्र इतना है कि तुम अपने ऊपर चिंता मत लो। वह करना चाहे, कर ले; न करना चाहे, न करे। वह भूल जाए; मर्जी। तुम ऐसे ही बैठे रहो। और वह उपयोग ही न करे, तो भी उसकी मर्जी।
असली सूत्र इतना है कि तुम अपने अहंकार को हटा दो। मैं न रहूं। वही बहे मुझमें; वही चले, वही उठे, वही बोले। मैं समाप्त हो गया। फिर उसकी मर्जी हो, युद्ध में लड़ाना हो, तो लड़ा ले। और मर्जी हो कि संन्यासी बनाना है, हिमालय पहुंचाना है, तो हिमालय पहुंचा दे। लेकिन तुम ऐसे चलते जाना, जैसे कि कोई कठपुतली धागे से बंधी नाचती है।
नाच उसका है, फल उसका है, नियति उसकी है, उत्तरदायित्व उसका है। तुम अपने को बीच से बिल्कुल हटा लेते हो। तुम सिफर हो जाते हो। तुम एक शून्य हो जाते हो।
तुमने कभी ख्याल किया, शून्य का कोई भी मूल्य नहीं होता; लेकिन शून्य
के सामने आंकड़े रखते जाओ, मूल्य बदलता जाता है। एक रखो, शून्य दस हो जाता है। दो रखो, शून्य बीस हो जाता है।
तुम शून्य हो जाओ, तुम सिफर हो जाओ; और उससे कहो, जो तुझे आंकड़ा रखना हो; और न रखना हो, तेरी मर्जी। हम शून्य ही रहेंगे। तुझे दस बनाना हो, दस बना दे। तुझे हजार बनाना हो, हजार बना दे। लाख बनाना हो, लाख बना दे। न बनाना हो कुछ, हम बड़े प्रसन्न हैं। प्रसन्नता हमारी इसमें है कि हमने तुझ पर छोड़ दिया। तूने सम्हाल लिया, तूने लगाम अपने हाथ में ले ली, अब हम क्यों फिक्र करें!

अब सूत्रः

और जो तू अहंकार को अवलंबन करके ऐसे मानता है कि मैं युद्ध नहीं करूंगा, तो अर्जुन, यह तेरा निश्चय मिथ्या है... ।
मनुष्य के सभी निश्चय मिथ्या हैं। तुम निश्चय कैसे करोगे? तुमने अपने जन्म का निश्चय नहीं किया, जीवन का निश्चय नहीं किया, तुमने अपनी मृत्यु का निश्चय नहीं किया। तुम हो, अपने निश्चय से नहीं। तुम हो विराट की लीला के एक अंग। तुम हो उस सागर की एक ऊर्मि, एक लहर। तुम्हारे सभी निश्चय मिथ्या हैं।
कृष्ण ने कहा कि जो तू अहंकार को अवलंबन करके ऐसा मानता है कि मैं युद्ध नहीं करूंगा... ।
ध्यान रखना, सवाल युद्ध का नहीं है, सवाल मैं का है--मैं युद्ध नहीं करूंगा। युद्ध कर या न कर, यह कृष्ण का जोर ही नहीं है। मैं को कृपा कर बीच में मत ला।
मैं युद्ध नहीं करूंगा, तो तेरा यह निश्चय मिथ्या है, क्योंकि क्षत्रियपन का स्वभाव तेरे को जबरदस्ती युद्ध में लगा देगा।
तेरा होने का ढंग क्षत्रिय का है। तेरा शिक्षण, तेरे संस्कार, तेरी वृत्तियां, तेरे मनोभाव क्षत्रिय के हैं। लड़ना ही तू जानता है और भागने की कला तूने कभी सीखी भी नहीं है। तू भागेगा, तो बड़ा बेहूदा लगेगा।
अगर यह अर्जुन भाग ही जाता समझ लो, न सुनता कृष्ण की; वह तो सुन लिया; अधिकतर अर्जुन तो सुनते नहीं। अगर यह भाग ही जाता, तो क्या तुम सोचते हो, यह संन्यस्त हो जाता!
यह असंभव था। यह ध्यान भी लगाकर बैठता और इसे एक शेर आता हुआ दिखाई पड़ता, यह उठा लेता गांडीव अपना। यह भूल जाता कि यह संन्यस्त है, इसको गांडीव नहीं उठाना है। यह बैठा होता ध्यान करने और कोई चुनौती दे देता। कोई पास से निकल जाता। यह उबल पड़ता।
कृष्ण यह कह रहे हैं, तेरा सारा ढांचा युद्ध के लिए तैयार किया गया है। उसने तैयार किया है। तुझे गहन से गहन युद्ध की शिक्षा दी गयी है। तेरा रोआं-रोआं लड़ने में कुशल है। तू लड़ने के सिवाय कुछ जानता नहीं है। अगर तू शांत भी होकर बैठेगा, तो शांति के लिए युद्ध करेगा, लेकिन युद्ध करेगा। युद्ध करना तेरी नियति है। इसलिए तू यह मत सोच कि मैं युद्ध न करूंगा। यह तेरा मैं तेरे युद्ध का ही हिस्सा है।
अहंकार युद्ध का स्रोत है। यह तेरा निश्चय मिथ्या है।
और हे अर्जुन, जिस कर्म को तू मोह से नहीं करना चाहता है, उसको भी अपने पूर्वकृत स्वाभाविक कर्म से बंधा हुआ परवश होकर करेगा।
यह तेरा सिर्फ मोह है, जो तू कहता है कि मेरे प्रियजन खड़े हैं चारों तरफ। इस तरफ, उस तरफ, मेरे गुरु हैं, मेरे दादा हैं, मेरे भाई हैं, मेरे चचेरे भाई हैं, मेरे मित्र हैं, यह सब मेरे ही परिवार का फैलाव खड़ा है। यह तू मोहग्रस्त है। अगर सोच ले, इसमें तेरे परिवार के लोग न होते, उस तरफ गुरु न होते, भीष्म न होते, तेरे चचेरे भाई न होते; तेरा सारा परिवार तेरी तरफ होता और उस तरफ विपरीत लोग होते जिनसे तेरा कोई संबंध न होता, तो तू उन्हें ऐसे काट देता जैसे लोग मूलियों को काट देते हैं। तेरे मन में जरा भी सवाल न उठता हिंसा, अहिंसा का। वह तेरा सवाल भी नहीं है।
यह मोह है। तू कुछ अहिंसक नहीं हो गया है। तू यह कह रहा है, ये मेरे हैं, इन्हें कैसे काटूं? काटने से तुझे कोई विरोध नहीं है। मेरे, ममत्व का आग्रह है, जो तू डांवाडोल हो रहा है। यह तेरे मन में कोई अहिंसा का उदय नहीं हुआ है जैसे बुद्ध और महावीर के मन में हुआ था। तेरे मन में कोई महाकरुणा नहीं आ गयी है। तेरे भीतर सिर्फ मोह पैदा हुआ है कि मेरे कट जाएंगे, अपने कट जाएंगे। इनसे क्या लड़ना! भोग लेने दो इन्हीं को; मैं जंगल चला जाता हूं। लेकिन तू जा न पाएगा। तू जंगल में भी जाएगा, तो तू क्षत्रिय ही रहेगा।
मोह से कहीं कोई मोक्ष को उपलब्ध हुआ है? और मोह से कहीं कोई संन्यस्त हुआ है? मोह ही तो संसार है। तो तू उलटी बातें कर रहा है। तू गंगा को उलटी बहाने की कोशिश कर रहा है। यह तेरा निश्चय मिथ्या है।

क्योंकि हे अर्जुन, शरीररूप यंत्र में आरूढ़ हुए, संपूर्ण प्राणियों
को परमेश्वर अपनी माया से, उनके कर्मों के अनुसार भ्रमाता हुआ, सब भूत-प्राणियों के हृदय में स्थित है।
यह तू बात ही मत उठा, मेरे और तेरे की। एक ही उपस्थित है, तेरे में भी
और उनमें भी। मेरा और तेरा सब झूठ है, मिथ्या है। एक ही मौजूद है। सारा खेल उसका है। वह लड़ाना चाहता है, तो लड़ाएगा। उसकी मर्जी होगी इस युद्ध से कुछ फलित करने की। वह बचाना चाहता है, तो बचाएगा। तू उस पर छोड़ दे।
हे भारत, सब प्रकार से उस परमेश्वर की ही अनन्य शरण को प्राप्त हो, उस परमात्मा की कृपा से ही परम शांति को, सनातन परम धाम को प्राप्त होगा। अहंकार से, मोह से, मिथ्या से कभी कोई उस शांति को उपलब्ध नहीं हुआ, न
उस परम धाम को किसी ने पाया है। अपने को हटा ले; तू ही अड़चन है। तेरे कारण ही तेरे मन में अशांति है। युद्ध के कारण नहीं है अशांति; तेरे कारण है। यह भीतर मैं है, जो कहता है, बाहर जो हैं, वे मेरे हैं। अगर मैं भीतर गिर जाए, तो कौन मेरा है! कौन तेरा है! फिर सभी उसके हैं। यह भी कहना ठीक नहीं कि सभी उसके हैं, सभी वही है।
इस प्रकार यह गोपनीय से अति गोपनीय ज्ञान मैंने तेरे लिए कहा। इस रहस्ययुक्त ज्ञान को संपूर्णता से अच्छी प्रकार विचार करके, फिर तू जैसे चाहता है, वैसे ही कर।
कृष्ण कहते हैं, गोपनीय से अति गोपनीय... ।
यह अत्यंत गुप्त है। जो साधारणतः कहा नहीं जाता, क्योंकि साधारणतः इसे समझना बहुत मुश्किल है।
जो बातें कही जाती हैं, वे हैं, या तो संसार में रहो--नास्तिक समझाते हैं, अधार्मिक समझाते हैं। या संन्यस्त हो जाओ--धार्मिक समझाते हैं, आस्तिक समझाते हैं। वह साधारण धर्म है। वह बातचीत समझ में आती है। वह तर्क सीधा-सीधा है।
मैंने तुझे गोपनीय बात कही, बड़ी गुह्य, गुप्त, इसोटेरिक। ऐसी बात कही,
जो अत्यंत आत्मीयता में ही कही जा सकती है। जहां गुरु और शिष्य का हार्दिक मिलन होता है, वहीं कही जा सकती है। मैंने तुझसे उपनिषद कहा।
उपनिषद का अर्थ होता है, गुप्त ज्ञान। इसलिए गीता का हर अध्याय अंत में कहता है, गीता का अठारहवां संवाद उपनिषद समाप्त। उपनिषद का अर्थ होता है, जहां गुरु और शिष्य इतने आत्मीय हैं कि दो नहीं हैं, जहां एक ही चेतना दोनों में बहती है। वहीं जीवन की गुह्यतम बातें कही जा सकती हैं।
गहन श्रद्धा और प्रेम में मैंने तुझसे गोपनीय से गोपनीय ज्ञान कहा।
इस रहस्ययुक्त ज्ञान को संपूर्णता से... ।
इसमें जल्दी मत करना। और जो मैंने कहा है, उसे उसकी समग्रता में देखना। कोई एक हिस्सा मत चुन लेना, जो कि हमारे मन की आदत है।
तुम्हें जो ठीक लगता है, वह चुन लेते हो; जो ठीक नहीं लगता, वह छोड़ देते हो। तब भ्रांति होगी, मिथ्या हो जाएगा निर्णय।
जो मैंने कहा है, उसको उसकी पूरी समग्रता में, अच्छी प्रकार से विचारकर, फिर तू जैसा चाहता है, वैसा ही कर।
कृष्ण यह नहीं कह रहे हैं कि जो मैं कहता हूं, वह तू कर। कोई गुरु नहीं कहता। सारा नक्शा साफ कर दिया है। पर कृष्ण कहते हैं, ठीक से विचार करके! क्योंकि बहुत संभावना यह है कि तू बिना विचार किए जो तू कहे चला जा रहा है, बिना सोचे, बिना मनन किए, बिना ध्यान किए, अगर तूने उस पर ही आग्रह रखा, तो तू पूरी दृष्टि को न फैला सकेगा और स्थिति को उसकी समग्रता में न देख सकेगा। सारी बात मैंने तुझसे कह दी, अब तू पूरी बात को ठीक से विचार कर ले। यह बड़ा मजेदार शब्द है, विचार। जब मन में बहुत विचार होते हैं, तब तुम विचार कर ही नहीं सकते। जब मन में कोई विचार नहीं होता, तभी विचार कर सकते हो। जब मन में ही विचार होते हैं, तो विचार कैसे करोगे? यह तो ऐसा हुआ कि दर्पण में बहुत-से चित्र पहले से ही बने हैं, और तुम भी उसमें खड़े हो गए। सब अस्तव्यस्त, अराजक होगा। दर्पण खाली है, तुम सामने खड़े हुए, प्रतिबिंब बनता है।
विचार की दशा विचारों की दशा नहीं है। विचार की दशा ध्यान की दशा है। विचारों की दशा तो तरंगों की दशा है। झील पर तरंगें ही तरंगें हैं, चांद

टूट-टूट जाता है, प्रतिबिंब बनता नहीं। हजार चांद होकर बिखर जाते हैं।
चांदी फैल जाती है पूरी झील पर। लेकिन चांद कहीं दिखाई नहीं पड़ता।
फिर तरंगें सो गयीं, लहरें खो गयीं, हवाएं बद हो गयीं, झील मौन हुई, चांदी सिकुड़ने लगी चांद की, खंड जुड़ने लगे। एक प्रतिबिंब रह गया। झील दर्पण बन गयी।
विचार तो तभी संभव है, जब सारे विचार खो जाएं। यह बड़ी उलटी बात लगेगी सुनकर। क्योंकि तुम सोचते हो, बहुत विचार हों, तभी विचार होता है।
बहुत विचारों के कारण ही विचार नहीं होता। विचार की अवस्था विचारों
की दशा नहीं है। विचार की अवस्था निर्विचार अवस्था है। तब अंतर्दृष्टि होती है, तब दर्शन होता है, दिखाई पड़ता है।
तो कृष्ण ने कहा कि सब मैंने तुझसे कह दिया। कुछ कहने से बचाया नहीं, मुट्ठी पूरी खोल दी है। जो नहीं कहा जाना चाहिए, वह भी कहा है।
क्यों ऐसा कृष्ण कहते हैं कि गुप्त है यह ज्ञान? यह नहीं कहा जाना चाहिए, ऐसा ज्ञान है। क्योंकि इसमें खतरे हैं।
खतरे ये हैं कि आदमी संसार में रहे, हो संसारी ही, और समझने लगे कि मैं संन्यासी हो गया। करे तो कर्म वासना से, लेकिन अपने को धोखा दे कि मेरी कोई फलाकांक्षा नहीं है। हत्या तो करे खुद, और कहे, परमात्मा ने करवाई! चोरी करने खुद जाए; और कहे, मैं क्या करूं; सब उसी पर छोड़ दिया है। अब वह जो करवाता है!
इसलिए यह ज्ञान गुप्त है और नहीं कहने योग्य है। वह भी मैंने तुझसे कहा, ताकि सारी स्थिति तुझे साफ हो जाए। फिर तू विचार से देख ले। फिर तू ध्यान से देख ले। और फिर तू जैसा चाहे, वैसा कर।
गुरु तो सारी बात स्पष्ट कर देता है और हट जाता है। असदगुरु, स्पष्ट
तो कुछ नहीं करता, छाती पर सवार हो जाता है। सदगुरु सारी बातें साफ कर देता है, फिर हट जाता है। फिर कोई सवाल न रहा। अब तेरे पास आंख दे दी, देखने का ढंग दे दिया, अब तू देख ले। और उस देखने से, उस दृष्टि से ही जो तेरे भीतर आविर्भूत हो जाए, उसके अनुसार चल।
लोग सोचते हैं, कृष्ण ने अर्जुन को युद्ध में उतरवा दिया; गलती बात है। लोग सोचते हैं, कृष्ण ने समझा-समझाकर युद्ध में डलवा दिया; गलती बात है। कृष्ण ने तो सिर्फ स्थिति साफ कर दी। दोनों मुट्ठियां खुली खोल दीं; कुछ छिपाया नहीं। और फिर अर्जुन को परिपूर्ण रूप से स्वतंत्र कर दिया कि अब तू निर्णय कर ले।
अगर अर्जुन यह तय करता कि मैं युद्ध से जाता हूं, तो भी कृष्ण प्रसन्न होते। अर्जुन ने अगर यह तय किया कि मैं युद्ध करता हूं, तो भी कृष्ण प्रसन्न हैं। कृष्ण की प्रसन्नता इसमें है कि अर्जुन ने देखने की क्षमता पा ली।
और जब अर्जुन ने गौर से देखा होगा, तो पाया होगा, अपने किए कुछ भी तो नहीं होता। कभी नहीं हुआ है। वह बड़ी से बड़ी भ्रांति है कि मेरे किए कुछ होता है। सब बिना किए हो रहा है, समग्र के किए हो रहा है। जैसे यह देखा होगा, यह दृष्टि उठी होगी, फिर अर्जुन ने कहा, अब जो हो तेरी मर्जी।
मर्जी युद्ध की थी, युद्ध हुआ। मर्जी युद्ध की न होती, अर्जुन संन्यस्त हो जाता। लेकिन अर्जुन की मर्जी से नहीं हुआ, अर्जुन मुक्त है। अर्जुन ने उसकी मर्जी पर अपने को छोड़ दिया। यही उसका संन्यास है। संन्यास यानी परमात्मा के प्रति समर्पण। वह संसार में रखे, तो संसार
ही संन्यास। वह संसार से हटा दे, तो हट जाना संन्यास। उसके साथ कोई ऐसे चलने लगे, जैसे नदी में कोई बहने लगे, तैरे न। किसी घाट पर पहुंचने की आकांक्षा न रही। जहां पहुंचा दे। न पहुंचा दे, तो वही घाट। मझधार में डुबा दे, तो वही मंजिल।
समर्पण संन्यास है।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग आठ
गीता दर्शन अध्याय 18
सत्रहवां प्रवचन

समर्पण का राज

सर्वगुह्यतमं भूयःशृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्।। 64।।
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे।। 65।।
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।। 66।।
इतना कहने पर भी अर्जुन का कोई उत्तर नहीं मिलने के कारण श्रीकृष्ण भगवान फिर बोले कि हे अर्जुन, संपूर्ण गोपनीयों से भी अति गोपनीय मेरे परम रहस्ययुक्त वचन को तू फिर भी सुन, क्योंकि तू मेरा अतिशय प्रिय है, इससे यह परम हितकारक वचन मैं तेरे लिए कहूंगा।
हे अर्जुन, तू केवल मुझ परमात्मा में ही अनन्य प्रेम से नित्य-निरंतर अचल मन वाला हो और मुझ परमेश्वर को ही अतिशय श्रद्धा-भक्ति सहित निरंतर भजने वाला हो तथा मन, वाणी और शरीर द्वारा सर्वस्व अर्पण करके मेरा पूजन करने वाला हो और सर्वगुण-संपन्न सबके आश्रयरूप वासुदेव को नमस्कार कर; ऐसा करने से तू मेरे को ही प्राप्त होगा, यह मैं तेरे लिए सत्य प्रतिज्ञा करता हूं, क्योंकि तू मेरा अत्यंत प्रिय सखा है।
इसलिए सब धर्मों को अर्थात संपूर्ण कर्मों के आश्रय को त्यागकर केवल
एक मुझ सच्चिदानंदघन वासुदेव परमात्मा की ही अनन्य शरण को प्राप्त हो, मैं तेरे को संपूर्ण पापों से मुक्त कर दूंगा; तू शोक मत कर।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः कृष्ण कहते हैं, तू मेरे में निरंतर मन वाला हुआ, मेरी कृपा से जन्म-मृत्यु आदि सब संकटों को अनायास ही तर जाएगा। कृष्ण ने कृपा के साथ अनायास क्यों कर जोड़ा है?

सकारण जोड़ा है, सोच-विचारकर जोड़ा है।
तरने की दो संभावनाएं हैं। एक संभावना है कि व्यक्ति अपने प्रयास से तरे। तब प्रभु-प्रसाद की कोई जरूरत नहीं, तब परमात्मा की कृपा का कोई कारण नहीं। वह मार्ग संकल्प का है। व्यक्ति अपनी ही चेष्टा से तरता है; कोई सहारा नहीं मांगता।
दूसरा मार्ग समर्पण का है। कृष्ण समर्पण के मार्ग की ही बात कर रहे हैं। वहां साधक सिर्फ समर्पण करता है; शेष सब अनायास होता है। उस शेष के लिए कोई भी प्रयास साधक को नहीं करना है। एक ही प्रयास साधक कर ले कि वह छोड़ दे परमात्मा पर सब। फिर सब अनायास हो जाता है।
ये दो मार्ग हैं। पहले मार्ग में परमात्मा की कोई जरूरत भी नहीं है। इसका यह अर्थ नहीं है कि परमात्मा नहीं है। इसका यही अर्थ है कि परमात्मा को साधक अपनी ही चेष्टा से पाता है; अपनी चेष्टा के अतिरिक्त वह कोई सहारा नहीं मांगता।
जैन और बौद्धों का मार्ग वही है। न कोई पूजा है, न कोई प्रार्थना है, मात्र साधना है, मात्र ध्यान है। प्रार्थना की एक बूंद भी नहीं। स्वभावतः, मार्ग बहुत सूखा-सूखा है, मरुस्थल जैसा है। कहीं कोई हरियाली नहीं आती। क्योंकि जहां प्रार्थना ही न आती हो, वहां मरूद्यान कैसे? जहां प्रार्थना ही न आए, वहां प्रेम का उपाय कहां? जहां प्रार्थना न हो, वहां रस-धार नहीं बहती। इसलिए जैनों के शास्त्रों को पढ़ते समय ऐसा लगेगा, जैसे गणित की कोई किताब पढ़ी जा रही है।
मुझे निरंतर जैन शास्त्रों को प्रेम करने वाले कहते हैं कि मैं कभी कुंदकुंद पर बोलूं या कभी उमास्वाति पर बोलूं। बहुत बार मैं सोचता भी हूं, लेकिन फिर रुक जाता हूं। क्योंकि कुंदकुंद पर बोलने में कोई भी काव्य

नहीं है। कुंदकुंद जो कहते हैं, बिल्कुल ठीक ही कहते हैं। लेकिन कहने का जो मार्ग है, वह पद्य का नहीं है, गद्य का है; वह कविता का नहीं है, गणित का है। तर्क है वहां, स्वभावतः तर्क का सूखापन है। कहीं कोई हृदय को छूने वाली बात नहीं है, न प्रेम, न प्रार्थना, न प्रसाद।
बोला जा सकता है। लेकिन बोलना बहुत सूखा-सूखा होगा, इसलिए अपने को रोक लेता हूं। तत्व-ज्ञान है, तत्व-रस नहीं। हो भी नहीं सकता, क्योंकि सारी दृष्टि संकल्प की है। साधक को अपने ही हाथ, अपने ही पैर सब करना है।
कुछ हैं, जो उसी मार्ग से पहुंचेंगे। कुछ हैं, जो हृदय से नहीं पहुंचेंगे; विचार से ही पहुंचेंगे। लेकिन थोड़े-से ही लोग होंगे ऐसे। बहुत अधिक लोगों पर वैसा मार्ग प्रभावी नहीं हो सकता, क्योंकि अधिक लोग हृदय से धड़कते हैं। और अच्छा ही है कि अधिक लोग हृदय से धड़कते हैं। इससे जीवन में सौंदर्य है, इससे जीवन में नृत्य है, उत्सव है।
यह जो हृदय से चलने वाला साधक है, यह साधक नहीं है, भक्त है। इसकी साधना कुल इतनी है कि इसने छोड़ दिया। इसे भी तुम छोटी साधना मत समझ लेना। यह भी बड़ी कठिन बात है, छोड़ देना। लेकिन प्रेमी छोड़ सकता है। क्योंकि दूसरे पर इतना भरोसा है, इतनी श्रद्धा है कि आंख बंद करके किसी का हाथ पकड़कर भी चल सकता है।
पश्चिम में मनोवैज्ञानिक एक छोटा-सा प्रयोग कर रहे हैं। पति- पत्नियों में कलह हो, तो पश्चिम में मनोवैज्ञानिक के पास जाना जरूरी हो जाता है। वही हल कर सकता है। लेकिन पति-पत्नी कलह को प्रकट भी नहीं करते, छिपाते भी हैं।
तो मनोवैज्ञानिक एक छोटा-सा प्रयोग करवाते हैं। जब भी कोई पति-पत्नी जाते हैं उलझन सुलझाने, तो वे कहते हैं कि पति आंख बंद कर ले, आंख पर पट्टियां बांध ले और पत्नी का हाथ पकड़ ले, और पत्नी जहां ले जाए--बगीचे में, मकान में--चले। इससे उलटा भी करते हैं कि पत्नी पति का हाथ पकड़ ले, पत्नी की आंखें बंद, पट्टी बंधी।
जिन लोगों के बीच प्रेम नहीं है, वे झिझकते हैं। छोटी-सी बात है। कोई पति किसी कुएं में नहीं गिरा देगा ले जाकर, न पत्नी किसी पत्थर से टकरवा देगी। लेकिन जिनको एक-दूसरे पर भरोसा नहीं है, वे ऊपर से कितने ही दिखाते हों, वे इस छोटे-से प्रयोग को करने में झिझकते हैं।
और अगर यह छोटा-सा प्रयोग भी जीवन में न हो पाए, कि तुम किसी पर इतना भरोसा कर सको कि आंख बंद कर लो और हाथ पकड़ लो और वह जहां ले जाए, चले जाओ, तो आखिरी प्रयोग समर्पण का तो कैसे हो पाएगा! वह तो उस परमात्मा के हाथ पकड़ने हैं, जो दिखाई भी नहीं पड़ता; जो है या नहीं, वह भी सुनिश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।
उसका होना भी हृदय की आस्था में ही है। बाहर तो कोई प्रमाण मिलता नहीं। उसके हाथ पकड़कर कोई चल पड़ता है। अपनी आंख बंद कर लेता है। कहता है, मेरी आंख की जरूरत क्या? तुम हो, काफी हो। और मैं क्यों चिंता करूं नक्शों की, मार्गों की? मैं क्यों फिक्र करूं पहुंचूंगा, नहीं पहुंचूंगा? कौन-सी विधि कारगर होगी, कौन-सी नहीं होगी? तुम हो, काफी हो; हाथ पकड़ लेता हूं। जैसे छोटा बच्चा अपने बाप का हाथ पकड़कर चल पड़ता है। भला बाप चिंतित हो, लेकिन छोटा बेटा हाथ पकड़कर प्रसन्नता से नाचता हुआ, गुनगुनाता हुआ चलता है। उसे कोई चिंता नहीं है। पिता साथ है, बात समाप्त हो गई। अब चिंता की जरूरत क्या है!
समर्पण का मार्ग सब कुछ परमात्मा पर छोड़ देना है।
जो संदेह से भरे हैं, उन्हें शायद समर्पण संभव न होगा। उनके लिए संकल्प का ही रास्ता रहेगा। बहुत भटकेंगे, जो काम क्षण में हो सकता था, अनायास हो सकता था, उसके लिए वे व्यर्थ ही प्रयास करेंगे। पहुंच जाएं, सौभाग्य। हजार चलते हैं, एक पहुंचता है। क्योंकि अपने ही पैर चलना इस बीहड़ वन में, जीवन के इस अनंत फैलाव में बिना किसी सहारे के चलना, मनुष्य की इस असहाय अवस्था में संभव नहीं मालूम होता।
लेकिन जिनके जीवन में संदेह की छाया बहुत गहरी है, संदेह के बादल घिरे हैं, उनके लिए वही उपाय है। शायद वे वहां से थककर, परेशान होकर लौट पड़ें, तो समर्पण भी संभव हो जाए।

यहां कृष्ण पूरी समर्पण की ही बात कर रहे हैं। और कृष्ण मौजूद हैं साक्षात, साकार, फिर भी अर्जुन छोड़ नहीं पा रहा है। तो तुम्हारी कठिनाई मैं समझ सकता हूं, करोड़ों लोगों की कठिनाई समझ सकता हूं, कि जिनके लिए साक्षात कोई भी मौजूद न हो; या मौजूद हो, तो आस्था न आती हो; मौजूद हो, तो प्रेम न जगता हो... ।
और अर्जुन तो प्रेम से भरा है कृष्ण के प्रति, बचपन के सखा हैं, फिर भी भरोसा नहीं कर पाता। जिन कृष्ण को युद्ध की भीषण अवस्था में, संकट के समय में सारथी बना लिया है, उन्हें भी जीवन की अंतर्यात्रा में सारथी बनाने की हिम्मत अर्जुन नहीं कर पाता है। युद्ध के लिए उन पर आस्था कर ली है कि जहां ले जाएंगे, ठीक ही ले जाएंगे। लेकिन और भी गहरे युद्ध हैं जीवन के, यहां कृष्ण पर भी आस्था नहीं बैठती। यहां तो सारथी बना लिया है, इस कुरुक्षेत्र में होने वाले युद्ध के लिए। लेकिन वह जो जीवन का अनंत-अनंत काल से चलता हुआ महायुद्ध है, अंतर-युद्ध है, वहां कृष्ण के हाथ में बागडोर देने में अर्जुन डरता है।
प्रेम है, सखाभाव है। पुराने परिचित हैं। ऐसी कोई स्मरण नहीं है घटना,
जब कि कृष्ण ने कोई धोखा अर्जुन को दिया हो। जब भी जरूरत पड़ी है, काम आए हैं। जब भी संकट आया है, साथ दिया है। हर मुश्किल की घड़ी में सुलझाव का मार्ग खोजा है। फिर भी भरोसा नहीं आता।
कृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं कि तू अगर छोड़ दे सब मेरे ऊपर, तो मेरी कृपा से अनायास ही तर जाएगा। अनायास का अर्थ है कि फिर तुझे कोई प्रयास न करना पड़ेगा। ऐसे ही तर जाएगा, जैसे कुछ किया ही नहीं और हो गया। तर जाना एक घटना होगी, कृत्य नहीं।
लेकिन उसके पहले एक बहुत बड़ी शर्त है, महाशर्त है, वह समर्पण की है। अगर हृदय में प्रेम हो, थोड़ी-सी भी प्रेम की संभावना हो, तो समर्पण को चुन लेना।
समर्पण को चुनने का अर्थ होगा, संदेह को छोड़ना, अहंकार को छोड़ना। और अहंकार और संदेह में जो शक्ति तुम्हारी उलझी है जीवन की, उस सब को भी समर्पण के ही मार्ग पर समाहित करना। बंटी हुई शक्ति न रह जाए, सारी जीवन-धारा समर्पण में और श्रद्धा में लग जाए। धीरे-धीरे जो गंगा बड़ी छोटी-सी निकलती है गंगोत्री में, वह बड़ी होने लगती है।
अगर थोड़ी-सी भी संभावना प्रेम की है, जो कि निश्चित है, क्योंकि ऐसा आदमी भी खोजना कठिन है, जिसके भीतर गंगोत्री जैसी गंगा भी न हो। उतनी है। चाहे तुम्हें उसका कलकल नाद सुनाई भी न पड़ता हो, इतना छोटा झरना है। शायद तुम इतने विचार, ऊहापोह से भरे हो कि अपनी ही आवाज में उस नदी की छोटी-सी धीमी पुकार, क्षीण पुकार सुनाई नहीं पड़ती। लेकिन थोड़ा समझोगे, सम्हलोगे, झांकोगे, सुनाई पड़ने लगेगी।
अभी जो बूंद-बूंद टप-टप हो रही हो गंगा, वह महानद बन सकती है, अगर तुम जीवन की बंटी हुई ऊर्जाओं को उसी ओर समाहित कर दो।
और तब, कृष्ण कहते हैं, अनायास ही सब हो जाएगा।
दोनों मार्ग खुले हैं। अगर तुम्हें ऐसा लगता हो कि यह संभव नहीं है कि
हम अपने संदेह को प्रेम के प्रति समर्पित कर पाएं, कि हम अपने अहंकार को परमात्मा के प्रति झुका पाएं, तो फिर दूसरा उपाय है। तुम परमात्मा को बिल्कुल भूल ही जाओ। तुम्हारा अहंकार ही सब कुछ रह जाए। तुम ही बचो। इसलिए तो जैन परमात्मा की बात नहीं करते, सिर्फ आत्मा की बात करते हैं। तुम ही हो, परमात्मा नहीं है।
यह ठीक है। फिर तुम सारे संदेह को उठा लो जितना उठा सकते हो, और अपने प्रेम में भी जो थोड़ी-सी जलधार बह रही है, वह भी सुखा लो। उस प्रेम की जलधार को भी तुम तर्क बना दो। तुम्हारा पूरा जीवन विचार, तर्क, संदेह, संकल्प बन जाए। तो भी तुम पहुंच जाओगे।
मगर आधा-आधा कोई भी नहीं पहुंचता है, एक बात सुनिश्चित है। पूरा-पूरा,
या इस पार, या उस पार। या इस नाव पर सवार या उस नाव पर सवार। लेकिन दो नावों पर यात्रा मत करना।
और तुम सभी को मैं दो नावों पर खड़े देखता हूं। तुम समर्पण भी नहीं करते, अपने को बचा लेते हो। तुम परमात्मा का आशीर्वाद लेने की आकांक्षा भी

नहीं छोड़ते। उसके प्रसाद से हो जाए, यह भाव भी नहीं छूटता। और मैं ही करके दिखा दूं, यह अस्मिता भी नहीं जाती। ऐसी दो नावों पर तुम सवार हो।
आधा संदेह, आधी श्रद्धा, इससे ज्यादा विडंबना की कोई अवस्था नहीं है। आधा समर्पण, आधा संकल्प, इससे ज्यादा खंडित और चित्त क्या होगा! ऐसे तुम दो हो जाते हो। तुम्हारे भीतर की एकता, सुर-तान टूट जाता है। तुम्हारे भीतर बहुत-से सुर बजने लगते हैं, जिनमें कोई तालमेल नहीं होता। यही तो विक्षिप्तता की दशा है। इसे बदलना होगा।
कृष्ण कहते हैं, तू सब कुछ मुझ पर ही छोड़ दे, अर्जुन।
यह कृष्ण का मार्ग है। लेकिन इससे तुम निराश मत हो जाना। अगर न छोड़ सको, तो घबड़ाहट की कोई जरूरत नहीं है। तुम्हारे लिए महावीर हैं। निराश होने का किसी को भी कोई कारण नहीं है। जिस तरह के भी तुम हो, तुम्हारे योग्य कोई नाव कहीं है।
लेकिन अपनी नाव ठीक से चुन लेना। नहीं तो तुम चलोगे भी और पहुंचोगे नहीं। दूसरे की नाव में कोई कहीं भी नहीं पहुंचता है, वह कितनी ही सुंदर दिखाई पड़ती हो। दूसरे की यात्रा को अपनी यात्रा मत बनाना।
इसलिए कृष्ण कितनी बार दोहराते हैं, स्वधर्मे निधनं श्रेयः! अपने धर्म में मर जाना बेहतर है। अपनी ही नाव में डूब जाना उचित है; दूसरे की नाव में पहुंचना भी उचित नहीं। इसलिए बहुत गौर से अपने भीतर परीक्षण करो, निरीक्षण करो, निदान करो।
और एक बात तो तय कर ही लेनी है, या तो संकल्प, या समर्पण; या तो तर्क, या प्रेम। बस, वहां अगर तुम ने निर्णय ले लिया और फिर तुम उस निर्णय के अनुसार चल पड़े और दूसरी तरफ झुके नहीं, बीच-बीच में बदले नहीं, तो तुम निश्चित पहुंच जाओगे।

दूसरा प्रश्नः क्या कृष्ण की भांति आप भी हमसे कहते हैं कि तुम्हारे सभी निश्चय मिथ्या हैं?

निश्चय ही, क्योंकि तुम मिथ्या हो। अभी तुम्हारा सत्य स्वरूप प्रकट नहीं हुआ। इसलिए तुम इस विक्षिप्त अवस्था में जो भी निर्णय करोगे, वह निर्णय भी विक्षिप्त होगा।
ऐसे ही जैसे शराब पीए हुए किसी आदमी से हम कहें, करो निर्णय। वह कुछ निर्णय भी कर ले, पर इसका क्या मूल्य हो सकता है! यह, सुबह जब होश आएगा, तब तक भी न टिकेगा। सुबह यह आदमी बदल जाएगा। सुबह यह मानेगा ही नहीं कि कभी मैंने यह कहा था।
तुम्हारी जैसी चित्त की अभी दशा है, तुम्हारे सभी निर्णय मिथ्या होंगे; क्योंकि तुम मिथ्या हो। तुम्हारे मिथ्या होने से तुम्हारे निर्णय निकलेंगे; वे सत्य कैसे हो सकते हैं? इसलिए किसी भी निर्णय लेने के पूर्व तुम्हें अपने होने की प्रामाणिकता खोज लेनी चाहिए। रत्तीभर भी तुम अपनी प्रामाणिकता को पकड़ लो, तो उससे जो निर्णय आएगा, वह सत्य होगा।
बहुत सोच-विचार का सवाल नहीं है, शांत दृष्टि का सवाल है।
तुम सोचोगे भी क्या? सोच-सोचकर तो तुम अब तक चलते ही रहे हो। सोच-सोचकर ही तो तुम उलझे हो। सोचने से तुम सुलझोगे नहीं। विचार से कोई समाधान न होगा। विचार से ही तो समस्याएं खड़ी हुई हैं। विचार ने ही तो तुम्हें बांधा, सताया, विचार ने ही तो तुम्हें रोग दिया है। विचार औषधि नहीं बन सकता।
तुम्हें अगर उस निर्णय को पाना है जो मिथ्या न हो, तो तुम विचार को त्यागो, थोड़े शांत और निर्विचार होना सीखो। वही ध्यान है। उस ध्यान में जो निर्णय आएगा, वह तुम्हारा किया हुआ नहीं है। वह तुम्हारे स्वधर्म से उठेगा; वह तुम्हारे स्वभाव में उठेगा। जैसे बीज से अंकुर फूटता है, ऐसे तुम्हारे स्वधर्म से निर्णय का जन्म होगा।
वह निर्णय मिथ्या नहीं होगा। मगर ध्यान रखना, वह निर्णय तुम्हारा ही नहीं होगा। तब तुम कह सकते हो, परमात्मा ने मेरे भीतर यह निर्णय लिया। तुम कह सकते हो, समष्टि ने मेरे भीतर यह निष्कर्ष लिया। क्योंकि उस निर्विचार क्षण में तुम कहां रहोगे!

तुम तो विचारों का जोड़ हो, भीड़ हो। और उन विचारों के जोड़ को ही तुमने
अब तक अपना होना समझा है। वह तुम्हारा होना नहीं है। उन विचारों की पर्तों के नीचे दबा है तुम्हारा होना। तुम अपने शांत होने को पा लो और उसी से उठने दो निर्णय, और जीवन में कभी भूल न होगी।
यह बड़े आश्चर्य की बात है। विचार करते समय तो विकल्प होते हैं--यह करूं, न करूं; कैसे करूं, इस विधि करूं या उस विधि करूं; पूरब जाऊं कि पश्चिम; जाऊं या न जाऊं; उठूं या बैठा रहूं--विचार में तो विकल्प होते हैं। निर्विचार में कोई विकल्प नहीं होता, सिर्फ निर्णय होता है।
निर्विचार में एक भाव उठता है, तुम्हारे पूरे प्राणों को पकड़ लेता है। ऐसा सवाल नहीं होता कि चलूं या न चलूं। बस, तुम अचानक पाते हो, तुम चल रहे हो। या अचानक पाते हो कि तुम बैठे हो, चलना खो गया।
निर्णय है निर्विचार में। और वहां कोई विकल्प नहीं है। वहां तो निर्विकल्प दशा है। एक ही उठता है। और इतने समग्र भाव से उठता है कि तुम्हारे रोएं-रोएं को आविष्ट कर लेता है। तुम्हारा तन-मन सब उसमें समर्पित हो जाता है। तुम अचानक पाते हो कि यह तुम्हारा लिया हुआ निर्णय नहीं है। ज्यादा उचित होगा कि निर्णय ही ने तुम्हें ले लिया। तुमने कहां लिया? तुम निर्णय से ऊपर नहीं हो। निर्णय ने ही तुम्हें ले लिया। तुम निर्णय के भीतर घिर गए हो।
और ऐसा जब कोई निर्णय होता है, तो फिर कोई पछतावा नहीं है। वह तुम्हें जहां भी ले जाए, तुम सदा धन्यभागी पाओगे। विचार से सोचकर, विकल्पों के बीच चुनकर लिया गया निर्णय मिथ्या होगा, क्योंकि वह विक्षिप्त मन ने लिया है। निर्विचार में, स्वभाव में आविर्भूत, उठा हुआ निर्णय खंडित नहीं होगा; दो नहीं होंगे। वह तुम्हें पूरे प्राणपण से पकड़ लेगा। तुम कभी पछताओगे न। तुम कभी पीछे लौटकर न देखोगे, क्योंकि अन्यथा उपाय ही न था करने का। जो तुमने किया है, वही हो सकता था। दूसरा कोई स्वर ही न था भीतर, जो अब कह सके कि देखो, मैंने कहा था ऐसा मत करो।
अभी तुम्हारी दशा ऐसी है कि तुम जो भी करो, पछताते हो। करो तो पछताते हो, न करो तो पछताते हो।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, बड़ी मुश्किल में पड़े हैं। संन्यास नहीं लेते हैं, तो दिन-रात पछतावा चलता है कि हम पीछे पड़े जा रहे हैं; दूसरे आगे निकले जा रहे हैं। और दूसरे हिम्मतवर हैं; हम कमजोर, कायर; दूसरे साहसी। तो मन में ग्लानि बनी रहती है, पीड़ा होती है। अगर ले लेते हैं, तो झंझटें खड़ी हो जाती हैं कि यह क्या भूल कर ली! जगहंसाई होती है। लोग कुछ-कुछ कहते हैं। लोग कहते हैं, यह भी पागल हुआ। तुमने भी दिमाग छोड़ दिया अपना! बुद्धि खो दी! नहीं लेते, तो पछतावा पकड़ता है; लेते हैं, तो पछतावा पकड़ता है।
तो फिर तुम करोगे क्या? तुम कुछ भी करोगे, पछतावा पकड़ेगा। पछतावे का अर्थ यही है कि तुम बंटे हो। एक मन का हिस्सा कहता है, लो; दूसरा मन का हिस्सा कहता है, मत लो। तो तुम दो में से किसी की भी सुनोगे, तो जो नहीं जिसकी तुमने सुनी है, वह बैठा है भीतर, प्रतीक्षा कर रहा है ठीक समय की; कि तुम्हें कहेगा कि लो! पहले कहा था, नहीं सुना, नहीं माना; अब भोगो। पर ये दो हैं, इसलिए हमेशा ही तुम पछताओगे।
मेरे देखे, तुम सिवाय पछताने के और कुछ करते ही नहीं। सदा तुम्हारा जीवन एक गहरे पश्चात्ताप के धुएं से भरा रहता है।
जिस दिन तुम जानोगे निर्विचार का निर्णय, उस दिन तुम पछताओगे न, क्योंकि वहां कोई दूसरा स्वर ही न था। तुम कुछ और करना भी चाहते, तो कर ही न सकते थे। ऐसी अवस्था में ही नियति का अर्थ प्रकट होता है। तभी तुम कह सकते हो, जो होना था हुआ। भाग्य था; अन्यथा कुछ हो न सकता था। बुरा किया; किया। भला किया; किया। कुछ और हो ही न सकता था; जो परमात्मा ने चाहा वह हुआ।
जिस दिन तुम निर्विचार हो, उसी दिन परमात्मा तुम्हारे भीतर सक्रिय हो जाता है। उसे थोड़ा मौका दो।
मगर तुम बहुत होशियार हो। तुम निर्णय खुद लेना चाहते हो। तुम्हारे सभी निर्णय मिथ्या होंगे। निर्णय तो उसका ही सत्य होगा। तुम मार्ग दो; हटो बीच से। आने दो उसकी आवाज को; उठने दो उसकी अंतर-ध्वनि। वही तुम्हारे भीतर

निर्णय ले; तुम चुपचाप उसके साथ चलो। तुम छाया बन जाओ। तुम आगे-आगे मत डोलो, तुम पीछे-पीछे हो रहो। फिर वह जहां ले जाए, जाओ। और तुम्हारे जीवन में पश्चात्ताप से कभी भी मिलन न होगा।
और ऐसा जीवन ही पुण्य का जीवन है, जिसमें पश्चात्ताप न हो। अगर तुम मुझसे पूछो कि किस जीवन को मैं पुण्य का जीवन कहता हूं, तो उस जीवन को, जिसमें पश्चात्ताप न हो। जहां पश्चात्ताप है, वहां पाप है।
लोग कहते हैं कि पाप के लिए पछताना पड़ता है। मैं तुमसे कहता हूं, जिस चीज के लिए भी पछताना पड़ता है, वह पाप है। तुमने चाहे दान ही क्यों न दिया हो और देकर पछताने लगे कि न दिया होता तो अच्छा था, तो वह भी पाप हो गया। जिसके लिए पछताना पड़े, वह पाप है; और जिसके लिए न पछताना पड़े, वह पुण्य है। मगर कैसे वह घड़ी आएगी, जब तुम न पछताओगे?
विचार से निर्णय लोगे, पछताओगे ही। निर्विचार से उठने दो निर्णय! तब कृष्ण कहते हैं, कृपा से, अनायास ही, जो कर-करके नहीं होता, वह बिना किए हो जाता है।

तीसरा प्रश्नः कृष्ण ने पूरी गीता में अर्जुन को निमित्त होने, प्रभु
की इच्छानुसार चलने को कहा है; पर अंत-अंत में जैसी तेरी इच्छा हो, वैसा ही कर, यह भी जोड़ दिया है। क्या अर्जुन इस क्षण में कोई इच्छा कर सकता है? या कि कृष्ण ने कुछ जानने के लिए उसे जान-बूझकर जोड़ा है?

जान-बूझकर जोड़ा है।
अगर अर्जुन कृष्ण को समझ गया है, तो कहेगा, इच्छा भी तुम्हीं सम्हालो।
यह बोझ मुझे क्यों देते हो! जब मैं तरकीब ही सीख गया निर्बोझ होने की, तो अब तुम मुझे न फंसा सकोगे। यह भी तुम्हीं सम्हालो।
अगर अर्जुन समझ गया है, तो वह कहेगा, अब जो तुम्हारी मर्जी। अर्जुन हंसेगा और कहेगा, यह भी खूब रही! यह भी खूब रही कि पूरे समय समझाया छोड़ने को और अब आखिर में कहते हो, जो तेरी इच्छा! ऐसा मजाक मत करो।
लेकिन अर्जुन नहीं समझ पाया। वह विचार में पड़ गया। वह सोचने लगा।
कृष्ण जैसे लोगों के साथ जरा सोच-समझकर बातचीत करना जरूरी है, बड़ा होश रखना जरूरी है। क्योंकि वे क्या कहते हैं, उसका अर्थ इतना सीधा-सीधा नहीं है कि तुम भाषा से ही समझ लो। उसमें दांव-पेंच हैं। दांव-पेंच होने स्वाभाविक हैं, क्योंकि वे तुम्हारे मन की गहराइयों में उतरने की चेष्टा कर रहे हैं।
वे कई जगह तुम्हें धोखा देंगे। और उनका धोखा इसीलिए होगा कि तुम पकड़ पाते हो, नहीं पकड़ पाते हो! पहचान पाते हो, नहीं पहचान पाते हो! अगर तुम नहीं पहचान पाए, चूक गए। फिर से समझाना पड़ेगा। सारी बात ही व्यर्थ हो गई। अर्जुन को एक ऐसी जगह कृष्ण ले आए हैं, जहां अर्जुन को भी लग रहा है कि समझ में आ रहा है। एक ऐसी घड़ी आ गई है चर्चा की, संवाद वहां पहुंच गया है, जहां अर्जुन शांत हुआ दिखता है। जहां उसका ऊहापोह क्षीण हो रहा है, लहरें बैठ गयी हैं। वह तूफान नहीं रहा, वह आंधी नहीं रही, जहां से कथा शुरू हुई थी, वह विषाद नहीं रहा। चिंता के बादल छंट गए हैं, सूरज की किरणें दिखाई पड़ने लगी हैं।
यह घड़ी है। क्योंकि कृष्ण जैसे व्यक्ति एक-एक कदम होशपूर्वक लेते हैं। बहुत कुछ उनके कदम पर निर्भर है। इस घड़ी में अर्जुन को ऐसा ख्याल हो सकता है कि समझ गया। आ गई बात समझ में।
कितनी बार मुझे सुनते-सुनते तुम्हें नहीं लगता है कि आ गई बात समझ में। वह भी हो सकता है अहंकार का ही आखिरी उपाय हो कि मैं समझ गया। मैं बचने की कोशिश कर रहा हो अब समझ के द्वारा, कि देखो, मैं समझ गया। देखो, कोई भी नहीं समझ पाया। देखो, कितने समझने की कोशिश कर रहे हैं और भटक गए, और मैं समझ गया।
अर्जुन में उठी होगी वैसी सूक्ष्म लहर, कि समझ गया। वह लहर अर्जुन को
भी साफ नहीं है। अर्जुन को भी अपने अचेतन का पता नहीं है, वहां क्या संगठित हो रहा है।

लेकिन कृष्ण से बचकर जाना मुश्किल है। कृष्ण की आंखें तुम्हें तुम्हारी आखिरी गहराई तक भेदती हैं। ऐसी कोई पर्त नहीं है तुम्हारे चेतन-अचेतन की, जहां कृष्ण की दृष्टि नहीं पहुंच जाती। कृष्ण ने तत्क्षण जाल फेंका और कहा कि देख, अब सब तुझे कह दिया। सब तू समझ भी गया। अब तू खुद ही सोच ले, जो तेरी इच्छा हो, वैसा कर।
अर्जुन जाल को नहीं पहचान पाया। वह सोचने लगा। शायद उसने आंख बंद कर
ली हों, विचार करने लगा कि क्या करूं, क्या न करूं!
चूक गया। क्योंकि यही तो पूरी बात समझायी थी। यह तो वही हुआ कि रातभर समझाया राम की कथा को; और सुबह तुम पूछने लगे कि सीता राम की कौन?
यह पूरा अब तक गीता का सारा शास्त्र समर्पण की कथा है, और आखिर में कृष्ण ने पासा फेंका और अर्जुन फंस गया। वह सोचने लगा, विचार करने लगा; चूक गया। कृष्ण को फिर कथा शुरू करनी पड़ेगी। फिर से कहना पड़ेगा। फिर किसी और द्वार से खटखटाना पड़ेगा। फिर कहीं और से मार्ग बनाना पड़ेगा। इस बार भी बात चूक गयी।
अगर अर्जुन समझ ही गया होता, तो कहता, अब बंद करो। अब यह चाल मत खेलो। समझ गया मैं। अब क्या मेरी मर्जी? अब उसकी ही मर्जी। अब तेरी ही मर्जी। अब जो तुम्हारी मर्जी, मैं राजी हूं। अब और न उलझाओ। अब तुम मुझे न फांस सकोगे। और गीता यहीं समाप्त हो गयी होती।
लेकिन एक बार अर्जुन और चूक गया। स्वाभाविक है। जीवन का जाल बहुत जटिल है। तुम पाते-पाते भी चूक जाते हो। पास पहुंचते-पहुंचते छिटक जाते हो। हाथ पहुंच ही रहा था, पहुंच ही रहा था, कि फासला बड़ा हो जाता है। जरा-सी भूल!
तुमने बच्चों का खेल देखा है, सीढ़ी और सांप। बस, वैसा ही जीवन है। उसमें पासे फेंको, सीढ़ियों पर नंबर पड़ जाए तो चढ़ो, और सांपों पर नंबर आ जाए तो उतर आओ। चढ़ते-चढ़ते, पहुंचने के करीब ही थे, आखिरी मंजिल पास ही थी, दो- चार खाने और रह गए थे, कि पड़ गए सांप के मुंह में। फिर नीचे, जहां सांप की पूंछ है, वहां आ गए। फिर यात्रा शुरू!
जीवन सांप-सीढ़ी का खेल है। कृष्ण सीढ़ी लगाते हैं, अर्जुन को चढ़ाते हैं। लेकिन जब तक तुम सांप को ठीक से न पहचानने लगो, तब तक सीढ़ी से ही चढ़कर कोई चढ़ नहीं सकता। सांप को भी पहचानना जरूरी है, क्योंकि वह हर सीढ़ी के साथ खानों में बैठा हुआ है। हर सीढ़ी के साथ सांप का मुंह भी है। हर ऊंचे शिखर के साथ गहरी खाई भी है। हर समझ के पास ही गड्ढ है नासमझी का। जरा-सी चूक, जरा-सी भूल, और तुम अतल खाई में पाओगे अपने को। बहुत दिनों का श्रम व्यर्थ हो जाता है।
मगर यह भी शायद जरूरी है प्रौढ़ता के लिए, बहुत बार हारना, उठ-उठकर गिरना, गिर-गिरकर उठना। सीढ़ी भी जरूरी है, सांप भी जरूरी है, तभी तुम पकते हो। सीढ़ी सफलता देती है, आशा बंधाती है। सांप असफल करता है, निराशा देता है। संतुलन बना रहता है।
यह सांप था, जो कृष्ण ने कहा कि अब तेरी जो मर्जी। सब मैंने तुझे कह दिया। सीढ़ी लगा दी। अब कुछ भी बचा नहीं कहने को, बात सब साफ हो गयी, अर्जुन। अब तू चुन ले, अब तू खुद ही विचार कर ले।
और अर्जुन विचार करने लगा। बस, चूक गया। वह हंसने लगा होता; उसने उठा लिया होता गांडीव, और उसने कृष्ण से कहा होता, ले चलो रथ को, जहां तुम्हारी मर्जी। संन्यास का इरादा हो, ले चलो हिमालय की तरफ। युद्ध का इरादा हो, बजाओ शंख, बज जाने दो पांचजन्य; उतर जाने दो युद्ध में। अब जो तुम्हारी मर्जी। अब और मुझे मत धोखा दो। बहुत सीढ़ियां, बहुत सांप देखे। अब पहचान गया हूं।
नहीं पहचान पाया। वह आंख बंद करके फिर सोचने लगा कि क्या निर्णय करूं!
सब विकल्प उठने लगे। लडूं, न लडूं? फिर बात वहीं की वहीं पहुंच गयी, जहां पहले अध्याय में थी, लडूं या न लडूं? अपने प्रियजन हैं, इनको मारूं, न मारूं? यह राज्य पाने योग्य है? युद्ध के योग्य है? इतने बलिदान के योग्य है? सारा झंझावात फिर खड़ा हो गया। फिर बादल घिर गए, सूरज फिर खो गया।

चौथा प्रश्नः जब मन पूरी तरह विचारशून्य हो जाएगा, तब वह फिर विचार किसका करेगा? विचार करने के लिए भी समस्या के रूप में कुछ विचार तो चाहिए ही न?

जब मन पूरी तरह शून्य हो जाता है, तब किसी का विचार नहीं करता; दृष्टि उपलब्ध होती है। तुम विचार करते हो, क्योंकि दृष्टि नहीं है। इसे थोड़ा समझो।
अगर दृष्टि हो, तो तुम विचार न करोगे। विचार करना पड़ता है, दृष्टि की कमी है, उसको पूरा करने के लिए।
अंधे आदमी को जाना है। पूछता है, कहां जाऊं? रास्ता कहां है? पूरब जाऊं, पश्चिम जाऊं? फिर लकड़ी उठाकर टटोलता है। विचार ऐसा ही है। वह अंधे आदमी के हाथ की लकड़ी है। उससे तुम टटोलते हो।
पर जिसके पास आंख है, वह लकड़ी से टटोलता है? उसे जाना है, उठा और चला।
वह एक बार सोचता भी नहीं कि किस तरफ जाऊं? द्वार कहां है? आंख है, तो द्वार दिखाई ही पड़ता है। वह टटोलता भी नहीं, क्योंकि टटोलने की बात ही बेमानी है।
विचार टटोलना है, ध्यान आंख है। निर्विचार आंख है, विचार अंधे की लकड़ी।
तुम खूब-खूब विचार करते हो, क्योंकि तुम्हें कुछ दिखाई नहीं पड़ता, सूझता नहीं। सूझता नहीं, तो विचार से कमी पूरी करनी है। सोच-सोचकर निर्णय करते हो कि कहीं भूल न हो जाए। फिर भी होती है। अंधा कितना ही सम्हलकर चले, फिर भी टकराता है।
बड़ी पुरानी झेन कथा है। एक अंधा आदमी एक मित्र के घर से रात विदा होता था। मित्र ने कहा, लालटेन साथ ले जाओ। रास्ता अंधेरा है, घर दूर। अंधा हंसने लगा। उसने कहा, मजाक करते हो! मुझ अंधे को क्या फर्क पड़ता है लालटेन से। लालटेन हो तो, न हो तो, रास्ता अंधेरा ही रहेगा। मुझे तो टटोलना ही पड़ेगा।
पर मित्र बड़ा तार्किक था, एक महापंडित था। उसने कहा कि वह मुझे पता है
कि तुम अंधे हो। यह भी मुझे पता है--तुम मुझे मत समझाने की कोशिश करो--यह भी मुझे पता है कि तुम्हारे हाथ में लालटेन से तुम्हें कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन दूसरों को फर्क पड़ेगा, वे तुमसे टकराने से बच जाएंगे। और उससे तुम्हें भी लाभ होगा। अंधेरे में कोई तुमसे टकरा जाएगा। हाथ में लालटेन होगी, तो तुमसे कोई टकराएगा नहीं।
तर्क तो वजनी था। अंधा भी इनकार न कर सका। तर्कों के साथ यही मुश्किल
है कि उनमें वजन होता है। और वजन में बड़ा धोखा होता है।
अंधे ने कहा, यह बात तो ठीक है। आज तक कभी लालटेन लेकर चला नहीं। लेकिन
अब तुम कहते हो, तो बात जंचती भी है, गलत भी नहीं कह सकता। लेकर जाता हूं। लालटेन लेकर गया। दस कदम ही गया होगा मुश्किल से कि एक आदमी जोर से आकर टकराया। अंधे ने कहा, यह क्या मामला है! यह तर्क कहीं ऐसे गलत हो सकता है! क्या तुम भी अंधे हो भाई? एक ही बात हो सकती है कि यह आदमी भी अंधा हो और इसको भी लालटेन का पता न चल रहा हो।
उस आदमी ने कहा, मैं अंधा नहीं हूं, आंखें हैं मेरी। तुम अंधे हो, दुनिया को अंधा समझते हो? अंधे ने कहा, अगर तुम्हारे पास आंख है, तो यह हाथ की लालटेन नहीं दिखाई पड़ती? उस आदमी ने कहा, लालटेन के भीतर की बत्ती कभी की बुझ गयी। तुम बुझी लालटेन लिए हो।
और खतरा हो गया। यह अंधा आदमी जिंदगीभर चलता रहा था; कभी कोई इससे टकराया न था। क्योंकि वह सम्हलकर चलता था, अंधे के हिसाब से चलता था, लकड़ी बजाकर चलता था। जरा ही आवाज होती, तो आवाज कर देता कि भाई मैं अंधा आदमी हूं। आज अकड़कर चल रहा था। हाथ में लालटेन थी, फिक्र क्या है! इस अकड़ ने और मुश्किल में डाल दिया। और लालटेन तो बुझ गई थी।
तुम्हारा विचार अंधे के हाथ की लकड़ी है। और तुम्हारे भीतर जो बहुत बड़े विचारक हैं, उनके हाथ में लालटेन है, जो बुझी हुई है। और तुम्हारे भीतर जो आत्यंतिक विचारक हैं, वे पागल हो जाते हैं। पागलखानों में उनसे मिलो,

वे बड़े विचारक हैं। वे विचार ही विचार करते हैं। वे इतने बड़े विचारक हैं कि वे निर्णय तक पहुंच ही नहीं पाते!
तुम पहुंच जाते हो, क्योंकि तुम बड़े विचारक नहीं हो। तुम्हारे सोचने
का अंत आ जाता है। तुम कुछ न कुछ निष्कर्ष ले लेते हो। पर वे सोचते ही चले जाते हैं, सोचते ही चले जाते हैं। वे कभी निर्णय तक पहुंचते ही नहीं। विचार कीशृंखला उनकी बड़ी है।
निर्विचार, समस्या के कारण नहीं सोचता। निर्विचार में सोचना तो घटता
ही नहीं। निर्विचार देखता है।
अगर तुम ठीक से समझो, तो निर्विचार को समस्या नहीं दिखाई पड़ती, समाधान दिखाई पड़ता है। और विचार को समस्या दिखाई पड़ती है, समाधान सोचना पड़ता है।
समाधान बना-बनाया, खुद का होता है। समस्या बाहर होती है।
विचार भरे चित्त को समस्या बाहर होती है, समाधान अपना मनोकल्पित होता है। निर्विचार चित्त को समस्या दिखाई ही नहीं पड़ती, समाधान ही दिखाई पड़ता है। इसलिए सोचने की कोई जरूरत नहीं होती।
लेकिन इसे ही तुम चाहो तो सम्यक विचार कह सकते हो। यही वस्तुतः विचार
है, जहां दिखाई पड़ जाए; समस्या न हो, समाधान हो।
ऐसा समझो, पहले समस्या दिखाई पड़े, फिर समाधान करना पड़े, तो विचार। समस्या को देखते ही समाधान दिखाई पड़ जाए, क्षण का अंतराल न पड़े समस्या और समाधान में, सोच-विचार के लिए क्षणभर की भी जगह न खोनी पड़े, तो समझना कि निर्विचार।
इसलिए बुद्ध, महावीर और कृष्ण को विचारक मत कहना। वे विचारक नहीं हैं। जैसे अरिस्टोटल विचारक है, प्लेटो विचारक है, ऐसे बुद्ध, महावीर विचारक नहीं हैं। प्लेटो महान विचारक है, अरिस्टोटल महान विचारक है। महावीर और बुद्ध विचारक हैं ही नहीं। निर्विचार को उपलब्ध हैं। उन्हें समस्या मिलती ही नहीं। वे जहां भी जाते हैं, समाधान ही पाते हैं।
इस स्थिति को ही हम समाधि कहते हैं। जिसके भीतर समाधि है, उसके जीवन में बाहर सदा समाधान होता है। और जिसके भीतर विचार की विक्षिप्तता है, उसे बाहर सिर्फ समस्याएं होती हैं।
वह जो कृष्ण ने अर्जुन से कहा कि अब तू ही विचार कर ले, अगर निश्चित समझ आ गयी होती, प्रज्ञा का उदय हुआ होता, अगर बातचीत ही बातचीत न समझी होती, तत्व समझ लिया होता, तो आलोकित हो जाता। उस विचार के क्षण में निर्णय की वर्षा हो जाती, निष्कर्ष आ जाता। वह अर्जुन कहता कृष्ण से कि अब क्या सोचना है! दिखाई पड़ने लगा। अब मुझे सोचने के लिए क्यों कहते हो? मेरी आंख खुल गयी; अब लकड़ी से क्यों टटोलूं? मेरा समर्पण हुआ; अब मैं क्यों चिंता सिर पर लूं? जो उसकी मर्जी।
मगर बात को समझ लेना आसान है। बात के भीतर छिपी हुई बात को समझना मुश्किल है।
तुलसी की एक पंक्ति है, बड़ी मधुर है। पंक्ति हैः
निशिगृह मध्य दीप की बातन तम निवृत्त नहीं होई।
अंधेरी रात हो, घर में अंधेरा घिरा हो, तो प्रकाश की बातचीत से अंधेरा नहीं मिटता।
दीप की बातन तम निवृत्त नहीं होई।
तो तुम कितनी ही चर्चा करो प्रकाश की, इससे कोई अंधेरा नहीं मिटता।
दीया जलाओ। दीए की बातचीत से नहीं मिटता, दीया जलाने से मिटता है। चाहे बातचीत न भी करो, दीया जलाओ।
कृष्ण तो जलाने की कोशिश कर रहे हैं दीया, अर्जुन समझ रहा है बातचीत को। और बातचीत की समझ को वह सोचता है कि अंधकार हट जाएगा।
वह फिर सोचने लगा, फिर विचारने लगा। उसने सोचा कि ठीक है। शायद अभी तक
जो डर भी पैदा हुआ हो कि यह कृष्ण कहे ही चले जा रहे हैं, समर्पण, समर्पण, समर्पण; शायद करना पड़ेगा। आश्वस्त हुआ होगा कि नहीं। अहंकार ने कहा होगा, मत घबड़ा, यह आदमी भला है। यह कहता है, अब जो तेरी इच्छा, तू कर ले।
अहंकार प्रसन्न हुआ होगा। फिर से पैर जमाकर खड़ा हो गया होगा। और अहंकार ने कहा होगा, कि ठीक। नहीं; हम गलती में थे। हम सोचते थे, यह आदमी उलझा ही देगा समर्पण में। लगाए जा रहा है कि छोड़ो सब, छोड़ो, सिर झुकाओ; उसी

को करने दो, तुम बीच में मत आओ। यह इतनी बातचीत चला रहा है कि कहीं ऐसा न हो कि फांस ही दे। नहीं, गलती सोचा था हमने। यह आदमी भला है। अब इसने आखिरी बात कह दी, कि अब तू खुद सोच ले।

पांचवां प्रश्नः गीता का प्रारंभ है विषाद-योग से और अंत है मोक्ष-संन्यास-योग पर। क्या जीवन में विषाद अंततः मोक्ष-संन्यास पर पहुंचा देता है?

निश्चित ही। लेकिन विषाद समग्र होना चाहिए। थोड़ा-थोड़ा विषाद काम न देगा। थोड़ा-थोड़ा विषाद होगा, तो तुम कोई न कोई सांत्वना खोज लोगे, कोई न कोई आशा का तंबू खींच लोगे और विषाद उसमें छिप रहेगा।
विषाद अगर पूर्ण होगा, विषाद ऐसा होगा कि पूरा जीवन दांव पर लगा है, मरना या जीना ऐसी स्थिति आ गई है, तो ही विषाद से मोक्ष की यात्रा शुरू होगी। विषाद प्राथमिक चरण है। दुख का बोध पहला चरण है।
बुद्ध ने चार आर्य-सत्य कहे कि चार, बस चार सत्यों में सब शास्त्र आ जाते हैं। पहला सत्य है, दुख का बोध, कि जीवन दुख है। दूसरा सत्य है कि दुख से मुक्त हुआ जा सकता है। तो आशा बनेगी। अगर मुक्त ही नहीं हुआ जा सकता, तो तुम विषाद में ही डूबकर विक्षिप्त हो जाओगे।
बुद्ध पुरुषों से आशा बंधती है कि नहीं, दुख से मुक्त हुआ जा सकता है। ऐसे लोग भी हैं, जिनको हमने नाचते देखा है आनंद से। ऐसे लोग भी हैं, जिनके होंठों पर हमने उत्सव की बंसी बजती सुनी है। कृष्ण की और बुद्ध की चाल हमने देखी है। उनके बैठने, उठने का ढंग हमने देखा है। उनके जीवन का महोत्सव हमने जाना है।
तो दुख है, यह तो पहली बात है। जिसको अभी इसका ही पता नहीं चला, उसकी तो यात्रा ही शुरू नहीं हुई; विषाद-योग ही शुरू नहीं हुआ। अभी तो वह बचकाना है, प्रौढ़ भी नहीं हुआ। अभी उसने जीवन के परम सत्य को भी नहीं देखा कि दुख है, सब तरफ दुख घिरा है।
लेकिन अगर किसी ने दुख ही देख लिया, और उसको दूसरी बात न दिखाई पड़ी; अंधेरे बादल तो दिखाई पड़े, लेकिन शुभ्र चमकती हुई बिजली की रेखा दिखाई न पड़ी; अंधेरी रात तो दिखाई पड़ी, लेकिन हर रात के गर्भ में छिपी हुई सुबह दिखाई न पड़ी; तो वह विषाद से दबकर मर जाएगा, मुक्त नहीं हो जाएगा। आत्महत्या कर लेगा।
पश्चिम में यही हो रहा है, विषाद-योग पैदा हुआ है। सार्त्र विषाद-योग
से घिरा है। पूरे जीवन वह विषाद की ही बात कर रहा है। लेकिन उससे मुक्ति नहीं आ रही है, न मोक्ष का स्वर आ रहा है। इतना ही आ रहा है कि जीवन दुख है। और ज्यादा से ज्यादा महत्वपूर्ण बात जो वह कह सका है अपने जीवनभर की खोज में, वह यह कि आदमी को साहसी होना चाहिए, दुख के बावजूद जीने की कोशिश करनी चाहिए; बस।
तो विषाद तो है। पूरा अस्तित्ववाद का आंदोलन पश्चिम में विषाद-योग है। बड़े विचारक पैदा हुए हैं, लेकिन वे बस अर्जुन तक अटक गए हैं। कृष्ण कहीं दिखाई नहीं पड़ता उन्हें। तो उनका गांडीव तो ढीला होकर हाथ से छूट गया है; गात शिथिल हो गए हैं। लेकिन सार्त्र इतनी ही आशा बंधाता है कि कुछ और किया नहीं जा सकता। ऐसी स्थिति है कि जीवन दुख है। बस, ज्यादा से ज्यादा इतना ही हो सकता है कि तुम साहसपूर्वक लड़े जाओ, यद्यपि पराजय निश्चित है। तो इसको वह कहता है कि बहादुर आदमी का लक्षण है, जानते हुए, पराजय होगी, मृत्यु होगी, वह लड़ता जाए। कोई सांत्वना नहीं है, दुख ही दुख है। लेकिन कोई उपाय भी नहीं है। निरुपाय, दुख को झेलने की क्षमता बढ़ानी है।
अर्जुन तो मौजूद है, कृष्ण की कहीं कोई खबर नहीं मिलती। अंधेरी रात तो दिखाई पड़ रही है, सुबह की कोई खबर नहीं मिलती, कोई मुर्गा बांग नहीं देता। आकाश मेघों से घिरा है; मेघ तो दिखाई पड़ते हैं, चमकती हुई दामिनी दिखाई नहीं पड़ती।
और अगर दिखाई भी पड़ती है, तो उससे भरोसा नहीं बंधता कि यह बिजली भी क्या कोई प्रकाश बन सकती है! चमक जाती है कभी, अनायास। इससे हम कोई स्थिर

प्रकाश का स्रोत थोड़े ही बना सकते हैं। और कृष्ण और बुद्ध ऐसे ही हैं; कभी- कभी बिजलियों की भांति चमक जाते हैं।
लेकिन बिजली को अगर तुम ठीक से समझ लो, तो तुम्हारे घर का दीया बिजली
बन सकती है; तुम्हारे जीवन के मार्ग पर प्रकाश बन सकती है। अगर तुम बिजली को क्षणभंगुर कौंध समझो, तो फिर अंधेरे मेघों से घिर जाओगे। फिर तुम्हारा जीवन विषाद तो होगा, लेकिन मोक्ष की यात्रा नहीं।
तो बुद्ध कहते हैं, दूसरी बात है कि दुख से मुक्त हुआ जा सकता है। इसकी संभावना की तरफ आंख का उठना।
विषाद पैदा हो जाए, तो गुरु की तलाश शुरू होती है। गुरु की प्रत्यभिज्ञा हो जाए, कहीं श्रद्धा का जन्म हो जाए, किसी के चरण में परमात्मा के चरणों की धीमी-सी भी आहट मिल जाए, तो दूसरा सत्य समझ में आया, कि संभावना है। विषाद है, लेकिन उदास होने का कोई कारण नहीं। विषाद है, पार होने की गुंजाइश भी है। माना अंधेरी रात है, लेकिन सुबह होगी। देर कितनी ही लगे, सुबह होगी।
और सुबह का भरोसा जैसे-जैसे सघन होने लगता है, देर अर्थहीन हो जाती है। और सुबह का भरोसा जब प्रगाढ़ हो जाता है, तो ऐसे लोग भी हुए हैं कि मध्य अंधेरी रात्रि में उनके लिए सुबह हो गयी। उनके हृदय में ही सुबह हो गयी। बाहर रात भी घिरी रही, तो कोई फर्क न पड़ा। बाहर दुख भी रहा, तो कोई फर्क न पड़ा, वे नाचने लगे। भीतर की वीणा बजने लगी। बाहर का बाजार सुना-अनसुना हो गया। बाहर की आवाजें धीरे-धीरे दूर होने लगीं, खोने लगीं। भीतर की आवाज सारा जीवन बन गयी।
तीसरा सत्य है कि दुख से मुक्त होने के उपाय हैं। क्योंकि यह भी हो सकता है कि तुम्हें ऐसा व्यक्ति भी मिल जाए, जो आनंद को उपलब्ध हुआ है; तुम्हें यह भी प्रतीति हो जाए कि तुम दुख में हो, विषाद में हो, कोई आनंद में है; लेकिन यह भी हो सकता है कि तुम्हें उपाय समझ में न आए। तो तुम कहो कि यह भी दुर्घटना मात्र है कि मैं दुख में हूं, तुम आनंद में हो; लेकिन कोई सेतु नहीं है। मैंने पाया कि मैं इस पार हूं, तुमने पाया कि तुम उस पार हो; यह सिर्फ दुर्घटना की बात है। अनायास है, आकस्मिक है, इसका कोई विज्ञान नहीं है, कोई विधि नहीं है कि मैं दुख से सुख में आ जाऊं।
बहुत लोग ऐसा भी सोचते हैं। और कई बार तुम्हें भी ऐसा लगता होगा कि कहीं ऐसा तो नहीं है कि ये बुद्ध, महावीर, कृष्ण, जरथुस्त्र, ये अंगुलियों पर गिने जाने वाले थोड़े-से लोग प्रकृति की भूल भी तो हो सकते हैं! ये भूल-चूक भी तो हो सकते हैं। इन तक पहुंचने का कोई विज्ञान है? अपने को कोई रूपांतरित कर सके, ऐसी कोई विधि है? कहते हैं ये लोग कि विधि है। लेकिन पाया ऐसा जाता है, साधारण समझ को ऐसा दिखाई पड़ता है, कि कुछ लोग जन्म से ही हंसते हुए पैदा होते हैं और प्रसन्न होते हैं और कुछ लोग दुख को लेकर पैदा होते हैं।
डाक्टर कहते हैं--जो बच्चों को जन्म दिलवाते हैं, जो उनके जन्म-क्षण
के समय करीब होते हैं--वे कहते हैं, बच्चा पहले ही क्षण से भिन्न-भिन्न व्यवहार करता है। कुछ बच्चे मुस्कुराते पैदा होते हैं। उनके जीवन में जैसे सुख सहज होता है। पहले ही क्षण बच्चा आंख खोलता है और तुम उसकी आंख में देख सकते हो, वह प्रफुल्लित चित्त है। और कुछ पहले से ही लंबे चेहरे वाले होते हैं। जीवन उनके लिए पहले क्षण से ही बोझ होता है, दुख होता है। तो कहीं ऐसा तो नहीं है कि कोई कंकड़ है, कोई हीरा है। लेकिन हीरा के कंकड़ बनने का कोई उपाय तो है नहीं। कंकड़ के हीरा बनने का कोई उपाय नहीं है। तो यह भी हो सकता है कि तुम्हें किसी सदगुरु का दर्शन भी हो जाए, लेकिन
मन में यह ख्याल बना रहे कि होगी एक दुर्घटना। होगा!
मेरे पास लोग आते हैं। वे मुझ से पूछते हैं कि ठीक; हम यह भी मान लें कि
आप जाग गए; लेकिन आपके शिष्यों में कोई जागा? मैं उनसे पूछता हूं कि तुम्हें मुझे देखकर भरोसा नहीं आता? वे कहते हैं कि आपको हो गया, मान लिया। लेकिन जब तक आपके शिष्यों को न हो जाए, तब तक यह भरोसा कैसे आए कि हमें भी हो सकेगा!
उनकी बात में अर्थ है, उनकी बात में सार्थकता है। वे यह कह रहे हैं कि आपको हो सकता है कि जन्म से रहा हो। कोई विधि से न हुआ हो; ऐसा आपने पाया हो

अपने को कि ऐसा है। लेकिन जब तक हम उस आदमी को न देख लें, जो दुख में था, महादुख में था, और विधियों के द्वारा पार हुआ और महासुख को पहुंचा, तब तक भरोसा न आएगा।
तो तीसरी बुद्ध ने बात कही है, तीसरा आर्य-सत्य, कि दुख से मुक्त होने
की विधि है।
लेकिन मैं तुमसे कहता हूं कि मेरा कोई शिष्य भी मुक्त हो जाए, तो भी क्या फर्क पड़ेगा! तुम यह कहोगे, आपको हुआ; माना। एक शिष्य को भी हो गया। बाकी को किसी को हुआ? क्योंकि जब तक बहुतों को न हो जाए, तब तक मुझे यह भरोसा न आएगा कि मुझे हो सकता है। मैं तो भीड़ में हूं, एक हूं। किसी एकाध को हो गया होगा, वह भी आप जैसा ही रहा होगा।
यह भरोसा कब आएगा! वस्तुतः यह भरोसा तभी आएगा, जब तुम विधि का उपयोग करोगे और तुम्हारे भीतर अंधेरे की कोर थोड़ी पीछे हटने लगेगी, रोशनी थोड़ी बढ़ने लगेगी; अशांति थोड़ी मिटेगी और शांति का आविर्भाव होगा। तुम्हारे भीतर ही थोड़ी आनंद की पुलक आएगी। कभी-कभी तुम थर्राहट से भर जाओगे आनंद की, रोआं-रोआं नाचने लगेगा। क्षणभर को ही सही, कोई विधि जब तुम्हें जीवन का स्पर्श देगी, तभी भरोसा आएगा।
तो तीसरा आर्य-सत्य तभी समझ में आता है, जब तुम विधियों का उपयोग करते हो। विधियां हैं, ऐसा बुद्ध पुरुष कहते हैं, लेकिन तुम्हें भरोसा तभी आएगा।
फिर बुद्ध कहते हैं, चौथा आर्य-सत्य है, दुख मिट जाता है। विधियों से आदमी महादुख के पार हो जाता है। बुद्ध पुरुषों के साथ चलकर, उनकी छाया बनकर, विधियां उपलब्ध हो जाती हैं। विधियों से पार हो जाता है। चौथा आर्य-सत्य है, दुख-निरोध की अवस्था है।
क्योंकि सवाल यह है कि दुख आज मिट जाए, क्या पक्का पता है कि कल फिर वापस न आ जाएगा? क्योंकि कई बार तुम भी सुखी हो गए हो, थोड़े-बहुत ही सही। फिर खो जाता है सुख। कभी-कभी शांति आती लगती है, कि गयी। आयी भी नहीं, कि गयी। कभी-कभी ऐसा लगता है, सब ठीक है। लग भी नहीं पाता और सब गड़बड़ हो जाता है।
तो बुद्ध कहते हैं, चौथी बड़ी बात जानने की है, वह यह है कि एक ऐसी अवस्था है, जहां दुख गया तो गया, फिर लौटता नहीं। सुबह हुई तो हुई; फिर कोई रात नहीं होती।
मगर वह तो अनुभव से ही होगी। अधिक लोग विषाद पर ही मर जाते हैं। अर्जुन को कृष्ण कोशिश कर रहे हैं कि विषाद से वह मोक्ष तक पहुंच जाए, चौथी अवस्था तक, बुद्ध का जो चौथा आर्य-सत्य है।
विषाद जिनके जीवन में अनुभव होने लगा, वे धन्यभागी हैं। उनकी बजाय धन्यभागी हैं, जिन्हें यह भी पता नहीं कि जीवन में दुख है, जिन्हें यह भी पता नहीं कि अंधेरा है। उनसे ज्यादा धन्यभागी हैं।
फिर जिन्हें किसी ऐसे पुरुष का स्पर्श हो गया, निकटता मिल गयी, सामीप्य मिल गया, जिसके जीवन में वह घटना घटी है, वे और भी धन्यभागी हैं। उनके लिए सुबह का प्रमाण मिल गया।
फिर वे और भी धन्यभागी हैं, जो ऐसी सुबह के पीछे चलकर थोड़े-से प्रकाश
का अनुभव करने लगे, स्वाद लेने लगे। उन्हें स्वाद आ गया, विधियां हैं। फिर उनसे भी महा धन्यभागी वे हैं, जो उस अवस्था को उपलब्ध हो गए, जहां दुख सदा को खो जाता है। क्योंकि दुख तुम्हारा स्वभाव नहीं है, मोक्ष तुम्हारा स्वभाव है।

अब सूत्रः
इतना कहने पर भी अर्जुन का कोई उत्तर नहीं मिलने के कारण कृष्ण फिर बोले कि हे अर्जुन, संपूर्ण गोपनीयों से भी अति गोपनीय मेरे परम रहस्ययुक्त वचन को तू फिर भी सुन, क्योंकि तू मेरा अतिशय प्रिय है, इससे यह परम हितकारक वचन मैं फिर तेरे लिए कहूंगा।
अर्जुन चुप होकर बैठ गया; सोचने लगा, क्या करूं, क्या न करूं! खोजने लगा, क्या है मेरी इच्छा!

उतर गया सांप से फिर नीचे। चढ़ने में वर्षों लग जाते हैं, उतरने में क्षणभर लगता है। बनाने में वर्षों लग जाते हैं, गिरने में वर्षों नहीं लगते, मिटाने में वर्षों नहीं लगते।
और यह जीवन की तो इतनी बारीक यात्रा है, इतनी सूक्ष्म यात्रा है, कि तुम पहुंचते तो इंच-इंच मुश्किल से हो; यात्रा करते हो। और जब खोता है, तो मीलों खो जाते हैं, एक साथ खो जाते हैं। क्योंकि नीचे उतरना सुगम है, ऊपर जाना दूभर है।
इतना कहने पर भी अर्जुन का कोई उत्तर न मिलने के कारण... ।
कृष्ण ने कहा कि तू अब कह; तेरी जो मर्जी हो, तू बोल दे। अब तुझे जो करना हो, चुन ले।
अगर अर्जुन समझ गया होता, वह हंसता और कहता कि अब बस खेल बंद करो। मुझे पक्का पता है, तुम पुराने खिलाड़ी हो; पर अब बहुत हो गया। अब मुझे और न भरमाओ, और न भटकाओ। अब मेरी क्या मर्जी? अब उसकी मर्जी।
कृष्ण ने प्रतीक्षा की होगी कि वह उत्तर दे, लेकिन वह सोचने लगा। और सोचने से कहीं उत्तर आया है! सोचने से ही उत्तर आता होता, तो बुद्ध पुरुष पागल थे कि न सोचने की शिक्षा देते! वह विचार में पड़ गया। वह चूक गया, वह फिर उलझ गया जाल में। कृष्ण देखते रहे होंगे, प्रतीक्षा की होगी।
इतना कहने पर भी जब कोई उत्तर न मिला और अर्जुन फिर खो गया विचारों के जाल में, तो उन्होंने फिर से कहा कि हे अर्जुन... !
यह गीता की पूरी कथा गुरु के अथक होने की कथा है। शिष्य थक-थक जाए, गुरु नहीं थकता। वह बार-बार चूक जाए, गुरु उसे फिर-फिर बुलाने लगता है। क्योंकि गुरु इस बात को भलीभांति जानता है, यह स्वाभाविक है। बहुत बार भटक जाना स्वाभाविक है। अनंत बार भी कोई भटककर अंततः वापस आ जाए मार्ग पर, तो भी जल्दी आ गया।
कृष्ण बोले, हे अर्जुन, फिर से तुझ से कहूंगा। गोपनीयों में भी गोपनीय परम रहस्ययुक्त वचन को तू फिर से सुन... ।
फिर उसे जगाया, फिर सीढ़ी पकड़ाई।
क्योंकि तू मेरा अतिशय प्रिय है... ।
यह क्यों कृष्ण बार-बार अर्जुन को दोहराते हैं कि तू मेरा अतिशय प्रिय है? यह कृष्ण बार-बार अर्जुन को अपने प्रेम के प्रति सचेत क्यों करते हैं? ताकि उसका प्रेम आविर्भूत हो सके। वे अपने प्रेम को उससे बार-बार कहते हैं, ताकि उसके भीतर भी श्रद्धा का ऐसा ही जन्म हो सके।
गुरु की तरफ से शिष्य के लिए जो प्रेम है, शिष्य की तरफ से गुरु के प्रति वही श्रद्धा है। गुरु प्रेम के बीज बोता है शिष्य के हृदय में, ताकि शिष्य श्रद्धा की फसल काट सके।
इसलिए कृष्ण बार-बार यह बात डाले जाते हैं, मौके-बेमौके, जब भी उन्हें अवसर मिलता है वह कहते हैं, क्योंकि तू मेरा अतिशय प्रिय है। प्रेम को दोहराते हैं, ताकि अर्जुन को भरोसा आ जाए।
प्रेम ही भरोसा ला सकता है। प्रेम ही श्रद्धा को जन्मा सकता है। और प्रेम ही समर्पण की संभावना खोल सकता है।
इससे यह परम हितकारक वचन मैं तेरे लिए कहूंगा... ।
तुम ऐसा मत सोचना, जैसा कि भूल शिष्यों को अक्सर हो जाती है, कि ऐसा कृष्ण अर्जुन से ही कह रहे हैं। उनके और शिष्य रहे होंगे, तो सब से उन्होंने यही कहा होगा कि तू मेरा अतिशय प्रिय है। यह परम हितकारक वचन मैं तुझ से फिर-फिर कह रहा हूं, क्योंकि मेरा प्रेम तेरे प्रति गहन है, न चुकने वाला है।
यह गुरु हर शिष्य को यही कहता है। इससे तुम यह मत समझ लेना कि गुरु किसी एक शिष्य को विशेष प्रेम करता है और किसी दूसरे शिष्य को कम विशेष प्रेम करता है। किसी को ज्यादा, किसी को कम, ऐसा सवाल नहीं है। लेकिन गुरु हर शिष्य से यही कहता है कि तुझ से मेरा प्रेम अतिशय है। क्योंकि जब तक शिष्य को ऐसा भरोसा न आ जाए कि प्रेम गुरु का अतिशय है, असाधारण है, बस उसके प्रति है, तब तक उसके भीतर की श्रद्धा का उभार न आ पाएगा, तब तक उसकी श्रद्धा दबी पड़ी रहेगी। वह अतिशय और असाधारण प्रेम में ही उठ सकती है।

हे अर्जुन, तू केवल मुझ परमात्मा में ही अनन्य प्रेम से नित्य-निरंतर अचल मन वाला हो और मुझ परमेश्वर को ही अतिशय श्रद्धा-भक्ति सहित निरंतर भजने वाला हो तथा मन, वाणी और शरीर के द्वारा सर्वस्व अर्पण करके मेरा पूजन करने वाला हो और मुझ सर्वगुण-संपन्न सबके आश्रयरूप वासुदेव को नमस्कार कर; ऐसा करने से तू मुझ को ही प्राप्त होगा, यह मैं तेरे लिए सत्य प्रतिज्ञा करता हूं, क्योंकि तू मेरा अत्यंत प्रिय सखा है।
देखकर कि अर्जुन फिर सोचने लगा। समर्पण कहीं सोचा जाता है! किया जाता है। सोचना तो होशियारी है। सोचने में तो भरोसा तुम्हारा अपने ही ऊपर है। सोचकर भी समर्पण करोगे, वह समर्पण होगा? अगर सोचकर किया, तो तुमने समर्पण किया ही नहीं। क्योंकि सोच-सोचकर पाया कि ठीक है। यह ठीक तुमने पाया, इसलिए समर्पण किया। लेकिन अंततः निर्णायक तुम ही रहे; अहंकार ही अंततः निर्णायक रहा।
और ऐसे समर्पण को तुम किसी दिन वापस लेना चाहो, तो वापस भी ले लोगे। तुम जाकर कहोगे कि बस, समर्पण समाप्त। अब मुझे नहीं करना है। क्योंकि तुम बच ही रहे थे। पहले ही दिन बच गए थे। तुम समर्पण के पीछे खड़े रहे थे। तुमने समर्पण किया था, वह तुम्हारा कृत्य था; कर्ता तो पीछे खड़ा रहा था।
और समर्पण तो तभी होता है, जब कर्ता मिट जाए। इसलिए समर्पण को वापस नहीं ले सकते हो। अगर वापस ले लिया, वह कोई समर्पण है! समर्पण से पीछे नहीं लौट सकते हो। वह कमिटमेंट, वह प्रतिबद्धता आखिरी है। उससे कैसे वापस लौटोगे? कौन वापस लौटेगा? क्योंकि जो वापस लौट सकता था, उसे तो तुमने समर्पित कर दिया।
जब अर्जुन फिर सोचने लगा, कृष्ण के मन में बड़ी दया और करुणा उपजी होगी,
कि यह पागल फिर विचार करने लगा! यह फिर चूक गया! एक अवसर दिया था कि बिना सोचे कह देता अब कि बस ठीक है, अब सोच लिया बहुत। सोच-सोचकर तो विषाद में पड़ा हूं। अब और मत भरमाओ मुझे। अब जो तुम्हारी मर्जी। तुम्हारे शरण आया हूं, अनन्य भाव से आया हूं; अब तुम ही मेरे प्राण हो; तुम ही मेरी आत्मा हो। तुम ही जहां चलाओगे, चलूंगा; न चलाओगे, न चलूंगा।
समर्पण तो अहंकार की आत्मघात अवस्था है। जैसे कोई अपनी गरदन काट दे।
फिर जोड़ने का उपाय नहीं।
नहीं, लेकिन अर्जुन को सोचते देखकर कृष्ण को फिर कहना पड़ा, मन, वाणी और शरीर के द्वारा सर्वस्व को तू मुझमें अर्पण कर दे, ऐसा करने से तू मुझ को प्राप्त होगा... ।
और कोई उपाय नहीं है। नदी गिरे सागर में, तो ही सागर हो सकती है। बीज टूटे भूमि में, तो ही अंकुरित होगा।
यह मैं तेरे लिए सत्य प्रतिज्ञा करता हूं... ।
गुरु को ऐसी बातें भी शिष्य से कहनी पड़ती हैं, जिन्हें कहने की कोई जरूरत न थी। लेकिन शिष्य की अपनी दुनिया है। गुरु को शिष्य की भाषा में बोलना पड़ता है। कृष्ण जैसे व्यक्ति को भी प्रतिज्ञा करनी पड़ती है शिष्य के सामने, कि मैं प्रतिज्ञा करता हूं। क्योंकि तुम केवल इसी तरह की बातें समझ सकते हो।
भरोसा तुम्हें नहीं है। अन्यथा प्रतिज्ञा करवाते? अन्यथा तुम कृष्ण
को यह कहने का मौका दिलवाते कि मैं तुझे आश्वासन देता हूं?
तुम्हारा बस चले, तो तुम जाकर कृष्ण को रजिस्ट्री आफिस में दस्तखत करवा लो स्टैम्प पर, कि लिख दो इस पर कि अगर न किया पूरा, तो अदालत से हरजाना वसूल कर लूंगा।
मैं तेरे लिए सत्य प्रतिज्ञा करता हूं... ।
महाकरुणा तुम्हारी भूल के कारण, तुम्हारी नासमझी के कारण, तुम्हें खोजने के लिए तुम्हारे अंधेरे में भी उतरती है। तुम्हारी भाषा का भी सहारा लेती है। तुम्हारे ही शब्दों का उपयोग करती है। तुम्हें पाने के लिए कृष्ण जैसे व्यक्ति को तुम्हारी जगह आना पड़ता है, ताकि तुम्हें ले जाया जा सके।
इसलिए सब धर्मों को अर्थात संपूर्ण कर्मों के आश्रय को त्यागकर मुझ सच्चिदानंदघन वासुदेव परमात्मा की ही अनन्य शरण को प्राप्त हो, मैं तेरे को संपूर्ण पापों से मुक्त कर दूंगा; तू शोक मत कर।

अर्जुन सोचने लगा, फिर शोकग्रस्त हो गया। सोचने से विषाद आ जाता है। न सोचने से आनंद की वर्षा होती है, सोचने से विषाद घिर जाता है। सोचना ही विषाद है।
वह फिर विचार करने लगा, फिर शोक चारों तरफ छा गया, पाप का भय, पुण्य का लोभ, आकांक्षा। मारूं, न मारूं! करूं, न करूं! अपने हैं, पराए हैं! सब जाल फिर से खड़ा हो गया।
अंत-अंत तक, जब तक कि तुम छलांग ही नहीं ले लेते, संसार तुम्हें आखिरी
दम तक पकड़ता चला जाता है। अठारहवां अध्याय आ गया। गीता का अंत करीब है। और थोड़े-से सूत्र बचे हैं। और अर्जुन अभी भी चूकता चला जा रहा है!
मैं तुझे संपूर्ण पापों से मुक्त कर दूंगा, तू शोक मत कर। तू विषाद में मत उलझ, तू चिंता मत कर। तू सब धर्मों को छोड़कर, सब कर्मों के आश्रय को छोड़कर, सब धारणाएं छोड़कर, अनन्य भाव से मेरी शरण आ जा।
कृष्ण का निमंत्रण समर्पण का निमंत्रण है; मिटने की, पूरी तरह मिट जाने की, सब भांति खो जाने की पुकार है।
जब तक तू है, तब तक संसार है। जब तक तू है, तब तक मेरा है, पराया है। जब
तक तू है, तब तक जन्म है, मृत्यु है। जब तक तू है, तब तक पाप और पुण्य है। वहां भीतर टूट गया मैं, तू मिटा; फिर न कोई पाप है, न कोई पुण्य है।
इसलिए कृष्ण कह सकते हैं, ठीक ही कहते हैं। इससे तुम यह मतलब मत समझ लेना जो लोगों ने समझा है। लोग हमेशा गलत ही समझते हैं। लोगों ने यह समझा है कि बिल्कुल ठीक। तो हम कृष्ण का नाम गुणगान करते रहें, वे सब पापों से हमें मुक्त कर देंगे। और पाप भी किए चले जाएं, क्योंकि जब मुक्त करने वाला ही मिल गया, तो अब पाप से क्या बचना!
तुम चालबाजी कर रहे हो; तुम कृष्ण का अर्थ ही न समझे। कृष्ण का कुल अर्थ इतना है कि अगर समर्पण पूरा है, तो पाप मिट गए; कोई मिटाता थोड़े ही है। वह तो तुम्हारी भाषा के कारण कहना पड़ रहा है कि मैं तुम्हारे पापों को मिटा दूंगा, तू शोक मत कर। कोई और ढंग कहने का नहीं है। अन्यथा कोई पाप मिटाता है! पाप बचते ही नहीं।
अहंकार के जाते ही पाप भी गए। वे तो अहंकार के ही संगी-साथी हैं, अहंकार के बिना बच ही नहीं सकते। और अहंकार के जाते ही सारा संसार रूपांतरित हो जाता है। वहां फिर एक ही बचता है। कौन करेगा पाप? किसके साथ करेगा पाप? वही मारने वाला, वही जिलाने वाला। वही मरने वाले में बैठा है, वही मारने वाले में बैठा है। सब हाथ उसके हैं। जिस हाथ में तलवार है, वह भी हाथ उसका है। और जिस गरदन पर तलवार गिरती है, वह गरदन भी उसकी है। फिर कैसा पाप? कैसा पुण्य?
एक मैं के जाते ही सब खो जाती है वह पुरानी शब्दों की दुनिया--पाप की, पुण्य की, विभाजन की, द्वंद्व की; अच्छे की, बुरे की; शुभ की, अशुभ की--सब खो जाती है। निर्द्वंद्व भाव उत्पन्न होता है।
यह अर्थ है कृष्ण का कि मैं तुझे संपूर्ण पापों से मुक्त कर दूंगा। इसका यह मतलब नहीं है कि तू मजे से पाप कर, मैं तुझे मुक्त कर दूंगा! इसका कुल मतलब इतना ही है कि तू मैं को छोड़ दे, तू पाएगा कि पाप बचे ही नहीं। तभी तू समझ पाएगा कि न तो कोई माफ करता है, न कोई मिटाता है। पाप थे ही नहीं; तुम्हारी भ्रांति में तुमने उन्हें माना था कि वे हैं।
एक मित्र को बुखार चढ़ा था। मैं उन्हें देखने गया। वे सन्निपात में थे। कोई एक सौ सात-आठ डिग्री बुखार था। बस, मरने के करीब थे। वे अनर्गल बातें पूछ रहे थे। घर के लोग परेशान थे। मैं पड़ोस में ही था, मुझे बुला लाए कि आपको अनर्गल प्रश्नों के उत्तर देने की काफी आदत है; आप चलो।
मैंने कहा कि यह मेरा धंधा है। सन्निपातग्रस्त लोगों से ही मेरा सारा संबंध है। वे पूछते हैं; मैं समझाता हूं।
मैं गया। वह आदमी पूछ रहा था और घर के लोग परेशान थे। वह कह रहा था, मेरी खाट क्यों उड़ रही है? मुझे पंख क्यों लग गए हैं? घर के लोगों ने कहा, अब हम क्या कहें!
सन्निपात में जो आदमी है, वह जो पूछ रहा है, वह है ही नहीं। न तो उड़ रहा है, न पंख लग गए हैं, न खाट आकाश में जा रही है। तुम्हें कभी गहरा बुखार चढ़ा

है, तो तुम को भी लगा होगा कि उड़े; चली खाट आकाश में। यहां जा रहे हैं, वहां जा रहे हैं; भूत-प्रेत खड़े हैं।
उस आदमी ने कहा कि देखो, इस कोने में एक बहुत बड़ा भूत खड़ा हुआ है। यह मुझे मारना चाहता है। मैंने उससे कहा, तू फिक्र मत कर। इसको हम मारे डालते हैं।
मेरी यह बात सुनकर कि इसको हम मारे डालते हैं, वह तो आश्वस्त हुआ, उसकी पत्नी बहुत चौंकी। उसने कहा, आप क्या कह रहे हैं? क्या वहां कोई खड़ा है? वह डरी, कि हो सकता है, वहां कोई खड़ा हो, हमको दिखाई नहीं पड़ता और पति को दिखाई पड़ता है।
मैंने कहा, वहां कोई खड़ा नहीं है। लेकिन अभी इसको समझाना संभव नहीं है। अभी इसको समझाने बैठना कि वहां कोई खड़ा नहीं है, असंभव है। इसकी सन्निपात की भाषा में उसका कोई मेल ही नहीं होगा। इसको दिखाई पड़ रहा है। तो इसको मैं कह रहा हूं, तू फिक्र मत कर, तू यह दवा पी ले। इससे हम निपटे लेते हैं। इन भूत-प्रेतों को हम साफ कर डालेंगे। तू तो आंख बंद करके मजे से सो; तू हम पर छोड़ दे। तू शोक मत कर। तू इनकी चिंता मत कर। इनसे हम निपट लेते हैं। तू वैसे ही बुखार में पड़ा है, इनसे लड़ाई-झगड़ा करेगा और झंझट होगी।
वह आदमी राजी हो गया दवा पीने को। उसने जब देखा कि मैं निपट लूंगा भूत-प्रेतों से, तो वह दवा पीकर शांति से सो गया। जब बुखार उसका नीचे उतरा, कोई एक सौ चार डिग्री पर आ गया, तब मैंने उससे कहा कि देख, मैंने सब भूत-प्रेत समाप्त कर दिए।
उसने चारों तरफ देखा; उसने कहा, हां, कोई भी नहीं है। आपने अपना आश्वासन पूरा किया। मगर ये घर के मेरे लोग सुनते ही न थे!
अर्जुन एक अहंकार के सन्निपात में है। कृष्ण उससे कहते हैं, तू फिक्र
मत कर; मैं तेरे संपूर्ण पापों से तुझे मुक्त कर दूंगा, तू शोक मत कर। वे उसे सन्निपात से नीचे उतारना चाहते हैं। तू यह अहंकार का बुखार भर छोड़ दे; तू जरा शांत हो, शीतल हो; शेष सब मैं कर लूंगा।
कोई कृष्ण को करना न पड़ेगा; वहां करने को कुछ है ही नहीं।
मुझे कोई भूत-प्रेत मारने नहीं पड़े; वे थे ही नहीं। मुझे उसकी खाट, कोई आकाश से उड़ते से पकड़कर नीचे नहीं लानी पड़ी। वह उड़ ही नहीं रही थी। पर सन्निपात में दिखाई पड़ती हो कि उड़ रही है, तो उसके अनुभव को खंडित करना मुश्किल है।
अर्जुन को दिखाई पड़ रहा है जो, उसे खंडित करना मुश्किल है। इसलिए कृष्ण कहते हैं, तू मुझ पर छोड़ दे। मैं इनसे निपटे लेता हूं। तू पाप कर बेफिक्री से। बस, एक बात मेरी सुन ले कि अहंकार को छोड़ दे।
अहंकार छोड़ते ही कोई पाप कर ही नहीं सकता। सब पाप अहंकार से पैदा होते हैं। अहंकार छूटा, पाप की जड़ कट गयी। फिर कोई पाप के वृक्ष में न फल लगते हैं, न पत्ते लगते हैं, न फूल लगते हैं।
और अलग-अलग पत्तों को तोड़ने जो गए, वे नाहक भटके हैं। क्योंकि जड़ बनी रहती है, नए पत्ते निकल आते हैं। एक तोड़ो, दस निकल आते हैं। वृक्ष समझता है, तुम कलम कर रहे हो। वृक्ष और घना होता जाता है।
कृत्यों को, एक-एक कृत्य को काटने जाओगे--बुरे को काटूं, अच्छे को करूं--तुम भटकते ही रहोगे। जड़ को ही काट दो। जिसने जड़ को काटा, उसने अचानक पाया, पूरा वृक्ष ही गिर गया।
अहंकार जड़ है, समर्पण उस जड़ को काट देना है।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग आठ
गीता दर्शन अध्याय 18
अठारहवां प्रवचन

आध्यात्मिक संप्रेषण की गोपनीयता

इदं ते नातपस्काय ना भक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति।। 67।।
य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः।। 68।।
न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि।। 69।।
हे अर्जुन, इस प्रकार तेरे हित के लिए कहे हुए इस गीतारूप परम रहस्य
को किसी काल में भी न तो तपरहित मनुष्य के प्रति कहना चाहिए और न भक्तिरहित के प्रति तथा न बिना सुनने की इच्छा वाले के प्रति ही कहना चाहिए; एवं जो मेरी निंदा करता है, उसके प्रति भी नहीं कहना चाहिए। क्योंकि जो पुरुष मेरे में परम प्रेम करके इस परम गुह्य रहस्य गीता
को मेरे भक्तों में कहेगा, वह निस्संदेह मेरे को ही प्राप्त होगा।
और न तो उससे बढ़कर मेरा अतिशय प्रिय कार्य करने वाला मनुष्यों में कोई है, और न उससे बढ़कर मेरा अत्यंत प्यारा पृथ्वी में दूसरा कोई होवेगा।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः श्रद्धा और समर्पण के उपदेश को भगवान कृष्ण सभी गोपनीयों से भी अति गोपनीय और परम वचन क्यों कहते हैं?

पहली बात, गोपनीय वह वचन है, जो अत्यंत आत्मीयता के क्षण में ही कहा जा सके। आत्मीयता न हो, तो जिसे कहना ही संभव नहीं है। आत्मीयता के माध्यम से ही जो संवादित होता है।
जहां विवाद हो, विचार हो, अपनी धारणा-मान्यता हो; जहां दो चेतनाएं निष्कलुष-भाव से मिलती न हों, एक सूक्ष्म छिपा हुआ संघर्ष हो, वहां जो कहा ही न जा सके; कहा भी जाए, तो समझा न जा सके; समझ भी लिया जाए, तो माना न जा सके; मान भी लिया जाए, तो किया न जा सके; जिसकी यात्रा प्रथम से ही गलत हो जाए, ऐसा संदेश गोपनीय है।
जैसे प्रेम गोपनीय है, ऐसे ही सत्य भी गोपनीय है। प्रेमी बाजार में प्रेम के संलाप-संवाद में डूबने को राजी न होंगे। भरे बाजार में प्रेम की बात मौजूं ही नहीं। जहां धन की चर्चा चल रही हो चारों तरफ, वहां प्रेम की बात सार्थक नहीं है। जहां शोरगुल हो, बाजार हो, भीड़ हो--जहां बहुत हों, एकांत न हो--वहां प्रेम का संगीत पैदा ही नहीं हो सकता।
वहां जो प्रेम की वीणा छेड़ दे, उसने गलत समय में, गलत स्थान पर वीणा छेड़ दी। उससे जगहंसाई भला हो, उससे प्रेम का पौधा पनपेगा नहीं। शायद सदा के लिए कुम्हला जाए। ऐसा आज पश्चिम में हुआ है।
लंबे समय तक पश्चिम ने मनुष्य की काम-वृत्ति को दबाया, ईसाइयत के प्रभाव में। वह दमन एक अति पर पहुंच गया। और जब भी कोई चीज किसी अति पर पहुंच जाती है, तो इस बात का डर है कि बगावत हो, विद्रोह हो और दूसरी अति पैदा हो जाए।
मन मनुष्य का घड़ी के पेंडुलम की तरह घूमता है, एक छोर से दूसरे छोर पर चला जाता है। मध्य में रुकता नहीं। मध्य में जो रुकना जान गए, वे मन को मिटाने की कला जान गए।
तो पश्चिम में ईसाइयत ने दबाया काम को, दबाया प्रेम को, छिपाया, अस्वीकार किया, निंदा की। उसका स्वभाविक परिणाम अंततः यह हुआ कि पश्चिम की युवा-शक्ति ने सारी सीमाएं तोड़ दीं, सब नियम तोड़ दिए। और उस नियम के तोड़ने में वे यह भी भूल गए कि कुछ ऐसे नियम भी थे, जिनके बिना प्रेम जी ही नहीं सकता। कुछ ऐसे नियम भी थे, जो प्रेम को मार रहे थे; कुछ ऐसे नियम भी थे, जो प्रेम का आधार थे।

लेकिन जब नियम का विद्रोह शुरू हुआ, तो सभी नियम तोड़ दिए। उन सभी नियमों में एकांत, गोपनीयता का नियम भी टूट गया।
आज पश्चिम में प्रेम बीच बाजार में चल रहा है। उससे तृप्ति नहीं होती; उससे मन भरता नहीं, खिलता नहीं। प्रेम के कितने ही अनुभवों से लोग गुजर जाते हैं, प्रेम की प्यास नहीं बुझती। घाट-घाट का पानी पीते हैं, प्यास बुझती नहीं; कंठ और आग से भरता चला जाता है।
एक खतरा था ईसाइयत का कि प्रेम को करीब-करीब मार डाला। नियम इतने कस
गए कि फांसी लग गयी। अब दूसरा खतरा है कि नियम इतने तोड़ दिए कि आधार खो गए। पश्चिम से युवक-युवतियां मेरे पास आते हैं। उनकी बड़ी से बड़ी समस्या
यह है कि प्रेम का जीवन में अनुभव नहीं होता। यद्यपि प्रेम के बहुत अनुभव उन्हें होते हैं, जैसा कि पूरब में संभव नहीं। प्रत्येक स्त्री, प्रत्येक पुरुष न मालूम कितने पुरुषों और स्त्रियों के संपर्क में आता है, प्रेम में पड़ता है। पर शब्द थोथा मालूम पड़ता है। क्योंकि बीच बाजार में प्रेम को खड़ा कर दिया। उसकी गोपनीयता छिन्न-भिन्न हो गयी।
और जो प्रेम के साथ हुआ, वही श्रद्धा के साथ भी हुआ है।
कृष्ण ने अर्जुन को अत्यंत गोपनीय ढंग से ये बातें कहीं; क्योंकि अर्जुन चाहे संदेह भरा हो, फिर भी श्रद्धालु था। इसे भी तुम समझ लो। श्रद्धा का यह अर्थ नहीं है कि तुम्हारे भीतर संदेह सभी समाप्त हो जाएंगे। श्रद्धा का मतलब यही है कि संदेह के बावजूद भी तुम श्रद्धा करने को आतुर हो, तैयार हो। वह तुम्हारी भीतरी तैयारी है। अगर संदेह सब समाप्त ही हो गए हों, तब तो कृष्ण के कहने की भी कोई जरूरत नहीं है, तब तो बिन कहे ही संदेश पहुंच जाएगा, सुन लिया जाएगा। तब तो तुम्हारे भीतर का कृष्ण ही तुमसे बोलने लगेगा। बाहर के कृष्ण से सुनने तुम जाओगे क्यों?
श्रद्धा से इतना ही अर्थ है कि संदेह मन में है, लेकिन संदेह में श्रद्धा नहीं है। भीतर संदेह उठते हैं, लेकिन उनको सहारा नहीं है। वे उठते हैं पूर्व-संस्कारों के आधार से, आदत के कारण। बार-बार, अनंत-अनंत जीवनों में उन्हें सहारा दिया है; इसलिए वे एक तरह का बल रखते हैं; उठते हैं। लेकिन आज उनको सहारा देने की आकांक्षा नहीं रही है। अपने ही मन में उठते हैं, लेकिन फिर भी श्रद्धालु उनसे अपने को दूर रखता है, तटस्थ रखता है; उनके प्रति एक उपेक्षा रखता है।
मन तो उसका श्रद्धा करने का है, भाव तो श्रद्धा करने का है। अगर संदेह उठते हैं, तो वे उसे शत्रुओं जैसे मालूम होते हैं। उन्हें वह सींचता नहीं, जल नहीं देता, सहारा नहीं देता। उन्हें मिटाने को तत्पर है। हृदय उसका राजी है मिटाने को; कला खोज रहा है, कैसे उन्हें मिटाया जा सके।
संदेहों के बावजूद अपने हृदय को खोलने को कोई राजी है, ऐसे क्षण में ही, जो परम गोपनीय है, वह कहा जा सकता है।
उपनिषद कहे गए अत्यंत गोपनीयता में, गुरु और शिष्य के अत्यंत सामीप्य में, हार्दिक संबंधों में। वर्षों तक शिष्य गुरु के पास रहेगा, उस क्षण की प्रतीक्षा चलेगी, कब गुरु पुकारे। उस क्षण के लिए धीरज रखेगा, जब गुरु पाएगा योग्य कि अब गोपनीय तत्व कहे जा सकते हैं। तब तक गुरु की सेवा-टहल करेगा। गायों को चरा लाएगा जंगल में, लकड़ियां काटेगा, घास काटकर ले आएगा, पानी भरेगा। जो भी चलता है गुरुकुल में, उसमें सहयोगी होगा और प्रतीक्षा करेगा, कब बुला लिया जाए।
कथा है कि श्वेतकेतु बहुत दिन तक गुरु के पास रहा। वह जीवन का रहस्य जानना चाहता था; लेकिन शायद अभी तैयारी न थी। वर्षों बीत गए। बहुत कुछ उसे कहा गया, बहुत कुछ बताया गया, लेकिन परम गोपनीय न कहा गया। वह धीरज से प्रतीक्षा करता रहा।
कथा बड़ी मधुर है। कथा कहती है कि गुरु के गृह में जो हवन की अग्नि जलती थी, उस तक को दया आने लगी। अग्नि को दया! गुरु न पसीजा। लेकिन शिष्य के धैर्य को देखकर, जिस अग्नि को वह रोज-रोज जलाता था, ईंधन डालता था, हवन में गुरु की सहायता करता था, वह जो यज्ञ की वेदी थी, उसकी अग्नि को जो सतत जलती रहती थी, अहर्निश जलती रहती थी, उसको भी देख-देखकर करुणा आने लगी। बहुत हो गया। प्रतीक्षा की भी एक सीमा है।

गुरु बाहर गया था, तो कहते हैं, अग्नि ने श्वेतकेतु को कहा कि गुरु कठोर है, और अब तू राजी हो गया है, तैयार हो गया है, फिर भी नहीं कह रहा है; तो मैं ही तुझे कहे देती हूं।
कहते हैं, श्वेतकेतु ने कहा, धन्यवाद तुझे तेरी कृपा के लिए, तेरी करुणा के लिए। लेकिन प्रतीक्षा तो मुझे मेरे गुरु के लिए ही करनी होगी। उनसे ही लूंगा। तुझे दया आ गई, क्योंकि तुझे और बातों का पता न होगा जिनका गुरु को पता है। जरूर मेरी तैयारी में कहीं कोई कमी होगी, अन्यथा कोई कारण नहीं है। गुरु कठोर नहीं है। मेरी पात्रता अभी सम्हली नहीं। अभी मेरा पात्र कंपता होगा, अमृत को उंडेलने जैसा न होगा। उस कंपते पात्र से अमृत छलक जाए! या मेरे पात्र में छिद्र होंगे, कि अमृत उस पात्र से बह जाए! कि मेरा पात्र उलटा रखा होगा, कि गुरु उंडेले और मुझ में पहुंच ही न पाए! जरूर कहीं मुझ में ही भूल होगी। धन्यवाद, तेरे प्रेम और तेरी करुणा को! लेकिन प्रतीक्षा मुझे गुरु के लिए ही करनी होगी।
वर्षों प्रतीक्षा करता शिष्य। उस प्रतीक्षा में ही निकट आता।
धैर्य से ज्यादा निकट लाने वाला कोई तथ्य दुनिया में नहीं है। और जहां-जहां अधैर्य हो जाता है, वहीं-वहीं निकटता खो जाती है। जहां-जहां तुम जल्दी में होते हो, वहां तुम निकट नहीं हो पाते। निकटता समय मांगती है, अनंत समय मांगती है।
और जीवन के जितने गुह्य तत्व हैं, उनको जानने के लिए तो बहुत समय मांगती है। अगर प्रेम को जानना है, तो वर्षों लगेंगे; और अगर श्रद्धा को जानना है, तो जन्मों। अगर प्रार्थना सीखनी है, तो धैर्य की धातु ही में ही तो प्रार्थना ढलती है, धैर्य के ही पत्थर पर तो प्रतिमा बनती है प्रार्थना की।
अगर धैर्य से ही बच गए, तो प्रार्थना कभी न बनेगी। तब ऐसा ही होगा कि ऊपर-ऊपर से तुम चिपका लोगे प्रार्थना को, लेकिन उसकी जड़ें तुम्हारे हृदय में न होंगी। तुम्हारे जीवन से उस प्रार्थना का कोई संबंध न होगा। जा सकते हो तुम मंदिरों में, मस्जिदों में, प्रार्थनागृहों में। पूजा कर सकते हो, अर्चना कर सकते हो। सब ऊपर-ऊपर होगा। तुम्हारा भीतर अछूता रह जाएगा। और असली बात भीतर है। बाहर प्रार्थना उठे न उठे, बड़ी बात नहीं, भीतर हो जाए। श्रद्धा और समर्पण अत्यंत गोपनीय हैं; वे प्रेम से भी ज्यादा गोपनीय हैं। क्योंकि प्रेम में भी थोड़ी आकांक्षा, थोड़ी आशा, थोड़ी वासना रह ही जाती है।
इसे हम ऐसा समझें। एक तो कामवासना का जगत है, जहां तुम्हारे सभी संबंध वासना से ही भरे होते हैं। मित्रता बनाते हो, तो इसलिए कि कुछ पाना है। मित्रता गौण है, पाना महत्वपूर्ण; मित्रता साधन, पाना साध्य।
काम के संबंध चाहे कितने ही गहरे मालूम पड़ें, गहरे हो ही नहीं सकते। क्योंकि तुम जिससे जुड़ते हो, उससे जुड़ने का तो कोई सवाल नहीं है, उससे कुछ पाना है। वह पा लिया कि बात खतम हो गई। फिर उस व्यक्ति को तुम ऐसे ही फेंक देते हो, जैसे चलाई गई कारतूस बेकार हो जाती है और उसे तुम कचराघर में फेंक आते हो; फिर उसमें कुछ बचता नहीं है। आम चूस लिया, रस चला गया; खोल फेंक आते हो।
जब तक चूसा न था, तब तक आम को बड़ा सम्हालकर रखा था। जब तक कारतूस चली न थी, तब तक बड़ी हिफाजत थी। तब तक ऐसा लगता था, हीरे सम्हाल रहे हो। अब चल गई कारतूस, बात व्यर्थ हो गई।
तुम ऐसे ही भूल जाते हो व्यक्तियों को, जैसे कूड़ा-करकट हैं। उनके ऊपर
चढ़ गए, सीढ़ियां बना लीं, फिर उन्हें भूल गए।
राजनीति में, पद की दौड़ में, धन की दौड़ में व्यक्तियों का उपयोग साधन
की तरह होता है। राजनीतिज्ञ हाथ जोड़े खड़ा होता है एक मत के लिए, एक वोट के लिए। जब वह हाथ जोड़कर खड़ा होता है, तब ऐसा लगता है कि कितने भक्ति-भाव से, कितनी श्रद्धा से तुम्हारे द्वार आया है। उस क्षण शायद तुम सोचते हो कि तुमसे बड़ा आदमी कोई भी नहीं। देखो, प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति हाथ जोड़े खड़े हैं!
पद पर पहुंचते ही यह आदमी तुम्हें पहचानेगा भी नहीं। न केवल नहीं पहचानेगा, बल्कि इसके मन में पीड़ा की एक रेखा रहेगी कि कभी इस आदमी के

सामने हाथ जोड़कर खड़ा भी होना पड़ा था। यह इसका बदला भी लेगा। यह तुम्हें कभी क्षमा नहीं कर पाएगा। क्योंकि किन्हीं क्षणों में तुम्हारे सामने हाथ जोड़ने पड़े थे, वह याददाश्त काटेगी, चुभेगी कांटे की तरह।
इसलिए शक्ति की दौड़ में दौड़ने वाले लोगों के साथ जरा सोच-समझकर संबंध बनाना! क्योंकि जब वे सीढ़ियां चढ़ जाते हैं, तो सीढ़ियों को मिटाने में लग जाते हैं। क्योंकि जिस सीढ़ी से वे स्वयं चढ़े हैं, उससे खतरा है, दूसरा भी चढ़ सकता है। सीढ़ी तो निष्पक्ष होती है।
इसलिए सभी राजनीतिज्ञ जिन लोगों के सहारे पद पर पहुंचते हैं, उन्हीं
को मिटाने में लग जाते हैं। लगना ही पड़ेगा, वह सीधा नियम है। अन्यथा दूसरे चढ़े आ रहे हैं उन्हीं सीढ़ियों पर!
दुनिया का कोई राजनीतिज्ञ अपने निकटतम सहयोगियों को भी बहुत पास नहीं आने देता। खतरा है। फासले पर रखता है। फासला इतना होना चाहिए कि अगर वह पास आने की कोशिश करे, तो इसके पहले कि पास आए, रोका जा सके। दूरी बनाए रखनी चाहिए।
संसार में एक तरह के संबंध काम के संबंध हैं, जहां प्रयोजन है किसी और बात से। लेकिन तुम धोखा व्यक्तियों को देते हो कि प्रयोजन तुमसे है, जैसे नमस्कार हम तुम्हें कर रहे हैं।
तुम्हें नमस्कार कोई भी नहीं कर रहा है; तुम्हारे भीतर बिना चली हुई कारतूस है, वोट है। वह मिलते ही यह आदमी तुम्हें भूल जाएगा। भूल जाए, तो भी ठीक है। खतरा यह है कि यह तुम्हें कभी क्षमा भी न कर सकेगा। क्योंकि किसी असहाय क्षण में इसको तुम्हारे सामने हाथ जोड़ने पड़े थे। यह तुम्हें नीचा दिखाएगा; यह किसी दिन तुम्हें नीचा दिखाए बिना न मानेगा।
यह तो काम का जगत है। दूसरा एक संबंध है काम से थोड़ा उठा हुआ, उसे हम प्रेम का संबंध कहते हैं। काम के जगत में तो किसी तरह की कोई गोपनीयता नहीं होती, वह तो बाजार है, वह तो भीड़ है, संसार है।
दूसरा संबंध होता है प्रेम का। प्रेम का अर्थ है, अनेक न रहे, दो रहे। प्रेमी रहा, प्रेयसी रही। प्रेमी रहा, प्रेम-पात्र रहा। मां रही, बेटा रहा। पति-पत्नी रहे, दो रहे। दो मित्र रहे। अब संबंध काम का नहीं। अब दूसरा व्यक्ति अपनी निजता में मूल्यवान है। इसलिए नहीं कि वह तुम्हें कुछ दे सकता है। वह सीढ़ी नहीं है, वह साधन नहीं है, स्वयं साध्य है।
इमेनुएल कांट, जर्मनी के एक बहुत विचारशील व्यक्ति ने अपने सारे नीतिशास्त्र को इस नियम पर ही आधारित बनाया है। उसका कहना है, वहीं तक नीति है, जहां तक दूसरा व्यक्ति साध्य है; जहां साधन बना, अनीति शुरू हो गई।
यह बात महत्वपूर्ण है। किसी व्यक्ति का साधन की तरह उपयोग करना अनैतिक जीवन-आचरण है। और दूसरे व्यक्ति को साध्य की महत्ता देना नैतिक शिखर है।
दूसरा व्यक्ति स्वयं में महत्वपूर्ण है। किसी कारण से नहीं, कि उससे थोड़ा धन कमा लेंगे, कि पद पर पहुंच जाएंगे, कि उसको सीढ़ी बना लेंगे; नहीं। दूसरे व्यक्ति की उपयोगिता के कारण वह मूल्यवान नहीं है, यूटिलिटी के कारण मूल्यवान नहीं है। दूसरा व्यक्ति अपनी निजता के कारण मूल्यवान है। कोई भी उपयोग न हो... ।
समझो कि एक मां को बेटा है, वह उसे प्रेम करती है। इसलिए थोड़े ही कि बेटा कल धन कमाएगा। अगर इसलिए करती हो, तो मां-बेटे का संबंध ही समाप्त हो गया। तब तो यह संबंध बाजार का हो गया। अगर इसलिए प्रेम करती हो कि बेटा कल इज्जत कमाएगा और मुझे भी प्रतिष्ठा मिलेगी, तो बात खतम हो गई। अगर इसलिए प्रेम करती हो, तो प्रेम ही नहीं है।
जब तक तुम बता सको कि इसलिए हम प्रेम करते हैं, तब तक प्रेम होता ही नहीं। जहां इसलिए है, वहां कैसा प्रेम?
मां सिर्फ कहेगी कि पता नहीं क्यों! बस, प्रेम है। और यह लड़का साधु बने, तो भी प्रेम रहेगा; असाधु बने, तो भी प्रेम रहेगा; शायद थोड़ा ज्यादा ही, कि भटक गया। इसके लिए और भी करुणा जगेगी। यह अच्छा बन जाए, तब तो प्रेम रहेगा ही; सफल रहे, तब तो प्रेम रहेगा ही; असफल हो जाए, तो और भी कचोट लगेगी, और भी प्रेम जगेगा। यह जीवन में बहुत सुखी हो जाए, धन पा ले, तो मां प्रसन्न

होगी। यह दुखी हो जाए, पीड़ित हो, तो इससे और भी ज्यादा प्रेम का संबंध बना रहेगा।
नहीं, उपयोगिता का सवाल नहीं है। इसका यह अर्थ नहीं है कि लड़का उपयोगी
न होगा।
काम के संबंध में उपयोगिता पर दृष्टि है, व्यक्ति का कोई मूल्य नहीं।
प्रेम के संबंध में व्यक्ति का मूल्य है, उपयोगिता गौण है। सधेगी, ठीक।
नहीं सधेगी, ठीक।
बहुत सधती है; पर वह बात गौण है। जिसे तुम प्रेम करते हो, वह तुम्हारे हजार तरह से काम आता है, लेकिन वह बात गौण है। उस काम आने की वजह से तुम प्रेम नहीं करते। वह प्रेम की छाया होगी, लेकिन प्रेम का लक्ष्य नहीं है। वह प्रेम का परिणाम होगा, लेकिन प्रेम का फल नहीं है। उसके लिए ही तुमने प्रेम न किया था।
अगर मित्र असमय में काम आ गया, यह उसकी कृपा है। न काम आता, तो कोई शिकायत नहीं थी। उपयोगी सिद्ध हुआ, यह धन्यभाग है। न होता, तो इससे प्रेम में कोई जरा भी अंतर न पड़ता। उपयोगिता छाया की तरह है।
और तीसरा संबंध है प्रार्थना का। पहले में उपयोगिता लक्ष्य है। दूसरे में उपयोगिता छाया की तरह है, बाइ-प्रोडक्ट, किनारे-किनारे चलती है वह, सीधे प्रधान रास्ते पर उसकी कोई गति नहीं है, पास-पास चलती है। है वहां। न होती, तो भी चलता। लेकिन होती है। और तीसरा संबंध है प्रार्थना का, श्रद्धा का, समर्पण का। वहां उपयोगिता का सवाल ही नहीं है।
और जब तक तुम्हारे लिए उपयोगिता है, तब तक तुम गुरु के निकट न जा सकोगे। जब तक तुम किसी लाभ के लिए गुरु के पास जाते हो, तब तक तुम पास न जा सकोगे। जब पास जाना ही आनंद होता है, तभी तुम पास जा सकोगे। जब तक तुम कुछ पाने जाते हो, तब तक पास न जा सकोगे। क्योंकि तुम्हारे और गुरु के बीच जो तुम्हें पाना है, वह बीच में दीवार की तरह खड़ा रहेगा।
अगर तुम सत्य भी पाने गुरु के पास आए हो, तो सत्य भी दीवार की तरह खड़ा
हो जाएगा। मोक्ष पाने आए हो, मोक्ष दीवाल की तरह खड़ा हो जाएगा। तब तुम समझे ही नहीं।
गुरु के साथ जो संबंध है, वह अत्यंत निरुपयोगी संबंध है। वह संबंध इस संसार का है ही नहीं, जहां उपयोगिता का विस्तार है। वह लाभ और लोभ का संबंध नहीं है। वह संबंध अपने आप में ही साध्य है। पास होना ही आनंद है।
उपनिषद शब्द बड़ा प्यारा है। इस शब्द के दो अर्थ होते हैं। एक अर्थ होता है, पास होना, गुरु के पास होना, गुरु के निकट होना, गुरु के पास बैठना, सत्संग। और दूसरा अर्थ है उपनिषद का, गोपनीय; दूसरा अर्थ है, गुप्त, अत्यंत गोपनीय।
और दोनों अर्थ जुड़े हैं। क्योंकि उस अत्यंत निकटता में जहां कोई सिर्फ गुरु के पास होने आया है, अत्यंत गोपनीय का अपने आप आविर्भाव होता है। गुरु देता नहीं, शिष्य लेता नहीं। क्योंकि गुरु देने को उत्सुक हो, तो प्रयोजन आ गया। शिष्य लेने को उत्सुक हो, तो प्रयोजन आ गया। गुरु देता नहीं, शिष्य लेता नहीं; घटना घटती है।
इस जगत में सबसे चमत्कारपूर्ण घटना श्रद्धा का संबंध है, प्रार्थना
का संबंध है।
झेन फकीरों ने बड़ी मीठी बातें कही हैं। झेन फकीर बाशो ने एक छोटी-सी हाइकू, एक छोटी-सी कविता लिखी है। कविता यह है... ।
बाशो बैठा है एक दिन सरोवर के तट पर। झील शांत है। कोई लहर भी नहीं है।
सुबह का क्षण है। सूरज निकलता है। धीरे-धीरे प्रकाश बढ़ता जाता है। और बगुलों की एक कतार, शुभ्र, तीर की तरह जाती हुई झील के ऊपर से गुजरती है। झील में बगुलों की छाया बनती है, प्रतिबिंब बनता है। और बाशो ने एक कविता लिखी।
कविता का अर्थ यह है, झील के ऊपर उड़ते हुए बगुलों की कतार! न तो झील उत्सुक है प्रतिबिंब बनाने को और न बगुले उत्सुक हैं अपना प्रतिबिंब देखने को, पर प्रतिबिंब बनता है। न तो बगुले उत्सुक हैं कि देखें झुककर नीचे कि झील में प्रतिबिंब बनता है या नहीं। न झील आतुर है कि बगुले उड़ें और मैं प्रतिबिंब बनाऊं। पर प्रतिबिंब बनता है। न तो बगुलों के चित्त में

कोई वासना है, न झील के चित्त में कोई वासना है। बस, निकटता से ही प्रतिबिंब बन जाता है।
गुरु और शिष्य की निकटता में ही, वह जो अत्यंत गोपनीय है, वह संवादित
हो जाता है, उसका लेन-देन हो जाता है। न गुरु देना चाहता है, न शिष्य लेना चाहता है। घटना घटती है।
और वही परम घटना है, जब लेने वाला लेने को आतुर न था। क्योंकि जब तक लेने वाला लेने को आतुर है, तब तक मन में तनाव बना ही रहेगा; तब तक वह देखता ही रहेगा, भविष्य में झांकता ही रहेगा, कि कब मिले, कब मिले! इतनी देर और हो गई, अब तक मिला नहीं! कहीं मैं अपने को धोखा तो नहीं दे रहा हूं! कहीं गलत आदमी के पास तो नहीं पहुंच गया! कहीं और जाऊं; किसी और के पास तलाशूं। कोई और द्वार खटखटाऊं।
नहीं, तब तो तुम गुरु के पास हो ही न पाओगे; क्योंकि तुम्हारा चित्त भविष्य में होगा, जो है ही नहीं। तुम तो गुरु के पास तब ही हो पाओगे, जब मन में कोई फलाकांक्षा नहीं है, कहीं जाने को नहीं है, कुछ होने को नहीं है। तुम बस हो। मंजिल आ गई।
और उसी क्षण में गुरु भी अनायास तुम्हारे भीतर बहना शुरू हो जाएगा। इसलिए नहीं कि वह बहना चाहता है। नहीं, तब कुछ रुकावट नहीं है, इसलिए बहेगा। जैसे झरने के ऊपर पत्थर रखा हो; झरना नहीं बहता। पत्थर हट जाए; झरना बहता है। कोई इसलिए नहीं कि बहना चाहता है। बहना स्वभाव है।
जो व्यक्ति सत्य को पा लिया है, सत्य उससे बहना चाहता है। उसकी आकांक्षा नहीं कि सत्य बहे। उससे सत्य वैसे ही बहता है, जैसे फूल से गंध बहती है; दीए से प्रकाश बहता है; नदियां सागर की तरफ बहती हैं। ऐसा ही स्वाभाविक है।
कोई मन नहीं है बहने का। बस, बहना घटता है। और जहां भी कोई हृदय लेने
को राजी हो जाता है--लेने को राजी का अर्थ ही यही है कि जहां लेने का सवाल ही मिट जाता है, जहां तत्परता आ जाती है, पात्रता आ जाती है--बस वहीं घट जाता है।
इसलिए कृष्ण इसे अति गोपनीय कहते हैं। यह प्रेम से भी ज्यादा गोपनीय क्षण में घटता है, श्रद्धा के क्षण में घटता है।
और दूसरी बात; इसे गोपनीय कहने का कारण यह है कि खतरा है इसमें। अपात्र को दे दिया जाए, तो बड़े खतरे हैं। सत्य से ज्यादा खतरनाक तलवार नहीं है। और वह दुधारी तलवार है। और तुम अगर तैयार नहीं हो, तो तुम उससे अपने को नुकसान कर लोगे, दूसरे को नुकसान कर दोगे।
यह सुनकर तुम्हें हैरानी होगी, लेकिन मैं इसे कह देना चाहता हूं, असत्य खतरनाक है ही नहीं। वह तो निर्जीव है, उसमें खतरा भी क्या हो सकता है! उसमें प्राण ही नहीं हैं। वह तो मुरदा है। उसके पास टांगें ही नहीं हैं चलने को। असत्य को भी चलना हो, तो सत्य की टांगें उधार मांगनी पड़ती हैं। इसलिए तो असत्य बोलने वाला पूरी कोशिश करता है कि मैं असत्य नहीं बोल रहा हूं, सत्य बोल रहा हूं। और तुम्हें अगर भरोसा आ जाए कि यह सत्य बोल रहा है, तो ही उसका असत्य काम कर पाता है।
असत्य इतना निर्जीव है, इतना निर्वीर्य है, उससे ज्यादा नपुंसक तुम कोई और चीज न खोज पाओगे। अगर उसको चलना भी हो दो कदम, तो सत्य का धोखा हो जाए, तो ही चल सकता है। नहीं तो नहीं चल सकता है।
असत्य से कोई बड़े खतरे नहीं होते दुनिया में। इसलिए असत्य तो तुम्हें जिससे कहना हो, कह देना। लेकिन सत्य बड़ी प्रगाढ़ तेजस्वी ऊर्जा है। वह ऐसी धार है कि अगर गलत हाथ में पड़ जाए, तो या तो खुद को काट लेगा वह, या दूसरों को काट देगा। छोटे बच्चे के हाथ में जैसे दे दी हो तलवार, चमकती तलवार; वह खिलौना समझ लेगा।
सत्य गोपनीय है। उसी को देना है, जो उसे झेल सके। उसी को देना है, जिसके जीवन में हानि न हो जाए। उसी को देना है, जो सत्य से सुरक्षित होगा, सत्य से असुरक्षा में न हो जाएगा। जो सत्य से महाजीवन को पाने चलेगा, सत्य जिसके लिए आत्मघात न बन जाएगा। इसलिए भी परम सत्यों को गोपनीय कहा गया है।
वे तभी देने हैं, जब तुम तैयार हो जाओ; उसके पहले खतरा है।

सभी सत्य को पाना चाहते हैं, बिना यह जाने कि तुम जिसे पाना चाहते हो, तुम उसे सम्हाल सकोगे? तुम्हारी आंखों से तुम उस महासूर्य को देख सकोगे? आंखें अंधी तो न हो जाएंगी?
अगर तुम्हारी आंखें दीए को ही देखने के योग्य हैं, तो महासूर्य को देखने की कोशिश मत करना। आंखें फूट जाएंगी। फिर दीया भी दिखाई न पड़ेगा। क्रम-क्रम से जाना होगा। दीए के साथ अभ्यास करना होगा। धीरे-धीरे यात्रा करनी होगी। एक दिन तुम भी महासूर्य के साथ आंखें मिलाने को राजी हो जाओगे। और जिस दिन कोई महासूर्य के साथ आंखें मिलाने को राजी हो जाता है, उस दिन महाक्रांति घटित होती है। तुम्हारे भीतर सब बदल जाता है। लेकिन उस क्षण की तैयारी है।
इसलिए भी सत्य गोपनीय है। वह हर किसी को कह देने योग्य नहीं है। ज्ञानियों ने शास्त्र भी लिखे हैं, तो इस ढंग से लिखे हैं कि हर कोई उसे पढ़ ले, तो समझ नहीं पाएगा। तलवारें छिपा दी हैं। ज्यादा से ज्यादा तुम म्यान को छू पाओगे। तलवार तक तुम्हारी पहुंच न हो पाएगी। म्यान से कोई खतरा नहीं है।
शास्त्र इस ढंग से लिखे गए हैं कि ज्यादा से ज्यादा तुम शब्द को छू पाओगे; शब्द यानी म्यान। शब्द के भीतर छिपा हुआ अर्थ तो तुम्हारे लिए गूढ़ ही रह जाएगा। सत्य इस भांति छिपाया गया है कि तुम यह समझोगे कि म्यान ही तलवार है।
इसीलिए तो तुम शास्त्र को पूजते हो। वह म्यान को पूज रहे हो। तलवार का
तो तुम्हें पता ही नहीं है। शब्दों में छिपाई है। शब्दों में इस भांति छिपाया है, आच्छादित किया है कि जो जानता है, वही उघाड़कर बता सकेगा।
और वह तभी बताएगा, जब देखेगा कि तुम तैयार हो गए हो। वह तुम्हारी हजार तरह से परीक्षाएं ले लेगा, कसौटियां कस लेगा। वह हजार मौकों पर तुम्हारी जांच कर लेगा, कि तुम तैयार हो गए हो; आंख राजी है। तुम्हारी आंख की तेजस्विता कहने लगेगी कि हां, अब तुम्हारी आंखें खुद ही छोटे सूर्य बन गई हैं। अब तुम मिल सकते हो; महासूर्य से मिलन हो सकता है। वह छोटे-छोटे सत्य तुम्हें देगा, और देखेगा, तुम क्या करते हो।
ऐसा हुआ कि विवेकानंद रामकृष्ण के पास आए, तो रामकृष्ण ने उन्हें ध्यान की कोई विधि दी।
रामकृष्ण के आश्रम में एक आदमी था, एक बहुत सीधा आदमी था, कालू उसका नाम था। वह बड़ा सरल चित्त था। उसका छोटा-सा कमरा था जिसमें वह रहता आश्रम में। और उस कमरे में नहीं तो तीन सौ देवी-देवता उसने रख छोड़े थे। खुद के लिए जगह ही न बची थी। बच भी नहीं सकती। जब देवी-देवताओं को बुलाओ, तो खुद तो जगह खाली करनी पड़ती है। वह बामुश्किल किसी तरह सोने लायक जगह थी।
और उसका दिनभर उसी में बीत जाता था। छः-छः घंटे लग जाते थे। क्योंकि
अब सभी को मनाना। तीन सौ देवी-देवता! पूजा करो। और वह बड़े भाव से करता। वह ऐसा जल्दी नहीं करता था कि एक आरती ली, एक कोने से दूसरे तक उतार दी; घंटी सबके लिए इकट्ठी सामूहिक रूप से बजा दी; फूल सब पर बरसा दिए। ऐसा नहीं था। एक-एक को, एक-एक की निजता में पूजता था। इससे दिन-दिनभर बीत जाता था। विवेकानंद को यह बात कभी जंची नहीं। वे तर्कनिष्ठ आदमी थे। वे हमेशा कालू को कहते, तू यह क्या पागलपन कर रहा है! पत्थरों के सामने सिर फोड़ रहा है! और दिनभर खराब कर रहा है। लेकिन कालू उनकी सुनता न। वह अपने काम में लगा रहता। वह आनंदित था; वह प्रसन्न था।
एक दिन विवेकानंद को ध्यान लग गया; पहली दफा ध्यान लगा। तलवार हाथ में आई। तो ध्यान लगते ही जो उनको याद आई, वह बड़ी हैरानी की है। उनको यह याद आई कि अब मेरे पास थोड़ी शक्ति है; चाहूं तो कालू को रास्ते पर लगा सकता हूं। अब कालू से कुछ लेना-देना नहीं था। वह बेचारा अपने कमरे में अपना ध्यान कर रहा था। लेकिन विवेकानंद का ध्यान लगा; थोड़ी-सी शक्ति का जागरण हुआ; और ऐसा लगा उस क्षण में कि अगर मैं इस समय कालू को कह दूं कि कालू, बांध सारे देवी-देवताओं को एक पोटली में और फेंक आ गंगा में, तो वह जरूर फेंक आएगा। इस समय मेरे शब्द में बल है।

उत्सुकता जगी करने की। वहीं बैठे-बैठे मन में ही कहा कि कालू, उठ। क्या कर रहा है यह सब? बांध सब देवी-देवताओं को एक पोटली में और फेंक आ गंगा में!
सीधा-साधा कालू, उसके अंतर्तम में यह आवाज पहुंच गई। उसने बांधा एक पोटली में सब देवी-देवताओं को। आंसू गिरते जाते हैं। लेकिन करे भी क्या; उसे कुछ समझ में भी नहीं आ रहा है। उसे ऐसा लग रहा है कि उसको ही ऐसा बोध हुआ है कि इन सबको फेंक आना है। शायद इन्हीं ने यह आवाज दी है। उसे कुछ पता नहीं कि क्या हो रहा है!
वह बांधकर सब देवी-देवताओं को रोता हुआ गंगा की तरफ जा रहा है। रामकृष्ण स्नान करके लौटते हैं। उन्होंने कालू को कहा, तू रुक; एक-दो मिनट रुक। जल्दी मत कर। कालू ने कहा, भीतर से पुकार आई है परमहंसदेव कि सब देवी- देवताओं को गंगा में डाल दो! रामकृष्ण ने कहा, रुक, भीतर से कोई आवाज नहीं आई है। मेरे पीछे आ।
द्वार खटखटाया; विवेकानंद दरवाजा बंद किए अंदर थे। द्वार खोला। रामकृष्ण ने कहा कि यह चाबी जो तुझे दी थी, मैं वापस लिए लेता हूं। तू तो ध्यान का दुरुपयोग करने लगा पहले ही दिन से। तुझे ध्यान मिला है, इससे दूसरों के ध्यान को बढ़ाना, कि तू दूसरों का ध्यान मिटाने लगा! इससे दूसरों की श्रद्धा को थिर करना, कि तू दूसरों की श्रद्धा को अथिर करने लगा! और तुझे ध्यान मिला है, उसकी तू भीतर नई से नई कीमिया बना; हर ध्यान को और ऊंचे उठने के लिए सहारा बना। उसका तू उपयोग कर रहा है व्यर्थ! और कालू की मूर्तियों को अगर गंगा में भी फिंकवा दिया, तो इससे तुझे क्या होगा? कालू का कुछ खो जाएगा, तुझे कुछ भी न मिलेगा। और ध्यान रख, जब भी किसी के खोने में हम सहारा देते हैं, तो एक न एक दिन हम उसका फल भोगेंगे; हमारा भी कुछ खो जाएगा।
यही तो कर्म की सारी की सारी सिद्धांत की मूल शिला है, कि अगर तुम पाना चाहते हो अपने जीवन में आनंद, तो दूसरों के आनंद के लिए सीढ़ियां बनाना। अगर तुम पाना चाहते हो दुख, तो दूसरों के रास्ते पर कांटे बो आना। रामकृष्ण ने कहा कि नहीं, तू योग्य नहीं है। यह चाबी मैं रखे लेता हूं। यह जब तू मरेगा, उसके ठीक तीन दिन पहले मैं तुझे वापस लौटाऊंगा।
और विवेकानंद जीवनभर तड़पे, फिर वैसे ध्यान की झलक न आई, फिर वैसे ध्यान की वर्षा न हुई। तड़पे, बहुत उपाय किए; सब चेष्टाएं कीं; चेष्टा में कुछ कमी न की। विवेकानंद बलशाली व्यक्ति थे, महाबलशाली व्यक्ति थे। लेकिन ध्यान बल से थोड़े ही पाया जाता है। ध्यान कोई बलात्कार थोड़े ही
है कि तुम जबरदस्ती कर दो। वह गुरु-प्रसाद है। वह अनायास मिलता है। वह तुम्हारी पात्रता से मिलता है, तुम्हारे बल से नहीं। वह तुम्हारी विनम्रता से मिलता है, तुम्हारे आक्रमण से नहीं।
तुम परमात्मा के घर पर हमलावर की तरह न जा सकोगे। और अगर हमलावर की तरह गए, तो तुम किसी और द्वार पर ही पहुंचोगे; परमात्मा के द्वार पर नहीं पहुंच सकते। फिर कितना ही खटखटाते रहो, तुम दीवार खटखटा रहे हो, द्वार वहां है ही नहीं।
मैंने सुना है कि एक सेल्समैन एक मकान के सामने आया; एक बच्चा झाड़ के नीचे खेल रहा था। उसने पूछा कि बेटा, तेरी मम्मी घर के भीतर हैं? उसने कहा, हां हैं। वह गया, द्वार खटखटाने लगा। बड़ी देर हो गई, कोई आवाज नहीं भीतर से। कोई है भी, ऐसा भी पता नहीं चलता! थक गया।
उसने लौटकर फिर कहा कि बेटा, तू तो कहता था कि घर में मां है और मैं खटखटा-खटखटाकर हैरान हो गया; कोई जवाब नहीं देता। उस बेटे ने कहा, वे तो हैं; लेकिन यह घर मेरा नहीं। यह तो खंडहर है; इसमें कोई रहता ही नहीं। खटखटाने से ही कुछ न होगा। गलत घर के सामने खटखटाते रहो। ठीक घर! पर ठीक घर बिना गुरु के इशारे के कैसे मिलेगा?
वह चाबी रख ली गई। विवेकानंद ने बहुत चेष्टा की। और स्वाभिमानी व्यक्ति थे। और गुरु के साथ भी स्वाभिमान स्वाभिमानी व्यक्ति नहीं खो पाता। वह बना ही रहता है। योग्य थे; सब तरह की चेष्टा की। और सोचा कि जब एक दफा मुझे लग गई है झलक, तो अब क्यों न लगेगी! और चाबी कोई कैसे रख लेगा? और

क्या मतलब चाबी का? तर्कनिष्ठ आदमी थे; विचार करते थे। सब सोच-समझकर उन्होंने कहा कि मैं कोशिश करता ही रहूंगा, कभी फिर घटेगा।
पर वह घटी थी बात प्रसाद से। इसलिए तो चाबी रख ली गई। फिर जिंदगीभर नहीं घटी। विवेकानंद बहुत तड़पे, बहुत रोए।
लेकिन मरने के तीन दिन पहले ध्यान लग गया। रामकृष्ण तो जा चुके थे तब तक। लेकिन ऐसे व्यक्ति जाते नहीं। ठीक तीन दिन पहले चाबी वापस उपलब्ध हो गई। जो जीवनभर चेष्टा से नहीं हुआ, वह मरने के तीन दिन पहले अनायास हो गया। क्या घटना है! अति गोपनीय है। खतरा है। अगर जरा से भी गैर-तैयार हाथों में पड़ जाए वह गुप्त ज्ञान, तो नुकसान हो सकता है। और अज्ञानी का मन बड़ा कुतूहली होता है। जरा भी कुछ हाथ में लगे, तो वह उसका प्रयोग करके देखना चाहता है।

दूसरा प्रश्नः क्या समर्पण और संबोधि युगपत घटनाएं हैं? यदि हां, तो फिर समर्पित शिष्य को भी वर्षों-वर्षों साधना से गुजरना पड़े, तो यह क्या दर्शित करता है?

समर्पण और संबोधि युगपत घटनाएं हैं। जिसे तुम समर्पण कहते हो, वह केवल समर्पण का रिहर्सल है, पूर्व-तैयारी है, समर्पण है नहीं।
तुम कर भी कैसे सकते हो समर्पण एकदम से! पहले तैयारी तो करनी पड़ेगी।
आए और समर्पण कर दिया, इतना आसान है? समर्पण भी तो सीखना पड़ेगा। इंच-इंच चलना होगा। इंच-इंच खुद के अहंकार को काटना होगा, तभी समर्पण होगा।
तुम करते हो बातें, क्योंकि समर्पण शब्द तो कोई भी उपयोग कर सकता है।
अभी चार दिन पहले एक मित्र आए। वे कहने लगे देखकर, और सांझ को जो लोग मेरे पास आए थे, किसी को ध्यान की कोई तकलीफ थी, किसी को कोई ध्यान ठीक लग रहा था, किसी को गहरा लग रहा था, किसी को कोई परिणाम हो रहे थे; सब सुनकर वे चौंके। वे मुझसे कहने लगे, लेकिन यह मुझे कुछ नहीं करना है। मेरा तो समर्पण आपकी तरफ है, बस आपके आशीर्वाद से हो जाए।
अब सवाल यह है कि समर्पण कहीं बचाव तो नहीं है? मुझे कुछ नहीं करना है। कहीं समर्पण तुम्हारे आलस्य का ही अच्छा नाम तो नहीं है? कहीं समर्पण का मतलब इतना तो नहीं है कि हमें करना ही नहीं है; अगर हां, कोई कर दे, तो ठीक। देख लेंगे, जंचेगा तो ले लेंगे। नहीं जंचेगा, तो अपने घर जाएंगे! समर्पण का मतलब यह तो नहीं है कि तुम तैयार ही नहीं हो, कुछ भी करने को तैयार नहीं हो! मुफ्त पाना चाहते हो, कहीं समर्पण की यह आशा तो नहीं है! कि आपके आशीर्वाद से मिल जाए।
पर आशीर्वाद भी तो पाना होगा। आशीर्वाद भी तो अगर मैं देना चाहूं, तो अकेला नहीं दे सकता, तुम्हें लेना होगा। आशीर्वाद के लिए भी तो तुम्हें हृदय को खोलना होगा।
तुम कहते हो, और कुछ मैं नहीं करना चाहता। यह हृदय खोलना, शांति लाना, ध्यान लगाना, समाधिस्थ होना, इस सब में मुझे मत उलझाओ आप। आप तो बस आशीर्वाद दे दो।
तुम मुफ्त खोज में निकले हो। तुम समर्पण, गलत शब्द उपयोग कर रहे हो।
अच्छा होता, तुम सीधा ही कहते कि मैं कुछ करना नहीं चाहता; परमात्मा अगर मुफ्त मिलता हो, तो मैं सोच सकता हूं। परमात्मा तुम्हारी जीवन-वासना की लिस्ट पर आखिरी है।
यही आदमी धन खोजने जाता है, तो मुझसे नहीं कहता कि मैं कुछ न करूंगा।
बस आपके आशीर्वाद से हो जाए, तो ठीक, नहीं तो भाड़ में जाए।
नहीं, जब यह धन खोजने जाता है, तो यह पूरी चेष्टा करता है। पूरी चेष्टा करता है, हो सकता है, आशीर्वाद भी मांगता हो, लेकिन आशीर्वाद के कारण चेष्टा नहीं छोड़ता है। आशीर्वाद को भी एक सहारा बना लेता है, लेकिन बाकी चेष्टा जारी रखता है।
लेकिन जब परमात्मा को खोजने आता है, तो कहता है, बस आपके आशीर्वाद से
हो जाए!

शब्द बड़े मधुर लगते हैं; काव्यपूर्ण मालूम लगते हैं; और ऐसा लगता है, आदमी कितना भावुक है। कैसा भावुक है, कैसा श्रद्धालु है, कुछ नहीं करना चाहता।
लेकिन यह आदमी अपने को धोखा दे रहा है। समर्पण भी तो बहुत बड़ी घटना है। वह भी करनी पड़ती है। उसमें तुम्हारा साथ तो चाहिए। क्योंकि अंततः तो घटना तुम्हारे भीतर घटनी है। तुम्हें झुकना होगा, मिटना होगा।
तो पहली तो बात यह है कि जिसे तुम समर्पण कहते हो, वह समर्पण होता नहीं। इसका यह मतलब नहीं है कि वह किसी काम का नहीं है। वह काम का है। उसे कर-करके ही तो तुम असली समर्पण को उपलब्ध होओगे। भूल-भूलकर ही तो ठीक रास्ता सूझेगा। कई बार गलत ढंग से करोगे, तभी तो अकल आएगी कि कुछ होता नहीं। तो ठीक की सूझ आएगी।
समर्पण हजार बार करोगे, तब कहीं आखिरी में सफल हो पाएगा, एक हजार एकवीं बार।
तो तुम जो पूछते हो कि क्या समर्पण और संबोधि युगपत घटनाएं हैं?
निश्चित ही; जिस दिन समर्पण घटता है, उसी दिन आशीर्वाद भी बरस जाता है, संबोधि भी बरस जाती है। जिस दिन समर्पण हो जाता है, फिर क्षणभर की भी देर नहीं लगती परमात्मा के मिलन में। क्योंकि देर का कोई कारण नहीं रहा। बात ही खतम हो गई। समर्पण ही तो एकमात्र जरूरत थी, वह पूरी हो गई; अब देर किसलिए!
और कोई ऐसा थोड़े ही है कि परमात्मा किसी काम में उलझा है। तो तुम समर्पण करके बैठ गए, लेकिन अभी वह जरा उलझा है। जब वक्त होगा, तब आएगा। और ऐसा थोड़े ही है कि क्यू लगा है उसके द्वार पर कि जब तुम्हारा नंबर आएगा, माना कि तुमने समर्पण कर दिया, लेकिन जब तुम्हारा नंबर आएगा। न तो वहां कोई क्यू लगा है... ।
परमात्मा से प्रत्येक का संबंध निजी है। तुम्हारे और परमात्मा के बीच कोई भी नहीं है सिवाय तुम्हारे। तुम हट जाओ बीच से और मिलन हो जाता है। तुम्हारे अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं है, अवरोध नहीं है।
यहां समर्पण, वहां संबोधि। एक क्षण का भी फासला नहीं हो सकता। युगपत
का अर्थ यही होता है। इधर जला दीया, उधर अंधेरा समाप्त। ऐसा नहीं कि तुमने जला लिया दीया, अब अंधेरा सोच रहा है कि समाप्त होएं कि न होएं! कि अंधेरा कह रहा है कि अभी बहुत अंधेरी रात है, अभी कहां बाहर जाएं! अभी थोड़ा आराम कर लें! कि अंधेरा कहता है कि अभी थके-मांदे हैं, अभी न जाएंगे; जलने दो दीए को! कि अंधेरा कहता है, हजारों साल से यहां रह रहे हैं। ऐसे तुमने जला लिया दीया और हम चले गए! इतना आसान है क्या? कोर्ट-कचहरी करनी पड़ेगी, गुंडे लाने पड़ेंगे, तब निकलेंगे। और इतने दिन से यहां रहते-रहते मालिक हो गए हैं। नहीं, अंधेरा यह कुछ बातें कहता ही नहीं। इधर जला दीया, उधर तुमने पाया कि अंधेरा नहीं है। जलते ही दीए के अंधेरा नहीं पाया जाता है।
ऐसे ही समर्पण और संबोधि, वे एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इधर समर्पण, उधर संबोधि।
और यदि समर्पित शिष्य को भी वर्षों-वर्षों साधना से गुजरना पड़े, तो यह क्या दर्शित करता है?
समर्पण अभी हुआ नहीं। और अहंकार बड़ा सूक्ष्म है। वह समर्पण के खेल भी खेलता है। वह कहता है कि मैं वर्षों से समर्पित शिष्य हूं।
वर्षों का कोई हिसाब है? समर्पण में तो क्षण का हिसाब है। वर्षों का
तो मतलब ही यह है कि कुछ न कुछ गलत कर रहे हो, नहीं तो कभी का घट गया होता। एडीसन एक प्रयोग कर रहा था। एडीसन ने दुनिया में सबसे ज्यादा आविष्कार किए हैं, एक हजार आविष्कार किए हैं। तुम्हारी जिंदगी में जो छोटी-मोटी चीजें तुम देखते हो, वे सब एडीसन की हैं--रेडियो, बिजली, टेलीफोन। उस आदमी ने आदमी को सब तरफ से घेर दिया आविष्कारों से।
वह एक आविष्कार बीस सालों से कर रहा था। टेलीफोन की खोज में लगा था। फिर वह पूरा हो गया। जिस दिन पूरा हुआ, उस दिन आधे घंटे में पूरा हुआ। उसके एक विद्यार्थी ने पूछा कि मेरे मन में एक सवाल उठा है। वह सवाल
यह है कि आप बीस साल से इस प्रयोग को कर रहे हैं। तो बीस साल धन आधा घंटा,

यह जो आधा घंटे में आज हल हो गया, ऐसा हम मानें? कि आधा घंटे में यह हल हो गया, ऐसा हम मानें?
एडीसन ने कहा कि अब मेरे बाद कोई भी इसको तैयार करना चाहे, तो आधा घंटा लगेगा। इसलिए आधे घंटे में ही बना है। बीस साल मैं गलत दरवाजों पर दस्तक देता रहा।
यह बात समझने जैसी है। साधारणतः तो हम कहेंगे, यह खोज बीस साल में पूरी हुई। लेकिन एडीसन बड़ी ही सूझ का आदमी था। उसने कहा कि अगर बीस साल में यह खोज पूरी हुई, तो फिर मेरे बाद कोई भी इसको बनाएगा, उसको फिर बीस साल लगने चाहिए। उसको नहीं लगेंगे; क्योंकि अब दरवाजा पता है। दूसरा आदमी सीधा जाएगा, दरवाजे पर दस्तक देगा, भीतर हो जाएगा। आधे घंटे में प्रयोग पूरा हो जाएगा।
मुझे दरवाजा पता नहीं था। मैं पहला आदमी था। तो मैं दूसरों के घरों पर दस्तक देता रहा। वहां कोई दरवाजा था नहीं, जो खुलता। खुले भी दरवाजे, तो व्यर्थ थे, कुछ हल न हुआ। प्रयोग तो आधा घंटे में ही हुआ है। बीस साल ठीक जगह चोट करना खोजने में लग गए।
बुद्ध को ज्ञान हुआ। वह ज्ञान तो एक क्षण में हुआ है। छः साल गलत जगहों पर चोट करने में लग गए। महावीर को जो ज्ञान हुआ है, वह तो क्षण में हुआ है। बारह साल गलत जगह पर चोट करने में लग गए।
जैसे तुम एक पहेली हल कर रहे हो, दिनभर लग गया और हल नहीं हो रहा है। और फिर तुमने चाय पी और तुम बगीचे में टहलने चले गए। और अचानक सूझ आ गई; लौटकर आए, पहेली हल हो गई। यह जो सूझ जितनी देर में घटी है, उतनी ही देर में पहेली हल हुई है। बाकी दिन तुम गलत कुंजियों का सहारा लेते रहे।
सत्य तो क्षणभर में मिल जाता है, युगपत है। असत्य की बड़ी भारीशृंखला है। उस असत्य कीशृंखला को पार करने में समय लगता होगा; सत्य को पाने में समय नहीं लगता। इसीलिए तो हमने सत्य को कालातीत कहा है, जो समय में पाया ही नहीं जाता, समय के बाहर है।
जो समय के बाहर है, उसको बीस साल में कैसे पाओगे? बीस लाख साल में कैसे पाओगे? वह समय के भीतर ही नहीं है। लेकिन समय के भीतर बहुत कुछ है, जिससे तुम्हें गुजरना पड़ेगा।
ऐसा समझो कि तुमने बहुत-से वस्त्र पहन रखे हैं। तुम कपड़े उतारते हो, उतारते हो, उतारते हो। उतारने में एक घंटा लग जाता है, तब तुम नग्न हो पाते हो। नग्न होने में घंटाभर लगता है? कपड़ों की पर्तें कितनी हैं, इस पर निर्भर करता है। अगर एक आदमी एक ही कपड़ा पहने हुए है, तो एक क्षण में उतर जाता है। और एक आदमी चादर ओढ़कर बैठा हुआ है; ऐसा फेंक दे और नग्न खड़ा हो जाता है। नग्न होने में तो क्षणभर भी नहीं लगता, लेकिन कितनी कपड़ों की पर्तें तुम्हारे ऊपर हैं, उनको उतारने का सवाल है।
कितनी अहंकार की पर्तें तुम्हारे ऊपर हैं, उनको उतारने का सवाल है। समर्पण तो क्षणभर में हो जाता है।
तो अगर वर्षों से कोई सोचता हो कि वह समर्पित शिष्य है, तो सोचने में भूल है। समर्पण की तलाश करता होगा, समर्पण का खोजी होगा। समर्पित अभी नहीं है। अन्यथा घटना घट गई होती। और ये जो इस तरह के प्रश्न उठते हैं, ये प्रश्न भी थोड़े सोचने जैसे हैं।
यदि हां, तो फिर समर्पित शिष्य को भी वर्षों-वर्षों साधना से गुजरना पड़े, तो यह क्या दर्शित करता है? यह दर्शित करता है अधैर्य। यह दर्शित करता है कि तुम प्रतीक्षा करने को बिल्कुल भी तैयार नहीं हो।
यह दर्शित करता है तुम्हारी छोटी बुद्धि। सत्य को भी तुम पा लेना चाहते हो, क्योंकि वर्षों-वर्षों से तुम साधना कर रहे हो!
क्या साधना कर रहे हो?
तुम कुछ ऐसा अनुभव करने लगते हो, थोड़े दिन अगर तुम खाली बैठकर ध्यान
कर लिए या नमोकार का जाप कर लिए या ओंकार का जाप कर लिए या अल्लाह-अल्लाह जप लिए, तो तुम सोचने लगते हो, कुछ परमात्मा पर तुमने अनुग्रह किया! तुम अपनी फाइल में लिखने लगते हो कि देखो, इतनी दफा नाम जप चुका, करोड़ दफा राम का नाम ले लिया, अभी तक नहीं आए? तुम्हारे भीतर शिकायत खड़ी होने लगती है।

तुम कर क्या रहे हो? तुम्हारे करने से उसके आने का क्या संबंध है? तुम्हारे मिटने से उसका आना होता है। यह करना तो तुम्हें भर रहा है। एक करोड़ दफा नाम ले लिए, दस करोड़ दफा नाम ले लिए। हजार उपवास कर लिए। रोज ध्यान कर रहे हैं सुबह-शाम। कितना समय गंवा दिया ध्यान में! प्रार्थना करते हैं, पूजा करते हैं। अभी तक नहीं हुआ!
यह जो अभी तक नहीं हुआ, यही नहीं होने दे रहा है। यह जो अभी तक नहीं हुआ
का विचार है, यही कांटे की तरह तुम्हारे प्राणों में चुभा है।
इसे भी छोड़ो। कहो कि जब तेरी मर्जी। जैसी तेरी मर्जी! कभी भी न होगा,
तो भी हम प्रसन्न हैं। क्योंकि अगर यही तेरी मर्जी है, तो यही हमारा होना है। हम तेरी मर्जी से अपने को अलग नहीं रखते।
यही तो कृष्ण की पूरी शिक्षा है गीता में कि तुम अपने कर्तापन को छोड़
दो और उसको कह दो कि जो तू करवाए। अगर तुझे संसार में रखना है, तो जरूर यही हितकर होगा। अगर तुझे ध्यान नहीं होने देना है, तो यही हितकर होगा। अगर तू रुकावट डाल रहा है--ऐसा तुम्हें लगता है--तो ठीक; हम तेरी रुकावट से राजी हैं। तू रात दे तो रात, तू दिन दे तो दिन, अंधेरा लाए तो अंधेरा, प्रकाश लाए तो प्रकाश। तेरे हाथ से छूकर जो अंधेरा भी आता है, वह हमारे लिए प्रकाश है। जिस दिन ऐसी भाव-दशा होती है, उस दिन समर्पण। फिर देर नहीं लगती है।
जब तक तुम देख रहे हो किनारे से आंख खोल-खोलकर; ध्यान-व्यान नहीं कर रहे हो। बीच-बीच में आंख खोलकर देख लेते हो; भगवान आया, नहीं आया! फिर आंख बंद करके बैठ गए। फिर दो-चार माला के गुरिए फेरे; फिर जरा आंख खोली, अभी तक न भगवान आया, न पोस्टमैन आया कि कुछ खबर लाता। तार ही भेज देता कि कब आते हैं! फिर आंख बंद कर ली।
तुम बच्चों का खेल कर रहे हो। ऐसा न कोई पोस्टमैन आने को है, न कोई तार लाने को है। और अगर ऐसा कोई तार वगैरह ले भी आए, तो किसी ने मजाक की होगी समझना।
ऐसा मुल्ला नसरुद्दीन रोज प्रार्थना करता था, तो वह यही कहता था कि सौ
से कम कभी न लूंगा। सौ रुपए पूरे लूंगा, नगद। एक भी कम दिया, तो मैं राजी होने वाला नहीं।
पड़ोस का एक आदमी यह सुनते-सुनते थक गया। उसे मजाक सूझा, कि यह सौ से कम
तो लेगा नहीं। डर भी कोई नहीं है। तो उसने एक थैली में निन्यानबे रुपए रखकर, जब यह प्रार्थना कर रहा था और कह रहा था कि सौ से कम न लूंगा, इसके छप्पर पर चढ़ गया और छप्पर में से वह थैली गिरा दी।
थैली नीचे गिरी। इसने कहा, ठीक। पहले गिनूंगा। सौ से कम कभी न लूंगा। थैली खोली; गिनती की। वे निन्यानबे थे। इसने कहा, अरे, तू भी बड़ा चालबाज है। एक रुपया थैली का काट लिया; कोई बात नहीं।
अब वह पड़ोसी घबड़ाया। क्योंकि उसने तो मजाक ही की थी। लेकिन यह कह रहा
है कि एक रुपया थैली का तूने काट लिया, कोई हर्ज नहीं, बात साफ है। धंधे की है, समझ में आती है।
अगर ऐसा कोई परमात्मा आ भी जाए, मोर-मुकुट बांधे द्वार पर खड़ा हो जाए,
तो समझना कि कोई अभिनेता नाटक से छूट गया है। सर्कस का कोई प्राणी निकल भागा है। या किसी पड़ोसी ने मजाक की है। कोई ऐसा आने को है? कुछ ऐसा होने को है?
और अगर तुम ऐसे आंख खोल-खोलकर देखते रहे, तो तुम शांत ही न हो पाओगे। इसलिए तो प्रतीक्षा पर इतना जोर है। और फलाकांक्षा के त्याग पर इतना जोर है।
समझो! जब तक फलाकांक्षा है, प्रतीक्षा तुम कर ही नहीं सकते। क्योंकि
वह फल की याद आती ही चली जाती है--कब मिलेगा? कब मिलेगा? कब मिलेगा? तुम जपते हो राम-राम-राम, लेकिन असली जाप नीचे चल रहा है उससे भी गहरा--कब मिलेगा? कब मिलेगा? कब मिलेगा? वह राम-राम ऊपर-ऊपर है। कब मिलेगा गहरे में है। और कब मिलेगा, उसके पीछे तुम्हारा अहंकार छिपा है, मैं उसे पाकर रहूंगा। और तुम्हीं बाधा हो।
छोड़ो साधक-वाधक होने के भ्रम। शांत हो रहो। बड़ी तुम्हारी कृपा होगी।
और यह आंख खोल-खोलकर मत देखो। वह आ भी जाए, द्वार पर खड़ा भी हो जाए, तो वह

खुद ही तुम्हारा सिर खटखटाएगा। जल्दी क्या है? तुम क्यों पंचायत कर रहे हो?
विठोबा की कथा है महाराष्ट्र में, बड़ी प्रीतिकर है। विठोबा कृष्ण का नाम है। वे अपने एक भक्त को मिलने आए हैं; क्योंकि भक्त उनकी बड़े दिनों से प्रार्थना-पूजा कर रहा है। लेकिन जब वे आए हैं, तो भक्त की मां बीमार है। वह अपनी मां की सेवा कर रहा है। वे पीछे आकर खड़े हो गए; उन्होंने द्वार पर दस्तक दी। द्वार खुला था। भीतर आ गए। उन्होंने कहा कि देख, मैं तेरा प्यारा, तेरा कृष्ण, जिसकी तू याद करता रहा, मैं आ गया।
भक्त ने कहा, तुम बेवक्त आए। अभी मैं मां की सेवा कर रहा हूं। अभी फुर्सत नहीं है। पास ही एक ईंट पड़ी थी, वह उसने सरका दी। उसने कहा कि इस पर विश्राम करो। लौटकर देखा भी नहीं। जब मां की सेवा पूरी कर लूंगा, तब फिर बातचीत होगी।
ऐसे को भगवान मिलते हैं। जो भगवान को भी कह दे कि बैठो, विश्राम करो। ईंट पर बिठाल दे भगवान को। लौटकर भी न देखे। कैसी उसकी प्रतीक्षा रही होगी! कैसी उसकी ध्यान की गहराई रही होगी! कैसा उसका भक्ति-भाव रहा होगा, जिसमें एक लहर भी नहीं उठती!
तुम तो ध्यान करो, हवा का झोंका दरवाजे को हिलाए; तुम लौटकर देखते हो,
आ गए क्या! अभी तक नहीं आए? फिर गुस्से में बैठ गए। फिर गुस्से में माला फेरने लगे।
उसने बिठा दिया भगवान को कि बैठो।
विठोबा के मंदिर में अब भी कृष्ण उसी ईंट पर बैठे हैं। बैठना पड़ेगा भगवान को। जब प्रतीक्षा इतनी हो, तो भगवान जाएगा कहां!
वह कोई ऐसी चीज थोड़े ही है कि आ जाए, चला जाए। वह तो मौजूद ही है, सिर्फ तुम्हारी प्रतीक्षा भर चाहिए। तुम सदा उसे अपने चारों तरफ घिरा हुआ बाहर-भीतर पाओगे। वही है, और कुछ भी नहीं है।
पर यह झांक-झांककर देखने वाला चित्त, तनाव से भरा हुआ, अशांत, फलाकांक्षा से पीड़ित, ज्वरग्रस्त है। यह उससे नहीं मिल पाता है।

अब सूत्रः
हे अर्जुन, इस प्रकार तेरे हित के लिए कहे हुए इस गीतारूप परम रहस्य
को किसी काल में भी न तो तपरहित मनुष्य के प्रति कहना चाहिए और न भक्तिरहित के प्रति तथा न बिना सुनने की इच्छा वाले के प्रति ही कहना चाहिए; एवं जो मेरी निंदा करे, उसके प्रति भी नहीं कहना चाहिए।
समझने की कोशिश करो।
इस प्रकार तेरे हित के लिए कहे हुए इस गीतारूप परम रहस्य को... ।
यह अत्यंत गुह्य और गोपनीय है। इससे जीवन के आत्यंतिक द्वार खुलते हैं। यह कुंजी बहुत बहुमूल्य है। यह हर किसी को मत दे देना। ये मोती हैं, ये पारखियों को देना। ये हीरे हैं, ये जौहरियों को देना।
ऐसा हुआ। झुन्नून एक सूफी फकीर हुआ। उसके पास एक युवक आया और उसने कहा
कि मुझे परमात्मा की तलाश है; सत्य की खोज है। आपकी खबर सुनकर आया हूं। मुझे सत्य के दर्शन करा दें।
झुन्नून ने अपने खीसे में हाथ डाला, एक पत्थर निकाला और कहा, तू पहले
एक छोटा-सा काम कर। यह तेरी पहली साधना है, कि तू जा बाजार, सब्जी वालों की मंडी में जाना और इस पत्थर को बेचने की कोशिश करना। बेचना नहीं है; कोशिश करना है। कितने लोग ज्यादा से ज्यादा दाम में मांगते हैं, खबर लेकर आ।
वह वापस आया। सब्जी वालों ने कहा कि दो पैसे में ले लेंगे। सब्जी तौलने के काम आ जाएगा; बटखरा हो जाएगा।
उसने कहा, अब तू ऐसा कर, सोने-चांदी की दुकानों पर जा। वह गया सोने- चांदी की दुकानों पर। उन्होंने कहा, एक हजार रुपए में ले लेंगे।
वह बहुत हैरान हुआ। दो पैसा? हजार रुपया? वह वापस लौटकर आया। उसने कहा
कि बेच दूं? कोई पागल हजार रुपए में लेने को तैयार है। उस फकीर ने कहा, बेचना मत! अब तू जरा जौहरियों के बाजार में जा।

वहां वह गया। वहां दस हजार, बीस हजार, पचास हजार, लाख, दस लाख रुपए देने वाले लोग मिले। वह तो घबड़ा गया। वह तो पागल हो गया कि यह मामला क्या है! दो पैसे और दस लाख! वह भागा हुआ आया। उसने कहा, बेच देना चाहिए। अब रोकने की जरूरत नहीं है। दस लाख! एक आदमी बिल्कुल पागल है; वह कह रहा है, दस लाख रुपए, इस पत्थर के!
उसने कहा, तू अभी रुक। बेचना नहीं है। पत्थर वापस कर। मैं सिर्फ तुझे
यह कह रहा हूं कि सत्य की तू पूछ में आया है मेरे पास, अगर मैं तुझे सत्य अभी निकालकर दे दूं, मेरे दूसरे खीसे में सत्य पड़ा है, तो तेरी स्थिति अभी सब्जी बाजार वाले आदमी की है। तू उसका बटखरा बना लेगा, सब्जी तौलेगा।
अभी तेरी स्थिति वह भी नहीं है, जो सोने-चांदी की दुकान वाले की है। कम
से कम हजार रुपए में भी मांगे। और तेरी स्थिति वह तो है ही नहीं, वह पागलपन तो तुझे है ही नहीं, जो कि जौहरी को हो सकता है। जिसने दस लाख में मांगा, वही आदमी जानता है, क्या इसका मूल्य है। यह करोड़ रुपए का पत्थर है। जिसने दस लाख में मांगा है, उसे इसकी झलक है।
तो कृष्ण कहते हैं, इस परम रहस्य को भी किसी भी काल में तपरहित मनुष्य
के प्रति नहीं कहना चाहिए... ।
तपस्वी कौन है? तपस्वी का अर्थ है, जिसने सत्य को पाने के लिए अथक चेष्टा की, अपने को जलाया, तपाया। जो कुतूहलवश नहीं आ गया है सत्य को पूछने। जिसने सत्य को अपने को समर्पित किया है, जो सत्य के लिए मिटने को तैयार है। अगर जीवन की भी आहुति देनी पड़े, तो वह तैयार है। वह एक हाथ में अपने जीवन को लेकर आया है, यह रहा जीवन, सत्य मुझे मिल जाए, तो मैं जीवन देने को तैयार हूं।
तपस्वी का अर्थ है, जो सत्य को जीवन के ऊपर रखता है। जो कहता है, जीवन चला जाए, हर्जा नहीं; सत्य खरीद लेना है। जीवन दो कौड़ी का है जिसके लिए सत्य के मुकाबले।
भोगी का अर्थ है, जो जीवन को किसी भी हालत में खोने को तैयार नहीं है। जिसके लिए जीवन से ऊपर कुछ भी नहीं है। त्यागी का अर्थ है, जिसके लिए जीवन से भी ऊपर कुछ है। जो जीवन को भी कुछ पाने के लिए साधन बना लेता है।
तो तपस्वी को कहना चाहिए। कुतूहलवश कोई आया हो, उसको नहीं; जिज्ञासा मात्र से कोई आया हो, उसको नहीं। मुमुक्षा से आया हो! जो अपने जीवन को मोक्ष बनाने के लिए तत्पर हो। जो कहता हो, जान भी देनी पड़े, तो यह रही गरदन। बोधिधर्म भारत से बाहर गया, चीन गया, सैकड़ों साल पहले। वह सदा दीवार
की तरफ मुंह करके बैठता था।
कभी-कभी मुझे भी उसकी बात जंचती है कि आदमी बड़ा होशियार था। अगर वह यहां होता, तो तुम्हारी तरफ नहीं देखता। तुम उसकी पीठ देखते, वह दीवार की तरफ देखता। और वह कहता था, जब ठीक आदमी आएगा, तभी मैं उसकी तरफ देखूंगा। हर एक की तरफ देखने से क्या फायदा! क्यों अपनी आंखें गंवाऊं? क्यों? क्या जरूरत देखने की? दीवार में क्या खराबी है?
वह कहता, अभी तो लोग ऐसे ही हैं, जैसे दीवार। कुछ है नहीं; सपाट है। दरवाजा तक नहीं है उनके भीतर, जिसमें से प्रवेश कर सको। प्रवेश का उपाय ही नहीं है जिनके भीतर।
फिर उसका पहला शिष्य आया, हुई-नेंग। उसने कहा, बोधिधर्म, मुड़ता है इस तरफ कि नहीं! गरदन काटकर रख दूंगा। बोधिधर्म एक क्षण को तो रुका। उतने में ही उस हुई-नेंग ने अपना एक हाथ काट दिया और काटकर उसको उसके सामने रख दिया। और उसने कहा, मुड़! अन्यथा गरदन गिरेगी।
बोधिधर्म एकदम घूमा तेजी से। उसने कहा, आ गया भाई! तेरी मैं नौ सालों
से प्रतीक्षा कर रहा था। कोई गरदन काटने की जरूरत नहीं। क्योंकि मैं कोई हत्यारा नहीं हूं। लेकिन गरदन काटने की तैयारी काफी है। तैयारी चाहिए। तू काटने को तैयार है, तो तू मूल्य चुकाने को तैयार है। तो जो मेरे पास है संपदा, वह मैं तुझे देने को राजी हूं।
मुफ्त किसी को दे दो संपदा, वह व्यर्थ चली जाती है। उसका मूल्य ही नहीं हो पाता।
तपरहित मनुष्य के प्रति नहीं कहना, न भक्तिरहित के प्रति कहना... ।

क्योंकि जो भक्ति ही न हो, तो गोपनीय बात नहीं कही जा सकती। अत्यंत निकटता चाहिए।
पुराना शब्द है कि जब गुरु मंत्र देता है शिष्य को, तो हम कहते हैं, कान फूंकता है। उसका मतलब क्या है? उसका मतलब है, इतनी गुप्त है बात कि कान में ही कहता है। कोई और सुन न ले! वह गुफ्तगू है; वह बड़ी हृदय से हृदय में कही गई है बात। कान फूंकना तो प्रतीक है।
मगर मूढ़ गुरु हैं, जो कान फूंकते हैं। क्या करो! वे कान में कह देते हैं कि राम-राम जपना; यह तुम्हारा मंत्र है। किसी और को मत बताना।
कान फूंकना प्रतीक है; उसका अर्थ है, कानों-कान कहना। कोई दूसरे के कान में न पड़ जाए। अत्यंत निकटता में कहना; सामीप्य में कहना।
इसीलिए तो यहां मैं बंद होकर बैठ गया हूं; आने के लिए सब तरह की बाधाएं खड़ी कर दी हैं। जब तक कि कोई जबरदस्ती आना ही न चाहे, चेष्टा ही न करे, न आ पाएगा। सब तरह के उपाय हैं उसको वापस भेज देने के।
तो जो कुतूहलवश आ गया है, वह दरवाजे से लौट जाएगा। जिसकी थोड़ी जिज्ञासा है, वह लक्ष्मी के दफ्तर से लौट जाएगा। जिसकी मुमुक्षा है, वह ही यहां तक पहुंच पाएगा। जिसका प्रेम है, वह सब सहकर यहां तक पहुंच जाएगा। प्रेम कोई बाधाएं नहीं मानता। प्रेम कोई सीमाएं नहीं मानता। प्रेम बड़ी से बड़ी दीवालें लांघ जाता है।
तो कृष्ण कहते हैं, भक्तिरहित के प्रति मत कहना... ।
क्योंकि तुम तो कह दोगे, लेकिन जिसने भक्ति से सुना ही नहीं, वह समझेगा ही नहीं। तो क्यों अपनी श्वास खराब करनी! और डर यह है कि अगर वह बुद्धि से समझेगा। क्योंकि दो ही जगह हैं समझने की, या तो हृदय या बुद्धि। अगर भक्ति है, तो हृदय से समझेगा। वही समझने का ठीक केंद्र है। अगर भक्ति नहीं है, तो बुद्धि से समझेगा। वह तुमने जो कहा है, उसका तर्क बनाएगा, शास्त्र बनाएगा, सिद्धांत बनाएगा; उसमें वह भटक जाएगा।
बुद्धि का तो जंगल है, वहां कोई खुले स्थान नहीं हैं। हृदय का खुला आकाश है। हृदय में कोई कभी भटका नहीं, बुद्धि में लोग सदा भटके हैं।
तो बुद्धि वाला आदमी तो वैसे ही भटका है, उसको और यह गोपनीय बात कहकर
और न भटका देना; और उसका जंगल बड़ा मत कर देना। वह वैसे ही उलझा है।
और न बिना सुनने की इच्छा वाले के प्रति ही कहना... ।
और जो सुनने को इच्छुक ही न हो, आतुर न हो, अभीप्सु न हो, उससे मत कहना।
उसके तो कान पर भी न पहुंचेगा। और खतरा एक है कि जब सुनने की इच्छा न हो, तब अगर कोई कुछ कह दे, तो ऊब पैदा होती है। और उस ऊब के कारण वह सदा के लिए अनुत्सुक हो जाएगा।
बहुत बच्चे धर्म से इसीलिए अनुत्सुक हो जाते हैं। जब उनकी तैयारी नहीं होती सुनने की, तब मां-बाप उनको गीता सुना रहे हैं! मंदिर ले जा रहे हैं! वे घसिटे जा रहे हैं। उनको फिल्म जाना है, पिक्चर देखना है। बाजार में मदारी आया है। और ये कहां के कृष्ण और गीता को लगाए हुए हैं!
मैं एक संस्कृत महाविद्यालय में कुछ दिन तक अध्यापक था। संस्कृत विद्यालय था, महाविद्यालय था, तो पुराने ढंग से चलाने का हिसाब था। तो सभी विद्यार्थियों को सुबह चार बजे उठना पड़ता, स्नान करना पड़ता। पांच बजे प्रार्थना में इकट्ठे होना पड़ता।
मैं नया ही पहुंचा था; तो मेरे पास कोई और रहने का मकान न था, तो पहली रात मैं विद्यालय के छात्रावास में ही ठहरा था। विद्यार्थियों को भी पता नहीं था कि मैं अध्यापक हूं; नया-नया था। और मैं भी सुबह चार बजे उठकर स्नान करता था, तो मैं भी कुएं पर स्नान करने गया। वहां विद्यार्थी स्नान कर रहे हैं। मैंने सोचा था, संस्कृत विद्यालय है, लोग स्नान करते हुए संस्कृत के श्लोकों का पाठ कर रहे होंगे; वेद की ऋचाएं दोहराते होंगे। वहां वे भगवान तक को मां-बहन की गालियां दे रहे थे!
मैं थोड़ा हैरान हुआ। क्योंकि ठंडा पानी है, सर्दी के दिन, चार बजे रात
से उठना; कौन नहीं भगवान को गाली देगा! वे परमात्मा से लेकर प्रिंसिपल तक को इस भद्दे ढंग से गाली दे रहे थे। और उन्हें पता नहीं था कि मैं अध्यापक हूं; नया-नया था। तो उन्होंने मेरी कोई फिक्र नहीं की। वे देते रहे। मैंने भी सुनीं उनकी गालियां।

मैंने प्रिंसिपल को जाकर कहा कि यह आप गलत कर रहे हैं। इनके जीवन से सदा के लिए प्रार्थना का रस नष्ट हो जाएगा। इनके प्रार्थना के साथ गलत संबंध जोड़ा जा रहा है, विकृत स्थिति बनी जा रही है। प्रिंसिपल बोले कि नहीं, वे सब अपनी मर्जी से करते हैं। जैसा कि सभी अधिकारियों को ख्याल है। मैंने उनको कहा, तो फिर आप ऐसा करें, अगर वे अपनी मर्जी से करते हैं, तो मैं एक तख्ती लगा देता हूं कि कल चार बजे वही उठें, जिनको उठना हो। और आपको भी उठना पड़ेगा, ताकि हम दोनों मौजूद हो सकें साक्षी कि कौन आया, कौन नहीं आया।
अब तक तो वे खुद तो उठते नहीं थे। मैंने कहा, तुम खुद ही सोचो। तुम खुद
भी नहीं उठते चार बजे। तुम भी उठकर अगर स्नान करो, तो भी थोड़ा उनका गाली देने का मन कम हो जाए, कम से कम प्रिंसिपल को तो गाली न दें; परमात्मा को दें, तो कोई हर्जा नहीं। तुम खुद भी नहीं उठते! प्रार्थना में कोई सम्मिलित नहीं होता।
लेकिन उनकी मजबूरी है, क्योंकि वे सभी विद्यार्थी स्कालरशिप पर थे। संस्कृत पढ़ने कोई बिना स्कालरशिप के आता ही नहीं। सरकार स्कालरशिप दे, तो ही लोग संस्कृत पढ़ते हैं! नहीं तो काहे के लिए पढ़ेंगे! वे सब स्कालरशिप पर थे, इसलिए सबकी मजबूरी थी, न जाएं तो उनकी स्कालरशिप कटती थी।
तो दूसरे दिन मैंने तख्ती लगा दी कि अब जिसको मर्जी हो, वही प्रार्थना करे। जिसको मर्जी हो, वही चार बजे उठे। मेरे और प्रिंसिपल के सिवाय वहां कोई भी नहीं आया। कुआं खाली था।
मैंने कहा, अब कम से कम कुएं पर ज्यादा प्रार्थनापूर्ण स्थिति है। कम
से कम कुआं तो प्रार्थना कर रहा है। कोई गाली तो नहीं बक रहा है! कोई यहां उपद्रव तो नहीं कर रहा है; सन्नाटा तो है। आकाश के तारे हैं। सुबह अच्छी है। जिसको नहाना है, वह आएगा। नहीं आना है, नहीं आएगा। कोई नहीं आया।
जिन बच्चों को तुम जबरदस्ती मंदिर ले गए हो, उनको तुमने सदा के लिए मंदिर के विरोध में कर दिया। जो सुनने को राजी नहीं था, उसको तुमने सुनाने की कोशिश की है। तुमने उसके कान पर ही अत्याचार नहीं किया, तुमने उसके हृदय के द्वार बंद कर दिए।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, उससे मत कहना, जो सुनने को राजी न हो; इच्छा न हो। जब हजार बार पूछे, तब कहना।
बुद्ध का तो नियम था कि जब तक कोई आकर तीन बार न पूछे, तब तक वे उत्तर
ही न देते थे। कोई प्रश्न बुद्ध से पूछना हो, तो जाकर उनके चरणों में झुको। एक बार कहो, दो बार कहो, तीसरी बार कहो, तब शायद वे उत्तर दें। अन्यथा वे न देंगे। वे कहते हैं, जो कम से कम तीन बार पूछने को राजी न हो, उससे कहना ही नहीं।
कहना उसी से, जिसका हृदय प्यासा हो, कंठ प्यासा हो, पानी की पुकार उठी
हो जिसके भीतर, उसी को जल-धार देना। गैर-प्यासे को पानी पिलाओगे, वमन हो जाएगा। गैर-भूखे को भोजन करवाओगे, बीमारी होगी, कब्जियत होगी; स्वास्थ्य न होगा। भोजन भी जहर हो सकता है असमय में। और जहर भी औषधि हो सकती है समय पर। इसलिए ठीक समय और ठीक पात्र का सवाल है।
और जो मेरी निंदा करता हो, उसके प्रति भी नहीं कहना चाहिए।
क्योंकि जहां मन निंदा से भरा हो, विरोध से भरा हो, वहां तुम कुछ भी कहो, अनर्थ होगा। तुम जो भी कहोगे, उससे उलटा अर्थ निकाला जाएगा। जब निंदा भीतर हो, तो तुम अपनी निंदा को हर चीज पर टांग दोगे। तुम्हारी निंदा तुम्हारी आंखों पर छाई होगी। तुम उसी के माध्यम से देखोगे। हर चीज निंदा के ही रंग में रंग जाएगी। कोई जरूरत नहीं है; कोई प्रयोजन नहीं है। क्योंकि जो पुरुष मेरे में परम प्रेम करके इस परम गुह्य रहस्य को, गीता को मेरे भक्तों में कहेगा, वह निस्संदेह मेरे को ही प्राप्त होगा। और न तो उससे बढ़कर मेरा अतिशय प्रिय कार्य करने वाला मनुष्यों में कोई है और न उससे बढ़कर मेरा अत्यंत प्यारा पृथ्वी पर दूसरा कोई होवेगा।
भगवद्गीता भगवान का गीत है। अर्जुन के बहाने स्वर्ग की गंगा को पृथ्वी पर उतारा है। उस गंगा को उन्हीं के पास ले जाना, जिनके हृदय में स्वर्ग की गंगा की प्यास उठ गई है।

जो अभी इसी पृथ्वी के जल से तृप्त हैं, उन्हें व्यर्थ परेशान मत करना।
अभी यही जल उनके लिए काफी है। एक दिन आएगा कि वे पाएंगे, इस जल से किसी की प्यास बुझती नहीं, तभी वे तलाश करेंगे उस जल की जो भगवान का है। भगवद्गीता एक दिव्य गीत है। सभी न सुन पाएंगे। संगीत को, उस संगीत को सुनने के लिए बड़ी अहर्निश तैयारी चाहिए; बड़ा श्रद्धा-भाव से भरा मन चाहिए।
नाचता, उत्सव करता हुआ, एक अहोभाव चाहिए, तभी उस गीत की कड़ियां सुनाई पड़ेंगी। और तब वे गीत की कड़ियां साधारण न होंगी। वह गीत की कड़ियां भगवत्ता से भरी होंगी। उनका स्वाद इस पृथ्वी का नहीं है, उनका स्वाद परलोक का है। उस स्वाद के लिए तैयार हो जाए कोई, तो कृष्ण कहते हैं, उससे जरूर कहना।
और जो ऐसे प्यासे व्यक्ति को मेरा गीत पिला देता है, उससे ज्यादा प्यारा मेरा कोई भी नहीं है।
क्योंकि इसका अर्थ हुआ कि वह एक व्यक्ति को और भगवान में वापस बुला लेता है। इसका अर्थ हुआ कि एक हृदय को और उसने भगवत्ता में डुबा दिया।
इसका अर्थ हुआ, एक बटोही भटका था, वह वापस लौट आया; उसे अपना घर मिल गया। इसका अर्थ हुआ, अस्तित्व का एक खंड शांत हुआ, आनंदित हुआ, निर्वाण को उपलब्ध हुआ, निस्संशय हुआ। यात्रा एक खंड की पूरी हुई। अस्तित्व का एक टुकड़ा स्वर्ग को, शांति को, महासुख को, सच्चिदानंद को उपलब्ध हुआ। स्वभावतः, जो भगवान के गीत में लोगों को डुबा देता है, उससे ज्यादा प्यारा भगवान का और कौन होगा!
कृष्ण कहते हैं, वह मेरे भक्तों में मुझे परम प्रिय है। वह निस्संदेह मेरे को ही प्राप्त होगा। वह मेरे साथ एकरूप हो जाता है।
कृष्ण के गीत को गाते-गाते व्यक्ति कृष्ण हो जाता है। भगवद्गीता को सुनते-सुनते, कहते-कहते, अगर ताल-मेल बैठ जाए, अगर सुर बैठ जाए, साज बैठ जाए, तो व्यक्ति कृष्णमय हो जाता है।
लेकिन घृणा से भरा हो, निंदा से भरा हो, विरोध से भरा हो, तो यह नहीं हो पाएगा। उत्सुक न हो, अनुत्सुक हो, जबरदस्ती कहा जा रहा हो उसे, तो यह न होगा। अभी उसकी मुमुक्षा ही न हो, अभी वह धन चाहता हो, तुम धर्म की बात करते हो, तो तीर स्थान पर न लगेंगे। अभी वह पद चाहता हो, तुम परमात्मा की पुकार उठाते हो, उसे सिर्फ व्याघात मालूम होगा कि तुम व्यर्थ का उपद्रव कर रहे हो।
व्यक्ति की आकांक्षा के विपरीत उसे परमात्मा में भी वापस नहीं पहुंचाया जा सकता है। स्वतंत्रता परम है, आखिरी है। और प्रत्येक व्यक्ति अपनी ही स्वतंत्रता से जीता है। हम सहारा दे सकते हैं। बुद्ध पुरुष इशारा कर सकते हैं, चलना तो प्रत्येक को ही पड़ता है।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग आठ
गीता दर्शन अध्याय 18
उन्नीसवां प्रवचन

गीता-ज्ञान-यज्ञ

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः।। 70।।
श्रद्धावाननसूयश्चशृणुयादपि यो नरः।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम्।। 71।।
तथा हे अर्जुन, जो पुरुष इस धर्ममय हम दोनों के संवाद-रूप गीता को पढ़ेगा अर्थात नित्य पाठ करेगा, उसके द्वारा मैं ज्ञान-यज्ञ से पूजित होऊंगा, ऐसा मेरा मत है।
तथा जो पुरुष श्रद्धायुक्त और दोष-दृष्टि से रहित हुआ इस गीता का श्रवण-मात्र भी करेगा, वह भी पापों से मुक्त हुआ पुण्य करने वालों के श्रेष्ठ लोकों को प्राप्त होवेगा।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः यदि कोई तपरहित और भक्तिरहित व्यक्ति भी गीता सुनना चाहे, तो उसे सुनाना चाहिए अथवा नहीं?

पहली बात, बजाय यह सोचने के कि किसको सुनाना चाहिए, पहले यह सोच लेना चाहिए कि मैं सुनाने योग्य हूं या नहीं। और यदि तुम सुनाने योग्य हो, तो तुम्हें दर्पण की भांति स्पष्ट हो जाएगा, किसको सुनाना चाहिए, किसको नहीं सुनाना चाहिए। तब निर्भर करेगा--जो व्यक्ति तप और भक्ति से रहित है, वह भी तप और भक्ति के लिए लालायित हो सकता है। जो आज दूर है, कल पास हो जाएगा। जो आज गिरा है, कल उठेगा।
तप और भक्ति से रहित व्यक्ति यदि सुनना चाहे, तो सुनना चाहने के दो कारण हो सकते हैं। एक, मात्र कुतूहल। तब तो नहीं सुनाना चाहिए। क्योंकि कुतूहल तो खुजली जैसा है; वह कहीं ले जाने वाला नहीं है। खुजाओ, थोड़ा रस मालूम होता है। लेकिन खुजली से घाव बनते हैं।
अगर कुतूहल मात्र हो, तो गीता के शब्द ही पहुंच पाएंगे उसके पास, अर्थ
न पहुंच पाएगा। अर्थ की उसे आकांक्षा भी नहीं है। और उसके जीवन में गीता के शब्दों के घाव बन जाएंगे। गीता के अर्थों के फूल तो न लगेंगे; शब्दों के घाव बन जाएंगे। तुम्हारे सुनाने से अहित होगा उसका, हित न होगा। वह पंडित हो जाएगा। कुतूहल ज्यादा से ज्यादा पांडित्य तक ले जा सकता है, क्योंकि कुतूहल बौद्धिक खुजलाहट है।
लेकिन यह भी हो सकता है कि तप और भक्ति से रहित व्यक्ति जिज्ञासु हो; कुतूहल न हो, वस्तुतः जिज्ञासा जगी हो। अभी तप और भक्ति का उदय तो नहीं हुआ, लेकिन प्राणों में एक प्यास की पहली आवाज सुनाई पड़ी है, पहली पुकार उठी है। स्वभावतः, पहली पुकार जिज्ञासा की ही तरह उठेगी।
गीता सुनाने से जिज्ञासु का खोज का द्वार खुलता है। उसके भीतर धीरे- धीरे मुमुक्षा का जन्म होने लगेगा।
लेकिन यह सारी बात तुम्हें दिखाई पड़ जाएगी, अगर तुम सुनाने के योग्य हो।
कृष्ण ने कुछ भी नहीं कहा इस संबंध में कि कौन सुनाए। किसको सुनाए, यह
तो कहा; कौन सुनाए, यह नहीं कहा। उसका कारण है। क्योंकि कृष्ण को यह ख्याल भी नहीं आया कि कृष्ण हुए बिना कोई सुनाने की कोशिश करेगा। लेकिन लोगों ने की है। तो गीता के आस-पास पंडितों की टीकाओं-टिप्पणियों का बड़ा जाल खड़ा हो गया है।
सुनने वाला हो सकता है, गलत ढंग से सुने और भटक जाए। लेकिन एक ही सुनने वाला गलत ढंग से सुनता है, भटकता है। सुनाने वाला तो हजारों लोगों को सुनाता है, लाखों को सुनाता है। अगर सुनाने वाला ही गलत है, तो वह लाखों-

करोड़ों को भटका देता है। और ध्यान रखना, गलत सुनाने वाला अनिवार्य रूप से गलत सुनने वाले को आकर्षित कर लेगा।
जीवन में आकर्षण के बड़े सूक्ष्म जाल हैं। जैसे स्त्री पुरुष को आकर्षित कर लेती है, या पुरुष स्त्री को आकर्षित कर लेता है; जैसे चुंबक के पास लोहकण खिंचे चले आते हैं, ऐसे जीवन में बड़े सूक्ष्म जाल हैं आकर्षण के।
अगर गलत सुनाने वाला व्यक्ति है, तो गलत सुनने वालों की भीड़ अपने आप इकट्ठी हो जाएगी। ठीक सुनने वाला तो वहां टिक ही न सकेगा। क्योंकि ठीक सुनने वाले को तो वहां कुछ दिखाई ही न पड़ेगा सिवाय अंधकार के। ठीक सुनने वाले की कसौटी पर तो ठीक सुनाने वाला ही उतरेगा। लेकिन गलत सुनने वालों की भीड़ इकट्ठी हो जाएगी।
कृष्ण ने कुछ कहा नहीं उस संबंध में, क्योंकि कहना भी मुश्किल है। और कृष्ण को ख्याल भी न आया होगा कि लोग ऐसी अहम्मन्यता भी करेंगे। उन दिनों ऐसी अहम्मन्यता होती भी नहीं थी।
कृष्ण, महावीर और बुद्ध के समय में वही व्यक्ति बोलने जाता था, जिसने जाना हो; जिसने जाना न हो, वह बोलने की चेष्टा भी नहीं करता था। क्योंकि बिना जाने बोलना महा अपराध है। उससे तुम न मालूम कितने लोगों के जीवन में कांटे बो दोगे। शायद तुम्हें बोलने में थोड़ा मजा आ जाए, रस आ जाए; शायद बोलते-बोलते तुम्हें लगे कि तुम बड़े महत्वपूर्ण हो गए हो, क्योंकि कई लोग तुम्हें सुन रहे हैं; शायद पांडित्य की अकड़ और अहंकार में थोड़ी तुम्हें तृप्ति मिले। लेकिन तुम्हारी व्यर्थ की तृप्ति के लिए न मालूम कितने लोग मार्ग से च्युत हो जाएंगे। तुम उन्हें भटका दोगे।
और इस संसार में बड़ा से बड़ा पाप हत्या नहीं है; इस संसार में बड़ा से बड़ा पाप किसी को उसके मार्ग से भटका देना है।
तो जितने बड़े पाप अपात्र बोलने वालों ने किए हैं, उतने बड़े पाप किसी
ने भी नहीं किए हैं। क्योंकि कोई गरदन पर तुम्हारी तलवार मार दे, तो शरीर ही कटता है, फिर शरीर मिल जाएगा। लेकिन कोई तुम्हारी आत्मा को रास्ते से भटका दे, तो कुछ ऐसी चीज भटक जाती है कि जन्मों-जन्मों खोजकर शायद तुम मुश्किल से वापस अपनी जगह पर आ पाओगे। क्योंकि एक भटकाव दूसरे भटकाव में ले जाता है, कड़ियां जुड़ी हैं। दूसरा भटकाव तीसरे भटकाव में ले जाता है। और पीछे लौटना मुश्किल होता चला जाता है।
तो पहली तो बात ध्यान रखना, इसकी फिक्र मत करना कि कौन पात्र है सुनने में, कौन नहीं। पहले तो इसकी फिक्र करना कि मैं बोलने में पात्र हूं? मैं कृष्ण पर कुछ कहूं? जब तक कृष्ण-चेतना का आविर्भाव न हुआ हो, तब तक मत कहना।
और इसके लिए किसी से पूछने जाना है? यह तो तुम भीतर ही जान सकोगे कि कृष्ण-चेतना का आविर्भाव हुआ या नहीं हुआ। इसकी और किसी से कसौटी लेने की जरूरत भी नहीं है; किसी से पूछने का कोई कारण भी नहीं है। पूछने तो वही जाएगा, जो संदिग्ध है। और कृष्ण-चेतना में संदेह नहीं है; वह असंदिग्ध, स्वतःप्रमाण्य अवस्था है। जब भीतर उदित होती है, तो तुम जानते हो, जैसे सूरज उग गया। अब तुम किसी से पूछते थोड़े ही हो कि रात है या दिन! और पूछो, तो बताओगे कि तुम अंधे हो।
कृष्ण ने नहीं लगाई कोई शर्त बोलने वाले पर, क्योंकि उन दिनों यह होता
ही न था कि जो न जानता हो, वह बोले। जानकर ही कोई बोलता था। और जब तक न जान लेता था, तब तक कितना ही शास्त्रों से इकट्ठा कर ले, इस भ्रांति में नहीं पड़ता था कि मुझे अनुभव हो गया है।
श्वेतकेतु घर लौटा अपने पिता के पास। उद्दालक ने कहा कि तू उस एक को जानकर आ गया, जिसे जानने से सब जान लिया जाता है? क्योंकि श्वेतकेतु बड़ा अकड़कर आ रहा था, जैसा कि पंडित सदा ही अकड़ जाता है। सब परीक्षाएं उत्तीर्ण कर लीं; सभी शास्त्र जानकर आ रहा था; वेदों का पारंगत ज्ञाता हो गया था। जो कुछ भी विश्वविद्यालय में सिखाया जा सकता था, सब सीख लिया था। गुरु के आश्रम में अब कुछ और बचा ही न था सीखने को। स्वभावतः, युवा था; अभी अहंकार ताजा था; अभी अकड़ नई थी; अभी बाढ़ में था जीवन; अकड़कर आ रहा था।

पिता ने देखा उसे आते, उसकी अकड़ लगी कि गलत है। क्योंकि जानने वाला ऐसे अकड़कर कहीं आता है! यह तो अज्ञानी का लक्षण है।
पहली ही बात, बेटा आकर चरणों में झुका, पिता ने पूछा कि मालूम होता है,
तू सब जानकर आ गया! श्वेतकेतु ने कहा, आप ठीक पहचाने। कुछ मैंने छोड़ा नहीं; जो भी जानने योग्य था, सब जान लिया। सब चुकता करके आया हूं, कुछ बचा नहीं है।
तो पिता ने कहा, एक बात का उत्तर दे। तूने उस एक को जाना, जिसे जानने से
सब जान लिया जाता है? और जिसे न जानने से, कुछ भी जाना हो, तो जानने का कोई मूल्य नहीं?
श्वेतकेतु ने कहा, कैसा एक? कौन-सा एक? गुरु ने उसकी तो कोई बात ही नहीं की!
तो पिता ने कहा, फिर वापस जा। यह भी कोई जानना है? हमारे कुल में नाममात्र के ब्राह्मण नहीं हुए हैं। हम ब्रह्म को जानकर ही अपने को ब्राह्मण कहते रहे हैं। ऐसा पैदाइश से हमारे कुल में कोई ब्राह्मण अपने को नहीं कहा है। तू जानकर लौट, ब्रह्म को जानकर लौट; अन्यथा ब्राह्मण न कहला सकेगा।
उन दिनों कोई जरूरत न थी यह बात कहने की, क्योंकि ऐसा महापातक कोई करता ही न था। इसलिए कृष्ण ने कहने वाले के लिए कुछ भी नहीं कहा है, सुनने वाले के लिए कहा है।
और अगर तुम्हारे भीतर जागरण हो गया है चैतन्य का, तो उस जागरण में तुम प्रत्यक्ष देख लोगे, किससे कहना, किससे नहीं कहना। कुतूहल वाले व्यक्ति को मत कहना; जिज्ञासु को कहना।
जिज्ञासा और कुतूहल में बड़ा बारीक फासला है। वे एक जैसे दिखाई पड़ते हैं। कुतूहल जिज्ञासा का झूठा सिक्का है। एक जैसे दिखाई पड़ते हैं।
जैसे छोटा बच्चा पूछता है; चले जा रहे हो रास्ते पर, तुम्हारा बच्चा साथ है, वह पूछता है, पक्षियों को दो पंख क्यों हैं? वृक्ष में लाल फूल क्यों लगे हैं? सूरज सुबह ही क्यों उगता है? उगना तो रात में चाहिए, जब अंधेरा रहता है! परमात्मा नासमझ है; सुबह उगाता है, जब कि प्रकाश है; और रात में डुबा देता है जब कि अंधेरा है। वह पूछता जाता है।
तुम उसकी बात पर बहुत ज्यादा ध्यान नहीं देते। तुम कुछ-कुछ कहकर उसे टालते रहते हो। और तुम न भी टालो, तो वह खुद ही एक क्षण बाद भूल जाता है कि उसने क्या पूछा था, क्योंकि दूसरे प्रश्न खड़े हो जाते हैं।
वह कुछ पूछने के लिए नहीं पूछ रहा है। उसकी कोई जिज्ञासा नहीं है; कुतूहल है। उसके मन में तरंगें उठ रही हैं। हर चीज प्रश्नवाची है। लेकिन तुम यह मत सोचना कि वह कोई किसी प्रश्न से अटका है; कि इस प्रश्न का हल न हुआ, तो उसका जीवन दांव पर लग जाएगा। उसे कुछ मतलब ही नहीं है। तुम इतना ही कह दो, बड़े होकर जान लोगे, बात खतम हो गई। वह यह भी नहीं पूछता कि तुम बड़े हो गए हो, तुमने जाना? वह कहता है, ठीक होगा। तुम कुछ भी उत्तर दे दो, उत्तर में उसे बहुत रस भी नहीं है; उसे पूछने का मजा है।
जैसे पंडित को बोलने का मजा है, वैसे कुतूहली को पूछने का मजा है। इसलिए पंडित और कुतूहली का मेल बैठ जाता है। पंडितों के पास कुतूहली लोग इकट्ठे हो जाते हैं।
जिज्ञासु को पूछने के लिए नहीं पूछना है; पूछने पर प्राण अटके हैं; पूछने पर निर्भर है सब कुछ; पूछने पर दांव लगा है, या इस पार या उस पार; वह जीवन-मरण का सवाल है; वह हर कुछ नहीं पूछ रहा है। इसलिए जिज्ञासु कभी-कभी पूछेगा; लेकिन अपने प्राण उस एक प्रश्न में डुबा देगा। कुतूहली रोज पूछेगा, दिन में हजार बातें पूछेगा, और भूल जाएगा पूछकर, फिर दुबारा याद भी नहीं करेगा।
परमात्मा कुतूहल से नहीं जाना जाता। कुतूहल बहुत सस्ता है, जिसमें तुम दांव ही नहीं लगाते। बस, पूछ लिया; राह चलते पूछ लिया!
मेरे पास ऐसे लोग आ जाते थे। मैं यात्राओं में था। मैं ट्रेन पकड़ने के लिए प्लेटफार्म पर चला जा रहा हूं; कोई आदमी देख लेगा, पहचान जाएगा, पास आ जाएगा; कि आपसे जरा एक बात पूछनी है, मन शांत कैसे हो?

मैं ट्रेन पकड़ रहा हूं, ट्रेन छूटने को है, उसको खुद भी ट्रेन पकड़नी है! स्टेशन पर पूछ रहा है, मन शांत कैसे हो? जैसे कोई बच्चों का खेल है! कि कोई पूछता है कि ईश्वर है या नहीं? आप संक्षिप्त में उत्तर दे दें, हां या ना?
मेरे हां और न से क्या हल होगा? अगर मेरे हां और न से तुम्हारी ईश्वर
की खोज पूरी हो जाती, तो वह कोई खोज थी? वह दो कौड़ी की थी। खोज ही न थी। जिज्ञासा बात और है। तुम जिज्ञासा को हल करने के लिए चुकाने को तैयार होते हो, चाहे पूरा जीवन भी चुकाना पड़े। प्रश्न केवल प्रश्न नहीं हैं; प्रश्न तुम्हारे भीतर की अंतर्व्यथा हैं। जीवन में उलझाव है, तुम समाधान चाहते हो, उत्तर नहीं।
कुतूहली उत्तर चाहता है; जिज्ञासु समाधान चाहता है। इसलिए कुतूहली पांडित्य तक पहुंच जाएगा कभी; जिज्ञासु समाधि तक जाएगा।
लेकिन जिसके भीतर कृष्ण-चैतन्य का आविर्भाव हुआ है, वह देख लेगा, कहां कुतूहल है, कहां जिज्ञासा है। उसे पहचानने में जरा भी भूल नहीं होती। ऐसे ही जैसे तुम मुरदे को पहचान लेते हो और जिंदा आदमी को पहचान लेते हो। भला तुम बहुत बड़े चिकित्साशास्त्र के ज्ञाता न होओ, क्या तुम्हें अड़चन लगती है जानने में कि यह आदमी मुरदा है और यह आदमी जिंदा है? लाश को पहचानने में किसे देर लगती है!
जिज्ञासा तो जीवंत है। कुतूहल मुरदा है, लाश है। और लाश के साथ सिर मत फोड़ना।

दूसरा प्रश्नः भगवद्गीता पर आपके अमृत वचनों को सुनने के लिए क्या हमने पिछले जन्मों में पुण्य अर्जित किया था?

उत्तर तो बाद में, पहले प्रश्न को समझने की कोशिश करनी चाहिए।
अहंकार बड़े सूक्ष्म रूप लेता है। मुझे सुन भी रहे हो, तो वह भी तुमने पिछले जन्म में अर्जित किया होगा पुण्य! तुम्हारे भाव में प्रसाद-रूप से कभी कुछ घटित ही नहीं होता! तुम्हारे कर्तापन की अकड़ बड़ी गहरी है।
इस जन्म में तो दिखाई नहीं पड़ता कि तुमने कुछ अर्जित किया हो, तो निश्चित तुमने पिछले जन्म में पुण्य किए होंगे, तभी तुम सुन रहे हो! तुम मुझे धन्यवाद भी तो नहीं दे सकते।
तुम्हारा ही अर्जन है! तुमने कमाया है! अगर मैं तुमसे बोल रहा हूं, तो तुम्हारी ही कमाई की वजह से बोल रहा हूं! तुम्हें प्रसाद कहीं भी दिखाई नहीं पड़ता?
तुम अगर परमात्मा के पास भी पहुंच जाओगे, तो तुम यही कहोगे कि जन्मों- जन्मों के पुण्य कर्मों से तुझे कमाया है! वहीं तुम चूक जाओगे। यह अकड़ तुम्हें कहीं का न रखेगी। तुम पहुंच ही न पाओगे, क्योंकि यह अकड़ ही तो रोक लेगी।
जिसने पुण्य किया है, वह तो विनम्र होता है। वह तो यह कहता है कि मेरा क्या पुण्य है? मैंने कुछ भी तो किया नहीं; और इतना पा लिया है। निश्चित ही, परमात्मा की अनुकंपा होगी, अनुग्रह होगा। मुझ अपात्र पर इतनी वर्षा हुई है! मैं धन्यभागी हूं! लेकिन... जिसने पुण्य किया है, उसकी तो यह भाव-दशा होगी कि मैं धन्यभागी हूं, क्योंकि मुझ अपात्र पर वर्षा हो गई है। मैंने कुछ भी तो नहीं किया।
और जिसने पुण्य नहीं किया है, उसका यह अहंकार होगा कि जो कुछ हुआ है, मेरे ही पुण्यों का अर्जन है। मैंने कमाया था, मैंने पाया है।
शायद दूसरे तरह के आदमी को यह भी लगे कि जितना मिलना था, उतना भी नहीं मिला। कमाया तो बहुत था, उसके योग्य पाया भी नहीं है अभी। क्योंकि अहंकार को सदा ऐसा लगता है कि मेरा श्रम ज्यादा है, पुरस्कार कम है। निरहंकारिता को सदा ऐसा लगता है कि मेरा श्रम तो कुछ भी नहीं है, पुरस्कार बहुत है। ना- कुछ किए मिल रहा है, अनायास मिल रहा है!
तो पहले तो अपने प्रश्नों को बहुत गौर से सोचा करें। तुम्हारे प्रश्न ऐसे ही आकाश से नहीं आते, तुमसे आते हैं। तुम्हारे प्रश्न ऐसे ही शून्य से अवतरित नहीं हो जाते, तुम्हारे चित्त की गंध को साथ लाते हैं। सुगंध हो, तो

सुगंध को लाते हैं; दुर्गंध हो, तो दुर्गंध को लाते हैं। तुम्हारे प्रश्नों में तुम्हारी पूरी आत्मा धड़कती है, तुम्हारी पूरी भाव-दशा धड़कती है।
क्या तुम कभी भी प्रसाद को न समझ पाओगे? और यह पूरी गीता प्रसाद की चर्चा है! और गीता पूरी होने आ गई और तुम पूछ रहे हो, क्या मेरे पुण्य कर्मों के कारण ही आपके अमृत वचन सुनने का अवसर मिला?
तुम कर्ता को क्यों नहीं छोड़ सकते? तुम यह कर्तापन को क्यों पकड़े हुए हो? इसी कर्तापन के पीछे तुम्हारा अहंकार छिपा है।
समझो! जानो! तुम्हारे किए से क्या मिलेगा? तुम्हारे हाथ कितने छोटे हैं! तुम इन छोटे-छोटे हाथों में परमात्मा को बांधने चले हो, आलिंगन करने चले हो। कर पाओगे? तुम्हारी बुद्धि कितनी छोटी है! उस बुद्धि के छोटे-से छिद्र में तुम परमात्मा के विराट आकाश को भरने चले हो। भर पाओगे? तुम्हारे कृत्य का मूल्य क्या है? तुमने पुण्य भी किए होंगे, तो क्या किए होंगे? किसी भिखारी को कुछ पैसे दे दिए होंगे। और पहले उसे भिखारी बनाया होगा शोषण करके, तब पैसे दिए होंगे। पैसे कहां से आए थे तुम्हारे पास देने को? पहले शोषण, फिर दान! पहले पाप, फिर पुण्य! पहले हाथ रंग लो खून से, फिर धो लेना!
तुम्हारे सभी पुण्य तुम्हारे पाप का प्रायश्चित्त हो सकते हैं, इससे ज्यादा उनका कोई मूल्य नहीं है। उनसे तुम कुछ पाते नहीं हो। उनसे तुम कुछ बहुत अहोभाव से मत भर जाना, कि तुमने एक अस्पताल खोल दिया, कि एक धर्मशाला बना दी। तुम्हारे कारण कितने लोग बीमार हुए हैं, इसका तुमने हिसाब रखा है? और तुम्हारे कारण कितने लोग बेघरबार हुए हैं, इसका तुमने हिसाब रखा है? एक धर्मशाला बना दी, उसका तुमने हिसाब रखा है!
तुमने कितने प्राणों को चोट पहुंचाई है, रुग्ण किया है, कितने प्राणों में घाव बनाए हैं, उसका तुमने हिसाब रखा है? नहीं, तुमने एक छोटा- सा दवाखाना खोल दिया, जहां होमियोपैथी की दो पैसे की दवाएं तुम बांटते रहते हो। वह तुमने पुण्य किया है!
तुम्हारे पुण्य क्या हैं?
पुण्यवान व्यक्ति को ऐसा लगता है कि पुण्य कर ही कैसे सकता हूं? मेरा करना ही क्या है? यह पापी की दृष्टि है कि वह कहता है, मैंने पुण्य किए हैं। यह पाप का ही भाव है कि मैंने किया है।
अहंकार पाप है। और पुण्य का अहंकार तो बहुत गहन पाप है। पुण्यात्मा
को तो पता ही इतना चलता है कि मैंने भूलें ही भूलें की हैं। थोड़ा-बहुत सुधारने की कोशिश की; लेकिन क्या हल होता है! भूलें अनंत हैं, सुधार न के बराबर है।
इसलिए पुण्यवान तो कहेगा, परमात्मा जब मिलेगा, वह उसके प्रसाद-रूप मिलता है, मेरे प्रयास-रूप नहीं। वह उसकी कृपा से मिलेगा, मेरे कर्मों से नहीं। मैं कर भी क्या सकूंगा?
और जिस दिन तुम्हें यह प्रसाद की भावना का उदय होगा, उस दिन तुम पाओगे, तुम्हारे जीवन में क्रांति होने लगी। नहीं तो तुम अपने अहंकार को बचाए ही चले जाओगे नए-नए रूपों में।
अब यह तुमने खूब नई तरकीब खोजी! मुझे सुन रहे हो, उसमें भी तुम अपने कर्ता को ले आए! सुनने जैसी सरल क्रिया में भी तुम्हारा तिरछा कर्ता आ गया।
तुम्हें कुछ भी नहीं करना पड़ रहा है; तुम सिर्फ सुन रहे हो। वह भी पूरी तरह सुन रहे हो, यह संदिग्ध है। सुनने में भी तुम अपना प्राण लगाए हो, यह भी निश्चित नहीं है। इधर सुने, उधर भूल जाते हो। मगर निश्चित, तुम्हारा अहंकार कहता है कि अगर यह सुनने का अवसर मिला है, तो जरूर पिछले जन्म में कोई पुण्य कर्म किए होंगे। अन्यथा यह मिलता ही कैसे!
प्रसाद-रूप कुछ मिलता ही नहीं? तो फिर तुम गीता को कभी भी न समझ पाओगे। फिर गीता से तुम्हारा कोई ताल ही न बैठेगा। तुम्हारे सुर अलग ही बज रहे हैं।

गीता की पूरी भूमिका इतनी है कि आदमी के किए कुछ होता है! सब उसके किए होता है। और जिस दिन तुम यह पहचान लेते हो, उसी दिन पुण्य का आविर्भाव होता है; उसके पहले पाप ही पाप है।
अगर सार में समझो, तो अहंकार पाप है, निरहंकारिता पुण्य है। इसलिए पुण्य को यह तो भाव हो ही नहीं सकता कि मैंने किया है; यह भाव पाप को ही हो सकता है। करने की बात ही जरा दुर्गंधयुक्त है।
एक मां है। उससे पूछो कि तूने अपने बेटे के लिए कितना किया है? वह कहेगी, कुछ भी नहीं किया। जो-जो करना था, कुछ भी नहीं कर पायी। वह रोने लगेगी; कि जो कपड़े देने थे बेटे को, नहीं दे पायी। गरीबी है। जो दवा देनी थी, वह नहीं दे पायी। पैसे नहीं हैं। जो शिक्षा देनी थी, वह नहीं दे पायी। एक मां से पूछो कि तूने क्या-क्या किया है, तो वह गिना ही न सकेगी कि उसने क्या किया है। और उसने बहुत किया है! एक मां के करने का कोई अंत नहीं है। लेकिन वह गिना न सकेगी। अगर तुम उससे फेहरिस्त बनाने को कहो, तो कागज खाली रहेगा; सिर्फ उसके आंसुओं की बूंदें उस पर टपक जाएंगी। वह कहेगी, और कुछ भी नहीं किया, बस... ! जो होना था, वह तो हो ही नहीं पाया।
लेकिन किसी संस्था के सेक्रेटरी को पूछो, या किसी देश के प्रधानमंत्री को पूछो! फेहरिस्त लंबी होती जाएगी कि क्या-क्या किया है। जो नहीं किया है, वह भी उसमें जुड़ा है। जो कभी सोचा भी नहीं करने का, वह भी लिस्ट में है। लिस्ट बड़ी होती चली जाती है। संस्था का सेक्रेटरी, यह कोई प्रेम का संबंध नहीं है।
जहां प्रेम है, वहां लगता है, कुछ भी तो नहीं कर पाए। जो-जो करना था, सब अधूरा रह गया। जहां प्रेम का संबंध नहीं है, लाभ-लोभ का संबंध है, वहां जो नहीं किया है, उसका भी दावा है कि किया है; जो नहीं हुआ है, उसकी भी घोषणा है कि हो गया है।
पुण्य की भाव-दशा तो मां के हृदय जैसी होगी। तुम बता ही न पाओगे, क्या- क्या तुमने किया है। तुम जब भी परमात्मा के सामने मौजूद होओगे, तुम गिर पड़ोगे, तुम रोओगे; तुम कहोगे कि मेरी कोई पात्रता न थी! यह तेरी अनुकंपा है! अगर तू मुझे नर्क भी भेज देता, तो भी बुरा न था। उससे गणित सीधा बैठ जाता। उसके मैं योग्य था। वह मेरे सारे कर्तव्य की सार-संपदा थी, नर्क ले आया। लेकिन तू मुझे अपने पास बुला लिया है। यह तो मेरे कृत्य से इसका कोई संबंध नहीं जुड़ता। हां, इससे तेरी करुणा का संबंध होगा; मेरे कृत्य का कोई संबंध नहीं है।
अपने प्रश्नों को थोड़ा गौर से देखा करें। वे तुम्हारे भीतर की अचेतन खबरें लाते हैं।

तीसरा प्रश्नः भगवान कृष्ण ने सब समय के लिए गीता सुनने-सुनाने के लिए कुछ नियम बताए। लेकिन छापे के आविष्कार के बाद उसकी लाखों प्रतियां बिक रही हैं। फिर उसकी गोपनीयता कहां बची?

गोपनीयता कुछ ऐसी है कि नष्ट की ही नहीं जा सकती। गोपनीयता न तो बोलने
से नष्ट हो सकती है, न लिखने से नष्ट हो सकती है। गोपनीयता, जो कहा है, उसके स्वभाव में है।
गीता बिक रही है, इससे गीता और भी गोपनीय हो गयी है। यह सुनकर तुम थोड़े हैरान होओगे।
इजिप्त में एक पुरानी कहावत है कि जिस चीज को आदमी से छिपाना हो, वह उसकी आंख के सामने रख दो, फिर वह उसे न देख पाएगा।
तुम्हें याद है, तुमने कितने दिनों से अपनी पत्नी का चेहरा नहीं देखा? ख्याल है तुम्हें कि तुमने कब से अपनी मां की आंख में आंख डालकर नहीं देखा?
पत्नी इतनी मौजूद है, मां इतनी पास है, देखना क्या! तुम भूल ही गए हो कि उसका होना भी होता है। पत्नी मर जाती है, तब पता चलता है कि थी। पति जा चुका होता है, तब याद आती है कि अरे, यह आदमी इतने दिन साथ रहा, परिचय भी न हो पाया!

इसीलिए तो लोग किसी के मर जाने पर इतना रोते हैं। वे रोते उसके मर जाने के कारण नहीं हैं; वे रोते इसलिए हैं कि जिसके साथ इतने दिन थे, उसे देख भी न पाए भर आंख; जिसके पास इतने दिन थे, उसके हृदय की धड़कन भी न सुन पाए; उससे कोई पहचान ही न हो पायी; वह अजनबी ही रहा, अजनबी ही विदा हो गया! और अब कोई उपाय नहीं है। इस विराट संसार में कहीं मिलना होगा दुबारा उससे, अब कोई उपाय नहीं है। यह अब घटना कभी घटेगी, कहा नहीं जा सकता। घटी थी और चूक गए। इसलिए लोग रोते हैं।
जब तुम्हारा प्रियजन चल बसता है, तो तुम रोते इसलिए हो कि अवसर मिला
था और चूक गया; हम उसे प्रेम भी न कर पाए।
वे इजिप्शियन फकीर ठीक कहते हैं कि जिस चीज को छिपाना हो, उसे लोगों
की आंख के सामने रख दो। जो चीज जितनी निकट होगी, उतनी ही ज्यादा भूल जाती है। और जो चीज जितनी ज्यादा साफ होगी, उतनी ही उलझ जाती है।
गीता इतनी गूढ़ कभी भी न थी, जब छपी न थी; जब से छप गयी, बहुत गूढ़ हो गयी।
घर के सामने रखी है; किताब खुली है; बैठे हो, पढ़ रहे हो; हजार दफे पढ़ लिए। और तुम्हें यह भ्रम पैदा हो गया है हजार दफे पढ़ लेने से कि जान लिया, अब जानने को बचा क्या?
यही उसकी गोपनीयता है, बिना जाने तुम सोच रहे हो कि तुमने जान लिया। शब्द के परिचय को तुम अर्थ का परिचय समझ रहे हो! शरीर की पहचान को तुम आत्मा की पहचान समझ रहे हो!
शब्द अर्थ नहीं है। शब्द तो केवल अर्थ को खोलने की कुंजी है।
गीता, बाइबिल या कुरान जिस दिन से छप गई हैं, उस दिन से बहुत गोपनीय हो
गई हैं सब चीजें। जब ये छपी हुई न थीं, जब ऐसी सरलता से उपलब्ध न थीं, तो लोग हजारों मील की यात्रा करते थे। अब कहीं जाने की जरूरत नहीं है। गीता प्रेस गोरखपुर की गीता चार पैसे में बाजार-बाजार में उपलब्ध है। ज्ञान बाजार में बिक रहा है, खरीद लाओ! जितनी गठरी भरनी हो, भर लाओ!
जब शास्त्र छपे न थे, तब तुम्हें गुरु खोजना पड़ता था, क्योंकि शास्त्र
को तुम सीधा समझ ही न सकोगे। तुम्हें कोई व्यक्ति खोजना पड़ता था, जो शास्त्र का धनी हो; जो शास्त्र को तुम्हारे लिए गम्य बनाए; जो शास्त्र की गोपनीयता को उघाड़े; जो परदे उठाए, जो घूंघट हटाए।
तुम्हें कोई व्यक्ति खोजना पड़ता था। तुम बुद्ध को, महावीर को, कृष्ण
को खोजते फिरते थे। हजारों मील की यात्रा लोग करते थे। कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाए, जो उस गुप्त को प्रकट कर दे।
उस यात्रा में ही तुम्हारे जीवन में क्रांति घटती थी, क्योंकि वह यात्रा ही तपश्चर्या थी। उस यात्रा में टिके रहना ही तुम्हारी भक्ति थी, तुम्हारी श्रद्धा थी। वह यात्रा कठिन थी। जीवन लग जाता था। मुश्किल से कुंजियां हाथ आती थीं। जितनी मुश्किल थी, उतनी ही तुम खोज में जाते थे। अब खोज की जरूरत क्या है? अब गीता समझने तुम हिमालय जाओगे? अब गीता समझने के लिए तुम किसको खोजोगे? किसी व्यास को खोजोगे? किसी कणाद को, किसी कपिल को, किसी बुद्ध को? किसी पतंजलि के चरणों में बैठोगे? क्या जरूरत है! चार पैसे में मिलती है गीता, इसके लिए इतने परेशान होने की जरूरत क्या! खरीद लाओ!
लेकिन जो किताब तुम घर ले आओगे, उस किताब का कृष्ण से कोई भी संबंध नहीं है। क्योंकि उस किताब में से तुम जो अर्थ निकालोगे, वे तुम्हारे होंगे। तुम अपने से ज्यादा अर्थ थोड़े ही निकाल पाओगे। तुम अपने को ही पढ़ लोगे किताब में; तुम कृष्ण को थोड़े ही पढ़ सकोगे। तुम्हारी जहां तक पहुंच है, वहीं तक तो तुम उन शब्दों में भी पहुंच पाओगे। तुमने अब तक जो सोचा- समझा है, वहीं तक तुम सोच-समझ पाओगे। तुमसे पार किताब तुम्हें कैसे ले जाएगी?
नहीं, किताब जिस दिन से छप गयी है, उस दिन से गोपनीयता गहन हो गयी है, बहुत गहरी हो गयी है। अब तो मुश्किल से कभी कोई उसका घूंघट उठाने की यात्रा पर जाता है। और मुश्किल से कभी तुम्हें वह आदमी मिल सकेगा जो घूंघट उठाने में समर्थ है।
हां, तुम्हें गीता के पंडित अब बहुत मिल जाएंगे; कृष्ण न मिल सकेंगे। गीता की किताबों ने गीता के पंडित खड़े कर दिए हैं। उनसे जाकर तुम सब समझ

लोगे जो ऊपर-ऊपर का है। वे शब्द की खाल निचोड़कर रख देंगे, बाल की खाल निकाल देंगे।
लेकिन जब तुम आओगे, तो जैसे खाली हाथ गए थे, वैसे ही खाली हाथ वापस लौट आओगे। तुम्हारे प्राण भरे हुए न होंगे। तुम्हारे भीतर का दीया वैसा ही बुझा होगा। और खतरा यह है कि हो सकता है, तुम यह सोचकर लौट आओ कि समझकर आ गए--गोपनीयता और महा गोपनीयता हो गयी!
नहीं; छापेखाने से गोपनीयता मिटी नहीं, बढ़ गयी है। और अब तो बहुत गहरी खोज हो, तो ही तुम खोज पाओगे।
यात्रा करते थे लोग हजारों मील की।
बौद्धों का बड़ा विश्वविद्यालय था, नालंदा। दस हजार विद्यार्थी थे। चीन और लंका और कंबोदिया और जापान और दूर-दूर से लोग, मध्य एशिया और इजिप्त, सब तरफ से विद्यार्थी आते थे। पैदल यात्रा थी। जो चल पड़ा, वह लौटकर भी आएगा घर वापस, इसका पक्का न था। लोग रो लेते थे; मान लेते थे कि यह आदमी मरा।
जो भी तीर्थयात्रा को जाता, लोग रो लेते और गांव के बाहर जाकर विदा कर आते कि गया यह आदमी, अब क्या लौटेगा! घने जंगल थे, पहाड़-पर्वत थे, भयंकर खाइयां थीं, डाकू थे, जंगली जानवर थे। और फिर जो गया है ऐसी खोज में, वह कहीं लौटता है! यह खोज ऐसी है।
नालंदा जैसी जगह में, जहां ज्ञानियों का वास था, वहां वर्षों लग जाते। जवान आते लोग और बूढ़े हो जाते। और जब तक गुरु कह न दे कि हां, पूरी हो गयी बात... ।
तीन विद्यार्थी आखिरी परीक्षा पार कर लिए थे, लेकिन गुरु जाने के लिए नहीं कह रहा था। आखिर एक दिन एक ने पूछा कि हम सुनते हैं कि आखिरी परीक्षा भी हमारी हो गयी, लेकिन लगता है हुई नहीं, क्योंकि हमसे जाने के लिए नहीं कहा जा रहा है! बीस वर्ष हो गए हमें आए हुए। घर के लोग जीवित हैं या नहीं; जिनको पीछे छोड़ आए हैं, वे बचे भी या नहीं; मां-बाप बूढ़े हैं! अब हम जाएं अगर हमारी परीक्षा पूरी हो गयी हो?
तो गुरु ने कहा, आज सांझ तुम जा सकते हो।
लेकिन आखिरी परीक्षा शेष रह गयी थी। पर आखिरी परीक्षा ऐसी थी कि वह ली नहीं जा सकती थी; वह तो एक तरह की कसौटी थी, जिसमें से गुजरना पड़ता।
सांझ को तीनों विद्यार्थी विदा हुए। दूर नगर है, जहां रात जाकर टिकेंगे। सांझ होने लगी, सूरज ढल गया। एक झाड़ी के पास आए। गुरु झाड़ी में छिपा बैठा है। उसने झाड़ी के बाहर कांटे बिछा दिए हैं; छोटी-सी पगडंडी है, कांटे बिछा दिए हैं। एक विद्यार्थी पगडंडी से नीचे उतरकर, कांटों को पार करके आगे बढ़ गया। दूसरे विद्यार्थी ने छलांग लगा ली। तीसरा रुक गया और कांटों को बीनकर झाड़ी में डालने लगा।
उन दो ने कहा, यह क्या कर रहे हो? जल्दी ही रात हो जाएगी। दूर हमें जाना है; जंगल है, बीहड़ है, खतरा है। ये कांटे-वांटे बीनने में मत लगो।
पर उस तीसरे विद्यार्थी ने कहा कि सूरज डूब गया है, रात होने के करीब है। हमारे बाद जो भी आएगा, उसे दिखायी नहीं पड़ेगा। हम आखिरी हैं इस पगडंडी पर आज की रात, जिनको कि दिखायी पड़ रहा है। बस, अब ढला सूरज, ढला। रात उतर रही है। इन्हीं बीनना ही पड़ेगा। तुम चलो, मैं थोड़े पीछे हो लूंगा।
और तभी वे चौंके कि झाड़ी से गुरु बाहर आ गया और उसने कहा, दो जो चले गए हैं, वापस लौट आएं, वे परीक्षा में असफल हो गए। अभी उन्हें कुछ वर्ष और रुकना पड़ेगा। और तीसरा जो रुक गया है कांटे बीनने, वह उत्तीर्ण हो गया; वह जा सकता है।
क्योंकि अंतिम परीक्षा शब्द की नहीं है; अंतिम परीक्षा तो प्रेम की है। अंतिम परीक्षा पांडित्य की नहीं है; अंतिम परीक्षा तो करुणा की है। गुरु के चरणों में बैठकर लोग सीखते थे, वर्षों लग जाते थे। अजीब-अजीब परीक्षाएं थीं। लेकिन खोजी खोज ही लेते थे उन चरणों को, जहां घूंघट उठ जाते हैं।
देर लगती थी, कठिनाई होती थी। लेकिन कठिनाई की भी अपनी खूबी है।
कठिनाई भी निखारती है; भीतर की राख को अलग करके झाड़ देती है, कूड़ा-करकट को जला देती है।

अब कुछ कठिन नहीं है। गीता चार पैसे में खरीद लो, खुद पढ़ लो। सब सरल अर्थ लिख दिए गए हैं। तुम यह मत सोचना कि गीता की गोपनीयता नष्ट हो गयी; गोपनीयता बहुत बढ़ गयी है। गीता आंख के सामने रख दी गयी है, अब तुम्हें गीता दिखायी ही नहीं पड़ रही है।
अब तो बहुत थोड़े-से लोग, जिनको समझ है इस बात की कि तुम पढ़ोगे, तो तुम अपने को ही पढ़ोगे शास्त्र में, शास्त्र को कैसे पढ़ोगे? तुम्हें जो पता ही नहीं है, वह तुम शास्त्र में कैसे निकाल लोगे? जो तुम्हें ज्ञात है, उसी की प्रतिध्वनि तुम्हें शब्द में भी सुनाई पड़ेगी। जिन्हें यह बोध है, वे केवल गुरु की तलाश में जाएंगे।
शास्त्र की कुंजियां भी शास्ताओं के हाथ में हैं। शास्त्र अपने आप में समर्थ नहीं हैं। वह भी किसी शास्ता के हाथ में पड़कर जीवंत होता है। तुम शास्त्र को लिए घूमते रहो, इससे कुछ भी न होगा। जब तक कि किसी शास्ता को न खोज लो, जो तुम्हारे शास्त्र को पुनरुज्जीवित कर दे, जो अपने प्राण डाल दे उसमें, जो अपना अर्थ उसमें डाल दे और तुम्हारे सामने आविर्भूत हो जाए वह चैतन्य, जिससे पहली दफा शास्त्र उतरा होगा। अन्यथा गोपनीय गोपनीय रहेगा। गोपनीय इतनी आसानी से खुलता नहीं।
सत्य का स्वभाव उसकी गोपनीयता है। तुम उसे बाजार में बेच ही नहीं सकते।
मैंने सुना है कि एक रात ऐसा हुआ, एक पति घर वापस लौटा थका-मांदा यात्रा से। प्यासा था, थका था। आकर बिस्तर पर बैठ गया। उसने अपनी पत्नी से कहा कि पानी ले आ, मुझे बड़ी प्यास लगी है।
पत्नी पानी लेकर आयी, लेकिन वह इतना थका-मांदा था कि लेट गया, उसकी नींद लग गयी। तो पत्नी रातभर पानी का गिलास लिए खड़ी रही बिस्तर के पास। क्योंकि उठाए, तो ठीक नहीं, नींद टूटेगी। खुद सो जाए, तो ठीक नहीं, पता नहीं कब नींद टूटे और पानी की मांग उठे; क्योंकि पति प्यासा सो गया है। तो रातभर गिलास लिए खड़ी रही।
सुबह पति की आंख खुली, तो उसने कहा, पागल, तू सो गयी होती! उसने कहा, यह संभव न था। तुम्हें प्यास थी, तुम कभी भी उठ आते! तो तू उठा लेती, पति ने कहा। उसने कहा, वह भी मुझसे न हो सका, क्योंकि तुम थके भी थे और तुम्हें नींद भी आ गयी थी। तो यही उचित था कि तुम सोए रहो, मैं गिलास लिए खड़ी रहूं। जब नींद खुलेगी, पानी पी लोगे। नहीं नींद खुलेगी, तो कोई हर्जा नहीं, एक रात जागने से कुछ बिगड़ा तो नहीं जाता है।
यह बात पूरे गांव में फैल गयी। सम्राट ने गांव के उस पत्नी को बुलाकर बहुत हीरे-जवाहरातों से स्वागत किया। उसने कहा कि ऐसी प्रेम की धारा मेरी इस राजधानी में थोड़ी भी बहती है, तो हम अभी मर नहीं गए हैं; अभी हमारी संस्कृति का प्राण जीवित है, स्पंदित है।
पड़ोस की महिला इससे बड़ी ईर्ष्या से भर गयी कि यह भी कोई खास बात थी! एक रात गिलास हाथ में लिए खड़े रहे, इसके लिए लाखों रुपए के हीरे-जवाहरात दे दिए हैं! यह भी कोई बात है?
उसने अपने पति से कहा कि देखो जी, आज तुम थके-मांदे होकर लौटना। आते से
ही बिस्तर पर बैठ जाना। पानी मांगना। मैं पानी लेकर आ जाऊंगी। लेकिन तुम आंख बंद करके सो जाना और मैं खड़ी रहूंगी रातभर। और सुबह जब तुम्हारी आंख खुले, तो तुम इस-इस तरह के वचन मुझसे बोलना, कि तू क्यों रातभर खड़ी रही? तू उठा लेती। मैं कहूंगी, कैसे उठा सकती थी? तुम थके-मांदे थे। कि तू सो जाती! तो मैं कहूंगी, कैसे सो जाती? तुम्हें प्यास लगी थी। और इतने जोर से यह बात होनी चाहिए कि पड़ोस में लोगों को पता चल जाए, सुनाई पड़ जाए। क्योंकि यह तो हद हो गयी! जरा रातभर... और किसको पक्का पता है कि खड़ी भी रही कि नहीं, क्योंकि रात सो ली हो, झपकी ले ली हो और फिर सुबह उठ आयी हो, और बात फैला दी हो! मगर हमें भी यह सम्राट से पुरस्कार लेना है।
पति सांझ थका-मांदा वापस लौटा। लौटना पड़ा, जब पत्नी कहे, थके-मांदे लौटो; लौटना पड़ा। आते ही बिस्तर पर बैठा। कहा, प्यास लगी है। पत्नी पानी लेकर आयी। पति आंख बंद करके लेट गया। कोई नींद तो आई नहीं, लेकिन मजबूरी है। जब पत्नी कहती है, तो मानना पड़ेगा। और फिर लाखों-करोड़ों के हीरे- जवाहरात उसके मन को भी भा गए।

अब पत्नी ने सोचा कि बाकी दृश्य तो सुबह ही होने वाला है। अब कोई रातभर बेकार खड़े रहने में भी क्या सार है? और किसको पता चलता है कि खड़े रहे कि नहीं खड़े रहे? वह भी सो गयी गिलास-विलास रखकर।
सुबह उठकर उसने जोर से बातचीत शुरू की कि पड़ोस जान ले। सम्राट के द्वार से उसके लिए भी बुलावा आया, तो बहुत प्रसन्न हुई। लेकिन जब दरबार में पहुंची, तो बड़ी हैरान हुई; सम्राट ने वहां कोड़े लिए हुए आदमी तैयार रखे थे, और उस पर कोड़ों की वर्षा करवा दी। वह चीखी-चिल्लाई कि यह क्या अन्याय है? एक को हीरे-जवाहरात; मुझे कोड़े? किया मैंने भी वही है!
सम्राट ने कहा, किया वही है, हुआ नहीं है। और होने का मूल्य है; करने का कोई मूल्य नहीं है।
और जीवन में यह रोज होता है। अगर हृदय में स्पंदन न हो रहा हो, तो तुम
कर सकते हो; लेकिन उस करने से क्या अर्थ है?
सारे मंदिर, मस्जिद, गिरजे, गुरुद्वारे कर रहे हैं। धर्म क्रियाकांड है। हो नहीं रहा है। गीता पढ़ी जा रही है, की जा रही है; हो नहीं रही है। तुमने सुन लिया है कि गीता को पढ़ने वाले पाप से मुक्त हो गए, मोक्ष को उपलब्ध हो गए। तुमने सोचा, हम भी हो जाएं! तुमने भी पढ़ ली।
लेकिन तुम्हारा पढ़ना उस दूसरी पत्नी जैसा है। तुम परमात्मा को धोखा न
दे पाओगे। साधारण सम्राट भी धोखा न खा सका; वह भी समझ गया कि ऐसी घटनाएं रोज नहीं घटतीं। और पड़ोस में ही घट गई! और वही की वही घटी, बिल्कुल वैसी ही घटी! यह तो कोई नाटक हुआ।
जीवन पुनरुक्त नहीं होता। हर भक्त ने परमात्मा की प्रार्थना अपने ढंग
से की है, किसी और के ढंग से नहीं। हर प्रेमी ने प्रेम अपने ढंग से किया है। कोई मजनू और शीरी और फरिहाद, उनकी किताब रखकर और पन्ने पढ़-पढ़कर और कंठस्थ कर-करके प्रेम नहीं किया है।
कोई जीवन नाटक नहीं है कि उसमें पीछे प्राम्पटर खड़ा है, और वह कहे चले
जा रहा है, अब यह कहो, अब यह कहो। जीवन जीवन है। तुम उसे पुनरुक्त करके खराब कर लोगे।
गीता तुम हजार दफे पढ़ लो; लेकिन जैसे अर्जुन ने पूछा था, वैसी जिज्ञासा न होगी, वैसी प्राणपण से उठी हुई मुमुक्षा न होगी। तो जो कृष्ण को सरल हुआ कहना, जो अर्जुन को संभव हुआ समझना, वह तुम्हें न घट सकेगा। दोहराया जा ही नहीं सकता जगत में कुछ। प्रत्येक घटना अनूठी है। इसलिए सभी रिचुअल, सभी क्रियाकांड धोखाधड़ी है, पाखंड है। तुम भूलकर भी किसी की पुनरुक्ति मत करना, क्योंकि वहीं धोखा आ जाता है और प्रामाणिकता खो जाती है।
प्रामाणिक के लिए मुक्ति है, पाखंड के लिए मुक्ति नहीं है। और तुम कितना ही लाख सिर पटको और कहो कि मैंने भी तो वैसा ही किया था, मैंने भी तो ठीक अक्षरशः पालन किया था नियम का, फिर यह अन्याय क्यों हो रहा है? अक्षरशः पालन का सवाल ही नहीं है। हृदय के साथ उठे स्वर!

चौथा प्रश्नः क्या यह सही है कि ज्ञानी और गुरु बोले या लिखे गए शास्त्रों में सब ज्ञान नहीं प्रकट करते? क्या कुछ कीमती कुंजियां छिपा ली जाती हैं, जो पात्र शिष्यों को गोपनीयता में बताई जाती हैं?

नहीं, ज्ञानी कुछ भी छिपाता नहीं; लेकिन सत्य का स्वभाव छिपा होना है। ज्ञानी तो सब बता देना चाहता है, लेकिन चाहकर भी बता नहीं सकता। सत्य का स्वभाव अभिव्यक्ति में आता नहीं, उसकी अभिव्यंजना होती नहीं। बांधो- बांधो, शब्द तो आ जाता है बाहर, अर्थ पीछे ही छूट जाता है।
इसलिए लाओत्सु कहता है, जो कहा जा सके, वह धर्म नहीं, सत्य नहीं, ताओ नहीं। जो न कहा जा सके, वही सत्य है।
तो गुरु तो सब देना चाहता है। गुरु और कृपण होगा देने में, यह बात ही मानने की नहीं है। वह तो तुम पात्र न भी होओगे, तो भी उंडेल देना चाहता है।
लेकिन कुछ ऐसा है, जो देकर दिया ही नहीं जा सकता। वह तो तुम जब पात्र हो जाओगे, तब घटता है। कोई देता नहीं, कोई लेता नहीं, घटता है।

फिर से तुमसे कहता हूं कल की बात कि बगुलों की कतार निकल जाती है झील
के ऊपर से; न तो बगुलों की कोई आकांक्षा है कि झील में प्रतिबिंब बने और न झील का कोई मनोभाव है कि प्रतिबिंब बनाए; पर बगुलों की कतार गुजरती है, प्रतिबिंब बनता है।
वह जो परम गोपनीय है, प्रकट होता है, जब गुरु और शिष्य का मिलन होता है; शब्द का संवाद नहीं, अंतरतम का मिलन होता है; एक गहन चैतन्य का आलिंगन होता है। वह ठीक वैसी ही अवस्था है, जैसे कभी प्रेमी और प्रेयसी के संभोग में घटती है। वह शरीर का संभोग है। गुरु और शिष्य के बीच आत्मा का संभोग घटित होता है। संभोग शब्द ही उसके लिए सही है; उससे कम कोई शब्द काम नहीं देगा। पुरुष और स्त्री के बीच, दो प्रेमियों के बीच तो शरीर मिलते हैं, शरीर
की ऊर्जा का लेन-देन होता है। उसी लेन-देन से नए शरीर का जन्म होता है, बच्चे पैदा होते हैं, जीवन का आविर्भाव होता है। गुरु और शिष्य के बीच एक संभोग घटित होता है। वह चैतन्य का है। वहां दो आत्माएं मिलती हैं और एक हो जाती हैं। और उन्हीं दो आत्माओं के मिलन में शिष्य का पुनर्जन्म होता है। एक नया व्यक्ति पैदा होता है। शिष्य जो था कल तक, एक क्षण पहले तक, वह गया; अब जो आता है, वह बिल्कुल और है।
इन दोनों के बीच कोई सातत्य भी नहीं। इन दोनों के बीच कोई सिलसिला भी नहीं, कोईशृंखला भी नहीं। पुराना गया, नए का आविर्भाव होता है। यह नया पुराने का ही सुधरा हुआ रूप नहीं है; यह पुराने में ही की गयी टीम-टाम, ऊपर से लीपा-पोती नहीं है; यह बिल्कुल नया है। पुराने को इसका पता ही न था। एक बीच में खाई पड़ गयी। पुराना, नया; बीच में खाई है, कोई सेतु नहीं है।
इसको हमने द्विज होना कहा है। जब गुरु की चेतना से शिष्य की चेतना का संभोग घटित होता है, तो शिष्य द्विज हो जाता है, ट्वाइस बॉर्न, उसका दुबारा जन्म हुआ! तभी हम उसको ब्राह्मण कहते हैं; उसके पहले उसे ब्राह्मण मत कहना। क्योंकि द्विज जब तक कोई नहीं, वह क्या ब्राह्मण? वह नाममात्र को ब्राह्मण है। ठीक ब्राह्मण तो तभी है, जब फिर से जन्म हो गया।
एक जन्म मिलता है मां-बाप से; वह जन्म दो शरीरों के मिलन से होता है।
एक जन्म मिलता है गुरु से; वह जन्म दो चेतनाओं के मिलन से होता है।
शरीर तो कितने ही पास आ जाएं, तो भी दूर बने रहते हैं। क्षणभर को शायद
बस मिलन होता है। वह मिलन भी पूरा नहीं है। उस मिलन में भी फासला रहता है।
कम रहता है, बहुत कम रहता है, दूरी न के बराबर रहती है; लेकिन न के बराबर दूरी भी काफी दूरी है।
असली मिलन तो आत्माओं का है, जहां कोई दूरी नहीं रह जाती; जहां कल तक
दो थे, अब एक ही धड़कता है।
तो गुरु छिपाता कुछ भी नहीं; लेकिन कुछ है, जिसे वह चाहे तो भी प्रकट नहीं कर सकता। उस कुछ का स्वभाव गोपनीयता है। वह घटता है किसी मिलन के क्षण में।
बुद्ध एक पहाड़ से गुजर रहे हैं। जंगल है और पतझड़ के दिन हैं, और पत्ते
ही पत्ते रास्तों पर बिछे हैं। आनंद ने उनसे पूछा कि भंते, भगवान, क्या आपने सभी कह दिया है जो आप कहना चाहते थे या कुछ छिपा लिया है?
बुद्ध ने सूखे पत्ते अपने हाथ में उठा लिए मुट्ठियों में और कहा, आनंद, देखता है मेरे हाथ में कितने पत्ते हैं? आनंद ने कहा, देखता हूं। तो बुद्ध ने कहा, इतना मैंने कहा है। और देखता है, इस वन-प्रांत में कितने पत्ते पड़े हैं? इतना अनकहा रह गया है।
लेकिन तू यह मत सोचना कि मैंने उसे बचाया है; वह कहा ही नहीं जा सकता है। मेरी सब चेष्टा के बावजूद भी इतना कह पाया हूं, जितने मेरे हाथ में पत्ते हैं। इतना अनकहा रह गया है।
लेकिन जिसने मेरे हाथ के पत्तों की कुंजियां समझ लीं, वह इस अनकहे को
भी खोल लेगा। जो मैंने कहा है, वह कुंजी जैसा छोटा है, लेकिन महल खुल जाएंगे। जो उसे समझ गया, उसे यह सब अनकहा भी एक दिन सुना हुआ हो जाएगा। जो मैंने कभी कहा नहीं, वह भी सुन लिया जाएगा।
नहीं, गुरु तो कुछ छिपाता नहीं। छिपाना उसका स्वभाव नहीं है। लेकिन सत्य का स्वभाव छिपा होना है। सत्य ऐसा ऊपर सतह पर आता नहीं; वह गहराई में होता है।

इसलिए कहते हैं; कहने की भरसक चेष्टा होती है, थोड़ी-बहुत भनक आती भी है; बस भनक ही आती है; असली पीछे छूट जाता है। उस असली को जानने के लिए तो गुरु के साथ परम मिलन की अवस्था! उसके पूर्व वह घटित नहीं होता है।

पांचवां प्रश्नः गीता तो शाश्वत है, सर्वजनहिताय है, फिर भी कृष्ण ने व्यक्ति विशेष और समय विशेष की सीमा दे दी, और आप भी इससे सहमत होते लगते हैं! क्या सीमा देने से असंख्यों के लिए द्वार बंद नहीं हो गए?

कोई किसी के लिए द्वार बंद नहीं करता है। द्वार तो खुला ही हुआ है, लेकिन तुम अगर प्रवेश ही न करना चाहो, तो जबरदस्ती धक्के देकर प्रविष्ट भी नहीं किए जा सकते। तुम अगर द्वार को देखना ही न चाहो, तो तुम्हें कोई भी नहीं दिखा सकता। हजार कृष्ण तुम्हारे आस-पास खड़े हो जाएं, तो भी तुम्हें नहीं दिखा सकते। तुमने अगर न देखने का तय ही कर रखा हो, तो देखने का कोई उपाय नहीं है।
नहीं, कृष्ण किसी के लिए द्वार बंद नहीं कर रहे हैं। वे तो इतना ही कह रहे हैं, जो न देखना चाहें, उनको व्यर्थ कष्ट मत देना; उनको स्वतंत्रता देना। कृष्ण कह रहे हैं, जो सुनना न चाहे, उसे सुनाना मत।
क्या तुम चाहते हो, उसको सुनाया जाए, जो सुनना नहीं चाहता? यह तो पाप होगा। यह तो हिंसा होगी। यह द्वार खोलना न होगा; यह तो द्वार और भी बंद कर देना होगा। क्योंकि जो सुनना नहीं चाहता था, सुनने से और भी नाराज हो जाएगा। जो सुनना न चाहता था, उसके भीतर प्रतिरोध पैदा होगा। उसके भीतर तुम ऐसी दशा पैदा कर दोगे कि वह कभी अगर सुनना भी चाहता भविष्य में, तो अब वह भी न हो सकेगा।
बहुत बार जबरदस्ती लोगों को अच्छा बनाने की चेष्टा ही उन्हें बुरा बनाने का कारण होती है। जबरदस्ती किसी को साधु नहीं बनाया जा सकता। क्योंकि साधुता स्वतंत्रता से फलित होती है। जबरदस्ती से साधुता का कोई संबंध ही नहीं है।
तुम थोड़ा सोचो, क्या तुम्हें जबरदस्ती मोक्ष में ले जाया जा सकता है?
यह तो बात ही उलटी हो जाएगी। क्योंकि मोक्ष का अर्थ ही मुक्ति है। वहां भी अगर जबरदस्ती से ले जाए गए--हाथ में हथकड़ियां डालकर और पीछे बंदूक लगाकर-- तो वह नर्क होगा; मोक्ष कैसे होगा! वह तो तुम्हारी स्वतंत्रता से ही फलित होगा। तुम ही जाओगे नाचते हुए, अहोभाव से भरे हुए, तो ही जा सकते हो। कोई तुम्हें धक्के नहीं दे सकता।
कृष्ण इतना ही कह रहे हैं कि जो न सुनना चाहे, उसे मत सुनाना। यह भी करुणावश!
तुम्हें बड़ा कठिन होगा यह समझना कि इसमें कैसी करुणा हो सकती है! करुणा तो यह है कि कोई सुने या न सुने, तुम लाउडस्पीकर लगाकर उसकी छाती पर घूंघर मूतना। ऐसा लोग करते हैं। और उनसे अगर तुम कहोगे कि भई, तुम यह लाउडस्पीकर लगाकर क्यों गीता का पाठ कर रहे हो? तो वे कहते हैं, यह धार्मिक काम है; इसमें सबको सुनना ही चाहिए।
विद्यार्थियों को परीक्षा देनी है और वे धार्मिक काम कर रहे हैं! वे रातभर अखंड गीता का पाठ कर देते हैं। वे पाप कर रहे हैं।
असल में गीता तो गुफ्तगू है। वह तो जो सुनना चाहता है उसके बीच, और जो सुनाने की योग्यता रखता है उसके बीच, एक निजी संबंध है। उसके लिए बाजार में लाउडस्पीकर लगाकर और जो नहीं सुनना चाहते, उनको सुनवाना! धर्म की जो तुम वर्षा मुफ्त करवाते हो, वह अधर्म की हो जाती है।
तुम्हारी करुणा है, अगर तुम उसको जबरदस्ती न सुनाओ जो सुनना नहीं चाहता। क्यों? क्योंकि शायद तब किसी दिन वह सुनने को अपने आप राजी हो जाए। उसे जीवन से ही सीखने दो।
इसलिए अक्सर ऐसा होता है, अच्छे मां-बाप के घर अच्छे बेटे पैदा नहीं होते। क्योंकि अच्छे मां-बाप अच्छा बनाने की इतनी चेष्टा करते हैं; उसी में बिगाड़ देते हैं।
गांधी जैसे अच्छे बाप को खोजना मुश्किल है। लेकिन गांधी के लड़के सब तीन तेरह हो गए। बड़ा लड़का मुसलमान हो गया। मुसलमान होने में कुछ हर्जा

नहीं है। लेकिन गांधी का लड़का मुसलमान हो क्यों गया? शराब पीने लगा, जुआरी हो गया। हरिदास उसका नाम था, उसने अपना नाम अब्दुल्ला गांधी रख लिया। गांधी का ही हाथ था इसमें। गांधी समझ नहीं पाए। वे जबरदस्ती सुधारने
की कोशिश में लगे थे। जबरदस्ती सुधारने की कोशिश का यह फल हुआ। उठो तीन बजे ब्रह्ममुहूर्त में! पूजा, स्नान-ध्यान! बच्चे बच्चे हैं। क्रोध आता है। नींद के दिन हैं अभी। अभी सुबह बड़ी मधुर लगती है, मधुर नींद आती है। उस वक्त वेद-वचन और उपनिषद और गीता बड़े कर्कश मालूम होते हैं। उस समय मधुरतम वाणी भी बड़ी बेसुरी लगती है।
जबरदस्ती उठाए जाओ; जबरदस्ती श्रम में लगाए जाओ, जबरदस्ती पूजा-पाठ-प्रार्थना। न यह खा सकते हो, न वह पी सकते हो। बच्चे के साथ ऐसा व्यवहार किया जाए जो कि बूढ़ा भी जरा बेचैनी अनुभव करता है करने में। न सिनेमा देख सकते, न नाटक जा सकते; न होटल में जा सकते हो, न मिठाई खा सकते हो; न ज्यादा नमक, न ज्यादा मिर्च, न ज्यादा मसाला। सब तरह से बच्चों को ऐसा सताया! न स्कूल-कालेज में पढ़ने जा सकते हो, क्योंकि यह शिक्षा अधार्मिक है! तो गांधी ही बाप, वही शिक्षक, वही गुरु! उन्होंने चौबीस घंटे सता दिया इन बच्चों को। यह लड़का भाग खड़ा हुआ।
यह मुसलमान क्यों हो गया? और जब मुसलमान हुआ, और गांधी को खबर मिली और गांधी दुखी हुए, तो वह बहुत प्रसन्न हुआ। तो उसने कहा, फिर क्या हुआ गांधी का वह अल्लाह ईश्वर तेरे नाम सब को सन्मति दे भगवान? जब वे सदा यही कहते हैं कि अल्लाह और ईश्वर एक के ही नाम हैं, तो मेरे मुसलमान होने से तकलीफ क्यों हो रही है?
वह जानना चाहता था कि तकलीफ होती है या नहीं! होती है, तो तुम नाहक झूठी बातें कर रहे थे। जुआ खेलने लगा, शराब पीने लगा, मांसाहारी हो गया। गांधी ने शाकाहारी बनाने की ऐसी अथक चेष्टा की कि मांसाहारी बना डाला। इसमें गांधी जिम्मेवार हैं।
अतिशय नियम बगावत पर ले जाता है, विद्रोह पर ले जाता है, प्रतिक्रिया पैदा करता है।
कृष्ण कहते हैं--कृष्ण की समझ बहुत गहरी है--जो न सुनना चाहे, उसे मत सुनाना। नाराज भी होने की कोई जरूरत नहीं है। यह स्वतंत्रता है उसकी।
और जो भक्तिपूर्वक न सुनना चाहे, उसे भी मत सुनाना। कोई सुनना भी चाहे
और भक्तिपूर्वक न सुनना चाहे, उसे भी मत सुनाना। क्योंकि यह बात ही ऐसी है कि बहुत प्रेम में ही समझ में आती है। उसका समय क्यों खराब करना? अपना समय क्यों खराब करना?
और अगर कोई तपपूर्वक न सुनना चाहे, तो मत सुनाना। क्योंकि यह बात ऐसी है, यह जीवन को निखारने की है। अग्नि से गुजरना होगा। तपश्चर्या मार्ग है। जो इसके लिए राजी न हो, उसके लिए ऐसी बातें सुनाकर उसके संसार को खराब मत करना। उसको संसार में चलने दो, भोगने दो। वह अपने ही भोगने से किसी दिन त्याग के तत्व को समझेगा; तभी उसे समझाना।
कृष्ण किसी के लिए द्वार बंद नहीं कर रहे हैं; जो द्वार से नहीं जाना चाहते, उन्हें जबरदस्ती धक्के मत देना, इतना ही कह रहे हैं।
और यह शुद्धतम करुणा है।

आखिरी सवालः अक्सर हिंदुओं में वृद्धजनों को उनके मरणकाल में गीता सुनाई जाती है। क्या यह महज क्रियाकांड है अथवा इसमें कुछ तत्व है?

तत्व तो था, है नहीं अब। अब तो महज क्रियाकांड है।
तत्व था, और तत्व फिर भी हो सकता है। तत्व तब हो सकता है, जब किसी ने जीवनभर गीता के साथ अपनी सुर-धुन बजाई हो; गीता के साथ कोई रमा हो; गीता के साथ नाचा हो; गीत गीता का गूंजा हो प्राणों में; जीवनभर कोई गीता की छाया में जीया हो; गीता में विश्रांति पायी हो; गीता में शरण खोजी हो; गीता में ज्योतिर्मय का दर्शन हुआ हो; गीता के शब्द शब्द ही न रहे हों, गीता के शब्दों में छिपे हुए अर्थ की थोड़ी-थोड़ी प्रतीति, थोड़ा-थोड़ा स्वाद आना शुरू हुआ हो--ऐसा जीवनभर किसी ने साधा हो, तो फिर मृत्यु के क्षण में गीता से ही विदा देना सार्थकता है। क्योंकि मृत्यु के क्षण में जीवनभर का सारा निचोड़

संगृहीत होता है। मृत्यु के क्षण में प्राण जीवनभर के अनुभव को इकट्ठा करते हैं, फिर पंख फैलाते हैं और नयी यात्रा पर जाते हैं।
तो जीवनभर जो स्वर बजा हो, उसी स्वर के साथ समाप्ति हो, समारोप हो, ताकि अगले जीवन का आधार बन जाए गीता। क्योंकि इस जीवन में जो आखिरी भाव-दशा होगी, वही अगले जीवन में पहली भाव-दशा होगी। इस जीवन में जो अंत है, शिखर है, वही अगले जीवन की बुनियाद है।
लेकिन किसी आदमी का जीवनभर गीता से कोई संबंध ही न रहा हो; कृष्ण से कुछ लेना-देना न रहा हो; कोई आत्मीयता ही न हो; जीवनभर बाजार में बीता हो; धन-पद की चौकड़ी में ही जीवन गया हो; राजनीति की शतरंज में ही सब गंवा दिया हो; व्यर्थ की दौड़-धूप में, आपा-धापी में सब गंवा दिया हो--ऐसे हारे-थके आदमी को अब और गीता का कष्ट मत देना।
अब इसे कम से कम शांति से मर जाने दो। इसका गीता से कुछ लेना-देना नहीं है; इसे गीता बड़ी बेसुरी मालूम पड़ेगी, अनजाना स्वर मालूम पड़ेगा। इसके कान में गीता से रस पैदा नहीं होगा, विरसता आएगी। इस मरते आदमी को कम से कम शांति से मर जाने दो।
अच्छा तो यही होगा कि जब यह मर रहा हो, तो इसके पास रुपए खनकाना। इसके जीवनभर का सार वही है। जब यह मर रहा हो, तो कहना, घबड़ाओ मत, मरने के बाद तुम्हें नोबल प्राइज मिलने वाली है; कि घबड़ाओ मत, राष्ट्रपति ने तय कर लिया है, भारत-भूषण या भारत-रत्न मरने के बाद, पोस्ट्यूमस तुम्हें उपाधि मिलने वाली है; कि घबड़ाओ मत, इस जिंदगी में तो प्रधानमंत्री न हो सके, लेकिन अगली जिंदगी में बिल्कुल निश्चित है। कुछ ऐसी बातें कहना, जिससे इसके प्राण का तालमेल हो। जीवनभर जो अशांति रही, कम से कम इसको मरते वक्त झूठी सांत्वना दे देना, कम से कम विदा होते वक्त उधेड़बुन में न जाए। अब और गीता मत सुनाना। क्योंकि गीता से इसका क्या लेना-देना?
यह गीता उसे ऐसी लगेगी कि यह क्या हो रहा है? इससे इसका कोई संबंध ही नहीं है। लेकिन मरता बेचारा कुछ कर भी नहीं सकता; वह करीब-करीब बेहोश हालत में हुआ जा रहा है और तुम गीता रटे जा रहे हो। अब तुम जो भी दुष्टता करना चाहो, वह कर सकते हो।
और कृष्ण ने कहा है, जो सुनना न चाहे, उसे सुनाना मत। कृष्ण ने कहा है,
जो भक्ति से न सुनना चाहे, उसे सुनाना मत। कृष्ण ने कहा है, जो तपपूर्वक न सुनना चाहे, उसे सुनाना मत। इस मरते हुए आदमी में तुम क्या देख रहे हो? यह सुनना चाहता है? भक्तिपूर्वक सुनना चाहता है? तपपूर्वक सुनना चाहता है? जिसने जीवन में न सुना, वह मृत्यु में कैसे सुनना चाहेगा? मृत्यु तो सार-निचोड़ है जीवन का। तुम इसे दुख मत दो। तुम इसे चुपचाप मर जाने दो। लेकिन अक्सर ऐसा होता है कि जिसने जिंदगीभर राम का नाम न लिया, उसके कान में हम राम दोहराते हैं। हम सोचते हैं कि चलो जिंदगीभर नहीं हुआ, मरते वक्त तो कम से कम हो जाए। लेकिन जो इसने नहीं किया है, वह किया नहीं जा सकता। कोई दूसरा थोड़े ही इसके लिए नाम ले सकता है। जो इसने अपनी स्वतंत्रता से नहीं किया है, वह इसकी संपदा नहीं बन सकता।
तुम नाम लोगे राम का। तुम भी कहां लोगे! घर के लोगों को भी कहां फुर्सत है! उनको दुकान, बाजार, पच्चीस चीजें हैं! वे एक पंडित-पुरोहित को पकड़ लाएंगे, किराए का एक आदमी! वह इसके कान में राम-राम जपेगा। उसको भी कोई मतलब नहीं है; उसको भी अपने से मतलब है, काम पूरा हो, समय बीते, पैसा ले, अपने घर जाए। मरते वक्त उसको भी कोई किराए का आदमी ही सुनाएगा।
धर्म कहीं किराए के आदमियों से हो सकता है? तुम किसी से प्रेम करते हो। क्या तुम प्रेम करने के लिए किसी किराए के आदमी को भेज सकते हो? कि मुझे जरा फुर्सत नहीं, काम-धाम में लगा हूं, तू जरा चला जा और मेरी प्रेयसी को प्रेम कर आ! वह अकेली है और तड़फती होगी, उसे मेरी याद आती होगी, लेकिन अभी मैं उलझा हूं।
अगर तुम प्रेम किराए के आदमी से नहीं करवा सकते, तो प्रार्थना तुम कैसे करवा सकते हो? तुम परमात्मा के पास दलाल भेजते हो? तुम कहते हो, हम तो न आ सकेंगे, जरा उलझे हैं; मगर आप नाराज मत होना, एक किराए का आदमी भेज देते हैं!

इससे तो बेहतर था, तुम किसी को भी न भेजते। कम से कम शोभन था। यह तो बहुत अशोभन है। किराए का आदमी और धर्म में बीच में लाना? बिल्कुल अशोभन है। यह तो अपमानजनक है। यह तो तुम परमात्मा का तिरस्कार कर रहे हो। इससे बड़ा और तिरस्कार क्या हो सकता है?
नहीं, भूलकर भी नहीं। हां, जिस आदमी के जीवन में गीता गुंथी रही हो, उसे सुना देना चाहे। हालांकि उसे सुनाने की कोई जरूरत नहीं; उसके भीतर गूंज होती ही रहेगी। गीता उसके कंठ में ही होगी। कृष्ण उसके प्राण में ही होंगे, जब वह विदा होगा। यही तो उसका निचोड़ है। जीवनभर फूलों से यही तो उसने इत्र छांटा है। वह इसी में डूबा हुआ जाएगा। तुम्हारे सुनाने की जरूरत नहीं। लेकिन सुना दो, तो कोई हर्जा नहीं।
पर उसको तो सुनाना ही मत, जिसका गीता से कोई संबंध न रहा हो। वह तो बड़ी बेतुकी बात हो जाएगी। वह तो ऐसे हो जाएगा कि जिसने कभी शास्त्रीय संगीत में कोई रस न लिया हो, वह मर रहा है और तुम शास्त्रीय संगीतज्ञ उसके पास बिठा दो। वह कहेगा कि कम से कम मुझे शांति से मर जाने दो। यह दुखस्वप्न और क्यों पैदा कर रहे हो? यह इनका आलाप मेरे प्राणों को कंपाता है! ये मुझे यमदूत जैसे मालूम होते हैं!
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन सुनने गया था एक शास्त्रीय संगीतज्ञ को। जब वह आलाप भरने लगा, तो उसकी आंख से आंसू गिरने लगे। वह एकदम बहुत विह्वल होकर रोने लगा। पड़ोसी ने कहा उसे कि क्या हुआ नसरुद्दीन? हमने कभी सोचा भी न था कि तुम शास्त्रीय संगीत के इतने बड़े प्रेमी हो। तुम्हारी आंख से आंसू बह रहे हैं!
नसरुद्दीन ने कहा कि मैं तुम्हें बताता हूं भाईजान, यही बीमारी मेरे बकरे को भी हो गयी थी। बस, ऐसे ही आऽऽऽ... आऽऽ-- आऽ... करते-करते मेरा बकरा भी मरा था। यह आदमी मरेगा। शास्त्रीय संगीत से मुझे कुछ लेना-देना नहीं, मगर यह आदमी बीमार है।
तुम गीता सुना रहे हो उसको, जिसका शास्त्रीय संगीत से कोई संबंध नहीं!
वह समझेगा कि क्यों ये बकरे मर रहे हैं! ये क्यों आऽऽ... ऽऽ... ऽ... का आलाप कर रहे हैं?
जीवन में एक संगति है। जो कदम तुमने कभी नहीं उठाया, वह मरते वक्त न उठा सकोगे। उसका कोई उपाय नहीं है।

अब सूत्रः
तथा हे अर्जुन, जो पुरुष इस धर्ममय हम दोनों के संवाद-रूप गीता को पढ़ेगा अर्थात नित्य पाठ करेगा, उसके द्वारा मैं ज्ञान-यज्ञ से पूजित होऊंगा, ऐसा मेरा मत है।
हे अर्जुन, जो पुरुष इस धर्ममय हम दोनों के संवाद-रूप गीता को पढ़ेगा...
।
जिस संभोग की मैंने बात कही, वही कृष्ण कह रहे हैं, इस धर्ममय हम दोनों
के संवाद-रूप... ।
एक तो विवाद है, जहां जो भी तुमसे कहा जाता है, तुम उसके विपरीत सोचते हो। एक संवाद है, जहां तुमसे जो भी कहा जाता है, तुम उसके अनुकूल सोचते हो, सामंजस्य का अनुभव करते हो। तुम्हारा हृदय उसके साथ-साथ धड़कता है, विपरीत नहीं। एक गहन सहयोग होता है।
तो कृष्ण कहते हैं, इस धर्ममय हम दोनों के संवाद-रूप गीता को जो भी पढ़ेगा... ।
एक संवाद घटित हुआ है, एक अनूठी घटना घटी है। दो व्यक्तियों ने एक-दूसरे को अपने में उंडेला है, एक-दूसरे में डूबे हैं।
इस अनूठी घटना को कृष्ण धर्ममय कहते हैं। यही धर्म की घटना है, जहां
दो चेतनाएं इतने अपूर्व रूप से एक-दूसरे में डूब जाती हैं कि कोई अस्मिता और अहंकार की घोषणा नहीं रह जाती कि हम अलग-अलग हैं; अपनी कोई सुरक्षा की आकांक्षा नहीं रह जाती। बूंद जैसे सागर में डूब जाए, सरिता जैसे सागर में कूद जाए!

इस धर्ममय हम दोनों के संवाद-रूप गीता को जो पढ़ेगा, नित्य पाठ करेगा...
।
नित्य पाठ एक अनूठी बात है, जो पूरब में ही विकसित हुई। पश्चिम में नित्य पाठ जैसी कोई चीज नहीं है। पश्चिम में लोग किताबें पढ़ते हैं, पाठ नहीं करते। किताब पढ़ने का अर्थ है, पढ़ ली एक बार, खतम हो गई बात; अब उसे दुबारा क्या पढ़ना? जो पढ़ ही ली, उसे दुबारा क्या पढ़ना? एक फिल्म एक बार देख ली, बात खतम हो गई, दुबारा क्या देखने को बचता है? एक उपन्यास एक बार पढ़ लिया, बात खतम हो गई। फिर दुबारा उसे वही पढ़ेगा, जो मंदबुद्धि हो, जिसकी अकल में कुछ भी न आया हो। दुबारा कोई क्यों पढ़ेगा?
लेकिन पाठ का अर्थ है, करोड़ों बार पढ़ना, रोज पढ़ना, जीवनभर पढ़ना।
नित्य पाठ का क्या अर्थ है फिर? यह साधारण पढ़ना नहीं है। नित्य पाठ का अर्थ है, धर्म के वचन ऐसे वचन हैं कि तुम एक बार उन्हें पढ़ लो, तो यह मत समझना कि तुमने पढ़ लिया। उनमें पर्त दर पर्त अर्थ हैं। उनमें गहरे-गहरे अर्थ हैं। तुम जैसे-जैसे गहरे उतरोगे, वैसे-वैसे नए अर्थ प्रकट होंगे। जैसे-जैसे तुम उनमें प्रवेश करोगे, वैसे-वैसे पाओगे, और नए द्वार खुलते जाते हैं।
गीता को तुम जितनी बार पढ़ोगे, उतने ही अर्थ हो जाएंगे। बहुआयामी है प्रत्येक शब्द धर्म का। और तुम्हारी जितनी प्रज्ञा विकसित होगी, उतनी ही ज्यादा तुम्हें अर्थ की अभिव्यंजना होने लगेगी। कृष्ण का ठीक-ठीक अर्थ जानते-जानते तो तुम कृष्ण ही हो जाओगे, तभी जान पाओगे, उसके पहले न जान पाओगे।
ऐसा समझो कि जब तुम गीता शुरू करोगे, तो तुम ऐसे पढ़ोगे, जैसा अर्जुन है; और जब गीता पूरी होगी, तो तुम ऐसे पढ़ोगे, जैसे कृष्ण हैं। और बीच में हजारों सीढ़ियां होंगी।
बहुत बार, बहुत बार तुम्हें लगेगा, इतनी बार पढ़ने के बाद भी यह अर्थ इसके पहले क्यों नहीं दिखाई पड़ा? यह शब्द कितनी बार मैं पढ़ गया हूं, लेकिन इस शब्द ने कभी ऐसी धुन नहीं बजाई मेरे भीतर! आज क्या हुआ?
आज भाव-दशा और थी। आज तुम्हारा चित्त शांत था, तुम आनंदित थे, तुम प्रफुल्लित थे, तुम थोड़े ज्यादा मौन थे, नया अर्थ प्रकट हो गया। कल तुम परेशान थे, मन उपद्रव से भरा था, यही शब्द तुम्हारी आंख के सामने से गुजरा था; लेकिन हृदय पर इसका कोई अंकुरण नहीं हुआ था, कोई छाप नहीं छोड़ सका था, कोई संस्कार नहीं बना सका था।
ऐसे बहुत-बहुत भाव-दशाओं में, बहुत-बहुत चेतना की स्थितियों में तुम गीता का पाठ करते रहना, बहुत-बहुत तरफ से गीता को देखते रहना, तुम्हें नए-नए अर्थ मिलते चले जाएंगे।
हम धर्मग्रंथ उसी को कहते हैं, जो पढ़ने से न पढ़ा जा सके, जो केवल पाठ से पढ़ा जा सके। इसलिए हर किताब का पाठ नहीं किया जाता, सिर्फ धर्मग्रंथ का पाठ किया जाता है।
असल में जिसका पाठ किया जा सकता है, वही धर्मग्रंथ है। जिसमें रोज-रोज नए-नए अर्थ की कलमें लगती जाएं, नए फूल खिलते जाएं; तुम हैरान ही हो जाओ कि तुम जितने भीतर जाते हो, और नए रहस्य खुलते चले जाते हैं, इनका कोई अंत नहीं मालूम होता, तभी तुम धर्मग्रंथ पढ़ रहे हो। इसे तुम्हें रोज ही पढ़ना होगा। यह तुम्हें तब तक पढ़ना होगा, जब तक कि आखिरी अर्थ प्रकट न हो जाए, जब तक कि कृष्ण का अर्थ प्रकट न हो जाए।
जैसे हम प्याज को छीलते हैं, ऐसे गीता को रोज छीलते चले जाना। एक पर्त उघाड़ोगे, नयी ताजी पर्त प्रकट होगी। वह पहले से ज्यादा ताजी होगी, नयी होगी, गहरी होगी। उसे भी उघाड़ोगे, और भी नयी पर्त मिलेगी। ऐसे उघाड़ते जाओगे, उघाड़ते जाओगे, एक दिन सब पर्तें खो जाएंगी, भीतर का शून्य प्रकट होगा।
वही शून्य कृष्ण का अर्थ है। उस शून्य में ही समर्पण हो जाता है, उस शून्य में ही कोई डूब जाता है।
इसलिए कृष्ण कहते हैं, जो हम दोनों के इस धर्ममय संवाद-रूप गीता को पढ़ेगा, नित्य पाठ करेगा, उसके द्वारा मैं ज्ञान-यज्ञ से पूजित होऊंगा, ऐसा मेरा मत है।

उसे कोई और यज्ञ करने की जरूरत नहीं; उसने रोज ज्ञान-यज्ञ कर लिया। जितनी बार उसने मेरे शब्दों को, तुझसे कहे शब्दों को अर्जुन, बड़े प्रेम और श्रद्धा और आस्था से पढ़ा; और जितनी बार इस गीत का उसके भीतर भी थोड़ा-थोड़ा उदय हुआ; वह भी नाचा और डोला और मतवाला हुआ; उसने भी यह शराब पी, जो हम दोनों के बीच घटी है; वह भी इसी मस्ती में मस्त हुआ, जिसमें हम दोनों डोलते गए हैं और डूबते गए हैं, उतनी ही बार उसने ज्ञान-यज्ञ किया, ऐसा मेरा मत है। उसे किसी और यज्ञ की कोई जरूरत भी नहीं है।
तथा जो पुरुष श्रद्धायुक्त और दोष-दृष्टि से रहित इस गीता का श्रवण-मात्र भी करेगा, वह भी पापों से मुक्त हुआ पुण्य कर्म करने वालों के श्रेष्ठ लोकों को प्राप्त होवेगा।
और जो पुरुष श्रद्धायुक्त... ।
बड़े प्रीतिभाव से, अनन्य श्रद्धा से। संदेह की एक रेखा भी न उठती हो। दोष-दृष्टि से रहित... ।
दोष न खोजने को तैयार हो। क्योंकि दोष जो खोजने को तैयार है, उसे मिल
ही जाएंगे। लेकिन इन दोषों के मिल जाने से किसी और की कोई हानि नहीं है, उसकी ही हानि है। तुम अगर गुलाब के पौधे के पास जाओगे और कांटे ही खोजना चाहते हो, तो मिल ही जाएंगे। वे वहां हैं, काफी हैं। मगर इससे सिर्फ तुम्हारी हानि हुई। जो गुलाब के फूल का दर्शन हो सकता था, और जो दर्शन तुम्हारे जीवन को रूपांतरित कर देता, उससे तुम वंचित हो गए।
जो दोष-दृष्टि से रहित, श्रद्धाभाव से... ।
कांटों को नहीं गिनेगा जो, फूलों को छुएगा जो, फूलों की गंध को अपने भीतर ले जाएगा। अपने द्वार खोलेगा। भयभीत नहीं, संदिग्ध नहीं, असंशय, आस्था से भरा हुआ।
वह श्रवण-मात्र से भी... !
क्योंकि ऐसी घड़ी में, ऐसी भाव-दशा में श्रवण भी काफी है। ऐसा सुन लिया,
तो सुनने से भी पार हो जाता है। क्योंकि ऐसा सुना हुआ तीर की तरह प्राणों के प्राण तक उतर जाता है।
श्रवण-मात्र भी करेगा, वह पापों से मुक्त हुआ पुण्य कर्म करने वालों
के श्रेष्ठ लोकों को प्राप्त हो जाएगा।
मात्र श्रवण से भी!
बुद्ध ने बड़ा जोर दिया है, सम्यक श्रवण। महावीर ने कहा है कि मेरा एक घाट श्रावक का है। जिसने ठीक से सुन लिया, वह भी नाव पर सवार हो गया, वह भी उस पार पहुंच जाएगा। कृष्णमूर्ति राइट लिसनिंग पर रोज-रोज समझाते हैं, ठीक से सुन लो।
जानने का अर्थ सिर्फ ठीक से सुन लेना है। लेकिन ठीक से सुन लेना बड़ी मुश्किल से घटता है। क्योंकि हजार बाधाएं हैं; आलोचक की दृष्टि है; दोष देखने का भाव है; निंदा का रस है। उसमें तुम कांटों में उलझ जाते हो। कांटे हैं। मेरे पास तुम सुन रहे हो; अगर दोष देखने की दृष्टि हो, दोष मिल जाएंगे। इस पृथ्वी पर ऐसा कुछ भी नहीं है, जहां कांटे न हों। क्योंकि कांटे फूलों की रक्षा के लिए हैं। कांटे फूलों के दुश्मन नहीं हैं, विपरीत भी नहीं हैं। वे फूलों की रक्षा के लिए हैं; वे फूलों के पहरेदार हैं; उनके बिना फूल नहीं हो सकते। और जितना सुगंधयुक्त गुलाब होगा, उतने ही बड़े कांटे होंगे। जितना बड़ा गुलाब का फूल होगा, उतने ही बड़े कांटे होंगे। वे रक्षा कर रहे हैं।
तो तुम्हें कांटों से उलझने की कोई जरूरत नहीं है। कांटे हैं; तुम फूल
को देखो।
और एक मजे की बात है। अगर तुमने फूल को ठीक से देखा, जीया, अपने भीतर जाने दिया, तो तुम एक दिन पाओगे कि सब कांटे फूल हो गए। तुम्हारी दृष्टि फूल की हो गयी, अब तुम्हें कांटे दिखायी ही नहीं पड़ते। और अगर तुमने कांटों को ही गिना और उनको ही चुभा-चुभाकर देखा, घाव बनाए, तो तुम फूल से भी डर जाओगे; फूल से भी ऐसे डरोगे, जैसे फूल भी कांटा है। एक दिन तुम पाओगे, फूल बचे ही नहीं तुम्हारे लिए, कांटे ही कांटे हो गए।
तुम्हारी दृष्टि ही अंततः तुम्हारा जीवन बन जाती है।

तो जिसने श्रद्धा से, प्रेम से, अहोभाव से, दोष-दृष्टि से नहीं, सत्य
की आकांक्षा-अभीप्सा से मात्र सुना भी, वह भी मुक्त हो जाता है।
इससे बड़ी भूल पैदा हुई। कृष्ण के इन वचनों से वही हुआ जिसका डर था। लोगों ने समझा, तो फिर ठीक है, गीता सुन लेने से सब हो जाता है। मगर वे भूल गए कि शर्तें हैंः श्रद्धायुक्त, दोष-दृष्टि से रहित... ।
इसका मतलब यह नहीं कि सोए-सोए सुन लेना। सोए रहोगे, न संदेह उठेगा, न दोष-दृष्टि होगी; आंख बंद किए झपकी लेते रहना। धार्मिक सभाओं में लोग सोए रहते हैं। इसका मतलब सोए-सोए सुनना नहीं है; इसका मतलब है, बहुत जागरूक होकर सुनना, ताकि दोष-दृष्टि प्रविष्ट न हो जाए। दोष-दृष्टि नींद का हिस्सा है, मूर्च्छा का हिस्सा है।
बहुत अनन्य जागरूक, चैतन्य होकर सुनना, ताकि श्रद्धा का आविर्भाव हो जाए। तो ही सुनने से भी कोई पार हो जाता है।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग आठ
गीता दर्शन अध्याय 18
बीसवां प्रवचन

मनन और निदिध्यासन

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनंजय।। 72।।
अर्जुन उवाच
नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव।। 73।।
इस प्रकार गीता का माहात्म्य कहकर भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से पूछा, हे पार्थ, क्या यह मेरा वचन तूने एकाग्र चित्त से श्रवण किया? और हे धनंजय, क्या तेरा अज्ञान से उत्पन्न हुआ मोह नष्ट हुआ?
इस प्रकार भगवान के पूछने पर अर्जुन बोला, हे अच्युत, आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया है और मुझे स्मृति प्राप्त हुई है, इसलिए मैं संशयरहित हुआ स्थित हूं और आपकी आज्ञा पालन करूंगा।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः गीता के सभी अध्यायों को योग-शास्त्र क्यों कहा है?

योग शब्द का अर्थ है, जो जोड़े, जो परमात्मा से जोड़ दे, जो सत्य से जोड़ दे, जो स्वयं से जोड़ दे।
सभी शास्त्र योग-शास्त्र हैं। शास्त्र शास्त्र ही न होगा, अगर योग-शास्त्र न हो। क्योंकि परमात्मा से न जोड़ता हो, तो उसे शास्त्र कहने का कोई अर्थ ही नहीं है।
लेकिन योग की एक विपरीत परिभाषा भी है। भर्तृहरि ने कहा है, योगावियोगाः। योग वह है, जो तोड़े, जिससे वियोग हो जाए।
वह बात भी बड़ी मधुर है। जो संसार से तोड़ दे, वह योग। जो शरीर से तोड़ दे,
वह योग। जो परायों से तोड़ दे, वह योग।
तो योग एक दुधारी तलवार है। एक तरफ जोड़ता है, एक तरफ तोड़ता है। संसार
से तोड़ता है, स्वयं से जोड़ता है। असत्य से तोड़ता है, सत्य से जोड़ता है।
अज्ञान से तोड़ता है, ज्ञान से जोड़ता है।
तो विपरीत दिखाई पड़ने वाली परिभाषाएं भी विपरीत नहीं हैं। तोड़े बिना जोड़ना भी संभव नहीं है। मिटाए बिना बनाने का कोई उपाय नहीं है। मरे बिना अमृत को पाने का कोई मार्ग नहीं है।
गीता योग-शास्त्र है।
अर्जुन मोह से भरा है। मोह का अर्थ है, संसार से जुड़ा होना। मोह का अर्थ है, जिससे तुम्हारे और संसार के बीच सेतु बन जाए। मोह सेतु है, जिससे तुम पराए की यात्रा पर निकलते हो। आसक्ति की, ममत्व की, संसार की दौड़ पर जाते हो।
अर्जुन को दिखाई पड़ रहा है, मेरे हैं, पराए हैं, मित्र हैं, प्रियजन हैं, शत्रु हैं। इन सब को मारकर अगर मैं सिंहासन को पा भी लिया, तो अपनों को ही मारकर पाए गए सिंहासन में क्या अर्थ होगा! इस योग्य मालूम नहीं पड़ती इतनी बड़ी हिंसा कि सिंहासन के लिए पाने चलूं।
तो यहां थोड़ा समझने जैसा है। जो ऊपर से देखेगा, उसे तो लगेगा कि अर्जुन लोभ के ऊपर उठ रहा है। क्योंकि वह कह रहा है, क्या करूंगा इस सिंहासन को! क्या करूंगा इस राज्य-साम्राज्य को! क्या करूंगा धन-संपदा को! अगर अपनों को ही मारकर यह सब मिलता हो, इतने खून-खराबे पर अगर यह महल मिलता हो। रक्त से भर जाएगा सब और खाली सिंहासन पर मैं बैठ जाऊंगा, इसका क्या मूल्य है?
ऊपर से देखने पर लगेगा कि अर्जुन का लोभ टूट गया है। लेकिन लोभ तो टूट नहीं सकता, जब तक मोह है। और भीतर तो वह यह कह रहा है, ये मेरे हैं, इन्हें

मैं कैसे मारूं! अगर ये पराए होते, तो उसे मारने में कोई अड़चन न होती। यह प्रश्न ही न उठता उसके मन में।
इनके साथ ममत्व है, भाईचारा है, बंधु-बांधव हैं। कितनी ही शत्रुता हो,
तो भी साथ ही बड़े हुए हैं, एक ही परिवार में बड़े हुए हैं। एक ही घर के दीए हैं। मोह है।
अगर अर्जुन का लोभ सच में ही समाप्त हो गया होता, तो मोह की जड़ें नहीं
हो सकती थीं; क्योंकि लोभ का वृक्ष मोह की जड़ों पर ही खड़ा है।
कृष्ण को देखते अड़चन न हुई होगी कि यह बात तो बड़ी अलोभ की करता है, लेकिन मोह पर आधार है। इसलिए यह झूठा आधार है।
जब तक मोह न टूट जाए, तब तक लोभ टूटेगा नहीं। और पत्तों को काटने से कभी भी कुछ नहीं होता, जड़ें ही काटनी चाहिए। लोभ तो पत्तों जैसा है, मोह जड़ों जैसा है। मोह संसार से जोड़ता है।
कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि मोह के कारण ही तुम संसार भी छोड़ दो।
लेकिन वह छोड़ना झूठा होगा।
किसी की पत्नी मर गई। बहुत लगाव था, बड़ी आसक्ति थी। और अब लगा कि पत्नी
के बिना कैसे जी सकूंगा; नहीं जी सकता हूं। वैसा आदमी संसार छोड़कर हिमालय चला गया।
उसने संसार छोड़ा? नहीं छोड़ा! क्योंकि वह कहता है, पत्नी के बिना कैसे
जी सकूंगा। उसने संसार छोड़ा नहीं है। पत्ते काटे हैं; जड़ को सम्हाला। वह यह कह रहा है, पत्नी के बिना मैं जी ही नहीं सकता। पत्नी होती, तो बड़े मजे से जीता।
उसकी शर्त थी संसार के साथ। वह शर्त पूरी नहीं हुई। वह संसार छोड़ नहीं रहा है। वह बड़ा गहरा संसारी है। शर्त को पूरा करना चाहता था। वह पूरी नहीं हुई। तो छोड़ता है। लेकिन छोड़ना पछतावे में है, पीड़ा में है।
जो त्याग पीड़ा से और दुख से पैदा हो, वह त्याग नहीं है। जो आनंद और अहोभाव से पैदा हो।
संसार छोड़ा जाए किसी असफलता के कारण--कि दिवाला निकल गया, कि जीवन में असफलता मिली, कि बेटा मर गया, कि घर में आग लग गई--ऐसी अवस्थाओं में अगर कोई संसार छोड़ दे, तो वह छोड़ना छोड़ना है ही नहीं। क्योंकि मेरा घर था, जिसमें आग लग गई, उसकी पीड़ा है। घर मेरा था ही नहीं कभी। पत्नी मेरी थी, जो चल बसी। पत्नी मेरी कभी थी ही नहीं। तो सारी भ्रांति होगी।
अर्जुन बात तो अलोभ की करता मालूम पड़ता है; लेकिन भीतर मोह छिपा है।
तो कृष्ण उसे मोह से तोड़ने की चेष्टा कर रहे हैं। पूरी गीता में मोह से तोड़ने का उपाय है। और जिस दिन मोह से कोई टूट जाता है, स्वयं से जुड़ जाता है।
मोह दूसरे से जोड़ता है, अन्य से, पराए से, अपने से, भिन्न से। पत्नी हो, बेटा हो, पति हो, मित्र हो, धन हो, राज्य हो, स्वयं के अतिरिक्त से जोड़ने वाला तत्व मोह है।
मोह टूट जाए, तो दूसरे से तो हम अलग हुए। और मोह की जगह जीवन में श्रद्धा आ जाए, तो हम स्वयं से जुड़े, सत्य से जुड़े, परमात्मा से जुड़े। जैसे मोह जोड़ता है संसार से, वैसे ही श्रद्धा जोड़ती है परमात्मा से। मोह अहंकार का विस्तार है, श्रद्धा समर्पण का।
इसलिए गीता के प्रत्येक अध्याय को कहा गया है, योग-शास्त्र। वह तोड़ता
भी है, जो गलत है उससे। और जोड़ता भी है, जो सही है उससे।

दूसरा प्रश्नः कल आपने समझाया कि सम्यक श्रवण से भी संबोधि घटित हो सकती है। इस संदर्भ में वेदांत के तीन चरणः श्रवण, मनन और निदिध्यासन का क्या अर्थ है?

सम्यक श्रवण से समाधि उपलब्ध हो सकती है। अगर कोई परिपूर्ण, समग्र चित्त से सुन ले; उसे सुन ले, जिसे सत्य उपलब्ध हुआ हो। कृष्ण को सुन ले, बुद्ध को सुन ले, महावीर को सुन ले; और उस सुनने में अपने मन की बाधाएं खड़ी न करे, विचार न उठाए, निस्तरंग होकर सुन ले, स्थिर चित्त होकर सुन ले, तो उतने से ही संबोधि घटित हो जाती है।

क्योंकि सत्य तुमने खोया थोड़े ही है, केवल तुम भूल गए हो। सत्य को कहीं तुम छोड़ थोड़े ही आए हो; उसे छोड़ने का उपाय नहीं है। सत्य तो तुम्हारा स्वभाव है।
जैसे कोई नींद में खो गया हो, भूल जाए, मैं कौन हूं। नशे में खो गया हो, भूल जाए घर, पता-ठिकाना, अपना नाम। उसे कुछ करना थोड़े ही पड़ेगा; सिर्फ याद दिलानी होगी।
पहले महायुद्ध की घटना है। महायुद्ध हुआ, तो अमेरिका में पहली बार राशनिंग हुई; कार्ड बने; नियंत्रण हुआ। बहुत बड़ा वैज्ञानिक थामस अल्वा एडीसन, वह तो कभी बाजार गया भी नहीं था, कभी कुछ खरीदा भी न था। लेकिन राशन कार्ड बनवाने उसे जाना पड़ा। स्वयं ही आना होगा अपना कार्ड बनवाने।
तो वह खड़ा हो गया। लंबी कतार थी। एक-एक का नाम बुलाया जाता और लोग जाते। जब वह बिल्कुल कतार के शुरू में आ गया और उसके आगे का आखिरी व्यक्ति भी बुलाया जा चुका, फिर आवाज आयी, थामस अल्वा एडीसन! पर वह खड़ा रहा, जैसे कि यह नाम किसी और का हो। दुबारा आवाज आयी, वह खुद भी इधर-उधर देखने लगा कि किसको बुलाया जा रहा है!
पीछे खड़े एक आदमी ने कहा कि महानुभाव, जहां तक मुझे याद आती है, अखबारों में आपका चित्र देखा है। तो मुझे तो लगता है, आप ही थामस अल्वा एडीसन हैं। आप किसको देखते हैं? उसने कहा कि भई, ठीक याद दिलाई, मुझे ख्याल ही न रहा।
एडीसन को भूल जाने का कारण था। वह इतना प्रख्यात विचारक था, इतना बड़ा वैज्ञानिक था कि कोई उसका नाम लेकर तो बुलाता नहीं था। वर्षों से किसी ने उसका नाम तो लिया नहीं था; सम्मानित व्यक्ति था। उसके विद्यार्थी तो उसे प्रोफेसर कहते। वह भूल ही गया था, अपने काम में, धुन में, इतना लगा रहा था। अक्सर बहुत विचारशील लोग भुलक्कड़ हो जाते हैं। इतने खो जाते हैं विचारों में कि छोटी-छोटी चीजें याद नहीं रह जातीं।
अब यह बड़ा कठिन लगता है कि कोई अपना नाम भूल जाए। लेकिन नाम भी तो सिखावन ही है। तुम कोई नाम लेकर आए तो थे नहीं संसार में। सिखाया गया है कि तुम्हारा नाम एडीसन है, राम है, कृष्ण है। सिखावन है।
हर सीखी चीज भूली जा सकती है। नाम भी भूला जा सकता है। हम भूलते नहीं, क्योंकि चौबीस घंटे उसका उपयोग होता है। और हम भूलते नहीं, क्योंकि हम बड़े अहंकारी हैं और नाम के साथ हमने अहंकार जोड़ लिया है।
लेकिन थामस अल्वा एडीसन बड़ा सरल चित्त आदमी था। बहुत कहानियां हैं उसके भुलक्कड़पन की। वह इतना सरल चित्त था, इतना बड़ा विचारक था कि हजार उसने आविष्कार किए। लेकिन वह बड़ी मुश्किल में पड़ जाता था। वह कुछ खोज लेता; लिख देता कागज पर। फिर वह कागज न मिलता। उसके घर भर में कागज छाए हुए थे, जहां वह लिख-लिखकर छोड़ता जाता। कहते हैं कि अगर उसकी पत्नी न होती, तो वह एक भी आविष्कार न कर सकता था, क्योंकि पत्नी सम्हालकर कागजात रखती। लेकिन कागजात इतने हो गए कि पत्नी भी न सम्हाल पाए।
तो मित्रों ने कहा, तुम ऐसा क्यों नहीं करते कि अलग-अलग फुटकर कागज पर लिखने की बजाए, डायरी में लिखो। उसने कहा, यह बात बिल्कुल ठीक है। उसने डायरी में लिखी। पूरी डायरी खो गई। उसने अपने मित्रों से बड़ी नाराजगी जाहिर की। उसने कहा कि एक-एक कागज पर लिखता था, तो एक-एक कागज ही खोता था। यह पूरी डायरी ही खो गई। इसमें कोई पांच सौ सूत्र लिखे थे। यह तुम्हारा सूत्र काम न आया!
यह आदमी भूल गया, अपनी धुन में था। लेकिन जैसे ही पीछे के आदमी ने याद दिलाई कि आपका चेहरा अखबार में देखा है, नाम आपका ही एडीसन मालूम होता है। तत्क्षण स्मृति आ गई।
परमात्मा को हम भूल सकते हैं, खो नहीं सकते। क्योंकि परमात्मा कोई परायी बात नहीं, तुम्हारे भीतर का अंतर्तम है, तुम्हारे ही मंदिर में विराजमान; तुम्हीं हो। तुम्हारी निजता का ही नाम है; तुम्हारे स्वभाव की ही प्रतिमा है।
इसलिए श्रवण से भी संबोधि घटित हो सकती है। कोई इतना ही कह दे कि तुम
ही हो।
यही तो उपनिषद कहते हैं, तत्वमसि श्वेतकेतु! तू ही है, श्वेतकेतु।

यह घटना बड़ी प्रीतिकर है। श्वेतकेतु सब जानकर घर आया है। लेकिन पिता
ने कहा, यह जानना किसी काम का नहीं है। तूने ब्रह्म को जाना या नहीं? श्वेतकेतु ने कहा, अगर मेरे गुरु को पता होता, तो वे जरूर मुझे सिखाते। उन्होंने हाथ खोलकर लुटाया है। जो भी उन्हें मालूम था, उन्होंने सब मुझे दिया है। और उन्होंने स्वयं ही मुझसे कहा कि श्वेतकेतु, अब मेरे पास सीखने को कुछ भी नहीं बचा। अब तू घर लौट जा। वे झूठ न बोलेंगे।
तो फिर उद्दालक ने, श्वेतकेतु के पिता ने कहा, तो फिर तुझे मुझे ही सिखाना पड़ेगा। तो तू जा बाहर वृक्ष में फल लगे हैं, वह तोड़ ला। फल तोड़ लाए गए। श्वेतकेतु के पिता ने कहा, इन्हें काट। फल काटे गए। बीज ही बीज भरे थे। पिता ने कहा, यह एक बीज इसमें से चुन ले। क्या यह एक बीज इतना बड़ा वृक्ष हो सकता है? श्वेतकेतु ने कहा, हो सकता है नहीं; होता ही है। एक बीज बो देने से इतना बड़ा वृक्ष हो जाता है। तो पिता ने कहा, इस बीज में वृक्ष छिपा होगा। तू बीज को भी काट। हम उस सूक्ष्म वृक्ष को खोजें, जो इसके भीतर छिपा है।
श्वेतकेतु ने बीज भी काटा, पर वहां तो कुछ भी न था। वहां तो शून्य हाथ लगा। श्वेतकेतु ने कहा, यहां तो मैं कुछ भी नहीं देखता हूं। उद्दालक ने कहा, जो नहीं दिखाई पड़ रहा है, जो अदृश्य है, उसी से यह महावृक्ष, यह दृश्य पैदा होता है। और हम भी ऐसे ही शून्य से आए हैं। वह जो नहीं दिखाई पड़ता है, उससे ही हमारा भी जन्म हुआ है।
श्वेतकेतु ने पूछा, क्या मैं भी उसी महाशून्य से आया हूं? इस प्रश्न
के उत्तर में ही उपनिषदों का यह महावचन है, तत्वमसि श्वेतकेतु! हां, श्वेतकेतु, तू भी वहीं से आया है; तू भी वही है।
और कहते हैं, यह अमृत वचन सुनकर श्वेतकेतु ज्ञान को उपलब्ध हो गया। यह
तो श्रवण से ही हुआ। कुछ करना न पड़ा। यह तो किसी ने चेताया। सोए थे, किसी ने जगाया। आंख खुल गई। होश आ गया।
श्रवण से ही हो सकता है। लेकिन वेदांत के ये तीन सूत्र बड़े महत्वपूर्ण हैं। वेदांत कहता है, श्रवण, मनन और निदिध्यासन। पहले सुनो; फिर गुनो; फिर करो। सुनो; फिर सोचो; फिर साधो।
तो फिर ये तीन सूत्रों की क्या जरूरत है? इन सूत्रों की जरूरत इसलिए है, क्योंकि तुम्हारा सुनना पूरा नहीं है। तुम सुनते हो और नहीं सुनते हो। अगर मैं तुमसे कहूं, श्वेतकेतु, तुम वही हो। सुना तुमने; लेकिन नहीं सुना। अन्यथा श्वेतकेतु जिस ब्रह्म को उपलब्ध हो गया सुनकर, तुम भी हो जाते!
सुन तो लेते हो, लेकिन उतर नहीं पाता, तीर गहरे नहीं जाता। हृदय के द्वार बंद हैं; शिलाएं अटकी हैं, झरना भीतर बहता नहीं है। शिलाओं पर टकरा जाते हैं महावचनों के तीर और वापस लौट आते हैं। तुम वैसे के वैसे रह जाते हो। ज्यादा से ज्यादा इतना ही हो सकता है कि शिला पर थोड़े-से निशान छूट जाते हैं, जिनको तुम पांडित्य कहते हो। लेकिन हृदय बिंधता नहीं, निशाना लगता नहीं।
तुम डांवाडोल हो रहे हो, इसलिए तीर कहीं से भी जाए, तुम्हारे अंतस्तल
को नहीं भेद पाता। तुम कंपते हुए हो, चंचल चित्त हो। सुनते तो हो, लेकिन चंचल चित्त कैसे सुन पाएगा? स्थिर चित्त चाहिए। थिर प्रज्ञा चाहिए। नहीं तो तुम सुन भी लेते हो, पर सुनना कान का ही हो पाता है, हृदय का नहीं हो पाता। आत्मा तक आवाज नहीं पहुंचती। आंख भी खुल जाती है, तो भी भीतर की दृष्टि बंद ही बनी रह जाती है।
इसलिए वेदांत कहता है कि श्रवण से कुछ लोग उपलब्ध हो जाएंगे। वे बड़े अनूठे, विरले पुरुष हैं, जिन्होंने सुना और काफी हो गया। अधिक लोग उतने से न पहुंच पाएंगे। उन्हें कमी पूरी करनी पड़ेगी। जो उन्होंने सुना है, उसे गुनना पड़ेगा, सोचना पड़ेगा, उस पर ध्यान करना पड़ेगा।
एक बार सुनने से नहीं हुआ है, तो जो सुना है, उसको भीतर गुंजाना, बार-बार सोचना, स्वाध्याय करना, बहुत-बहुत मन की अवस्थाओं में उसी-उसी गूंज को फिर-फिर उठाना। शायद किसी दिन संधि मिल जाए। किसी दिन मन ताजा हो और बात पकड़ जाए। किसी दिन मन के द्वार जाने-अनजाने खुले छूट गए हों, और तीर भीतर प्रविष्ट हो जाए। किसी दिन प्रफुल्लता हो तुम्हें घेरे हुए, ऐसी भाव-दशा

हो कि तुम आनंद और अहोभाव से भरे हो, उस क्षण जो कान तक सुना था, वह हृदय तक पहुंच जाए।
और चौबीस घंटे तुम्हारी चित्त की दशा बदलती है। सुबह तुम कुछ और, दोपहर होते-होते कुछ और, सांझ होते-होते कुछ और। कभी थके हो, कभी क्रोधित हो, कभी प्रसन्न हो, कभी उदास हो, कभी आनंदित हो। इन सभी दिशाओं में, इन सभी दशाओं में तुम एक ही अनुगूंज को उठाए जाना; शायद किसी दिन तालमेल बैठ जाए। तो जो सुनने से नहीं हो सका, वह शायद मनन से हो जाए।
तो मनन का अर्थ है, पुनरुक्ति; उसी-उसी को बार-बार सोचना; उसी-उसी को बार-बार गुनना। एक चोट से नहीं टूटी चट्टान, तो बार-बार उस पर चोट किए जाने का नाम मनन है। टूटेगी। जलधार भी गिरती है, वह भी तोड़ देती है चट्टानों को। तो अगर मनन की धार गिरेगी, तो भीतर की चट्टान टूटेगी।
कबीर ने कहा है, रसरी आवत जात है, सिल पर परत निशान। वह मनन के लिए कहा
है; कि रस्सी आती-जाती है कुएं के घाट पर; पत्थर है मजबूत; रस्सी कोई मजबूत तो नहीं है, पत्थर से क्या मुकाबला। लेकिन रसरी आवत जात है, सिल पर परत निशान। वह जो सिल बहुत मजबूत थी, वह भी साधारण-सी रस्सी के आते-जाते, आते- जाते, वर्षों में निशान से भर जाती है।
श्रवण तो एक चोट है। मनन चोट के सातत्य का नाम है। अगर एक चोट से नहीं टूटी है बात... । कुछ होंगे, जिनकी टूट जाएगी। पर वे विरले होंगे। उनके ऊपर नियम नहीं बनाया जा सकता। कोई श्वेतकेतु कभी जाग जाएगा एक ही वचन से। लेकिन श्वेतकेतुओं की भीड़ नहीं मिलती है। और श्वेतकेतु से बाजार भरे हुए नहीं हैं। और श्वेतकेतु पृथ्वी पर खोजने जाओगे, सदियों में कभी एकाध मिलता है। वह नियम नहीं है। वह अपवाद है।
इसलिए मनन की जरूरत है। श्रवण के साथ सोचना, चोट करना।
लेकिन फिर बहुत हैं, जो श्रवण भी करते रहते हैं जन्मों-जन्मों और कुछ
भी नहीं होता। मनन भी चूक गया, श्रवण भी चूक गया, तब निदिध्यासन। तब तुमने जो सुना है, तब तुमने जो सोचा है, उसे साधना भी है।
अब यह तुम हैरान होओगे जानकर कि साधना का अर्थ ही यह है कि तुम बहुत कमजोर हो, इसलिए साधना की जरूरत है। जो बलशाली हैं, वे सुनकर मुक्त हो जाते हैं। जो उनसे थोड़े कम बलशाली हैं, वे सोचकर मुक्त हो जाते हैं। जो उनसे भी कम बलशाली हैं, उनको साधना करनी पड़ती है।
बुद्ध ने कहा है, कुछ घोड़े हैं, वे तब तक न चलेंगे, जब तक उनको मारो न। कुछ घोड़े हैं, सिर्फ कोड़ा फटकारो और वे चल पड़ेंगे। और कुछ घोड़े हैं, कोड़े की छाया देखकर दौड़ते हैं। फटकारने की भी जरूरत नहीं है। कोड़ा है, इतनी याददाश्त उनको होना काफी है।
तो कुछ हैं, जो सुनकर उपलब्ध होते हैं। कुछ हैं, जो सोचकर, सोच-सोचकर, मनन, चिंतन! और कुछ हैं, जो साधकर।
तीसरा वर्ग जगत में बड़े से बड़ा वर्ग है। अगर सौ मनुष्य हों, तो सत्तानबे प्रतिशत तो तीसरे वर्ग के होंगे। वे साधना किए बिना मुक्त न हो सकेंगे। दो प्रतिशत ऐसे लोग होंगे, जो मनन से मुक्त हो जाएंगे। और एक प्रतिशत ऐसा व्यक्ति होगा, जो श्रवण से मुक्त हो जाएगा।

तीसरा प्रश्नः सम्यक श्रवण को उपलब्ध होने का उपाय क्या है?

उपाय है, तन्मयता से सुनना। उपाय है, ऐसे सुनना जैसे एक-एक शब्द पर जीवन और मृत्यु निर्भर है। उपाय है, ऐसे सुनना जैसे पूरा शरीर कान बन गया; और कोई अंग न रहे। ऐसे सुनना, जैसे यह आखिरी क्षण है; इसके बाद कोई क्षण न होगा; अगले क्षण मौत आने को है। ऐसी सावधानी से सुनना कि अगर अगले क्षण मौत भी आ जाए, तो पछताना न पड़े।
सम्यक श्रवण को सीखने का अर्थ है, सुनते समय सोचना नहीं, विचारना नहीं। क्योंकि तुम अगर विचार रहे हो, तो सुनेगा कौन? और मन की यह आदत है। मैं बोल रहा हूं और तुम सोच रहे हो कि ये ठीक कहते हैं कि गलत कहते हैं! तुम सोच रहे हो कि तुम्हारे तर्क में बात पटती, नहीं पटती! तुम सोच रहे हो कि तुम्हारे संप्रदाय से मेल खाती, नहीं खाती! तुम सोच रहे हो कि तुमने जिसे गुरु माना, वह भी यही कहता, नहीं कहता!

तुम मुझे सुन रहे हो, वह ऊपर-ऊपर रह गया, भीतर तो तुम सोच में लग गए।
मैं देखता हूं, अगर तुमसे मेल खाती है, तुम्हारा सिर हिलता है कि ठीक।
इसलिए नहीं कि मैं ठीक कह रहा हूं। अगर उतना तुम सुन लो, तो तुम श्वेतकेतु हो जाओ। जब तुम सिर हिलाते हो, तो मैं जानता हूं, तुम्हारे संप्रदाय से मेल खा रही है बात; तुम्हारे शास्त्र के अनुकूल पड़ रही है; तुम्हारे सिद्धांत से विरोध नहीं है।
जब मैं देखता हूं कि तुम्हारा सिर इनकार में हिल रहा है, तो मैं जानता हूं कि तुम्हारे पक्ष में नहीं पड़ रही है बात। तुम अब तक जैसा मानते रहे हो, उससे भिन्न है, या विपरीत है।
और जब मैं देखता हूं कि तुम दिग्विमूढ़ बैठे हो, तब तुम तय नहीं कर पा रहे कि पक्ष में होना कि विपक्ष में होना। बात तुम्हारी समझ में ही नहीं पड़ रही कि तुम निर्णय ले सको।
इन तीनों से बचना। इस बात की फिक्र मत करना सुनते समय कि तुम्हारे पक्ष में है या नहीं। क्योंकि अगर तुम्हारा पक्ष सत्य है, तब तो सुनने की जरूरत ही नहीं। तब तो मेरे पास आने का कोई प्रयोजन ही नहीं। तुम जानते ही हो। तुमने पा ही लिया है। यात्रा पूरी हो गई।
अगर तुमने नहीं पाया है, अगर अभी भी यात्रा जारी है और खोज जारी है, और तुम्हें लगता है अभाव, खटकता है अभाव; खोजना है, पाना है, पहुंचना है। तो फिर तुमने जो अब तक सोचा है, उसे किनारे रख देना; उसको बीच में मत लाना। अन्यथा वह तुम्हें सुनने ही न देगा। और तुम जो सुनोगे, उसको भी रंग से भर देगा, अपने ही रंग से भर देगा। तुम वही सुन लोगे, जो तुम सुनने आए थे। और तुम उन-उन बातों को सुनने से चूक जाओगे, जो तुमसे मेल न खाती थीं। तुम्हारा मन चुनाव कर लेगा।
तुम मन को सुनने मत देना। मन को कहना, तू चुप। पहले मैं सुन लूं। अगर सुनने से हो गया, ठीक। अगर न हुआ, तो फिर तेरा उपयोग करेंगे, फिर मनन करेंगे। लेकिन पहले मुझे परिपूर्ण भाव से सुन लेने दे।
और मजे की बात यह है, जिन्होंने परिपूर्ण भाव से सुन लिया, उन्हें मनन करने की जरूरत नहीं रह जाती।
मनन की जरूरत ही इसलिए पड़ती है कि सुनते समय भी तुम सोचे जा रहे हो। एक धुआं तुम्हें घेरे हुए है विचारों का। बचपन से तुमने हर चीज के संबंध में धारणा बना ली है। वह धारणा तुम्हें पकड़े हुए है।
बचपन में तुम्हारी समझ कितनी थी? तुम्हारा बोध कितना था? लेकिन तुमने
सब धारणाएं बचपन में बना ली हैं और उन धारणाओं को तुम बुढ़ापे तक खींच रहे हो! यह बड़ी उलटी बात है। बचपन की धारणाएं तो मूढ़ता की धारणाएं हैं, उनको बुढ़ापे तक खींच रहे हो!
बचपन में तुमने पूछा था, संसार किसने बनाया? और तुम्हारे पिता ने या गुरु ने या शिक्षक ने कहा, परमात्मा ने बनाया; ऐसे ही जैसे कुम्हार घड़े रचता है। अब भी तुम्हारे मन में परमात्मा की वही धारणा है, वही बचपन की। बचपन में हल हो गई थी बात, ठीक। तुम्हें बात जंच गई कि कुम्हार बर्तन-भांडे बनाता है, बढ़ई फर्नीचर बनाता है। बिना बनाए तो ये चीजें बन नहीं सकतीं, कोई बनाने वाला होगा। बस, तुम तृप्त हो गए थे। अब भी तुम उसी धारणा से भरे हो। मैंने सुना है, एक परिवार के बैठकखाने में दो मछलियां कांच के बर्तन में चक्कर मार रही थीं। एक मछली ने रुककर दूसरी से पूछा, तुम्हारा क्या ख्याल है, ईश्वर है या नहीं? दूसरी मछली थोड़ी दार्शनिक प्रकृति की थी। उसने थोड़ा विचार किया। उसने कहा, होना ही चाहिए, अन्यथा हमारा पानी रोज कौन बदलता है! अगर परमात्मा न हो, तो इस बर्तन का पानी कौन बदलता है रोज! मछलियों के लिए यह बहुत भारी घटना है कि कोई पानी बदलता है।
तुम्हारा परमात्मा भी इन मछलियों के परमात्मा से ज्यादा नहीं है। क्योंकि तुम सोच नहीं सकते कि बिना बनाए चीजें कैसे बनायी जाएंगी! लेकिन तुम्हारे बचपन में तुमने जो धारणा पकड़ी थी, कभी तुमने पूछा कि परमात्मा को किसने बनाया है?
तब तुम्हारी धारणा डगमगाने लगेगी। तब तुम्हें संदेह उठेगा। तब तुम्हें लगेगा कि अगर परमात्मा बिना बनाया हो सकता है, तो फिर यह धारणा कुम्हार की और बढ़ई की, नासमझी की है।

लेकिन बचपन की धारणाएं तुम्हें घेरे रखती हैं। नास्तिकता-आस्तिकता, हिंदू-इस्लाम, जैन-बौद्ध, सब बचपन में पकड़ी गई धारणाएं हैं। उनसे तुम घिरे बैठे हो। उनकी दीवारें तुम्हारे चारों तरफ हैं। वह तुम्हारा कारागृह है। जब तुम सुनने आते हो, तो उस कारागृह के बाहर आकर सुनो, खुले आकाश के नीचे।
मैं तुमसे यह नहीं कह रहा हूं कि जो मैं कह रहा हूं, उसे मान लो। मानने
का तो सवाल ही नहीं है। मैं तो तुमसे कह रहा हूं, पहले सुन लो; मानने की बात तो बाद में उठती है। पहले समझ तो लो कि मैं क्या कह रहा हूं! फिर मानना, न मानना।
और मजे की तो घटना यह है कि अगर सत्य हो, तो तुम्हें सोचने की जरूरत ही
न पड़ेगी। अगर तुमने खुले आकाश के नीचे खड़े होकर सुन लिया, तो सत्य को सुन लेना ही पर्याप्त है। तुम्हारा रोआं-रोआं उसके साथ सिहर उठेगा। तुम्हारी धड़कन-धड़कन उसे ताल देगी। तुम्हारी समग्रता कहेगी, ठीक है।
यह नहीं कि तुम्हारे मन के कुछ विचार कहेंगे, ठीक है। तुम्हारा समग्र अस्तित्व कहेगा कि ठीक है। हड्डी-मांस-मज्जा कहेगी कि ठीक है। यह कोई तर्क की निष्पत्ति न होगी, यह तुम्हारे पूरे जीवन की भाव-दशा बन जाएगी।
तो श्रवण से उपलब्ध हो सकता है कोई, लेकिन श्रवण सीखना पड़े। अभी तो तुम सभी मानते हो कि श्रवण तुम जानते ही हो, क्योंकि तुम्हारे कान ठीक हैं। और कोई कान का डाक्टर नहीं कहता कि कान में कोई खराबी है। तुम समझे कि बस, जब कान में कोई खराबी नहीं है, तो सम्यक श्रवण है ही।
कान का डाक्टर जिसको ठीक सुनना कहता है, उसको हम ठीक सुनना नहीं कहते। कान थोड़े ही सुनते हैं। कान तो केवल उपकरण हैं। कान के पीछे जो बैठा है, वह सुनता है।
हां, कान बिगड़ जाएं, तो उस तक खबर नहीं पहुंचती। कान सिर्फ खबर पहुंचाते हैं।
यह तो ऐसे ही है, जैसे किसी ने फोन किया। तुमने फोन उठाया। फोन थोड़े ही सुनता है; तुम सुनते हो। लेकिन तुम नहीं सुनने को राजी हो, तुम जबरदस्ती सुन रहे हो, कि ठीक है। या तुम पहले से ही तय हो कि यह आदमी गलत है। अब किया है फोन, तो सुने लेते हैं। फोन थोड़े ही सुनता है।
कान तो फोन से ज्यादा नहीं है। वह तो यंत्र है। उनके पीछे तुम जो हो, तुम्हारी चेतना जो पीछे खड़ी है। कान से आने दो आवाज; मन को तुम्हारे और कान के बीच खड़ा मत होने दो। हटाओ। मन से कहो, तू जरा रास्ता दे। मेरी आंख को जरा खाली छोड़, मेरे कान को जरा खाली छोड़। मैं देख सकूं। फिर जरूरत होगी, तुझे बुला लेंगे।
अगर श्रवण से न हो सके, तो फिर मनन करना। फिर मन को बुला लेना। और अगर
मन से भी न हो सके, तो फिर साधना करना। फिर शरीर को भी बुला लेना।
ये तीन अंग हैं। सुनकर ही हो जाए, तो शुद्ध चैतन्य में घट जाता है। सुनकर न हो, तो मन की सहायता की जरूरत है; तो मनन। अगर मनन से भी न हो, तो फिर शरीर की भी साधना में जरूरत है; तो फिर निदिध्यासन।
जब चेतना, मन और शरीर तीनों लग जाते हैं, तो साधना। जब चेतना और मन दोनों लगते हैं, तो मनन। और जब चेतना शुद्ध सुनती है, अकेली, और उतना ही काफी होता है, तो सम्यक श्रवण।

चौथा प्रश्नः कृष्ण के प्रति आकर्षित होना क्या जीवन के अन्य आकर्षणों से मुक्त होना नहीं है?

सोचना पड़े। यहीं कृष्ण का भेद है।
अगर तुम महावीर में आकर्षित होते हो, तो तुम्हें संसार के समस्त आकर्षणों से मुक्त होना पड़ेगा। अगर महावीर की तरफ जाते हो, तो संसार के विपरीत जाना पड़ेगा। वह महावीर का मार्ग है। लेकिन कृष्ण के संबंध में मामला जरा नाजुक है और गहरा है।
कृष्ण कहते हैं, अगर तुम्हें मेरी तरफ आना है, तो तुम्हें संसार के आकर्षण में ही मुझे खोजना पड़ेगा; क्योंकि मैं वहां भी मौजूद हूं। वहां से भागने की कोई जरूरत नहीं है।

इसे ऐसा समझो। तुम्हें भोजन में रस है। अगर तुम महावीर की सुनते हो,
तो अस्वाद व्रत होगा। तब तुम्हें स्वाद छोड़ना है। भोजन ऐसे कर लेना है कि काम है, जरूरत है; स्वाद नहीं लेना है। भोजन को ऐसे शरीर में डाल देना है कि काम शरीर का चल जाए, लेकिन उसमें कोई रस नहीं लेना है। स्वाद छोड़ना है, भोजन जारी रखना है। भोजन बेस्वाद हो जाए, अस्वाद हो जाए, स्वादहीन हो जाए, स्वादातीत हो जाए। स्वाद न रह जाए। बस, शरीर का धर्म है, पूरा कर देना है। तो भोजन ले लेना है।
अगर तुम कृष्ण की बात समझो, तो कृष्ण कहते हैं कि तुम इतना गहरा स्वाद
लो कि भोजन के स्वाद में ही तुम्हें ब्रह्म का स्वाद आने लगे; अन्न ब्रह्म हो जाए। स्वाद की गहराई में उतरो।
महावीर कहते हैं, अस्वाद; कृष्ण कहते हैं, महास्वाद।
ये संसार में खिले हुए फूल हैं। एक तो उपाय है कि इनकी तरफ पीठ कर लो, अपने भीतर प्रविष्ट हो जाओ। एक उपाय है, इन फूलों के सौंदर्य में इतने गहरे उतर जाओ कि फूल की देह तो भूल जाए, सिर्फ सौंदर्य का ही स्पंदन रह जाए, तो भी तुम पहुंच जाओगे।
तुम जहां हो अभी, वहां से दो रास्ते जाते हैं। एक रास्ता है, संसार की तरफ पीठ कर लो, आंख बंद कर लो, अपने में डूब जाओ।
इसलिए महावीर परमात्मा की बात नहीं करते, सिर्फ आत्मा की बात करते हैं। आंख बंद करो, अपने में डूब जाओ।
कृष्ण परमात्मा की बात करते हैं। वे कहते हैं, यह सब चारों तरफ जो फैला है, वही है। जरा गौर से देखो! तुम्हें संसार दिखा है, क्योंकि तुमने गौर से नहीं देखा है। संसार दिखने का अर्थ है, है तो परमात्मा ही, तुमने ठीक से नहीं देखा है। देखने में थोड़ी जरा भूल हो गई है, इसलिए संसार दिखाई पड़ रहा है।
संसार परमात्मा ही है, गलत ढंग से देखा गया। जरा आंख को सम्हालो; जरा चित्त को साफ करो; जरा और गौर से देखो; और तन्मय होकर देखो; और लीन हो जाओ। और तुम पाओगे कि संसार तो मिट गया, परमात्मा मौजूद है। संसार तो खो गया, परमात्मा प्रकट हो गया।
कृष्ण के अर्थों में अगर तुम आकर्षित होते हो परमात्मा की तरफ, तो जीवन के आकर्षणों से हटने की कोई जरूरत नहीं है। जीवन के आकर्षण को भी परमात्मा को ही समर्पित कर देने की जरूरत है।
इसलिए तो अर्जुन को वे युद्ध से भागने नहीं दे रहे हैं। अगर अर्जुन ने महावीर से पूछा होता, महावीर कहते कि बिल्कुल ठीक अर्जुन, जल्दी तुझे समझ आ गई। छोड़! कुछ सार नहीं है युद्ध में। हाथ सिर्फ रक्त से रंगे रह जाएंगे। सदा के लिए पाप हो जाएगा। और जो मिलेगा, वह कूड़ा-करकट है। राज्य-महल, धन-संपत्ति, क्या है उसका मूल्य!
वे ठीक कहते हैं। वह भी एक मार्ग है।
और कृष्ण भी कहते हैं कि भागने की कोई जरूरत नहीं; सिर्फ तू अज्ञान को छोड़ दे। ज्ञान से देखा गया संसार ही परमात्मा है। अज्ञान से देखा गया परमात्मा संसार जैसा मालूम पड़ता है।
कृष्ण की कीमिया ज्यादा गहरी है। मुझसे भी कृष्ण का ज्यादा तालमेल है।
महावीर की बात ठीक है; उससे भी लोग पहुंच जाते हैं। लेकिन वह ऐसे ही है
कि तुम किसी तीर्थयात्रा पर निकले हो। एक रास्ता मरुस्थल से होकर जाता है। वह भी पहुंचता है। और एक रास्ता वन-प्रांतों से होकर गुजरता है, जहां झरने हैं, झरनों का कल-कल नाद है; जहां फूल खिलते हैं अनूठे, जहां हवाएं सुगंधों से भरी हैं; जहां पक्षी गीत गाते हैं अलौकिक के, जहां वृक्ष सदा हरे हैं, जहां बहुत गहरी छाया है; जहां जल है, जहां रस-धाराएं बहती हैं।
तो दो रास्ते हैं, एक मरुस्थल से होकर जाता है; एक सुंदर वन-प्रांतों
से होकर जाता है।
मैं तुमसे यह नहीं कह रहा हूं कि मरुस्थल में कोई सौंदर्य नहीं है।
मरुस्थल का भी एक सौंदर्य है। तुम्हारी परख की बात है। कुछ लोग तो ऐसे हैं, जो मरुस्थल के सौंदर्य के दीवाने हैं।

योरोप का एक बहुत बड़ा विचारक, लारेंस, पूरी जिंदगी अरब में रहा। उसने अपने संस्मरणों में लिखा है कि जैसा सौंदर्य अरब के रेगिस्तानों में है, वैसा संसार में कहीं भी नहीं है।
जब मैंने इसे पढ़ा, तो मैं चौंका। रेगिस्तान में सौंदर्य? फिर मैंने उसकी किताब बड़े गौर से पढ़ी कि इस आदमी का भी एक अनूठा अनुभव है। और उसकी बात में भी थोड़ी सचाई है।
वह कहता है कि जैसा सन्नाटा मरुस्थल में होता है, वैसा सन्नाटा कहीं
भी नहीं हो सकता। और जैसा विस्तीर्ण विराट मरुस्थल में दिखता है, वैसा कहीं नहीं। वृक्ष हैं, पहाड़ियां हैं, बाधा डाल देती हैं। मरुस्थल असीम है, कोई कूल-किनारा नहीं दिखता। जहां तक देखते चले जाओ, वही है। आकाश जैसा है। और मरुस्थल में एक तरह का सौंदर्य है। और एक तरह की पवित्रता, एक तरह की शुचिता है। रेत का कण-कण स्वच्छ है।
रात जैसी मरुस्थल की सुंदर होती है, कहीं भी नहीं होती। दिनभर का उत्तप्त जगत और रात सब शीतल हो जाता है। और मरुस्थल में तारे जैसे साफ दिखाई पड़ते हैं, कहीं नहीं दिखाई पड़ते। क्योंकि सभी जगह थोड़ी न थोड़ी भाप हवा में होती है। इसलिए भाप की परतें हवा में होती हैं, तारे साफ नहीं दिखाई पड़ते, थोड़े धुंधले होते हैं। मरुस्थल में तो कोई भाप होती नहीं, हवा बिल्कुल शुद्ध होती है, सूखी होती है, उसमें कोई जलकण नहीं होते, इसलिए तारे इतने निकट मालूम होते हैं, और इतने साफ मालूम होते हैं कि हाथ बढ़ाया और छू लेंगे।
निश्चित ही, जब मैंने लारेंस को पढ़ा, तो मुझे लगा कि उसकी बात में भी सचाइयां हैं। मरुस्थल का भी अपना आकर्षण है। तब बात इतनी है कि तुम्हें जो रुचिकर लगे।
महावीर का मार्ग मरुस्थल का मार्ग है। वे सूखे रेगिस्तान से गुजरते हैं। जरूर उनको सौंदर्य मिला होगा। अन्यथा वे क्यों गुजरते! कोई कारण न था। उन्होंने उस सूखी भूमि में भी कुछ देखा होगा, लारेंस की तरह, कोई सन्नाटा, कोई स्वच्छता, कोई ताजगी उन्हें वहां मिली होगी। विराट का उन्हें अनुभव हुआ होगा।
पर वन-प्रांतों से गुजरने का भी अपना मजा है।
कृष्ण का रस बिना छोड़े, संसार से बिना भागे, संसार से ही गुजरकर परमात्मा तक पहुंचने का रस है।
दोनों पहुंच जाते हैं। इसलिए तुम्हें जो रुचिकर लगे, उसे चुन लेना।
और इस रुचि की बात को जन्म पर मत छोड़ना। क्योंकि जन्म से रुचि का कोई संबंध नहीं है।
अब मैं ऐसे जैनों को जानता हूं, जिनके लिए कृष्ण बड़े काम के हो सकते हैं। लेकिन वे उनका उपयोग न करेंगे। वे कहते हैं, यह कुंजी हमारे काम की नहीं है। इस घर में हम पैदा ही नहीं हुए हैं। हम तो महावीर के मार्ग से जाएंगे। और उनकी पूरी जीवन-दशा महावीर से मेल नहीं खाती।
ऐसे हिंदुओं को मैं जानता हूं, जो कृष्ण की भक्ति-भाव किए चले जाते हैं। लेकिन भक्ति-भाव का उनसे कोई तालमेल नहीं है। उनके लिए मरुस्थल जमता। उनके होंठों पर भक्ति के गीत शोभा नहीं देते। उनके हृदय का उससे कोई साथ नहीं है। वे संकोच से भरे हुए आरती करते हैं। उनको लगता है, यह क्या मूढ़ता कर रहे हैं! लेकिन अब जिस घर में पैदा हुए हैं, पूरा करना पड़ता है। वे डरे-डरे हैं।
ध्यान रखना, जन्म से तुम्हारे जीवन की कोई व्यवस्था नहीं बनती। तुम अपनी समझ से खोजने की कोशिश करना, किससे तुम्हारा तालमेल है? और साहस रखना। जिसके साथ तालमेल हो, उसके साथ जाने की हिम्मत रखना। तो शायद तुम पहुंच जाओगे। अन्यथा तुम बहुत भटकोगे।

पांचवां प्रश्नः मोक्ष फलित होता है यदि श्रद्धा और शरणागति से, तो बंधन किससे फलित होता है?

देह और अहंकार से।

छठवां प्रश्नः कृष्ण ने अर्जुन के प्रति अपना उपदेश समाप्त कर तुरंत गीता-माहात्म्य बताना क्यों उचित समझा?

पहला कारण, अर्जुन की चेतना उस घड़ी के करीब आने लगी, जहां वह भी कृष्णरूप हो जाएगा। जल्दी ही वह घड़ी करीब आएगी। अर्जुन को पता चले, इसके पहले कृष्ण को पता चल जाना स्वाभाविक है।
तुम्हें पता चले, इसके पहले मुझे पता चल जाना स्वाभाविक है कि क्या हो रहा है। तुम्हारे ध्यान में उतरने के पहले मुझे पता चल जाएगा कि तुम उतर रहे हो। तुम्हारी समाधि फलित होने के पहले मैं तुम्हें खबर दे दूंगा कि समाधि आने के करीब है। उसकी पहली पगध्वनियां तुम्हें नहीं, मुझे सुनाई पड़ेंगी; क्योंकि मैं उन पगध्वनियों को पहचानता हूं। तुम्हारे लिए तो वे पहली बार बजेंगे स्वर; तुम उनको पहचान न पाओगे।
अर्जुन पहुंचने लगा है करीब, जहां वह कहेगा कि मैं निःसंशय हुआ। जहां
वह कहेगा, तुम्हारे प्रसाद से मेरा संशय क्षीण हो गया; मेरे अज्ञान से भरा हुआ मोह मिट गया; और तुम्हारी अनुकंपा से मैं थिर हो गया हूं, मेरी प्रज्ञा ठहर गई। अब तुम आज्ञा दो, वही मैं करूंगा। अब मेरा कोई होना नहीं है। अब तुम्हीं हो।
जल्दी ही वह घड़ी आ रही है। उस घड़ी का आगमन अर्जुन के अचेतन में शुरू हो गया है।
जैसे पानी में एक बबूला उठता है, रेत से उठता है बबूला। उठता है ऊपर की तरफ। चलता है धरातल की तरफ। समय लगता है। जितनी गहरी पानी की धार हो। जब सतह पर आ जाएगा, तब तुम्हें दिखाई पड़ता है कि बबूला पानी का प्रकट हुआ। लेकिन जो गहरे डुबकी मारना जानता है, वह जानता है कि कब बबूले ने यात्रा शुरू की।
अर्जुन के भीतर उसकी गहरी अंतरात्मा से यह भाव उठना शुरू हो गया है। इसकी सुगंध उसके चारों तरफ आने लगी होगी। कृष्ण के नासापुट अर्जुन की उस भीनी सुगंध से भर गए होंगे। पहचान लिया होगा उन्होंने कि फूल अब खिला, अब खिला; कली अब खिली, अब खिली। पंखुड़ियां अब खुलने के करीब हैं। सुबह होती है, रात जा चुकी है।
इसके पहले कि अर्जुन कहे कि मैं पहुंच गया वहां, जहां तुम पहुंचाना चाहते थे, तुम्हारी अनुकंपा से, उन्होंने गीता का माहात्म्य कहा। क्यों? क्योंकि इसके बाद अर्जुन योग्य हो जाएगा। जो कृष्ण ने अर्जुन से कहा है, अर्जुन किसी और से कहने में समर्थ हो जाएगा। बता देना जरूरी है कि वह किससे कहे, किससे न कहे। क्योंकि अक्सर ऐसा होता है... ।
जैसे छोटे बच्चों को तुमने देखा हो, जब वे पहली दफा चलना शुरू करते हैं, तो दिनभर चलने की कोशिश करते हैं। क्योंकि चलना इतना नया अनुभव होता है, इतना आह्लादकारी, कि वे बार-बार फिर खड़े हो जाते हैं; थक जाते हैं, मगर फिर खड़े हो जाते हैं।
तुमने छोटे बच्चों को देखा होगा, जब वे बोलना शुरू करते हैं, तो दिनभर बकवास करते हैं। वे बकवास इसलिए कर रहे हैं कि एक नई कला उन्हें उपलब्ध हुई है; वे उसका उपयोग करना चाहते हैं। तुम कहते हो, चुप रहो! वे चुप रह नहीं सकते; क्योंकि अगर वे चुप रहें, तो जिंदगीभर के लिए चूक जाएंगे। वे तो बोलेंगे; वे तो चर्चा करेंगे; वे तो बात करेंगे; वे तो एक ही बात को बार-बार कहेंगे। वे फिर-फिर लौटकर आ जाएंगे कोई खबर लेकर, कि बाहर ऐसा हो रहा है! इन सब बातों से कोई मतलब नहीं है; बात करने से मतलब है। क्योंकि एक नई कला उपलब्ध हुई है। वे उसका अभ्यास कर लेना चाहते हैं।
और ठीक ऐसी ही घटना तब घटती है, जब तुम्हें पहली दफा परमात्म-जीवन का अनुभव होता है। तब तुम्हारे पूरे प्राण उसे दूसरों से कहना चाहते हैं। तो कृष्ण कहते हैं, उससे कहना, जो सुनने को राजी हो। उससे कहना, जो भक्ति-भाव से सुनने को राजी हो। उससे कहना, जो तपपूर्वक सुनने को राजी हो। इसके पहले कि अर्जुन के जीवन में वह नया उन्मेष उठे और वह कहने लगे लोगों को, उसे सचेत कर देना जरूरी है।
और वे गीता का माहात्म्य भी कहते हैं इसके साथ ही। क्यों? क्योंकि यह
भी हो सकता है कि कहीं ये सारी शर्तें--कि उससे मत कहना, जो सुनने को राजी न

हो; उससे मत कहना, जो भाव से न सुने, भक्ति से न सुने; उससे मत कहना, जो तपश्चर्यारत न हो--कहीं ऐसा न हो कि अर्जुन चुप ही रह जाए; कहे ही न। वह भी दुर्घटना होगी। क्योंकि इसके जीवन में आए और यह कहे ही न। गलत को कहे, दुर्घटना होगी। अनकहा रह जाए, बिन कहा रह जाए, तो दुर्घटना होगी।
तो इसलिए वे माहात्म्य भी कहते हैं कि कहने का क्या-क्या लाभ है अर्जुन। जो इसको कहेगा, वह मेरा सर्वाधिक प्यारा है। वह मेरे प्यारों में अति उत्तम है। जो इसे कहेगा, वह मेरा काम कर रहा है; समर्पित है। जो इसे कहेगा, वह कहकर ही सभी पापों से मुक्त हो जाएगा। वह उन स्थानों को, उन स्थितियों को पाएगा, जो परम पुण्यों से मिलती हैं। सिर्फ कहकर भी!
तो दो बातें हैं, एक तो वे चेता रहे हैं कि गलत से मत कहना। और दूसरा वे
कह रहे हैं, गलत के डर से कहीं चुप मत रह जाना। कहना जरूर! ठीक को खोजकर कहना; हर किसी को मत कहना।
इसलिए इसके पहले कि अर्जुन के भीतर कृष्ण का फूल खिले, उन्होंने गीता माहात्म्य की बात कही है।

अब सूत्रः
इस प्रकार गीता का माहात्म्य कहकर भगवान कृष्ण ने अर्जुन से पूछा, हे पार्थ, क्या यह मेरा वचन तूने एकाग्र चित्त से श्रवण किया? और हे धनंजय, क्या तेरा अज्ञान से उत्पन्न हुआ मोह नष्ट हुआ?
पूछने को ही पूछ रहे हैं। जांच के लिए पूछ रहे हैं। इसलिए पूछ रहे हैं
कि अर्जुन को खबर मिली या नहीं! जो हुआ है, उसकी खबर कृष्ण को तो मिल गई है। झेन फकीर कहते हैं कि जब उनका कोई शिष्य ज्ञान को उपलब्ध हो जाता है,
तो उसे आकर बताने की जरूरत नहीं रहती। गुरु खुद ही उसके पास जाकर उसे कहता है कि अब क्या कर रहा है बैठा हुआ! आकर बताया नहीं; खबर नहीं दी?
बोकोजू अपने गुरु के पास था वर्षों तक। अनेक बार कुछ छोटे-मोटे अनुभव होते--कभी कुंडलिनी जगती लगती, कभी भीतर प्रकाश होता, कभी कोई कमल खिलता मालूम होता--वह आ-आकर खबर देता। गुरु कहता, यह कुछ भी नहीं है। सब मन का खेल है। थक गया। वर्षों आना; बार-बार कहना; और गुरु यही कहे, मन का खेल है। यह कुछ भी नहीं। यह बच्चों की बातें छोड़। यह नासमझों की बातें छोड़। सभी अनुभव सांसारिक हैं। उस अवस्था को पाना है, जहां कोई अनुभव नहीं रह जाता, केवल साक्षी बचता है, देखने वाला बचता है, दृश्य कोई भी नहीं।
फिर एक दिन बोकोजू आया, वह द्वार के भीतर प्रविष्ट ही हुआ था कि गुरु खड़ा हो गया और उसने कहा, तो आज हो गया बोकोजू। बोकोजू ने कहा, लेकिन आज तो मैंने कुछ कहा ही नहीं। और हर बार मैं आकर कुछ कहता था, तुम इनकार करते रहे। और आज मेरे बिना कहे... !
गुरु ने कहा, जब हो जाता है, तो तुझसे पहले हमें पता चलता है। आज तेरी चाल और है, आज तेरे चारों तरफ की हवा और। आज तेरे भीतर जो नाद गूंज रहा है, जिन्होंने अपना नाद सुन लिया है, वे उसे सुनने में तत्क्षण समर्थ हो जाएंगे।
कृष्ण को पता तो चल गया है, इसीलिए माहात्म्य कहा है। नहीं तो माहात्म्य कहने की कोई जरूरत न थी। अब तक नहीं कहा; अठारह अध्याय बीत गए। अचानक माहात्म्य कहा है। अचानक यह बताया कि कौन पात्र है, किसको कहना। अचानक यह कहा है कि कहने का कितना मूल्य है। बिन कहे मत रह जाना।
पता चल गया है, लेकिन पूछते हैं माहात्म्य कहकर, हे पार्थ, क्या यह मेरा वचन तूने एकाग्र चित्त से श्रवण किया? तूने सुना, क्या कहा मैंने? तूने समझा, क्या कहा मैंने? तू जागा? तूने देखा, कौन हूं मैं? और हे धनंजय, क्या तेरा अज्ञान से उत्पन्न हुआ मोह नष्ट हुआ?
वे यह कह रहे हैं, अब भीतर जरा टटोलकर देख, कहां है तेरा मोह? कहां हैं
वे बातें तेरे भीतर कि ये मेरे अपने प्रियजन खड़े हैं, इनको मैं कैसे काटूं? अब जरा पीछे मुड़, खोज। कहां गए वे प्रश्न, संदेह-शंकाएं? वे सारी चित्त की विचलित दशाएं कहां हैं अब? तेरा अज्ञान से उत्पन्न हुआ मोह नष्ट हुआ?

भगवान के ऐसा पूछने पर अर्जुन बोला, हे अच्युत, आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया है और मुझे स्मृति प्राप्त हुई है, इसलिए मैं संशयरहित हुआ स्थित हूं और आपकी आज्ञा पालन करूंगा।
एक-एक शब्द बहुमूल्य है। सारी गीता की चेष्टा इन थोड़े-से शब्दों के लिए थी कि अर्जुन के भीतर ये थोड़े-से शब्द प्रकट हो सकें। यह कृष्ण का पूरा आयोजन, इतनी-इतनी बार अर्जुन को समझाना, बार-बार अर्जुन का छिटक-छिटक जाना, कृष्ण का फिर-फिर उठाना, यह इन थोड़े-से शब्दों को सुनने के लिए था।
सारे गुरुओं की चेष्टाएं शिष्य से इन थोड़े-से शब्दों को सुनने के लिए हैं, कि किसी दिन वह घड़ी आएगी सौभाग्य की और शिष्य का हृदय अहोभाव से भरकर कहेगा, आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया, मुझे स्मृति प्राप्त हुई, संशयरहित हुआ मैं स्थित हूं और आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा है।
हे अच्युत... ।
अच्युत का अर्थ होता है, जो कभी डिगाया न जा सके। अर्जुन ने बहुत डिगाने की कोशिश की कृष्ण को। कितने संदेह उठाए! कितने प्रश्न पूछे! कोई भी थक जाता। कोई भी कहता कि बस, बहुत हुआ। अब मेरा सिर मत खा। लेकिन बार-बार कृष्ण फिर अनुकंपा से भरे अपना हाथ बढ़ा देते हैं।
तो अर्जुन कहता है, हे अच्युत, तुम जो कि डिगाए नहीं जा सके... ।
और वही गुरु तो तुम्हें थिर कर सकेगा, जिसे तुम डिगा न सको। जो गुरु तुम से डिग जाए, वह तुम्हें कैसे अनडिगा बना सकेगा? वह तो असंभव है।
कृष्ण न तो नाराज हुए, न परेशान हुए, न चिंतित हुए, न निराश हुए। जरा भी डिगे नहीं।
तो अर्जुन कहता है, हे अच्युत, आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हुआ।
तुम्हारे प्रसाद से... ।
यह बहुत बहुमूल्य बात है। वह सीधा भी कह सकता था, मेरा मोह नष्ट हुआ।
लेकिन तब भूल हो जाती। तब गीता अभी समाप्त नहीं हो सकती थी। यात्रा और चलती।
अगर वह कहता, मेरा मोह नष्ट हुआ, तो मेरा अभी भी महत्वपूर्ण था। मोह नष्ट हो गया, इसको भी वह मेरे का ही आभूषण बना लेता। अभी भी वह अकड़ से कहता, मेरा मोह नष्ट हुआ। तो कृष्ण को फिर चेष्टा करनी पड़ती।
नहीं; पहली बार उसने कहा है, आपके प्रसाद से मेरा मोह नष्ट हुआ। मेरे प्रयास से नहीं, तुम्हारे अनुग्रह से। तुम बरसे मेरे ऊपर--अकारण। मेरी कोई पात्रता न थी; मेरा कोई पुण्य का उदय भी न था। मैं खो जाता अंधकार में, तो शिकायत करने का कोई उपाय न था। लेकिन तुम बरसे, तुम औघड़दानी, तुमने बिना मेरी पात्रता की फिक्र किए मेरे ऊपर खूब बरसा की, खूब अमृत बरसाया। तुम्हारे प्रसाद से मेरा मोह नष्ट हुआ।
जब भी मैं नष्ट होता है, तो वह परमात्मा के प्रसाद से नष्ट होता है। अगर तुम यह कहो कि मेरे ही प्रयास से नष्ट हुआ, मेरी साधना से, मेरे तप से, तो वह अभी नष्ट हुआ ही नहीं। अभी तपस्वी के भीतर तप में तपा हुआ अहंकार खड़ा ही रहेगा। यह खतरनाक अहंकार है। यह पवित्र अहंकार है। यह साधारण आदमी के अहंकार से भी ज्यादा उपद्रव से भरा हुआ रोग है।
साधारण आदमी का अहंकार तो रोगग्रस्त है, अपवित्र है। उसे भी लगता है
कि यह बीमारी जैसा है, छोड़ना है। नहीं छूटता, मजबूरी है। पर छोड़ने की आकांक्षा है।
पवित्र अहंकार, जिसको कृष्णमूर्ति ने पायस ईगोइज्म कहा है, वह साधु पुरुषों को उपलब्ध होता है। तप किया, ध्यान किया, धारणा की, समाधि को पाया; चेष्टा से उत्पन्न हुआ, श्रम से पाया, अपने ही प्रयास से पाया; तो बड़ा सघन और सूक्ष्म अहंकार निर्मित होता है।
अगर कृष्ण जरा-सा शब्दों में फर्क पाते, अगर अर्जुन जरा बदलकर बात कहता, जमीन-आसमान का अंतर हो जाता। अगर उसने इतना ही कहा होता, मेरा मोह नष्ट हो गया, तो अभी और चेष्टा करनी जरूरी थी। अभी मोह भला नष्ट हो गया हो, लेकिन अब इस नष्ट हुए मोह ने एक और नया अहंकार खड़ा कर दिया, कि मेरा मोह नष्ट हो गया।
आपकी कृपा से, तुम्हारे प्रसाद से मेरा मोह नष्ट हो गया, हे अच्युत, और मुझे मेरी स्मृति प्राप्त हुई... ।

वह यह नहीं कहता कि मुझे कुछ नया मिल गया। जो मिला है, वह केवल स्मृति है, वह स्मरण है। जो मिला है, वह केवल याददाश्त है। जिसे मैं भूल गया था, जो मेरे भीतर था और जिसकी तरफ मेरी नजर न रही थी, तुमने मेरी दृष्टि को फेर दिया। तुमने मुझे याद दिला दी। तुमने मुझे मुझसे ही मुलाकात करवा दी, मुझे मुझसे ही मिला दिया।
पर तुम्हारे प्रसाद से हुआ है। अपने हाथ से तो मैं कभी भी यहां न पहुंच पाता। शायद जितनी मैं चेष्टा करता, उतनी ही स्मृति मुश्किल होती चली जाती।
जिसको कबीर सुरति कहते हैं, नानक सुरति कहते हैं, जिसको बुद्ध ने सम्यक स्मृति कहा है, वही अर्जुन कहता है, मुझे स्मृति प्राप्त हुई। अब मैं पहचान गया अपने को। अब मुझे याद आ गई मेरे होने की। अपने ही अस्तित्व से मुलाकात हो गई। अब मैं अपने आमने-सामने खड़ा हूं।
और इसलिए अब मैं संशयरहित स्थित हूं... ।
जिस दिन भी तुम्हें स्मरण आ जाता है कि तुम कौन हो, उसी क्षण सब संशय गिर जाते हैं। विस्मरण की अंधेरी रात में ही संशयों की बाढ़ उपजती है।
स्मरण के प्रकाश में सब संशय ऐसे ही खो जाते हैं, जैसे दीया जल जाए, तो अंधेरा खो जाता है। सुबह सूरज उग आए, तो रात विदा हो जाती है, रात के तारे विदा हो जाते हैं।
संशयरहित हुआ स्थित हूं... ।
और अब मुझे कुछ करना नहीं पड़ रहा है स्थिर होने के लिए। अचानक मैं पाता हूं, हे अच्युत, कि स्मृति क्या आ गई, मैं स्थित हो गया हूं। मेरी प्रज्ञा ठहर गई। अब दीए की लौ हिलती नहीं। तूफान आएं, आंधियां उठें, मेरे भीतर कोई कंपन नहीं हो रहा है। स्थित हुआ मैं अपने भीतर ठहर गया हूं।
यह गीता का लक्ष्य है, स्थितप्रज्ञ की अवस्था। जब चेतना थिर हो जाए; जैसे कोई दीए की लौ हो, और हवा के झोंके उसे कंपा न सकें; थिर रहे, अकंप, निष्कंप।
और अब आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा करता हूं।
अब तक वह कहता था, मैं ऐसा करना चाहता हूं, वैसा करना चाहता हूं। ये मेरे प्रियजन हैं, इन्हें मैं मारना नहीं चाहता। मैं त्याग करना चाहता हूं। मैं संन्यास लेना चाहता हूं। पहली बार उसने कहा कि अब मैं थिर हुआ; स्मृति मुझे आ गई, अच्युत; अब तुम्हारी आज्ञा। अब तुम्हारी मर्जी। अब तुम जो कहो। अब मुझे रत्तीभर भी प्रश्न नहीं है। तुम जो कहोगे, वह ठीक है या गलत, यह सवाल नहीं है। अब तुम जो कहोगे, वह ठीक ही है।
यह थोड़ा समझ लेने जैसा है। जब तक ऐसी दशा न आ जाए, तब तक गुरु से मिलन नहीं। जब तुम ऐसा न कह सको कि अब तुम जो कहोगे, वही ठीक है; अब ठीक और गलत का कोई मापदंड तुम पर हम लागू न करेंगे; अब तुम्हारा कहना ठीक; तुम्हारा न कहना गलत। तुम जो न कहो, वह गलत; तुम जो कहो, वह ठीक। तुम जो छोड़ दो, वह गलत; तुम जो इशारा करो, वह सही। अब तुम्हारा होना पर्याप्त है।
पर यह तभी होता है, जब स्वयं का स्मरण आ जाए। स्वयं की पहचान के साथ ही गुरु के भीतर की पहचान भी होती है।
अभी तक कृष्ण सखा थे, साथी थे, सारथी थे, हितेच्छु थे, मंगलकामी थे।
जिसको बुद्ध ने कहा है, कल्याण-मित्र। मित्र थे और कल्याण चाहते थे। इस क्षण गुरु हुए।
इस घड़ी आकर अर्जुन शिष्य हो गया, इस घड़ी आकर रथ ही अर्जुन ने कृष्ण के हाथों में नहीं छोड़ा, अपने को भी छोड़ दिया, कि अब तुम मेरे भी सारथी हो गए।
तुम मेरे घोड़ों को ही मत सम्हालो, अब मुझे भी सम्हालो। अब तुम मेरे रथ की ही लगाम मत पकड़ो, मेरी लगाम भी पकड़ लो।
अब मैं थिर हुआ। स्मरण को उपलब्ध हुआ। तुम्हें पहचान पाता हूं। तुम्हारी महिमा को देख पाता हूं, तुम कौन हो। यह अपने को पहचानकर मैं तुम्हें भी पहचान गया हूं। अब मुझे कोई संशय नहीं है। अब तुम्हारी आज्ञा की प्रतीक्षा है।
जिस दिन शिष्य आज्ञा की प्रतीक्षा करता है, समर्पण हो गया। शिष्य उसी दिन शिष्य बनता है; और उसी दिन उसे गुरु में परमात्मा के दर्शन होते हैं।
आज इतना ही।

गीता दर्शन, भाग आठ
गीता दर्शन अध्याय 18
इक्कीसवां प्रवचन

परमात्मा को झेलने की पात्रता

संजय उवाच
इत्यहं वासुदेवस्य पार्थस्य च महात्मनः।
संवादमिममश्रौषमद्भुतं रोमहर्षणम्।। 74।।
व्यासप्रसादाच्छ्रु्रतवानेतद्गुह्यमहं परम्।
योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम्।। 75।।
राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम्।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः।। 76।।
तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः।
विस्मयो मे महान राजन्हृष्यामि च पुनः पुनः।। 77।।
यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।। 78।।
इसके उपरांत संजय बोला, हे राजन, इस प्रकार मैंने श्री वासुदेव के और महात्मा अर्जुन के इस अदभुत रहस्ययुक्त और रोमांचकारक संवाद को सुना।
श्री व्यासजी की कृपा से दिव्य-दृष्टि के द्वारा मैंने इस परम रहस्ययुक्त गोपनीय योग को साक्षात कहते हुए स्वयं योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान से सुना है।
इसलिए हे राजन, श्रीकृष्ण भगवान और अर्जुन के इस रहस्ययुक्त, कल्याणकारक और अदभुत संवाद को पुनः-पुनः स्मरण करके मैं बारंबार हर्षित होता हूं।
तथा हे राजन, श्री हरि के उस अति अदभुत रूप को भी पुनः-पुनः स्मरण करके मेरे चित्त में महान विस्मय होता है और मैं बारंबार हर्षित होता हूं।
हे राजन, विशेष क्या कहूं! जहां योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान हैं और जहां गांडीव धनुषधारी अर्जुन है, वहीं पर श्री, विजय, विभूति और अचल नीति है, ऐसा मेरा मत है।

पहले कुछ प्रश्न।
पहला प्रश्नः गीता में कृष्ण का जोर समर्पण, भक्ति, श्रद्धा पर है, लेकिन आज की विश्व-स्थिति में लोग बुद्धि-केंद्रित और संकल्प-केंद्रित हैं। इस स्थिति में गीता का मार्ग किस प्रकार मौजूं बैठता है?

इसलिए ही मौजूं बैठता है।
लोग जब अति बुद्धि-केंद्रित होते हैं, तब बुद्धि एक घाव की तरह हो जाती है। बुद्धि का उपयोग तो उचित है, लेकिन बुद्धि के द्वारा संचालित होना उचित नहीं है। बुद्धि उपकरण रहे, उपयोगी है; बुद्धि मालिक बन जाए, घातक है।
चूंकि युग बुद्धि-केंद्रित है, बुद्धि एक घाव बन गयी है। उससे न तो जीवन में आनंद फलित होता, न शांति का आविर्भाव होता, न जीवन में प्रसाद बरसता। जीवन केवल चिंताओं, और चिंताओं से भर जाता है। विचार, और विचारों की विक्षिप्त तरंगें व्यक्ति को घेर लेती हैं।
बुद्धि अगर मालिक हो जाए, तो विक्षिप्तता तार्किक परिणाम है। बुद्धि अगर सेवक हो, तो अनूठी है। उसके ही सहारे तो सत्य की खोज होती है। फर्क यही ध्यान रखना कि बुद्धि तुम्हारी मालिक न हो; मालिक हुई, कि बुद्धि उपाधि हो गयी।
इसीलिए कृष्ण का उपयोग है। उनकी समर्पण की दृष्टि औषधि बन सकती है।
एक तरफ ढल गया है जगत, बुद्धि की तरफ। अगर थोड़ा भक्ति, थोड़ी श्रद्धा का संगीत भी पैदा हो, तो बुद्धि से जो असंतुलन पैदा हुआ है, वह संतुलित हो जाए;

यह जो एकांगीपन पैदा हुआ है, एकांत पैदा हुआ है, वह छूट जाए; जीवन ज्यादा संगीतपूर्ण हो, ज्यादा लयबद्ध हो।
हृदय और बुद्धि अगर दोनों तालमेल से चलने लगें, तो तुम परमात्मा तक पहुंच जाओगे।
ऐसा ही समझो कि कोई आदमी यात्रा पर निकला हो; बायां पैर कहीं जाता हो, दायां कहीं जाता हो; वह कैसे पहुंचेगा मंजिल तक? हृदय कुछ कहता हो, बुद्धि कुछ कहती हो, दोनों में तालमेल न हो, तो तुम कैसे पहुंच पाओगे? बुद्धि ले जाएगी व्यर्थ के विचारों में, व्यर्थ के ऊहापोह में, कुतूहल में; हृदय तड़पेगा प्रेम के लिए, प्यासा होगा श्रद्धा के लिए। दोनों दो दिशाओं में खींचते रहेंगे; तुम न घर के रह जाओगे, न घाट के।
ऐसी ही दशा मनुष्य की हुई है।
समर्पण का यह अर्थ नहीं है कि बुद्धि को तुम नष्ट कर दो। समर्पण का इतना ही अर्थ है कि बुद्धि अपने से महत्तर की सेवा में संलग्न हो जाए। अभी श्रेष्ठ को अश्रेष्ठ चला रहा है; यही तुम्हारी पीड़ा है। अगर श्रेष्ठ अश्रेष्ठ को चलाने लगे, यही तुम्हारा आनंद हो जाएगा। अभी तुम सिर के बल खड़े हो; जीवन में पीड़ा ही पीड़ा है, नर्क ही नर्क है। तुम पैर के बल खड़े हो जाओ। अभी तुम उलटे हो।
बुद्धि कीमती है, इसे ध्यान रखना। लेकिन बुद्धि घातक है, अगर अकेली ही कब्जा करके बैठ जाए। और बुद्धि की वृत्ति है मोनोपोली की, एकाधिकार की। बुद्धि बड़ी ईर्ष्यालु है। जब बुद्धि कब्जा करती है, तो फिर किसी को मौका नहीं देती। जब विचार तुम्हें पकड़ लेते हैं, तो फिर निर्विचार के लिए कोई जगह नहीं छोड़ते। अगर दो विचारों के बीच निर्विचार भी तिरता रहे, तो विचारों से कुछ बिगड़ता नहीं, तुम उनका भी उपयोग कर लोगे।
जो होशियार हैं, जो कुशल हैं, वे जीवन में किसी चीज का इनकार नहीं करते, वे सभी चीज का उपयोग कर लेते हैं। जो कुशल कारीगर है, वह किसी पत्थर को फेंकता नहीं; वह मंदिर के किसी न किसी कोने में उसका उपयोग कर लेता है। और कभी-कभी तो ऐसा हुआ है कि जो पत्थर किसी भी काम का न था और फेंक दिया गया था, आखिर में वही शिखर बना।
जीवन में कुछ भी फेंकने योग्य नहीं है, क्योंकि परमात्मा व्यर्थ तो देगा ही नहीं। अगर तुम्हें फेंकने जैसा लगता हो, तो तुम्हारी नासमझी होगी। जीवन में सभी कुछ सम्यकरूपेण उपयोग कर लेने जैसा है।
आज मनुष्य ज्यादा बुद्धि की तरफ झुक गया है। वह पक्षपात ज्यादा हो गया; संतुलन टूट गया है। आदमी गिरा-गिरा ऐसी अवस्था में है; नाव डूबी-डूबी ऐसी अवस्था में है, एक तरफ झुक गयी है। कृष्ण की बात इसीलिए मौजूं है। संकल्प का भी मूल्य है, जैसे बुद्धि का मूल्य है। वस्तुतः जिसके भीतर संकल्प न हो, वह समर्पण भी कैसे करेगा?
तुम इन बातों को सुनकर चुनाव करने में मत लग जाना, अन्यथा पछताओगे। ये बातें चुनाव करने के लिए नहीं हैं; ये बातें तुम्हें पूरे जीवन की एक विहंगम दृष्टि देने के लिए हैं। जीवन की समग्रता तुम्हें दिखायी पड़नी चाहिए। और जब भी कभी एक चीज ज्यादा हो जाती है, तो उससे विपरीत पर जोर देना पड़ता है, ताकि संतुलन थिर हो जाए।
समर्पण का यह अर्थ मत समझना कि जिनके जीवन में संकल्प की कोई क्षमता नहीं, वे समर्पण कर पाएंगे। वे समर्पण भी कैसे करेंगे? समर्पण से बड़ा संकल्प है कोई? सब कुछ छोड़ता हूं, इससे बड़ा कोई संकल्प हो सकता है? सब कुछ परमात्मा के चरणों में रख देता हूं, इससे बड़ा कोई संकल्प हो सकता है? यह तो महा संकल्प है।
संकल्प का भी उपयोग कर लेता है समझदार व्यक्ति। वह संकल्प को समर्पण में नियोजित कर देता है। वह संकल्प के बैलों को समर्पण की गाड़ी में जोत देता है। यात्रा तो वह समर्पण की करता है, लेकिन संकल्प की सारी ऊर्जा का उपयोग कर लेता है।
और ध्यान रखना, ऊर्जा तटस्थ है। ऊर्जा कहीं भी नहीं ले जा रही है; तुम जहां ले जाना चाहो, वहीं ले जाएगी।
मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन एक कार बेचने वाली दुकान में गया।
उसने एक कार बड़ी देर तक गौर से देखी। दुकानदार ने बहुत समझाया। उसकी

उत्सुकता देखी, लगा कि खरीददार है। प्रशंसा में उसने कहा कि यह कार दो घंटे में दिल्ली पहुंचा देती है; बड़ी तेज गाड़ी है। नसरुद्दीन ने कहा, फिर सोचकर कल आऊंगा।
वह कल आया। कहने लगा कि नहीं भाई, नहीं खरीदनी है। दुकानदार ने कहा, लेकिन हो क्या गया? क्या भूल-चूक मिली? उसने कहा, भूल-चूक का सवाल ही नहीं। मुझे दिल्ली जाना ही नहीं; मुझे लखनऊ जाना है! रातभर सोचा कि दिल्ली जाने का कोई कारण? कोई कारण दिखायी नहीं पड़ता!
अब कार न तो दिल्ली ले जाती है, न लखनऊ ले जाती है, सिर्फ ले जाती है। ऊर्जा तटस्थ है।
संकल्प अहंकार में भी ले जा सकता है, समर्पण में भी। यह बड़ी गुह्य बात है। इसे थोड़ा ध्यानपूर्वक समझना।
संकल्प अहंकार में भी ले जा सकता है; वह तो ऊर्जा है। तुमको अगर अहंकार भरना हो, तो तुम अपने सारे संकल्प को अहंकार के भरने के लिए ही नियोजित कर देना। तुम परमात्मा की तरफ पीठ कर लेना। लेकिन पीठ करने में भी ताकत लगती है। वह ताकत उतनी ही है, जितनी चरणों में सिर रखने में लगती है। परमात्मा के खिलाफ लड़ने में उतनी ही ताकत लगती है, जितनी उसके आनंद में विभोर होकर नाचने में लगती है। नास्तिक परमात्मा के खिलाफ तर्क खोजने में उतनी ही शक्ति लगाता है, जितना आस्तिक उसकी अर्चना में लगाता है। नास्तिक नासमझ है। क्योंकि अगर यह सिद्ध भी हो जाए कि परमात्मा नहीं है, तो भी नास्तिक को कुछ मिलेगा नहीं। उसकी जीवन-धारा मरुस्थल में खो गयी, वह सागर तक पहुंचेगी नहीं। इसी जीवन-धारा से सागर तक पहुंचा जा सकता था। नास्तिक को मैं गलत नहीं कहता, सिर्फ नासमझ कहता हूं। आस्तिक को मैं समझदार कहता हूं। नास्तिक को मैं पापी नहीं कहता, सिर्फ भूल से भरा हुआ कहता हूं। और भूल से किसी और को वह नुकसान नहीं पहुंचाता, अपने को ही पहुंचाता है। जितनी ताकत परमात्मा से लड़ने में लगती है, उतनी ताकत में तो परमात्मा मिल जाता है।
ऊर्जा तटस्थ है। संकल्प को ही लगाना पड़ता है अहंकार के लिए, और संकल्प
को ही लगाना पड़ता है समर्पण के लिए।
अगर अहंकार से थक गए हो, उसके कांटे चुभ गए हैं हृदय में गहरे, घाव बन
गए हैं, तो अब उसी संकल्प को जिसे तुमने अहंकार की पूजा में निरत किया था, अब उसी संकल्प को समर्पण की सेवा में लगा दो।
ऊर्जा का कोई गंतव्य नहीं है; गंतव्य तुम्हारा है; तुम जिस तरफ चल पड़ो। अगर तुम नर्क जाना चाहो, तो पैर नर्क ले जाएंगे। पैर यह न कहेंगे कि नर्क क्यों ले जाते हो! पैरों को कोई प्रयोजन नहीं। पैरों को चलने से प्रयोजन है। तुम स्वर्ग ले जाओ, पैर स्वर्ग ले जाएंगे। ध्यान रखना, तुमने जीवन की जो भी दशा बना ली है, उसी ऊर्जा से जीवन की दशा बिल्कुल भिन्न भी हो सकती है।
तुमने कभी ख्याल किया, चिंतित आदमी कितनी शक्ति लगाता है चिंता में! वही शक्ति प्रार्थना में लग सकती थी। अशांत व्यक्ति कितनी शक्ति लगाता है अशांति में! उससे ही तो शून्य का जन्म हो सकता था। तुम व्यर्थ को खोजने में कितना दौड़ते हो! उतनी दौड़ से तो सार्थक घर आ जाता। उतनी दौड़ से तो तुम अपने घर वापस आ जाते। बाजार में कितना तुम श्रम कर रहे हो! उतने श्रम से तो यह सारा संसार मंदिर हो जाता। इसे बहुत ख्याल में रख लो।
यह युग बुद्धि का युग है और संकल्प का, संकल्प यानी अहंकार का। इसलिए मैं कहता हूं कि अगर पश्चिम धर्म की तरफ मुड़ा, जैसा कि मुड़ रहा है, तो पूरब को मात कर देगा; क्योंकि ऊर्जा उसके पास है। अभी उसने बड़े भवन बनाने में लगाई है ऊर्जा, तो सौ और डेढ़ सौ मंजिल के मकान खड़े कर दिए हैं। अभी उसने चांद-तारों पर पहुंचने में ऊर्जा लगाई है, तो चांद-तारों पर पहुंच गया है। अगर कल उसके जीवन में क्रांति आयी... ।
आएगी ही! क्योंकि चांद-तारे तृप्त नहीं कर रहे हैं। डेढ़ सौ मंजिल के मकान भी कहीं नहीं पहुंचाते, अधर में लटका देते हैं। विराट धन-संपदा पैदा हुई है। ऊर्जा है, संकल्प है, बल है।
अगर ये बलशाली लोग कल धर्म की तरफ लगेंगे, तो इनके मंदिर तुम्हारे मंदिरों जैसे दीन-हीन न होंगे। ये अगर चांद पर पहुंचने के लिए जीवन को

दांव पर लगा देते हैं, तो समाधि में पहुंचने के लिए भी जीवन को दांव पर लगा देंगे। ये तुम जैसे काहिल सिद्ध न होंगे, सुस्त सिद्ध न होंगे।
इस बात को स्मरण रखो कि जिसके पास बड़ा संकल्प है, उसी के पास बड़ा समर्पण होगा; जिसके पास पका हुआ अहंकार है, वही तो चरणों में झुकने की क्षमता पाता है।
इसलिए मैं नहीं कहता कि तुम अहंकार को काटो, गलाओ। मैं कहता हूं, पकाओ, प्रखर करो, तेजस्वी करो; तुम्हारा अहंकार जलती हुई एक लपट बन जाए; तभी तुम समर्पण कर सकोगे।
तुमसे मैं यह नहीं कहता हूं कि तुम काहिल होकर गिर जाओ पैरों में, क्योंकि खड़े होने की ताकत ही न थी। ऐसे गिरे हुए का क्या मूल्य होगा? खड़े हो ही न सकते थे, इसलिए गिर गए! सिर उठा ही न सकते थे, इसलिए झुका दिया। ऐसे पक्षाघात और लकवे से लगे लोगों के समर्पण का कोई भी मूल्य नहीं है।
मूल्य तो उसी का है, जिसने सिर को उठाया था और उठाए चला गया था, और सब आकाशों में सिर को उठाए खड़ा रहा था। बल था, बड़े तूफान आए थे और सिर नहीं झुकाया था; बड़ी आंधियां आई थीं और इंचभर हिला न सकी थीं। संसार में लड़ा था, जूझा था।
अर्जुन जैसा अहंकार चाहिए! योद्धा का अहंकार चाहिए! इसलिए जब अर्जुन झुकता है, तो क्षणभर में महात्मा हो जाता है।
अब तक संजय अर्जुन को महात्मा नहीं कहता, आज अचानक अर्जुन महात्मा हो गया! इस आखिरी घड़ी में, पटाक्षेप होने को है, गीता अध्याय समाप्त होने को है, अचानक अर्जुन महात्मा हो गया! क्या घटना घटी? वही ऊर्जा जो योद्धा बनाती थी, वही अब समर्पित हो गयी।
तुम यह मत सोचना कि अर्जुन की जगह अगर कोई दुकानदार होता, तो इतनी आसानी से महात्मा हो जाता। नहीं; वह अपने हिसाब लगाता। वह गणित बिठाता। वह देखता कि फायदा किस में है। जीवन दांव पर न लगता। वह इतनी सरलता से न कहता, जो आपकी आज्ञा!
ऐसा नहीं कि अर्जुन लड़ा नहीं; लड़ा; लड़ा तभी तो कह सका; लड़ा, जूझा; कृष्ण
से उसने कोई कमी नहीं रखी लड़ने में। वह सब तरफ से उसने संघर्ष लिया; सब तरफ से कोशिश की अपनी ही बात पर अडिग रहने की। लेकिन जब पाया कि अपनी बात गलत है; जब सब तरफ से पाया, छिद्र ही छिद्र हैं; नाव सब तरफ से बचाने की उसने कोशिश की, लेकिन न बचा पाया; नाव डूब गयी; तो झुका।
यह झुकना ऐसा ही नहीं है कि बस, झुक गया औपचारिकता से। नहीं; संघर्ष किया, अपने संकल्प को बचाए रखने की कोशिश की; कृष्ण को जल्दी और सरलता से झुक नहीं गया। झुका तब, जब झुकने के सिवाय उपाय ही न रहा। जब संकल्प ने ही बता दिया कि यही मार्ग है; जब अहंकार ने ही पककर कह दिया कि अब फल को गिरना चाहिए; पक गया, पक गया, अब कोई कच्चा नहीं है; तब गिरा।
इसलिए कहता हूं, इस युग को कृष्ण की जरूरत है। अहंकार पक गया है। संकल्प प्रगाढ़ हुआ है। मनुष्य के हाथ में बड़ी ऊर्जा है। यह ऊर्जा नर्क ले जाएगी। यह ऊर्जा पृथ्वी को हिरोशिमा और नागासाकी में बदल देगी। अगर जल्दी ही इस ऊर्जा का रूपांतरण न हुआ, अगर यह ऊर्जा संकल्प से हटकर समर्पण की तरफ न बही, तो यह रेगिस्तान में खो जाएगी, मरुस्थल में खो जाएगी। इसके साथ आदमी भी खो जाएगा। एक महा अग्नि होगी, महा विस्फोट होगा।
मनुष्य की प्रौढ़ता पकी है, और कृष्ण के संदेश की ऐसे क्षण में जरूरत है।

दूसरा प्रश्नः कृष्ण ने ग्यारहवें अध्याय में अर्जुन को दिव्य-दृष्टि दी और अपना विराट विश्वरूप दिखाया, फिर अर्जुन के भयभीत होने पर उसके बाद भक्ति-योग का उपदेश दिया। दिव्य-दृष्टि के मिलने के पश्चात सात अध्यायों के बाद अर्जुन का समर्पण पूरा हुआ तथा वह कृष्ण-चेतना के प्रसाद से कृतकृत्य हुआ। दिव्य-दृष्टि और कृष्ण-चेतना के बीच इस अंतराल का अर्थ क्या है? इतना फासला क्यों है?

उसका कारण है। जो दिव्य-दृष्टि अर्जुन को मिली, वह अर्जुन की उपलब्धि
न थी, कृष्ण की भेंट थी। वह कृष्ण ने दी थी। वह उधार थी। अर्जुन की पात्रता

से ज्यादा थी। पात्र कंप गया, भयभीत हो गया। अर्जुन इतनी विराट घटना के लिए तब तैयार न था। अर्जुन ने बूंद मांगी थी और सागर आ गया! बूंद होती, सम्हाल लेता; सागर को न सम्हाल पाया। जड़ों तक कंप गया, भयभीत हो गया, चिल्लाने लगा, अब बंद करो यह। वापस लौट आओ अपने मनमोहक रूप में। यह मुझसे नहीं देखा जाता।
कृष्ण ने जानकर यह धक्का दिया। नहीं कि कृष्ण को पता नहीं है कि अर्जुन अभी तैयार नहीं है; लेकिन साधना के लंबे पथ पर बहुत-से धक्कों की भी जरूरत पड़ती है। क्योंकि तुम अपने जीवन की आदतों में इतने जड़ हो गए हो कि जब तक कोई विराट धक्का न लगे, तब तक तुम हिलते ही नहीं। तुम अपनी आदतों के वर्तुल में इस भांति घूमते रहते हो, जैसे यंत्र। जब तक कोई आकर जोर से तुम्हें धक्का ही न दे, तब तक तुम पटरी से नीचे नहीं उतरते।
एक विद्युत के धक्के की तरह, एक इलेक्ट्रिक शॉक की तरह बहुत बार गुरु
को शिष्य के ऊपर टूट पड़ना पड़ता है। वैसा ही कृष्ण ने किया। वही जो झेन फकीर करते हैं, लेकर डंडा शिष्य पर टूट पड़ते हैं। मारते भी हैं, पीटते भी हैं; कभी उठाकर द्वार के बाहर भी फेंक देते हैं। ऐसे ही कृष्ण टूट पड़े बड़े सूक्ष्म रूप से।
अर्जुन बार-बार कह रहा था कि मुझे भरोसा नहीं आता, तुम यह जो कहे जाते
हो कि तुम्हीं हो केंद्र सारे अस्तित्व के, कि तुम्हीं ने बनाया, इस पर मुझे संदेह है। मैं तो तुम्हारा यही रूप देखता हूं जो सदा से देखा, तुम मेरे सखा हो। अगर ऐसा सच है, तो दिखाओ मुझे वह विराट रूप जिसकी तुम बात करते हो।
एक ऐसी घड़ी आ गयी कि कृष्ण को वह विराट रूप अर्जुन पर गिरा देना पड़ा। उससे अर्जुन हिला, कंपा; सदा के लिए कंप गया, फिर दुबारा वापस अपने पुराने ढांचे में बैठ न पाया। उसकी जिज्ञासा ने नया आयाम ले लिया।
लेकिन वह दृष्टि उधार थी। वे कृष्ण ने आंखें दी थीं, इसलिए उन आंखों
से उसने देखा। कृष्ण ने आंखें वापस ले लीं, वापस संसार, वापस माया का जगत दिखायी पड़ने लगा।
इसका बड़ा महत्वपूर्ण अर्थ है। इसका अर्थ है कि बुद्ध पुरुष अगर तुम्हें कुछ झलक भी दिखा दें, तो वह तुम्हारी न हो पाएगी। तुम्हें निखरना होगा। तुम्हें अपनी जीवन-दृष्टि को उतना पारदर्शी करना होगा।
तो बुद्ध पुरुषों से दृष्टि उधार मत मांगना, दृष्टि को स्वच्छ करने
के उपाय भर मांगना। उनसे यह मत कहना कि एक बार आपकी आंख से इस संसार को देख लेने दो। तुम देख भी लोगे, तो सिर्फ घबड़ाओगे। तुम उसे पचा न पाओगे। जो तुम देखोगे, वह इतना विराट होगा कि तुम्हारे आंगन में समा न पाएगा; तुम्हारा आंगन टूट जाएगा; दीवालें गिर जाएंगी; तुम एक खंडहर हो जाओगे।
समय के पहले कुछ भी न मांगना; हालांकि मन होता है समय के पहले मांग लेने का। मन तो बच्चों जैसा है। जिसकी न पात्रता है, न तैयारी है, उसको भी पा लेने की आकांक्षा होती है।
अर्जुन जिद्द किए गया। फिर कृष्ण ने देखा कि ठीक है, योद्धा है, क्षत्रिय है, गिरने दो इस पर पूरा आकाश। शायद वही इसे कंपाएगा; शायद वही इसे मेरे प्रति सजग करेगा कि मैं कौन हूं। नहीं तो यह मुझे ऐसे ही देखता रहेगा, जैसा इसे मैं दिखायी पड़ रहा हूं।
बुद्ध को तुमने देखा, महावीर को देखा, कृष्ण को देखा, कुछ भी तो दिखायी नहीं पड़ा; साधारण पुरुष दिखायी पड़े। जैसे तुम थे, ऐसे ही वे थे। इसका कारण यह नहीं था कि वे तुम जैसे थे; इसका कारण कुल इतना था कि तुम्हारे पास और ढंग से देखने की आंख ही न थी। अन्यथा तुम उनमें सब देख लेते। सारे चेतना के शिखर उनमें प्रकट थे; लेकिन तुम्हारी आंख चमड़ी से ज्यादा भीतर न जा सकी। हड्डी-मांस-मज्जा की देह ही तुम देख सके। बस, उतनी ही तुम्हारी आंख की क्षमता है।
अर्जुन ने आंख उधार मांग ली। उससे उसे विराट दिखा, ब्रह्म दिखा, विस्तीर्ण दिखा। लेकिन जिसके लिए तुम्हारी तैयारी न हो गयी हो, वह अगर प्रसाद से भी मिल जाए, तो तुम्हें उसे छोड़ना पड़ेगा। क्योंकि तुम उसे पचा ही न पाओगे। तुम उसे आत्मसात न कर सकोगे। तुम उसे अपने जीवन का अंग न बना

पाओगे। तुममें और उसमें फासला इतना होगा कि वह एक दुख-स्वप्न की भांति हो जाएगा! तुम उसे भुलाना चाहोगे। तुम चाहोगे, जल्दी वापस ले लो।
इस जगत में सब कुछ उधार दिया जा सकता है, दिव्यता उधार नहीं दी जा सकती, यह अर्थ है उस घटना का। दिव्यता के लिए तुम्हें धीरे-धीरे अपने को निखारना होता है, एक शुचिता लानी होती है। फिर भी दिव्यता जब मिलती है, तब प्रसाद-रूप ही मिलती है। तुम्हारी पात्रता के कारण नहीं मिलती, पर तुम्हारी पात्रता के कारण मिलती है तो खोती नहीं। अगर अर्जुन पात्र रहा होता उस क्षण में, तो वह जो दृष्टि मिली थी, वह उसकी हो जाती। गीता वहीं समाप्त हो जाती। सात अध्यायों की और जरूरत न थी।
सात प्रतीकात्मक आंकड़ा है। किसी की शादी करते हैं, तो हम सात चक्कर लगवाते हैं। सात यानी संसार। दिव्य-दृष्टि मिल गयी, फिर भी पूरा संसार का चक्कर जारी रहा, सात चक्कर लग गए!
सात दिन में हमने समय को बांट दिया है। समय यानी संसार। सात का वर्तुल है। दिव्य-दृष्टि उधार थी, इसलिए पूरा संसार फिर लगा, फिर पूरे संसार से भटकना पड़ा, फिर सात भांवर लीं, तब कहीं वह उस जगह आ पाया, जहां उसको अपनी दृष्टि मिली।
वही है प्रामाणिक, जो तुम्हारे भीतर उगा है, उपजा है। जो फूल तुम्हारे भीतर खिला है, वही सच्चा है। यद्यपि उसको खिलने के लिए भी बहुत हजारों- करोड़ों मील दूर सूरज की किरणों की जरूरत है; वह भी बिना प्रसाद के नहीं खिलेगा।
समझें फर्क! एक कली है, रातभर प्रतीक्षा की है, जन्मों-जन्मों से राह देखी है। छिपी थी कभी बीज में, फिर जमीन में उपजी, अंकुर में छिपी, वृक्ष में छिपी थी; हजारों कठिनाइयों और संघर्षों के बाद कली बनी; रातभर प्रतीक्षा की है; पंखुड़ियां तैयार हैं खुलने को। पर सूरज की प्रसाद-रूप वर्षा हो तभी न!
सुबह सूरज उगा, कली खिल गयी! पास में ही एक प्लास्टिक का फूल भी रखा है,
वह बिना ही सूरज के खिला है; न रात देखता, न दिन देखता। वह सच्चा है ही नहीं। उसे खिलने की कोई जरूरत नहीं, मरने की भी कोई जरूरत नहीं। उसमें कोई सुगंध भी नहीं है; उसमें जीवन की लीला भी नहीं है। उसमें न कुछ कंपता, न डुलता। उसमें कोई प्रवाह नहीं है। वह जड़ है, वह मृत है। प्लास्टिक से ज्यादा मुरदा चीज तुम न खोज पाओगे!
और अब वैज्ञानिक कहते हैं कि जल्दी हम हृदय भी प्लास्टिक के लगा देंगे। आदमी के शरीर के अंग भी प्लास्टिक के कर देंगे।
आदमी वैसे ही बहुत झूठा हो गया है। अब कृपा करो! अब उसको और प्लास्टिक
का मत करो, नहीं तो वह और झूठा हो जाएगा। अभी थोड़ी-बहुत उसकी कली कभी-कभी खिलती है किसी कृष्ण के सूर्य के पास, वह भी मुश्किल हो जाएगी। प्लास्टिक का हृदय क्या धड़केगा?
यह संजय कहता है कि ये वचन मैंने स्वयं ही सुने, स्मरण कर-करके मेरा हृदय आह्लादित होता है।
कहीं प्लास्टिक का होता हृदय, तो यह कहता, वचन सुने; मेरे हृदय में कुछ
भी नहीं होता है। प्लास्टिक का हृदय कहीं हर्षित होगा स्मरण कर-करके!
यह बात ही रोमांचित करती है संजय को। वह कहता है, मैंने सिर्फ सुनी है; दूर से सुनी है; गुरु की कृपा से सुनी है, व्यास की कृपा से सुनी है। मैंने सिर्फ सुनी है। मैं कोई भागीदार न था। मुझसे बात कही भी न गयी थी। कहने वाले कृष्ण थे, सुनने वाला अर्जुन था; मैं तो बहुत दूर, व्यास की कृपा से मुझे दृष्टि मिली, उसे देख रहा था। लेकिन मेरा हृदय भी आंदोलित होता है आनंद से। सुन-सुनकर भी मैं पुलकित हो गया हूं। ऐसी अनूठी, ऐसी विस्मयकारक घटना घटी! हरि का ऐसा रूप देखा!
होता प्लास्टिक का हृदय, तो जैसे टेलीविजन दूर से देख लेता है, ऐसा संजय ने भी देखा होता। संजय न हुए होते, टेलीविजन हुए होते। कुछ भी पुलकित न होता, कुछ भी हर्षित न होता। टेलीविजन को क्या फर्क पड़ता है कि फिल्म अभिनेता का चित्र उतरता है उस पर, कि कोई तस्कर का, कि कृष्ण का, कि बुद्ध का! कोई फर्क नहीं पड़ता; यंत्रवत है।

असली फूल खिलता है अपने भीतर से, लेकिन जरूरत होती है सूरज के प्रसाद की। नकली फूल कभी खिलता ही नहीं; उसे किसी प्रसाद की भी कोई जरूरत नहीं होती।
तुम जब खिलोगे, तब दो घटनाओं का मेल होगा। तुम तैयार होओगे कली की भांति और सूरज आएगा, और तुम्हें तुम्हारी नींद से जगाएगा। सूरज फैलाएगा अपनी किरणों का जाल तुम्हारे चारों तरफ।
वही तो कृष्ण करते हैं, वही बुद्ध करते हैं। वही अगर तुम राजी हो, तो मैं कर रहा हूं। तुम्हारी कली के आस-पास किरणों का एक जाल, किरणों की अंगुलियों से धीमे-धीमे तुम्हें सहलाना और जगाना! नींद लंबी है, बहुत प्राचीन है। उठना बहुत मुश्किल है। पर अगर कली जीवित है, तो उठ ही आएगी। एक घड़ी घटी अर्जुन के जीवन में, जब आंख उधार थी। उससे केवल भय पैदा हुआ। उससे अर्जुन महात्मा न बना। उससे अर्जुन के जीवन में महत का अवतरण न हुआ। विराट देख लिया और महात्मा न बना! महत का अवतरण न हुआ! विराट द्वार पर खड़ा हो गया, उसने घबड़ाकर आंखें बंद कर लीं। जैसे सूरज की तरफ तुमने देखा हो और आंखें धुंधिया गईं, कुछ दिखाई न पड़ा, आंखें बंद हो गईं, अंधेरा फैल गया। विराट को देखने का अर्थ है, अरबों-खरबों सूरज को एक साथ देखना। यह एक सूरज तो बहुत छोटा सूरज है, टिमटिमाता दीया है। अरबों-खरबों सूरज देखे अर्जुन ने कृष्ण के भीतर; सूरजों का जन्म देखा, उनका विलीन होना देखा; सृष्टि का बनना देखा और मिटना देखा; सृजन के क्षण से लेकर प्रलय के क्षण तक पूरा एक क्षण में सब संग्रहीभूत देखा; जन्म में छिपी मौत देखी; प्रकाश में छिपा अंधेरा देखा; सौंदर्य में छिपी कुरूपता देखी। घबड़ा गया। कंप गया। कहा, बंद करो! यह आंख अपनी वापस लो।
महत द्वार पर खड़ा हुआ, अर्जुन महात्मा न हो सका। अभी अर्जुन तैयार ही
न था। यह अमृत तो आया, लेकिन ऐसे आया, जैसे वर्षा में नदी में बाढ़ आ जाती है। तुम घबड़ा उठते हो। तुम कहते हो, गंगा मैया, वापस ले ले। यह तो घर बहा जाता है! यह तो खेत डूब गया! यह तो जानवर मरे जाते हैं! यह तो प्राण पर संकट हो गया!
यही जल खेती को हरियाली देता है। इसी जल के बिना पशु मर जाते हैं। इसी
जल के बिना आदमी न होगा, सभ्यता न होगी। सारी सभ्यताएं नदियों के किनारे बड़ी हुईं। इसलिए तो हिंदू नदियों को इतनी पूजा देते रहे हैं। क्योंकि सारा मनुष्य, सारा संस्कार, सारी सभ्यता, सारा खेल नदी के किनारे है, जल के आस-पास है।
तुम अगर वैज्ञानिक से पूछो, तो बताएगा, तुम अपने भीतर अट्ठासी परसेंट पानी हो; जल ही जल है, गंगा ही गंगा भीतर बह रही है।
जल खो जाता है, सभ्यताएं खो जाती हैं, मरुस्थल रह जाते हैं, खंडहर रह जाते हैं। इसी जल से जीवन है! और यही जल बाढ़ की तरह आता है, भयंकर विकराल बाढ़ की तरह, और जीवन को मिटाने लगता है, मृत्यु हो जाता है। जिसने सींचा था वृक्षों को, वही बहा ले जाता है। जिसने कंठों की प्यास बुझाई थी, उन्हीं को डुबा देता है; चीख-पुकार, कुछ सुनाई नहीं पड़ती।
अर्जुन को दृष्टि तो मिली थी, लेकिन उस दिन कृष्ण में बाढ़ आयी। अर्जुन तैयार न था उतनी बड़ी बाढ़ के लिए। उसके पास बांध न था कि इस बाढ़ का उपयोग कर लेता। इस विराट जल को भर लेता, इतनी उसके भीतर क्षमता न थी। सात अध्याय और लग गए, एक पूरा संसार और लग गया, तब कहीं जाकर उसे अपनी दृष्टि उत्पन्न हुई।
दोनों में बड़ा फर्क है। जब अर्जुन कृष्ण से दृष्टि मांग रहा था, तब वह अहंकारी है। वस्तुतः वह मानता नहीं है कि कृष्ण यह कर सकते हैं। उसे विश्वास नहीं है; भीतर संदेह है। वह तो परीक्षा ले रहा है। शिष्य गुरु की परीक्षा ले रहा है! दुर्घटना घटेगी।
गुरु शिष्य की परीक्षा ले, समझ में आ सकता है। लेकिन अर्जुन जब पूछ रहा है, दिखाओ अपना विराट रूप! तो वह यह नहीं सोच रहा है कि ये दिखा पाएंगे। वह जानता है कि भलीभांति इनको जानता हूं, बचपन के साथी हैं, सखा हैं; अच्छे- बुरे सब कामों में साथ रहे हैं; धोखाधड़ी में भी तालमेल रहा है; शड्यंत्र में सहयोगी रहे हैं; अचानक ये विराट के दावेदार हो गए! ये भगवान हैं?

इसको एकदम इनकार भी नहीं कर सकता, क्योंकि कृष्ण की मौजूदगी भीतर उसे हलके-हलके हृदय को भी छूती है; कहीं ऐसा लगता भी है, हो न हो ठीक ही हों। लेकिन भरोसा भी नहीं आता; संदेह प्रबलता से खड़ा है, पैर जमाकर खड़ा है, अंगद की भांति खड़ा है, वह हटता नहीं। वह तो बाढ़ न आ जाएगी, तब तक अंगद हटेगा भी नहीं; आकाश न टूटेगा, तब तक अंगद हटेगा भी नहीं।
पूछता है कृष्ण से अर्जुन। उसे भरोसा नहीं था। और कृष्ण ने जो उसे अपना विराट रूप दिखाया, वह इसलिए नहीं दिखाया कि उसका समर्पण था और वह विराट देखने के योग्य हो गया था। उसका अहंकार था, और अहंकार मिटेगा नहीं, जब तक वह विराट के नीचे दब न जाए, टूटेगा नहीं।
तो पहली घटना तो अहंकार से ही उपजी थी, संदेह से उपजी थी। दूसरी घटना सात अध्यायों के बाद समर्पण से उपजी है। अब उसने अपने को कृष्ण के चरणों में छोड़ा है। उसने कहा, जो तुम्हारी आज्ञा, जो तुम्हारी मर्जी। मुझे स्मृति उपलब्ध हो गयी। मेरा प्राण थिर हुआ, प्रज्ञा स्थिर हुई। अब मैं देखने में समर्थ हुआ हूं। जीवन का सब राज मुझे दिखाई पड़ गया है, तुम्हारी प्रसाद-रूप कृपा से। अब तुम्हारी जो आज्ञा। अब मैं नहीं हूं; अब तुम ही हो। अब तुम जो कराओ, वही होगा। पहले भी तुम जो करा रहे थे, वही हो रहा था; लेकिन मैं समझता था कि मैं कर रहा हूं। अब सच बात दिखायी पड़ गयी।
होता तो वैसा ही है, जैसा परमात्मा करवाता है; तुम चाहे मानो, या न मानो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। न मानने से तुम सिर्फ अज्ञान में जीते हो; मानने से तुम बोध को उपलब्ध हो जाते हो। होता तो वही है, जो वह कराता है। रत्तीभर भी फर्क नहीं पड़ता तुम्हारे करने से। लेकिन तुम्हें बहुत फर्क पड़ जाता है, जमीन-आसमान का फर्क पड़ जाता है।
अब यह जो घटना घटी है, यह समर्पण से घटी है, श्रद्धा से घटी है। संदेह
जा चुका है। स्मृति उपलब्ध हुई है।
यह बड़ा प्यारा उदघोष है कि मुझे स्मृति उपलब्ध हुई; मैं जाग गया; मैं अपने को देख लिया हूं। अब कोई झंझट नहीं। अब मैं जानता हूं कि मैं हूं ही नहीं।
अब यह बड़े मजे की बात है। जिन्होंने अपने को नहीं देखा, वे मानते हैं
कि हैं; और जिन्होंने अपने को देखा, उन्होंने जाना कि वे नहीं हैं। जो अपने से मिले नहीं, उनको पक्का भरोसा है कि वे हैं; और जिन्होंने अपने से मुलाकात की, उन्होंने पाया कि वहां कोई है ही नहीं, घर सूना है; सिर्फ परमात्मा की आवाज गूंजती है, वही है।
जो अपने भीतर गए, उन्होंने परमात्मा को पाया, स्वयं को कभी पाया ही नहीं। जो अपने से बाहर-बाहर रहे, उन्होंने स्वयं को पाया।
इसलिए तो कबीर उलटबांसियां कहते हैं। वे कहते हैं, बड़ी उलटी बातें संसार में हो रही हैं। वे कहते हैं कि मैंने देखा कि नदी में आग लगी है; मैंने देखा कि मछलियां झाड़ पर चढ़ गयी हैं! वे इसी बात की तरफ इशारा कर रहे हैं।
कहते हैं, एक अचंभा मैंने देखा, नदिया लागी आग।
वे इसी अचंभे की तरफ कह रहे हैं कि जो है ही नहीं, जो हो ही नहीं सकता, नदी में आग लगना, वह मैंने होते देखा है।
तुम हो ही नहीं और तुम्हारे न होने के बिना भी तुममें आग लगी है। तुम जले जा रहे हो, तड़पे जा रहे हो, परेशान हुए जा रहे हो; दौड़े जा रहे हो उस अहंकार को भरने को, जो है ही नहीं! जिसे भरने का उपाय भी कैसे हो सकेगा, जो है ही नहीं? होता, तो भर भी लेते!
और जिन्होंने अपने को जाना--अब यह बड़े मजे की बात है--जिन्होंने अपने
को जाना, उन्होंने यही जाना कि नहीं हैं। अज्ञानी हैं और ज्ञानी नहीं हैं! लाओत्से इसीलिए बार-बार कहता है कि एक मुझको छोड़कर सभी समझदार हैं।
एक मैं ही नादान हूं; एक मैं ही पागल हूं यहां समझदारों की बस्ती में; सभी होशियार हैं। क्योंकि सभी को पक्का पता है कि वे हैं; एक मैं ही संदिग्ध हो गया हूं; एक मेरी ही नींव कट गई है, जड़ें कट गई हैं; मुझे ही पता है कि मैं नहीं हूं। एक मैं ही कंप रहा हूं हवा के झोंकों में, बाकी लोग तो थिर खड़े हैं, बड़े अडिग खड़े हैं!
यह घटना घट रही है। यह अचंभा रोज घट रहा है।

जिस क्षण अर्जुन ने अपने को देखा, कहा, तुम्हारी जो आज्ञा! क्योंकि तुम्हीं हो। और मैं इनकार करूं, तो भी कर नहीं सकता हूं, क्योंकि मैं हूं नहीं। और जो मैंने अब तक इनकार किए थे, वे सब झूठे हो गए, सपने में किए होंगे। क्योंकि यह हो ही कैसे सकता है! जब मैं ही न था, तो इनकार कैसे होते? इसको कहते हैं, मुझे अपनी स्मृति आ गयी! और स्मृति आते ही प्रज्ञा थिर
हो जाती है।
जब मैं हूं ही नहीं, तो कंपेगा कौन? क्या ऐसी कोई पत्ती कंप सकती है तूफानों में जो है ही नहीं? जब तक पत्ती है, कंपेगी; छोटा-सा भी हवा का झोंका आएगा, तो कंपेगी; और तूफान आएंगे, तब तो बहुत कंपेगी, विक्षिप्त होकर कंपेगी। हां; पत्ती हो ही न, तो फिर क्या कंपेगी?
बुद्ध एक गांव से गुजरे हैं। लोगों ने गालियां दी हैं। और उन्होंने कहा कि ठीक, तुम्हें जो करना था, तुमने किया; अब मैं जाऊं? मुझे दूसरे गांव जल्दी पहुंचना है। पर उन्होंने कहा, हमने जो गालियां दी हैं, उनका क्या? तो बुद्ध बहुत हंसने लगे। उन्होंने कहा, तुम थोड़ी देर से आए। दस वर्ष पहले आना था, तब मैं था। तब तुम्हारी गालियों के उत्तर मुझसे निकलते। अब कौन उत्तर दे? तुम गालियां देते हो, यहां भीतर सन्नाटा है। वहां उत्तर देने वाला अब नहीं है।
उसी दिन प्रज्ञा थिर होती है, जिस दिन तुम मिट जाते हो। जब तक तुम हो,
तब तक थिरता न आएगी। स्थितप्रज्ञ वही हो पाता है, जो शून्यभाव को उपलब्ध हो जाता है।
यह था अंतराल। सात अध्याय पूर्व उधार थी दृष्टि; सात अध्याय बाद दृष्टि अपनी है।
उधार का भरोसा मत करना; दो कौड़ी उसका मूल्य नहीं है। अपनी ही खोज करना।
बुद्ध पुरुषों से संकेत लेना, सत्य मत लेना। सत्य तो कोई किसी को दे नहीं सकता। उनसे मार्ग लेना, मंजिल मत ले लेना। मंजिल तो कोई किसी को दे नहीं सकता। वे इशारा करें, उनके इशारे पर चलना, लेकिन चलना तुम्हीं। यह मत सोचना कि बुद्ध पुरुष तुम्हारे लिए चलें, और तुम उनकी आंखों से देख लोगे और उनके पहुंचने में तुम पहुंच जाओगे।
नहीं; कृष्ण जैसा पुरुष भी अपनी आंख देकर अर्जुन को केवल पीड़ा ही दे पाता है, कोई आनंद नहीं दे पाता। उधार आंख का कोई भी मूल्य नहीं है।
तुम बुद्ध पुरुषों के हृदय से न धड़क सकोगे; धड़कोगे भी तो घबड़ा जाओगे, क्योंकि वह हृदय बड़ा है, वह विराट है। उसमें तुम तूफानों की गूंज पाओगे, आंधियों का अंधड़ पाओगे, पहाड़ों का गिरना पाओगे, सृजन पाओगे, प्रलय पाओगे। उस धड़कन को तुम सह न पाओगे। तुम्हारा छोटा-सा हृदय, घड़ी की तरह टिक-टिक होने वाला हृदय, उस विराट उथल-पुथल को सह न पाएगा। तुम उसके नीचे दबकर मिट जाओगे।
तो अगर कृष्ण जल्दी ही न खींच लें अपनी दृष्टि को वापस, तो अर्जुन खो जाएगा, जल जाएगा, भस्मीभूत हो जाएगा।
नहीं; दृष्टि उधार नहीं पायी जा सकती। दृष्टि के लिए स्वयं को निखारना जरूरी है।

तीसरा प्रश्नः जर्मन विचारक शापेनहार ने जब गीता पढ़ी, तो उसे सिर पर उठाकर नाचने लगा। फिर क्या वह कृष्ण-चेतना की ओर अग्रसर हुआ? और बर्ट्रेंड रसेल ने भी गीता पढ़ी, परंतु वे कृष्ण से बहुत प्रभावित नहीं हुए। संभवतः वे बुद्ध से प्रभावित हुए हैं। फिर भी वे बुद्ध के भी शिष्य नहीं बने! इन दोनों घटनाओं पर कुछ प्रकाश डालें।

शापेनहार और रसेल की चित्त-दशा बिल्कुल अलग-अलग है। शापेनहार विषाद
की दशा में है, वहीं जहां अर्जुन। शापेनहार पश्चिम का सबसे दुखवादी विचारक है, उदास। जीवन सिर्फ एक संताप है! वह विषाद-योग की दशा में था, जब उसके हाथ में गीता पड़ी। सब तरफ उसने खोजा था। लेकिन उसका विषाद मिटता नहीं था, घना होता था। वह अर्जुन की ही भाव-दशा में था।

बहुत प्रगाढ़ विचारक था शापेनहार। प्रगाढ़ विचारक विषाद की अवस्था में पहुंच ही जाते हैं। उसे कोई किरण न दिखाई पड़ती थी। अंधेरा ही अंधेरा था! अमावस की रात थी। कहीं सुबह होती भी है, इसका भी भरोसा खो गया था।
और तब उसके हाथ में गीता पड़ी, ऐसे जैसे प्यासे को मरुस्थल में अचानक झरना मिल गया! वह झरने का कलकल नाद अगर अचानक मरुस्थल में मिल जाए, तो तुम तानसेन के संगीत को सुनना पसंद न करोगे। सब संगीत फीके हो जाएंगे। वह नाद अदभुत होगा, क्योंकि तुम्हारी प्यास से मेल खाएगा।
संयोग की बात थी, शापेनहार ठीक अर्जुन की दशा में था, और गीता उसके हाथ
पड़ गयी। गीता उसने पढ़ी और एक ही बैठक में पढ़ गया। वह आंख न झपक सका। श्वास अवरुद्ध हो गयी। उठायी गीता सिर पर और नाचने लगा।
घर के लोगों ने, परिवार के लोगों ने, मित्रों ने, शिष्यों ने समझा कि
अब वह पूरा पागल हुआ। डर तो उन्हें पहले से था कि इतने विषाद में कोई रहेगा, तो पागल हो जाएगा। अब हो गया पागल! यह क्या पागलपन है?
लेकिन शापेनहार ने कहा, जिस किरण का मुझे भरोसा नहीं था, वह किरण का भरोसा मिला। यात्रा लंबी है; मंजिल मिले या न मिले; पर भरोसा मिल गया। गीता में मुझे किरण मिल गयी, झलक मिल गयी।
नहीं कि वह महात्मा हो गया; हो जाएगा किसी जन्म में। क्योंकि जहां आशा है, वहां सुबह ज्यादा दूर नहीं। देर-अबेर शापेनहार घर लौट गया होगा, या लौट जाएगा। लेकिन विषाद अकेला नहीं रहा; विषाद में अंधेरे भरे घर में एक सूरज की किरण उतर आई। अब उस किरण के सहारे को लेकर सूरज तक जाया जा सकता है। लंबी यात्रा है। लेकिन सूरज भी कहीं होगा, अन्यथा किरण नहीं हो सकती थी। कृष्ण की किरण उसे छू गयी।
रसेल विषाद में नहीं था, इसलिए चित्त-दशा राजी ही नहीं थी। रसेल साधारण प्रसन्नचित्त आदमी था। उदासी और दुख से उसका कोई तालमेल नहीं। और जब विषाद ही न हो, तो गीता शुरू ही नहीं होती। इसलिए तो गीता विषाद-योग से शुरू होती है। जो अभी जीवन में दुखी ही नहीं हुआ, उसे अभी जीवन की पीड़ा ही नहीं दिखायी पड़ी, उसने जीवन की रात ही नहीं पहचानी, कांटे का ही अनुभव नहीं हुआ, अभी उससे गीता का मेल नहीं होगा।
रसेल ने पढ़ ली होगी, ऐसे ही जैसे बिन प्यासे आदमी के पास से जल की धार बहती रहे। देख ली, आंख उठा ली; बाकी उस देखने से कोई नाचेगा नहीं। बिन प्यासे आदमी के पास से जल का कलकल नाद होता रहे, थोड़ी देर में उसे लगेगा कि बंद करो यह शोरगुल, कोई काम ही नहीं हो पाता। उसे उस कलकल नाद में जीवन का परम संगीत नहीं सुनायी पड़ेगा।
ध्यान रखना, भीतर प्यास हो, तो ही बाहर जल में संगीत सुनायी पड़ सकता है।
रसेल ठीक अवसर में नहीं था। ठीक क्षण न था, जहां गीता से मेल हो जाए। चूक गया। बुद्ध से थोड़ा मेल रसेल का हुआ, क्योंकि बुद्ध प्रखर बुद्धिवादी हैं। यद्यपि बुद्धि के पार ले जाते हैं, लेकिन बुद्धि के ही माध्यम से ले जाते हैं।
कृष्ण का सूत्र तो समर्पण है। बुद्ध का सूत्र समर्पण नहीं है। बुद्ध
का सूत्र तो ध्यान है। बुद्ध तो कहते हैं, बुद्धि से विचार करो जितना कर सकते हो, अंततः करो, आत्यंतिक रूप से विचार करो। और ऐसी घड़ी आ जाएगी कि विचार करते-करते ही तुम विचार के पार हो जाओगे; क्योंकि विचार की एक सीमा है, और तुम्हारी सीमा नहीं है। लेकिन विचार से ही तुम पाओगे।
बुद्ध का धर्म बुद्धि का धर्म है। रसेल को जमा। रसेल को जीसस भी इतने नहीं जमते हैं, यद्यपि वह ईसाई घर में पैदा हुआ है। क्योंकि जीसस का भी तालमेल कृष्ण से ज्यादा है--समर्पण, प्रार्थना, भक्ति-भाव! तर्क पर नहीं है जोर जीसस का। लेकिन बुद्ध बड़े तर्कनिष्ठ हैं। इसलिए दुनिया में जो आदमी भी तर्कनिष्ठ है, वह बुद्ध से निश्चित प्रभावित होगा।
लेकिन बुद्ध के साथ भी रसेल बहुत दूर तक न गया। वह वहीं तक गया, जहां
तक बुद्ध रसेल के साथ गए। इस फर्क को समझ लेना।
जहां तक बुद्ध रसेल के साथ गए, वहां तक रसेल उनके साथ गया। उसके आगे रास्ते अलग हो गए। फिर वह बुद्ध के साथ नहीं गया, इसलिए बुद्ध का शिष्य नहीं बना।

जहां तक रसेल के साथ बुद्ध ने मेल खाया, रसेल ने कहा, बिल्कुल ठीक। जहां मेल भिन्न हुआ, टूटा, रसेल ने बुद्ध से कहा, अपने रास्ते और तुम्हारे रास्ते अलग; अब हम अलग-अलग जाते हैं। यहां तक साथ रहा, ठीक; लेकिन यात्रा सदा हमारी साथ नहीं हो सकती। अब तुम गड़बड़ बात करते हो!
क्योंकि रसेल मानता है, बुद्धि के ऊपर कोई तत्व है ही नहीं। इस संबंध में वह बहुत मताग्रही है। वह कहता है, बुद्धि आखिरी तत्व है। इसके ऊपर तुमने बात की कि अंधविश्वास शुरू हुआ। इसके ऊपर तुमने बात की कि फिर तुमने उपद्रव शुरू किया। फिर दुनियाभर के उपद्रव आ जाएंगे; भूत-प्रेत, भगवान, सब पीछे से आ जाएंगे; मोक्ष, स्वर्ग-नर्क, पाप-पुण्य, पादरी, पुरोहित, पंडित, सब आ जाएंगे। जैसे ही तुमने तर्क का साथ छोड़ा कि ये सब अंधेरे के वासी एकदम प्रवेश कर जाएंगे। और रसेल कहता है, इनसे बचना है। रसेल कहता है, धर्म से बचना है।
रसेल की बात में थोड़ी सचाई है, क्योंकि धर्मों ने बहुत अहित किया है। अहित इसीलिए किया है कि धर्म धर्म नहीं रहे, संप्रदाय हो गए। लेकिन अहित तो हुआ है। मनुष्य को अंधेरे में डाल रखने में सहयोगी बन गए धर्म। ले जाना था प्रकाश की तरफ, ले नहीं गए। कारागृह बन गए; बनना थी मुक्ति, स्वतंत्रता। जंजीरें ढालीं उन्होंने। प्राणों में पंख न लगाए कि तुम आकाश में उड़ जाते। चर्च और मंदिर और मस्जिद और गुरुद्वारे तुम्हें घेरकर खड़े हो गए, वे जेलखाने बन गए। उनमें तुमने स्वतंत्रता का संगीत न सुना; कारागृह की बास, दुर्गंध आयी।
रसेल भी ठीक कहता है कि इससे ऊपर जाने में खतरा है। इसलिए इससे आगे वह बुद्ध के साथ नहीं जाता। इसलिए उनका शिष्य भी नहीं बन पाता। उसकी जरूरत नहीं है अभी। अभी विचार उसको काफी मालूम पड़ता है।
जरूरत का सवाल है। जैसे एक सात साल का बच्चा है, कामवासना की उसे अभी जरूरत नहीं है; चौदह का होगा, तब जरूरत होगी। एक समय होता है हर चीज का। अगर विचार में रसेल चलता ही चला जाए, तो एक दिन शापेनहार की स्थिति में आएगा। विचार विषाद में ले जाएगा। और जब विचार विषाद में ले जाएगा, तब संबंध जुड़ेगा। तब या तो वह बुद्ध के साथ जाने को राजी हो जाएगा विचार के पार, या कृष्ण के साथ राजी हो जाएगा समर्पण को।
जहां तुम्हारे विचार की समाप्ति होती है वहीं बुद्ध, कृष्ण, क्राइस्ट खड़े हैं। तुम्हारी विचार की सीमा के पार खड़े हैं। जब तक तुम विचार के खिलौनों से खेल रहे हो, तब तक तुम्हारा उनसे संबंध न होगा।
रसेल बहुत प्रगाढ़ विचारक नहीं है। अगर प्रगाढ़ विचारक हो, तो विषाद पैदा होगा। क्योंकि जिसने गौर से देखा, उसे दुख दिखायी पड़ेगा ही। दुख है। और जिसे दुख दिखायी पड़ेगा, वह आनंद की खोज में निकलेगा ही। क्योंकि दुख से प्राण राजी नहीं होते हैं।

अब सूत्रः
इसके उपरांत संजय बोला, हे राजन, इस प्रकार मैंने श्री वासुदेव के और महात्मा अर्जुन के इस अदभुत, रहस्ययुक्त और रोमांचकारक संवाद को सुना। थोड़ा जीवंत, थोड़ा प्राणवान चैतन्य हो, तो सुनकर भी द्वार खुलने लगेंगे। बात संजय से कही न गयी थी। संजय तो केवल एक गवाह है। कही थी किसी और ने, कही थी किसी और के लिए। संजय तो एक प्रत्यक्षदर्शी गवाह है, एक चश्मदीद गवाह है। संजय तो सिर्फ एक साक्षी है। उसने वही दोहरा दिया है अंधे धृतराष्ट्र के सामने, जो घटा था। संजय तो एक रिपोर्टर है, एक अखबारनवीस। लेकिन उसके जीवन में भी कुछ घटने लगा।
सत्य की महिमा ऐसी है कि तुम उसके निकट जाओगे, तो वह तुम्हें छू ही लेगा। तुम शायद गवाही की तरह ही गए थे, या तुम सिर्फ एक दर्शक की भांति गुजरे थे, लेकिन सत्य की महिमा ऐसी है, उसका रहस्य ऐसा है कि तुम्हारे हृदय में कुछ होना शुरू हो जाएगा। तुम दर्शक की भांति गए हो, लेकिन दर्शक की भांति वापस न लौट सकोगे।
अभी ऐसा हुआ। एक युवक अफ्रीका से मुझे मिलने आया। वह मुझे मिलने निकला ही नहीं था। जा रहा था न्यूजीलैंड। जिस हवाई जहाज में सफर कर रहा था,

एक संन्यासी मिल गया। उत्सुकता जगी। माला देखी, चित्र देखा, पूछा। तो उसने सोचा कि एक दिन के लिए उतर जाऊं। कुतूहलवश आया था। सब छोड़कर न्यूजीलैंड जा रहा था अफ्रीका से। वहीं बसने का इरादा था।
यहां आया, मुझे मिला। कुछ बात छू गयी। दिन लंबाने लगे। एक दिन की जगह सात दिन रुका, सात दिन की जगह तीन सप्ताह रुका। फिर संन्यस्त हो गया। फिर न्यूजीलैंड जाने की बात छोड़ दी।
फिर एक दिन मुझसे आकर कहने लगा, यह भी अजीब बात हुई! कभी स्वप्न में सोचा नहीं था कि संन्यस्त हो जाऊंगा। संन्यास शब्द से ही कभी कोई संबंध न था। कभी यह भी न सोचा था कि मैं कोई धार्मिक व्यक्ति हूं। चर्च से मेरा कोई नाता नहीं रहा। जा रहा था किसी और प्रयोजन से, योजना कुछ और बनाई थी, कुछ का कुछ हो गया। और अब? अब क्या करूं, वह मुझसे पूछने लगा, अब कहां जाऊं? अफ्रीका वापस लौट जाऊं? न्यूजीलैंड जाऊं? कि यहीं रह जाऊं?
मैंने उससे कहा, तू सोच ले जहां तुझे जाना हो। उसने कहा कि अब न सोचूंगा, क्योंकि सोचकर तो न्यूजीलैंड जा रहा था! और वर्षों से सोच रहा था। और सब इंतजाम करके निकला था। सब बेच-बाचकर आया हूं। पीछे सब समाप्त कर आया हूं। आगे जाने की कोई जगह न रही। और जहां बीच में आज खड़ा हूं, यहां कभी सोचा न था। तो जब अनसोचा होता है और सोचा नहीं होता, तो अब सोचना क्या! आप ही कह दें। जो आज्ञा!
कभी दर्शक भी कभी कुतूहलवशात आ जाए सत्य के करीब, तो उसके हृदय में भी रोमांच हो जाता है।
इसके उपरांत संजय बोला, हे राजन, इस प्रकार मैंने श्री वासुदेव के और महात्मा अर्जुन के इस अदभुत रहस्ययुक्त और रोमांचकारक संवाद को सुना। मेरा भी रोमांच हो गया है! मैं भी आपूरित हो गया हूं! सुन-सुनकर मैं भी और हो गया!
और संजय कहता है, महात्मा अर्जुन!
उसने एक अपूर्व जन्म देखा है। वह एक ऐसे जन्म की घटना का गवाह रहा है
कि कोई दूसरा गवाह खोजना मुश्किल है। जिसने संदेह को समर्पण बनते देखा; जिसने अहंकार को विसर्जित होते देखा; जिसने योद्धा को संन्यासी बनते देखा; जिसने क्षत्रिय के अहंकार को ब्राह्मण की विनम्रता बनते देखा; जिसने अर्जुन का नया जन्म देखा। शुरू से लेकर, अ से लेकर आखिर तक, पूरी जीवन-यात्रा देखी। वह कहता है, महात्मा अर्जुन! अब साधारण अर्जुन कहना ठीक न होगा।
श्री व्यासजी की कृपा से दिव्य-दृष्टि द्वारा मैंने इस परम रहस्ययुक्त गोपनीय योग को साक्षात कहते हुए स्वयं योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान से सुना है।
इसलिए हे राजन, श्रीकृष्ण भगवान और अर्जुन के इस रहस्ययुक्त, कल्याणकारक और अदभुत संवाद को पुनः-पुनः स्मरण करके मैं बारंबार हर्षित होता हूं।
जैसे एक झरना भीतर कलकलित हो रहा है; जैसे भीतर एक फुहार पड़ी जाती है; बार-बार मेघ घिर आते हैं, बार-बार वर्षा हो जाती है!
बारंबार हर्षित होता हूं स्मरण कर-करके!
जो देखा है, वह अपूर्व है। जैसा आंखों से देखा नहीं जाता, ऐसा देखा है!
जो कभी सुना नहीं, ऐसा सुना है! और जो घटना देखी है, भरोसे के योग्य नहीं है!
अहंकार समर्पण बन जाए, इससे ज्यादा रहस्ययुक्त घटना इस संसार में दूसरी नहीं है। इससे बड़ी कोई रोमांचकारी घटना नहीं है। यह अपूर्व है। यह असाधारण से भी असाधारण बात है।
और व्यक्ति तब तक साधारण ही रहता है, जब तक अहंकार में रहता है। जिस दिन अहंकार समर्पण बनता है, उस दिन व्यक्ति भी असाधारण हो जाता है। उसके पैर जहां पड़ते हैं, वहां मंदिर हो जाते हैं। वह मिट्टी छूता है और स्वर्ण हो जाती है। उसकी हवा में काव्य होता है। उसके स्पर्श से सोए लोग जाग जाते हैं, मृत जीवित हो जाते हैं।
मरे हुए अर्जुन को पुनः जीवित होते देखा है। हाथ-पांव शिथिल हो गए थे; गांडीव छूट गया था; उदास, थका-मांदा अर्जुन बैठ गया था। विषाद की कथा को

आनंद तक पहुंचते देखा है! नर्क से स्वर्ग तक की पूरी की पूरी सोपान-सीढ़ियां देखी हैं!
पुनः स्मरण करके बारंबार हर्षित होता हूं।
तथा हे राजन, श्री हरि के उस अदभुत रूप को भी पुनः-पुनः स्मरण करके मेरे चित्त में महान आश्चर्य होता है... ।
कितनी करुणा! कितनी बार अर्जुन छूटा; भागा; फिर-फिर खींचकर उसे ले आए। जरा भी नाराज न हुए! एक बार भी उदासी न दिखाई! कितना अर्जुन ने पूछा, थका डाला पूछ-पूछकर वही-वही बात। लेकिन कृष्ण उदास न हुए; वे फिर-फिर वही कहने लगे; फिर-फिर नए द्वारों से कहने लगे, नए शब्दों में कहने लगे!
कृष्ण पराजित न हुए! अर्जुन का संदेह पराजित हुआ, कृष्ण की करुणा पराजित न हुई। अर्जुन का अज्ञान पराजित हुआ, ज्ञान कृष्ण का पराजित न हुआ। महान आश्चर्य होता है और मैं बारंबार हर्षित होता हूं।
संजय कुछ कह नहीं पा रहा; बार-बार कहता है, बस हर्षित हो रहा हूं। एक गीत बज रहा है भीतर। नाचने का मन हो रहा है। और उसे कुछ भी नहीं हुआ है। वह दूर खड़ा दर्शक है।
धन्यभागी हैं वे भी, जो धर्म के दर्शक बन जाएं। धन्यभागी हैं वे भी, जो मंदिर के पास से गुजर जाएं और जिनके कानों में मंदिर की घंटियों का नाद भी पड़ जाए! क्योंकि वह भी हर्षित करेगा।
हे राजन, विशेष क्या कहूं! जहां योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान हैं और जहां गांडीव धनुषधारी अर्जुन है, वहीं पर विजय है, श्री है, विभूति है, अचल नीति है, ऐसा मेरा मत है।
और वह यह कह रहा है कि माना कि आपके पुत्र विपरीत खड़े हैं और आपका पिता
का हृदय चाहेगा कि वे जीत जाएं, लेकिन यह असंभव है। क्योंकि जहां कृष्ण भगवान हैं और जहां महात्मा अर्जुन है, वहीं होगी नीति, वहीं होगा सत्य, वहीं होगी श्री, वहीं होगी संपदा, वहीं आएगी विजय। सत्य ही जीतता है, असत्य नहीं।
तो संजय कहता है, माना, आपके पिता के हृदय को मैं समझता हूं कि आप चाहेंगे कि आपके बेटे जीत जाएं, लेकिन यह हो नहीं सकता। यह असंभव है। सत्य ही जीतेगा। सत्य ही जीतना भी चाहिए।
विषाद से शुरू होने वाली यह गीता, सत्य की विजय पर पूरी हो जाती है।
विषाद में तुम हो। गीता के इशारे तुम्हारे काम पड़ जाएं, तो सत्य की विजय-यात्रा तुम्हारी भी पूरी हो सकती है।
कोई भी कारण नहीं है, जो अर्जुन को हुआ, वह सभी को हो सकता है। कोई भी बाधा नहीं है। जितनी बाधाएं अर्जुन को थीं, उससे ज्यादा तुमको नहीं हैं। जितना अज्ञान अर्जुन का था, उससे ज्यादा तुम्हारा नहीं है।
इसलिए अगर तुम राजी हो, जैसा अर्जुन राजी था; संदेह के बावजूद भी राजी था; संदेह के बावजूद भी कृष्ण के साथ चलने को राजी था; संदेह के बावजूद भी खोजने की उत्सुकता थी; तो पहुंच गया मंजिल पर। प्रत्येक व्यक्ति पहुंच सकता है। परमात्मा प्रत्येक व्यक्ति के भीतर की स्वभाव-सिद्ध संभावना है।
गीता के ये सारे वचन हजार-हजार बार मैंने दोहराकर तुमसे कहे, इस आशा में ही कि किसी क्षण में, किसी मनोभाव की दशा में चोट पड़ जाएगी, तीर लग जाएगा।
तीर लगा हो, तो उसे सम्हालना। उसकी पीड़ा अमृतदायी है। उस पीड़ा को सींचना। संसार में मिला सुख भी असार है। परमात्मा के मार्ग पर मिला दुख भी अहोभाग्य है।
उसे पाने में कितनी ही कठिनाई हो, जिस दिन तुम पाओगे, उस दिन जानोगे, कठिनाई कुछ भी न थी। क्योंकि जो मिलेगा, वह अमूल्य है। तुम किसी भी मूल्य से उसे कूत नहीं सकते। जब तक नहीं मिला है, तब तक भला लगे कि बड़ी कठिनाई है; जिस दिन मिलेगा, उस दिन तुम भी कहोगे, तेरे प्रसाद से!
गीता समाप्त हो जाती है, लेकिन तुम्हारी यात्रा शुरू होती है! और सम्हलकर चले, होशपूर्वक चले, तो एक दिन जरूर वह अहोभाग्य की घड़ी आएगी, जब तुम्हारी स्मृति जगेगी; तुम्हें अपना स्मरण आएगा; भूला विस्मरण, भूला- बिसरा अपना स्वरूप याद आएगा; तुम्हारी प्रज्ञा थिर होगी!

और उसी दिन इस जगत के सारे रहस्य तुम्हारे लिए खुल जाएंगे! तुम फिर याद कर-करके ही आनंदित होओगे, आह्लादित होओगे! फिर तुम्हारा रोआं-रोआं पुलकित होगा! तुम्हारी धड़कन-धड़कन स्वर्ग के सुख से भर जाएगी!
जब तक तुम्हें स्मरण नहीं आया अपना, तब तक दुख है, तब तक महा अंधकारपूर्ण रात्रि है जीवन, अमावस है। जैसे ही स्मरण आया, फिर कोई रात्रि होती ही नहीं। फिर दिवस ही दिवस है।
आज इतना ही।